टेलीफ़ोन-नं०—बड़ा बाज़ार १२६०, कलकत्ता

तार का पता :—"गोल्डमाइन" कलकत्ता

सोना, चाँदी और जवाहरात के ज़ेवरों का

अपूर्व संग्रह-स्थान

[इस प्रतिष्ठित फ़र्म के सञ्चालकों से हमारा पूर्ण परिचय है। यहाँ किसी प्रकार का धोखा होगा, इस बात का स्वप्न में भी भय न करना चाहिए। सारा काम सञ्चालकों की देख-भाल में सुन्दर और ईमानदारी से होता है। हमें इसका पूर्ण विश्वास है।

—सम्पादक 'चाँद']

मोती, पुखराज और इमीटेशन मानिक का बहुत सस्ता नाक का कील हमारे यहाँ मिलेगा

सोने चाँदी का हर एक क़िस्म का ज़ेवर हमारे यहाँ तैयार रहता है और ऑर्डर देने से बहुत शीघ्र इच्छानुसार बना दिया जाता है।

हीरे, पन्ने, मोती, मानिक की हर एक चीज़ हमारे यहाँ तैयार मिलेगी। नमूना सूची मँगा कर (छपने पर) देखिए !

हर एक क़िस्म के चाँदी के बर्तन और चाँदी की फ़ैन्सी चीज़ हमारी नोवेल्टी है।

पता :—मुरारजी गोविन्दजी जौहरी, १५६ हैरिसन रोड, कलकत्ता

नोट :—कृपया सूचीपत्र के लिए पत्र-व्यवहार न कीजिए, क्योंकि वह समाप्त हो गया है।

३।×२। इञ्च साइज़ के केमरे

नं० १०१ बक्सनुमा ८), नं० १०५, १६)
" १११ फ़ोल्डिङ्ग सिङ्गिल लेन्स २८)
" ११५ " डबल " ३७)
" १२० आगफ़ा बिली केमरा ३२)

व्यवहार में—
पूर्ण सन्तोषप्रद है

४।×२॥ इञ्च साइज़ के केमरे

नं० २०२ बक्सनुमा ... ११)
" २११ फ़ोल्डिङ्ग सिङ्गिल लेन्स ३१)
" २१५ " डबल " ४१)
" २२१ आगफ़ा स्टैण्डर्ड f6.3 ८०)

हमारे यहाँ सब तरह के फ़ोटो का सामान बहुत सस्ता और किफ़ायत से मिलता है। एक बार अवश्य परीक्षा करें।

ये कोडक कम्पनी से ख़ासतौर पर तैयार कराए गए हैं, अच्छी फ़ोटो अपने हाथों से घर बैठे उतारने के लिए इन केमरों का व्यवहार कीजिए।

५॥×३। इञ्च साइज़ के केमरे

नं० ४११ फ़ो० सि० लेन्स ४७)
" ४१५ " डबल " ५६)
" ४२१ "Anastigmat f6·3 लेन्स और Ilex शटर ... ६५)

केमरे के ख़रीदार को फ़ोटो की शिक्षा मुफ़्त देते हैं।

मँगाने का पता—प्रियालाल एण्ड सन्स

फ़ोटोग्राफ़र, आगरा छावनी

द्वारकिन के हारमोनियम

पचपन साल पहले हाथ से बजाने वाले हारमोनियम का आविष्कार द्वारकिन कार्यालय ने किया था और वर्षों से हिन्दुस्तान में वही एक हारमोनियम का कारख़ाना रहा है। आज हिन्दुस्तान में हाथ से बजाने वाले हारमोनियम के हज़ारों कारख़ाने हैं, किन्तु द्वारकिन के बाजे दुनिया में चारों ओर मधुर टोन, उम्दा कारीगरी और मज़बूती के लिहाज़ से सबसे अच्छे माने जाते हैं। जब आप द्वारकिन का हारमोनियम ख़रीदेंगे, आप केवल बाजे का ही दाम देंगे, किन्तु आपको हमारे अनुभव का लाभ मुफ़्त में ही होगा, जो सचमुच ही बड़ा मूल्यवान होगा। द्वारकिन के हारमोनियम के एक-एक इञ्च पर द्वारकिन कार्यालय के पुराने अनुभव की और उम्दा कारीगरी की मुहर पड़ी हुई है।

ख़ास ज़रूरत से सूचीपत्र मँगाइए—

द्वारकिन एण्ड सन्स,
११ स्प्लेनेड और ८ डलहौज़ी स्क्वायर, कलकत्ता

चित्र-सूची

* * *

विशेष सूचना

सिल्क की चादर, स्त्रियों के लिए अति मनोहर, ३ गज़ लम्बी १॥ गज़ चौड़ी, मूल्य ३) प्रति चादर

नोट :—डाक-ख़र्च अलग। माल नापसन्द हो तो दाम वापिस।

पता :—प्रेम कुटिया, कम्पनी, लुधियाना (पञ्जाब)

ये तीन दवाइयाँ सब दुकानदारों के पास मिलती हैं—

५० वर्ष से परीक्षित, तत्काल गुण दिखाने वाली इन दवाइयों के सेवन से ऐसा कौन है जिसे फ़ायदा नहीं हुआ

?

कफ, खाँसी, हैज़ा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट-दर्द, क़ै, दस्त, इन्फ़्लुएेञ्जा, बालकों के हरे-पीले दस्त और पाकाशय की गड़बड़ से होने वाले रोगों की एकमात्र दवा। इसके सेवन में किसी अनुपान की ज़रूरत नहीं। मुसाफ़िरी में इसे ही साथ रखिए। क़ीमत ॥) आना।

शरीर में तत्काल बल बढ़ाता है, क़ब्ज़, बदहज़मी, कमज़ोरी, खाँसी दूर करता है; बुढ़ापे के कारण होने वाले सभी कष्टों से बचाता है, नींद लाता है और पीने में मीठा व स्वादिष्ट है। क़ीमत तीन पाव की बोतल २), छोटी १) रु०, डाक-ख़र्च जुदा।

बच्चों को बलवान, सुन्दर और सुखी बनाने के लिए

बालसुधा

यह मीठा "बालसुधा" उन्हें पिलाइए, क़ीमत ।=)

मिलने का पता—सुख-सञ्चारक कम्पनी, मथुरा

उपन्यास, इतिहास और स्त्री-शिक्षा की तीन नई पुस्तकें

वेदना

यह मौलिक, अनूठा और शिक्षाप्रद उपन्यास अभी हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इसे पढ़ते ही समाज का वास्तविक चित्र आँखों के सामने नाचने लगता है। उपन्यास और समाज-शास्त्र का यदि आप एक साथ आनन्द लेना चाहते हों तो इसे अवश्य पढ़िए। अछूतों की दुर्दशा, उनका धर्म-प्रेम तथा उनके उत्थान के वास्तविक उपाय का चित्रण इसमें बड़ी ख़ूबी के साथ किया गया है। मू० केवल २॥) रु०

विषाद-सिंधु

मुस्लिम-समाज के उज्ज्वल रत्न स्वर्गीय मीर मशारिफ़हुसेन लिखित महत्वपूर्ण पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है। इसमें इस्लामी क्रान्ति—मुहर्रम पर्व की आदि से अन्त तक उपन्यास के समान रोचक ढङ्ग पर पूर्ण विवेचना की गई है। मुहर्रम का विषय होते हुए भी इसमें सामाजिक मानव-समाज सम्बन्धी सभी बातों का भी वर्णन है। पुस्तक पढ़ने से कई जानने लायक़ बातें ज्ञात होती हैं। मूल्य ३॥) रु०

अमृत की घूँट

इस पुस्तक में सफ़ाई के तरीक़े व लाभ, बच्चा के पेट में आने से लेकर पैदा होने तक जच्चा व बच्चा दोनों की सँभाल के तरीक़े और सरल व अनुभूत आवश्यक औषधियाँ, जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर स्त्रियाँ तैयार कर लें, आदि तमाम बातें लिखी गई हैं। जो बातें इस पुस्तक में लिखी गई हैं वे प्रसिद्ध डॉक्टर और हकीमों की अनुभव की हुई हैं तथा उनका जानना प्रत्येक माता को उनके बच्चों की आरोग्यता व शिक्षा के लिए आवश्यक है। पुस्तक वास्तव में अमृत की घूँट ही है। मूल्य २॥) रु०

६००० कापियाँ हाथोंहाथ बिक चुकी हैं !!
पाक-चन्द्रिका
८३६ प्रकार की खाद्य चीज़ों का बनाना सिखाने वाली अनमोल पुस्तक। दाल, चावल, रोटी, पुलाव, मीठे और नमकीन चावल, पुलाव, भाँति-भाँति की स्वादिष्ट सब्ज़ियाँ, सब प्रकार की मिठाइयाँ, नमकीन, बङ्गला मिठाई, पकवान, सैकड़ों तरह की चटनी, अचार, रायते और मुरब्बे आदि बनाने की विधि इस पुस्तक में विस्तृत रूप से वर्णन की गई है।
इस पुस्तक में प्रत्येक प्रकार के अन्न तथा मसालों के गुण-अवगुण बतलाने के अलावा पाक-सम्बन्धी शायद ही कोई चीज़ ऐसी रह गई हो, जिसका सविस्तार वर्णन इस बृहत् पुस्तक में न दिया गया हो। प्रत्येक चीज के बनाने की विधि इतनी सविस्तार और सरल भाषा में दी गई है कि थोड़ी पढ़ी-लिखी कन्याएँ भी इनसे भरपूर लाभ उठा सकती हैं। चाहे जो पदार्थ बनाना हो, पुस्तक सामने रख कर आसानी से तैयार किया जा सकता है। प्रत्येक तरह के मसालों का अन्दाज़ साफ़ तौर से लिखा गया है। पृष्ठ-संख्या ६००, मूल्य केवल ४) स्थायी ग्राहकों से ३) रु० मात्र ! चौथा संस्करण प्रेस में है, ६,००० प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक चुकी हैं !!
व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,
चन्द्रलोक, इलाहाबाद

[ले० श्री० यदुनन्दनप्रसाद जी श्रीवास्तव]

G. P. Srivastava, B. A., LL. B., *writes from Gonda* :—

I happened to read your publication—Sri Jadunandan Prasad Srivastava's APRADHI. Though a fiction, yet it is teeming with bitter realities. The author has cleverly depicted 'Human frailties' 'Social weaknesses' & 'Circumstantial effects' in their true colour with touches of psychological truths, which are of greater importance indeed

सच जानिए, अपराधी बड़ा क्रान्तिकारी उपन्यास है। इसे पढ़ कर आप एक बार टॉलस्टॉय के "रिज़रेक्शन" विक्टर ह्यूगो के "लॉ मिज़रेबुल" इबसन के "डॉल्स हाउस" गोल्ड और ब्रियो का "डैमेज्ड गुड्स" या "मेटरलिंक" के आनन्द का अनुभव करेंगे। किसी अच्छे उपन्यास की उत्तमता पात्रों के चरित्र-चित्रण पर सर्वथा अवलम्बित होती है। उपन्यास नहीं,

यह सामाजिक कुरीतियों और अत्याचारों का जनाज़ा है !!

सच्चरित्र, ईश्वर-भक्त विधवा बालिका सरला का आदर्श-जीवन, उसकी पारलौकिक तल्लीनता, बाद को व्यभिचारी पुरुषों की कुदृष्टि, सरला का बलपूर्वक पतित किया जाना, अन्त को उसका वेश्या हो जाना, ये ऐसे दृश्य उपस्थित किए गए हैं, जिन्हें पढ़ कर आँखों से आँसुओं की धारा बह निकलती है। इधर सरला के वृद्ध चचा का षोडशी बालिका गिरिजा से विवाह कर नरक-लोक की यात्रा करना और गिरिजा का स्वाभाविक पतन के गड्ढे में गिरना, कम करुणाजनक दृश्य नहीं है। रमानाथ नामक एक समाज-सुधारक नवयुवक के प्रयत्न पढ़ कर नवयुवकों तथा नवयुवतियों की छाती एक बार फूल उठेगी !! छपाई-सफाई सुन्दर, समस्त कपड़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य २।) रु०; स्थायी तथा 'चाँद' के ग्राहकों से १॥=); डाक-व्यय अलग। पुस्तक पर रङ्गीन Protecting Cover भी चढ़ा है।

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

चन्द्रलोक, इलाहाबाद

[ले० पण्डित धर्मानन्द जी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य]

इस महत्वपूर्ण पुस्तक में प्रत्येक स्त्री-रोग पर भरपूर प्रकाश डाला गया है, साथ ही हरेक रोग की उत्पत्ति, उसका कारण, चिकित्सा तथा अनुभूत नुसख़े दिए गए हैं। पुस्तक में वर्णित रोगों में से कुछ ये हैं :—(१) विषय-प्रवेश (२) भग (३) गर्भाशय (४) डिम्ब-प्रणाली (५) योनि (६) आर्तव की प्रवृत्ति (७) मासिक स्राव का कारण (८) ऋतुमती के नियम (९) नष्टार्तव (१०) आर्तवाधिक्य (११) कष्टरजः प्रवृत्ति (१२) शुद्ध और दुष्टार्तव (१३) हिस्टीरिया (१४) सहज वन्ध्यात्व (१५) आगन्तुक वन्ध्यात्व (१६) रक्त-प्रदर (१७) श्वेत-प्रदर (१८) सोम-रोग (१९) मूत्रातिसार (२०) सुज़ाक (२१) भग-शोथ या प्रदाह (२२) भगोष्ठ का कोथ (२३) भगार्श (२४) भगोष्ठ तथा भगाङ्कुर-सम्बन्धी अर्बुद (२५) भग-नाड़ी का अर्बुद (२६) भग-ग्रन्थि (२७) भगकण्डूपन (२८) योनि-शोथ (२९) सङ्कीर्ण योनि (३०) योनि-अवरोध (३१) योनि व्यापत्ति-रोग (३२) जरायु-ग्रीवा-वरोध (३३) जरायु-ग्रीवा का सङ्कोच (३४) गर्भाशय का शोथ (३५) गर्भाशय का आभ्यन्तरिक शोथ (३६) गर्भाशय का क्षत (३७) गर्भाशय की स्थानच्युति (३८) गर्भाशय का सम्मुखानमन (३९) जरायु का पतन (४०) गर्भाशय का अर्बुद (४१) गर्भाशय का पीछे झुकना और लौटना (४२) गर्भाशय में जल-सञ्चय (४३) डिम्बाशय का शोथ (४४) डिम्बाशय के अर्बुद (४५) ओमेरियन ट्यूमर से अन्य रोगों का भेद (४६) गर्भिणी के लक्षण (४७) गर्भिणी के कर्त्तव्य (४८) उपविष्टक तथा नागोद (४९) गर्भस्राव की मासानुमासिक चिकित्सा (५०) गर्भस्राव की अवस्थानुसार चिकित्सा (५१) वमन (५२) ज्वर (५३) अतीसार (५४) अर्श या बवासीर (५५) दन्त-पीड़ा (५६) फुफ्फुस-विकार (५७) हृद-रोग या हौलदिली (५८) मूर्च्छा (५९) रक्त की कमी (६०) शोथ (६१) शिरा-आध्मान (६२) शुक्र-प्रमेह (६३) रक्त-सञ्चार में विकृति (६४) मस्तक-पीड़ा (६५) पक्षाघात (६६) अर्द्धाङ्ग पक्षाघात (६७) कम्पन वायु (६८) मूत्राशय में विकार (६९) श्वेत-प्रदर (७०) भगकण्डूपन (७१) खेड़ी का रक्त-स्राव (७२) आकस्मिक रक्त-स्राव (७३) मूढ़ गर्भ (७४) विकृत वस्ति (७५) अस्वाभाविक गर्भ (७६) रक्त-गुल्म (७७) प्रसव-प्रक्रिया (७८) विविध प्रसव (७९) प्रसव में बाधा (८०) प्रसवकारक योग (८१) उत्तर वेदना (८२) प्रसव के पश्चात् का रक्त-स्राव (८३) प्रसवान्तर रक्त-स्राव (८४) प्रसूता की सेवा (८५) नालच्छेदन कर्म (८६) आँवल-अवरोध (८७) काले रक्त की नाड़ियों में रक्त का जमना और लोथड़े का अटकना (८८) प्रसूत-ज्वर (८९) श्वेतपद-रोग (९०) संयुक्त-रोग (९१) मिरगी (९२) सूतिका-रोग (९३) दूध कम होना (९४) दूध की अधिक वृद्धि आदि-आदि।

कहने की आवश्यकता नहीं, पुस्तक प्रत्येक सद्गृहस्थ के यहाँ होनी चाहिए। ५० चित्रों से विभूषित, तिरङ्गे प्रोटेक्टिङ्ग कवर तथा समस्त कपड़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रु०; स्थायी ग्राहकों से २।) रु० मात्र !

ले० विद्यावाचस्पति पं० गणेशदत्त जी गौड़, 'इन्द्र'

भूमिका-लेखक—

श्री० चतुरसेन जी शास्त्री

जो माता-पिता मनचाही सन्तान उत्पन्न करना चाहते हैं, उनके लिए हिन्दी में इससे अच्छी पुस्तक न मिलेगी। काम-विज्ञान जैसे गहन विषय पर यह हिन्दी में पहली पुस्तक है, जो इतनी कठिन छानबीन करने के बाद लिखी गई है। सन्तान-वृद्धि-निग्रह का भी सविस्तार विवेचन इस पुस्तक में किया गया है। बालपन से लेकर युवावस्था तक अर्थात् ब्रह्मचर्य से लेकर काम-विज्ञान की उच्च से उच्च शिक्षा दी गई है। प्रत्येक गुप्त बात पर भरपूर प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक प्रकार के गुप्त रोग का भी सविस्तार विवेचन किया गया है। रोग और उसके निदान के अलावा, प्रत्येक रोग की सैकड़ों परीक्षित दवाइयों के नुस्खे भी दिए गए हैं। पुस्तक सचित्र है—९ तिरङ्गे और २९ सादे चित्र आर्ट-पेपर पर दिए गए हैं। छपाई-सफ़ाई की प्रशंसा करना व्यर्थ है। पुस्तक सुनहरे अक्षरों की जिल्द से मण्डित है, ऊपर एक तिरङ्गे चित्र सहित Protecting Cover भी दिया गया है। इतना होते हुए भी प्रचार की दृष्टि से मूल्य केवल ४) रु० रक्खा गया है। 'चाँद' तथा स्थायी ग्राहकों से ३); माँग अधिक होने के कारण रात-दिन लग कर पाँच महीने हुए, नया परिवर्द्धित और संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ था, वह भी समाप्त हो गया। अब तीसरा परिवर्द्धित संस्करण प्रेस में है। शीघ्र ही मँगा लीजिए, नहीं तो पछताना पड़ेगा।
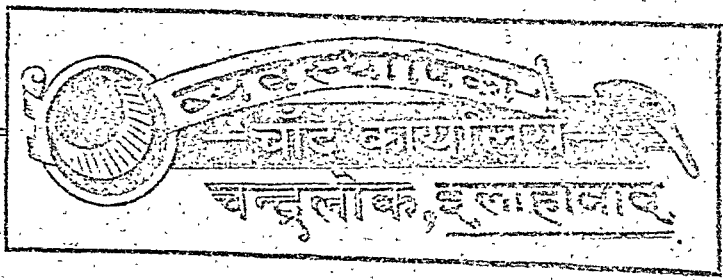
यदि आपको अपने बच्चे प्यारे हैं, यदि आप उन्हें रोग और मृत्यु से बचाना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को स्वयं पढ़िए और गृह-देवियों को अवश्य पढ़ाइए, परमात्मा आपका मङ्गल करेंगे।

सुन्दर छपी हुई सचित्र Protecting Cover सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत मात्र केवल २) रु०; 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों के लिए १॥) मात्र !

[लेखिका—श्रीमती सुशीलादेवी जी निगम, बी० ए०]

आज हमारे अभागे देश में शिशुओं की मृत्यु-संख्या अपनी चरम-सीमा तक पहुँच चुकी है। अन्य कारणों में माताओं की अनभिज्ञता, शिक्षा की कमी तथा शिशु-पालन सम्बन्धी साहित्य का अभाव प्रमुख कारण हैं।

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय गृहों की एकमात्र मङ्गल-कामना से प्रेरित होकर, सैकड़ों अङ्गरेज़ी, हिन्दी, बङ्गला, उर्दू, मराठी, गुजराती तथा फ्रेञ्च पुस्तकों को पढ़ कर लिखी गई है। कैसी भी अनपढ़ माता एक बार इस पुस्तक को पढ़ कर अपना उत्तरदायित्व समझ सकती है।

गर्भावस्था से लेकर ९-१० वर्ष के बालक-बालिकाओं की देख-भाल किस तरह करनी चाहिए, उन्हें बीमारियों से किस प्रकार बचाया जा सकता है, बिना कष्ट हुए दाँत किस प्रकार निकल सकते हैं, रोग होने पर क्या और किस प्रकार इलाज और शुश्रूषा करनी चाहिए, बालकों को कैसे वस्त्र पहनाने चाहिएँ, उन्हें कैसा, कितना और कब आहार देना चाहिए, दूध किस प्रकार पिलाना चाहिए, आदि-आदि प्रत्येक आवश्यक बातों पर बहुत उत्तमता और सरल बोल-चाल की भाषा में प्रकाश डाला गया है।

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,
चन्द्रलोक, इलाहाबाद

[लेखिका—श्रीमती सुशीलादेवी जी निगम, बी० ए०]

इस पुस्तक के सम्बन्ध में प्रकाशक के नाते हम केवल इतना ही कहना काफ़ी समझते हैं कि ऐसे नाज़ुक विषय पर इतनी सुन्दर, सरल और प्रामाणिक पुस्तक हिन्दी में अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। इसकी सुयोग्य लेखिका ने काम-विज्ञान (Sexuel Science) सम्बन्धी अनेक अङ्गरेज़ी, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी तथा गुजराती भाषा की पुस्तकें मनन करके इस कार्य में हाथ लगाया है। जिन अनेक पुस्तकों से सहायता ली गई है, उनमें से कुछ मूल्यवान् और प्रामाणिक पुस्तकों के नाम ये हैं :—

(1) Motherhood and the Relationship of the Sexes by *C. Gasquoine Hartley* (2) Confidential Talks with Husband & Wife by *Layman B. Sperry* (3) Youth's Secret Conflict by *Walter M. Gallichan* (4) The Threshold of Motherhood by *R. Douglas Howat* (5) Radiant Motherhood (6) Married Love and (7) Wise Parenthood by *Dr. Marie Stopes*.

जिन महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है, उनमें से कुछ ये हैं :—

सहगमन, ब्रह्मचर्य, विवाह, आदर्श-विवाह, गर्भाशय में जल-सञ्चय, योनि-प्रदाह, योनि की खुजली, स्वप्न-दोष, डिम्ब-कोष के रोग, कामोन्माद, मूत्राशय, जननेन्द्रिय, नपुंसक, अति-मैथुन, शयन-गृह कैसा होना चाहिए ? सन्तान-वृद्धि-निग्रह, गर्भ के पूर्व माता-पिता का प्रभाव, मनचाही सन्तान उत्पन्न करना, गर्भ पर तात्कालिक परिस्थिति का असर, गर्भ के समय दम्पति का व्यवहार, यौवन के उतार पर स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध, रबर-कैप का प्रयोग, माता का उत्तरदायित्व आदि-आदि सैकड़ों महत्वपूर्ण विषयों पर—उन विषयों पर, जिनके सम्बन्ध में जानकारी न होने के कारण हज़ारों युवक-युवतियाँ बुरी सोसाइटी में पड़ कर अपना जीवन नष्ट कर लेती हैं; उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनकी अनभिज्ञता के कारण अधिकांश भारतीय गृह नरक की अग्नि में जल रहे हैं; उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनको न जानने के कारण स्त्री पुरुष से और पुरुष स्त्री से असन्तुष्ट रहते हैं—भरपूर प्रकाश डाला गया है। हमें आशा है, देशवासी इस महत्वपूर्ण पुस्तक से लाभ उठाएँगे। पृष्ठ-संख्या लगभग ३५०, तिरङ्गे Protecting cover सहित सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य २।।) रु०; 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों से १।।।=) मात्र ! पुस्तक सचित्र है !! केवल विवाहित स्त्री-पुरुष ही पुस्तक मँगावें !

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

12.18.7.30,

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ८ खण्ड २ | जुलाई, १९३० | संख्या ३ पूर्ण संख्या ९३

साध

[कुमारी कमला]

मुझे साध थी देख सकूँगी—
पर तू अन्तर्धान हुआ।
अपना मान लिए बैठी थी—
प्राणों का अपमान हुआ॥

हे स्वामी! यह जीवन विषमय—
है, इसका अब अन्त करो।
इस विनाश-मधु की मादकता
छूकर आज अनन्त करो!!

यहाँ नहीं तो वहाँ सही,
पथ पर अशेष हो जाऊँगी।
कण-कण में तुमको खोजूँगी
मिट्टी में खो जाऊँगी!!

जुलाई, १९३०

क़ानून या काल ?

अङ्कारा

['मुक्त']
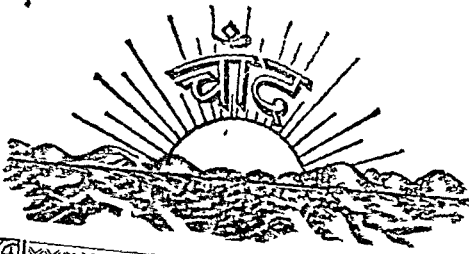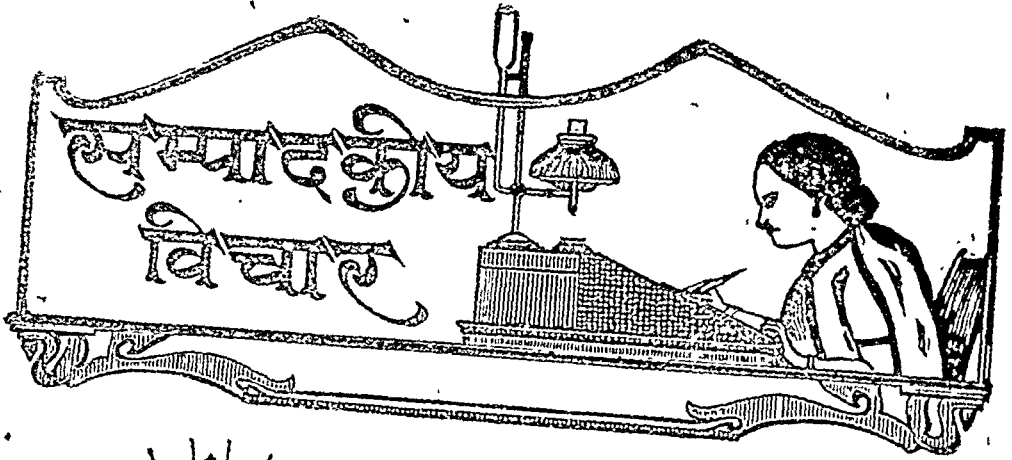
ललित ने सोचा कि क्यों उसका प्रत्येक काम दुनियाँ को बुरा मालूम पड़ता है? क्यों दुनियाँ उससे घृणा करती, उसकी उपेक्षा करती और उसे अपने से दूर ही रखना चाहती है? उसमें क्या बुराई है, क्या अभाव हैं, क्या खोट है? उसने यह बात बहुत सोची, बड़ी देर तक इसी उधेड़-बुन में पड़ा रहा, मगर कुछ ठीक न कर सका।

यह बात आज ही उसके मन में उठी हो, ऐसा नहीं था। अनेक बार, इसी बात को सोचते-सोचते अन्धकार से भरी हुई कितनी रातें उसने बिता दी हैं; इसी रहस्य का उद्घाटन करने की इच्छा से, गरमी की कितनी ही लम्बी दुपहरिया उसने काट दी हैं। बरसती हुई वर्षा की रिम-झिम बूँदों में नहा कर, जाड़े की काँपती हुई सर्दी में ठिठुर कर, आधीरात की नीरव-निर्जनता में उस पार के सघन अँधेरे में दृष्टि गड़ा कर, अनेक बार वह इसी बात को सोचता रहा है; किन्तु आज तक यह बात सदा ही उसके निकट एक पहेली रही है; और ऐसी पहेली, जिसे हल करना, कम से कम उसके लिए तो, कभी आसान हो ही नहीं सकता।

सोचते-सोचते उसका माथा घूम गया। ऊब कर उसने एक लम्बी साँस ली और सिर ऊपर उठाया। उसे मालूम पड़ा, मानो जीवन भर सोचते रहने के बाद भी, इस सवाल का कोई उचित उत्तर उसका हृदय न दे सकेगा। उसे मालूम पड़ा, मानो कभी इस रहस्य का, इस पहेली का कूल-किनारा वह न पा सकेगा। उसने निश्चय किया कि अब कभी इस बात पर प्रकाश डालने की चेष्टा वह न करेगा, कभी यह बात न सोचेगा। सोचेगा अगर, तो उसका माथा फट जायगा, वह पागल हो जायगा।

बलपूर्वक इस बात को अपनी स्मृति-सीमा के बाहर कर देने की चेष्टा उसने की, फिर दरवाज़ा खोल कर धीरे-धीरे बाहर—सड़क पर—निकल आया। उसे मालूम न था कि उसे कहाँ जाना है, पर उसके पैर बढ़ते गए, वह चलता गया। सहसा उसने देखा कि वह मालती के दरवाज़े पर आ खड़ा हुआ है।

क्षण भर वह असमञ्जस में पड़ा रहा। एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह जब यहाँ तक आ ही गया, तो एक बार मालती से मिलता जाय। एक बार, हाँ, केवल एक बार, अन्तिम बार मिल कर वह मालती से कह दे कि दुनियाँ के साथ रह कर जब चलना है, तो उसके कहने की ओर ध्यान देना ही पड़ेगा, उसकी बात माननी ही पड़ेगी। वह मालती से कह ले कि अपनी इच्छा और आकांक्षाओं का बलिदान करके भी यदि वह समाज और परिवार को प्रसन्न रख सकता है, तो वह वही करने की चेष्टा करेगा। वह मालती से बोलना छोड़ देगा, मिलना-जुलना भी बन्द कर देगा। हाँ, यही तो दुनियाँ चाहती है!

क्षण भर के लिए ये विचार उसके मन में उठे ज़रूर, मगर शीघ्र ही, घृणा से, उपेक्षा से, तिरस्कार से वह अट्टहास कर उठा। उसने सोचा—दुनियाँ की परवा करने की उसे ज़रूरत ही क्या है? दुनियाँ तो उसके सुख-दुख की, उसके मान-अपमान की, उसकी प्रसन्नता-अप्रसन्नता की परवा नहीं करती; फिर वही उसके लिए क्यों जान दे? क्यों अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं का ख़ून करे? और दुनियाँ में सबको प्रसन्न रख कर चलना भी तो बहुत आसान नहीं है, शायद असम्भव ही है। दुनियाँ प्रसन्न होगी तब, जब हम उसी के निर्दिष्ट पथ पर चलेंगे, उसी की इच्छा के अनुकूल आचरण करेंगे, लेकिन यह भी क्या सम्भव है? एक मनुष्य कितने लोगों को इस प्रकार प्रसन्न रख सकेगा, कितने लोगों के इङ्गित पर अपना पथ अतिक्रम कर सकेगा? यह तो मुश्किल है, शायद यह किया ही नहीं जा सकता, शायद इसकी ज़रूरत ही नहीं है!

ललित ने और भी सोचा कि मालती से मिलने की भी उसे कोई ज़रूरत नहीं। मालती के घर वाले जब नहीं चाहते कि वह उससे मिले-जुले, बातचीत करे, तो उनकी इच्छा के विरुद्ध आचरण करके क्यों वह उन लोगों को कष्ट दे? उसे मालती से कुछ भी नहीं कहना है। दिन जिस प्रकार बीते जा रहे हैं, उसी प्रकार बीतें। इसीमें तृप्ति है, सुख है, सन्तोष है।

एक बार उसने तृषित आँखों से मालती के कमरे की ओर देखा, फिर धीरे-धीरे वह लौट चला। कुछ दूर जाकर उसने फिर एक बार घूम कर देखा। मालती के कमरे की खिड़की खुली हुई थी, वह उसी की ओर देख रही थी। ललित ने देखा, मालती के ओठ हिल रहे हैं। उसने कुछ सुना नहीं, समझा भी नहीं; लेकिन न जाने किस आकर्षण से खिच कर वह मालती की खिड़की के नीचे आ खड़ा हुआ। मालती ने उसे ऊपर आने के लिए इशारा किया, वह कुछ बोलना भी चाहती थी, लेकिन शायद बोल न सकती थी। ललित बड़े असमञ्जस में पड़ा—वह कुछ निश्चय न कर सका कि वह ऊपर जाय या न जाय। अनेक दिनों से अभ्यास छूट जाने के कारण ऊपर चढ़ते हुए उसे बड़ा सङ्कोच मालूम हो रहा था, उसके पैर सीढ़ियों पर चढ़ने के लिए उठते ही न थे। लेकिन अधिक सोचने का उसे अवकाश न था। वह झटपट सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। क्षण भर बाद वह मालती के सामने खड़ा था।

मालती ने एक बार सूनी आँखों से उसकी ओर देखा और बोली—बहुत दुबले हो गए हो ललित!

"दुबला हो गया हूँ?" ललित ने एक बार अपने शरीर की ओर उपेक्षा-भरी आँखों से देखा। एक फीकी हँसी हँस कर बोला—हो गया होऊँगा! इसमें आश्चर्य ही क्या है मालती?

"आश्चर्य? नहीं, आश्चर्य तो कुछ नहीं है। लेकिन पूछती हूँ, ऐसा क्यों हुआ है?"

"यह क्या बताऊँ मालती? शरीर ही तो है!"

"नहीं ललित, यह बात नहीं है। तुम मुझसे छिपाते हो।"

"छिपाता हूँ? तब तुम्हीं बताओ, क्या बात है? मेरी समझ में तो कुछ नहीं आता।"

मालती कुछ बोली नहीं। वह खिड़की पर बैठी थी। बाहर दूर तक फैला हुआ नीला आसमान धूमिल हो रहा था। उसने एक बार उसकी ओर देखा—पश्चिम क्षितिज में सूरज डूब गया था। अन्धकार के आवरण में लालिमा अभी भी बिखर रही थी। सफ़ेद-काले बादल आसमान में टहल रहे थे। मालती अपनी भावनाओं में डूबी हुई, अपने को भूल कर चुपचाप बाहर की ओर देखती रही।

थोड़ी देर तक ललित चञ्चलतापूर्वक कमरे में टहलता रहा, फिर एक बार उसने मालती की ओर देखा। वह गहरी चिन्ता में डूबी हुई, गाल पर हाथ रक्खे, अपलक आँखों से बाहर की ओर देख रही थी। उसके सिर से साड़ी खिसक गई थी। लम्बे-लम्बे मेचक-कुञ्चित, घन-कृष्ण केश पीठ पर बिखर गए थे। ललित को मालती के इस वेश में बड़ी मोहकता मालूम पड़ी। वह टकटकी लगा कर थोड़ी देर तक उसकी ओर देखता रहा। फिर उसने आँखें फेर लीं। इस प्रकार मालती को देखने का उसे कोई अधिकार न था।

ललित का हृदय काँप रहा था। वह न वहाँ ठहर सकता था, न वहाँ से जाने की ही इच्छा होती थी। वह बड़ी उलझन में पड़ा हुआ, इधर-उधर टहलने लगा। मेज़ पर से उसने एक पुस्तक उठा ली और व्यग्रतापूर्वक उसके पन्ने उलटने लगा। सहसा उसने पुस्तक के पन्नों में छिपी हुई एक तस्वीर देखी। वह तस्वीर मालती की थी। धीरे से तस्वीर निकाल कर उसने अपनी जेब में रख ली। इसके बाद उसने मालती की ओर देखा। मालती उस समय भी बाहर की ओर देख रही थी। ललित को कुछ बल मिला। उसने पुकारा—मालती!

मालती जैसे सोते से जाग पड़ी। चौंक कर उसने खिड़की से सिर निकाला, घूम कर ललित की ओर देखा। बोली—अरे!-ललित, तुम अभी तक यहीं हो? मैंने समझा, चले गए!

ललित ने कहा—अभी तो नहीं गया, लेकिन अब जाता हूँ।

"जाओ।"—मालती ने चुपचाप कह दिया।

ललित ने पूछा—लेकिन मुझे बुलाया क्यों था मालती?

मालती—नहीं जानती। ग़लती की थी, मुझे माफ़ करना, लेकिन अब जाओ।

आश्चर्य से एक बार मालती की ओर ललित ने देखा, फिर बोला—मेरा अपमान करने के लिए ही मुझे बुलाया था मालती? मैंने तुम्हारा क्या अनिष्ट किया है? ललित की वाणी वेदना की अधीरता से काँप रही थी। उसके स्वर में अभिमान नहीं था, दीनता थी, उत्तेजना नहीं थी, निराशा थी, वेदना की विह्वलता और तिरस्कार की विक्षिप्तता भी थी।

मालती ने उसका यह भाव लक्ष्य किया। एक हल्की उसाँस उसके मुँह से निकल गई। काँपती हुई आवाज़ में, बड़ी मुश्किल से, उसने कहा—"मैं तुम्हारा अपमान करती हूँ ललित? आज यह बात तुम्हारे मन में भी उठ सकती है? यदि ऐसी बात है तो मुझे माफ़ करना भाई! लेकिन अब जाओ। देर न करो। बस, मैं और कुछ नहीं कह सकती।" यह कह कर मालती ने मुँह फेर लिया। ललित ने देखा—टप-टप कई बूँद आँसू उसके कपोलों पर ढुलक पड़े। एक मर्मान्तिक पीड़ा से ललित का हृदय तिलमिला उठा। वह एक क्षण भी वहाँ न ठहर सका। तेज़ी से दरवाज़ा पार करके वह सीढ़ियाँ उतरने लगा।

ख

ललित जब सड़क पर उतर आया तो फिर कर उसने एक बार मालती के कमरे की ओर देखा। मालती उस समय भी खिड़की पर बैठी हुई थी। गोधूलि के धूमिल प्रकाश में उसे कुछ दीख न पड़ा। केवल उसने इतना ही देखा—कपड़े से मुँह ढक कर मालती खिड़की पर बैठी है। वह अधिक देर तक वहाँ खड़ा न रह सका, तेज़ी से एक ओर चल पड़ा।

अब मालती भी खिड़की से उठ कर खड़ी हुई। पहले उठ कर वह दरवाज़े के पास गई। दरवाज़े की ज़ञ्जीर उसने भीतर से बन्द कर ली। फिर ट्रङ्क खोल कर उसने एक चित्र निकाला। उसे लेकर वह फ़र्श पर बैठ गई। लेकिन उसका सिर घूम रहा था। वह बैठी न रह सकी, लेट गई। लेट कर वह तस्वीर देखने लगी।

तस्वीर देखते ही देखते अतीत की न जाने कितनी, सुख-दुख से भरी हुई स्मृतियों के आलोड़न से उसका माथा उन्मत्त हो उठा। उसका हृदय काँप रहा था, प्राणों में हाहाकार व्याप्त हो रहा था, आँखों में सावन-भादों की झड़ी लग रही थी।

वह तस्वीर ललित की थी। उस तस्वीर के साथ बाल्यकाल की न जाने कितनी मधुर-स्मृतियाँ जड़ी हुई थीं। मालती को एक-एक करके कितनी ही बातें याद आने लगीं—"एक दिन ज़िद करके ललित ने उसकी तस्वीर खींच ली थी। मालती ने कहा—'इसी तरह किसी दिन मैं भी अचानक तुम्हारी तस्वीर उतार लूँगी ललित! देखना!!' ललित ने व्यङ्ग से मुस्करा कर कहा—'देखूँगा! तुम्हें खींचना आता भी है?' मालती ने इसका कुछ उत्तर न दिया। वह समय की प्रतीक्षा करने लगी।

एक दिन मालती ने अपने भाई रविशङ्कर से कहा—भैया! ललित की एक तस्वीर खींच दो।

रविशङ्कर बोले—क्यों? वह कहाँ है?

मालती—कहाँ है की बात नहीं। जहाँ भी हो, चुपके से उसकी तस्वीर खींच दो। उसने एक दिन यों ही मेरी तस्वीर उतार ली और कहने लगा कि भला इसी तरह तुम भी मेरी तस्वीर उतार लो तो जानूँ! भैया, मैंने उससे कह दिया है कि देखना, मैं तुम्हारे अनजान में कभी न कभी तुम्हारी तस्वीर ज़रूर उतार लूँगी।

रविशङ्कर—ऐसा! अच्छी बात है, तब उसकी तस्वीर खिंच जायगी।

मालती—लेकिन उसे मालूम न होने पावे।

रविशङ्कर—न होगा।

मालती ख़ुशी-ख़ुशी वहाँ से चली गई, रविशङ्कर अपने काम में लगे।

रविशङ्कर, मालती और ललित दोनों से ही कुछ अधिक उम्र के थे, लेकिन बड़े हँसमुख थे, बड़े मिलनसार। कुछ उदार भी थे। दोनों बच्चों को खेलते और विनोद-परिहास करते देख कर वह स्थिर न रह सकते थे, स्वयं भी उनके साथ मिल जाते और उन्हींके साथ हँसने-खेलने लगते। कभी-कभी वे मालती और ललित के झगड़ों का निपटारा भी ईमानदारी के साथ कर दिया करते थे, इसलिए वे दोनों उन्हें बहुत मानते थे। बचपन के रङ्गीन दिन, सुख और स्वच्छन्दता के इन्हीं सपनों में बीते जा रहे थे।

एक दिन ललित छत के मुँडेरे पर बैठा था। पास ही मालती ज़मीन पर खड़ी थी। रविशङ्कर ने उन दोनों

को देखा तो तस्वीर खींचने की याद आ गई। सामने वाले मकान की छत पर जाकर—उन दोनों के अलक्ष्य में—उन्होंने तस्वीर खींच ली। फिर लौट आए। ललित और मालती—दोनों में से कोई यह बात जान भी न सका।

दूसरे दिन तस्वीर छाप कर जब रविशङ्कर ने मालती को दिखाई तो वह बहुत बिगड़ी—भैया! तुम बड़े ख़राब हो। तुमने उसके साथ मेरी तस्वीर भी क्यों खींच दी?

रविशङ्कर ने हँस कर कहा—तुम वहाँ खड़ी क्यों थीं? मेरा इसमें क्या दोष है मालती?

मालती तस्वीर लेकर चली गई। उसने ललित को उसे दिखलाया। ललित भी देख कर बहुत बिगड़ा—तुमने मेरे साथ अपनी तस्वीर क्यों खिचवाई? मैं अपनी तस्वीर अलग फाड़ लूँगा।

मालती झेंप गई। अपनी झेंप मिटाने के लिए उसने स्वयं ही तस्वीर के दो टुकड़े कर डाले। फिर दोनों ही टुकड़े लेकर वह वहाँ से भाग गई।"

इस घटना के बाद कितने ही दिन बीत गए। रविशङ्कर और ललित में से किसी को उस तस्वीर की याद भी न रह गई थी, लेकिन मालती की सन्दूक़ में आज भी वह यत्नपूर्वक बन्द थी। उसके बाद, बीते हुए इन कई वर्षों में कितने उलट-फेर हुए, जीवन में कितने विप्लव और कितनी क्रान्तियाँ हो गईं, इसका कोई हिसाब नहीं है। बीच-बीच में मालती ने कितनी ही बार तस्वीर के उन दो टुकड़ों को निकाला है और अतीत की दुखद स्मृति से अधीर और विह्वल हो उठी है। आदर-अभिमान की कितनी ही स्मृतियों ने उसे बार-बार रुलाया और विक्षिप्त कर दिया है। वह आज भी उसी तस्वीर को निकाल कर बैठी है।

उसके मन में न जाने कितनी घटनाएँ, कितनी स्मृतियाँ जाग उठीं। वह पागल होकर, उन्मत्त होकर तस्वीर को देखती रही। उसकी आँखों से आँसुओं का अजस्र प्रवाह प्रवाहित हो रहा था। उसकी तकिया भीग गई थी। गालों पर बह-बह कर आँसू सूख गए थे। उसने सोचा कि क्यों उसने इतनी रुखाई से ललित को चले जाने के लिए कहा। उसके मन में क्या भाव उठे होंगे? वह क्या सोचता होगा? हाय! उसे क्या हो गया था?

मालती कुछ सोच नहीं सकी, कुछ समझ भी नहीं सकी। वह चुपचाप केवल आँसू बहाती रही। उसकी मौन वाणी की मूक भाषा आँसुओं की उसी धारा में प्रवाहित होकर धरित्री पर बिखर गई, मुखर हो उठी।

इन्हीं भावनाओं में लीन मालती न जाने कब सो गई। सारे कमरे में अँधेरे का साम्राज्य फैला हुआ था। कौन कह सकता है, मालती का हृदय भी उसी प्रकार के अन्धकार से नहीं भरा हुआ था?

ग

मालती के घर से लौट कर भी ललित अपने घर न जा सका। घर की ओर उसके पैर उठते ही न थे। अन्य-मनस्क भाव से चलते-चलते जब वह कम्पनी बाग़ में जा पहुँचा तो अँधेरा काफ़ी हो गया था। बिजली की बत्तियाँ इधर-उधर चमचमा उठी थीं। उनकी चमकीली रोशनी हरी-हरी घास और रङ्ग-बिरङ्गे फूलों पर पड़ कर ललित की आँखों में झलमला उठीं। वह थक कर, शक्तिहीन होकर, रविशों पर पड़ी हुई एक बेन्च पर बैठ गया।

धीरे-धीरे रात अधिक हो आई। ललित चुपचाप, वहीं बैठ रहा। उसका मन सूना था। वह न कुछ सोचता था, न समझता। चुपचाप, पत्थर की मूर्ति की भाँति, अन्यमनस्क भाव से वह वहीं बैठा रहा।

इसी प्रकार कुछ समय और बीत गया। सहसा रात्रि के अन्धकार में ललित के समीप एक छायामूर्ति प्रकाशित हो उठी। ललित ने उसकी ओर लक्ष्य नहीं किया। मूर्ति ने आकर ललित के कन्धे पर हाथ रक्खा और पुकारा—ललित!

ललित काँप उठा। उसने चौंक कर पीछे की ओर मुँह फेरा। देखा—उसका बाल्य-बन्धु शैलेन्द्र उसके कन्धे पर हाथ रख कर मुस्करा रहा है।

शैलेन्द्र ने पुकारा—ललित!

ललित बोला—हाँ शैलेन!

शैलेन्द्र—इतनी रात को यहाँ अँधेरे में अकेला बैठ कर क्या कर रहे हो?

ललित—क्या करूँगा शैलेन? मुझे कोई काम नहीं है।

शैलेन्द्र ललित के समीप ही बेञ्च पर बैठ गया।

उसके लम्बे-लम्बे काले बालों में उँगलियाँ उलझाते हुए बोला—ललित ! तुम क्या सोच रहे हो ?

"नहीं जानता भाई, लेकिन इतनी बातें एक साथ कभी-कभी सोचने लगता हूँ कि मालूम पड़ता है, पागल हो जाऊँगा, माथा फट जायगा। अनेक बार मैं स्वयं ही नहीं समझ पाता कि मैं क्या सोच रहा हूँ। लक्ष्यहीन, उद्देश्यहीन, इधर-उधर फिरा करता हूँ। अव्यवस्थित जीवन के अस्त-व्यस्त दिन एक रस, एक भाव बीते जा रहे हैं।"

"तुम्हें कोई रोग तो नहीं हो गया ललित ? तुम्हारा चेहरा कैसा उतर रहा है !"

"सम्भव है, हो गया हो। लेकिन वह कौन रोग है, कैसा है, यह मुझे मालूम नहीं। शायद, उस रोग का कोई इलाज नहीं है।"

"क्यों ?"

"मैं इसका क्या कारण बताऊँ भाई ? हमारे समाज की सङ्कीर्णता और अनुदारता ही कदाचित इसका कारण है। हमारा समाज बात-बात में हर जगह पाप और मलिनता और दोष सूँघने के लिए व्यस्त हो उठता है। शायद उसकी यह प्रवृत्ति ही इस फैलने वाले रोग को ला-इलाज बना रही है।"

"तब क्या वह प्रेम का रोग है ?"

"हो सकता है। मैं तुमसे एक बात पूछूँ शैलेन ?"

"पूछो।"

"प्रेम करना क्या पाप है ?"

"कौन कहता है, पाप है ? प्रेम मानव जाति के लिए ईश्वर का वरदान है। प्रेम मानव जीवन का सर्वश्रेष्ठ वैभव है। प्रेम सब धर्मों से ऊँचा, सारे स्वर्गों से पवित्र और दुनिया भर के रस्म-रिवाजों से ऊपर की चीज़ है। लेकिन अनेक बार समाज प्रेम को भी पाप बतलाता है। मनुष्य जहाँ उसके नियमों का पालन नहीं करता, नहीं कर सकता, वहीं वह उसे पापी घोषित कर देता है।"

"समाज की यह कैसी स्वार्थ-परता है ! समाज का सङ्गठन तो लोक-कल्याण के लिए होता है न ? उसकी इस भावना में कितनी सङ्कीर्णता है, कितनी अनुदारता ! जो सत् है, शिव है, सुन्दर है, वह तो हमेशा ही सत् और शिव और सुन्दर रहेगा। क्या परिस्थितियों की मलिनता कभी उस पर अपनी कलुषित छाया डाल सकती है ?"

थोड़ी देर तक चुप रह कर ललित ने पूछा—समाज के इस अनुचित दबाव का क्या अभिप्राय है भाई ! तुम्हारी समझ में कुछ आता है ? क्यों वह हमें इस प्रकार बन्धन में डाल कर रखना चाहता है ?

"यह तो बहुत आसान बात है ललित"—शैलेन्द्र ने कहा—"शक्ति जिसके पास होती है, वही दूसरे को दबाना चाहता है, उसे अपने बन्धन में रखना चाहता है, उस पर शासन करने की इच्छा रखता है।"

"समाज का निर्माण तो व्यक्तियों का नियन्त्रण करने के लिए हुआ था न ? समाज के नियामकों ने अवश्य ही उच्छृङ्खलता और स्वेच्छाचारिता दूर करने के लिए इस बन्धन की आवश्यकता का अनुभव किया होगा। लेकिन आज तो हमारा समाज ही अनियन्त्रित हो रहा है, वह स्वयं ही उच्छृङ्खल और स्वेच्छाचारी हो उठा है। क्या कोई उसका विध्वंस करने के लिए, अपने ऊपर से उसका अनुचित शासन दूर करने के लिए पागल न हो उठेगा शैलेन ? तुम क्या समझते हो ?"

"ऐसा न करने का कोई कारण तो नहीं है।"

"ग़ुलामी तो हर हालत में बुरी और असहनीय है, चाहे वह अङ्गरेज़ों की हो या ख़ुदा की, अपने मन की हो या समाज की। ग़ुलामी के ख़िलाफ़ तो हमेशा ही बग़ावत करनी पड़ती है। क्या हम समाज के, सामाजिक रूढ़ियों के और उसकी बर्बर प्रथाओं के ख़िलाफ़ बाग़ी न हो उठेंगे ? हमारी समझ में तो यह बात ही नहीं आती कि कैसे हमारे स्वतन्त्रता-प्रिय पूर्वज सदियों से समाज की ग़ुलामी करते आ रहे हैं !"

शैलेन्द्र ने कुछ उत्तर न दिया। वह अवाक होकर ललित की ओर देखता रह गया। मन ही मन उसने सोचा—ललित का मन ऐसा विद्रोही क्यों हो उठा है ?

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। आधी रात सायँ-सायँ कर उठी। उस समय अन्धकार सघन होकर वायु-तरङ्गों पर काँप रहा था। केवड़ा के फूलों की मधुर-मनोहर गन्ध चारों ओर व्याप्त हो गई थी। बिजली की बत्तियाँ बुझ गई थीं। बीच-बीच में तरु-पत्रों के अन्तराल से मर्मर शब्दों की क्षीण-व्यथित ध्वनि उठ कर शून्य में विलीन हो जाती थी। लेकिन दोनों बन्धुओं में से किसी का

ध्यान इस ओर न था। दोनों ही घोर चिन्ता में मग्न थे, दोनों ही कुछ सोच रहे थे। सहसा शैलेन्द्र ने कहा—ललित! तुम्हारी यह पहेली मैं कुछ समझ नहीं सका। मुझे सब बातें तुम साफ़-साफ़ बताओ।

ललित ने कहा—शैलेन! इस पहेली को इतनी आसानी से समझ लेने का सामर्थ्य किसी में नहीं है, शायद मुझमें भी नहीं। लेकिन आज आधी रात के अन्धकार की सघनता में, अन्तहीन नीले अम्बर की छाया में, फूलों के सौरभ से लदी हुई वायु के मन्द-मधुर झकोरों के अन्तराल में बैठ कर मैं तुम्हें अपने जीवन के नाश-विलास की कहानी सुनाऊँगा। विधाता ने मेरे प्रारब्ध के साथ जो निष्ठुर क्रीड़ा की है, उसका दारुण इतिहास तुम्हें सुना कर आज मैं अपने मन को कुछ हलका करूँगा।

ललित कहने लगा—"शैलेन! सबसे पहले सीधी-सादी भाषा में मैं यह कह दूँ कि मैं मालती को बहुत अधिक प्यार करता था, मालती भी मुझ पर बड़ा प्रेम रखती थी। इस बात का निर्णय करना ज़रा मुश्किल था कि हम दोनों में से कौन किसको अधिक प्यार करता था। अनेक बार इसी बात पर मालती की और हमारी लड़ाई हो जाया करती थी, जिसका फ़ैसला कभी न होता था। और कुछ दिनों के बाद इस बात का निपटारा किए बिना ही हम दोनों एक हो जाया करते।

"जाति-भेद के कारण मालती के साथ मेरा व्याह नहीं हो सकता, यह बात मैं जानता था। इसीसे मेरे मन में यह बात कभी उठी भी न थी। मेरा विश्वास है, मालती ने भी यह बात कभी न सोची होगी। लेकिन एक दिन जब हम दोनों को मालूम हुआ कि उसका व्याह होने वाला है और वह मुझे छोड़ कर किसी अपरिचित दूर देश के लिए प्रस्थान करने वाली है, तो एक अज्ञात-आशङ्का से हम दोनों ही का हृदय काँप उठा। यद्यपि उससे व्याह होने की बात कभी मेरे जी में न उठी थी, लेकिन यह बात भी हमारे ध्यान में न आई थी कि हमें एक-दूसरे से कभी अलग भी होना पड़ेगा। वही अनसोची बात जब सामने आई तो सब देखना, सुनना और सहना पड़ा।

"एक दिन बड़ी धूम-धाम से मालती का व्याह हो गया। अङ्गरेज़ी और देशी बाजों के भयानक सम्मिश्रण में हृदय में एक भयानक तूफ़ान लेकर मालती हम लोगों से विदा हुई। व्याह के समय कई दिनों तक मैं मालती के घर जा न सका था। जिस दिन वह विदा होने वाली थी, उस दिन सड़क के उस पार छिप कर मैं एक स्थान पर खड़ा था। मोटर आई और उस पर बैठ कर वह एक ओर चल दी। चलती बार उसने अपनी आकुल आँखों से चारों ओर देखा। मुझे मालूम पड़ा मानों उसकी विकल-विह्वल आँखें किसी को ढूँढ रही हैं। पर मुझे सामने जाने का साहस न हुआ। मैं न गया। मोटर हवा से बातें करने लगी।

"इन कई दिनों में हृदय की मरुभूमि में प्रचण्ड-उत्तप्त शिरको प्रवाहित हो रहा था। अनेक बार सोचता था, मालती चली जायगी तो मैं कैसे रह सकूँगा, कैसे दिन बीत सकेंगे; पर मालती चली गई और दिन अपनी स्वाभाविक गति से ही बीतते रहे। मुझमें भी कोई विशेष परिवर्तन न हुआ। प्राणों में एक पीड़ा ज़रूर थी जो रह-रह कर टीस उठती थी, लेकिन पहले इसकी भयानकता की जो कल्पना मैंने की थी, सामने आकर वह उसका शतांश भी न रह गई। सोचा—दुख की कल्पना में जो असहनीयता है, उसके वास्तविक स्वरूप में शायद उतनी नहीं है। दुख के सपने दूर से अधिक भयानक मालूम पड़ते हैं, किन्तु समीप आने पर वे उतने ही भयङ्कर नहीं रह जाते। वस्तु के वास्तविक स्वरूप में सन्तोष है, सहनशीलता भी; किन्तु उसकी कल्पना असन्तोष और आतङ्क से भरी हुई होती है।

"मैंने सोचा कि मालती के प्रति मेरा इतना आकर्षण क्यों है? क्यों मैं उसके समीप रह कर, उससे मिल-बोल कर, उसे देख कर एक प्रकार का सुख और तृप्ति लाभ करता हूँ? क्यों उसका अभाव प्राणों को असहनीय हो उठा है? यह सब क्या रहस्य है भगवान! मैं कुछ समझ न सका। मालती से मेरा कोई स्वार्थ न था, लेकिन फिर भी उसे 'अपना' कह कर, उसके निकट रह कर, मैं एक स्वर्गीय शान्ति और सन्तोष का अनुभव करता था।

"मैं मालती से व्याह कर भी सकता था—अब तो अपने देश में असवर्ण विवाह का प्रचलन हो ही गया है—लेकिन मैंने नहीं किया, क्योंकि समाज की दृष्टि में ऐसा करना पाप होता। उस समय तक समाज के प्रति मेरा मन इतना विद्रोही न हुआ था। मैंने सोचा—

हमारा समाज मनुष्य-जाति की ओर दृष्टिपात नहीं करता, उनमें अनेक उपजातियों की और उन उपजातियों में भी अनेक शाखा-प्रशाखाओं की सृष्टि करता है। किन्तु यह तो हमारी भाषा हो गई। एक ही मानव जाति के अनेक शाखा-प्रशाखाओं को वह बिलकुल भिन्न-भिन्न लोक की चीज़ें मान लेता है और ज़ालिमाने ढङ्ग से वह उनके लिए एक-दूसरे से मिलने और समीप-सम्बन्ध स्थापित करने का निषेध कर देता है। वह कहता है कि इस प्रकार के—असवर्ण—विवाहों से वर्णसङ्करता की सृष्टि होगी, लेकिन हमारी समझ में, बहुत चेष्टा करने पर भी, यह बात किसी तरह नहीं आई। विवाह-सम्बन्ध क्या है? जीवन के लिए एक निकटतम साथी चुन लेना ही तो विवाह का उद्देश्य है न? फिर हम अपने लिए इतने तङ्ग दायरे का निर्माण स्वयं ही क्यों कर लें? क्यों न मानव-जाति में से एक अच्छा और सुयोग्य साथी अपने लिए चुनें? जाति तो मनुष्यों की होती है, ब्राह्मण-शूद्रों की नहीं। समाज की यह सङ्कीर्णता क्या मनुष्य के लिए उपयोगी और हितकर हो सकेगी?

"इस प्रकार समाज की दृष्टि में मालती मेरा कोई न होते हुए भी मेरा सर्वस्व थी, मेरे जीवन की अमूल्य निधि थी। उसके प्रति मेरे मन में अपार ममता, स्नेह और सम्मान भरा हुआ था। वह मेरे हृदय के आकर्षण का केन्द्र थी। मेरे हृदय की सारी कोमल वृत्तियाँ शत-शत धाराओं में अजस्र प्रवाहित होकर उसके अस्तित्व में विलीन हो जाती थीं। उस समय यह न मालूम था कि मालती से मेरी यह घनिष्ठता भी समाज बर्दाश्त न कर सकेगा, उसकी नज़रों में हमारे हृदय का यह स्वाभाविक आकर्षण भी 'पाप' हो उठेगा। पीछे मालूम हुई। मैं केवल एक फीकी हँसी हँस कर रह गया। सोचने लगा—पाप और पुण्य क्या है? इसकी परिभाषा कोई कर सकता है? एक व्यक्ति के लिए जो पाप है, दूसरे के निकट वही पुण्य प्रतीत होता है। एक व्यक्ति जिसे पाप की छाया समझ कर घृणापूर्वक उससे दूर हो जाता है, दूसरा ठीक उसीमें पुण्य का प्रकाश देखता और उस प्रकाश की रङ्गीन रश्मि-रेखाओं में स्नान करके अपने जीवन-जन्म को सफल समझता है! कैसा आश्चर्य है!! पाप और पुण्य, इन दोनों में कौन सा अन्तर है? कोई बतला सकता है?

"किन्तु इन बातों के सोचने का अवकाश नहीं था। हृदय के साथ ही मस्तिष्क की गति भी बहुत तीव्र हो गई थी। उसके बाद भावों के इन्हीं उन्मादों में कुछ दिन बीते। सहसा एक दिन सुना, मालती विधवा हो गई है। सुन कर काँप उठा। उसके जीवन के साथ कैसी निष्ठुर क्रीड़ा कर रहे हो विधाता! उसे किस दिशा की ओर ले जा रहे हो? उसे क्यों इस प्रकार सहाय-सम्बल-हीन बना रहे हो? ओः!

"उसके बाद मस्तक का सुन्दर सिन्दूर धोकर, कोमल कलाइयों की चूड़ियाँ तोड़ कर, श्वेत वस्त्र धारण करके, करुणा और उपेक्षा और विवशता की मूर्ति बन कर, विधवा मालती अपने पिता के घर लौट आई। मैं उससे एक बार मिलने के लिए अस्थिर हो उठा, शायद मेरी ही तरह वह भी उद्विग्न हो रही थी। लेकिन उसके घर जाने का साहस मुझे न हुआ। एक दिन गोधूली की धूमिल बेला में छिप कर हम दोनों मिले। मिल कर ख़ूब रोए। रोने से जी का भार कुछ हलका हुआ तो मालती ने पूछा—हम लोगों को इस प्रकार छिप कर मिलने की ज़रूरत आज क्यों हुई है ललित?

"समाज के भय से। समाज यदि हम लोगों के मिलन को अनुचित न बतलाता, यदि वह इसमें हस्तक्षेप न करता तो छिप कर मिलने की हमें ज़रूरत ही क्या होती?"

"लेकिन यदि हम लोगों का मिलना अनुचित नहीं है, यदि इसमें कोई बुराई नहीं है तो किसी का भय मानने की ज़रूरत ही क्या है ललित? यह तो कमज़ोरी है?"

"मैं मानता हूँ।"

"और कमज़ोरी ही पाप है?"

"यह भी मानता हूँ।"

"तब हम लोग किसी दबाव में पड़ कर पाप क्यों करें ललित? मैं अपने को ख़ूब जानती हूँ, और तुम्हें शायद उससे भी अधिक। मैं जानती हूँ कि मेरा तुम्हारा क्या सम्बन्ध है। लेकिन दुनिया ठीक वही बात नहीं जानती, शायद जानना चाहती भी नहीं। इसीलिए कि बात-बात में 'पाप' का स्पर्श पाने, उसकी छाया देखने का उसे अभ्यास हो गया है। समझे!"

"मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। चुपचाप उसकी तर्कपूर्ण उक्तियाँ सुनता रहा।

"वह कहने लगी—इसीलिए कहती हूँ ललित, किसी के कहने-सुनने की, मान-अपमान की परवा न करके तुम अपना काम करते चलो। यदि तुम्हारी आत्मा तुम्हारे साथ है तो सारे संसार की उपेक्षा करके भी तुम अपने कर्त्तव्य के मार्ग पर अग्रसर हो सकते हो। यही उचित है, यही न्याय है। दुनिया में किसी के कहने-सुनने, मान-अपमान से भयभीत होकर कोई काम नहीं किया जा सकता। दुनिया बुरा कहेगी, इस डर से यदि कोई काम न किया जाय, तो यह पाप होगा। भय ही पाप है, दुर्बलता ही पाप है। कम से कम अपने अन्दर से हमें यह पाप दूर करना होगा। कहो ललित, तुम ऐसा कर सकोगे?

ललित ने अपने स्वाभाविक स्वर में कहा—करूँगा मालती, तुम्हारे लिए सब कुछ करूँगा?

"मेरे लिए?"—मालती उछल पड़ी—"मेरे लिए करोगे ललित? इसका क्या अभिप्राय है? क्या मुझसे मिलने में तुम भी बुराई समझते हो भाई? तब तुम्हें मेरी शपथ है ललित, भविष्य में मुझसे मिलने की कभी चेष्टा न करना। मैं अपने लिए तुमसे पाप नहीं कराना चाहती। लो, मैं चली।"

"मालती सचमुच ही उठ कर जाने के लिए तैयार हो गई। मैं घबड़ा उठा। मैंने कहा—तुम मेरा अभिप्राय नहीं समझीं मालती! ठहरो।

"मालती रुक गई। हम दोनों ही मौन रहे। मालती अन्त में कहने लगी—मेरे ही लिए नहीं, सबके लिए तुम्हें ऐसा ही करना होगा। यही धर्म है, यही कर्त्तव्य है, यही पुण्य है।

"इसके बाद मालती उस दिन विदा हुई।

"फिर तो हम लोग बराबर मिलते रहे। यद्यपि हम लोगों का मिलना मालती के घर वालों को अच्छा न लगता था और इङ्गित से अनेक बार इस बात को वे प्रकाशित भी कर चुके थे, पर अभी तक स्पष्ट रूप से कुछ कहने का किसी को साहस न हुआ था।

"एक दिन मालती ने पूछा—ललित सुख कहाँ है? तुम कुछ बता सकते हो? तुमने उसे कहीं देखा है?

"ना। शायद देख भी न सकूँगा।"

"क्यों?"

"क्योंकि उसके अस्तित्व पर मेरी कुछ विशेष आस्था नहीं है।"

"मैंने उसे ढूँढ़ने की एक बार चेष्टा की थी। उसे तो नहीं पा सकी, मगर उसका पता मिल गया। जगत के अविश्रान्त कोलाहल में भी जो एक मौन छिपा है, क्रन्दन के अनन्त हाहाकार में भी सन्तोष और सहनशीलता की जो एक क्षीण-मलिन किरण निहित है, उसीमें मुझे सुख का आभास मिलता है। यदि कोई इतना सहनशील, इतना सन्तोषी हो सके तो कदाचित उसे सुख मिलेगा। वह सुखी हो सकेगा।"

"इसी तरह दिन बीतने लगे, एक तरह प्रसन्नता से ही। लेकिन हमारा इतना सुख, इतनी प्रसन्नता भी दुनिया से न देखी गई। लोगों में तरह-तरह की चर्चा होने लगी। पहले तो हम लोगों ने उस पर ध्यान न दिया, लेकिन जब बात बढ़ती दीख पड़ने लगी तो मुझे चिन्ता हुई। मैंने मालती से कहा। उसने उत्तर दिया—मुझे अब और कुछ नहीं कहना है, मैं सब कह चुकी हूँ। मुझसे मिल कर क्या तुम पाप कर रहे हो ललित? क्या तुम पापी हो? हृदय पर हाथ रख कर कहो।

"मैं मौन रहा। हृदय पर हाथ रख कर मैंने देखा—वह तीव्र गति से धड़क रहा था; लेकिन उसकी भाषा समझने वाला वहाँ कोई न था।

"उसके बाद एक दिन मालती के पिता ने मुझे बुला कर स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मालती विधवा है और उससे तुम्हारा मिलना-जुलना अच्छा नहीं है। तुम अब उससे न मिला करो।

"इच्छा तो हुई कि उनसे पूछ लूँ कि मालती से मेरा मिलना क्यों बुरा है, लेकिन नहीं पूछ सका। सदा के लिए वह अधिकार खोकर सूने मन से घर लौट आया। लेकिन घर में जी न लगा। मालती को एक पत्र लिख कर केवल एक बार मिलने की प्रार्थना की।

"मालती का जो उत्तर मिला वह आश्चर्यपूर्ण था। उसने लिखा—'मैं सब कर सकती हूँ ललित, पाप नहीं कर सकती। मैं तुमसे मिलना पाप नहीं समझती, लेकिन उसमें जो भय है, छिपने की जो भावना है, वही पाप है। तुमसे मिलना ही होगा अगर, तो दुनिया के कहने-सुनने पर लात मार कर खुले तौर से मिलूँगी, नहीं तो

यही ठीक है। लेकिन अभी वैसा समय नहीं आया है। तुम मुझसे मिलने की आशा छोड़ दो।'

"उसका उत्तर पाकर मैं चुप हो बैठा। कुछ ही दिनों के बाद उसके पिता सपरिवार काश्मीर चले गए।

"कई दिन हुए, महीनों के बाद काश्मीर से लौट कर वे लोग आए हैं। आज मैं मालती के पास गया था।" इसके बाद ललित ने मालती के पास जाने पर जो-जो बातें हुई थीं, एक-एक करके शैलेन्द्र को बतलाईं। कहा—"तब से मेरा चित्त न जाने कैसा हो रहा है। सोचता हूँ, मालती के मन में क्या है?"

शैलेन्द्र बोला—मालती के मन में भी वही है, जो तुम्हारे है। तुम क्या उसके जी की बात समझ नहीं सकते भाई? ओः!

उस समय पूर्व आकाश में सूर्य की अरुण-राग-रञ्जित किरणें उषा का मनोहर जाल बुन रही थीं। अवाक होकर दोनों मित्रों ने उसकी ओर देखा।

घ

रात जब कुछ अधिक चढ़ आई और मालती के कमरे का दरवाज़ा न खुला तो घर वालों को चिन्ता हुई। मालती की माँ ने जाकर ज़ञ्जीर खटखटाई। मालती उस समय कोई भयानक सपना देख रही थी। रोते-रोते उसके गालों पर आँसू सूख गए थे। चेहरा फीका पड़ गया था। शरीर काँप रहा था। चौंक कर वह जाग उठी। उठ कर दरवाज़ा खोला। माँ ने जब उसकी हालत देखी तो घबराई। उसने पूछा—"मालती, तुझे यह क्या हो गया है?" वह थोड़ा और आगे बढ़ी तो मालती के बिछौने पर पड़ा हुआ ललित का चित्र उसे दीख पड़ा। एक सन्देहभरी कल्पना उसके माथे में क्षण भर में ही घूम गई और वह तन कर बोली—"यह तेरे कैसे कुलच्छन हैं मालती! इसीलिए तुझे पाल-पोस कर इतना बड़ा किया है? जानती अगर कि तेरे ये लच्छन होंगे और विधवा होकर तू कुल में दाग़ लगावेगी तो जन्मते ही तुझे—" कह कर मालती की माँ तो सिर पकड़ कर वहीं बैठ गई और गला फाड़ कर रो उठीं। मालती को क्रोध आ गया। उसने कहा—"माँ, हमने क्या तुम्हारे कुल में दाग़ लगा दिया है?"

"मालती की बात सुन कर उसकी माँ के रोने की आवाज़ और भी तेज़ हो गई। उसके पिता ने जब यह शोर-गुल सुना तो बेटी के कमरे की ओर दौड़ आए। आकर जो कुछ देखा उससे हतबुद्धि हो गए। मालती की माँ ने रो-रोकर उन्हें मालती के लच्छन सुनाए।

"मालती के पिता को अपने कुल और अपनी धार्मिकता तथा चरित्र का कुछ अधिक अभिमान था। सुनते ही वे आग-बबूला हो गए। कड़क कर बोले—मालती! यह क्या सुन रहा हूँ?

"सब सच ही तो सुन रहे हैं पिता जी!"—मालती ने व्यङ्ग भरे गम्भीर स्वर में कहा।

मालती का उत्तर सुन कर उसके पिता की आँखें फट पड़ीं—इस छोकरी का इतना साहस? वे बाँस की एक छड़ी लेकर मालती पर टूट पड़े—दूर हो कलङ्किनी, तेरे लिए इस घर में जगह नहीं है।

मालती भूखी बाघिन की तरह उछल कर दूर खड़ी हो गई। गरज कर बोली—ख़बरदार पिता जी! फिर हाथ न छोड़िएगा। आप अपने घर से मुझे निकाल सकते हैं, मुझ पर हाथ नहीं छोड़ सकते।

लड़की को बलपूर्वक घर से बाहर निकालते हुए मालती के पिता ने दरवाज़ा बन्द कर लिया। मालती क्रोध और अभिमान और सत्य के तेज से गरगराती हुई बाहर निकल गई।

मालती के पिता को इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ। वे दौड़े-दौड़े ललित के घर गए। उसे बहुत बुरा-भला कहा, बहुत गालियाँ दीं और यह कहना भी न भूले कि मालती को मार कर उन्होंने घर से बाहर निकाल दिया है।

ङ

ललित का मुहल्ले में रहना मुश्किल हो गया। सभी उस पर उँगली उठाते, सभी आवाज़ें कसते, सभी ताने मारते। मुहल्ले भर में वह एक मशहूर अवारा, घृणित, पापी और दुश्चरित्र मशहूर हो गया। उसे सिर उठा कर बाज़ार में निकलने का साहस न होने लगा।

ललित को अनेक बार यह बात याद आई कि उसकी यह साहसहीनता, यह भय, यह कमज़ोरी ही उसका पाप है। लेकिन वह क्या करे? सिद्धान्तों से कार्यों में कुछ तो फ़र्क़ होता ही है और फिर वह दुर्बलताओं का

पुतला, पतनशील, समाज के आतङ्क से भयभीत, एक मनुष्य ही तो था! वह जानता था कि वह पापी नहीं है, शरीर से तो है ही नहीं, मन से भी नहीं है। लेकिन उसकी दुर्बलता ही समाज के सामने उसे पापी बना रही थी।

अन्त में जब इतना अपमान और तिरस्कार वह सह न सका, तो एक दिन चुपचाप उठ कर घर से बाहर निकल गया।

च

मालती थी और ललित था। उन दोनों के अतिरिक्त उन्हीं के हृदय के समान काँपने वाली एक सरिता थी और चाँदनी से भीगी हुई आधी रात। मालती ने कहा—उस दिन तो मेरे कमरे से तस्वीर चुरा ले गए थे ललित, और अब कहीं हृदय चुरा ले जाओ तब?

"नहीं चुराऊँगा।"

"क्यों?"

"इसलिए कि वैसा मैं कर नहीं सकता। वैसा करने के योग्य अभी भी नहीं हो सका हूँ। कभी हो सकूँगा, इसका भी कुछ निश्चय नहीं है।"

"हाँ, यह ठीक है। मैं मानती हूँ। यदि घर छोड़ कर तुम चुपके से न भाग आए होते, अगर दुनिया से कह कर आए होते कि मैं मालती के पास जाता हूँ तो शायद मैं अधिक प्रसन्न होती। शायद मैं तुम्हें अपने बहुत समीप देख पाती। लेकिन कोई चिन्ता नहीं। अभी थोड़ी और तपस्या की आवश्यकता है। वह जब पूरी हो जायगी......तब। देखा जायगा। तुम अब क्या करोगे ललित?"

"मैं तो थोड़ी सी और अवारागर्दी ही करना चाहता हूँ।"

"ठीक है, यही करो। ईमानदारी से, बहादुरी से जो कुछ भी करोगे, वही तुम्हारा धर्म है, वही जीवन का प्रकृत पथ है। और वह प्रत्येक कार्य, जिसमें चारित्रिक दृढ़ता नहीं है, पाप है, कलुष है, अधर्म है।"

"और तुम क्या करोगी मालती?"

"मैं? मैं भी कुछ वैसा ही करूँगी। रोगियों की सेवा करने की मेरी इच्छा हो रही है। चलो, हम दोनों ही अपने पवित्र कर्त्तव्य में लीन हो जायँ। किन्तु याद रखना, तपस्या जब तक पूरी न होगी, हम दोनों आपस में मिल न सकेंगे। बोलो, स्वीकार है?"

"है।"

"तब चलो, उठो।"

"चलो।"

दोनों ही श्वेत बालुका-राशि के विस्तीर्ण मार्ग पर कुछ दूर चल कर अलग हो गए। आकाश में उस समय चन्द्रमा एक रहस्यपूर्ण हँसी हँस पड़ा।

छ

दो वर्ष बाद।

महामारी का प्रकोप था। सारा शहर वीरान हो रहा था। गर्मी भी वैसी ही भयानक पड़ रही थी। अभागे मनुष्य रोग की यन्त्रणा और गर्मी की असहनीयता से व्याकुल होकर, छटपटा कर प्राण दे रहे थे। कोई किसी की बात पूछने वाला न था। शहर भर में त्राहि-त्राहि मची हुई थी। किन्तु ऐसे समय भी एक तरुणी सेविका बिजली की भाँति सारे शहर के बीमारों की देख-रेख कर रही थी। वह कभी इस घर में दीख पड़ती, कभी उस। कभी वह किसी रोगी को पानी पिलाती, कभी किसी को दवा खिलाती और कभी किसी के गन्दे कपड़े और बिछौने साफ़ किया करती थी। उसे एक क्षण का अवकाश न था। मशीन की तरह वह अपने शरीर की ममता छोड़ कर रोगियों की परिचर्या कर रही थी।

जिन लोगों पर रोग का आक्रमण नहीं हुआ था, जिनके शरीर में कुछ शक्ति थी, वे शहर छोड़ कर बाहर चले गए थे—फूस की झोपड़ियाँ लगा कर दिन काट रहे थे। किन्तु कुछ समय बाद वहाँ भी रोग का आक्रमण हुआ। रक्षा का और कोई उपाय न देख कर लोग सब कुछ भोगने-सहने के लिए तैयार हो बैठे।

इसी तरह की एक झोपड़ी में एक दिन आग लग गई। धू-धू करके आग की लपटें आसमान को छूने लगीं। स्त्रियों, बच्चों और रोगियों के आर्तनाद से दिशाएँ गूँज उठीं। देखते ही देखते कितनी झोपड़ियाँ जल कर राख हो गईं। रोग की यन्त्रणा से छटपटाते हुए कितने ही अशक्त और दुर्बल रोगियों ने भी न जाने किस शक्ति से प्रभावित होकर और भाग कर इस आकस्मिक विपत्ति से

अपनी रक्षा की। कौन कह सकता है कि अनेक अभागों को काल की उस लपलपाती हुई प्रलयङ्करी जिह्वा ने अपनी तृष्णा की भेंट न कर दिया होगा?

एक अधेड़ था और उसकी स्त्री। घर में एक बच्चा भी था। आसमान में उठती हुई आग की लपटें देखकर दोनों पति-पत्नी बाहर निकल आए थे। बच्चा भीतर खटिया पर पड़ा सो रहा था।

सहसा हवा का एक प्रचण्ड झोंका आया। आग की एक लपलपाती हुई लपट ने अधेड़ के घर के छप्पर को चूम लिया। देखते ही देखते भक-भक करके सारा छप्पर लहक उठा। दोनों पागल से होकर ताकते रहे, चिल्लाते रहे, रो-रोकर सहायता के लिए पुकारते रहे। लेकिन उस विपत्ति में उनकी दुर्बल आवाज़ सुनने वाला कौन था?

आग की गर्मी से झुलसता हुआ बच्चा अन्दर तड़प रहा था, चीत्कार कर रहा था। किन्तु अन्दर जाकर उसे उठा लाने का साहस कोई न कर सका।

तीर की तरह भागता हुआ एक युवक आया। बिना किसी ओर देखे वह आग में घुस गया, बच्चे को छाती से चिपटा कर बाहर निकला। उसी समय जला हुआ छप्पर उसकी पीठ पर आ रहा।

बच्चे की रक्षा हो गई, युवक आहत हुआ, आग जल कर बुझ गई।

दूसरे दिन। युवक बेहोश पड़ा था। उसके शरीर पर छाले पड़ गए थे। अधेड़ वहीं बैठ कर उसकी शुश्रूषा कर रहा था।

और घरों से होती हुई तरुणी परिचारिका यहाँ भी आई। उसने सब देखा। उसकी आँखों में आँसू थे और उनमें घृणा तथा तिरस्कार के भाव। अधेड़ की ओर उसने देखा। बोली—इसे पहिचानते हो?

"नहीं। यह कौन है बेटी?"

"यह वही अवारा ललित है, जिसे तुम लोगों ने शहर में रहने तक न दिया था। और मैं हूँ, कलङ्किनी मालती जिसे मार कर तुमने घर से निकाल दिया था। याद है?"

मालती के पिता को यह सारी बातें स्वप्न सी जान पड़ीं। वह अवाक होकर, विस्मित होकर, मालती की ओर ताकने लगे। मालती क्षण भर का विलम्ब किए बिना वहाँ से बाहर हो गई।

ज

इस यात्रा में ललित की रक्षा नहीं हो सकी। लगातार कई दिनों तक असह्य यातना भोगने के बाद, वह संसार के दुःख-कष्टों से सदा के लिए मुक्त हो गया।

अँधेरी रात थी। क्षीण धारा वाली नदी के तट पर ललित की चिता जल कर बुझ चुकी थी। एक आध अङ्गारे जब-तब जली हुई हड्डियों के बीच में चमक उठते थे। मालती उस समय भी वहीं थी।

मालती सोचने लगी—सपने की तरह वह आया था और यौवन की तरह चला गया। दुनिया जिन कारणों से उससे घृणा करती थी, ठीक उन्हीं कारणों से वह मेरा प्यारा था। उसके जिन कार्यों का समाज तिरस्कार करता था, जिन्हें वह अनुचित और पाप समझता था, वही उसके उत्थान और विजय के चिन्ह थे। हाय! दुनिया मनुष्य को पहिचानने में इतनी ग़लती क्यों करती है?

ललित की करुण स्मृति से मालती का हृदय भर उठा। ज़मीन पर सिर टेक कर उसने एक बार ललित को प्रणाम किया, फिर चिता-भस्म लेकर सिर पर लगा लिया।

उस समय, अर्ध-रात्रि के सघन अन्धकार में उस पार के झाऊ के वृक्ष झुक-झुक कर झूम रहे थे। उदास दक्खिनी वायु का एक झोंका उनके ऊपर से सरसराता हुआ निकल गया।

पण्डितराज जगन्नाथ और उनका काव्य

[श्री० रामकुमार जी शास्त्री]

प्राचीन समय के साहित्यिक अपने सम्बन्ध में इतने लापरवाह और निश्चिन्त रहे हैं कि अनेक बार उनके कार्यकाल का निर्णय करना हमारे लिए आसान नहीं रह जाता। अनेक कवियों और लेखकों ने तो अपने ग्रन्थों में अपने माता-पिता, स्थान और जन्म-काल का भी उल्लेख नहीं किया। ऐसी स्थिति में केवल कल्पना अथवा जनश्रुति के द्वारा उनके सम्बन्ध में निश्चय रूप से कुछ कहना कठिन हो जाता है। कवि-कुल-गुरु कालिदास ने तो अपने ग्रन्थों में अपना नाम तक नहीं दिया। यदि उन्होंने नाटक न लिखे होते तो शायद उनके नाम का भी आज पता न चलता।

सबसे पहले 'श्रीकण्ठ-चरित', 'हर्ष-चरित' और 'विक्रमाङ्कदेव चरित' नामक ग्रन्थों में क्रम से उनके लेखकों —मङ्खक, बाण और विल्हण आदि—ने अपना संक्षिप्त इतिहास लिखा है। इस प्रकार, ग्रन्थों में अपने सम्बन्ध में लिखने की शैली का प्रचलन करने में ये ही तीन कवि अग्रगण्य माने जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त श्रीहर्ष तथा भवभूति आदि कवियों ने भी अपने सम्बन्ध में अपने ग्रन्थों में थोड़ा-बहुत उल्लेख किया है, लेकिन उससे जो कुछ भी जाना जा सकता है वह बिलकुल अधूरा और अपर्याप्त है। उस अपूर्ण ज्ञान के बल पर निश्चित रूप से कोई ख़ास बात नहीं कही जा सकती।

'भोज प्रबन्ध' नाम के संस्कृत ग्रन्थ में यद्यपि इस विषय पर बहुत कुछ लिखा गया है, किन्तु उसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विश्वसनीय रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' संस्कृत साहित्य की अद्वितीय वस्तु है, उसके जोड़ की दूसरी कोई गद्य-पुस्तक उस साहित्य में नहीं है। किन्तु यदि तत्कालीन चीन देशीय 'हुएनसाँग' नामक यात्री हमारे देश में न आता और श्रीहर्ष के सम्बन्ध में बहुत सी बातें वह न लिख गया होता, तो सम्भवतः हम आज बाणभट्ट के नाम से भी परिचित न होते। कादम्बरी का विद्वान और अद्वितीय लेखक आज हमारे लिए अन्धकार में होता। हमारे चरित-नायक पण्डितराज जगन्नाथ के सम्बन्ध में भी ऐसी ही बात है। न तो उन्होंने स्वयं ही अपने सम्बन्ध में कुछ लिखा है और न तत्कालीन किसी अन्य लेखक ने ही उनके जीवन पर कुछ प्रकाश डालने की चेष्टा की है। ऐसी अवस्था में उनके सम्बन्ध की जनश्रुति और उनके ग्रन्थों के आधार पर जो कुछ जाना जा सका है, उसे ही मैं पाठकों के सम्मुख उपस्थित करूँगा।

पण्डितराज जगन्नाथ का जन्मस्थान कहाँ था, इसका निर्णय करना आसान नहीं है, किन्तु अनुमानतः कहा जा सकता है कि उनकी जन्मभूमि तैलङ्ग रही होगी। इसके प्रमाण में 'रसगङ्गाधर' का यह श्लोक उपस्थित किया जा सकता है :—

> पाषाणादपि पीयूषं स्यन्दते यस्य लीलया।
> तं वन्दे पेलुभट्टाख्यं लक्ष्मीकान्तं महागुरुम् ॥

इनके बनाए हुए 'प्राणाभरण' नामक ग्रन्थ में भी इसी प्रकार का एक श्लोक मिलता है :—

> तैलङ्गान्वय मङ्गलालय महालक्ष्मी ललाटन्तयः
> श्रीमत्पेरमभट्टसूनुरनिशं विद्वल्ललाटन्त यः।
> सन्तुष्टः कमताधिपस्य कवितामाकर्ण्य तद्वर्णनं
> श्रीमत्पण्डितराज पण्डितजगन्नाथो व्यधासीदिदम् ॥

इन श्लोकों से यह मालूम होता है कि ये तैलङ्ग थे। इनके पिता का नाम पेलुभट्ट अथवा पेरमभट्ट और माता का नाम लक्ष्मी था। इन्होंने अपने पिता से ही दीक्षा ली थी और ये अत्यन्त विद्वान थे। इन्होंने काशी में रह कर अनेक उद्भट विद्वानों से शास्त्रानुशीलन किया था।

कहा जाता है कि जब ये पूर्णरूप से शिक्षा प्राप्त कर चुके तो तञ्जोर नामक स्थान में जीविका ग्रहण कर निवास करने लगे। किन्तु वहाँ उनका आदर नहीं

हुआ। इससे उस स्थान को छोड़ कर उत्तर प्रान्त के भिन्न-भिन्न भागों में परिभ्रमण करते हुए ये दिल्ली आए। दिल्ली में एक मुसलमान विद्वान से इनकी मुलाक़ात हुई और धार्मिक विषयों पर उससे इनका विवाद भी हुआ। इनका वाक्‌चातुर्य देख कर वह अवाक रह गया और अन्त में उसे इनका लोहा मान लेना पड़ा। इस प्रकार धीरे-धीरे दिल्ली में इनकी ख्याति बढ़ती गई और वह बादशाह के कानों तक पहुँची। बादशाह ने इन्हें बुला कर अपने पास रक्खा और इन्हें अपने दरबार में महान पद प्रदान किया।

पण्डितराज बड़े विलासी और रसिक पुरुष थे। उनके सम्बन्ध में प्रचलित अनेक किम्वदन्तियों तथा उनकी कविता के द्वारा इस बात का पर्याप्त परिचय मिलता है। ये फ़ारसी भी जानते थे और कहा जाता है कि इन्होंने फ़ारसी मिश्रित कई ग्रन्थ भी लिखे हैं।

बादशाह की राजपूत रानी से जन्मी हुई एक अत्यन्त रूपवती और तरुणी लवङ्गी नाम की कन्या थी। पण्डितराज ने किसी प्रकार उसे देख लिया और उस पर आसक्त हो गए। खिलने वाली नलिनी के समान मनोहर और आकर्षक वह तरुणी भी पण्डितराज को देख कर स्थिर न रह सकी। उनकी विद्वत्ता और कवित्व-शक्ति का परिचय वह पहले ही पा चुकी थी। उसने भी अज्ञात में ही अपना सर्वस्व इन पर न्यौछावर कर दिया।

एक बार ये बादशाह के साथ शतरञ्ज खेल रहे थे। खेलते-खेलते बादशाह को प्यास लगी। उन्होंने पानी माँगा तो लवङ्गी अपने सिर पर एक छोटी कलसी लेकर उस कक्ष में आई। उसे देख कर पण्डितराज मोहमुग्ध हो गए और एकटक उसकी ओर ताकने लगे। बादशाह उस समय मदिरा की तरल तरङ्गों में डूब-उतरा रहे थे। पण्डितराज को इस प्रकार एकटक लवङ्गी की ओर देखते हुए देख कर उन्होंने उसीके सम्बन्ध में कुछ सुनाने की फ़रमाइश की। कवि ने तत्क्षण ही यह श्लोक सुनाया:—

इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुम्भा
कुसुम्भारुणं चारु चैलं वसाना।
समस्तस्य लोकस्य चेतः प्रवृत्तिम्
गृहीत्वा घटे न्यस्य यातीव भाति॥

अर्थात्—यह सुन्दर स्तनों वाली, जिसने मस्तक पर घड़ा धारण कर रक्खा है, जिसका मुँह कुसुम के फूल के समान लाल है और जो सुन्दर वस्त्र पहने हुई है, समस्त लोकों की चित्तवृत्ति को चुरा कर घड़े में ले जाती हुई सी शोभित होती है।

यह स्वाभाविक, सुन्दर और आश्चर्यजनक वर्णन सुन कर बादशाह फड़क उठे। उन्होंने पण्डितराज से इच्छित वस्तु माँगने को कहा। पण्डितराज अविलम्ब बोल उठे:—

न याचे गजालिं न वा वाजिराजम्
न वित्तेषु चित्तं मदीयं कदाचित्।
इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुम्भा
लवङ्गी कुरङ्गी दृगङ्गी करोतु॥

अर्थात्—मैं हाथियों का झुण्ड नहीं चाहता और न मुझे श्रेष्ठ घोड़े ही चाहिए। धन में भी मेरी बिलकुल प्रवृत्ति नहीं है। किन्तु यह सुन्दर स्तनों वाली, सिर पर घड़ा धारण करने वाली, मृगा सी आँखों वाली लवङ्गी मुझे अङ्गीकार करे।

इसके बाद उन्होंने बादशाह को एक और भी श्लोक सुनाया, जिससे उनकी रसिकता और विलासिता का ख़ासा परिचय मिलता है। उन्होंने कहा:—

यवनी नवनीतकोमलाङ्गी
शयनीये यदि लभ्यते कदाचित्।
अवनीतलमेव साधु मन्ये
नवनी माधवनी विलासहेतुः॥

अर्थात्—नवनीत के समान कोमलाङ्गी यवनी यदि मुझे पलँग पर मिले तो मैं इस भूतल को ही परम सुखकर समझूँ। इस सुख के सामने इन्द्र के नन्दनवन में विलास करना भी मुझे तुच्छ मालूम पड़े।

पण्डितराज की इस अद्भुत याचना को सुन कर बादशाह अवाक रह गए। उन्होंने कभी इस बात की कल्पना भी न की थी कि यह पागल हिन्दू कवि ऐसी अद्भुत याचना कर बैठेगा। लेकिन जब वचन दे चुके थे तो पण्डितराज की याच्ञा स्वीकार करनी ही पड़ी। पण्डितराज ने धर्म परिवर्तन करके लवङ्गी का पाणिग्रहण किया।

काशी के पण्डितों को जब यह बात मालूम हुई तो उनमें बड़ी हलचल मची। उन लोगों ने पण्डितराज को

जातिच्युत कर दिया। लेकिन अभिमानी और लापरवाह कवि को इसकी चिन्ता ही क्या थी? वे जानते थे कि प्रेम का दायरा उतना तङ्ग और सङ्कीर्ण नहीं है, जितना समाज ने उसे बना दिया है। एक रसिक और प्रेमी कवि के लिए उसके अन्दर से होकर गुज़रना आसान नहीं है।

इन कविश्रेष्ठ के काल-निर्णय में मतभेद चला आता है। अभी तक कुछ निर्णय नहीं हो सका। कुछ लोगों का मत है कि ये अकबर के समय में थे, लेकिन दूसरे शाहजहाँ के शासनकाल में इनका होना बतलाते हैं। जहाँ ऐसे बहुत से प्रमाण मिलते हैं, जिनके कारण शाहजहाँ के समय में ही इनका होना अधिक युक्तिसङ्गत मालूम पड़ता है, वहाँ अकबर के समय में होने के पक्ष में कोई प्रबल प्रमाण नहीं दीख पड़ता। अतः यह मान लेना चाहिए कि ये शाहजहाँ के शासन-काल में हुए थे।

बम्बई से प्रकाशित होने वाली 'काव्यमाला' नामक पुस्तक में इनके निम्न-लिखित ग्रन्थों की चर्चा की गई है:—

(१) रस गङ्गाधर (२) यमुनावर्णन चम्पू (३) रतिमन्मथ नाटक (४) वसुमती परिणय नाटक (५) जगदाभरण काव्य (६) प्राणाभरण काव्य (७) पीयूष लहरी (८) अमृत लहरी (९) सुधा लहरी (१०) करुणा लहरी (११) लक्ष्मी लहरी (१२) भामिनी विलास (१३) मनोरमा कुच मर्दन (१४) अश्ववाटी काव्य।

पं० लक्ष्मणचन्द्र राव वैद्य ने इनके द्वारा निर्मित 'आसफ़ विलास' नामक एक और पुस्तक का ज़िक्र किया है, किन्तु काव्यमाला में उसका कहीं उल्लेख नहीं है। सम्भव है, उन्हें वह पुस्तक उपलब्ध न हुई हो।

'जगदाभरण' में शाहजहाँ के बेटे दाराशिकोह का वर्णन है और 'प्राणाभरण' में कामरूप के राजा प्राण-नारायण की यश-प्रशंसा। पियूष, अमृत, सुधा, करुणा और लक्ष्मी लहरी में क्रमशः गङ्गा, यमुना, सूर्य, विष्णु और लक्ष्मी की स्तुति है। 'अश्ववाटी' में पण्डितराज ने अपने पौत्र राम को सदुपदेश दिया है। 'यमुनावर्णन' 'चम्पू', 'रतिमन्मथ' नाटक, 'वसुमती परिणय' नाटक और 'मनोरमा कुच मर्दन' आदि ग्रन्थों के सम्बन्ध में अपना व्यक्तिगत ज्ञान न होने के कारण हम कुछ कह नहीं सकते।

इनके और ग्रन्थों में 'रसगङ्गाधर' नामक साहित्य-ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रशंसनीय है। इसमें अलङ्कार आदि विषय बड़ी उत्तमता और नवीन रीति से समझाए गए हैं। इनके पहले यह चलन थी कि लक्षण-ग्रन्थों के प्रणेता लक्षण अपना और उदाहरण पुराना देते थे। लेकिन इन्हें यह बात कुछ जँची नहीं। इस ग्रन्थ में इन्होंने लक्षण और उदाहरण, सभी के लिए अपनी ही रचना का उपयोग किया है। 'रसगङ्गाधर' के आरम्भ में इन्होंने कहा है:—

> निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं
> काव्यं मयाऽत्र निहितं न परस्य किञ्चित्।
> किं सेव्यते सुमनसां मनसाऽपि गन्धं
> कस्तूरिका जनन शक्तिभृता मृगेण॥

अर्थात्—इस ग्रन्थ में अपने बनाए हुए नवीन उदाहरणों का ही सन्निवेश है, दूसरे की कविताओं से मैंने कुछ नहीं लिया। जिस मृग में कस्तूरी पैदा करने की शक्ति है वह क्या कभी फूलों की गन्ध सूँघने की इच्छा भी करेगा?

कितनी प्रबल दर्पोक्ति है! कितनी विकट अहम्मन्यता! किन्तु ये वाक्य पण्डितराज के ही मुँह से शोभा देते हैं।

'रसगङ्गाधर' में 'गङ्गा-लहरी' के भी कुछ पद्य आ गए हैं। इसके अतिरिक्त अपने प्रतिपक्षियों तथा विरोधियों की भी इस ग्रन्थ में इन्होंने अच्छी तरह ख़बर ली है। 'कुवलयानन्द' कार अप्पय दीक्षित उनके प्रसिद्ध प्रतिपक्षी थे। इस पुस्तक में उनके प्रति अनेक कुवाच्य कहे गए हैं और कई स्थलों पर 'कुवलयानन्द' का खण्डन भी किया गया है। 'सिद्धान्त कौमुदी' के प्रसिद्ध प्रणेता भट्टोजी दीक्षित पर भी इन्होंने बड़ा कटाक्ष किया है।

इनके 'भामिनी विलास' नामक ग्रन्थ के सम्बन्ध में हम कुछ कहना नहीं चाहते। काव्य-प्रेमी विद्वज्जन उसका रसास्वादन करके ही उसके सम्बन्ध में कुछ समझ सकते और विवेचना कर सकते हैं।

यह ग्रन्थ प्रास्ताविक, शृङ्गार, करुणा और शान्त, इन चार विलासों में विभक्त है। इस पुस्तक के प्रत्येक छन्द में जो अर्थप्रदता, गम्भीरता और मनोहरता है, वह अद्वितीय है। इस पुस्तक के प्रत्येक छन्द अलग-अलग हैं,

एक दूसरे से कोई ख़ास सम्बन्ध नहीं रखते। प्रसङ्ग के अनुसार जब तब कहे हुए पद्यों का संग्रह सा मालूम पड़ता है। कुछ लोगों का कहना है कि अपनी स्त्री के नाम पर इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की और किसी-किसी के मत से 'रसगङ्गाधर' के उदाहरणों के लिए इस ग्रन्थ की सृष्टि हुई है।

जगन्नाथ पण्डितराज के ग्रन्थों के अनुशीलन से इनकी विद्वत्ता और कवित्व-शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। संस्कृत कवियों में इनकी तुलना कालिदास, भारवि और भवभूति से की जा सकती है। इनकी भाषा ज़ोरदार और तुली हुई होती थी। इनके भाव सजीव, तेजस्वी और गम्भीर होते थे। वास्तव में इनकी रचनाएँ संस्कृत साहित्य में अनुपम काव्य-चमत्कार का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

ऐसे महाकवि और सरल प्रेमी के जीवन का अन्तिम भाग बड़ा ही करुणापूर्ण बीता है। कहते हैं कि जीवन के अन्तिम दिनों में इन्हें कुष्ठ हो गया था, जिससे इन्हें बड़ी पीड़ा भोगनी पड़ रही थी। अन्त में गङ्गातट पर जाकर इन्होंने 'गङ्गालहरी' नामक गङ्गा जी का स्तोत्र बनाया और भगवती भागीरथी की कृपा से रोग-दोषों से मुक्त हुए।

यह भी कहा जाता है कि जब गङ्गातट पर बैठ कर ये 'गङ्गालहरी' का एक-एक श्लोक पढ़ते जाते थे, गङ्गा जी भी क्रम से एक-एक सीढ़ी ऊपर चढ़ती आती थीं। अन्त में जब उन्होंने बढ़ कर इनका शरीर स्पर्श कर लिया, तब इनका कुष्ठ दूर हो गया!

हमें इन बातों के सत्यासत्य-निर्णय का प्रयोजन नहीं है। प्रायः सभी बड़े और प्रसिद्ध व्यक्तियों के सम्बन्ध में ऐसी अलौकिक घटनाएँ कही-सुनी जाती हैं। उनमें सत्य का कितना अंश है, यह ढूँढ़ना ज़रा मुश्किल काम है, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि इनके जीवन का अन्तिम भाग दुःखों और पीड़ाओं में बीता था, परन्तु उस समय भी उनकी कविता की प्रगति पूर्ववत् ही तीव्र रही थी।

प्रतीक्षा-निरत

[श्रीनिवास गुप्त]

(१)

उस असीम के प्राङ्गण में मैं—
देख रहा हूँ तेरी बाट।
खुले-अधखुले नयन बिछे हैं,
देख रहे हैं तेरे ठाट॥

(२)

दिया दिखाई बहुत निकट ही,
पास न आया तू फिर भी।
तेरे आलिङ्गन के हित मैं
अति अशान्त हूँ, अस्थिर भी॥

(३)

जैसे-जैसे समय बीतता,
व्याकुलता बढ़ती जाती।
निष्ठुर तेरी निश्चलता वह
एक अपूर्व भाव लाती॥

(४)

इतने निकट देख कर भी मैं
तुझे प्राप्त कर सका नहीं!
इस अभाग्य में यही बहुत है,
जाना पर अन्यत्र नहीं!!

प्रयाग का कृषि-विद्यालय

[श्रीमती एम०एस० हेच]
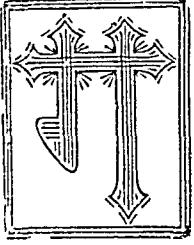
त शताब्दी के—रेल, तार, टेली-फ़ोन, रेडियो और वायुयान के आविष्कारों की ओर देखने परहमें बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ता है। इन अनुसन्धानों ने मानव-जाति के दैनन्दिन जीवन में कितना महान परिवर्तन उपस्थित कर दिया है! एक प्रकार से दुनियाँ की काया पलट ही कर दी है।

इधर खेती के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसे ही आविष्कार हुए हैं, जिनसे अनाजों की क़िस्म की और पैदावार की तरक़्क़ी होने में बहुत मदद मिली है। इन अनुसन्धानों में जो सबसे बड़ी तारीफ़ की बात है, वह यह कि इनमें से बहुतों का प्रयोग देश के ग़रीब किसान भी कर सकते हैं और इनसे वे उतना ही लाभ उठा सकते हैं, जितना कोई धनी ज़मींदार।

प्रायः पचीस वर्ष पहले की बात है, डॉक्टर साम हिगिनबॉटम उन दिनों प्रयाग के ईविङ्ग क्रिश्चियन कॉलेज में अर्थशास्त्र के अध्यापक थे। उनका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने सोचा, कोई ऐसा काम करना चाहिए जिससे हिन्दुस्तान के लाखों ग़रीबों को भरपेट भोजन मिल सके और जीवन की दूसरी ज़रूरतों के अभाव में भी उन्हें दुःख न भोगना पड़े। वे जानते थे कि देश की अधिकांश जनता खेती-बारी से अपना निर्वाह करती है और भविष्य में आने वाले बहुत वर्षों तक वह यही व्यवसाय करने के लिए विवश है। उन्हें यह भी मालूम था कि आजकल किसानों की दशा
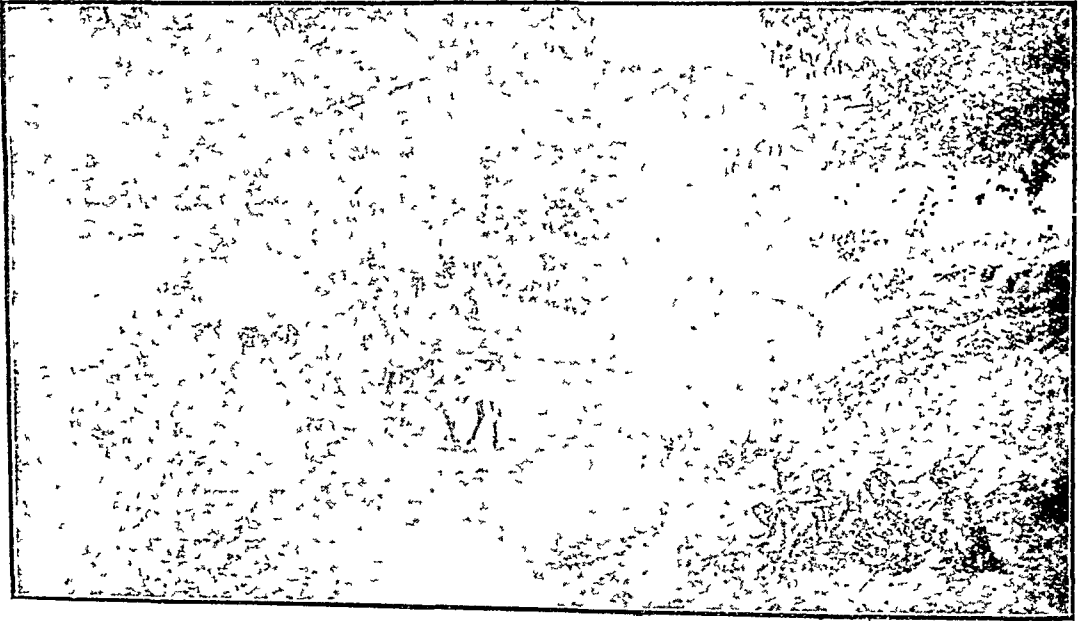
यही वह ज़मीन है, जिस पर विद्यालय ने पहले पहल कार्य आरम्भ किया था। यह गड्ढों और नालियों से इस बुरी तरह भरी हुई थी कि इस पर मनुष्य या जानवर किसी के भी काम लायक़ कोई चीज़ पैदा न होती थी।
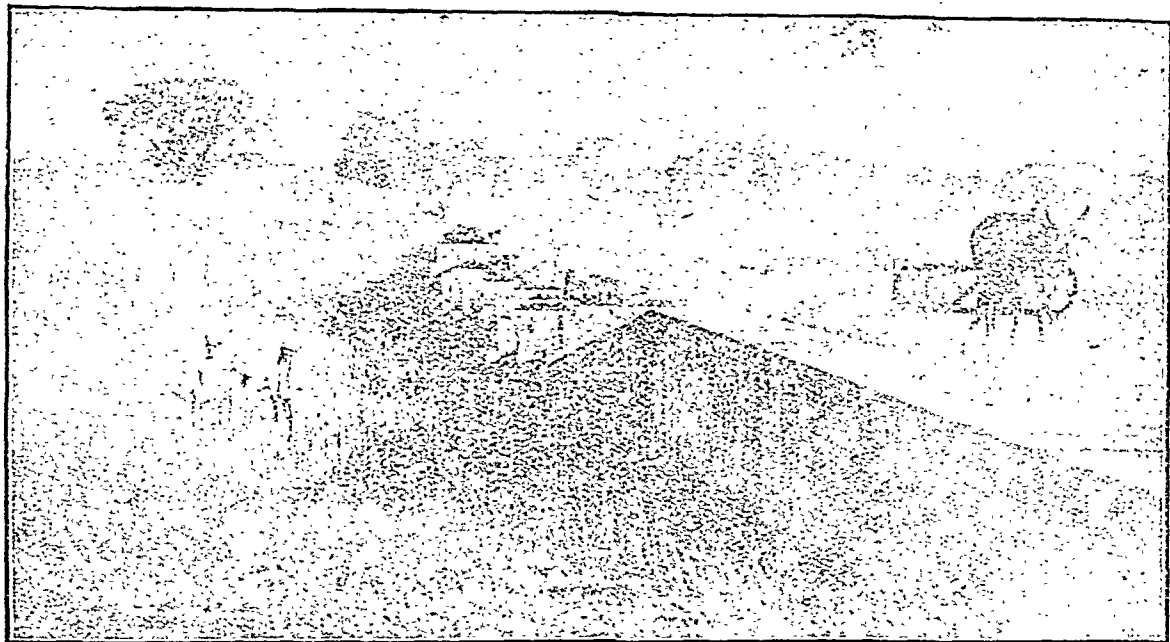
खेत को उपजाऊ बनाने वाला बाँध। विद्यालय ने ऐसे बाँध बाँध कर अपनी ऊसर और बञ्जर ज़मीन को भी अत्यन्त उपजाऊ बना लिया है।

विद्यालय के समीपवर्ती किसान अपने खेत में जौ और चने की फ़सल काट रहे हैं। इस ज़मीन में सिंचाई न होने के कारण गेहूँ नहीं पैदा होता। लेकिन ठीक इसी तरह की ज़मीन में कृषि-विद्यालय गेहूँ भी पैदा कर लेता है।

सुधारने के लिए कौन-कौन से आविष्कार हुए हैं तथा उन आविष्कारों ने दूसरे देशों में और स्वयं भारतवर्ष के कई स्थानों में भी किसानों की दशा किस प्रकार सुधार दी है। उन्होंने अपने मन में सोचा—"क्यों न हम लोग कोई ऐसी संस्था क़ायम करें जो आस-पास के किसानों की सहायता कर सके, जो खेती की शिक्षा देकर ऐसे मनुष्यों को तैयार कर सके, जो गाँवों में जायँ और वहाँ के किसानों को वैज्ञानिक ढङ्ग से खेती करना सिखावें तथा स्वयं भी उसी ढङ्ग से अपनी ज़मीन में खेती करके लोगों के सामने एक नमूना पेश करें।" उन्होंने इस विषय में अमेरिकन प्रिस्बिटेरियन मिशन के अपने साथियों से भी परामर्श किया।

हिगिनबॉटम सपना देखने वाले आदमी हैं; किन्तु साथ ही साथ वे कर्मशील भी हैं। उन्होंने विशेष रूप से कृषि सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने तथा इस प्रकार की एक संस्था के निर्माण के लिए धन एकत्रित करने की इच्छा से अमेरिका की यात्रा की। उनकी इस यात्रा तथा उनके सपनों और प्रार्थनाओं का परिणाम यह हुआ कि आज से १६ वर्ष पहले, ख़ास प्रयाग नगर के सामने, यमुना के उस पार कृषि-विद्यालय की स्थापना हुई। इस विद्यालय में ६०० एकड़ भूमि है, जिसका कुछ हिस्सा वहाँ के किसान जोतते हैं। इस विद्यालय में शिक्षा पाने के लिए भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के विद्यार्थी तो आते ही हैं, इसके अतिरिक्त फ़ारस, ईराक़ और फ़ीज़ी के विद्यार्थी भी आते हैं।

विद्यार्थी घास जमा करने के गड्ढे में घास भर रहे हैं। ये गड्ढे एक प्रकार के घास के बैङ्क हैं, जिनमें से ज़रूरत के समय घास निकाल कर काम चलाया जा सकता है।

विद्यालय के लिए जो ज़मीन चुनी गई थी, वह यमुना के किनारे होने के कारण, नालों और गड्ढों से भरी हुई थी। उसके ऊपर की उपजाऊ मिट्टी को बरसात का पानी हर साल नदी में बहा ले जाता था। इसलिए वह ज़मीन खेती के काम लायक़ बिलकुल न रह गई थी। उसमें 'खस' और 'कुश' नाम की दो घासें, जिनकी जड़ मिट्टी में दूर तक धँसी होती है, बहुतायत से जमी हुई थीं। वहाँ की मिट्टी इतनी सख़्त और बञ्जर थी कि वहाँ के बाशिन्दे कहा करते थे कि किसी भी आदमी ने उसमें कभी हल चलते देखा ही नहीं। वहाँ के किसानों का ख़याल था कि उस ज़मीन के ज़्यादा हिस्से में विद्यालय कोई फ़सल नहीं उगा सकेगा। और यही पहली बात थी, जिसमें विद्यालय को नए आविष्कारों के लाभ दिखाने
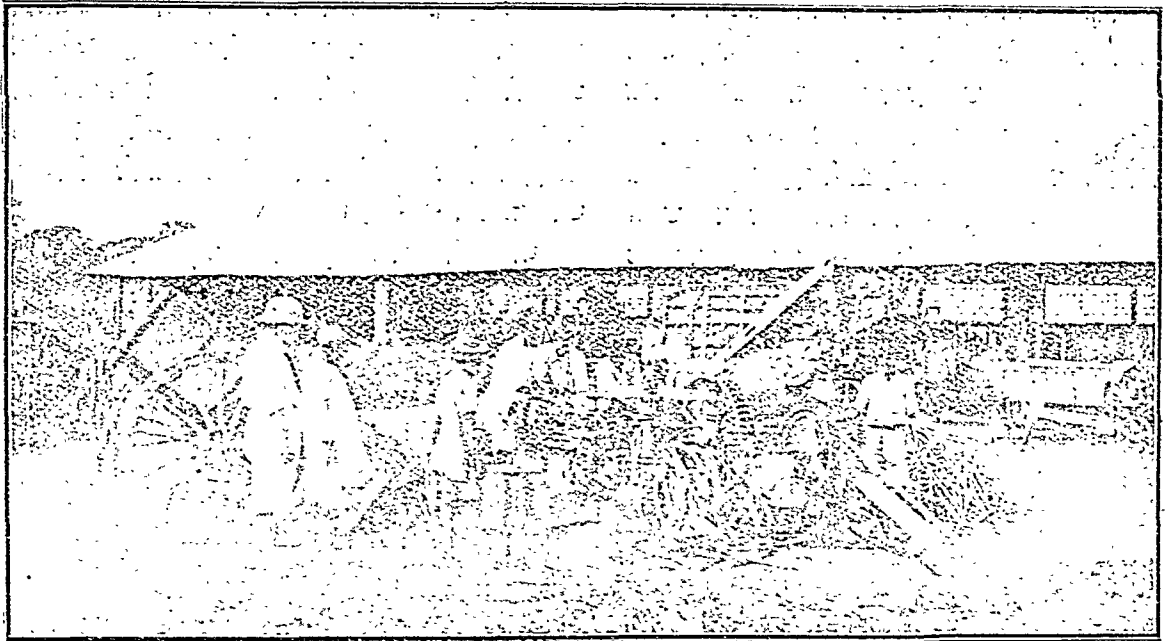
विद्यार्थी मशीन से गन्ना पेर रहे हैं।
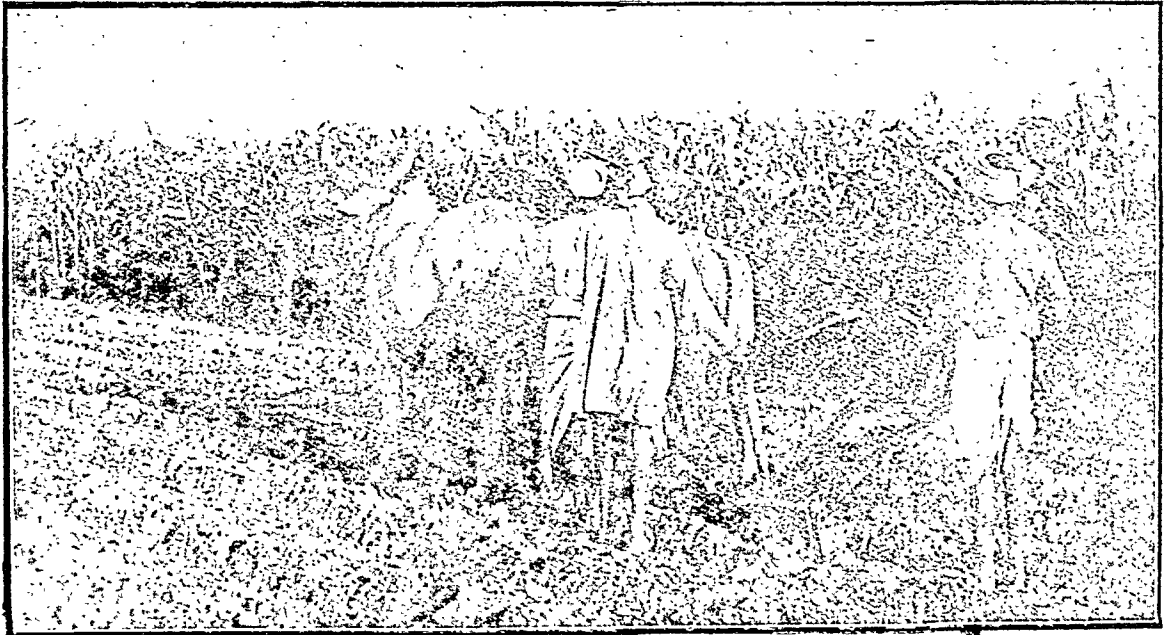
इस ज़मीन में एक साल में चार पैदावारें होती हैं—दो घास की, उसके बाद एक आलू की, फिर एक मकई की। इसी ज़मीन में, जब तक विद्यालय ने इसे समतल करवा कर सिंचाई का प्रबन्ध नहीं किया था, मकई की तो कौन कहे, आलू और घास की भी अच्छी उपज नहीं होती थी।

का मौक़ा मिला। इस विषय में विद्यालय ने पहला काम यह किया कि उसने उन सभी रास्तों को, जिनसे बरसात का पानी उस ज़मीन के ऊपर की उपजाऊ मिट्टी को बहा ले जाता था, रोक कर बाँध बाँध दिए। बरसात में उन बाँधों के पीछे पानी इकट्ठा होकर झील सा बन जाता था और पानी के स्थिर होने पर उसमें घुली हुई उपजाऊ मिट्टी की एक तह ज़मीन पर बैठ जाती थी। इस प्रकार, आजकल वहाँ बारह फ़ीट से भी ज़्यादा गहरी मिट्टी बैठ गई है। बरसात निकल जाने पर पानी बहा दिया जाता और उस ज़मीन में अच्छे क़िस्म के गेहूँ का बीज बोया जाता था। इससे कुछ सालों को छोड़ कर, प्रायः प्रति वर्ष ही अच्छी फ़सल हुई। जो ज़मीन कुछ ही समय पहले बिलकुल निकम्मी और खेती के लिए बेकार थी, इन प्रयोगों से वही ज़मीन सबसे ज़्यादा उपजाऊ हो गई है। चित्र में बाँध के पीछे जो ज़मीन दिखलाई पड़ती है, पहले वह बिलकुल ऊसर थी, लेकिन अब उसी में २२ मन से भी कुछ अधिक प्रति एकड़ के हिसाब से गेहूँ पैदा होता है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि आस-पास के गाँवों में फ़ी एकड़ ८ मन की उपज भी अच्छी उपज समझी जाती है। क्या यह जादू की सी सफलता नहीं है? इन बाँधों के विषय में जो सबसे अच्छी बात है, वह यह है कि किसान भी बिना किसी तरद्दुद या ख़र्च के इन्हें बाँध सकते और अपने खेतों को उपजाऊ बना सकते हैं।

विद्यार्थी नवीन ढङ्ग के हलों से खेत जोतना सीख रहे हैं। देखिए, एक ही चास में यह हल ज़मीन को कितनी गहराई तक खोद देता है।

बीजों की सुधरी हुई, सबसे अच्छी क़िस्म ही शायद कृषि-सम्बन्धी पहली चीज़ है, जिसका उपयोग पुराने ख़्याल के किसान भी करते हैं। प्रति वर्ष अड़ोस-पड़ोस के किसानों में बहुतेरे इस प्रकार के सुधरे हुए बीज बोते हैं। वे लोग अब नवीन ढङ्ग के हलों का भी उपयोग करने लगे हैं। ये हल पुराने हलों की तरह केवल मिट्टी को खुरच कर ही नहीं रह जाते, किन्तु उसे ख़ूब गहराई से उखाड़ कर अच्छी तरह उलट-पलट देते हैं, जिससे खेत की उपज कहीं ज़्यादा बढ़ जाती है।

किसानों के लिए उस प्रकार के गड्ढे तैयार कर लेना भी मुश्किल नहीं है, जैसा कृषि-विद्यालय में बना हुआ है। ये गड्ढे बहुत उपयोगी साबित हुए हैं। इनमें जान-

डेरी क्लास में विद्यार्थी मक्खन बनाना तथा मशीन की सहायता बोतलों में दूध भरना सीख रहे हैं।
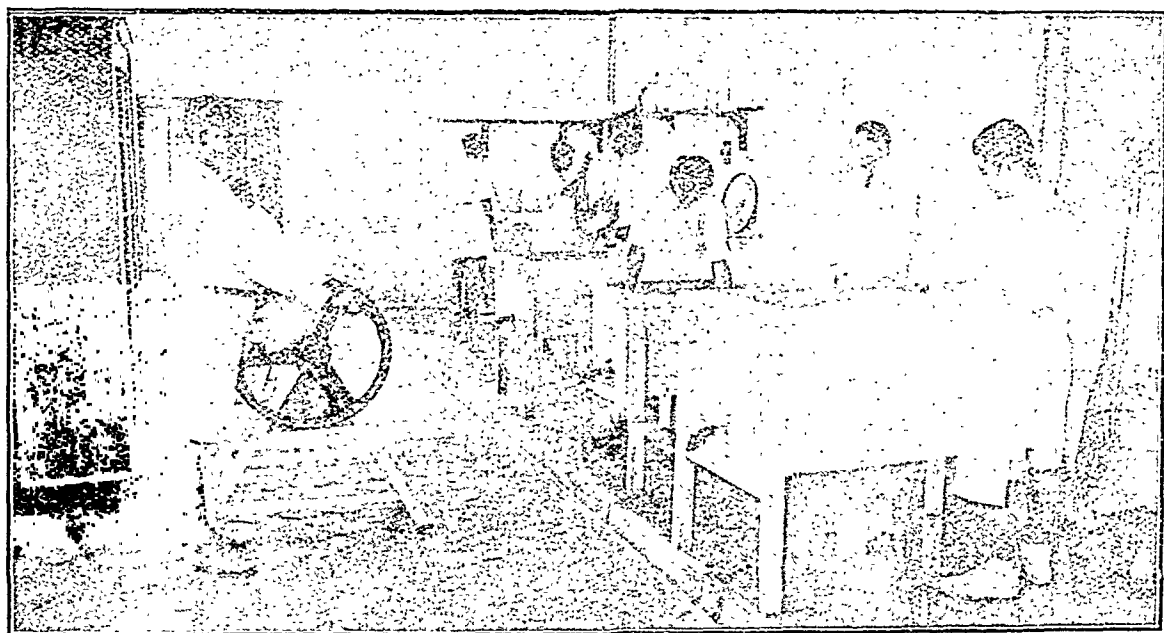
विद्यार्थी पनीर बनाना सीख रहे हैं।

वरों के खाने योग्य घास और चारा तो इकट्ठा किया ही जाता है, इसके अतिरिक्त बरसात में पैदा होने वाली उन निकम्मी घासों को भी इसमें रख छोड़ते हैं, जिन्हें साधारणतः गाय-बैल नहीं खाते। यह घास बरसात से लेकर गर्मी तक बराबर उसी गड्ढे में पड़ी हुई अचार के समान बन जाती है। उस समय इसका स्वाद कहीं ज़्यादा बढ़ जाता है और यह पुष्टिकारक भी हो जाती है। गाय-बैल उस समय इसे बड़े चाव से खाते हैं। इन गड्ढों तथा इनके समान अन्य बहुत सी वस्तुओं को किसान तथा कृषि-सम्बन्धी बातों में दिलचस्पी रखने वाले महानुभाव और विद्यार्थी इस विद्यालय में आकर देख-सुन सकते और उनके सम्बन्ध में जानकारी हासिल कर सकते हैं।

जैसे यह आवश्यक है कि इन प्रयोगों को करके जनता को दिखलाया जाय वैसे ही विद्यालय इस बात की भी आवश्यकता अनुभव करता है कि ऐसे मनुष्य तैयार किए जायँ जो बड़े-बड़े खेतों का प्रबन्ध कर सकें, जो स्वयं अपनी ज़मीन में नए ढङ्ग से खेती कर सकें और दूसरों को भी ऐसा करना सिखा सकें, जो गाय-बैलों का पालन करें और बड़ी-बड़ी गोशालाएँ (Dairy) भी चला सकें; विद्यालय ऐसे आदमियों को तैयार करना भी आवश्यक समझता है जो सरकारी नौकरियों तथा व्यापारिक संस्थाओं में प्रवेश करके उन पदों पर काम कर सकें जिनमें कृषि और पशु-पालन के ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसीसे वद्यालय की शिक्षा के दो विभाग कर दिए गए हैं—एक साधारण कृषि-सम्बन्धी और दूसरा डेरी-फ़ार्मिङ्ग या गोपालन सम्बन्धी। ये दोनों ही पाठक्रम गवर्नमेण्ट से स्वीकृत हैं।

विद्यार्थी खेतों में जाकर स्वयं अपने हाथ से काम करते हैं और उन्हें विद्यालय की कक्षाओं तथा प्रयोगशाला में सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाती है, जिनके अनुसार वे खेती या गोपालन का काम करना सीखते हैं।

अमेरिका से लाए हुए साँड़।

गोपालन का पाठक्रम—जिसे इम्पीरियल डेरी डिप्लोमा कोर्स कहते हैं—दो वर्षों का है। भारतवर्ष के शहरों में बच्चों की बढ़ती हुई मृत्यु-संख्या का एक बड़ा कारण यह भी है कि एक तो इन नगरों में शुद्ध और ताज़ा दूध मिलता ही नहीं, यदि मिलता भी है तो इतने मँहगे दाम पर कि ग़रीब आदमी उसे ख़रीद नहीं

डॉक्टर साम हिगिनबॉटम

[आप प्रयाग कृषि विद्यालय के प्रिन्सिपल हैं। आपका हृदय दीन और दुखियों के प्रति अगाध करुणा से ओत प्रोत है। प्रयाग का कुष्ठ चिकित्सालय भी आप ही की तपस्या का फल है]

नवीन संशोधित संस्करण !

विधवा-विवाह-मीमांसा

[ले० श्री० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए०]

यह महत्वपूर्ण पुस्तक प्रत्येक भारतीय गृह में रहनी चाहिए। इसमें नीचे लिखी सभी बातों पर बहुत ही योग्यतापूर्ण और ज़बरदस्त दलीलों के साथ प्रकाश डाला गया है :—

(१) विवाह का प्रयोजन क्या है ? मुख्य प्रयोजन क्या है और गौण प्रयोजन क्या ? आजकल विवाह में किस-किस प्रयोजन पर दृष्टि रक्खी जाती है ? (२) विवाह के सम्बन्ध में स्त्री और पुरुष के अधिकार और कर्त्तव्य समान हैं या असमान ? यदि समानता है, तो किन-किन बातों में और यदि भेद है, तो किन-किन बातों में ? (३) पुरुषों के पुनर्विवाह और बहुविवाह धर्मानुकूल हैं या धर्म-विरुद्ध ? शास्त्र इस विषय में क्या कहता है ? (४) स्त्री का पुनर्विवाह उपर्युक्त हेतुओं से उचित है या अनुचित ? (५) वेदों से विधवा-विवाह की सिद्धि (६) स्मृतियों की सम्मति (७) पुराणों की साक्षी (८) अङ्गरेज़ी क़ानून (English Law) की आज्ञा (९) अन्य युक्तियाँ (१०) विधवा-विवाह के विरुद्ध आक्षेपों का उत्तर—(अ) क्या स्वामी दयानन्द विधवा-विवाह के विरुद्ध हैं ? (आ) विधवाएँ और उनके कर्म तथा ईश्वर-इच्छा (इ) पुरुषों के दोष स्त्रियों को अनुकरणीय नहीं (ई) कलियुग और विधवा-विवाह (उ) कन्यादान-विषयक आक्षेप (ऊ) गोत्र-विषयक प्रश्न (ऋ) कन्यादान होने पर विवाह वर्जित है ? (ॠ) बाल-विवाह रोकना चाहिए, न कि विधवा-विवाह की प्रथा चलाना (लृ) क्या विधवा-विवाह लोक-व्यवहार के विरुद्ध है ? (ॡ) क्या हम आर्यसमाजी हैं, जो विधवा-विवाह में योग दें ? (११) विधवा-विवाह के न होने से हानियाँ— (क) व्यभिचार का आधिक्य (ख) वेश्याओं की वृद्धि (ग) भ्रूण-हत्या तथा बाल-हत्या (घ) अन्य क्रूरताएँ (ङ) जाति का ह्रास (१२) विधवाओं का कच्चा चिट्ठा।

इस पुस्तक में १२ अध्याय हैं, जिनमें क्रमशः उपर्युक्त विषयों की आलोचना की गई है। कई सादे और तिरङ्गे चित्र भी हैं। इस मोटी-ताज़ी सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रु० है, पर स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य अर्थात् २।) रु० में दी जाती है, पुस्तक में दो तिरङ्गे, एक दुरङ्गा और चार रङ्गीन चित्र हैं !

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय चन्द्रलोक, इलाहाबाद

सकते और देश में ग़रीबों की ही सबसे बड़ी संख्या है। अतः यह विद्यालय इस बात का प्रयत्न कर रहा है कि गायों की ऐसी नस्लें पैदा की जायँ, जिनसे थोड़े ही ख़र्च से शुद्ध और पुष्टिकारक दूध काफ़ी परिमाण में मिल सके। इस व्यवसाय को सिखाने वाली भारतवर्ष में केवल दो ही संस्थाएँ हैं, जिनमें यह विद्यालय एक है।

अमेरिका के मित्रों ने विद्यालय को अच्छे वंश वाले कई सुन्दर साँड़ दिए हैं। ऐसी आशा की जाती है कि इन साँड़ों के द्वारा, भारतीय गौओं से उत्पन्न होने वाली बछियाँ, इस देश की गायों के मुक़ाबले दुगुने से पाँच-गुना तक दूध दे सकेंगी। अभी इस प्रयोग का आरम्भ ही हुआ है। इसलिए अभी तक इसमें अधिक सफलता नहीं मिली है। परन्तु जितनी सफलता मिली है, वह निराशाजनक नहीं है। हमारी नई नस्ल की सबसे अच्छी गाय ने प्रथम दुहान में अर्थात् बछड़ा पैदा होने के समय से दूध बन्द हो जाने के समय तक ८,००० पाउण्ड दूध दिया है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि पहले दुहान का समय पिछले दुहानों के समय से बराबर छोटा हुआ करता है। गवर्नमेण्ट की फ़ौजी डेरियों में नई नस्ल की कई गायों ने एक दुहान में १९,००० से लेकर २०,००० पाउण्ड तक दूध दिया है। इस प्रकार की गायों की एक अच्छी नस्ल पैदा कर लेना कोई आसान या जल्दी हो जाने वाला काम नहीं है, परन्तु इस प्रयोग को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने से निस्सन्देह मनुष्य जाति का बहुत कल्याण हो सकता है।

इन दो पाठ-क्रमों के अतिरिक्त—जो कॉलेज में प्रवेश करने की योग्यता रखने वाले विद्यार्थियों के लिए है—एक तीसरा पाठ-क्रम भी है, जिसे फ़ार्म मैकेनिक्स ऐपरेण्टिस कहते हैं। इसमें ऐसी कारीगरी के काम सिखाए जाते हैं, जिनका सम्बन्ध खेती से होता है, जैसे बढ़ई, लोहार, फ़िटर (जो मशीनों की मरम्मत करता है) इत्यादि का काम। यह कोर्स तीन वर्ष का है। इतने दिनों में खेती के काम में आने वाले मशीनों को बनाने, उनकी मरम्मत करने तथा उन्हें चलाने का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद ये बालक खाने-पहनने लायक़ अच्छी आमदनी करने की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार की शिक्षा पाए हुए बच्चे देहातों में बड़ा काम कर सकते हैं। विद्यालय में इन बच्चों को बढ़ईगिरी, लोहारी और साधारण

अमेरिकन साँड़ों द्वारा भारतीय गौओं से उत्पन्न हुई बछियाँ।

बिजली के कामों के अतिरिक्त, सन्ध्या को होने वाले क्लासों में भी, इस सम्बन्ध की ज़रूरी बातें बतलाई जाती हैं। इस पढ़ाई को समाप्त करके दो-तीन साल के भीतर ही अनेक लड़के २०-४० और इससे भी अधिक रुपए प्रति मास की आमदनी कर चुके हैं। यहाँ शिक्षा प्राप्त करने वाले आत्मनिर्भर और योग्य लड़कों के लिए अपने जीवन को उन्नत बनाने की अनेक सुविधाएँ तथा सुनहले मौक़े हैं।

विज्ञानशाला और छात्रावास के अतिरिक्त विद्यालय में कृषि-सम्बन्धी मशीनें, प्रयोगशाला, गोशाला, खलियान और कार्यकर्ताओं के रहने के मकानात भी हैं। इन मकानों में से प्रायः सभी अमेरिका के उन प्रेमी और उदार मित्रों के द्वारा दी गई रक़म से बनाए गए हैं, जो भारत की दारिद्र्य-समस्या के विरुद्ध युद्ध करने में सहायता देने के लिए सदा ही उत्सुक रहते हैं।

विज्ञानशाला का एक भाग।

विद्यालय का मासिक खर्च जितना है, विद्यार्थियों की फ़ीस से उसका एक बहुत ही मामूली हिस्सा उसे मिलता है। किन्तु आशा की जाती है कि इस देश में ज्यों-ज्यों कृषि-विज्ञान की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होता जायगा, त्यों ही त्यों वे अधिक से अधिक संख्या में आर्थिक सहायता के द्वारा विद्यालय को आश्रय देने के लिए अग्रसर होंगे और साथ ही वे इस संस्था के कामों में भी दिलचस्पी दिखाएँगे तथा ईश्वर से इस बात की प्रार्थना करेंगे कि वह इस संस्था को भारतवर्ष की सेवा करने के लिए दिनोंदिन अधिकाधिक उपयोगी बनावे। कुछ ही समय पहले महात्मा गांधी यहाँ आए थे और यहाँ की मुख्य-मुख्य चीज़ों का उन्होंने निरीक्षण किया था। खेती करने की नवीन पद्धति और उन्नत साधनों को देख कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

यह विद्यालय जहाँ कृषि-विज्ञान की उन्नति के लिए उत्सुक है, जहाँ यह इस बात का प्रयत्न कर रहा है कि पहले जिस खेत में एक मन अन्न उपजता था, उसी में अब दो मन उपजाया जा सके, वहाँ इसे इस बात का भी गर्व है कि इसका ध्यान अपने छात्रों के चारित्रिक विकास की ओर भी कम नहीं है। यहाँ व्याख्यानों और कक्षाओं में नैतिक और आध्यात्मिक विषयों पर भी वादविवाद हुआ करता है। अनेक छात्र—पहले जिनके विचार अत्यन्त सङ्कुचित और स्वार्थपूर्ण थे—यहाँ आकर उदार और

परोपकारी बन गए हैं। इस प्रकार खेती से सम्बन्ध रखने वाले आश्चर्य-जनक उन्नतियों के साथ ही साथ मानव-स्वभाव को भी उन्नत करने की चेष्टा यहाँ की जा रही है। यहाँ के विद्यार्थियों ने 'समाज-सेवा-सङ्घ' (Social Service League) नामक एक संस्था क़ायम की है। इसके सदस्य मज़दूरी करके पैसे इकट्ठा करते हैं और उससे ग़रीब बालकों की बीमारी में उन्हें दूध ख़रीद कर देते हैं। वे आसपास के गाँवों में भी जाते हैं और ग्रामीण लोगों की शिक्षा के विकास, स्वास्थ्य की उन्नति और मनोरञ्जन का प्रबन्ध करने में उनकी सहायता करते हैं। वे प्रति रविवार को अपनी समिति का एक अधिवेशन करते हैं, जिसमें ईश्वर, बन्धुत्व, प्रेम, त्याग, उदारता तथा इसी प्रकार के अन्यान्य विषयों पर विवाद हुआ करता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि डॉ० साम हिगिन-बॉटम और उनके भारतीय तथा अमेरिकन सहयोगियों के त्याग और सेवा का भाव विद्यार्थियों के हृदय में प्रवेश कर जाता है और वे भी ईश्वर तथा मानव-जाति की सेवा करने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं।
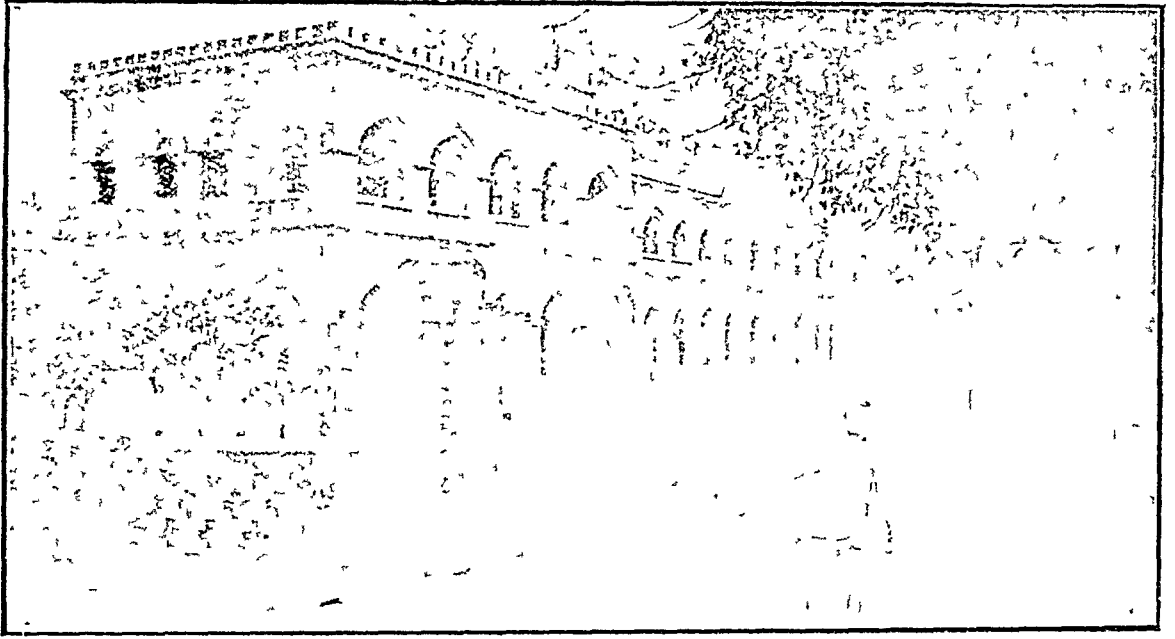
विद्यालय का छात्रावास, जिसमें १२४ विद्यार्थियों के रहने की जगह है।

आदेश

[श्री० गङ्गाशरणसिंह]

बनो, बनो, पागल बन जाओ, एक ध्येय का ध्यान धरो।
हृदयहीन जग के बन्धन की कुछ भी मत परवाह करो॥
मिले यन्त्रणा, हो निन्दा, हँस दो तुम सिर्फ़ उपेक्षा से।
हों जितने दारुण आघात सभी सह लो तुम स्वेच्छा से॥
समय आएगा पथ का भीषण अन्तराल मिट जावेगा।
निश्चय ही तेरे चरणों पर यह जग शीश झुकावेगा॥

राजू की बिटिया

[श्री० गोपालचन्द्र जी पाण्डेय]

दिन भर की करारी मिहनत के बाद राजू घर आकर अभी खाट पर बैठा ही था कि उसकी लड़की द्रौपदी रोती हुई उसके निकट आ खड़ी हुई। राजू ने उसे रोते देख पूछा—क्यों बेटी, रोती क्यों है?

"छोटी माँ ने मुझे मारा है।"—लड़की ने कहा।

"क्यों? मारा क्यों?"

द्रौपदी की छोटी माँ, राजू की स्त्री, पास ही रसोई-घर में थी। लड़की की रोनी आवाज़ सुन कर वह झपट कर बाहर आ खड़ी हुई। बोली—"उनसे क्या कहने गई है? वह क्या मेरा सिर काट लेंगे? ले, उनके सामने ही मारती हूँ, देखूँ वह मेरा क्या कर लेते हैं?" राजू की स्त्री ने तड़ातड़ दो-तीन चपतें लड़की के गाल पर जड़ दीं। राजू हाँ-हाँ करता ही रह गया।

लड़की चिल्ला कर रोने लगी। वह भागती हुई राजू की गोद में जा छिपी।

राजू ने कहा—तुम इसे बचने दोगी या नहीं? कहो तो मैं घर छोड़ कर कहीं चला जाऊँ? जब से आई हो, कभी लड़की को ज़रा भी दुलारते नहीं देखा। क्या इसे मार कर ही दम लोगी?

"तुम क्यों जाने लगे, जाती मैं हूँ, जो इस घर की कोई नहीं हूँ। बाप रे बाप, ऐसा सीलफेरन भी कहीं किसी ने देखा है। सुनो तो, मैंने कभी भी इनकी बेटी को प्यार नहीं किया।"

"तो आज किसलिए इसे मार डालने पर उतारू हुई हो?"

"बड़ी भूल हुई जो मारा, तनिक अपनी कुल-लच्छमी से ही क्यों नहीं पूछते?"

"क्यों बेटी, क्या हुआ था?"—राजू ने द्रौपदी से पूछा।

"कहती क्यों नहीं? क्या मुँह में गोबर भरा है? इतनी बड़ी हो गई, किन्तु आज तक किसी से बोलने का सहूर न हुआ। आज मन्नू की बहिन को, उसके मुँह पर ही, न जाने क्या-क्या कह बैठी। उसी पर मैंने ज़रा डाँटा कि बस शास्तर ही अशुद्ध हो गया। अब सुना?"

जब राजू की बड़ी स्त्री सावित्री मृत्यु-शय्या पर पड़ी थी, उस समय एक दिन उसने अपने पति को अपने निकट बुला कर कहा—"देखो, मैं तो अब केवल घड़ी दो घड़ी की मेहमान हूँ, लेकिन मैं अपनी बच्ची को तुम्हारे ही भरोसे छोड़े जाती हूँ। देखना, उसे अच्छी तरह रखना। मैं अपनी बेटी को जितना प्यार करती थी, तुम भी उसे उतना ही प्यार करना, जिसमें उसे माँ का अभाव मालूम न पड़े। एक बात और—मैं इस जीवन में तो तुम्हारी सेवा अधिक न कर सकी। आशीर्वाद दो, जिससे अगले जन्म में तुम्हारा ऋण चुका सकूँ।" वह बहुत दुर्बल हो गई थी, अधिक न बोल सकी। हाँफने लगी।

राजू उसकी बातें सुन कर रोने लगा। आज ६ वर्ष हुए, वह सावित्री को अपने घर लाया था, किन्तु एक दिन भी किसी प्रकार का रञ्ज उसके मन में पैदा नहीं हुआ था। सावित्री सचमुच सावित्री ही थी। स्वामी के सुख की ओर सदैव उसकी सचिन्त दृष्टि रहती थी। राजू को रोते देख उसने कहा—छिः! तुम रोते हो! देखो, तुम्हें रोते देख कर द्रौपदी भी रोने लगेगी। तुम मर्द होकर भी यदि धैर्य धारण न कर सकोगे तो भला हमारी क्या दशा होगी?

उसी दिन शाम को दिनमणि के साथ ही साथ सावित्री भी इस संसार से विदा हो गई। वह द्रौपदी को पति के हाथ सौंप कर निश्चिन्त हो चुकी थी।

राजू की छोटी स्त्री चम्पा का स्वभाव बहुत रूखा था। गाँव की दो-एक स्त्रियों के अतिरिक्त किसी से उसकी पटती न थी। सावित्री की मृत्यु के बाद जब चम्पा का मामा अपनी इज़्ज़त रख लेने के लिए राजू के

सामने गिड़गिड़ाने लगा तो राजू उसे टाल न सका। एक तो लड़की छोटी थी—उसकी देख-रेख के लिए घर में एक स्त्री की आवश्यकता थी दूसरे एक कुटुम्ब को लौटा देना भी उसने उचित न समझा।

चम्पा जब ससुराल आई तो राजू ने जो कुछ सोचा था, ठीक उसके विपरीत हुआ। नई दुलहिन ने द्रौपदी को एक बार भी प्यार-भरी आँखों से न देखा। शायद उसने सोचा कि लड़कियों को प्यार करने के बदले पीटना ही अधिक चाहिए, क्योंकि प्यार से लड़कियाँ बिगड़ जाती हैं। इस घटना को लेकर स्वामी-स्त्री में बराबर कलह हुआ करता था।

२

"क्या हुआ, कुछ ठीक कर आए कि नहीं?"—राजू की स्त्री ने पूछा।

"कोई अच्छी ख़बर नहीं है"—कुर्त्ता उतारते हुए राजू ने कहा—"दो जगह तो गया था, किन्तु कहीं भी मेरे पसन्द का लड़का नहीं मिला। जिसके विषय में महराज जी से बात हुई थी, वह तो लड़का नहीं है, लड़के का दादा है। उम्र कोई पचास की होगी। तीन शादी हो चुकी हैं, अब चौथे पर तुला हुआ है। तीनों में एक को भी सन्तान नहीं है। धन-सम्पत्ति है, बूढ़ा सन्तान का भूखा है, भोगने वाला तो चाहिए!" अन्यमनस्क होकर राजू ने कहा।

"तो ब्याह दो न, मज़े में रहेगी।"

"तुम्हें क्या विचार छू तक नहीं गया है? मैं उस बूढ़े से अपनी बेटी ब्याह दूँ? लड़की क्वाँरी रह जाय सही...।"

"अजी ठहरो भी। तुम्हारी लड़की भी कोई इन्दरासन की परी है, जो इतना उछल रहे हो! फिर उम्र भी तो हुई—कितनी है? इस साल कातिक में दसवाँ चढ़ेगा।"

"कुछ भी हो, मैं तो भरसक चेष्टा करूँगा अपने दिल की करने की—आगे ईश्वर जानें।"—कहते हुए राजू चारपाई पर लेट गया।

दूसरे दिन सवेरे फिर वह वर की खोज में निकल गया। शाम को लौटा तो उसके चेहरे पर कुछ शान्ति की झलक थी। चम्पा ने कहा—आज जान पड़ता है, काम बना आए।

"हाँ, एक प्रकार बना ही आया। वह कोई अट्ठारह का होगा, लेकिन माँगता बहुत है—पूरे ढाई सौ।"

"ढाई सौ!"—आँखें तरेरती हुई चम्पा बोली—"तो बात पक्की कर आए क्या?"

"हाँ, बात तय ही है।"

"तो रुपए कहाँ से लाओगे?"

"ज़मीन पर रुपए लेने पड़ेंगे और लाऊँगा कहाँ से?"

"और दोनों जून कैसे चलेंगे?"—भोजन करने का अभिनय करती हुई चम्पा बोली।

"जैसे मालिक चलावें!"

"रुपए पर गहने भी देने पड़ेंगे या सिर्फ़ रुपए ही?"—चम्पा ने फिर पूछा।

"अच्छी रही! लड़की की शादी और बिना गहने के? तुम भी क्या बात करती हो? वह न भी माँगें, लेकिन हमें तो देना उचित है।"—स्त्री की ओर देखते हुए राजू ने कहा।

"उचित तो बहुत-कुछ है, एक ज़मीन्दारी दे दो न, लेकिन हो भी तो! ज़मीन पर ही तुम्हें कौन लाख दो लाख मिल जायँगे? ख़र्च भी तो कुछ कम नहीं बताते।"

"सब हो जायगा। गहने तुम्हारे हैं ही। बाक़ी ख़र्च के लिए भी रुपए कहीं से जुटा लेंगे।"

"क्या कहा? मेरे गहने? चाहे शादी हो या न हो, मेरी बला से; मैं अपने गहने क्यों देने लगी?"—जलती हुई वाणी में चम्पा ने कहा।

"तो क्या घर भी जल गया? इसे ही बेच लूँगा।"

"इसके पहले मुझे मैके रख आओ। जब इतना देने-लेने की ताक़त ही न थी तो सम्बन्ध पक्का क्यों कर आए? मुझे जलाने के लिए?"—रोषभरी आवाज़ में चम्पा बोली।

राजू ने कुछ उत्तर न दिया। मन ही मन सोचा—ब्याह तो इस साल करना ही पड़ेगा, फिर चाहे जैसे भी हो।

३

नियत समय पर द्रौपदी का विवाह हो गया, किन्तु शान्तिपूर्वक न हो सका। शायद अपने समाज की

वैवाहिक रीति ही ऐसी हो। बात यह हुई कि अनेक चेष्टा करने पर भी राजू काफ़ी रुपए जुटा न सका। बारात वालों का सत्कार, लड़की के आभूषण तथा अन्यान्य ख़र्च तो थे ही, दहेज के ढाई सौ नगद रुपए अलग थे। इतना राजू से हो न सका। बस फिर क्या, सब के सब बिगड़ गए। वर को लेकर लौट जाने की तैयारी करने लगे। गाँव वालों ने बहुत आरज़ू-मिन्नत की—राजू ने गले में अँगौछा डाल कर समधी से प्रतिज्ञा की कि जैसे भी हो, पन्द्रह दिन के अन्दर आपके रुपए चुका दूँगा। तब कहीं जाकर शान्ति हुई।

वर के पिता ने कहा—ख़ैर, मैं लड़के का विवाह तो किए लेता हूँ—लड़की तो अब हमारी हुई—लेकिन मैं भी अच्छी सीख दूँगा।

* * *

दो वर्ष बाद।

सन्ध्या हो चुकी थी। राजू एक चारपाई पर चुपचाप बैठा था। रसोईघर की क्षीण आलोक-रश्मि उसके करुण मुखमण्डल पर पड़ कर उसे और भी करुण बना रही थी। हठात् किसी ने पुकारा—भैया घर पर हैं?

किन्तु उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना दूसरे ही क्षण आगन्तुक आँगन में आ खड़ा हुआ। राजू ने कहा—कौन, लखन? आओ भैया, क्या समाचार है?

लखन ने कहा—समाचार तो कोई वैसा नहीं। हाँ, उधर वीरपुर गया था तो सोचा द्रौपदी से ज़रा भेंट कर लूँ, सो भाई क्या कहूँ? ऐसे भी आदमी होते हैं! ज़रा भेंट तक न करने दिया, ऊपर से उलटी-सीधी बहुतेरी सुनाईं। मैं चुपचाप सिर झुकाए खड़ा था। आख़िर सहने की भी सीमा होती है, मैंने भी कह दिया—समधी जी, आपही ने कौन इन्सानियत का बर्ताव उनके साथ किया है? बाप-माँ का अरमान भी कभी नहीं पूरा करने दिया। कितनी बार वे बेटी को विदा कराने आए, लेकिन आप रुपए को ही पहचानते हैं, आदमी को नहीं। हाँ, ख़ूब सुना दिया।

कुछ देर के पश्चात् आगन्तुक फिर कहने लगा—आने के समय पीछे से किसी ने धीरे से आवाज़ दी—लखन चाचा! फिर कर देखा, द्रौपदी थी। उफ़्! उसकी कैसी दशा हो गई है, शरीर सूख कर कङ्काल रह गया है। मुझे देख कर रोने लगी। मैंने बहुत समझाया, कहा अबकी होली में तुम्हें ज़रूर लिवा जाऊँगा। द्रौपदी, रोओ मत बिटिया।

द्रौपदी ने कहा—चाचा यह मुझे मार डालेंगे; बाबू जी से कहना वे मुझे विदा करवा ले जायँ। घर के सभी मुझसे न जानें क्यों जलते रहते हैं। बात-बात पर उलहने सुनना पड़ता है। क्या करूँ चाचा, लोहू का घूँट पीकर सब कुछ सह लेती हूँ।

इसी तरह की दो-एक बातें और हुईं। अन्त में मैंने कहा—तो अब जाता हूँ बेटी!

"हाँ चाचा, मुझे भी वे खोजते होंगे। मालूम है न तुम आए हो। किसी से मिलने तक की मनाही है।"—कह कर आँखों के आँसू पोंछती हुई द्रौपदी चली गई। मैंने भी घर का रास्ता पकड़ा।

लखन चला गया। राजू ज्यों का त्यों बैठा-बैठा चिन्ता-सागर में डुबकियाँ ले रहा था।

४

राजू की स्त्री चम्पा बैठी बाल सँवार रही थी। पीछे से राजू ने पुकारा—"चम्पा!" स्वर में गहरी वेदना भरी हुई थी—"चम्पा, ओ चम्पा!"

"क्यों माथा खाए जाते हो?"—चम्पा ने झुँझला कर कहा।

"अपने गहनों में से दो-एक उधार दोगी चम्पा? तुम्हें फिर गढ़वा दूँगा।"

"एक ही बात बार-बार दुहराते तुम्हें शर्म नहीं आती? सब खो चुके तो अब मेरे गहनों पर नज़र लगाया है। एक दिन तो कह चुकी—ज़ेवर मैं हरगिज़ न दूँगी, हरगिज़ न दूँगी, चाहे......"

"मुझसे शपथ करवा लो .... तुम उसे पहनती भी तो नहीं चम्पा!"

"पहनती नहीं तो क्या हुआ? चीज़ मेरी है। मैं कहती हूँ, न दूँगी, न दूँगी।"

रह-रह कर एक पितृहृदय रो उठता था। हाय! उसकी प्रतिज्ञा! सावित्री को वह क्या उत्तर देगा? नहीं, सावित्री तो मर गई है! किन्तु वह प्रतिज्ञा, वह शपथ, जो उसके सामने की थी! उसकी आत्मा शायद उसे कोसती होगी—"हाँ, हमने थाती की तो ख़ूब रक्षा की!" आज यदि वह होती......!

राजू आजकल कुछ पागल सा हो गया है, जिसे देखता है उसीके सामने हाथ पसार देता है—"कुछ रुपए दो भाई। बिटिया को ले आऊँ।" लोग उसे देखते ही रास्ता काट कर चले जाते हैं।

कुछ देर के पश्चात् वह उठ खड़ा हुआ और बाहर चला गया। चम्पा चिल्लाती रह गई—खा लो न, जा कहाँ रहे हो? परसों से उपवास कर रहे हो—कुछ खा लो तो जाना......।

५

"मुझे विदा कर दीजिए, बाबू जी आपके रुपए ज़रूर चुका देंगे, मैं उनसे जाकर कह दूँगी......ज़रूर कहूँगी ...लखन चाचा, ज़रा ठहरना......आती हूँ...अभी आती हूँ...कहूँगी......" रोग-शय्या पर पड़ी-पड़ी द्रौपदी प्रलाप कर रही थी। उस दिन लखन के चले जाने के बाद, बिना कुछ खाए-पिए ही, अपनी अँधेरी कोठरी में बैठ कर रात भर द्रौपदी रोती रही। सवेरा होने के पहले उसे बड़े ज़ोर का ज्वर चढ़ आया। तब से वह उसी ज्वर की बेहोशी में पड़ी प्रलाप कर रही है। उसके पति नन्दलाल के सिवा उसकी ओर ध्यान देने का किसी को अवकाश नहीं है।

सन्ध्या हो चली थी। सूर्य की क्षीण-किरण-माला दूर के तरु-शिखरों पर चमक उठी थी। सहसा दरवाज़े पर किसी ने धमकी दी। पुकारा—"समधी जी! नन्दू बाबू, ओ नन्दू बाबू!"

नन्दलाल अपनी पत्नी के निकट बैठा था। आवाज़ सुन कर बाहर निकला। बाहर एक कङ्काल-मूर्त्ति खड़ी थी। "आप कौन हैं?" सहसा नन्दलाल उसे पहचान न सका। कुछ रुक कर बोला—"ओ आप......" झुक कर उसने प्रणाम किया। आगन्तुक राजू था।

* * *

रात के बारह बज रहे थे।

"चम्पा, किवाड़ खोलो"—रुँधे हुए स्वर में राजू ने पुकारा—"चम्पा, देखो कौन आया है।"

"क्यों मुझे जलाते हो?......"—चम्पा ने आलस्य भरे स्वर में उत्तर दिया।

"बिटिया......"—एक क्षीण स्वर सुन पड़ा।

"क्या बिटिया आई है?"—चौंक कर चम्पा ने कहा। टिमटिमाती हुई रोशनी में उसे राजू का कङ्कालसार मुँह बड़ा भयानक मालूम पड़ा। उसकी आँखें धँस गई थीं, मुँह काला पड़ गया था, दृष्टि में भयानक उन्माद के चिन्ह लक्षित हो रहे थे।

निकट ही एक बैलगाड़ी खड़ी थी। गाड़ीवान एक ओर सिर झुकाए बैठा था।

चम्पा घूँघट निकालती हुई गाड़ी की ओर बढ़ी। धीरे से पुकारा—द्रौपदी!

"उसे सोने दो..."—राजू ने बाधा देते हुए कहा—"वह अब न जागेगी। उसे चुपचाप सोने दो।"

चम्पा ने देखा, कोई लम्बा-लम्बा आदमी गाड़ी में सो रहा है। पैर पकड़ कर उसने हिलाया—यह क्या! इतना ठण्ढा! इतना कठिन!! जैसे बर्फ़!!!

चम्पा ने पुकारा—द्रौपदी!

"वह सो गई है, उसे छेड़ो मत। मैं आखिर उसे लेकर ही आया हूँ।"—राजू पागल की तरह अट्टहास कर उठा।

इसी समय कर्कश स्वर में टर्राता हुआ एक निशिचर पक्षी राजू के सिर पर से होकर निकल गया।

☾ ☾ ☾

दाह

[श्री० सत्यव्रत शर्मा 'सुजन']

कभी देखता हूँ, निशीथ के नीरव अञ्चल में छिप कर।
चुपके से चित चुरा भाग जाते हो तुम शशि के रथ पर॥
सिहर जाग उठता हूँ, नभ से झाँक चिढ़ाते हैं तारे।
हँस-हँस कर इस लुटे हृदय पर हाय! चलाते हैं आरे॥
आहों के जलते अङ्गारे तप्त उसासों में मिल कर।
हिमकर को भी जला बना देते हैं रवि उत्तप्त प्रखर॥

स्वाभिमानी वीर बल्लू जी चाँपावत

[श्री० विश्वेश्वरनाथ जी रेऊ]

ये रणसी गाँव (मारवाड़ में) के ठाकुर गोपालदास जी के पुत्र बड़े ही स्वतन्त्र प्रकृति के पुरुष थे। एक दिन मारवाड़-नरेश महाराजा गजसिंह जी सभा में बैठे हुए इधर-उधर की बातचीत कर रहे थे। युवक बल्लू जी भी वहीं पर उपस्थित थे। ऐसे समय किसी पण्डित ने प्रसङ्गवश एक श्लोक पढ़ा, जिसका उत्तरार्ध यह था :—

स्थान भ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशाः नखाः नराः।

अर्थात्—अपने स्थान से दूर हो जाने पर दाँतों, केशों, नखों और पुरुषों की शोभा बिगड़ जाती है।

यह बात बल्लू जी को अच्छी न लगी। इसलिए इन्होंने इसका प्रतिवाद कर कहा कि यह बात अधिकांश में ठीक होने पर भी सर्वांश में मान्य नहीं कही जा सकती। वास्तव में यह प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति की योग्यता पर ही निर्भर है। देखिए, हाथी के दाँत जब तक अपने स्थान पर रहते हैं तब तक मिट्टी और पत्थरों से टकराते हैं, परन्तु वहाँ से अलग होते ही सुहाग की चूड़ियों का रूप धारण कर, रानियों तक के हाथों की शोभा को बढ़ाते हुए अपनी भी श्रीवृद्धि करते हैं। सुरगाय की पूँछ के बाल जब तक अपने स्थान पर रहते हैं, तब तक मिट्टी में सने रह कर सिवाय मक्खियों और मच्छरों के उड़ाने के किसी काम नहीं आते, परन्तु वहाँ से दूर होते ही सुवर्ण के डण्डों से भूषित होकर देवताओं और सम्राटों के मस्तकों तक पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार सिंह के नख भी अपने स्थान पर तो नित्य ही मांस और रुधिर से सने रहते हैं, परन्तु वहाँ से हटते ही सुवर्ण में मँढ़े जाकर श्रीमानों के बालकों के कण्ठाभरण का रूप धारण कर लेते हैं।

बल्लू जी अभी इतना ही कह पाए थे कि पण्डित झल्ला कर बोल उठे—"ख़ैर, ये बातें तो आपने कहीं सो ठीक हैं, परन्तु क्या पुरुष भी अपने स्थान से गिर कर शोभा पा सकता है?" यह सुन बल्लू जी की स्वतन्त्र प्रकृति जग उठी। इसलिए इन्होंने उत्तर दिया कि औरों के विषय में तो मैं कुछ भी कहना नहीं चाहता, परन्तु मैं स्वयं इसी समय मारवाड़ की जागीर छोड़ कर आपकी इस शङ्का के निवारण का प्रयत्न करूँगा। इतना कह कर यह सभा से उठ गए और अपने कुछ विश्वस्त साथियों के साथ बीकानेर की तरफ़ चल दिए।

उस समय हिन्दुस्तान पर मुग़लों का शासन था। वीर योद्धा, तेज़ घोड़े और बढ़िया शस्त्र की सब जगह क़दर थी। इससे जब यह बीकानेर पहुँचे तब इनकी वीरता से परिचित होने के कारण वहाँ के महाराज ने इनका बड़ा आदर-सत्कार किया। उनका इरादा इनको जागीर देकर अपने यहाँ रखने का था। परन्तु इसी बीच एक रोज़ महाराज ने एक उम्दा तरबूज़ इनके लिए भेज दिया। मारवाड़ी भाषा में तरबूज़ को 'मतीरो' कहते हैं; जिसका उसी भाषा में दूसरा अर्थ 'मत रहो' भी होता है। इस सौगात को देख बल्लू जी वहाँ से तत्काल रवाना हो गए। इसकी सूचना मिलने पर महाराज ने आदमी भेज कर इन्हें बहुत-कुछ समझाया और हर तरह से इनकी तसल्ली करने की कोशिश की। परन्तु यह किसी भी प्रकार अपना विचार त्यागने को तैयार न हुए।

यहाँ से इन्होंने आँबेर की तरफ़ प्रस्थान किया। यह अपनी मनस्विता के लिए तो प्रसिद्ध हो ही चुके थे। इससे जैसे ही ये वहाँ पहुँचे वैसे ही वहाँ के नरेश ने भी इनकी बड़ी आवभगत की और एक अच्छी जागीर देकर इन्हें अपने पास रख लिया। कुछ दिन बाद एक रोज़ आँबेर-नरेश शिकार को निकले। उस समय बल्लू जी भी उनके साथ थे। जब ये लोग नदी किनारे के एक गाँव में पहुँचे तब वहाँ की फ़सल को देख कर महाराज ने उस गाँव के स्वामी का नाम जानना चाहा। इस पर साथ के सरदारों ने बल्लू जी की तरफ़ इशारा कर दिया। यह देख महाराज ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए वहाँ की फ़सल की बड़ी

तारीफ़ की। अगले गाँव में पहुँचने पर भी यही क़िस्सा हुआ। परन्तु बल्लू जी कुछ न बोले। वहाँ से आगे बढ़ने पर ये सब एक तीसरे गाँव में पहुँचे। यह गाँव भी बल्लू जी की ही जागीर का था और नदी के किनारे होने के कारण यहाँ की खेती भी ख़ूब लहलहा रही थी। यह देख महाराज ने अपनी उदारता जताने के लिए फिर बल्लू जी से वहाँ की फ़सल की तारीफ़ की। परन्तु इस बार इनकी स्वतन्त्र प्रकृति भड़क उठी। इसलिए इन्होंने तत्काल उक्त जागीर का पट्टा (दस्तावेज़), जो इनके परतले (तलवार के पट्टे) में था, निकाल कर आँबेर-नरेश के सामने रख दिया और वहाँ से उठ कर रवाना हो गए। यह देख जब महाराज ने इसका कारण पूछा, तब इन्होंने निवेदन किया कि मैं तो स्वयं ही आपकी उदारता और गुणग्राहकता का आभारी था। परन्तु आपने अपने ही मुख से एहसान जता कर उस पर पानी फेर दिया। ऐसी हालत में अब मेरा यहाँ रहना निरर्थक है। यह सुन यद्यपि महाराज ने इनके रोकने के अनेक उपाय किए, तथापि ये वहाँ से मेवाड़ की तरफ़ चल दिए।

इन्हें आया देख वीर-शिरोमणि महाराना ने इनका और भी अधिक आदर-सत्कार किया। कुछ दिन बाद बल्लू जी बीमार हो गए। जब इसकी सूचना महाराना को मिली तब एक दिन वह शिकार से लौटते हुए इनके निवासस्थान पर पहुँचे। इधर-उधर की बातचीत में शिकार का भी ज़िक्र आ जाने से महाराना के साथ के सरदारों ने हाल ही की कुछ घटनाओं का वर्णन छेड़ दिया। परन्तु बल्लू जी को उनकी अभिमान भरी बातें अच्छी न लगीं। इससे यह चुप हो रहे। अन्त में जब महाराना ने इनके मौन का कारण पूछा तब इन्होंने नम्रता से उत्तर दिया—"श्रीमान्! यदि इतने बड़े-बड़े सरदारों ने मिल कर सिंह को मार ही लिया तो कौन सा आश्चर्य का कार्य कर दिया!" यह बात महाराना के साथ वालों को और स्वयं उनको भी बुरी लगी। परन्तु उस समय वे सब चुप हो रहे।

कुछ दिन बाद जब वीर बल्लू जी स्वस्थ हो गए और फिर सिंह के शिकार का मौक़ा आया तब सारे सरदारों ने मिल कर उनसे उस दिन के अपमान का बदला लेने का विचार किया। इसीसे जिस समय सब लोग जङ्गल में पहुँचे, उस समय उन्होंने महाराना से निवेदन किया कि बल्लू जी अपने मेहमान हैं, इसलिए आज के शिकार का मौक़ा इन्हीं को देना चाहिए। यह सुन बल्लू जी सारी बातों को भाँप गए। इसलिए जैसे ही हाके वालों ने सिंह के निकट आने की सूचना दी, वैसे ही इन्होंने घोड़े पर से कूद कर सारे शस्त्र खोल दिए और केवल बाँए हाथ पर कमरबन्द का कपड़ा लपेट सिंह के सामने चले। यह देख महाराना सहित सारे उपस्थित सरदार चकित होगए और इनसे ऐसा करने का कारण पूछने लगे। इस पर इन्होंने उत्तर दिया—"इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है! क्या सिंह के पास कोई सवारी या शस्त्र है जो मैं भी उन्हें लेकर उसके सामने जाऊँ। धर्म-युद्ध तो यही है कि जिस हालत में शत्रु हो उसी हालत में स्वयं भी जाकर उससे युद्ध करे।" इतना कह कर यह आगे बढ़ गए। इन्हें सामने आया देख सिंह भी इन पर टूट पड़ा। परन्तु इन्होंने फ़ुरती से कपड़ा लपेटा हुआ बायाँ हाथ उसके मुख में देकर दाँए हाथ से उसके कान के पास इस ज़ोर का घूँसा लगाया कि वह इस मर्मस्थल की चोट को न सँभाल सकने के कारण पृथ्वी पर गिर पड़ा और फिर पलक झपकते उठ कर भाग खड़ा हुआ।

इस घटना को देख दूर खड़े हुए सब सरदार आप ही आप इनकी तारीफ़ करने लगे। परन्तु बल्लू जी ने लौट कर महाराना से निवेदन किया कि—"गिरे या भागे हुए शत्रु को मारना राजपूत का धर्म नहीं है। इसलिए अब मैं तो उसका पीछा करना उचित नहीं समझता। परन्तु यदि आप या आपके सरदार चाहें तो जाकर उसे मार सकते हैं।" इतना कह कर इन्होंने महाराना से विदा की आज्ञा चाही।

यद्यपि इस घटना के पहले तक स्वयं महाराना और उनके सरदार उस दिन के अपमान के कारण मन ही मन इनसे कुछ अप्रसन्न से हो रहे थे, तथापि आज की इस घटना को देख उनका सारा मनोमालिन्य दूर हो गया। इससे महाराना ने इनको अपने पास रखने की बहुत-कुछ चेष्टा की। परन्तु वीर बल्लू जी ने निवेदन किया कि—"जहाँ राजपूत की क़दर न हो वहाँ पर उसका रहना बिलकुल निरर्थक है। हाँ, यदि आपको मेरी परीक्षा ही करनी थी तो मुझे किसी शत्रु के मुक़ाबले में भेजना था। राजपूत की वीरता की परीक्षा उसे एक

हिंसक जन्तु से लड़ा कर नहीं की जा सकती। बहुत सम्भव था कि मैं इस युद्ध में व्यर्थ ही मारा जाता।" इतना कह कर ये वहाँ से विदा हो गए।

इसके बाद इन्होंने आगरे जाने का विचार किया। वहाँ पहुँचने पर बादशाह शाहजहाँ ने इन्हें शाही सेना-नायकों में भरती कर लिया और कुछ ही दिनों में मनसब देने का भी वादा किया। परन्तु इसी बीच वि० सं० १७०१ की सावन सुदी २ (ई० स० १६४४ की २५ जुलाई) को जोधपुर-नरेश स्वर्गवासी महाराजा गजसिंह जी के ज्येष्ठ पुत्र राव अमरसिंह जी आगरे के क़िले में मारे गए। इस घटना की सूचना* पाते ही इनकी रगों का ख़ून खौल उठा और इन्होंने शाही मनसब की आशा छोड़ अपने स्वामि-पुत्र का† बदला लेने का निश्चय कर लिया। इनका इरादा राव जी के मारने में सम्मिलित हुए अर्जुन गौड़ को मारने का था। परन्तु इस कार्य के पूरा होने के पहले ही गौड़ों ने घबरा कर इसकी सूचना बादशाह को दे दी। इससे तत्काल एक शाही सेना इनके मुक़ाबले को आ पहुँची।

कहते हैं कि जिस समय वीर बल्लू जी युद्ध-यात्रा के लिए तैयार हो रहे थे, उसी समय मेवाड़ के महाराना जगतसिंह जी का भेजा हुआ एक आदमी सवारी का एक अत्युत्तम घोड़ा लेकर वहाँ आ पहुँचा। यह घोड़ा कुछ ख़ास विशेषता रखता था। इसीसे महाराना ने इसे बल्लू जी जैसे वीर के लायक़ समझ इनके पास भेज दिया था। इन्होंने भी उसे देख कर महाराना के प्रति अपनी बड़ी कृतज्ञता प्रकट की और उसी पर सवार होकर शाही सेना से जा भिड़े। राव अमरसिंह जी के बचे हुए योद्धा भी इनके साथ हो गए थे। इससे कुछ देर के लिए भयङ्कर मार-काट मच गई। परन्तु मुट्ठी भर राठोड़ विशाल यवन-समूह का कब तक सामना कर सकते थे? थोड़ी ही देर में इनकी संख्या अल्प से अल्पतर होने लगी। अन्त में ये सब अनेक शाही सैनिकों को मार कर वीरगति को प्राप्त हो गए। इन्हीं में वीर चाँपावत बल्लू जी भी थे।*

वीर बल्लू जी ने युद्ध के लिए जाते हुए जो सन्देश सतियों के द्वारा राव जी के पास भेजा था, उसका वर्णन किसी कवि ने इस प्रकार किया है :—

बल्लू कहै गोपालरो सतियाँ हाथ सँदेश।
पतसाही घड़ मोड़ने आवाँछाँ अमरेश॥

मारवाड़ के हरसोलाव, बापोड़, धामली, जोरोबी, खोखरी आदि के ठाकुर शायद इन्हीं के वंशज हैं।†

* कहीं-कहीं वीर बल्लू जी का कुछ दिन तक राव अमरसिंह जी के पास रहना भी लिखा मिलता है।

† कहीं-कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि राव अमरसिंह जी की रानियों ने जब राव जी के क़िले में मारे जाने का सम्वाद सुना तब बल्लू जी से कहलाया कि हम राव जी के पीछे सती होना चाहती हैं। आप भी राठोड़ हैं, इससे आपका कर्त्तव्य है कि स्वयं जाकर क़िले से राव जी का शव ले आवें। इसीसे बल्लू जी ने क़िले में घुस कर मार-काट मचाई और शाही सैनिकों को पीछे ढकेल, राव जी का शव तो सतियों के पास भेज दिया और ख़ुद सम्मुख रण में वीरगति प्राप्त की।

* बादशाह नामा, भा० २, पृ० ३८३-३८४

† इस चरित्र के लिखने में इतिहासों और दन्त-कथाओं दोनों से ही सहायता ली गई है।
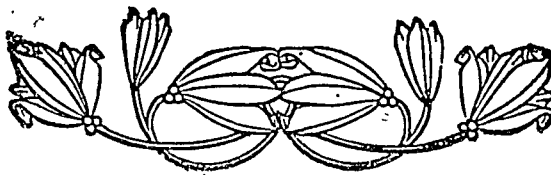
कञ्चित

[श्री० केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', बी० ए०]

(१)

उस निशीथ की नीरवता में,
क्षणभङ्गुर सुख स्वप्न समान;
कब आए कब चले गए तुम
सत्वर गति से हे छविमान !

(२)

कब तुमने अपना प्रकाश
मेरी कुटिया में फैलाया ?
कब मेरी सञ्चित आशा को
प्रेम-सुधा से नहलाया ?
कब तुमने अपनी तन्त्री पर
गाया अपना नीरव गान ?
कब आए कब चले गए तुम
सत्वर गति से हे छविमान !

(३)

सोया था अज्ञात सुप्ति में,
आँखों ने न किया दर्शन ;
तेरे पैरों पर न चढ़ा पाया
चिर-सञ्चित अश्रु-सुमन ।
आशा की अधखिली कली का
हाय ! हो गया द्रुत अवसान ;
कब आए कब चले गए तुम
सत्वर गति से हे छविमान !

(४)

कितनी मधुर लालसा, कितनी
भव्य भावनाएँ सुन्दर—
छिपी हुई थीं इस छोटे से
मूक हृदय में कोमलतर ।
मैं यों वञ्चित रह जाऊँगा,
इसका मुझे न था कुछ ज्ञान ;
कब आए कब चले गए तुम
सत्वर गति से हे छविमान !

(५)

सोते में आओगे, यदि कोई
मुझको यह बतलाता ;
तो मैं रात बिता देता
गिन तारे, हाय ! न सो जाता ।
अब तो जीवन भर सहना—
रह गया, व्यथा का शूल महान ;
कब आए कब चले गए तुम
सत्वर गति से हे छविमान !

श्रद्धा और बुद्धि

[श्री० चन्द्रराज भण्डारी, विशारद]

मनुष्य-प्रकृति के अन्तर्गत श्रद्धा और बुद्धि ये दो गुण ऐसे हैं जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से अलग करते हैं। इन दोनों गुणों से मनुष्य अपने समाज की रचना और रक्षा करता है। इन्हीं दोनों गुणों के कारण वह अखिल प्राणि-जगत पर तथा प्रकृति पर भी अपना साम्राज्य स्थापित करता है और इन्हीं के द्वारा वह अपनी इहलौकिक तथा पारलौकिक उन्नति सम्पादन करता है। ऐसे तो मनुष्य-प्रकृति में प्रेम, दया, दाक्षिण्य, विचार, गम्भीरता, दूरदर्शिता, आदि और भी सैकड़ों गुण-दोष हैं, पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करने से प्रतीत होगा कि इन सब गुण-दोषों की उत्पत्ति प्रधानतया दो ही स्थानों से होती है, या तो मस्तिष्क से या हृदय से। मनुष्य-शरीर के अन्तर्गत यही दो स्थान प्रधान हैं। श्रद्धा और बुद्धि ये दोनों ही इन दोनों स्थानों के प्रधान गुण हैं। अतः यह कहना अप्रसङ्गत न होगा कि इन्हीं दोनों गुणों से मनुष्य-प्रकृति-गत अन्य सब गुणों की उत्पत्ति होती है।

श्रद्धा की उत्पत्ति हृदय से होती है और बुद्धि की मस्तिष्क से। अतएव उत्पत्ति-स्थानों के स्वभावानुसार ही इन दोनों का स्वभाव भी होता है। श्रद्धा सुन्दर है, बुद्धि सत्य है। श्रद्धा भाव है, बुद्धि विचार है। श्रद्धा प्रेम और विश्वास की जननी है, बुद्धि विज्ञान और विवेक की माता है। श्रद्धा सरल है, बुद्धि चतुर है। श्रद्धा प्रेय है, बुद्धि श्रेय है। श्रद्धा चन्द्रमा की शीतल चाँदनी है, बुद्धि सूर्य का प्रचण्ड प्रताप है। श्रद्धा के कोष में विचार और तर्क को स्थान नहीं है, बुद्धि के राज्य से विवेकहीन विश्वास का बहिष्कार है।

मनुष्य-समाज की उन्नति के लिए सुन्दर और सत्य, भाव और विचार, श्रेय और प्रेय, विश्वास और विवेक, प्रेम और विज्ञान चन्द्र और सूर्य, दोनों प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता है। अतएव यह स्वयं सिद्ध है कि श्रद्धा और बुद्धि, ये दोनों ही गुण मनुष्य-समाज के लिए उपादेय हैं। जिस प्रकार केवल ऑक्सिजन से या केवल नाइट्रोजन से मनुष्य जीवित नहीं रह सकता, उसके जीवन की रक्षा के लिए इन दोनों ही की एक नियमित मात्रा में आवश्यकता होती है, उसी प्रकार केवल श्रद्धा से या केवल बुद्धि से मनुष्य-समाज जीवित नहीं रह सकता, उसके स्वास्थ्य के लिए इन दोनों गुणों की एक नियमित परिमाण में आवश्यकता रहती है। ये दोनों ही गुण जब तक नियमित मात्रा में रहते हैं, तब तक मनुष्य-समाज उन्नत, अभीष्ट और प्रगतिशील रहता है। पर ज्योंही इनके परिमाण में कमी-बेशी या विशृङ्खला उत्पन्न हो जाती है, त्योंही मनुष्य-समाज का जीवन भँवर में पड़ जाता है, उसमें किसी भयङ्कर अनर्थ का सूत्रपात हो जाता है।

श्रद्धा और बुद्धि ये दोनों ही गुण एक-दूसरे पर इतने अधिक निर्भर हैं कि जब तक ये साथ रहते हैं, तभी तक श्रेष्ठ और सुन्दर रहते हैं। जहाँ ये एक-दूसरे से अलग हुए कि दोनों ही महा भयानक रूप धारण कर लेते हैं। बुद्धि के अलग होते ही श्रद्धा का विश्वास अन्ध-विश्वास में, प्रेम मोह में, भावुकता मूर्खता में, और धर्म मज़हब में बदल जाता है। इधर श्रद्धा के अलग हो जाने से बुद्धि की भी बड़ी दुर्गति होती है। उसका तर्क कुतर्क में, विवेक धूर्तता में और विज्ञान नास्तिकता में परिवर्तित हो जाता है। केवल श्रद्धा की शीतलता में मनुष्य-समाज ठिठुर कर निर्जीव हो जाता है और केवल बुद्धि के भीषण-ताप से वह जल कर भस्म हो जाता है। जिस प्रकार विवेक-हीन विश्वास मनुष्य-जाति के लिए भयङ्कर है, उसी प्रकार विश्वासहीन विवेक भी मनुष्य-जाति का परम शत्रु है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि समाज के लिए इन दोनों गुणों के सम्मिश्रण की आवश्यकता है।

जब श्रद्धा में से बुद्धि का अंश निकल जाता है, तब वह "अन्धश्रद्धा" कहलाती है। यह अन्धश्रद्धा विचार और विवेक की शत्रु होती है, सोचने और

विचार करने का तथा सत्यासत्य का निर्णय करने का मनुष्य को जो एक स्वाभाविक अधिकार होता है उस अधिकार को यह उससे छीन लेती है। क्या इष्ट है और क्या अनिष्ट, क्या न्याय है और क्या अन्याय, इन बातों का निर्णय करने के लिए वह मनुष्य को अवकाश ही नहीं देती। वह बलात्कार मनुष्य-समाज पर अपना एकाधिपत्य स्थापित करती है।

अन्धश्रद्धा का सबसे बड़ा और अनिवार्य नैतिक दुष्परिणाम यह होता है कि समाज सिद्धान्तवाद की उदार उपासना को छोड़ कर व्यक्तिवाद का उपासक हो जाता है। व्यक्तिवाद का यह भूत उसकी राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति आदि सब नीतियों में घुस जाता है। किसी भी सिद्धान्त की आत्मा को छोड़ कर समाज उसके जड़ चोले को पकड़ लेता है। परिणाम यह होता है कि उसकी राजनीति से उच्छृङ्खला और अत्याचारी राजसत्ता की, धर्मनीति से भयङ्कर मज़हब की और समाजनीति से भीषण जाति-प्रथा की उत्पत्ति हो जाती है और अन्त में समाज का जीवन दुर्भाग्य के भीषण चक्र में फँस जाता है।

इसी प्रकार अन्धबुद्धिवाद से भी समाज के अन्तर्गत भीषण नास्तिकता, अमानुषिकता, अविश्वास आदि दुर्गुण समष्टिगत हो जाते हैं, जिससे समाज में हत्या, रक्तपात और हिंसात्मक भावों का कोलाहल मच जाता है।

अब हम आगे यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि अति श्रद्धा और अति बुद्धि के समष्टिगत होने पर समाज की राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति में क्या-क्या परिवर्तन होते हैं।

राजनीति में अन्धश्रद्धा

(१) राज्य की उत्पत्ति और उसका विकास क्यों और कैसे हुआ, यह बड़ा ही गम्भीर विषय है। फिर भी यदि संक्षेप में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि मनुष्य-प्रकृति की स्वाभाविक विषमता पर नियन्त्रण रख कर, उसके द्वारा समाज में जो अव्यवस्था उत्पन्न होती है उसे रोक कर, समाज में सुव्यवस्था रखने के लिए ही राज्य की उत्पत्ति हुई है। उत्पत्ति का उद्देश्य एक होने पर भी भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के अनुसार राज्य के अनेक रूप हो गए, कहीं राजतन्त्र, कहीं प्रजातन्त्र, कहीं प्रतिनिधितन्त्र, इत्यादि।

प्रणाली चाहे जैसी हो, जब तक उसकी नींव शुद्ध विवेक और शुद्ध विश्वास पर रहती है, तब तक वह श्रेष्ठ और उन्नति के लिए इष्ट रहती है। पर ज्यों ही उसके अन्तर्गत अन्धविश्वास और अशुद्ध विवेक का समावेश हो जाता है, त्योंही वह उद्देश्य से भ्रष्ट और समाज के लिए भयङ्कर हो जाती है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे भारतीय इतिहास में स्पष्ट शब्दों में अङ्कित है।

भारतवर्ष में यहाँ की परिस्थिति के अनुसार राजतन्त्री राज्य की स्थापना हुई, समाज की सुव्यवस्था के लिए राजा की आयोजना हुई। जिस सिद्धान्त पर राजा की रचना हुई, वह सिद्धान्त बहुत ही ऊँचा था, उस सिद्धान्त के अनुसार राजा प्रजा की केवल इहलौकिक उन्नति का ही ज़िम्मेदार नहीं समझा जाता था, प्रत्युत उसकी पारलौकिक सद्गति का भी वह ज़िम्मेदार समझा जाता था। प्रजा के अन्दर यदि कोई भूखा, प्यासा या असमर्थ पाया जाता तो उसकी ज़िम्मेदारी भी उस पर समझी जाती थी, यहाँ तक कि अकाल मृत्यु और महामारी का ज़िम्मेदार भी वही होता था। वह राजा प्रजा की स्त्रियों को माँ और बहिनों के समान, वृद्धों को पिता के समान और छोटों को पुत्र के समान समझता था।

इस कल्पना के अनुसार राजा की उत्पत्ति हुई और वह राजा समाज के अन्तर्गत ईश्वर का अंश समझा जाने लगा। इस सिद्धान्त का कि ऐसा राजा ईश्वर का अंश समझा जाय, विवेक भी समर्थन करता है। पर यह प्रतिष्ठा या यह सम्मान उस सिद्धान्त को प्राप्त है, जोकि व्यक्ति को राजा बनाता है, न कि उस व्यक्ति को जो राजा के रूप में राज्यासन पर प्रतिष्ठित है। विवेक और सिद्धान्त के अनुसार यदि वह राजा उस आदर्श से तनिक भी भ्रष्ट हो जाय तो वह उस पद और सम्मान का अधिकारी नहीं रहता। दैवी सम्पद्युक्त समाज में ऐसा होता भी था।

पर जब समाज में अन्धश्रद्धा का प्रभुत्व हो गया तब सिद्धान्त-पूजा की जगह व्यक्ति-पूजा का प्रारम्भ हुआ। हम पहले ही कह आए हैं कि अन्धश्रद्धा में विचार और विवेक को स्थान नहीं रहता। अतएव इसका यह परिणाम होना स्वाभाविक था। राजा का आदर्श क्या है, उसे

ईश्वर का अंश क्यों कहा गया है, उसके आचरण कैसे होना चाहिए, ये सब बातें बुद्धि से सम्बन्ध रखती हैं। अतएव इन बातों पर विचार करने का समाज को अवकाश न था। इसलिए इन सब बातों को उसने छोड़ दिया। केवल "राजा ईश्वर का अंश है", इस परिपाटी को उसने मज़बूती से पकड़ लिया। क्योंकि इसको मानने में केवल थोड़े से विश्वास ही की आवश्यकता थी। विवेकप्रधान समाज में यदि राजा से कुछ भी भूल हो जाती तो ब्राह्मण उसे उचित दण्ड देते थे। पर इस (अन्धश्रद्धा-प्रधान) काल के समाज की दृष्टि में राजा, चाहे वह कैसा ही अत्याचारी, अविवेकी और व्यभिचारी क्यों न हो, ईश्वर का अंश समझा जाता था। प्रजा उसके अत्याचारों से चाहे त्राहि-त्राहि करने लग जाय, चाहे सती स्त्रियाँ अपने सतीत्व की रक्षा के लिए आत्मघात करने पर उतारू हो जायँ, पर राजा के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं निकाला जाता था, क्योंकि वह ईश्वर का अंश था!

राजनीतिक अन्धश्रद्धा का यही स्वाभाविक परिणाम है। इसका अन्तिम फल यह होता है कि राजाओं के अत्याचार आज़ादी पाकर भड़क उठते हैं। वे (राजा) लोग अकर्मण्य, मूर्ख और विलासी हो जाते हैं, जिससे राज्य की शक्तियाँ शिथिल हो जाती हैं। अन्त में ऐसे राजे स्वयं किसी विदेशी राज्य-सत्ता के द्वारा नष्ट होते हैं, और अपने नाश के साथ-साथ प्रजा के पैरों में भी एक अनिश्चित काल के लिए ग़ुलामी की ज़न्जीरें डाल जाते हैं।

(२) युद्धनीति भी राजनीति का एक अङ्ग है। इस युद्धनीति पर भी अन्धश्रद्धा का बड़ा भयङ्कर परिणाम होता है। युद्ध-कला में भी व्यक्तिवाद का भूत घुस जाता है। एक सेनापति या एक झण्डे के ऊपर सारे युद्ध का दारमदार रहता है। समीपवर्ती जय के समय, यदि दैवयोग से सेनापति या विजय-पताका का पतन हो जाता है तो सारे युद्ध का पासा पलट जाता है। विजय पराजय में बदल जाती है। राजा दाहिर, राणा साँगा, दाराशिकोह आदि योद्धाओं के पतन इस भयङ्कर युद्ध-नीति के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

पराजित शत्रु के साथ सज्जनोचित व्यवहार करना प्राचीन युद्धनीति का एक नियम था। पर इस नियम के पीछे शत्रु की पात्रापात्रता पर विचार करने का अपवाद छिपा हुआ था। यह नियम उसी स्थान पर काम में लाया जाता था जब दोनों पक्ष समकक्ष, उदार और एक ही नीति को मानने वाले होते थे। इस नियम का मतलब मनुष्य के साथ मनुष्यत्व का व्यवहार करना था, न कि पशु या मनुष्यत्वहीन मनुष्य के साथ उदार व्यवहार करना। सिकन्दर ने पोरस के साथ और चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस के साथ सज्जनोचित व्यवहार किया। उनका यह व्यवहार अवश्य स्तुत्य था। क्योंकि वह व्यवहार समकक्ष और मनुष्यत्वयुक्त शत्रु के साथ था। इस नियम में भी अन्धश्रद्धा का प्रवेश हुआ। लोगों ने "शत्रु के साथ सज्जनोचित व्यवहार करना चाहिए", इस ढाँचे को तो पकड़ लिया, पर इस ढाँचे की आत्मा को, जोकि शत्रु की पात्रापात्रता की परीक्षा करने पर ज़ोर देती है, छोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि पृथ्वीराज ने मुहम्मद ग़ोरी के समान नृशंस शत्रु को बार-बार पकड़ कर भी छोड़ दिया, और अन्त में स्वयं अपने तथा अपने देश के पैरों में ग़ुलामी की ज़ञ्जीरें डलवा लीं। भीमसिंह ने अलाउद्दीन के समान नरपशु को राजमहल में लाकर पद्मिनी का रूप दिखाया, फिर स्वयं उसको पहुँचाने उसके ख़ीमे में गए और इस प्रकार हज़ारों हत्याओं और राज्य-पतन के कारण बने।

(३) इसी प्रकार किसी प्रकार के राजनैतिक आन्दोलन में भी अन्धश्रद्धा की वजह से व्यक्तिवाद का सिद्धान्त घुस जाता है। कोई भी राजनैतिक नेता यदि मैदान में आगे बढ़ता है तो लोग उसके व्यक्तित्व के उपासक हो जाते हैं। जिन सिद्धान्तों की वजह से वह व्यक्ति पूजा जाता है, कुछ समय के पश्चात लोग उसके व्यक्तित्व की धुन में आकर उन सिद्धान्तों को भूल जाते हैं और उसके व्यक्तित्व की पूजा करने लगते हैं। यदि वह कुछ ग़लत बातें भी कहता है तो लोग भेड़ियाधसान की तरह उसके पीछे लग जाते हैं। इसका कारण यह कि लोग विचारों की पूजा की अपेक्षा व्यक्ति-पूजा ही को अधिक महत्व देने लगे हैं। अन्धश्रद्धा का यह स्वाभाविक और विषमय परिणाम है।

समाजनीति में अन्धश्रद्धा

(१) समाज की रक्षा के निमित्त जिस शास्त्र की योजना होती है, उसे समाजशास्त्र कहते हैं। समाजशास्त्र

के विधान को समाजनीति कहते हैं। भिन्न-भिन्न समय के सामाजिक नेता अपने समय की परिस्थिति के अनुसार इन नियमों में परिवर्तन और परिवर्द्धन (नवीन नियमों की रचना) करते रहते हैं। समाजशास्त्र-सम्बन्धी नियम इतने अधिक परिवर्तनशील होते हैं कि यदि समय-समय पर शीघ्रता के साथ उनमें परिवर्तन न कर दिया जाय तो वे समाज के लिए भयङ्कर और घातक हो उठते हैं।

किसी भी नियम या सिद्धान्त में परिवर्तन करना विवेक और बुद्धि का काम है। विवेकप्रधान समाज में ये परिवर्तन समय-समय पर घटित होते रहते हैं। पर जब समाज में अन्धश्रद्धा का प्रादुर्भाव हो जाता है तब यह परिवर्तन बन्द हो जाता है, और समाज एक ही प्रकार के नियमों को पकड़ कर उन्हें हर काल और हर परिस्थिति में चरितार्थ करना चाहता है। परिणाम यह होता है कि उस समय के पोषक नियम इस समय शोषक हो जाते हैं और समाज सर्वनाश के अतल गह्वर की ओर प्रगतिशील होता है। न मालूम किस परिस्थिति और किस काल में मनु महाराज ने कह दिया होगा कि

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा...........॥

बस इससे उनका 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति'—यह विधान हमेशा के लिए विधिवाक्य हो गया ! आज इस स्वतन्त्रताप्रधान युग में भी हम इस प्रकार के असामयिक श्लोकों की दुहाई देकर अपने समाज की जड़ में कुल्हाड़ा मार रहे हैं।

(२) इसी प्रकार व्यक्तिवाद की उपासना के कारण समाज में सैकड़ों भिन्न-भिन्न जातियाँ बन जाती हैं। एक-एक व्यक्ति के नाम से एक-एक जाति चल निकलती है। इन जातियों में रोटी-बेटी का भेदभाव होने के कारण जातीय कलह उत्पन्न हो जाता है। इन जातियों की उत्पत्ति किन्हीं ख़ास सिद्धान्तों पर नहीं, प्रत्युत व्यक्तियों के नाम पर होती है। इसी प्रणाली के कारण भारत में आज १८,००० जातियाँ विद्यमान हैं। इसी प्रकार विवाह-प्रणाली और अन्य रीति-रिवाजों में भी अन्धश्रद्धा की वजह से भयङ्कर विश्रृङ्खला उत्पन्न हो जाती है।

(३) प्राचीन काल में—जिस समय के सामाजिक नियमों को मानने का हम दावा करते हैं—धर्म-परिवर्तन का कोई प्रश्न समाज में उपस्थित न था। उस समय ईसाई, मुसलमान आदि मिशनरी धर्मों का भारत में प्रवेश नहीं हुआ था। अतएव यदि उस समय के विधानों में शुद्धि का कोई विधान न मिले तो कोई आश्चर्य नहीं। उसके बहुत दिनों पश्चात भारत में इस्लाम धर्म का प्रवेश हुआ। मुसलमानों ने धड़ाधड़ हिन्दुओं को मुसलमान बनाना प्रारम्भ किया। हिन्दुओं के बड़े-बड़े सामाजिक नेता इस भीषण दृश्य को हाथ पर हाथ धरे देखते रहे, पर उसका कोई प्रतिकार न कर सके, क्योंकि मनु महाराज ने या पराशर ऋषि ने अपनी स्मृतियों में शुद्धि की कोई व्यवस्था न दी थी। और मनु तथा पराशर के सिवा किसी तत्कालीन नेता की व्यवस्था उन्हें मान्य न थी। इस प्रकार व्यक्तिवाद के पञ्जे में पड़ कर धीरे-धीरे सारा देश ग़ुलामी के पाश में बद्ध हो गया और पवित्र आर्य-भूमि पर चिरकाल के लिए इस्लाम धर्म के पैर मज़बूती से जम गए।

(४) यही हालत विवाह-प्रणाली की भी हुई। अन्धश्रद्धाप्रधान समाज को बाल-विवाह मञ्ज़ूर, वृद्ध-विवाह-मञ्ज़ूर, अनमेल-विवाह मञ्ज़ूर, पर विधवा-विवाह मञ्ज़ूर नहीं ! विधवा के साथ व्यभिचार कर लेना मञ्ज़ूर, उसके ओठ से ओठ मिलाना भी मञ्ज़ूर, पर उसके हाथ का खाना मञ्ज़ूर नहीं ! गुप्त रूप से भ्रूण-हत्या मञ्ज़ूर, पर प्रगट में विधवा के सन्तान होना मञ्ज़ूर नहीं ! ये सब बातें अन्धश्रद्धा ही के भयङ्कर परिणाम हैं।

धर्मनीति में अन्धश्रद्धा

(१) राजनीति और समाजनीति की अपेक्षा धर्म-नीति में घुसी हुई अन्धश्रद्धा और भी अधिक भयङ्कर होती है। धर्मनीति के अन्तर्गत अन्धश्रद्धा का समावेश हो जाने से मज़हब की उत्पत्ति हो जाती है, जिसके फल-स्वरूप समाज में क़ौमी जहालत—जोकि अन्य सब जहालतों से भयङ्कर है—उत्पन्न हो जाती है।

डॉ० टैगोर ने एक स्थान पर लिखा है—"जब धर्म एक आध्यात्मिक बात न होकर बाहरी तथा ऊपरी आचार-विचार की बात हो जाती है, तब उसके बराबर अशान्ति फैलाने वाली दूसरी कोई बात संसार में नहीं होती। उस समय धर्मनीति के सम्बन्ध में "पेनी वाइज़, पाउण्ड फ़ूलिश" (Penny wise, pound foolish) वाली

कहावत चरितार्थ होने लगती है। उसका फल यह होता है कि जितनी कड़ी ऐंठन पड़ती जाती है, गिरह उतनी ही ढीली होती जाती है।" ठीक यही स्थिति धर्म के अन्तर्गत अन्धश्रद्धा या व्यक्तिवाद के घुस जाने से उत्पन्न होती है।

राजनीति और समाजनीति ये ऐसी वस्तुएँ हैं, जो एक प्रत्यक्ष सिद्धान्त से सम्बन्ध रखती हैं। इनका शुभाशुभ परिणाम हम लोगों को हाथोंहाथ देखने को मिल जाता है। अतएव इनके अन्तर्गत घुसी हुई अन्धश्रद्धा चाहे दीर्घ काल तक रहे, पर अति दीर्घ काल तक बलवती नहीं रह सकती। पर धर्मनीति एक ऐसी वस्तु है जो किसी प्रत्यक्ष सिद्धान्त से सम्बन्ध नहीं रखती, प्रत्युत वह एक अप्रत्यक्ष, अगोचर और अदृश्य सिद्धान्त से सम्बन्ध रखती है। इहलौकिक सुख-दुःख से उसका अधिक सम्बन्ध नहीं रहता, प्रत्युत उसका सम्बन्ध एक ऐसे स्थान से रहता है जहाँ का सच्चा इतिहास आज तक दुनिया को मालूम नहीं हुआ। अतएव इसके अन्दर घुसी हुई जहालत भी अमर हो जाती है।

(२) धार्मिक अन्धश्रद्धा के परिणाम-स्वरूप धर्म के अन्तर्गत भी व्यक्तिवाद का उदय हो जाता है। यह धार्मिक व्यक्ति कहीं ईश्वरीय दूत के नाम से, कहीं पैग़म्बर के नाम से और कहीं अवतार के नाम से पुकारा जाता है। असल में ये पूजनीय पुरुष बहुत महान और उदाराशय रहते हैं, पर इनके उपासक इनके वास्तविक रूप को बिगाड़ कर इन्हें अपनी मौरूसी जायदाद बना लेते हैं। सब मज़हबों का इस विषय में एक ही सिद्धान्त रहता है, पर अविवेक और अन्धविश्वास के कारण इन भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के उपासकों में भयङ्कर मतभेद खड़ा हो जाता है और ये लोग धर्म के नाम पर हमेशा एक दूसरे का सिर तोड़ने को तैयार रहते हैं।

मतलब यह कि मज़हब की स्थिति ही अन्धश्रद्धा पर है। कोई भी मज़हब अपनी आज्ञाओं के लिए बुद्धिग्राह्य युक्तियाँ नहीं बतला सकता। इसके लिए उन्हें धर्म-ग्रन्थों, ईश्वर के कहे हुए वाक्यों तथा पुजारियों के आदेशों का सहारा लेना पड़ता है। और जब ज्ञान का इस प्रकार बहिष्कार किया जाता है तो कोई आश्चर्य नहीं कि मज़हबवादियों के कार्य भी ज्ञान से शून्य और पशुवत हों। इसी ज्ञान के बहिष्कृत होने की वजह से मज़हब के आदेशों में और मज़हबवादियों के आचरण में इतना विरोध दिखलाई देता है। अन्धविश्वास पर स्थित होने के कारण ही, नैतिक सिद्धान्तों को मानते हुए भी, मज़हब उन पर व्यवहार नहीं करता। ईश्वर की एकता तथा मनुष्य-मात्र के भ्रातृत्व को मानते हुए भी मज़हब ने असंख्य निरपराधों का ख़ून किया है, इतने लोगों की हत्या की है कि उनकी हड्डियाँ एकत्रित होने पर संसार के सभी मीनारों से ऊँची हो जायँगी, लोगों को इतनी यन्त्रणाएँ पहुँचाई हैं कि उनके सामने मज़हब-कल्पित नरक की यन्त्रणाएँ भी शायद फ़ीकी पड़ जाती हैं।

संसार के इतिहास में जितना रक्तपात, जितनी ख़ून-ख़राबी, जितने युद्ध-कोलाहल मज़हबी जहालत की वजह से हुए हैं, उतने शायद किसी दूसरे कारण से न हुए होंगे। "डॉगमा" अर्थात शास्त्र-मत को बाह्य दृष्टि से देखने के कारण ही यूरोप का इतिहास ख़ून से रँगा हुआ है। आज से चार सौ वर्ष पहले का यूरोप का इतिहास भयङ्कर क़ौमी-जहालत का इतिहास है, जिसके पन्ने रोमन कैथौलिकों और प्रोटेस्टेएटों के ख़ून से रँगे हुए हैं। इस्लाम धर्म के हज़ार वर्षों का इतिहास भी क़ौमी-जहालत के रक्तपात में ओतप्रोत है, जिसके अन्दर "एक हाथ में क़ुरान और दूसरे हाथ में तलवार" वाले मनुष्यत्व और तर्क-विहीन सिद्धान्त को आश्रय दिया गया है। सारांश यह कि दुनिया का जितना बड़ा अनिष्ट धर्म में अन्धश्रद्धा के घुसने की वजह से हुआ है, उतना किसी दूसरे कारण से नहीं हुआ।

(३) धर्मनीति के अन्तर्गत अन्धविश्वास के घुस जाने से एक और बड़े भारी अनर्थ का सूत्रपात हो जाता है। समाज के गले में मानसिक ग़ुलामी के—जोकि अन्य सब प्रकार की ग़ुलामियों से अधिक भयङ्कर है—बन्धन पड़ जाते हैं। समाज मानसिक ग़ुलामी के कीचड़ में आकण्ठ मग्न हो जाता है। उसकी तर्कशक्ति और विवेक-शक्ति लुप्त हो जाती है। उसे ऐसी बातें मानने के लिए मजबूर होना पड़ता है, जो उसके विचार और विवेक के बिलकुल ख़िलाफ़ होती हैं। पर पाप के डर से उसे सब बातें मानना ही पड़ती हैं।

मनुष्य की सृष्टि किस प्रकार हुई? पुराण कहते हैं कि शेषशायी भगवान के कमलनाल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, उन्हीं ब्रह्मा ने मनुष्य जाति की उत्पत्ति की। इस प

कोई शङ्का करे तो वह नास्तिक, उसके लिए स्वर्ग का द्वार बन्द। कुरान और बाइबिल कहते हैं कि छः हज़ार वर्ष पहले ख़ुदा ने छः दिन तक कड़ी मेहनत करके सब जीवों की सृष्टि की और सातवें दिन इतवार को छुट्टी मनाई। इस पर यदि कोई शङ्का करे तो वह काफ़िर, उसके लिए जन्नत का रास्ता बन्द। तीर्थङ्कर भगवान जब पैदा हुए, उसके पहले उनके माता-पिताओं के यहाँ छः मास तक रत्न-वृष्टि हुई और उनके पैदा होते ही इन्द्र उन्हें कैलास पर्वत पर ले गए। वहाँ एक योजन लम्बे, एक योजन चौड़े और एक योजन गहरे—ऐसे-ऐसे १००८ कलशों से उन्हें स्नान करवाया। क्या तुम्हें शङ्का होती है कि इतने अधिक जल को तुरन्त के पैदा हुए बालक ने कैसे सहन किया होगा? यदि होती है तो तुम अविश्वासी हो, दस जन्मों तक तुम्हें तिर्यग्योनि में भटकना होगा।

यदि हम कहें कि ब्राह्मण के लोटे का पानी गन्दा है, पीने के योग्य नहीं, और शूद्र के लोटे का पानी निर्मल है, वह पिया जा सकता है, तो लोग कहेंगे कि बेहूदा बकता है, यह बात शास्त्र के सिद्धान्तों से उलटी है। यदि हम कहें कि उलटी है तो हुआ करे, हम इसी को मानते हैं, तो हुक़ा-पानी बन्द, ब्याह-शादी बन्द, यहाँ तक कि मरने पर कोई श्मशान ले जाने वाला भी न मिले!

अन्धश्रद्धा के युग में पाप करना जितना आसान है, पाप से छूटना भी उतना ही आसान है। लाख पाप कर लो—चोरी कर लो, व्यभिचार कर लो, विश्वासघात कर लो—एक बार गङ्गा जी में स्नान किया नहीं कि सब धुल कर साफ़, एक बार ब्रा ण-भोजन कराया नहीं और सब स्वाहा। जन्म के पापी को मरते वक्त एक बार राम का नाम सुना दो, थोड़ा सा गोबर और तुलसी के पत्ते उसके मुख में डाल दो, बस वैकुण्ठ का मार्ग उसके लिए साफ़ हो गया।

मज़हब ही के प्रताप से भिन्न-भिन्न देशों और भिन्न-भिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के ईश्वर की कल्पना हुई। कैसा आश्चर्य है कि एक ही ईश्वर अनेक मतों को उत्पन्न करके संसार के असीम दुःख और हानि का कारण बन गया। अन्धश्रद्धा के प्रताप से प्रत्येक जाति का अलग-अलग ईश्वर हो गया और उसने पृथक-पृथक रीति-रिवाजों पर अपनी मुहर लगा दी।

बातें अवश्य कुछ कड़वी और नवीन मालूम होंगी, और सम्भव है, कुछ पाठक इसको पढ़ कर हम पर नास्तिकता का भी आरोप करने लगें, पर हमें जो सत्य दिखलाई दे रहा है उसे कहने में हम कभी कुण्ठित न होंगे। हमारी समझ है कि ईश्वर की इन भिन्न-भिन्न कल्पनाओं से संसार का हित-साधन तो बहुत कम हुआ है, पर अनिष्ट-साधन बहुत अधिक हो रहा है। किन्तु इनके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने का साहस कोई नहीं करता। अगर कोई करे तो वह समाज के कोप का भागी होगा, उसके द्वारा उत्पीड़ित होगा। भला ईश्वर के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई जाय, और वह भी एक मनुष्य के द्वारा! कायरता की यह दीवार एक चराचर व्यापी भय के ऊपर चुनी हुई है। इसके प्रताप से सोते-जागते, खाते-पीते, हमेशा मनुष्य के सामने एक हौआ उपस्थित रहता है। जब से इस कल्पना का उदय हुआ है, तब से शायद एक दिन भी मनुष्य जाति सुख की नींद न सोई होगी। सारी मनुष्य जाति इस मानसिक गुलामी की दृढ़ ज़ञ्जीरों से जकड़ी हुई है। मानसिक स्वाधीनता की आनन्दमयी किरण के दिव्यदर्शन उसने आज तक नहीं किए। वैर, विद्वेष, रक्तपात और हत्याकाण्ड तो इस (ईश्वर) नाम की आड़ में जितने हुए हैं, उन्हें देख-सुन कर मनुष्यता की आत्मा काँप उठती है!! कहाँ तो ईश्वर का पवित्र रूप और कहाँ यह भयङ्कर हौआ!

अन्धबुद्धि के कुपरिणाम

अन्धश्रद्धा की तरह अन्धबुद्धि भी समाज के लिए बहुत भयङ्कर है। जब तक बुद्धि के अन्तर्गत सात्विक श्रद्धा का अंश रहता है, तब तक उससे समाज फलता-फूलता है। पर श्रद्धा का अंश निकल जाने पर उसका रूप बहुत भयङ्कर हो जाता है। जिस प्रकार अन्धश्रद्धा से जड़वाद और मज़हब की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार अन्धबुद्धि से समाज में नास्तिकता का प्रचार हो जाता है। अन्धश्रद्धा में तर्क, विचार और विवेक को स्थान नहीं रहता, अन्धबुद्धि सहानुभूति, भ्रातृभाव, प्रेम और मनुष्यत्व को स्थान नहीं देती।

अन्धश्रद्धा का परिणाम है:—

राम नाम को छोड़ कर करे और को जाप।
ताके मुख में दीजिए नौसादर को भाप॥

अन्धबुद्धि का परिणाम है—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

दोनों ही स्थितियाँ समाज के लिए अनिष्टकारक हैं।

(१) राजनीति के अन्तर्गत अन्धबुद्धिवाद के घुस जाने पर देश में राजनैतिक शान्ति एक दिन भी स्थिर नहीं रह सकती। प्रतिदिन नवीन राजा और नवीन प्रणालियों का आविष्कार होता है, मानव-हृदय में विश्वास के लिए स्थान नहीं रह जाता। इसी प्रकार राजनैतिक आन्दोलन में अन्धबुद्धिवाद के घुस जाने से आन्दोलन की सात्विकता नष्ट हो जाती है। मनुष्य के प्राणों का मूल्य बहुत ही कम हो जाता है। बात-बात में हत्या और रक्तपात के भीषण दृश्य देखने को मिलते हैं।

(२) समाजनीति में अन्धबुद्धिवाद के घुसने से व्यभिचार, पारस्परिक व्यवहार-भ्रष्टता, सामाजिक अपवित्रता आदि समाज का पतन करने वाले अनेक साधन उत्पन्न हो जाते हैं। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावत चरितार्थ होने लगती है। समाज के स्वास्थ्य, सौन्दर्य और तेज को बनाए रखने वाले कुल साधन नष्ट हो जाते हैं। सामाजिक मर्यादा का बाँध, जिस पर समाज की रक्षा अवलम्बित है, टूट जाता है।

(३) धर्मनीति में अन्धबुद्धि का प्रवेश होने पर समाज में नास्तिकता का समावेश हो जाता है। समाज का चरित्र-बल गिर जाता है। सदाचार और पाप-पुण्य के विचार—जो समाज की रक्षा के लिए आवश्यक है—नष्ट हो जाते हैं। धर्म की महत्ता, विश्वास का सौन्दर्य और कर्तव्य की पवित्रता खो जाती है। आध्यात्मिकता दूर हो जाती है और भौतिकवाद का जय-जयकार होने लगता है।

अन्धश्रद्धा का प्रत्यक्ष उदाहरण भारतवर्ष है। अन्धबुद्धि का कुछ अंश आधुनिक यूरोप में पाया जाता है। भारतवर्ष के पतन के मूल कारणों की गहरी खोज करते-करते जब हम तह तक पहुँचते हैं तो हमें एक ही ख़ास सिद्धान्त इसके पतन के कारणों में मिलता है। वह है अन्धश्रद्धा की अन्धी उपासना। यदि भारतवर्ष अपनी राजनीति, समाजनीति और धर्मनीति में विवेक और दूरदर्शिता को साथ रखता तो कदापि उसका पतन न [illegible]। और आज भी यहाँ राजनैतिक और सामाजिक [illegible] में इच्छित सफलता न मिलने का प्रधान कारण यही है कि इस समय भी हम लोगों की नस-नस में अन्धश्रद्धा की भावना प्रवाहित हो रही है। नेता समाज की इस भयङ्कर मनोवृत्ति का अध्ययन न कर, अन्य देशों की तरह अपना आन्दोलन प्रारम्भ कर देते हैं और अन्त में असफल होकर निराशा की एक ठण्डी साँस के साथ कह देते हैं कि देश तैयार नहीं है। हमारा तो यह विश्वास है कि जब तक भारतवर्ष की मनोवृत्ति में वाञ्छनीय परिवर्तन न होगा और उससे अन्धश्रद्धा दूर न हो जायगी, जब तक लोग अन्धश्रद्धावाद की ओर से हट कर बुद्धिवाद की ओर अग्रसर न होंगे, तब तक देश में कोई भी आन्दोलन पूर्ण रूप से सफल न हो सकेगा।

वाञ्छनीय स्थिति

हम ऊपर श्रद्धा और बुद्धि दोनों की संक्षिप्त वैज्ञानिक मीमांसा कर आए हैं। हम बतला चुके हैं कि मनुष्य-समाज की उन्नति के लिए इन दोनों ही गुणों की बड़ी आवश्यकता है। साथ ही हम यह भी बतला आए हैं कि इन दोनों में से किसी एक गुण का अतिरेक हो जाने पर वह समाज के लिए कितना भयङ्कर हो जाता है और उससे समाज की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थिति में क्या-क्या अनिष्ट हो सकते हैं। अब हम यह बतला देना चाहते हैं कि समाज के लिए उत्कृष्ट और वाञ्छनीय स्थिति क्या है।

मनुष्य जाति की उन्नति के लिए एक ऐसी वस्तु की आवश्यकता है जो श्रेय और प्रेय दोनों गुणों से युक्त हो। केवल श्रेय रूखा और अरुचिकर होता है, उसे मानव जाति कड़वी औषधि के समान ज़बरदस्ती चाहे ग्रहण कर ले, पर उत्साहपूर्वक, आग्रह के साथ उसे ग्रहण नहीं कर सकती। इसी प्रकार केवल प्रेय मधुर तो होता है, पर मोहप्रदायक होता है। इसलिए वह मनुष्य जाति को आगे नहीं बढ़ा सकता। अतएव उसके लिए ऐसी वस्तु चाहिए जो श्रेय हो, पर अरुचिकर न हो, उसकी अरुचि को मिटाने के लिए उसमें प्रेय का कुछ अंश मिलाना ही पड़ेगा।

हम ऊपर कह आए हैं कि बुद्धि "श्रेय" गुण से सम्पन्न है और श्रद्धा "प्रेय" गुणयुक्त है। इन दोनों का ऐसा सम्मिश्रण समाज के मनोजगत में उत्पन्न किया

जाय, जो उक्त कथन के अनुकूल हो, तभी समाज की मानसिक दशा का सुधार हो सकेगा। जब विवेक के साथ विश्वास का और भाव के साथ विचार का एक नियमित मात्रा में मेल हो जायगा, तब विवेक की रुखाई और विश्वास की मोहकता दोनों नष्ट होकर उनके द्वारा एक गुणकारी पदार्थ तैयार हो जायगा। श्रद्धा अन्धी है और बुद्धि लँगड़ी। इनका अन्ध और पङ्गु के समान जब संयोग हो जायगा, तभी समाज की गाड़ी आगे बढ़ सकेगी।

लेकिन अभी हमारे देश के लिए दिल्ली दूर है। अभी तो हम लोग अपने बड़े-बूढ़ों की आन लेकर बैठे हैं। 'हमारे बड़े-बूढ़ों ने क्या ऐसा किया था जो हम करें?' ऐसा कहते समय हम इस बात पर ध्यान देना बिलकुल आवश्यक नहीं समझते कि यदि हमारे बड़े-बूढ़ों के सभी काम निर्दोष होते तो उनके कारण देश के पैरों में ग़ुलामी की बेड़ियाँ क्यों पड़तीं? हमारा यह आज़ाद देश उन्हीं के समय में ग़ुलाम हुआ है, अतः यह प्रत्यक्ष है कि उनके कार्यक्रम में कोई भयङ्कर त्रुटि अवश्य थी। और जब तक हम उस त्रुटि को दूर न कर लेंगे, तब तक हमारा उद्धार नहीं हो सकता। उनके सद्गुणों को ग्रहण करना विवेक है, पर भेड़ियाधसान की तरह उनके सभी अच्छे-बुरे कामों का अनुमोदन करना भयङ्कर अन्ध-विश्वास।

यह अन्धविश्वास हमारी राजनीति, समाजनीति और धर्मनीति तीनों में से दूर हो जाना चाहिए। ख़ास कर धर्मनीति से तो इसका दूर हो जाना अत्यन्त आवश्यक और अपेक्षित है। हमारे धर्म की भित्ति सदाचार की नींव पर स्थित होना चाहिए। अभी तक हमारा धर्म और हमारा ईश्वर हमारे आगे एक प्रकार का हौआ बन कर खड़ा रहता है। हम लोग पाप और पुण्य तथा स्वर्ग और नरक के प्रलोभन तथा भय से धर्म की रक्षा कर रहे हैं। यदि हम धर्म की आज्ञा के विरुद्ध कार्य करेंगे तो हमारा ईश्वर हमें दण्ड देगा, वह हमें दोज़ख़ या नरक में पहुँचा देगा, और यदि हम उसकी इच्छा के अनुसार काम करेंगे तो हमें स्वर्ग मिलेगा, इत्यादि प्रलोभनों और भय के कारण ही हम इस ओर प्रवृत्त होते हैं। वस्तुतः हमारे मन में ईश्वर अथवा धर्म के प्रति कोई आन्तरिक सद्भावना नहीं होती। इस प्रकार की स्थिति अपेक्षणीय नहीं है। इस प्रकार का धर्म हमारे शरीर और आत्मा के ऊपर चिपका हुआ रह सकता है, पर वह उसमें ओतप्रोत नहीं हो सकता। जिस दिन हमें यह मालूम हो जायगा कि यह ख़ाली हौआ है, उसी दिन हमारा नङ्गा रूप नज़र आ जायगा और हमारे बराबर नास्तिक कोई भी न दीख पड़ेगा। इस प्रकार का धर्म बालू की दीवार की तरह क्षणस्थायी होता है। ऐसे धर्म से समाज का उपकार नहीं हो सकता। वास्तव में होना यह चाहिए कि हम धर्म के भीषण रूप को देख कर उसे ग्रहण न करें, प्रत्युत उसके सौन्दर्य को देख कर उसे ग्रहण करें, जिससे धर्म की आत्मा हमारी आत्मा में ओतप्रोत हो जाय। यह तभी हो सकता है जब धर्म की नींव किसी हौए पर नहीं; प्रत्युत सदाचार पर स्थित हो, जब लोग सदाचार की महत्ता को और उसके सौन्दर्य को हृदय से समझ जायँ। जिस दिन लोग त्याग के आनन्द को, बन्धुत्व की विशालता को, सत्य के स्वरूप को हृदय से समझ जायँगे, उसी दिन धर्म की सच्ची प्रतिष्ठा क़ायम होगी। फिर किसी दण्ड और पुरस्कार देने वाले ईश्वर की तथा स्वर्ग और नरक की आवश्यकता ही न रहेगी। उस दिन स्वर्ग स्वयं मनुष्य जाति का स्पर्श पाने के लिए, छटपटाता हुआ संसार में उतर आवेगा। उस दिन धर्म हमारी आत्मा में ओतप्रोत हो जायगा। कौन कह सकता है कि यह स्थिति केवल कल्पना ही में रहेगी या कभी उसका प्रत्यक्ष स्वरूप भी नज़र आवेगा?

आशा की किरण

पर इसके लिए निराश होने की कोई बात नहीं। आशा के चिन्ह धीरे-धीरे दिखलाई दे रहे हैं। आशा की किरण पश्चिम की विज्ञान-भूमि से उत्पन्न होकर क्रमशः समग्र संसार में फैल रही है। यूरोप की बर्फ़मयी भूमि से उत्पन्न होकर बुद्धिवाद का प्रकाशमय युग सारे संसार में अपनी प्रकाशमयी किरणें डालने लगा है। पश्चिम ने हमारा (भारत का) और संसार का चाहे जितना ही अपकार क्यों न किया हो, पर उसने यह एक बड़ा भारी उपकार किया है, और हम बड़े कृतघ्न होंगे यदि पक्षपात के मद में आकर उसके इस उपकार को स्वीकार न करेंगे।

हम जानते हैं कि पश्चिम को अभी बहुत कुछ सुधार करने पड़ेंगे। उसकी वर्तमान स्थिति अभिनन्दनीय नहीं है। इस समय वह भौतिकता के प्रवाह में बह रहा है। पर चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। एक दिन अवश्य ऐसा आवेगा जब उसे आध्यात्मिक सौन्दर्य को ग्रहण करना पड़ेगा। केवल ग्रहण ही नहीं करना पड़ेगा, बल्कि भौतिक सौन्दर्य की अपेक्षा उसे उच्च स्थान देना पड़ेगा। वह आध्यात्मिक सौन्दर्य किसी कल्पित ईश्वर का बतलाया हुआ न होगा। वह निर्विकार सत्य का अखण्डित सौन्दर्य होगा। इसलिए हमें पश्चिम की इस गतिविधि से घृणा न करना चाहिए, प्रत्युत इसका हृदय से अभिनन्दन करना चाहिए। जिस दिन पश्चिम भौतिक सौन्दर्य के साथ आध्यात्मिक सौन्दर्य को जोड़ देगा, जिस दिन वह ज्ञान और विज्ञान की एकता स्थापित कर देगा, उसी दिन पूर्व और पश्चिम का तथा भौतिकता और आध्यात्मिकता का एक महा सम्मेलन होगा। यह सम्मेलन दिखाऊ नहीं, प्रत्युत आन्तरिक होगा। वही स्थिति संसार के लिए अभिनन्दनीय होगी। उसी दिन बुद्धि की, मरुभूमि के समान उत्तप्त छाती पर श्रद्धा का शीतल झरना बहने लगेगा।

ओस

[पं० जयनारायण झा 'विनीत' विद्यालङ्कार]

(१)

स्नेहमय स्निग्ध साधना-दीप
तपस्या की पूजा अभिराम।
सजा जब विह्वल व्योम-प्रतीप
निभृत निशि मन्दिर में छविधाम॥

(२)

छिड़क देता है अपना प्यार
बना जीवन को अस्तव्यस्त।
और, वह जलजों पर सुकुमार,
भिगा देता है अवनि समस्त॥

(३)

ओस कहता उसको संसार,
उपेक्षा से करता है मोल।
देख कलुषित जग का व्यापार
हृदय हो जाता डाँवाडोल॥

(४)

उषा के स्यन्दन से अनुराग
अरुण ले लेता हाथ पसार।
समझ कर ऊषा का उपहार
उसे कर लेता वह स्वीकार॥

(५)

और वह बन रत्नाभ ललाम
तुम्हारे उर का होता हार।
प्रेम की पीली किरनें उसे
धरणि में देतीं समुद पसार॥

(६)

साधना जीवन का अनमोल
प्राण का यह प्रियतम उपहार।
वेदना के बन्धन को खोल,
इसे भी कर लो अङ्गीकार॥

(७)

बढ़ा अनुराग-अरुण-कर देव!
पुकारो इसको लेकर नाम।
छिपा लो फिर अन्तर में कहीं,
पा सके यह भी कुछ विश्राम॥

(८)

बनूँ मैं भी यदि हे समुदार!
व्योम-सा उज्ज्वल पारावार।
सदा को हो यह मेरा हृदय
तुम्हारा सिंहासन सुकुमार॥

मुक़द्दमेबाज़ी

(१)

बैठा रहा द्वार के ऊपर दीन मोअक्किल जब दिन रात,
तब वकील साहब के दर्शन मिले, हुई उनसे दो बात !
मिलता है उनका मिज़ाज ही नहीं, बिगड़ कर बारम्बार—
कहते हैं वे, "एक मिनट में कह अपनी बातों का सार" !!

फैलाए हैं पैर, लिए हैं हाथों में बोतल प्यारी,
ऊँघ ऊँघ कर बड़े मुक़दमे की करते हैं तय्यारी !
बेसमझे सुलझा लेते हैं वे उसकी उलझन सारी,
कहना है कुछ न कुछ अदालत में, ले चुके फ़ीस सारी !
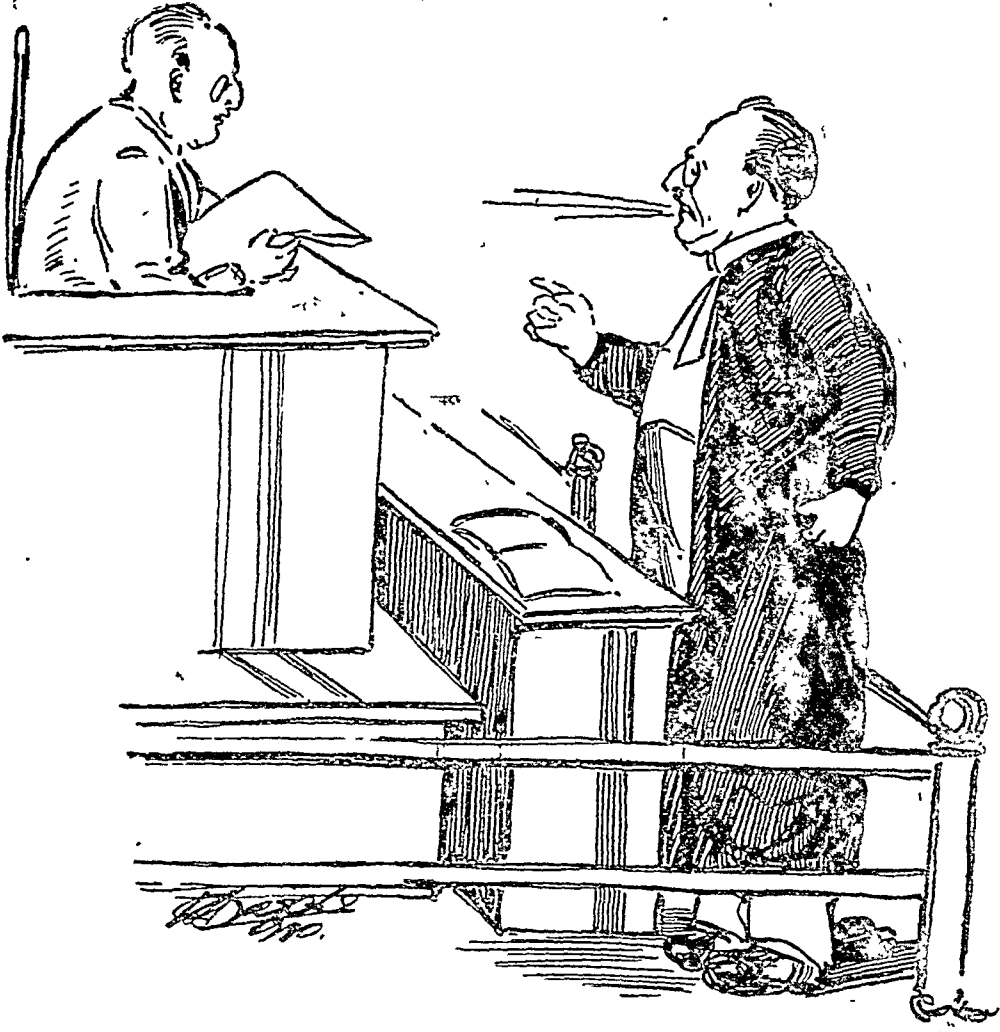
कुछ का कुछ बक गए अदालत में वे, गया मुअक्किल हार,
आकर बाहर कहा मुअक्किल से, भाई मैं था लाचार !
साहब समझे नहीं मुक़दमा, मैंने समझाया बहु बार,
सुना नहीं क्या तुमने ? उनको कितनी बतलाई फटकार ?

अजी सिड़ी था यह साहब तो, जो तुम गए मुक़दमा हार,
तुम्हें जिता दूँगा अपील में, इसका लेता हूँ मैं भार !
इतने में क्या होगा ? गहने लाओ और अधिक दस बीस,
जब जीतोगे मौज करोगे, दे दो थोड़ी तो है फ़ीस !!

पाई फ़ीस, उन्होंने दे दी है लम्बी-चौड़ी दावत,
है शराब भी, और 'बॉल' भी, सब कुछ है, कुछ पूछो मत !
करते भी वकील साहब हैं यों अपील की तय्यारी,
और जीत जाने की है उम्मीद मोअक्किल को भारी !!

हार, भिखारी बना राह का फिरता है मारा मारा,
कर ही क्या सकता वकील का भला मोअक्किल बेचारा !
क्या जाने क्या-क्या उनको वह मन ही मन देता है शाप,
क्यों रुपया दे दिया, लड़ा क्यों, उसके ही शिर है सब पाप !!
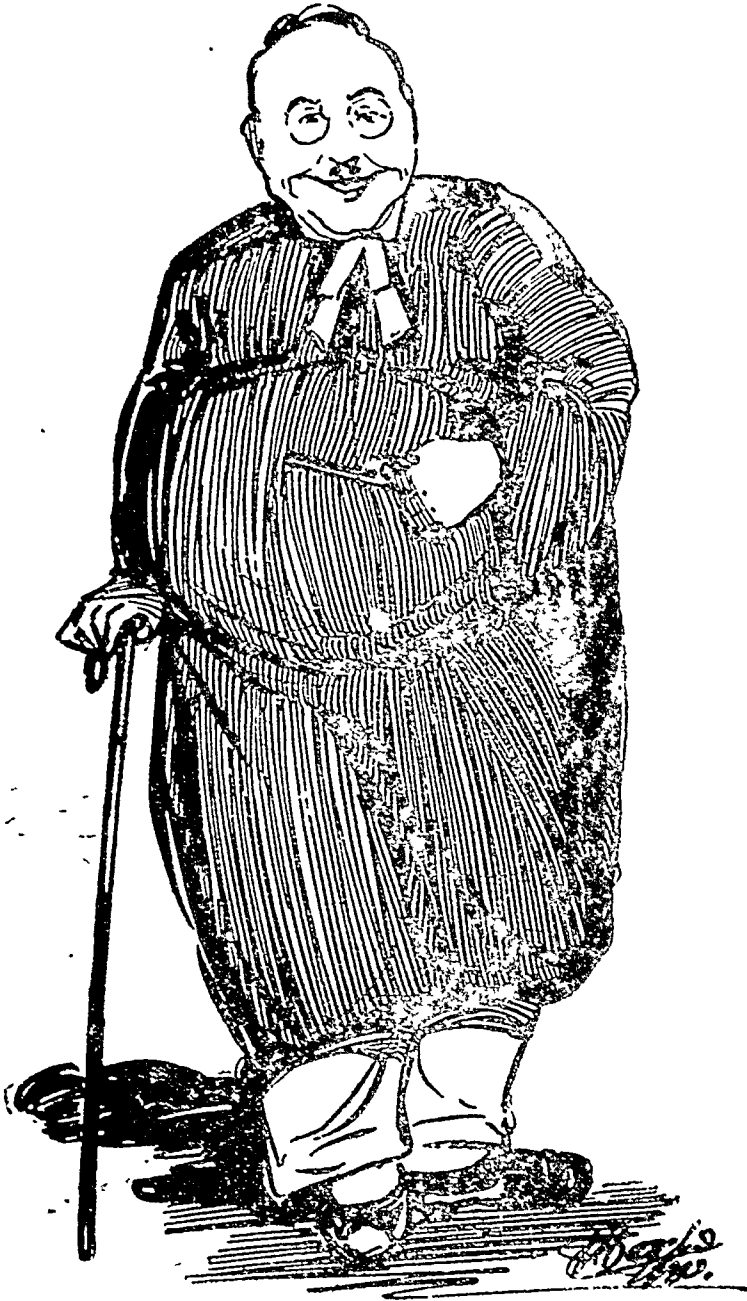
मस्त हुए वकील साहब हैं पाकर बड़े मौज से धन,
जितना मोटा उनका तन है, उतना ही छोटा है मन !
कैसे भी हो इस दुनियाँ में उनकी बात गई है बन,
आन-बान है, बड़ी शान है, साहब-सा है रहन-सहन !!

जितनी लगी कोर्ट-फ़ी वह तो मार ले गई है सरकार,
पाया जो वकील ने उसका वहन कर सके क्या वे भार ?
ले लेकर सामान विदेशी, भेज उसे भी दिया विदेश !
दोनों झोली मिली जॉनबुल को, इसमें सन्देह न लेश !!
यों वकील साहब लुटा रहे मुक्त हस्त से अपना देश !!
क्यों न भारतीयों को होवे उनके कारण क्लेश विशेष !!!

—आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव

कन्या का जन्म

[श्री० मदारीलाल जी गुप्त]
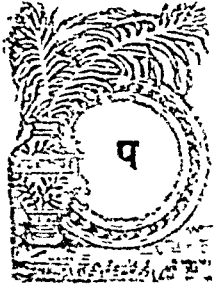
पढ़ते-पढ़ते आँख झपकने लगी तो गोकुलप्रसाद ने पुस्तक अलग रख दी। स्त्री से बोले—सो गई क्या ?

गनेशी ने उत्तर में कहा—हाँ, अब नींद आती है।

गोकुलप्रसाद—ज़रा पाँव दाब दो।

गनेशी—नींद आती है।

गोकुलप्रसाद—अरे ज़रा दाब दो। तुम तो ....

गनेशी—कल दाब देंगे।

गोकुलप्रसाद—कल क्या.........

गनेशी—आधी रात तक तो तुम किताब देखते रहते हो, बुलाने से बोलते नहीं। अब कहते हो, पाँव दाब दो।

उसके बाद दोनों सो गए।

गोकुलप्रसाद ने देखा कि एक अच्छा बढ़िया सजा हुआ कमरा है। टेबिल है, कुरसी हैं, पलँग है, मसहरी है, पङ्खे हैं, तस्वीरें हैं, बहुत सी चीज़ें हैं। रेशम की डोरी से लटकता हुआ एक सुन्दर पालना भी है। उसमें मख़मली गद्दी बिछी है। और—और उस पर एक सुन्दर बच्चा लेटा हुआ है। हाथ-पैर पटक कर खेल रहा है। गुलाब के समान मुख और पानी से भरी ताज़ी चमकदार आँखें देख कर गोकुलप्रसाद का मन आनन्द से भर गया। फिर आँख खुल गई। सवेरा हो चुका था। सफ़ेदी अच्छी तरह फैल चुकी थी।

उन्होंने स्त्री को धीरे से जगाया—सुनती हो ! ए !

गनेशी आँख खोलते ही उठ बैठी—सवेरा हो गया !

गोकुलप्रसाद ने उसे फिर लिटा कर कहा—आज एक बड़ा अच्छा सपना देखा है।

गनेशी—कैसा सपना ?

गोकुलप्रसाद—बड़ा अच्छा।

गनेशी—कहो भी।

गोकुलप्रसाद—देखा है कि राजों के ऐसा ठाट-बाट का महल है। उस महल के एक शानदार कमरे में एक सुन्दर बच्चा पालने में पड़ा झूल रहा है—ऐसा सुन्दर कि क्या बतावें ? और वह बच्चा हमारा ही है। सवेरे का सपना सच होता है न ?

गनेशी—क्या जानें, कहते तो हैं।

गोकुलप्रसाद भविष्य की आनन्दमयी कल्पना से पुलकित होकर बोले—अगर कहीं यह सच हो जाय ?

गनेशी मुस्करा कर बोली—हो जायगा।

गोकुलप्रसाद इतनी जल्दी अपनी मनोकामना की सिद्धि देख कर जैसे चकित होकर बोले—सच ?

गनेशी—सच, तीन महीने का है।

वह दिन बड़ी हँसी-ख़ुशी में बीता।

रात को गोकुलप्रसाद ने एकाएक पूछा—क्यों जी, तुमने और पहले क्यों नहीं बताया ?

गनेशी—अब तो बता दिया।

गोकुलप्रसाद—बस, मैं ईश्वर से सिर्फ़ एक लड़का चाहता हूँ। और वह लड़का ऐसा हो कि दुनिया में अपना नाम कर दे।

२

कुछ दिन बाद दोपहर को गोकुलप्रसाद जब घर आए तो मालूम हुआ कि ससुर आए हैं।

गनेशी ने कहा—छुट्टन का विवाह लग रहा है। ठीक हो गया तो बैसाख में हो जायगा। दद्दा हमको लेने आए हैं। क्या कहते हो ?

गोकुलप्रसाद—विवाह लग रहा है ? लग जाने दो, चली जाना।

गनेशी—अभी न जायँ ?

गोकुलप्रसाद—अभी जाकर क्या करोगी ?

गनेशी—दद्दा लेने आए हैं।

गोकुलप्रसाद—फिर आ जायँगे।

गनेशी—अच्छा, फिर आ जायँगे ? उतनी दूर से आए हैं, ख़ाली लौट जायँ ? फिर आवें, तुम फिर लौटा दो। हम तो जायँगे।

गोकुलप्रसाद—अभी तो जाना नहीं हो सकता। उनको पहले से चिट्ठी भेज देनी थी। हम कह देते, ले जाओ, तब आते। ऐसे ही क्यों चले आए?

गनेशी—तुम भी तो ऐसे ही जाकर कई बार ले आए हो।

गोकुलप्रसाद—कहाँ, कई बार? एक बार शायद गए थे।

गनेशी—अच्छा, एक ही बार सही। तो एक बार वह भी आए हैं।

गोकुलप्रसाद ने प्रेम से स्त्री का मुँह चूम कर कहा—नहीं, मेरी रानी, अभी मत जाओ। देखो, तुम चली जाओगी तो हम यहाँ अकेले कैसे रहेंगे?

गनेशी—तुम तो बड़ी मुश्किल करते हो।

गोकुलप्रसाद—मुश्किल तुम्हीं करती हो। हमें अकेले छोड़ कर जाने कहती हो। तुम्हीं बताओ, हम अकेले यहाँ रह सकेंगे?

गनेशी—तो तुम भी चले चलो।

गोकुलप्रसाद—न जाओ। देखो, उनसे अच्छी तरह समझा कर कह देना, जिसमें बुरा न लगने पावे।

गनेशी नहीं गई। उसके पिता लौट गए।

गनेशी ने बड़ी उमङ्ग से तरह-तरह के पकवान बनाए। फिर पति के आने की राह देखने लगी। अभी तक तो कब के आ जाते थे, आज नहीं आए। क्या बात है?

शाम हो गई। घर में अँधेरा हो चला। गनेशी लैम्प जलाने उठी। दियासलाई न जाने कहाँ गुम हो गई थी, मिली नहीं। अभी तो चूल्हा जलाया था। कहाँ रख दी? आख़िर उसने आलमारी खोल कर दर्जन में से दूसरी डिबिया निकाली और काम चलाया। इसी बीच रसोई-घर में कहीं से एक कुत्ता घुस गया। उसने खोज-खोज कर मनमाना भोजन किया। बर्तनों की भड़भड़ाहट से गनेशी दौड़ी। पर उस समय तक सब साफ़ हो चुका था। कुत्ता जीभ से मुँह पोंछता हुआ बाहर निकल गया। रसोई-घर की हालत देख कर गनेशी को बड़ा गुस्सा आया। झुँझला उठी। पर करती क्या? बर्तन साफ़ करके फिर से चूल्हा जलाया और खिचड़ी रख दी।

नौ बज जाने पर भी गोकुलप्रसाद नहीं आए। वे बाज़ार में सभा के बीच 'स्त्रियों के विषय में पुरुषों के विचार' पर व्याख्यान दे रहे थे। पुरुष होकर भी वे जाने कैसे और क्यों स्त्रियों के पक्ष में मिल गए थे और उनकी ओर से अपनी जाति के विरुद्ध वकालत कर रहे थे, जैसे स्त्रियों की हीन दशा के सभी दृश्य उनकी ही आँखों के आगे से होकर निकले हों और उन्हें देख कर उनके हृदय में भयानक आग धधक उठी हो। उन्होंने कहा—"कन्या के जन्म को ही लोग अशुभ समझते हैं। उसके पैदा होने पर शोक मनाया जाता है। लड़का होता तो कुछ नाम करता। अरे भाइयो, नाम करने वाले लड़कों की जननी यही लड़कियाँ ही होती हैं...।" और भी बहुत सी बातें उन्होंने कहीं। लोगों ने वाह-वाह की। मित्रों ने बधाई दी।

घर लौटते-लौटते ग्यारह बज गए। गनेशी सो गई थी। कई बार बुलाने पर भी जब उसने दरवाज़ा न खोला, तब गोकुलप्रसाद ने सन्धि में से हाथ डाल कर स्वयं ज़ंजीर खोल डाली। गनेशी को जगाया—उठो, ज़रा परस दो। ज़ोर से भूख लगी है।

गनेशी—कितने बजे हैं?

गोकुलप्रसाद—ग्यारह।

गनेशी—अब आए हो?

गोकुलप्रसाद—सभा हो रही थी। वहीं था। उठो तो, भूख लगी है।

गनेशी—जाकर परस खाओ।

गोकुलप्रसाद—उठो ज़रा। तुम तो—

गनेशी—परस लो भाई जाकर, हमको मत सताओ।

गोकुलप्रसाद—तुमने खा लिया?

गनेशी—भूख नहीं है।

गोकुलप्रसाद—सवेरे ही खाया था, अभी तक भूख नहीं लगी?

गनेशी खीझ कर बोली—नहीं लगी, तुम जाते क्यों नहीं?

गोकुलप्रसाद भी कुछ बिगड़ उठे—तो तुम न उठोगी?

गनेशी—नहीं।

गोकुलप्रसाद ने चिल्ला कर कहा—न उठोगी?

गनेशी—नहीं।

"अच्छा!"—कह कर गोकुलप्रसाद ने कपड़े उतार और बिस्तर पर दूसरी पाटी पर करवट लेकर लेट रहे।

मन का क्रोध दूध के उफ़ान की तरह बाहर निकला पड़ता था। जब न रोक सके, तो गनेशी को एक लात मार कर कहा—उठ यहाँ से। अपना अलग बिछा कर सो।

वह चुपचाप उठ गई। अपराध उसका ही था। मन ही मन पछताने लगी, पर अभिमान के मारे कुछ बोली नहीं। उस सूने बिस्तर पर गोकुलप्रसाद को अच्छा न लगा। कुछ देर तक पड़े-पड़े जब नींद न आई तो उन्होंने उठ कर फिर कपड़े पहने और ज़ोर से किवाड़ भड़भड़ा कर बाहर निकल गए। सोचा, कहाँ जाऊँ? नाटक की याद आ गई। वहीं चले गए। तीन बजे घर लौटे। तब तक मन कुछ शान्त हो चुका था। लेटते ही नींद आ गई। सवेरे साढ़े नौ बजे तक सोते रहे। उठ कर हाथ-मुँह धोने के बाद ही गनेशी ने आकर कहा—चलो, खा लो। बन गया है।

गोकुलप्रसाद ने एक हाथ से कमीज़ के बटन लगाते हुए दूसरे से खूँटी पर से कोट उतारा। भारी गले से बोले—नहीं।

वे जाने लगे तो गनेशी ने कोट का छोर पकड़ लिया। बोली—खाते जाओ।

गोकुलप्रसाद हाथ झटक कर चले गए।

गनेशी ने पीछे से कहा—तुमको ऐसा ही करना था तो दद्दा के साथ हमें भेज क्यों न दिया?

गोकुलप्रसाद ने मुड़ कर ज़ोर से कहा—अभी लिख दो चिट्ठी, आकर ले जायँ।

गनेशी ने चिट्ठी के बदले तार दे दिया। दूसरे ही दिन उसके पिता आए और उसे लिवा ले गए।

४

पहले चार-छः दिन, जब तक क्रोध बना रहा, तब तक तो गोकुलप्रसाद को कुछ न मालूम पड़ा, पर बाद में अकेले रहना असह्य हो उठा। एक महीना बीतते न बीतते उन्होंने पत्र लिखा—यहाँ रोटी-पानी की बड़ी तकलीफ़ है, जल्दी भेजिए। वहाँ से उत्तर आया—आपके यहाँ थोड़े दिनों में बाल-बच्चा होने वाला है। वहाँ कुछ ठीक प्रबन्ध न हो सकेगा। तब तक यहीं रहने दीजिए, बाद में भेज देंगे। और लिखा था कि यहाँ का दशहरा बड़ा अच्छा होता है। चार दिन के लिए आप ज़रूर आवें।

वहाँ दशहरा करने का प्रस्ताव गोकुलप्रसाद को भी ख़ूब जँचा। तीसरे दिन वे रवाना हो गए। इस बार ससुराल में पहले की अपेक्षा उनका अधिक आदर-सत्कार हुआ। लड़के का बाप होने वाले थे न? सास-ससुर को नाती मिलना था, इसीसे। छोटी साली और उससे भी छोटा साला दिन-रात में सैकड़ों बार 'जीजा-जीजा' करते आते थे और तरह-तरह की मनोरञ्जक बातें करके गोकुल-प्रसाद का मन प्रसन्न करते थे। शाम को ज़रा देर के लिए वे घूमने निकल जाते थे। बाक़ी दिन-रात घर में ही बीतती थी।

साली का नाम था गोमती। बारह-तेरह बरस की थी। साले का नाम गोपाल था। वह नौ-दस बरस का होगा। एक दिन गोमती ने कहा—जीजा, हमें क्या चीज़ दोगे?

गोकुलप्रसाद ने मतलब नहीं समझा। पूछा—क्यों?

गोमती—लड़का खेलाओगे तब न कहोगे क्यों? क्यों न छुट्टन?

गोपाल सिर हिला कर बोला—हूँ।

गोमती—बोलो, क्या दोगे?

गोकुलप्रसाद—हम ग़रीब आदमी क्या दे सकते हैं?

गोमती—अच्छा, बड़े ग़रीब आदमी?

गोपाल—ग़रीब आदमी!

गोमती—हमको एक अच्छी सी रेशमी साड़ी देना, बस।

गोकुलप्रसाद—अच्छा।

गोपाल—और हमको एक छोटी सी घड़ी देना, जीजा। यहाँ रक्खेंगे। देखो, इस जेब में।

गोकुलप्रसाद—अच्छा।

इसी तरह के मधुर वार्त्तालाप में मालूम ही नहीं पड़ता था कि समय कहाँ चला जाता है? बड़े मज़े के साथ दशहरा और उसके बाद बारह-पन्द्रह दिन और निकल गए।

स्त्री से उनकी बहुत कम मुलाक़ात होती थी। इतने दिनों में ज़रा-ज़रा देर के लिए कुल तीन ही बार दोनों मिले। पहिली बार की मुलाक़ात में गोकुलप्रसाद ने कहा—कहो, अच्छी तरह तो रहीं?

गनेशी—हाँ, तुम तो अच्छी तरह रहे?

गोकुलप्रसाद—अच्छी तरह !। खड़ी क्यों हो ? बैठो न।

गनेशी—अब जायँ, कोई देख लेगा।

गोकुलप्रसाद—देख लेगा तो क्या होगा ? आओ बैठो।

गनेशी—नहीं, अब जायँ। फिर आएँगे।

गोकुलप्रसाद घर लौटे तो एकदम लड़के की चिन्ता सिर पर सवार। कब होगा ? पाँच महीने बीत चुके हैं। चार और बाक़ी हैं। पास-पड़ोस के और शहर के सब छोटे लड़के उनको सुन्दर जँचने लगे। सबके प्रति उनके हृदय में प्रेम उत्पन्न हो गया। किसी चञ्चल लड़के को देखते तो मन में कहते, कैसा उछलता-कूदता चलता है ? मेरा लड़का भी ऐसा ही हो तो अच्छा। किसी बातूनी लड़के को देख कर कहते, कैसा अच्छा बोलता है ? मेरा लड़का भी ऐसा ही निकले तो ठीक। नटखट लड़कों को देख कर वह बहुत ख़ुश होते, छोटे लड़के बदमाश होते ही हैं; पर उनकी बदमाशी में कितना रस भरा रहता है ! किसी को गोद में छोटा बच्चा लिए देखते तो जी ललच कर रह जाता। इसी तरह दिन पर दिन बीतने लगे।

नौ महीने बीत जाने पर एक-एक दिन गिन-गिन कर कटने लगे। रोज़ सवेरे और शाम को गोकुलप्रसाद डाकिए की राह देखते बैठे रहते—कहो, कुछ लाए हो ? डाकिया कभी नाहीं कर देता और कभी कहता—हाँ बाबू जी, एक चिट्ठी है। बड़ी आतुरता से गोकुलप्रसाद झपट कर पत्र लेते। कभी तो वह पत्र किसी मित्र का निकल जाता कभी ससुराल का भी होता तो उसमें सिर्फ़ राज़ी-ख़ुशी की बात लिखी रहती। अन्त में वह पत्र भी आया, जिसकी इन्तज़ारी थी। लिखा था, फागुन वदी तेरस को आठ बजे रात को शुभ मुहूर्त्त में कन्या का जन्म हुआ है।

पत्र गोकुलप्रसाद के हाथ से छूट गया। आँखों के सामने अँधेरा छा गया। सिर चकराने लगा। संसार जैसे सूना हो गया। ऐसी दशा हो गई, जैसे कोई विद्यार्थी कठिन परिश्रम करने पर भी, पूरी आशा रहते हुए परीक्षा में फ़ेल हो गया हो।

फ़रियादे बिस्मिल

[कविवर 'बिस्मिल']

किस तरह का है यह मजमून समझता हूँ मैं।
आपकी बात को क़ानून समझता हूँ मैं॥

लड़ने वाले जान लें इस रङ्ग में हर्गिज़ नहीं।
मेल में जो लुत्फ़ है वह जङ्ग में हर्गिज़ नहीं॥

काम आएगा यही गुन, बस यही गुन सीखिए।
सीखनी है धुन अगर तो देश की धुन सीखिए॥

इससे हो जाती है ज़ाहिर पॉलिसी सरकार की।
पढ़ लिया करता हूँ अक्सर सुर्ख़ियाँ अख़बार की॥

हज़रते 'बिस्मिल' कहें क्योंकर कि हममें ज़ोर है।
वह लिखे हर रङ्ग में, जिसकी क़लम में ज़ोर है॥

कुमारी कृष्णा नेहरू

आप त्यागमूर्ति पण्डित मोतीलाल नेहरू की विदुषी सुपुत्री हैं। इलाहाबाद में विदेशी कपड़े की दूकानों पर पिकेटिङ्ग करने में आपने जिस अपूर्व सहनशीलता और अदम्य उत्साह का परिचय दिया है, वह स्त्री-मात्र के लिए अनुकरणीय है।

मालिका

जिसके रचयिता हैं—
हिन्दी-संसार के सुपरिचित

कवि और लेखक—पं० जनार्दनप्रसाद झा, 'द्विज' बी० ए०

यह वह 'मालिका' नहीं, जिसके फूल मुरझा जायँगे, यह वह 'मालिका' नहीं, जो दो-एक दिन में सूख जायगी ; यह वह 'मालिका' है, जिसकी ताज़गी सदैव बनी रहेगी। इसके फूलों की एक-एक पङ्खुरी में सौन्दर्य है, सौरभ है, मधु है, मदिरा है। आपकी आँखें तृप्त हो जायँगी, दिमाग़ ताज़ा हो जायगा, हृदय की प्यास बुझ जायगी, आप मस्ती में झूमने लगेंगे।

आप जानते हैं, द्विज जी कितने सिद्धहस्त कहानी-लेखक हैं। उनकी कहानियाँ कितनी करुण, कोमल, रोचक, घटनापूर्ण, स्वाभाविक और कवित्वमयी होती हैं। उनकी भाषा कितनी वैभवपूर्ण, निर्दोष, सजीव और सुन्दर होती है। इस संग्रह की प्रत्येक कहानी करुण-रस की उमड़ती हुई धारा है, तड़पते हुए दिल की जीती-जागती तस्वीर है। आप एक-एक कहानी पढ़ेंगे और विह्वल हो जायँगे ; किन्तु इस विह्वलता में अपूर्व सुख रहेगा।

इन कहानियों में आप देखेंगे मनुष्यता का महत्व, प्रेम की महिमा, करुणा का प्रभाव, त्याग का सौन्दर्य! आप देखेंगे वासना का नृत्य, मनुष्य के पाप, उसकी घृणा, क्रोध, द्वेष आदि भावनाओं का सजीव चित्रण! आप देखेंगे कि प्रत्येक कहानी के अन्दर लेखक ने किस सुगमता और सचाई के साथ ऊँचे आदर्शों की प्रतिष्ठा की है।

इसलिए हमारा आग्रह है कि आप 'मालिका' की एक प्रति अवश्य मँगा लीजिए, नहीं तो इसके बिना आपकी आलमारी शोभा-हीन रहेगी। हमारा दावा है कि ऐसी पुस्तक आप हमेशा नहीं पा सकते। अभी मौक़ा है—मँगा लीजिए! मूल्य केवल ४) रु०

व्यवस्थापिका, 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

मद्रास प्रान्त में विधवा-विवाह समस्या

मद्रास प्रान्त कट्टरपन का गढ़ समझा जाता है। जात-पाँत, छुआछूत, बाल-विवाह, इत्यादि सामाजिक दोष उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में अधिक भयानक रूप से विद्यमान हैं। देवदासी प्रथा तो इसी प्रान्त की उपज है। विधवा-विवाह का विरोध भी और प्रान्तों की अपेक्षा दक्षिण में अधिक है। हमें मद्रास में रहने और उसके कई ज़िलों में घूमने का अवसर मिला है। अपने कुछ थोड़े से अनुभव के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि विधवा-विवाह की समस्या दक्षिण भारत में बड़ा विकट रूप धारण किए हुए है।

सन् १९२०-२१ की गणना-रिपोर्ट के अनुसार मद्रास प्रान्त में कुल हिन्दू स्त्रियों की संख्या १,६२,४६,१०४ थी, जिनमें विधवाओं की संख्या ३७,१३,६६५ थी। आयु के अनुसार इनकी संख्या इस प्रकार है:—

० से १ वर्ष तक	... ...	६२
१ " २ " "	... ...	४८
२ " ३ " "	... ...	१६३
३ " ४ " "	... ...	२९९
४ " ५ " "	... ...	६१२
५ " १० " "	... ...	५,६५१
१० " १५ " "	... ...	२२,२०६
१५ " २० " "	... ...	५४,६६६
२० " २५ " "	... ...	१,४२,१३७
२५ " ३० " "	... ...	२,०२,६५१

१५ वर्ष तक की विधवाओं की संख्या सन् १९०१, १९११ और १९२१ में इस प्रकार थी:—

० से ५ वर्ष तक

सन्	१९०१	... ...	६१६
"	१९११	... ...	६७०
"	१९२१	... ...	१,१९४

५ से १० वर्ष तक

सन्	१९०१	... ...	२,७१२
"	१९११	... ...	४,०५३
"	१९२१	... ...	५,६५१

१० से १५ वर्ष तक

सन्	१९०१	... ...	१८,०१५
"	१९११	... ...	१८,२५१
"	१९२१	... ...	२२,२०६

ज़रा देखिए, किस प्रकार बाल-विधवाओं की संख्या सन् १९०१ से सन् १९११ में और सन् १९११ से सन् १९२१ में लगातार बढ़ती गई है। अन्य प्रान्तों में विधवा-विवाह के प्रचार के द्वारा जहाँ इन बाल-विधवाओं की संख्या को कम करने का प्रयत्न किया जा रहा है, वहाँ मद्रास प्रान्त में इनकी उत्तरोत्तर वृद्धि से क्या यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि उधर अभी इस सुधार के प्रचार की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जा रहा है? गणना-रिपोर्ट के पृष्ठ १०२ पर लिखे निम्न वाक्य से हमारे कथन की पुष्टि होती है:—

"The variation between the returns for 1911 and those for 1921 is very slight . . . . . . The

greatest difference is in the high proportion of widows found in Madras, due, of course, to the custom which in certain castes forbids the re-marriage of widows."*

अर्थात—"सन् १९११ और सन् १९२१ की गणनाओं में बहुत मामूली अन्तर है।..............परन्तु सबसे बड़ा भेद विधवाओं की संख्या में है, जोकि मद्रास में पाई जाती हैं। इसका कारण कुछ जातियों में विधवाओं के पुनर्विवाह पर रुकावट का होना है।"

दक्षिण भारत में विधवा-विवाह का सबसे अधिक विरोध ब्राह्मणों की ओर से होता है। शारदा एक्ट का भी जितना विरोध मद्रास से, और उसमें भी विशेषतः ब्राह्मणों की ओर से, हुआ उतना—बङ्गाल को छोड़—शायद अन्य किसी प्रान्त से नहीं हुआ। इन ब्राह्मणों में बाल-विवाह का अतिशय प्रचार और विधवा-विवाह का घोर विरोध है, इसीका यह फल है कि उनमें विधवाओं की संख्या मद्रास प्रान्त की अन्य जातियों की अपेक्षा सबसे अधिक है। सन् १९२१ की गणना-रिपोर्ट के अनुसार इस प्रान्त में सम्पूर्ण ब्राह्मण स्त्रियों की संख्या २,२८,५८८ थी, जिनमें विधवाओं की संख्या ५५,०२४ थी। आयु के अनुसार इन ब्राह्मण विधवाओं का ब्यौरा इस प्रकार है :—

०—५ वर्ष	तक ...	...	११
५—१२ ,,	,, ...	...	१५४
१२—१५ ,,	,, ..	...	५४०
१५—२० ,,	,, ...	...	१,६५२
२०—४० ,,	,, ...	...	१२,६४८

मद्रास प्रान्त की अन्य प्रधान जातिओं में विधवाओं की संख्या इस प्रकार है :—

नाम जाति	स्त्रियों की कुल संख्या	विधवाओं की संख्या
क्षत्रिय ...	६३,६११ ...	६,८१०
चैट्टी (वैश्य) ...	१८,२२१ ...	३,२३२
कोमटी (वैश्य)...	६४,१७४ ...	२२,०३१
वल्लाला (शूद्र) ...	५,१४,८२२ ...	६०,४४१

* *Census Report for Madras Presidency Part II, p. 102.*

आयु के अनुसार इन विधवाओं की संख्या इस प्रकार है :—

आयु	क्षत्रिय	चेट्टी	कोमटी	वल्लाला
१ से ५	५	०	२	४८
५ " १२	१६	७	७३	१८८
१२ " १५	८६	५	२१७	२१३
१५ " २०	३६२	४०	६६६	१,२०८
२० " ४०	२,३६८	८१२	६,१८७	२१,४०८*

इस तालिका से स्पष्ट है कि मद्रास की प्रत्येक जाति में बाल-विधवाओं की संख्या अधिक है, पर ब्राह्मणों में तो सबसे अधिक है।

इस बाधित वैधव्य का परिणाम क्या हो रहा है? वही जो सर्वथा स्वाभाविक और अनिवार्य है, अर्थात् कुलक्षय, जातिक्षय और दुराचार-वृद्धि। मद्रास प्रान्त के मालाबार प्रदेश में मुसलमानों का ज़ोर है। वहाँ पर प्रताड़िता और निराश्रया हिन्दू विधवाएँ मुसलमानों के चङ्गुल में फँस, धर्म-भ्रष्ट हो जाती हैं और मुसलमानों की संख्या-वृद्धि का कारण हो रही हैं। इस प्रान्त के अन्य तीन प्रदेशों में—अर्थात् तामिल, तेलगू (आन्ध्र) और कर्नाटक में—हिन्दू विधवाएँ ईसाई पादरियों के आश्रम में चली जाती हैं। इस प्रान्त के ईसाई और मुसलमान दोनों ही हिन्दू विधवाओं को बेधड़क उड़ाते हैं, पर किसी हिन्दू—क्या ब्राह्मण और क्या अब्राह्मण—के कान पर जूँ नहीं रेंगती। कहते हैं, प्रति वर्ष सैकड़ों हिन्दू स्त्रियाँ, जिनमें अधिकांश विधवाएँ होती हैं, मद्रास प्रान्त से भगाई जाकर निज़ाम हैदराबाद पहुँचाई जाती हैं। मद्रास में हमें एक विश्वसनीय व्यक्ति ने बताया था कि दक्षिण भारत की हिन्दू स्त्रियाँ गुण्डों द्वारा उड़ाई जाकर सीलोन (लङ्का) और रङ्गून (वर्मा) तक ले जाई जाती हैं और चूँकि इन देशों में तैलङ्गी (मद्रासी) हज़ारों और लाखों की संख्या में आबाद हैं, इसलिए वहाँ अच्छे दामों पर बेच दी जाती हैं। कुम्भकोणम—जो कुलीन ब्राह्मणों का एक बड़ा गढ़ समझा जाता है—में हमें एक सुधार-प्रेमी वकील ब्राह्मण सज्जन ने बताया कि इस नगर से हर साल दस-पाँच कुलीन ब्राह्मण विधवाएँ नदी के

* देखिए मद्रास प्रान्त की गणना-रिपोर्ट सन् १९२१, भाग २, पृष्ठ १२६।

उस पार मुसलमानों के हाथ चली जाती हैं, पर कुम्भकोणम के किसी भी ब्राह्मण को इस भयङ्कर जातिक्षय की ओर ध्यान देने की फ़ुर्सत नहीं है। यही ब्राह्मण, यदि इनका कोई सजातीय बोझ से दबे हुए किसी ग़रीब मजूर के सिर से बोझ उतरवाने के लिए उसका स्पर्श कर ले अथवा ब्राह्मण-रूढ़ि के अनुसार माथे से लेकर नाक के अगले भाग तक सफ़ेद-पीली रेखाओं का टीका न लगावे, तो उसे जाति से बाहर निकालने के लिए तुमुल आन्दोलन करना और पञ्चायत करना अपना "परम धर्म" समझते हैं। विधवा-विवाह का विरोध जिस प्रकार ब्राह्मण करते हैं, उसी प्रकार इस प्रान्त के अब्राह्मण भी करते हैं। जिस प्रकार ब्राह्मणों में विधवाओं का निष्कर्षण, धर्षण और प्रताड़न होता है, उसी प्रकार अब्राह्मणों में भी। इस मामले में दोनों ही समान दोषी हैं। हमें ऐसा कहने की आवश्यकता इसलिए हुई कि दक्षिण भारत में ब्राह्मण-अब्राह्मण में राजनैतिक अधिकारों और सरकारी नौकरियों की छीनाझपटी के लिए प्रायः झगड़े होते रहते हैं। परन्तु जहाँ सामाजिक सुधार का और विशेषतः विधवाओं की रक्षा और उनके विवाह का प्रश्न है, वहाँ दोनों ही रूढ़ियों के ग़ुलाम हैं। मद्रास के कुछ-एक प्रसिद्ध नेताओं से हमने इस विषय में बातचीत की और इस उदासीनता का कारण पूछा। वे कहने लगे कि मद्रास प्रान्त में अभी तक हिन्दू-मुसलिम एकता है। ऐसे प्रश्नों को उठाने से इस एकता में बाधा पड़ने का भय है। इस डरपोक और नीच मनोवृत्ति को हम क्या कहें! इनकी माँ-बहिनों को बेशक विधर्मी उड़ा ले जायँ और धर्मभ्रष्ट करें, पर वे चूँ तक न करेंगे, क्योंकि इससे हिन्दू-मुसलिम एकता नष्ट हो जायगी!! उनके इस तर्क पर हमें हँसी भी आती है और दुःख भी होता है। भला ऐसी एकता का भी कुछ अर्थ है?

इस विरोधपूर्ण और उदासीन मनोवृत्ति का ही यह फल है कि सम्पूर्ण मद्रास प्रान्त में ऐसी बहुत कम संस्थाएँ मिलेंगी जो विधवाओं की रक्षा, उद्धार अथवा उनकी शिक्षा में कुछ विशेष दिलचस्पी लेती हों। और ऐसी संस्थाएँ या आश्रम, जो खुल्लमखुल्ला विधवा-विवाह का प्रचार करते हों, सारे प्रान्त भर में आपको अँगुलियों पर गिनने लायक़ ही मिल सकेंगे। मद्रास प्रान्त के चार भाग हैं—आन्ध्र (तेलगू), तामिल, मालाबार और कर्नाटक। इनमें से विधवा-विवाह के लिए यदि कहीं कुछ प्रयत्न किया जाता है तो वह आन्ध्रप्रदेश में ही। शेष तो सुप्तप्राय ही हैं। जिस प्रकार बङ्गाल में श्रीयुत पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने सबसे पूर्व विधवा-विवाह का आन्दोलन उठाया था, उसी प्रकार मद्रास प्रान्त में रायबहादुर पं० वीरशिलङ्गम् पन्तलू इस आन्दोलन के जन्म-दाता हुए हैं। आप आन्ध्र प्रदेश के ही रहने वाले थे और कई वर्ष तक मद्रास नगर के सरकारी कॉलेज में तेलगू के अध्यापक रहे थे। इसी अवसर में आपने विधवाओं की दुर्दशा का अनुभव किया और इसके लिए लेख और वाणी द्वारा ख़ूब आन्दोलन किया। आपने अपने जीवनकाल में कुछ विधवा-विवाह भी कराए थे। आपने मृत्यु से पूर्व अपनी सारी जायदाद का एक ट्रस्ट बना दिया और इसके अधीन आन्ध्र प्रान्त के प्रधान नगर 'राजामुन्द्री' में एक विधवा-आश्रम, एक हाईस्कूल तथा अन्य एक-दो संस्थाएँ क़ायम कीं। इस ट्रस्ट का नाम आपने "हितकारिणी सभा" रक्खा। इस ट्रस्ट द्वारा पहिले तो कई प्रभावपूर्ण विधवा-विवाह हुए, पर हमें बताया गया है कि अब इस सभा के अधिकारी कुछ वर्षों से विधवा-विवाह के प्रचार की ओर विशेष ध्यान न देकर कुछ एक विधवाओं को शिक्षा देने की ओर ही ध्यान देने लगे हैं।

इस संस्था के अतिरिक्त गत ४-५ वर्ष से सर गङ्गाराम ट्रस्ट लाहौर की विधवा-विवाह-सहायक-सभा ने अपना केन्द्र मद्रास नगर में स्थापित किया है। इस केन्द्र के अधीन कई शाखा-सभाएँ मद्रास प्रान्त के भिन्न-भिन्न नगरों में हैं। इस केन्द्र द्वारा प्रति वर्ष कई विधवा-विवाह हो जाते हैं, जिनमें कुछ उच्च कुलों में भी होते हैं। सन् १९२९ में इस शाखा-सभा द्वारा ३५ के लगभग विधवा-विवाह हुए, जिनमें १५ ब्राह्मणों में हुए। इस प्रान्त की जनता यदि विरोध वा उदासीनवृत्ति छोड़ कर कुछ सहायता करे तो इस सभा का कार्य और भी अच्छा चल सकता है।

इतने बड़े प्रान्त में, जिसमें २५ वर्ष से कम उमर वाली विधवाओं की संख्या २ लाख २६ हज़ार १०६ है, जिसके आन्ध्र (तेलगू), तामिल, कर्नाटक, मालाबार, चार बड़े-बड़े प्रदेश हैं, उसमें विधवाओं की रक्षा, उद्धार और उनके विवाह का प्रचार करने वाली केवल दो-एक संस्थाओं का होना क्या इस बात का स्पष्ट प्रमाण नहीं

है कि मद्रास-निवासी हिन्दू अभी तक इस प्रश्न के महत्व को नहीं समझ सके हैं? उत्तर भारत में जहाँ जगह-जगह आर्य-समाज और हिन्दू-सभाओं के अतिरिक्त विधवा-विवाह-सहायक सभाएँ और विधवा-आश्रम इस सुधार के प्रचार में तत्पर हैं, वहाँ दक्षिण भारत में ऐसी सुधारक संस्थाओं और आश्रमों का प्रायः अभाव क्या इस परिणाम पर पहुँचने के लिए हमें वाध्य नहीं करता कि मद्रास प्रान्त अन्य प्रान्तों की अपेक्षा इस सुधार में बहुत पिछड़ा हुआ है? हिन्दू जाति की रक्षा के लिए आवश्यक है कि इस प्रान्त के नेता इस सुधार का शीघ्र और लगन से प्रचार करें। शिक्षा और राजनैतिक आन्दोलन में अग्रसर मद्रासी हिन्दू क्या विधवा बहिनों के प्रति भी अपने कर्त्तव्य का अनुभव करेंगे?

—दीनानाथ, सिद्धान्तालङ्कार

* * *

क्यों और कैसे?

प्रत्येक मास 'चाँद' के पृष्ठों में अभागिनी बहिनों के पत्र छपा करते हैं, जिनमें स्त्रियों की विवशता और पुरुषों की बर्बरता का चित्रण होता है। सम्पादक महोदय भी उन पत्रों का यथाशक्य उत्तर देने की चेष्टा करते ही हैं, पर वास्तव में यह प्रश्न व्यक्तिगत नहीं, बहुत बड़ा सामाजिक प्रश्न है। यदि समाज इन प्रश्नों की ओर ध्यान न दे और पुरुषों की बर्बरता और स्त्रियों की विवशता तथा शक्तिहीनता को दूर करने का प्रयत्न न करे तो उसके अस्तित्व की कोई विशेष उपयोगिता हमारे जीवन के लिए न रह जायगी। प्रश्न यह है कि क्या पुरुष वास्तव में और स्वभावतः बर्बर और हृदयहीन होते हैं? क्या स्त्रियों का जीवन दुर्बलता और विवशता के सिवा और कुछ नहीं? यदि उन लोगों की यह मानसिक व्यवस्था प्रकृति-निर्मित है, तो इसमें हमारा-आपका क्या दोष? पर यदि ऐसी बात नहीं है तो समाज इसका दोषी है और उसे इस दोष का प्रतिकार करना पड़ेगा।

इस बात पर विचार करने से पता चलता है कि पुरुष उतना ही प्रेममय, श्रद्धायुक्त और सहृदय होता है जितना कि कोई स्त्री; स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान ही सबला, कार्यशीला, और स्वाभिमानिनी होती हैं। फिर हमारे वैवाहिक जीवन में ऐसी असमानता क्यों देख पड़ती है? स्त्रियाँ रोती हैं, इसलिए समाज, धर्म और रूढ़ियों ने उनके गले में अबला होने का तमग़ा डाल दिया है; पुरुष रोते नहीं, वे दुखों को दूर करने में यत्नशील होते हैं। लोग समझते हैं, पुरुष सुखी हैं—हृदयहीन होकर, सबल होकर; पर सच्ची बात यह है कि दोनों ही के मानसिक सङ्कट का पारावार नहीं है।

जीवन सुखी कैसे हो? यदि संस्कृति जीवन को सुखी बनाने में सहायक न हो सके तो इससे वही जीवन अच्छा, जब मनुष्य आनन्दपूर्वक जङ्गलों में विचरण करता फिरता था, वस्त्रों की उसे परवा न थी, फ़ैशन का भूत सवार न था, 'लूट लाना, पीस खाना' ही ध्येय था, प्राकृतिक तृष्णाओं की अबाध्य रूप से तृप्ति कर ली जाती थी। जिस प्रकार कलाओं के ज्ञान से उनके सूक्ष्मतम आनन्द का अनुभव होता है, उसी प्रकार जीवनकला या संस्कृति से जीवन के सूक्ष्मतम आनन्द का अनुभव होना चाहिए। पर होता है ठीक उल्टा, इस संस्कृति ने जीवन को घोर दुखमय बना दिया है।

जीवनकला के बहुत से अङ्ग हैं, पर मेरा मतलब यहाँ स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध से है। जिस प्रकार किसी चित्र में मुख का सौन्दर्य विशिष्ट होता है, उसी प्रकार जीवन के चित्र में स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध प्रमुख है, इससे मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक, सभी प्रेरणाओं की तृप्ति होती है, और सुख की परिणति भी यही है। मनुष्य हज़ार कष्टों को प्यार की एक चितवन पर हँसते-हँसते सह ले सकता है, एक मुस्कुराहट के लिए वह शूली को चूम लेता है, एक चुम्बन पर वह संसार का सारा राज्य न्यौछावर कर सकता है। स्त्रियों में जीवनदायिनी शक्ति होती है और इसी शक्ति का दूसरा रूप मातृत्व है। वास्तव में यदि हमारी संस्कृति ने हमें कुछ दिया है तो वह प्रेम की एक सूक्ष्म, अपूर्व अनुभूति है। पर क्या हम इस प्रेम का यथोचित प्रयोग कर रहे हैं? यदि करते तो इस हाहाकार के बदले संसार में आनन्दोल्लास सुन पड़ता।

सारे संसार में ही विवाह का प्रश्न बड़ा जटिल हो रहा है। लिङ्ग विषय पर बहुत से ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं और प्रतिदिन लिखे जा रहे हैं। वैज्ञानिक मस्तिष्क इस विषय पर अन्वेषण करने में लगे हुए हैं। हैवलॉक

एलिस ने तो इस विषय पर बहुत बड़ी पुस्तक लिख डाली है। स्टोप्स की 'मैरिड लव' (विवाहित प्रेम) भी एक गवेषणापूर्ण रचना है। इसमें वैवाहिक जीवन के सुखी होने के लिए दो-तीन बातों पर विशेष ज़ोर दिया गया है। एक तो है परस्पर का समुचित ज्ञान और विश्वास; दूसरी बात है लिङ्ग-सम्बन्धी उपचारों का सम्यक ज्ञान ; और तीसरी बात, जिस पर लेखिका ने स्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया है, यह है कि उनका व्यवहार सदा इस प्रकार का होना चाहिए कि उनके पति बराबर उनका पीछा करते रहें; उनके पति को कभी तृप्ति न हो जाए, बल्कि उनके संसर्ग और उनसे बातचीत करने की लालसा सदा बनी रहे। उन्होंने स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध पर एक रोमाण्टिक छाप लगा दी है। यदि हम जॉन गैल्सवर्दी का अध्ययन करते हैं, वह गैल्सवर्दी जिसने अपने नाटकों और उपन्यासों में जीवन के प्रत्येक अङ्ग पर विचार किया है और जिसने यूरोप के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक संस्थाओं का बड़ा ही अकपट और निष्पक्ष विश्लेषण किया है, तो पता चलता है कि वहाँ के सामाजिक नियमों में भी कोई सार नहीं रह गया है। उसने अपने उपन्यास 'दि फ़ारसाइट सेज' में यह प्रदर्शित किया है कि स्त्रियों को हज़ार बाहरी स्वतन्त्रता देने पर भी पुरुषों के हृदय के निगूढ़तम प्रदेश में यह भाव छिपा रहता है कि स्त्रियाँ उनकी 'सम्पत्ति' मात्र हैं।

इस उपन्यास में नवयुवती इरेन का विवाह एक बहुत ही धनी पुरुष से होता है। वह पुरुष उससे प्रगाढ़ प्रेम करता है, परन्तु उसके मन में यह भाव बैठा रहता है कि इरेन उसकी सम्पत्ति है। इससे खीझ कर इरेन एक दूसरे ग़रीब नवयुवक से खुल्लमखुल्ला प्रेम करने लगती है और समाज के लाञ्छनों को हँसते-हँसते सह लेती है। इस युवती का चरित्र-चित्रण इस सुन्दर रीति से किया गया है कि इसे कोई बुरा कहने का साहस ही नहीं कर सकता। अपने एक नाटक 'दि फ़ैमिली मैन' में गैल्सवर्दी यहाँ तक पहुँच गया है कि विवाह-सम्बन्ध को ही निषिद्ध ठहराने की उसने चेष्टा की है। उसका कहना है कि विवाह में प्यार की सीमा का अतिक्रमण हो जाता है, क्योंकि पाने की कामना में जो सुख है वह पाने में नहीं। यदि स्त्री-पुरुष परिणय-सूत्र में बद्ध न होकर केवल प्यार के ही सूत्र में बँधे रहें तो जीवन बड़ा ही सुखकर हो। इस नाटक की नायिका किशोरी एथेन अपने पिता से रुष्ट हो दूसरे शहर में रहने लगती है। एक दिन उसका पिता बिल्डर उसे मना लाने जाता है। वहाँ पहुँचने पर पिता देखता है कि एथेन एक युवक के साथ रहती है। बिल्डर मन ही मन जल उठता है, वह पूछता है—एथेन, यह क्या ?

एथेन—'यह क्या' क्या ?

बिल्डर—क्या तुमने इस—इस—के साथ विवाह किया है ?

एथेन (शान्ति से)—हाँ, कार्य-रूप में।

बिल्डर—और क़ानून के अनुसार ?

एथेन—नहीं।

पिता क्रुद्ध होकर चला जाता है। आगे चल कर एथेन अपनी दासी, बालिका एनी को भी, जो एक युवक से प्रेम करती है, इसी प्रकार की सलाह देती है :—

एथेन—मान लो, तुम उसके साथ विवाह कर लेती हो, और बाद को वह अपने घर की चारपाई, मेज़ या कुरसी के समान तुम्हें भी एक 'सामग्री' समझने लगता है, तब ?

एनी—मैं—मैं भी उसके साथ वैसा ही व्यवहार कर सकती हूँ, कुमारी !

एथेन—इस भुलावे में न पड़ो एनी !

एनी—उसका व्यवहार बहुत ही कोमल है।

एथेन—क्योंकि इस समय वह तुम्हें चाहता है; तुम्हारे प्रति उसका अनुराग कम होने दो, और तब देखना वह तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करता है। × × × एनी ! इन सब बातों का रहस्य यह है कि आज जो युवक तुम्हारे प्रेम में दीवाना बना फिरता है, वही—विवाह हो जाने पर—जब यह समझ लेता है कि तुम उससे पृथक नहीं हो सकती तो वह तुम्हारी उपेक्षा करने में भी कुण्ठित न होगा।

एथेन किसी प्रकार विवाह-सूत्र में बँधना नहीं चाहती, पर अपने प्रेमी-युवक गुई को हृदय से प्यार करती है। इसके विपरीत गुई उससे विवाह कर लेना चाहता है, क्योंकि बिना विवाह के कोई उसकी पारिवारिक स्थिति को स्वीकार नहीं करता। एक बार गुई अपनी प्रेयसी को धीरे से विवाह की अँगूठी पहना

देता है। कहता है—देखें तो, यह तुम्हारे हाथ में कैसी शोभती है?

एथेन—गुई, आग के साथ खेल न करो।

लेकिन गुई विवाह के लिए व्यग्र है; वह फिर कहता है—मनोबल! मनोबल! एथेन, कुछ मनोबल ग्रहण करो। क्या तुम इतना भी नहीं कर सकतीं?

यह कह वह विवाह का लाइसेन्स उसके सामने रख देता है। एथेन घबराती है और कहती है—मैं नहीं जानती, मैं नहीं जानती इसका परिणाम क्या होगा।

गुई—इसका परिणाम निश्चय ही मङ्गलमय होगा। तुम शीघ्रता करो। जीवन में आने वाले अवसरों को हमें न चूकना चाहिए।

एथेन (उसके मुँह की ओर देखते हुए)—गुई, तुम क्या अपने अन्तःकरण से प्रतिज्ञा करते हो कि मुझे अपने मार्ग का बाधक न बनने दोगे और न स्वयं मेरे मार्ग के कण्टक बनोगे?

गुई—निश्चय ही, यह तो एक हाथ से लेना और दूसरे से देना है।

दूसरे दिन वे विवाह-सूत्र में बद्ध हो जाते हैं। इस कथानक से क्या निष्कर्ष निकलता है, यह हमारे सहृदय पाठक स्वयं विचार करें। यहाँ स्वभावतः दो प्रश्न हमारे सामने आते हैं—(१) प्यार या विवाह? (२) यदि विवाह तो किस शर्त पर?

यदि हम अपने यहाँ के वैवाहिक सम्बन्ध पर ध्यान देते हैं तो कहना पड़ता है कि यह सम्बन्ध न प्यार ही है, न विवाह ही; यह केवल अभिभावकों की मुराद है। ऐसी दशा में यदि युवक अपनी अपरिचिता परिणीता को प्यार करने में असमर्थ हो और अपने हृदय की प्यास को किसी अन्य रमणी के प्रेमामृत से बुझाने लगे तो भला उसका दोष ही क्या है? आख़िर प्रेम तो ज़ोर करने वा रोने-चिल्लाने से नहीं होता। किसी युवती ने, जब उससे पूछा गया कि वह किसी युवक-विशेष को क्यों प्यार करती है, ठीक ही उत्तर दिया था—क्योंकि वह वह है और मैं मैं हूँ। इसके सिवा, इसका और कोई कारण नहीं बताया जा सकता।

इसी प्रकार यदि कोई युवती अपने पति को प्यार न कर सके तो भला उसका क्या दोष है? यदि आज हमारी अनपढ़, भोली-भाली स्त्रियाँ अपने व्यभिचारी, नीच और दूषित पतियों को देवता समझती हैं तो इसे हम प्यार नहीं कह सकते, यह तो केवल अन्धपरम्परा का मोहमय साम्राज्य है। शान्ति तो उस अवस्था का नाम है, जब शक्ति रखते हुए विपत्ति में स्थिर रहा जाय, पर जो निराश्रय है, निरुपाय है, उसकी शान्ति ही क्या? ठीक यही दशा हमारी स्त्रियों की है। सबसे पहली बात तो उनकी शिक्षा का अभाव है। इसके कारण न तो उन्हें अपने स्वत्वों और अधिकारों का ज्ञान हो पाता है और न वे स्वतन्त्रतापूर्वक कुछ सोच-समझ ही सकती हैं। दूसरी बात यह है कि वे निरुपाय हैं, पारिवारिक सम्पत्ति में उनका कोई भाग नहीं, न वे स्वतन्त्र जीविका ही उपार्जित कर सकती हैं। यदि आज हमारी बालिकाओं को स्वतन्त्र जीविका निर्वाह की कलाएँ सिखाई जायँ तो वे इतनी दुखी न हों जितनी आज हैं। यूरोप में चाहे जितने तलाक़ होते हों, पर वहाँ की स्त्रियों का जीवन इतना कष्टमय नहीं है, क्योंकि वे दूसरों की मुहताज नहीं। वे अपनी शक्ति पर निर्भर होकर स्वच्छन्द और सुखी जीवन व्यतीत कर सकती हैं।* यूरोपियन और एंग्लो

---

*कभी-कभी हम स्वयं भी सोचा करते हैं कि आख़िर साधारण स्त्रियों और वेश्याओं में अन्तर क्या है। आजकल हमारे समाज में स्त्रियाँ अपने पति से जीविका पाने का हक़दार केवल इसलिए समझी जाती हैं कि वे अपने पति की स्त्री हैं, उसके भोग की सामग्री और सुख का साधन हैं। यदि हमारी स्त्रियों की जीविका का सचमुच यही आधार हो तो कहना पड़ेगा कि उनमें और बाज़ारू औरतों में (जहाँ तक जीविका का सम्बन्ध है) कोई अन्तर नहीं। बाज़ारू स्त्रियाँ अपने रूप और कौशल से बहुतों को प्रसन्न करके जीविका कमाती हैं, साधारण स्त्रियाँ केवल एक ही को प्रसन्न करके। परन्तु दोनों का साधन एक ही है—शारीरिक रूप का प्रदर्शन, हाव-भाव और कटाक्ष की बिकरी। इसलिए हम कह सकते हैं कि ऐसी गृहिनियाँ एक प्रकार की छोटी-मोटी वेश्याएँ ही हैं और वेश्याएँ ऐसी ही गृहिनियों का पूर्ण विकसित स्वरूप हैं।

यह बात सुनने में बड़ी अरुचिकर प्रतीत होगी। परन्तु थोड़ा सा विचार करने से इसकी सत्यता में सन्देह नहीं रह जायगा।

इण्डियन समाज की कोई भी बालिका, चाहे वह बड़े से बड़े घर की क्यों न हो, स्वतन्त्र जीविका निर्वाह की कला अवश्य सीखती हैं, जैसे टाइप करना, शॉर्टहैण्ड, हिसाब-किताब, पत्र-व्यवहार, दरज़ी का काम, अस्पतालों में नर्स का काम, थियेटर और सिनेमा में नाचना, गाना वा पात्रों के काम, पत्रों के सम्वाददाता के काम, इत्यादि-इत्यादि। इसका फल यह होता है कि वे किसी का बोझ बन कर नहीं रहतीं। हृदय मिल जाने पर वे विवाह करती हैं, और पीछे अनबन होने पर—क्योंकि मनुष्य आख़िर मनुष्य ही है—सर पर हाथ रख कर रोतीं नहीं, वरन स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करती हैं। स्वतन्त्र होने ही से उनकी शक्तियों के विकास का पूर्ण अवसर मिलता है। बड़े दुःख की बात है कि इसी अभाव के कारण हमारी बहिनें जो कवि होतीं, लेखिका होतीं, वीणावादिनी और नृत्यकारिणी होतीं, वीरप्रसवा वा व्याख्याता होतीं, आज सिवा पुरुषों की तुच्छ सेविका के और कुछ नहीं हो पातीं। अनेक बार प्रतिकूल परिस्थितियों के थपेड़े खाकर ज़ार-ज़ार रोती हुई वे अस्थि-पञ्जर के सिवा और कुछ नहीं रह जातीं। सुतरां यदि हम जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाना चाहते हैं तो हमें दो-एक बातों पर अवश्य ध्यान देना होगा। पहली तो यह है कि हम

मानव जाति के चरित्र पर से इस कलङ्क को दूर करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे ज़रूरत पड़ने पर कोई काम करके वे स्वयं अपनी जीविका कमा सकें। जो स्त्रियाँ अपने पति के साथ रहती हैं और कोई स्वतन्त्र व्यवसाय नहीं करतीं, उन्हें भी अपने पति से केवल इसलिए जीविका नहीं लेनी चाहिए कि वह उनका पति है, बल्कि इसलिए कि वे उसके घर का प्रबन्ध करती हैं, उसके खाने-पीने और आराम के लिए सामान जुटाती हैं। इस विषय में पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध की कल्पना यह होनी चाहिए कि पति घर के बाहर परिश्रम करता है, पत्नी घर के भीतर। परन्तु पत्नी जो जीविका पाती है, वह अपने परिश्रम के लिए, न कि पत्नीत्व के लिए।

इसलिए हमारी सम्मति है कि स्त्रियों को जीविका कमाने योग्य कोई शिक्षा अवश्य देनी चाहिए।

—सम्पादक 'चाँद'

अपनी बहिनों को साधारण रूप से शिक्षिता ही न बनाएँ, वरन उन्हें स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने के योग्य भी बनावें, ताकि उनकी निराश्रयता और पराधीनता दूर होकर उनमें अपने को मनुष्य समझने की शक्ति आवे, उनके अविकसित गुणों का विकास हो और वे प्रफुल्ल और स्वतन्त्र मनुष्य की भाँति संसार में विचरण कर सकें।

इसके अनन्तर प्रश्न आता है विवाह का। विवाह हमारे जीवन के नितान्त आवश्यकीय संस्कारों में है या नहीं, यह एक विचारणीय समस्या है; पर इतना तो निश्चय है कि विवाह मनुष्य के जीवन में एक अवर्णनीय माधुर्य लाता है—ऐसा माधुर्य, जिसके बिना जीवन वास्तव में नीरस-सा प्रतीत होता है। पर आजकल के अन्धाधुन्ध विवाह से माधुर्य के बदले जीवन में विष मिल जाता है। विवाह की भित्ति सर्वथा प्रेम पर ही निर्भर होनी चाहिए। दो स्वावलम्बी, स्वतन्त्र विचरते हुए जीव जब अपने जीवन को एक-दूसरे के बिना सर्वतः रिक्त पावें, जब उन्हें अपना जीवन परस्पर प्यार बिना निरर्थक प्रतीत हो, जब एक आत्मा दूसरी आत्मा में तल्लीन हो जाने के लिए विह्वल हो उठे, वास्तव में उसी अवस्था में उनका सच्चा विवाह सम्भव है। इस अनन्त, अजेय प्रेरणा के बिना जो सम्बन्ध हो वह विवाह नहीं, बिल्कुल भ्रम है। यहाँ जात-पाँत और धर्म का कोई सवाल ही नहीं उठ सकता। यदि सच पूछा जाय तो दो विभिन्न धर्मावलम्बी स्त्री-पुरुष, यदि वे सच्चे हों तो अपना विभिन्न धर्म रखते हुए परस्पर विवाह-सूत्र में आबद्ध हो सकते हैं। मनुष्य धन बिना रह सकता है, धर्म बिना रह सकता है और अन्न बिना भी रह सकता है, पर वह प्यार बिना नहीं रह सकता। इस संसार में शायद ही कोई ऐसा हो जिसने कभी किसी वस्तु को प्यार न किया हो, और यदि जीवन के मूल तत्वों की ओर दृष्टि-पात किया जाय तो वहाँ प्यार का एक चिरन्तन स्रोत ही दीख पड़ेगा। मनुष्य निरा धन के लिए नहीं जीता, अन्न के लिए भी नहीं जीता और धर्म के लिए तो शायद ही कभी; वह जीता है तो किसी न किसी के प्यार के लिए। पर आज के सामाजिक और धार्मिक नियमों ने प्यार का गला घोंट डाला है। जिस प्रकार हम अपनी दुर्बलता और दरिद्रता दूर करने के लिए राजनीतिक स्वतन्त्रता चाहते हैं, उसी प्रकार आत्मिक

अशान्ति और कष्ट दूर करने के लिए हमें सामाजिक और धार्मिक स्वतन्त्रता चाहिए, ताकि जीवन को नए ढङ्ग से सङ्गठित करके हम इसे सम्पन्न और पूर्ण बना सकें।

—विश्वमोहनकुमार सिंह,
एम० ए०, बी० एल०

* * *

यौवन का महत्व

जहाँ शक्ति और सौन्दर्य का साम्राज्य विस्तृत है, वहाँ वैभव तथा ऐश्वर्य का स्वतन्त्र विहार है। हम शैशव को स्नेह-दृष्टि से देखते हैं, वार्द्धक्य की ओर हमारी घृणा होती है, किन्तु हम पूजा करते हैं किसकी? यौवन की। हिन्दू पौराणिकों ने जब देवलोक का सन्धान पाया तो कहा—वहाँ अपरिणत शैशव नहीं है, बुढ़ापा भी नहीं है, किन्तु है केवल यौवन की छटा। देवतागण चिर तरुण हैं, देवियाँ चिर तरुणी हैं। न जाने किस माया-मन्त्र के प्रताप से यौवन रूपी विद्युत स्वर्गलोक में अचल हो गया है।

यौवन के पुजारी तो सभी हैं, परन्तु उसके स्वरूप को कितनों ने पहचाना है? शरीर में जब मादकता की व्याप्ति होती है, जब हृदय इन्द्रियों का दास हो जाता है, उस समय स्थिर-चित्त होकर अपने भविष्य पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की शक्ति किसमें रहती है? भोग-विलास की तीव्र गति में युवक-युवतियाँ यहाँ तक प्रवाहित हो जाते हैं कि उन्हें अपने कर्त्तव्य तक का ध्यान नहीं रहता। वे संज्ञाहीन हो जाते हैं और विवेक उनसे बहुत दूर चला जाता है। हम यह समझने का कदापि प्रयत्न नहीं करते कि हम स्वयं सुन्दर हैं, शक्तिमान हैं और महत्वपूर्ण एवं उच्चतम सुख का स्रोत भी हममें ही मौजूद है। यदि हममें इतनी क्षमता होती कि हम अपने स्वरूप को पहचान लेते तो यौवन-रूपी नद में हमें कभी भी ज्वार-भाटे का सामना न करना पड़ता।

सुना है, युवकों में जागृति हुई है। और यह भी सुनने में आया है कि तरुणी-दल भी उठने का प्रबल प्रयास कर रहा है। पर यह बात बड़ी खटकती है। जागरण ही तो तारुण्य का स्वरूप है। प्रकृति की सुप्त शक्ति के पूर्ण उद्‌बोधन का नाम ही तो यौवन है। अतः यौवन चिर-जाग्रत है।

आधुनिक काल में यौवन का प्रवाह दूसरी ओर बह चला है। युवकों की दृष्टि में स्थैर्य, शान्ति तथा विवेक वृद्धों के गुण हैं। अतः इन महत्वपूर्ण गुणों को वे अपने निकट फटकने तक नहीं देते। उनका तो यही ख़्याल है कि यौवन भोग की अवस्था है। यही धारणा इस समय युवक भारत की उन्नति में रोड़ा अटका रही है। जो हो, हम सभी यह समझ रहे हैं कि यौवन का एकमात्र ध्येय भोग है। यही कारण है कि हमें अब तक यौवन के यथार्थ स्वरूप को पहचानने में सफलता नहीं मिली है। अतएव यौवन के दुरुपयोग करने का दायित्व हमारे ही ऊपर है। युवा भोगी है, यह बात दूसरों के मुँह से सुन कर और उस पर विश्वास करके हम लोगों ने स्वयं ही अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार ली है।

हमारी समझ है कि हमारा नवयुवक समाज यौवन को जिस रूप में देख रहा है, वह उसका वास्तविक रूप नहीं है। क्या भोग ही में यौवन की महत्ता है? क्या त्याग में वह शक्ति, वह महत्व नहीं है? आजकल एक विचित्र हवा बह चली है। जो भारतीय पाश्चात्य सभ्यता के एकनिष्ठ पुजारी हैं, और केवल वे ही नहीं, बल्कि भारतीयता के रङ्ग में रँगे होने का दावा करने वाले भी, यही कहते हैं कि धर्म-कर्म का समय तो पीछे भी मिल जायगा। यौवन भोग का काल है।

इस कथन का अनुमोदन करने वालों को शायद धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं है। उनकी स्थूल दृष्टि में, अपरिपक्व बुद्धि में, धर्म त्याज्य और यौवन भोग की वस्तु है।

यौवन आता है, किन्तु उसके एक हाथ में अमृत है और दूसरे में विष, एक ओर त्याग है और दूसरी ओर भोग। प्रकृति की अन्तःप्रेरणा से कभी-कभी उन दोनों में एकत्र सामञ्जस्य भी हो जाया करता है। परन्तु अपने को सबसे अधिक बुद्धिमान समझने वाला मनुष्य अपनी बुद्धि के अभिमान में अन्धा होकर स्वयं ही अपना सर्वनाश कर बैठता है।

देश के दुर्भाग्य से इस समय यही सङ्कट भारत पर भी उपस्थित हो गया है। यौवन को आत्मविस्मृति का युग बताने वाली मन्त्रणा का अभाव नहीं है। जो मनो-

वृत्ति यौवन को आत्मसमाहित तपस्या से विचलित करके प्रमाद के पथ की ओर अग्रसर करती है, उसी की वृद्धि आज जातीय जागरण के नाम से प्रसिद्ध हो रही है।

धर्म ने जाति की रक्षा की है और धर्म ही इसे डूबते से बचा सकता है, यह वृद्धों की प्रलापोक्ति नहीं है। जिस प्रकार यौवन में मादकता और भोग-वासना उत्पन्न होती है, उसी प्रकार धर्म की इच्छा भी प्रबल होती है। यह प्रायः देखा गया है कि भोगी लोग अपनी जाति की उन्नति के लिए कुछ भी नहीं कर सकते। यदि जाति को उन्नति-पथ पर अग्रसर करने में किसी ने कुछ भी काम किया है तो वह है त्यागी और तपस्वी। युवकों की यह विजय-श्री देखने का सौभाग्य अब हम भारतियों को नहीं रहा। यही कारण है कि इस समय भारतवर्ष जैसे धन-धान्य-पूरित देश में भी कष्ट है, दुःख है और इसे परतन्त्रतारूपी स्वर्ण-शृङ्खला में आबद्ध होना पड़ा है।

एक बार अतीत की ओर सरसरी दृष्टि दौड़ाइए। भारतवर्ष में आदर्श पुरुषों की कमी नहीं। इस समय भी प्रत्येक भारतवासी के हृदय-मन्दिर में मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी की पुनीत प्रतिमा प्रतिष्ठित है। उनके नाम की याद आते ही राम-राज्याभिषेक, चित्रकूट में श्रीराम-भरत-मिलन, श्रीरामचन्द्र के चौदह वर्ष का वनवास, आदि उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का स्मरण हो आता है। यदि हम यह कहें कि ये घटनाएँ उनके यौवन-काल में घटित हुई थीं तो क्या कोई इस पर विश्वास करेगा ? रामायण का महत्व एकमात्र युवक-युवती की कठोर तपस्या पर ही अवलम्बित है। युवक राम राजकुमार होकर भी तपस्वी थे और युवती सीता, जो राजा जनक की नन्दिनी और दशरथ जैसे प्रतापी राजा की पुत्रवधू थीं—तपस्विनी थीं। भोग करने का सामर्थ्य और अवसर रहने पर भी राम और सीता ने जो वैराग्य-भाव प्रदर्शित किया था, वह अत्यन्त गम्भीर तथा महत्वपूर्ण है। वनवास-काल में राम-सीता के दाम्पत्य-जीवन के विराट गाम्भीर्य एवं मधुरता को सोचते ही लोग आत्मविस्मृत हो जाते हैं। जब लक्ष्मण का विपुल आत्मत्याग और सुदृढ़ इन्द्रिय-संयम, राजनन्दिनी उर्मिला का पाषाणी बन कर धैर्य धारण करना, आदि कथाएँ याद आती हैं, तब हम श्रद्धा और विस्मय से अभिभूत हो पड़ते हैं। राजतपस्वी भरत की कहानी पढ़ने पर तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। क्या उनके निकट भोग-वासना की सब सामग्रियाँ मौजूद नहीं थीं ? परन्तु क्यों उन्होंने उन सब पर लात मार कर त्याग-मार्ग का अवलम्बन किया ? एक बार विचारपूर्वक पढ़िए तरुणी माण्डवी की कथा। किसकी प्रेरणा से वह यौवन ही में योगिनी हुई ? राम-सीता वन में रह कर तप में लीन थे, किन्तु राजभवन में हज़ारों भोग्य वस्तुओं के रहते हुए इस तरुण दम्पति ने एकनिष्ठ वैराग्य-साधना का जो उज्ज्वल दृष्टान्त संसार के सामने उपस्थित किया, क्या उसकी समता करने वाली कोई दूसरी घटना भी किसी ने इतिहास में पढ़ी है ?

श्रीमती रोमियो

आप हाल ही में तञ्जोर ज़िले में तिरुनरुर म्युनिसिपैलिटी की सदस्या नियुक्त की गई हैं।

सम्भव है यह इतिहास न हो, केवल कवि की कल्पना हो। परन्तु उस कल्पना में ही कितनी शक्ति है ! रामायण में गार्हस्थ्य धर्म के जय-चित्रण का एकमात्र अव-

लम्बन है राजपरिवार के युवक-युवतियों की कठोर तपस्या। रामायण का यही आदर्श है; रामायण यदि कुछ पाठ सिखाता है तो यह कि यौवन-काल भोग का नहीं, त्याग का काल है। त्याग-अस्त्र के द्वारा यौवन पर पूर्ण विजय लाभ होता है।

भारत के नवयुवको! यदि तुम्हारी इच्छा गार्हस्थ्य-धर्म को उच्च तथा यशस्वी बनाने की है तो तुम इन व्रत-चारी तपस्वी राजदम्पति की पुण्य-कथा सुनो और उन्हीं
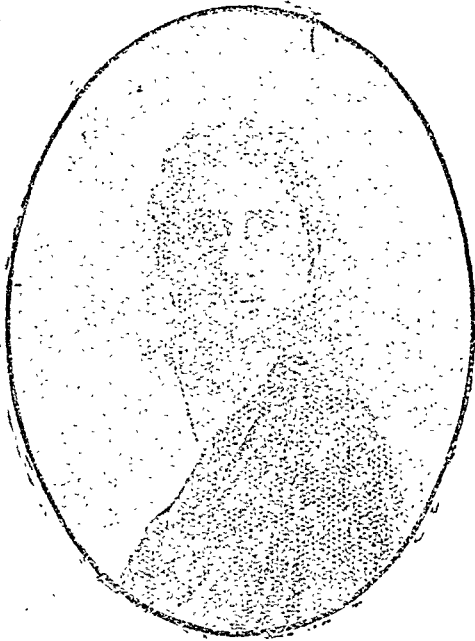
डॉक्टर मुथुलक्ष्मी रेड्डी
गवर्नमेण्ट की वर्तमान दमन नीति के विरोध में आपने मद्रास काउन्सिल की सदस्यता और उसके वाइस-प्रेसिडेन्टशिप दोनों पदों से इस्तीफ़ा दे दिया है।

के समान त्याग-मार्ग का अवलम्बन करो। इससे तुम्हारी कामनाग्नि मिट जायगी, हृदय शक्ति और भक्ति से पूर्ण हो जायगा और गृहस्थ आश्रम में तुम्हारी आत्मविजय की मधुर रागिनी गूँज उठेगी।

हज़ारों वर्ष से भी अधिक पहले की एक और तरुण राजदम्पति की कथा याद आती है। क्या भारतवर्ष युवक सिद्धार्थ और युवती यशोधरा को कभी भूल सकेगा? पूर्ण यौवन में किसके आह्वान ने इस राजकुमार को सांसारिक माया से दूर हटाया था? चौबीस वर्ष की अवस्था में किसकी प्रेरणा से मानव-जाति के कल्याण के निमित्त युवक सिद्धार्थ ने त्याग-व्रत का अनुष्ठान किया था? बारह वर्ष पश्चात जब वे तपःसिद्धि लाभ कर पिता की राजधानी में लौट आए, उस समय तरुणी यशोधरा की क्या अवस्था थी, यह अत्यन्त हृदय-द्रावक और दयनीय कथा है। तपस्विनी यशोधरा के हृदय में पति-प्रेम का प्रबल प्रवाह तीव्र वेग से प्रवाहित हो रहा था, किन्तु तो भी वह पाषाण-प्रतिमा की भाँति निश्चल थी। पुत्र राहुल ने पूछा—माँ, मेरे पिता जी कहाँ हैं?

यशोधरा ने उत्तर दिया—देखो, जन-समाज में जिनका मस्तक सर्वापेक्षा उन्नत है, वही तुम्हारे पिता हैं।

राहुल—मैं क्या कह कर उनसे बातें करूँगा?

यशोधरा—पिता के धन पर पुत्र का पूर्ण अधिकार है। तुम जाकर अपने पिता से पितृधन माँग लो। पुत्र ने नत-मस्तक हो पिता के निकट पितृसम्पत्ति की याचना की।

बुद्धदेव बोले—यह भिक्षापात्र ही मेरा सर्वस्व है। यही मैं तुम्हें देता हूँ।

पुत्र पिता का सर्वस्व प्राप्त कर उन्हीं के मार्ग पर चल पड़ा। यशोधरा निर्वाक हो सब देखती रही। बुद्ध जब निकट आए तो वह बोली—क्या आपकी यही इच्छा है कि मुझे जीवन-पर्यन्त विरहाग्नि से सन्तप्त होना पड़े?

गम्भीर स्वर में उन्हें उत्तर मिला—हम दोनों की वियोग-कहानी सुन कर संसारवासी आँसू बहावेंगे। इससे उनका हृदय स्वच्छ और निर्मल होगा। हम दोनों का विरह ही उन लोगों के लिए निर्वाण का पथ-प्रदर्शक होगा। क्या तुम इस महान आत्मत्याग की महिमा अनुभव कर अपने जीवन को सार्थक नहीं कर सकती हो?

तरुणी तपस्विनी के मुख से उत्तर में एक शब्द नहीं निकला। वह झट तरुण तापस के चरणों में गिर पड़ी।

इसके और भी कई सौ वर्ष बाद दीप्त सूर्य के समान अकस्मात एक युवक तपस्वी का आविर्भाव हुआ। भारत की उस विकट परिस्थिति में, जब बौद्ध धर्म उन्नति के शिखर पर था और सनातनधर्म का ह्रास हुआ जाता था, अचानक संन्यासिप्रवर भगवान शङ्कर का आविर्भाव हुआ। उस षोडश वर्षीय नररत्न ने सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करके वेद की ऋचाओं से प्रत्येक दिशा को प्रति-

ध्वनित कर दिया। उस प्रतिध्वनि ने देश को उद्बुद्ध बनाया। इस महत्वपूर्ण कार्य से उसे क्षण भर का भी अवकाश नहीं था। क्या उस कर्मयोगी शङ्कर ने युवावस्था को भोग-विलास में व्यतीत किया? कदापि नहीं। उसकी चमत्कारपूर्ण सफलता का एकमात्र कारण उसकी एकान्त कर्त्तव्य-निष्ठा और त्याग ही तो था। उस महान युवक का आविर्भाव मानव-जाति के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

बङ्ग-भूमि को पुनीत करने वाले महाप्रभु चैतन्य का नाम सम्भवतः किसी भी भारतीय से नहीं छिपा है। उन्होंने युवावस्था में त्याग-धर्म का पालन कर साधारण जनता में भक्ति का जो प्रचार किया है, प्रेम के महत्व को जिस प्रकार संसार के सम्मुख उपस्थित किया है, वह अतुलनीय है। यही उनकी विमल कीर्त्ति का सुदृढ़ स्तम्भ है। उनकी पत्नी विष्णुप्रिया ने भी अपने पूज्य स्वामी का पथ अनुसरण करके हमारे सामने त्याग के अद्भुत आकर्षण का एक और उदाहरण उपस्थित कर दिया।

श्रीरामकृष्ण परमहंस एवं उनके सुयोग्य शिष्य, प्रकृत स्वदेश-भक्त, स्वामी विवेकानन्द का नाम विश्वविश्रुति है। वेदान्त-केशरी कर्मयोगी विवेकानन्द ने अपने दुन्दुभी-नाद से जगत को कम्पित कर दिया था। उनके व्यक्तित्व का ऐसा आतङ्क छाया हुआ था कि संसार की अधिकांश जातियों ने उन पर विश्वास किया और उनके उपदेशों से लाभ उठाया था। पर क्या हम यह पूछने का साहस कर सकते हैं कि उनकी इस अपूर्व विजय का आधार क्या था? उत्तर निश्चित है—यौवन में उनका त्याग।

इसी प्रकार और भी अनेक कहानियाँ हैं। जहाँ देखिए, वहीं यौवन की जय है! किन्तु उस विजय का मूल भोग नहीं, त्याग है। मनु ने कहा है—

युवैव धर्म्मशीलः स्यात्।

जो लोग युवा हैं, त्याग करने की शक्ति भी उन्हीं में है। अस्तु।

ऐसे ही ऐसे युवकों की, जो दृढ़तापूर्वक त्याग-धर्म का पालन कर सकें, इस समय देश में ज़रूरत है। भारत का उद्धार भी ऐसे ही त्यागी युवकों के हाथ में है। जननी-भूमि इस समय इन कर्मशील युवकों की प्रतीक्षा कर रही है। उसका यह आह्वान कितने लोग सुनेंगे?*

—भुवनेश्वरप्रसाद, बी० ए०

* * *

कुमारी ग्रेस वेदान्ताचारी, बी० ए०

आप हाल ही में कुरनूल म्युनिसिपैलिटी की सदस्या नियुक्त की गई हैं।

स्त्रियों के अधिकार और वेद

महर्षि व्यास ने कहा है कि यदि किसी राष्ट्र को उन्नत बनाना हो, यदि किसी राष्ट्र में क्रान्ति उत्पन्न करनी हो, और यदि किसी राष्ट्र के ऊपर घिर आने

* एक बँगला लेख के आधार पर। —लेखक

सारे विपत्ति के बादलों को दूर करना हो, तो स्त्रियों को शिक्षित बनाओ, उन्हें उन्नत करो। उनके शारीरिक और मानसिक विकास की ओर ध्यान दो। उनके तैयार होते ही सारा राष्ट्र तैयार हो जायगा, उनके उद्बुद्ध होते ही सारे राष्ट्र में चेतनता फैल जायगी और उनके द्वारा लगाई हुई क्रान्ति की आग सारे राष्ट्र में धू-धू करके लहक उठेगी।
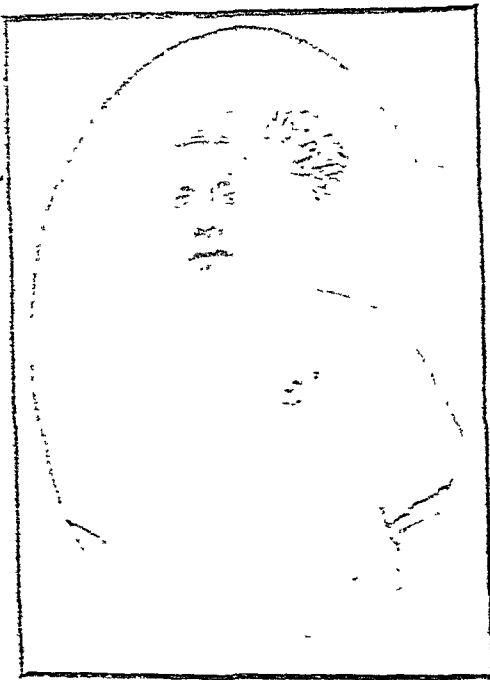
श्रीमती रेड्डी

आप इस वर्ष के लिए कोचीन के मेटर्निटी एण्ड चाइल्ड वेलफ़ेयर एसोसिएशन की वाइस-प्रेसिडेण्ट निर्वाचित हुई हैं।

महर्षि व्यास के इस बात की सचाई का अनुभव आज हम पग-पग पर कर रहे हैं। जिस किसी भी राष्ट्र के कार्य में स्त्रियों ने भाग लिया, वही राष्ट्र उन्नत हुआ, उसी राष्ट्र के बल, बुद्धि और विद्या के विकास से सारा संसार आलोकित हो उठा। बहुत दूर जाने की ज़रूरत नहीं। आज जो देश सभ्य कहे जाते हैं, संसार जिन देशों का लोहा मानता है, उन यूरोप, अमेरिका, रशिया, आदि देशों की ओर दृष्टिपात करने से ही इस बात की सार्थकता प्रमाणित हो जायगी। स्त्रियों के समुन्नत होने के कारण ही आज अफ़ीमची चीन भी स्वतन्त्र हो उठा है। लेकिन हमारा वृद्ध भारत तो आज भी सुख की नींद सो रहा है। आज भी उसकी वाणी में अस्फुट स्वरों में सुन पड़ता है—'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्।' इसका परिणाम क्या होगा?

हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा पाश्चात्य प्रणाली से हो और वे पाश्चात्य रहन-सहन का अनुकरण करें। वह प्रणाली न तो हमारे देश के लिए उपयोगी है और न आवश्यक। किन्तु हमारे देश की स्त्रियाँ अरुण-रागरञ्जित सूर्य-रश्मियाँ भी न देख पावें, इसका क्या अर्थ है? यह रिवाज, यह प्रचलन क्या किसी भी देश, जाति और समाज के लिए हितकर कहा जा सकता है? क्या और भी किसी देश के बर्बर समाज ने अपने आधे उत्तमाङ्ग को इस प्रकार अमानुषिक प्रथाओं के बन्धन में बाँध कर जीवन बिताने के लिए छोड़ रक्खा है? ऐसी बात भी क्या किसी ने कहीं सुनी है? लेकिन सचराचर जो बात कहीं देखी-सुनी नहीं गई, वही हमारे देश में होती है और बेचारी शक्ति-सामर्थ्य-हीन दुर्बल स्त्रियाँ मूक पशुओं की भाँति इतना अन्याय-अत्याचार चुप होकर सहती हैं।

स्त्रियाँ दुर्बल हैं, शक्तिहीन हैं, अतएव वे सताई जाती हैं, पीड़ित होती हैं और कुचली जाती हैं। समाज में उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है, उनका कोई अधिकार नहीं है। बात-बात में वेद और धर्मशास्त्रों की दुहाई देने वाले हिन्दू-समाज से हम पूछते हैं कि उसने इस सम्बन्ध में वेदों और धर्मग्रन्थों का अनुगमन कितनी दूर तक किया है?

निरुक्तकार यास्काचार्य ने 'अपत्य' शब्द का निर्वचन करते हुए स्त्रियों के अधिकारों पर अच्छा प्रकाश डाला है। कन्या दायभाग (पैत्रिक सम्पत्ति) की अधिकारिणी है या नहीं, इस सम्बन्ध में निरुक्त के चार सिद्धान्त हैं, चारों ही बड़े जटिल और विषम हैं, एक-दूसरे से मेल नहीं खाते। उनमें पहला यों है—

अविशेषेण मिथुनाः पुत्राः दायादाः।

अर्थात्—पुत्र और पुत्री दोनों ही पैत्रिक सम्पत्ति के समान अधिकारी हैं।

इसी का समानार्थक एक और श्लोक हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः ।
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥

इसका स्पष्ट अर्थ है कि पुत्र और पुत्री दोनों ही दाय के समान अधिकारी होते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में स्वयम्भु के पुत्र मनु ने यह बात कही है।

एक ओर तो ऐसे मत मिलते हैं, दूसरी ओर एक और भी सिद्धान्त है—'न दुहितर इत्येके।' अर्थात् पुत्री को पैत्रिक सम्पत्ति में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं है। ये महाशय इतना कह कर ही सन्तुष्ट नहीं होते, इसके साथ एक उपपत्ति भी जोड़ देते हैं—'स्त्रीणां दान विक्रयातिसर्गाः विद्यन्ते न पुंसः।' अर्थात् स्त्रियों दानका, विक्रय और त्याग होता है, पुरुषों का नहीं। इसलिए स्त्रियों को पैत्रिक सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं है। इस उक्ति के सम्बन्ध में हम अपनी ओर से कुछ कहना नहीं चाहते। थोड़ी बुद्धि रखने वाले लोग भी अनायास ही इसकी गहराई का पता लगा सकते हैं।

तीसरे साहब का कहना है—'पुंसोऽपि।' अर्थात यदि दान, विक्रय और त्याग के कारण ही कन्याओं को पैत्रिक सम्पत्ति का अनधिकारी कहा जाता है, तो इस प्रकार पुरुष भी अनधिकारी हैं, क्योंकि पुत्र भी क्रीतक और दत्तक होते हैं। महाभारत के शुनःशेप आख्यान में दान और विक्रय की बात स्पष्ट ही लिखी है। विश्वामित्र के द्वारा मधुच्छन्द आदि पुत्रों का त्याग भी प्रसिद्ध ही है। फिर, यदि इन्हीं कारणों से पैत्रिक सम्पत्ति का अधिकार छीनना हो तो केवल स्त्रियों से ही क्यों, पुरुषों से भी यह अधिकार छीन लेना चाहिए। नहीं तो दोनों ही समान अधिकारी हैं, हिस्सेदार हैं।

एक चौथा भी मत है। यह अपना राग अलग ही अलापता है—"अभ्रातृमती वादः।" अर्थात जो कन्या भ्रातृहीना हो, पैत्रिक सम्पत्ति उसीको मिल सकती है, दूसरी को नहीं।

यह तो निरुक्तकारों के चार सिद्धान्त हुए। अब इन परस्पर भिन्न मतों में से किसका अवलम्बन करके हमें जीवन के मार्ग में अग्रसर होना चाहिए, इसका निर्णय करने के लिए हमें थोड़ी सी अक़्ल ख़र्च करनी पड़ेगी। और इस प्रकार स्वयं ही अपने मार्ग का निर्णय करके प्रकृत पथ पर अग्रसर होना होगा।

पहला सिद्धान्त साधारणतः ही स्पष्ट और उपयुक्त है। उसमें न कोई तर्क है, न कोई उपपत्ति। सीधी तरह से एक सच्ची बात कह दी गई है। साधारण बुद्धि भी उसे समझ सकती और मान सकती है। किन्तु दूसरे

श्रीमती इन्दिरा देवी

आप गण्टूर के प्रमुख कॉङ्ग्रेस-कार्यकर्त्ता डॉ० जी० वी० अलैय्या की भतीजी हैं। गण्टूर में ठहरे हुए सत्याग्रही स्वयंसेवकों के भोजन-व्यय के लिए आपने वहाँ की सत्याग्रह कमिटी को ११६) रु० दान दिया है।

मत के सम्बन्ध में भी ठीक यही बात नहीं कही जा सकती। स्वभावतः ही यह सन्देह उठता है कि यदि इन्हीं कारणों से स्त्रियाँ पितृ-धन से वञ्चित हैं तो पुरुष ही क्यों यह लाभ उठावें? आख़िर उनका भी तो दान होता है?

वे भी तो बेचे और त्याग दिए जाते हैं ? फिर लड़कियों के लिए ही यह क्रूर क़ानून क्यों बनाया जाय ?

तीसरे मत से यही सन्देह पुष्ट होता है। उनका अपना कोई मत नहीं है। वे कहते हैं यदि स्त्रियों को अधिकार नहीं है तो पुरुषों को भी नहीं है। और यदि हैं तो दोनों ही को हैं। कोई भी समझदार आदमी इस बात से इन्कार नहीं कर सकता।
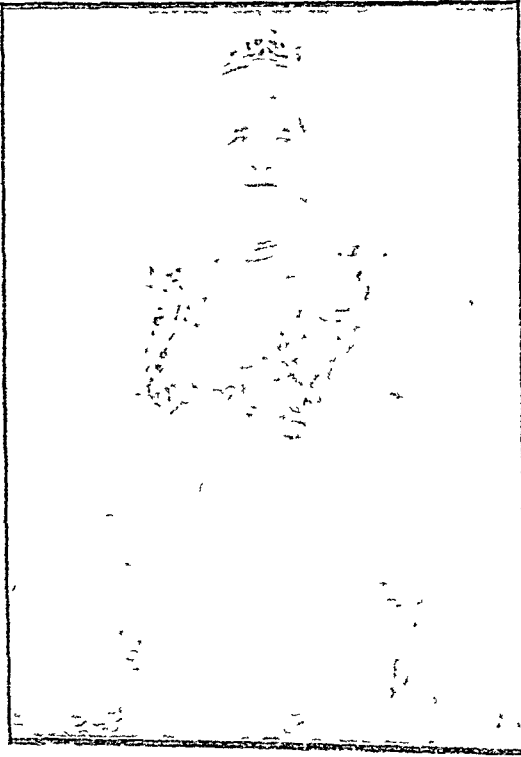
अन्तर्राष्ट्रीय महिला-सम्मेलन की सभानेत्री

आप मार्क्विस ऑफ़ एबर्डीन की पत्नी हैं। स्त्रियों की स्वाधीनता के आन्दोलन में आरम्भ से ही आपने महत्वपूर्ण भाग लिया है। जब से 'चाँद' प्रकाशित हुआ है, आप इसकी ग्राहिका हैं और 'चाँद' को बड़े आदर की दृष्टि से देखती हैं।

चौथा सिद्धान्त अर्थहीन सा जँचता है। यह बात क्यों मान ली जाय कि भ्रातृहीना कन्या ही पैत्रिक सम्पत्ति की अधिकारिणी हो सकती है, दूसरी नहीं ? इसके लिए न तो कोई कारण है, न प्रमाण। अतः यह मान लेने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

स्वभावतः ही बुद्धि इस बात को स्वीकार कर लेती है कि पैत्रिक सम्पत्ति में कन्याओं का हिस्सा बराबर होना चाहिए और यही बात शास्त्र-सम्मत है।

इसी प्रकार अन्य अधिकारों के सम्बन्ध में भी स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही हैं। स्त्रियों को यदि क्षेत्र और अवकाश मिले तो वे क्या नहीं कर सकतीं ? उन्हें अशक्त और अबला समझना भूल है, और उनके विकास को रोकना है। पहले उन्हें काम करने का मौक़ा दीजिए और फिर देखिए वे प्रत्येक कार्य में हमेशा आपसे दो क़दम आगे रहती हैं या नहीं।

—रवीन्द्र शास्त्री 'विरही'

* * *

देशव्यापी क्रान्ति में स्त्रियों का भाग

आजकल स्त्री-स्वातन्त्र्य की धूम मची हुई है। स्त्रियाँ हर एक बात में पुरुषों का मुक़ाबला करना चाहती हैं। पाश्चात्य देशों में स्त्रियों ने बहुत अंशों में पुरुषों की समानता का पद प्राप्त भी कर लिया है। हमारी कुछ भारतीय बहिनें भी उनका अनुकरण कर रही हैं। वे सभाओं में व्याख्यान देती हैं, म्युनिसिपैलिटियों और काउन्सिलों के चुनाव में भाग लेती हैं, राजनीतिक अधिकारों के लिए आन्दोलन करती हैं। किन्तु जहाँ सुधार करने की ज़रूरत है, जहाँ अग्रसर होने की आवश्यकता है, उधर न तो किसी का ध्यान जाता है और न कोई उसकी उपयोगिता ही पर ध्यान देता है।

देश में स्वतन्त्रता का सङ्ग्राम छिड़ा हुआ है। देश की सारी शक्तियाँ इस सङ्ग्राम की सफलता के लिए व्यस्त हैं। प्रसन्नता की बात है, परदा की पुजारिन, अन्धविश्वासिनी, कोमल-हृदया, स्वभावतः भीरु और लज्जाशीला हमारी भारतीय बहिनें भी इस सङ्ग्राम में यथोचित भाग ले रही हैं। पुरुषों के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर वे प्रत्येक दिशा में अग्रसर हो रही हैं। वे धरना देती हैं, व्याख्यान देती हैं, जुलूस निकालती हैं और अब तो जेल भी जाने लगी हैं। ये शुभ लक्षण हैं। इस सङ्ग्राम में स्त्रियाँ जितना अधिक पुरुषों का सहयोग

करेंगी, स्वतन्त्रता के राजप्रासाद का मार्ग हम उतना ही अधिक शीघ्र तय कर पावेंगे। किन्तु स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र यहीं तक परिमित नहीं है। हमारा जीवन इससे कहीं अधिक विशाल है। सम्भव है, कुछ वर्षों के अथक आन्दोलन और निरन्तर बलिदान के पश्चात देश पूर्णतया स्वतन्त्र हो जाय, किन्तु हमारा कर्तव्य तो उसके बाद भी शेष न होगा। हमारे सामने एक नवीन राज्य है, जिस पर हमें शासन करना है। उस शासन में सुव्यवस्था, शान्ति और सुराज स्थापित करने के लिए अनेक सुदृढ़ क़िलों पर हमें आक्रमण करना होगा, उन्हें नष्ट करना होगा। तब कहीं विजय मिलेगी, तब कहीं हमारे दैनन्दिन जीवन में सुख और सन्तोष की रवि-रश्मि फूट उठेगी। मैं इस लेख में इन्हीं बातों पर प्रकाश डालने की चेष्टा करूँगी।

उल्लिखित राज्य कौन सा है? किस राज्य पर शासन करने के लिए हमें प्रयत्नशील बनना पड़ेगा? किस राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना करने के लिए हमें अनेक सुदृढ़ क़िलों को फ़तह करना पड़ेगा? थोड़ा ध्यान देने से ही समझ में आ जाता है कि वह राज्य अपना ही 'गृह' है। 'गृह-राज्य' को सुव्यवस्थित रूप से चलाना और उस पर शासन करना कुछ बहुत आसान नहीं है। जो स्त्रियाँ ऐसा कर पाती हैं, वे सफल महिलाएँ हैं, वे धन्य हैं।

गृह राष्ट्र के अङ्ग हैं। राष्ट्र को सुखी और सुव्यवस्थित बनाने के लिए गृह को सुखी बनाना होगा। राष्ट्र में शान्ति स्थापित करने के लिए घर-घर का कलह दूर करना पड़ेगा। राष्ट्र को उन्नत और शिक्षित बनाने के लिए घरों को उन्नत बनाना पड़ेगा। राष्ट्र को स्वाधीन बनाने के लिए घरों में स्वाधीनता का पुण्य-प्रकाश फैलाना पड़ेगा। बिना ऐसा किए, सफलता प्राप्त करने की आशा दुराशा मात्र है। यही हमारा प्रकृत मार्ग है।

किन्तु घरों को कैसे उन्नत बनाया जाय? कैसे उन्हें शिक्षा और स्वावलम्बन के मधुर आलोक से उज्ज्वल कर दिया जाय? यह प्रश्न स्वभावतः ही हमारे सामने उठ खड़ा होता है।

उत्तर निश्चित है—सत्य, प्रेम और अकपट व्यवहार के द्वारा हम घरों को स्वर्ग बना सकती हैं। इनके अभाव में स्वर्ग में भी नरक की सृष्टि हो सकती है। किन्तु इनके अतिरिक्त कुछ और भी बातें हैं, जो हमारे गार्हस्थ्य जीवन का अन्तराय बन रही हैं। उन्हें दूर करने से ही हमारे घरों में सत्य, प्रेम, ममता और सहानुभूति का झरना झरने लगेगा। हमने उन्हें अपने पथ का दुर्गम दुर्ग कहा है। हमें उन पर भी विजय पानी होगी। मैं आगे इन्हीं के सम्बन्ध में कहूँगी।

विवाह की सब से सरल प्रणाली

दक्षिण भारत (पल्ली कोण्डा, वेल्लोर तालुक) में एक सभा है, जो बिना किसी ख़र्च के विवाह करने में ग़रीबों की सहायता किया करती है। इस चित्र के बीच में उपरोक्त सभा के सभापति महोदय बैठे हुए हैं और उनके पास वे भाग्यवान दम्पति खड़े हैं, जिनका विवाह दिन भर उन्होंने कराया है। इन विवाहों में जात-पाँत का विचार नहीं किया जाता।

हमारी उन्नति का बाधक पहला और सबसे दुर्गम जो क़िला है, वह परदा है। परदा की अस्वाभाविकता, अनुपयोगिता और बुराइयों के सम्बन्ध में आप 'चाँद' के इन्हीं कॉलमों में बहुत-कुछ पढ़ चुके हैं। उस सम्बन्ध में और कुछ न कह कर मैं केवल यही कहूँगी कि भारतवर्ष की स्त्रियों का स्वास्थ्य और सौन्दर्य परदा के कारण ही नष्ट हुआ जा रहा है। यदि भारत की नारी जाति
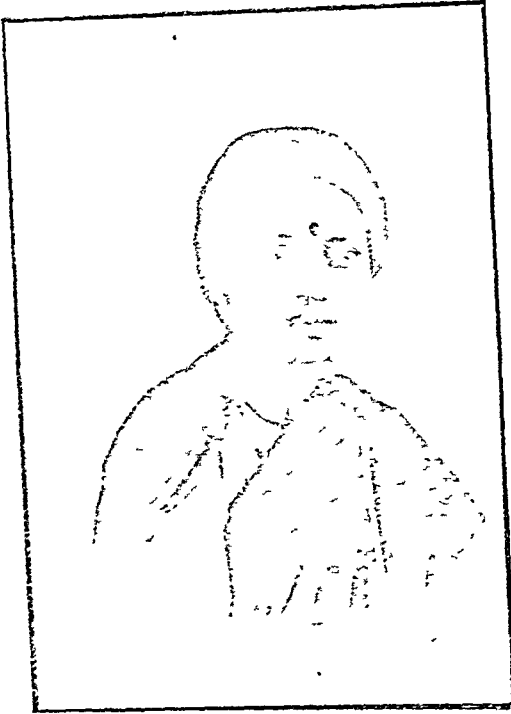
कुमारी वी० कमलाबाई

आप तमकूर के एम्प्रेस गर्ल्स हाईस्कूल की प्रधानाध्यापिका हैं और हाल ही में तमकूर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सदस्या नियुक्त की गई हैं।

को संसार में जीवित रहना है, यदि जीवित रह कर उसे राष्ट्र तथा अपनी सन्तान के लिए कुछ कर जाने की हविस है, तो उसे जल्दी से जल्दी इस पापमयी प्रथा को अर्धचन्द्र देना चाहिए। बिना ऐसा किए कल्याण नहीं है। आज भारतीय स्त्रियाँ जीती हुई भी मृतक के समान हैं। न तो उनका घर में सम्मान है और न बाहर। क्या यह लक्ष्यहीन, निरुद्देश्य और तिरस्कृत जीवन उन्हें अभीष्ट है?

हमारा दूसरा अन्तराय अशिक्षा है। शिक्षा के गुण-दोषों का विवेचन करने का युग अब नहीं रह गया है। भारतीय स्त्रियों ने इस ओर ध्यान देना भी प्रारम्भ कर दिया है, पर वह सन्तोषजनक नहीं है। पहली बात जिससे हमारा असन्तोष है, शिक्षा की व्यवस्था है। लड़कियों की शिक्षा की जो प्रणाली आज दिन हमारे देश में व्यवहृत हो रही है, वह उनके व्यक्तिगत जीवन के लिए और समाज के लिए भी, हानिकर है। इसके अतिरिक्त कन्याओं की शिक्षा की कोई व्यापक व्यवस्था अभी तक नहीं हुई। कन्याओं की शिक्षा-प्रणाली के सम्बन्ध में मैं अपने विचार फिर कभी प्रकट करूँगी।

तीसरा नम्बर अन्धविश्वास और रूढ़ियों का है। इनसे हमारे जीवन में अनेक हलचल उत्पन्न होते हैं। अन्धविश्वासी और रूढ़ियों का ग़ुलाम रह कर कोई व्यक्ति संसार में उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। ये ऐसे आकर्षण हैं, जो बरबस मनुष्य को पीछे की ओर खींचते हैं। इनसे हमेशा सावधान रहना चाहिए।

इनके अतिरिक्त और भी कितनी ही छोटी-छोटी बातें हैं, जो इन दुर्गुणों के साथ-साथ स्वयं ही दूर हो जायँगी। फिर स्त्रियाँ शिक्षिता होकर, परदे से बाहर निकल कर, अन्धविश्वास और रूढ़ियों को दूर करके, एक बार अपनी चकाचौंध भरी आँखों से देखेंगी। उन्हें आश्चर्य होगा, अपनी दयनीय परिस्थिति पर करुणा भी उत्पन्न होगी—अरे! संसार किस तेज़ी के साथ उन्नति के पथ पर अग्रसर होता जा रहा है और हम अज्ञान तथा रूढ़ियों के अन्धकार में पतन के किस अतल-तल में पड़ी हुई थीं! दुनिया को देख कर, उसकी गति-विधि का निरीक्षण करके, उनमें आगे बढ़ने की प्रवृत्ति उत्पन्न होगी, उन्हें क्षेत्र मिलेगा, उत्साह मिलेगा और संसार की सभ्य जातियों की स्त्रियों की आँख से आँख मिलाने का अवकाश भी। वे उदार होंगी, उन्नत होंगी, सभ्य होंगी। वे गुणों का आदर करना सीखेंगी, जीवन का उत्तम से उत्तम उपयोग करने के लिए प्रयत्नशील होंगी। उस समय उनका गार्हस्थ्य जीवन स्वभावतः ही सुख, सन्तोष और आह्लाद से भर जायगा। क्या भारतीय

स्त्रियाँ स्वयं ही वह दिन अपने गार्हस्थ्य जीवन में नहीं ला सकतीं ?

कालाकाँकर की रानी साहिबा
आपने तथा आपके स्वनामधन्य पति राजा साहब कालाकाँकर ने हाल ही में खादी-कोष में ५,०००) रु० दान दिए हैं।

निस्सन्देह स्त्रियों का देश के प्रति कुछ राजनीतिक कर्तव्य भी है। विशेष कर वर्तमान समय जैसे क्रान्ति-काल में तो वे किसी तरह चुप बैठ ही नहीं सकतीं। हमें हर्ष है कि कुछ बहिनों ने स्वाधीनता के इस महायुद्ध में जो उज्ज्वल आत्म-बलिदान किया है उससे हम स्त्रियों का मस्तक गौरव से उन्नत हो गया है। और भी कितनी ही बहिनें विदेशी कपड़े की दूकानों पर धरना देकर देश-भक्ति के साथ ही साथ स्त्री जाति के जागरण की सूचना दे रही हैं। परन्तु ये सब बातें तो क्षणिक हैं। हमें इस आन्दोलन के भीतर छिपे हुए कुछ स्थायी सिद्धान्तों की ओर भी ध्यान देना होगा। स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार तथा राष्ट्रीय शिल्प को प्रोत्साहन देने का भार शायद सब से अधिक स्त्रियों ही पर है। अतः इस ओर हमें विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने का एक सबसे आवश्यक और उपयोगी अङ्ग है—सूत कातना। देश में जितना ही अधिक कपड़ा तैयार किया जा सकेगा, हमारे आन्दोलन को उतना ही अधिक बल मिलेगा। हमारा विश्वास है कि व्याख्यान देने की अपेक्षा क्रियात्मक रूप में इस कार्य का महत्व बहुत अधिक है। यदि हमारी बहिनें इस ओर विशेष ध्यान दें और नियमित रूप से चरखा चलाने की प्रतिज्ञा कर लें तो कदाचित वे देश
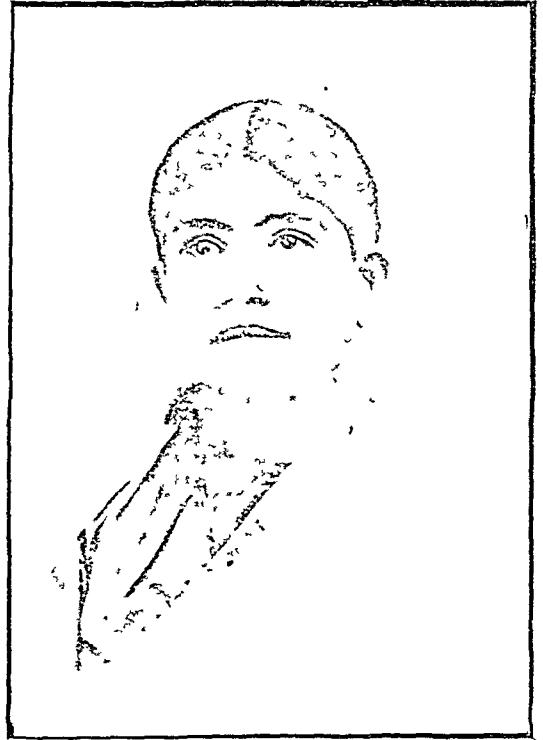
श्रीमती डी० सक्कामा
आप प्रथम महिला-रत्न हैं, जिन्हें अभी हाल ही में मैसूर के महाराजा साहब ने मैसूर व्यवस्थापिका सभा की सदस्या नियुक्त किया है।

की और अपनी सब से बड़ी सेवा कर सकेंगी और स्वतन्त्रता के यज्ञ में उल्लेखनीय भाग ले सकेंगी।

—गङ्गादेवी गङ्गोला 'सुरभि'

* * *

सौन्दर्य का महत्व

विगत मई मास के 'चाँद' में "बनावटी सौन्दर्य" शीर्षक एक लेख, अप्रैल के 'चाँद' में प्रकाशित मेरे "सौन्दर्य साधना" शीर्षक लेख के सम्बन्ध में, प्रकाशित हुआ है। इसके लिए मैं उक्त लेख के लेखक
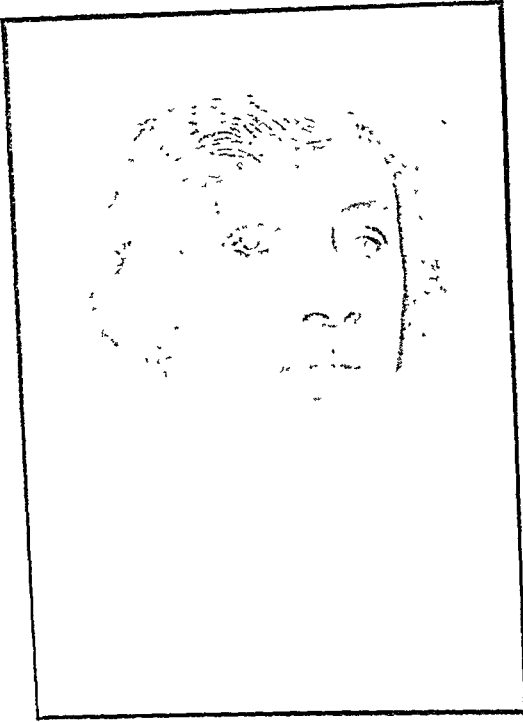
मिस एल० आई० लॉयड
आप सर्वप्रथम महिला-रत्न हैं, जो कलकत्ता कॉरपोरेशन की सदस्या नियुक्त हुई थीं। आपने हाल ही में इस पद से इस्तीफ़ा दे दिया है।

श्री० 'सौन्दर्य-प्रेमी' का एक प्रकार से बड़ा कृतज्ञ हूँ, क्योंकि उनके कारण मुझे इस उपेक्षित विषय पर कुछ विशेष प्रकाश डालने का अवसर मिला है।

मैंने अपने लेख में पाश्चात्य "सौन्दर्य-रचना" की कुछ क्रियाओं का उल्लेख किया था ; साथ ही अन्त में अपनी यह नम्र सम्मति भी दी थी कि "अपनी आवश्यकता की पूर्ति, रुचि के परिष्कार और शृङ्गार-कला में सुधार करने के लिए यदि हम पाश्चात्य देशों की शृङ्गार-टेबुल पर से कुछ चीज़ें चुन कर अपने शृङ्गारदान में रख लें तो उससे कला की उन्नति में बड़ी सहायता मिले।"

इसी के उत्तर में उक्त लेख प्रकाशित हुआ है। लेकिन वास्तव में वह यथार्थ रूप में उत्तर न होकर एक दूसरे कोण से आक्रमण है।

मेरा लेख था सौन्दर्य के विषय पर, उनका लेख है नीति और धर्म के आदर्शों पर। मेरे लेख में उन उपायों और पदार्थों की चर्चा है, जो सौन्दर्य की वृद्धि में उपयोगी समझे जाते हैं। उनके लेख में उस धर्म की मीमांसा है जो हमारे वेद-पुराणों के अनुसार स्त्री में होना चाहिए।

विद्वान लेखक ने बड़ी योग्यता और परिश्रम से सौन्दर्य-विषयक लेख को धर्म के हवनकुण्ड के पास ले जाकर उसकी स्याही को फीका किया है; एक विषय का महत्व दिखा कर दूसरे की उपेक्षा करने का सफल प्रयास किया है। लेकिन मैं नहीं समझता कि नीति और धर्म की उक्तियों से कामशास्त्र की सार्थकता और उपयोगिता का महत्व किस प्रकार कम किया जा सकता है? धर्मशास्त्र के अनुसार जिस वस्तु के स्पर्श मात्र में महापातक लगता है, उसीको कामशास्त्र के प्रवीणों ने व्यवहार में लाने की बड़ी सिफ़ारिश की है। लेकिन इससे उन दोनों में से कोई एक शास्त्र त्याज्य नहीं हो जाता। दोनों अपने-अपने स्थान पर, अपने विषय के अनुकूल हैं, अतएव उचित और सङ्गत हैं।

ठीक इतना ही अन्तर इन दोनों लेखों में भी है।

लेखक महोदय का कहना है कि स्त्रियों में सौन्दर्य की अपेक्षा सेवा और त्याग, भक्ति और वात्सल्य की आवश्यकता कहीं अधिक है। कौन कहेगा नहीं है? इस सनातन और सुरक्षित दलील को काटने का साहस किसमें है? आकाश में चमकते हुए इस सुनहले आदर्श की कौन अवहेलना करेगा? लेकिन क्या इससे यह समझ लिया जाय कि एक सेवा-भक्तिमयी, धर्मपरायण स्त्री के लिए शृङ्गार करना वर्जित है? उसका अपने सौन्दर्य और यौवन की रक्षा के लिए प्रयत्न करना पाप है? अथवा वैसा करने से उसका कोमल धर्म चोट खा जायगा?

नर-नारी के पारस्परिक आकर्षण के महत्व की गम्भी-

रता को समझते हुए सुयोग्य लेखक ने यह क़बूल किया है कि उसमें सौन्दर्य का बहुत बड़ा हाथ है ; फिर उसे बढ़ाने, उसे चमकाने के उद्योग में शिथिलता क्यों की जाय? यह सच है कि सेवा, प्रेम, त्याग और भक्ति दाम्पत्य जीवन के स्तम्भ हैं, लेकिन जीवन-भवन उन दीर्घ स्तम्भों के समूह से ही रुचिकर और सुरम्य तो नहीं हो जायगा, उसे रमणीक और भोग्य बनाने के लिए उसमें यथास्थान रङ्ग-बिरङ्गे चित्रों और प्रस्तर-शिल्प का होना आवश्यक है। सेवा, त्याग, भक्ति या प्रेम सौन्दर्य के विरोधी गुण नहीं हैं, बल्कि अनेक अंशों में उनमें सापेक्षता है। तब क्या जीवन के एक अङ्ग को अत्यन्त प्रगतिशील और दूसरे को शिथिल तथा निकम्मा बना देना कुछ अनुकरणीय आदर्श होगा? हम आत्मा और देह दोनों के प्रति न्याय चाहते हैं।

मानवीय हृदय पर सौन्दर्य और पारस्परिक आकर्षण का शायद उससे कहीं अधिक गहरा प्रभाव पड़ता है, जितना साधारणतया समझा जाता है। सामान्य मनुष्य धर्म के आदर्शों को श्रद्धा की वस्तु समझता है, प्रेम की नहीं। उसे अपनी स्वाभाविक वृत्तियों—लोभ और आकर्षण—को आदर्शों पर बलिदान करना बहुत मुश्किल मालूम पड़ता है। एक सामान्य पति अपनी स्त्री के व्यक्तित्व में सरलता और रोचकता का सुन्दर प्रतिबिम्ब देखना चाहता है। उसका आध्यात्मिक गुणों से युक्त होना उसके लिए उतना हर्षोत्पादक नहीं होता। क्योंकि वे गुण उसकी बुद्धि की पहुँच के बहुत परे रहते हैं। सामान्य मनुष्य के विचारों और रुचि का आदर्श बहुत ऊँचा नहीं होता। रोटी कमाने के श्रम से उसका परिश्रान्त मस्तिष्क यह समझ कर सन्तोष कर लेता है कि उन आदर्शों पर पहुँच कर क्या होगा जिनका मार्ग अति दुर्गम है और जिन्हें प्राप्त कर लेने पर सदैव उनसे गिरने का भय और चिन्ता लगी रहेगी, उसकी रक्षा के लिए निरन्तर कठिन प्रयास करना होगा। इसका आशय यह नहीं है कि आदर्श जीवन अनुकरणीय नहीं होता। कोई भी विचारशील व्यक्ति सेवा, त्याग और भक्ति के पवित्र महत्व को सहज ही समझ सकता है, लेकिन यह आवश्यक नहीं कि इस विषय का ज्ञान उसकी सौन्दर्योपासना में बाधक बन जाय।

कौन पति अपनी सुन्दर और तरुणी स्त्री को पचीस-तीस वर्ष की अवस्था में ही, जब कि वास्तव में यौवन के पूर्ण विकास का समय होता है, बूढ़ी हो जाते देखना पसन्द करेगा? भारतीय स्त्रियों के सौन्दर्य-विषयक अज्ञान के कारण उनका यौवन बहुत ही शीघ्र नष्ट हो जाता है। बहुत ही थोड़ी वयस से वे अपनी गणना

डॉ० एम० नरोहा

नेशनल काउन्सिल ऑफ़ वीमेन ऑफ़ इण्डिया के प्रतिनिधि की हैसियत से आप वियेना में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय महिला-सम्मेलन में भाग लेने गई हैं।

वृद्धाओं में करने लगती हैं, जिसका उनके जीवन और भावी सन्तान पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। यूरोप और अमेरिका की स्त्रियाँ अपनी भारतीय बहिनों से दुगनी आयु की होने पर भी उनसे कहीं अधिक युवती दीख पड़ती हैं। कारण यही है कि उन्होंने यौवन के महत्व को समझ कर उसके लिए परिश्रम और त्याग किया है।

वहाँ के वैज्ञानिक यौवन की घोर शत्रु—झुर्रियों—के पीछे इतना पड़े हुए हैं कि अब वह समय दूर नहीं है जब वे उनका अस्तित्व ही मिटा देंगे और झुर्रीयुक्त बूढ़े चेहरे और सफ़ेद बालों का दीख पड़ना एक अद्भुत और उपहासास्पद दृश्य हो जायगा। वहाँ की भविष्य की वृद्धाओं के चेहरे साफ़ और अङ्ग सुडौल होंगे। कुरूपता एक प्रकार के रोग का लक्षण है; सुन्दरता स्वास्थ्य और सबलता का विशद प्रतिविम्ब। सौन्दर्य बढ़ाने के उपायों से स्वास्थ्य को कितना लाभ पहुँचता है और स्वास्थ्य पर जीवन की सफलता कितने अंशों तक निर्भर रहती है, यह गम्भीरतापूर्वक सोचने का विषय है।

इलाहाबाद में विदेशी कपड़े की पिकेटिङ्ग

सत्याग्रही स्वयंसेविकाएँ इलाहाबाद म्युनिसिपल मार्केट के दरवाज़े पर विदेशी कपड़े की पिकेटिङ्ग कर रही हैं।

यद्यपि पश्चिम के दाम्पत्य आदर्श कुछ अनुकरणीय नहीं माने जा सकते, लेकिन "बनावटी सौन्दर्य" के लेखक के अनुसार जब कि वहाँ पर दाम्पत्य का क़िला केवल शारीरिक सौन्दर्य पर ही नहीं टिका हुआ है; उसका वास्तविक आधार प्रेम और सेवा ही है, तब फिर उन्हीं की भाँति सौन्दर्य में आगे बढ़ कर हम आध्यात्मिक गुणों में पीछे क्यों रह जायँगे, विशेषकर उस दशा में जब कि बारम्बार हमको उनकी याद दिलाई जाती है?

यह बड़े खेद का विषय है कि विदेशियों के गुणों और उनकी कलाओं को अपनाने के विषय में भारतीयों में बड़ी अरुचि है। वे केवल अपने अतीत के गुण-गान करके अपने पुराने गौरव के गीतों की घोषणा करने में ही सुख मानते हैं। प्रत्येक नवीनता को घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखना उनकी प्रकृति में शामिल हो गया है। यद्यपि यह एक प्रकार से निश्चय है कि भविष्य में हमको सभ्यता की उन्हीं गलियों से होकर निकलना है, जिनसे आज अन्य उन्नत जातियाँ शानदार जुलूस निकाल रही हैं; और यद्यपि ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से हम आज भी उधर ही चल रहे हैं, लेकिन इसे स्वीकार करने में मानशीलता हमारी ज़बान पकड़ लेती है। परिणाम यह होता है कि विकास का समय बड़ा दीर्घ होता जाता है। अन्य जातियों को अपनी अनुन्नत अवस्था में जिस कार्य में पचास वर्ष लगे होंगे, उसीमें हमको हमारे कण्टकाकीर्ण मार्ग के कारण उससे कई गुना समय लग जायगा। अङ्गरेज़ जाति ने अपने विजेता रोमन और ग्रीक लोगों से जो कुछ सीखा था, उसके लिए आज भी वे मुक्त-कण्ठ से उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करते हैं। इन बातों का तात्पर्य यह नहीं है कि हम अङ्गरेज़ों के अनन्य भक्त बन जायँ, उनके स्वार्थों को भी न पहिचानें और उन्हें अपने से अनुचित लाभ उठाने दें। बल्कि वास्तव में देखा जाय तो देशभक्ति और राजनीति भी उन्हीं से सर्वोत्तम सीखी जा सकती है। जिस चतुरता से वे हमें परास्त करते हैं, वही कला यदि हम उनसे प्राप्त कर सकें तो यह हमारे लिए एक बड़ी अच्छी बात होगी।

खेद है कि "बनावटी सौन्दर्य" के लेखक उनसे शिक्षा प्राप्त करने को 'अनुकरण का प्लेग' कहते हैं।

लेखक महोदय ने लिखा है कि इटली ने स्त्रियों के

बनाव-श्रृङ्गार में मर्यादा बाँधना प्रारम्भ कर दिया है। ठीक है। लेकिन इटेलियन इस कला के विरोधी नहीं हैं, विरोधी हैं उसमें निहित अश्लीलता के। वह उन दोषों को रोकना चाहते हैं जिन्हें कुछ विकृत रुचि वाली स्त्रियाँ फ़ैशन के नाम से समाज में ले आई हैं।

वर्तमान समय की शिक्षित 'फ़ैशनेबिल' स्त्रियों की वेश-भूषा पर जो दोष लेखक ने आरोपित किए हैं वे भी सर्वांश में सत्य मानने योग्य नहीं हैं। प्रत्येक स्त्री की वेश-भूषा और भाव-भङ्गियों की एक 'क्वालिटी' होती है; उसीसे उसके शील, चरित्र और मनोवृत्ति का अनुमान लगाया जाता है, केवल किसी अङ्ग के दीखने या न दीखने से नहीं। हमारे पुराने पहिनाव में रहने वाली अनेक स्त्रियाँ वस्त्र की कई तहों में मण्डित रहने पर भी बहुधा अपने ढकने योग्य अङ्गों का प्रदर्शन करती रहती हैं, परन्तु इससे उन्हें दुश्चरित्र कहना अन्याय होगा। निस्सन्देह यह पहिनावा उस रमणी की पोशाक से, जो गर्दन और वक्षःस्थल के कुछ भाग को खुली वायु में रख कर उन्हें कान्तिमय बनाए रहती है, कहीं अधिक लज्जा-जनक और घृणास्पद है। यही बातें हैं, जिन्हें लेकर विदेशियों को हमारी सभ्यता का परिहास करने का अवसर मिलता है।

—केशवदेव शर्मा

शैशव

[श्री० रमाशङ्कर जी मिश्र 'श्रीपति']

(१)

प्रेमालोकित मन-मन्दिर में
प्रियतम का आह्वान किया।
प्रेमाराधन में निमग्न हो
प्रिय प्रतिमा का ध्यान किया॥

(२)

प्रेमोन्मत्त प्रेम-तृष्णा में
प्रेमामृत का पान किया।
मुक्त कण्ठ से प्रमुदित होकर
गुण गरिमा का गान किया॥

(३)

कल-निनादिनी कालिन्दी के
कूल-कछारों में भटका।
पूर्ण चन्द्र की दिव्य अलौकिक
अद्भुत आभा में अटका॥

(४)

अङ्क मालिका में उपवन की,
मलयज गिरि मालाओं में।
रेणु-राशि पर, रङ्ग-महल में,
चारु चित्र-शालाओं में॥

(५)

शैशव की वह शान्ति, सरलता,
नव्य नेह, जो था मन में।
प्रेम-पूर्ण वह भव्य भाव जो
भरा हुआ भोलेपन में॥

(६)

सुधा-स्निग्ध वाणी, वह चितवन,
आशा, कहाँ समाप्त हुई।
एक बार भी इस जीवन में
फिर न कहीं वह प्राप्त हुई॥

गया है और शायद लापरवाही से रद्दियों में मिल कर यहाँ फेंक दिया गया है और तब से योंही पड़ा हुआ है। मोहर बम्बई की थी और तारीख़ लगभग दस बरस पहिले की। भेजने वाले का नाम ए० टी० हुरमुज़ जी, मालिक—के० बी० नाटक कम्पनी था। मैं समझ गया कि अलिन्द ने इसे किसी नाटक कम्पनी के पर्दे वग़ैरह के 'डिज़ाइन' का आर्डर समझ कर इसके साथ ऐसी लापरवाही की है। एकाएक मुझे अलिन्द की उस वक्त की यह बात याद आई जब मैं जहाँनारा के ख़तों की बाबत उससे पूछपाछ कर रहा था कि बम्बई से एक रजिस्ट्री लिफ़ाफ़ा आया था, जिसकी रसीद पर दस्तख़त करते समय मुझे सरोज की आवाज़ सुनाई पड़ी थी और घबड़ाहट में उसे न जाने कहाँ फेंक कर सरोज के पास दौड़ा था। और उसी के साथ उसने यह भी कहा था कि मगर वह जहाँनारा का नहीं था। मुझे शक हुआ कि हो न हो, यह वही लिफ़ाफ़ा है। इसलिए मैंने कुतूहलवश उसे खोल डाला। मगर उसके भीतर का सामान देखते ही मेरे हाथ से वह छूट पड़ा।

उसमें कई ख़त एक में नत्थी किए हुए निकले और उनके साथ कई हज़ार के नोट भी थे। फिर भी लिफ़ाफ़ा बीमा किया हुआ न था। मैं ताज्जुब में आकर इन भीतरी सामानों को फिर उलट-पलट कर देखने लगा। इस दफ़े उनमें एक अङ्गरेज़ी का ख़त ऐसा मिला जो सभों से अलग था। मैंने उसी को सबसे पहिले पढ़ना शुरू किया :—

"प्रिय महाशय,

यद्यपि प्रेम और युद्ध में कोई बात अनुचित नहीं होती और मैंने जो कुछ भी किया वह प्रेम ही में अन्धा होकर, फिर भी मेरी आत्मा किसी तरह से मुझे अपने को अन्यायी और पापी समझने से नहीं रोकती। जब मेरी आत्मा ही मुझे किसी प्रकार से क्षमा नहीं कर पाती तब किसी से क्षमा माँग कर शान्ति की आशा करना मेरे लिए बेकार है। मुझे तो शान्ति अब अपने अन्यायी जीवन को अन्त कर देने ही में है। मैंने अपने अनुचित कृत्यों का प्रायश्चित बस इसी रूप से करने की ठानी है। परन्तु मरने के पहिले आप पर एक बहुत ही भारी काम सौंपता हूँ।

आप मुझे जानते नहीं हैं। मैंने भी आपको देखा नहीं है। फिर भी मैं आपको इस तरह जानता हूँ कि कभी मैं आपके ख़ून का प्यासा था। यद्यपि अब वह भाव मेरे हृदय में नहीं है, तथापि आपके किसी प्रकार के अनुग्रह को स्वीकार करने के लिए मेरा हृदय अब भी तैयार नहीं होता। मगर यह काम ही ऐसा है जिसके लिए आपके सिवाय अन्य कोई दूसरा उपयुक्त मनुष्य हो नहीं सकता। आशा है, आप इसके करने में कोई कसर उठा नहीं रक्खेंगे; मेरी ख़ातिर नहीं, बल्कि उस जहाँनारा की ख़ातिर जो आपके प्रेम में ऐसी दीवानी थी कि मेरे प्रेम को अपनाने के लिए कभी सचेत ही नहीं हुई। आपके ख़्याल को उसके हृदय से मिटा देने के लिए मैंने कोटिशः यत्न किए। मगर अफ़सोस! सदा निष्फल रहा। समय-समय पर वह प्रेम से बावली होकर जो चिट्ठियाँ आपको लिखती थी उन्हें मैं बराबर रोकता रहा। मगर हाय! मैं कभी उसके ध्यान को रोक नहीं सका। उन पत्रों के एक-एक शब्द अङ्गारे की तरह मेरे हृदय पर जल रहे हैं। जब तक वे मेरे पास रहेंगे, मैं चैन से मर भी न सकूँगा। उसके हाथ के लिखे होने के कारण मैं उन्हें नष्ट भी नहीं कर पाता। इसलिए मैं उन्हें अब आपही के पास भेजे देता हूँ।

मैं कौन हूँ, शायद आपको जानने की इच्छा होगी। पहिले मैं बम्बई का एक करोड़पति सेठ था। मगर अब मैं विदीर्ण-हृदय एक कङ्काल हूँ। और थोड़ी देर बाद एक लावारिस लाश हो जाऊँगा। मेरा इतना अधःपतन बस प्रेम ही में पड़ कर हुआ। अफ़सोस! जिसके लिए मैंने अपना सोने का संसार मिट्टी कर दिया, उसे कभी भी मेरी चाहत नहीं हुई और उसे चाहत हुई भी तो हाय! किसकी? आपकी, जिसने भूल कर भी कभी उसकी सुधि नहीं ली। वाह री! प्रेम की उल्टी चाल!

लगभग तीन बरस हुए जब दुर्भाग्यवश एक दिन मैं एक थिएटर का तमाशा देखने गया था। स्टेज पर जहाँनारा को देखा। बस कलेजा थाम कर रह गया। फिर तो नित्य ही नाटक देखने जाता था और मकान आकर बिन पानी की मछली की तरह तड़पता था। अन्त में मुझे जहाँनारा को पाने की युक्ति सूझी। मैंने चटपट एक नई थिएटर की कम्पनी की स्थापना कर दी और अपने यहाँ ऐक्टरों की तनख़ाहें इतनी बढ़ा दीं कि जिस कम्पनी में जहाँनारा थी वह टूट गई। यही मेरा

उद्देश था। और इसीलिए मैं उसी कम्पनी के ऐक्टरों को ख़ास कर अपने यहाँ नौकरी देने लगा। वह कम्पनी टूटते ही जहाँनारा ख़ाली हो गई। और लोगों ने उसे अपने यहाँ बुलाने की कोशिश की, मगर मैंने तो उसीके लिए कम्पनी खोली थी। फिर मेरे आगे भला दूसरा कौन बाज़ी मार ले जा सकता था? इसलिए जहाँनारा मेरे यहाँ काम करने लगी।

उसके पीछे मैं साए की तरह रातों-दिन लगा रहता था। मगर मेरे प्रेमालाप पर वह यही कहा करती थी कि यह बातें मुझसे कहने के बदले अपनी स्त्री से कहिए। मैंने लाख सर पटका, मगर उसने प्रेम का आदर न किया और न किया। उसके पास सैकड़ों प्रेमियों के पत्र आया करते थे, जिनको वह बिना पढ़े ही मुझे फाड़ देने के लिए देकर कहती थी कि इन रूप के पतिङ्गों की तो यहाँ यह क़द्र है, आप इनमें शामिल होकर अपनी क्यों बेइज़्ज़ती कराते हैं?

जब कभी उसके 'पार्ट' में प्रसन्नता के भाव होते थे, तभी वह अपने पार्ट की ख़ातिर स्टेज पर प्रसन्न दिखाई देती थी। मगर बाद को उसको मैंने कभी प्रसन्न नहीं देखा। वह अधिकतर एकान्त ही में चिन्तित रहा करती थी। एक दिन मैंने उसे एक पत्र लिखते देखा। मेरे हृदय में खलबली मच गई। उस पत्र को मैंने डाक तक पहुँचने न दिया। बीच ही में रोक लिया। उसे पढ़ने पर अपने प्रेम के अनादर का कारण मालूम कर लिया। अब जाना कि वह आप पर मरती है, क्योंकि वह पत्र आप ही के लिए था। जब उसका हृदय अन्यत्र उलझा हुआ था तब वह मुझे कैसे प्यार कर सकती थी? कई दफ़े जी में आया कि काशी जाकर मैं आपका काम तमाम कर दूँ और यों अपने रास्ते का काँटा दूर करूँ। मगर मैं उसके पास से दूर कहीं जा नहीं सकता था। दिल में यह भी शङ्का थी कि उसके पास रुपए काफ़ी हैं। उसे नौकरी की परवाह नहीं है। मेरे बर्ताव से तङ्ग आकर कहीं बम्बई छोड़ न दे। धीरे-धीरे यह शङ्का दृढ़ हो चली। उसने एक दिन नौकरी छोड़ देने के लिए भी कहा। मगर उसी रात को मैंने उसके कुल सामान चोरी करा दिए। तब उसे झक मार कर मेरे आश्रय पर फिर रहना पड़ा। अन्यत्र उसे नौकरी मिल सकती थी। मगर कोई मेरे बराबर उसे तनख़ाह दे नहीं सकता था और बड़ी तनख़ाह बिना किसी कारण के छोड़ कर छोटी तनख़ाह पर जाने से वह समझती थी कि उसके चरित्र पर फ़ौरन कलङ्क लग जायगा और तब उसकी सारी इज़्ज़त ख़ाक में मिल कर टके-टके की भी महँगी हो जायगी। यह रुपए जो इस पत्र के साथ जाते हैं, उसीके हैं, जो उसके चुराए हुए सामानों में मिले थे। ईश्वर की कृपा से ये अब तक मेरे पास वैसे ही रक्खे रह गए। इनमें से एक पैसा भी मुझे ख़र्च करने को साहस नहीं हुआ।

अपने पत्र का उत्तर आपसे न पाकर वह कुछ निराश सी हो चली। यह देख कर मैं मन ही मन बहुत ख़ुश हुआ और उसके पत्रों को बराबर मैं इसी तरह रोकता रहा, ताकि आपकी तरफ़ से एकदम निराश होकर वह मेरी तरफ़ झुके। उसकी डाक पर भी कड़ी नज़र रखता था। मगर धन्य ईश्वर! आपने कभी उसे कोई पत्र ही नहीं भेजा, वरना वह उसके हाथ तक पहुँचने के पहिले ही टुकड़े-टुकड़े हो जाता।

जब आपके लिए लिखे हुए पत्र से मालूम हुआ कि वह अपने पत्रों का उत्तर न पाकर आपसे बिल्कुल निराश हो चुकी है, तब मैंने उसके साथ अपनी क़ानूनी शादी (Civil marriage) करने का प्रस्ताव किया। उस वक़्त उसने कहा कि जब आपके स्त्री मौजूद ही है तब आपको विवाह की क्या आवश्यकता? मैंने पूछा कि अगर मेरे स्त्री न होती तब क्या तुम मेरी स्त्री होना पसन्द करतीं? उसने जवाब दिया तब देखा जाता। उसकी इस बात से मेरे हृदय में कुछ आशा उभर उठी और मैंने चुपके से अपनी स्त्री को एक दिन ज़हर दे दिया। मगर अफ़सोस! एक ख़ून करके भी मेरी मनोकामना पूरी न हुई।

जिस दिन मैंने अपनी स्त्री की हत्या की, उसी दिन मेरी कम्पनी के स्टेज में आग लग गई। लाखों रुपए का सामान जल गया। जिस बैङ्क में मेरा रुपया था उसका भी उसी दिन दिवाला निकला। मैं एक ही दिन में कङ्गाल हो गया। मेरे सब ऐक्टर छोड़-छोड़ कर भाग गए। जहाँनारा का स्वास्थ्य चिन्तित रहते-रहते बहुत-कुछ बिगड़ चुका था और अन्त में उसे हलका सा बुख़ार

(शेष मैटर ३०७ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

स्वदेशी और बायकॉट
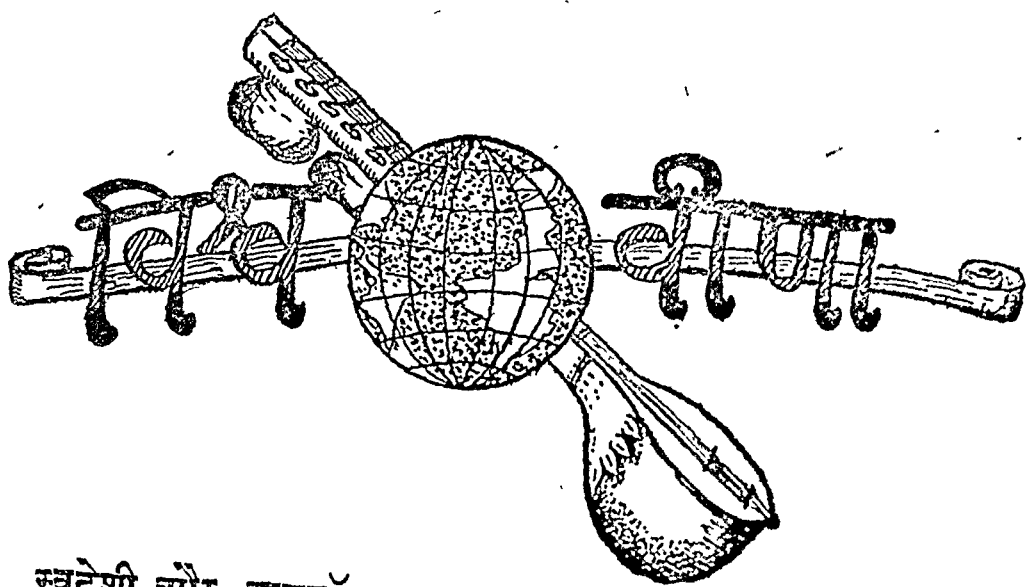
आजकल हमारे देश में स्वदेशी और बायकॉट का आन्दोलन तीव्र वेग से प्रगति कर रहा है। बङ्ग-भङ्ग के विरोध में भी ऐसा ही आन्दोलन किया गया था और उस आन्दोलन को ज़बर्दस्त सफलता मिली थी। अनेक कारणों में वह आन्दोलन भी एक कारण था, और शक्तिशाली कारण था, जिसने गवर्नमेण्ट की नीति को पराजित करके बङ्गाल प्रान्त के दोनों विभागों को पुनः एकता के सूत्र में बाँध दिया। इस महान ऐतिहासिक क्रान्ति की ओर सङ्केत करते हुए किसी विद्वान ने कहा है—लॉर्ड कर्ज़न ने एक प्रान्त को छिन्न-भिन्न करने के प्रयत्न में एक शक्तिशाली राष्ट्र की उत्पत्ति कर दी।

सन् १९०५ ई० में कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन स्वर्गीय गोखले महोदय की अध्यक्षता में बनारस में हुआ। उस समय बङ्गाल में स्वदेशी और बायकॉट का आन्दोलन बड़े ज़ोरों पर था। कॉङ्ग्रेस के उस चिरस्मरणीय अधिवेशन में भारत के अनेक नरम और गरम नेताओं ने उस आन्दोलन के सम्बन्ध में जो विचार प्रगट किए थे, उनके कतिपय उद्धरण नीचे दिए जाते हैं। आशा है, ये उद्धरण 'चाँद' के पाठकों के लिए उपयोगी एवं मनोरञ्जक सिद्ध होंगे।

महामति गोखले

अब मैं कुछ शब्द स्वदेशी आन्दोलन के सम्बन्ध में कहूँगा। यद्यपि इस आन्दोलन को इसी प्रकार के एक दूसरे आन्दोलन से, जिसे बङ्गाल में ब्रिटिश माल के बायकॉट के लिए चलाया गया है, काफ़ी प्रोत्साहन मिला है, तथापि इन दोनों आन्दोलनों के अन्तर को समझना आवश्यक है। बायकॉट का आन्दोलन एक राजनीतिक अस्त्र है, जिसका उपयोग एक विशेष राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जा रहा है; और आज बङ्गाल की जैसी अवस्था है, उस अवस्था में इस अस्त्र का प्रयोग करना सब प्रकार से उचित है। हमारे देश की दशा की ओर अङ्गरेज़ों का ध्यान आकर्षित करने में भी इस आन्दोलन को ज़बर्दस्त सफलता मिली है। परन्तु इस प्रकार के अचूक अस्त्रों का प्रयोग घोर आपत्ति-काल में ही किया जाना चाहिए। (क्योंकि) इनके विफल हो जाने से देश को भयङ्कर हानि पहुँचने की आशङ्का रहती है और जब तक जनता के हृदय में क्षोभ और क्रान्ति के भाव लहरें न मारने लगें, तब तक इनके उपयोग में सफलता मिलने की सम्भावना कम ही रहती है। निस्सन्देह घोर आपत्ति-जनक अवस्थाओं में बायकॉट का आन्दोलन करना पूर्णतः न्याय-सङ्गत है, परन्तु ऐसे अवसरों पर यह अत्यन्त आवश्यक है कि आपस के मतभेदों को भुला दिया जाय और सब श्रेणी के लोग एक साथ मिल कर कार्य करें, जैसा बङ्गाल में किया जा रहा है।

× × ×

निर्बन्ध व्यापार का मूल तत्व यह है कि किसी पदार्थ को ऐसे स्थान में पैदा करना चाहिए जहाँ उसके

उत्पादन का व्यय सबसे कम पड़े और उसे ख़र्च ऐसे स्थान में करना चाहिए जहाँ उसका मूल्य सबसे अधिक हो। (इस सिद्धान्त के अनुसार) इस बात को प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार करेगा कि भारतवर्ष एक ऐसा देश है, जहाँ श्रम के सस्ता होने तथा कपास की प्रचुर उपज होने के कारण, सूती कपड़ों को तैयार करने की अपूर्व सुविधाएँ हैं; और यदि स्वदेशी आन्दोलन हमारे देश में कताई और बुनाई के शिल्प को पुनः उसी उन्नत अवस्था में पहुँचा सके—जिस अवस्था में वह किसी समय था और जिसे एक असाधारण घटनाचक्र ने नष्ट कर दिया—तो कहना पड़ेगा कि यह आन्दोलन निर्बन्ध व्यापार में बाधक नहीं, वरन उसका साधक है।

लाला लाजपत राय

मैं समझता हूँ कि हम लोगों की जो अवस्था है, हम लोगों की जैसी परिस्थिति है, उसमें हम लोगों के लिए उस नीति को ग्रहण करना सब प्रकार से उचित है, जिसे हमारे बङ्गाली भाइयों ने ग्रहण किया है। मेरा विचार है कि बङ्गाली भाइयों ने हमें उन्नति का एक मार्ग दिखाया है जिसके लिए हमें उन्हें बधाई देनी चाहिए; इतना ही नहीं, मैं तो इस विषय में उनसे ईर्ष्या करता हूँ। मेरे मन में उनके प्रति स्पर्द्धा का भाव है, साथ ही मुझे उनके लिए अभिमान है।

श्री० जी० एस० खापर्डे

अभी आपने देखा ही क्या है? आप बायकॉट के आन्दोलन को जारी रखिए और आप इससे भी बढ़ कर विनोदपूर्ण बातें देखेंगे। हम लोग हँसेंगे और वे रोएँगे (हँसी)। इन्हीं शब्दों में मैं आपको इस आन्दोलन की उपयोगिता बता देना चाहता हूँ।

श्री० वी० कृष्णस्वामी ऐयर

विदेशी माल के बहिष्कार का आन्दोलन कोई नया आन्दोलन नहीं है, यह कोई नया राजनीतिक अस्त्र नहीं है, जिसका बङ्गाल के निवासियों ने आविष्कार किया है। सन् १७०२ ई० में आयरिश पार्लमेण्ट ने यह निश्चित किया था कि आयरिश जनता केवल आयर्लैण्ड में ही बने हुए वस्त्र का व्यवहार करेगी और दूसरे देशों के बने हुए वस्त्र को उपयोग में नहीं लाएगी। सन् १७०७ ई० में आयरिश पार्लमेण्ट के सदस्यों ने इस बात की शपथ ली कि वे केवल उसी वस्त्र को पहनेंगे जो आयर्लैण्ड में बना होगा। सज्जनो, इङ्गलैण्ड वालों ने अठारहवीं शताब्दी में जब अमेरिका के माल को अपने देश में आने से रोकना चाहा तो इसके जवाब में अमेरिका के सबसे धनी नागरिकों ने यह निश्चित किया कि वे विदेशी वस्त्र का बहिष्कार करेंगे और उसके बदले अपने ही देश में बना हुआ वस्त्र पहनेंगे। उन लोगों ने यहाँ तक प्रतिज्ञा की कि वे खाने के लिए भेड़ों की हत्या नहीं करेंगे, क्योंकि इससे ऊन की कमी हो जाने की आशङ्का थी। सज्जनो, कौन कह सकता है कि इस प्रकार का आन्दोलन ग़ैरक़ानूनी है अथवा इससे देश के क़ानून को किसी प्रकार का आघात लग सकता है?

श्री० दाजी अबाजी खरे

आख़िर बायकॉट है क्या? यह बनियों के व्यवसाय की एक समस्या है। मैं जानता हूँ कि हमारे बङ्गाली भाइयों ने जो बात सबसे अधिक प्रत्यक्ष रूप से हमें दिखा दी है, वह यह है कि अङ्गरेज़ों की जाति बनियों की जाति है। बायकॉट का आन्दोलन प्रारम्भ होने के बाद दमन सम्बन्धी कार्रवाइयाँ जारी की गई हैं, परन्तु सभाओं के बाद, असन्तोष भरे भाषणों के बाद, प्रार्थनाओं के बाद वे जारी नहीं की गईं, वे जारी की गई हैं केवल बायकॉट के बाद। क्यों? क्योंकि बङ्गाल ने कहा—'हम तुम्हारा माल नहीं ख़रीदेंगे।' इस पर अङ्गरेज़ जाति ने

(३०५ पृष्ठ का शेषांश)

रहा करता था। उस हालत में भी वह अपने काम करने से नहीं चूकी। मगर कम्पनी टूटते ही उसने चारपाई ली। इसलिए वह मेरी कोठी से अलग न जा सकी .....।"

मैं इस ख़त को इतना ही पढ़ सका था कि मेरी आँखों में आँसू भर आए और क्रोध से मेरा ख़ून उबल उठा। मैं किसी तरह भी इस पत्र को उस वक़्त आगे पढ़ न सका।

(क्रमशः)

(*Copyright*)

* * *

यह भाव प्रगट किया—'जब तक तुम हमारा माल ख़रीदते हो तब तक हम इस बात की परवा नहीं करते कि तुम क्या कहते हो, किस तरह हमारी समालोचना करते हो। तुम केवल हमारा माल ख़रीदते जाओ और शेष बातों की हम परवा नहीं करते।'

*

प्रो० ए० एच० ग़ज़नवी

हिन्दू और मुसलमान दोनों को इस बात का निमन्त्रण दिया गया है कि चाहे कैसी भी भयानक विपत्ति क्यों न उपस्थित हो जाय, वे एक दूसरे के कन्धे से कन्धा मिला कर खड़े रहें। जब तक बङ्ग-भङ्ग क़ायम है, तब तक वे किसी भी दशा में बायकॉट का परित्याग नहीं कर सकते; हम लोगों ने, हमारी स्त्रियों ने और हमारे बच्चों ने जो प्रतिज्ञा की है, उसे हम पूरा करेंगे। हम अपने घरों में अङ्गरेज़ी माल के एक छोटे से टुकड़े को भी प्रवेश न करने देंगे।

* * *

मुस्लिम-समाज और पर्दा

स्थानीय सहयोगी 'लीडर' में मिस्टर एन० सी० मेहता, आई० सी० एस० महोदय का उपरोक्त विषय पर एक बड़ा विचारपूर्ण लेख कुछ दिन हुए प्रकाशित हुआ था, जिसका भावानुवाद नीचे दिया जा रहा है।

मैं समझता हूँ, हिन्दुओं में यह विश्वास फैला हुआ है कि इस देश में पर्दा और बाल-विवाह की प्रथा प्रथमतः मुसलमानों के यहाँ आने के कारण हो गई है। संस्कृत-साहित्य से जो लोग अभिज्ञता रखते हैं, वे बता देंगे कि यह विश्वास सम्पूर्ण अमूलक है। यह सम्भव है कि पहिले से चली आने वाली यह प्रथा मुसलमानों के शासन-काल में कुछ अधिक दृढ़ हो गई हो। किन्तु स्त्रियों के घूँघट निकालने की प्रथा तो बहुत ही प्राचीन समय से चली आती है। हमारे ग्रन्थों में 'अवगुण्ठनवदना वृत्तिगालिक' इत्यादि ऐसे कई शब्द आए हैं जो इस बात को बताते हैं। आठवीं शताब्दी का 'कुट्टनीमतम्' नामक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसे काश्मीर के राजा जयापीड़ के प्रधान मन्त्री दामोदर गुप्त ने बनाया। इस पुस्तक में वे कहते हैं कि भद्र महिलाओं का एक मात्र चिह्न उनका घूँघट है। इसके सिवा भी ऐसे अनेक उल्लेख हैं जिनसे प्राचीन और मध्ययुग के हिन्दुस्तान में इस प्रथा का रहना सिद्ध होता है।

प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्रीयुत चिन्तामणि विनायक वैद्य का कहना है कि उत्तरीय भारतवर्ष में यूनानियों और उनसे भी पहिले पारस देशवासियों द्वारा पर्दा की प्रथा चलाई गई। आचार्य हॉपकिन्स का यह विचार है कि सम्भवतः घूँघट निकालने की प्रथा राजसभाओं में ही प्रचलित थी। जो कुछ हो, स्त्रियों को पर्दे में रखना कम से कम रामायण और महाभारत के समय से कुलीन और सम्भ्रान्त लोगों में प्रचलित था। जब लक्ष्मण जी वानर और राक्षसों की मण्डली के सामने सीता जी को पैदल ले आए तो श्रीरामचन्द्र जी ने कहा कि विपद्काल में, विवाह में, तथा यज्ञ में स्त्री का सबके सामने निकलना आपत्तिजनक नहीं है (एपिक इण्डिया सी० वी० वैद्य-लिखित, पृष्ठ १७२)। भासकृत प्रसिद्ध नाटक "प्रतिमा" का एक उद्धरण देखिए। इस ग्रन्थ की रचना का समय ईसा से एक शताब्दी पहिले से ३०० ई० तक के बीच में किसी समय माना जाता है। इसके प्रथम अङ्क के अन्त में जब श्रीरामचन्द्र जी अपने भाई और पत्नी को साथ लेकर अयोध्या से बाहर निकलने को उद्यत होते हैं, वे सीता जी को अपना घूँघट खोलने को कहते हैं और नगर-वासियों को निःशङ्क होकर उनका दर्शन करने को बुलाते हैं। वे कहते हैं कि यज्ञ में, विवाह में, विपद्काल में तथा वन में, स्त्रियों का खुला मुँह दिखाई देना कोई आपत्तिजनक बात नहीं है। यह बात शीघ्र समझ में आ जायगी कि भारत के सभी भागों में पर्दा की प्रथा कभी नहीं चल सकी होगी। स्त्रियों को पर्दे में रखना एक पुरानी रीति है, जो प्राचीन समय में प्रायः सब जगह फैली हुई थी। ज्यों-ज्यों देशों में स्वाधीनता और उन्नति होती गई, यह प्रथा भी हटती गई। मैंने सर्वदा यह अनुभव किया है कि दासत्व और घोर असभ्यता का यह रहा-सहा चिह्न लुप्त होने लग गया होता यदि महात्मा गाँधी जी ने अपनी अतुल शक्ति और प्रभाव को हमारी सामाजिक कुरीतियों को मिटाने में लगाया होता।

श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित

आप त्यागमूर्ति पण्डित मोतीलाल नेहरू की बड़ी पुत्री हैं। इलाहाबाद की स्त्रियों में राष्ट्रीय भावना का प्रचार करने वालों में आपका एक विशेष स्थान है।

SPECIALLY PHOTOGRAPHED FOR THE CHAND

हिन्दू-समाज के खँडहरों को नन्दन-भवन बनाने का सद्प्रयत्न !!

समाज की जिन अनुचित और अश्लील धारणाओं के कारण स्त्री और पुरुष का दाम्पत्य जीवन असुख और असन्तोषपूर्ण बन जाता है एवं स्मरणातीत काल से फैली हुई जिन मानसिक भावनाओं के द्वारा युवक और युवती का—स्त्री और पुरुष का सुख-स्वाच्छन्नपूर्ण जीवन घृणा, अवहेलना, द्वेष और कलह का रूप धारण कर लेता है, इस पुस्तक में स्वतन्त्रतापूर्वक उसकी आलोचना की गई है और बताया गया है कि किस प्रकार समाज का यह जीवन सुख-सन्तोष का जीवन बन सकता है।

लेखक ने देशीय और विदेशीय समाजों की उन समस्त बातों का, जो इस जीवन में बाधक और साधक हो सकती हैं, चित्रण किया है ! इसके साथ ही युवकों तथा पुरुषों के उन व्यवहारों एवं आचरणों की तीखी आलोचना की है, जिनसे विवाह की उपयोगिता, पवित्रता और मधुरता मारी जाती है ! लेखक के भावों में जो विवाह युवक और युवती के, पुरुष और स्त्री के प्रेम-जीवन की रक्षा नहीं कर सकते, वे विवाह विवाह नहीं होते, प्रत्युत उनके पूर्व-जन्मों के दुष्कर्मों के प्रायश्चित्त होते हैं, जिनको वे कष्ट, घृणा और अवहेलना के साथ व्यतीत करते हैं !!

पुस्तक के अन्तर्गत प्रत्येक परिच्छेद के शीर्षक

पुस्तक में स्त्री और पुरुष के जीवन की अनेक इस प्रकार की विवादग्रस्त बातों का निर्णय किया गया है, जिनका कहीं पता नहीं लगता। पुस्तक में स्वतन्त्र देशों के उन प्रसिद्ध विद्वानों और लेखकों के विचारों के उद्धरण दिए गए हैं, जिन्होंने स्त्री-पुरुष के जीवन को सुख सौभाग्य का जीवन बनाने के लिए प्रयत्न किया है और जिनके प्रभावशाली विचारों ने शिथिल और स्वतन्त्र जातियों के स्त्री-पुरुषों में स्फूर्ति उत्पन्न कर दी है ! सचित्र पुस्तक का मूल्य २) रु० मात्र !

☞ केवल विवाहित स्त्री-पुरुष ही इस पुस्तक को मँगाने की कृपा करें।

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

कुछ लोगों का ख़्याल यह है कि दिल्ली में कई शताब्दियों तक मुसलमानों का शासन रहने के कारण ही अन्य प्रान्तों की अपेक्षा भारत के उत्तरी प्रान्त में पर्दे का अधिक प्रचलन है। किन्तु यह विचार भी ठीक नहीं है, क्योंकि गुजरात १३ वीं शताब्दी के अन्त में ही मुसलमानों के अधीन हो गया और उस पर मुस्लिम संस्कृति का इतना ज़बर्दस्त प्रभाव पड़ा कि अहमदाबाद में हिन्दू और मुस्लिम कलाओं के सम्मेलन के अद्वितीय नमूने पाए जाते हैं। समस्त भारत में जौनपुर ही एक ऐसा स्थान है जो इस विषय में अहमदाबाद का मुक़ाबला कर सकता है। हमारी राय में, भारत के दक्षिण और पश्चिम प्रान्त की स्त्रियों की स्वाधीनता का इतिहास, भारतीय इतिहास के उन अंशों में से है, जिन्हें किसी ने अभी तक समझने-समझाने की चेष्टा नहीं की है। जो कुछ हो, इसमें सन्देह नहीं कि स्त्रियों की स्वाधीनता का आन्दोलन बहुत पीछे आरम्भ हुआ, और यह नहीं कहा जा सकता कि किसी प्रान्त में पर्दे का होना या न होना विशेषतः मुस्लिम प्रभाव के कारण ही है।

मैंने यह इसलिए लिखा है कि शिक्षित हिन्दू-मुसलमान भी दुर्भाग्यवश हमारे इतिहास की मोटी-मोटी बातों तक से अनभिज्ञ हैं। मुग़ल-राज्य में हमें भारतीय सभ्यता की एकता को प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी, क्योंकि उस समय अकबर, ख़ान-ख़ाना, अब्दुर्रहमान, बीरबल, तानसेन तथा इन्हीं के सरीखे और बहुत से मनुष्य थे जो अपने नित्य के रहन-सहन और कार्यों में दिखा देते थे कि वे भारतीय सभ्यता की एकता की साक्षात मूर्ति थे। परन्तु अब ज़माना बदल गया है। इस समय इस बात को समझने की ज़रूरत है कि मुस्लिम संस्कृति की कौन-कौन सी बातें भारतीय संस्कृति में मिल कर एकाकार हो गई हैं। बहुत लोगों को यह न मालूम होगा कि हमारी आधुनिक भाषाओं की उन्नति में मुस्लिम शासकों ने बड़ी सहायता की है। रायबहादुर दिनेशचन्द्र सेन की पुस्तक—जिसमें बङ्गला भाषा और साहित्य का इतिहास लिखा गया है—का निम्न-लिखित उद्धृत भाग पढ़ने योग्य है— बङ्ग भाषा के साहित्य ने इतनी जल्दी जो सम्मान प्राप्त किया है उसके कई कारण हैं, जिनमें से इस देश पर मुसलमानों की विजय निस्सन्देह एक प्रधान कारण है। यदि हिन्दू राजा स्वाधीन बने रहते, तो बङ्ग भाषा राजाओं की सभा में पहुँचने का सुयोग शायद ही पा सकती।

हिन्दी साहित्य की उन्नति में भी हिन्दुस्तानी मुसलमानों का भाग बहुत महत्वपूर्ण है। अमीर ख़ुसरू, कबीर, मुहम्मद जायसी, रहीम, रज़ा ख़ाँ, आलम और उनकी विदुषी पत्नी, शेख़ रँगरेज़िन और बीसियों ऐसे और लोगों को स्मरण करने से ही इस बात की पुष्टि हो जायगी।

*　　*　　*

क्या बहुविवाह न्याययुक्त है ?

यह खोजपूर्ण और सारगर्भित लेख बाबू पीतमलाल जी, एम० एस० सी०, एल० एल० बी०, एडवोकेट का लिखा हुआ है। इसे हम सहयोगी 'आर्यमित्र' से उद्धृत कर रहे हैं। आशा है, इसे पढ़ कर बहुविवाह के पक्ष में स्मृतियों और धर्मशास्त्रों की दुहाई देनेवाले हिन्दू-समाज की आँखें खुलेंगी और वह इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता का अनुभव करेगा।

हिन्दुओं में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित कही जाती है। यह भी कहा जाता है कि हिन्दूशास्त्रों में स्त्री-जाति का स्थान नीचा है। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार, स्त्री मनुष्य की सम्पत्ति है, जो अन्य वस्तुओं की भाँति ली अथवा दी जाती है। स्त्री कदापि स्वतन्त्र रहने के योग्य नहीं है। उसको अपने लिए पति चुनने का कोई अधिकार नहीं है। जिस पुरुष के साथ उसका विवाह कर दिया जावे, चाहे वह कुरूप, अयोग्य और अनुचित (?) ही क्यों न हो, स्त्री को उसकी आजन्म आज्ञा माननी और सेवा करनी योग्य है। इसके विपरीत, पति अपनी स्त्री को, जब चाहे बिना किसी कारण और दोष के, छोड़ सकता है और एक अथवा अधिक पत्नी के होते हुए, जितनी स्त्रियों से अपना विवाह करना चाहे कर सकता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जाता है कि हिन्दू शास्त्रों में बहुविवाह करने की आज्ञा है और हिन्दुओं में बहु-

विवाह की प्रथा चिरकाल से प्रचलित है और इसलिए क़ानून भी इस प्रथा को उचित समझता और मानता है।

अङ्गरेज़ी राज्य की अदालतों ने, जो उपरोक्त सम्मति बहुविवाह के सम्बन्ध में निश्चित की है, वह कम से कम हिन्दू धर्मशास्त्रों के आदेशानुसार नहीं है, बल्कि हिन्दू शास्त्रकारों के शास्त्र और मन्तव्य दोनों के विरुद्ध है। हिन्दू समाज में जो स्थान स्त्रियों को हिन्दू शास्त्रकारों ने दिया है और उनके ज़ो अधिकार तथा कर्त्तव्य वर्णन किए हैं, उन पर इस समय विचार न करते हुए हम इस लेख में केवल यह दिखावेंगे कि बहुविवाह की वर्तमान प्रचलित प्रणाली कभी शास्त्रोक्त और उचित नहीं मानी जाती थी। अङ्गरेज़ी सरकार के जजों ने हिन्दू शास्त्रों के अर्थ ठीक-ठीक नहीं समझे और परिणाम भी ठीक नहीं निकाला। नतीजा यह हुआ कि इस विषय पर सरकारी अदालतों की नज़ीरें हिन्दू शास्त्रों के विरुद्ध हो गई हैं, जिनका आधार किसी उचित और युक्तियुक्त रिवाज पर भी नहीं है। अब हम बहु-विवाह के पक्ष में जो युक्तियाँ दी जाती हैं, उन पर एक-एक करके विचार करेंगे।

प्रथम युक्ति

बहु-विवाह के पक्ष में पहिली युक्ति यह है कि मनु महाराज ने मनुस्मृति अध्याय ३, श्लोक १२ तथा १३ द्वारा बहु-विवाह को अनुचित बतलाया है, उसका सर्वथा निषेध नहीं किया है। मनुस्मृति के ये श्लोक इस प्रकार हैं :—

> सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि।
> कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो वराः॥
> —अ० ३, १२
>
> शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते।
> ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः॥
> —अ० ३, १३

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को विवाह करने में प्रथम अपने वर्ण की कन्या श्रेष्ठ है और कामाधीन विवाह करे तो क्रम से ये नीची भी श्रेष्ठ हैं। शूद्र को शूद्र ही की कन्या से, वैश्य को वैश्य की और शूद्र की कन्या से, क्षत्रिय को शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय की कन्या से, और ब्राह्मण को शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण की कन्या से विवाह कर लेना भी बुरा नहीं है। इन श्लोकों द्वारा दूसरा विवाह केवल उन पुरुषों के लिए कहा गया है जो कामातुर अथवा कामाधीन हैं। इन श्लोकों में बहुविवाह के सामान्य नियम की शिक्षा नहीं है। इसके सिवाय यदि कोई पुरुष एक स्त्री के होते हुए दूसरा विवाह करना चाहे तो वह अपने वर्ण से नीच की कन्या से विवाह करे। उसको अपने ही वर्ण में दूसरी स्त्री से विवाह करने की किसी दशा में भी आज्ञा नहीं दी गई। वर्तमान स्थिति में एक पुरुष एक स्त्री के होते हुए अपने वर्ण में से चाहे जितनी कन्याओं से विवाह कर सकता है। यह बात क़ानून की दृष्टि में उचित है, परन्तु मनुस्मृति की शिक्षा के सर्वथा विरुद्ध है। मनुस्मृति के उपरोक्त श्लोकों में इस बात का विधान नहीं है कि एक मनुष्य कितनी स्त्रियों से विवाह कर सकता है, बल्कि इस बात का विधान है कि मनुष्य किस वर्ण की कन्या से विवाह कर सकता है।

प्रसिद्ध प्रमाण

माननीय सर गुरुदास बनर्जी ने मनुस्मृति अध्याय ६, श्लोक ७७, ८० तथा ८१ के आधार पर यह माना है कि "यह सत्य है कि बहु-विवाह की आज्ञा विशेष दशाओं में स्पष्ट दी गई है" (देखो Hindu Law Marriage and Stridhana, p. 40) इसी प्रकार मैकनाटन, (Principles of Hindu Law, page 58) स्ट्रेन्ज, (Hindu Law, page 52) और श्यामाचरण सरकार (व्यवस्था-दर्पण, पृष्ठ ६७२) की सम्मति में बहु-विवाह का विशेष दशाओं को छोड़ कर सामान्य रूप से निषेध है। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने मनुस्मृति, अध्याय ३, श्लोक १२,१३ के आधार पर कहा है कि एक पुरुष अपने वर्ण की एक से अधिक स्त्री नहीं कर सकता है, सिवा उन दशाओं के जिनमें दूसरी स्त्री करने की आज्ञा दी है अर्थात् बहु-विवाह की वर्तमान प्रचलित प्रणाली का शास्त्रों में निषेध है।

मनुस्मृति में बहु-विवाह का सामान्य रूप से विधान नहीं है, बल्कि बहु-विवाह का निषेध है और यह कामाधीन पुरुषों के लिए केवल मान लिया गया है, यह बात मनुस्मृति से स्पष्ट है।

> न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः।
> कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते॥
> —अ० ३,१४

अर्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय को आपत्काल में भी किसी
गी दृष्टान्त में शूद्रा भार्या नहीं बताई गई है।

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः।
कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्तानानि शूद्रताम्॥
—अ० ३, १५

अर्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य मोहवश अपने वर्ण से
ीन वर्णस्थ स्त्री से विवाह करें तो सन्तान समेत वे अपने
ल को शूद्र बना देते हैं।

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणोयात्यधोगतिम्।
जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते॥
—मनु० अ० ३, १७

अर्थ—शूद्रा को शय्या पर सुलाने से ब्राह्मण नीच
ति को प्राप्त होता है और उससे सन्तान उत्पन्न करके
ब्राह्मणत्व से ही हीन हो जाता है।

दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु।
नाश्नन्ति पितृदेवास्तन्न च स्वर्गं स गच्छति॥
—अ० ३, १८

अर्थ—जिस ब्राह्मण ने शूद्रा स्त्री के प्रधानत्व से होम,
द्ध और अथिति-भोजन कराना चाहा है, उसका अन्न
तृ संज्ञक और देवता संज्ञक पुरुष ग्रहण नहीं करते
र वह पुरुष स्वर्ग को प्राप्त नहीं होता।

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च।
तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते॥
—अ० ३, १९

अर्थ—शूद्रा के मुख चुम्बन करने वाले और उसके
ह की भाप लगने वाले पुरुष की तथा उससे उत्पन्न
न्तान की शुद्धि नहीं होती।

इससे यह स्पष्ट है कि इस युक्ति में कोई सार नहीं
कि मनुस्मृति में बहुविवाह की आज्ञा है। सर गुरु-
स बनर्जी, मैकनाटन, स्ट्रेंज, श्यामाचरण सरकार और
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की भी यही सम्मति है कि
-विवाह केवल परिमित विशेष दशाओं में किया जा
कता है।

विष्णुस्मृति

विष्णुस्मृति के आधार पर भी बहुविवाह की प्रथा
समर्थन किया जाता है। वह नियम इस प्रकार है :—

ब्राह्मण स्ववर्ण और नीचे के वर्ण की चार स्त्रियों से
विवाह कर सकता है। विष्णु० ४-१।

एक पति की बहुत सी स्त्रियों में से एक का पुत्र
सबका पुत्र होता है। और उसको उनकी मृत्यु के
पश्चात् पिण्ड-दान करना उचित है। विष्णु १५-४१।

यदि एक ब्राह्मण के (चार वर्णों की चार स्त्रियों से)
चार पुत्र हैं तो वह पिता की सम्पत्ति को दस भागों में
विभाजित करेंगे। विष्णु १८-१।

यदि हम उपरोक्त प्रमाणों पर विचार करें तो पता
चलता है कि विष्णुस्मृति का मत वही है जो मनु ने
मनुस्मृति अ० ३, श्लोक १२, १३ में कहा है, अर्थात्
स्ववर्ण से नीचे वर्ण की स्त्री - रक्खी जा सकती है, स्ववर्ण
की ही एक से अधिक स्त्रियाँ रखने का कोई नियम वर्णन
नहीं किया गया है। अतः विष्णुस्मृति के आधार पर भी
उस विवाह का समर्थन नहीं होता।

दूसरी युक्ति

बहुविवाह के पक्ष में दूसरी युक्ति यह है कि चूँकि
विवाह का मुख्य उद्देश्य पुत्र उत्पन्न करना है—जो पिता
को नरक के दुःखों से बचावे—इसलिए बहुविवाह करना
चाहिए ; क्योंकि सम्भव है एक स्त्री के रखने का नियम
बनाने से उद्देश्य-पूर्ति न हो।

यह सत्य है कि हिन्दू-धर्म में विवाह का मुख्य
उद्देश्य पुत्र उत्पन्न करना है, ताकि वह अपने पिता की
सम्पत्ति का वारिस बन कर उसका उपभोग करे। यह
उद्देश्य इतना महत्वपूर्ण माना गया है कि पुत्रोत्पत्ति को
पितृऋण चुकाना कहा गया है। यह विचार मनुष्य-प्रकृति
के स्वाभाविक सिद्धान्त पर अवलम्बित है, जिसके द्वारा
मनुष्य अपनी स्वाभाविक इच्छा पुत्र उत्पन्न करके पूर्ण
करे और उसको अपनी सम्पत्ति का वारिस छोड़े। ऐसा
मानते हुए भी यह समझ में नहीं आता कि हिन्दू-शास्त्रों
में, जो पुत्रोत्पत्ति को बहुत उच्च स्थान देते हैं, उस
आपत्ति के लिए कोई नियम न बताया गया हो अर्थात्
जब कोई मनुष्य पुत्रहीन हो और उसके अपनी पत्नी से
कोई पुत्र उत्पन्न न हुआ हो या पुत्र उत्पन्न होने की
आशा ही न हो।

मनुस्मृति

महाराज मनु ने ऐसी स्थिति पर पूर्ण रीति से

विचार किया है और उसके लिए व्यवस्था दी है। लिखा है कि :—

मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत्।
व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिंस्राऽर्थघ्नीच सर्वदा ॥
—मनु अ० ६, श्लो० ८०

अर्थात्—मद्य पीने वाली और बुरे चलन वाली तथा पति के विरुद्ध चलने वाली और सदा बीमार रहने और मारने वाली और सदा धन का नाश करने वाली स्त्री हो तो उसके रहते हुए भी दूसरी स्त्री करना उचित है।

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥
—मनु० अ० ६, श्लोक ८१

या रोगिणी स्यात्तु हिता सम्पन्ना चैव शीलतः।
सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित् ॥
—मनु० अ० ६, श्लो० ८२

अर्थात्—यदि आठ वर्ष तक कोई सन्तान न हो तो दूसरी स्त्री कर ले और सन्तान होकर मरते ही रहें तो दश वर्ष में और लड़की ही होती हों तो ग्यारह वर्ष के पश्चात् और स्त्री अप्रिय बोलने वाली हो तो उसी समय (दूसरी स्त्री कर ले)।

जो सदा बीमार रहे, परन्तु पति के अनुकूल और शीलवती हो तो उससे आज्ञा लेकर दूसरी स्त्री कर ले और उसका अपमान कभी न करे।

मनुकृत उपरोक्त नियमों से स्पष्ट है कि यदि किसी पुरुष की पहिली स्त्री से पुत्र उत्पन्न न हो अथवा उचित समय के भीतर पुत्रोत्पत्ति की आशा न हो और स्त्री में दोष होने के कारण ये बातें हों, तो ऐसी दशा में पुरुष दूसरी स्त्री से विवाह कर सकता है, अन्यथा नहीं।

अन्य प्रमाण

मनु के उपरोक्त श्लोकों के आधार पर सर गुरुदास बनर्जी, मैकनाटन, स्ट्रेंज, श्यामाचरण सरकार, और पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने उपरोक्त दशाओं के अतिरिक्त बहुविवाह की प्रणाली को अनुचित और शास्त्रों के विपरीत बतलाया है। श्री० सरकार ने अपनी पुस्तक (Law of adoption पृष्ठ २४) में अपने विचार इस प्रकार प्रगट किए हैं :—

"शास्त्रों का मन्तव्य यह था कि बहुविवाह को कम किया जावे, इस विचार से शास्त्रों में विवाह संस्कार को एक धार्मिक संस्कार कहा है और एक स्त्री के होते हुए धार्मिक कार्यों के लिए दूसरी स्त्री करना केवल उन विशेष दशाओं में बतलाया है जब पहिली स्त्री से विवाह का लक्ष्य पूरा न हुआ हो अर्थात् पुत्र-उत्पत्ति न हुई हो। उन लोगों के लिए, जो कामवश हों, अपने वर्ण से नीचे वर्ण की स्त्री करने की आज्ञा है, परन्तु वह स्त्री सांसारिक कार्यों के लिए ही होगी और वह पत्नी-धर्म के योग्य न समझी जावेगी।"

उपरोक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध है कि बहुविवा[ह] का निषेध है और उसकी आज्ञा केवल उन दशाओं [में] दी गई है, जब विवाह के अभीष्ट अर्थात् पुत्रोत्पत्ति [की] पूर्ति प्रथम विवाह से न हुई हो।

दत्तक पुत्र

इस सम्बन्ध में एक बात और विचारणीय है, जिसका दृष्टि से अलग रखना अनुचित है। हिन्दू शास्त्रों में कहा है कि यदि किसी पुरुष की पहिली स्त्री से पुत्र उत्पन्न न हो, तो उसको अपनी जाति में से दत्तक पुत्र लेने का अधिकार है। हिन्दू शास्त्रों में दत्तक पुत्र लेने की एक विशेष प्रथा है और यह उस समस्या की पूर्ति करती है जब कि औरस पुत्र उत्पन्न न हो। अतः जब तक कि हिन्दू शास्त्रों में दत्तक पुत्र लेने की व्यवस्था है तब तक किसी पुरुष को अपुत्र रहने का भय नहीं होना चाहिए, चाहे उसके औरस पुत्र उत्पन्न ही न हुआ हो और चाहे उसको अपनी स्त्री से औरस पुत्र होने की कोई आशा भी न हो। इससे यह प्रत्यक्ष परिणाम निकलता है कि यह युक्ति कि बहुविवाह पुत्रोत्पत्ति के लिए आवश्यक है, सार-रहित है और उसका त्याग ही ठीक है। बहु-विवाह साधारण रूप में नहीं, किन्तु केवल विशेष दशाओं में ही बतलाया गया है। इसके विपरीत अर्थ करना भूल है।

बहुविवाह के पक्ष में तीसरी युक्ति रिवाज के आधार पर कही जाती है। कहा जाता है कि हिन्दुओं में प्राचीन काल से बहुविवाह की प्रथा चली आती है, इसलिए यह प्रथा क़ानून की दृष्टि में भी उचित है। यह साधारण बात है कि रिवाज क़ानून की दृष्टि में तभी उचित और ठीक समझा जावेगा, जब कि उसमें नीचे लिखी शर्तों का

पूर्त्ति हो। देखना यह है कि रिवाज प्राचीन, एकरस, अनिवार्य, उचित, सदाचार से ठीक, निश्चित, न बदलने वाला इत्यादि है अथवा नहीं। बहु-विवाह की प्रथा न तो हिन्दुओं में अनिवार्य ही है और न साधारण रीति पर सब पुरुष बहु-विवाह करते ही हैं। यह प्रथा न उचित ही है और न न्याययुक्त। यह न प्राचीन है और न लगातार प्रचलित रही है। अतः यह रिवाज क़ानून में ठीक माना जाने योग्य नहीं है। इसके अतिरिक्त इस रिवाज से सदाचार पर आपत्ति आने के सिवाय सदाचार-वृद्धि होने की सम्भावना नहीं है। अतः बहु-विवाह की प्रथा की पुष्टि रिवाज के आधार पर भी नहीं की जा सकती।

अन्तिम परिणाम

हमने ऊपर यह दिखलाया है कि वर्त्तमान प्रचलित हिन्दू-क़ानून में बहु-विवाह की प्रथा उचित है। इसके अनुसार एक पुरुष अपनी जाति में से, जितनी चाहे उतनी स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता है। पहिली स्त्री की दुर्दशा और समाज में सदाचार के ह्रास और उसके दुष्परिणाम की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। किसी मनुष्य-समुदाय के लिए विवाह का क़ानून एक बहुत बड़ा महत्वपूर्ण क़ानून है, क्योंकि उसके ऊपर समाज की उन्नति और कुशलता निर्भर है। यद्यपि हिन्दुओं में सामान्यतः बहु-विवाह प्रचलित नहीं है, तो भी यदि कोई पुरुष अनेक करे तो वह क़ानून की दृष्टि में अपराधी नहीं है। जब और जहाँ कहीं बहु-विवाह होते हुए देखे गए हैं वहाँ और तब ही दुख और क्लेश उत्पन्न हुए हैं। अतएव यह अभीष्ट है कि सिवाय उन दशाओं के, जिनमें दूसरा विवाह उचित बताया गया है, बहु-विवाह की प्रथा बिलकुल बन्द कर देनी चाहिए। अब यह कार्य केवल क़ानून बनने से ही हो सकता है। हम आशा करते हैं कि लेजिस्लेटिव असेम्बली के कोई माननीय सदस्य स्त्री-जाति के ऊपर दया करके एक बिल इस आशय का पेश करके पास कराएँगे कि कोई सज्जन एक स्त्री के होते हुए दूसरी स्त्री से विवाह न करें, सिवाय उन दशाओं के जिनमें मनु ने दूसरी स्त्री करने की आज्ञा दी है। ऐसा क़ानून पास होने से हिन्दुओं का असली क़ानून फिर हिन्दुओं को ही न मिलेगा, बल्कि इससे स्त्री जाति की स्थिति कुछ अच्छी होगी और उन्हें अपने पति, संरक्षक और आजन्म मित्र की मानसिक वृत्तियों और उनके कृत्यों का शिकार न बनना पड़ेगा। स्त्री जाति को इस प्रश्न पर विचार करना और भी आवश्यक है। इन पंक्तियों के लेखक का मन्तव्य यह है कि जिस स्थान पर भूल है, उसकी ओर ध्यान आकर्षित किया जावे और यह बतलाया जावे कि वह भूल आसानी से किस तरह सुधारी जा सकती है। इस बात में हिन्दुओं के आचार, विचार, न्याय, आत्मा और धर्म का भी विचार किया गया है। यदि साधारण जनता ने यह मान लिया कि उसका ध्यान एक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक प्रश्न की ओर खींचा गया है तो हम अपने परिश्रम को भली-भाँति सफल समझेंगे।

आँखों की भाषा

[श्री० कृष्णानन्द जी, बी० ए०]

नाथ ! न जाने किन अङ्कों में अङ्कित मेरा अन्त।
अन्त ! अन्त !! जिसकी सीमा में आया अमित अनन्त॥

शून्य अतल अन्तर में जागे उलझे राग-विराग।
आहें आह ! अथाह !! अरे, ये जलते दिल के दाग॥

जीवनधन में जीवन हो, जीवनधन जीवन साथ।
आँखों की भाषा लिख दें, बढ़ कर ये कम्पित हाथ॥
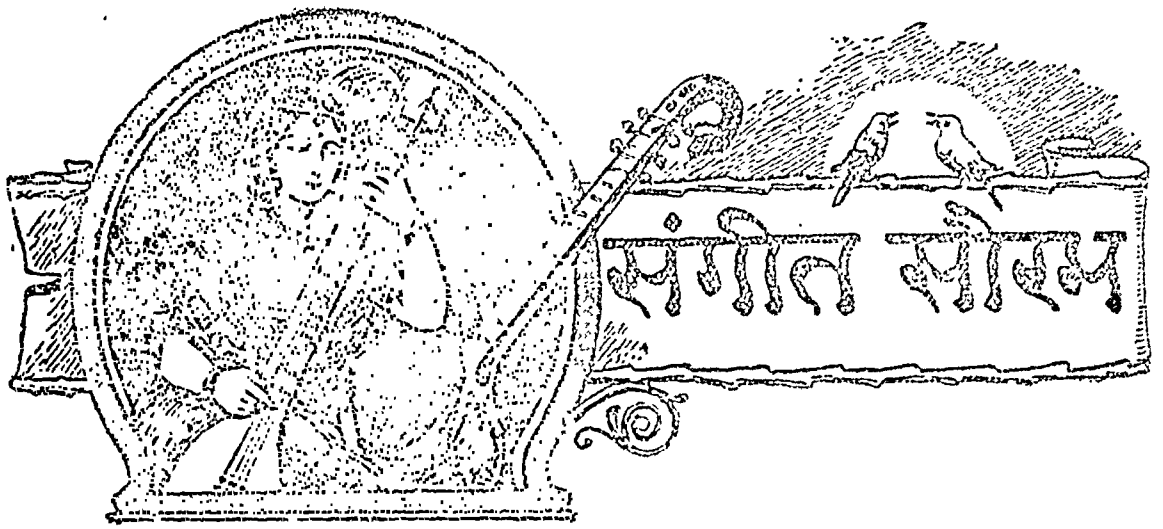
[सम्पादक—श्री० किरण-
कुमार मुखोपाध्याय
(नीलू बाबू)]

राग भीमपलासी—तीन ताल

मात्रा ८

[शब्दकार—सूरदास;
स्वरकार—सौ० श्रीमती
सुभद्राबाई आपटे]

स्थायी—मैयाँ री मोहे माखन भावे।
जो मेवा पकवान कहत तूँ, मोहिं नाहीं रुचि आवे ॥ मैयाँ ॥

अन्तरा—(१) व्रज युवती इक पाछे ठाढ़ी, सुनत शाम की बात।
मन में कहत कबहुँ अपने घर, देखों माखन खात ॥ मैयाँ ॥

अन्तरा—(२) बैठे जाय मथनियाँ के ढिग, तब मैं रहों छिपानि।
सूरदास प्रभु अन्तरयामी, ग्वालिन मन की जानि ॥ मैयाँ ॥

(आरोह) नी स ग म प नी सां (अवरोह)—सं नि ध प म ग रे स

स्थायी

ग	म	प	नी	प	नि	सं	रें	सं	सं	ग	म	नी	ध	ग	रे	रे	स
मैं	—	या	—	री	—	—	—	मो	हे	मा	—	ख	न	भा	—	—	वे
३				२						१				२			

स	नि	स	म	म	ग	ग	म	प	नी	ध	प	ध	प	ग	म
जो	—	मे	वा	प	क	वा	—	—	—	न	क	ह	त	तु	म
३			२			१						२			

ग	म	प	नी	नी	सं	सं	नि	सं	गं	गं	रें	सं	नि	ध	प
मो	हि	ना	—	ही	रु	चि	आ	—	—	वे	—	—	—	—	—
३			२				१			२					

अन्तरा

प प प ध म प ग म प नी नी स स
ज यु व ती — — इ क पा — छे ठा ढ़ी
३ २ १ २

नी नी नी सं सं सं रें गं रें सं नी सं रें स नी ध प
पु न त शा - म की — — आ — — — — — — — त
३ २ १ २

नी नी नी सं सं प प ग म ध प ग स स
म न में क ह त क व हुँ अ प ने घ र
३ २ १ २

सं नि सं गं रें सं नी सं नी सं गं रें सं नि ध प म प
दे — खो मा ख न खा — — — — — — — — — — त
३ २ १ २

नोट—(१) आरोह में रे, ध, वर्ज ग, रि, अति कोमल—शेष शुद्ध स्वर—जाति सम्पूर्ण।

(२) ० यह चिन्ह तार सप्तक स्वरों का होगा।
० यह चिह्न मन्द सप्तक स्वरों का होगा।
१—समदर्शक चिह्न
२—तालिदर्शक चिह्न
३—खालीदर्शक चिह्न

(स्वर लिपि चिन्ह)

◡ दो मात्रा
— एक मात्रा
० आधी मात्रा ½
◡ चौथाई मात्रा ¼

(३) शेष सब अन्तरे ऊपर लिखे अन्तरे के अनुसार गावो।

✽ ✽ ✽

मैजिस्ट्रेट (असामी से)—पिछले बार जब तुम यहाँ आए थे, मैंने तुम्हें चेता दिया था कि फिर कभी यहाँ मत आना। लेकिन तुम फिर आ गए?

असामी—मैंने हुज़ूर की बात सिपाही से कही थी, लेकिन उसने मेरी एक न सुनी।

❋ ❋ ❋

अदालत में एक अभियुक्त ने कहा—हुज़ूर मैं झूठ बोलना नहीं चाहता। अगर ऐसा करना होता तो मैं अपनी पैरवी कराने के लिए किसी भले आदमी को रख लेता।

सरकारी वकील—क्या तुम्हारा मतलब वकील से है?

अभियुक्त—नहीं हुज़ूर, मैं तो भले आदमी की बात कह रहा हूँ।

प्रेमी—क्या तुमने बहुत दिनों से हारमोनियम बजाना सीखा है?

प्रेमिका—हाँ, जब से मैंने होश सम्हाला।

प्रेमी—तब मालूम होता है तुम्हें बहुत देर में होश आया।

❋ ❋ ❋

किसी भले आदमी ने एक गँवार से कहा—कुछ बातें ऐसी हैं जिन पर ध्यान न देने से वे आप ही आप नष्ट हो जाती हैं।

गँवार—सरकार, सच कहिए। अगर यह बात ठीक हो तो आज से मैं अपनी दाढ़ी की चिन्ता बिल्कुल छोड़ दूँ। इसके लिए मुफ़्त में बहुत पैसे ख़र्च हो जाते हैं।

[स्वर्गीय वङ्किमचन्द्र चटर्जी]

साहब और हाकिम

जॉन डिकसन फ़ौजदारी अदालत में पकड़ कर लाए गए हैं। साहब रङ्ग में तो आबनूस के कुन्दे को मात करते हैं, पर साहब का मुक़द्दमा देखने के लिए देहात की कचहरी में बहुत से रँगीले लोग इकट्ठे हुए हैं। मुक़द्दमा एक डिप्टी के इजलास में है, इससे साहब ज़रा खिन्न हैं, पर मन में भरोसा है कि बङ्गाली डिप्टी डर कर छोड़ देगा। डिप्टी बाबू के ढङ्ग से भी यह बात ज़ाहिर होती है। वह बेचारा बड़ा बूढ़ा और सीधा-सादा भलामानस है। किसी तरह सिमट कर वहाँ बैठा था, इधर चपरासियों ने भी डरते-डरते साहब को कठघरे में ला खड़ा किया। साहब ने ज़रा रङ्ग बदल हाकिम की ओर देख, अकड़ कर कहा—टुम हमको यहाँ किस वास्ते लाया?

हाकिम ने कहा—मैं क्या जानूँ तुम क्यों लाए गए, तुमने क्या किया है?

साहब—जो किया, टोमारा साथ बाट नेईं माँगटा।

हाकिम—क्यों?

साहब—टुम काला आडमी हाय।

हाकिम—फिर?

साहब—हम साहब है।

हाकिम—यह तो मैं देखता हूँ, इससे क्या मतलब?

साहब—टुमको, दया बोलटा, वह नेईं हाय।

हाकिम—क्या नहीं है?

साहब—वही, जिसका जोर से मुकद्दमा करटा है। टुम नहीं जानटा क्या?

हाकिम—मैं भला आदमी हूँ, इससे कुछ नहीं कहता, अब टुम-टुम करोगे तो जुर्माना कर दूँगा।

साहब—टुम हमको जुर्माना नहीं करने सकटा। हम साहब है—टुमको क्या कहटा—वह नहीं है।

हाकिम—क्या नहीं है?

साहब—ओ Yes जुस्टीकेशन।

हाकिम—अहा! jurisdiction (जुरिसडिक्शन) कहो। हाँ, तो क्या आहले विलायत हो?

साहब—हम साहब है।

हाकिम—रङ्ग इतना काला क्यों है?

साहब—कोल का काम करटा था।

हाकिम—बाप का नाम क्या है?

साहब—बाप का नाम से कोर्ट को क्या काम?

हाकिम—मालूम तो है न?

साहब—हमारा बाप बड़ा आडमी था, नाम याद नहीं।

हाकिम—याद करो। ख़ैर तुम्हारा नाम क्या है ?

साहब—मेरा नाम जान साहब—जानडिकसन।

हाकिम—बाप का नाम भी क्या डिकसन था ?

साहब—होने सकटा है।

इतने में मुद्दई का मुख़्तार बोल उठा—हुज़ूर, इसके ा का नाम गोवर्द्धन साहब है।

साहब गर्म होकर बोले—गोबर्द्धन होने से क्या ा ? तेरे बाप का नाम रामकान्त है। वह चावल ता था। मेरा बाप बड़ा आदमी था।

हाकिम—तुम्हारा बाप क्या करता था ?

साहब—बड़े आदमियों का सादी कराता था।

हाकिम—क्या वह नाई का काम करता था ?

मुख़्तार—हुज़ूर, नहीं—बाजा बजाता था।

लोग हँस पड़े। हाकिम ने जुरिसडिक्शन का उज्र न्ज़ूर किया और मुक़द्दमा सुनने लगे। फ़रियादी की ार होने पर चाँदी के कड़े पहने काली-कलूटी एक ात हाज़िर हुई। उससे जो कुछ सवाल हुए और का उसने जो जवाब दिया वह नीचे दर्ज है :—

प्रश्न—तुम्हारा नाम क्या है ?

उत्तर—जमुना मल्लाहिन।

प्रश्न—तुम क्या करती हो ?

उत्तर—मछली फँसा-फँसा कर बेचती हूँ।

आसामी साहब बोला—झूठा बात, सुटकी मछली ाता है।

मल्लाहिन—वह भी बेचती हूँ। उसीसे तो तुम मरे ।

प्रश्न—तुम्हारी नालिश क्या है ?

उत्तर—चोरी की।

प्रश्न—किसने चोरी की ?

उत्तर—(साहब की ओर बता कर) इस बागदी के ने।

साहब—हम साहब है, बागदी नहीं है।

प्रश्न—क्या चुराया है ?

उत्तर—यही तो कहा था, सुटकी मछली।

प्रश्न—कैसे चोरी की ?

उत्तर—मैं डल्ले में सुटकी मछली रख कर बेच रही , एक ख़रीदार से बात करने लगी, इतने में साहब आकर एक मुट्ठी मछली उठा कर जेब में रख ली।

प्रश्न—फिर तुम्हें मालूम कैसे हुआ ?

उत्तर—जेब फटी है, यह साहब को मालूम नहीं था, जेब में डालते ही मछली ज़मीन पर आ गिरी।

यह सुन साहब गुस्सा होकर बोले—नहीं बाबू साहब, इसकी डलिया टूटी थी, उसीसे मछली निकली थी।

मल्लाहिन बोली—इसकी जेब में भी दो-चार मछलियाँ मिली थीं।

साहब ने कहा—वह तो दाम दूँगा, कह कर ली थीं।

गवाहों से साबित हुआ कि डिकसन साहब ने मछली चुराई थी। हाकिम ने तब जवाब लिखा। साहब ने जवाब में सिर्फ़ यही लिखाया कि काले आदमी का हम पर जुरिस्डीकेशन नहीं है। हाकिम ने यह बात मञ्ज़ूर न कर एक हफ़्ते की क़ैद का हुक्म दिया। दो-चार रोज़ के बाद यह ख़बर कलकत्ते के एक अङ्गरेज़ी अख़बार के सम्पादक के कानों तक पहुँची। फिर क्या था, दूसरे ही दिन नीचे लिखी टिप्पणी उसमें निकली :—

THE WISDOM OF A NATIVE MAGISTRATE

A story of lamentable failure of justice and race antipathy has reached us from the Mofussil. John Dickson, an English gentleman of good birth, though at present rather in straightened circumstances, had fallen under the displeasure of a clique of designing natives headed by one Jamuna Mallahin a person, as we are assured on good authority, of great wealth, and considerable influence in native society. He was hauled up before a native Magistrate on a charge of some petty larceny which, if the trial had taken place before a European magistrate, would have been atonce thrown out as preposterous, when preferred against a European of Mr. Dickson's position and character. But Baboo Jaladhar Gangooly the ebony-coloured Daniel, before whose awful tribunal Mr. Dickson had the misfortune to be dragged, was incapable of

understanding that petty larcenies, however congenial to sharp intellects of his own country, have never been known to be perpetrated by men born and bred on English soil and the poor man was convicted on evidence the trumpery character of which was probably as well-known to the magistrate as to the prosecutors themselves. The poor man pleaded his birth, and his rights as a European British subject, to be tried by a magistrate of his own race, but the plea was negatived for reasons we neither know nor are able to conjecture. Possibly the Baboo was under the impression that Lord Ripon's cruel and nefarious Government had already passed into Law the Bill which is to authorize every man with a dark skin lawfully to murder and hang every man with a white one. May that day be distant yet! Meanwhile we leave our readers to conjecture from a study of the names *Jeladhar* and *Jamuna* whether the tie of kindred which obviously exists between prosecuter and magistrate has had no influence in producing this extraordinary decision.

यह टिप्पणी पढ़ कर ज़िला मैजिस्ट्रेट साहब ने जलधर बाबू को चपरासी भेज कर बुलवाया।

ग़रीब ब्राह्मण काँपता हुआ मैजिस्ट्रेट के सामने हाज़िर हुआ। पूरे तौर से सलाम भी न कर पाया कि हुज़ूर ने डपट कर पूछा—What do you mean Baboo, by convicting a European British subject? (बाबू, तुम्हारी इतनी हिम्मत कि तुमने यूरोपियन ब्रिटिश प्रजा को दण्ड दिया?)

डिप्टी—What European British subject, Sir? (किस यूरोपियन ब्रिटिश प्रजा को दण्ड दिया हुज़ूर?)

मैजिस्ट्रेट—Read here, I suppose you can do that. I am going to report you to the Government for this piece of folly. (यह पढ़ो, मैं समझता हूँ तुम पढ़ सकते हो। तुम्हारी इस मूर्खता की रिपोर्ट मैं गवर्नमेण्ट के यहाँ करूँगा।)

यह कह कर साहब ने काग़ज़ बाबू की तरफ़ फेंक दिया। बाबू ने उठा कर पढ़ा।

मैजिस्ट्रेट ने कहा—Do you now understand (अब समझ में आया?)

डिप्टी—हाँ साहब, पर यह यूरोपियन ब्रिटिश प्रजा नहीं था।

मैजिस्ट्रेट—यह तुमने कैसे जाना?

डिप्टी—वह बड़ा काला था।

मैजिस्ट्रेट—क्या क़ानून में लिखा है कि यूरोपियन की पहचान सिर्फ़ गोरा रङ्ग ही है?

डिप्टी—नहीं हुज़ूर।

यह डिप्टी पुराना ख़ुर्राट था। वह जानता था कि दलील करके साहब से जीतना भी अपने सिर पर आफ़त बुलाना है। इसलिए उसने दलील छोड़ दी और जो नौकरों को कहना उचित है वही कहा—मैं हुज़ूर से बहस करने की गुस्ताख़ी नहीं कर सकता। इस भूल के लिए मैं बहुत अफ़सोस करता हूँ।

मैजिस्ट्रेट साहब भी निरे उल्लू के पट्ठे न थे। वह ज़रा दिल्लगी-पसन्द भी थे। उन्होंने पूछा—किस बात के लिए बहुत अफ़सोस करते हो?

डिप्टी—यूरोपियन ब्रिटिश प्रजा को सज़ा देने के लिए।

मैजिस्ट्रेट—क्यों?

डिप्टी—इसलिए कि हिन्दुस्तानियों के लिए यह बड़ा भारी दोष है कि वह यूरोपियन ब्रिटिश प्रजा को सज़ा दें।

मैजिस्ट्रेट—क्यों बड़ा भारी दोष है?

डिप्टी बड़ा चालाक था। छूटते ही कहा—इसलिए दोष है कि यूरोपियन ब्रिटिश प्रजा जुर्म नहीं कर सकती और देशी लोग ईमानदारी से इन्साफ़ नहीं कर सकते।

मैजिस्ट्रेट—क्या ऐसा तुम मानते हो?

डिप्टी—नहीं मानने की तो कोई वजह नहीं देखता। मैं तो अपनी लियाक़त भर अपना फ़र्ज़ अदा करने की कोशिश करता हूँ। लेकिन मैं देशी भाइयों की बात करता हूँ।

मैजिस्ट्रेट—तुम समझते हो कि देशी आदमियों को यूरोपियनों के मुक़द्दमे न करने चाहिए?

डिप्टी—ज़रूर ही उन्हें न करना चाहिए। अगर वह ऐसा करें तो यह गौरवशाली अङ्गरेज़ी राज्य मिट्टी में मिल जायगा।

मैजिस्ट्रेट—बाबू, मैं तुम्हारी समझदारी की बात सुन कर बड़ा ख़ुश हुआ। चाहता हूँ, सब देशी आदमी ऐसे ही हों। कम से कम देशी मैजिस्ट्रेट तो तुम-से हों।

डिप्टी—हुज़ूर, भला ऐसा कब हो सकता है, जब कि हमारे आला अफ़सर कुछ और ही सोचते हैं?

मैजिस्ट्रेट—क्या तुम आला अफ़सरी के नज़दीक नहीं पहुँचे? तुम तो बहुत रोज़ से काम करते हो?

डिप्टी—बदनसीबी से मेरी बराबर हक़तल्फ़ी की गई। मैं तो हुज़ूर से इस बारे में अर्ज़ करने वाला था।

मैजिस्ट्रेट—तुम तरक़्क़ी के ज़रूर क़ाबिल हो। मैं कमिश्नर को तुम्हारे लिए लिखूँगा। देखो, क्या होता है। इतना सुन डिप्टी बाबू लम्बा सलाम कर चल दिए, इतने में जण्ट साहब आ पहुँचे। डिप्टी को बाहर जाते जण्ट ने देखा था। जण्ट ने मजिस्ट्रेट से पूछा—इससे तुम क्या कह रहे थे?

मैजिस्ट्रेट—ओह! यह बड़ा मज़ेदार आदमी है।

जण्ट—कैसे?

मैजिस्ट्रेट—यह बेवक़ूफ़ और कमीना दोनों है। यह अपने देशी भाइयों की शिकायत कर मुझे ख़ुश करना चाहता था।

जण्ट—क्या मन की बात उससे कह दी?

मैजिस्ट्रेट—नहीं, मैंने तो तरक़्क़ी का वादा किया है। इसके लिए कोशिश करूँगा! कम से कम वह घमण्डी नहीं है। घमण्डी देशी आदमी को मातहती में रखना बिलकुल फ़ालतू है। मैं घमण्डियों के मुक़ाबले में उन्हें पसन्द करता हूँ जो अपनी लियाक़त में चूर नहीं रहते।

इधर वापस आने पर डिप्टी बाबू की एक दूसरे डिप्टी से भेंट हुई। उसने जलधर से पूछा—साहब के पास गए या नहीं?

जलधर—हाँ, बड़ी मुश्किल में पड़ गए।

डिप्टी—क्यों?

जलधर—उस बागड़ी ससुरे को क़ैद करने के कारण साहब कहते थे मैं रिपोर्ट कर दूँगा।

डिप्टी—फिर?

जलधर—फिर क्या, तरक़्क़ी का तार जमा आया।

डिप्टी—यह कैसे? किस जादू से?

जलधर—और कैसे? ठकुरसुहाती करके।

(लोक-रहस्य से)

☾ ☾ ☾

आशा का पाप

[श्री० कैलाशपति त्रिपाठी]

(१)

भीगे नयनों से देखूँ मैं कब तक जग की क्रीड़ा?
विद्रोही बन कर सहता हूँ पागलपन की पीड़ा॥
क्या अस्तित्व-विहीन बनेगी निठुर हृदय की माया?
जेठ दुपहरी में पाऊँगा क्या शीतल कर-छाया?

(२)

शरच्चन्द्र में आज लगा है अङ्गारों का मेला।
देख रहा हूँ सागर-तट से उसको बैठ अकेला॥
अमरपुरी से अग्निशिलीमुख नागलोक को आता।
अम्बुधि का अन्तर पापों से है मेरे छिद जाता!!

(३)

तारों की इस मूक हँसी में जीवन-रजनी रोती।
ओढ़ अमा सी काली चादर है, दुनिया जब सोती॥
मनोराज के सुखकर स्वप्नों की है जब अभिलाषा—
तब कैसे मैं करूँ किसी से कुछ विनिमय की आशा?
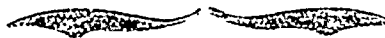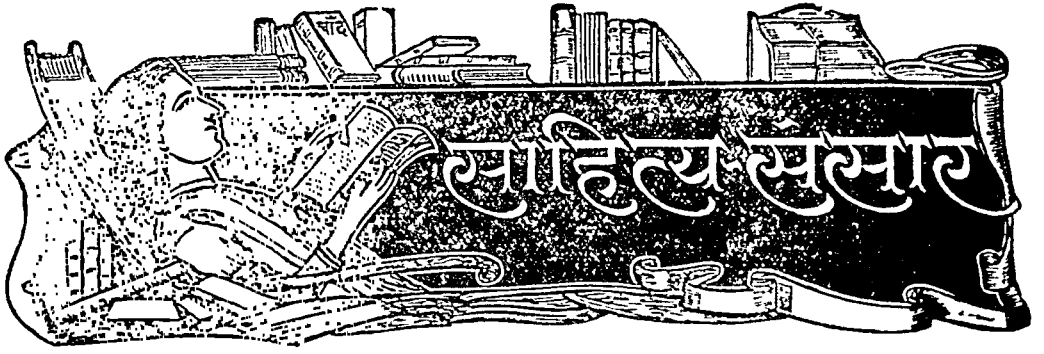
[आलोचक—श्री० अवध उपाध्याय]

भारतवर्ष—लेखक, हरिहरशरण मिश्र; प्रकाशक सूर्य-कमल ग्रन्थमाला कार्यालय, ४३२ गणेशगञ्ज, लखनऊ। मूल्य सादी जिल्द १), पृष्ठ-संख्या १२६।

यह एक नाटक है। इसके लेखक हरिहरशरण जी एक नवयुवक और नए साहित्य-सेवी हैं। उन्होंने भारत की वर्तमान दशा तथा उसकी भविष्य दशा पर इस नाटक में विचार किया है। वास्तव में इस नाटक में भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों काल की अवस्थाओं का मार्मिक चित्र खींचने का प्रयत्न किया गया है। इसीलिए इसमें भूताङ्क, वर्तमानाङ्क और भविष्याङ्क तीन अङ्क हैं।

वास्तव में यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी में प्रत्येक विषय के नए-नए लेखक पैदा हो रहे हैं। हम श्री० हरिहरशरण जी का नाटक के मैदान में स्वागत करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ लेखक का प्रथम प्रयत्न है, तथापि यह एक अच्छा ग्रन्थ है और इसका प्लॉट मौलिक है। इसकी भाषा ओजस्विनी और कवितामय है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ की भाषा इतनी सुन्दर, स्पष्ट, प्रबल और परिमार्जित है कि उसे पढ़ने में वास्तव में बड़ा आनन्द मिलता है, और उससे लेखक की प्रतिभा का ठीक-ठीक अनुमान हो सकता है। यदि हरिहरशरण जी इसी प्रकार लिखते रहे तो मेरा पूर्ण विश्वास है कि वे एक बहुत ही अच्छे लेखक हो जायँगे। इस ग्रन्थ में जिन भावों का चित्रण किया गया है वे स्वयं मिश्र जी के हैं। इसलिए इस ग्रन्थ का महत्व और भी अधिक हो जाता है। आरम्भिक प्रयास के विचार से इस ग्रन्थ की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

इस ग्रन्थ में मिश्र जी ने इस बात के दिखलाने का प्रयत्न किया है और उनका यह दृढ़ विश्वास है कि हिन्दू और मुसलमानों के बीच धार्मिक शत्रुता का उन्मूलन किए बिना भारतवर्ष में स्वराज्य स्थापित नहीं हो सकता। इसमें विधवा के प्रश्न के भी हल करने का प्रयत्न किया गया है और अन्त में स्वराज्य के प्रश्न के सुलझाने का प्रयास है। हिन्दू और मुसलमानों की एकता की समस्या भी इसमें मौजूद है।

अन्त में मैं श्री० हरिहरशरण जी का ध्यान निम्नलिखित बातों की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। इस नाटक में पर्दा का कुछ भी विचार नहीं किया गया है। सड़क, नदी, पहाड़ और महलों के दृश्यों के रखने में कई बातों का विचार करना पड़ता है और नाटक-लेखक के मार्ग में ये कई असुविधाएँ उपस्थित करते हैं। कभी-कभी तो ये कुशल नाटक-लेखकों के मार्ग में भी अड़चन डाल देते हैं और उसे विवश होकर ऐसी ग़लतियाँ करनी पड़ जाती हैं, जिन्हें वह भली भाँति समझता है, परन्तु कई कारणों से हटा नहीं सकता। पर्दे की ऐसी कई ग़लतियाँ इस नाटक में भी रह गई हैं। इनमें से कुछ तो ऐसी थीं जो बड़ी सुगमता से दूर की जा सकती थीं। आशा है, मिश्र जी दूसरे ग्रन्थों में इस बात का ध्यान रक्खेंगे।

दूसरी बात यह है कि ग्रन्थ के पढ़ने से पता चलता है कि इसे दो मनुष्यों ने लिखा है। ग्रन्थ का पहला भाग बहुत ही अधिक सुन्दर तथा रोचक है, परन्तु पिछला भाग उतना सुन्दर तो है ही नहीं, बल्कि नीरस भी है। पिछले भाग में न तो पहले की भाषा ही है, न भाव ही। इससे यह अनुमान किया जाता है कि मिश्र जी ने पिछले भाग को जल्दी में लिख डाला है और उसे उत्तम बनाने का प्रयत्न नहीं किया है। पिछले भाग

की कथा बहुत ही अधिक शिथिल हो गई है। नाटकों तथा उपन्यासों के अन्त का भाग और भी अधिक रोचक होना चाहिए और उसमें घटनाओं तथा चरित्रों का अच्छा जमघट होना चाहिए। अन्तिम भाग की कथा में गति होनी चाहिए; पर ये सब बातें इस नाटक में नहीं आ पाई हैं।

नाटक के पात्रों के कथोपकथन में स्वाभाविकता ख़ूब होनी चाहिए और उनकी भाषा भी पात्रों के अनुकूल ही होनी चाहिए। जहाँ तक हिन्दुओं और मुसलमानों का सम्बन्ध है, वहाँ तक तो मिश्र जी ने इस बात का ख़ूब ध्यान रक्खा है और केवल भाषा से पता चल जाता है कि हिन्दू बोल रहा है अथवा मुसलमान। परन्तु प्रत्येक हिन्दू की भाषा में कोई भी व्यक्तित्व नहीं पाया जाता। उदाहरण के लिए हम करोड़ीमल तथा उमाशङ्कर को ले सकते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों की भाषा में भी कोई भेद नहीं मालूम पड़ता। वास्तव में कुछ थोड़े पात्रों को छोड़ कर शेष सब पात्रों की भाषा, मिश्र जी की भाषा मालूम पड़ती है, भिन्न-भिन्न पात्रों की नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि कहीं-कहीं तो इस नाटक की भाषा बहुत ही सुन्दर है। उदाहरण के लिए हम कारुणिक की भाषा को ही ले सकते हैं। वास्तव में कारुणिक की भाषा बहुत परिष्कृत तथा सुन्दर है। पृष्ठ ४ के प्रारम्भ में कारुणिक की भाषा बहुत ही मनोहर है। परन्तु कभी-कभी दूसरे लोग भी इसी तरह की भाषा का प्रयोग करते हैं, जिससे कारुणिक की भाषा का व्यक्तित्व नहीं रह जाता। सुरेशचन्द्र की भाषा बहुत सफलता के साथ लिखी गई है।

नाटकों में प्रारम्भ से अन्त तक एक श्रृङ्खला होनी चाहिए और यदि उसमें से थोड़ा अंश भी निकाल लिया जाय तो सारा नाटक ही नीरस हो जाना चाहिए। परन्तु इस नाटक के कुछ पृष्ठ निकाल दिए जायँ तो कुछ हानि नहीं होगी।

* * *

जुझार तेजा—लेखक, मेहता लज्जाराम शर्मा; सम्पादक श्री० दुलारेलाल भार्गव; प्रकाशक गङ्गा-पुस्तकमाला कार्यालय, २९-३० अमीनाबाद पार्क, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या ८०; मूल्य ॥); सजिल्द का १)।

राजपूताने में जुझार तेजा एक बहुत ही बहादुर आदमी हो गया है। इसकी पूजा आज भी राजपूताने में होती है और इसके सम्बन्ध की कविता गाई जाती है। इतना ही नहीं, वह एक ऐतिहासिक व्यक्ति भी है और मुन्शी देवीप्रसाद जी ने भी इसका वर्णन किया है। उसी तेजा का वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है। यह ग्रन्थ वास्तव में तेजा का जीवन-चरित्र है, जो गीत तथा इतिहास के आधार पर लिखा गया है। वास्तव में यह उपन्यास से भी अधिक रोचक है। आशा है, हिन्दी संसार में इसका आदर होगा।

* * *

प्रेम की पीड़ा—लेखक, पं० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' बी० ए०, मन्त्री, लेखक-मण्डल, प्रयाग; प्रकाशक, लेखक-मण्डल दारागञ्ज, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या ७६; मूल्य ॥)।

इस पुस्तक के लिखने में वास्तव में गिरीश जी को सफलता मिली है। उपन्यासों में बहुत गुणों का होना आवश्यक है, परन्तु उसमें रोचकता का होना परमावश्यक है। मैं यह बात निःसङ्कोच कह सकता हूँ कि यह उपन्यास बहुत रोचक है। यह उपन्यास पत्रों के रूप में लिखा गया है। इससे इसकी रोचकता और भी बढ़ गई है। कहीं-कहीं तो यह उपन्यास वास्तव में बहुत रोचक है। एक स्थान पर राधावल्लभ अपनी प्रेयसी के पत्र के बारे में अपने मित्र के यहाँ यों लिखता है:—"उस काग़ज़ को (पत्र) पुस्तक के भीतर रख कर मैं पढ़ने लगा। उसे आज तक एक अनमोल रत्न की तरह सुरक्षित रूप में रक्खे हूँ और आज भी उसमें की गई भर्त्सना के एक-एक अक्षर को पढ़ कर अपूर्व आनन्दरस का आस्वादन करता हूँ।" वास्तव में ये वाक्य मर्मस्पर्शी तथा मनोहर हैं। इस पुस्तक में ऐसी रोचक बातें और भी कई जगह हैं। मुझे इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में एक शिकायत है। इसका अन्त अच्छा नहीं हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि जीवन में ऐसी बातें प्रायः होती हैं, परन्तु कला की कूची उसे अपने रूप में ढाल देती है और उसी बात का अभाव यहाँ खटकता है। अन्त में गिरीश जी ने प्रेमी और प्रेमिका दोनों को योंही छोड़ दिया है। इसका अन्त वास्तव में बड़ा ही सुन्दर बनाया जा

सकता था। सारी पुस्तक पढ़ जाने के बाद ऐसा मालूम होता है कि यह उपन्यास कुछ अपूर्ण सा रह गया है।

* * *

व्यापार-रत्न-संग्रह—लेखक और प्रकाशक, मोतीलाल रुवावाला ; पृष्ठ-संख्या ६०; मूल्य ॥) । इसमें व्यापार सम्बन्धी बातों का वर्णन है। यह देखा जाता है कि कभी-कभी करोड़पति तथा लखपति व्यापारी भी अङ्गरेज़ी नहीं जानते और व्यापार सम्बन्धी अङ्गरेज़ी की कितनी बातें नहीं समझते। उन्हीं के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। इस ग्रन्थ में व्यवसायों से सम्बन्ध रखने वाली तमाम आवश्यक और ज्ञातव्य बातों—सट्टा, शेयर, रुई, तार, रङ्ग, तौल आदि—का वर्णन है।

* * *

मैथिलीय-भाषा-व्याकरण-भास्कर—लेखक पं० श्री० हीरालाल झा 'हेम' ; प्रकाशक, कन्हैयालाल कृष्णदास, मालिक "श्रीरमेश्वर" प्रेस दरभङ्गा ; पृष्ठ-संख्या १०६; मूल्य ॥)।

यह एक मैथिली भाषा का व्याकरण है।

* * *

ग्राम-सुधार—लेखक, गिरिवरधर वकील, समस्तीपुर ; पटना लॉ-रिपोर्टर प्रेस में मुद्रित ; पृष्ठ-संख्या १६२ ; मूल्य ॥) । इसमें ग्राम के सुधार सम्बन्धी सब बातों का वर्णन है। इसमें ग्राम-सङ्गठन, ग्राम-सभा तथा उसका कर्तव्य, और धर्म, अहिंसा, सत्य, शौच, अस्तेय, व्यायाम और भोजनादि के विषय में विचार किया गया है।

* * *

नरहत्या—लेखक, डुबलाल । प्रकाशक, श्री० प्रेमघन नागरी नाट्य-समिति, मिर्ज़ापुर । पृष्ठ-संख्या १२२ ; मूल्य १)

पं० रामनारायण मिश्र जी के कहने से श्री० डुबलाल जी ने इसे लिखा था और यह सन् १६२४ ई० को ४, ५, और ८ मार्च को रङ्ग-मञ्च पर खेला गया था।

* * *

भारतीय नीतिकथा—लेखक, श्री० शिवसहाय [illegible] । प्रकाशक, हिन्दी हितैषी-कार्यालय, देवरी (सागर) मध्य प्रान्त । पृष्ठ-संख्या १७०, मूल्य ॥)। इस ग्रन्थ को चतुर्वेदी जी ने बड़े परिश्रम से लिखा है। हम पाठकों से इसे पढ़ने का अनुरोध करते हैं।

* * *

इतिहास की कहानियाँ—लेखक, श्री० गङ्गाप्रसाद । प्रकाशक, गङ्गा पुस्तकमाला कार्यालय, २९-३० अमीनाबाद पार्क, लखनऊ । पृष्ठ-संख्या ८६, मूल्य ।॥=)। इसमें छोटे-छोटे लड़कों के पढ़ने योग्य ३२ सुन्दर कहानियाँ हैं।

* * *

वृत्तबोधः—लेखक का पता नहीं। प्रकाशक, श्री० श्वेताम्बर साधुमार्गी, जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर। मिलने का पता—अगरचन्द भैरोंदान सेठिया, जैन शास्त्र-भण्डार, बीकानेर, राजपूताना । इसमें संस्कृत के छन्दों का वर्णन है।

* * *

कविकेलि—सम्पादक श्री० अवन्तविहारी माथुर। प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-हितैषी-भवन, नव महल, ग्वालियर सिटी, मध्य भारत । पृष्ठ-संख्या २५; मूल्य ।=)। इसमें समस्या पूर्ति है।

* * *

राजपूतों की बहादुरी—पहला भाग। सम्पादक हरिदास माणिक। प्रकाशक, माणिक कार्यालय काशी। पृष्ठ-संख्या १२८। मूल्य ॥)। यह माणिक ग्रन्थ-माला का ७ वाँ रत्न है। इसमें हरदौल बुँदेला, राणा संग्रामसिंह, शिवाजी की दुर्ग-विजय, वीर नारी ताराबाई, वीर लल्लू जी चम्पावत, सिंहगढ़ पर धावा और हल्दीघाटी की लड़ाई का बहुत अच्छा और सुन्दर वर्णन है। वास्तव में हिन्दी के प्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

* * *

केसरी-कीर्तन—लेखक, हरिशङ्कर शर्मा; प्रकाशक, रामप्रसाद एण्ड ब्रदर्स, आगरा ; पृष्ठ-संख्या १०३; मू० ॥) ; छपाई, काग़ज़ उत्तम ।

यह लाला लाजपतराय जी का जीवन-चरित्र है। इसमें उनके जीवन की सब प्रधान घटनाओं का वर्णन

पुस्तक के अन्त में कई सुन्दर कविताओं का भी [दि]या गया है, जिससे इस पुस्तक का महत्व और अधिक बढ़ [गय]ा है। उदाहरण के लिए हम यहाँ एक पद उद्धृत [कर]ते हैं :—

[हो] गया हमसे जुदा आखिर हमारा लाजपत—
[हि]न्द का रूहे रवाँ आँखों का तारा लाजपत॥
[क्]यों न हमको नाज़ हो औ क्यों न हमको फख़्र हो?
[न]ाज रखता था ज़माने में हमारा लाजपत॥

* * *

दर्शन और अनेकान्तवाद—लेखक, पं० [हंस]राज जी शर्मा; प्रकाशक, श्री० आत्मानन्द जैन, पुस्तक-[प्रच]ारक-मण्डल, रोशन मुहल्ला, आगरा; पृष्ठ-संख्या ३६; [मू]० ॥); छपाई, काग़ज़ उत्तम।

इस ग्रन्थ के लिखने में पं० हंसराज जी शर्मा ने [द]र्शन सम्बन्धी अगाढ़ पाण्डित्य का परिचय दिया है। [इ]समें सन्देह नहीं कि इसमें एक ही बात कई बार [दुह]राई गई है, तथापि विषय की कठिनता के कारण [प]ण्डित जी को विवश होकर ही ऐसा करना पड़ा होगा। [द]र्शन के सभी प्रेमी इससे लाभ उठा सकते हैं, परन्तु [जै]नधर्म के मतावलम्बियों के लिए यह ग्रन्थ विशेष [उ]पयोगी होगा, क्योंकि इसमें स्याद्वाद की अच्छी व्या-[ख्]या की गई है।

* * *

विषाद-सिन्धु—लेखक, मीर मशार्रफ़ हुसेन; [प्र]काशक, श्री० निरञ्जनलाल भार्गव, गोविन्द भवन [इ]लाहाबाद; पृष्ठ-संख्या ३५५; मू० १॥); छपाई, काग़ज़ [उ]त्तम।

यह बहुत ही मनोरञ्जक ग्रन्थ है। इसमें हसन और [हु]सेन के वध का बहुत ही अच्छा तथा मनोहर वर्णन [है]। हुसेन किस प्रकार कर्बला के मैदान में पानी बिना [त]ड़प-तड़प कर मर गए, इसका बहुत सुन्दर वर्णन इस [ग्र]न्थ में किया गया है। पूर्ण आशा है कि हिन्दी में इसका अच्छा प्रचार होगा। आज भी मुसलमान मुह-[र्र]म मनाते हैं। उसी मुहर्रम पर्व का इसमें ख़ुलासा किया गया है।

प्रबन्ध-पथ-प्रदर्शक—सम्पादक, पं० गङ्गासहाय शर्मा; प्रकाशक गुप्त ब्रदर्स एण्ड कम्पनी, मण्डी धनौरा, ज़िला मुरादाबाद; पृष्ठ-संख्या १५२; छपाई, काग़ज़ उत्तम।

यह पुस्तक प्रारम्भिक प्रबन्ध-लेखकों के बड़े काम की है। इसमें निबन्ध लिखने की उपयोगी शिक्षा दी गई है। लिखना सीखने वाले छात्रों को इससे विशेष सहायता मिल सकेगी।

* * *

मानस-मञ्जूषा—लेखक, शोभाराम धेनुसेवक; प्रकाशक, श्रीतुलसी-ग्रन्थमाला कार्यालय, लखनादौन (सिवनी), मध्यप्रदेश; पृष्ठ-संख्या २५६; मू० १॥); छपाई, काग़ज़ साधारण।

इसमें धेनुसेवक जी ने रामायण के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातें लिखी हैं। रामचरित-मानस के प्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। कहीं-कहीं इसमें रामायण के सम्बन्ध में शङ्का की गई है और उसका विद्वत्तापूर्ण उत्तर भी दिया गया है। इस ग्रन्थ में केवल बालकाण्ड का वर्णन है। हम धेनुसेवक जी को इस ग्रन्थ के लिखने के लिए बधाई देते हैं।

* * *

जल-चिकित्सा—लेखक, श्री० शिवनरायण टण्डन; प्रकाशक, प्रकाश पुस्तकालय; पृष्ठ-संख्या ६४; मूल्य ।=); छपाई उत्तम।

इस पुस्तक में जल-चिकित्सा का अच्छा वर्णन है और कई उदाहरण भी दिए गए हैं।

* * *

ओम का नवीन धर्म—लेखक, पी० सी० ओमानन्द वेदान्ती; प्रकाशक आनन्द-मार्ग कार्यालय फ़र्रुख़ाबाद; पृष्ठ-संख्या ३२; मूल्य -)॥; छपाई और काग़ज़ साधारण।

इस पुस्तक में 'ओ३म्' की व्याख्या की गई है और उसके गूढ़ तत्वों पर प्रकाश डालने की चेष्टा भी।

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आजकल चारों ओर मुसीबत ही मुसीबत है। इधर हिन्दुस्तान पर मुसीबत, उधर ब्रिटिश सरकार पर मुसीबत ! एक क़ानून तोड़ने के कारण मुसीबत में है तो दूसरा क़ानून की रक्षा करने के कारण। ब्रिटिश सरकार अथवा भारत-सरकार यदि अपने क़ानूनों को नहीं तुड़वाना चाहती तो इसमें उसका क्या दोष है ? जिन क़ानूनों के बनाने में उसे वर्षों लगे, न जाने कितना परिश्रम करना पड़ा, न मालूम कितनों को प्रसन्न रखना पड़ा, उन क़ानूनों को हिन्दुस्तानी दिल्लगी में तोड़ डालना चाहते हैं। तोड़ने-फोड़ने में कुछ लगता है ? तोड़-फोड़ का काम जितना सरल है, उतना सरल निर्माण का कार्य नहीं है। हिन्दुस्तानियों की समझ में यह बात नहीं आती। इन्हें तो बस क़ानून तोड़ना आता है। यह तो हुआ नहीं कि कोई ऐसा क़ानून बनाते जिससे ब्रिटिश सरकार को कुछ सहायता मिलती। ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तानियों के लाभ के लिए कितने क़ानून बना रक्खे हैं। एक नमक-क़ानून ही को ले लीजिए। भारत-सरकार ने नमक पर टैक्स कुछ अपने लाभ के लिए थोड़ा ही लगाया है ? यह भी हिन्दुस्तानियों के लाभ की बात है। उस दिन 'लीडर' में किसी महोदय ने लिखा था कि—"नमक रजोगुणी है, नमक खाने से सतोगुण का नाश हो जाता है। यदि नमक न खाया जाय तो मनुष्य अधिक स्वस्थ रह सकता है।" ऐसी दशा में यदि इस पर टैक्स न लगाया जाता तो लोग इसका व्यवहार अधिक करते। सस्ती चीज़ अधिक ख़र्च होती है। नतीजा यह होता कि सतोगुण भारतवर्ष में बिल्कुल न रह जाता—अभी जो कुछ है वह इसलिए कि लोग नमक कम खाते हैं। सम्पादक जी, मैं स्वयम् आधे पेट नमक खाकर रहता हूँ। क्या करें, कमबख़्त टैक्स के मारे कभी पेट भर नमक नहीं खा पाया। इसका बड़ा क़लक रहता था ; परन्तु अब यह जान कर सन्तोष हुआ कि नमक बड़ी हानिकारक वस्तु है। पहले मैं भारत-सरकार को कोसा करता था ; परन्तु अब दुआएँ देता हूँ। नमक का बनना और बिकना बिल्कुल बन्द हो जाय तो बहुत अच्छा है। ऐसी चीज़ का प्रचार दो कौड़ी का। शराब और अफ़ीम इत्यादि की श्रेणी में नमक को भी समझना चाहिए। 'लीडर' के लेखक को इस सूचना के लिए पुरस्कार दिया जाय या दण्ड—यह बात विचारणीय है। पुरस्कार तो इस दृष्टि से देने की इच्छा होती है कि उसने नमक की हानियाँ बता कर भारतवर्ष की आँखें खोल दीं। परन्तु जब यह विचार आता है कि इतने दिनों तक वह इस बात को क्यों छिपाए रहा और हिन्दुस्तानियों को हानि उठाते देखना सहन करता रहा तो यह इच्छा होती है कि उसे इस अपराध के लिए दण्ड दिया जाय। अभी मैं कोई निश्चय नहीं कर पाया हूँ। नमक खाना छोड़ कर कुछ दिनों के पश्चात इस पर

विचार करूँगा। तब तक काफ़ी सतोगुण इकट्ठा हो जायगा—और जो बात सूझेगी वह दूर की सूझेगी।

हाँ, मैं क्या कह रहा था? ओ! याद आ गया। तो जनाब ऐसी प्रजावत्सल सरकार से लोग ख़ामख़ाह लड़ रहे हैं। धरसाना में सरकार क्यों इतनी सख़्ती कर रही है? इसका यही कारण है कि सरकार जानती है कि ये लोग सब नासमझ हैं। मुफ़्त का नमक हाथ लगेगा तो अनाप-शनाप खा जायँगे। नतीजा यह होगा कि सब घोर रजोगुणी हो जायँगे और अनेक प्रकार की अन्य हानियाँ भी उठाएँगे। इसलिए इनकी रक्षा करनी चाहिए। अतएव लोगों की रक्षा के लिए सरकार ने धरसाना में पहरा लगाया। लोग इसका तात्पर्य उलटा समझे और उन्होंने सत्याग्रह ठान दिया। यदि कोई स्वार्थी सरकार होती तो सोचती, अच्छा है मरने दो, हमारा क्या नुक़सान है। परन्तु अङ्गरेज़ तो स्वार्थी नहीं हैं और इसका प्रमाण यह है कि धरसाना में उन्होंने सत्याग्रह करने वालों को मारना-पीटना तक क़बूल किया, परन्तु यह देखना उचित नहीं समझा कि लोग नमक पर अधिकार जमा कर स्वयम् अपने पैर में कुल्हाड़ी मारें। अजी डण्डों की मार तो अच्छी हो जायगी—अस्पताल इसी के लिए तो खुले हैं, परन्तु नमक खा-खाकर जो हानि लोग उठाएँगे उसका इलाज असम्भव हो जायगा। यदि कोई बालक ज़िद करके आग से खेलना चाहे तो माता-पिता क्या उसे ऐसा करने की आज्ञा दे देंगे? कभी नहीं। वे बालक को मारेंगे, पीटेंगे, डाटेंगे; सभी कुछ करेंगे, पर आग से कभी न खेलने देंगे। ऐसी दशा में 'माँ-बाप' अङ्गरेज़ भी यदि मार-पीट करते हैं तो क्या हर्ज है? परन्तु आजकल है कलियुग। लोग सगे माँ-बापों का कहना नहीं मानते, अङ्गरेज़ तो बेचारे पराए हैं।

परन्तु यदि एक बात हो तो बरदाश्त की जाय। लोग यह भी तो कह रहे हैं कि हम स्वराज्य लेंगे। मानो स्वराज्य भी कोई खिलौना है। स्वराज्य लेकर करेंगे क्या? यही न कि बैठे-बिठाए अपने ऊपर एक मुसीबत लाद लेंगे। अङ्गरेज़ों को हिन्दुस्तान पर राज्य करने में कितनी मुसीबत उठानी पड़ती है? अपना घर-द्वार छोड़ कर और हज़ारों कोस की यात्रा करके हिन्दुस्तान में आते हैं। यहाँ की गर्मी बरदाश्त करके हिन्दुस्तानियों की सेवा करते हैं। क्यों? इसलिए कि वे नहीं चाहते कि हिन्दुस्तानियों के सिर पर इतना भारी बोझ लादें। राज्य करना बड़ी जोखिम और परेशानी का काम है। दिल्लगी नहीं है। अङ्गरेज़ लोग कैसे राज्य करते हैं—यह उन्हीं का जी जानता है। पर बेचारे करें क्या—अपना कर्त्तव्य-पालन करते हैं। हिन्दुस्तानियों में इतनी तमीज़ भी नहीं जो स्वयम् राज्य कर सकें, क्योंकि ये इतनी परेशानी और दिक़्क़त नहीं सह सकते। और सहना भी नहीं चाहिए। जब अङ्गरेज़ इनकी बला अपने सिर पर लिए हुए हैं तो इन्हें क्या आवश्यकता है, पर समझाए कौन? समझाए तो तब जब समझ में आए।

लोग अङ्गरेज़ों पर यह दोषारोपण करते हैं कि इनके राज्य में हिन्दुस्तान ग़रीब हो गया और भूखों मरने लगा—हिन्दुस्तान का सब रुपया अङ्गरेज़ लोग विलायत ले गए। अपने राम की समझ में यह दोषारोपण भी अनुचित है। अङ्गरेज़ लोग हिन्दुस्तान का रुपया यदि विलायत ले गए तो यह बहुत अच्छा हुआ। यदि यहाँ रुपया रहता तो नित्य चोरियाँ होतीं और डाके पड़ते। रुपया झगड़े की जड़ है। ऐसी चीज़ को देश में रखना मानों झगड़े की जड़ जमाना है। रुपया नहीं है तो आराम से पैर फैलाए मस्त पड़े हैं, न चोरों का खटका, न डाकुओं का डर। रुपया होता तो उसकी रक्षा करने की चेष्टा में प्राणों को सङ्कट मिलता? ख़ामख़ाह प्राणों को सङ्कट में डालना कहाँ की बुद्धिमानी है? हमारे ऋषि लोग सदैव इस बात की शिक्षा देते रहे कि अपनी आत्मा को क्लेश मत पहुँचाओ, संसार के विषय-वासनाओं में मत फँसो, यह संसार असार है, धन-दौलत को निकृष्ट समझो। अब यह सोचना चाहिए कि जब रुपया पास होगा तो मनुष्य विषय-वासना में अवश्य फँसेगा और अनेक प्रकार के पाप-कार्य करेगा। अतएव यदि रुपया नहीं है तो बड़ी अच्छी बात है। विषय-वासना और पाप से तो बचे हुए हैं। उधर चारों ओर डाकुओं से बेफ़िक्र, इधर विषय-वासना और पाप से बचत! कितना बड़ा लाभ है! अङ्गरेज़ों का हिन्दुस्तानियों के प्रति कितना बड़ा उपकार है! परन्तु फिर भी लोग, धन्यवाद देना भाड़ में गया, उलटी शिकायत करते हैं। अङ्गरेज़ कमबख़्तों के भाग्य में यश बदा ही नहीं है। ये भलाई भी करेंगे तो लोग बुराई ही समझेंगे। अब रही यह बात

कि लोग भूखों मरते हैं तो यह अपना-अपना भाग्य है, अङ्गरेज़ किसी के भाग्य को थोड़ा ही बदल सकते हैं? जिसके भाग्य में भूखा मरना ही बदा है वह हिन्दुस्तान में क्या, अमेरिका चला जाय तब भी भूखा मरेगा। क्या अङ्गरेज़ भूखे नहीं मरते? इङ्गलैण्ड में लाखों अङ्गरेज़ भूखों मरा करते हैं। और भूखा मरना तो भारतवासियों के धर्म में श्रेष्ठ समझा गया है। यहाँ भूखे मरने के लिए ही एकादशी, प्रदोष, पूर्णिमा, इतवार, मङ्गल इत्यादि के व्रत रक्खे गए हैं। भूखे मरने से स्वास्थ्य ठीक रहता है। जब बीमारी होती है तो वैद्य भी सबसे अच्छी चिकित्सा यह समझते हैं कि लङ्घन कराया जाय। मुसलमान तो वर्ष में एक मास लगातार भूखे मरते हैं। अतएव जब भूखा मरना इतना श्रेष्ठ है तब फिर शिकायत क्यों की जाती है? क्या इससे अङ्गरेज़ों के कोमल हृदय पर चोट न लगती होगी कि भारतवासी स्वयम् तो शौक़िया और स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए भूखे मरते हैं और नाम उनका बदनाम करते हैं? कोई न देखे, परन्तु इस अन्याय को परमात्मा तो देखता ही है। हाँ, एक बात तो भूल ही गया। भूखे मरने वाले स्वर्ग में स्थान पाते हैं। हिन्दू और मुसलमानों में अधिकतर तो इसीलिए भूखे मरते हैं कि इससे स्वर्ग मिलेगा। अतएव यदि प्रत्येक समय पेट डबल रोटी की तरह फूला रहे तो ईश्वर को स्वर्ग के फाटक में सदैव के लिए ताला डलवा देना पड़े। अब कहिए, स्वर्ग का फाटक किसकी बदौलत खुला हुआ है? समझदार की मौत है। और क्या कहा जाय?

यह धरना क्या बला है और इससे लाभ क्या है—यही समझ में नहीं आता। विलायती कपड़े पर धरना, शराब पर धरना। विलायती कपड़ा! हरे! हरे! इस तेरी-मेरी का भी कुछ ठिकाना है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" का सिद्धान्त मानने वाले आज इतने सङ्कुचित-हृदय हो गए कि ख़ास अङ्गरेज़ों के, अपने रक्षकों के, बनाए कपड़े का तिरस्कार कर रहे हैं! इसीसे तो पुनः यह कहना पड़ता है कि घोर कलिकाल आ गया। यह एहसान तो भाड़ में गया कि अङ्गरेज़ों की बदौलत हम लोगों को कैसे-कैसे बढ़िया कपड़े पहनने को मिलते हैं। यह दशा है कि खाने को चाहे उबले चने ही मिलें, पर कपड़ा बढ़िया ही मिलता है। अजी खाना कौन देखता है? कपड़ा तो सब देखते हैं। कपड़े से ही मनुष्य की शोभा है। इतनी साधारण बात भी हिन्दुस्तानी नहीं समझते। अङ्गरेज़ बेचारे तो इस विचार से बढ़िया-बढ़िया कपड़े बना कर भेजते थे कि कोई यह न कहे कि हिन्दुस्तानियों को कपड़ा भी नहीं मिलता। अपना सिर खपा कर कि नई-नई डिज़ाइनों के कपड़े ईजाद करके भेजे। उसका पुरस्कार यह मिला कि विलायती कपड़े पर धरना दिया जा रहा है। एक समय वह था कि विलायती शब्द वस्तु की उत्तमता का सूचक होता था। कैसी ही वस्तु हो, ज्यों यह पता लगा कि विलायती है, बस तुरन्त यह इत्मीनान हो जाता था कि उत्तम है, सो आज उसी विलायत की यह दशा है। समय का फेर इसी को कहते हैं!!

कहते हैं कि कपड़े की बदौलत अङ्गरेज़ लोग का करोड़ रुपए वार्षिक हथिया लेते हैं। हथिया लेते हैं तो क्या बेजा करते हैं? चीज़ नहीं देते हैं? रुपया होता किस लिए है? खाने और पहनने के लिए। सो यदि ख़राब और रद्दी कपड़ा पहन कर रुपया बचाया भी तो किस काम का? कञ्जूसी की भी कोई हद होती है ऐसी कञ्जूसी किस काम की?

ऐसी-ऐसी बढ़िया डिज़ाइनें आती थीं कि यदि एक एक डिज़ाइन पर लाखों रुपए न्योछावर करके समुद्र में फेंक दिए जाते तब भी कोई बेजा बात नहीं थी परन्तु हिन्दुस्तानियों में कृतज्ञता का माद्दा तो है ही नहीं कृतज्ञता का माद्दा होता तो अङ्गरेज़ों के पैर धो-धोकर पीते। और अब भी जो समझदार हिन्दुस्तानी हैं वे पैर धोकर पीते ही हैं। सच पूछिए तो इन्हीं हिन्दुस्तानियों के कारण भारतवर्ष सधा हुआ है, अन्यथा रसातल को चला जाता। शास्त्रों में लिखा है कि जिस मुहल्ले में एक भी पुण्यात्मा होता है वह मुहल्ला का मुहल्ला ईश्वरीय कोप से बचा रहता है। हिन्दुस्तान में तो ऐसे अनेक पुण्यात्मा हैं जो अङ्गरेज़ों का उपकार मान कर उनकी पूजा करते हैं। इसीलिए हिन्दुस्तान धरती पर टिका हुआ है।

और तो और, शराब पर भी धरना! पूछो शराब बेचारी ने क्या अपराध किया है? और यह दिल्लगी देखिए कि विलायती तो विलायती, देशी शराब पर भी धरना है! यह धाँधली नहीं तो और क्या है? देशी शराब पर इसीलिए धरना है कि उससे अङ्गरेज़ों को टैक्स मिलता है। यह अच्छा हिसाब है? यदि अङ्गरेज़

[य]ा पानी से टैक्स मिलता तो शायद पानी पर भी धरना [द]े जाता। इस समय कोई शराबियों के हृदय से पूछे। [य]ह बरसात के दिन, काली-काली घटाएँ उठती हैं, और [श]राब पर धरना? हाय! हाय! गला काट कर मर जाने [क]ी बात है? इससे तो यही अच्छा है कि शराब के [प्रे]मियों को सङ्खिया खिला दी जाय।

कुछ लोगों का ख़्याल है कि शराब तो सदैव के [लि]ए बन्द हो जानी चाहिए। परन्तु अपने राम का यह [व]िचार है कि शराब बन्द न होगी। अमेरिका ने शराब [ब]न्द तो की, परन्तु क्या नतीजा हुआ? लाखों रुपए की [श]राब अब भी वहाँ बिकती है। लोग चुरा कर बाहर से [म]ँगाते हैं और बेचते हैं। हालाँकि इसके लिए अलग [प]ुलीस नियुक्त है, परन्तु फिर भी बिकती ही है। मान [ल]ीजिए कि भारत को स्वराज्य मिल गया तो क्या शराब [ब]न्द हो जायगी? अजी राम भजिए। जैसे अभी लोग [न]मक बनाते हैं वैसे ही तब शराब बनाएँगे। अजी अब [त]ो सत्याग्रह का ऐसा नुसख़ा हाथ लग गया है कि लोग जिस बात पर चाहेंगे सत्याग्रह करेंगे। वैद्यों की चाँदी हो जायगी। आसव के बहाने ख़ूब शराबें बनाएँगे और बेचेंगे। स्वराज्य मिल जाने दीजिए, फिर अपने राम भी वैद्यक-शास्त्र पढ़ेंगे। वैसे तो चरक, सुश्रुत सब देख चुके हैं और पढ़ चुके हैं, क्योंकि उनके विज्ञापन निकला करते हैं और वैद्यों के यहाँ अलमारी में रक्खे रहते हैं।

सम्पादक जी, यह जो कुछ हो रहा है, सब एक सिरे से अन्याय ही अन्याय हो रहा है। इन अङ्गरेज़ों की आह व्यर्थ न जायगी, देख लीजिएगा। इन बेचारों को जो व्यर्थ में सताएगा वह सुख से न बैठने पाएगा। ऐसा अपने राम का विचार होता भया, आगे जो ईश्वर चाहेगा वही होगा। हालाँकि अपने राम अच्छी तरह जानते हैं कि क्या होगा, परन्तु कहना बेकार है, क्योंकि जो अपने राम का विचार है वही इस समय सारे हिन्दुस्तान का है।

भवदीय,
विजयानन्द (दुबे जी)

मिश्र देश में तलाक़ का क़ानून

मिश्र देश में हाल ही में इस आशय का एक क़ानून [ब]ना है कि जिन पुरुषों को एक वर्ष या इससे अधिक [स]मय के क़ैद की सज़ा होगी, उनकी स्त्रियाँ उन्हें तलाक़ [द]े सकती हैं। इस क़ानून के अनुसार अब तक बहुत सी [स्त्रि]यों ने अपने पति को तलाक़ दे भी दिया है, परन्तु ये [स]भी पुरुष ऐसे थे, जिन्हें बेहद शराब पीने की आदत [थ]ी और इसी आदत की बदौलत उन्हें जेल भी जाना पड़ा।

* * *

देवदासी प्रथा का निषेध

कोचीन राज्य की व्यवस्थापिका सभा में उसके एक [म]हिला सदस्य ने इस आशय का एक प्रस्ताव पेश किया [ह]ै कि इस राज्य के अन्दर मन्दिरों में कन्याओं को दान [द]ेने की प्रथा बन्द कर दी जाय। इस प्रस्ताव में इस [ब]ात का भी विधान है कि जो लोग ऐसे दान दिए जाने [म]ें सहायता [क]रें उन्हें दण्ड दिया जाय।

हिन्दू युवतियों की वीरता

ढाका (बङ्गाल) में हिन्दू-मुसलमानों के बीच भयानक दङ्गा हो गया है और यह लगातार बहुत दिनों तक जारी रहा है। कहते हैं कि विगत २९ मई को कायस्थटोली में बाबू प्रसन्नकुमार नन्दी के मकान पर मुसलमानों के एक गरोह ने आक्रमण किया। नन्दी महाशय ने फ़ोन द्वारा पुलिस से सहायता माँगी, पर पुलिस की ओर से उन्हें कोई सहायता नहीं दी गई। जब उनके घर वालों को यह निश्चय हो गया कि उन्हें बाहर से कोई सहायता नहीं मिल सकती तो प्रसन्न बाबू की दो लड़कियाँ—अनिन्दबाला और अमियबाला, जो इडेन हिन्दू स्कूल में पढ़ती हैं—कमर कस कर गुण्डों का मुक़ाबला करने के लिए तैयार हो गईं। ये वीराङ्गनाएँ पूरे आध घण्टे तक गुण्डों के एक बड़े गरोह से युद्ध करती रहीं और उन्हें घर के भीतर न घुसने दिया। परन्तु अन्त में इनमें से एक के सिर में सख़्त चोट लग जाने के कारण इन्हें मुक़ाबले से हट जाना पड़ा।
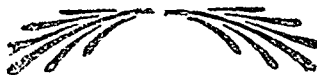
मातृ-मन्दिर

पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि इलाहाबाद का मातृमन्दिर पिछले डेढ़ महीनों से बड़ी सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है। इस संस्था का उद्देश्य है :—

१—निर्धन, निराश्रय तथा असहाय महिलाओं और बच्चों की यथाशक्ति सहायता करना।

२—ऐसी स्त्रियों को, जो सुमार्ग से विचलित होकर किसी प्रकार की नैतिक आपत्ति में फँस गई हों, सहायता प्रदान कर उनके जीवन को आदर्श और उपयोगी बनाना।

३—असहाय तथा अनाथ विधवाओं की यथाशक्ति सेवा करना।

४—जो महिलाएँ कला-कौशल अथवा सङ्गीत आदि सीखना चाहें, उन्हें यथाशक्ति सहायता करना।

५—जो असहाय महिलाएँ पढ़ने की इच्छा रखती हों, किन्तु धनाभाव के कारण पढ़ न सकती हों उनकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करना।

६—ऐसी स्त्रियों के साथ यदि बच्चे हों तो उनके खान-पान और शिक्षा का उचित प्रबन्ध करना।

७—कुमार्ग द्वारा उत्पन्न बच्चों का पालन-पोषण करना, तथा उनकी शिक्षा आदि का समुचित प्रबन्ध करना।

८—जो महिलाएँ शिक्षा प्राप्त करने के बाद अथवा पहले ही विवाह करना चाहती हों, और संस्था की सहायता चाहती हों, उनके लिए सुयोग्य वर का प्रबन्ध कर विवाह करा देना।

सारांश यह कि ऐसी स्त्रियों को, जो किसी भी प्रकार की सहायता चाहती हों, यथाशक्ति सहायता देकर उनके जीवन को आदर्श, स्वावलम्बी तथा समाज और देश के लिए उपयोगी बनाने की चेष्टा करना ही संस्था का उद्देश्य है।

पत्र-व्यवहार कुमारी लीलावती जी, प्रिन्सिपल, मातृ-मन्दिर, कृष्ण-कुटीर, रसूलाबाद, इलाहाबाद के पते से करना चाहिए।

* * *

मातृमन्दिर-कोष

मातृमन्दिर (इलाहाबाद) के मन्त्री महोदय सूचित करते हैं कि गत जून मास के अङ्क में प्रकाशित सूचना के अनुसार मातृमन्दिर-कोष में १०२२ रु० ८ पाई नक़द प्राप्त हुए थे। विगत मई तथा जून मास में ८८॥) और मिले हैं, जिसकी सूची इस प्रकार है :—

(१) एक गुप्तदान ... ... २७)
(२) श्रीयुत विद्याधर, कण्ट्रैक्टर, कस्टम सदर के सामने, कोट गेट के बाहर, बीकानेर ... ५)
(३) श्रीयुत रामजीवन रुइया, ११६, ए० हैरिसन रोड, कलकत्ता ... ... २)
(४) मिस्टर ए० पी० राइट, मैनेजर रेमीङ्टन टाइपराइटर कम्पनी लिमिटेड, कैनिङ्ग रोड, इलाहाबाद ... ... १५)
(५) श्रीयुत हरप्रसाद सिंह, स्टेशन मास्टर, होएज़ ब्रिज, केनिया कॉलोनी ... १॥)
(६) श्रीयुत भइया जगदीशदत्त राम पाण्डेय, तालुक़ेदार, सिंघा चन्दा और रामनगर इस्टेट्स, गोंडा ... ... २[illegible]

(७) श्रीयुत किशनगोपाल डागा, मा० श्रीयुत यमुनाधर पोद्दार, २४, एडवर्ड स्ट्रीट, पो० बॉक्स नम्बर ७४६, रङ्गून ... ... १०)
(८) श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद जी... ... ५)
(९) श्रीयुत मङ्गलसेन, मा० ठाकुर चेगराज सिंघ, मौज़ा रसमई, पो० जुगसेना, ज़िला मथुरा ... ... ५)

योग ८८॥)

इस प्रकार अब तक १११०॥) ८ पाई नक़द हमें प्राप्त हुए हैं। देशवासियों का कर्तव्य है कि वे शीघ्र ही और भी सहायता भेज कर हमारा हाथ बटावें।

* * *

स्वीकृति

गत मास के अङ्क में प्रकाशित किया जा चुका है कि "भारत में अङ्गरेज़ी राज्य" वाले मुक़द्दमे तथा अन्य मुक़द्दमों के ख़र्च में सहायता देने के लिए जो अपील प्रकाशित हुई थी, उसके उत्तर में २५ अप्रैल से २५ मई तक हमें ७२) रु० मिले थे। २५ मई से १५ जून तक निम्नलिखित सज्जनों से हमें १००) रु० और प्राप्त हुए हैं; जिसे हम सधन्यवाद प्रकाशित करते हैं :—

१—एक गुप्तदान ... ... २०)
२—भैया जगदीश दत्तराम पाण्डेय, तालुक़दार, सिंघा चन्दा और रामनगर स्टेट्स, गोंडा... ७५)
३—श्रीयुत भोलानाथ, मार्फ़त श्री० धन्दोमल तिलोकचन्द, पो० लोरालई (बलूचिस्तान) ... ५)
पिछले मास के ... ... ७२)

कुल जोड़ १७२) रु०

* * *

स्वाधीनता के महायुद्ध में स्त्रियों का भाग

वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेकर अब तक जो महिलाएँ जेल जा चुकी हैं, उनकी नामावलि इस प्रकार है :—

१—श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति, मेम्बर—मद्रास युनिवर्सिटी सिनेट, मेम्बर—ऑल इण्डिया कॉङ्ग्रेस कमिटी, मेम्बर—चेङ्गलपट डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, प्रेसिडेण्ट—युथ लीग, मद्रास ... ... १ वर्ष की सादी सज़ा।

२—श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय, भूतपूर्व अवैतनिक मन्त्री—अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन—९½ मास की सादी सज़ा।

३—श्रीमती सरोजिनी नायडू, भूतपूर्व सभानेत्री—भारतीय राष्ट्रीय महासभा— ९ मास की सादी सज़ा।

४—श्रीमती सत्यवती देवी, दिल्ली (श्री० स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रपुत्री)— ६ मास की सादी सज़ा।

५—श्रीमती दुर्गाबाई, डिक्टेटर—सत्याग्रह समिति, मद्रास ... ... १ वर्ष की सादी सज़ा।

६—श्रीमती मित्र, लखनऊ— ६ मास की सादी सज़ा।

७—श्रीमती सरला देवी, गञ्जाम— ६ मास की सादी सज़ा।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी महिलाएँ जेल गई हैं, पर उनके सम्बन्ध में पूरा विवरण प्राप्त न होने के कारण, हमें दुःख है, उनका नाम इस सूची में न दिया जा सका।

* * *

श्रीमती सत्यवती का बयान

श्री० स्वामी श्रद्धानन्द जी प्रपुत्री श्रीमती सत्यवती देवी से १०८ दफ़ा के अनुसार नेकचलनी की ज़मानत माँगी गई थी। देवी जी के ज़मानत देने से इनकार करने पर दिल्ली के अतिरिक्त ज़िला मैजिस्ट्रेट श्री० पूल ने उन्हें छः महीने की सादी क़ैद की सज़ा दी।

श्रीमती जी ने अदालत के सामने जो बयान दिया था, वह इस प्रकार है :—

"मैं श्री० स्वामी श्रद्धानन्द की प्रपुत्री और श्री० धनीराम एडवोकेट की पुत्री हूँ। मेरे दो छोटे-छोटे बच्चे हैं। साधारणतया मेरा स्थान घर के भीतर है, परन्तु ऐसे समय में, जब मातृभूमि के समस्त जीवन और मरण का प्रश्न उपस्थित है, मैं भारत की उन लाखों और दिल्ली की उन हज़ारों महिलाओं में एक हूँ, जिन्होंने स्वतन्त्रता के संग्राम के लिए अपना घर-द्वार छोड़ कर

महिला ने उत्तर दिया—मैं पाँच मिनट के लिए भी ज़मानत नहीं दे सकती। मैं शान्ति तब तक हर्गिज़ नहीं रक्खूँगी, जब तक भारतवर्ष स्वतन्त्र न हो जायगा।

अन्त में मैजिस्ट्रेट ने इस महिला को जेल भेज दिया।

* * *

स्त्रियों का स्वदेशी-प्रेम

दिल्ली में विगत १ जून को प्रातःकाल से ही श्रीमती कोहली की अध्यक्षता में स्वयंसेविकाओं ने यमुना के घाटों को घेर लिया और स्नान करने आने वाली स्त्रियों से कहा कि किसी भी स्त्री को, जिसके शरीर पर विदेशी वस्त्र होगा, हम लोग यमुना के पवित्र जल में नहीं घुसने देंगी। इसका परिणाम यह हुआ है कि यमुना-स्नान करने वाली स्त्रियों में से ५० प्रति शत ने अपनी बारीक रेशमी साड़ियों को छोड़ कर मोटा और रुखड़ा खद्दर पहन लिया है। और बाक़ी बची हुई स्त्रियों में से भी बहुतों ने खद्दर पहन लिया होता, परन्तु दिल्ली में खादी की कमी होने के कारण उन्हें साड़ियाँ न मिल सकीं।

* * *

पुलिस द्वारा स्त्रियों का अपमान

विगत मार्च महीने के अन्त में धुबड़ी (महाराष्ट्र) महिला-समिति का प्रथम अधिवेशन श्रीमती मोहिनी देवी की अध्यक्षता में हुआ था। उस अवसर पर कुछ लड़कियाँ एक छोटा सा जुलूस बना कर शहर से होकर जा रही थीं। उनमें से कुछ ने "स्वाधीन भारत की जय" पुकारा। समिति के भवन पर राष्ट्रीय झण्डा भी फहराया गया था। इससे स्थानीय पुलिस को स्त्रियों के इस सम्मेलन में राजनीति की बू आ गई और पुलिस वाले पण्डाल में घुसने का प्रयत्न करने लगे। पर स्त्रियों की दृढ़ता के सामने उनकी एक न चली, वे पण्डाल के भीतर न जा सके। स्त्रियों का कहना था कि यह सम्मेलन केवल स्त्रियों के लिए है, इसमें कोई मर्द नहीं आ सकता।

ख़ैर, पहले दिन तो बात यहीं तक रह गई। दूसरे दिन सम्मेलन की कार्यवाही आरम्भ होने के बहुत पहले ही से पुलिस वाले पण्डाल में आकर बैठ गए और स्त्रियों के बहुत कहने-सुनने पर भी वहाँ से न हटे। स्त्रियों का कहना था कि आप महिला रिपोर्टर भेजिए, उसके सम्मेलन में उपस्थित होने में हम लोगों को कोई आपत्ति न होगी। पर पुलिस वालों पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। अन्त में स्त्रियों को स्वयं वहाँ से हटना पड़ा और उन लोगों ने एक दूसरे मकान में जाकर अपना सम्मेलन किया।

धुबड़ी की जनता ने एक सार्वजनिक सभा करके पुलिस के इस व्यवहार की घोर निन्दा की। वहाँ के बार एसोसिएशन ने भी पुलिस के इस कार्य को अत्यन्त निन्दनीय बताया।

* * *

बिहार में पर्दे को विदाई

'सर्चलाइट' के एक पुराने अङ्क से हमें मालूम हुआ है कि मुज़फ़्फ़रपुर के बाबू रामदयालु सिंह तथा ठाकुर रामनन्दन सिंह की धर्मपत्नियों ने पर्दे को तिलाञ्जलि देकर राष्ट्रीय प्रचार का कार्य आरम्भ कर दिया है।

'यङ्ग इण्डिया' के १२ जून के अङ्क में बाबू राजेन्द्र-प्रसाद ने विदेशी कपड़े और शराब की दूकानों की पिकेटिङ्ग का विवरण देते हुए लिखा है कि यह आन्दोलन सामाजिक समस्याओं को हल करने में भी सहायक हो रहा है। ऐसी स्त्रियाँ, जो कभी पर्दे के बाहर नहीं निकली थीं, आज कई स्थानों में पिकेटिङ्ग कर रही हैं। पटने में विदेशी कपड़े की पिकेटिङ्ग में जो सफलता मिली है, उसका अधिक श्रेय स्त्रियों को ही है। अन्य स्थानों में भी स्त्रियों ने जो कार्य कर दिखाया है, इस परदा-ग्रसित प्रान्त में उसकी आशा न थी।

परन्तु माननीय विट्ठल भाई पटेल ने उस दिन पटने में भाषण देते हुए बिहार की साधारण स्त्रियों की जागृति के सम्बन्ध में निम्नलिखित वाक्य कहे थे :—

बिहारी स्त्रियों में मैं वह जागृति नहीं देखता जो मैंने अन्य प्रान्तों की स्त्रियों में देखा है। दिल्ली और इलाहाबाद में (मेरे पहुँचने के समय) स्टेशन पर और सभाओं में हज़ारों स्त्रियों की भीड़ लग गई थी (परन्तु बिहारी स्त्रियों में उस उत्साह और जागरण का नामो-निशान भी नहीं दिखाई पड़ता)।

* * *

मद्रासी महिलाओं में जागृति

विगत ३० मई को उटकामण्ड में स्त्रियों की एक विराट सभा हुई थी, जिसमें अन्य कई वक्ताओं के अतिरिक्त डॉ० मुथुलक्ष्मी रेड्डी ने भी भाषण दिया था। पाठकों को याद होगा, डॉ० मुथुलक्ष्मी ने हाल ही में गवर्नमेण्ट की वर्तमान दमन-नीति के विरोध में मद्रास काउन्सिल की सदस्यता तथा उसके डिप्टी प्रेसिडेण्टशिप दोनों पदों से इस्तीफ़ा दे दिया है। आप भारत में पहली महिला हैं, जिसे यह सम्मान प्राप्त हुआ था।

सभा में कई प्रस्ताव पास हुए, जिनमें गवर्नमेण्ट की वर्तमान दमन-नीति की घोर निन्दा की गई, सत्याग्रही महिलाओं के आत्मत्याग पर उन्हें बधाई दी गई, खद्दर और स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार पर ज़ोर दिया गया, तथा इस बात की आवश्यकता प्रगट की गई कि महात्मा गाँधी को शीघ्र जेल से मुक्त किया जाय और भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दिया जाय।

* * *

लखनऊ में स्त्रियों और बच्चों पर प्रहार

विगत २५ मई को लखनऊ के सत्याग्रहियों ने श्रीमती मित्र की अध्यक्षता में एक जुलूस निकाला। जुलूस के एबॉट रोड पहुँचने पर श्रीमती मित्र गिरफ़्तार कर ली गईं। उसके बाद जुलूस में भाग लेने वाली अन्य महिलाओं को एक लॉरी में भर कर किसी अज्ञात स्थान में भेज दिया गया। इसके बाद सत्याग्रहियों और दर्शकों पर क्या बीती, इस सम्बन्ध में श्री० लेस्ली ह्वाइट के सामने, जिन्हें गवर्नमेण्ट ने इस घटना की जाँच के लिए नियुक्त किया है, गवाही देते हुए श्रीमती टी० पी० मुशरान (इलाहाबाद) ने निम्नलिखित आशय का बयान दिया है।

श्रीमती मुशरान अपने रिश्तेदारों से मिलने के लिए लखनऊ गई हुई थीं। वहाँ २५ मई की शाम को वह अपनी बहिन तथा कई बच्चों के साथ जुलूस देखने हज़रतगञ्ज गईं। जब वह हुसेनगञ्ज के चौराहे पर पहुँचीं तो पुलिस ने उनका ताँगा रोक दिया। तब वह पीछे लौट कर एबॉट हॉल के अहाते के सामने, जहाँ बहुत कम लोग थे, फ़ुटपाथ पर खड़ी हो गईं। श्रीमती मुशरान ने देखा कि रॉयल होटल के पास वाले चौराहे पर बहुत से पुलिस के सिपाही खड़े हैं। उनके अतिरिक्त बहुत से लाल पगड़ी वाले रॉयल होटल के भीतर भी दिखाई पड़े। ठीक रॉयल होटल के सामने पुलिस ने जुलूस को रोक दिया। फिर श्रीमती मित्र गिरफ़्तार की गईं और जुलूस में भाग लेने वाली अन्य महिलाओं को भी गिरफ़्तार करके वहाँ से हटा दिया गया। इसके बाद श्रीमती मुशरान ने कॉङ्ग्रेस वालों को "बैठ जाओ, बैठ जाओ" कहते सुना। एबॉट हॉल के अहाते का दरवाज़ा खुलने पर वह उसके अन्दर चली गईं। इतने में उन्होंने एक सीटी की आवाज़ सुनी और उसके साथ ही बहुत से पुलिस के सिपाही रॉयल होटल के भीतर से निकल कर सत्याग्रहियों को पीटने लगे। कॉङ्ग्रेस वाले "शान्ति, शान्ति" तथा जनता "शेम, शेम" चिल्लाने लगी। इस पर पुलिस ने जनता को भी लाठियों से पीटना शुरू कर दिया, जिससे लोग इधर-उधर भागने लगे। परन्तु पुलिस ने भागते हुए आदमियों का भी पीछा किया और उन्हें पीटा।

जब भीड़ तितर-बितर हो गई तो श्रीमती मुशरान ने देखा कि क़रीब पन्द्रह या बीस सत्याग्रही ज़मीन पर लेटे हुए हैं और पुलिस अभी तक उन्हें पीटती चली जा रही है। सत्याग्रही बराबर दुहरा रहे थे—"आज़ादी या मौत, आज़ादी या मौत।" उनके कपड़ों पर ख़ून के धब्बे भी दिखाई पड़ते थे। इसके बाद पुलिस ने उनमें से बहुतों को हाथ से उठा कर और बहुतों को पैर से ठुकरा कर सड़क के पास वाली कच्ची नाली में फेंक दिया।

कुछ लोग एक घायल को बाहर से उठा कर एबॉट हॉल के अहाते के अन्दर ले आए और उसकी सेवा करने लगे। श्रीमती मुशरान उसी को देख रही थीं। इतने में उन्हें पीछे से किसी ने धक्का मारा। उन्होंने घूम कर देखा तो बीस-पचीस पुलिस के सिपाही अहाते के भीतर लोगों को पीट रहे हैं और लोग इधर-उधर भाग रहे हैं। एक पुलिस ऑफ़िसर के हाथ में छोटा सा डण्डा था। वह श्रीमती मुशरान से बोला—'हट जाओ'। श्रीमती जी ने इस ऑफ़िसर से पूछा कि वह हट कर किधर चली जायँ। इसके उत्तर में उस ऑफ़िसर ने उनके सिर पर एक डण्डा मारा। इससे श्रीमती मुशरान को जितना ही दुःख हुआ, उतना ही आश्चर्य। उन्होंने दोनों

हाथों से अपना मुँह ढँक लिया। इतने में उनके हाथ पर भी एक लाठी आ गिरी। फिर एक लाठी पीठ पर लगी और उन्हें पीछे से धक्का दिया गया। जब रास्ता देखने के लिए उन्होंने मुँह पर से हाथ हटाया तो देखा कि पुलिस लोगों को पीट रही है। उन्होंने देखा, एक आदमी के लाठी लगी और वह धम से गिर पड़ा। वह व्यक्ति था उनका भाई—पण्डित हरिहरनाथ किचलू, एडवोकेट। श्रीमती सुगरान चिल्ला उठीं—"उन्हें क्यों मार रहे हो?" वह भाई के पास जाना ही चाहती थीं कि एक दूसरी लाठी उन पर आ गिरी। उस समय भी ज़मीन पर गिरे हुए उनके भाई को तीन-चार पुलिस के सिपाही पीट रहे थे। श्रीमती सुगरान भाग कर एक ओसारे में पहुँचीं। परन्तु वहाँ भी उनकी जान न बची। एक पुलिस के सिपाही ने वहाँ भी उन्हें पीटा और ओसारे से नीचे गिरा दिया। नीचे आने पर उन्होंने देखा कि उनका सोलह वर्ष का लड़का ज़मीन पर गिरा हुआ है और उसके बदन से ख़ून निकल रहा है। उन्होंने पुलिस वाले से कहा—"इसे क्यों मार रहे हो?" इसके उत्तर में फ़ौरन एक डण्डा उनके ऊपर आ गिरा। वह फिर भाग कर एक ओसारे में छिपीं, पर वहाँ भी एक सिपाही खड़ा था। एक दूसरा सिपाही उनके लड़के को पीट रहा था। वह फिर चिल्ला उठीं—"उसे क्यों मार रहे हो?" इस पर पुलिस वाले "छोड़ो साले को" कह कर वहाँ से चले गए। ओसारे से नीचे उतर कर श्रीमती सुगरान ने अपने भाई और बहिन को देखा। भाई की हालत बहुत ही ख़राब थी। श्रीमती सुगरान को आठ चोट लगी थी, उनके लड़के को सात, उनकी बहिन श्रीमती बख्शी को सात और भाई को बीस से अधिक।

श्रीमती सुगरान के सोलह वर्ष के लड़के ने गवाही देते हुए कहा कि एक लाठी लगते ही वह ज़मीन पर गिर कर बेहोश हो गया, परन्तु इसके बाद भी उस पर लाठियाँ पड़ती रहीं। होश आने पर उसने देखा कि उसकी माँ दोनों हाथों से मुँह ढँके हुए उसके पास खड़ी है।

इसी प्रकार के और भी बहुत से बयान श्री० लेस्ली ह्वाइट के सामने ग़ैर सरकारी गवाहों की ओर से दिए गए हैं।

* * *

श्रीमती मित्र को छः मास

श्रीमती मित्र असहयोग आन्दोलन के समय से ही राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेती आ रही हैं। सन १९२१ ई० में (जिस समय वह कुमारी सुनीति चटर्जी के नाम से विख्यात थीं) कलकत्ते में प्रिन्स ऑफ़ वेल्स के आगमन के समय पुलिस की आज्ञाएँ भङ्ग करने के अपराध में श्रीमती सी० आर० दास और श्रीमती उर्मिला देवी पकड़ी गई थीं। उन लोगों के साथ ही साथ श्रीमती मित्र भी गिरफ़्तार हुई थीं, परन्तु आठ घण्टे के बाद ही छोड़ दी गई थीं।

इस बार विगत ३० मई को लखनऊ डिस्ट्रिक्ट जेल में आपके मुक़द्दमे पर विचार हुआ और केवल तीन सरकारी आदमियों की गवाही पर आपको छः महीने की सादी क़ैद की सज़ा दे दी गई। श्रीमती मित्र ने मुक़द्दमे में कोई भाग नहीं लिया। दण्ड को आपने बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया।

* * *

महिलाओं के साथ बर्बरतापूर्ण व्यवहार

श्रीमती मित्र की गिरफ़्तारी के बाद जुलूस में से जो महिलाएँ ज़बर्दस्ती लॉरी में भर कर किसी अज्ञात स्थान में भेज दी गई थीं, उनके विषय में पीछे मालूम हुआ कि उन्हें शहर से दूर आलमबाग़ थाने में भेज दिया गया था। वहाँ उन्हें रात के नौ बजे तक रोक रक्खा गया। उसके बाद उन्हें छोड़ा भी गया तो शहर तक पहुँचाने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। इन महिलाओं ने पुलिस से शिकायत की कि रात अँधेरी है और हम लोगों को शहर का रास्ता नहीं मालूम। परन्तु पुलिस ने उनकी शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया। अन्त में उन प्रतिष्ठित घरों की महिलाओं को वहाँ से पैदल ही शहर आना पड़ा। अँधेरे में रास्ता ढूँढ़ते वे रात में साढ़े दस बजे के लगभग अमीनाबाद पहुँचीं। वहाँ से लोगों ने उन्हें उनके घरों तक पहुँचाया।

* * *

सत्याग्रही महिलाओं को बधाई

विगत ४, ५, ६ और ७ जून को इलाहाबाद में अखिल भारतीय-कॉङ्ग्रेस कार्य-समिति की एक बैठक हुई थी।

इस बैठक में समिति ने सत्याग्रही महिलाओं के कार्य के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया है :—

यह समिति उन महिला सत्याग्रहियों के प्रति सम्मानपूर्ण सहानुभूति प्रगट करती है, जिन्हें वर्तमान सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने के कारण अपमान और दुर्व्यवहार सहन करना तथा जेल जाना पड़ा है, तथा उन्हें विश्वास दिलाती है कि उनके आत्मबलिदान से इस आन्दोलन को एक अपूर्व शक्ति प्राप्त हो गई है।

श्रीमती सरोजिनी नायडू (भूतपूर्व सभा-नेत्री—राष्ट्रीय महा-सभा), कमलादेवी चट्टोपाध्याय, रुक्मिणी लक्ष्मीपति (सदस्या—अखिल भारतीय महासभा समिति), सत्य-वती देवी, मित्र, दुर्गाबाई, कमलादेवी (सदस्या—अखिल भारतीय महासभा समिति) और अञ्जलि अम्मल की देशसेवा के प्रति यह समिति विशेष रूप से सम्मान और कृतज्ञता प्रगट करती है।

* * *

'स्त्रियों का संग्राम'

वर्तमान सत्याग्रह आन्दोलन में महिलाओं ने जो भाग लिया है, उसकी समालोचना करते हुए वेमेन्स इण्डियन एसोसिएशन के मुख पत्र 'स्त्री-धर्म' ने अपने जून के अङ्क में लिखा है :—

सत्य, धैर्य, तपस्या और आत्मशुद्धि—ये ही अस्त्र हैं, जिनके द्वारा भारतीय स्वाधीनता की वर्तमान लड़ाई लड़ी जा रही है। यह एक ऐसी लड़ाई है, जिसमें पुरुष और स्त्रियाँ दोनों समान रूप से भाग ले सकते हैं। ऐसी अवस्था में कौन आश्चर्य है यदि तेलगू ब्राह्मण-समाज की प्रथम ग्रेजुएट महिला—श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मी-पति—जेल जाने वाली प्रथम महिला बनती है? यदि भारत के सन्देश को तीन महादेशों तक पहुँचाने वाली कवयित्री—सरोजिनी नायडू—नमक के खान पर आक्रमण करने वाले सबसे बड़े जत्थे का सञ्चालन करती है? यदि अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन के (जिसने सभी जातियों, वंशों और मज़हबों की स्त्रियों को एकता के सूत्र में बाँध कर उन्हें सामाजिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी सुधारों के लिए कटिबद्ध कर दिया है) सङ्गठन विभाग की सुयोग्य मन्त्रिणी—श्री मती कमलादेवी—बम्बई में विराट सभाओं और विशाल जुलूसों का सङ्गठन करती हैं? यदि देश के प्रमुख स्थानों में स्त्रियों को 'डिक्टेटर' बनाया जाता है? (जैसे मद्रास में श्रीमती दुर्गाबाई तथा इलाहाबाद में श्रीमती जवाहरलाल नेहरू)। यदि गाँधी की गिर-फ़्तारी का विरोध करने के लिए लाहौर जैसे परदा-ग्रसित नगर में ६,००० स्त्रियों का जुलूस निकल पड़ता है? और यदि स्त्रियाँ विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करके स्वदेश के शिल्प को प्रोत्साहन देने तथा शराब की दूकानों पर पिकेटिङ्ग करके जातीय चरित्र की रक्षा करने के सम्बन्ध में अपना कर्तव्य पालन करने के लिए जाग्रत हो उठी हैं? इस नवीन युद्ध में जिन अस्त्रों से काम लिया जा रहा है वे वास्तव में पुरुषों के नहीं, बल्कि स्त्रियों के अस्त्र हैं और इसलिए भारत के इस स्वाधीनता संग्राम को हम निस्स-न्देह स्त्रियों का संग्राम कह सकते हैं।

* * *

आवश्यक सूचना

इलाहाबाद के मातृमन्दिर में विगत मास एक कनौजिया ब्राह्मणी विधवा के लड़का पैदा हुआ है। लड़का देखने में बहुत ही सुन्दर और स्वस्थ है। यदि कोई सज्जन इस लड़के को गोद लेना चाहें तो वे निम्न-लिखित पते से पत्र-व्यवहार कर सकते हैं। हमारे पास प्रायः गोद लेने योग्य लड़कों के सम्बन्ध में पूछ-ताछ के पत्र आया करते हैं। यदि कोई सज्जन इस लड़के को गोद ले लें तो इससे उनका भी लाभ होगा और मातृमन्दिर का भी भार हलका हो जायगा।

—कुमारी लीलावती जी प्रिन्सिपल,
मातृमन्दिर, कृष्णकुटीर,
रसूलाबाद, इलाहाबाद

टर्की में स्वदेशी आन्दोलन

टर्की में राष्ट्रीय उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने के लिए 'एसोसिएशन ऑन विहाफ़ ऑफ़ नेशनल इकॉनमी एण्ड थ्रिफ़्ट' नाम की एक संस्था क़ायम की गई है। इसके प्रेसिडेण्ट स्वयं मुस्तफ़ा कमालपाशा हैं। देश भर में सर्वत्र इसकी शाखाएँ स्थापित की जा रही हैं। इस संस्था का सदस्य कोई भी स्त्री या पुरुष हो सकता है, जो लिख कर यह प्रतिज्ञा करे कि वह देशी वस्तुएँ व्यवहार करेगा तथा दूसरों को भी उन्हें व्यवहार करने के लिए उत्साहित करेगा। यद्यपि टर्की में विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार नहीं किया जा रहा है, तथापि आशा की जाती है कि इस आन्दोलन के कारण वहाँ विदेशी वस्तुओं की खपत अवश्य ही कम हो जायगी। मुस्तफ़ा कमालपाशा ने अपने पहले के वस्त्रों को त्याग कर स्वदेशी कपड़े का पोशाक पहनना शुरू कर दिया है और वहाँ के अन्य राजकर्मचारी भी बड़ी तेज़ी के साथ इस आदर्श का अनुकरण कर रहे हैं।

* * *

एक मुस्लिम महिला का स्वदेश-प्रेम

असहयोग के समय बरेली में सैयद अब्दुल वदूद नाम के एक बड़े ही उत्साही राष्ट्रीय कार्यकर्ता थे। उस समय अन्य कार्यकर्ताओं के साथ इन्हें भी जेल जाना पड़ा था। बरेली के दुर्भाग्यवश सैयद अब्दुल वदूद आज जीवित नहीं हैं, परन्तु उनकी विधवा, जो पिछले आठ सालों से बराबर बीमार रहने के कारण सूख कर काँटा हो गई है, असाध्य बीमारी और दुर्बलता की हालत में भी अपने पति के आरम्भ किए हुए कार्य को पूरा करने का प्राणपन से उद्योग कर रही है। हाल ही में इस महिला ने बरेली के मुसलमानों से अपील की थी कि वे विदेशी कपड़े के बहिष्कार के आन्दोलन में पूरा-पूरा भाग लें। इसके बाद आपने बरेली के सभी प्रमुख मुसलमानों के नाम व्यक्तिगत पत्र लिख कर उन्हें समझाया कि वे हिन्दू और मुसलमानों के बीच शान्ति बनाए रक्खें। विगत ६ जून को आपने अपने घर ही पर शहर के हिन्दू और मुसलमान स्त्रियों की एक सभा की और बीमारी के कारण चारपाई पर लेटे-लेटे ही उन लोगों को समझाया कि वे विदेशी कपड़े का बहिष्कार करें और जैसे हो-सके हिन्दू-मुस्लिम एकता को क़ायम रक्खें। कई महिलाओं को उनकी देशभक्ति के लिए आपने चाँदी के तमगे भी इनाम में दिए। इस देशभक्त महिला की उज्ज्वल देशभक्ति और अपूर्व कार्य-क्षमता का बरेली की महिलाओं पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है और वे राष्ट्रीय आन्दोलन को सफल बनाने के लिए कमर कस कर तैयार हो गई हैं।

* * *

मुसलमान स्त्रियों में जागृति

'डेली हेरल्ड' के एक सम्वाददाता का कहना है कि रूसी सीमा के आसपास के मुसलमानों की सामाजिक दशा पर सोवियट शासन का बड़ा गहरा और बड़ा कल्याणकारी प्रभाव पड़ा है। उज़बेकिस्तान और उसकी राजधानी समरकन्द में आज से कुछ ही पूर्व जहाँ एक भी स्त्री बिना परदे के नहीं दिखाई पड़ती थी वहाँ अब आम सड़कों पर स्त्रियाँ बिना बुरक़े के घूमती दिखाई पड़ती हैं। एक साथ बहुत सी पत्नियाँ रखने की प्रथा को क़ानून बना कर रोक दिया गया है। इसलिए अब वहाँ पुरानी चाल के 'हरम' का तो नामोनिशान भी दिखाई नहीं पड़ता। लड़कियों की ख़रीद-बिक्री बन्द करने में बोलशेविकों को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, परन्तु अब इस प्रथा का भी लगभग अन्त हो चुका है। इस सम्वाददाता का कहना है कि मुस्लिम स्त्रियों का परदे से बाहर आना मुस्लिम देशों की उन्नति का सबसे निश्चित प्रमाण है और आजकल समरकन्द की सार्वजनिक सड़कों पर तो बुरक़ा वाली स्त्रियों की अपेक्षा बिना बुरक़ा वाली स्त्रियाँ कहीं अधिक संख्या में दिखाई पड़ती हैं।

* * *

आवश्यकता

'चाँद' के लिए एक अनुभवी और योग्य सहकारी सम्पादक की शीघ्र आवश्यकता है। वेतन योग्यतानुसार मिलेगा। पत्र-व्यवहार व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद के पते से करना चाहिए।

दर्द करते हुए मोच
शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे
अगर आप
स्लोन का मलहम
इस्तेमाल करेंगे।
SLOAN'S LINIMENT
खिलाड़ियों के लिए मोच आ जाना बहुत मामूली बात है। स्लोन का मलहम पुट्ठों के टिकाऊ दर्द को बहुत जल्दी आराम कर देता है। दर्द करती हुई जगह पर थोड़ा सा स्लोन का मलहम रगड़ दीजिए, इससे फ़ौरन ही आपको बहुत आराम मालूम पड़ेगा।
स्लोन का मलहम दर्दों का नाश करता है !!
Sloan's Liniment kills pain!

'प्रधान'

यह बलकारक औषध

कमज़ोरी से पैदा हुई सुस्ती, नसों की थकावट, नसों की शिथिलता, दाम्पत्य धर्म-सम्बन्धी ख़राबी में बड़ी काम आती है और ऐसी हालतो में जब कि अधिक कार्य या अन्य किसी बात की अधिकता से नियमों में कोई ख़राबी आ गई हो। यह बीमारी और कमज़ोरी की अवस्था में अपना आश्चर्यकारक प्रभाव दिखलाती है। साथ ही नसों और दिमाग़ को भी ताक़त पहुँचाती है।

बङ्गाल केमिकल ऐण्ड

फ़र्मास्युटिकल वर्क्स, लिमिटेड, कलकत्ता

शीघ्र आवश्यकता

मारवाड़ी कन्या विद्यालय के लिए एक प्रधानाध्यापिका की, जो अङ्गरेज़ी-हिन्दी के अतिरिक्त बालिकोपयोगी अन्य विषयों का अच्छा ज्ञान रखती हो तथा स्कूल-प्रबन्ध अच्छी तरह कर सकती हो, तथा एक ऐसी अध्यापिका की, जो हाथ की कारीगरी में निपुण हो। वेतन योग्यतानुसार। अपने पिछले अनुभव, योग्यता तथा प्रमाण-पत्रों सहित निम्न-लिखित पते से पत्र-व्यवहार करें।

मन्त्री—

श्री० मारवाड़ी कन्या विद्यालय

C/o मोतीलाल गोवर्द्धनदास, कराची

अध्यापिकाएँ चाहिए

परीक्षाएँ पास, कम से कम वेतन, वय, धर्म आदि के विवरण के साथ लिखिए कि ड्राइङ्ग, सङ्गीत, सीना-पिरोना, धर्म व गृह-शिक्षा आदि में से किन विषयों के सिखाने की विशेष योग्यता है।

मन्त्री—

कन्या पाठशाला, सदर बाज़ार,

सागर (सी० पी०)

बेफ़ायदा साबित करने पर

५००) इनाम

इस महात्मा-प्रदत्त विषनाशक जड़ी को लगाने, छूने और सूँघने की ज़रूरत नहीं, सिर्फ़ दिखाने ही से भयानक से भयानक बिच्छू, मधुमक्खी, हड्डा का विष तुरन्त आराम हो जाता है। लाखों को आराम कीजिए, सैकड़ों वर्ष पड़ी रहे, पर गुण में ज़रा भी कमी नहीं आती, मूल्य १)

पता—**अखिलकिशोरराम**

नं० ४८, कतरीसराय, गया

लेखक—

[प्रो० श्री० धर्मानन्द जी शास्त्री]

इस महत्वपूर्ण पुस्तक के लेखक पाठकों के सुपरिचित, 'विष-विज्ञान' 'उपयोगी चिकित्सा' 'स्त्री-रोग-विज्ञानम्' आदि-आदि अनेक पुस्तकों के रचयिता, स्वर्ण-पदक प्राप्त प्रोफ़ेसर श्री० धर्मानन्द जी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य हैं, अतएव पुस्तक की उपयोगिता का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है। आज भारतीय स्त्रियों में शिशु-पालन-सम्बन्धी समुचित ज्ञान न होने के कारण सैकड़ों, हज़ारों और लाखों नहीं, किन्तु करोड़ों बच्चे प्रतिवर्ष अकाल-मृत्यु के कलेवर हो रहे हैं। मातृ-शिक्षा का पाठ न स्त्रियों को घर में पढ़ाया जाता है और न आज-कल के ग़ुलाम उत्पन्न करने वाले स्कूल और कॉलेजों में। इसी अभाव को दृष्टि में रख कर प्रस्तुत पुस्तक लिखी और प्रकाशित की गई है। इसमें बालक-बालिका सम्बन्धी प्रत्येक रोग, उसका उपचार तथा ऐसी सहज घरेलू चिकित्सा तथा घरेलू दवाइयाँ बतलाई गई हैं, जिन्हें एक बार पढ़ लेने से प्रत्येक माता को उसके समस्त कर्त्तव्यों का ज्ञान सहज ही में हो सकता है और बिना डॉक्टर-वैद्यों की जेबें भरे वे शिशु-सम्बन्धी प्रत्येक रोग को समझ कर उसका उपचार कर सकती हैं। प्रत्येक सद्गृहस्थ के घर में इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य होनी चाहिए। भावी माताओं के लिए तो प्रस्तुत पुस्तक आकाश-कुसुम ही समझना चाहिए। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥) ; स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र !!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

चन्द्रलोक, इलाहाबाद

क्रान्तिकारी भावनाओं का सजीव चित्र

[लेखक—श्री० ज़हूरबख़्श जी]

एक अनन्त अतीत-काल से समाज के मूल में रूढ़ि-परम्पराएँ, अन्ध-विश्वास, अविश्रान्त अत्याचार और कुप्रथाएँ, भीषण अग्निज्वालाएँ प्रज्वलित कर रही हैं और उनमें यह अभागा देश अपनी सदभिलाषाओं, अपनी सत्कामनाओं, अपनी शक्तियों, अपने धर्म और अपनी सभ्यता की आहुतियाँ दे रहा है। 'समाज की चिनगारियाँ' आपके समक्ष उसी दुर्दान्त दृश्य का एक धुँधला चित्र उपस्थित करने का प्रयास करती है। परन्तु यह धुँधला चित्र भी ऐसा दुखदायी है कि इसे देख कर आपके नेत्र आठ-आठ आँसू बहाए बिना न रहेंगे। 'समाज की चिनगारियाँ' आपको समाज के उस दारुण उत्पीड़न की मर्मस्पर्शी कथा सुनाने का उपक्रम करती है, जिसे सुन कर कभी आपका हृदय करुणा से उच्छ्वसित हो उठेगा, तो कभी मौन हाहाकार कर उठेगा; कभी ग्लानि से गलित हो उठेगा, तो कभी जोश से फड़फड़ा उठेगा और कभी क्रोध की ज्वाला से भभक उठेगा तथा अन्त में आप आत्म-विस्मृत हो जाएँगे।

पुस्तक बिलकुल मौलिक है और उसका एक-एक शब्द सत्य को साक्षी करके लिखा गया है। भाषा इसकी ऐसी सरल, बामुहाविरा, सुललित तथा करुणा की रागिनी से परिपूर्ण है कि पढ़ते ही बनती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि पुस्तक की छपाई-सफ़ाई नेत्र-रञ्जक एवं सशक्त कपड़े की जिल्द दर्शनीय हुई है; और सजीव मोटेक्रिटक कवर ने तो उसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा दिए हैं। फिर भी मूल्य केवल प्रचार-दृष्टि से लागत-मात्र ३) रक्खा गया है। 'चाँद' तथा स्थायी ग्राहकों से २।) रु०।
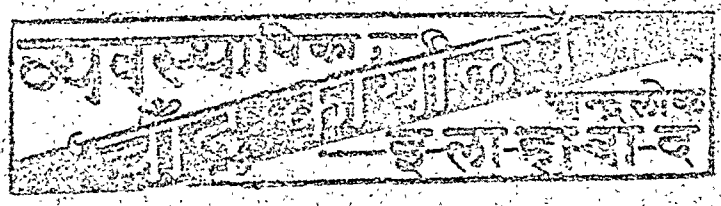
प्रेम-प्रमोद

[लेखक—श्री० प्रेमचन्द जी, बी० ए०]

यह बात बड़े-बड़े विद्वानों और अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने एक स्वर से स्वीकार कर ली है कि श्री० प्रेमचन्द जी की सर्वोत्कृष्ट सामाजिक रचनाएँ 'चाँद' में ही प्रकाशित हुई हैं। प्रेमचन्द जी का हिन्दी-साहित्य में क्या स्थान है, सो हमें बतलाना न होगा। आपकी रचनाएँ बड़े बड़े विद्वान् तक चाव और आदर से पढ़ते हैं। हिन्दी-संसार में मनोविज्ञान का जितना अध्ययन प्रेमचन्द जी ने किया है, उतना किसी ने नहीं। यही कारण है कि आपकी कहानियों और उपन्यासों को पढ़ने से जादू का सा असर होता है; बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष—सभी आपकी रचनाओं को बड़े प्रेम से पढ़ते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में प्रेमचन्द जी की उन सभी कहानियों का संग्रह किया गया है, जो 'चाँद' में पिछले तीन-चार वर्षों में प्रकाशित हुई हैं! इसमें कुछ नई कहानियाँ भी जोड़ दी गई हैं, जिनसे पुस्तक का महत्व और भी बढ़ गया है। प्रकाशित कहानियों का भी फिर से सम्पादन किया गया है। प्रत्येक घर में इस पुस्तक की एक-एक प्रति होनी चाहिए। जब कभी कार्य की अधिकता से जी ऊब जाय, एक कहानी पढ़ लीजिए, सारी थकान दूर हो जायगी और तबीयत एक बार फड़क उठेगी! कहानियाँ चाहे दस वर्ष बाद पढ़िए, आपको उनमें वही मज़ा मिलेगा। छपाई-सफ़ाई सुन्दर, बढ़िया काग़ज़ पर छपी तथा समस्त कपड़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) रु०; पर स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र!

निर्मला

[ले० श्री० प्रेमचन्द जी, बी० ए०]

इस मौलिक उपन्यास में लब्धप्रतिष्ठ लेखक ने समाज में कुशलता से होने वाले वृद्ध-विवाहों के भयङ्कर परिणामों का एक वीभत्स एवं रोमाञ्चकारी दृश्य उपस्थित किया है। जीर्ण-काय वृद्ध अपनी उन्मत्त काम-पिपासा के वशीभूत होकर किस प्रकार प्रचुर धन व्यय करते हैं; किस प्रकार वे अपनी वासना षोडशी नवयुवती का जीवन नाश करते हैं; किस प्रकार गृहस्थी के परम पुनीत प्राङ्गण में रौरव-काण्ड आरम्भ हो जाता है, और किस प्रकार ये वृद्ध अपने साथ ही साथ दूसरों को लेकर डूब मरते हैं; किस प्रकार उद्भ्रान्ति की प्रमत्त-सुखद कल्पना में उनका सर्वस्व ध्वंस हो जाता है—यह सब इस उपन्यास में बड़े मार्मिक ढङ्ग से अङ्कित किया गया है। सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥); स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र!

व्यवस्थापिका

'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक,

इलाहाबाद

चित्तौड़ की चिता

[रचयिता—प्रोफ़ेसर रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

कविता की अनमोल पुस्तक

यह वह पद्यमय पुस्तक है, जिसे पढ़ कर एक बार उन लोगों में भी शक्ति का सञ्चार हो जाता है, जो जीवन से विरक्त हो चुके हैं। वीर-प्रसविनी चित्तौड़ की माताओं का यदि आप स्वार्थ-त्याग, देश-भक्ति तथा कर्म-निष्ठा का ज्वलन्त उदाहरण देखना चाहते हैं, यदि आप चाहते हैं कि भारत का मातृ-मण्डल भी इन वीर-क्षत्राणियों के आदर्श से शिक्षा ग्रहण कर अपने निरर्थक जीवन को भी उसी साँचे में ढालें; यदि आप चाहते हैं कि कायर बालकों के स्थान पर एक बार फिर वैसी ही आत्माओं की सृष्टि हो, जिनकी हुङ्कार से एक बार मृत्यु भी दहल जाया करती थी, तो इस वीर-रसपूर्ण ऐतिहासिक पुस्तक को स्वयं पढ़िए तथा घर की स्त्रियों और बच्चों को पढ़ाइए—सुन्दर छपी हुई पुस्तक का मूल्य केवल १॥) रु०; स्थायी ग्राहकों से १=) मात्र !

कविता में ऐसी सुन्दर वीर-रस में पगी हुई पुस्तक हिन्दी-संसार में अब तक प्रकाशित नहीं हुई थी। "कुमार" महोदय की कविताओं का जिन्होंने 'चाँद' द्वारा रसास्वादन किया, वे इन कविताओं की श्रेष्ठता का अभी से अनुभव कर सकते हैं।

CERTIFIED CIRCULATION EXCEEDS 15,000 COPIES

वर्ष ८, खण्ड २] अगस्त, सितम्बर, १९३० [संख्या ४-५, पूर्ण संख्या ९५

वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही ३॥)

सम्पादक—
श्रीरामरखसिंह सहगल
श्रीशुकदेव राय

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ।॥)

PRINTED AT THE FINE ART PRINTING COTTAGE, CHANDRALOK--ALLAHABAD.

जिसके रचयिता हैं—हिन्दी-संसार के सुपरिचित कवि और लेखक—

पं० जनार्दनप्रसाद झा, 'द्विज' बी० ए०

यह वह 'मालिका' नहीं, जिसके फूल मुरझा जायँगे, यह वह 'मालिका' नहीं, जो दो-एक दिन में सूख जायगी; यह वह 'मालिका' है, जिसकी ताज़गी सदैव बनी रहेगी। इसके फूलों की एक-एक पङ्खुरी में सौन्दर्य है, सौरभ है, मधु है, मदिरा है। आपकी आँखें तृप्त हो जायँगी, हृदय की प्यास बुझ जायगी, दिमाग़ ताज़ा हो जायगा, आप मस्ती में झूमने लगेंगे।

आप जानते हैं, द्विज जी कितने सिद्धहस्त कहानी-लेखक हैं। उनकी कहानियाँ कितनी करुण, कोमल, रोचक, घटनापूर्ण, स्वाभाविक और कवित्व-मयी होती हैं। उनकी भाषा कितनी वैभवपूर्ण, निर्दोष, सजीव और सुन्दर होती है। इस संग्रह की प्रत्येक कहानी करुण-रस की उमड़ती हुई धारा है, तड़पते हुए दिल की जीती-जागती तस्वीर है। आप एक-एक कहानी पढ़ेंगे और विह्वल हो जायँगे; किन्तु इस विह्वलता में अपूर्व सुख रहेगा।

इन कहानियों में आप देखेंगे मनुष्यता का महत्व, प्रेम की महिमा, करुणा का प्रभाव, त्याग का सौन्दर्य! आप देखेंगे कि प्रत्येक कहानी के अन्दर लेखक ने कि ससुगमता और सचाई के साथ ऊँचे आदर्शों की प्रतिष्ठा की है।

इसलिए हमारा आग्रह है कि आप 'मालिका' की एक प्रति अवश्य मँगा लीजिए, नहीं तो इसके बिना आपकी आलमारी शोभाहीन रहेगी। हमारा दावा है कि ऐसी पुस्तक आप हमेशा नहीं पा सकते। अभी मौक़ा है—मँगा लीजिए! मूल्य केवल ४) रु०

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

चन्द्रलोक, इलाहाबाद

※ ※ ※

कोडक कम्पनी से ये ख़ास-तौर पर तैयार कराए गए हैं

३।×२। इञ्च साइज़ के केमरे

नं० १०१ बक्सनुमा ८), नं० १०५, १६)
" १११ फ़ोल्डिङ्ग सिङ्गिल लेन्स २८)
" ११५ " डबल " ३७)
" १२० आगफ़ा बिली केमरा ३३)

हमारे यहाँ सब तरह के फ़ोटो का सामान सस्ता और किफ़ायत से मिलता है। एक बार अवश्य परीक्षा करें।

४।×२॥ इञ्च साइज़ के केमरे

नं० २०२ बक्सनुमा ... ११)
" २११ फ़ोल्डिङ्ग सिङ्गिल लेन्स ३१)
" २१५ " डबल " ४१)
" २२१ आगफ़ा स्टेण्डर्ड f6.3 ८०)

अच्छी फ़ोटो अपने हाथों से घर बैठे उतारने के लिए इन केमरों का व्यवहार कीजिए। ये व्यवहार में पूर्ण सन्तोषप्रद हैं।

५॥×३। इञ्च साइज़ के केमरे

नं० ४११ फ़ो० सिं० लेन्स ४७)
" ४१५ " डबल " ५६)
" ४२१ "Anastigmat f6.3
लेन्स और Ilex शटर ... ६५)

केमरे के ख़रीदार को फ़ोटो की शिक्षा मुफ़्त देते हैं।

मँगाने का पता—**प्रियालाल एण्ड सन्स**
फ़ोटोग्राफ़र, आगरा छावनी

क्रमाङ्क — लेख — लेखक — पृष्ठ

विविध-विषय

* * * * * *

पचपन साल पहले

हाथ से बजाने वाले हारमोनियम का आविष्कार डारकिन कार्यालय ने किया था और वर्षों से हिन्दुस्तान में वही एक हारमोनियम का कारखाना रहा है। आज हिन्दुस्तान में हाथ से बजाने वाले हारमोनियम के हज़ारों कारखाने हैं, किन्तु डारकिन के बाजे दुनिया में चारों ओर मधुर टोन, उम्दा कारीगरी और मज़बूती के लिहाज़ से सबसे अच्छे माने जाते हैं। जब आप डारकिन का हारमोनियम ख़रीदेंगे, आप केवल बाजे का ही दाम देंगे, किन्तु आपको हमारे अनुभव का लाभ मुफ़्त में ही होगा, जो सचमुच ही बड़ा मूल्यवान होगा। डारकिन के हारमोनियम के प्रत्येक रञ्च पर डारकिन कार्यालय के पुराने अनुभव की और उम्दा कारीगरी की मुहर पड़ी हुई है।

ख़ास ज़रूरत से सूचीपत्र मँगाइए—

डारकिन एण्ड सन्स,
१२ स्पलेनेड और ८ डलहौज़ी स्क्वायर, कलकत्ता

चित्र-सूची

४० वर्ष से परीक्षित ये तीन दवाइयाँ

तत्काल गुण दिखाती हैं, सब दुकानदारों के पास मिलती हैं।

ऐसा कौन है जिसे फ़ायदा नहीं हुआ ?

कफ, खाँसी, हैज़ा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट-दर्द, क़ै, दस्त, इन्फ़्लूएंज़ा, बालकों के हरे-पीले दस्त और पाकाशय की गड़बड़ी से होने वाले रोगों की एक-मात्र दवा। इसके सेवन में किसी अनुपान की ज़रूरत नहीं। मुसाफ़िरी में इसे ही साथ रखिए। क़ीमत ॥) आना। डाक-ख़र्च एक से दो शीशी तक ।=)

शरीर में तत्काल बल बढ़ाता है; क़ब्ज़, बदहज़मी, कमज़ोरी, खाँसी दूर करता है; बुढ़ापे के कारण होने वाले सभी कष्टों से बचाता है, नींद लाता है और पीने में मीठा व स्वादिष्ट है। क़ीमत तीन पाव की बड़ी बोतल २) डाक-ख़र्च १॥), छोटी १) डाक-ख़र्च ॥≡)

बच्चों को बलवान, सुन्दर और सुखी बनाने के लिए यह मीठा "बालसुधा" उन्हें पिलाइए, क़ीमत ॥), डाक-ख़र्च ॥)

बालसुधा

मिलने का पता—सुख-सञ्चारक कम्पनी, मथुरा

बढ़िया स्वदेशी हाथ से बिने?

सूती चेक, टसरी धूप छाँह, पोशाक का सामान, कोट, पैण्ट
(सूटिङ्ग) और कमीज़ के लिए खास तर्ज़ का शिल्क

पक्के रङ्ग की गारण्टी है।
एजेण्टों की आवश्यकता है।

हमसे मँगाइए—

—स्टैण्डर्ड कॉटन एण्ड सिल्क वीविङ्ग कम्पनी—

—कालीकट (मालाबार कोस्ट)—

पोस्ट-बक्स नं० २५————तार का पता—इण्डस्ट्रीज

श्वेतकुष्ठ १ दिन में जड़ से आराम

यदि हमारी अद्भुत जड़ी के एक ही रोज़ के तीन ही बार लेप से सफ़ेद दाग़ जड़ से आराम न हो जाय तो मूल्य वापस। विश्वास न हो तो प्रतिज्ञापत्र लिखा लें। मूल्य फ़ी दफ़्स २)

मैनेजर—एस० के० चिकित्सक कार्यालय, नं० १, दरभङ्गा (बिहार)।

सस्ती, देशी, सूती साड़ियाँ

हमारे यहाँ देखने में बहुत सुन्दर, दाम में बहुत सस्ती, और वर्षों तक टिकने वाली ५ × १॥ गज़ी २॥) में, ६ गज़ी ३) में मिलती हैं। पसन्द न होने पर मूल्य वापस।

स्वदेशी खद्दर प्रचारक कम्पनी,
नं० २३ लुधियाना (पञ्जाब)

असली काश्मीरी ज़ाफरान (केसर) २) फ़ी तोला; असली कस्तूरी ६०, ४०, ३० रुपया फ़ी तोला; गुलबनफ़शा ३) फ़ी सेर, ज़ीरा खुशबूदार ५) सेर।

काश्मीर की सब चीज़ें हमसे किफ़ायत निर्ख़ पर मिलती हैं— डॉक्टर बिसनदास चड्ढा
काश्मीर तिब्बत ट्रेडिङ्ग कम्पनी, श्रीनगर—काश्मीर

संस्कृत-हिन्दी कोष
Sanskrit-Hindi Dictionary
(अभी छप कर तैयार हुआ है)

यह कोष जिसमें साढ़े छब्बीस हज़ार संस्कृत शब्दों और धातुओं के कई-कई अर्थ सरल हिन्दी में दिए हुए हैं, बहुत ही उपयोगी साबित हुआ है। इसकी सैकड़ों प्रतियाँ हाथों-हाथ छपते ही बिक गई। बड़ी तख़्ती के ७०० पृष्ठ हैं। मूल्य ५)। ४ प्रतियाँ लेने पर ४) रु० फ़ी प्रति। १ लेने पर डाक-व्यय माफ़।

बाल्मीकीय रामायण ६ काण्ड; मूल्य ६) रु० के बजाय ४॥)

भारतवर्ष का सच्चा इतिहास: मूल्य २) रु० के बजाए १॥)

पता:—मैनेजर भास्कर पुस्तकालय,
मवाना कलाँ (मेरठ), यू० पी०

नया स्टॉक आ गया ! शीघ्र मँगा लीजिए !!

चुने हुए उत्तमोत्तम उपन्यास, गल्प तथा अन्य पुस्तकों

का

सुन्दर चुने हुए उपन्यासों का भारी स्टॉक अभी-अभी संग्रहीत हुआ है। मनचाही पुस्तकें शीघ्र मँगा लीजिए, नहीं तो बिक जाने पर पछताना पड़ेगा। 'चाँद' तथा विद्याविनोद ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहकों को एक आना फ़ी रुपया कमीशन भी दिया जायगा !!

—व्यवस्थापक 'चाँद'

उपन्यास, गल्प तथा कथा-ग्रन्थ

अकबर (ल० बु० डि०) ॥)
अद्भुत आलाप (गं० पु० मा०) १), १॥)
अद्भुत कथा (इं० प्रे०) ।॥)
अधखिली कली (नि० पे० कं०) २॥)
अधःपतन (ल० बु० डि०) ॥)
अनन्तमती (हिं० मं०) ।॥=)
अनाथ बालक (इं० प्रे०) १)
अनाथ पत्नी (चाँ० का०) २)
अनाथ (") ।॥)
अनुचरी और सहचरी (हिं० प्रे०) ।॥)
अनोखी कहानियाँ (इं० प्रे०) ।)
अन्नपूर्णा का मन्दिर (हिं० ग्रं० र०) १)
अपराधी (चाँ० का०) २॥)
अपूर्व आत्मत्याग (ग्रं० मं०) १॥=)
अबला (गं० पु० मा०) १), १॥)
अबलाओं का इन्साफ़ (चाँ० का०) ३)
अभागिनी (ह० दा० कं०) १।)
अभागे का भाग्य (ल० बु० डि०) ३=)
अभिमानिनी (ह० दा० कं०) २)
अमृत और विष (चाँ० का०) ५)
आरणीया (इं० प्रे०) १)
अरुण मन्दिर (उ० ब० आ०) ।॥)
अलिफ़लैला (ह० दा० कं०) १॥)
अलाहो अकबर (उ० ब० आ०) १।)
अवध की बेगम (ल० बु० डि०) ॥=)
अश्रुपात (गं० पु० मा०) १), १॥)
अँगूठी का नगीना (सु० प्रे०) १॥=)
आख्यायिका-सप्तक (इं० प्रे०) १॥)
आग की चिनगारी (उ० ब० आ०) ।॥)
आज़ाद कथा (प्रथम भाग) २॥), ३)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

छत्रसाल (हिं० ग्रं० र०) १॥), २॥)
छाया (रा० हिं० मं०) ॥=)
जगदेव परमार (वें० प्रे०) ॥=)
जन्मभूमि (२ भाग) (उ० व० आ०) १॥)
जपाकुसुम (ल० ना० प्रे०) २)
ज़बर्दस्त की लाठी (ल० बु० डि०) ॥)
जयमाल (हिं० पु० मं०) ।=)
जयश्री (उ० ब० आ०) ॥)
जर्मन-जासूस की रामकहानी (प्रका० पु०) ।-)
ज़हर का प्याला (उ० ब० आ०) १)
ज़ारीना (कौशिक) ॥)
जुझार तेजा (गं० पु० मा०) ॥), १)
टॉलस्टाय की कहानियाँ (हिं० पु० ए०) १)
डबल बीबी (वें० प्रे०) ॥)
डाकगाड़ी (उ० ब० आ०) ॥)
डाकघर (इं० प्रे०) ।-)
डाकू की लड़की (उ०ब०आ०) ॥)
तरल-तरङ्ग (इं० प्रे०) ॥)
तारा (इं० प्रे०) १)
त्रिधारा (इं० प्रे०) १)
तुर्क-तरुणी (उ० ब० आ०) १)
तूलिका (गं० पु० मा०) १), १॥)
दर्प-दलन (उ० ब० आ०) ॥=)
दलित कुसुम (ल० बु० डि०) ॥)
दश कथाएँ (शि० का०) ।=)॥
दशावतार-कथा (ख० वि० प्रे०) ॥)
दिया-तले अँधेरा (हिं० ग्रं०र०) =)
दिल्ली एक्सप्रेस (ससे० सा० स०) १)
दिल्ली का दलाल (वी० स० पु०) १॥)
दोज़ख़ की आग (वी०स०पु०) १॥)
दीप-निर्वाण (ल० बु० डि०) १॥)
दुख का मीठा फल (वेल० प्रे०) ॥=)
दुलारी बहू (उ० ब० आ०) ॥)
देवकली (ब० प्रे०) ।-)
देवदास (चाँ० का०) २)
देवबाला (ठेठ हिन्दी का ठाठ) (अयोध्यासिंह उपाध्याय) ॥)
देवी द्रौपदी (गं० पु० मा०) ॥)
देवी पार्वती (गं० पु०मा०) १), १॥)
देशी और विलायती (इं०प्रे०) २॥)
देहाती दुनिया (शिवपूजन सहाय) १॥)
देहाती समाज (इं० प्रे०) २)
दो बहिन (उ० ब० आ०) ॥=)
दौलत का नशा (उ० ब० आ०) १)
धनकुबेर या अर्थ-पिशाच (ब० प्रे०) २॥)
धर्मोपाख्यान (इं० प्रे०) ।=)
धोखे की टट्टी (इं० प्रे०) ॥)
नवकुसुम (वेल० प्रे०) ॥)
नवनिधि (हिं० ग्रं० र०) ॥)
नवनिकुञ्ज (हिं० पु०ए०) १)
नवरत्न (ब० प्रे०) १॥)
नवनिधान (इं० प्रे०) १)
नवाब-नन्दिनी (दो भाग) (उ० ब० आ०) १॥)
नवीन संन्यासी (इं० प्रे०) २॥)
नरेन्द्र भूषण (वेल० प्रे०) १)
नरेन्द्र-मालती (हिं० सा० पु०) १॥), २)
नाट्यकथामृत (गं० पु० मा०) १), १॥)
नन्दन-निकुञ्ज (गं० पु० मा०) १), १॥)
नानी की कहानी (हिं० पु० ए०) ॥)
,, ,, (शि० का०) ।=)
निकुञ्ज (हिं० ग्रं० मं०) १॥)
निधन की कन्या (उ० ब० आ०) ॥)
निर्मला (चाँ० का०) २॥)
नूतन-चरित्र (इं० प्रे०) १॥)
पतित पति (उ० ब० आ०) ॥)
पतन (गं० पु० मा०) १॥), २)
पतितोद्धार (हिं० ग्रं० मं०) १=)
पति-मन्दिर (हिं० पु० ए०) १॥=)
पति-पत्नी-प्रेम (ना० द्वा० स०) ॥)
पतिव्रता मनसा (दुल० भार० देवी) ॥)
पत्नी-प्रताप (उ० ब० आ०) ॥)
पत्र-पुष्प (इं० प्रे०) १॥)
पथ प्रदीप (हिं० मा० मं०) १॥)
परिणाम (ल० बु० डि०) १)
परिणीता (इं० प्रे०) १)
परियों का देश (यु० ग०) १)
पवित्र पापी (गं०पु०मा०) १), १॥)
पण्डित जी (इं० प्रे०) १॥)
पाथेयिका (न० भा० ग्रं०) १)
पाप का फल (ख० वि० प्रे०) ।=)
पाप की छाप (लक्ष्मी पु०) २)
पाप-परिणाम (ह० द्वा० कं०) १)
पार्वती और यशोदा (इं० प्रे०) ॥=)
पारस्योपन्यास (इं० प्रे०) १॥)
पाश्चात्य-वनवास (ह० द्वा० कं०) २)
पुण्य-कीर्तन (ख० वि० प्रे०) १)
पुनरुत्थान (ग्रं० मं०) ॥=)
पुष्पवती (ल० बु० डि०) ।=)
पुष्प लता (हिं० ग्रं० र०) १)
पुष्प-हार (ग्रं० मा०) १)
पोल की माला (इं० प्रे०) ॥)
पौराणिक कथाएँ (हिं० पु० ए०) २॥=)
प्रणयी माधव (वें० प्रे०) १॥)
प्रतिध्वनि (जयशङ्कर प्रसाद) ।=)
प्रतिभा (हिं० ग्रं० र०) १॥)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

युद्ध की कहानियाँ (प्रका० पु०) १)
यूथिका (हिं० पु० भं०) ।=)
योगिनी विद्या (ल० बु० डि०) १)
रक्तमण्डल (ल० बु० डि०) ३)
रज़िया बेगम (सु० प्रे०) १॥)
रत्नदीप (इं० प्रे०) २)
रमणी-रहस्य (उ० ब० आ०) ॥)
रमा या पिशाचपुरी (उ० ब० आ०) ॥)
रङ्गभूमि (गं० पु० मा०) (दोनों भाग) ४), ६)
रङ्गमहल-रहस्य (बी० स० पु०) ४॥)
रसभरी कहानियाँ (शि० का०) ॥)
रँगीली दुनिया (च० प्रे०) १),।६।)
रागिणी (हिं० पु० ए०) ४)
राजदुलारी (उ० ब० आ०) १)
राजपूत जीवन-सन्ध्या (इं० प्रे०) १॥)
राजपूत-बाला (ध० ग्रं० मा०) १॥)
राजराजेश्वरी (उ० बा० आ०) १)
राजर्षि (इं० प्रे०) १।)
राजर्षि प्रह्लाद (ब० प्रे०) २।), २॥), २॥)
,, ,, (उ० ब० आ०) ॥)
राजसिंह (ख० वि० प्रे०) १।)
,, (प० प्रे०) २), २॥), ३॥)
,, (ह० दा० कं०) २॥)
राधाकान्त (,,) १)
राबिन्सन क्रूसो (इं० प्रे०) १॥)
राबिन्सन क्रूसो (रा० ना० ला०) ७)
रामप्यारी (उ० ब० आ०) १।)
रामाश्वमेध (इं० प्रे०) ॥=)
रावण-राज्य (उ० ब० आ०) २॥)
रूप का बाज़ार (ल० बु० डि०) १)
रूप ज्वाला (,,) ॥)
रूपनगर की राजकुमारी (लक्ष्मी पु०) ३)
रूप-लहरी (ह० दा० कं०) १॥)
लक्ष्मी (इं० प्रे०) ॥=)
,, (ग्रं० पु० मा०) ॥=)
लवकुश (ह० दा० कं०) ।॥)
लवङ्गलता (,,) १।)
लाल चीन (इं० प्रे०) १।)
लीलावती (एस० आर० बेरी०) १॥), २।)
लोक-वृत्ति (भा० पु०) १।)
वज्राघात (प्रका० पु० मा०) २॥)
वन-कन्या (ल० बु० डि०) १)
वन-कुसुम (इं० प्रे०) ।=)
वनदेवी (हिं० पु०) ॥)
वनमाला (चाँ० का०) ३)
वनवीर (ब० प्रे०) १॥), २)
वन विहङ्गिनी (ल०बु०डि०) ।-)
वनिता-विलास (गं० पु० मा०) ॥=)
वरदान (ग्रं० भं०) १॥), २।)
वसन्त-लता (ल० बु० डि०) १)
वङ्ग-विजेता (अभ्यु०) १)
,, ,, (मा० प्र०) १॥)
वाराङ्गना-रहस्य (६ भाग) (पाठक एँ० कं०) ४॥), ५)
विजया (गं० पु० मा०) १॥),२)
बिखरा हुआ फूल (त० भा० ग्रं०) १॥)
विचित्र जाल (ध० प्रे०) ॥=)
विचित्र वधू रहस्य (इं० प्रे०) १)
विचित्र योगी (गं० पु० मा०) १), १॥)
विदूषक (चाँ० का०) १)
विधवा-आश्रम (ना० दा० ए० सं०) १॥)
विनोद-वैचित्र्य (इं० प्रे०) १)
विधाता का विधान (हिं० ग्रं० र०) २॥),३)
विमाता (हिं० पु० भं०) २॥)
विरागिनी (ह० दा० कं०) १।)
विलासकुमारी (हिं० पु० डि०) १॥)
विज्ञान-वाटिका (शि० का०) ।=)॥
विष-विवाह (ल० बु० डि०) १)
विषाक्त प्रेम (पु० भं०) १।)
वीर अभिमन्यु (उ० ब० आ०) १।)
,, ,, (प० प्रे०) १)
वीर अर्जुन (प० प्रे०) ३॥), ३॥),
वीर कर्ण (उ० ब० आ०) २।)
वीर दुर्गादास (उ०ब०आ०) २)
वीर बाला (चाँ० का०) ४)
वीर बालिका (ल०बु०डि०) ।=)
वीरमणि (इं० प्रे०) १।)
वीर रमणी (एस० आर० बेरी) १)
वीर-मत-पालन या महाराणा प्रताप (ब० प्रे०) २), २॥)
वीर-वाराङ्गना (उ० ब० आ०) १)
वेणी-संहार (गं०पु०मा०) ॥=)
वेदना (रू० ला० प्र० सं०) २॥)
शकुन्तला (ब० प्रे०) ॥=), २), २।),२॥)
शर्मिष्ठा (उ० ब० आ०) ॥), १)
शर्मिष्ठा-देवयानी (प० प्रे०) २)
शशाङ्क (इं० प्रे०) ३)
शशिबाला (ब० प्रे०) ॥)
शशिप्रभा (वैज० प्रका०) २॥)
शाहज़ादा और फ़क़ीर (मि० बं० का०) ॥)
शाही चोर (ना० दा० स०) १)
शाही जादूगरनी (ना० दा० स०) १॥),२)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

स्व० बङ्किमचन्द्र चटर्जी के उपन्यास

आनन्द-मठ (हिं० पु० ए०) ।॥)
इन्दिरा (") ।≡)
" (ख० वि० प्रे०) ॥=)
कपाल-कुण्डला (ख०वि०प्रे०) ॥=)
" (ह० दा० कं०) १)
कृष्णकान्त का दान-पत्र
(ह० दा० कं०) १॥)
" (ख० वि० प्रे०) ।॥)
चन्द्रशेखर (ह० दा० कं०) २)
चन्द्रशेखर (उ० ब० आ०) १)
दुर्गेशनन्दिनी (ह० दा० कं०) १॥)
दुर्गेशनन्दिनी (ख० वि० प्रे०) ॥)
" (मा० प्र०) १)
देवी चौधरानी (ख०वि०प्रे०) ॥=)
" (सचित्र) (ह० दा० कं०) २)
" (हिं० पु० ए०) ।॥)
मृणालिनी (ख० वि० प्रे०) ॥=)
युगलाङ्गुलीय (ख० वि० प्रे०) =)
" (इं० प्रे०) ≡)
" (ह० दा० कं०) ।)
रजनी " १≡)
" (ख० वि० प्रे०) ॥)
राजसिंह (ख० वि० प्रे०) १)
" (ह० दा० कं०) २)
" (ब० प्रे०) २॥)
राधारानी (ख० वि० प्रे०) ≡)
विष-वृक्ष (हिं० पु० ए०) १)
सीताराम (उ० ब० आ०) १)
" (ह० दा० कं०) २)

अन्य पुस्तकें

कृष्ण-चरित्र (हि० पु० ए०) २॥)
लोक-रहस्य (हिं० पु० ए०) ।=)
" (ह० दा० कं०) १)

अय्यारी, तिलस्मी, जादूगरी, जासूसी और डकैती आदि विषय के उपन्यास

अदलू और बदलू की कहानियाँ
(मि० वं० का०) =)
अद्भुत कहानियाँ (हिं० पु०
ए०) ॥)
अनाथ बालिका (ब० प्रे०) ।)
अनोखा जासूस (ना०दा०स०) २)
अनूठी कहानियाँ (शि० का०) ।=)
अबलाओं के आँसू (दो० मा०
सि०) ।)
अभागे का भाग्य
(ल० बु० डि०) २)
अमीर सली ठग (ब० प्रे०)
।॥=),१।=)
अङ्कुर (सा० स०) ॥=)
अरब-सरदार (ब० प्रे०) ॥)
अर्थ का अनर्थ (जा० आ०) ।=)
अर्थ में अनर्थ (ल० बु०डि०)१॥=)
अङ्गरेज़ डाकू (ब० प्रे०) ॥=)
आहुतियाँ (छा०हिं० पु०) ।॥)
आत्म-हत्या (ब० प्रे०) ।॥)
आफ़त की पुड़िया (हिं० पु०
ए०) १॥)
औरतों के ग़ुलाम (दो० मा०
सि०) १)
इन्दौर का जासूस (दो० मा०
सि०) ।)
इन्दौर की अबला (") ।)
उपन्यास-कुसुम (ल०बु०डि०) १)
उषा और अनरुद्ध (प्रा० दा०
मा०) ३)
कठपुतली (ल० बु० डि०) ।)
कर्म-मार्ग (जा० आ०) २)
काजर की कोठरी
(ल० बु० डि०) ।॥)
कापालिक डाकू (ब०प्रे०) १॥), २)
काल-ग्रास (उ० ब० आ०) ।)
काला कुत्ता (ब० प्रे०) ।)
काला चाँद (उ० ब० आ०) ।≡)
काला चोर (ब० प्रे०) ।=)
क़िले की रानी (ल० बु० डि०) ।॥)
क़िस्तान की बेटी (,,) १)
कुसुमकुमारी (,,) १)
कुसुमलता (,,) ३)
कुण्डल (,,) १)
कुन्दनलाल (जा० आ०) १)
कृष्णवल्लभा-सुन्दरी (निहाल-
चन्द) १॥), २)
क़ैदी की करामात (ब० प्रे०)
१॥), २)
ख़ून-मिश्रित चोरी (ल०
बु० डि०) १)
ख़ूनी औरत (ब०प्रे०) १)
ख़ूनी औरत का सात ख़ून
(सु० प्रे०) १॥)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

संयुक्तांक

(दमन नीति का प्रसाद)

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ८
खण्ड २

अगस्त, सितम्बर, १९३०

संख्या ४-५
पूर्ण संख्या ९५

छत्रपति शिवाजी

[श्री० आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव]

वीर बनाता कायर जन को
है, हे वीर तुम्हारा नाम।
जो कोई कर सका नहीं था,
वही किया था तुमने काम॥

तुमको भारत कण्टक-वन था,
और न था तन पर तन-त्राण।
हाथ तुम्हारे ढाल न थी, थे
बरस रहे विपदा के बाण॥

वज्रतत्व के बने चरण थे,
वज्रतत्व का बना शरीर।
वज्र-कुसुम का तत्व निहित था,
दृढ़ कोमल मन में गम्भीर॥

सिंहों का साहस था तुममें,
शिक्षित गज का बल तन में।
बुद्धि बृहस्पति की थी तुममें,
स्वर्ग-तेज था आनन में॥

कल्पित तुमने किया किस समय
भारत में हिन्दू-साम्राज्य।
और जमाया तुमने निर्भय
भारत में हिन्दू का राज्य॥

वह विशाल क्षमता मुग़लों की,
सेना उनकी परम-विशाल।
जिसे देख कम्पायमान हो
नेपोलियन समझता काल॥

विचलित तुमको नहीं कर सकी,
बाँका कर न सकी फिर बाल।
थी अदृश्य मन्दार सुमन की
आख़िर गले विजय की माल॥

सिंहों से थी भरी तुम्हारी
सेना अल्प किन्तु दुर्जय।
हुई सिंहगढ़ विजय देख कर
मुग़लों की गुरु शक्ति सभय॥

डरता था बस एक तुम्हीं से
निपट निडर वह आलमगीर।
रही सफलता साथ तुम्हारे,
सदा लक्ष्य पर पहुँचा तीर॥

दीनों पर वह दया और वह
सब महिलाओं का सम्मान।
वह भारत की भक्ति और वह
वीर जनों को आदर-दान॥

अविनत अथवा विनत पराजित
रिपुजन से समुचित व्यवहार।
वह पतनोन्मुख मनुज तथा
महिला जन का उद्धत उद्धार॥

वह उदारता, विनयशीलता,
वह अत्यन्त उच्च आचार।
जाने कितना सुपम बना था
तव महान मन का संसार॥

बचा लिया कितनी महिलाओं—
का सतीत्व बल से तुमने।
कितने छली जनों का बहु छल
विफल किया छल से तुमने॥

कितने सुजनों की रक्षा की
सङ्कट प्राणों का सह के।
कितने कुजनों को दीक्षा दी
उन पर सदा सदय रह के॥

वीर तुम्हारा वह प्रताप था,
जिससे कँपा सबल संसार।
वह थी सद्भावना कि जिससे
सुखमय हुआ सकल संसार॥

केतु तुम्हारा धर्म-केतु था,
पर-हित हेतु भव्य जीवन।
इसीलिए यह अचल कीर्ति है,
मुग्ध कर लिया सबका मन॥
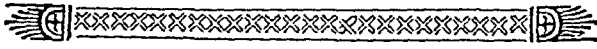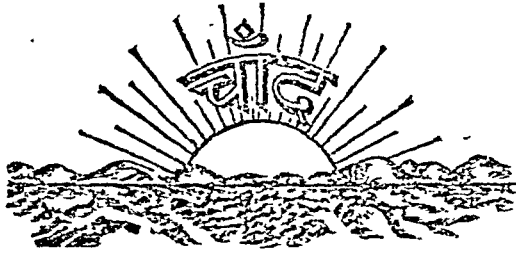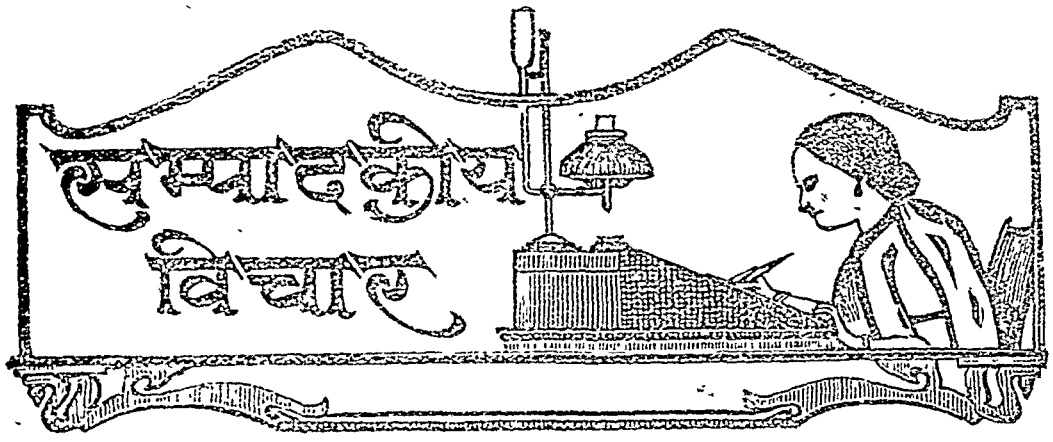
अगस्त, सितम्बर, १९३०

क़ानून या काल ?
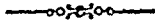
जीवन्मृत

[आचार्य श्री० चतुरसेन जी शास्त्री]

पन्द्रह वर्ष का लम्बा काल एक भयानक दुःस्वप्न की तरह व्यतीत हो गया। एक-एक क्षण, एक-एक श्वास, जीवन की एक-एक घड़ी, हज़ारों बिच्छुओं की दंश-वेदना में तड़प-तड़प कर व्यतीत हुई है। वह कल्पना और मानवीय विचारधारा से परे का दुःख न कहना, स्मरण न करना ही अच्छा है। मानो मैंने एक महान पवित्र व्रत लिया था, जो एक प्रकृत योद्धा को सजने योग्य था, जिसके लिए चरम कोटि के त्याग, साहस, सहिष्णुता, वीरता और प्रतिभा एवं ओज की आवश्यकता थी। अपनी शक्ति और व्यक्तित्व पर बिना ही विचार किए मैं रणपोत पर सैनिक गर्व से उद्ग्रीव होकर चढ़ गया। सहस्रावधि नर-नारियों ने हर्ष और आशा में भर कर उल्लास प्रकट किया, साधुवाद दिए, पर मानो प्रशान्त महासागर में एक साधारण चक्कर खाकर ही वह दृढ़ पोत जल-मग्न हो गया और देखते ही देखते उसका अस्तित्व विलीन हो गया। रह गया अकेला मैं, साधन, शक्ति और अवलम्ब से रहित, एक मात्र तख़्ते के एक टुकड़े के सहारे तैरता हुआ। अन्ध निशा में, एक सुदूर तारे के क्षीण प्रकाश में, उस दुर्धर्ष महाजल राशि पर, जीवन के मोह के कच्चे धागे के आसरे भटकता रहा। १५ वर्ष तक अनन्त हिंस्र जीव-जन्तुओं का आक्रमण, हड्डियों में कम्प उत्पन्न करने वाला शीत, नस-नस से प्राणों को खींच लेने वाली पर्वत-समान जलराशि की उत्तुङ्ग तरी के थपेड़े, उस असहाय अवस्था में सहन करता रहा। १५ वर्ष तक! और कितना भयानक, कितना रोमाञ्चकारी, कितना अद्भुत, यह जीवन का मोह रहा! ये प्राण कितने बहुमूल्य प्रमाणित हुए। क्या पृथ्वी पर और कोई मनुष्य भी इस तरह जिया होगा?

२

प्रकृति की एकान्त स्थली पर मैंने अपना शैशव और यौवन का प्रारम्भ व्यतीत किया। वहाँ एक ही रङ्ग था—त्याग, शान्ति, तप और निर्वासना। जब तक शैशव पर विधान का शासन रहा, मेरे बाहरी पीत-वसन और अन्तस्तल का भी एक रङ्ग रहा, पर यौवन के विकास ने बाहर-भीतर में भेद डाल दिया। हाँ, संसर्ग तो कुछ न था—जो था साधारण—परन्तु नैसर्गिक वासनाओं ने प्रस्फुटित होते-होते उस त्याग, तप, निर्वासना—सबसे विद्रोह करना शुरू किया। मैं ब्रह्मचारी था। उस तपस्थली पर मेरे जैसे बहुत थे, पर हमारे गुरू और उपजीवी ब्रह्मचारी न थे। हम नैसर्गिक रह ही न सके, हमारी सादगी में भी एक शान थी, हमारे ब्रह्मचर्य में भी एक फ़ैशन था, हमारे त्याग-तप में भी प्रदर्शन था। जगत के सर्व-साधारण कैसे जीवन के पथ पर बढ़ते हैं, मैं नहीं जानता, पर हम सभी में हास्य-उल्लास, गोपनीय वासनाएँ तथा तमोमयी भावनाएँ थीं। उस आश्रम में मैं ही सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ हूँ—मुझे सर्वश्रेष्ठ होना ही चाहिए—यह मैं शीघ्र ही समझ गया। कैसे? यह नहीं बताऊँगा। मैं आचार्य का पुत्र था। राजपुत्र तो जन्म ही से सर्वश्रेष्ठ होते हैं। इसमें अनुचित क्या? मैं सर्व-प्रथम, सर्वश्रेष्ठ पुरुष होकर उस दुर्धर्ष आश्रम से बाहर आया। संसार कैसा सुन्दर था! मैं देखते ही मोहित हो गया। वह मेरे ऊपर श्रद्धा, आशा और प्रेम बिखेर रहा था। मैंने जाना भी न था कि मैं जीवन में इतना आदर पाऊँगा। वह आशातीत आदर पाकर मैं गर्व से नाच उठा। मैंने अच्छी तरह अपनी मानसिक दुर्बलताएँ अपने पीले उत्तरीय में लपेट कर छिपा लीं, और मैं असाधारण पुरुष की तरह खुले संसार में पैर के धमाके से हलचल मचाता हुआ आगे बढ़ चला।

स्त्री को सदैव दूर से देखा और अनुमान से समझा था। आश्रम में स्त्री मात्र दुष्प्राप्य थी। फिर मैं तो मातृहीन बालक ठहरा। परन्तु सदैव ही मैंने स्त्री-जाति के सम्बन्ध में विचारा। फिर भी वह क्या वस्तु है, कुछ समझा नहीं।

पर, विशाल जगत में आते ही स्त्री भी मिली। अद्भुत वस्तु थी। इसे देख, फिर और किसी को देखने की इच्छा ही न होती थी। मैं जगत को भूल गया। स्त्री-शरीर, स्त्री-हृदय, स्त्री-भावना, यह मेरा खाने और बिखेरने का अब विषय रही, परन्तु जीवन का एक नूतन अनिर्वचनीय आनन्द तो अभी मिलना शेष ही था। वह मुझे शिशु कुमार के अवतरण होते ही मिला। आह! जगत के पर्दों के भीतर क्या-क्या छिपा है, और उसे भाग्यवान किस तरह अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं, यह मैं क्या कभी विचार भी सकता था?

वाह रे मेरा सुखी जीवन और मेरा नवीन संसार! मैं सोता था हँस कर, जागता भी था हँस कर! शिशु कुमार और उसकी माता, ये दोनों ही मेरे हास्य के साधन थे। शीतकाल के प्रभात की सुनहरी धूप की तरह वह मेरा हास्य मुझे कैसा सजता था! आज १५ वर्ष से मैं उस अतीत हास्य की कल्पना करके भी एक सुख पाता हूँ।

देश मेरा प्राण और देश-सेवा मेरा व्रत था। यह बात कुछ मेरे मन के भीतर नहीं उपजी, प्रत्युत मुझे बचपन से सिखाई गई थी। उस आश्रम की उन अति गरिष्ट पुस्तकों के अलावा—जिनसे सदैव भयभीत रहने पर भी मेरा पिण्ड नहीं छूट सका था—यही एक प्रधान विषय था जिसे आश्रम के गुरु से शिष्य तक भिन्न-भिन्न शब्दों और शैलियों में सोचते-विचारते थे।

देश ही मातृ-भूमि है, वह मातृ-भूमि माता—जन्मदात्री माता—से भी अधिक पूजनीय है। वही मातृ-भूमि विदेशी-अत्याचारियों द्वारा दलित है। उसका उद्धार करना हमारे जीवन का एक व्रत है। बस, यही हमारे देश-प्रेम की रूप-रेखा थी। मातृ-भूमि का उद्धार कैसे किया जाय, यह मैंने न कभी सोचा, न समझा, न किसी ने मुझे बताया ही। मैं मातृ-भूमि का उद्धार करूँगा, यह मैं चिल्ला कर कहता। पर किस तरह, यह नहीं जानता था। और इसी लिए मैं अब तक समय-समय पर चिल्ल-पुकार करने के सिवा और कुछ कार्य इस विषय में कर भी नहीं सका। मैंने समझा यही यथेष्ट है। इसे करने में धन भी मिला और यश भी। रोज़गार-धन्धे को ढूँढने की दिक़्क़त भी न उठानी पड़ी, यही चिल्ल-पुकार करना मेरा व्यवसाय हो गया। मैं अब जिह्वा और लेखनी दोनों से यही चिल्लाया करता। निदान, देश पर मरने वालों की फ़ेहरिस्त में मेरा नाम दूर ही से चमकने लगा। मेरी स्त्री हँसती थी। वह मुझे जीवित रखना चाहती थी, मारना नहीं। मैं कह दिया करता—"यह तो कहने की बातें हैं। मरने का ऐसा यहाँ कौन सा प्रसङ्ग है?" बस, यही उसके हास्य का विषय था। शिशु कुमार की बात कैसे भूली जाय? हँसने में चार चाँद तो वही लगाता था।

पर मैंने जो कुछ समझा वह मेरी जड़ता थी। देश का अस्तित्व एक कठोर और वास्तविक अस्तित्व था। उसकी परिस्थिति ऐसी थी कि करोड़ों नर-नारी मनुष्यत्व से गिर कर पशु की तरह जी रहे थे। संसार की महाजातियाँ जहाँ परस्पर स्पर्द्धा करती हुई जीवन-पथ पर बढ़ रही थीं, वहाँ मेरा देश और मेरे देश के करोड़ों नर-नारी केवल यह समस्या हल करने में असमर्थ थे कि कैसे अपने खण्डित, तिरस्कृत, अवशिष्ट, जीवन को ख़तम किया जाय? देश-भक्त मित्र मेरे पास धीरे-धीरे जुटने लगे। उन्होंने देश की सुलगती हुई आग का मुझे दिग्दर्शन कराया। मैंने भूख और अपमान की आग में जलते और छटपटाते देश के स्त्री-बच्चों को देखा। वहाँ करोड़ों विधवाएँ, करोड़ों मँगते, करोड़ों भूखे-नङ्गे, करोड़ों कुपढ़ मूर्ख और करोड़ों ही अकाल में काल-ग्रास बनते हुए अबोध शिशु थे। मेरा कलेजा थर्रा गया। मैं सोचने लगा, जो बात केवल मैं कहानी-कल्पना समझता था, वह सच्ची है, और यदि मुझमें सच्ची ग़ैरत थी तो मुझे सचमुच मरना ही चाहिए था। मैं भयभीत हो गया। मैं कह चुका था कि मैं मरने से पीछे हटने वाला नहीं हूँ। अब क्या करता? मैं बिलकुल पशु तो नहीं, बेग़ैरत भी नहीं, परन्तु मैं मरने को तैयार नहीं था। फिर भी मैं ज़बान लौटा न सका, मेरी वाग्धारा और लेखनी वैसी ही चलती रही। वास्तविकता का ज्यों-ज्यों दिग्दर्शन मुझे हुआ, वह उतनी ही अधिक मर्म-स्पर्शिनी हो गई। बोलना और लिखना मैंने सीखा था, फिर वह मेरा स्वाभाविक गुण था। शीघ्र ही मेरी सोलहों कलाएँ पूर्ण हो गईं। मैं देश में सितारे की भाँति चमकने लगा। मेरा सम्मान चरमकोटि पर पहुँचा, पर मेरा हास्य, मेरा सुख सदा के लिए गया। मैं सदा ही शङ्कित, थकित और चिन्तित रहता, मानो मृत्यु परछाईं की तरह सदा

मेरे पीछे रहती थी। मैं उससे बहुत ही डरता था। अब मृत्यु ही मेरे हृदय और मस्तिष्क के विचारने का विषय रह गई, परन्तु क्या कहूँ ? इस दुःख में भी एक वस्तु थी, जो प्राणों से चिपट रही थी—वही स्त्री और शिशु कुमार।

राजा साहब को मैंने कभी नहीं समझा, पर उनसे कभी डरा भी नहीं। उनके नेत्र अद्भुत थे, और देखने का ढङ्ग और भी अद्भुत—छोटा सा मुख, बड़ी-बड़ी मूँछें, उस पर भारी सा हस्मामा, और काले चश्मे से ढकी हुई वे अद्भुत रहस्यमयी आँखें। सभी कहते थे, राजा साहब से हम डरते हैं, पर मैं कभी न डरा। वे आते ही सदैव पहले मुझे प्यार करते, तब पिता जी से बात करते थे। वे पिता जी के अनन्य भक्त थे, पिता जी के दीक्षा लेने के पूर्व से ही। उनके संन्यस्त होने के बाद तो वे उनके शिष्य ही हो गए थे। बहुधा उनमें एकान्त में बातचीत होती, घण्टों और कभी-कभी दिनों तक। वे खाना-पीना-सोना भी भूल जाते। तब भी मैं उनके विषय को न समझ सका था और अब, इतना बड़ा होने पर भी, नहीं समझ सका। एक ही बात प्रकट थी कि वे बड़े भारी देश-भक्त हैं। मैं भी देश-भक्त था। बस, यही हमारा उनका नाता था। वह धीरे-धीरे बढ़ा। पहले वह जैसे मुझे प्यार करते थे, वैसे अब वे शिशु कुमार को प्यार करने लगे। यह बात मुझे और मेरी पत्नी को बहुत भाती थी। पर वे कभी-कभी शिशु कुमार को छाती से लगा कर मेरी ओर ऐसी मर्म-भेदिनी दृष्टि से ताकते थे कि मैं घबरा जाता था। तभी तो मैं कहता था कि वह दृष्टि बड़ी अद्भुत थी। उस समय मैं उसे समझा नहीं, समझा तब, जब मैं स्त्री, पुत्र, प्राण, जीवन, सब कुछ उन्हें देकर महापथ पर महायात्रा के लिए अग्रसर हुआ। आज वे आँखें १५ वर्ष से प्रति क्षण मुझे घूर रही हैं। उनसे एक क्षण भी बचना मेरे लिए अशक्य है।

राजा साहब ने मुझसे जिस लिए परिचय बढ़ाया था, उसका मुख्य कारण धीरे-धीरे उन्होंने खोला। मैं ज्यों-ज्यों सुनता था, भयभीत होता, पर यत्न से भय को छिपा कर उत्साह प्रदर्शित करता था। फिर भी मालूम होता मानो वे सब समझ रहे हैं। वे थोड़ी-थोड़ी बातें करते और चले जाते। एक दिन हठात मुझे बुला कर कहा—"क्या तुम अपने पिता के सच्चे पुत्र और देश-सेवक हो ?" मैं ना कहता किस तरह ? मैंने सिंह-गर्जन की तरह हुङ्कार भरी। राजा साहब ने मुख्य उद्देश्य बता दिया। मैं सन्न हो गया। वे मृत्यु को जेब में लिए फिरते थे, अपने लिए भी और मेरे लिए भी। उस महावीर के सम्मुख कायर बनना मेरे लिए शक्य न रहा। मैं हाँ करता गया। स्वामी जी के सम्मुख भी हाँ की। स्त्री ने हाहाकार किया, परन्तु एक अपूर्व गर्व-भावना मन में आ गई थी। मैं पीछे न हटा। मैंने अपना जीवन राजा साहब के हाथों सौंप दिया। फिर तो मैं इस तरह उड़ा जैसे आँधी से उड़ाया हुआ और डाल से टूटा हुआ सूखा पत्ता।

३

मैंने अपनी आत्मा से अधिक उस पर विश्वास किया था। उसके पिता मेरे गुरु और परम श्रद्धास्पद थे। वे अपने जीवन के प्रारम्भ से ही देश के एक अप्रतिभ सेवक रहे, उनकी सन्तान कैसे देश और जाति का मित्र न होगी ? मैं इसके विपरीत सोच ही न सका। इस प्रसङ्ग से प्रथम कई वर्ष से मैं उससे परिचित था। पत्र-व्यवहार और मुलाक़ात सभी में वह एक उत्कट देश-भक्त वीर युवक ध्वनित होता रहा। जब मैंने उससे अपना गम्भीर अभिप्राय निवेदन किया तो वह एकटक मेरे मुख को देखता रह गया। उसके होठ और कण्ठ सूख गए। बड़ी चेष्टा करके उसने कहा—श्रीमान, आपने राज्य और रियासत को धूल के समान त्याग दिया ; राज्य, भोग और ऐश्वर्य से दूर हो गए ; दिन-रात देश और जाति की ध्वनि आपके रोम-रोम से निकलती है। अब आप क्या सचमुच प्राणों की बाज़ी भी लगा देने को तैयार हैं ?

मैं तो तैयार ही था। बिना एक क्षण रुके मैंने कहा—"हाँ, हाँ, अब प्राणों को छोड़ कर मेरे पास और रह ही क्या गया है ? यह भी जिसकी धरोहर हैं, उसे जितनी जल्दी सौंप दिए जायँ उतना ही अच्छा। इस शरीर को इन प्राणों का भार अब सह्य नहीं है। यह गुलामी, यह काला जीवन, हमारा—हम समस्त भारत-वासियों का—कैसा है, समझते हो ? जैसे, एक भेड़ के बच्चे का उस बाड़े के भीतर, जिसके फाटक पर शिकारी कुत्तों का पहरा लग रहा है। इस पहरे के भीतर राजा रहा तो क्या, प्रजा रही तो क्या, जीवित रहा

तो क्या और मर गया तो क्या? बोलो तुम क्या कहते हो?"

उसकी आँखों से झर-झर आँसू टपक गए। उसने गद्गद कण्ठ से कहा—"श्रीमान, मैं भी कैसा अपदार्थ हूँ! मैं अपनी स्त्री-बच्चे को त्यागने में कष्ट पा रहा हूँ, परन्तु आप—ओह! आपके सम्मुख मैं लज्जित होने का कारण न पैदा होने दूँगा। मैं सोचूँगा, कल इसी समय मैं आपको वचन दूँगा। सिर्फ़ कल भर आप और रहने दीजिए।"

"कुछ हर्ज नहीं, पर समझ लेना, मृत्यु की पद-पद पर आशङ्का है। भय और विपत्ति के बादलों में जाना होगा—ज़रा भी विचलित हुए, ज़रा भी स्त्री-बच्चों के सुख का स्मरण आया, ज़रा भी मन में भीरुता आई, देश तो अतल पाताल में गया ही समझना, साथ ही पचासों वीर मित्रों की जान जायगी। सब कुछ मिट्टी में मिल जायगा।"

"श्रीमान, क्या आप नहीं जानते, मैं किसका पुत्र हूँ?"

"जानता हूँ, पर तुम्हें स्वयं भी कुछ होना चाहिए।"

"तब श्रीमान का मुझ पर विश्वास नहीं?"

"विश्वास? विश्वास अपनी आत्मा से भी अधिक है। मैं अपने विश्वास से बेफ़िक्र हूँ। मैं यह चाहता हूँ कि तुम्हें स्वयं अपने ऊपर विश्वास हो।"

वह अधोमुख होकर सोचने लगा। मैंने मन में वेदना अनुभव की। लाखों युवकों में मैंने इसे चुना है, क्या मैं धोखा खाऊँगा?

मैंने उसे बिदा किया, वह चला गया।

दूसरे दिन ठीक समय पर मिलते ही उसने कहा—"श्रीमान, मैं तैयार हूँ।" उसने अपना हाथ बढ़ा दिया। मैं घोर सन्दिग्ध अवस्था में था। क्षण भर मैं उसे देखता रहा। क्या यह सच है? महान विचार-धाराओं के कार्य-रूप में परिणत होने का समय क्या आ गया? ओह प्यारे भारतवर्ष!..... ठहरो। मैंने खड़ा होकर उसका स्वागत किया। मैं कुछ बोल न सका। मेरे नेत्रों में आँसू थे। कुछ ठहर कर मैंने कहा—"प्यारे युवक, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, प्राण रहते तुम्हारी रक्षा करूँगा। प्रत्येक ख़तरे को अपने सिर पर लूँगा। तुम्हें प्राणों से अधिक प्यार करूँगा, परन्तु फिर भी तुम्हें प्रतिज्ञा करनी है कि यदि कुअवसर उपस्थित हो तो अपने प्राणों को, शरीर को, अपदार्थ समझोगे। अभी तुम्हारे सम्मुख जो भयानक गम्भीर भेद प्रकट होंगे, उन्हें तुम्हारे हृदय से बाहर तब तक न आना चाहिए, जब तक कि तुम्हारे हृदय को चीर कर टुकड़े-टुकड़े न कर दिया जाय। तुम सदा यह समझ कर अपने जीवन को बलिदान करने के लिए तैयार रहना कि इससे सैकड़ों सच्चे वीरों के जीवन की रक्षा होगी। जो अब नहीं तो फिर कभी न कभी देश का उद्धार करेंगे।" युवक के नेत्रों में स्थिरता थी। उसने सहज-शान्त स्वर में कहा—"श्रीमान, हर तरह परीक्षा कर लें।"

मैंने कहा—"तुम्हारे पिता की भक्ति मेरे हृदय में धरोहर है। मैंने उनसे आदेश ले लिया है। तुम्हारी यही परीक्षा काफ़ी है। तुम केवल मुख से एक बार कह दो कि तुम भेदों को प्राणों से बढ़ कर समझोगे?"

"समझूँगा।"

"विपत्ति आने पर तुम स्थिर रहोगे?"

"उसी तरह जैसे पत्थर की मूर्ति रहती है।"

"यदि तुम्हें मृत्यु का आलिङ्गन करना पड़े?"

"तो मैं उसे अपने पुत्र की तरह गले लगाऊँगा?"

"यदि तुम्हें भेद लेने के लिए असह्य वेदनाएँ दी जायँ?"

"मैं धर्म से शपथपूर्वक कहता हूँ कि मृत्यु पर्यन्त उन्हें सहन करूँगा।"

"यदि प्रलोभन दिए जायँ?"

"वे मुझे विचलित नहीं कर सकेंगे।"

युवक के होठ काँपे। नेत्रों की पुतरियाँ चलायमान हुईं। मैंने अधीर होकर कहा—"प्रलोभन? क्या प्रलोभन तुम्हें चलायमान न कर सकेंगे?"

"नहीं श्रीमान, अभी मैं बड़े से बड़े प्रलोभन को त्याग आया हूँ।"

मेरा सन्तोष न हुआ। मैं उठ कर टहलने लगा। मैं सोचने लगा—वेदना, यातना और मृत्यु ये एक ओर हैं, परन्तु प्रलोभन? ओह, इसका अन्त नहीं। यह युवक वेदना सहेगा, मृत्यु का आलिङ्गन भी करेगा। मैं विश्वास करता हूँ, पर प्रलोभन? ओह, विश्वास नहीं होता। शायद उसे स्वयं भी विश्वास नहीं।

युवक ने मेरे पास आकर कहा—"श्रीमान क्या विश्वास नहीं करते ?"

"मेरे प्यारे मित्र, मैं तुम्हारे साथ अन्याय कर रहा हूँ। मुझे विश्वास करना चाहिए।" मैंने युवक को छाती से लगा लिया। मैंने कहा—"लो, अब हम-तुम एक हुए, एक महान कार्य की पूर्ति के लिए। यदि परमेश्वर को अभीष्ट हुआ तो हम मर कर भी अमर होंगे। हम दोनों करोड़ों मनुष्यों से अधिक शक्तिशाली हैं। हम पृथ्वी की महा विजयिनी शक्ति के सम्मुख चल रहे हैं—मरेंगे या विजयी होंगे।" आवेग में ही ये शब्द मुख से निकल गए। उसके बाद मेरा बाहुपाश कब शिथिल हुआ, कब वह युवक खिसक कर मेरे पैरों में आ गिरा, मुझे स्मरण नहीं।

४

जगत में असाधारण होना भी कैसा दुर्भाग्य है! पृथ्वी की असंख्य आँखें उसीके छिद्रान्वेषण में लगी रहती हैं। वह यदि जगत के लिए मरता है तो जगत की दृष्टि में यह उसका साधारण सा कर्तव्य है, किन्तु यदि वह एक क्षण भी अपने लिए जीता है तो मानो पाप का पर्वत उसके सिर पर लद जाता है। क्या यह दुर्भाग्य नहीं? अरे भाई, सभी कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी, नर-नारी, अपने ही लिए तो जीते हैं? अपने क्षण भर के सुख और जीवन के लिए अनगिनत प्राणियों को नष्ट कर डालते हैं। कोई भी तो उनसे कुछ नहीं कहता। फिर हम पर ही यह अग्नि-वर्षा क्यों? मैंने सब कुछ त्यागा। जीवन के कष्ट और आपत्तियों को क्या कहूँ, अब तो सबको पार कर गया। अब उनकी स्मृति से क्यों मन को सन्ताप दूँ? परन्तु शरीर और हृदय, ये जब तक जीवन-तत्व से संयुक्त हैं, तब तक तो प्रकृत संन्यस्त में सदैव कमी रहेगी ही। यह मेरा अब तक का अनुभव है।

मैं संन्यस्त हुआ सही, पर पिता का हृदय कहाँ रक्खा जाय? पुत्र तो आत्मा और रक्त-मांस में से भाग देकर बना था, उसका मोह कहाँ तक त्यागूँ? कहाँ तक निर्मोही बनूँ? उसकी माँ तो उसे जन्म देकर ही मर गई थी। उसने अल्प जीवन में जो कुछ दिया, अब भी वह अतीत के सब सुखों के ऊपर नृत्य कर रहा है। उस मधुर स्मृति की एक अमिट रेखा यह पुत्र था। इसे मैंने हाथों-हाथ पाला और उसे—जैसा कि मैंने चाहा था—संसार के सामने, क्रान्ति के भव्य कुमार के रूप में पेश किया। लक्षावधि देशवासी उस पर नाज़ करते थे और मैं अपनी सफलता पर मुग्ध होता था—उसी तरह जैसे किसान अपने कड़े परिश्रम से सींचे हुए खेती को पका देख कर मुग्ध होता है।

फिर भी मैं राजा साहब के वचन को न टाल सका। उनके भयानक साहस से मैं अवगत था। उनकी प्रत्येक गति-विधि से मैं परिचित था। पुत्र के अनिष्ट का भय पद-पद पर स्पष्ट था। किन्तु मुझे सहमत होना पड़ा। इसके अनेक कारण थे। देश के नाम पर बलिदान होने की मैं स्वयं उच्च स्वर से पुकार कर चुका था, पुत्र को भी यही शिक्षा दी थी। अब उसे उस मार्ग से रोक कर क्या राजा साहब और अन्य साथियों की दृष्टि में अपदार्थ बनता? लड़के में भी साहस और उत्साह था। पर उसके मर्मस्थल की दुर्बलता मैं जानता था। विलासिता उसे गिरावेगी, मुझे भय था। उसने वस्तुस्थिति को समझा ही नहीं। जब उसने स्वयं नवजात पुत्र और पत्नी को त्याग कर उस भयानक यात्रा और कठोर कर्तव्य-पथ पर राजा साहब का अनुकरण करने का अपना इरादा प्रकट किया, तब मैं स्तब्ध रह गया। मैंने कहा—"पुत्र, राजा साहब का मैं चिर-सहयोगी हूँ, परन्तु केवल मुख से। तुम तो इतने उत्साह से यह बात कह रहे हो, कदाचित तुम अवश्यम्भावी विपद् से अवगत नहीं। कार्य की गुरुता और कठिनाई तुम यथावत नहीं समझ रहे हो। यह तुमसे होने वाला कार्य नहीं, महादुस्साध्य है। यह लोह-पुरुषों का महकमा है। इसके लिए वे पुरुष चाहिए जो लोहे का शरीर, लोहे की आत्मा और लोहे का हृदय रखते हों। मेरे बेटे, मैं तुम्हें जानता हूँ। तुम वह नहीं हो। घर में बैठो, बैठे-बैठे जो बने करो। देश और जाति के लिए यही यथेष्ट है।"

उसने एक न सुनी। वह मूर्ख मुझ पिता के सम्मुख भी कायर बनना न चाहता था। उसने अस्वाभाविक करारे स्वर में हठ प्रदर्शन किया और मुझे सहमति देनी पड़ी।

वही हुआ जिसका भय था। पृथ्वी के उस छोर पर वे विपत्ति के अग्नि-समुद्र में बड़े कौशल और साव-

धानी से घुस रहे थे। अरे, जब अग्नि-समुद्र में घुसना था, फिर कौशल क्या? वह फँस गया, राजा साहब बाल-बाल बच कर निकल भागे। मैं यहीं बैठा उनकी गति-विधि का निरीक्षण कर रहा था। महासमर की प्रचण्ड ज्वालाएँ यूरोप को भस्म कर रही थीं। उसकी चिनगारी कब मेरी कुटी को भस्म कर देगी, यह कहना शक्य न था। यूरोप के दैनिक पत्रों को देखने के अतिरिक्त मैं और कुछ कर ही न सकता था। मन ही न लगता था। उसके उस पत्र पर सरकारी गुप्त विभाग के सर्वोच्च अधिकारी की एक टिप्पणी थी। उससे मैं समझ गया, पुत्र की मृत्यु का मूल्य बहुत अधिक है। वह मूल्य मेरे पास था तो, पर मैंने बहुत चेष्टा की कि प्राण देकर उस मूल्य को न दूँ। पर हाय! अवसर ही ऐसा आ गया, मेरे प्राणों का कुछ भी मूल्य इस सौदे में न रहा। उसने सब कुछ कह दिया था। उसके वक्तव्य की सत्यता के प्रमाण मात्र मेरे पास थे। मैं कई दिन उसके बच्चे को छाती से लगा कर तड़पता फिरा। अपने संन्यास-वेश की असत्यता मुझ पर खुल गई। ओह, मुझे वह काला काम करना पड़ा। मैंने पुत्र के प्राणों की पिता की तरह रक्षा की।

पर उसके बदले हुआ क्या? देश भर में तलाशियों और गिरफ़्तारियों की धूम मच गई। होनहार, अटपटे वीरों ने हँसते-हँसते फाँसी पाई। कुछ कालेपानी जाकर वहीं घुल गए। कुछ युग व्यतीत कर लौट आए। देशोद्धार का सुयोग अतल पाताल में चला गया। मेरे दुष्कर्म का यह भेद एक राजा साहब को ही मालूम था, पर वे भारत में आ न सकते थे। एक पत्र उन्होंने भेजा था। ओह, जाने दो, जब उसे भस्म कर दिया है, तब चर्चा क्यों? जिस बात के भूलने में सुख है, उसे हठ-पूर्वक स्मरण क्यों किया जाय?

५

महाजातियों का यह सङ्घर्ष कैसा सुन्दर है! यदि मैं भी इन्हीं जातियों में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त करता तो क्या आज चूहे की तरह इधर से उधर प्राण बचाता फिरता? महाशक्ति की सेनाओं की कमान इन्हीं हाथों में होती, पर जीवन में कभी वह क्षण आवेगा भी? आवे या न आवे, मैं अन्त तक न थकूँगा। भोजन और सोना कई दिन से नसीब नहीं हुए। नाविक के वेश में, मछलियों की सड़ी गन्ध में छिपे-छिपे सिर भिन्ना गया, पर विपत्ति तो अभी सिर पर है। वह दूर पर रणपोतों के तोपों का गर्जन सुनाई पड़ रहा है। वह सर्चलाइट का श्वेत सर्प समुद्र पर लहरा रहा है। किन्तु प्रभात होते ही तो किनारे लगेंगे? किनारे पर शत्रु हैं या मित्र, कौन जाने? मित्र हुए तो इस बार जान बची, पर यदि शत्रु हुए तो आज ही प्राणान्त है। जीवन भी कैसी चीज़ है? इस समय राजमहल याद आ रहे हैं। महारानी मानो करुण नेत्रों से झाँक रही हैं, परन्तु क्या इस महायुद्ध में मैं अपने वंशधरों की भाँति अपने देश के लिए जूझने में पीछे रहूँ? जूझने के ढङ्ग तो यथावसर निराले होते ही हैं, परन्तु जिन विदेशियों को मैं मित्र बना कर अपना और अपने देश का ऐसा गम्भीर दायित्व सौंप रहा हूँ, वह क्या सच्चे रहेंगे? एक विदेशी से प्राण छुड़ाने को दूसरे का आश्रय लेना सुन्दर नीति तो नहीं, परन्तु दूसरी गति भी नहीं थी। फिर, अब लौटने का उपाय भी तो नहीं है। एक बार देश में आग फैल जाय, अमन, आराम और शान्ति की इच्छा नष्ट हो जाय, देश जूझ मरने की हौंस मन में उत्पन्न करे, फिर तो आज़ादी स्वयं ही आ जायगी। यह महासमर तो महाराज्यों के भाग्य का निबटारा करेगा, महाजातियों के भाग्य का निबटारा तो कहीं अन्यत्र ही होगा। सुदूर पूर्व में शान्त समुद्र की लहरें रक्त से लाल होंगी, एशिया की प्रसुप्त आत्मा जाग्रत होकर हुङ्कार भरेगी, तब यूरोप का शान्त दर्प ध्वंस होगा। उसी दिन के लिए तो मेरा आयोजन है। ओह, अभी मुझे बहुत काम है, पहली यात्रा में ही यह विघ्न हुआ!

अभी मुझे बारम्बार चीन, जापान, रूस, अमेरिका और न जाने कहाँ-कहाँ जाना होगा। महाविध्वंस क्या योंही हो जायगा? परन्तु वह युवक तो फँस गया। बुरा हुआ। बचना सम्भव ही न था। महासाहस उसमें न था। चिन्तनीय बात तो यह है कि सब कुछ उसे ज्ञात है। आवश्यक काग़ज़ भी बहुत से वहीं रह गए हैं। तब वह क्या प्राणों के लोभ से देश को चौपट करेगा? विश्वासघाती होगा? मरने में क्षण भर का ही तो दुःख है। वह अवश्य उसे सह लेगा, भेद न

खोलेगा। फिर भी सचेत रहना आवश्यक है। मुझे अब नया कार्यक्रम बनाना उचित है। अपने मार्ग की गति भी बदलनी उचित है। ये नाविक विश्वसनीय हैं, परन्तु मैं कुछ और ही करूँगा।

ओह देश! मेरे प्यारे स्वदेश!! यह तन, मन, धन, सब तुझ पर न्यौछावर है। तेरी एक-एक रज-कण में मेरे जैसे लाख शरीर बनते-बिगड़ते हैं। फिर इस शरीर का क्या मोह? मेरे प्यारे स्वदेश! मैंने सब कुछ तुझे दिया है। अब प्राण भी दूँगा। इस धरोहर को पास रखने योग्य अब मेरे पास और भी नहीं रह गया है। आह, क्या कभी मैं तुझे देख सकूँगा? वह नील-श्यामल रूप!! अरे, बचपन की क्या-क्या बातें याद आ रही हैं? परन्तु नहीं, मुझे इस समय कायर नहीं बनना चाहिए। मैं प्रण करता हूँ, देश की भूमि पर तभी पैर रक्खूँगा जब उसे पूर्ण स्वाधीन कर लूँगा।

६

प्राण बचे तो, पर बेमोल बिक गए थे। उन पर मेरा क़ाबू न था। अब स्वेच्छानुसार न कुछ कर सकता था, न सोच सकता था। उन बहुमूल्य गोपनीय बातों के बदले मुझे गुप्त विभाग में उच्च पद मिला था। मेरे प्राण जैसे मेरे लिए क़ीमती थे, वैसे ही उस गुप्त विभाग के लिए भी थे। मेरा जीवन रहस्यमय था। मेरे हृदय में कुछ और भी है, तथा मेरी ओट में कुछ रहस्य-भेद होगा, इस तत्व ने मेरे प्राणों को इस अधम शरीर में सुरक्षित रक्खा और इस कापुरुष ने यही ग़नीमत समझा। शिशु की फैली हुई बाँह और हँसता मुख मैं कुछ काल तक देखता रहा, उस जेल-यन्त्रणा और मृत्यु की कोठरी में भी और इस अफ़सरी की सुखद किन्तु भीषण कुर्सी पर भी। परन्तु पाप के पथ पर तो पाप की हाट लगी ही रहती है। फिर लिली की बात क्यों छिपाऊँ? न जाने क्यों वह मुझ अभागे पर मुग्ध हुई। उसका पति मेरा उच्च ऑफ़िसर था। हम लोगों ने विष द्वारा उस कण्टक को दूर कर दिया। अब लिली थी और मैं था। परन्तु मृतात्मा हमारे बीच में जीवित की अपेक्षा अधिक भयानक रूप में थी। एक बार फाँसी के फन्दे को हम दोनों ने अपने संयुक्त गर्दनों के इर्द-गिर्द देखा। हमने सोचा यहाँ से भाग चलें। तार दिया, जहाज़ का टिकट भी ले लिया, पर भाग न सके। जहाज़ पर ख़ूनी आसामी कह कर पकड़े गए। लिली का रोना देखने योग्य था। पर वह छूटती कैसे, हड्डियों तक घुस गई थी। इतारा, दोनों मृत्यु का आलिङ्गन करने को तैयार हो गए। परन्तु ये कठिन प्राण तो इस शरीर में जम कर बैठे थे। उन्हीं शक्तियों ने प्राण बचा लिए। मैं लिली के मृतक पति के पद पर, उसी मृतक के नाम से बैठ गया। लिली अब वास्तव में मेरी पत्नी थी। अब मानो मैं मर गया हूँ। मैं नहीं हूँ, जिसे मैंने लिली के लिए मारा, मानो वह मैं हूँ। शिशु का वह हास्य और पत्नी के वे नेत्र अब भी कभी-कभी स्वप्न की तरह स्मरण आते हैं, पर पूर्व-जन्म की इन बातों में अब क्या रक्खा है? लिली से मैं अब भी प्यार की आशा करता था। छिः! कैसी विडम्बना है! पति के हत्यारे को प्यार करना क्या साधारण है? फिर यदि प्रेम की सुखद गोद में हत्या जैसा पाप घुस जाय तब वह जिन्हें सुखद प्रतीत हो वे निश्चय ही राक्षस होंगे। हृदय की उन वेदनाओं को क्या कहा जाय, जिन्होंने शरीर को नष्ट कर दिया है? और वह अभागा भी कैसा दुखी जीव है, जो उसके साथ रहने को विवश किया गया है, जो उससे घृणा करती है? हमारे रस की प्रत्येक बूँद में विष है, पर उसे रस कह कर पीना हम दोनों के ही लिए अनिवार्य है। हाय रे प्रारब्ध!

७

मैं अभागिनी अबला स्त्री क्या करती? मरना सुखकर था, परन्तु शिशु कुमार के मन्द हास्य ने उसे दुरूह कर दिया। क्या कोई भी माँ अपने फूल-से बच्चे को इस तरह हँसते छोड़ कर मर सकती है? अब तो मैं पहले माँ थी, पीछे पत्नी। इसीलिए गोद के शिशु को धरती में पटक कर परोक्ष पति के नाम पर मरना मेरे लिए सम्भव ही न रहा। मैं सुख-दुःख के बीच झूलती रही। मैं मृत्यु और जीवन की ड्योढ़ियों में पड़ी ठोकर खाती रही। मुझ दुखिया के कष्ट, मूक मनोवेदना का अनुमान तो करिए? मेरी बात पूछने वाला कौन था? मेरे मन को सहारा किसका था? मैं पति के सहवास-काल की प्रत्येक घटना, प्रत्येक बात, अपनी आँखों से प्रति क्षण देखती, सोते समय और जागते समय भी। मैं कभी हँसती और कभी रो देती। कभी सोते-सोते या बैठे ही

बैठे चमक उठती। मुझे ऐसा प्रतीत होता था मानो वे आ गए। उन्होंने अभी-अभी शिशु कुमार को आवाज़ दी है। कण्ठ-स्वर को मैं प्रत्यक्ष सुन पाती। मैं द्वार की ओर दौड़ती, परन्तु तत्काल ही समझ जाती, ओह! कुछ नहीं, यह सब मनोविकार था। मैं नहीं कह सकती कि सोने के समय जागती थी या जागने के समय सोती थी। प्रायः मैं जड़वत बैठी रहती। उस समय मैं किसी की कोई बात ही न सुन पाती थी। मैं उस समय देखती थी—वे उन्हें पकड़ कर फाँसी पर चढ़ा रहे हैं, उनके शरीर में तलवारें घुसेड़ रहे हैं। शरीर रक्त से भर रहा है। मैं एकाएक चीत्कार कर उठती, और फिर धरती पर धड़ाम से गिर कर बेहोश हो जाती थी।

शिशु कुमार को देख कर ही मैं सचेत रह सकती थी। मुझे तब वास्तव में हँसना ही पड़ता था। वह उनके सिखाए ढङ्ग पर मेरे गले में बाहें डाल कर जब ज़रा-ज़रा तोतली वाणी से सितार की झनकार के स्वर में कहता—"माता जी, रूठो मत" तब मैं मानो किसी गूढ़ जगत से एकाएक भूतल पर आती। होठों पर मुस्कान न आती, पर नेत्रों में आँसू आ जाते थे। उन्हें शिशु कुमार से छिपाने के लिए मैं उसे ज़ोर से छाती से लगा लेती थी।

उस दिन स्वामी जी एकाएक मेरे सम्मुख आ खड़े हुए। उनके होठ काँप रहे थे और पैर लड़खड़ा रहे थे। उनके मुख पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। वे कुछ कहना चाहते थे, पर बोली न निकलती थी। मैं घबरा कर उठ खड़ी हुई। मैंने कभी उन्हें इतना विचलित न देखा था। मैंने कहा—"बात क्या है पिता जी?" "वह जीवित है, वह आ रहा है"—वे अधिक न बोल सके। आँसुओं की धारा उनके नेत्रों से बहने लगी। उन्होंने मुँह फेर कर अच्छी तरह रुदन किया।

मेरे शरीर में रक्त की गति रुक गई। मेरी हड्डी-हड्डी काँपने लगी। मैंने खड़े रहने की बड़ी चेष्टा की, पर न रह सकी। मेरा सिर घूम रहा था, छाती फटी पड़ती थी। मैं बैठ गई, या गिर गई, स्मरण नहीं।

स्वामी जी ने घूम कर कहा—"बेटी, आज ७ वीं तारीख़ है। १० तारीख़ के प्रातःकाल जहाज़ बम्बई के बन्दर पर लगेगा। हमें आज ही चलना होगा। तुम अपना आवश्यक सामान ले लो। अभी समय है। गाड़ी साढ़े नौ पर खुलती है।" वे इतना कह कर चले गए।

मार्ग में मैं जीवित थी या मृत, नहीं कह सकती। बम्बई कब पहुँची, स्मरण नहीं। रेल दौड़ रही थी, मैं मानो आकाश में घुसी जा रही थी, मानो मैं अभी सूर्य-मण्डल को भेदन करूँगी। डेक पर सहस्रावधि नर-नारी खड़े थे। एक भीमकाय जहाज़ उन्मत्त समुद्र की जल-राशि के हृदय को विदीर्ण करता हुआ भयानक दानव की तरह निकट ही आ रहा था। मेरी संज्ञा प्रायः लुप्त थी। डेक पर लगते ही नर-नारियों का समुद्र किनारे उतरने लगा। मैं सम्पूर्ण चेष्टा से उनके बीच कुछ खोज सकने भर की संज्ञा सञ्चित कर रही थी। सब कुछ एक रङ्गीन विन्दु के समान दीख पड़ता था। नहीं कह सकती, कब तक हम लोग खड़े रहे। हठात स्वामी जी ने कहा—"इस जहाज़ में तो वह नहीं है। क्या कारण हुआ?" उनके प्रदीप्त नेत्र दूर तक घूम कर मेरे मुख पर आ लगे। बम्बई आने पर यही शब्द मैं ठीक-ठीक सुन सकी। मैं समझी, यह सब मृग-मरीचिका थी। वे नहीं आए, वे नहीं आवेंगे। मैंने अनन्त तक फैली हुई जल-राशि पर दृष्टि दौड़ाई। हठात मेरे मन में एक भाव उदय हुआ। मैंने हठात कहा—"पिता जी, तब मैं वहाँ जाऊँगी।" मेरे ये शब्द मेरे ही कानों में तोप के भीषण गर्जन की तरह प्रतीत हुए।

स्वामी जी ने मेरे मुख की तरफ़ देखा। उन्होंने आश्वासन देकर कहा—"अवश्य, कुछ कारण हुआ है। पत्र या तार शीघ्र मिलेगा। तब भविष्य कर्तव्य पर विचार करेंगे। अभी घर चलो।" मैंने एक पग भी न हिलाया। बहुत तर्क हुआ। विजय मेरी हुई। सोते हुए शिशु कुमार को छोटी बहू की गोद में सौंप, उसे बिना ही अच्छी तरह देखे, उसे बिना ही चूमे, मैं उस अनन्त समुद्र के उस पार, उस अज्ञात प्रदेश में, पति को ढूँढ़ लाने चली। मेरा माता होना धिक्कार हुआ। हाय रे! अधम नारी-हृदय!!

८

इस कृष्णकाय और साधारण पुरुष ने क्या जादू कर दिया? ओह, मैंने कैसा घोर दुष्कर्म किया? अब इन रक्त-रञ्जित हाथों को कौन प्यार करेगा? यही व्यक्ति? और वह कितना भयानक, कितना घृणास्पद है! क्यों

[श्री० भोलानाथ दास जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

विवाहोच्छेद (Divorce)

भिन्न-भिन्न समाजों में विवाह का आदर्श भिन्न-भिन्न है, एवं इसी भिन्नता पर विवाह-बन्धन की दृढ़ता या क्षणिकता अवलम्बित है। अमेरिका में पति-पत्नी की समानता यहाँ तक स्वीकृत हुई है कि वहाँ अब स्त्रियों से विवाह में यह प्रतिज्ञा नहीं कराई जाती है कि मैं आप (पति) की आज्ञा मानूँगी। सुतराम् हाल में वहाँ विवाह-मन्त्रों से स्त्री द्वारा कहे जाने वाले 'I shall obey' शब्दों को उठा दिया गया है। वहाँ स्त्रियाँ सचमुच पुरोगामिनी हैं। यूरोप आदि अन्य पाश्चात्य देशों में भी वे [यद्यपि अमेरिका जैसी पुरुषों से आगे वे नहीं बढ़ी हैं, तथापि] सहगामिनी अवश्य हैं। उन्हें बहुत से समानाधिकार प्राप्त हैं, किन्तु भारत आदि पूर्वीय देशों में वे अनुगामिनी हैं और उनका बहुत सुख-दुख पति-पुत्र आदि के ही ऊपर अवलम्बित रहता है। यह सब दाम्पत्य जीवन के भिन्न-भिन्न आदर्श हैं, और जिनमें जितनी ही अधिक वैयक्तिक स्वतन्त्रता है, उनमें उतनी ही विवाहोच्छेद की मात्रा अधिक है।

फिर विवाह के भेदों पर भी इसकी स्थिरता या चञ्चलता बहुत-कुछ अवलम्बित है। असभ्य जातियों में, जहाँ बल या छल से ही कुछ समय के लिए स्त्री-पुरुष दाम्पत्य सम्बन्ध में आबद्ध हो जाते हैं, अथवा जैसे मुसलमानी समाज में कुछ दिन या महीनों के लिए ही विवाह कर लिया जाता है [जिसे 'मूता' विवाह कहते हैं] उसके लिए विवाहोच्छेद की कोई सीमा नहीं है, स्वभावतः ऐसे विवाह अनिश्चित या निश्चित समय पर टूट जाते हैं। फिर जिन दार्शनिकों के विचार में विवाह-बन्धन की अमरता का कोई प्रयोजन ही नहीं है, जो स्वतन्त्र प्रेम (Free love) के पक्षपाती हैं, उनके लिए भी पति-पत्नी का पृथक होना स्वभावसिद्ध और इच्छानुकूल है। विना किसी कारण के पति-पत्नी सदा के लिए वियुक्त हो सकते हैं। ये दार्शनिक इच्छात्याग के पक्षपाती हैं। यदि इन असभ्य और आदर्श समाजों की बात छोड़ भी दें तो सभ्य समाज में भी इसके दो मुख्य आदर्श देख पड़ते हैं। एक तो इसे ठीकेदारी (Contract) समझना और दूसरा धार्मिक कृत्य। सम्पूर्ण पाश्चात्य जगत और मुसलमानी समाज विवाह को एक ठीकेदारी ही समझता है ; किन्तु हिन्दू-धर्म के अनुसार यह धार्मिक कृत्य है। इसलिए स्पष्ट है कि पहले आदर्श के अनुसार इसे तोड़ना सहज

है, किन्तु दूसरे के अनुसार कठिन है। फिर भी विवाह-बन्धन दो आत्माओं का ऐसा उच्चतम और स्वाभाविक सम्बन्ध है कि असभ्यों में भी इसकी प्रतिष्ठा अन्यान्य सम्बन्धों से प्रबल है। ठीकेदारी समझने वाले पाश्चात्य जगत ने भी आज तक इच्छात्याग के सिद्धान्त को स्वीकृत नहीं किया है। सुतराम् उन ईसाई देशों में विवाह मुख्यतया दो कारणों से टूटता है; एक तो पति की निर्दयता या दुर्व्यवहार आदि से अथवा स्त्री के व्यभिचार से। इसके अतिरिक्त वर्जित सम्बन्ध आदि की भी कई क़ानूनी बाधाएँ हैं। मुसलमानी समाज में इसकी उच्छृङ्खलता सबसे अधिक है। वहाँ 'मूता' विवाह तो अनायास ही टूटता रहता है, निश्चित विवाह में भी पति को इतनी स्वतन्त्रता है कि वह इच्छा मात्र से केवल तीन बार "तलाक़-तलाक़" कह कर विवाह-बन्धन का पूर्ण रीति से अन्त कर सकता है। कारण रहने पर तो उसके लिए विवाहोच्छेद का द्वार खुला हुआ है ही! तिस पर तुर्रा यह है कि स्त्री किसी दशा में विवाहोच्छेद की अधिकारिणी नहीं हो सकती है!! पति से वह विवाहोच्छेद का अधिकार दाम देकर खरीद सकती है, किन्तु स्वयं विवाह को नहीं तोड़ सकती चाहे पति उसके साथ कैसा ही दुर्व्यवहार क्यों न करता हो। इसलिए मुसलमान पत्नियों की स्थिति इस विषय में अत्यन्त दासतापूर्ण और अनिश्चित है। और तो और, मुसलमानी क़ानून की यह एक विचित्र व्यवस्था है कि यदि किसी कारण से पति-पत्नी एक बार वियुक्त हो जायँ तो उनका पुनर्विवाह तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि स्त्री फिर किसी दूसरे पुरुष से विवाहिता होकर त्यक्ता न हो जाय। किन्तु इतना होने पर भी एक तो 'मूता' विवाह की प्रथा सब मुसलमानों में प्रचलित नहीं है, दूसरी बात यह है कि पुरुष की उच्छृङ्खलता निवारण के लिए "देन-महर" चुका देने की विवशता है। अभिप्राय यह है कि जिन-जिन समाजों में विवाहोच्छेद का विधान है, उनमें इसको पूर्ण उच्छृङ्खल होने से रोकने का भी कुछ न कुछ विधान अवश्य है।

हमारे शास्त्रकार विवाह की दृढ़ता के विधान में सबसे आगे हैं। वे इतने दूर आगे बढ़ गए हैं कि एक ओर जहाँ पुरुषों के लिए प्रायः अबाधित बहु-विवाह की आज्ञा प्रदान करते हैं, वहाँ दूसरी ओर स्त्रियों के लिए पति के मर जाने पर भी दूसरे विवाह की आज्ञा प्रायः नहीं देते!! वर्तमान हिन्दू-लॉ के अनुसार यद्यपि स्त्री को पति के मर जाने पर पुनर्विवाह का अधिकार है, तथापि पति के जीते जी किसी स्त्री को दूसरे विवाह की आज्ञा नहीं है (17 Mad. 235)। ऐसा करना भारतीय दण्ड-विधान (Indian Penal Code) की ३९४ वीं धारा के अनुसार दण्डनीय भी निश्चित हुआ है। सुतराम् पुरुषों के लिए जहाँ विवाहोच्छेद की आवश्यकता नहीं है, वहाँ स्त्रियों के लिए यह व्यर्थ हो गया है। क्योंकि स्त्री यदि किसी प्रकार अच्छी नहीं है तो पुरुष पहिली स्त्री को बिना छोड़े भी दूसरा-तीसरा विवाह कर सकता है और पुरुष चाहे कैसा ही बुरा क्यों न हो, स्त्री उसके भार्यापन से छूट नहीं सकती! अधिक से अधिक वह उससे अलग रह सकती है। अतः जबकि एक पति के जीवन में स्त्री का दूसरा विवाह हो ही नहीं सकता तो वह विवाहोच्छेद लेकर क्या करेगी? सुतराम् हिन्दू-लॉ में भी विषमता का अभाव नहीं है।

किन्तु विवाह दो प्रकार से टूट सकता है, एक तो कुछ अंशों में और दूसरा पूर्ण रीति से। पहले को अङ्गरेज़ी में Judicial seperation या विवाह-विच्छेद और दूसरे को Divorce या विवाहोच्छेद कहते हैं। विवाह-विच्छेद में पति पत्नी का सम्बन्ध नहीं टूटता, किन्तु वे एक-दूसरे से पृथक् हो जाते हैं। यह दो प्रकार का है, एक तो साध्य और दूसरा असाध्य। जिन-जिन अवस्थाओं में पति पत्नी को पृथक् रहने का अधिकार है, वे साध्य हैं अर्थात् इन कारणों के दूर होने पर वे फिर से एकत्र होकर पूर्ववत् अपना दाम्पत्य
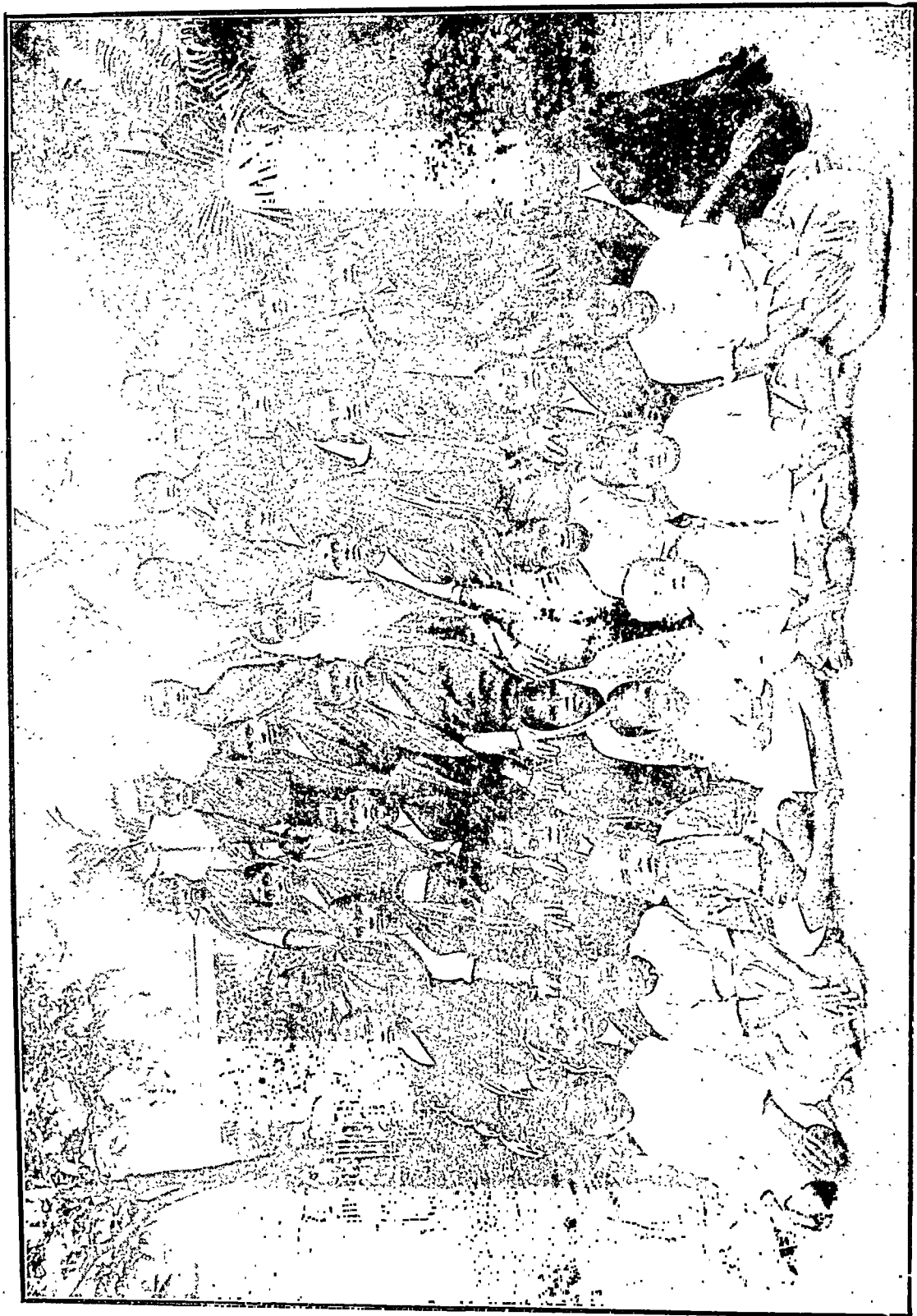
बम्बई सेवा-सदन के अनाथ-भवन की कुछ स्त्रियाँ तथा बच्चे

वह विवाह जड़-मूल से अशुद्ध समझा जाता है, किन्तु चौथी आपत्ति में वह एकबारगी व्यर्थ (Void) नहीं होता, हाँ क्षतिग्रस्त पक्ष चाहे तो उसे व्यर्थ बना सकता है, सुतराम् यह क्षतिग्रस्त पक्ष की इच्छा पर व्यर्थ होने योग्य (Voidable) होता है, किन्तु पहिली तीन आपत्तियों में विवाह सर्वथा अशुद्ध और व्यर्थ हो जाता है। इन दशाओं में पति को शास्त्रीय प्रायश्चित्त करना पड़ता है, और कभी-कभी कन्या को भी ऐसा ही करना पड़ता है, किन्तु ऐसा करने पर भी वे एक दूसरे से दाम्पत्य जीवन की आशा नहीं कर सकते। उन्हें आजीवन एक दूसरे से वियुक्त रहना पड़ता है, यदि वे दोनों संयुक्त हों तो यह वैसा ही अवैध होगा जैसा कि व्यभिचार; और इनसे उत्पन्न सन्तान भी वैसी ही दूषित (Illegitimate) होगी जैसी कि व्यभिचार से उत्पन्न सन्तान होती है। कहने का अभिप्राय यह है कि इन अवस्थाओं में पति-पत्नी असाध्य रीति से वियुक्त होते हैं। इस प्रकार के विवाद प्रायः अब तक न्यायालयों में नहीं आए हैं, किन्तु शास्त्रों की व्यवस्था के अनुसार सर गुरुदास बनर्जी ने अपने ग्रन्थ 'Hindu Law of Marriage and Stridhan' में ऐसा ही लिखा है। वे यह भी लिखते हैं कि इन आपत्तियों में यद्यपि विवाह असाध्य रीति से व्यर्थ हो जाता है, तथापि एकदम टूटता नहीं, कम से कम स्त्री के लिए वह वैसा ही दृढ़ रहता है, जैसा कि शुद्ध विवाह, अर्थात् इन अवस्थाओं में भी त्यक्ता स्त्री पुनर्विवाह नहीं कर सकती, पति भी उसके भरण-पोषण के भार से मुक्त नहीं हो सकता। इन अवस्थाओं में यदि अक्षता कन्या का सर्वथा त्याग होता है, तो वह सचमुच बड़ा ही अन्याय है। श्रीयुत बनर्जी इनके त्याग के विषय में लिखते हैं :—

"This is hardly just. Even the virgin widow has one consolation for her lot, that it is due to a cause which no human foresight could prevent, but the condition of a repudiated virgin wife, who is condemned to a life of virtual widowhood for the error of a reckless guardian, is truly pitiable. A far more rational rule, and one not wholely against the spirit of our law, would be to allow remarriage in such cases, where the wife is repudiated before cousumation."

—Banerjee's *Law of Marriage and Stridhan*

अर्थात्—"यह कभी न्याय्य नहीं है। अक्षता विधवा को भी अपने दुर्भाग्य पर सन्तुष्ट होने की यह योग्यता रहती है कि किसी की मृत्यु को कोई मानवी शक्ति नहीं रोक सकती, किन्तु ये त्यक्ता अक्षता पत्नी, जिनको अपने उद्धत अभिभावकों की भूल से आजन्म वैधव्य की दावाग्नि में बरबश तपना पड़ता है, अवश्य ही दयनीय हैं। इससे कहीं अच्छी, न्यायसङ्गत और हमारे क़ानून के एकान्त प्रतिकूल भी नहीं—यह विधि होगी कि इन पत्नियों में त्याग यदि खण्डिता होने के पूर्व होता है, तो उन्हें पुनर्विवाह की आज्ञा मिलनी चाहिए।"

किन्तु हमारे क़ानून की यद्यपि ऐसी विषम व्यवस्था है, तथापि हमारा व्यवहार वैसा नहीं है। इन अवस्थाओं में शायद ही कोई विवाह टूटता है। हमने देखा है, त्याज्य सम्बन्ध के विषय में शास्त्रकारों और प्रान्तीय तथा भिन्न-भिन्न वर्णों के सामाजिक व्यवहारों में कितनी भिन्नता है। उसी प्रकार विवाह-विधियों की भी दशा है। फिर जहाँ तक विदित होता है, डॉक्टर (अब सर) हरिसिंह गौड़ महाशय के 'सिविल मैरेज बिल' के पास होने से असवर्णता की भी कुछ बाधा नहीं रही। इसलिए प्रथम तीन आपत्तियों में विवाह-विच्छेद का कोई भय नहीं है। यद्यपि क़ानून की वैसी भयानक व्यवस्था है, तथापि वह पुस्तक की अक्षर सम्पत्ति मात्र है। रह गया बल अथवा छल का प्रयोग; इसमें प्राचीन शास्त्रकारों की सम्मति के अनुसार

विवाह अशुद्ध या व्यर्थ नहीं होता है, प्रत्युत राक्षस और पैशाच विवाह इसी के उदाहरण हैं, किन्तु वर्तमान भारतीय व्यवहार-नीति (Indian Contract Act) और दण्ड-विधान (Indian Penal Code) की धाराओं से ये विवाह अवैध हैं तथा क्षतिग्रस्त पक्ष इन्हें तोड़ भी सकता है, फिर भी यह उसकी इच्छा पर अवलम्बित है। यदि अन्य कोई आपत्ति नहीं है, अथवा पति-पत्नी यदि सम्मत हैं तो उनके दाम्पत्य जीवन में कोई बाधा नहीं है। हाँ, इतनी आपत्ति अवश्य है कि इस प्रकार का विवाह यदि यथार्थ में दोषावह हो और कन्यापक्ष से तोड़ भी दिया जाय तो वर्त्तमान क़ानूनी व्यवस्था के अनुसार, उसका सारा परिश्रम व्यर्थ होता है, क्योंकि कन्या का विवाह दूसरी जगह नहीं हो सकता। इसलिए इस अवस्था में अथवा अन्य उपरोक्त अवस्थाओं में यदि विवाह व्यर्थ और अशुद्ध हो जावे, और न्यायालय से उसे तोड़वा दिया जाय तो कम से कम अक्षता कन्या का पुनर्विवाह अवश्य होना चाहिए, जैसा कि सर बनर्जी कहते हैं, अन्यथा जातिभाइयों की स्वीकृति अथवा वर-कन्या की सम्मति से विवाह को निर्दोष मानना ही ठीक है।

चित्तौड़ के क़िले में

[आचार्य श्री० चतुरसेन जी शास्त्री]
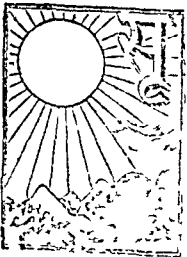
रवि का मुंह लाल हो गया था, वह धरती में धँस रहा था। आसमान आँखों में आँसू भरे खड़ा था, कोहरा और अन्धकार बढ़े चले आते थे। मैं महाराना कुम्भा के कीर्ति-स्तम्भ की सब से ऊपर की चोटी पर खड़ा हुआ यह सब देख रहा था !!

ज़मीन से मीलों ऊँची हवा में, राजपूती विध्वंस की हाय भर रही थी। मरे हुए पशुओं की हड्डियों के ढेर की तरह पद्मिनी का महल ढहा पड़ा था, मीरा का मन्दिर कङ्गाल ब्राह्मण की तरह पैसा-पैसा भीख माँग रहा था; जयमल और फ़तहसिंह के महलों के मुर्दे दीदे दिखा रहे थे। इन सब के बीच में वर्त्तमान महाराज का बनाया झकाझक सफ़ेद महल ऐसा मालूम होता था—जैसा गोबर के ढेर में ओला पड़ा हो; जैसे विधवा ने बिछुए पहन रक्खे हों। मैंने एक हाय की और कहा—हाय! इन निर्लज्ज राजपूतों का बीज नाश क्यों न हुआ !!! इनकी माँ बाँझ क्यों न हो गई !!!

मैं पीछे लौटा। अँधेरा हो गया था। जौहरी बाज़ार में सिर नीचा किए जा रहा था। एक भी मनुष्य न था। दूर तक दीपक न था—दूकानों की जगह—पत्थरों के ढेर और जवाहरात की जगह अड़ूसे के पेड़, बस यही, वह जौहरी बाज़ार था। काले-काले वृक्ष मृत वीरों के भूत मालूम पड़ते थे। मुझसे न रहा गया, मैं एक पत्थर पर बैठ कर अच्छी तरह रोया।

एक बकरियों का बड़ा सा रेवड़ सामने होकर गुज़रा। सड़क की धूल आसमान तक चढ़ गई। क्षण भर को मुझे एक मज़ा आया। मैंने सोचा, इस धरती पर इसी तरह वीरों की सेना चलती होगी। मैं उस अँधेरे में बड़े चाव से उन बकरियों को आँख गाड़-गाड़ कर देखने लगा। मेरे मन में आया कि दौड़ कर एक बकरी के गले से लिपट जाऊँ। और पूछूँ—हे राजपूती जीव! तू आज बकरी कैसे बन गया! अभागे!! बदनसीब!!!

सेवा-सदन

[कुमारी बी० ए० इञ्जीनियर, एम० ए०, एल्-एल्० बी०, जे० पी०]
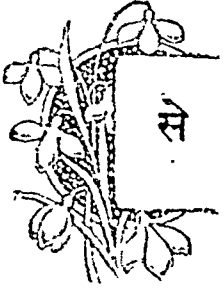
सेवा-सदन की स्थापना हुए आज बीस वर्ष से अधिक बीत गए। उस समय समाज-सुधार के विषय में लोगों के कैसे विचार थे, इसका अनुमान लगाना भी आजकल ज़रा मुश्किल है। यद्यपि आजकल भी समाज-सुधार का कुछ कम विरोध नहीं होता, तथापि आजकल भारत-भूमि पर समाज-सुधार का प्राणप्रद समीर पहले की अपेक्षा कहीं अधिक निर्बाध गति से बह रहा है। आज भारत की देवियाँ पारिवारिक जीवन से लेकर स्वाधीनता के युद्ध-क्षेत्र तक सर्वत्र एक अपूर्व जागरूकता के साथ अपने कर्तव्य-पालन में अग्रसर हो रही हैं। उनका कार्य-कलाप आज केवल गृह के मनोरम प्राङ्गण तक परिमित नहीं है, उनके उत्साह और जागरण की क्रान्तिकारी लहरें, जेल के भीषण प्राचीरों तक से टकरा कर भारत-माता के दासत्व की शृङ्खला को चूर-चूर कर देने के लिए व्याकुल हो उठी हैं। जिनके सुकुमार और कोमल हाथों में सुन्दर चूड़ियाँ शोभती हैं, आज वे अपने उन्हीं हाथों में कठोर लौह-शृङ्खला धारण करने का पराक्रम दिखा रही हैं। यह एक ऐसा स्वर्गीय दृश्य है, जिसे देख कर एक बार मुर्दों में भी जान आ जायगी। परन्तु आज की अवस्था और आज से बीस वर्ष पहले की अवस्था में ज़मीन और आसमान का अन्तर था। आज जिन सुधारों की आवश्यकता और उपयोगिता को प्रत्येक व्यक्ति मुक्त कण्ठ से स्वीकार करता है, उन्हीं सुधारों का उस ज़माने में घोर विरोध किया जाता था। उस समय जन-साधारण में समाज-सेवा की चर्चा सुनना तो दूर रहा, ऐसे व्यक्ति भी विरले ही थे जो समाज-सेवा का नाम भी जानते हों। ऐसे ही समय में सेवा-सदन की स्थापना हुई थी। इसका उद्देश्य था स्त्रियों में समाज-सेवा की भावना का प्रचार करना तथा उन्हें इस कार्य के करने योग्य बनाना। इस संस्था को खोल कर इसके स्वनाम-धन्य संस्थापक श्रीयुत मालाबारी तथा उनके अनन्य सहायक श्रीयुत दयाराम गीदूमल जी ने सेवा-भाव का जो बीज बोया था, वह आज हरे-भरे पौधे के रूप में लहलहा रहा है। आज सेवा-सदन के समान विशुद्ध सेवा-भाव से कार्य करने वाली अनेक संस्थाएँ देश में खुल गई हैं और दिनोंदिन उनकी संख्या बढ़ती ही जा रही है। भारतीय स्त्रियों में इस समय जो अभूतपूर्व जाग्रति दिखाई दे रही है, उसके लिए क्षेत्र प्रस्तुत करने में इन संस्थाओं ने महत्वपूर्ण भाग लिया है। ऐसी सभी संस्थाओं में सेवा-सदन ही सबसे पहिली संस्था है और आज भी कई दृष्टियों से भारत में इसका स्थान अद्वितीय है।

इसके संस्थापक श्रीयुत मालाबारी स्त्री-शिक्षा के बड़े उत्साही समर्थक थे। स्त्रियों को शिक्षा देकर उन्हें स्वाधीनता प्रदान करने की इच्छा ही एक मात्र वह शक्ति थी, जो उनके जीवन में स्फूर्ति का सञ्चार करती थी। देश में भ्रमण करके भारतीय विधवाओं का दुःखमय जीवन और उनकी कारुणिक दशा उन्होंने अपनी आँखों से देखी थी और तभी से उन्होंने इनकी सेवा करना अपने जीवन का प्रधान कार्य बना लिया था। ऐसे कामों में जन-समुदाय की कट्टरता और अनुदारता के कारण स्वभावतः अनेक विघ्न-बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं, यही बात श्रीयुत मालाबारी के साथ भी हुई। उस समय वे स्त्रियों का सहवास-वय बढ़ा कर १२ वर्ष कराने का आन्दोलन कर रहे थे। उनके कार्य का घोर विरोध किया गया, परन्तु मालाबारी महोदय विघ्न-बाधाओं से विचलित होने वाले व्यक्ति नहीं थे। अपरिवर्तनवादियों के विरोध करने पर भी सन् १८९१ ई० में लड़कियों का सहवास-वय बढ़ा कर १२ वर्ष कर दिया गया। मालाबारी जी के हृदय में स्त्री-जाति के प्रति अगाध सहानुभूति थी। स्त्रियाँ ही राष्ट्र की सच्ची निर्माताएँ हैं, इस बात को उन्होंने बहुत अच्छी तरह समझा था और समझ कर इसे अपनी जीवन-क्रिया का एक अङ्ग बना डाला था। अपने जीवन में समाज-सुधार सम्बन्धी अनेक कार्य उन्होंने किए, परन्तु उन सभी कार्यों में स्त्री-

सेवा-सदन की छात्राएँ भोजन बनाना सीख रही हैं।

जाति की सेवा ही प्रमुख थी। सौभाग्यवश इस कार्य में श्रीयुत दयाराम गीदूमल जी, श्रीमती रमाबाई रानडे, श्रीमती जमनाबाई सकाई और दिलशेद बेगम नवाब मिर्ज़ा के समान सुयोग्य और उत्साही महिलाओं और महानुभावों से उन्हें प्रचुर सहायता मिली। अन्य कारणों में इन लोगों की सहायता और सहानुभूति भी एक कारण थी, जिससे श्रीयुत मालाबारी को अपने कार्यों में इतनी सफलता मिल सकी।

सेवा-सदन की स्थापना प्रधानतः इस उद्देश्य से हुई थी कि अमीर घरों की स्त्रियों को ग़रीब स्त्रियों के सम्पर्क में लाया जाय और इस प्रकार धनी महिलाओं में अपनी ग़रीब बहिनों की सेवा करने का भाव भरा जाय। इस काम में सेवा-सदन को काफ़ी सफलता मिली है। सेवा-सदन की एक शाखा की स्थापना पहले-पहल सन् १९०९ ई० में पूना में हुई थी। तब से पिछले बीस वर्षों में देश में इस ढङ्ग की अनेक संस्थाएँ खुल गई हैं, और वे सभी स्त्री-शिक्षा और समाज-सेवा के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य कर रही हैं। ऐसी संस्थाओं में बम्बई के सेवा-सदन का एक प्रमुख स्थान है, क्योंकि इस संस्था ने कई बातों में मार्ग-दर्शक का काम किया है। इस लेख द्वारा इसी संस्था का परिचय मैं 'चाँद' के पाठकों को देना चाहती हूँ।

बम्बई के सेवा-सदन का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत है। यह संस्था भिन्न-भिन्न प्रकार के कई कार्य कर रही है। परन्तु इन सभी कार्यों को मुख्यतः तीन विभागों में बाँट सकते हैं—शिक्षा-विभाग, शिल्प-विभाग तथा समाज-सेवा और चिकित्सा-विभाग। शिक्षा-विभाग के दो अङ्ग हैं—गृह-विद्यालय और नॉर्मल क्लास।

गृह-विद्यालय

(१) गृह विद्यालय (Home Educational Class) प्रधानतः ऐसी बड़ी उम्र की महिलाओं के लिए है, जिनका विवाह हो गया हो अथवा जो अन्य किसी कारण से साधारण स्कूलों में नहीं पढ़ सकती हों। इसीलिए इस विद्यालय का समय भी ऐसा रक्खा गया है, जो ऐसी महिलाओं के लिए सुविधाजनक हो, अर्थात् ११ बजे से ४ बजे तक। इसमें देशी भाषाओं में से मराठी, गुजराती और उर्दू पढ़ाई जाती है तथा अङ्गरेज़ी, इतिहास, भूगोल और गणित का साधारण ज्ञान कराया जाता है। इस विद्यालय की जो सब से बड़ी विशेषता है
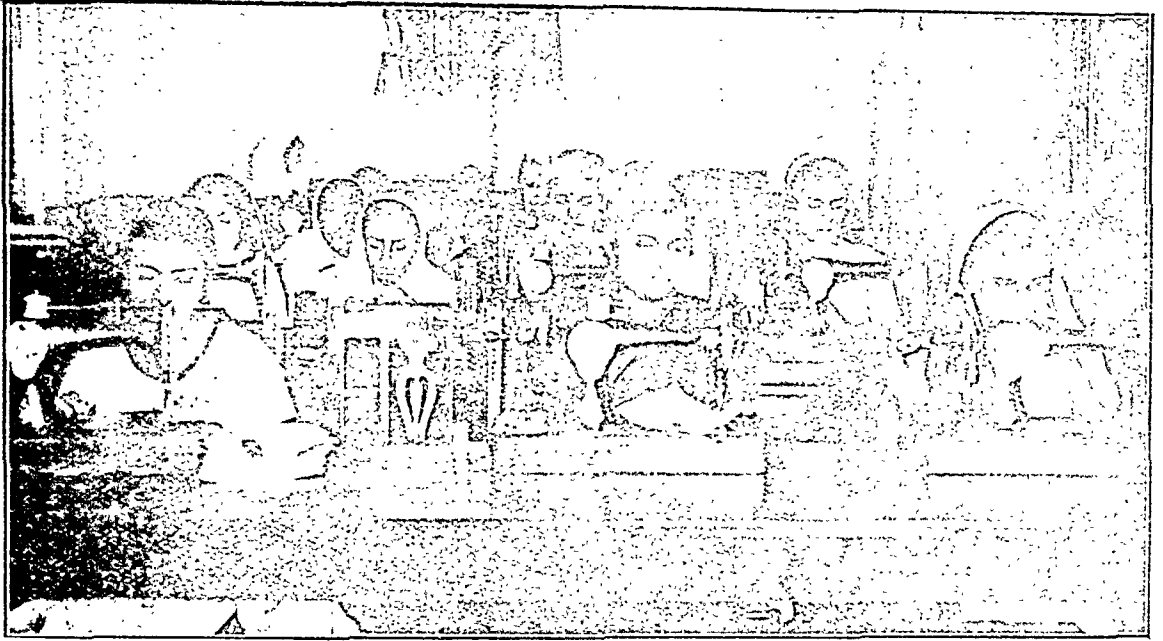
सेवा-सदन की छात्राएँ सिलाई का काम सीख रही हैं।

वह है घरेलू काम-धन्धों तथा अन्य उपयोगी कलाओं की शिक्षा। यहाँ सिलाई और क़सीदा, कपड़ा काटना तथा सीना, भोजन बनाना, कपड़े धोना और उन पर कलफ़ तथा लोहा करना, चित्रकारी तथा सङ्गीत आदि उपयोगी घरेलू शिल्प के अतिरिक्त प्रारम्भिक चिकित्सा, रोगियों की सेवा करना तथा स्वास्थ्य और सफ़ाई आदि वैज्ञानिक व्यवसायों की भी शिक्षा दी जाती है। विद्यार्थियों को इनमें से अपनी रुचि के अनुकूल विषय चुन लेने की स्वतन्त्रता है। इस विद्यालय की शिक्षा का प्रधान उद्देश्य यह है कि स्त्रियों को घर के काम-धन्धों में दक्ष बनाया जाय तथा उनके चरित्र का विकास करके उन्हें अपने नागरिक कर्तव्यों का पालन करने के योग्य बनाया जाय।

नॉर्मल क्लास

(२) नॉर्मल क्लास (Normal Classes) में अध्यापिकाएँ तैयार की जाती हैं तथा इसके द्वारा अध्यापिकाओं की दशा सुधारने का भी प्रबन्ध किया जाता है। आजकल स्त्री-शिक्षा के प्रचार में जो सब से बड़ी कठिनाई पड़ती है, वह सुयोग्य और सच्चरित्र अध्यापिकाओं की कमी है। यह संस्था अपने परिमित क्षेत्र में इस कमी को दूर करने की शक्ति भर चेष्टा कर रही है। यह क्लास सन् १९१४ ई० में खोला गया था। अब यह बढ़ते-बढ़ते एक ट्रेनिङ्ग कॉलेज बन गया है, जिसमें बम्बई के गवर्नमेण्ट महिला ट्रेनिङ्ग कॉलेज के सर्वोच्च कक्षा (Final Diploma Course) तक की शिक्षा दी जाती है। अब तक इस कॉलेज से शिक्षा पाकर कई सौ अध्यापिका निकल चुकी हैं, जिनमें से अधिकांश को बम्बई के म्युनिसिपल स्कूलों में स्थान मिला है। कहना न होगा कि अध्यापिकाओं की शिक्षा के लिए बम्बई में यह एक ही संस्था है। इस संस्था की विशेषता यह है कि यह केवल अध्यापिकाएँ ही नहीं तैयार करती, वरन उन अध्यापिकाओं को इस योग्य भी बना देती है कि वे स्त्रियों की उन्नति और स्त्री-जाति की सेवा सम्बन्धी सब प्रकार के कार्यों में भाग ले सकें। अध्यापिकाओं के मानसिक विकास के लिए समय-समय पर मैजिक लैण्टर्न द्वारा उपयोगी और मनोरञ्जक विषयों पर व्याख्यान देने का भी प्रबन्ध किया जाता है तथा अध्यापिकाओं का दल बना कर उन्हें नगर के महत्वपूर्ण स्थानों को दिखाया जाता है।

सेवा-सदन में कपड़ा धोने का काम सिखाया जा रहा है।

गृह-विद्यालय और नॉर्मल क्लास दोनों में मिल कर इस समय १६६ स्त्रियाँ शिक्षा पा रही हैं। ये दोनों ही कक्षाएँ बम्बई शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत हैं तथा दोनों को गवर्नमेण्ट से सहायता मिलती है।

शिल्प-विभाग

(३) शिल्प-विभाग (Industrial Department) में दस्तकारी की शिक्षा देकर स्त्रियों को इस योग्य बनाने का प्रयत्न किया जाता है कि वे स्वयं अपनी जीविका कमा सकें। आजकल प्रायः ऐसी स्त्रियाँ देखी जाती हैं, जो बहुत ही ग़रीब हैं तथा जिनका पालन-पोषण करने वाला कोई नहीं है। ऐसी स्त्रियाँ प्रायः आत्म-सम्मान खोकर या तो किसी सम्बन्धी के यहाँ रहने लगती हैं और उसके सिर का बोझ बन जाती हैं अथवा भीख माँग कर समाज के सिर पर अपने पालन-पोषण का बोझ लाद देती हैं। ऐसी ही स्त्रियों को स्वावलम्बी बनाने के लिए यह शिल्प-विभाग खोला गया है। इसमें कपड़े काटना और सीना, भोजन बनाना, मोज़े और गुलूबन्द आदि बुनना, कपड़े धोना और उस पर कलफ़ तथा लोहा करना, बेत का काम, बेल-बूटे काढ़ना आदि सिखाया जाता है। इस समय इस विभाग में २२५ से भी कुछ अधिक स्त्रियाँ शिक्षा पा रही हैं। अब तक इसमें से लगभग ३०० स्त्रियाँ शिक्षा पाकर निकल चुकी हैं, जिनमें से लगभग ६० स्त्रियाँ इस समय म्युनिसिपल तथा प्राइवेट स्कूलों में दस्तकारी की अध्यापिका हैं, बहुत सी ख़ानगी तौर पर दस्तकारी का काम सिखा कर अपनी जीविका कमाती हैं, तथा ४० के लगभग नर्स और दाई का काम सीख चुकी हैं। इन कामों के लिए सेवा-सदन को अब तक बम्बई, पूना, हुगली तथा लाहौर की शिक्षा, शिल्प तथा शिशुपालन सम्बन्धी प्रदर्शिनियों से तमग़े और प्रशंसा-पत्र मिले हैं।

अनाथ-गृह

(४) अनाथ-गृह (Home for the Homeless Women and Children) में अनाथ स्त्रियों और बच्चों
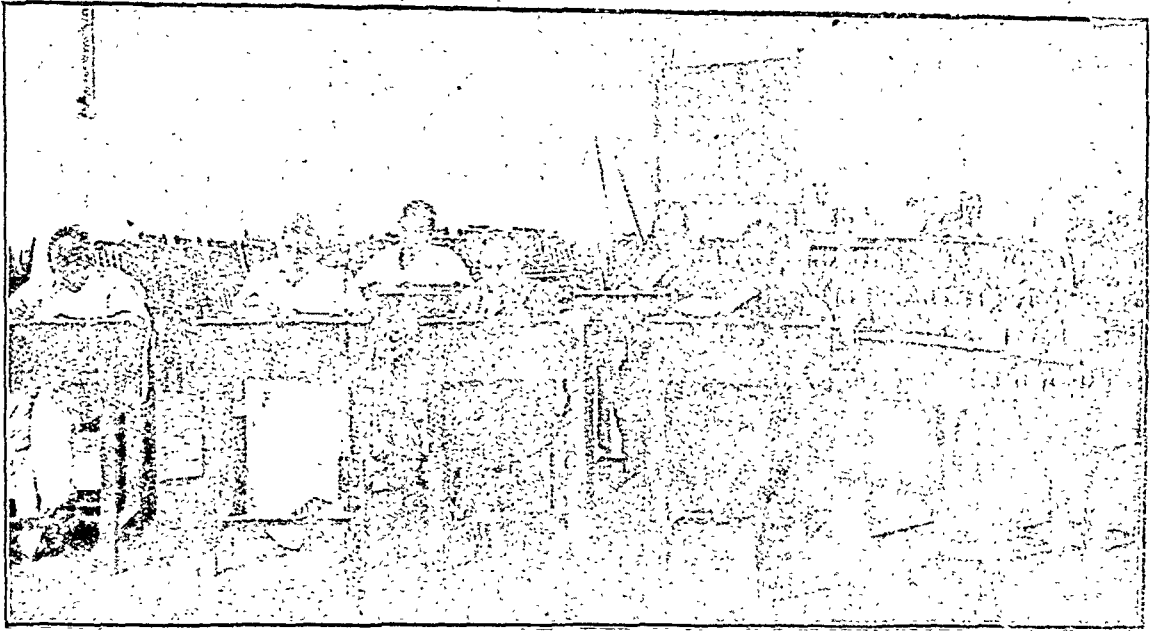
सेवा-सदन की डॉइङ्ग-क्लास

सेवा-सदन की छात्राएँ ड्रिल (क़वायद) कर रही हैं।

को रखने का प्रबन्ध है। इस समय ७० स्त्रियों और बच्चों को इस संस्था की ओर से मुफ़्त भोजन-वस्त्र और शिक्षा दी जा रही है। इन लोगों की व्यक्तिगत योग्यता तथा रुचि के अनुसार इन्हें उपरोक्त विभागों में अध्यापिका, नर्स या दस्तकारी-शिक्षक का काम सिखाया जाता है। जिन लोगों में पढ़ने-लिखने की या किसी प्रकार का मानसिक काम करने की योग्यता बिल्कुल नहीं होती उन्हें कोई घरेलू शिल्प सिखाया जाता है। हमारी सामाजिक बुराइयों तथा दरिद्रता के कारण हर साल अधिकाधिक संख्या में स्त्रियाँ और बच्चे इस अनाथ-गृह में शरण
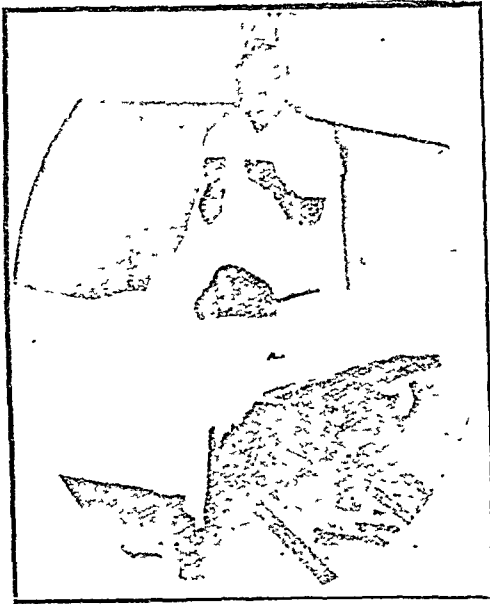
सेवा-सदन में रोगी-परिचर्या (नर्सिङ्ग) की व्यवहारिक शिक्षा दी जा रही है।

लेने के लिए आया करते हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश जगह की कमी होने के कारण सेवा-सदन के अधिकारियों को उन्हें वापस लौटा देना पड़ता है। इस समय इस अनाथ-गृह में अधिक से अधिक ८० व्यक्तियों के रहने का स्थान है और वह सब स्थान भरा हुआ है। 'चाँद' के पाठकों को यह जान कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि इस अनाथ-गृह में ज़ात-पाँत का बिल्कुल ख़्याल नहीं किया जाता। इस समय इसमें जो ७० स्त्रियाँ और बच्चे उनमें ४२ हिन्दू, १४ पारसी और ४ मुसलमान हैं।

यह सारी संस्था ही ऐसी है, जहाँ ज़ात-पाँत का कोई विचार नहीं किया जाता। इस समय सेवा-सदन में स्त्रियाँ और बच्चे सब मिल कर क़रीब ४०० व्यक्ति शिक्षा पा रहे हैं, जिनमें से केवल गृह-विद्यालय तथा नॉर्मल क्लास में १८५ हिन्दू, ४७ पारसी, ५ मुसलमान तथा १० क्रिश्चियन हैं। इसी प्रकार अन्य विभागों में भी सभी जातियों, सभी सम्प्रदायों और सभी धर्मों की स्त्रियाँ और बच्चे भरे हुए हैं।

समाज-सेवा और चिकित्सा-विभाग

(५) समाज-सेवा तथा चिकित्सा-विभाग (Social and Medical Department) भी बहुत उपयोगी कार्य कर रहा है। यहाँ शिक्षा पाने वाली नर्सों और दाइयों को साधारणतः एक वर्ष तक इस संस्था की अवैतनिक सेवा करनी पड़ती है। इसके बाद जिनकी इच्छा होती है, उन्हें सेवा-सदन की ओर से वेतन देकर रख लिया जाता है और वे ग़रीब तथा मध्यम श्रेणी के घरों में चिकित्सा करने के लिए भेजी जाती हैं। सेवा-सदन की नर्सें प्रायः बिना फ़ीस लिए ही ग़रीबों की सेवा करती हैं, और यदि कभी कुछ फ़ीस ली भी जाती है तो केवल नाम-मात्र की। नर्सों और दाइयों की आवश्यकता दिनोंदिन इस तरह बढ़ती चली जा रही है कि अब तो अपेक्षाकृत सम्पन्न घरों से भी दाइयों की माँग आती है और इन सब माँगों को पूरा करना बहुत ही मुश्किल हो जाता है। गर्भिणी तथा प्रसूता स्त्रियों की सेवा और परिचर्या कर सकने योग्य दाइयाँ तैयार करके तथा ग़रीबों से बिना फ़ीस लिए उनके घरों में दाइयाँ भेज कर सेवा-सदन वास्तव में समाज की एक बहुत बड़ी आवश्यकता पूरी कर रहा है। इस आदर्श संस्था की सेवाएँ यहीं तक परिमित नहीं हैं। इसकी परिचारिकाएँ जेलों का निरीक्षण करती हैं, स्कूलों, अनाथालयों और अस्पतालों में जाकर वहाँ के पीड़ितों की शुश्रूषा और सहायता करती हैं, तथा इसी प्रकार के और भी कितनी ही लोक-सेवा के काम करती हैं।

इन बातों से सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि इस संस्था के पास और भी अधिक साधन होते तो यह समाज के लिए कितनी अधिक उपयोगी हो सकती। बम्बई के एक आर्क-बिशप ने इसके विषय में कहा है कि यह पूरी संस्था "अत्यन्त

उपयोगी और अपने ढङ्ग की निराली संस्था है।" एक ऐसी उपयोगी और आदर्श संस्था को साधनों की कमी के कारण अपने कार्यों के विस्तार करने का अवसर न मिले, यह वास्तव में बड़े खेद की बात है। यों तो यह संस्था जितनी ही बड़ी तथा उपयोगी है, इसकी आवश्यकताएँ भी उतनी ही बड़ी तथा विविध प्रकार की हैं। परन्तु उनमें दो आवश्यकताएँ ऐसी हैं, जिनकी पूर्ति बहुत ही शीघ्र होनी चाहिए। इसके ट्रेनिङ्ग कॉलेज के साथ एक प्रैक्टिसिङ्ग स्कूल का होना बहुत ही ज़रूरी है। अब तक यहाँ की अध्यापिकाएँ एक म्युनिसिपल स्कूल में जाकर पढ़ाने का अभ्यास किया करती हैं, किन्तु अब इस प्रबन्ध से काम नहीं चल सकेगा। गवर्नमेण्ट ने इस संस्था को सूचना दी है कि तीन वर्षों के अन्दर यहाँ के ट्रेनिङ्ग कॉलेज के लिए एक प्रैक्टिसिङ्ग स्कूल का प्रबन्ध अवश्य हो जाना चाहिए। इस प्रकार का एक स्कूल चलाने के लिए कम से कम ३००) रु० मासिक ख़र्च की आवश्यकता है। इसके अलावे, यदि मकान-किराए आदि का हिसाब छोड़ दिया जाय, क्योंकि सेवा-सदन अपने वर्तमान मकानों में ही किसी तरह एक ऐसे स्कूल का प्रबन्ध कर लेगा, तो भी बेञ्च, कुरसियों, डेस्क, ब्लैक-बोर्ड, किन्डर गार्टन के सामान आदि के लिए लगभग ३,०००) रु० की आवश्यकता है। सेवा-सदन के छात्रावास में भी जगह की कमी है तथा अनाथ-गृह में अधिक व्यक्तियों के लिए प्रबन्ध होने की आवश्यकता है। अनाथ-गृह के लिए एक ज़मीन ले ली गई है, परन्तु धनाभाव के कारण उस पर मकान बनवाने का काम रुका हुआ है। इसकी बड़ी शीघ्र आवश्यकता है कि अनाथ-गृह के लिए अधिक स्थान और अधिक द्रव्य का प्रबन्ध किया जाय। इस गृह में शरण लेने आने वाले दीन-हीन बच्चों और दुःखिनी स्त्रियों को निराश करके लौटा देना कितना कठोर और कितना दुःखद कार्य है, इसको वही लोग समझ सकते हैं, जिन्हें कभी अपने हृदय के कोमल भावों को मसल कर ऐसा कठोर कार्य करने के लिए विवश होना पड़ा हो। समाज-सेवा के प्रत्येक हिमायती और स्त्री-शिक्षा के प्रत्येक प्रेमी का यह परम कर्तव्य है कि वह यथाशक्ति इस संस्था की कठिनाइयों को दूर करके देश और समाज की उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करे।

निस्सन्देह सेवा-सदन भारतवर्ष में अपने ढङ्ग की अकेली और आदर्श संस्था है। हमारा विश्वास है कि मानव जाति का प्रत्येक प्रेमी इस संस्था की उन्नति के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करेगा और ईश्वर से प्रार्थना करेगा कि यह संस्था देश और समाज की सेवा के लिए दिनों-दिन अधिकाधिक उपयोगी और शक्तिमान बन सके।

जिन देवियों अथवा महानुभावों को इस संस्था के साथ किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करना हो, उन्हें—मन्त्री, सेवा-सदन, गामदेवी, बम्बई नं० ७ के पते से पत्र लिखना चाहिए।

इसी झूठ में—इसी सत्य में—

[प्रो० रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०, 'कुमार']

पत्ते कहते थे समीर से अपने हाथ पसार—
"क्यों झकझोर रहे हो हम सब के शरीर सुकुमार?
दे सन्देश रहे हो किसका, हठपूर्वक सौ बार?
यह करते हो प्यार या कि करते हो अत्याचार?

सहते हैं अदृश्य हाथों का ऐसा कठिन प्रहार
किससे जाकर कहें तुम्हारा यह भीषण व्यवहार;"

"यह भीषण व्यवहार नहीं, यह तो है सरस दुलार—
कहाँ रखी है तुम्हें चाहने को मुझ सा सुकुमार?
जग के शब्दों में कहते हैं अरे, इसी को 'प्यार'।
यह आलिङ्गन-भाव, न समझो इसको कठिन प्रहार॥

इसी झूठ में, इसी सत्य में, डूबा है संसार।
जान न पाया हूँ अब तक किसको कहते हैं 'प्यार'॥

मनुष्य का हृदय

["मुक्त"]

क
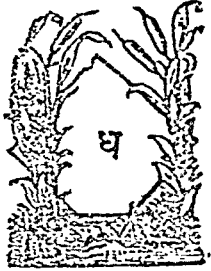
रित्री के वक्षःस्थल पर असाढ़ की पहली बूँदें झर पड़ीं, सुख-दुःख में समान रूप से झर पड़ने वाली स्नेहमयी नारी की आँखों की तरह। मिट्टी के साथ मिल कर उन बूँदों ने दिशाओं में एक तीव्र किन्तु सोंधी सुगन्ध भर दी। मेघ-मेदुर आकाश झम्पता हो उठा। परियों के देश वाले दैत्यों के समान आकाश में बादल गरज उठे। बीच-बीच में बिजली भी चमकने लगी, जैसे निराशा और बेबसी से भरे हुए हृदय में आशा की चीण-मलिन किरण कभी-कभी चमक उठती है।

यमुना अपने घर के बरामदे में खड़ी थी। उसकी सूनी आँखें आकाश में टकटकी लगाए हुए थीं। अपना एक हाथ उसने बाँस के खम्भे में लपेट रक्खा था, दूसरा कमर पर रक्खे हुए वह चुपचाप ताक रही थी। जैसे बरसों की कोई भूली बात रह-रह कर उसे याद आ रही हो। जैसे अतीत की कोई करुण-स्मृति बरबस उसके मन-प्राण पर अधिकार जमा रही हो और उसी स्मृति के दारुण आघात से उसका जी मसोस उठता हो, हृदय विह्वल हो उठता हो।

उसे मालूम पड़ने लगा मानो उसका सारा घर, सारा संसार, उसके हृदय की तरह ही सूना हो और स्पन्दनहीन आकाश में छाए हुए घने-काले मेघों की तरह उसके हृदय के आकाश में भी चिन्ता के बादल छा गए हों। आकाश में गरजने वाले बादलों की भाँति ही उसके हृदय में भी कोई अज्ञात वेदना हाहाकार कर रही हो। किन्तु रह-रह कर चमक उठने वाली बिजली के समान उसके हृदय में प्रकाश की कोई रेखा तो नहीं चमकती थी। इस असमानता का कारण कौन बतला ?

...ा. पर नीम का एक पुराना पेड़ था। सूखी हुई पीली पत्तियाँ गिर कर इधर-उधर फैल गई थीं। पेड़ के नीचे एक मरखही गैया बँधी थी। पास ही उसका बछड़ा उछल-कूद रहा था। दालान के फूस वाले छप्पर पर कद्दू-करेले की बेलें फैली हुई थीं। थोड़ी दूर पर एक बरसाती नदी बह रही थी। गाँव के कितने ही बड़े-छोटे लड़की-लड़के नावों पर बैठ कर और बीच धार में जाकर शोर मचा रहे थे। धीरे-धीरे धुँधला अन्धकार धरती पर फैल रहा था।

यमुना का ध्यान इन सब बातों की ओर न था। वह एकान्त मन से चुपचाप आकाश की ओर देखती रही। उसे मालूम पड़ता था मानो चितिज के अन्तराल में अन्धकार की स्याही से नियति ने उसके कठोर दुर्भाग्य की करुण कहानी लिख दी है। वह उसे पढ़ने की सतत चेष्टा कर रही थी, किन्तु उसे कुछ न दीख पड़ता था। सारा संसार उसे अन्धकारमय जान पड़ता था। वह अपने उन्माद में विभोर थी। उसका हृदय अथाह में था, चिन्ताएँ प्रवाह में।

प्रकृति ने उन्मादिनी का रूप धारण किया था। अजस्र वर्षा हो रही थी। अनवरत झरझर शब्द से धरित्री मुखरित हो उठी थी। दूर के धूमिल तरु-शाखाओं पर तीर की तरह गिरने वाली वर्षा की धाराएँ बड़ी भली मालूम होती थीं। यमुना अपनी सूनी आँखों से अनन्त शून्य की ओर चुपचाप केवल देख रही थी।

मस्तक पर अन्तहीन नील-सागर से फैले हुए आसमान की ओर देखते ही देखते यमुना की आँखें छलछला उठीं। अतीत की एक करुण-अधीर स्मृति ने उसका हृदय मथ डाला। वह ऐसी ही एक सन्ध्या थी। दिनभर रोते-रोते यमुना की आँखें सूज गई थीं। सन्ध्या को उसके पति का शव दाह करके पड़ोसियों के साथ जब उसका छोटा भतीजा नरेन्द्र लौट आया, उस समय यमुना अर्द्धचेतनावस्था में पड़ी थी। टूटे हुए दरवाज़े के घर्घर शब्द के साथ घर में घुस कर नरेन्द्र ने पुकारा—चाची!

लेकिन चाची उत्तर देने के लिए उस समय होश में

न थी। नरेन्द्र जाकर उसकी गोद में छिप गया। चाची को पुकार कर, हिला-डुला कर भी जब उसने कुछ उत्तर न पाया, तो वह अधीर होकर रो पड़ा। यमुना ने उसके गर्म-गर्म आँसुओं के स्पर्श से चौंक कर देखा, वह न जाने कब से उसकी गोद में लोट-लोट कर रो रहा है। नरेन्द्र को गोद में ज़ोर से दबा कर यमुना रो पड़ी। नरेन्द्र भी रोया। कौन जानता है, अविरल प्रवाहित होने वाला क्रन्दन का वह वेग कब शान्त हुआ ?

उसके बाद नरेन्द्र को ही लेकर यमुना अपनी सारी दुःख-विपत्ति भूल गई। नरेन्द्र बचपन का मातृ-पितृ-हीन था। चाचा-चाची के आदर-दुलार की छाया में ही वह बड़ा था। अपने स्नेह का एक आधार खोकर उसने यमुना की सारी स्नेह-ममता पर अधिकार कर लिया। यमुना भी अपने हृदय की सारी माया-ममता उस पर ढाल कर अपने मन को भुलाने की चेष्टा करने लगी।

कुछ दिन इसी प्रकार बीते। यमुना का यौवन खिल उठा था। उसके हृदय का प्रेम-निर्झर शत-शत धाराओं में प्रवाहित हो रहा था। उसे बलपूर्वक संयत करके नरेन्द्र पर ही अपना सारा प्यार ढाल कर वह अपने को ठगने की चेष्टा कर रही थी, भुलाने का प्रयत्न कर रही थी। वह शायद कुछ समय तक इसी प्रकार अपने को धोखा देती भी रहती और इस सुख को ही अपने जीवन का आधार मान कर सन्तोष कर लेती, पर विधाता से उसका इतना सुख भी न देखा गया। एक दिन नरेन्द्र भी उसे रोती-कलपती छोड़ कर सदा के लिए किसी चिरसुन्दर देश की ओर प्रस्थान कर गया।

यमुना के स्नेह का रहा-सहा आधार भी टूट गया। उसका उच्छृङ्खल प्रेम-प्रवाह बाँध तोड़ कर प्रवाहित हो उठने के लिए अधीर-उन्मत्त हो उठा। यमुना पागल सी होकर चारों ओर देखने लगी—अपने यौवन का अरक्षित वैभव लेकर, पाप, सन्देह और कालिमा से भरी हुई दुनिया में वह कहाँ जायगी ? क्या करेगी ? हाय, वह कैसी विवश है, कितनी असमर्थ !!

यमुना अतीत की इन्हीं दुखद स्मृतियों में विभोर हो रही थी। धीरे-धीरे दरवाज़ा खोल कर एक सुन्दर युवक ने अन्दर प्रवेश किया। यमुना ने उसे देखा नहीं। अन्दर आकर वह युवक क्षण भर ठिठका, फिर बाहर निकल जाने को उद्यत हुआ। इसी समय यमुना ने उसे देख लिया। पुकारा—कौन है ?

"मैं हूँ भौजी !"—मनोज ने धीरे से उत्तर दिया।

"क्या है मनोज ? लौटे क्यों जा रहे हो ?"

"यों ही"—मनोज को कुछ उत्तर न सूझ पड़ा। उसने रुक-रुक कर कहा—"दुनिया की माँ कहाँ गई भौजी ? तुम अकेली हो क्या ?"

"हाँ। दुख के दिनों में कौन किसके पास रहता है ?"

एक किवाड़ खोल कर मनोज खड़ा था। वह वैसा ही खड़ा रहा; न बाहर जा सका, न अन्दर ही आ सका। यमुना ने कहा—वैसे खड़े क्यों हो मनोज ? आओ, बैठो।

"अब चलूँगा भौजी, साँझ हो गई है।"

"तो क्या हुआ ?"

"साँझ को क्या तुम्हारे पास अकेले बैठना अच्छा होगा ?"

"क्यों भैया, बुरा क्या होगा ?"

"बुरा तो कुछ नहीं, लेकिन × × ×"

"लेकिन क्या ? इस पानी-आँधी में कहीं जाना न होगा। आकर चुपचाप बैठो।"—यमुना ने अधिकारपूर्वक कहा। मनोज यमुना की आज्ञा की अवहेलना न कर सका।

अँधेरा सघन हो उठा था। बारिश हो रही थी। बीच-बीच में बिजली भी चमक उठती थी। यमुना ने कहा—आज यहीं खाओगे। बैठो, मैं रसोई-पानी का इन्तज़ाम करूँ।

मनोज चुपचाप एक खटिया पर बैठ गया। यमुना घर के काम-धन्धे में लगी।

ख

यमुना पूरियाँ उतारती और मनोज खाता जाता था। आज बहुत दिनों के बाद किसी को इस तरह बैठा कर खिलाते हुए यमुना का हृदय आनन्द से हिण्डोले की तरह झूल रहा था। कौन जानता है, मनोज को इस प्रकार खिला कर वह किस सुख और तृप्ति का अनुभव कर रही थी ?

यमुना ने कहा—जब मैं छोटी थी तो भविष्य-जीवन के बारे में न जाने कितनी बातें सोचा करती थी; किन्तु

उस समय कौन जानता था, सोची हुई वे बातें जुआरी के पासे की तरह उलट जायँगी? सुख के सपने यौवन की भाँति नष्ट हो जायँगे और अन्त में यह दिन भी देखना पड़ेगा!!

मनोज ने देखा, यमुना की आँखों में आँसू भर आए हैं और पुतलियाँ उसमें तैर रही हैं—जैसे अन्तहीन नील-समुद्र में बड़े-बड़े जहाज़ तैरा करते हैं। यमुना उसी की ओर देख रही थी। दोनों की चार आँखें हुईं। दिल में एक सनसनी का अनुभव हुआ—जैसे बिजली का तार छू गया हो। टप-टप करके आँसू की दो बूँदें यमुना के गाल पर गिरीं, फिर बह कर ज़मीन चूमने लगीं—जैसे लड़ाई के मैदान में कटे हुए सिर ज़मीन चूमा करते हैं।

यमुना ने कहा—जब जो कुछ भी मैंने सोचा है, ठीक उसका उलटा ही आज तक होता आया है। एक बार सोचा, अब कुछ सोचूँगी ही नहीं, लेकिन यही सोचना क्यों ठीक उतरता? जब न सोचने का मनसूबा बाँधा तो इतना सोचने लगी कि मालूम पड़ा, सोचते ही सोचते मैं पागल हो जाऊँगी। कौन जानता था, मनुष्यों के कोलाहल से गूँजता रहने वाला शहर छोड़ कर देहात में आना पड़ेगा? प्यारे-प्यारे भाई-बहिनों और माँ-बाप से भरा-पुरा घर छोड़ कर इस कुटिया में वनवास करना पड़ेगा? ओह!

यमुना के मुँह से एक लम्बी उसाँस निकल गई। मनोज ने उसकी व्यथा का अनुभव किया—एक बार करुणाभरी आँखों से उसकी ओर देखा।

यमुना ने कहा—तुमने रामायण की कथा पढ़ी है मनोज?

"हाँ।"

"वनवास सीता जी को भी हुआ था, लेकिन फिर भी वह मुझसे सुखी थीं—उनका हृदय, उनका सर्वस्व, उन्हीं के साथ था। मेरा तो सब कुछ जैसे कोई निकाल ले गया है।"

"लेकिन दूसरी बार भौजी! एक बार फिर तो उन्हें वनवास करना पड़ा था? उस समय की उनकी हालत सोचो!"

"उस समय भी वे मुझसे सुखी थीं—गोद में दो लाल थे, सिर पर महर्षि वाल्मीकि। मेरे कौन है? अन्तहीन सूनेपन ने मेरा जीवन ढक रक्खा है।"

मनोज ने सोचा—सच ही तो है, इस संसार में यमुना का कौन है?

मनोज की थाली में पूरियाँ रखती हुई यमुना ने पूछा—तुम्हारा कॉलेज कब खुलेगा मनोज?

"अभी देर है—शायद महीने भर बाद।"

"हूँ।"

कड़ाई से उतार कर अलग रखने के बदले सारी पूरियाँ यमुना ने मनोज की थाली में डाल दीं। घबराकर हाथों से रोकता हुआ मनोज बोला—हाँ, हाँ, यह क्या कर रही हो भौजी? मैं कितना खाऊँगा?

"न खाओगे? अच्छा, न खाना, मैं खा लूँगी।"

"मेरा जूठा?"

"जूठा? हाँ, जूठा ही तो! आज यही खाऊँगी।"

मनोज यमुना का मुँह ताकने लगा—भौजी को यह क्या हो गया है?

हाथ-मुँह धोकर मनोज ने कहा—अब चलूँगा भाभी, बड़ी देर हो गई।

"देर? हाँ, देर तो हो गई। पान न खाओगे?"

"खिला दो। नेकी में क्या पूछना?"

"ठहरो।"

चूल्हे पर से कड़ाई उतार कर यमुना उठ खड़ी हुई। मुँह पर मोती की तरह खिली हुई पसीने की बूँदों को आँचल से पोंछ लिया, फिर पान बनाने लगी। मनोज चुपचाप सब देखता रहा।

पान बना कर यमुना ने एकदम मनोज के मुँह में डाल दिया। मनोज विचलित हुआ। यमुना सिहर उठी। हारी हुई, थकी हुई सी, बरामदे का खम्भा पकड़ कर वह खड़ी हो गई। मनोज जल्दी से उठ कर दरवाज़े की ओर बढ़ा।

यमुना ने कहा—अब जा ही रहे हो मनोज?

"हाँ भौजी, जाता हूँ।"

"जब तक यहाँ रहना, कभी-कभी इधर भी भूल जाया करना। देखते हो मैं कितनी अकेली हूँ?"

"अच्छा, आऊँगा।"

मनोज जाने लगा। यमुना ने रोक कर पूछा—कब आओगे?

"कभी।"

"कभी नहीं, ठीक वक्त बतलाओ?"

"जब कहो, आऊँ।"

"कल आना।"

"कल ? कल तो न आ सकूँगा भौजी !"

"तो परसों—"

"हाँ, परसों आ सकता हूँ।"

"ज़रूर आना।"

"अच्छा।"

यमुना को और कुछ कहने का मौक़ा न देकर मनोज तीर की तरह अँधेरे में घुस गया।

रात अधिक हो आई थी। मनोज के चले जाने पर दरवाज़ा खोल कर देर तक यमुना उस सघन अन्धकार में आँखें गड़ा कर देखती रही।

ग

घोर अन्धकार में, मनोज तेज़ी से आगे बढ़ा जा रहा था। उसे कहाँ जाना है, वह कहाँ जा रहा है, इसका उसे कुछ पता न था। मन्त्र-मुग्ध सर्प की भाँति सिर झुकाए वह केवल अपने पथ पर अग्रसर हो रहा था। उस समय अनेक प्रकार की भावनाओं से उसका माथा चक्कर खा रहा था। भ्रान्त, उन्मत्त होकर वह एक साथ ही अनेक बातें सोच-सोच कर पागल हो रहा था।

अँधेरी रात में वृक्षों के पत्ते सर-सर आवाज़ कर रहे थे। दूर से समस्वर में उठ कर आती हुई मेढकों की टर्र-टर्र आवाज़ कानों में गूँज रही थी—झिल्ली की झनकार झनझना रही थी। सहसा एक वृक्ष की जड़ में पैर फँस जाने से मनोज धरती पर गिर पड़ा। ईंट का एक नुकीला टुकड़ा सिर में धँस गया। रक्त की धार बह चली। घुटने और हथेलियों में भी गहरी चोट लगी थी। उसका सिर घूम गया। क्षणभर के लिए वह बेहोश होकर धरती पर गिर पड़ा।

मनोज को जब होश आया, उस समय रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। तमोमयी रजनी के अञ्चल में हीरों के समान तारे झलमला रहे थे। एक नीरव-निस्तब्धता से प्रकृति का हृदय भर उठा था। मेढकों और झिल्लियों का कर्ण-कटु शब्द रुक गया था। पूर्व-आकाश में शुक्र तारा उग आया था। एक अलस मन्थरता वायु के वेग में भर रही थी। मनोज ने अनुभव किया, उसका शरीर टूट रहा है, नस-नस में दुर्बलता व्याप्त हो रही है। चेतना लुप्त हो रही है। मालूम पड़ता है, जैसे वह कोई घोर दुःस्वप्न देख कर उठा है।

मनोज ने इधर-उधर टटोल कर देखा—कँकरीली ज़मीन थी, किसी पुराने वृक्ष की जड़ चारों ओर फैली हुई थी। धरित्री पर फैला हुआ अन्धकार उस वृक्ष के नीचे और भी घनीभूत हो उठा है। मनोज को भय मालूम पड़ा। उसने उठने की चेष्टा की, मगर उठ न सका। बड़ी दुर्बलता थी, बलपूर्वक वह हाथ भी न उठा पाता था। सिर ऊँचा करके उसने एक बार चारों ओर देखा, फिर हताश होकर अपने अवश शरीर को ज़मीन पर डाल दिया। उस समय अपनी विवशता और शक्ति-हीनता देख कर उसे रोना आ रहा था। रोकते रहने पर भी उसकी आँखों से आँसू के सोते बह चले।

धीरे-धीरे पूर्व गगन की खिड़की खोल कर उषा ने अपनी लजीली आँखों से झाँका। सूर्य-किरणों ने धरित्री पर धूप की सुनहली चादर तान दी। उन अरुण-कनक किरणों की डोरी से गुम्फित होकर ओस की रजत-बूँदें चमचमा उठीं। मनोज भी प्रातःकालीन वायु के झोंकों से बल सञ्चय करके धीरे-धीरे उठ खड़ा हुआ।

घ

एक-एक करके कई दिन बीत गए, किन्तु मनोज न आया। यमुना बड़े असमञ्जस में पड़ी। सोचने लगी कि क्या हुआ जो वादा करके भी मनोज नहीं आया। वह तो ऐसा नहीं था। वह फिर सोचती, अब तक नहीं आया तो आज ज़रूर आवेगा। किन्तु फिर भी मनोज की कुछ ख़बर न मिलती। धीरे-धीरे यह प्रतीक्षा यमुना के लिए असह्य हो उठी। एक—एक बार वह मनोज से मिलने के लिए, उसे एक बार देख लेने के लिए अधीर हो जाती, विह्वल हो जाती थी। वह खोई सी घर-आँगन में इधर-उधर फिरा करती थी।

अनेक बार वह सोचती—क्यों मनोज के प्रति मेरा इतना आकर्षण है? उसके प्रति सहसा क्यों मेरा मन इस प्रकार की अभावित ममता से भर गया है? मनोज को आज से नहीं, वह तब से जानती है, जब एक दिन छोटी अवस्था में मातृ-पितृ-हीन होकर वह यमुना के दरवाज़े पर आ बैठा था। उस समय यमुना भी छोटी ही

थी। दोनों ही प्रायः समवयस्क रहे होंगे। उस समय उसके स्वामी जीवित थे। मातृ-पितृ-हीन उस अनाथ बालक को देख कर उसी समय उसका कोमल हृदय करुणा, प्रेम और सहानुभूति से भर गया। किन्तु कौन कह सकता है इस नवीन आकर्षण ने उसके हृदय की अवस्था को कितना डाँवाडोल कर दिया था?

लगातार कई दिनों तक प्रतीक्षा करने के बाद भी जब मनोज का कुछ पता न चला तो यमुना अधीर हो उठी। एक दिन उसके हृदय का बाँध टूट गया, धैर्य अपनी सीमा अतिक्रम कर गया, वह मनोज की ख़बर पाने के लिए अस्थिर हो गई।

उसने स्वयं ही मनोज के घर जाने का सङ्कल्प किया और वह सङ्कल्प इतना दृढ़ था, इतना प्रबल कि लोक-निन्दा और यश-अपयश की बात वह प्रायः भूल सी गई। इतनी दूर तक सोचने-विचारने का उसे अवकाश ही न मिला। वह मनोज के घर की ओर चल पड़ी।

रास्ते में उसके पैरों के नीचे पड़ कर सूखे पत्ते खड़-खड़ आवाज़ कर उठते थे, पुरवैया हवा का सनसनाता हुआ झोंका इधर से उधर निकल जाता था, आसमान में बादल गरज उठते थे, किन्तु इन सबों की ओर ध्यान देने का उसे अवकाश न था। अपने साथ ही साथ दुनिया को भूल कर वह आगे बढ़ती गई। मनोज के दरवाज़े पर पहुँच कर जब उसने किवाड़ों पर थपकी दी तो वे फट-फट करके खुल गए। यमुना भीतर चली गई।

आँगन पार करके मनोज के पास तक पहुँचने के पहले ही, क्षण भर में यमुना के मन में सौ-सौ बातें घूम गईं। वह सोचने लगी—अगर मनोज कहीं मर रहा हो, उसे दवा तक देने वाला कोई न हो, पानी-पानी चिल्लाते-चिल्लाते उसका गला सूख गया हो, भूख-प्यास से प्राण छटपटा रहे हों, वह किस रूप में मनोज को देखेगी? वह अब तक चुपचाप क्यों बैठी रही? क्यों नहीं मनोज की खोज-ख़बर लेने आई? कह कर भी जब वह इतने दिनों तक यमुना के घर नहीं गया तो ज़रूर ही कोई ख़ास बात होगी—शायद वह कोई भयानक यन्त्रणा भोग रहा हो, शायद उसे कोई बड़ी तकलीफ़ हो गई हो; वह केवल हड्डी का एक साँचा रह गया हो और चारपाई पर लेटा-लेटा किसी के आने की प्रतीक्षा में दिन-रात बिता रहा हो!! ओह!!!

बहुत सोचने के बाद उसे मालूम पड़ा कि छिपने की इस भावना के अन्तराल में केवल लोकापवाद का भय छिपा हुआ है। लोक तो मनुष्य का हृदय नहीं देखता न, वह केवल कार्य का बाहरी रूप देखता और उसी पर अपना फ़ैसला दे देता है। वह फ़ैसला कहाँ तक न्यायसङ्गत और उचित होगा, यह सोचने की बात है।

मनोज बरामदे में चारपाई पर पड़ा हुआ था। उसके घाव पक गए थे और उनमें असहनीय पीड़ा हो रही थी। इधर कई दिनों से उसे ज्वर भी आने लगा था। जब ज्वर का वेग कुछ कम होता, उस समय सुस्त पड़ा-पड़ा वह अनेक प्रकार की उधेड़-बुन के ताने बुना करता था; किन्तु जब ज्वर का वेग तीव्र होता, वह बेहोश हो जाता और अनाप-शनाप बका करता था।

उस समय भी उसे तीव्र ज्वर चढ़ आया था। वह रह-रह कर चिल्ला उठता था—अरे! कोई मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो। बड़ी पीड़ा है, बड़ी जलन! ओह!!

चिल्लाहट सुन कर यमुना मनोज के पास दौड़ गई। सिरहाने की पटिया पर बैठ कर उसने मनोज के सिर पर हाथ रक्खा—वह तत्ते तवे-सा जल रहा था। "ओह" कह कर उसने हाथ खींच लिया, फिर आँचल से उसके हाथ-पैर मलने लगी।

कई दिनों के बाद ज्वर उतर गया, घाव धीरे-धीरे सूख चले। मनोज ने अपेक्षाकृत स्वस्थ होकर आश्चर्य से यमुना की ओर देखा। कहा—तुम यहाँ कैसे चली आईं भौजी?

"न जाने कैसे? शायद कोई खींच लाया।"—यमुना ने उत्तर दिया।

"कौन?"—आश्चर्य से मनोज ने पूछा।

"अपने दिल से पूछो।"—मनोज की ओर देख कर यमुना मुस्कराई। मनोज ने कृतज्ञता से सिर झुका लिया।

उस समय दिया-बत्ती नहीं हुई थी, लेकिन अँधेरा हो गया था। चारपाई पर लेटा-लेटा मनोज चुपचाप आसमान की ओर देख रहा था। वह सोचने लगा—यमुना क्यों मुझे इतना चाहती है? मेरे दुख से क्यों

इसे दुख होता है ? क्यों यह मेरे लिए अपने सुख-स्वास्थ्य की चिन्ता छोड़ कर दिन-रात एक कर रही है ? मेरा क्या मोल है ? गाँव में इतने लोग तो हैं, लेकिन किसी को मेरी कोई चिन्ता नहीं, कोई पूछने भी नहीं आता कि अच्छे हो या मर गए ; लेकिन यमुना को ही इतनी चिन्ता क्यों है ?

बहुत सोच कर भी मनोज कुछ समझ न सका। उसने मुँह फेर कर ऊँची साँस ली। यमुना ने इसे लक्ष्य किया। दौड़ कर पास आ गई। बोली—क्या है मनोज ?

"कुछ तो नहीं।"

"*क्या सोच रहे हो ?*"

"जो सोचता हूँ, वह समझ नहीं पाता ; तुम्हें क्या बताऊँ ?"

यमुना ने फिर कुछ न पूछा। खटिया के पास ही एक टूटा हुआ मोढ़ा पड़ा था, वह उसी पर बैठ गई। उसने मनोज के लम्बे-लम्बे बालों में उँगलियाँ उलझा दीं, फिर सिर पर हाथ फेरने लगी। मनोज ने एक अपूर्व सुख का अनुभव किया। आप ही आप उसकी आँखें बन्द हो गईं।

सिर पर हाथ फेरते हुए यमुना ने पूछा—दर्द हो रहा है मनोज, दबा दूँ ?

"हाँ।" मनोज ने बिना समझे-बूझे कह दिया, लेकिन उसे मालूम था कि उसके सिर में दर्द नहीं है। दर्द तो नहीं है, किन्तु मनोज इस सुख का लोभ भी नहीं छोड़ सकता।

यमुना मनोज का सिर दबाने लगी।

एक दिन सन्ध्या को मनोज से यमुना ने पूछा—क्या खाओगे मनोज ?

"आज तो कुछ खाने की इच्छा नहीं है।"

"कुछ नहीं ? थोड़ा-सा दूध पी लेना, गरम किए देती हूँ।"

"देखा जायगा।"

यमुना ने देखा, मनोज के उत्तर में अस्वीकृति का भाव नहीं था। वह दूध गरम करने चली गई। थोड़ी ही देर बाद गरम दूध लेकर वह फिर मनोज के पास आ पहुँची। बोली—पी लो न ! फिर ठण्डा हो जायगा।

"तुम कुछ न खाओगी भौजी ?"

"मैं ? कुछ खा लूँगी।"

"क्या ?"

"देखा जायगा।"

"भौजी, थोड़ा दूध तुम भी पी लो।"

"अरे नहीं, मैं अपने लिए दो रोटी सेंक लूँगी।"

"तुम दूध न पियोगी तो मैं भी न पिऊँगा। याद रखना।"

बहुत ज़िद करने पर यमुना ने अपने लिए भी एक गिलास में थोड़ा दूध निकाल लिया। बाक़ी दूध में से कुछ मनोज ने पिया, कुछ कड़ाही में ही रह गया। यमुना ने भी अपना हिस्सा पी लिया, फिर पूछा—अब यह *इतना क्या होगा ?*

"तुम पी लो।"

"अब मैं नहीं पीती।"

"तब फेंक दो, मुझसे तो न पिया जायगा।"

लाचार होकर यमुना ने अपने गिलास में दूध ढाल लिया, किन्तु सब पी न सकी। थोड़ा सा दूध जब बच रहा तो गिलास रख कर वह दरवाज़ा बन्द करने के लिए उठ गई।

एकाएक मनोज की इच्छा हुई कि वह यमुना के गिलास का बचा हुआ दूध पी जाय। उसने गिलास उठा लिया, एक क्षण के लिए भी उसे कुछ सोचने का अवकाश न मिला।

जमुना दरवाज़ा बन्द करके जब लौटी तो उसने देखा, गट-गट करके मनोज उसके जूठे गिलास का दूध पी रहा है। वह सिहर उठी। बोली—हाय ! तुमने यह क्या किया मनोज ?

"क्या ?"

"जान-बूझ कर क्यों उस कोठरी में आग लगाते हो, जो ज़रा सी गर्मी पाकर ख़ुद ही भभक उठने के लिए उतावली हुई रहती है ?"—यमुना ने अपने हृदय की ओर इशारा किया। अपराधी की भाँति अवाक् होकर मनोज चुपचाप ताकता रहा।

यमुना कुछ सँभली। बोली—"इस चोरी की क्या ज़रूरत थी ? माँगते तो थोड़ा दूध तुम्हें और न मिल जाता ?" एक रहस्य भरी मुस्कराहट उसके अधरों पर खेल गई। मनोज कुछ आश्वस्त हुआ।

यमुना पङ्खा झलने लगी। कुछ ही देर में मनोज गहरी नींद सो गया।

मनोज के सो जाने पर अपने प्रति एक तीव्र धिक्कार के भाव से यमुना का हृदय भर गया। उसने सोचा—"हाय! मैं कहाँ जा रही हूँ? मनोज ने मेरी क्या दशा कर रक्खी है? इस पथ का अन्त कहाँ होगा?"

"मनोज के लिए ही सब कुछ छोड़ा—घर-द्वार, लोक-लज्जा और यश-अपयश की चिन्ता भी; किन्तु जब उसके पास जाना चाहती हूँ तो बरबस एक अदृश्य शक्ति मेरे-उसके बीच में अन्तराल बन कर खड़ी हो जाती है। जब दूर हटना चाहती हूँ तो कोई आकर्षण बलपूर्वक खींच कर उसमें मिला देने, उसके साथ एकाकार कर देने की चेष्टा करता है। ओह! यह परिस्थिति कितनी दारुण है, कितनी अवाञ्छनीय!!"

एक बार सोए हुए मनोज की ओर उसने देखा। सारा विवेक भूल गई। उन्मत्त होकर उसने मनोज को बलपूर्वक अपनी भुजाओं में कस लिया।

च

"लोग क्या कहेंगे भौजी?"

"क्या?"

"हम दोनों एक साथ रहते हैं, यह बात क्या समाज सह सकेगा?"

"तुम सह सकोगे?"

"लेकिन उसका मूल्य ही क्या है?"

"सब कुछ है—मैं पूछती हूँ।"

"मैं तो सब सह सकता हूँ, लेकिन × × ×"

"तुम अगर सह सकते हो तो समाज झख मारेगा, सहेगा। वह क्या तुमसे अलग है?"

"इस बात को सभी लोग इसी तरह तो नहीं देखते न भौजी?"

"न देखें। तुम चाहते क्या हो—मैं तुम्हारे घर से चली जाऊँ?"

यमुना झटपट उठी और दरवाज़े की ओर बढ़ी। दौड़ कर मनोज ने रास्ता रोक लिया। कहा—"तुम नाराज़ होकर मुझे समझने में ग़लती न करो भौजी! तुम्हें मेरी शपथ है, आगे पैर न बढ़ाना।" कातर आँखों से उसने यमुना की ओर देखा।

यमुना पिघली। बोली—तुम रहने भी न दोगे, जाने भी नहीं। मरने भी न दोगे, जीने भी नहीं। ओह! यह कैसी लीला है मनोज!

कातर भाव से मनोज फिर भी चुपचाप ताकता रहा।

यमुना ने कहा—"तब कहो, 'दोनों तरफ़ है आग बराबर लगी हुई', क्यों?" यमुना गम्भीर भाव से हँसी।

"कैसी आग भौजी? कौन आग दोनों तरफ़ बराबर लगी हुई है?"

"ओ हो! तुम कितने नासमझ हो—जैसे दुधमुँहा बचा!!"

छ

मनोज ने स्पष्ट देख पाया कि यमुना उसे प्यार करती है। उसे यह भी दीख पड़ा कि वह स्वयं भी धीरे-धीरे उसी पथ पर अग्रसर हो रहा है; किन्तु क्या यह उचित है? अपने लिए नहीं तो कम से कम यमुना के कल्याण के लिए, वह यमुना के साथ ही साथ, सात पुरखों का घर-द्वार, गाँव तक सदा के लिए छोड़ देगा। जो यमुना उसे इतना प्यार करती है, उसके हित के लिए क्या वह इतना त्याग भी न कर सकेगा? अगर न कर सकेगा तो उसके समान कृतघ्न और कौन होगा? नहीं, वह यमुना के लिए सब कुछ करेगा, उसके प्यार का उचित बदला देगा।

उसने बहुत सोच-समझ कर देखा कि यमुना के साथ रह कर वह किसी प्रकार उसकी रक्षा न कर सकेगा। उसे कम से कम यमुना के लिए ही अपना सर्वस्व त्याग करना होगा। यमुना को छोड़ते हुए क्या उसे सुख होगा? लेकिन जो कुछ भी हो, छोड़ना तो पड़ेगा ही। इसी में यमुना का कल्याण है और उसका भी। वह उसी कल्याण का मार्ग पकड़ेगा।

मनोज ने सोचा—मनुष्य का हृदय कैसा अद्भुत है? वह ठीक एक ही समय दो भिन्न-भिन्न पथों पर दौड़ने के लिए उन्मत्त हो उठता है। विवेक की शक्ति उसे पथ-निर्देश करती है। वह एक फूल को तोड़ कर सूँघना इसलिए नहीं चाहता कि वह उसे प्यार करता है। मनोज भी यमुना को छोड़ कर चला जायगा, इसलिए कि वह क्षण-क्षण में उसके जीवन के सन्निकट आ रही है; इसलिए कि वह जमुना को प्राणों से भी अधिक सुरक्षित रखना चाहता है और इसलिए कि वह उसे सबसे अधिक प्यार करता है।

उसी दिन रात्रि के अन्धकार में मनोज घर से बाहर निकल गया।

ज

दो वर्ष बाद।

सन्ध्या का समय था, बरसात का मौसम। यमुना मनोज के घर में अभी भी रहती थी। दो वर्षों की अनवरत धूप-वर्षा सहने के कारण मकान जहाँ-तहाँ गिर पड़ा था। कोठरियाँ चू रही थीं। खपरैल टूट गई थी; इधर-उधर जङ्गली लताएँ और घास उग आई थीं।

उठ कर उसने दिया जलाया। फिर भोजन बनाया। दो थालियों में भोजन परस कर वह मनोज की प्रतीक्षा में बैठी रही। बड़ी देर हो गई—मनोज न आया। एक ऊँची साँस लेकर उसने अपने आप ही कहा—आज भी नहीं आए। अब शायद आज न आवेंगे। उसने अकेले ही भोजन किया। उसके बाद बरामदे में पास-पास दो खटिया बिछाईं—एक अपने लिए, दूसरी मनोज के लिए। सोचा, शायद रात में ही कहीं चले आवें। कौन जानता है?

किन्तु रात बीत जाती और मनोज न आता। इसी प्रकार मनोज के जाने के बाद से, उसने दो वर्ष बिता दिए थे। लोग उसे देखते; कहते, पागल हो गई है। लोगों की बातें सुन कर वह एक फीकी हँसी हँस देती थी। उस हँसी में कितनी वेदना होती थी, कितना विद्रूप!!

गर्मी की लम्बी दुपहरियों में खिड़की पर बैठ कर धू-धू जलते हुए अन्तहीन प्रान्तर की ओर वह चुपचाप देखा करती। सोचती—"इसी रास्ते से आवेंगे। शायद चल चुके हों। ओह! कितनी धूप है। तलवे जल जायँगे। तालू चटक जायगी, मगर वह आवेंगे ज़रूर। वह सुराहियों में पानी ठण्डा कर रखती। गुड़ की भेली और एक लोटा-गिलास लाकर पास रख लेती—इस दुपहरिया में ज़रूर उन्हें प्यास लगी होगी!"

वह दिन-रात दरवाज़े पर आँखें बिछाए बैठी रहती थी—न जाने कब मनोज आ जाय! लम्बी-लम्बी रातें आतीं और चली जाती थीं, सुख के सपनों की तरह दुपहरियाँ आतीं और बीत जाती थीं; बहते हुए दरिया की लहरों के समान सुनहले सवेरे एक के बाद एक आते और आँखों से ओझल हो जाते थे, किन्तु मनोज किसी दिन न देख पड़ता। रात होती तो यमुना सोचती, कल सवेरा होते ही मनोज आवेगा। अब तक वह चाहे जिस कारण से भी न आ सका हो, किन्तु कल वह आए बिना न रहेगा। किन्तु कल होता, सवेरा बीत जाता, दुपहरिया खो जाती, गोधूलि धूमिल पड़ जाती, मनोज फिर भी न दीख पड़ता था।

इसी प्रकार वर्षा की भयावनी काली रातें, गर्मी की लम्बी दुपहरियाँ, शीत की हाड़-हाड़ कँपा देने वाली सन्ध्या आतीं और चली जाती थीं। समय की गति में विराम न था, यमुना की प्रतीक्षा में अन्त भी नहीं।

लोग कहते, मनोज मर गया है। वह अब न आवेगा। यमुना उँगलियों से कान मूँद लेती—ऐसी बात न कहो। वे मुझे छोड़ कर नहीं रह सकते। आवेंगे ज़रूर, फिर चाहे आज आवें या दो दिन बाद। कोई कहता—वे साधू हो गए हैं। कोई कहता—देश छोड़ कर कहीं बहुत दूर चले गए हैं। इसी तरह भिन्न-भिन्न लोग, भिन्न-भिन्न तरह की बातें कहा करते थे, पर यमुना को किसी पर विश्वास न होता, होता भी तो वह विश्वास करती ही न थी।

उसके हृदय में गम्भीर आशा थी—कभी न कभी उसकी तपस्या सफल होगी। मनोज घर आवेगा। उसकी प्रतीक्षा में बल था, आशा में विश्वास की दृढ़ता। कौन कह सकता है, उसकी प्रतीक्षा का अन्त कब होगा? कभी होगा भी या नहीं, यही कौन बतला सकता है?

मैथिल महासभा और सौराठ सभा

[एक मैथिल]

इस वर्ष मैथिल महासभा का २१ वाँ अधिवेशन दरभङ्गा में तारीख़ १८, १९ और २० अप्रैल को दरभङ्गा के महाराजाधिराज श्रीमान कामेश्वरसिंह बहादुर की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। मैथिल महासभा एक निर्जीव संस्था है, इसका पर्याप्त प्रमाण इस अधिवेशन ने जनता को दिया। यह बात सच है कि इस संस्था का राजनीति से सम्बन्ध नहीं है, सामाजिक और आर्थिक उन्नति इसका मूल उद्देश्य है और इन्हीं दोनों उद्देश्यों को सामने रख कर यह सभा कार्य करती आई है। आरम्भ में इस संस्था ने कुछ काम किया था और उस समय यह मैथिल जाति के प्रतिनिधित्व का दावा भी कर सकती थी। यद्यपि दरभङ्गा-नरेश इसके आजीवन सभापति थे, तथापि बनैली, श्रीनगर, रजौर, खड़हरा तथा दरभङ्गा राज्य से सम्बन्ध रखने वाले सभी बाबुआना राज्यों के राजे और बाबू इसमें सम्मिलित होते थे और जातीय कार्य में भाग लेते थे। किन्तु समयानुकूल नियमों का पालन न करने से किसी संस्था की जैसी दुर्गति होती है, वैसी ही मैथिल महासभा की हुई। दुनिया भर की एकतन्त्रता नष्ट हो गई, ख़लीफ़ा और पोप उठ गए, मुल्ला और पण्डितों का साम्राज्य चला गया; किन्तु मैथिलों के जातीय जीवन से एकतन्त्रता का नाश अभी तक नहीं हुआ है! इसमें समानता के सिद्धान्त पर किसी सामूहिक शक्ति का उपयोग अभी तक नहीं हो सका है। इसी से समझा जा सकता है कि हम लोग कहाँ तक गिरे हुए हैं। फिर मिथिला भी आख़िर इसी दुनिया में है और संसार की लहरें यहाँ भी टकराती ही हैं। अतः अन्यान्य समझदार लोगों एवं श्रीमानों की श्रद्धा इस विचित्र संस्था से दिनानुदिन कम होती गई और यह महासभा मैथिल जाति की कोई प्रतिनिध्यात्मक संस्था न रह कर, एक दरबार बन गई! सुतराम् कुछ ही दिनों के पश्चात् जाति के सच्चे सेवकों और निस्स्वार्थ भक्तों ने इसमें आना-जाना छोड़ दिया। अब इसमें प्रायः वही लोग सम्मिलित होते हैं जिन्हें या तो नाम के लिए पदाधिकारी होने का भूत सवार है अथवा जो दरबार से कुछ स्वार्थ-साधन करना चाहते हैं। जिस जनता की भलाई के लिए सभा की स्थापना हुई थी, उसकी अवस्था का यहाँ कुछ भी विचार नहीं होता और न किसी प्रकार का उसे नेतृत्व ही मिलता है! इन्हीं बातों से ऊब कर कुछ दिन पूर्व कलकत्ता के कुछ मैथिल विद्वानों ने एक अलग सम्मेलन किया था। किन्तु दुर्भाग्यवश वह मैथिल युवकों की उदासीनता या अकर्मण्यता से एक ही वर्ष के बाद बन्द हो गया और महासभा की निरङ्कुशता बढ़ती ही गई। इस बार मालदह में फिर भी अखिल भारतीय मैथिल युवक-सम्मेलन की बैठक श्रीमान कुमार गङ्गानन्दसिंह साहेब, एम० ए० की अध्यक्षता में हुई है। इस सम्मेलन ने हम लोगों को बहुत कुछ आशा बँधाई है तथा गणतन्त्रात्मक रीति-नीति का सूत्रपात किया है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि इस सम्मेलन ने अपने को सङ्गठित किया एवं इसके अनुकूल कुछ कार्य हुआ तो देश और जाति का अशेष कल्याण होगा। मैथिल महासभा में ऐसी अनेक त्रुटियाँ हैं, जिनका सुधार हुए बिना इससे कोई लाभ नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियों से इसकी कतिपय त्रुटियों का पता लग जायगा:—

मैथिल महासभा के इस अधिवेशन में कोई प्रस्ताव काम में आने वाला पास नहीं हुआ। एक तो हमारा मैथिल समाज अपनी सङ्कीर्णता और रूढ़ियों से अन्यान्य समाजों की अपेक्षा कहीं बेतरह जकड़ा हुआ है, तिस पर इस महासभा ने तो मानो इसकी पराकाष्ठा ही कर दी। जैसे प्राचीन काल से उपनयन-संस्कार के लिए ब्रह्मा, आचार्य और याचक आदि की रूढ़ियाँ मनाई जाती हैं—यद्यपि उनका वास्तविक अर्थ कुछ नहीं होता—उसी प्रकार आरम्भ से ही मैथिल महासभा में राजभक्ति, विद्या-प्रचार, परस्पर-विरोध-परिहार, वाणिज्य-व्यवसाय, वैवाहिक सधार, मातृभाषा की उन्नति आदि

सात विषयों पर व्याख्यान और प्रस्ताव पास होते आए हैं, किन्तु किसी निर्णय पर कार्य नहीं होता। इस बार भी इन्हीं विषयों पर कुछ व्याख्यान होकर थोड़े से टकसाली प्रस्ताव पास हुए। हाँ, राजभक्ति पर कोई प्रस्ताव या व्याख्यान नहीं हुआ। यह आश्चर्य की बात अवश्य हुई। किन्तु राजभक्ति का परिचय भरपूर दिया गया। इसी अभिप्राय से खद्दर पहिनने का प्रस्ताव पास नहीं हुआ। विषय-निर्वाचिनी सभा में स्वतन्त्र विचार के आदमी बहुत कम घुसने पाए, क्योंकि सभापति की आज्ञा से दो-तीन घण्टा पूर्व यह घोषणा कर दी गई कि जो व्यक्ति कम से कम आठ रुपए दें वे ही प्रवेश कर सकेंगे। इसलिए यह प्रस्ताव विषय-निर्वाचिनी सभा में ही बहुमत से अस्वीकृत कर दिया गया। एक सज्जन ने कई व्यक्तियों से हस्ताक्षर करा कर उसे महासभा के खुले अधिवेशन में उपस्थित करना चाहा, किन्तु उन्हें ऐसा करने का मौक़ा ही नहीं दिया गया। इस राष्ट्रीय क्रान्ति के समय में स्वदेशी और खद्दर के प्रस्ताव की यह दुर्दशा हो, यह क़यास के बाहर की बात है। किन्तु मैथिल महासभा में यही बात चरितार्थ हुई। दूसरा महत्वपूर्ण प्रस्ताव था—हिन्दू महासभा के अछूतोद्धार, शुद्धि और सङ्गठन विषयक प्रस्तावों के प्रति सहानुभूति-मात्र प्रगट करना, किन्तु उसकी भी वही दुर्दशा हुई, जो खद्दर वाले प्रस्ताव की हुई थी। मानो मैथिल जाति अपने को हिन्दू-जाति से बहिष्कृत समझती है। ज़रा सोचने की बात है यह स्थिति इस जाति के लिए कितनी भयानक है! इसका कारण यह बताया जाता है कि अछूतोद्धार, शुद्धि और सङ्गठन के प्रति सहानुभूति प्रगट करना भी सनातनधर्म के विरुद्ध है! एक और प्रस्ताव की हालत सुनिए। हिन्दी-संसार को मैथिल-भाषा की उन्नति से विरोध है और बिहार प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन मैथिल भाषा के आन्दोलन को कड़ी नज़र से देखता है, किन्तु तो भी कुछ मैथिल, जो हिन्दी को राष्ट्र-भाषा मान कर उसकी सेवा करते हैं, मैथिली के प्रति सद्भाव रखते हैं और उसकी उन्नति प्रान्तीय रीति पर करना चाहते हैं। मैथिल महासभा भी आज २० वर्षों से इसी भाषा में अपनी कार्यवाही करती रही है और केवल नाम के लिए उसकी उन्नति का राग अलापती आई है। किन्तु जब मैथिली भाषा की एक मात्र मासिक पत्रिका 'मिथिला' को स्थायी बनाने का प्रस्ताव आया तो चारों ओर से "उठा लीजिए, उठा लीजिए", "वापस लीजिए, वापस लीजिए" का शोर मच गया और प्रस्तावक को अन्त में उसे उठा ही लेना पड़ा। इसका कारण यह है कि उक्त पत्रिका कुछ गर्म लेख लिखा करती है। ज़रा इसकी गर्मी का हाल भी सुनिए। इसने पर्दा-प्रथा के बहिष्कार, स्त्री-शिक्षा के प्रचार, शारदा-क़ानून और अछूतोद्धार के समर्थन में कुछ लेख छापे। बस इसी कारण वह गर्म हो गई और उसकी मातृभाषा की सारी सेवा मिट्टी में मिल गई! एक महाशय को यहाँ तक उत्साह हुआ कि हाल में शारदा-ऐक्ट के भय से मैथिल समाज में—विशेषतः श्रोत्रियवर्ग में—जो अनेकानेक बाल-विवाह हुए हैं, उनकी निन्दा की जाय और विधवा-विवाह का समर्थन किया जाय। अब ज़रा विचार कीजिए, जहाँ पर्दा-प्रथा और स्त्री-शिक्षा विषयक प्रस्तावों की ऐसी दुर्दशा हुई, वहाँ इन प्रस्तावों की क्या हालत होगी? नक़्क़ारख़ाने में तूती की आवाज़ वाली कहावत चरितार्थ हुई; प्रस्तावक महोदय को अपना प्रस्ताव उपस्थित करने का अवसर ही नहीं मिला। इस प्रकार मैथिल महासभा का तमाशा ख़तम हुआ। ऐसी संस्था से इस जाति की क्या उन्नति हो सकती है? बहुतों को यह आशा थी कि इस बार नवीन मिथिलेश के सभापतित्व में कई सुधार के प्रस्ताव स्वीकृत होंगे, किन्तु वह सब आशा दुराशा मात्र सिद्ध हुई। इस बार कई बातें पहले की अपेक्षा और भी निराशाजनक हुईं। जब कि दरभङ्गा की जनता सत्याग्रह के राष्ट्रीय समर में आगे बढ़ रही थी, उस समय मैथिल जाति व्यर्थ अपना समय खो रही थी! यह महासभा नवीन मिथिलेश की प्रशंसा का पुल बाँधती हुई समाप्त हुई। महासभा को कई वर्षों पर चार-पाँच हज़ार रुपए मिले, यही उसकी एक मात्र सफलता है।

अब सौराठ सभा का भी कुछ हाल सुनिए। 'चाँद' के इन्हीं स्तम्भों में उक्त सभा का बहुत विवरण प्रकाशित हो चुका है, पाठक उससे परिचित ही हैं; पर इस वर्ष मैंने देखा था, आपके विशेष प्रतिनिधि ने कई फ़ोटो लेने का भी प्रबन्ध किया था। आशा है, आप उसका चित्र भी प्रकाशित कर सकें; अतः विशेष

मैथिल महासभा के अध्यक्ष श्रीमान दरभङ्गा-नरेश (कुर्सी पर बैठे हुए) और कुछ विशिष्ट सदस्य

विवरण न देकर, केवल इतना ही लिखना हम अलम् समझते हैं कि इस वार हैज़े के प्रकोप से उसकी उपस्थिति सन्तोषजनक नहीं थी, तथापि उसकी संख्या पचास और साठ हज़ार के बीच में थी। इस वार की सभा के विषय में महाराजाधिराज के पत्र "मिथिला-मिहिर" ने जो लेख लिखा है, उसके कुछ आवश्यक अंशों का अनुवाद इस प्रकार है :—

"सौराठ सभा की आधुनिक स्थिति यथावत निम्न-लिखित है :—श्रीमान मिथिलेश से पञ्जीकार लोगों ने अनुमति लेकर वैशाख सुदी पञ्चमी को सभा का श्रीगणेश किया तथा वे लोग अपनी-अपनी पञ्जी लेकर 'सभागाछी' में रहने लगे। परम्परा से निर्द्धारित एवं ।८ स्थान पर वरपक्ष वरों के साथ उपस्थित होने लगे एवं कन्याप्रद अपने कुल, शील और परिचय प्रभृति के अनुसार वरों के गुणों की स्वयं परीक्षा करके अधिकारानुसार अपनी-अपनी कन्याओं के पाणिग्रहण का निश्चय करने लगे। अस्तु, 'सौराठ' नामक एक श्रेष्ठ ग्राम मधुबनी से प्रायः ढाई कोस पश्चिम अवस्थित है, जिसके वायव्य कोण में एक विशाल आम का बाग़ और उसमें एक बृहत्काय शिवालय है। इस शिवालय के प्रतिष्ठाता श्री० ५ मान मिथिलेश के पूर्वज थे। उसी बाग़ में वैवाहिक सम्मेलन होता है। इस वर्ष शुद्ध के शेष दिनों में साठ हज़ार से कम मनुष्यों का जमाव नहीं था।

"सभा में उपस्थित होने वाले लोगों की विभिन्न संख्या—इस सभा में प्रायः ६५ प्रतिशत मैथिल ब्राह्मण और शेष इतर लोग रहते हैं। उपर्युक्त ६५ प्रतिशत संख्या
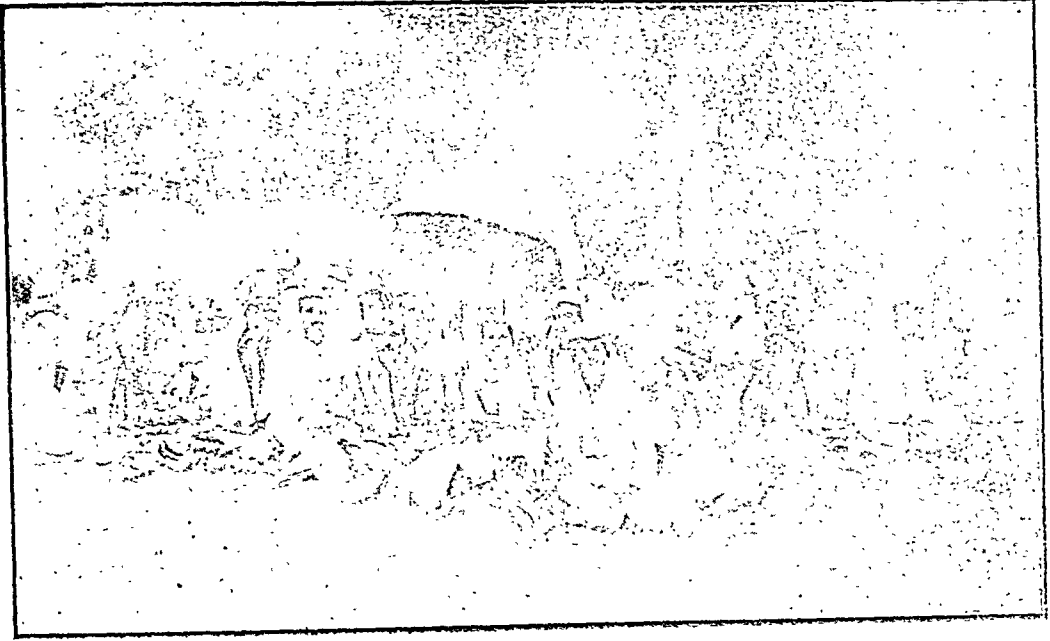
मैथिल महासभा के कुछ दर्शक

में से ३० प्रतिशत वर-कन्या के अभिभावक तथा शेष व्यक्ति (यानी ४५ प्रतिशत) विवाहार्थी वर रहते हैं। उपर्युक्त ४५ प्रतिशत वरों में से २० प्रतिशत की अवस्था इतनी कम थी कि उन्हें बाल-वर कहना उचित होगा।

"सभा में उपस्थित होने वाले लोगों की अभि-रुचि—प्रायः सभा में जाते समय प्रत्येक यात्री अपनी वेश-भूषा अपने-अपने विभव के अनुसार सजा लिया करता है। लाल धोती और लाल चद्दर प्रायः उम्मीदवार वरों का चिन्ह है। सभा में छल-कपट का समावेश कुछ-कुछ इस वर्ष भी देखा गया। (लोग ?) अपनी वस्तुस्थिति को छिपा लेते हैं। परस्पर कटु वाक्यों का प्रयोग, किल-कारी भरने और थपड़ी बजाने किम्वा कुचेष्टा करने की प्रबलेच्छा का समूल नाश नहीं हुआ है। केवल पगड़ी-मात्र अब भी सुरक्षित देखी जाती है। अनेक नई सभ्यता के प्रेमी, नवीनरुचि-सम्पन्न मैथिल युवकों को साहस नहीं होता है कि साँची (धोती), पाग (पगड़ी) और चन्दन को तिलाञ्जलि देकर सभा में उपस्थित होवें। सच पूछिए तो मैथिलत्व का यथार्थ रूप यहीं देखने में आता है। × × ×

"वैवाहिक विचार—थोड़े व्यक्ति कौलिक प्रतिष्ठा के पक्षपाती, और थोड़े केवल धन तथा अङ्गरेज़ी शिक्षा मात्र के इच्छुक देखे जाते हैं। किन्तु सम्प्रति कौलिक प्रतिष्ठा की रक्षा की तादृश तत्परता नहीं देखी जाती। एक हीन कुलोत्पन्न सम्पन्न बी० ए० का वैवाहिक मूल्य हज़ारों रुपए था, किन्तु उसके प्रतिकूल श्रेष्ठकुलोत्पन्न दरिद्र वर का उतना आदर नहीं था। सभा के अन्तिम दिन तक अधिकांश उपन्यास (अर्थात् विवाह की बात-चीत) स्थगित ही रहते हैं। प्रत्येक पक्ष को यही आशा बनी रहती है कि 'अन्ततो गत्वा' कम ख़र्च में अच्छा वर-वर मिल ही जायगा। फलतः अन्त में बड़ी जल्दी-बाज़ी की जाने लगती है और उस गड़बड़ी में कुलभ्रष्ट और सुलग्न दोनों में विवाह हो जाता है। अधवेसू (अर्थात् न वृद्ध न युवा) उम्मीदवार (वर) जब लाल धोती पहने, आसन लगा कर बैठते हैं तो उनकी रसिकता का अन्त नहीं रहता। वर लोग प्रति क्षण अपने-अपने उपन्यासों के निश्चित होते-होते पुनः अनिश्चित हो जाने से कठिन मनोवेदना का अनुभव करने लगते हैं। पूर्व-काल में जातीय दण्ड-स्वरूप कन्याप्रद किम्वा वरप्रद द्रव्य ग्रहण करते थे, किन्तु अब जातीयता का विषय ताक़ पर रख दिया जाता है। वरप्रद अपने-अपने विभव और
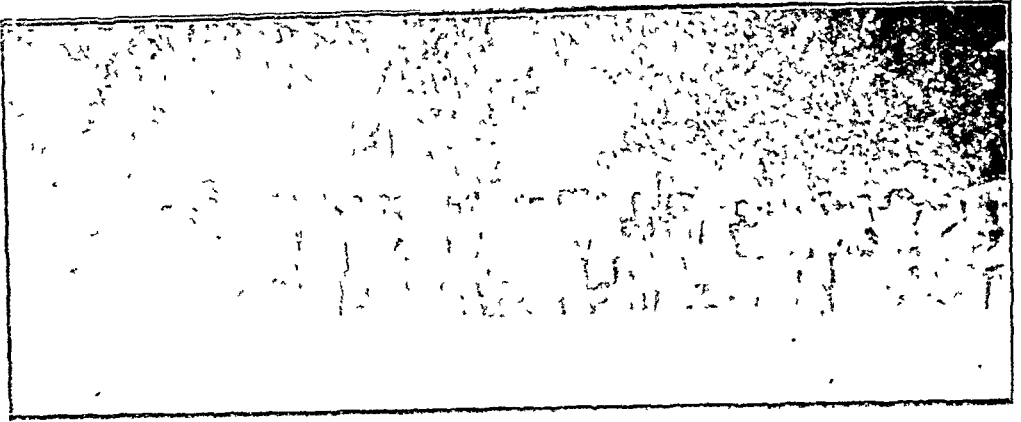
सौराठ सभा का दृश्य नं० १

गौरव के अनुसार हज़ारों का तोड़ा गिनाने पर तत्पर हो गए हैं। ऐसी स्थिति में कहीं-कहीं कन्याप्रद वर को फुसलाने का यत्न भी करते हैं !

"सभा की परिस्थिति—सभा के समीप एक पोखरा और एक कुँआ है। दोनों का जल प्रायः पेय नहीं है, किन्तु आवश्यकता पड़ने से वही अमृत हो जाता है। सभागाछी में जीवन-यात्रा के आवश्यकीय पदार्थों का हाट-बाज़ार भी लग जाता है। मैथिलेतर प्रान्त के कितने लोगों की धारणा है कि सभागाछी में कन्या और वर दोनों उपस्थित होते हैं तथा यह लड़के-लड़कियों का मेला है। उन लोगों की ऐसी धारणा मूर्खतापूर्ण है। मिथिला के समान पर्दा-प्रेमी प्रान्त की सलज्जा कन्याएँ पितृ-गृह, मातृ-गृह किम्वा ससुराल को छोड़ कर केवल तीर्थस्थानों में ही जाती हैं। भला सभागाछी में वे क्यों आने लगीं ? यह भ्रान्ति एकदम निर्मूल है। साथ ही साथ वृद्ध-विवाह, बहु-विवाह आदि जो कुछ वैवाहिक कुरीतियाँ समाज में प्रविष्ट हो गई थीं, सहर्ष कहना पड़ता है कि उनका अब अङ्कुर भी देखने में नहीं आता।"

इसके उपरान्त सभा द्वारा विवाह-प्रणाली के लाभालाभ का विचार करते हुए यह पत्र परामर्श देता है कि सभा में कुछ दुर्गुण अवश्य घुस पड़े हैं, किन्तु उनका सुधार होना आवश्यक है, इस संस्था का ही नाश करना उचित नहीं, क्योंकि इससे लाभ ही अधिक है। आगे यह इस प्रकार निष्कर्ष निकालता है :—

"निष्कर्ष विचार—अतः कहना पड़ता है कि जो कुछ दुर्गुण इस संस्था में घुस गए हैं, उनका निराकरण-परिचालन सुष्ठुरूप से किया जाय। यह प्राकृतिक नियम है कि कृत्रिम वस्तु का सुधार समय-समय पर किया जाय। प्राकृतिक वस्तु का सुधार स्वयं प्रकृति ही किया करती है, किन्तु मानव कृतियों की सुरक्षा मनुष्य ही से हो सकती है। प्रत्येक वस्तु यथा पोखरा, कुँआ, सड़क आदि की यदि दस वर्ष पर भी मरम्मत न की जाय तो वह क्या होकर रहेगी ? अतः कहना पड़ता है कि सौराठ सभा मानुषी संस्था होने के कारण इसमें आपेक्षिक परिशोधन की और भी आवश्यकता है। कन्या देने का विषय, वर की पात्रता, कन्या और वर के प्रति द्रव्य-ग्रहण का निषेध, श्रोत्र तथा सदाचार का पालन, इत्यादि-इत्यादि विषयों के सुधारार्थ थोड़े ही यत्न की आवश्यकता है। आशा है, यदि श्रीमान मिथिलेश के सभापतित्व में एक प्रहर भी लगातार चार-पाँच वर्ष तक उपर्युक्त विषयों के ऊपर विचार हो तो अनायास ऐसी संस्था विलक्षण विचक्षण लोगों का सम्मेलन तथा सर्व-हितकारिणी हो जायगी।"

सुना आपने 'मिथिला-मिहिर' क्या कहता है ? यह पत्र इतना नर्म और सनातनधर्म का पक्षपाती है कि मैथिल जनता में भी इसका प्रचार 'नहीं' के बराबर है। तथापि इस बार इसने सभा की वर्तमान अधोगति को देख कर इतना लिख ही डाला ! हो सकता है 'चाँद' की ही समालोचनाओं से क्षुब्ध होकर इतना दोष स्वीकार करने पर यह पत्र बाध्य हुआ हो। हम इस स्पष्टवादिता
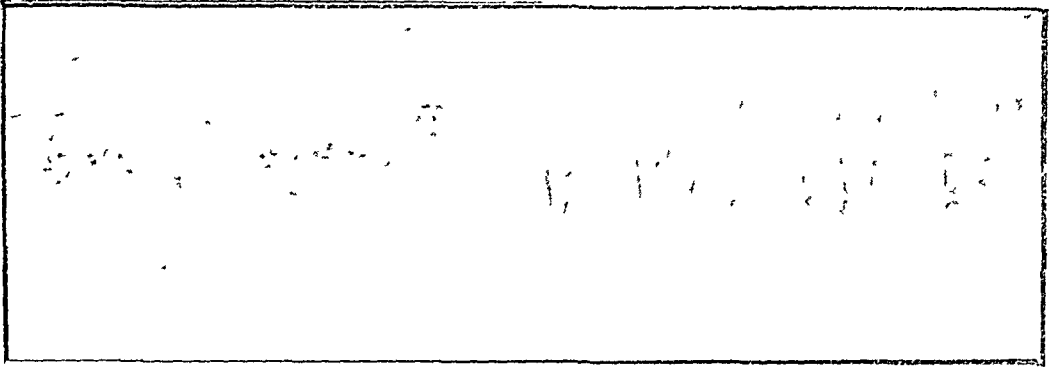
सौराठ सभा का दृश्य नं० २

के लिए इसकी प्रशंसा करते हैं और आशा करते हैं कि आगे यह और भी ज़ोरों से सुधार का समर्थन करेगा। किन्तु यथार्थ पूछिए तो इस संस्था में केवल इतनी ही गुञ्जाइश सुधार की नहीं है। एक मित्र, जो सभा से लौटे थे, यह कहते थे कि पहले तो वहाँ म्युनिसिपैलिटी का ही प्रबन्ध होना आवश्यक है। गवर्नमेण्ट इस सभा को सामाजिक सम्मेलन जान कर इसके कार्यों और प्रबन्ध में कुछ दख़ल नहीं देती है। किन्तु विचारने की बात है कि दो-दो सप्ताहों तक जहाँ लाखों मनुष्यों का जमाव रहता है, वहाँ खाने-पकाने, पाख़ाना-पेशाब से ही नहीं, वरन् थूकने-पीकने और चलने-फिरने से भी कितनी गन्दगी होती होगी। तिस पर भी यदि कोई प्रबन्ध जनता या गवर्नमेण्ट की ओर से सफ़ाई का न रहे, जैसा कि सभा में आमतौर से किसी साल नहीं रहता, तो हालत क्या होगी, इसका अन्दाज़ा आसानी से लगाया जा सकता है। वहाँ एक तालाब है, जिसे "लघियाही पोखर" कहते हैं, क्योंकि उसी में सब लोग लघुशङ्का (पेशाब) करते हैं। कहते हैं कि एक-एक बार कई सौ आदमी चारों ओर पानी के किनारे-किनारे बैठ कर पेशाब करते हैं और उसी अपवित्र पानी से शौच करके पवित्र होते हैं! यह क्रिया मेले के दिनों में अविराम बारह-चौदह घण्टे नित्य चला करती है। अन्तिम दिन तक उस पोखरे में इतना पेशाब जमा हो जाता है कि उसके पानी की सतह कई इञ्च ऊँची उठ आती है! फिर उसी जल से भोजन बनाना, उसी में नहाना और धोना कहाँ तक सनातनधर्म की रक्षा करना है, इसके विषय में क्या कहा जाय!!! यह तो एक ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर कोई सनातनधर्मी मैथिल ही दे सकता है। पहले यह नियम था कि सौराठ और उसके आस-पास के गाँव वाले पहले ही से सभा की मेहमानदारी के लिए प्रस्तुत हो जाते थे। दिन भर सभा करके मेले के अधिकांश व्यक्ति उन्हीं गाँवों में किसी न किसी के यहाँ 'मान न मान, मैं तेरा मेहमान' वाली कहावत चरितार्थ करते थे। इसका नतीजा यह होता था कि मेले के दिनों में दरिद्र से दरिद्र ब्राह्मण के यहाँ भी नित्य तीस-चालीस व्यक्तियों का भोज हुआ करता था! जो लोग ज़रा धनी होते थे, उनकी हालत का तो कुछ पूछना ही नहीं। यद्यपि यह प्रथा आज भी बहुत कुछ बची हुई है, तथापि खाद्य पदार्थों की मँहगी के कारण लोगों में अतिथि-पूजा का वह पुराना उत्साह अब नहीं रहा और भलेमानस स्वयं भी किसी के यहाँ जाने में हिचकते हैं। इसलिए अब अधिक लोग अपने खाने-पकाने का प्रबन्ध स्वयं करते हैं। ऐसे लोग सभागाछी में ही रसोई बना लिया करते हैं। सफ़ाई का कोई प्रबन्ध तो होता नहीं, चारों ओर हाँड़ियों का ढेर लग जाता है, चूल्हों के कारण ज़मीन गड्ढों से भर जाती है, माँड़ और जूठी पत्तलों के इधर-उधर फैले रहने का कोई ठिकाना नहीं रहता है। पान और खैनी के कारण जिधर देखिए उधर ही की ज़मीन पीक और थूक से सनी रहती है। इसलिए लोगों को बैठने की जगह नहीं मिलती। अन्यान्य स्थानों की सभाओं में भी थोड़े बहुत ये दोष पाए जाते हैं, किन्तु कहीं भी म्युनिसिपैलिटी या सेवा-सङ्घ आदि की ओर से सफ़ाई का कुछ प्रबन्ध नहीं किया जाता। हम भारतीयों की दशा

ही ऐसी गई-गुज़री है कि हम सफ़ाई का महत्व तक नहीं जानते, किन्तु धार्मिक रीति से सफ़ाई का बहुत सा ढोंग रचते हैं ! हमें सफ़ाई का क-ख-ग-घ भी नहीं आता। ऐसी ही परिस्थिति में सौराठ की यह महती सभा लगती है !!

सभा के भीतरी दुर्गुणों का ब्योरा और भी भयानक है। 'मिथिला-मिहिर' की रिपोर्ट से विदित होता है कि वैवाहिक दुर्गुणों का अन्त हो गया है और जो थोड़े-बहुत दुर्गुण बचे हैं, उनके लिए अल्प श्रम की आवश्यकता है। इसमें शक नहीं कि वृद्ध-विवाह और बहुविवाह अब प्रायः नहीं होता है, फिर भी उसका समूल नाश नहीं हुआ है। सच्ची बात तो यह है कि जहाँ वृद्ध-विवाह और बहुविवाह की कमी हुई है, वहाँ बाल-विवाह और तिलक की प्रथा बेहद बढ़ गई है। स्वयं 'मिहिर' भी इसे अस्वीकार नहीं कर सका कि ७५ प्रतिशत विवाहार्थियों में से २० प्रतिशत बच्चे ही होते हैं। यही नहीं, 'मिथिला' नाम की मासिक पत्रिका में एक वकील साहब ने लिखा है—"शिक्षित वरों के ग्राहक बहुत थे, किन्तु शिक्षित वर प्रायः सभी छात्रावस्था में ही थे। पाँच या सात व्यक्तियों को छोड़ और सब बारह से सोलह वर्ष के बीच की अवस्था में थे।" इसीसे अनुमान लगाया जा सकता है कि बाल-वरों की संख्या सभा में कितनी होगी। यथार्थ पूछिए तो मैथिल ब्राह्मणों में इस मेले के कारण लड़कों की नीलामी बोली बड़ी द्रुत गति से बढ़ रही है। शास्त्रों में यदि बाल-विवाह का कोई वचन पाया जाता है तो वह कन्याओं के लिए ही प्रयुक्त हुआ है, लड़कों के लिए नहीं। जब लड़कों के बाल-विवाह का सनातनधर्म ज़ोरों से विरोध करता है, तब यह आसुरी प्रथा इस समाज में कैसे बढ़ रही है, यह बात समझ में नहीं आती। उक्त वकील साहब लिखते हैं कि ये लड़के स्वयं विवाह से भागते थे, किन्तु उनके अभिभावकगण बलात् उन्हें विवाह-बन्धन में बाँध देते थे। वरों का दाम अधिक पाने के लिए उन्हें झूठ-मूठ स्कूल या पाठशाला में भर्ती कराने का ढोंग भी रचा जाता है। फिर विवाह सम्पन्न हुआ नहीं कि उनकी पढ़ाई-लिखाई एकदम बन्द कर दी जाती है। प्राइमरी शिक्षा पाने वाले वरों की बोली साधारणतः एक हज़ार होती है। बहुत रोने-पीटने पर कहीं पाँच या सात सौ में सौदा तय हो पाता है। उच्च शिक्षित वरों का मूल्य तो विरला ही कोई दे सकता है। ऐसी स्थिति में उक्त वकील साहब का यह लिखना एकदम यथार्थ है कि यह प्रथा देख कर मैथिल-समाज का भविष्य बहुत अन्धकारमय दीख पड़ता है !!

बाल-विवाह और तिलक के अतिरिक्त एक और भी भीषण रोग इस सभा के द्वारा समाज में फैल रहा है। पहले हरिसिंह देव की व्यवस्था के अनुसार वर या कन्या-पक्ष वाले अपने कुल की बड़ाई-छोटाई के अनुसार एक-दूसरे से रुपया लेते थे। यह यथार्थ में वर या कन्या का मूल्य नहीं था, बल्कि उनके वंशों की प्रतिष्ठा का पुरस्कार था, किन्तु अब कन्या और वर का मूल्य बिलकुल बाज़ारू तरीक़े पर वसूल किया जाता है। अब उसमें वंश की प्रतिष्ठा का भाव बिलकुल नहीं रहा। जिस प्रकार लड़कों की अङ्गरेज़ी शिक्षा की योग्यता के अनुसार भिन्न-भिन्न श्रेणी का मूल्य कम या अधिक होता है, उसी प्रकार कन्याओं का मूल्य उनकी उम्र के अनुसार कम या बेशी होता है। जितने वर्षों की कन्या होती है, प्रायः उतने ही सौ रुपए उसका मूल्य होता है अर्थात् वह यदि ४ वर्ष की हुई तो ४००) और ९ वर्ष की हुई तो ९००) रुपए ऐंठे जाते हैं ! इस प्रकार अधिक मूल्य पाने के लिए छोटी-छोटी लड़कियाँ बड़ी उम्र की बतलाई जाती हैं। सभा में कन्या तो रहती ही नहीं कि उसे तत्काल देखा जा सके, इसलिए उसकी अनुपस्थिति से घटक और अभिभावक लोग खुल कर अनुचित लाभ उठाते हैं। घटक लोग अपनी दलाली पाने के लिए कन्याओं के युवती होने का वर्णन बड़ी वीभत्स, किन्तु रोचक रीति से करते हैं। उनके लम्बे-लम्बे बाल, बड़ी बड़ी आँखें और पूर्ण यौवना होने का इङ्गित इस प्रकार किया जाता है कि उम्मीदवारों के मुँह से लार टपकने लगती है और वे फ़ौरन अधिक मूल्य देने पर तैयार हो जाते हैं !! स्मरण रखना चाहिए कि ऐसे उम्मीदवार दूरदेशी गङ्गा पार के दक्षिण वाले धनी ब्राह्मण होते हैं अथवा इस पार के वे व्यक्ति होते हैं, जो धन और विद्या से वञ्चित हैं। ऐसे लोगों का विवाह होना बहुत ही कठिन हो गया है और अनेक व्यक्ति रुपए के अभाव से जन्म भर कुँवारे ही रह जाते हैं। वे

बेचारे पूरब में नौकरी करके या अपने खेत वग़ैरह बेच कर रुपए लाते हैं, इस पर भी यदि कमी रह जाती है तो सभा में अपने गाँव के किसी धनी आदमी से या कन्या-पक्ष से ही हैण्डनोट लिख कर रुपए लेते हैं! तब कहीं जाकर उनके विवाह का निश्चय हो पाता है। इतना होने पर भी जब उन्हें विवाह के उपरान्त कन्या का दर्शन होता है तो उनकी सारी आशाओं पर पानी फिर जाता है और बहुधा अपने को धोखे में पाते हैं!! चाहे तो कन्या वैसी रूपवती नहीं होती, जैसा कि उन्हें बताया गया था अथवा उस उम्र की नहीं होती, जिसका मूल्य उन्होंने दिया है! कहीं-कहीं दूसरी ही कन्या विवाह के लिए उपस्थित कर दी जाती है!! कहीं पर तो किसी लड़के के साथ ही झूठ-मूठ का विवाह करा दिया जाता है तथा किसी बहाने से दूल्हे को जल्दी विदा कर दिया जाता है, फिर पीछे उसे ख़बर दे दी जाती है कि लड़की मर गई! परसाल एक मामला दरभङ्गा में इसी प्रकार का उठा था, जिसमें वर-पक्ष ने यह दावा उपस्थित किया था कि मुझसे १०००) या ६००) रुपए ठग कर एक लड़के के साथ मेरी शादी कर दी गई। सौभाग्य से कुछ ले-दे करके आपस में सुलह हो गई। यद्यपि इस प्रकार की ठगी बहुत कम होती है, फिर भी सभा की प्रथा के कारण इसमें कुछ साहाय्य अवश्य मिलता है। यदि इन सब आपत्तियों का ख़्याल छोड़ भी दिया जाय तो विचारने की बात यह है कि दरिद्र लोग अपने बचे हुए खेत वग़ैरह बेच कर या जन्म भर की कमाई कन्या के मूल्य में देकर, उसको किस प्रकार अपने यहाँ सुख से रख सकते हैं? और अनेक व्यक्ति, जो अविवाहित ही रह जाते हैं उनकी क्या गति होगी?

'मिथिला-मिहिर' यद्यपि यह स्वीकार करता है कि २० प्रतिशत उम्मीदवार बच्चे ही रहते हैं, तथापि वह इन अमित बाल-विवाहों का कहीं ज़िक्र तक नहीं करता। मिथिला की पण्डित-मण्डली यद्यपि कन्या के बाल-विवाह के समर्थन में शास्त्रों की बाल की खाल निकालती रहती है, तथापि इन पण्डितों में से कोई यह आपत्ति करने का साहस नहीं करता है कि भई! लड़कों का बाल-विवाह शास्त्र-विरुद्ध है, इसे क्यों करते हो? वे जिस तत्परता से शारदा-क़ानून के खण्डन में व्यस्त हैं, यदि उसकी आधी या चतुर्थांश तत्परता भी इस ओर लगाई जाती तो कुछ सन्तोष का विषय था, किन्तु वे स्वयं इन शास्त्र-विरुद्ध, लोक-विरुद्ध और युक्ति-विरुद्ध बाल-विवाहों में हाथ बटाते हैं और अपने-अपने लड़कों का विवाह बारह-चौदह वर्ष की उम्र में कर डालते हैं! इस प्रथा के बढ़ने से दूसरी आपत्ति यह उपस्थित हुई है कि कितनी लड़कियों का अपने समान या अपने से भी छोटे लड़कों के साथ गँठजोड़ हो जाता है। बाल्यावस्था में लड़कों की शादी हो जाने से उनके भविष्य पर तुषार-पात हो जाता है और जातीय शक्ति का क्षय होता है, किन्तु इस ओर किसी का कुछ भी ध्यान नहीं है। मैथिल महासभा ने एक छोटा सा आदेश-पत्र सभा में बँटवाया था, किन्तु उससे क्या होता है? बाल-विवाह, तिलक और कन्या-विक्रय का बाज़ार गर्म ही रहा, यद्यपि इस वर्ष कन्या-विक्रय में बहुत कमी देखी गई। इसके अतिरिक्त, जैसा 'मिथिला-मिहिर' का कहना है, वस्तुस्थिति को छिपा लेना, ठगपनी करना, हड़बड़ी में पड़ कर कुलग्न-सुलग्न का ख़्याल न रखना, विवाह को बाज़ारू सौदा बना देना आदि, इस प्रथा की आनुसङ्गिक बुराइयाँ हैं! कुल बातों को मिला कर देखने से इसे वैवाहिक मेला कहना कदापि असङ्गत नहीं है, तो भी 'मेले' के नाम से अच्छे-अच्छे मैथिल भी चिढ़ते हैं। इससे स्पष्ट है कि वे विवाह को मेले की चीज़ नहीं बनाना चाहते हैं, किन्तु तो भी हम यह कहने के लिए मजबूर हैं कि सचमुच के मेले इन वैवाहिक मेलों से अच्छे होते हैं, क्योंकि वहाँ वस्तुओं की ख़रीद-बिक्री होती है और यहाँ व्यक्तियों की! यदि व्यक्तियों की ख़रीद-बिक्री अच्छी होती तो संसार की और-और जातियाँ भी करतीं। आजकल ऐसी बर्बरतापूर्ण प्रथा का नामोनिशान संसार से लगभग मिट चुका है। शायद प्राचीन काल में रोमन लोगों के यहाँ दासों और स्त्रियों की हाट लगती थी और कुछ असभ्य जातियों में अब भी लगती है, किन्तु सभ्य जातियों में तो ऐसी प्रथा कहीं नहीं दीख पड़ती है। सब से बड़े आश्चर्य की बात यह है कि मैथिल जनता को इस प्रथा में बुराई की अपेक्षा भलाई ही अधिक दीखती है। इतना तो सत्य है कि एक जगह भिन्न-भिन्न स्थानों के लोगों के एकत्र होने से वरान्वेषण में कन्या-पक्ष को सुविधा अवश्य होती है और यदि वे चाहें तो इस संस्था का सदुपयोग कर सकते हैं—बहुत आदमी करते

भी हैं—तथापि इससे वर्तमान समय में लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक है।

आजकल अधिकांश व्यक्ति मूर्ख और धर्महीन हैं, स्वार्थ के लिए सब कुछ कर सकते हैं। जब तक मैथिल जाति इस प्रथा को घृणित नहीं समझती है, तब तक इसके निराकरण का उपाय सोचना व्यर्थ है। हाँ, इसके सुधार पर विशेष ध्यान देना निस्सन्देह आवश्यक है। 'मिहिर' के लेखानुसार इसके लिए अल्प श्रम की आवश्यकता है। परन्तु यह कथन कदापि ठीक नहीं है। वस्तुतः मैथिल जाति के समक्ष वैवाहिक सुधार का महान प्रश्न उपस्थित है, जिसका उत्तर किसी ज़बरदस्त सङ्गठनात्मक क्रिया से ही मिल सकता है। जिस प्रकार विदेशी कपड़ों के बहिष्कार के लिए चारों ओर पिकेटिङ्ग जारी है, उसी प्रकार यहाँ भी इन कुरीतियों के विरुद्ध ज़बरदस्त सत्याग्रह की आवश्यकता है। यह काम सुधार-प्रिय मैथिल युवकों को अपने हाथ में लेना चाहिए, उन्हें इसके लिए महान परिश्रम करना चाहिए, स्वयं सभा में जाकर उपदेश द्वारा तथा लैण्टर्न स्लाइड आदि के ज़रिए इन बुराइयों का दुष्परिणाम दिखलाना चाहिए और प्रत्येक विवाह पर कड़ी दृष्टि रखना चाहिए, शारदा-क़ानून की उपयोगिता लोगों को समझानी चाहिए, इसका विरुद्धाचरण करने वालों को सामाजिक दण्डों का भय दिखाना चाहिए और यदि वे केवल भय दिखाने से न मानें तो उन्हें सचमुच दण्ड भी दिलाना चाहिए। धीरे-धीरे यह आदर्श उपस्थित करना होगा कि सभा के बाहर—'शुद्ध' के पहले ही—घर-वर देख कर विवाह का निश्चय करना इससे श्रेयस्कर है।

वेदना

[कुमारी बिजली बाला बसु]

(१)

जीवन की नीरस घड़ियों में
मेरी हृत्तन्त्री के तार!
कौन किया करता है तुझ पर
भाँति-भाँति के अत्याचार ?

(२)

उन घड़ियों में बैठ किसे तू
ऐ मेरे उर के झङ्कार!
सदा सुनाया करता छिप कर
अपनी मर्मव्यथा का सार ?

(३)

कितने दुःख भरे स्वर में तू
अपनी कथा सुनाता है ?
करुण रागिनी में क्यों विह्वल
राग पहाड़ी गाता है ?

(४)

कितने रात्रि-दिवस तू ने
जग कर काटे हैं कितनी बार!
रो-राकर गूँथा है तू ने
आँसू के सुमनों का हार॥

(५)

मन! रह मौन सहो तुम निशिदिन
जग का यह निष्ठुर व्यवहार!
फटे हुए अञ्चल में 'बिजली'
सञ्चित कर ले यह उपहार!!
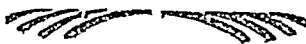
सुशिक्षा

[श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

अब तो सुमित्रा का विवाह हो जाना चाहिए।"

"हाँ, विवाह तो होना ही चाहिए, परन्तु × × ×।"

"परन्तु क्या?"

"मैट्रिक की परीक्षा का नतीजा निकल आवे।"

"सो तो निकल ही आवेगा।"

मई मास की दोपहर का समय है। एक बड़े कमरे में बिजली के पङ्खे के नीचे बैठे हुए एक प्रौढ़ा स्त्री तथा एक प्रौढ़ पुरुष परस्पर उपर्युक्त वार्त्तालाप कर रहे हैं। स्त्री के इस वाक्य पर कि "सो तो निकल ही आवेगा" पुरुष ने कहा—"निकल तो आवेगा, परन्तु यह भी तो देखना है कि सुमित्रा पास होती है अथवा फ़ेल।"

"यदि फ़ेल हो गई तो क्या करोगे?"—स्त्री ने पूछा।

"तो एक साल और पढ़ावेंगे। कम से कम उसे मैट्रिक तो पास कर ही लेना चाहिए, अन्यथा मैट्रिक तक पढ़ाने से क्या लाभ होगा?"

"उसे नौकरी करनी है क्या?"

"नौकरी न करनी हो तब भी मैट्रिक पास तो हो ही जाना चाहिए।"

"लड़की सयानी बहुत हो गई, यह समझ लो। इस वैशाख से सत्रहवें बरस में पड़ी है।"

पुरुष हँस पड़ा, बोला—तो इससे क्या हुआ? सत्रह-अठारह वर्ष से कम में तो विवाह होना ही न चाहिए।

"कहाँ आठ-नौ बरस में विवाह हो जाता था, कहाँ सत्रह-अठारह पर नौबत पहुँच गई।"

"आठ-नौ वर्ष की उम्र में होता था तभी तो सारी ख़राबियाँ थीं।"

"न कहीं ख़राबी थी। क्या ख़राबी थी?"

"विधवाएँ अधिक होती थीं, लड़कियों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता था, समय के पूर्व बच्चे होते थे, अतएव दुर्बल तथा अल्पायु होते थे, तीस वर्ष के भीतर ही स्त्रियाँ वृद्धा हो जाती थीं।"

स्त्री ने मुस्करा कर कहा—अब कहने को चाहे जो कहो, मेरा ब्याह भी तो दस बरस की उमर में हुआ था, मैं कौन बूढ़ी हो गई या मेरा स्वास्थ्य ख़राब हो गया?

"अपनी बात जाने दो, वह समय ही और था।"

"वही समय अब भी है।"

"हम लोग कितने संयम से रहे हैं, यह भी पता है? इतना संयम इस ज़माने में कोई कर सकता है?"

"समझदार करते ही हैं।"

"समझदार शिक्षा से ही होता है। इसीलिए आजकल भली भाँति शिक्षा देने के पश्चात् विवाह करना चाहिए।"

"सारी उमर शिक्षा ही दिए जाय, बस?"

"सोलह-सत्रह वर्ष अधिक नहीं होते।"

"ख़ैर, तुम जानो, मुझे जो कुछ ठीक जँचा वह मैंने कह दिया। अपने-पराए नित्य टोकते हैं।"

"टोकने दो। हमें अपनी समझ से काम करना चाहिए, दूसरों की समझ से नहीं।"

दोनों मौन हो गए। इसी समय हठात् कमरे के द्वार पर पद-शब्द सुनाई पड़ा। स्त्री ने चौंक कर द्वार की ओर ताकते हुए पुकारा—सुमित्रा!

द्वार पर से मधुर स्वर में किसी ने कहा—हाँ माता जी।

"चली आ बेटी, बाहर क्यों खड़ी है।" द्वार पर की चिक उठी और एक षोड़शी ने कमरे में प्रवेश किया। षोड़शी का वर्ण गौर तथा नख-शिख साधारणतया सुन्दर था। वह आकर शिष्टतापूर्वक माता के समीप बैठ गई।

थोड़ी देर तक तीनों आदमी चुप बैठे रहे। हठात् पुरुष ने कहा—तेरा रिज़ल्ट आने ही वाला है?

षोड़शी ने कहा—हाँ, तीन-चार दिन में आ जावेगा।

"तू तो पास हो ही जावेगी?"

"देखिए, आशा तो ऐसी ही है।"

स्त्री बोल उठी—मैंने तो सत्यनारायण की कथा

मान रक्खी है। भगवान पास कर दे, पढ़ाई से छुट्टी तो मिले।

सुमित्रा बोल उठी—अभी छुट्टी कैसे मिलेगी, अभी तो बी० ए० पास करना है।

इतना सुन कर पुरुष ने स्त्री की ओर एक मर्मभेदी दृष्टि डाली। वह दृष्टि स्त्री से मौन-भाषा में कह रही थी, अब कहो ?

स्त्री बोली—बी० ए०, बी० ए० कुछ नहीं, इतना पढ़ लिया, बहुत है।

सुमित्रा ने कहा—वाह! अभी मैंने पढ़ा ही क्या है? असली पढ़ाई तो कॉलेज में आरम्भ होती है।

"होती हो चाहे न होती हो, अब तेरा पढ़ना नहीं होगा। क्या सारी उमर पढ़ा ही करेगी?"

"सारी उमर क्यों, केवल चार वर्ष की बात और रह जायगी।"

"चार बरस कुछ होते ही नहीं?"

"चार वर्ष पलक झपकते बीत जाते हैं।"

"हूँ, बीत जाते हैं, कहने में कुछ लगता है? विवाह हो जायगा तो चार वर्ष में दो बच्चों की माँ हो जायगी।"

सुमित्रा ने लज्जावश अपना सिर नीचा कर लिया। पुरुष ने मुस्कराते हुए कहा—तेरी माँ को तेरे विवाह की बड़ी जल्दी है।

सुमित्रा की माता बोली—हाँ, हाँ, मुझे जल्दी है, तुम्हें जल्दी थोड़ा है, तुम तो बुढ़ापे में विवाह करोगे!

सुमित्रा मुख नीचा किए हुए धीमे स्वर में बोली—अभी से विवाह की कौन जल्दी है ?

"तुझे जल्दी नहीं है कि हमें?"—सुमित्रा की माता बोली।

"मैं बी० ए० पास करने के पहले विवाह ही न करूँगी।"—सुमित्रा ने उसी प्रकार मुख नीचा किए हुए कहा।

"हाँ, न करेगी, बाप की शह पा रही है न!"

पुरुष ने मुस्करा कर कहा—मेरी शह क्यों पा रही है ? यह तो उसकी इच्छा की बात है।

"चलो, बस रहने दो। सारा काम इसी की इच्छा से होगा, हम तो जैसे कोई चीज़ ही नहीं।"

"यह कौन कहता है, तुम तो बहुत बड़ी चीज़ [illegible]। के पिता ने मुस्करा कर कहा।

"बड़ी चीज़ होने से क्या होता है, मेरी कोई सुनता है?"

"ढङ्ग की बात कहोगी तो अवश्य सुनी जायगी।"

"तो मैं सब बेढङ्गी ही कहती हूँ?"

"तुम्हें दूसरे की इच्छाओं और अभिलाषाओं का भी ध्यान रखना चाहिए।"

"जो बात उचित होगी उसका ध्यान रक्खा जायगा, बेढङ्गी बातों का ध्यान नहीं रक्खा जाता।"

सुमित्रा ने सिर उठा कर दृढ़तापूर्वक कहा—माता जी, मैं बी० ए० तक तो अवश्य पढ़ूँगी।

"ज़बरदस्ती पढ़ेगी?"

"नहीं, ज़बरदस्ती नहीं, आपकी आज्ञा से।"

"मैं तो ऐसी आज्ञा देने से रही।"

"क्यों?"—सुमित्रा ने पूछा।

"सबसे पहली बात तो यह है कि अब तेरा विवाह होना चाहिए। विवाह होने के पश्चात् तेरी ससुराल वाले चाहें तो तुझे उमर भर पढ़ावें, हमें कोई आपत्ति नहीं।"

सुमित्रा के पिता ने कहा—ससुराल वाले तो पढ़ा चुके।

"आवश्यकता क्या है, इसे नौकरी करना है क्या?"

"शिक्षा, शिक्षा के लिए होती है, नौकरी के लिए नहीं।"—सुमित्रा के पिता ने कहा।

"होती होगी, हमें क्या करना है?"

"चाहे जो हो, मैं बी० ए० तक अवश्य पढ़ूँगी—" इतना कह कर सुमित्रा वहाँ से उठ गई।

२

सुमित्रा के पिता पं० लक्ष्मणप्रसाद मिश्र एडवोकेट एक प्रतिष्ठित वकील हैं। उनके केवल दो सन्तान हैं, एक सुमित्रा, दूसरा एक पुत्र, जिसका वयस ८-९ वर्ष के लगभग है।

मिश्र जी सुधरे हुए विचारों के आदमी हैं। अपनी कन्या सुमित्रा को उच्च शिक्षा देना उनके जीवन की एक महत्वाकांक्षा थी। परन्तु उनकी अर्द्धाङ्गिनी उनकी इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति में बाधा डालती थी। उनकी पत्नी चाहती थी कि सुमित्रा का विवाह शीघ्र से शीघ्र हो जाय। परन्तु सुमित्रा की हार्दिक इच्छा यह थी कि वह कॉलेज की शिक्षा प्राप्त करे, और सुमित्रा के पिता भी

यही चाहते थे। विवाह होने के पश्चात् शिक्षा प्राप्त करना असम्भव हो जायगा, इस कारण मिश्र जी सुमित्रा के विवाह के सम्बन्ध में निश्चेष्ट थे।

सुमित्रा ने मैट्रिक क्लास प्रथम श्रेणी में पास किया, इससे सुमित्रा और उसके पिता दोनों का उत्साह बढ़ गया। माता के विरोध करते रहने पर भी सुमित्रा कॉलेज में प्रविष्ट हो गई। माता बेचारी विवश होकर बैठ रही। दो शक्तियों के सामने उसकी शक्ति व्यर्थ हो गई।

एक दिन मिश्र जी के कनिष्ठ भ्राता पं० शङ्करप्रसाद आए। पं० शङ्करप्रसाद नौकरी पेशा आदमी थे और बाहर रहा करते थे। जिस समय वह आए उस समय मिश्र जी कचहरी गए हुए थे और सुमित्रा कॉलेज।

शङ्करप्रसाद ने भावज से पूछा—सुमित्रा नहीं दिखाई पड़ती?

भावज ने रूखेपन के साथ उत्तर दिया—कॉलेज गई है।

"हैं! कॉलेज गई है? क्या कॉलेज में पढ़ती है?"

"हाँ, कॉलेज में पढ़ती है।"—भावज ने यह वाक्य स्पष्ट व्यङ्ग्य के साथ कहा।

"कॉलेज में पढ़ाने की कौन आवश्यकता थी? विवाह कब होगा?"

"पहले पढ़ तो ले, विवाह हो चाहे न हो।"

"अब तो सोलह-सत्रह वर्ष की हो गई होगी?"

"सत्रहवें में पड़ी है।"

"तब तो अब शीघ्र से शीघ्र विवाह होना चाहिए।"

"होना तो सब कुछ चाहिए; पर कोई देखे और समझे तब तो।"

"तुमने नहीं कहा?"

"मेरी कोई सुनता है? मुझे तो मूरख समझते हैं। वे दोनों बाप-बेटी एक हो गए, मेरी कुछ नहीं चली। और चले कैसे? वे दोनों पढ़े-लिखे हैं, मैं गँवार हूँ।"

"भाई साहब यह बात बेजा कर रहे हैं।"

"बेजा तो ऐसी कर रहे हैं कि भगवान ने चाहा तो हाथ मल कर पछताएँगे।"

"और क्या, बहुत सयानी हो जायगी तो फिर विवाह होना कठिन हो जायगा।"

"जो कुछ भाग्य में बदा है वह होगा, किया क्या जाय!"

"भाई साहब को आने दो, मैं कहूँगा।"

"कहना, शायद तुम्हारे कहने से ही कुछ प्रभाव पड़े, मैं तो कह कर हार गई।" शाम को जब मिश्र जी कचहरी से वापस आए तो शङ्करप्रसाद ने कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करने के पश्चात् पूछा—सुमित्रा के विवाह की बातचीत कहीं लगी है?

मिश्र जी मुस्करा कर बोले—अभी तो वह पढ़ ही रही है, अभी विवाह की कौन जल्दी है?

"सुमित्रा के लिए कॉलेज की शिक्षा तो अनावश्यक थी।"

"क्यों, अनावश्यक क्यों थी?"

"आवश्यकता ही क्या थी?"

"यदि लड़कों के लिए कॉलेज की शिक्षा आवश्यक है तो लड़कियों के लिए भी है। जो लड़कों के लिए अमृत है वही लड़कियों के लिए भी है। जो लड़कों के लिए विष है वही लड़कियों के लिए भी है।"

"विष और अमृत की बात दूसरी है। मैं तो शिक्षा की बात कह रहा हूँ।"

"वही बात शिक्षा के लिए भी लागू है।"

"क्या आप यह नहीं सोचते कि लड़की का वयस अधिक हो गया तो विवाह में अड़चन पड़ेगी?"

यह बात सुन कर मिश्र जी बहुत हँसे, हँसते हुए बोले—तुम पढ़े-लिखे होकर ऐसी बात कहते हो? ऐसी सुशिक्षित लड़की से अपने लड़के का विवाह करने में लोग अपना सौभाग्य समझेंगे। जिस समय यह बी० ए० पास कर लेगी उस समय देखना लोग कैसे लालायित होते हैं।

"मुझे इसमें थोड़ा सन्देह है।"

"तुम्हें बिलकुल सन्देह न होना चाहिए।"

"ख़ैर, यह अपना-अपना विचार है। मुझे तो यह बात अच्छी नहीं लगी। यह वयस विवाह का है, इस वयस में विवाह अवश्य हो जाना चाहिए।"

"यह कोई आवश्यक बात नहीं है!"

"अभी तक तो आवश्यक ही रही है।"

"हाँ, परन्तु अब ज़माना उन्नति कर रहा है।"

"ख़ैर, मैं इस विषय पर आपसे बहस नहीं करना चाहता। मेरे विचार बहस से नहीं बदल सकते।"

"यह तुम्हारी सङ्कीर्णता है।"

"जो कुछ समझिए।"

"समझना क्या? दो ही रास्ते हैं, या तो मान लो या मनवा दो।"

"न मैं मान सकता हूँ और न मनवा सकता हूँ। दोनों बातें मेरी सामर्थ्य के बाहर हैं।"

"तब इस विषय पर कुछ कहना-सुनना बिल्कुल व्यर्थ है।"

"अच्छी बात है, न कहूँगा।"

इसके पश्चात् फिर दोनों में इस विषय पर कोई वार्त्तालाप नहीं हुआ।

अवसर पाकर भावज ने देवर से पूछा—क्यों, बातचीत की थी?

"हाँ, की थी, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ।"

"मैं तो जानती ही थी, वह किसी की मानने वाले नहीं हैं।"

"क्या कहूँ, भाई साहब बड़ी भूल कर रहे हैं। अभी उन्हें नहीं जान पड़ता, परन्तु आगे चल कर पता लगेगा।"

"मेरी जान को आफ़त होगी।"—सुमित्रा की माता बोली।

"इसमें क्या सन्देह है।"

"इसीसे मैं तो रात-दिन यही मनाती रहती हूँ कि भगवान मुझे बुला ले।"

"ख़ैर, इन बातों से कोई लाभ नहीं। जो पड़े उसे धैर्य के साथ सहन करना चाहिए। और यह कोई आवश्यक नहीं कि जो कुछ हम-तुम सोचते हैं वैसा ही हो। सम्भव है, ईश्वर सब अच्छा ही करे। कम से कम आशा ऐसी ही रखनी चाहिए।"

"मैं भी भगवान से यही मनाती रहती हूँ कि जो कुछ हो, अच्छा ही हो। भूल तो हो ही रही है।"

"भूल तो बहुत बड़ी हो रही है।"

३

तेईस वर्ष के वयस में सुमित्रा ने बी० ए० की डिगरी प्राप्त कर ली। दो बार वह फ़ेल हुई—एक बार सेकेण्ड इयर में और एक बार फ़ोर्थ इयर में। इस समय सुमित्रा देवी पूरी लेडी बनी रहती हैं। आँखों पर चश्मा चढ़ा रहता है, जो आवश्यकता की अपेक्षा अधिकतर शृङ्गार के विचार से धारण किया गया है; क्योंकि चश्मा लगाना सुशिक्षितों का शृङ्गार है। ऊँची एड़ी का शू पैरों को सुशोभित करता है। जिस समय सुमित्रा देवी अपने इन सुशिक्षा के चिन्हों से सुसज्जित होकर निकलती हैं, उन्हें संसार तृणवत् दिखाई पड़ता है। पुरुष-जाति उन्हें स्वार्थी तथा स्वेच्छाचारी दिखाई पड़ती है और स्त्री-जाति (अपने को छोड़ कर) मूर्ख और गँवार।

सुमित्रा देवी ने लड़कों के साथ कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की थी, इस कारण उनमें स्त्रियोचित लज्जा की मात्रा बहुत कम हो गई थी। और मुख पर कर्कशता तथा धृष्टता का रङ्ग चढ़ गया था। अब मिश्र जी को सुमित्रा के विवाह की चिन्ता उत्पन्न हुई। वह शीघ्र से शीघ्र उसका विवाह कर डालने को उद्यत थे। प्रतिष्ठित और धनाढ्य आदमी थे, इस कारण प्रभावशाली भी यथेष्ट थे। उनका सङ्केत होते ही लोग चारों ओर लड़के की खोज करने लगे। सुशिक्षित लड़की के लिए लड़का भी सुशिक्षित होना चाहिए, इस कारण लड़का मिलने में कुछ विलम्ब लगा। अन्त में एक लड़का ऐसा मिल गया जो सुशिक्षित भी था और कुल इत्यादि की दृष्टि से मिश्र जी के मनोनुकूल था।

लड़के के पिता पं० गजाधरप्रसाद शुक्ल ने यह कहा कि हमें तो सम्बन्ध करने में कोई आपत्ति नहीं है, एक बार हम अपने बड़े भाई साहब से परामर्श कर लें।

अपने भाई साहब से परामर्श करने के लिए शुक्ल जी को समय दिया गया।

बड़े भाई से वार्त्तालाप होने पर उन्होंने पूछा—लड़की का वयस क्या है?

"तेईस वर्ष की है।"—शुक्ल जी ने उत्तर दिया।

"हैं! तेईस वर्ष की! बहुत सयानी हो गई, अभी तक विवाह क्यों नहीं किया गया?"

"अभी तक पढ़ती रही। बी० ए० पास है।"

"अच्छा!"

"हाँ, साधारण लड़की थोड़ी ही है।"—बड़े भाई साहब ने सिर हिलाया और कुछ मुस्कराए।

शुक्ल जी ने पूछा—क्यों, क्या बात है?

"बात कुछ नहीं; परन्तु यह सम्बन्ध नहीं होगा।"

"क्यों?"

"लड़की बहुत सयानी हो गई है और लड़कों के साथ पढ़ती रही है।"

शुक्ल जी ने सिर झुका लिया। थोड़ी देर तक विचार करने के पश्चात् बोले—आपका कथन यथार्थ है, यह सम्बन्ध नहीं होना चाहिए।

"समझ गए न? मेरा विचार ग़लत तो नहीं है?"

"नहीं, आपका विचार ठीक है।"

"सुशिक्षित लड़की लेकर हमें करना क्या है, कुछ नौकरी तो कराना नहीं है? हमारे लिए तो इतना ही यथेष्ट है कि हिन्दी भली-भाँति पढ़-लिख लेती हो, कुछ अङ्गरेज़ी भी जानती हो तो हर्ज नहीं, और गृह-कार्य में कुशल हो।"

"ठीक है?"

"सुशिक्षित लड़कियों की अपने पति से बहुत कम पटती है, क्योंकि वे बात-बात में अपनी सुशिक्षा और अधिकारों को पेश करती हैं।"

"आपका विचार ठीक है।"

इस प्रकार अपने बड़े भाई से परामर्श करने के पश्चात् शुक्ल जी ने सम्बन्ध करने से इन्कार कर दिया।

शुक्ल जी की अस्वीकृति पाकर मिश्र जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्हें स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि उनकी सुमित्रा जैसी सुशिक्षिता कन्या से कोई भी समझदार आदमी अपने लड़के का विवाह करना नापसन्द करेगा। इसके प्रतिकूल उन्हें यह आशा थी कि सुमित्रा से विवाह करने के लिए लोग लालायित हो उठेंगे। अन्त में उन्होंने सोचा कि शुक्ल जी पुराने आचार-विचार के आदमी हैं, अतएव एक सुशिक्षिता कन्या से अपने लड़के का विवाह करने में भय खाते हैं। आधुनिक सुधरे हुए आचार-विचार के मनुष्य विवाह-सम्बन्ध करने के लिए सहर्ष तैयार हो जाएँगे।

यह सोच कर उन्होंने नवीन उत्साह के साथ पुनः वर की खोज आरम्भ की।

परन्तु उन्हें इस बार भी हतोत्साहित होना पड़ा। जहाँ कहीं भी उन्होंने विवाह की बातचीत की, वहीं से उन्हें टका-सा जवाब मिला। अब वह धैर्यच्युत होने लगे।

एक दिन उन्होंने अपने एक मित्र से बातचीत करते हुए कहा—मुझे नहीं मालूम था कि संसार में इतने मूर्ख लोग हैं कि गुण की क़द्र करना भी नहीं जानते।

मित्र ने कहा—वे गुण समझें तब तो क़द्र करें? जिसे आप गुण समझते हैं उसे वे अवगुण समझते हैं।

"ओफ़ ओह! इस मूर्खता का भी कुछ ठिकाना है!"

"इसमें थोड़ी कठिनता यह पड़ गई कि एक तो लड़का लड़की के बराबर पढ़ा-लिखा होना चाहिए, दूसरे उम्र में भी साल-दो साल बड़ा होना चाहिए।"

मिश्र जी बोले—तो यह कौन कठिन बात है? सुशिक्षित लड़कियाँ नहीं मिलतीं, लड़के तो तमाम हैं। लड़कों की कमी थोड़ा ही है, कमी साहस और समझ की है।

"यदि कोई सुशिक्षित लड़का स्वतन्त्र विचार का हो अर्थात् वह अपने माता-पिता की परवा न करे, तो वह विवाह कर सकता है, अन्यथा कान्यकुब्जों में ऐसे लोग तो बहुत कम निकलेंगे जो इतनी सयानी लड़की से अपने लड़के का विवाह करने को तैयार हो जावें।"

"सयानी हो गई तो कुछ पाप किया है, घर में बैठे-बैठे सयानी थोड़ी हो गई।"

"यह ठीक है, परन्तु जब कोई समझे तब न?"

"न समझें तो अपनी ऐसी-तैसी में जायँ, मैं अन्त-र्जातीय विवाह कर दूँगा।"

"इसका आपको पूर्ण अधिकार है, शौक़ से कीजिए।"

"मुझे नहीं मालूम था कि हमारी जाति में इतने सङ्कुचित विचार के लोग भरे पड़े हैं। तमाशा यह है कि जिन्हें मैं सुशिक्षित और सुधरे हुए विचारों का समझता था, वे भी बग़लें झाँकते हैं।"

"यही बात है। हाथी के खाने के दाँत और, दिखाने के और होते हैं। दूसरों को उपदेश देने या दूसरों की खिल्ली उड़ाने के लिए लोग बड़ी जल्दी तैयार हो जाते हैं, परन्तु जब अपने ऊपर पड़ती है तो बग़लें झाँकने लगते हैं। संसार इसी का नाम है।"

"ऐसे संसार को दूर से नमस्कार है।"

अन्त में सब ओर से निराश होकर एक दिन उन्होंने सुमित्रा की माता से कहा—सुमित्रा से विवाह करने के लिए तो कोई माई का लाल तैयार नहीं होता, अब क्या किया जाय?

सुमित्रा की माता बोली—मैं तो पहले ही कहती

थी कि अब न पढ़ाओ, ब्याह कर दो। परन्तु तुम न माने, अब मैं क्या बताऊँ ?

"अरे तो मैं क्या जानता था कि लोग इतने मूर्ख हैं ?"

"मूर्खता की बात नहीं, चलन की बात है।"

"ख़ाक चलन की बात है ! इसमें चलन काहे का है ? बात सारी यह है कि हमारी जाति बड़े सङ्कुचित विचारों की जाति है। इसीलिए यह ख़राबी है।"

"जब लोगों को कम उम्र की, अच्छी पढ़ी-लिखी और गृह-कार्य में चतुर लड़कियाँ मिलती हैं, तो इतनी सयानी लड़की से वह क्यों विवाह करें ?"

"बी० ए० पास लड़की मिलती है ?"

"बी० ए० पास लेकर किसी को क्या करना है ?"

"हाँ, गँवारों को बी० ए० पास लड़की लेकर क्या करना है ?"

"दुनिया में सब गँवार ही तो बसते हैं। लाख वह मेरी लड़की है, पर बात साफ़ ही कहूँगी। घर का काम-काज उसे रत्ती भर नहीं आता। मुझे वह समझती ही नहीं कि किस खेत की मूली हैं। रात-दिन किताबें लिए बैठी रहती है। पानी भी कोई दूसरा पिलाए तभी पिए, नहीं प्यासी ही बैठी रहे। घमण्ड इतना हो गया है कि अपने आगे किसी को कुछ समझती ही नहीं। ऐसी लड़की को लेकर कौन आफ़त मोल ले ? इसके अतिरिक्त लड़कों के साथ पढ़ी है, लोग सौ तरह की बातें सोचते हैं। इतनी सयानी लड़की और लड़कों के बीच में चार-पाँच बरस रही, यह कोई अच्छी बात है ? यदि मेरा लड़का होता तो मैं भी ऐसी लड़की से उसका विवाह करने को तैयार न होती। अभी उस दिन पड़ोस की एक स्त्री आई थी। कहती थी कि उसके पति ने सुमित्रा को सन्ध्या समय दो लड़कों के साथ जाते देखा था। यह तो दशा है, फिर भी दूसरों को दोष देते हो। मैं तो अभी तक अपने मुँह पर ताला लगाए बैठी थी, आज बात पड़ी तब कहना पड़ा। अपना दाम खोटा, परखने वाले का क्या दोष ? भाग्य में यह देखना भी बदा था।"

इतना कहते-कहते सुमित्रा की माता के नेत्रों से अश्रुपात होने लगा।

पत्नी की बात सुन कर मिश्र जी अवाक् हो गए, उनके मुँह से एक शब्द भी न निकला।

सुमित्रा की माता आँसू पोंछते हुए बोली—जिस समय पड़ोसिन ने लड़कों के साथ सुमित्रा के घूमने की बात कही थी, उस समय यही इच्छा होती थी कि धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ।

इस बार मिश्र जी गला साफ़ करके बोले—तो इसमें हर्ज क्या है ? शिक्षित लड़कियों से यह आशा कैसे हो सकती है कि वे घर में क़ैदी बन कर रहेंगी ?

"हर्ज न हो, पर कहने वालों की जीभ तो नहीं पकड़ी जा सकती और देखने में भी बुरा लगता है। सयानी लड़की का लड़कों के साथ घूमना कोई अच्छी बात नहीं। हाँ, घर का कोई बड़ा-बूढ़ा साथ हो तो कोई हर्ज नहीं।"

मिश्र जी विचार में पड़ गए। कुछ देर तक विचार करने के पश्चात् बोले—निस्सन्देह लड़कियों को उच्च शिक्षा देने में यह अड़चन अवश्य पड़ती है। अभी हमारा समाज इतना उन्नत नहीं हुआ कि इन बातों को सीधी दृष्टि से देख सके।

"उन्नत हो भी जाय तब भी यह तो कभी अच्छा नहीं समझा जा सकता कि सयानी लड़कियाँ लड़कों के साथ बेरोक-टोक घूमें।"

"ख़ैर, यह तो सब ठीक है; पर अब सुमित्रा के विवाह के लिए क्या उपाय किया जाय ?"

"मैं क्या बताऊँ, मैं पर्दे में बैठने वाली क्या कर सकती हूँ ?"

"अब केवल दो उपाय हैं—या तो ग़ैर जाति में विवाह किया जाय या तो लड़की को डॉक्टरी-वकालत पढ़ाया जाय।"

"ग़ैर जाति में विवाह कैसा ?"

"यही दूसरे ब्राह्मणों में, क्षत्री अथवा वैश्यों में।"

मिश्र जी की पत्नी ने पति की ओर इस प्रकार देखा मानो पति की इस बात को उपहास समझ रही हो। उसने कहा—क्या उलटी-पलटी बातें कहते हो, मुझे ऐसी हँसी अच्छी नहीं लगती।

"हँसी नहीं, ऐसा होता है।"

पत्नी नेत्र विस्फारित करके बोली—नीच जातियों में होता होगा, भले आदमियों में कभी न होता होगा।

"भले आदमियों में भी होता है।"

इतना कह कर मिश्र जी ने कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों के उदाहरण पेश किए।

सब सुन कर पत्नी बोली—होता होगा, हमसे यह नहीं होगा। कुँवारी बैठी रहे वह अच्छा; पर ग़ैर जाति से ब्याह नहीं करेंगे।

"पहले लड़की से भी तो पूछो कि उसके क्या इरादे हैं। वह कुँवारी बैठना चाहेगी तब तो बैठेगी। तुम्हारे बिठाए से थोड़ा ही बैठेगी?"

"बैठेगी नहीं तो जायगी कहाँ? मनमानी करेगी तो यहाँ रहने पायगी?"

"मेरी समझ में तो अब यही अच्छा है कि जब स्वतन्त्र किया है तो पूरी तरह स्वतन्त्र कर देना चाहिए, जो उसकी इच्छा हो, वह करे।"

"ख़ैर आज पूछूँगी, देखूँ क्या कहती है।"

दूसरे दिन सुमित्रा की माता ने पति से कहा—मैंने सुमित्रा से बात की थी। उसे तो विवाह की बिल्कुल चिन्ता नहीं है।

"तो फिर करना क्या चाहती है?"

"वह कहती है कि वकालत पढ़ूँगी।"

"तो फिर क्या राय है?"

"जैसी तुम्हारी राय हो।"

"मैं अपनी राय तो बता चुका। मेरी राय में तो उसे वकालत पढ़ा कर पूर्णतया स्वतन्त्र कर दो। यदि उसे विवाह करना होगा तो वह अपना पति स्वयम् ढूँढ लेगी। हम-तुम दोष से मुक्त रहेंगे।"

पत्नी ने एक दीर्घ-निश्वास छोड़ कर कहा—अच्छी बात है, ऐसा ही करो। जो उसके भाग्य में बदा है वह हो रहा है, हम-तुम उसका भाग्य थोड़ा ही पलट सकते हैं।

इसके पश्चात् मिश्र जी ने सुमित्रा के विवाह का विचार बिल्कुल त्याग दिया और उसे वकालत पढ़ाना आरम्भ कर दिया।

☾ ☾ ☾

आँसू

[श्री० 'वीरात्मा']

(१)

बह रहे हिय के करुण हैं भाव क्या?
या छलकते प्रेम के रस-बिन्दु हैं?
या व्यथित नैराश्य-निशि में मोददा,
आँख-नभ में उग रहे नव इन्दु हैं?

(२)

स्वर्ग के अनमोल मोती ओस क्या—
चूमते हैं चाव से आँखें कमल?
या कपोलों पर मलिनता देख कर—
नेत्र जल की कर रहे झड़ियाँ अमल?

(३)

या सहज कोमल लजीली आँख पर,
हो गया निष्ठुर-नजर-आघात क्या?
सूज कर बहने लगीं जो दुःख से,
खा चुकी हैं चोट हा! अज्ञात क्या?

(४)

या विरह की ताप से झुलसा हृदय,
हो रहा अभिषिक्त शीतल वारि से?
भर रही हैं आँख प्याले प्रेम के,
पी रहा प्यासा 'हृदय' आभार से॥

स्त्री को प्राप्त नहीं हैं। मुस्लिम संस्कृति ने हिन्दुओं की इस धारणा को और भी बल दिया। उसमें भी इसी प्रकार के दुर्गुणों को देख कर उसने अपने स्वतः प्राप्त अधिकार को और भी न्याय्य समझा। इस प्रकार स्त्री-समुदाय के विरुद्ध भारत में एक व्यवस्थित वातावरण उत्पन्न हो गया और अन्य बातों में चाहे दोनों जातियाँ एक-दूसरे का सिर तोड़ती रही हों, कम से कम मानव जाति की जन्मदात्री को मनुष्योचित अधिकारों से वञ्चित रखने में दोनों ने अपूर्व एकता का परिचय दिया। बहुत दिन हुए बड़ी व्यवस्थापिका सभा में वर्तमान डिप्टी प्रेसीडेण्ट मौलवी मुहम्मद याक़ूब ने अपनी ओजस्विता के धाराप्रवाह में यह कह यहाँ तक कह डाला था कि पुरुष-स्त्री दो अलग-अलग लिङ्ग हैं, दोनों को प्रकृति ने अलग-अलग काम सौंपे हैं, और हमारे पूर्वजों ने इस बात को समझा और इसीके अनुरूप वे आचरण करते रहे; और अब तक का अनुभव बताता है कि वे ग़लती पर नहीं थे। यदि वर्तमान सामाजिक सङ्गठन में कोई नवीनता प्रकट की गई तो उसका रूप क्या होगा, इसका कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। शायद बुरा ही होगा। (हमें माननीय मौलवी साहब के ठीक-ठीक शब्द स्मरण नहीं हैं।)

पर मौलवी साहब इस बात को भूल गए कि समय की प्रेरणा (Spirit of the time) भी कोई वस्तु होती है। जो नियम-उपनियम पुराने ज़माने के लोगों के लिए लागू हो सकते थे, उन्हीं को यदि उनके असली रूप में आज बर्ता जाय तो शायद स्वयं मौलवी साहब ही सबसे पहले असन्तुष्ट हो उठेंगे। मानव जाति आगे बढ़ रही है। यही उसके जीवन का लक्षण है। और उस जाति का जो अङ्ग इस विश्वव्यापी 'मार्च' की दुन्दुभी की ओर से कान बन्द किए रहेगा उसके अङ्ग शिथिल पड़ जायँगे और धीरे-धीरे उनमें सड़ाव उत्पन्न होने लगेगा। और वृद्ध समुदाय 'धर्म-सङ्कट में' का चीत्कार चाहे जितना किया करे, नवीन सन्तति अपेक्षित सुधार किए बिना कभी सन्तुष्ट न रहेगी। सत्य विश्व-व्यापी और चिरन्तन है ही और उसके प्रकाश से हम अपने समाज के मुख्य अङ्ग को और अधिक वञ्चित नहीं रख सकते। भारतीय नारी स्वभाव से ही अल्प सन्तोषी है, और यदि उसे केवल मनुष्योचित अधिकार दे दिए जायँ, केवल उसके स्त्री होने के कारण उसे कार्यशीलता के किसी विशिष्ट अंश के अनुपयुक्त न समझा जाय तो वह और कुछ न चाहेगी। अन्यथा उसमें भी विद्रोह के लक्षण दिखाई देने लगे हैं और यदि हमने उसे उसके अधिकार हँसी-ख़ुशी न दे दिए तो वह कुछ समय बाद न केवल अपने अधिकार ही छीन लेगी, बल्कि वह और आगे बढ़ेगी, और फिर उसमें भी उसी उच्छृङ्खलता के अणु उत्पन्न हो जायँगे जिनसे यूरोपीय पुरुष तक आ गए हैं। बाँध टूटने पर प्रवाह प्रबल रूप धारण कर लेता है, और एक बार मनुष्य उद्दण्डता धारण कर लेने पर सीमा तक आ पहुँचता है। यही जगत का नित्य नियम है और इसके आगे हमें चुपचाप सिर झुका देना चाहिए।

बहुत से लोग कह उठते हैं कि ये सब व्यर्थ की बातें हैं। यह जो सुधार, अधिकार और उद्धार का वितण्डावाद खड़ा किया गया है, इसमें स्त्रियों की कोई सहानुभूति नहीं है। वे अपनी स्थिति से सन्तुष्ट हैं। उन्हें और चाहिए क्या?—दो रोटी और सन्तान। पर इस प्रकार का दुर्बल तर्क पेश करने वाले शायद यह भूल जाते हैं कि इस प्रकार वे हमारे ही तथ्य की पुष्टि कर रहे हैं। स्त्रियों को इतना अपढ़ और पङ्गु बना दिया गया है कि न वे कुछ सोच-समझ सकती हैं और न कहीं चल-फिर सकती हैं। हम ऐसे अनेक नैतिक आदर्शवादियों को जानते हैं जो स्त्री-समाज को उच्च शिक्षा देना बाइबिल के निषिद्ध फल (Fobridden fruit) की नाईं भयानक समझते हैं; और जन-साधारण में तो यह धारणा फैली ही हुई है कि स्त्री पढ़ कर दुश्चरित्र हो जाती है। फिर इस विशाल समुदाय से किसी सहानुभूति की क्या आशा रक्खी जा सकती है। हमें याद पड़ता है कि हमने किसी अङ्गरेज़ी पुस्तक में पढ़ा था कि उस समय उस देश को पूर्णतया विजित समझना चाहिए जब स्वयं वहाँ के निवासी ही अपने आपको अपने विजेता से हेय समझने लगें। स्त्रियों के सम्बन्ध में भी यही बात है। हमने उन्हें लौह-शासन के नीचे दबा-दबा कर इतना स्वाभिमानहीन बना दिया है कि वे अपने लिङ्ग की उत्कृष्टता को भूल गई हैं। उनके सामने किसी ऐसे सुधार-अधिकार का नाम लीजिए, और वे विस्मय से अवाक् रह जायँगी। इससे

बम्बई सेवा-सदन की मन्त्रिणी

कुमारी बी० ए० इञ्जीनियर
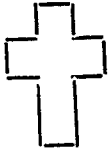
एम० ए०, एल्-एल्० बी०, एम० बी० ई०, जे० पी०

अर्थात्—

ईसा-चरित्र पर एक आलोचनात्मक दृष्टि

लेखक—श्री० प्रो० विश्वेश्वर जी, 'सिद्धान्त-शिरोमणि'

भूमिका-लेखक—आचार्य श्री० गङ्गाप्रसाद जी, एम० ए०, एम० आर० ए० एस०, चीफ़ जज

प्रोटेक्टिंग कवर सहित

सजिल्द

मूल्य २।।) रु० मात्र !
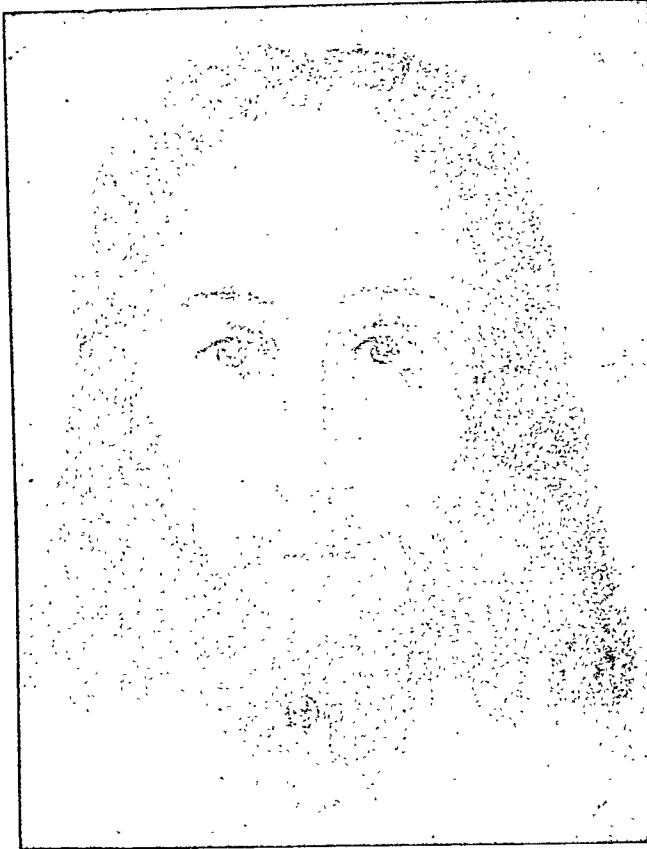
अत्यन्त सुन्दर छपाई

सचित्र

स्था० ग्रा० से १।।।=) मात्र !!

महात्मा ईसा

पुस्तक की भाषा परिमार्जित, मुहावरेदार और ओजस्विनी है तथा भाव अत्यन्त ऊँचे दर्जे के, सुन्दर और मँजे हुए; शैली अभिनव, आलोचनात्मक और मनोहारिणी; विषय चरम, चित्रण प्रथम श्रेणी का; और आलोचना एकदम निष्पक्ष सत्यं, शिवं, सुन्दरं है। पुस्तक साहित्य की स्थायी चीज़ है, उससे हिन्दी-साहित्य की गौरव-वृद्धि और आपकी अलमारी की श्री-वृद्धि होगी। कम से कम एक प्रति तो आप अवश्य ही ख़रीदिए !

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

अधिक दयनीय अवस्था और क्या हो सकती है ! इस आश्रित अस्तित्व (Parasitical existence) का अन्त करना व्यष्टि का भी उतना ही कर्त्तव्य है जितना समष्टि का, और बिना व्यक्तिगत सहयोग के इस प्रकार की कोई योजना सफल नहीं हो सकती।

—रुद्रनारायण अग्रवाल, बी० ए०

*　　*　　*

समाज-सुधार तथा 'चाँद'

'चाँद' की समाज-सेवाओं के विषय में अनेक लेख 'चाँद' तथा अन्य हिन्दी-पत्रों में निकल चुके हैं। कुछ लोग 'चाँद' की सुधार-प्रणाली से सहमत हैं, कुछ विरक्त, कुछ अप्रसन्न और कुछ क्रुद्ध। हिन्दू-समाज तथा हिन्दी-साहित्य में वर्षों से 'चाँद' की कार्य-प्रणाली पर टीका-टिप्पणी हो रही है। विदेश में होने से मुझे इस विषय का सम्पूर्ण साहित्य तो पढ़ने के लिए प्राप्त नहीं हो सका, परन्तु हाँ, जो कुछ भी मैंने पढ़ा है, उससे विदित हुआ है कि 'चाँद' की जिस शैली का लोगों ने—कुछ लोगों ने—विरोध किया है, उसी शैली में, परन्तु एक असमर्थनीय रूप में, 'चाँद' के विरुद्ध उन्होंने प्रहार किया है।

इस वाद-विवाद के होते हुए मैं इस विषय में कुछ लिखना अनावश्यक तथा अनुपयोगी समझता था। परन्तु कई घटनाओं ने मुझे इन पंक्तियों के लिखने के लिए विवश कर दिया। पहली बात तो यह है कि 'चाँद' का सम्बन्ध—मेरे विचार से—हिन्दी-साहित्य से उतना नहीं है, जितना हिन्दू-समाज से। 'चाँद' सहगल जी या अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व से बहुत परे है। वह समाज की सम्पत्ति है, समाज का सेवक है। इस कारण समाज के प्रत्येक सदस्य को निष्पक्ष रूप से 'चाँद' के कार्य की विवेचना का अधिकार है।

दूसरी बात बड़ी मनोरञ्जक है। इसका सम्बन्ध है हमारे समाज के अर्द्ध इङ्गलिश-हिन्दी-शिक्षित नवयुवकों से। ऐसे अनेक नवयुवकों ने 'चाँद' को कभी स्वप्न में भी नहीं पढ़ा; परन्तु उनके मस्तिष्क में 'चाँद' के साहित्य के विषय में बड़े हास्यास्पद विचार भरे हुए हैं। वे समझते हैं कि 'चाँद' एक तोता-मैना के क़िस्सों जैसी पुस्तिका है। अतः यदि वे 'चाँद' का कलेवर देखेंगे तो घृणा से नाक-भौं सिकोड़ लेगें, उसे पढ़ना तो कदाचित वे छूत की बीमारी मोल लेना समझते हैं। उनके यह विचार कहाँ से आए? अन्य मित्रों की सम्मतियों से—जो शायद उन्हीं की भाँति Second hand हों—तथा कुछ समाचार-पत्रों की समालोचनाओं से। जब मैं एडिनबरा से लन्दन आया तो एक मित्र बोले—भई, तुम्हारा एक लेख मैंने 'माधुरी' में पढ़ा था।

"कौन सा?"

"वही जो तुमने लन्दन के विषय में लिखा था।"

"परन्तु 'माधुरी' में तो मैंने इस विषय का कोई लेख नहीं भेजा।"

"वाह, भेजा कैसे नहीं? उसकी नक़ल मैं एक कॉपी पर कर लाया हूँ।"

मैंने वह कॉपी देखी। वह 'चाँद' में प्रकाशित मेरे 'लन्दन का प्रथम दर्शन' नामक लेख की नक़ल थी। मैं बोला—परन्तु, महाशय, यह लेख तो 'चाँद' में छपा था।

उनके मस्तक पर सिकुड़न पड़ गई और वे उपेक्षा-भरे स्वर में बोले—'चाँद?' 'चाँद' को तो मैं छूता भी नहीं।

मुझे हँसी आई। मैंने पूछा—फिर यह लेख आपने नक़ल काहे में से कर लिया?

वे कुछ देर सोच कर बोले—शायद वह 'चाँद' होगा। मैंने तो उसे 'माधुरी' समझ कर पढ़ा था।

मुझे हँसी भी आई और कौतूहल भी हुआ। इसी कारण मैंने फिर पूछा—ख़ैर, यह तो रहा। परन्तु आपको 'चाँद' बेचारे से इतनी घृणा क्यों है?

"घृणा न हो तो क्या प्यार हो? उसने हमारी स्त्रियों को ख़राब कर दिया है। सब वाहियात बातें उसमें भरी रहती हैं।"

"आपने 'चाँद' के कितने अङ्क पढ़े हैं?"

"पढ़े हैं? मैं उसे पढ़ना चाहता ही नहीं। उसकी वाहियात बातों के ही कारण उसे यू० पी० और सी० पी० में घुसने नहीं दिया जाता (?)। सारे समाचार-पत्र उसकी बुराई कर रहे हैं (?) अब उसे पढ़ता ही कौन है? और यही हाल उसकी पुस्तकों का है। 'अदालतों का इन्साफ़' तो बड़ी गन्दी पुस्तक है।"

मुझे उनके 'चाँद' सम्बन्धी विचारों से कुछ मत-भेद न था, परन्तु मुझे यह बात खटकी कि उनका आधार स्वयं-अनुभव न था। 'अबलाओं का इन्साफ़' तो मुझे पढ़ने को मिल न सकी। परन्तु खोज कर मैं एक अङ्क 'चाँद' का लाया और उनसे कुछ लेख पढ़ने के लिए कहा। पढ़ने के बाद वे कहने लगे—सब अङ्क बुरे ही थोड़े होते हैं। कभी-कभी अच्छा अङ्क भी निकल जाता है।

इस घटना का विस्तृत वर्णन देने का तात्पर्य यह दिखाना है कि कुछ महाशय 'चाँद' की नीति को समझे बिना ही उसके विषय में बेतुकी सम्मतियाँ बना लेते हैं।

तीसरी बात, जिसके कारण मुझे इन पंक्तियों के लिखने का विचार हुआ है, स्वयं 'चाँद' की नीति है। शायद मेरी धारणा को सम्पादक महोदय ठीक न समझें अथवा पाठक उससे सहमत न हों, परन्तु मैं समझता हूँ कि 'चाँद' की नीति है, 'भारत को समुन्नत राष्ट्रों की श्रेणी में पहुँचाना।' अनेक पाठक इस मत का समर्थन करेंगे कि हम अभी एक राष्ट्र नहीं बने हैं। यदि हम एक राष्ट्र हो जाते तो अब तक दूसरा राष्ट्र हमारे ऊपर आधिपत्य जमाए हुए न बैठा रहता। इसके अतिरिक्त हमारा समाज भी एक सङ्गठित तथा सुसम्बद्ध समाज नहीं है। अतः 'चाँद' की नीति पहले 'भारत को एक राष्ट्र बनाना' तथा फिर 'उसे समुन्नत राष्ट्रों की श्रेणी में पहुँचाना' हो जाती है। इस नीति को 'चाँद' किस प्रकार व्यवहार में ला रहा है तथा उस व्यवहार-शैली से लोग क्यों असहमत हैं, यह समझने के लिए यहाँ, उसके मार्ग में जो आपत्तियाँ हैं, उनका विचार करना असङ्गत न होगा।

इस समय भारत की आत्मा जाग पड़ी है। लोग स्वतन्त्रता के लिए पागल हो रहे हैं। उन्हें बन्धन असह्य प्रतीत होने लगा है। परन्तु हममें से अनेक की दृष्टि केवल राजनैतिक बन्धन ही पर जाती है। उनका मत यह है कि राजनैतिक बन्धन ही हमारी सारी कुरीतियों का मूल है और ज्योंही हम उस बन्धन से मुक्त हुए कि देश का उत्थान हुआ। यह उनकी भूल है। और इस भूल का कारण यह है कि स्वतन्त्रता का उनका विचार मौलिक नहीं है, पश्चिम से लिया हुआ है। परन्तु पश्चिम में वह सामाजिक कुरीतियाँ नहीं हैं, जो हमारे यहाँ हैं। अतः हमें समाज, धर्म तथा राजनीति को साथ-साथ लेकर चलना है। मेरी समझ में, हम अपने बन्धन को तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—(१) राजनैतिक बन्धन (२) धार्मिक बन्धन (३) सामाजिक बन्धन।

राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना और बात है और वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त करना और बात। देश की स्वतन्त्रता और व्यक्तियों की स्वतन्त्रता में अन्तर है। अमेरिका स्वतन्त्र देश है, परन्तु केवल इसी कारण नीग्रो लोग अपने को स्वतन्त्र नहीं कह सकते। इसी प्रकार, मान लीजिए कि आज भारत को राजनैतिक स्वतन्त्रता मिल जाती है, तो क्या वह स्वतन्त्रता सबके लिए समान होगी? क्या अछूतों को उच्च वर्ण के हिन्दू समानता के अधिकार दे देंगे? क्या हिन्दू पुरुष अपनी स्त्रियों को समानता के अधिकार दे देंगे? अतः जब तक हमें धार्मिक तथा सामाजिक स्वतन्त्रता भी नहीं मिलती, केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता ही हमें समुन्नत राष्ट्रों की श्रेणी में नहीं पहुँचा सकती। जो यह कहते हैं कि राजनैतिक सुधारों के साथ सामाजिक सुधारों की आवश्यकता नहीं, वे भूल करते हैं। वास्तव में हमारी धार्मिक तथा सामाजिक गुलामी ही हमें आज राजनैतिक गुलाम बनाए हुए है। स्वतन्त्रता की अग्नि अभी तक हमारे बच्चे-बच्चे के हृदय में क्यों जाग्रत नहीं हुई? इसीलिए कि हमने समाज में, धर्म में, घर में कभी स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ा ही नहीं। बच्चे माँ-बाप के गुलाम, स्त्रियाँ पुरुषों की गुलाम, अछूत उच्च वर्णों के गुलाम, उच्च वर्ण वाले ब्राह्मणों के गुलाम और ब्राह्मण अपने मनगढ़न्त शास्त्रों के गुलाम। इस प्रकार इस गुलामी ने बन्धनों से जकड़े हुए समाज को रसातल में गिरा दिया है। हमारे उद्धार के लिए यह आवश्यक है कि राजनैतिक आन्दोलन के साथ-साथ समाज-सुधार का आन्दोलन भी पूर्ण वेग से जारी रक्खा जाय। यदि समाज की यही दशा रही तो स्वराज्य-गवर्नमेण्ट में भी, मालवीय-आचार्य जैसे महापुरुषों के रहते हुए, कुछ उद्धार होना कठिन है।

जो हिन्दू-समाज को दोष-रहित समझते हैं, वे मनमोदक खाते रहें, परन्तु जो वास्तविकता को जानना चाहते हैं, उन्हें समाज के पतन का दृश्य व्याकुल बना देगा। संसार के अन्य समाजों की दशा देख कर, हमें

स्वयं ही अपने समाज से घृणा हो जाती है। यहाँ कुछ सामाजिक समस्याओं का उल्लेख ही किया जाता है :—

(१) हमारे समाज में एक बड़ा दोष है कि हमें यही प्रतीत नहीं होता कि हममें दोष हैं। हम अब भी अपनी प्राचीन सभ्यता की डींगें मारते हैं। जो रोगी यह स्वीकार ही नहीं करता कि उसे कोई रोग है, उसका अस्तित्व यदि मिट जाय तो इसमें दोष किसका? आर्य-समाज बड़ी उन्नत संस्था है, परन्तु उसके सभासद भी वेदों की दुहाई देकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री कर देते हैं। चाहे उन्हें हिन्दी का भी सम्यक् ज्ञान न हो, परन्तु यदि कहीं कोई नया आविष्कार हुआ तो वे चिल्ला उठेंगे—"यह तो हमारे वेदों में भी लिखा है।" सनातनधर्मी हैं रूढ़ियों के गुलाम। समाज के सारे दोष 'पुरखाओं' से चले आ रहे हैं, भला उन्हें अब वे कैसे दूर कर सकते हैं?

(२) समाज का सङ्गठन—जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, इसमें निरङ्कुशता का राज्य है। अछूतों तथा स्त्रियों की पराधीनता इसकी द्योतक हैं।

(३) शिक्षा का अभाव।

(४) स्वास्थ्य-रक्षा के प्रबन्ध की कमी।

(५) व्यभिचार—यह एक कीड़ा है, जो समाज के ढाँचे को खाए जा रहा है। हमारे आचार-विचार रसातल को जा रहे हैं। घरों में होने वाले व्यभिचार की सीमा नहीं। पिता-पुत्री और श्वसुर-बहू तक नौबत पहुँच चुकी है। और इसको रोकना तब तक असम्भव होगा, जब तक हमारे समाज के गले में, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह विधवा-विवाह-निषेध, तलाक़ के नियमों का अभाव, अनमेल-विवाह, छोटी-छोटी बिरादरियों का जीवित रहना, तथा काम-विज्ञान की शिक्षा का अभाव आदि कुरीतियाँ, तौक़ की भाँति पड़ी रहेंगी।

(६) आपस का व्यवहार—इस विषय में तो हम बिलकुल शून्य हैं। सौजन्य का हमारे यहाँ कोई नियम नहीं। चाहे जब, चाहे जहाँ नङ्गे-उघारे चल दिए। न स्त्रियों का विचार; न पड़ोसियों की सुविधा-असुविधा का विचार। बोलचाल में शिष्टता नहीं। बेईमानी परले दरजे की है। समाज में से एक-दूसरे का विश्वास उठ गया है। भाई को भाई पर विश्वास नहीं, स्त्री को पुरुष पर नहीं, नौकर को स्वामी पर नहीं, स्वामी को नौकर पर नहीं। दूसरा मरे या जिए, अपने मतलब से काम है।

(७) एक भाषा, एक वेश आदि का अभाव।

(८) वेश्याओं का प्रश्न।

यह हैं हमारी कुछ सामाजिक समस्याएँ, जिनके सुलझाए बिना समाज एक आदर्श समाज नहीं बन सकता। और इन्हीं समस्याओं पर प्रकाश डालने का कार्य 'चाँद' ने अपने ऊपर लिया है। इस सूची के एक-एक प्रश्न पर विचार करने से पता लग सकता है कि 'चाँद' ने समाज का कितना उपकार किया है।

(१) प्रथम तो 'चाँद' ने अपने प्रभावशाली तथा निर्भीक सम्पादकीय स्तम्भों में इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि राजनैतिक सुधारों से पूर्व समाज-सुधार की आवश्यकता है। राष्ट्र-निर्माण में सामाजिक स्वातन्त्र्य की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी राजनैतिक स्वातन्त्र्य की। पाठकों ने यदि 'चाँद' के फ़रवरी के अङ्क में कॉङ्ग्रेस के सभापति के सम्भाषण पर सम्पादकीय टिप्पणी पढ़ी होगी तो उन्हें विदित हो गया होगा कि 'चाँद' को राजनैतिक अत्याचारों से भी अधिक व्याकुल बनाए हुए हैं सामाजिक अत्याचार, और जहाँ वह राजनैतिक स्वतन्त्रता का पक्षपाती है, वहाँ समाज-सुधार का भी उतना ही कट्टर हामी। 'चाँद' की इन टिप्पणियों का यह बड़ा नैतिक बल-प्रदर्शन है। जहाँ देश के पूज्य नेता लोग स्वराज्य लेकर भी दस वर्ष की बच्चियों के विवाह नियमानुकूल रहने देना चाहते हैं, वहाँ 'चाँद' की यह खरी बातें साधारण अर्थ नहीं रखतीं। 'चाँद' का शब्द समाज के क्रन्दन की प्रतिध्वनि है और इसके लिए समाज एक दिन अवश्य आभारी होगा।

(२) शिक्षा, स्त्री-शिक्षा, अछूतोद्धार स्त्रियों के समानाधिकार आदि विषयों पर 'चाँद' ने जो कार्य किया है, वह अनुकरणीय है तथा देश-विख्यात है।

(३) जात-पाँत तथा उनकी कुरीतियों के खण्डन का कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है, जो 'चाँद' के विशेषाङ्कों से ही प्रतीत होता है।

(४) व्यभिचार के दूर करने के लिए 'चाँद' ने जिस साहस से काम लिया है, वह यदि आज के बगुला-भगत स्वीकार न करेंगे तो समाज की भावी सन्तान अवश्य उसके लिए ऋणी रहेगी। ऊँची नाक वालों का

भण्डाफोड़ करके, अत्याचार-पीड़ित अबलाओं के रक्त खौलाने वाले लोमहर्षण पत्रों को प्रकाशित करके, विधवा-विवाह, तलाक़, मातृ-मन्दिर आदि के पक्ष में आन्दोलन करके 'चाँद' ने समाज की अनुपमेय सेवा की है। सदाचार जिस प्रकार एक व्यक्ति का, उसी प्रकार एक समाज का, आभूषण है, नहीं-नहीं जीवन है। और जब उस पर कुठाराघात हो गया तो फिर रह क्या गया? अतः प्रत्येक समाज-सुधारक का कर्त्तव्य है कि वह समाज के सदाचार की सबसे पहले रक्षा करे। परन्तु कितने ऐसे हैं जो निर्भीक होकर सचाई को प्रकाशित कर सकें? राजाओं, रानियों, धनिकों तथा धर्म के ठेकेदारों के पापों के विषय में जब तक खुल्लमखुल्ला आन्दोलन न होगा, तब तक वे चेतेंगे नहीं। समाज की जीवन-शक्ति के ह्रास का सबसे बड़ा कारण समाज के यह भीतरी शत्रु हैं और इनके विरुद्ध युद्ध घोषित करके 'चाँद' ने एक अपूर्व साहस का परिचय दिया है।

यह सब कुछ होने पर भी 'चाँद' का विरोध क्यों? इसका उत्तर कठिन नहीं। किसी भी देश का इतिहास उठा कर पढ़िए, समाज के तीव्र समालोचकों का किसी न किसी रूप में विरोध अवश्य हुआ है। फ्रान्स में प्रसिद्ध समाज-सुधारक रूसो का विरोध हुआ था। सुक़रात को विष-पान करना पड़ा था। जर्मनी में लूदर का विरोध हुआ था। अमेरिका में ग़ुलामी के विरोधियों को बड़ी यातनाएँ सहनी पड़ी थीं। ईसा को सूली पर चढ़ना पड़ा था। इङ्गलैण्ड में प्यूरीटन लोगों (Puritans) को, जो समाज की कुरीतियों को दूर करना चाहते थे, बड़ी यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ी थीं। हमारे ही देश में, प्रातःस्मरणीय महर्षि दयानन्द को विष-पान करना पड़ा था। फिर यदि 'चाँद' का विरोध हो रहा है तो इसमें आश्चर्य ही क्या? यह एक स्वाभाविक बात है कि लोग चाहे स्वयं अपने दोषों को जानते हों, परन्तु यदि कोई दूसरा उन दोषों की ओर इशारा करे तो उसे वह अपनी पराजय समझ लेते हैं।

'चाँद' के विरोधियों में कुछ तो वह हैं, जिनका विरोध 'चाँद' करता है। उनके विषय में कुछ कहना व्यर्थ है। एक प्रकार से समाज के लिए यह शुभ चिन्ह है कि उन लोगों में प्रतिक्रिया के भाव तो उत्पन्न हुए।

विरोधियों की दूसरी श्रेणी में वे हैं, जो 'चाँद' की प्रणाली से सहमत नहीं हैं। उनकी दो-तीन सच्ची, परन्तु शिथिल, आपत्तियाँ हैं।

एक आपत्ति तो यह है कि 'चाँद' मिस मेयो तथा अन्य विदेशियों की भाँति समाज की निन्दा करता है। परन्तु इस आपत्ति के करने वाले यह नहीं देखते कि एक ही बात को भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से कह कर भिन्न-भिन्न रूप दिया जा सकता है। यह तो महात्मा गाँधी जैसे नेता भी मान चुके हैं कि मिस मेयो ने अनेक बातें सच्ची कही हैं और उनसे भारतवासियों की आँखें खुलनी चाहिएँ। क्या राष्ट्रीयता के इस युग में अछूतों के साथ पूना जैसे नगर में भी अमानुषिकता का व्यवहार नहीं किया जा रहा है? क्या कलकत्ते के काली-मन्दिर में अब भी धर्म के नाम पर सैकड़ों जीवों की हिंसा नहीं होती? क्या बड़े-बड़े तीर्थों में अब भी व्यभिचार का बाज़ार गर्म नहीं रहता? क्या इस जाग्रति के दिनों में भी मालवीय जी जैसे नेता एसेम्बली में शारदा-बिल का विरोध नहीं करते? यह ठीक है कि मिस मेयो इन्हीं बातों का उल्लेख करती है और 'चाँद' भी इन्हीं के विरुद्ध प्रहार करता है। परन्तु मिस मेयो का उद्देश्य है इन बातों को दिखा कर ब्रिटिश सत्ता का समर्थन करना और 'चाँद' का उद्देश्य है इनके विरुद्ध आन्दोलन करके समाज को ब्रिटिश सत्ता के विरोध के लिए तैयार करना। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि एक पुरुष व्यभिचारी हो गया है। दो व्यक्ति उसके इस दोष को उस पर प्रगट करते हैं। पहला कहता है—'तुम व्यभिचारी हो, अतः तुम अपनी स्त्री को रखने योग्य नहीं, उसे मुझे दे दो।' दूसरा उसी बात को दूसरे उद्देश्य से कहता है—'तुम व्यभिचारी हो, अतः तुम्हारी साध्वी स्त्री दुखी हो रही है। उसके लिए तुम व्यभिचार छोड़ दो।' क्या पाठकों को इन दोनों के कथन एक समान दीख पड़ते हैं?

दूसरी आपत्ति है कि 'चाँद' हिन्दू-समाज में विदेशी—विशेष कर पश्चिमी—आदर्शों का प्रचार कर रहा है। कभी-कभी तो यह आपत्ति उनके मुखों से सुनाई देती है, जो सोलहों आने विदेशी सभ्यता में रँगे हुए हैं। कुछ भी हो, यह विचार समाज की सङ्कुचित मनोवृत्ति के द्योतक हैं। यदि पश्चिम का कोई सिद्धान्त हमारे लिए लाभदायक है, तो उसे क्यों न अपनाया जाय? पश्चिम वाले क्यों उन्नति कर रहे हैं? इसीलिए कि वे चारों ओर के

विचारों से समाज के भण्डार को भरते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि वे उसे ऐसा रूप दे देते हैं कि वह विदेशी नहीं दीखता। किसी भी समाज में यह एक बड़ा भारी गुण है। इङ्गलैण्ड का उदाहरण लीजिए—इनकी भाषा दूसरों से ली हुई है और अब भी सैकड़ों शब्द अन्य भाषाओं से लेकर शुद्ध कर लिए जाते हैं। Loot, Dacoity, Bazar, Khaki आदि सैकड़ों शब्द भारतीय भाषाओं से लिए गए हैं। इनकी लिपि रोमन लोगों से ली गई है। इनके अङ्क अरब वालों से, इनका चिकित्सा-शास्त्र ग्रीक लोगों से; आदि-आदि। रस्म-रिवाजों के अपनाने में भी यह पीछे नहीं रहते। फिर हम यदि तलाक़ तथा अन्य उपयोगी प्रथाओं को अपना लें तो क्या हानि होगी? जिनका धर्म एक लकीर खींच देने से नष्ट हो जाता है, वह अपना तमाशा बनाए रक्खें; परन्तु समाज की आवश्यकताएँ तो समय के परिवर्तन के ऊपर छोड़नी पड़ेंगी। इसके अतिरिक्त, यह सबका अनुभव है कि ज्यों-ज्यों संसार के भिन्न-भिन्न भागों के बीच आवागमन सरल होता जाता है, त्यों-त्यों एक देश के आचार-विचार दूसरे देशों पर प्रभाव डालते जाते हैं। भारत को विदेश के अनेक सिद्धान्तों को अपनाना ही पड़ेगा। अच्छा तो यह है कि उन्हें अभी से संशोधित करके भारतीयता का रूप दे दिया जाय।

तीसरी आपत्ति—शायद सबसे ज़ोरदार है कि 'चाँद' के साहित्य में अश्लीलता का आधिक्य रहता है। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, इस आपत्ति के उठाने वाले यह भूल जाते हैं कि 'चाँद' का सम्बन्ध साहित्य से उतना नहीं है जितना समाज से। अतः सामाजिक कुरीतियों के ऊपर लिखने में साहित्यिक शिष्टता को पूर्णतया निभाया नहीं जा सकता। 'व्यभिचार' जैसे विषयों पर खुली बातें लिखने में कुछ अश्लीलता आए बिना रह ही नहीं सकती। पश्चिमी देशों में भी इस विषय के सुधारकों की भाषा कभी शिष्ट नहीं होती। यह ठीक है कि प्रयत्न करने पर कहीं-कहीं भाषा को अधिक परिमार्जित किया जा सकता है, परन्तु कठिनता तो यह है कि लोगों के अश्लीलता के विचार की कोई कसौटी नहीं है। जिस बात को एक अश्लीलता कहता है, दूसरे को वही शिष्ट मालूम होती है। हमारे साहित्य में तो गुप्तेन्द्रियों का वर्णन करना ही अश्लीलता है। वैज्ञानिकों का मत है कि नवयुवकों को इन्द्रिय-विज्ञान की शिक्षा अवश्य ही देनी चाहिए, नहीं तो उन्हें बड़ी हानि उठानी पड़ती है। पश्चिमीय देशों में गुप्तेन्द्रिय रोग (Venereal diseases), सन्तति-निग्रह (Birth control) आदि के लिए शिक्षा-संस्थाएँ (Clinics) स्थापित हो गई हैं। हमारे यहाँ इन बातों की चर्चा करना अश्लीलता है। मुझे अच्छी तरह से याद है कि कई वर्ष पूर्व 'चाँद' में 'सन्तति-निग्रह' के ऊपर एक लेख निकला था, उस पर कई आधुनिक पत्रों तक ने आपत्ति उठाई थी। शायद अब बहुत से व्यक्ति इसका समर्थन करते हैं, फिर भी कट्टरता के रिश्तेदारों की कमी नहीं है। और यह एक गर्व की बात है कि 'चाँद' ने इन प्रश्नों का महत्व समझ लिया है और विरोध की उपस्थिति में भी वह इन पर प्रकाश डालता आ रहा है।

'चाँद' के मार्ग में अनेक बाधाएँ हैं, इसमें सन्देह नहीं। उसका ध्येय असीम है, इसमें भी सन्देह नहीं। परन्तु आशा है कि उसके सञ्चालक निर्भयता तथा साहस से समाज की सेवा इसी प्रकार करते जायँगे। आज समाज उनकी सेवाओं का मूल्य न समझे, परन्तु कभी वह भावी इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में लिखी जायँगी। 'चाँद' यदि दृढ़तापूर्वक मार्ग-प्रदर्शन करेगा तो मुझे विश्वास है कि वे नवयुवक, जिनके हृदय समाज के पतन पर रक्त के आँसू रो रहे हैं, 'चाँद' के पीछे और उसके साथ अवश्य होंगे।

—(डॉक्टर) धनीराम 'प्रेम', लन्दन

* * *

जापान में विवाह-सम्बन्धी नए विचार

संसार के सब उन्नत देशों में विवाह के प्रश्न पर बड़ी गम्भीरता के साथ विचार हो रहा है और विवाह-सम्बन्धी बहुत से पुराने विचार, रस्म व रिवाज उठते जा रहे हैं। जापान पर पश्चिमीय देशों के विचारों का बड़ा असर पड़ा है। जैसे उसने अनेक बातों में बड़ी उन्नति कर ली है, उसी तरह वह विवाह-सम्बन्धी पुराने विचार छोड़ कर नए विचार ग्रहण कर रहा है और इस सम्बन्ध में भी बहुत आगे बढ़ रहा है। वहाँ की

बम्बई में महिलाओं की एक विराट सभा का दृश्य, जिसमें पं० मोतीलाल जी नेहरू व्याख्यान दे रहे हैं।

लड़कियाँ अब यह पसन्द नहीं करतीं कि वे पत्थर मानी जायँ और उनके माता-पिता बिना समझे-बूझे उन्हें किसी के भी सुपुर्द कर दें। वे अपने को मनुष्य समझने लग गई हैं और मनुष्य की तरह जीवन बिताना चाहती हैं।

जापान में मध्य युग में यही होता था कि माता-पिता छोटी उम्र में ही अपनी लड़की के लिए वर खोजते थे और विवाह कर देते थे। प्रायः वर-वधू की उम्र बहुत कम होती थी और अनेक बार वधू की अपेक्षा वर की उम्र बहुत अधिक होती थी। एक बार वैवाहिक सम्बन्ध हो जाने पर फिर वह टूट नहीं सकता था। स्त्री के जीवन का एकमात्र उद्देश्य अपने पतिदेव की इच्छा के अनुकूल जीवन बिताना और उसे हर तरह से खुश रखना होता था। उसे अपनी कोई आकांक्षा न होती थी। उसकी हालत पशुओं से भी बदतर होती थी। वह किसी भी पुरुष के साथ अपनी ज़िन्दगी बिताने के लिए बाध्य कर दी जाती थी।

अब जापान में शिक्षा का बड़ा प्रचार हुआ है और वहाँ बड़ी जाग्रति हुई है। पश्चिमीय देशों के आचार-विचार का उस पर बड़ा प्रभाव पड़ रहा है। अब वहाँ मध्य युग के रस्म-रिवाजों का अन्त हो रहा है और नए-नए विचार फैल रहे हैं। अब वहाँ छोटी उम्र में विवाह नहीं होता और स्त्रियाँ मनुष्य मानी जाती हैं। युवतियों का विवाह सामान्यतः बीस-बाईस वर्ष की उम्र में और युवकों का विवाह पचीस-छब्बीस वर्ष की उम्र में होता है। इस उम्र में वे विवाह का अर्थ समझने के योग्य हो जाते हैं, और उनका मानसिक तथा शारीरिक विकास भी पर्याप्त रूप से हो चुका रहता है। सामान्यतः माता-पिता ही अपने लड़के-लड़कियों के लिए विवाह ठहराते हैं, लेकिन वे प्रायः अपने लड़के-लड़कियों की इच्छा

बम्बई के आज़ाद-मैदान में जुलूस में भाग लेने वाली स्त्रियों को पुलिस वाले लाठियों से पीट रहे हैं।
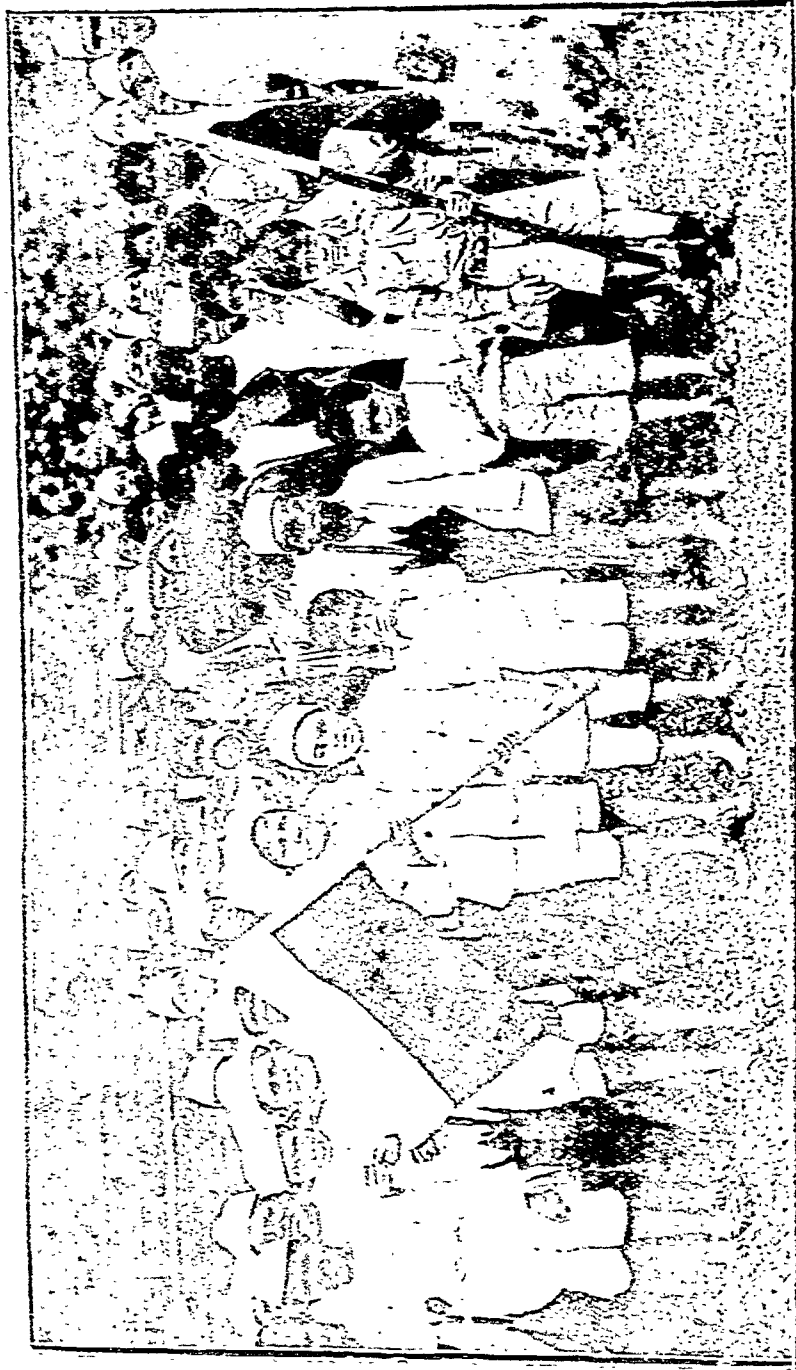
बम्बई के बालकों की वानर-सेना का एक दृश्य। इसमें दस वर्ष से कम उम्र के बालक सम्मिलित हो सकते हैं।

देहली में श्रीमती सत्यवती जी की जेल-यात्रा का दृश्य। श्रीमती जी पुष्प-हारों से लदी गाड़ी में खड़ी हुई हैं।

जान लेते हैं। अगर किसी युवती को किसी युवक से वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ना पसन्द नहीं होता तो माता-पिता उसकी बात मान लेते हैं और उसकी इच्छा के विरुद्ध काम नहीं करते।

सच बात तो यह है कि युवक और युवतियों को अपनी पसन्द से अपना-अपना साथी चुनने का अधिकार है। माता-पिता, मित्र और सम्बन्धियों को चाहिए कि वे युवकों और युवतियों को इस तरह अपनी पसन्द से विवाह करने में पूरी-पूरी मदद करें। विवाहों की सफलता पर समाज की बहुत कुछ भलाई निर्भर है। इसीलिए यह बड़े पुण्य का काम है कि युवकों और युवतियों को अपनी पसन्द के अनुसार विवाह करने में पूरी सहायता दी जाय।

भारत के युवकों और युवतियों को भी अब उठना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि उनके विचारों में परिवर्तन हो रहा है और वे यह नहीं चाहते कि उनकी इच्छा जाने बिना ही उनका विवाह हो जाय, लेकिन अभी उनकी दृढ़ता में बड़ी कमी मालूम होती है। युवकों और युवतियों को साफ़-साफ़ और दृढ़ता के साथ कह देना चाहिए कि किसी युवक का किसी युवती से तब तक वैवाहिक सम्बन्ध नहीं हो सकता जब तक एक-दूसरे को देख न लें तथा एक-दूसरे का मन मिल न जाय। विवाह पवित्र सम्बन्ध है और यह सम्बन्ध सारी ज़िन्दगी के लिए होता है। ऐसी स्थिति में यह सम्बन्ध तब तक नहीं किया जाना चाहिए जब तक युवक और युवती एक-दूसरे को जान न लें। मित्रता तभी होती है जब अच्छी तरह जान-पहचान हो जाती है और मन मिल जाता है। विवाह तो मैत्री से बढ़ कर है। विवाह का अर्थ तो युवक और युवती का परस्पर स्नेह, एक का दूसरे के दुख से दुखी और सुख से सुखी होना, एक का दूसरे के हर काम में सहायता करने की योग्यता रखना और सदा सहायता करना है। अगर विवाह है तो यही है, बाजा-गाजा, पालकी-नालकी, हाथी-घोड़ा, फुलवाड़ी-आतशबाज़ी, नाच-गाना, खाना-पीना आदि विवाह नहीं

है। इन सबके न होते हुए भी वे युवक-युवती विवाहित हैं, जिनका मन मिल गया है। इन सारे धूम-धामों के होते हुए भी वे युवक और युवती अविवाहित हैं, जिनका विवाह बिना एक-दूसरे को जाने ही हो गया है। उचित तो यही मालूम होता है कि विवाह के सम्बन्ध में जो बहुत सा व्यर्थ का दिखावा हो रहा है, वह बन्द हो और विवाह का वास्तविक अर्थ समझा जाय।

स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं !

इङ्गलैण्ड की सुप्रसिद्ध महिला उड़ाका मिस ए० जॉन्सन अपने वायुयान सहित, जिसने लन्दन से ऑस्ट्रेलिया तक अकेले वायु-यात्रा की। इस अनुपम साहस के लिए गत १२ अगस्त को सम्राट पञ्चम जार्ज ने मिस जॉन्सन को अपने महल में बुला कर सी० बी० ओ० का तमग़ा प्रदान किया।

इस बात के लिए कि विवाह वास्तविक अर्थ में विवाह हो, यह ज़रूरी है कि छोटी उम्र में लड़के-लड़कियों का एक-दूसरे से सम्बन्ध जोड़ना बन्द कर दिया जाय। बाल-विवाह-निषेध विधान (शारदा-क़ानून) बन गया है। यह ठीक है कि इस क़ानून के प्रचलित होने पर भी छोटी उम्र में विवाह होने की ख़बरें सुनने में आती हैं। इस सम्बन्ध में सरकार की भी कुछ ढिलाई मालूम होती है। ऐसा मालूम होता है कि क़ानून के प्रयोग में कड़ाई नहीं हो रही है। इसके सिवा क़ानून बन जाने से ही छोटी उम्र में विवाह होना बिलकुल बन्द हो जाने की आशा नहीं की जा सकती। चोरी और डाके के सम्बन्ध में भी क़ानून बने हुए हैं। इन अभियोगों में गिरफ़्तारियाँ होती हैं और सज़ाएँ भी। किन्तु फिर भी चोरियाँ होती ही हैं और डाके पड़ते ही हैं। अभी ये बन्द नहीं हुए हैं। हत्या करने पर फाँसी की सज़ा होती है, तो भी हत्याएँ होती ही हैं। इसी तरह यह नहीं कहा जा सकता कि बाल-विवाह-निषेध विधान के बनने से बाल-विवाह होना बिलकुल बन्द हो जायगा। तो भी यह निश्चय है कि इस क़ानून का कड़ाई के साथ प्रयोग होने तथा शिक्षा-प्रचार होने पर मुश्किल से ही छोटी उम्र में विवाह होने की ख़बर सुनने में आवेगी।

इस समय भारत में स्त्री-पुरुष का एक बार विवाह हो जाने पर फिर सम्बन्ध-विच्छेद नहीं हो सकता। (भारत में तो स्त्रियाँ पति के मर जाने पर भी सारी ज़िन्दगी अविवाहित ही रक्खी जाती हैं।) मध्य युग में जापान में भी सम्बन्ध-विच्छेद की प्रणाली नहीं थी। किन्तु अमेरिका के स्वतन्त्र विचारों का जापान पर बड़ा असर पड़ा है। अब जापान में स्त्री-पुरुष में पटरी न बैठने पर सम्बन्ध-विच्छेद हो सकता है और होता है। अवश्य ही सम्बन्ध-विच्छेद सामान्य नहीं है, बहुत कम ही होता है। आदर्श मैत्री वही है कि वह कभी न टूटे। एक बार मित्रता कर लेने पर उसे यथा-सम्भव निबाहना चाहिए। एक बार विवाह हो जाने पर उसे आजीवन निबाहने का प्रयत्न करना चाहिए। यही उत्तम और यही आदर्श विवाह है। लेकिन यदि किसी स्त्री और पुरुष के बीच न पटती हो, बराबर टण्टा-बखेड़ा हुआ करता हो, दोनों के लिए वैवाहिक जीवन बिताना बहुत ही दुःखमय हो गया हो, तो ऐसी सूरत में स्त्री और पुरुष दोनों के लिए यही उचित और उत्तम है कि वे सम्बन्ध-विच्छेद कर लें। विवाह सुख के लिए होता है और यदि विवाह से जीवन बड़ा दुःखमय हो जाय तो सम्बन्ध-विच्छेद ही धर्म हो जाता है। सम्बन्ध-विच्छेद की आवश्यकता ही न पड़े तो अच्छा है, लेकिन मजबूरी की हालत में

स्त्री और पुरुष को सम्बन्ध तोड़ने का अधिकार अवश्य होना चाहिए।

अच्छा तो यह है कि युवक और युवती एक-दूसरे से सम्बन्ध जोड़ते समय समाज के सामने भरी सभा में प्रतिज्ञा करें कि हम एक-दूसरे से सदा स्नेह करेंगे, एक-दूसरे की सदा सहायता करेंगे और सदा एक-दूसरे के सुख से सुखी और दुःख से दुखी होंगे। हम आजीवन अपना वैवाहिक सम्बन्ध निबाहेंगे, किन्तु यदि किसी कारण हमारा एक साथ जीवन बिताना असम्भव हो गया तो हम सम्बन्ध-विच्छेद कर लेंगे और उसके बाद हम आजीवन अविवाहित रहेंगे। अगर ऐसी प्रतिज्ञा की जाय, और इस प्रतिज्ञा के अनुसार चलने का पूरा प्रयत्न किया जाय तो सम्बन्ध-विच्छेद की सम्भावना मुश्किल से ही रह जायगी। अगर किसी स्त्री-पुरुष से इस पर भी न पटे तो वे निश्चय ही पृथक् जीवन बितावें। कुछ समय बाद यह स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि दोनों एक-दूसरे के प्रति किए व्यवहार के लिए पश्चात्ताप करें और एक साथ रहना स्वीकार कर लें। सच बात तो यह है कि आदर्श विवाह वही है, जिसमें सम्बन्ध-विच्छेद का अवसर ही उपस्थित न हो।

जापान में विवाह तथा सम्बन्ध-विच्छेद सम्बन्धी जो नए विचार फैले हैं, उन्हें वहाँ के पुराने ख़याल के बूढ़े लोग पसन्द नहीं करते। वे समझते हैं कि लोगों का आचार-विचार भ्रष्ट हो रहा है। लेकिन जापान का युवक-समाज उनकी परवाह नहीं करता। वहाँ के युवक समझते हैं कि वे पुरानी हानिकर कुप्रथाओं का त्याग करके समाज का उद्धार कर रहे हैं।

माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे अपने लड़के-लड़कियों का उचित प्रकार से पालन-पोषण करें, उनकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध करें, लड़कों को किसी उपयुक्त काम में लगावें, लड़कियों को भोजन बनाने, सीने-पिरोने तथा गृहस्थी के अन्य कामों में कुशल बनावें, छोटी उम्र में उनका विवाह कदापि न करें, अपने लड़के-लड़कियों को विवाह का अर्थ समझावें और उन्हें अपना साथी चुनने में सहायता करें। जो माता-पिता इतना करते हैं, वे निश्चय ही अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। अपने लड़के के लिए वधू या लड़की के लिए वर खोजना पिता का कर्त्तव्य नहीं है, वे व्यर्थ में अपने ऊपर यह झञ्झट लिए हुए हैं, उन्हें यह अनर्थक दायित्व छोड़ देना चाहिए और इस झञ्झट से बचे समय को लाभदायक कामों में लगाना चाहिए।

जापान के सामाजिक जीवन में अब स्त्रियों को उचित स्थान मिल रहा है और उनके अधिकार माने जाने लगे हैं। जापान की स्त्रियों के अधिकार के सम्बन्ध में एक बात जो बहुत खटकती है, वह यह है कि अभी तक उन्हें मताधिकार नहीं मिला है। लेकिन इस सम्बन्ध में
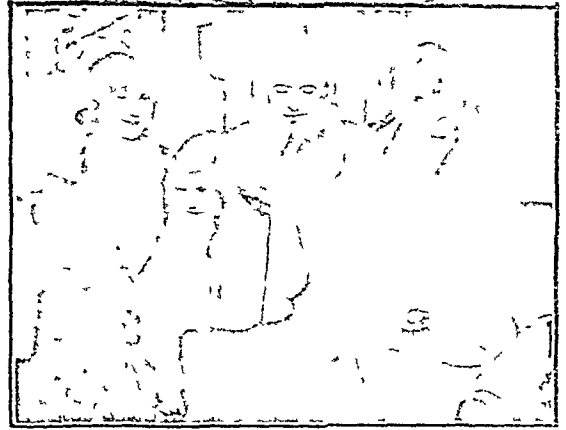
सौभाग्यशाली माता-पिता

मिस ए० जॉन्सन के माता-पिता और बहिनें लन्दन में बैठे हुए टेलीफ़ोन द्वारा ऑस्ट्रेलिया में अपनी पुत्री से बातें कर रहे हैं और उसकी वायुयान-यात्रा का वर्णन सुन रहे हैं।

आन्दोलन हो रहा है और आशा की जाती है कि उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में पुरुषों के समान अधिकार शीघ्र ही मिल जाएँगे तथा वे इस क्षेत्र में आकर समाज-हितकर कार्यों में पूर्ण सहयोग और योग्यता के साथ काम कर सकेंगी।

—उमाशङ्कर, उप-सम्पादक 'आज'

* * *

पुरुष और स्त्री की तुलना

स्त्री एक विषम समस्या है। उसकी मीमांसा विधाता भी नहीं कर सकता।

पुरुष कार्य है, स्त्री कारण है; स्त्री शक्ति है, पुरुष

करती है, तो उसकी प्रेम-धारा सर्वतोमुखी होकर प्रवाहित होने लगती है।

स्त्री दूसरों के हृदय में अनायास ही स्थान कर लेती है। उदारता स्त्री-गुण है। स्त्री की भावनाएँ इतनी तीव्र होती हैं कि वह बहुत सुख भोग करती है, परन्तु दुःख भी बहुत उठाती है। दूसरों की विपत्तियों का अनुभव वह बहुत शीघ्र कर लेती है और दूसरों के मनोभावों को समझने में भी उसे विलम्ब नहीं होता। अधिकांश स्त्रियाँ एक तीव्र दृष्टि से ही जान लेंगी कि किसी मनुष्य पर कैसी बीत रही है। वह प्रसन्न-चित्त है अथवा खिन्न। वह अपनी चेष्टाओं में सफल हुआ अथवा असफल, और विशेषतः वह अब भी उससे प्रेम करता है अथवा नहीं। स्त्री सहानुभूति की एक अपूर्व भेंट है, इसी से रोगी और पीड़ितों के लिए वह अत्यन्त आवश्यक व अमूल्य वस्तु है।

स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक भावुक हैं और उनके मनोभाव पुरुषों से ज़्यादा दृढ़ हैं। इसीसे स्त्रियाँ पुरानी रूढ़ियों और रीति-रिवाजों की अधिक हामी होती हैं। उनको अपने परिवार से सम्बन्ध रखने वाली किसी वस्तु के विछोह से असहनीय दुख होता है और वह अपने धार्मिक विचारों में दृढ़ होती हैं।

पुरुष अग्रगामी है, परन्तु स्त्री मार्ग-प्रदर्शक। साधारणतः स्त्री किसी आकस्मिक और प्रबल परिवर्तन को, नए नियमों और सिद्धान्तों को घृणा की दृष्टि से देखती है और वह जाति-भेद रखने में कट्टर होती है। मनुष्य सब अवस्थाओं के मनुष्यों से परस्पर मिलते हैं, परन्तु स्त्रियाँ नहीं।

पुरुष-स्वभाव बलिष्ट होता है, स्त्री-स्वभाव तीव्र। वह शारीरिक बल में पुरुष से कम है, अतएव वह अपना क्रोध वाणी से प्रकाशित करती है। इसीसे कहा गया है कि यद्यपि स्त्री की जिह्वा तीन इञ्च की ही होती है, परन्तु जब वह दुष्ट स्वभाव की होती है, तब छः फ़ीट लम्बे आदमी को उससे मार सकती है।

पुरुष नियमपूर्वक काम करने में अधिक निपुण होते हैं, स्त्री कार्य-चतुर अधिक होती है। पुरुष नियम बनाते हैं, स्त्री शिष्टाचार की नींव डालती है। वह अधिक व्यवहार-कुशल होती है। स्त्री का रसज्ञान लोक-प्रसिद्ध है। वे अल्प सामग्री से ही सुन्दरता व शोभा दिखला सकती हैं और निर्धनावस्था में भी सौन्दर्य की अनुपम छटा प्रदर्शित कर सकती हैं। वे शृङ्गार-प्रिय होती हैं।

स्त्रियाँ साधारणतः अपने व्यवहार में बड़ी उदार होती हैं। पुरुष किसी मनुष्य अथवा वस्तु को प्यार कर सकता है और नहीं भी कर सकता; परन्तु स्त्री सदा सीमा पर रहती है; वह या तो किसी वस्तु या मनुष्य को प्यार की दृष्टि से देखती है अथवा घृणा की।

पुरुष शीघ्रता में प्यार करता है। परन्तु स्त्री-प्रेम इतना प्रबल होता है कि वह जिसको प्यार करती है उसके किसी दोष को स्वीकार नहीं कर सकती और जिससे घृणा करती है उसका कोई गुण भी नहीं देख सकती। वह जिससे प्रेम करती है उसकी भूलों के लिए सैकड़ों बहाने ढूँढ़ निकालती है, किन्तु जिससे वह घृणा करती है, उसकी साधारण भूल भी उसके लिए असहनीय है। यही कारण है कि स्त्रियाँ वास्तविक असत्य बहुत कम बोलती हैं, क्योंकि वे प्रथम इसके कि कुछ कहती हैं अपने को समझा लेती हैं कि उनका कहना ठीक है। स्त्री चाहे कभी अपना पाप स्वीकार कर ले, पर अपना दोष नहीं स्वीकार करेगी। पुरुष कह देगा कि उससे अपराध हुआ, पर स्त्री केवल इतना कहेगी कि भूल हो गई।

स्त्री अपने गुप्त भेद को विशेषतः अपनी सम अवस्था वाली स्त्रियों के भेद को छिपाने में बड़ी निपुण होती है, पर दूसरों के भेद को नहीं।

पुरुष राज्य करता है, परन्तु स्त्री शासन करती है। पुरुष चाहे अगुआ बन जाय, परन्तु मार्ग स्त्री ही दिखाती है। पुरुष प्रस्ताव करता है, मनसूबे बाँधता है, परन्तु साहस स्त्री ही बँधाती है। पुरुष चाहे स्त्री को सता ले, परन्तु स्त्री का ही प्रभाव उस पर पड़ता है।

पुरुष परिवार का मुखिया होता है, परन्तु स्त्री परिवार का हृदय होती है। बिना स्त्री के गृह सुखी नहीं हो सकता, इसी कारण उसे गृहिणी कहते हैं। गृह की वास्तविक स्वामिनी वही है। पुरुष-प्रकृति प्रेम-रूपी जल की वैसी धारा नहीं है, जैसी स्त्री-प्रकृति। पुरुष प्रेम के प्रमाण नहीं चाहता, स्त्री का आत्मसमर्पण ही उसके लिए यथेष्ट प्रमाण है। परन्तु स्त्री पुरुष के प्रेम पर सर्वदा विचार करती रहती है। वह उसके प्रेम के निश्चित प्रमाण दिन में कई बार उसके मुख से व उसके नेत्रों द्वारा चाहती है।

पुरुष प्रेम में शीघ्रता करता है। वह क्रमागत तीव्र

भावों की प्रत्येक अवस्था में भागता-सा है; मानो वह उनसे पीछा छुड़ाना चाहता है। किन्तु स्त्री पग-पग पर रुकती है। पुरुष थोड़ा प्रेम करता है और अनेक बार, परन्तु स्त्री अधिक और कभी-कभी। स्त्री प्रेम की वेदी पर अपने समस्त जीवन को बलि कर सकती है, परन्तु पुरुष अपनी तृष्णा बुझाने के लिए कभी-कभी अपनी प्राणप्रिया की भी बलि दे देगा। स्त्री का प्यार लगातार होता है, परन्तु पुरुष को प्रेम के दौरे से आते हैं।

प्रेम पुरुष-जीवन की एक साधारण घटना है, परन्तु स्त्री-जीवन प्रेम पर ही अवलम्बित है। प्रेम की भिखारिणी को ठुकराना मानो सर्पिणी से खेलना है।

पुरुष अधिक निश्चयी, पुरुषार्थी और स्फूर्तिमान होता है, स्त्री अधिक सहनशील, शान्त, प्रेमी उदार व एकरस। अतएव पुरुष अच्छा सर्जन (चीर-फाड़ करने वाला) और स्त्री अच्छी नर्स (सेवा-शुश्रूषा करने वाली) बनती है।

स्त्री नम्र, लज्जावान, शीलवान और कोमल होती है। इसके विपरीत पुरुष कठोर, ढीठ और चञ्चल होता है।

स्त्री-पुरुष यदि एक दूसरे के मनोभावों को समझ लें तो उनका जीवन स्वर्गीय प्रकाश एवं स्फूर्ति से भर जाय और उनके जीवन में प्रेम की सुखद निर्झरिणी शत-शत धाराओं में प्रवाहित हो चले।*

—राधाकृष्ण अग्रवाल

* * *

हमारा कर्त्तव्य

यह नहीं कहा जा सकता कि कोई बात सनातन है, इसलिए स्वाभाविक भी है। हमारे समाज में कई चालें ऐसी हैं जिन्हें हम यदि सनातन ही कहें तो अनुचित न होगा। यहाँ तक कि ऐसी प्रथाओं और चालों ने कहीं-कहीं क़ानून का भी रूप धारण कर लिया है। ऐसी प्रथाएँ अभ्यास पड़ जाने के कारण भले ही स्वाभाविक मालूम पड़ें, पर स्वाभाविक शब्द के असली अर्थ में इनका अस्तित्व कहीं नहीं है। किसी ज़माने में—और शिक्षित कहे जाने वाले इस ज़माने में भी कहीं-कहीं—मनुष्य के द्वारा मनुष्य को दास बना कर रखना स्वाभाविक समझा जाता था। साम्राज्यवादियों की दृष्टि में "हमीं सब तरह से योग्य हैं, इसलिए हम दूसरों का रक्त चूस-चूस कर जिएँ" का सिद्धान्त बिलकुल स्वाभाविक दीखता है। किसी काल में वैधव्य प्राप्त होते ही स्त्री का अपने पति के साथ सती न होना अस्वाभाविक सा देख कर लोगों का विधवा पत्नी को पकड़ कर आग में झोंक देना भी स्वाभाविक समझा जाता था। कुछ समाजों में स्त्री का परदे के अन्दर सड़ना ही स्वाभाविक समझा जाता है। आज तक लड़की का अपने माता-पिता का घर छोड़ कर एक-दूसरे ही पुरुष के घर जीवन *भर के लिए चला जाना और उसके लिए अपने सारे* व्यक्तित्व की हत्या कर डालना स्वाभाविक समझा जाता है। एक पुरुष के तीन-तीन, चार-चार स्त्रियों से विवाह करने में कोई अस्वाभाविकता नहीं समझी जाती, पर एक स्त्री का एक से दूसरी शादी करना ज़रूर अस्वाभाविक समझा जाता है। और क्या कहें, स्त्री का मुग्धा, लज्जालु, भीरु और अबला तथा पुरुष की सदा आज्ञाकारिणी बना रहना आज भी स्वाभाविक गुण समझा जाता है। हमारा धर्म भी सनातन होने से हमें अपने लिए स्वाभाविक और नई बातें, नए सिद्धान्त अस्वाभाविक मालूम पड़ते हैं। पर अब प्रश्न यह है कि माता-पिता का अपनी सन्तान के पालने-पोसने और शिक्षा देने का भार जो सदा से चला आया है, स्वाभाविक है या अस्वाभाविक? यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो पिता के लिए यह भ्रम के कारण भले ही स्वाभाविक दिखाई दे, पर वास्तव में है यह उसी प्रकार अस्वाभाविक जिस प्रकार पति के ऊपर पत्नी के भरण-पोषण का भार। अपढ़ और अज्ञानान्ध स्त्रियाँ भले ही इस विचार का स्वागत न करें, पर समझदार स्त्रियाँ पति सरीखे किसी भी पुरुष द्वारा, साधारण स्थिति के रहते हुए, अपना पाला जाना अपमानजनक समझेंगी। हम पुरुष जब देखते हैं कि हमारे पास अपने पालन-पोषण के लिए पर्याप्त साधन हैं तो इस निमित्त अन्य किसी द्वारा द्रव्य ग्रहण करने में अपमान समझ कर सङ्कोच करते हैं। प्रेम से किसी का दिया हुआ लेना अथवा निकम्मेपन के कारण लेना अलग बात है। इसी प्रकार स्त्री भी अपने भर्ता के, अथवा लड़की अपने पिता के समर्थ रहते हुए अन्य पुरुष

* डॉ० बरनार्ड हॉलैण्डर के एक लेख के आधार पर।

द्वारा दिए हुए द्रव्य को स्वीकार करते हुए अपमान समझती है। कन्या पिता के समर्थ रहते हुए पति के अथवा अन्य रिश्तेदारों के द्रव्य को इसलिए स्वीकार करती है कि उसको सिखाया जाता है कि "पति ही तेरा पालन-पोषण करेगा और इसलिए अब तू पति की दी हुई वस्तु द्रव्य आदि से सन्तोष करना" अथवा "फ़लाने फ़लाने रिश्तेदारों से तो रुपया लिया ही जाता है, इनसे न लेगी तो किससे लेगी" इत्यादि। यह बात यदि स्वाभाविक ही हो तो इसका स्त्री-समाज पर उतना हानिकारक प्रभाव न पड़े जितना कि इस समय पड़ रहा है! लड़की और उसकी माता यही समझती है कि शादी हो जाने के बाद लड़की के भरण-पोषण की सारी चिन्ता दूर हो जायगी। वह फिर चाहे जैसी बनी रहे। यही कारण है कि लड़कियों की शिक्षा पर ध्यान बहुत कम दिया जाता है और उन्हें अपने पैर पर खड़े होने की कोई बात नहीं सिखाई जाती। वे केवल घर सजाने की और भोगने की पुतलियाँ बनाई जाती हैं और नहीं तो दासियाँ। और ऐसी अयोग्य कन्याओं की चिन्ता से मुक्त होने के ही अभिप्राय से पढ़े-लिखे, कमाऊ पूत फुसला-लुभा कर दामाद बना लिए जाते हैं। पर ऐसे अनमेल विवाहों का यही परिणाम होता है कि सारा दाम्पत्य जीवन दुःखमय हो जाता है और पति-पत्नी अपने दुर्भाग्य के लिए आमरण रोते रहते हैं। ऐसी लड़की विरली ही मिलेगी जो अपने प्राणेश्वर का भरण-पोषण काम पड़े पर कर सके। पिता को लीजिए। उसको उसकी शादी होने के पहले ही से यह सिखाया जाता है कि शादी होने पर उसे अपनी स्त्री और सन्तान के पालन-पोषण का भार अपने ही ऊपर लेना पड़ेगा। यह है कारण, जिससे विवाहित पुरुष अपनी स्त्री और बच्चों के भरण-पोषण कार्य को बिलकुल स्वाभाविक समझने लगता है। वह कई बार इसी चिन्ता में गोते खाते-खाते क्षीणायु हो, शीघ्र काल के गाल में स्थान पाता है। फिर यदि विवाहित बेटे को कहीं यह बात अच्छी तरह मालूम हो गई कि बेटे और बेटे के आश्रितों का प्रबन्ध बाप ही करता है तो फिर वह निश्चिन्त हो, दुपट्टा तान, सुख की नींद सोता है, तथा माँ से सङ्कोचाभाव के कारण अड़-अड़ कर पिता का रुपया खींचता रहता है। अर्थात् जहाँ लड़कों को यह बतला दिया जाता है कि उनके भरण-पोषण का भार पिता पर पड़ता है, वहाँ वे नौकरी मिलने के पूर्व निकम्मी और फ़िज़ूलख़र्ची की आदतें डाल लेते हैं और नौकरी मिलने के उपरान्त अपने कुटुम्ब की चिन्ता के कारण सुख से अपनी कमाई का भी उपभोग नहीं कर पाते। पिता को अनुभव होने लगता है कि लड़कों का पालन-पोषण उसके द्वारा ही होना अस्वाभाविक है। यह स्पष्ट रूप से लड़के-लड़कियों की उपेक्षा और दुर्दशा में दिखाई पड़ता है।

अब माता के सन्तान के पालन-पोषण के सनातन भार की स्वाभाविकता या अस्वाभाविकता जाँचने की बात रही। एक तरह से यही स्वाभाविक जान पड़ता है कि स्त्री को किसी की भी अपेक्षा न करते हुए अपनी सन्तान के लालन-पालन का भार अपने ही ऊपर लेना चाहिए। पर सनातन से तो स्त्री ने सन्तान को उत्पन्न कर उसे अपना दूध भर पिलाने में स्वाभाविकता दिखलाई है। सन्तान के लालन-पालन में पुरुष ने स्त्री के साथ सहयोग किया है तथा ऊपर से स्त्री के और बच्चों के अन्न, वस्त्र, औषधि, शिक्षा आदि का भार किसी विशेष संस्कार या शिक्षा के कारण अपने ही ऊपर लिया है, जो बात ऊपर बतला दी जा चुकी है कि अस्वाभाविक है। स्त्रियों ने अशिक्षा के कारण सन्तान-शास्त्र से अपरिचित रह कर प्रजोत्पादन और प्रजापालन में भी सदियों से त्रुटियाँ की हैं और साथ ही अत्याचार, जो अस्वाभाविक है। कितनी माताओं ने गर्भधारण के पूर्व और फिर गर्भधारण काल में आवश्यक नियमों का पालन न कर, कुरूप तथा विकलाङ्ग और निर्बल सन्तानें उत्पन्न कीं। कितनी माताओं ने बच्चों को ठूँस-ठूँस कर खिला कर उनकी जानें लीं। कितनी माताओं ने अपने कठोर हाथों से नवजात शिशुओं को असहाय अवस्था में फेंक कर अथवा उनका गला घोंट कर यमपुर पहुँचाया। अर्थात् जो कार्य करना स्त्री को स्वाभाविक था उसमें से अधिकांश पुरुषों ने किया। जो कार्य करना स्त्री को अस्वाभाविक था वह उसने किया। और यह कम से कम हमारे समाज में तो सनातन से चला आया है।

इस तर्क-प्रणाली से पाठक समझेंगे कि माता-पिता का सन्तानोत्पादन के पूर्व और तदुपरान्त आधुनिक रूप में प्रचलित कर्त्तव्य किसी सीमा तक भले ही स्वाभाविक हो, पर समस्त रूप में स्वाभाविक नहीं

है। जिन्हें इस बात में विश्वास न हो उन्हें स्पार्टा नगर के पुरातन इतिहास का निरीक्षण करना चाहिए। किशोरावस्था के पहले ही स्पार्टन बालकों को अपने माता-पिता का साथ छोड़ देना पड़ता था और माता-पिता उनके पालन-पोषण से निश्चिन्त रहते थे। यह बात प्रेमाभाव के कारण न थी, प्रत्युत उनकी तत्कालीन शिक्षा का प्रभाव था जिसके कारण उन्हें अपनी सन्तान का मोह न रहता था। प्रकृति में तो यही देखा जाता है कि किसी पशु का बच्चा जब तक हाथ-पैर हिलाने में समर्थ नहीं हुआ है, तब तक ही केवल उसकी माता—पिता नहीं—उसका उदर-पोषण करती है। इस बात से पिता निश्चिन्त रहता है। ज्योंही वह काफ़ी बड़ा हो जाता है, त्योंही माता उसका साथ देना और सहायता करना छोड़ती जाती है। यदि कोई इस स्थान पर कहे कि मनुष्य सभी बातों में पशुवत् नहीं हो सकता। वह उससे अपनी बुद्धि के कारण श्रेष्ठ है। पर यह स्मरण रहे कि इसी बुद्धि ने मनुष्य से ऐसे नीच कार्य कराए हैं और करा रही है, जिन्हें पशु तक कभी न करेगा और जो मनुष्य के नाम को कलङ्कित करते हैं। उदाहरण की कमी नहीं। असहाय नवजात शिशु की हत्या इसलिए करना कि जिसमें माता-पिता का अवैध सम्बन्ध प्रकट न हो, अथवा अबोध, वयस्क बालिका का एक यमपुर की यात्रा की तैयारी किए बैठे अयोग्य बुड्ढे के गले बाँध कर उसे जन्म भर रुलाना आदि पशुओं में नहीं देखा जाता। कहा जाता है कि "आहार निद्रा भय मैथुनंच सामान्य मेतत्पशुभिर्नराणां, धर्मोहितेष्यामधिको विशेषो धर्मेणहीना पशुभिः समानाः।" आह! इसी बुद्धि के बल से मनुष्य ने धर्म बनाए। वे धर्म, जिनके कारण मनुष्य ने पशु से भी अधिक दुष्ट बन कर इस पृथ्वी की छाती को पशु के ख़ून से भी नहीं, पशु से श्रेष्ठ कहे जाने वाले मनुष्य के ही ख़ून से रँगी है। यह वही बुद्धि है, जिसने धर्म के न पालने वाले की मृत्यु कराने के लिए भिन्न-भिन्न उपायों और यन्त्रों का आविष्कार करने में अपना कौशल दिखाया है। मानव जाति का उद्धार करने वाले सत्पुरुषों को मनुष्य की इसी धर्म-बुद्धि ने सूली पर चढ़ाया है, विष पिलाया है, दीवालों में चुनवाया है, तलवार से क़त्ल किया है और बन्दूक़ की गोली से उड़ाया है! माना कि मनुष्य ने इसी बुद्धि से लाखों मूक पशुओं की प्राण-रक्षा भी की है, जङ्गली लोगों को सभ्य बनाया है, मनुष्य-मनुष्य में भ्रातृ-प्रेम उत्पन्न किया है, साहित्य, सङ्गीत और कला से "पुच्छ विषाणहीन साक्षात्पशुओं" को देवताओं के स्थान तक उठाया है, पर जिन बातों से यह किसी ज़माने में किया गया है वे ही बातें इस ज़माने में उसे क़ायम रखने के लिए सर्वथा उपयुक्त नहीं हो सकतीं। उनमें से कई अस्वाभाविक प्रतीत होंगी। स्वाभाविक वही है, जो भिन्न-भिन्न सामयिक परिस्थितियों के अनुकूल हो। आज हमें जो बात आवश्यक है वह स्वाभाविक है, न कि करोड़ों वर्षों पहले जो आवश्यक समझी जाती थी वह। स्वाभाविक जीवन का यही रहस्य है कि उसमें आवश्यक परिवर्तन होते रहा करें। समयानुकूल परिवर्तन कर लेने की आदत (Adaptability) ही उन्नति और विकास का प्राण है।

आज हम जो इस पतितावस्था में आ गिरे हैं वह हमारे रूढ़ियों के पोषण और प्राचीनता की अन्ध-पूजा के कारण ही गिरे हैं। हमारी मानसिक वृत्ति इतनी दब्बू हो गई है कि अपने ही ऊपर अत्याचार करने वाली क्या, अपना सर्वनाश करने वाली बातों और मनुष्यों को उठाकर हम पछाड़ नहीं सकते। हमारी स्वाभाविकता रफ़ू हो चुकी। हम क्रान्ति करने से हिचकिचाते हैं। अपना अस्तित्व क़ायम रखने के लिए जो मर मिटने की आदत होती है, उसे हम अपने में पड़ने नहीं देते। अभी हमें यदि कुछ आता है तो वह है मुर्दा सरीखा पड़ा रहना। और कहते हैं कि हम जी रहे हैं! हम कहते हैं कि हमारे आँखें हैं, पर हम यह नहीं देखते कि संसार की अन्य जातियाँ किस तरह हथेली पर जान रख कर गुफाओं में से और नदियों के ऊपर से सैकड़ों मील प्रति घण्टे के वेग से दौड़ लगा रही हैं, दिन-रात बिजली, आग, पानी के बीच में रह रही हैं, हवा में उड़ रही हैं, समुद्रों में ग़ोते लगा रही हैं, भयङ्कर हिंसक पशुओं से दोस्ती कर रही हैं, गोला-बारूद और विषैली हवाओं से खेल रही हैं और हँसते-खेलते तरह-तरह की क्रान्तियाँ कर सच्चे जीवन का आनन्द लूट रही हैं। यही हमें सीखना है। यही हमारे लिए स्वाभाविक दीखता है।

सन्तान को आवश्यक समय के हो जाने पर, अर्थात् जब तक बच्चे को माता का स्तन्यपान मिलता हो

अथवा डॉक्टरों की सम्मति से मिलना चाहिए, अपने पास न रखना चाहिए। स्थानीय राष्ट्रीय बाल-मन्दिरों में भेज देना चाहिए और निश्चिन्त हो, आत्मोन्नति में लगा रहना चाहिए। बच्चों को घर में साथ रखने से माता-पिता की उन्नति में बाधा आती है तथा उनके हृदय में स्वार्थ और ईर्ष्या की उत्पत्ति होती है। घरों में उचित वातावरण न होने से बच्चों की भी आदतें, विचार, संस्कार आदि बिगड़ जाते हैं। न तो उनके राष्ट्रीय विचार हो सकते हैं, न उनमें देशभक्ति उपज सकती है और न वे मानव जाति की सेवा कर सकते हैं। आज हमारे देश में जो ऐक्य का अभाव है उसका बड़ा भारी कारण बच्चों का माता-पिता के साथ आवश्यक समय से अधिक रहना है। बाल-मन्दिरों में बच्चे किन्हीं ख़ास माता-पिता के न कहला कर समाज और देश के बच्चे कहलाएँ और ये एक ही माँ या बाप से उत्पन्न होने के कारण भाई-भाई या बहिन-बहिन या बहिन-भाई न कहलावें, किन्तु एक राष्ट्र के होने के कारण कहे जायँ। इन बच्चों को यह कि वे किस स्त्री-पुरुष के बच्चे हैं, तब तक न बतलाया जाय जब तक कि वे विवाहोचित आयु के न हो जावें। यदि यह ज्ञान इस अवस्था के पूर्व कराना है तो उनके सम्मुख राष्ट्र के उन स्त्री-पुरुषों के नाम रक्खे जायँ जिनके कारण राष्ट्र देदीप्यमान हुआ है। आजकल क्या होता है कि अधिक बच्चों को पहले अपने-अपने अकर्मण्य माता-पिताओं के नाम मालूम होने से वे उनसे प्रेम करने लगते हैं और उन्हीं का अनुकरण। राम, कृष्ण, प्रताप, शिवाजी आदि से प्रेम होता है तो चिरकाल बाद, और नहीं तो होता ही नहीं। प्रत्येक बालक-बालिका चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र, किसी भी माता-पिता से उत्पन्न हुआ हो, पर वह बड़े-बड़े ऋषि, राजा और नेताओं को ही अपना पूर्व पुरुष और सीता, सावित्री, दमयन्ती और उनकी समकालीन प्रख्यात महिलाओं को माता समझेगा। राष्ट्रीय बाल-मन्दिरों में बालक-बालिकाएँ एक ही साथ सम्वर्धित और शिक्षित किए जायँ और जहाँ तक हो सके, वेष और शिक्षा में समानता हो। प्रारम्भिक शिक्षा को छोड़, बाक़ी की शिक्षा में ऐच्छिक विषयों का आधिक्य रहे और किसी भी ऐच्छिक विषय को बालक-बालिकाएँ एक साथ ले सकें। ऐसी संस्थाओं में, चाहे वे भरत-खण्ड के किसी भी प्रान्त में क्यों न हों, केवल राष्ट्र-भाषा बोली और लिखी जाय। भारत की अन्य प्रान्तिक भाषाएँ उच्च शिक्षा के ऐच्छिक विषयों में ही सिखाई जायँ। राष्ट्र-भाषा के सर्वनाम, क्रिया, विशेषण में लिङ्ग का भेद न रक्खा जाय। बच्चों का वेष वह हो जो संसार भर में सरल, आवश्यक तथा उपयोगी हो। वस्त्र स्वदेशी ही हों। बचपन से लेकर बड़ी अवस्था तक बच्चों के एक-दूसरे के निरीक्षण में किसी प्रकार की बाधा न डाली जाय। अर्थात् बच्चों के सम्मुख बड़ी अवस्था वाले स्त्री-पुरुष भी नग्नावस्था में रह कर बच्चों को यह न मालूम होने दें कि वे किसी अङ्ग के उघाड़े रहने से लजाते हैं। इस लज्जा की साहित्य-रसिक भले ही भूरि-भूरि प्रशंसा कर आवश्यकता बतलाएँ, पर यह बड़ी हानिकारक है, क्योंकि बच्चों पर इसका एक विशेष कुप्रभाव पड़ता है। यह तो सभी मानेंगे कि पुरुष के सम्मुख हृष्ट-पुष्टाङ्ग सुन्दर मादा-पशु और स्त्री के सम्मुख नर-पशु नग्नावस्था ही में विचरते और किलोल करते फिरते हैं और किसी प्रकार का विकार उनके मन में नहीं उत्पन्न होता। इसलिए वस्त्र केवल शरीर-रक्षा ही के लिए न कि किन्हीं गुप्त अङ्गों के ढकने के लिए पहने जायँ। इस दिगम्बरावस्था में रहने से जङ्गली नहीं कहलाए जा सकते, क्योंकि हमें अब सब प्रकार के वस्त्र और फ़ैशन बनाना आता है। हमारी वस्त्र की सभ्यता तो इतनी बढ़ चुकी है कि हमारी स्त्रियाँ परदे, बुरक़े और चादरों में पहचानी भी नहीं जा सकती हैं कि वे मनुष्य ही हैं अथवा अन्य प्राणी। उपर्युक्त बात कोई नई बात नहीं है। अङ्गरेज़ पुरुष जाति में तथा स्त्रियों-स्त्रियों में अपने देश में भी कई जगह यह बात अब भी प्रचलित है। स्पार्टा में तो यह बात सफल भी हो चुकी, जो सुप्रसिद्ध है। जर्मनी की स्त्रियाँ पुनः स्पार्टा का दृश्य दिखलाने की इच्छुक हो रही हैं। बाल-मन्दिरों में रहने वालों को यह भी पता न लगने दिया जाय कि उन्होंने फ़लानी-फ़लानी जाति (Caste) में जन्म लिया था अथवा वे वैध या अवैध संयोग से उत्पन्न हुए थे। राष्ट्रीय-धर्म में ईश्वरोपासना के सभी समान रूप से अधिकारी रहें। जो भोजन राष्ट्र के स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त हो वही सबों को दिया जाय। अवस्था बढ़ने पर रुचि के अनुसार भोजन किया जाय, पर विशेष वस्तु के लिए

बाध्यता कहीं भी न रहे। खान-पान में उन साथियों ही से परहेज़ किया जाय, जिनका किसी ख़ास रोग के कारण सहभोज में सम्मिलित होना दूसरों के लिए अहितकर समझा जाय। माता-पिता शिशु की हत्या इसलिए न करें कि उसका, उनके किसी विशेष अवस्था में पड़ जाने के कारण अवैध सम्बन्ध का फल होने से, समाज में तिरस्कार होगा अथवा उन्हें ही कलङ्कित होना पड़ेगा। ऐसे माता-पिता बालक को न्यायालय के सुपुर्द कर अपनी विशेष परिस्थिति का सन्तोषजनक प्रमाण देकर क्षमादान प्राप्त कर सकते हैं। बालहत्या दण्डनीय होगी। अवैध सम्बन्ध से बालक उत्पन्न करने वाली माता को भी बालक की प्रारम्भिक शिक्षा का ख़र्च देना पड़ेगा। सन्तान के मन्दिर में रहते हुए किसी भी प्रकार से माता-पिता का उसमें कदापि प्रवेश न हो। यदि पहले ही से वे प्रवेश पाए हुए हों तो उन्हें उसे छोड़ देना पड़ेगा। जब तक विवाह न हो तभी तक लड़के-लड़कियाँ राष्ट्रीय बाल-मन्दिरों से सहायता पाने के अधिकारी हों। विवाह होने पर संस्था से सम्बन्ध छूट जायगा। जब तक बालक-बालिकाएँ संस्था में रहेंगे तब तक माता-पिता द्वारा संस्था के प्रबन्धक के सिवाय सीधा बालक-बालिकाओं को आर्थिक सहायता देना नियम के विरुद्ध होगा। संस्था छोड़ने पर कोई भी अपने माता-पिता को अपनी सहायतार्थ बाध्य नहीं कर सकता। संस्था सिवाय अवैध विवाह करने के अपराध के तथा प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त होने के पहले नहीं छूट सकती। अवैध सम्बन्ध के कारण संस्था से निकले हुए बालक-बालिकाओं की सहायता करना दण्डनीय अपराध समझा जायगा। विवाह की अनुमति लड़की को सोलह और लड़के को बीस वर्ष के नीचे मिलेगी ही नहीं। विवाह केवल ठेका (Contract) रहे जिसमें कुछ शर्तें रहें। विवाह में माता-पिता का किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न रहे। वे केवल सलाह देने के अधिकारी रहें। बाल-मन्दिर के निरीक्षकों (Superintendents) की सलाह न लेने वालों का विवाह नाजायज़ समझा जाय। पति पर अपनी विवाहिता स्त्री के पालन-पोषण का भार अनिवार्य नहीं है। सब विवाह रजिस्टर्ड हों। बच्चे सिवाय सरकारी (राष्ट्रीय) प्रसूतिका गृहों के अन्यत्र कहीं न जने जायँ। प्रसव-काल में स्त्री के लिए जो कुछ ख़र्च आवश्यक होगा उसे स्त्री को ही देना पड़ेगा। उस स्त्री का पति उसके लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। एक ही स्त्री से एक सन्तान के बाद दो साल के अन्दर दूसरी सन्तान उत्पन्न करने वाले पुरुष से आर्थिक दण्ड लिया जाय। विवाहानन्तर एक वर्ष के पहले विवाहोच्छेद नहीं किया जा सकता और विवाहोच्छेद एक ही बार हो सकता है। किसी एक की मृत्यु हो जाने से दूसरा अविवाहित की तौर पर पुनर्विवाह कर सकता है। कोई भी विवाहोच्छेद बिना किसी विशेष कारण के साबित किए स्वीकृत न होवे। हर एक विवाहित पुरुष को अपनी कमाई में से अपने विवाह के दिन से एक बालक (बालिका) की प्रारम्भिक शिक्षा का पूरा ख़र्च प्रति मास देना पड़ेगा। सन्तान वाले पिता को सन्तान के हिसाब से ख़र्च देना पड़ेगा। विवाहोच्छेदक के यदि सन्तान न हो तो वह यह ख़र्च देने को बाध्य नहीं किया जा सकता। यह ख़र्च राष्ट्र के एक बालक के नाम से जमा किया जाय, न कि किसी ख़ास व्यक्ति के बेटे या बेटी के नाम से। प्रेमवश बालक-बालिका की उच्च शिक्षा के लिए माता-पिता या अन्य व्यक्ति द्वारा संस्था को जिसके नाम पर जो कुछ धन दिया जाय वह उसी की शिक्षा में ख़र्च किया जाय, और ऐसे ही शिक्षित बालक को अपने पिता द्वारा न अपनाए जाने पर दत्तक लेने का, विशेष सहायता देने वाले पुरुष को, अधिकार रहे। बालक-बालिकाएँ वयस्क होने पर अपने नाम पर दिए गए द्रव्य का हिसाब जाँचने के अधिकारी होंगे। इसी प्रकार विशेष दान देने वाले स्त्री-पुरुष भी। राष्ट्रीय शिक्षा देश की आवश्यकतानुसार समयानुकूल दी जायगी। तथापि उसमें सर्व-प्रथम बच्चों की शारीरिक और मानसिक उन्नति पर पूर्ण ध्यान दिया जायगा, जिससे वे बलिष्ठ, सुडौल और प्रफुल्ल-चित्त रहें, उनको आजन्म कसरत, खेल-कूद की आदतें पड़ जायँ और वे पवित्र मन लेकर, उत्तम शिक्षा ग्रहण कर स्वावलम्बी तथा सच्चे देशभक्त बनें। ब्रह्मचर्य, एक पत्नीव्रत और सत्य-प्रेम का महत्व उत्तमोत्तम व्याख्यानों द्वारा उन्हें समझाया जाय। बालक-बालिकाओं को प्रारम्भिक शिक्षा में लिखना, पढ़ना, हिसाब आदि के साथ-साथ कोई न कोई ऐसा काम या ऐसी कला अवश्य सिखाई जायगी जिससे वे हमेशा नौकरी के भरोसे ही न रह अपने पैरों पर स्वयं खड़े रह सकें। यह अवस्था उनके विवाह के लिए संस्था

छोड़ने के पहले की है। यदि वे और भी सामाजिक सहायता का लाभ उठाना चाहेंगे तो उन्हें अविवाहित रहना पड़ेगा। उन्हें यही शिक्षा दी जायगी कि तुम्हारी चिन्ता तुम्हें ही करनी पड़ेगी। अतएव वे पवित्र और उत्तम वातावरण में पाले जाने के कारण ब्रह्मचारी बने हुए, सच्ची कामना से आत्मोन्नति में दत्त-चित्त रहेंगे। जब वे स्वावलम्बी हो जायँगे तब उनका प्रणय विवाह होगा। जीवन अतीव सुखमय होगा और समाज और देश पर होने वाले अत्याचार दूर होंगे। विवाह के समय नवयुवक और नवयुवतियों को अपनी संस्था के सुपरिण्टेण्डेण्ट्स से सलाह लेना इसलिए आवश्यक होगा कि उन्हें वयस्क होने तक यह पता न लगेगा कि उनके एक माता-पिता की या उनके ही समान अन्य स्त्री-पुरुषों की दोनों सन्तान होने के कारण उनका विवाह अनुचित है।

ऐसी राष्ट्रीय संस्था के शिक्षक, निरीक्षक तथा कार्यकर्ता सुशिक्षित, सुपठित, राष्ट्र की आवश्यकताओं को समझने वाले बालकों के माता-पिता भी बन सकते हैं। इन राष्ट्रीय बालक-बालिकाओं को किसी विशेष धर्म की शिक्षा नहीं दी जायगी, बल्कि संसार के सब धर्मों का सार—न कि परस्पर मारने-काटने का धर्म—सिखाया जायगा। ये बालक-बालिकाएँ कोई एक धर्म या जाति वाले न कहला कर बलिष्ठ, स्वावलम्बी, राष्ट्रीयता के भावों से लबालब भरे हुए, जीने के लिए मरना जानने वाले, सुखी, प्रेमी, पति-पत्नी के रूप में निकल कर भविष्य के सच्चे नागरिक बन, मानव जाति की हित-चिन्तना करेंगे।

पर ऐसी संस्थाएँ अकस्मात् उत्पन्न हो कहाँ से जावें? इन काल्पनिक भारतवर्ष के नगर-नगर ग्राम-ग्राम में स्थापित होने वाली राष्ट्रीय संस्थाओं का आधुनिक मातृ-मन्दिरों, अनाथालयों, विधवाश्रमों और ऋषिकुल-गुरुकुलों से ही प्रारम्भ हो सकता है और हमारा कर्त्तव्य है कि हम प्रथम इनको ही सहायता पहुँचाएँ और धीरे-धीरे इन्हें राष्ट्रीय बाल-मन्दिरों का रूप दे दें तथा देश के क़ानून द्वारा इन्हें स्वीकृत (Recognised) भ करा लें। हमें समाज में हलचल मचा देने ही की ज़रूरत है, बस।

—दामोदर शास्त्री, बी० ए०, विशारद

*　　*　　*

भारतीय नारी-जीवन की रूप-रेखा

भारतीय समाज में नारी जाति जितनी अरक्षित, असहाय, असमर्थ और विवश है, उतनी शायद संसार के और किसी भी भाग में नहीं है। हमारे देश में नारी की कोई अपनी सत्ता नहीं है। समाज में न तो उसका कोई ऊँचा स्थान है और न उसके प्रति आदर और सम्मान का भाव। वह केवल पुरुष के खेलने की एक सामग्री समझी जाती है; और ऐसी सामग्री, जिसे खेल से ऊबते ही पुरुष लात मार कर दूर हटा दे सकता है। समाज में उसके कोई अधिकार नहीं, घरों में उसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं; मानो उसके जीवन का कोई मूल्य ही न हो। समाज कदाचित अपने अस्तित्व, अपनी स्थिरता और उन्नति के लिए स्त्री की कोई आवश्यकता ही नहीं समझता। कैसा अज्ञान है, कैसी भ्रान्त धारणा है!

स्त्री जाति के कष्टों और विपत्तियों का अन्त यहीं नहीं होता। समाज प्रत्येक अवस्था में उसके प्रति खड्ग-हस्त हुआ रहता है। छोटी ही उमर में लड़कियों की शादी होती है, वृद्ध और मृतप्राय खूसटों के गले में उन्हें बाँध दिया जाता है, फलतः जीवन के उषा-काल में ही वे विधवा बन कर बैठती हैं। कलियाँ खिलने के पहले ही मुरझा जाती हैं, वसन्त के प्रारम्भ में ही पतझड़ का आगमन हो जाता है। असमय में मुरझाई हुई ऐसी बाल-विधवाओं के जीवन-यापन के लिए समाज कोई व्यवस्था नहीं करता। यौवन में वह उन्हें त्याग, तप और सदाचार का उपदेश देता है। समाज कहता है कि तुम्हें भूख लगे तो लगने दो, किन्तु भोजन देख कर ललचाओ मत, उसे खाने का साहस तो कदापि न करो। इसी में समाज की प्रतिष्ठा है। उसके सदाचार की रक्षा इसी से होगी। किन्तु यह कितनी अस्वाभाविक बात है? प्रकृति की भूख को कौन दबा सकता है? उसे कौन नष्ट कर सकता है? जो ऐसा प्रयत्न करेगा, उसे प्रकृति का कोप-भाजन बनना पड़ेगा अथवा वह छिप कर प्रकृति की भूख बुझाते हुए अपने साथ ही समाज को धोखा देगा, उसकी आँखों में धूल झोंकेगा और सदाचारी बना रहेगा।

इस प्रकार की विधवाओं की हमारे यहाँ कमी नहीं

हैं, जिन्होंने अभी दुनिया के स्वर्ण-भोर की प्रथम किरण भी नहीं देखी। बढ़ कर, युवती होकर, जब वे अतुल ऐश्वर्य, वैभव और सुख-सम्पदा से भरी हुई धरित्री की ओर देखती हैं और फिर अपने सूने संसार की ओर, तो एक अभावनीय अभाव की वेदना से उनका हृदय हाहाकार कर उठता है। उद्दाम वासना की लोल लहरें उनके हृदय को मथ डालती हैं। संयम की शिक्षा उन्हें नहीं मिली होती, समाज केवल उनकी चित्त-वृत्तियों का निरोध करना चाहता है। ऐसा करने के लिए वह उन्हें दबाता है। फल उलटा होता है। दबाव पाकर असंयमित वृत्तियाँ भड़क उठती हैं। फलतः आए दिन व्यभिचार के कितने ही घृणित दृश्य देखने के लिए हमें विवश होना पड़ता है।

इनके अतिरिक्त स्त्रियों की एक ऐसी भी संख्या है, जो विधवा तो है ही, साथ ही अनाथ भी है। उसके लिए कहीं शरण नहीं। मानसिक भूख-प्यास के साथ ही उसे अपनी शारीरिक भूख-प्यास पर भी विजय प्राप्त करनी पड़ती है! समाज ने ऐसी स्त्रियों के लिए भी कोई व्यवस्था नहीं की।

स्त्रियों की शिक्षा का भी कोई प्रबन्ध नहीं है। न तो उन्हें लिखना-पढ़ना सिखाने की कोई समुचित व्यवस्था है और न कोई औद्योगिक काम-धन्धा सिखा कर स्वावलम्बी बनाने की ही। इसी के परिणाम-स्वरूप आज भारतीय नारी-समाज की यह अधोगति है। वे अरक्षित हैं, गुण्डों और बदमाशों के द्वारा पग-पग पर वे छेड़ी जाती हैं, उनका निर्यातन होता है। समाज में उन्हें नीचा देखना पड़ता है। समाज के दोष से ही जो दुराचार और दुष्कृत्य फैल रहे हैं, उन्हें उनका उत्तरदायी होना पड़ता है और उनके लिए कलङ्कित भी। घर-बाहर, कहीं उन्हें पैर रखने की जगह नहीं रह जाती। यह कितनी शोचनीय दुरवस्था है, कितनी दयनीय!! भारतीय स्त्रियों की इस विवशता, असमर्थता और अरक्षितता का खुला चिट्ठा पढ़ कर कौन सहृदय ख़ून के दो आँसू बहाने के लिए बाध्य न होगा?

स्त्री पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी है। आधे अङ्ग की जब ऐसी दुरवस्था होगी, उस समय आधा अङ्ग स्वस्थ कैसे रह [illegible]? आज भारतीय समाज जिस वेग से पतन की [illegible] हो रहा है, वह किसी से छिपा नहीं है। किन्तु यह परिस्थिति वाञ्छनीय नहीं है। इसका अन्त जिस प्रकार हो, करना ही पड़ेगा। और उसके लिए केवल एक ही उपाय है, स्त्री-समाज की उन्नति और सुधार। स्त्रियों को बिना शिक्षित बनाए हमारी सामाजिक उन्नति नहीं हो सकती। और बिना अपने समाज को समुन्नत बनाए, हम संसार के किसी भी राष्ट्र के सम्मुख सिर उठाने की योग्यता प्राप्त नहीं कर सकते।

आज विदेशी शासन हमारे लिए असहनीय हो गया है, उसकी जड़ उखाड़ फेंकने के लिए हम आतुर हो उठे हैं; किन्तु हम अपनी सामाजिक रूढ़ियों और कुप्रथाओं की जो ग़ुलामी कर रहे हैं, उसके प्रति हमारा ध्यान कभी आकर्षित नहीं हुआ। जिन लोगों की यह धारणा है कि राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त करते ही हमारा जीवन सुख, सन्तोष और पूर्णता से भर जायगा, वे भ्रम में हैं। जब तक हम अपनी इच्छा और वासना की, सामाजिक रूढ़ियों और कुप्रथाओं की ग़ुलामी का जुआ अपने कन्धे से उतार न फेंकेंगे, हमारे जीवन में सुख और सन्तोष की प्रकाश-रेखा न फूट उठेगी। अतः देश के भाग्य-निर्णायकों को इस ओर से उदासीन न होना चाहिए।

समाज में स्त्रियों के प्रति नगण्यता और उपेक्षा का जो भाव फैला हुआ है, उसका एक कारण वर्तमान समय की वैवाहिक असमानता भी है। जिन पवित्र और संयमित भावों को लेकर विवाह-प्रणाली का प्रचलन हुआ था, वे भाव अब मानव-समाज में रह नहीं गए हैं; किन्तु विवाह तो फिर भी होता ही जाता है। इच्छा रहते हुए भी इसके विरुद्ध कुछ कहने का साहस लोग नहीं कर सकते; क्योंकि वैसा करने पर वे पतित, विद्रोही और व्यभिचार फैलाने वाले क़रार दिए जाएँगे। किन्तु यह निश्चित है कि इसका परिणाम अच्छा नहीं हो रहा है। जिस शरीर में जीव नहीं रह गया, मोह के वशीभूत होकर उसे पकड़े रहना बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती। विवाह की भावना में अब संयम और पवित्रता का स्थान नहीं है; वह केवल वासना और विलास-लालसा को चरितार्थ करने की एक सुगम प्रणाली समझा जा रहा है। आजकल के विवाह व्यभिचार के 'पासपोर्ट' हैं। यद्यपि यह सत्य कड़वा है, किन्तु हम इसकी सचाई से मुँह नहीं फेर सकते। वेश्या से व्यभिचार करना समाज में निन्दनीय समझा

जाता है, किन्तु विवाह करके विवाहिता स्त्री से व्यभिचार करने में समाज को कोई आपत्ति नहीं है। नाच गाकर, बाजा बजा कर, बड़े समारोह के साथ समाज ऐसे व्यभिचार के लिए हमारे नवयुवकों को खुल्लमखुल्ला पासपोर्ट दे देता है। इस पासपोर्ट को प्राप्त कर लेने के बाद फिर उनके व्यभिचार का नियन्त्रण करने की सामर्थ्य किसी में नहीं रहती, शायद इसकी आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। बेचारी स्त्रियाँ इतनी निरीह, शक्तिहीन और असमर्थ होती हैं कि वे इन अत्याचारों का कोई प्रतिकार नहीं कर सकतीं, सुख और स्वच्छन्दता से जीवन नहीं बिता सकतीं—हालाँकि दिन-रात पति की वासना-तृप्ति और कामुकता का शिकार बनने के बाद भी उनके मन और स्वास्थ्य की हालत ख़तरनाक ही रहती है। किन्तु पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अभी भी सद्भावना का कुछ अधिक अंश है। वे अपने जीवन को उद्दाम वासना की आँधी में, विलास-लालसा की लोल-चञ्चल लहरों में बह जाने देती हैं, यह सोच कर कि इससे उनके पति को सुख होगा। त्याग और आत्म-समर्पण के इसी भाव ने नारी-जाति का सर्वनाश किया है।

विवाह का—उस विवाह का, जिसके अन्तराल में पितृ-ऋण से उऋण होने की महान् भावना निहित थी, जो सृष्टि का उद्देश्य पालन करने के साथ ही सहधर्मिणी के सहयोग से जीवन को उन्नत और साधनापूर्ण बनाने के भावों से ओत-प्रोत था, जिसके द्वारा मनुष्य की असंयमित और उद्दाम वासनाओं का नियन्त्रण होता था—आज जो दुरुपयोग हो रहा है, उसे देख कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। स्वभावतः मन में एक प्रश्न उठ खड़ा होता है कि गृहिणी और वेश्या में आज क्या कोई अन्तर रह गया है? थोड़ा धैर्यपूर्वक विचार करने और ध्यान देने से एक ही निश्चित उत्तर मिलता है और वह है नकारात्मक। अपनी गृह-देवियों की तुलना वेश्या से करते हुए आत्मग्लानि और लज्जा से हमारा सिर झुका जाता है; किन्तु जो सत्य है, उससे मुँह फेर कर कोई कहाँ जा सकता है? वेश्या से गृहिणियों में यदि कोई अन्तर है तो यही कि वेश्याओं का क्षेत्र विस्तृत है, गृहिणियों का सङ्कुचित। इसके अतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं दीख पड़ता। वेश्याएँ समाज के द्वारा वेश्या-वृत्ति करने के लिए मजबूर की जाती हैं (स्मरण रहे, कोई भी ऐसी वेश्या न दीख पड़ेगी जिसने सामाजिक कुरीतियों, अशिक्षा अथवा अज्ञान के बिना, स्वेच्छा से यह वृत्ति ग्रहण की हो, अतः उनके इस गर्हित जीवन का सारा दायित्व समाज के ही ऊपर है) और समाज द्वारा ही विवाह के बन्धन
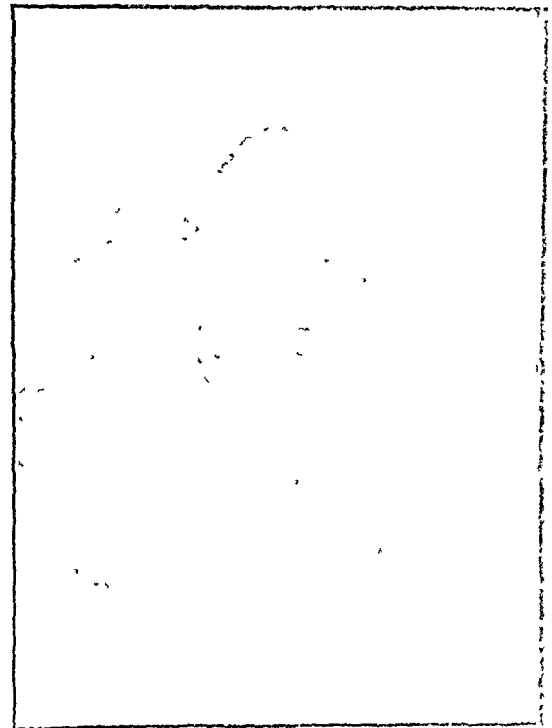
श्रीमती इन्दुमती गोइनका
आपको वर्तमान सत्याग्रह-संग्राम में कलकत्ते के पुलिस वालों के नाम अपील प्रकाशित करने पर छः मास का कारावास दण्ड दिया गया है। बङ्गाल-प्रान्त में जेल जाने वाली आप सब से पहली महिला हैं।

में बाँध कर स्त्रियां भी पति की कामुकता का शिकार बनने के लिए बाध्य की जाती हैं। वेश्या अनेक को प्रसन्न करके अपनी जीविका उपार्जन करती है, स्त्री एक को। वेश्या अपने रूप और यौवन का वैभव लेकर बाज़ार में बैठती है, स्त्री एक नियत पुरुष के हाथ अपना सर्वस्व बेच देती है। वेश्या अपने रूप और यौवन को निखारने के लिए सदैव सचेष्ट रहती है, स्त्री के सम्बन्ध में भी यह

ऐसी ही बात है: किन्तु वेश्या बदनाम है और स्त्री गृह-देवी। इसलिए कि समाज के द्वारा विवाह के रूप में उसे व्यभिचार का 'पासपोर्ट' मिला हुआ है।

ऐसी अवस्था में विवाह की सार्थकता हमारी समझ में नहीं आ सकती। वर्तमान स्थिति में लाभ की अपेक्षा
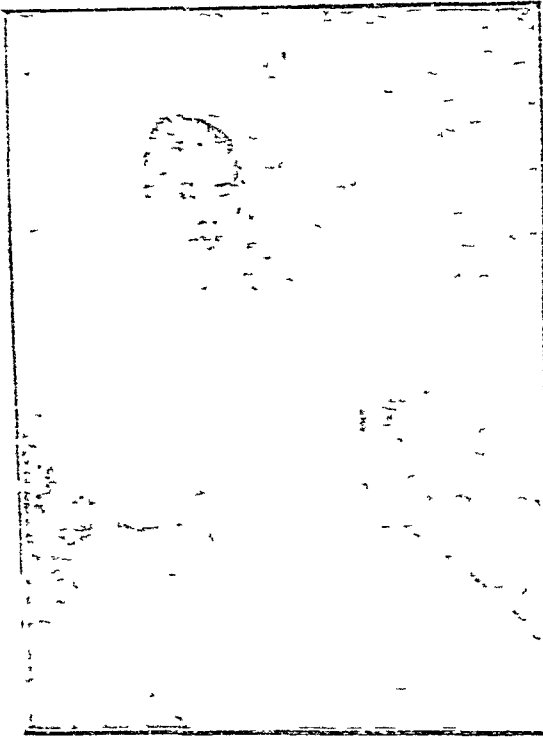
श्रीमती उर्मिला देवी
देशबन्धु के श्राद्ध-दिवस के उपलक्ष में कलकत्ते में जलूस निकालने के अपराध में आपको छः मास का दण्ड दिया गया है। आपके साथ श्रीमती मोहिनी देवी, श्रीमती विमल प्रतिभा देवी, और कुमारी ज्योतिर्मयी गाङ्गुली को भी छः-छः मास का कारावास दिया गया है। इन तीनों देवियों के चित्र आगे दिए गए हैं।

विवाह से हानि ही अधिक हो रही है। मानव-समाज की मनोवृत्तियाँ इस समय कलुषित हो रही हैं, भोग की प्रवृत्ति उनमें बढ़ रही है, विलास की लालसा उग्र हो रही है, ऐसी अवस्था में संसार से अनभिज्ञ युवक-युवतियों को विवाह का पासपोर्ट देकर, उन्हें भोग-विलास की दुर्दान्त अग्नि में जल मरने के लिए स्वतन्त्र कर देना कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय समस्या है। विलासी होने के कारण स्त्री-पुरुष का स्वास्थ्य दिनों-दिन नष्ट होता जा रहा है और इसके कारण उनका दाम्पत्य जीवन भी सुखकर नहीं हो सकता। ऐसी परिस्थिति में विवाह की आवश्यकता ही क्या है? विवाह से जीवन असंयमित हो रहा है, भोग की लालसा को उत्तेजन मिल रहा है, क्योंकि उसके नियन्त्रण का वहाँ कोई प्रबन्ध नहीं है। विवाह न होने पर, अनेक अंशों में व्यभिचार कम होगा, क्योंकि अन्य प्रकार के दुराचार समाज की दृष्टि में निन्दनीय हैं और कम से कम इसी भय से लोग भोग की लालसा पर कुछ नियन्त्रण रख सकेंगे। विवाह करके तो पुरुष व्यभिचार के लिए स्वतन्त्र हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में या तो वैवाहिक प्रणाली का बहिष्कार किया जाय, अथवा मानव-समाज के मनोभावों को समुन्नत बनाने का भगीरथ-प्रयत्न। इन्हीं दो उपायों का अवलम्बन करके हम इस अवाञ्छनीय परिस्थिति में अपनी रक्षा कर सकते हैं।

समाज के कुछ लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और वे विवाह की अनुपयोगिता समझने भी लगे हैं। सम्भव है, विवाह के विरोध में शीघ्र ही कोई विराट शक्ति उठ खड़ी हो और उसके द्वारा भारतवर्ष के युवक-युवतियों का अन्धकारमय भविष्य, प्रकाश की कुछ रेखाओं से चमचमा उठे!

इन तमाम असुविधाओं और अवाञ्छनीय परिस्थितियों में होकर गुज़रने के लिए हमारा नारी-समाज बाध्य है। फलतः स्त्रियाँ न तो सफल गृहिणी हो सकती हैं, न माता। उनके जीवन का कोई सदुपयोग नहीं हो सकता। पुरुष की कामुकता का खिलौना बन कर वे संसार में प्रवेश करती हैं और अस्वास्थ्य, सहायहीनता, दुर्बलता और असंयम के बुरे परिणामों के साथ उनका अन्त होता है।

भारतीय नारी-जीवन की यह रूप-रेखा कितनी भयानक है, साथ ही कितनी दयनीय और करुणाजनक!! ओह!!!

—प्रफुल्लचन्द्र ओझा

* * *

वीराङ्गना सूसान

कल ही की तो बात है। पराधीन आयर्लैण्ड ने स्वाधीनता-पथ पर अग्रसर होने के लिए क़दम बढ़ाया था। स्वार्थान्ध ब्रिटेन उसे उस पथ पर नहीं देख सकता था, उसने बम्ब, वायुयान, मशीनगन इत्यादि पैशाचिक शक्तियों के द्वारा उसे रोकने का प्रयत्न किया। मार्शल-लॉ की विकराल अग्नि में आयर्लैण्ड की तरुण जनता स्वेच्छापूर्वक अपनी आहुति दे रही थी। हज़ारों आयरिश युवक-युवतियों का अपूर्व आत्म-बलिदान वहाँ की भूमि में पद-पद पर, वन के वृक्ष-वृक्ष पर लोहे में लकीर की भाँति खुदा हुआ है, उन्हीं में क्यों, वह तो जन-समाज के हृत्पटल पर अमिट मसि से अङ्कित है। परन्तु इस स्वातन्त्र्य भाव की प्रेरिका देवी तो एक अज्ञात गाँव की शूरवीर कुमारिका थी। उसकी तेज-राशि से जगमगाती सूरत रणचण्डी की भीषण रुद्रता थी और उसी के साथ उसके पास था मातृभूमि के लिए प्राण अर्पण करने की प्रेरणा करने के लिए दिव्य सौन्दर्य! स्वार्थलोलुप ब्रिटेन के अन्याय के सम्मुख तूफ़ानी समुद्र की भाँति विकट आयरिश विप्लव का इतिहास इस देवी की भव्य देश-सेवा से चमत्कृत है।

इस वीराङ्गना का नाम है सूसान फ़िलन। सूसान का पिता भयङ्कर विप्लववादी था। वह अपनी पुत्री को सारहीन ऐश-आराम से परिपूर्ण जीवन बिताते हुए नहीं देखना चाहता था। इसीलिए उसने उसे बचपन से ही आदर्श आयरिश वीराङ्गना बनाने का प्रयत्न किया। उसे विप्लववादिनी वीराङ्गना बनाना था और बनाना था ब्रिटिश अत्याचार के विरुद्ध मस्तक हाथ में रख कर रण-क्षेत्र में झूमने वाली रणचण्डी! उसने सूसान को घुड़सवारी सिखाई, लक्ष्य को भेदने वाली अचूक निशानेबाज़ी सिखाई और सिखाई मातृ-भूमि के हित के लिए प्राणार्पण करने की विधि! सागर के विशाल वक्षस्थल पर या गहरे सरोवर या नदी पर भयानक वातावरण में बिजली की गति की भाँति अपनी नौका को पार ले जाने में तो उसके समान दूसरा मिलना कठिन था।

एक देशभक्त, विप्लववादी पिता की पुत्री जैसी होनी चाहिए, सूसान भी वैसी ही बनी। उसकी रग-रग में देश-प्रेम व्याप्त हो गया।

* * *

१९१६ ई० में आयर्लैण्ड की वीर-भूमि पर भयानक विप्लव आरम्भ हो गया। सूसान का बहादुर पिता इसमें शरीक हुआ। कॉलेज की निर्जीव पुस्तकें पढ़ते हुए,

श्रीमती मोहिनी देवी (अपनी पौत्रियों सहित)

लोहू का घूँट पीती हुई सूसान अपने पिता के आह्वान पर उस कॉलेज को नमस्कार करके कार्यक्षेत्र में आ गई! उसका हृदय देश-भक्ति के भावों से परिपूर्ण था। पिता-पुत्री ने ग्राम-निवास छोड़ कर जङ्गल और घाटियों की शरण ली। उन्होंने अपना घर बनाया प्रकृति की गोद में! उस अज्ञात-वास में पिता-पुत्री ने देश की सेवा के लिए कठोर प्रतिज्ञा की!

* * *

शहर-शहर में ब्रिटेन की क्रूर तोपों के मोरचे बँध

गए। कौटुम्बिक भावना के शत्रु गोरे सैनिकों ने प्रजा पर अनेक प्रकार के अत्याचार आरम्भ किए! आयर्लैण्ड की स्वतन्त्रता के लिए अविश्रान्त परिश्रम करने वाले वीरों और वीराङ्गनाओं को जङ्गलों की झाड़ियों तथा पहाड़ों की तराइयों में अपनी रक्षा के लिए स्थान खोजना पड़ा। प्रकृति के रक्षक परदे के पीछे रह कर वे अवसर-अवसर पर अपने शत्रुओं से लोहा लेने लगे। उनके
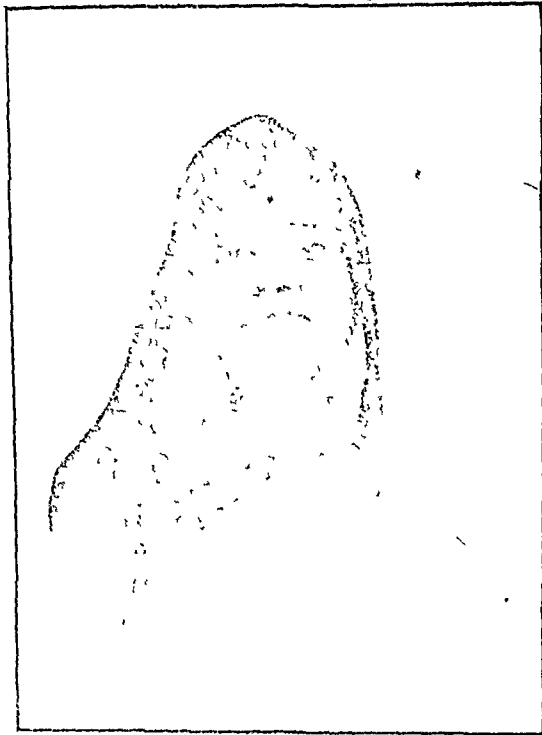
श्रीमती विमल प्रतिभा देवी

भीष्म पराक्रम के सामने अङ्गरेज़ी सेना भी डगमगाने लगी।

पर्वतों के कराल स्थानों में, वनों के घनघोर झुरमुटों में उन आयरिश वीरों के बीच में एक चेतना-मूर्त्ति दिन-रात घूमती रहती थी। इस समय एक जगह हैं तो एक घड़ी भर बाद दूसरे स्थान में मीलों दूर! आयरिश युवकों की छावनियों में वह बिजली के समान इधर-उधर घूमा करती! वन के एक निर्जन प्रान्त में एकान्त कुटी में वास करने वाले अपने पिता से भी वह चेतनामूर्त्ति सूसान मिल आती और पहाड़ों में स्थान-स्थान पर अपने साथियों को युद्ध की योजना तथा शत्रु की हिकमतों का समाचार पहुँचा देती। उसके जीवन में विश्राम को स्थान नहीं था। पिता की आज्ञानुसार युवकों को प्रेरणा के दिव्य सन्देश पहुँचाना ही उसका जीवन-मन्त्र था। सूर्य के प्रकाश में तो आकाश में प्रलयकाल के भयानक बादलों की भाँति अङ्गरेज़ों के वायुयान घूमा करते। उनसे भयानक बम्ब जङ्गलों और शहरों में मूसलाधार वर्षा की भाँति बरसते। अतएव वीर बाला सूसान रात के समय वनदेवी की भाँति सन्देश पहुँचाने के लिए इधर-उधर परिभ्रमण किया करती। जङ्गली पशुओं की चीत्कार तथा भयङ्कर सर्पों की फुफकार उसके मन में मातृभूमि के प्रति और भी अधिक आकर्षण उत्पन्न करती, उसके पैरों में अपूर्व शक्तिशाली घोड़े की सी शक्ति आ जाती! वह अङ्गरेज़ी सिपाहियों और जासूसों की विषैली दृष्टि और अप्रकट प्रवृत्ति के आगे निरन्तर फिरती। परन्तु सूसान के बुद्धि-वैभव के आगे उन आँखों की दृष्टि-शक्ति लोप हो जाती।

* * *

मृत्यु राक्षस का भीषण तथा श्याम चित्र किसने बनाया? निबिड़ अरण्य की अपूर्व शान्ति हिंसक प्राणियों की आवाज़ से भयानक बन गई। प्रगाढ़ अन्धकार में सूसान भिखारिन के वेश में जङ्गलों में जा रही थी। झाड़ियों के झुरमुट में खड़खड़ाहट हुई। बिजली की बत्ती के प्रकाश से उसका मुख-मण्डल देदीप्यमान हो गया। प्रकाश अन्धकार में विलीन हो गया। सूसान ने अपने बिखरे हुए केशों में दो-तीन पत्र छिपा लिए, पीछे से उसके कन्धे पर अङ्गरेज़ी जासूस ने अपना लोहखण्डी पञ्जा रक्खा। पुनः प्रकाश प्रकट हुआ। जासूसों ने शरीर का एक-एक स्थान तलाश लिया। "यह तो कोई रास्ता भूली हुई भिखारिन है, सूसान नहीं" यह कह कर उन्होंने उसे छोड़ दिया। फिर पकड़ी गई। छः स्थानों में उसकी तलाशी ली गई। जासूसों में क्या इतनी शक्ति थी कि वे उसे पहचान सकें और उसके अस्त-व्यस्त बालों के रहस्य को समझ सकें।

उस वीर-हृदया को पद-पद पर ऐसे विपत्ति से भरे

वन्य-जीवन में दुस्सह अवसरों का सामना करना पड़ा। उसे भयङ्कर जाड़े में कई दिन ख़ाली पेट नदी-नालों में या काँटेदार वृक्षों की कुञ्जों में छिप कर बिताने पड़े। कई महीनों तक उसे अपनी उदर-पूर्त्ति पहाड़ों में रहने

कुमारी ज्योतिर्मयी गाङ्गुली, एम० ए०

वाले निर्धन ग्रामीणों के रूखे-सूखे रोटी के टुकड़ों से करनी पड़ी। हिम से जमी नदी, भयङ्कर जङ्गल, प्राण-शोषक भूख—उसने सब कुछ सहा। क्यों न सहती? उसने तो मातृभूमि की स्वतन्त्रता के निमित्त कठोर व्रत धारण किया था न! अडिग धैर्यशाली नरवीर को भी विचलित कर देने वाली आफ़तों के बीच वह सूसान हिम्मत और सहिष्णुता के साथ नगाधिराज हिमालय की भाँति अविचल बनी रहती!

* * *

उसके आत्म-बलिदान पर, उसकी साहसिकता पर आयर्लैण्ड के हज़ारों युवक-युवतियाँ प्राणों की आहुति देने के लिए सदैव तत्पर रहते। जिस समय सूसान के साथी किसी विपत्ति में होते तो वह उसका निवारण अपनी विलक्षण बुद्धि से खोज निकालती। अथवा सारा भय अपने सिर पर लेकर जिस प्रकार से हो, उनका बचाव करने का प्रयत्न करती।

उसके अद्वितीय साहस का एक प्रमाण है। जङ्गल में एक दूर स्थान पर सूसान अपने दो साथियों के साथ

श्रीमती उर्मिला देवी, श्रीमती मोहिनी देवी, श्रीमती विमल प्रतिभा देवी, कुमारी ज्योतिर्मयी गाङ्गुली तथा कुछ अन्य सत्याग्रही महिलाएँ राष्ट्रीय झण्डे के साथ।

अङ्गरेज़ सैनिकों को हराने की विधि सोच रही थी। अचानक घोड़ों की टाप सुनाई दी। दोनों युवक हैरान हो

गए। परन्तु सूसान की तीव्र बुद्धि ने उपाय सोच निकाला। अपने कपड़े पहना कर उन्हें रवाना कर

मेरठ का लड़कियों का स्कूल
इस स्कूल का उद्घाटन हाल ही में यू० पी० लेजिस्लेटिव कौन्सिल के प्रेज़िडेण्ट पण्डित सीताराम के हाथों से हुआ है।

दिया। अङ्गरेज़ गुप्तचरों ने उन्हें स्त्री समझ कर पूछा नहीं। सूसान पुरुष-वेश में साइकिल पर सरपट चल कर गुप्तचरों की दृष्टि से ओझल हो गई।

अपनी ज़िन्दगी की मस्त बेपरवाही के द्वारा उसने इस प्रकार अनेक बार आयर्लैण्ड के विप्लववादी तरुणों की जानें बचाईं!

* * *

एक रात को सूसान अपने पिता को ईश्वर के भरोसे छोड़ कर अपने कुछ साथियों को कोई आवश्यक सन्देशा देने के लिए गई। दूसरी रात को वापस लौटने का वादा था। परन्तु विधि ने पिता-पुत्री के भाग्य में अन्तिम समय में मिलना नहीं लिखा था। निष्ठुर अङ्गरेज़ सैनिकों ने स्वतन्त्रता के इस भव्य मन्दिर रूपी कुटीर को अग्नि से स्वाहा कर दिया। छोटी-मोटी सभी चीज़ें लूट लीं। उनका वह नृशंस कृत्य पूरा नहीं हुआ था, अतएव उसकी पूर्णाहुति देने के निमित्त उन्होंने सूसान के पिता को गोली से मार डाला। "सूसान" के नाम का करुण आक्रन्द करता हुआ वह इस संसार को छोड़ कर चल बसा!

सूसान लौट कर आई। निर्दय दुःख का दृश्य देख कर उसके हृदय की अग्नि समस्त उग्रता के साथ भभक उठी! इस घटना ने उसे हतोत्साह नहीं किया, उसकी कार्यशील बुद्धि को शान्त नहीं किया, परन्तु उलटे उसकी उत्साहाग्नि में घृताहुति का काम किया। उसने द्विगुण उत्साह से कार्य आरम्भ किया। आयरिश वीरों के हृदय में स्वतन्त्रता के लिए जलती हुई अग्नि के लिए उसने आँधी का काम किया। ज्वाला प्रचण्ड हो गई। भयङ्कर विप्लव में प्रलय-काल के से दृश्य दीखने लगे। अङ्गरेज़ों के विरुद्ध तरुण आयर्लैण्ड रणक्षेत्र में कूद पड़ा।

सूसान फ़िलन की उस सेवा के प्रताप से आयर्लैण्ड आज

कुमारी ताराबती पटेल, बी० ए०
आप पहली गुजराती महिला हैं, जिन्होंने एल्-एल्० बी० की परीक्षा पास की है।

स्वाधीन है। उसने अप्रकट रूप से अपने देश की अपूर्व

सेवा की, उसके लिए उसे प्रसिद्धि प्राप्त करने की लालसा नहीं थी।

*　　*　　*

कुमारी अरुन्धती मित्र और कुमारी रेणुका मित्र

इन दोनों बहिनों ने पूना के भारतीय महिला विश्व-विद्यालय की एन्ट्रेन्स-परीक्षा विशेष योग्यतापूर्वक पास की है। कुमारी अरुन्धती समस्त परीक्षार्थिनियों में प्रथम उत्तीर्ण हुई हैं।

एक भारतीय सज्जन की पेरिस में आयर्लैण्ड की इस स्वतन्त्रता-देवी से भेंट हुई। दोनों में यह बातचीत हुई :—

"आपका घर जल जाने से तथा पिता की मृत्यु से आपको कुछ भी शोक न हुआ? आपकी सेवा-प्रवृत्ति में किसी प्रकार की बाधा नहीं आई?"

"पिता का देशहित के लिए मरण तो मेरे लिए गौरव का विषय है। और घर जल गया उसका तो शोक ही किस बात का? मैं तो ऐसे मौक़े पर स्वयं उस घर को जला देती कि कहीं ज़रूरी काग़ज़ शत्रुओं के हाथ में न पड़ जायँ।"

"मार्शल-लॉ के दिनों में तो घर से बाहर निकलना भी कठिन था, आप क्या करती थीं?"

"अङ्गरेज़ सिपाही तो रास्तों को रोक कर बैठे थे। भयङ्कर जङ्गलों में प्रवेश करने की उनमें शक्ति कहाँ? मैं तो प्रायः रात को ही अपने सन्देश ले जाया करती थी।"

"जहाँ सैनिकों को दिन में भी डर लगता था वहाँ आपको रात में कोई भय मालूम नहीं होता था?"

"अङ्गरेज़ आगन्तुक थे और मैं ठहरी आयर्लैण्ड की पुत्री! अपने घर में कहीं भी इधर-उधर घूमने में किसी को कोई भय क्यों लगना चाहिए? दूसरे मैं तो मृत्यु का सामना करने के लिए प्रति क्षण तैयार थी! स्वदेश-प्रेम के आगे मेरे सामने तन, मन, धन कुछ नहीं।"
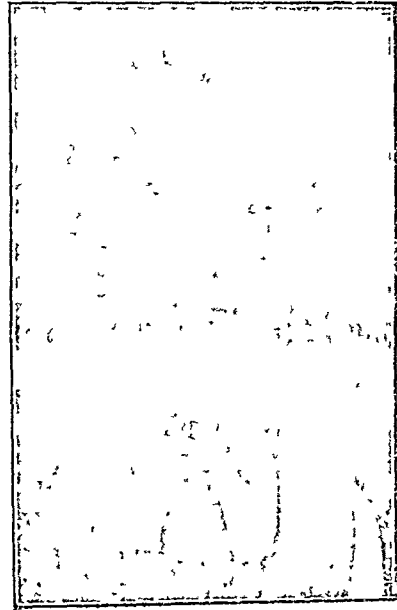
श्रीमती जोहरा खानूम हाजी

आप सिन्ध-प्रान्त के एक प्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमी वंश की कन्या हैं। आपने केवल १२ वर्ष की आयु में बम्बई यूनीवर्सिटी की मैट्रिक-परीक्षा पास की है।

"भूखे रहने तथा सूखे टुकड़े खाने में आपको कोई कष्ट नहीं होता?"

"बेकारी के कारण भूखे मरते हुए लाखों देश-बान्धवों के कराल जीवन में तो मेरा वह कार्यपरायण जीवन हज़ार गुणा सुखप्रद था।"

श्रीमती मञ्जरी गोपालकृष्ण कमलाम्मल

आप मालाबार के डिस्ट्रिक्ट सेकण्डरी एजूकेशन बोर्ड की सदस्या नियुक्त की गई हैं।

हिन्दुस्तान के प्रति इस आयरिश युवती को अगाध प्रीति है। महात्मा गाँधी के प्रति उसकी श्रद्धा है। खादी धारण करने की उसे उत्कट इच्छा है। चरखे के गृह-उद्योग के प्रति अनन्य भक्ति है। अहिंसा सिद्धान्त में अडिग विश्वास है और इसीलिए उसने मांस-मछली का त्याग कर दिया है। वह कहती है—जिस स्वतन्त्रता के लिए भारत में महात्मा गाँधी लड़ रहे हैं, वही स्वतन्त्रता मुझे मेरे देश के लिए चाहिए। यन्त्रवाद और साम्राज्यवाद के सभ्य शैतान से मुझे मेरे आयर्लैण्ड की रक्षा करनी है।

भारत की नवयुवतियो! अपने जीवन के सामने ... की देशभक्ति तथा आत्मबलिदान के उच्च आदर्श को रक्खो और आर्यभूमि के इतिहास में अङ्कित रमणियों के वास्तविक अर्थ को सार्थक करो!

—श्रीगोपाल नेवटिया, विशारद

* * *

विवाह-विच्छेद

इस समय हमारे देश में तलाक़ प्रथा (विवाह-सम्बन्ध-विच्छेद) की उपादेयता और अनुपादेयता के विषय में बड़ा विवाद चल रहा है। कुछ दिन हुए मद्रास में स्त्रियों की एक कॉन्फ्रेन्स में तलाक़ के सम्बन्ध में कुछ प्रस्ताव पास हुए थे, जिसके ख़िलाफ़ बड़ी 'भवति नभवति' हुई। कुछ लोग इस प्रथा के विरोधी हैं और कुछ लोग जिनमें नवयुवक तथा विशेषतः नवयुवतियाँ हैं

श्रीमती आनन्दबाई केसकर

आप दादर (बम्बई) के गर्ल्स स्कूल की प्रधान अध्यापिका हैं और शीघ्र ही अवसर ग्रहण करने वाली हैं।

इसके पक्ष में हैं। किन्तु सामान्य तौर पर हमारे समाज में इसके विरोधियों ही का आधिक्य है।

तलाक़ के पक्षपाती वे नवयुवक लोग हैं, जिन्होंने हमारे पुराने समाज के ख़िलाफ़ बग़ावत के लिए कमर कसी है, जो इस घुन लगे हुए समाज से ऊब गए हैं, और जिनके सामने नया आदर्श है, जिनकी रगों में नया ख़ून दौड़ रहा है और जो एक नया समाज स्थापित करना चाहते हैं। इनमें कुछ पश्चिम के अन्ध-भक्त लोग भी हैं। ये लोग प्रायः तलाक़ के हानि-लाभों पर अच्छी तरह विचार करके उनसे इतना प्रभावित नहीं होते जितना कि इस सड़े-गले समाज तथा उसकी बुराइयों को देख कर ऊब जाते हैं। दूसरी तरफ़ तलाक़ के विरोधी लोग हैं। उनकी मनोवृत्ति का यदि भले प्रकार विश्लेषण किया जाय तो पता चलेगा कि वे इसका विरोध किन्हीं युक्तियों वा तलाक़ के हानि-लाभ को बुद्धि और तर्क की कसौटी पर कस कर नहीं करते, किन्तु उनके मन में पुराने संस्कार जमे हुए हैं और वे तलाक़ का नाम सुनते ही काँप उठते हैं और समझते हैं कि तलाक़ की प्रथा प्रचलित होने पर हमारा समाज छिन्न-भिन्न हो जायगा, और उसकी सुख-शान्ति सदा के लिए विलीन हो जायगी। वे अपने मन में बैठे हुए इन संस्कारों को नहीं हटा सकते और इसीलिए वे तलाक़ के पक्षपातियों का विरोध करने में आकाश-पाताल एक कर देते हैं।

सारांश, भारत में तलाक़ का समर्थन और विरोध करने वाले दोनों ही पहले अपनी राय बना लेते हैं और फिर अपने मत के समर्थन में युक्तियाँ ढूँढ़ने लगते हैं। वे उसकी उपादेयता और अनुपादेयता तथा हानि-लाभों पर ठण्डे दिल से बहुत कम विचार करते हैं। आज इस लेख में तलाक़ से होने वाले हानि-लाभों और समाज तथा व्यक्ति पर उसके प्रभाव आदि का विवेचन किया जायगा।

विवाह-सम्बन्धी प्रथाओं का विषय बड़ा पेंचीदा है। उसमें अनेक बातों पर ध्यान देना पड़ता है। इसके अलावा देश में औद्योगिक विकास कितना हुआ है, देश कितना धनी है, शिक्षा का कितना प्रसार है, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थिति कैसी है, इत्यादि अनेक बातों का विवाह जैसी महत्वशाली संस्था पर प्रभाव पड़ता है और उन सबको ध्यान में रख कर विवाह-सम्बन्धी प्रथाओं पर विचार करना चाहिए। परिस्थितियों के बदल जाने से प्रथाएँ भी बदल जाती हैं।

विवाह का उद्देश्य क्या है? विवाह का प्रथम उद्देश्य बच्चों को उत्पन्न करके उनका यथोचित पालन-पोषण है। बच्चे के उत्पन्न होने के बाद उसके पालन-पोषण तथा शिक्षण में माता को एक दूसरे सहायक की ज़रूरत होती है, क्योंकि यदि विवाह की संस्था न हो और माता पर ही पालन-पोषण का सारा बोझ पड़ जाय तो वह अकेले उस बोझ को नहीं सँभाल सकती। पुरुष पर इस क़िस्म का बन्धन न हो तो फिर पिता का कार्य राज्य को करना पड़ेगा। जब तक राज्य पूरे तौर से पिता के भार को नहीं सँभाल लेता और जब तक वर्तमान सामाजिक सङ्गठन है, तब तक बच्चों के पालन-पोषण के लिए पिता की, पैत्रिक स्नेह की आवश्यकता है और विवाह की संस्था भी अनिवार्य है, उसका उन्मूलन नहीं किया जा सकता।

विवाह-प्रथा का दूसरा उद्देश्य वैवाहिक सुख की प्राप्ति है। वैवाहिक सुख क्या चीज़ है? पति-पत्नी का प्रेम तथा पुरुष-स्त्री का एक दूसरे के प्रति जो आकर्षण है, उसी को वैवाहिक सुख कहते हैं। सिर्फ़ किन्हीं दो स्त्री-पुरुषों के मेल से, विषय-सम्बन्धी भूख की तृप्ति मात्र से वैवाहिक सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। उसके लिए ज़रूरी है दोनों में परस्पर प्रेम तथा भावुकता का होना। प्रेम तथा कला का आनन्द लेने के लिए भावुकता का—हृदय का—होना ज़रूरी है। जिसमें जितनी भावुकता होगी वह उतनी ही अधिक इस प्रेम के आनन्द को प्राप्त कर सकेगा। बड़े खेद की बात है कि मैशीनों की उत्तरोत्तर वृद्धि तथा उनके वर्तमान स्वरूप के कारण भावुकता तथा कला का लोप होता जाता है। जब तक स्त्री और पुरुष के स्वभाव आदि में मेल न हो, वे दोनों साथ न रहते हों, जब तक एक दूसरे से अनुनय और प्रार्थना (Courtship and Wooing)* न हो तब तक प्रेम नहीं हो सकता और प्रेम के बिना सिर्फ़ विषय-वासना की तृप्ति मात्र से आदमी कभी सुखी नहीं हो सकता। इस प्रेम के लिए स्त्री और पुरुष के स्वभाव का मिलना और हरेक बात में एक सा होना अत्यन्त ज़रूरी है।

---

*केवल विवाह से पहले ही नहीं, बाद भी।

यदि दम्पति का मन मिलता है, दोनों स्वस्थ हैं, साथ रहते हैं, तो उनमें प्रगाढ़ प्रेम होगा; वे कभी एक-दूसरे से अलग होना नहीं चाहेंगे और ऐसी अवस्था में कभी तलाक़ के विषय में, उसकी उपादेयता अनुपादेयता के विषय में सोचने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। यही नहीं, यदि पति और पत्नी काफ़ी समय तक एक साथ रहे हों और फिर उनमें से कोई एक मर जाय तो उनका प्रेम इतना प्रगाढ़ होगा कि फिर दूसरा, चाहे पति हो या पत्नी, स्वप्न में भी दूसरे विवाह की बात नहीं सोचेगा। किन्तु यह सब आदर्श है, और हम हरेक स्त्री व पुरुष से यह आशा नहीं कर सकते कि वह, यदि उसका साथी व साथिन मर जाय तो आजन्म ख़ुशी से अकेला रह कर बिता सकेगा। प्रत्यक्ष देख लीजिए, कितने ऐसे पुरुष हैं जो पत्नी के मर जाने पर दूसरा विवाह नहीं कर लेते। स्त्रियों के लिए यद्यपि पुनर्विवाह क़ानूनन निषिद्ध नहीं है, तथापि प्रथा से निषिद्ध है। इसीलिए पुनर्विवाह बहुत कम स्त्रियाँ करती हैं। यदि इस क़िस्म की कोई रोक-टोक न हो तो पुनर्विवाह न करने वाली स्त्रियाँ भी बहुत कम होंगी और जिन जातियों में स्त्रियों का पुनर्विवाह निषिद्ध नहीं है उनमें ऐसा है भी।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आदर्श और रिवाज दोनों एक कभी नहीं हो सकते। यदि इन दोनों को एक करने की कोशिश की जाय तो परिणाम बहुत अनिष्टकारी होता है, जैसा कि विधवाओं के बलात् अकेली रखने की प्रथा में देखा जाता है। इससे स्त्रियों पर जो अनुचित सख़्ती होती है, उसके अलावा व्यभिचार, भ्रूण-हत्या आदि जो अनेक अनिष्ट देखे जाते हैं, उनको सब कोई जानते ही हैं।

जिस आदर्श विवाह और आदर्श दम्पति का ऊपर वर्णन किया गया है उसको सब नहीं पहुँच सकते। आदर्श आदर्श ही होता है, उसकी ओर बढ़ने की जहाँ तक हो सके, कोशिश करनी चाहिए। स्त्री और पुरुष को जहाँ तक हो सके, अपना साथी ऐसा चुनना चाहिए जिसका स्वभाव, रुचि आदि बिलकुल मिलते-जुलते हों। इस बात की ख़ूब देख-भाल करनी चाहिए। इसके लिए यह ज़रूरी है कि एक दूसरे को कुछ समय तक अच्छी तरह देखने का और एक साथ रहने का मौक़ा मिले। ऐसी सुविधाएँ सबको नहीं मिल सकतीं। भारत में तो यह बुरा भी समझा जाता है। यदि मिलें भी तो हरेक आदमी में इतनी योग्यता नहीं होती कि वह दूसरे आदमी को ख़ूब पहचान सके। इसके अलावा विवाह करने की उम्र में आदमी में एक ऐसी बेचैनी और आतुरता रहती है कि वह ज़्यादा देर तक देख-भाल करना पसन्द नहीं करता और थोड़ी ही जाँच से सन्तुष्ट हो जाता है। ऐसा प्रायः देखा जाता है कि वह समझता है कि किसी व्यक्ति-विशेष से विवाह करने से मेरा जीवन परम सुखी होगा, यह मेरे हरेक तरह से अनुकूल है और विवाह कर लेता है। कुछ दिनों तक पति-पत्नी दोनों बहुत सुखी रहते हैं और विवाह उनको स्वर्ग प्रतीत होता है। किन्तु कुछ समय बाद उनकी वैषयिक भूख शान्त हो जाती है, तब उनमें मतभेद पैदा होने लगते हैं। कुछ दिनों बाद वे परस्पर की असमानता के कारण बहुत बढ़ जाते हैं और जीवन नरक हो जाता है। किन्तु विवाह-सम्बन्ध के अविच्छेद्य होने के कारण उनको उस कठिन परिस्थिति को सह लेना पड़ता है। यहाँ तक कि वे प्रायः बाहर वालों को जानने भी नहीं देते कि घर में क्या विकट संग्राम मचा रहता है और उसे चुपचाप सह लेते हैं।

कुछ लोग कह सकते हैं कि जहाँ पर तलाक़ की प्रथा है वहाँ ऐसा है, किन्तु जहाँ तलाक़ की प्रथा नहीं है वहाँ विवाह-सम्बन्ध के अविच्छेद्य होने के कारण मतभेद उपस्थित होने पर भी दम्पति उसको बरदाश्त कर लेते हैं और पारिवारिक सुख में कोई बाधा नहीं पड़ने पाती। किन्तु वस्तुस्थिति को देखते हुए यह नहीं कहना चाहिए कि वे बरदाश्त कर लेते हैं, बल्कि यह कहना चाहिए कि उनको बरदाश्त करना पड़ता है, क्योंकि दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। मैंने अपनी आँखों से सैकड़ों हिन्दू घरों में देखा है कि पति-पत्नी का जीवन पारस्परिक मेल न होने के कारण नरक बना हुआ है और यहाँ तक कि आत्महत्या तक के दृष्टान्त रात-दिन देखने में आते हैं। इस रात-दिन की पारस्परिक कलह का बच्चों पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसी अवस्थाओं में यदि विवाह-विच्छेद सम्भव हो तो ये सब कठिनाइयाँ आसानी से दूर की जा सकती हैं।

इस पारस्परिक मेल न होने के सिवा और भी कई कारण हैं, जिनसे तलाक़ अनिवार्य हो जाता है।

यदि दम्पति में से कोई एक किन्हीं विशेष रोगों से आक्रान्त हो जाता है, जिनमें कि पागलपन, गरमी की बीमारियाँ, कोढ़ आदि की गणना की जा सकती है, तो समाज के तथा बच्चों के हित के लिए यह ज़रूरी है कि ऐसे विवाहों को तोड़ दिया जाय। यदि ऐसी हालत में भी विवाह को न तोड़ा जाय तो तीन ही रास्ते हैं, या तो नीरोग साथी पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहे, या अपने विवाहित साथी के साथ रहे, या दूसरे ताल्लुक़ात पैदा कर ले जो ग़ैरक़ानूनी कहलाते हैं। इनमें पहिले रास्ते पर बहुत कम लोग चल सकते हैं, जो चलते भी हैं वे अपने मन पर अत्यन्त अधिक दबाव डाल कर, क्योंकि पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहना विशेषतः उनके लिए जो विवाहित जीवन बिता चुके हैं, कोई मामूली बात नहीं है, और इसका परिणाम यह होता है कि उनको नाना प्रकार के वात-संस्थान सम्बन्धी (Nervous system) रोग हो जाते हैं।

अपने विवाहित साथी के साथ रहे तो इसका अर्थ यह है कि उसके रोग को अपने ऊपर भी ले ले। सिर्फ़ इतना ही नहीं, उसी रोग से आक्रान्त बच्चे पैदा करके उसके रोगियों की समाज में वृद्धि करे और उस रोग को फैलावे।

तीसरा रास्ता जो लिखा गया है वह सबसे कम ख़तरनाक है, लेकिन सामाजिक कारणों से उसका अनुमोदन नहीं किया जा सकता।

इन कारणों से ऐसी विशेष अवस्थाओं में, जब विवाह दूभर हो गया हो अथवा रोग आदि की दशाओं में तलाक़ के लिए अवकाश होना चाहिए।

अब हम तलाक़ की बुराइयों पर कुछ विचार करना चाहते हैं। तलाक़ का सबसे अधिक बुरा प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। बच्चे बहुत दिनों तक पिता के साथ रहने के कारण उससे प्रेम करने लगते हैं। तब यदि माता-पिता में तलाक़ हो जाय तो बच्चे पिता से वञ्चित हो जाते हैं और इस बात को वे बहुत अनुभव करते हैं। तलाक़ की प्रथा के होने से दूसरा नुक़सान यह है कि पति-पत्नी अविच्छेद्य विवाह की कल्पना करें तो उनका प्रेम-बन्धन अधिक दृढ़ होता है, किन्तु यदि उनके मन में यह ख़्याल भी आ जाय कि यह सम्बन्ध टूट भी सकता है तो फिर उतनी दृढ़ता नहीं रहती और कोई मतभेद उपस्थित होने पर तलाक़ का ख़्याल आने लगता है जिससे प्रेम-बन्धन में शिथिलता आती है, और पहले कहा जा चुका है कि सुख, वैषयिक तृष्णा की पूर्ति से नहीं, बल्कि प्रेम और कला के द्वारा मिलता है।

इसलिए तलाक़ के न होने से होने वाली बुराइयों और अनुचित सख़्तियों से तथा तलाक़ के दुरुपयोग से भी बचने के लिए तथा सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए उचित यह है कि क़ानून में तलाक़ के लिए अवकाश होना चाहिए, जिससे कि विशेष हालतों में और अत्यधिक मतभेद बढ़ जाने आदि की अवस्था में तलाक़ हो सके, बल्कि मेरी राय में तो तलाक़ के क़ानून में अधिक शिथिलता ही होनी चाहिए, किन्तु जन-मत ऐसा बनाना चाहिए कि तलाक़ अच्छा न समझा जाय। उसको पातक नहीं समझना चाहिए, किन्तु लोग उसको बुरा समझें। ऐसा होना सम्भव है। इसके कुछ दृष्टान्त भी यहाँ दिए जाते हैं। अमेरिका की भिन्न-भिन्न रियासतों में तलाक़ के क़ानून भिन्न-भिन्न हैं, कुछ रियासतों में तो तलाक़ है ही नहीं, किन्तु किसी भी रियासत में पति-पत्नी की परस्पर सहमति से तलाक़ नहीं है। अमेरिका में तलाक़ की संख्या प्रति लाख १२६ है, क्योंकि वहाँ तलाक़ को बुरा नहीं समझते। इसके ख़िलाफ़ स्वीडन में पति-पत्नी की परस्पर सहमति मात्र से तलाक़ हो सकता है, किन्तु वहाँ तलाक़ की संख्या प्रति लाख केवल २४ है।

निष्कर्ष यह निकलता है कि समाज में तलाक़ को बुरा समझा जाना चाहिए, आम तौर पर तलाक़ की प्रथा नहीं होनी चाहिए, किन्तु क़ानून में उसके लिए अवकाश ज़रूर होना चाहिए, नहीं तो बहुत हानि उठानी पड़ती है और अनुचित कठोरता होती है। आदर्श, क़ानून और प्रथा—ये तीनों चीज़ें अलग-अलग रहनी चाहिए।

—सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ
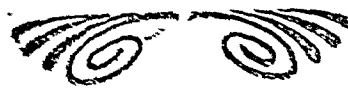
दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह

["पागल"]

पाँचवाँ खण्ड

३

अङ्गरेज़ी का पत्र अधूरा ही पढ़ कर मैंने अलग रख दिया। थोड़ी देर आरामकुर्सी पर लेट कर मैं अपने चित्त को शान्त करता रहा। तरह-तरह के ख़्यालात मेरे दिल में हिलोरें मारने लगे। कभी सोचता था कि अगर जहानारा के पत्र इस हत्यारे द्वारा न रोके जाते तो अलिन्द की जीवन-गाथा कुछ और ही होती। अलिन्द और जहानारा का प्रेम कदापि इस बुरी तरह न सूखने पाता; और न अलिन्द ही जहानारा से निराश होकर अन्य किसी के प्रेम में पड़ सकता था। परन्तु अफ़सोस! इस चाण्डाल ने अपनी नीचता से केवल अपनी स्त्री ही की हत्या नहीं की, वरन उसके साथ दो आशापूर्ण हृदयों का भी ख़ून कर डाला। कहीं ऐसे नीच को भी भला जहानारा प्यार कर सकती थी? प्रेम तो उच्च स्वभावों ही पर मोहित होना जानता है। मगर क्या इसकी नीचताओं की ख़बर जहानारा को थी?

कहाँ मैं सरोज के पत्र ढूँढ़ने आया था और कहाँ इस रजिस्ट्री लिफ़ाफ़े के पचड़े में ऐसा उलझा और जहानारा के भावों को जानने के लिए ऐसा उत्सुक हुआ कि मैं सब ख़्याल छोड़, यहाँ तक कि अङ्गरेज़ी का पत्र भी सामने से हटा कर, जहानारा के पत्र एक-एक करके पढ़ने लगा—

पहला पत्र

(इस पत्र की तारीख़ रजिस्ट्री लिफ़ाफ़े की तारीख़ से लगभग तीन वर्ष पहिले की थी।)

"हमेशा ध्यान में रहने वाले!

तुमसे बिछुड़े हुए आज पूरे साल भर हो गए। मैं समझती थी कि मैं तुमसे अलग होकर अपने हृदय को वश में कर लूँगी। मगर नहीं, तुम्हारा वियोग तो और जान का काल हो गया। मेरी भाव-तरङ्गें दिनोंदिन शिथिल होने के बदले और भी तीव्र हो उठीं। जितना ही मैं उनको दबाती हूँ, उतना ही मैं अपने उद्योग में पछाड़ खाकर गिरती हूँ। अलिन्द, ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूँ कि मुझे बिछुड़ते समय नहीं मालूम था कि यह प्रेम मेरे हृदय पर कितनी आफ़तें ढाएगा। आह! तुम तो हर तरह से मेरा साथ देने को तैयार थे; मगर मैं ही अभागी तुम्हारे प्रेम को ठुकरा कर तुमसे भागी, जिसका परिणाम आज नरक की यन्त्रणा की तरह भोग रही हूँ।

क्यों भागी? सुनोगे? अच्छा कहती हूँ। दिल खोल कर कहूँगी। जो कुछ न कहना चाहिए उसे भी आज कह डालूँगी। तुमसे कोई भी अपनी बात छिपाने की शक्ति नहीं है। तुम ख़ुद ही समझ सकते हो कि हमारा हिन्दुस्तानी समाज हिन्दू-मुसलमान ऐसे दो भिन्न धर्म वालों के वैवाहिक सम्बन्ध को कभी भी आदरणीय दृष्टि से नहीं देख सकता। यद्यपि मैं मुसलमान नहीं हूँ, तथापि मेरा नाम तो मुसलमानी है। जिसके कारण पब्लिक मुझे मुसलमान ही समझती है। इसलिए मेरी सङ्गत से तुम्हारे धर्म पर अवश्य ही धक्का लगता। तुम अपने ख़ानदान से छूट जाते। तुम्हारी ख़ातिर मैं अपने को कितना ही हिन्दू मशहूर करती, पब्लिक का भ्रम दूर करने के लिए मैं अपनी झूठ-मूठ शुद्धि भी करा लेती; क्योंकि असलियत में तो मैं हिन्दू ही हूँ, फिर भी इस सङ्कुचित-हृदय हत्यारे और पाखण्डी हिन्दू-समाज में आदर का स्थान न मैं पाती और न तुम्हें दिलवा सकती। इसके लिए तुम्हें कभी न कभी पछताना पड़ता। उस समय क्या तुम्हारा प्रेम इतना ही दृढ़ रह सकता था?

मैंने अपना मुसलमानी नाम क्यों रक्खा? मुझे हिन्दू-समाज और हिन्दू-जाति से इतनी चिढ़ है कि मुझे इसका नाम तक धारण करना स्वीकार नहीं है। केवल हृदय में हिन्दू-धर्म रक्खे हुए हूँ। वश चलता तो इसको

भी त्याग देती। परन्तु ऐसा अब तक नहीं कर सकी और शायद अन्त समय तक न कर सकूँगी। अपना नाम मुसलमानी रखने में मेरे बाप-दादों की लाज की रक्षा और मेरी भी बचत थी। क्योंकि हिन्दुओं की नसों में ख़ून नहीं, पानी है। यह लोग अपनी स्त्रियों को बस सताना और घर से निकालना ही जानते हैं, रक्षा करना नहीं। इनके निकम्मे समाज में न उदारता, न क्षमा और न अपनाने का दम है। हर मामलों में त्याग और बहिष्कार का मन्त्र फूँक कर यह अपने अङ्ग को ख़ुद ही काट-काट कर फेंकता है। खाने-पीने तक में जब छुआछूत का पाखण्ड इतनी बुरी तरह घुसा हुआ है, तब इसमें उदारता और अपनाने की बुद्धि कहाँ से उत्पन्न हो सकती है? इसी कारण हिन्दू-जाति दिनोंदिन रसातल को पहुँचती जाती है। लाखों मौखिक सुधार पर भी यह कभी सँभल नहीं सकती और न इसमें कभी मिल्लत हो सकती है। अगर मैंने अपना यह मुसलमानी नाम न रक्खा होता तो आज के दिन मैं निर्विघ्न रूप में थिएटर की नर्तकी का भी काम नहीं करने पाती। तब हिन्दू-मुसलमान दोनों ही क्या, बल्कि सभी भारतीय जातियाँ मुझे कुत्ते की मौत मरने के लिए अब तक चिचोर कर फेंक देतीं। और कोई कम्बख़्त मेरे लिए रक्षा का हाथ नहीं उठा सकता था। क्योंकि हिन्दू लावारिस स्त्री गली-गली ठोकरें खाने और गुण्डों के पैशाचिक व्यवहारों ही के लिए तो होती हैं। धन्य ईश्वर कि मैं अपने मुसलमानी नाम की बदौलत समय-समय पर मुसलमानों का पक्ष पाकर इस दुर्दशा से बचती रही।

फिर भी मैं नर्तकी हूँ। हिन्दू-समाज मेरी सुन्दरता और कला पर भले ही अपना सर्वस्व लुटा दे, मेरे लिए कितनी ही आहें भरे और मेरे तलवे तक चाटे और मेरा चरित्र भी कितना ही उज्ज्वल क्यों न हो, तो भी मैं इस पाखण्डी समाज में, जो अपनी स्त्रियों के साथ भेड़-बकरी की तरह बर्ताव करना जानता है, कदापि कुल-कामिनी की ऐसी प्रतिष्ठा नहीं पा सकती। मेरे सम्पर्क से इसकी दृष्टि में तुम भी घृणा के पात्र बनते। जिसका परिणाम तुम्हारे निर्दोष बाल-बच्चों को भुगतना पड़ेगा। उन्हें कहीं भी बैठने का ठिकाना न मिलेगा। उनको विवश होकर मसजिद या गिरजा-घरों की शरण लेनी पड़ेगी, उस वक़्त क्या तुम मुझे वैसा ही चाह सकोगे अलिन्द? बोलो।

हाँ, अन्य समाज में हम लोगों के लिए थोड़ी सी जगह मिल सकती है। मगर जब एक से एक हिन्दू-समाज का अत्याचार सह कर मैं अपना धर्म त्याग न सकी तो तुम्हारा धर्म त्यागना किस तरह गवारा कर सकती हूँ?

तुम मुझे कुमारी समझते होगे। मगर मैं कुमारी भी नहीं हूँ। मैं हूँ विवाहिता और मेरा पति जीवित है। यद्यपि मैं त्यागी हुई हूँ, और अगर मैं तुमसे सम्बन्ध कर भी लेती तो कोई हमारा या तुम्हारा कुछ कर नहीं सकता था। फिर भी क्या तुम मुझे 'परित्यक्ता जान कर मेरे प्रेम में अटल रह सकते थे और मेरे साथ सम्बन्ध करना पसन्द कर सकते थे?

इन कारणों के अतिरिक्त सबसे बड़ा कारण तुमसे भागने का यह था कि तुम अभी नवयुवक हो और मैं देखने ही में नवयुवती सी जान पड़ती हूँ, परन्तु हूँ मैं असलियत में युवती—तुमसे कई वर्ष बड़ी। तुम्हारी जवानी चढ़ाव पर है और मेरी उतार पर। मेरा पेशा नर्तकी का है, जिसमें रूप और नवयौवन बहुत कुछ बनावट से भी बनाए रखने पड़ते हैं। जिस सुन्दरता ने तुम्हारे हृदय में मेरे प्रेम का बीज डाला है उसमें कितनी असलियत है, इसे मैं ही जान सकती हूँ, देखने वाले नहीं। यह धोखे की टट्टी तुम्हारे सामने मैं भला कब तक खड़ी रख सकती थी? एक न एक दिन इसकी क़लई खुलती ही। उस वक्त, हाय! उस वक़्त तुम्हारे प्रेम की क्या गति होती? उफ़! सोचते ही कलेजा मुँह को आता है।

अगर तुम्हारी समझदारी की अवस्था होती, संसार को तुम देखे हुए होते, अच्छाई-बुराई, राह-कुराह सबको परखने की तुममें तमीज़ होती, तुम मेरी असलियत अच्छी तरह से जानते होते और तब तुम उसी जोश के साथ मुझे प्यार करते और इसके साथ ही इसके परिणाम को भी अच्छी तरह अनुमान करते तो मैं कदापि तुमसे नहीं भाग सकती थी। क्योंकि तब तुम्हारे प्रेम के विच्छेद होने की शङ्का न होती। और समझती कि तुम अच्छी तरह परख कर आँखें खोल कर, मुझे ही प्यार करते हो, धोखे में पड़ कर केवल मेरे रूप को नहीं।

मैं जानती हूँ, तुम्हारा प्रेम बहुत ही गहरा है। फिर भी यह तुम्हारी शुरू नवजवानी का प्रथम उफान है, जो आँच ठण्डी पड़ते ही शान्त हो सकता है। क्योंकि पुरुष-हृदय आरम्भ में कई दफ़े ऐसा ही उल्लास दिखलाता है, तब जाकर कहीं सच्चे अनुराग में पड़ता है।

इसलिए चार दिन की चाँदनी के लिए अपने स्वार्थ में पड़ कर मैं तुम्हारा जीवन कैसे नष्ट कर सकती थी? इसीलिए अलिन्द, मैं कलेजे पर पत्थर रख कर भागी। प्रेम-विच्छेद का कष्ट बाद को मुझे या तुम्हें भुगतना ही पड़ता, तब ऐसे प्रेम को सींचने के बदले शीघ्र ही अन्त कर देना लाख बार मुनासिब था। इस समय की पीड़ा तो किसी तरह सही भी जा सकती है, परन्तु बाद की यन्त्रणा जिस पर पड़ती उसका सर्वनाश ही करके छोड़ती। यद्यपि मेरे लिए अब और तब में कोई भेद नहीं है। मैं उसी तरह बेमौत मर रही हूँ जैसे कभी तुम्हारे प्रेम को खोकर मरती। क्योंकि नारी-हृदय पुरुष-हृदय की तरह प्रेम का अभ्यास नहीं करता फिरता। यह अव्वल तो बड़ी मुश्किलों से प्रेम में पड़ता है और जब पड़ता है तो सदा के लिए। अब जाना कि एक ही बार। इसीलिए तुम्हारे ध्यान को भूलने के बदले उसीमें मैं दिनोंदिन और जकड़ती जा रही हूँ।

मैंने ही तुम्हारी नौकरी में बाधा डाली थी, ताकि मेरा साथ छूटे और तुम मुझे आसानी से भूल सको। नौकरी करके तुम कहीं के भी न रहते। आख़िर वह कम्पनी, जो तुम्हें अपने साथ लाना चाहती थी, टूट भी गई। और अगर न भी टूटती तो भी तुम उसमें या कहीं भी मेरे साथ अधिक दिन रह नहीं सकते थे। क्योंकि आग और प्रेम कहीं छिपाए नहीं छिपता। इसका भण्डा फूटते ही तुम्हारे सभी दुश्मन हो जाते। मेरी भी रही-सही धाक नाटकीय संसार से एकदम उठ जाती। क्योंकि जब से काशी से आई हूँ, तब से मुझ पर कुछ ऐसी मुर्दनी छाई रहती है कि लाख उद्योग करने पर भी दर्शकों का मन मैं पहिले की तरह मुग्ध नहीं कर पाती हूँ। यहाँ सारा खेल तड़क-भड़क, रूप और यौवन का है। जब हृदय ही में उल्लास नहीं तो उसकी आभा चेहरे पर कहाँ से लाऊँ? इसीलिए इन दिनों नाटकीय संसार में कई नई ऐक्ट्रेसों की ख्याति बहुत कुछ मुझसे बढ़ गई है और जनता मेरे नाम को अब भूलने लगी है। एक काँटा मेरे हृदय में चुभा हुआ मेरे रक्त को चूस ही रहा था उस पर तुम्हारे प्रेम ने तो हाय! और भी आफ़त मचा रक्खी है। ऐसी दशा में यहाँ तुम्हारी नौकरी भला किसके बिरते पर टिक सकती थी? निजी कम्पनी और रियासतों की नौकरियाँ शुरू-शुरू में हमेशा किसी न किसी ज़ोर ही पर ठहरती हैं।

मैंने अपना यह सब हाल बिछुड़ते समय तुमसे कहना उचित नहीं समझा था। क्योंकि उस समय तुम अन्धे हो रहे थे और इसको जान कर भी तुम अपने प्रेम से नहीं पिछड़ सकते थे। इतने दिनों तक भी मैं अपने कलेजे का ख़ून करके अपने ऊपर जब्र करती रही, केवल तुम्हारी ही भलाई के लिए। ताकि अगर समय मेरा ख़्याल तुम्हारे हृदय में धुँधला कर रहा हो तो मेरा पत्र कहीं उसे फिर ताज़ा न कर दे। साल भर तक यह अति कठिन तपस्या झेली। मगर हाय! अब मुझसे अधिक जब्र नहीं किया जाता। मेरी दुर्बलताएँ मेरी सारी शक्तियों को पराधीन कर चुकी हैं। इसलिए विवश होकर आज तुम्हें पत्र लिखती हूँ। फिर भी सीधे-सीधे तुमसे प्रेम-भिक्षा माँगने के बदले ऊँच-नीच समझा कर, मैं ही तुम्हारे हृदय को और विमुख कर रही हूँ। हाय रे नारी-हृदय! स्वयम् सैकड़ों यन्त्रणाएँ भुगत कर भी तुम्हें, तुम्हारी ख़ातिर यह अपने से दूर ही रखने का उद्योग कर रहा है। जानती हूँ कि समय ने तुम्हारे प्रेम को अब शिथिल बना ही दिया होगा। उस पर मेरे सम्बन्ध की उपरोक्त बातें उसे अच्छी तरह से सर्द कर देंगी। फिर भी मेरी दुर्बलता नहीं मानती। क्या इतने दिनों अलग रह कर और मेरे सम्बन्ध में ये कुल बातें जान कर अब भी मेरे लिए तुम्हारा हृदय धड़क रहा है? बोलो अलिन्द! ईश्वर के लिए बोलो। इसी पर मेरे जीवन और मृत्यु का दारमदार है। ईश्वर तुम्हें सदा ख़ुश रक्खे।

तुम्हारी वही,

जहानारा"

४

जहानारा का पहिला पत्र पढ़ते-पढ़ते मेरी एक अजीब हालत सी हो गई। कभी हाथ मलता था, कभी सर धुनता था और कभी उस हत्यारे को कोसता था जिसने इस पत्र को समय पर अलिन्द के पास पहुँचने न दिया। मैं स्वयं औपन्यासिक था। एक से एक उच्च भाव की छानबीन कर चुका था। मगर जैसी उच्च हृदयता इस पत्र से झलकती थी वैसी शायद ही मुझे कहीं देखने को नसीब हुई थी। अगर अलिन्द इसे कहीं

उस समय पढ़ने को पाता तो वह क्या, उसके देवता तक जहानारा के लिए—चाहे वह परित्यक्ता नहीं भ्रष्टा भी क्यों न होती—आजन्म नाक रगड़ते। रमणी-हृदय की ऐसी विलक्षण उत्तमता भला अपना प्रभाव बिना डाले कहीं रह सकती थी? मगर भाग्य में तो अलिन्द को किसी और के पाले पड़ कर कुढ़-कुढ़ कर मरना बदा था। फिर यह सौभाग्य उसे कैसे प्राप्त होता? मगर ऐसी देवी और वह परित्यक्ता? यह अलबत्ता एक अनहोनी सी बात जान पड़ी। यह पति-प्रेम का भी दम नहीं भरती। बल्कि इसके पत्र से तो यही मालूम होता है कि इसके पहिले इसे कभी प्रेम का आभास ही नहीं हुआ। फिर भी अपने हृदय में एक काँटा चुभा हुआ बताती है। क्यों? कुछ समझ में नहीं आया। शायद इन रहस्यों का उसके पत्रों में पता चले। इसीलिए कुतूहलवश मैं जल्दी-जल्दी उसका दूसरा पत्र पढ़ने लगा। इसकी तारीख़ पहिले पत्र के छै महीने बाद की थी।

दूसरा पत्र

"निर्दयी!

छै महीनों से अपने पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा करते-करते आँखें पथरा गईं। मगर तुम ऐसे निष्ठुर निकले कि उसका एक सूखा सा भी जवाब न दिया। मैं जानती थी कि समय तुम्हारे हृदय पर अवश्य प्रभाव डालेगा। और तुम्हारी भलाई भी इसी में थी कि तुम मुझे भूल जाते। भूल गए, बड़ा अच्छा किया। मुझे अपने लिए तनिक भी चिन्ता नहीं है। मेरे तो तन-मन-धन सभी तुम्हारी ही प्रसन्नता पर निछावर होना जानते हैं। बला से मैं निराश होकर तड़प-तड़प कर मरूँ, फिर भी मुझे तुम्हारी ही ख़ुशी में ख़ुशी है। तुम मुझे भूल कर चैन से रहो, यही हार्दिक अभिलाषा है। मगर क्यों अलिन्द, क्या मैं तुम्हारी नज़रों से ऐसी गिर गई कि तुम्हारे एक कुशल-पत्र से भी वञ्चित हो गई? भूल जाना तो तुम्हारा स्वाभाविक था। तुम्हारी अभी नई उम्र, उत्साह भरा हृदय। इस अवस्था में तुम्हारे लिए लड़खड़ा कर सँभल जाना कोई बड़ी बात न थी। मगर यह तो कहो कि अपने कुशल-समाचार से मुझको तरसाना तुम्हें कहाँ तक उचित था। माना कि तुम अब मुझे प्यार नहीं करते। मगर इसके साथ मुझ पर इतनी घृणा तो न करो। मैं परित्यक्ता हूँ सही, परन्तु ऐसी घृणा की पात्री नहीं। मैं कुछ अपने दुष्कर्मों से नहीं त्यागी गई। मेरे त्यागे जाने का कारण तुम्हारी ही पुरुष-जाति की कायरता, विश्वासघात, नीचता और स्वार्थ है। फिर भी मैंने इस महा अन्यायी और कपटी जाति की जैसी सेवा की है, तुम्हीं सुन कर इन्साफ़ करो कि इसके बदले में मेरे प्रति क्या उसका यही कर्तव्य था।

मेरे पिता एक बहुत ही बड़े ज़मींदार थे। माता जी का स्वर्गवास मेरे बचपन ही में हो चुका था। मैं ही अपने पिता की एकमात्र सन्तान थी। सोलह वर्ष की अवस्था में मेरी एक अमीर घराने में शादी हुई। इस विवाह का लक्ष्य दोनों ही तरफ़ धन ही पर था। ससुराल वालों की नज़र मेरी जायदाद पर थी। और पिता जी का ख़्याल ससुराल की दौलत पर था, ताकि लड़की आजन्म सुख से रह सके। मैं पिता और पति के नाम-ग्राम बतला कर उन लोगों की प्रतिष्ठा में बट्टा नहीं लगाना चाहती। मगर समय आने पर तुमसे कुछ छिपा न रक्खूँगी। दोनों घरानों में लक्ष्मी की तो काफ़ी कृपा थी, मगर घर वाले इने-गिने थे। मैके में मुझे और पिता जी को छोड़ कर अन्य कोई नहीं था। इसी तरह ससुराल में पति जी, उनके वृद्ध पिता और लगभग बीस बरस की उनकी सौतेली माँ, जिसके दो बरस की एक कन्या थी। बस।

पति जी पूर्ण रूप से जवान थे। सुन्दर और सुडौल थे। परन्तु उनकी दृष्टि में न जाने कौन सी विचित्रता थी जिससे मैं घबड़ा उठती थी। इनकी शादी अब तक इसीलिए रुकी हुई थी कि ससुर जी पहले अपना विवाह करना चाहते थे। मगर अपना ब्याह करने के बाद ससुर जी अपने लड़के की शादी किसी कारणवश लगभग तीन बरस तक न कर सके। वह कारण जब मैं विवाह हो जाने पर ससुराल गई तो समझ में आया। वहाँ घर की मालिक मेरी सास जी थीं, उन्हीं के इशारों पर मेरे वृद्ध ससुर जी चलते थे। और पति जी और सास जी में कुछ ऐसा गहरा सम्बन्ध था कि इसकी बदनामी वहाँ नौकरों ही में नहीं, बल्कि सारे मुहल्ले भर में फैली हुई थी। यहाँ तक कि सास जी की कन्या भी पति जी ही की बताई जाती थी। मैंने दोनों का व्यवहार ताड़ा। बात सच निकली। मेरे कलेजे में बर्छी चल गई और मेरा हृदय पति जी से सदैव के लिए विरक्त हो गया।

सास जी ने लोक-लाज की ख़ातिर अपने लड़के साहब के विवाह के लिए अनुमति तो दे दी थी, मगर बहू के घर में आते ही उनके कलेजे पर साँप लोटने लगा। ज़रा-ज़रा सी बातों में वह मुझे फाड़ खाती थीं। नित्य ही मेरी शिकायत की जाती थी और नित्य ही मेरी पीठ की मरम्मत होती थी। पति जी बस मुझसे डण्डों ही से बात करना जानते थे। फिर भी कर्त्तव्यवश मैं उनकी तथा घर की सेवा करने में तत्पर रहती थी। मेरे दिन रो-रोकर कटने लगे। उस पर रातों-दिन मेरे दिल पर कोदों दले जाते थे। इससे मैं और जल मरी। वैवाहिक सुख किसे कहते हैं, मैंने वहाँ कुछ भी नहीं जाना।

छठें महीने ख़बर मिली कि मेरे पिता जी का स्वर्गवास हो गया। मुझे मैके जाना पड़ा। साथ में पति और ससुर जी भी आए। क्योंकि ये लोग जायदाद के लिए इसी दिन की ताक में थे। मगर हम लोगों के पहुँचने के पहिले पिता जी के एक पट्टीदार पहुँच कर सब चीज़ों पर अपना अधिकार जमा चुके थे। पिता जी के नज़दीकी रिश्तेदारों में तो कोई था नहीं। सिर्फ़ उनके यही कहने को एक पट्टीदार थे, जिनका नाम मैं सुनती ज़रूर थी, मगर जानती न थी। क्योंकि पिता जी से और इनसे सदा से अनबन चली आती थी। यहाँ तक कि ये हज़रत मेरी शादी तक में शरीक नहीं हुए थे। मगर इस समय यह मेरे चचा बन कर जायदाद के लिए पिता जी के सगे वारिस बन गए। बलिहारी है इस हिन्दू-समाज के क़ानून की कि बाप के ख़ून की पैदा इकलौती बेटी दाने-दाने की मुहताज होकर गली-गली ठोकरें खाए और बाप का दुश्मन ऐसा पट्टीदार, जो बाप से ज़िन्दगी भर लड़ता रहा हो, उसकी जायदाद हड़प कर मौज करे। इस हत्यारे समाज में यदि स्त्रियों की कुछ भी प्रतिष्ठा होती तो हिन्दुओं में ऐसे ऊटपटाँग क़ानून बनाए जाते? यहाँ तो स्त्रियाँ ख़ुद ही दूसरे की जायदाद समझी जाती हैं, तब यह अपने विरसे पर जायदाद पाने की कैसे अधिकारिणी हो सकती हैं? लोग कहेंगे कि स्त्रियाँ दहेज़ के रूप में अपना हिस्सा ले लेती हैं, तब वे दुबारा जायदाद में अपना हिस्सा कैसे पा सकती हैं? मगर मैं पूछती हूँ कि क्या दहेज़ का एक पैसा भी उनके हाथ लगता है या कभी उनके काम आता है? इसे तो ओ स्वार्थी अन्धे पुरुष लोग! तुम्हीं लेकर अपनी शौक़ीनी में उड़ाते हो। रण्डियों की नाच, आतिशबाज़ी और दावतों में फूँक देते हो। न अपना भला करते हो और न अपने परिवार का। मुफ़्त में एक ख़ानदान अपनी मूर्खता से तबाह करते रहते हो। ऐसी धाँधली से देश में भला कब तक दौलत रह सकती है? इस तरह दिनोंदिन भिखमङ्गे होकर जब तुम अपना ही पेट नहीं पाल सकते, तो देश की क्या ख़ाक उन्नति कर सकते हो? अगर दहेज़ की रक़म वास्तविक रूप से स्त्री-धन समझी जाए, उसका एक पैसा भी पुरुष—चाहे अपना ही पति क्यों न हो—छू न सके और स्त्री ही उसे अपने भविष्य के लिए दृढ़तापूर्वक सञ्चित रखने तथा अपने निजी काम में व्यय करने की अधिकारिणी बने, तब तो यह तर्क उचित हो सकता है, मगर वहीं जहाँ स्त्री के सगे भाई-बन्द हों। क्योंकि अपनों से फिर भी उसे वक़्त पर कुछ न कुछ सहायता की उम्मीद हो सकती है। मगर जहाँ केवल पट्टीदार ऐसे ग़ैर का मुक़ाबला हो वहाँ कुल सम्पत्ति लड़की से छीन कर एक मुफ़्तख़ोरे को दे देना किसी तरह से भी मुनासिब नहीं हो सकता। मगर हिन्दू-क़ानून के आगे मेरा क्या वश चलता? कोई वसीयतनामा भी मेरे पास न था। मुक़दमेबाज़ी हुई और मैं हार गई। पति जी तो मुझे पहुँचा कर तुरन्त वापस चले गए थे। सास जी के वियोग ने एक दिन से अधिक उन्हें यहाँ किसी तरह से भी रहने नहीं दिया। परन्तु ससुर जी मुक़दमा जीतने के लालच में अन्त तक ठहरे रहे। आख़िर वह भी चलते बने।

मेरे पिता जी का मकान बहुत ही बड़ा और कई खण्डों का था। जो खण्ड सबसे अलग था उसी में मैं अपनी एक पुरानी दासी के साथ रहती थी। क्योंकि चाचा जी से मुक़दमेबाज़ी होने के कारण उनके घराने में मेरी पैठ न थी। वह डरते थे कि उनको या उनके बच्चों को कहीं मैं ज़हर न दे दूँ। यही उनकी बड़ी कृपा थी कि लोक-लाज के भय से मेरे खाने-पीने का प्रबन्ध दूर ही दूर से कर देते थे। जायदाद की आशा मिट जाने से ससुराल वालों ने मेरी फिर कोई ख़बर नहीं ली। इसी बीच में एक दिन जब सन्ध्या को किसी कारणवश मैं अपने मकान के छाते में आई तो एकाएक एक आदमी घबराया हुआ आकर मेरे सामने खड़ा हो गया और आते ही मेरे पैरों पर गिर कर गिड़गिड़ाने लगा। पहिले तो मैं झिझक कर दूर भागी। मगर तुरन्त ही पहचान

बम्बई सेवा-सदन के आश्रम (Training Home) की महिलाएँ
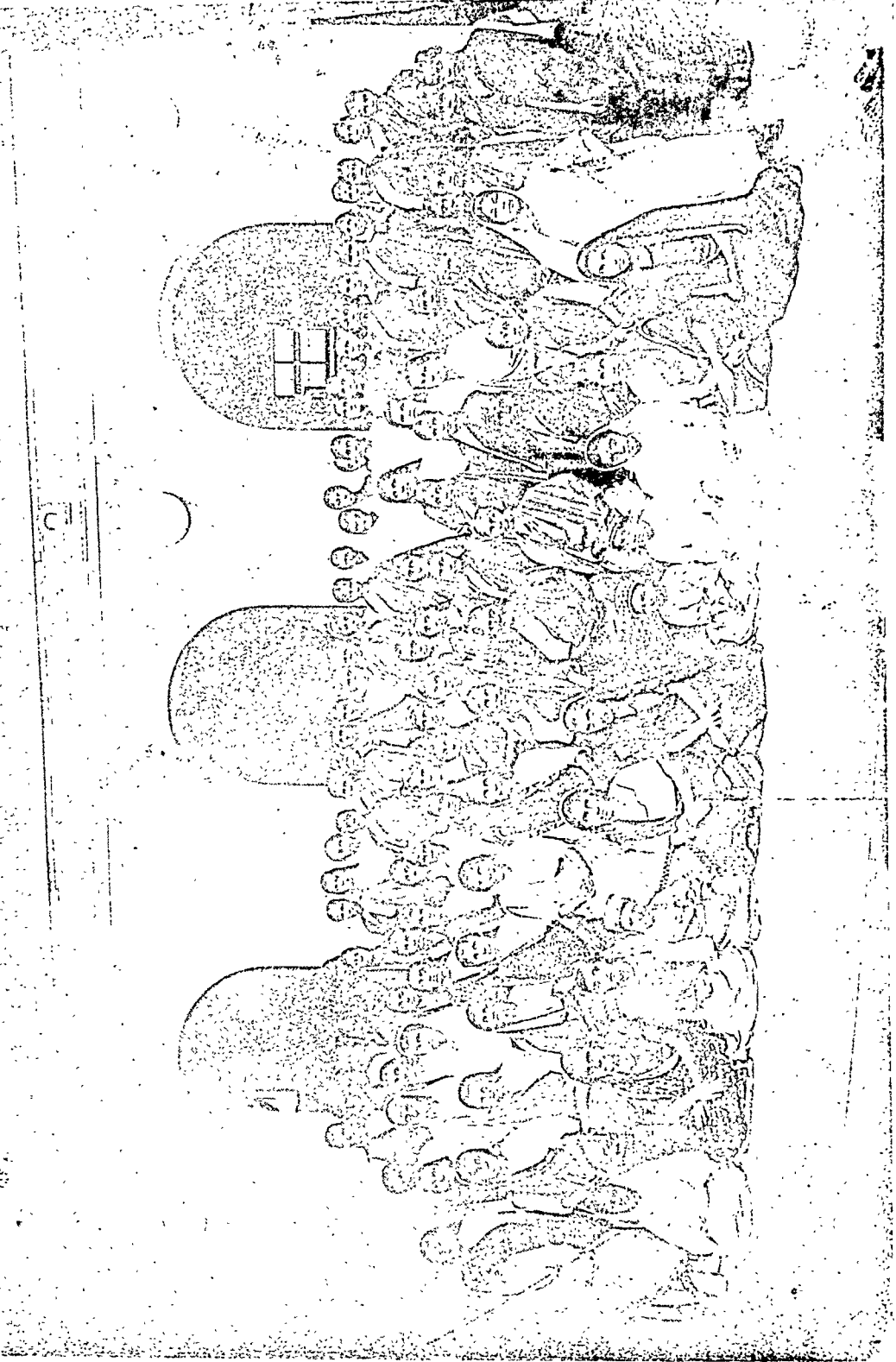
बम्बई सेवा-सदन की गृह-पाठशाला की अध्यापिकाओं व छात्राओं का ग्रूप

लिया कि यह तो मेरे पति जी हैं। उन्हें देखते ही मेरे बदन में आग लग गई। और घृणा से मैंने मुँह फेर लिया। वह बिलख-बिलख कर अपने व्यवहारों की माफ़ी माँगने और अपने पापों पर घोर पश्चात्ताप प्रगट करने लगे। मेरे हृदय में कुछ दया आई और उन्हें मैं भीतर ले गई।

उनकी बातों से मालूम हुआ कि वह बड़े सङ्कट में फँसे हैं। एक राजनैतिक डकैती में कुछ लोग पकड़े जा चुके हैं, उसीमें सम्मिलित यह भी बताए गए हैं। पुलिस के वारण्ट से बचने के लिए इन्हें कहीं भी शरण नहीं मिली। इसीलिए यह भाग कर मेरे पास छिपने आए थे। वह लाख बुरे थे, फिर भी मेरे पति ही थे। उनकी आज्ञा शिरोधार्य थी और उनकी सेवा करना मेरा परम कर्त्तव्य था। इसलिए उन्हें छिप कर अपने पास रहने दिया। लगभग आठ महीने तक वह इस तरह पर्दे में रहे। इस बात की ख़बर सिवाय मेरी दासी को और किसी के कानों-कान भी नहीं हुई।

उन्हें उन दिनों देशभक्ति की ख्याति प्राप्त करने का शौक़ चर्राया हुआ था। इसीलिए वह इस डकैती के मामले में अपनी मित्र-मण्डली सहित फाँसे गए थे। मगर इसका वीरतापूर्वक मुक़ाबला करने का हृदय में बल नहीं था। इसीलिए सङ्कट का सामना पड़ते ही जान चुरा कर भागे थे। मैं उन्हें इन मसलों पर नित्य ही समझाती और बताती थी कि इस ढङ्ग की डकैती-फ़कैती की युक्तियाँ देश को उन्नति के मार्ग पर कदापि नहीं ला सकतीं। यह तो प्रधान शक्ति को नाहक़ मुँह चिढ़ा कर अपने तथा देश के ऊपर आफ़त ढाना है। अपनी दुर्बलताओं का भण्डाफोड़ कर इसे और रसातल को पहुँचाना है। उन्नति का सत्य मार्ग क्या है? यूरोपीय देशों के रहन-सहन, आचार-विचार, नियम-नीति, इत्यादि में ढूँढ़ो, जो स्वयं स्वतन्त्र ही नहीं, वरन संसार में शासन कर रहे हैं। वहाँ पृथ्वी कँकरीली-पथरीली है। अपने आधे पेट भी खाने के लिए कुछ पैदा नहीं कर पाती फिर भी संसार की सम्पत्ति वहीं टूटी पड़ती है। क्यों? इसीलिए कि पश्चिमी देशों ने इस लोक के सुखों पर विचार किया और पूर्वीय देशों ने परलोक में टाँग पसार कर सोने की ख़ातिर सांसारिक जीवन पर कुछ भी दृष्टि नहीं डाली। वह लोग दुनिया की भलाई के लिए एक से एक आविष्कार करते रहे और यहाँ वाले पहाड़ों के कन्दरों में वैराग के मसलों को सुलझाते रहे। उन्होंने मानव-जीवन का आदर किया, इसे लाभदायक और शक्तिशाली बनाने का यत्न किया। इसके सुखों के लिए रेल, मोटर, तार, हवाई जहाज़, पनडुब्बी, बेतार का तार इत्यादि एक से एक चमत्कार बनाए और नित्य ही बनाते जाते हैं और ये श्वास चढ़ा कर समाधि लगा गए। पूछिए, इससे उनका या संसार का क्या लाभ हुआ। माना कि हम तत्व में बहुत बढ़े-चढ़े हैं, मगर उसका लक्ष्य तो परलोक ही है। फिर इसे वर्तमान स्थिति से क्या सरोकार? इसलिए यहाँ के धर्मों में कट्टरता, पाखण्ड, त्याग, बहिष्कार के अनर्थ और उपद्रव भर गए जिनके कारण हम इस संसार के लिए एकदम निकम्मे होते जाते हैं। और इन्हें सर्वोच्च स्थान देकर हमने अपने आपको और चौपट कर डाला है। ऐसी दशा में पाश्चात्य देश वाले संसार में शासन न करेंगे तो क्या हम लोग?

इसलिए अलिन्द, तुम भी इस पर ख़ूब विचार करो; क्योंकि तुम्हारी भी वही उम्र है, जब ख़ून में उबाल उठता है और भ्रम में पड़ कर लोग आवेश में अशुद्ध पथ पर चल निकलते हैं। यों अपने साथ देश को और तबाह कर डालते हैं। उन्नति का असली मार्ग क्या है? मेरे विचार में तो सबसे पहिले इसके लिए यहाँ के धर्मों को उदार, पाखण्ड रहित, बहिष्कार-रोग-शून्य और कट्टरताविहीन बना कर इन्हें अपने ऊँचे स्थान से खसकाने का उपाय करना चाहिए और इनके ऊपर देशभक्ति को उच्चासन देना चाहिए, ताकि यहाँ के हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, पारसी, ईसाई—सभी अपने को एक मत से पहले हिन्दुस्तानी समझें। इसके नाते ब्राह्मण, क्षत्री, भङ्गी, चमार, अमीर-ग़रीब, बल्कि नौकरशाही तक सभी आपस में बराबर जानें। तब इसके बाद उन्हें अपने-अपने निजी धर्म और जाति-पाँति का ख़्याल हो तो हो। काम वह होना चाहिए जिससे यह देशभक्ति का भाव बच्चे-बच्चे के हृदय में पैठ कर समस्त देश का मुख्य धर्म हो जाए। इस कार्य में प्रधान शक्ति को छेड़ने की भी आवश्यकता न पड़ेगी और देश भी अपने आपे उन्नति के मार्ग पर पहुँच जाएगा।

दूसरा उपाय देश की भलाई का यह है कि इसे उद्योगी, परिश्रमी, व्यवसायी बना कर इसकी बेकारी, मुह-

ताजी और ग़रीबी दूर करें और यों इसे मालामाल कर सकें। लाखों साधु, फ़क़ीर, पण्डे-महाब्राह्मण मुफ़्तख़ोरी में पड़े हुए हैं। लाखों हृष्ट-पुष्ट भिखमङ्गे भीख ही पर बसर करते हैं। लाखों ही सम्मिलित ख़ानदान (joint family system) का फ़ायदा उठा कर अपने इने-गिने कमाने वालों के बिरते पर अपाहिज बने हुए हैं। शिक्षा का उद्देश्य कचहरियों की नौकरियाँ ही बना कर सभी उन्हीं में ठोकरें खाने के लिए लपकते हैं। इसीलिए देश इतना कङ्गाल हो रहा है। अपनी छोटी सी छोटी ज़रूरत सुई और दियासलाई तक के लिए विदेशों का मुहताज होकर अपना सर्वस्व लुटा रहा है। ऐसी हालत में भला इसमें कभी शक्ति आ सकती है या यह उन्नति कर सकता है? इसलिए हमारा उद्योग यह होना चाहिए कि कोई आदमी देश में बेकार न रहने पाए। पुरुष ही नहीं, बल्कि स्त्रियाँ तक अपने निर्वाह के लिए आप सामर्थ्य रख सकें। यह बात तभी मुमकिन है, जब यहाँ की ज़रूरत की सभी चीज़ें इतनी अधिकता से यहीं बनाने का उद्योग हो जो समस्त देश के लिए काफ़ी हो सकें। तभी देश मुहताजी और बेकारी से छूट कर मालामाल हो सकता है। तब किसी को पढ़-लिख कर चार पैसे पर ईमान बेचने की इतनी विवशता न होगी और न अपने पापी पेट की ख़ातिर अपने देश के गले पर छुरी चलाने की आवश्यकता पड़ेगी। ग़ज़ब है कि बालू और चट्टानों पर के रहने वाले एक टीन का खिलौना बना कर संसार की दौलत खींच कर मौज कर रहे हैं और हम इतने बड़े उपजाऊ देश में रह कर भी भूखों मर रहे हैं।

इन उपायों के साथ हमें सामाजिक सुधार भी करना आवश्यकीय है। सामाजिक अड़चनों ने हमें लकीर का फ़क़ीर बना कर हमारी नस-नस में दासत्व मनोवृत्ति कूट-कूट कर भर रक्खी है, जिसके कारण हम एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ सकते। हमारी मानसिक पराधीनता तो यहाँ तक गई ग़ुज़री है कि जो बैलगाड़ी बाबा आदम के समय में ईजाद हुई थी वह हूबहू वैसे ही आज भी मौजूद है। इसमें बाल बराबर भी हमने उन्नति नहीं की। जो जामा-जोड़ा प्राचीन समय के विवाहों में पहना जाता था वही अब भी पहना जाता है। यही हाल रस्म-रिवाजों का भी है। क्यों? यह हमारी दासत्व मनोवृत्ति का परिणाम है। हम किसी बात में भी आगे बढ़ना नहीं जानते। उधर विदेशियों को देखो कि पोशाक तक में वह किसी चीज़ का दास होकर नहीं रह सकते। बड़ी-बड़ी फ़ैशन बदलते रहते हैं, ताकि दृष्टि और दिमाग़ में शिथिलता न आने पाए। जब हमारे अन्तःकरण में दासता इस बुरी तरह घुसी हुई है, तब हम बिना इसको दूर किए उन्नति के मार्ग पर कैसे चल सकते हैं?

इस विषय पर कहाँ तक लिखूँ। मुझे डर है कि कहीं पढ़ते-पढ़ते ऊब कर मेरा पत्र फेंक न दो। इसलिए देशोन्नति के मूल उपायों का इशारा मात्र देकर कहती हूँ कि अगर नेतागण एक मत होकर इनके आधार पर चलें और इनका प्रचार करके प्रयोग करावें, तब वह लोग ख़ुद ही देखेंगे कि बिना उलट-पलट के देश कहाँ से कहाँ पहुँचता है और हिन्दुस्तानियों में कितनी शक्ति और आत्मबल आता है। फिर तो ये जो चाहें सो कर सकते हैं।

मैं अपने पति जी को इसी तरह के विचारों से सच्चा देशहितैषी बनाने का उद्योग करती रही। उनकी ख़ातिर डकैती के मुक़दमे का हाल जानने के लिए मैं एक अख़बार भी मँगाती थी, जिससे उसकी कारवाई का बराबर पता चलता रहा। कई महीने यह मामला चला। पाँचवें महीने सबूत काफ़ी न पहुँचने के कारण मुक़दमा ख़ारिज हो गया। पति जी के जान में जान आई, और अब वह अपने पकड़े जाने के भय से मुक्त हुए। फिर भी वह घर के बाहर न निकले और उसी तरह छिप कर रहते थे। आठवें महीने अपील से भी वही फ़ैसला बहाल रहा। जिस दिन अख़बार में यह ख़बर मिली उसी रात को मुझसे बिना कुछ कहे-सुने पति जी लापता हो गए। उस समय मैं पाँच महीने की गर्भवती थी।

मेरे गर्भ का हाल अब अधिक दिन छिप न सका। मेरे चाचा जी के घर वालों को मालूम हो गया। डकैती का मुक़दमा बेलाग ख़ारिज हो जाने से पति जी के अब पकड़े जाने का डर न था। इसलिए मेरी कुशल इसी में थी कि उनका यहाँ छिप कर रहने का हाल बता दूँ। मैंने ऐसा ही किया। मगर चाचा जी इसे सुनते ही आग हो गए। वह उन दिनों रायसाहबी के चक्कर में थे। मुफ़्त का धन पा जाने से सरकारी चन्दा वग़ैरह में रुपया ख़ूब बेदर्दी के साथ देते थे। ऐसी दशा में पति जी का उनके मकान में इतने दिनों तक आश्रय पाने की बात उनको गोली सी लगी। क्योंकि उनकी दृष्टि में

मुक़दमा ख़ारिज हो जाने पर भी मेरे पति राजद्रोही ही थे। इसलिए चाचा जी ने अड़ोस-पड़ोस सभी जगह अच्छी तरह से मशहूर कर दिया कि मेरी भतीजी व्यभिचारिणी है। गर्भ रह गया तो अपने पति के सर मढ़ना चाहती है। वह राजनीतिक डकैत है, उसे भला मैं कहीं अपने यहाँ आने तक दे सकता था? आता तो फ़ौरन गिरफ़्तार न करवा देता? उन्हीं की बात सच मानी गई। मैं और दासी दोनों झूठी हो गईं।

मैंने पति जी को ख़त पर ख़त लिखे, तार दिए, मगर उन्होंने मेरी कोई ख़बर नहीं ली। चाचा जी मुझे नित्य ही घर से निकल जाने को कहते थे। क्योंकि वह पड़ीं। ससुर जी ने काँख-कूख कर—क्योंकि वह मरण-सेज पर थे—तकिए के नीचे से एक पत्र निकाल कर मेरे आगे फेंका और मेरे बाप-दादों को सैकड़ों गालियाँ देते हुए मुझे तुरन्त घर से निकल जाने को कहा। मैंने पत्र उठा कर देखा। वह मेरी जायदाद पर मौज करने वाले मेरे ही चाचा जी का था। उसमें उन्होंने इतना ही लिखा था कि "खेद के साथ कहना पड़ता है कि आपकी बहू चरित्रभ्रष्टा होकर काला मुँह करके घर से कहीं निकल गई।" मुझे इन बातों की परवाह न थी। मुझे तो पति जी पर पूरा भरोसा था। मगर जब मेरे और दासी के गोहार लगाने और दोहाई देने पर

आशा पर पानी

[लेखक—श्री० जगदीश झा, 'विमल']

यह एक छोटा सा शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास है। मनुष्य के जीवन में सुख-दुःख का दौरा किस प्रकार होता है; विपत्ति के समय मनुष्य को कैसी-कैसी कठिनाइयाँ सहनी पड़ती हैं; किस प्रकार घर की फूट के कारण परस्पर वैमनस्य हो जाता है और उसका कैसा दुखदाई परिणाम होता है, यह सब बातें आपको इस उपन्यास में मिलेंगी। इसमें क्षमाशीलता, स्वार्थ-त्याग और परोपकार का अच्छा चित्र खींचा गया है। मूल्य केवल ॥=) स्थायी ग्राहकों के लिए ।=)॥ मात्र !

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

डरते थे कि कहीं इसका पति आकर यह गर्भ अपना स्वीकार न कर ले। और सब लोग समझें कि यह राजद्रोहियों के आश्रयदाता हैं। इस तरह उनकी रायसाहबी हाथ से जाए। अगर वह न आए तब भी मुश्किल, क्योंकि बच्चा उनके घर पैदा होने से उनके कुल की प्रतिष्ठा पर आँच आती थी। अस्तु, अपनी बेहयाई के बल पर मैं एक महीना किसी तरह वहाँ और रही। मगर ज्यों-ज्यों दिन समीप आने लगा, घर से निकल जाने के लिए मुझ पर ज़बरदस्तियाँ होने लगीं। अन्त में तङ्ग आकर दासी को साथ लिए मैंने ससुराल का रास्ता लिया।

सास जी मुझे देखते ही मुझ पर झाड़ू लेकर फट भी उन्होंने मेरा कुछ भी साथ न दिया, बल्कि मेरे यहाँ आकर रहना तक वह साफ़ इनकार कर गए तो मैं मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़ी।

इस तरह से मैं मैका और ससुराल दोनों जगहों से त्यागी गई। तुम्हीं बताओ अलिन्द, यह तुम्हारी विश्वासघाती पुरुष-जाति का अत्याचार था या मेरा दोष? क्या अब भी तुम मुझे घृणित समझ सकते हो? ईश्वर के लिए दो शब्द लिख भेजो। मेरे प्राण तुम्हीं पर टँगे हुए हैं।

तुम्हारी,

बेमौत मरने वाली जहानारा"

(क्रमशः)

(*Copyright*)

नारी-जीवन

[श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

['चाँद' के पाठकों के सुपरिचित और हिन्दी के उदीयमान कवि श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव' का परिचय पाठकों को देने की आवश्यकता नहीं है; आपने कुछ दिन हुए पत्रों के रूप में सामाजिक कुरीतियों तथा स्त्री जाति पर होने वाले मूक-अत्याचारों का बड़ा सुन्दर प्रदर्शन 'चाँद' के इन्हीं स्तम्भों में करना प्रारम्भ किया था, किन्तु स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण वे इसे पूर्ण न कर सके थे। आपकी अन्तिम कविता सन् १९२९ के अगस्त वाले अङ्क में प्रकाशित हुई थी। भविष्य में ये कविताएँ धारावाही रूप से भेजने का हमें विश्वास दिलाया गया है। हमें आशा है, इन कविताओं में पाठक नारी-हृदय की भावनाओं का वास्तविक स्वरूप देख सकेंगे।

—सं० 'चाँद']

पत्र-संख्या ६

[वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

तुम्हारा हाल जान कर
बढ़ती है नित उत्सुकता।
बवण्डरों से मानो अस्थिर
हो जाती है हृदय-लता॥

क्या होगा यह अनुमानों से
यद्यपि हो जाता है ज्ञात।
पर होता सन्तोष नहीं है
बिना सुने आगे की बात॥

हिन्दू-परिवारों का ऐसा
है गृह का सङ्गठन कठोर।
नहीं देखने वाला होता
कोई वधू-क्लेश की ओर॥

जब से दे आती हैं तब से
मृषा, लाज, झूठा सङ्कोच।
आने-जाने वाली महिला—
जन में बदनामी का सोच॥

सास ननद का भय पद-पद पर,
आदि उन्हें देते हैं क्लेश।
पति भी अति परवश होता है,
क्या दुख रह जाता है शेष ?

बस इतनी ही नहीं, सङ्गठन
की होती है शक्ति कराल।
वह चाहे जो कुछ कर डाले,
छिपा रहेगा सच्चा हाल॥

लोग कहेंगे, उग्र प्रकृति का—
तुमको यह मिलता था दण्ड।
पर ऐसे दुख में उठ आता
किस में नहीं भाव उद्दण्ड ?

जितना तुम सहती थीं, उतना
सहना भी था योग्य नहीं।
रोग बड़ा अनीति सहना है,
वह मन का आरोग्य नहीं॥

जिस पर पड़ती वही जानता
यों तो सहन शक्ति-उपदेश—
सब करते हैं, किन्तु तभी तक
जब तक स्वयं न पाते क्लेश॥

लिखूँ तुम्हें क्या, क्या समझाऊँ,
बहिन, तुम्हारा दुर्गम क्लेश—
विस्मृत होता नहीं किसी क्षण,
नित कम्पित करता हृद्देश॥

आगामी पत्रों के पढ़ने
की उत्कण्ठा है मन में।
निर्बल सहानुभव होता है,
रोता है महिला-जन में॥

पढ़ूँ हाल दुख-भरा तुम्हारा
और पढ़ो तुम मेरा हाल।
इससे भिन्न हमारे हित है
अन्य नहीं घटना की चाल॥

अस्तु, पुनः मैं कह जाती हूँ
कुछ थोड़ा सा अपना हाल।
झटका खाकर वृद्ध गिरा जब,
उठा तनिक लज्जित तत्काल॥

उसने कहा, "प्रिये, करती हो
मुझसे यह कैसा व्यवहार ?"
पर सम्बोधन सुन कर मेरा
बिगड़ा कुछ मुख का आकार॥

उसे देख कर बड़े प्रेम से
लगा प्रसन्न मुझे करने।
अपने नीरस मृतक हृदय से
सरस भाव मुझमें भरने॥

मुझसे सुनी न जाती थीं वे,
जो-जो करता था वह बात।
धीरे-धीरे होते जाते—
थे मेरे दृग जल से स्नात॥

याद आ रही थी माता की—
गोदी और पिता का प्यार।
स्निग्ध मनोरम, सब सुविधामय
अपने बचपन का संसार॥

उसके बाद पिता की चिन्ता,
माता का दुख और प्रथा—
वह दहेज की, जिसके कारण
है समाज में व्याप्त व्यथा॥

रोते हुए पिता का देना
परम क्लेश से कन्यादान।
मेरे भावी पति के द्वारा
पद-पद पर उनका अपमान॥

अपना वह भयपूर्ण दृगों से
प्रथम बार पति का दर्शन।
कोटि वृश्चिकों के दंशन से
पीड़ित सा तन, बाधित मन॥

बैठी थी, चुपचाप गड़ी थी
जाती मैं भू में प्रति क्षण।
बहिन, व्यथा वह कह न सकूँगी,
जोकि पा रहा था तब मन।

करती रही स्वीय रक्षा मैं
बहुत काल तक किसी प्रकार।
पड़ी हुई थी मैं उसमें; थी
बहती विषम विपद की धार॥

卐 卐 卐

पत्र-संख्या १०

[बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

पत्र मिल गया, पढ़ा पढ़-
कर मानस विकराल हुआ।
हुआ न होगा क्या बहुतों का,
जोकि तुम्हारा हाल हुआ ?

कितने गुप्त हुआ करते हैं
जगती में यों अत्याचार।
जिनका करता नहीं कभी भी
कोई न्यायाधीश विचार॥

विकट वेदना कन्याओं की
ऐसी भला कहेगा कौन ?
इस प्रकार जो बूढ़ों के सँग
बँध जाया करती हैं मौन ?

कौन कहेगा, कौन सुनेगा या
उसको समझेगा कौन ?
स्वयं वेदना सहने वाली
जब उसको सह लेगी मौन ॥

सहनशीलता कहें इसे या
इसे कहें हम कायरता ?
क्यों औचित्य विरुद्ध बनें यों
कुछ कन्याएँ वृद्ध-रता ?

विष क्या नहीं मिला था तुमको,
या साहस से तुम थीं हीन ?
आवश्यकता क्या थी तुमको
इतनी हो जाने की दीन ?

अथवा क्या था उस घर में;
क्या खुला नहीं था सब संसार ?
क्या ले सकती नहीं स्वयं थीं
तुम अपने जीवन का भार ?

चार रोटियों के बदले ही
करते नर यों अत्याचार।
और रहें ही क्यों हम उनके
ऊपर नितप्रति बन कर भार ?

हो करके वयप्राप्त करें हम
क्यों न जीविका का अर्जन ?
क्यों न करें हम अपने मन से
जीवन-पथ का निर्वाचन ?

क्यों डालें हम भला पिता के
ऊपर निज विवाह का भार ?
क्यों न करें हम निर्मित अपनी
इच्छा से भावी-संसार ?

करने का परिणीत तुम्हें यों
भला उसे था क्या अधिकार ?
फिर तो अत्याचार वृद्ध का
यों सहना था—निपट असार ॥

बहिन, क्षमा करना मेरी ये—
बातें रखना स्थिर हृद्-देश
अपने दुख, पर-दुख, दोनों में
मुझे त्वरित आता है त्वेष ॥

बहिन, लिखूँगी फिर अब तुमको
कुछ अपना आगे का हाल।
फल कहती हूँ उसका, जो था
रचा गया मेरे हित जाल ॥

एक दिवस सन्ध्या नौकर ने
छेड़-छाड़ की कुछ मुझसे।
सास पूछने आई फिर यह—
"क्या कहता था वह तुझसे ?"

कहा भृत्य ने जो था, मैंने
सुना दिया उसको तत्काल।
कहा भृत्य से कुछ न, दिखाईं
मुझे सास ने आँखें लाल ?

(क्रमशः)

(*Copyright*)

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आजकल स्कूल और कॉलेजों की पिकेटिङ्ग हो रही है। कॉङ्ग्रेस के कट्टर अनुयायियों का कथन है कि बस पढ़ना-वढ़ना सब ताक पर रख कर कॉङ्ग्रेस के कार्य में जुट जाओ। जब संग्राम छिड़ा हुआ है तो पढ़ना-लिखना कैसा? दूसरी ओर कुछ लोग यह कह रहे हैं कि लड़कों का पढ़ना-लिखना बन्द करना उनके लिए हानिकारक है। आज अपने राम इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने बैठे हैं कि इन दोनों बातों में कौन सी बात युक्तिसङ्गत है।

उस दिन एक पड़ोसी मिले। वह बहुत ही क्रोध में थे। मैंने जो पूछा कि कहिए कैसे मिज़ाज हैं, तो बोले—कुछ न पूछिए, इस समय दिमाग़ बहुत गर्म है।

मैंने अपने नौकर को पुकार कर कहा कि चार पैसे की वर्फ़ ले आ।

उन्होंने कहा—मुझे प्यास नहीं है। रहने दीजिए।

मैंने कहा—पीना नहीं, दिमाग़ पर रख लेना—ठण्डा हो जायगा।

वह बोले—आपको मज़ाक़ सूझा है और मैं इस समय अपने आपे में नहीं हूँ।

मैंने कहा—ख़ैरियत तो है, आख़िर मामला क्या है?

उन्होंने कहा—मामला क्या, आजकल के लड़के ऐसे नालायक़ हैं कि माँ-बाप का कहना नहीं मानते।

मैंने कहा—बेशक, यह बड़ी बेजा बात है कि एकदम से दोनों का कहना नहीं मानते। कम से कम एक का तो कहना मानना ही चाहिए। माँ का न मानें बाप का मानें, बाप का न मानें माँ का मानें।

उन्होंने मेरी बात पर ध्यान न देकर कहा—आज लड़का सवेरे से स्कूल जाने के लिए ज़िद कर रहा है।

मैंने कहा—आप 'नकार' को डकार गए। न जाने के लिए ज़िद कर रहा होगा—हाँ तो फिर × × ×?

वह—न जाने के लिए नहीं, जाने के लिए!

मैंने हैरान होकर पूछा—तो यह कोई बुरी बात तो है नहीं।

"सरासर बुरी बात है। जब कॉङ्ग्रेस का हुकुम नहीं है तो स्कूल जाने की क्या आवश्यकता है?"

"शुक्र है, आज यह दिन तो देखने को मिला। एक समय वह था कि लड़के स्कूल से जान चुराते थे और अब जान देते हैं।"

"लड़कों की जाति ऐसी है कि सदा विरुद्ध कार्य करते हैं।"

"ऐसी बात तो नहीं है।"

"सोलहो आने यही बात है।"

"जब आपको यह बात मालूम है तब तो बड़ा सहल नुसख़ा है।"

"सहल नुसख़ा क्या है?"

"उससे आप कहिए कि स्कूल अवश्य जाओ।"

"वाह! अच्छा उल्लू बनाते हो!"

"लड़कों का विरुद्ध कार्य करने का स्वभाव होता है कि नहीं?"

"होता है; परन्तु मैं अपने मुँह से ऐसी बात क्यों कहूँ जिसे मैं पसन्द नहीं करता।"

"अच्छी बात है जाने दीजिए। अच्छा, घर में वह क्या करेगा?"

"जो उसकी इच्छा हो करे, घर में पढ़े।"

"घर में पढ़ने की आदत उसे मत डलवाइए, अन्यथा स्कूल-कॉलेजों का दिवाला हो जायगा।"

"हो जाने दीजिए, ऐसा हो जाय तो अच्छा ही है। इनसे कोई लाभ नहीं। अङ्गरेज़ी शिक्षा महा हानिकारक है।"

"आपने भी तो अङ्गरेज़ी शिक्षा प्राप्त की थी।"

"हाँ, प्राप्त तो की थी।"

"आपको कुछ हानि पहुँची?"

"अरे दुबे जी, हमारी तो कट गई।"

मैं घबरा कर बोला—हैं कट गई! तो क्या मोम की लगाए हुए हो?

वह अपनी नाक पर हाथ फेरते हुए कुछ अप्रसन्न होकर बोले—नाक नहीं, उमर कट गई। आप भी पूरे चोंच हैं।

"चोंचपने की बातें तो आप ही कर रहे हैं। हाँ तो आपकी तो कट गई?"

"हाँ, हमारी तो कट गई, हमें अब क्या हानि पहुँचेगी।"

"आख़िर घर में वह क्या पढ़ेगा? घर में भी तो अङ्गरेज़ी ही पढ़ेगा, या परतो पढ़ाने का इरादा है?"

"परतो क्यों, हिन्दी पढ़े, उर्दू पढ़े, मुड़िया पढ़े।"

"अजी हिन्दी-उर्दू में क्या धरा है। अलबत्ता मुड़िया-साहित्य पढ़ने की चीज़ है।"

"न पढ़े, खेला करे—परन्तु स्कूल न जाय, बस मैं यह चाहता हूँ।"

"तो मेरी सलाह तो यह है कि आप भी ख़ाली बैठे रहते हैं। आप और वह मिल कर गुल्ली-डण्डा खेला ॱ। क्यों ठीक रहेगा न?"

"अरे इस उमर में गुल्ली-डण्डा क्या खेलूँगा।"

"उसे गुल्ली-डण्डे की अच्छी शिक्षा तो आप ही से प्राप्त हो सकेगी।"

"गुल्ली-डण्डा तो ख़ैर मज़ाक़ है, मेरी इच्छा थी कि कुछ देश का काम करता; परन्तु ज़रा जेल-वेल का खटका रहता है, यही बेजा बात है।"

"बड़ी बेजा बात है। न मालूम इन जेलों का ईजाद करने वाला कौन कमबख़्त था। जेल न होते तो आप कच्चों-बच्चों के सहित खुल कर देश-सेवा करते।"

"फिर क्या था, फिर तो मौज थी। परन्तु ऐसा हो नहीं सकता।"

"हो क्यों नहीं सकता। यदि राउण्ड टेबुल-कॉन्फ्रेन्स में हिन्दुस्तानी यह कहें कि हमें स्वराज्य-वराज्य कुछ नहीं चाहिए, ख़ाली जेल तोड़ दिए जायँ, जिसमें हम लोगों को बेखटके देश-सेवा करने का अवसर मिले तो हो सकता है।"

"ऐसा होना असम्भव है।"

"संसार में कुछ भी असम्भव नहीं है।"

इसके पश्चात् कुछ देर तक वह महाशय भींकते रहे। तत्पश्चात् यह कह कर कि—"आप ज़रा लड़के को समझाइएगा" चले गए।

यह महाशय पढ़े-लिखे हैं; परन्तु यह दशा है कि न लड़के को पढ़ने देते हैं और न कुछ देश का ही कार्य करने देते हैं।

एक दूसरे महाशय पिकेटिङ्ग के मारे आजिज़ हैं। उस दिन बड़े आवेश के साथ मुझसे बोले—"इन कॉङ्ग्रेस वालों की बुद्धि में दीमक लग गई है। जो ऊल-जलूल मन में आता है, करते हैं। बताइए स्कूल और कॉलेजों पर पिकेटिङ्ग करने लगे। लड़के पढ़ें नहीं तो क्या डण्डे बजाते घूमें?

मैंने कहा—देश का काम करें।

वह बोले—देश का काम जिसे करना होगा वह स्वयम् करेगा—कोई किसी से ज़बरदस्ती देश का काम नहीं करा सकता। महात्मा जी के जेल जाने से यह सब धाँधली होने लगी। वह बाहर होते तो ऐसा कदापि न होने पाता।

मैंने कहा—महात्मा जी पिकेटिङ्ग का विरोध तो न करते।

"वाह! करते क्यों नहीं? उस दिन 'लीडर' ने महात्मा

जी के 'यङ्ग-इण्डिया' से उनका एक लेख उद्धृत किया था। उसमें महात्मा जी ने धरने की निन्दा की है।"

"वह तो सन् २१ की बात थी, आजकल वह बात नहीं है।"

"क्यों नहीं है जनाब, सिद्धान्त भी कभी बदलते हैं?"

"हाँ, समय के अनुसार नीति में परिवर्त्तन होता ही रहता है।"

"बस मालूम हो गया। आप भी उन लोगों में हैं जो कभी कुछ कहते हैं, कभी कुछ। अच्छा आप ही बताइए, स्कूल और कॉलेजों का धरना उचित है?"

"मैं तो कहता हूँ कि स्कूल और कॉलेज तोड़ कर उनमें 'स्पोर्ट्स क्लब' बना दिए जायँ। लड़के आनन्द से वहाँ धमा-चौकड़ी मचावें।"

"बस, स्वराज्य मिल जायगा, क्यों न? बलिहारी आपकी बुद्धि पर। स्वराज्य इसी में तो धरा है कि स्कूल पर झण्डा गाड़ कर 'तिरङ्गा प्यारा' रटा करो। अजी जनाब, इस 'तिरङ्गे प्यारे' की स्तुति से कुछ न होगा। कुछ ठोस काम होना चाहिए। विदेशी वस्तुओं का बॉयकॉट कीजिए, बस असली बात यही है। उस दिन मैं कॉलेज की ओर गया था—वहाँ का दृश्य देख कर ऐसा दुःख हुआ कि क्या कहूँ। प्रिन्सिपल साहब प्रोफ़ेसरों के साथ भूमि पर बैठे गुट्टे खेल रहे थे।"

"तो जनाब, यह कितनी बड़ी बात है। पिकेटिङ्ग की बदौलत उन्हें गुट्टे तो खेलने को मिले। वैसे तो मर जाते; पर यह सौभाग्य नसीब न होता।"

"इसे आप सौभाग्य कहते हैं?"

"काम कुछ न हो, खेलने-कूदने की सुविधा रहे—यह सौभाग्य नहीं तो और क्या है?"

"कुछ दिन यही हाल रहा और स्कूल-कॉलेज पूर्णतया बन्द हो गए तो उन्हें भोजन कौन देगा?"

टेलीफ़ोन-नम्बर : २०९ तार का पता : 'चाँद'

राजनीतिक और सामाजिक स्वतन्त्रता का उपासक,

राष्ट्रीय जागरण का शंखनाद करने वाला

निर्भीक तथा निष्पक्ष नीति का पोषक

सचित्र साप्ताहिक

'भविष्य'

'चाँद' कार्यालय, प्रयाग से शीघ्र प्रकाशित होने वाला है। यह संस्था पिछले आठ वर्षों से भारतीय जनता की जैसी सेवा करती आई है, वह हिन्दी-पाठकों को अच्छी तरह मालूम है—और यह कहने में भी हमको सङ्कोच नहीं कि हमारी सेवा की क़द्र की गई है। हिन्दी-पाठक 'चाँद' को हिन्दी-भाषा के गौरव की सामग्री समझते हैं; उसे एक आत्मीय—एक प्रिय-जन की दृष्टि से देखते हैं, और 'चाँद' की विशाल ग्राहक-संख्या और इस संस्था से प्रकाशित पुस्तकों की असाधारण माँग ही उनके आदर-भाव और प्रेम का पर्याप्त प्रमाण है। तो भी हम स्वयं अपनी सेवाओं से सन्तुष्ट नहीं हैं, और हमारी हार्दिक अभिलाषा यही है कि हम निरन्तर इस सेवा के परिमाण की वृद्धि करते जायँ। इसी भावना से प्रेरित होकर हमने 'भविष्य' को प्रकाशित करने का निश्चय किया है और हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि यह हिन्दी-संसार में एक नवीन आदर्श उपस्थित कर देगा। हमें आशा है, हिन्दी-पाठक इस विशाल आयोजन में हमारा हाथ बटाएँगे और उनकी सहायता से हम अपने पवित्र उद्देश्य को सफल कर सकेंगे।

'भविष्य' के प्रत्येक अङ्क में डबल क्राउन चौपेजी (चाँद से दुगुने) साइज़ के ४० पृष्ठ रहेंगे, जिनमें ओजस्वी लेख और टिप्पणियाँ, भावपूर्ण कविताएँ, मनोहर कहानियाँ, भण्डाफोड़ करने वाली चिट्ठियाँ, मनोरञ्जक और ज्ञानवर्द्धक चुटकुले, ताज़े समाचार आदि का समावेश रहेगा। प्रति अङ्क में चित्रों के भी चार पृष्ठ रहेंगे। वार्षिक मूल्य छः रुपए और एक अङ्क का दो आना। एजण्टों को शीघ्र ही अपना आर्डर रजिस्टर करा लेना चाहिए!

व्यवस्थापक, "भविष्य" चन्द्रलोक, इलाहाबाद

अजगर करे न चाकरी, पञ्छी करे न काम।
दास मलूका कह गए, सब के दाता राम॥

कॉङ्ग्रेस का कार्य करें, भगवान खाने को ही देगा। अब तो पिकेटिङ्ग का नुसख़ा मालूम हो गया। अपने भोजन के लिए भी हलवाइयों और बनियों की दूकान पर पिकेटिङ्ग करें। जब तक भोजन न मिल जाय तब तक किसी को सौदा न ख़रीदने दें।"

"जी हाँ, और इस पर भी न दें तो अपने बदन में छुरी मारें, ख़ून निकालें, बस यही बाक़ी रह गया है। कॉङ्ग्रेस वालण्टियरों का क्या बिगड़ता है। उनमें या तो ऐसे हैं जिनके घर में खाने का सुभीता है या फिर ऐसे हैं जो निहङ्ग लाडले हैं। दोनों समय चन्दे की रक़म से भोजन करते हैं और 'तिरङ्गा प्यारा' गाते घूमते हैं, धरना देते हैं—जिन्हें ये दोनों सुविधाएँ प्राप्त नहीं, वे मरें।"

"अजी जनाब, ऐसे कौन मरता है, मरेगा तभी जब मौत आएगी।"

"आप तो बेसिर-पैर की बातें करते हैं। आप से बात करना व्यर्थ है।"—इतना कह कर वह महाशय मुँह फुलाए हुए चले गए।

सम्पादक जी, अपने राम की बुद्धि इस मामले में चक्कर खाकर रह जाती है। एक ओर तो यह कहा जाता है कि स्कूल और कॉलेज छोड़ कर देश के काम में जुट जाओ। फ़िलहाल देश का जो ठोस काम है वह विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार है। सो यह शिक्षा जारी रखते हुए भी किया जा सकता है। कुछ स्थानों में यह भी हो रहा है कि विद्यार्थीगण स्कूल की इमारत पर झण्डा लगाते हैं। यदि उन्हें झण्डा लगाने की स्वाधीनता रहे तो वे स्कूल अथवा कॉलेज का बॉयकॉट न करें। और यदि झण्डा लगाने की आज्ञा नहीं मिलती तो बॉयकॉट। यदि झण्डा लगा लिया तो इसमें कौन सी देश की सेवा हो गई और यदि नहीं लगा तो कौन सी देश की हानि हो गई, यह समझ में नहीं आता। अपने राम की समझ में तो यह वही "आ पड़ौसन लड़ें" वाली बात हुई। यदि यत्र-तत्र झण्डा फहरा देने से ही स्वराज्य-प्राप्ति का मार्ग सुगम हो सकता हो तो यह ठीक भी है; परन्तु ऐसा तो दिखाई नहीं पड़ता। यदि यह हो कि विद्यार्थी स्कूल और कॉलेज छोड़ कर देश का कोई ठोस कार्य करें, सो बात भी नहीं है। अभी तक तो उनका सब से बड़ा कार्य यही देखने में आता है कि झण्डियाँ हाथ में लिए 'हू-हा' करते फिरते हैं। इसमें कौन सी देश-सेवा है, यह समझ में नहीं आता। मेरे एक मित्र का कथन है कि इस हुल्लड़-शाही में भी देश-सेवा है। इससे देश में जागृति मालूम होती है। परन्तु अपने राम को तो यह कार्य पहाड़ खोद कर चूहा निकालना प्रतीत होता है। हाँ, यदि पिकेटिङ्ग करने का नशा हो गया हो तो बात दूसरी है। पिकेटिङ्ग अवश्य होना चाहिए—कहीं भी हो और चाहे जिस लिए हो; पर हो अवश्य! यह सिद्धान्त ही दूसरा है। ऐसी दशा में तो सब ठीक है। पराए अशकुन के लिए नाक कटाने के स्वभाव की तो बात ही निराली है। एक महोदय ने यह भी कहा कि—"जनाब यह तो शान्त क्रान्ति है। इसका उद्देश तो यह है कि गवर्नमेण्ट की सारी मेशीनरी बिलकुल ठप कर दी जाय!" परन्तु स्कूल और कॉलेज गवर्नमेण्ट की मेशीनरी हैं—यह उन्हीं महाशय से मालूम हुआ। यदि यही बात ठीक है तो न्यायालयों, रेल्वे, टेलीग्राफ़ बैङ्कों इत्यादि-इत्यादि पर भी पिकेटिङ्ग होनी चाहिए। यदि पिकेटिङ्ग ही से स्वराज्य मिलना है तो चलने दो। प्रत्येक ऐसे कार्य पर, जिसका कुछ भी सम्बन्ध गवर्नमेण्ट से है, पिकेटिङ्ग होने दो। अपनी हानि चाहे पौने सोलह आने हो, परन्तु उससे यदि गवर्नमेण्ट की एक पैसा भर भी हानि होती हो तो पिकेटिङ्ग अवश्य होनी चाहिए।

क्यों सम्पादक जी, इस सम्बन्ध में आपकी क्या राय है?

भवदीय,

विजयानन्द (दुबे जी)

[श्री० गयाप्रसाद जी शास्त्री, साहित्याचार्य]

सूखी खाँसी

काली मिर्च ३ माशे, बबूल का गोंद १ तोला, छोटी इलायची ६ माशे, मुलहठी २ तोले और मिश्री ४ तोले।

विधि—सब चीज़ों को कूट, पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए। मात्रा अवस्था के अनुसार २ रत्ती से २ माशे तक। प्रातः तथा सायङ्काल शहद के साथ सेवन करना चाहिए।

* * *

दाद की दवा

तूतिया १ तोला, चौकिया सुहागा १ तोला, नैनिया गन्धक १ तोला, राई १ तोला, शेवारी शकर १ तोला।

विधि—सब चीज़ों को कूट, पीस, छान कर तथा पानी में घोट कर गोलियाँ बना लेनी चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर गोली को पानी के साथ घिस कर दाद पर लगाना चाहिए। इस औषधि से दाद समूल नष्ट हो जाता है।

* * *

सुन्दर गौरवर्ण सन्तान उत्पन्न करना

छाया में सुखाई गई बबूल की कोमल पत्तियाँ १ छटाँक, कमलगट्टा की मींगी १ तोला, दोनों औषधियों को कूट, पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए। उक्त चूर्ण के बराबर मिश्री मिला कर इस दवा को एक साफ़ शीशी में रख लेना चाहिए। गर्भावस्था के तीन मास के बाद प्रातःकाल ३ माशा औषधि एक पाव गोदुग्ध के साथ सेवन करते रहने से बहुत ही सुन्दर और गौर-वर्ण सन्तति उत्पन्न होती है। यह प्रयोग अनुभूत है।

* * *

स्वप्नदोष

वङ्ग भस्म १ तोला, शुद्ध अफ़ीम ६ माशे, शुद्ध कर्पूर ६ माशे, तालमखाना १ तोला और रस-सिन्दूर १ तोला।

विधि—ऊपर लिखी हुई सब औषधियों को जल के योग से खरल करके दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेना चाहिए। रात्रि में सोने के पहले १ गोली दूध के साथ सेवन करने से स्वप्नदोष समूल नष्ट हो जाता है।

* * *

पाचक चूर्ण

सेंधा नमक १ तोला, नौसादर १ तोला, काली मिर्च १ तोला, छोटी पीपल ६ तोले, काला नमक ४ तोले, सोहागे का फूला ४ तोले, घी में भुनी हींग २ तोले, टाटरी १ तोला।

विधि—सब चीज़ों को कूट, पीस, छान कर चूर्ण बना ले। मात्रा १ माशा से ३ माशे तक अवस्था के अनुरूप। गर्म जल के साथ प्रातः सायं तथा आवश्यकता के अनुसार सेवन। सभी प्रकार के उदर-रोगों में यह लाभ करता है।

* * *

आधाशीशी (शिर का दर्द)

आक (मदार) के पत्तों को थोड़ा सा आग में गर्म कर किसी बर्तन में अर्क़ को निचोड़ लेना चाहिए। जिस ओर दर्द होता हो उसी ओर की नासिका के द्वारा इस अर्क़ को दो-एक बार खींचने से आधाशीशी में विशेष लाभ होता है।

* * *
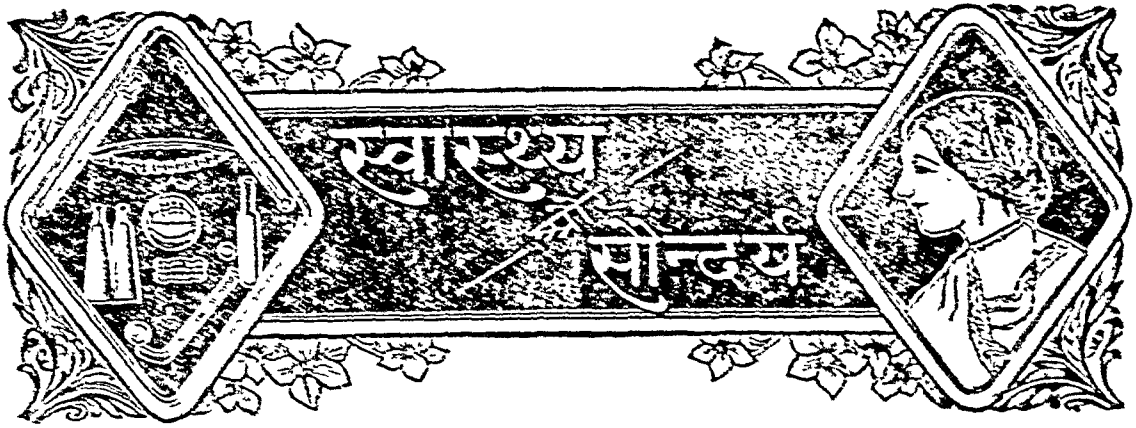
[श्री० बुद्धिसागर जी वर्मा, विशारद, बी० ए०, एल० टी०]

शरीर की कान्ति, रक्त और त्वचा

"सौन्दर्य पर मुग्ध होना मनुष्य का प्राकृतिक धर्म है। सुरंजित सुन्दर पुष्प, सुचित्रित पशु-पक्षी, नेत्ररंजोज्ज्वल आकाश—इन्हें देख कर किसका हृदय मुग्ध नहीं होता?"

—श्री० राधारानी दत्त

जब नीरोग बच्चा नीरोग माता के गर्भ से उत्पन्न होता है, उस समय उसकी त्वचा कैसी कोमल एवं मनोहर होती है। किन्तु आगे चल कर असावधानी से लोग नाना प्रकार की बुराइयाँ उत्पन्न कर लेते हैं। त्वचा को सुन्दर बनाने के लिए सफ़ाई की सर्वोपरि आवश्यकता है। आरोग्यता के साधनों पर दृढ़ रहने से त्वचा में रोग नहीं होते और सफ़ाई के नियमों का भली भाँति पालन करने से त्वचा में सुन्दरता आती है। अतः सौन्दर्य के लिए दोनों ही समान रूप से आवश्यक हैं। यदि रोम-छिद्रों को साफ़ रक्खा जाय और रक्त को दूषित होने से बचाया जाय तो त्वचा में कभी ख़राबी नहीं आ सकती।

स्नान

रोम-छिद्रों को साफ़ रखने के लिए नित्य अच्छी तरह स्नान करना चाहिए। जो स्त्रियाँ बाहरी बनावट, कपड़े इत्यादि तड़क-भड़क से तो साफ़-सुथरी रहती हैं, किन्तु ...र की वास्तविक स्वच्छता पर ध्यान नहीं देतीं, वे ... आरोग्यता की घातक हैं। इसीलिए नित्य स्नान करना स्वास्थ्य का एक विशेष अङ्ग माना गया है। आरोग्यता एवं बल चाहने वाली स्त्रियों को प्रत्येक ऋतु में सूर्योदय के समय ही स्नान कर लेना चाहिए। अधिक से अधिक ७-८ बजे तक तो स्नान अवश्य ही हो जाना चाहिए। किन्तु रोगी तथा निर्बल स्त्रियों के लिए इस नियम की पाबन्दी आवश्यक नहीं है। ग्रीष्म ऋतु में सायं-प्रातः दो बार भी नहाया जा सकता है, क्योंकि दिन-भर के पसीने के कारण शरीर में बू आने लगती है और पसीने में विष होता है। परन्तु रजस्वला स्त्री को भूल कर भी न नहाना चाहिए, चाहे सर्दी हो या गर्मी।

स्नान के लिए सदा ताज़े स्वच्छ जल का ही प्रयोग उचित है। रुग्णावस्था तथा निर्बलता की विशेष दशाओं में गरम जल का भी प्रयोग किया जा सकता है, किन्तु वह भी अधिक गरम न होना चाहिए। एक डॉक्टर का मत है कि मास में एक बार गरम पानी और साबुन या सोडा से नहाना स्वास्थ्यप्रद है। इससे त्वचा साफ़ हो जाती है, किन्तु नित्य गरम पानी से नहाना अप्राकृतिक है और इससे मनुष्य निर्बल और विषयी हो जाता है।

फटाफट नहाने की अपेक्षा मल-मल कर जल से सारे शरीर को धोकर नहाना कहीं उपयोगी है। स्नान के समय यदि हो सके तो शरीर को ठण्डी वायु से बचाए रखना चाहिए और नहा कर तुरन्त कपड़े पहिन लेना चाहिए। स्नान का स्थान, खुला, हवादार और प्रकाशमय होना चाहिए। स्नान के समय शरीर पर जितने कम कपड़े हों उतना ही अच्छा है। एकान्त में विवस्त्र स्नान सर्वोत्तम है। जल में यदा-कदा थोड़ा नमक मिला

कर स्नान करने से त्वचा स्वच्छ हो जाती है, किन्तु नमक इतना ही मिलावे कि पानी खारा न हो जाय। नदी और स्वच्छ तालाब का स्नान और भी अच्छा है। शास्त्र में समुद्र-स्नान की महिमा अधिक है। समुद्र-जल में एक प्रकार की बिजली होती है, अतः मनुष्य अधिक नीरोग और चैतन्य बनता है। मेरी निजी राय यह है कि घर के पानी में समुद्र का नमक मिला कर स्नान करके बाद में शुद्ध जल से स्नान कर लेना चाहिए।

दुख की बात है कि हमारी महिलाएँ तौलिए का प्रयोग प्रायः नहीं करतीं। स्नान के बाद शरीर का पोंछना इतना ही आवश्यक है, जितना बालों में कङ्घी करना। यह आवश्यक नहीं कि आप ॥) या ॥≡) की बढ़िया तौलिया ही ख़रीदने के लिए अपने पतियों की नाक में दम कर दें। खादी के मोटे अँगोछे से भी काम लिया जा सकता है। प्रत्येक को तौलिया या अँगोछा अलग-अलग रखना चाहिए। एक ही से घर भर को काम नहीं लेना चाहिए। कुछ भी न हो तो आधी धोती ही निचोड़ कर काम निकाल लिया जाय, किन्तु स्नानोपरान्त शरीर को ख़ूब रगड़ कर पोंछ अवश्य डालना चाहिए। इससे मैल छूट जाता है; रोम-कूप खुल जाते हैं; और शरीर की रङ्गत भी निखरती है, त्वचा के रोग भी नहीं होने पाते। गरम पानी से शीघ्र-शीघ्र नहाने से भी रोमकूप खुल जाते हैं, किन्तु गरम पानी का उपयोग शीतकाल ही में ठीक है। रोम-कूप खोलने की एक और भी तदबीर है। नींबू काट कर पानी में डाल दो; एक घण्टा बाद निकाल कर उसी पानी में निचोड़ दो; फिर इसी से स्नान करो। शरीर ख़ूब साफ़ होकर रोम-कूप खुल जायँगे।

तैल

कड़वे तैल की मालिश रङ्गत को ख़ूब निखारती है। वाग्भट्ट लिखते हैं—"शरीर में तैल नित्य मलवाने से पुष्टता बढ़ती है।" शीतकाल में यदि सर्वाङ्ग में तैल की मालिश न हो सके तो प्रातःकाल नहाने से प्रथम शिर, कान, हाथों और पैरों में तो अवश्य मल लेना चाहिए। इससे शीत नहीं व्यापता। शीतकाल में यदि नित्य नहीं तो चौथे-पाँचवें तथा अन्य ऋतुओं में कम से कम आठवें-दशवें दिन तैल की मालिश सर्वाङ्ग में करानी चाहिए। इसी कारण मालूम होता है शनिश्चर के दिन तैल-मर्दन का विशेष विधान बताया गया है। इससे त्वचा पुष्ट रहती है, फटती नहीं एवं कोमल रहती है। किन्तु अधिक ग्रीष्म-ऋतु में शीघ्र-शीघ्र तैल मलवाना ठीक नहीं, क्योंकि कड़ुआ तैल स्वयं गरम होता है। मेरी समझ में १५ दिन में एक बार पर्याप्त होगा।

उबटन

उत्तम उबटनों का प्रयोग भी कभी-कभी स्त्रियों को अवश्य करना चाहिए। किन्तु बाज़ारी उबटन अच्छे नहीं होते; इनमें प्रायः विषैले और हानिकर पदार्थ मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त ये बनाए भी असावधानी से जाते हैं। उचित यही है कि स्वयं बना कर ही उबटन लगाए जायँ। दोनों हल्दी, लाल चन्दन, भैंस के दूध के साथ लगाने से रङ्ग ख़ूब गोरा हो जाता है। कड़वे तैल, बेसन और हल्दी का उबटन भी बहुत उत्तम है। तैल कफ एवं वायु के कोप को रोकता है और त्वचा को शुद्ध कर बल देता है। बेसन शरीर की दुर्गन्ध एवं मैल को काट कर त्वचा को नरम बनाता है। हल्दी त्वचा के समस्त रोगों को दूर करती है। इसीलिए विशेष उपयोगी समझ कर विवाह में इसी उबटन की प्रथा रक्खी गई है। चिरौंजी का उबटन अथवा भुने चने का आटा हल्दी, तैल मिला कर लगाना भी अच्छा है। पीली सरसों को दूध में उबाल कर पीस ले, इस उबटन से देह की खुजली भी मिट जाती है। मसूर की दाल छिलका रहित पीस कर दूध में मिला कर मालिश करने से भी त्वचा बहुत साफ़ हो जाती है।

साबुन

यदा-कदा बढ़िया साबुन भी लगाए जा सकते हैं। घटिया मेल के साबुन या तो बिल्कुल ही न लगाए जायँ अथवा उनका प्रयोग बहुत ही कम किया जाय। घटिया से अभिप्राय उन साबुनों से है जिनमें सज्जी का भाग अधिक होता है। ये त्वचा के लिए हानिकर होते हैं। या तो साबुन का प्रयोग ही न करे या यदि करे तो ख़र्च कर अच्छे मेल का ख़रीदना चाहिए। अच्छे और बुरे साबुन में भेद यह है कि पहला त्वचा की रङ्गत निखारता है और दूसरा उसे बिगाड़ देता है। एक अङ्गरेज़ डॉक्टर कहता है कि केवल साबुन की ख़राबी से त्वचा में ४०० प्रकार के रोग उत्पन्न हो सकते हैं। साधारण पहचान यह है कि जिस साबुन के रगड़ने से नरम

झाग बहुत सा निकले, उसी को उत्तम समझना चाहिए। किन्तु फिर भी साबुन का पहचानना सर्व-साधारण के लिए कठिन है। प्रायः ऊँचे मोल वाले बढ़िया साबुन भी सन्तोषजनक नहीं होते। इसलिए यदि साबुन का प्रयोग किया ही जाय तो सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह कहीं पर लगा न रह जाय। अन्यथा रोम-कूपों का मुँह बन्द हो जाता है और त्वचा की कान्ति फीकी पड़ जाती है। साबुन लगा कर त्वचा को ख़ूब मल कर धोने के बाद तौलिया से अच्छी तरह पोंछ डालना चाहिए।

शरीर की दुर्गन्ध

किन्हीं स्त्रियों के शरीर में बड़ी दुर्गन्ध आने लगती है और उनके निकट बैठने तक को जी नहीं चाहता। इसका हेतु प्रायः किसी न किसी प्रकार की मलिनता ही हुआ करती है। ऐसी दशा में स्त्रियों को इसका मूल कारण खोज कर उचित उपाय करना चाहिए एवं खानपान सम्बन्धी सब प्रकार की स्वच्छता पर ध्यान रखना चाहिए। नित्य ठण्डे जल के स्नान और ६ माशे नागदवन के सेवन से शरीर की दुर्गन्ध दूर हो जाती है। लुई कोहनी का वाष्प-स्नान (Steam bath) भी उत्तम होगा।

ख़ून की ख़राबी

त्वचा सम्बन्धी रोगों के उत्पन्न होने से त्वचा बिगड़ कर अन्त में कान्ति पर भी अपना प्रभाव डालती है। त्वचा के रोग प्रायः रक्त-विकार से ही उत्पन्न हुआ करते हैं। अतः त्वचा की सुन्दरता चाहने वाली स्त्रियों को सदा ध्यान रखना चाहिए कि रक्त न बिगड़ने पाए, और फोड़ा, फुन्सी, खाज आदि न हो सकें। जिनका रक्त किसी कारण से दूषित हो गया हो, उन्हें नीम, मुण्डी बूटी अथवा किसी अन्य रक्त-शोधक औषधि का सेवन करके शीघ्र उपचार करना चाहिए। किसी भी दोष को बढ़ने का अवसर देना बड़ी भूल है। प्राणा-याम की क्रिया रक्त-शोधन के लिए मुख्य साधन है।

चेचक से भी त्वचा बिगड़ जाती है। प्रथम तो यदि आचार, व्यवहार, खान-पान और रहन-सहन में [illegible] । सफ़ाई का ध्यान रक्खा जावे तो चेचक जैसे [illegible] हों; किन्तु एक बार इस भयङ्कर रोग के हो जाने पर त्वचा निस्सन्देह बड़ी भद्दी हो जाती है। इसका उपाय यह है कि चेचक के मिट जाने पर जब दाने सूख जायँ तो रोगी के शरीर पर जैतून के तैल की मालिश करना चाहिए और उसे नियम से नित्य स्नान कराना चाहिए। इससे प्रायः चेचक के दाग़ जाते रहते हैं और नई त्वचा आ जाती है। अनार का छिलका महीन पीस कर लगातार कई मास तक लगाते रहने से भी चेचक के दाग़ मिट जाते हैं।

उपचार

'Wet-sheet Pack' अर्थात् 'भीगी चादर का बन्धन' भी एक अपूर्व प्रयोग है। त्वचा की बीमारियों के लिए यह बहुत ही सुगम और सस्ता उपाय है। महात्मा गाँधी ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है। प्रयोग इस प्रकार है:—

खुली हवा में एक लम्बी मेज़ अथवा तख़्त पर चादर या हवा के अनुसार न्यूनाधिक कम्बल लटकते हुए बिछा दें। इन पर दो मोटी और साफ़ चादरें ठण्डे पानी में पूरी तरह भिगो कर लटकती हुई बिछावें। मस्तक की ओर कम्बलों के नीचे एक तकिया रख लें। बिल्कुल नङ्गा होकर (चाहें तो एक छोटा सा रूमाल कमर में पहन लें, किन्तु नङ्गा लेटना ही अधिक उत्तम होगा) चादरों पर चित लेट जायँ, फिर चादरों और कम्बलों को एक-एक करके दोनों ओर से शरीर पर लपटवा लें। धूप हो तो मुँह और मस्तक पर भीगा रूमाल लपेट लें, किन्तु नाक हर हालत में खुली रहे। पहले तो थोड़ी देर कँप-कँपी सी लगेगी, फिर आराम मालूम होगा और शरीर को भली मालूम होने वाली गरमी लगेगी। इस स्थिति में ५ मिनट से १ घण्टा या इससे भी अधिक देर तक रहा जा सकता है। अन्त में पसीना बह निकलता है, प्रायः इस दशा में नींद भी आ जाती है। चादर से बाहर निकलने पर पानी से नहाना चाहिए। खुजली, दाद, सेहुँआ, अन्हौरी, चेचक, साधारण फोड़े आदि पर चादर का यह बन्धन बहुत ही गुण करता है। चेचक की बीमारी कितनी ही भयङ्कर क्यों न हो, इस उपचार से बहुत कुछ नष्ट हो सकती है। शरीर पर चट्टे पड़ गए हों तो एक या दो बार इस प्रयोग के करने से मिट जाते हैं। इसकी उपयोगिता स्वयं अनुभव करके जानी जा

सकती है। इस बन्धन से त्वचा का बहुत सा मैल चादर में लिपट जाता है, अतः एक बार काम में लाई हुई चादर खौलते पानी में ख़ूब धोए बिना किसी काम में न लाना चाहिए। जो व्यक्ति पानी, हवा, ख़ुराक आदि के नियमों की उपेक्षा करके केवल इन उपचारों का ही सहारा लेगा, उसे लाभ या तो बहुत कम होगा या बिल्कुल ही न होगा। यदि किसी रोग विशेष को हटाने के लिए उक्त चादर का बन्धन अथवा कोई अन्य उपचार शुरू किया जाय, किन्तु साथ ही अभक्ष्य एवं हानिकर पदार्थों का उपयोग किया जाय, गन्दी हवा में निवास किया जाय, गन्दगी और दुखद परदे में पड़े-पड़े सड़ा जाय, शारीरिक व्यायामादि भी न किया जाय तो केवल उपचार मात्र से क्या हो सकता है?

व्यायाम

ठण्डे जल का स्नान, फ़व्वारे का स्नान, धार के नीचे स्नान, नदी में तैरना आदि त्वचा के व्यायाम हैं, इनसे त्वचा सुन्दर, कान्तिमयी होती है और आरोग्यता की वृद्धि होती है। तैरने से सभी अवयवों का व्यायाम हो जाता है। अर्थात् सीना पुष्ट, विस्तीर्ण; फेफड़े शुद्ध और बलवान; शरीर नीरोग, फुर्तीला, सुदृढ़, उत्साही एवं शक्तिशाली होता है।

भोजन

भोजन का प्रभाव भी शरीर की कान्ति पर गहरा पड़ता है। स्वास्थ्य और सौन्दर्य दोनों के लिए सादा भोजन अदल-बदल कर ख़ूब पका कर खाना श्रेयस्कर है। ताज़े स्वादिष्ट और मीठे फलों का रस रङ्गत को निखारता है और चेहरे पर सुर्ख़ी लाता है। सेब का प्रभाव सीधा यकृति (जिगर) पर पड़ता है। उससे पाचन शक्ति में वृद्धि होती है और इस प्रकार शरीर की कान्ति भी निखरती है। सेब भून कर एवं कच्चे भी खाए जा सकते हैं। एक पुरानी कहावत है कि यदि सवेरे फल खाए तो सोना; तीसरे पहर खाए तो चाँदी; और शाम को खाए तो सीसा के समान है। रात को सोने से पहले पक्के फलों का सेवन भी उत्तम प्रमाणित हुआ है। प्रत्येक स्त्री को सोने से प्रथम एक सेब अथवा नारङ्गी खा लेने की आदत डाल लेनी चाहिए। एक गाँठ प्याज़ की खाना भी स्वास्थ्य के लिए यही असर रखता है और सौन्दर्य-वृद्धि के लिए उपयोगी है। दूध का प्रयोग रङ्गत निखारने के लिए अत्यन्तोपयोगी सिद्ध हुआ है। विशेषकर धारोष्ण दुग्ध की महत्ता बड़ी विचित्र है। तरकीब यह है। एक पात्र पर स्वच्छ कपड़ा रख कर उसी पर चीनी अथवा मिश्री रख दी जाय। फिर उसी पर दुग्ध दुहा जाय। चीनी घुल कर दूध में मिलती जायगी। यही धारोष्ण दुग्ध है। दुहने के बाद तुरन्त गरमागरम पी लेना चाहिए। जहाँ तक हो सके उसमें हवा न लगने दी जावे। इसके पीने से बल की वृद्धि होती है और रङ्गत ख़ूब निखरती है, हकीम बूअलीसेना दूध में चने भिगो कर खाना एवं अङ्गूर का सेवन उपयोगी बताते हैं। इससे रक्त उत्पन्न होकर त्वचा की ओर आता है और कान्ति मनोरम प्रतीत होने लगती है। हरी तरकारियों का सेवन भी उत्तम है, किन्तु भारी और गरिष्ट पदार्थ अधिक नहीं खाने चाहिए। साग-भाजी में पालक और बथुआ सर्वोत्तम हैं। जौ, कचनार, करेला, कसेरू, परवल, लौकी आदि का सेवन रक्त-विकार को दूर कर उसे शुद्ध करता है और इस प्रकार शरीर की रङ्गत निखारने में सहायक है। ब्राह्मी बूटी भी रङ्गत निखारती है। मादक द्रव्य, चाय-क़हवा की अधिकता, मिठाई और चटपटे मसालेदार पदार्थों का अधिक सेवन, खटाई, अचार और तैल के पदार्थों की भरमार, लाल मिर्च, मैदा की चीज़ें; गरिष्ट पदार्थों का अधिक भोजन; मांस-भक्षण आदि-आदि ऐसी चीज़ें हैं, जो कालान्तर में रक्त को दूषित कर रङ्गत को भी बिगाड़ देती हैं। अतः इनकी अधिकता से बचना चाहिए।

अन्य दोष

उदर, आमाशय एवं यकृत (जिगर) आदि के विकार और मासिकधर्म की अनियमितता को शीघ्र दूर करना चाहिए। इनसे त्वचा और कान्ति पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। रङ्गत फीकी पड़ जाती है। जिन्हें बैठने का काम अधिक रहता है, उन्हें प्रायः भोजन नहीं पचता और जो भोजन कर तुरन्त काम में लग जाते हैं उनका भी स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। अतः दिन में भोजनोपरान्त थोड़ी देर आराम कर लेना चाहिए और रात्रि में भोजन के बाद कम से कम १०० क़दम टहलना चाहिए। इससे भोजन का परिपाक भली प्रकार हो जाता है और नींद अच्छी आती है।

कालापन

प्रचण्ड धूप एवं अग्नि-ताप से शरीर को बचाना भी शरीर की कान्ति स्थिर रखने के लिए आवश्यक है। अन्यथा रङ्गत में कालापन आ जाता है। यदि कालापन प्रचण्ड धूप के कारण हो तो सोमरोग़न मलना चाहिए। रक्त की कमी से भी रङ्गत फीकी पड़ जाती है। यह शिकायत बहुधा स्त्रियों और विशेषतया नई उमर की कन्याओं को हो जाती है, ऐसी दशा में तङ्ग मकानों और कोठरियों में बैठ रहना बहुत बुरा है। शुद्ध वायु और खुली हवा का रहन-सहन तथा सायं-प्रातः फुलवाड़ी, पुष्पोद्यान सदृश मनोरम स्थानों में टहलना लाभदायक है। जिन्हें यह सुभीता न हो, उन्हें घर के खुले छज्जे पर ही अधिकतर रहना चाहिए। पर्वतों पर रहने से एक ही मास में त्वचा की कालिमा कम हो जाती है।

साधारण साधन

रात्रि में कमरे के सभी द्वार बन्द करके न सोओ, और न अधिक प्रचण्ड वायु ही में सोओ। सर्दी हो चाहे गर्मी, शुद्ध एवं ताज़ी स्वच्छ वायु को कभी न रोकना चाहिए। गन्दी जगहों पर मत बैठो। सफ़ाई का सर्वोपरि ध्यान रक्खो। रात-दिन क्रोध एवं शोक, सन्ताप ही में न डूबो। सोने के कमरे में गैस मत जलाओ, क्योंकि लैम्प बुझ जाने पर बड़ी विकट दुर्गन्ध निकलती है, जो स्वास्थ्य के लिए विष है। मुँह ढाँप कर कभी मत सोओ। रहने के मकान में नित्य हवन करो। प्रत्येक समय कपड़े लपेटे रहना भी ठीक नहीं, जैसा कि प्रायः स्त्रियाँ किया करती हैं। कुछ देर एक हल्की चादर या धोती पहन कर शरीर में हवा भी लगने दिया करो। कपड़े जहाँ तक हो सके, हल्के ही पहने जायँ। शोक और भय अधिक करने से रक्त का बहाव रुक कर शरीर पर पीलापन दौड़ जाता है। पसीना रुकने से भी रङ्गत में कालापन आ जाता है। क्रोधातुर होने से एकदम शरीर पर लाली दौड़ कर तनाव उत्पन्न होता है और इस प्रकार त्वचा में भद्दापन आ जाता है। रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। ईर्ष्या, डाह, असत्य भाषण, शोक, सन्ताप और चिन्ता आदि से शरीर की कान्ति मलिन हो जाती है। कभी-कभी थोड़ी देर के लिए धूप में बैठ कर पसीना लेना भी गुण करता है, किन्तु प्रचण्ड सूर्य-ताप से सुन्दर गोरे रङ्ग के शौक़ीनों को बचना ही चाहिए। यदि शरीर को ठिठुरने से बचाया जाय तो सर्दी भी त्वचा पर अच्छा प्रभाव डालती है। यही कारण है कि शीत ऋतु में सायं-प्रातः सैर करने वालों का मुखमण्डल प्रायः चमकने लगता है।

साधन

बहुत थोड़ा सोना, अत्यधिक सोना, तङ्ग मकानों में सोना, शोक एवं भयातुर रहना, क्रोध, ईर्ष्या, मैलापन, निराशा, चिन्ता, मल-मूत्र, छींक, उबकाई, वमन आदि के वेग को रोकना, बहुमैथुन, विषय-वासनाओं का आधिक्य, मद्यपान, चरस, अफ़ीम आदि का सेवन, संयोग-विरुद्ध पदार्थों का मिला कर खाना, मांस-भक्षण, सड़ी हुई बासी चीज़ों का आहार, दुष्ट स्वभाव आदि-आदि ऐसी बातें हैं, जिनसे आरोग्यता नष्ट होकर सौन्दर्य एवं कान्ति भी लुप्त हो जाती है। प्रसन्न-चित्त रहना, साधारण शारीरिक परिश्रम, हर्ष, धार्मिक स्वाध्याय, मनोहर सुरीले गानों का सुनना एवं स्वयं भी सङ्गीतकला का अभ्यास करना, पवित्राचरण एवं शुद्ध हृदय वाले मित्र-मित्राणियों से पवित्र हँसी-दिल्लगी करना, हँसमुख और प्रसन्नचित्त सहेलियों का सहवास आदि-आदि बातें, जिनसे अन्तःकरण को हर्ष प्राप्त हो, शरीर की कान्ति निखारने के लिए अत्यन्तोपयोगी साधन हैं। यदि इन समस्त उपायों पर समुचित ध्यान दिया जाय, बढ़िया उबटन लगाए जायँ, जल-वायु आदि का पूरा-पूरा सदुपयोग किया जाय, और रङ्ग निखारने वाले पदार्थों और औषधियों का सेवन किया जाय तो निस्सन्देह रङ्गत में बड़ा परिवर्तन किया जा सकता है।

शिशु-रक्षा

गर्भिणी स्त्रियों के मिट्टी खाने आदि अनेक कुव्यवहारों से सन्तान की रङ्गत पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः यदि सन्तान को सुन्दरता की मूर्ति बनाना हो, तो गर्भावस्था में उचित आहार-विहार से रहने का दृढ़ व्रत धारण करना चाहिए। २-९ मास तक नवजात बच्चे के शरीर में कड़वे तेल की मालिश कर ऊपर से आटे की लोई फिरा, किञ्चित गरम जल से नित्य नहला देना चाहिए और किसी सूखे, साफ़ एवं नरम कपड़े से बच्चे का शरीर अच्छी तरह पोंछ देना

चाहिए। इससे बच्चे के शरीर में बल आता है और बड़े होने पर उसकी त्वचा नहीं सड़ती, पसीने में बू नहीं आती, और न त्वचा के रोगों का ही भय रहता है। उसके बाद भी बच्चे को सदा नित्यप्रति ऋतु के अनुसार ठण्डे या गरम जल से नहलाते रहना चाहिए। इन नियमों की अवहेलना करने से बच्चों के शरीर में त्वचा सम्बन्धी अनेक रोग यथा—पामा, विचर्चिका, खुजली, सेहुँआ, अपरस, बनरफ़ आदि उत्पन्न हो जाते हैं। उस दशा में माताओं को सफ़ाई का विशेष ध्यान रखते हुए इस लेप का प्रयोग करना चाहिए—घर का धुँआ जो छप्पर आदि में लग जाता है, हलदी, कूट, राई, इन्द्रजौ, समभाग लेकर गाय के मट्ठे में पीस कर बालक के उस अङ्ग पर लेप करें, जहाँ रोग हो। वर्षा ऋतु में बालकों को फुन्सियाँ, गुमड़ी व दाने आदि उत्पन्न हो जाते हैं। उसका उपाय यह है—मसूर के छिलके और आँवला जला कर राख कर ले। मेंहदी के पत्ते साया में सुखा कर तथा कबीला को कूट-पीस कर कपड़छान चूर्ण करे। इन चारों औषधियों को एक-एक तोला ले। भुना हुआ तूतिया ३ माशे, कपूर डेढ़ माशे सबको कड़वे तैल में मिला कर खरल में ख़ूब घोटे। जब मरहम की भाँति बन जाय, तब डिब्बी में भर कर रख ले। इसे बालकों के शरीर पर लगाने से शीघ्र सब शिकायतें जाती रहती हैं।

यदि बच्चों को धीरे-धीरे ताज़े फल और मेवे आदि ही अधिकतर खाने की आदत डाल दी जाय, तो शरीर में शुद्ध रक्त उत्पन्न होता जायगा। बच्चे तेजस्वी एवं बलिष्ठ भी होते जायँगे। जो माताएँ बच्चों को दाँत निकलने से प्रथम या दाँत निकलते ही दाल, भात और शाकादि देने लगती हैं, वे निस्सन्देह उनके लिए काँटे बोती हैं। बच्चों को चाय, कॉफ़ी आदि तो भूल कर भी न देना चाहिए।

देवताओं के ग़ुलाम

यह पुस्तक समाज के वक्षस्थल पर भीषण प्रहार करने वाली, सुप्रसिद्ध मिस मेयो की नई करतूत है। इसमें समाज को तिलमिला देने वाली १२ सामाजिक कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी में हमारे परम्परागत अन्धविश्वासों, ढकोसलों एवं सर्वनाशक कुरीतियों और पाखण्डों का नग्न-चित्र खींचा गया है। इन दोषों के कारण हमारा जीवन कितना पतित हो गया है, हम कितने स्वार्थी, विवेकहीन और निर्मम हो गए हैं कि अबोध बालिकाओं के साथ भी अमानुषिक अत्याचार करने से नहीं हिचकते। केवल एक कहानी पढ़ने से ही पश्चात्ताप और शर्म के मारे सिर नीचा हो जाता है! तथा इन कुरीतियों के विरुद्ध हृदय में अग्नि भभक उठती है और समाज में एक बार ही क्रान्ति मचा देने की इच्छा प्रबल हो उठती है। प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि एक बार इस पुस्तक को पढ़ कर सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध क्रान्ति मचा दे। भाषा अत्यन्त सरल तथा मुहावरेदार। पृष्ठ-संख्या लगभग ४००। दो तिरङ्गे चित्रों सहित प्रोटेक्टिङ्ग कवर तथा सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल लागत मात्र ३) ; स्थायी ग्राहकों से २।)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद
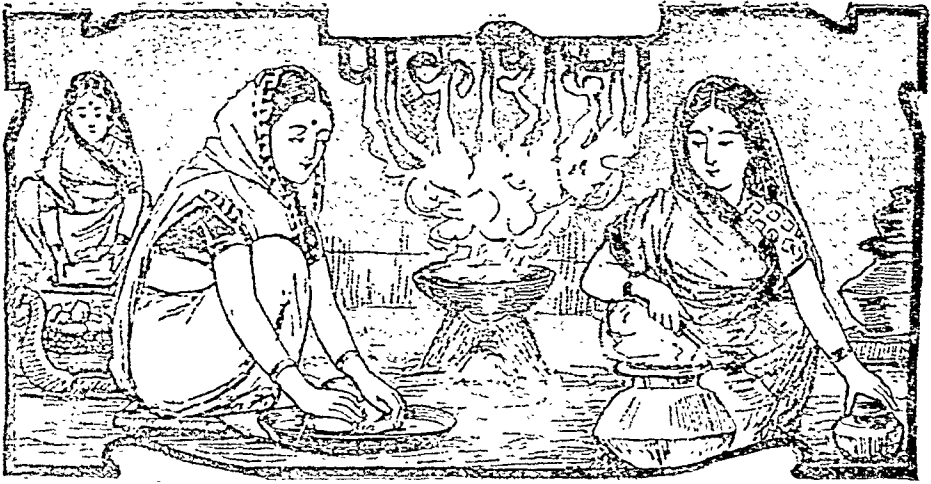
[श्रीमती रञ्जनादेवी जी]

लड्डू-चूरमा

गेहूँ का आटा १ सेर, घी डेढ़ सेर और खाँड़ सेर भर लेकर पहले आटे को आध सेर घी में गूँध ले। इसके बाद मोटी-मोटी पूरियाँ घी में तल कर हाथों से ख़ूब मल ले और छींटे से छान कर खाँड़ देकर लड्डू बाँध ले।

* * *

लड्डू-मलाई

खोआ सेर भर, कन्द आध सेर, केवड़ा दो माशे। कन्द को खोआ में डाल कर ख़ूब मथे और गोल-गोल बना कर पिस्ते के वरक़ उस पर लगावे, फिर पाव भर कन्द ऊपर से सब लड्डुओं में लपेट दे।

* * *

जीरे का पानी

पानी पाँच सेर, अमचूर पाव भर, सियाह-सफ़ेद ज़ीरा छः माशे, काली मिर्च आठ माशे, नमक छः तोले, हींग चार रत्ती, कचरी छः माशे। इन सब वस्तुओं को जुदा-जुदा ख़ूब बारीक़ पीसे और उसी पाँच सेर पानी में मिला कर बारीक कपड़े से छान ले। यह पानी बहुत हाज़मा है। खाना खाने के बाद यदि थोड़ा सा इसे पी लिया जाय तो खाना बहुत जल्द हज़म हो जायगा।

घेवर

साफ़ और बारीक मैदा सेर भर लेकर उसमें सेर भर पानी दो-तीन मरतबा दे-देकर ख़ूब मथे। जब डोरे की तरह उसमें तार उठने लगें तब छोड़ दे। उसके बाद छोटा सा तवा जो गहरा न हो, चढ़ावे और उसमें घी डाल दे। जब घी ख़ूब गर्म हो जाय तो तीन-चार चमचा मैदा कई मरतबा करके तवे के बीच में ऊँचे से डाले। इसके बाद थोड़ा सा घी तावा हुआ ऊपर से दे। जब घेवर ऊपर आ जाय तो लोहे की सींक से उठा ले। फिर डेढ़ सेर कच्ची खाँड की एक तारा चाशनी बना कर ख़ूब घोंटे। जब किसी क़दर गाढ़ी हो जाय तो उन घेवरों को उसमें डुबो कर लकड़ियों पर रखता जाय।

* * *

मोती पाक

दो सेर कन्द लेकर उसकी एक तार की चाशनी तैयार करके नीचे उतार ले और पाव भर बेसन की बुँदिया बारीक पौने में दो सेर घी में पका कर चाशनी में डाले, केवड़ा देकर थाल में जमावे और लौजें तराशे।

* * *

लुचुई

पाँच सेर मैदा गूँध कर लोइयाँ तोड़ कर आठ गिरह चौड़े चकले पर बेल कर घी में छोड़े, जितनी पतली बेली जावेंगी उतनी ही अच्छी होंगी।

इन्साफ़
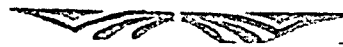
[श्री० पीकदान अली]
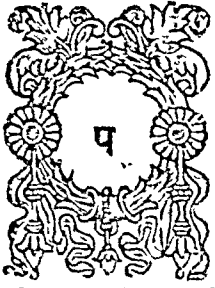
पण्डित गोपीनाथ की इकलौती पुत्री मूलकुँअर उनकी बड़ी लाड़ली थी। पण्डित जी स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती थे, परन्तु ज़्यादा शिक्षा देने के नहीं। उनकी राय थी कि लड़की को इन्ट्रेन्स तक पढ़ाने में कोई हर्ज नहीं, लेकिन उसके बाद किसी लड़की को न पढ़ाना चाहिए। मूलकुँअर तेज़ लड़की थी और उसने १५ ही वर्ष की अवस्था में इन्ट्रेन्स पास कर लिया।

पण्डित जी का विचार था कि उसका विवाह १७-१८ वर्ष की अवस्था में करेंगे, दोस्तों ने कहा कि थोड़ा और पढ़ लेने दो, पर गोपीनाथ न माने। वह यह कहते कि इन दो-तीन सालों में वह घर के कामों में निपुण हो जायगी और आदर्श गृहिणी होगी।

गोपीनाथ की स्त्री फूलकुमारी अपने घर का काम ख़ुद ही करती थीं। परमेश्वर ने इतना पैसा दिया था कि एक नहीं, चार महराजिनें रख लें, किन्तु उन्हें स्वयं ही भोजन बनाना पसन्द था। मूला भी साथ-साथ काम करती थी। मगर घर का काम तो चौबीस घण्टे होता नहीं—कुछ देर सीने-पिरोने में ख़र्च करती, बाक़ी समय में सस्ते अङ्गरेज़ी उपन्यास मँगा कर पढ़ा करती थी।

गोपीनाथ ज़मींदार आदमी थे, ६ महीने देहात में रहते, ६ महीने बनारस में। देहात में पत्नी और पुत्री को नहीं ले जाया करते थे। जब वे देहात में रहते तब मूला का जी और भी उचाट होता, क्योंकि कभी-कभी घर से बाहर जाना भी बन्द हो जाता था।

इस दफ़े जब गोपीनाथ देहात से वापस आए तो फूलकुमारी ने मूला के व्याह की चर्चा उठाई और उनके पीछे पड़ गईं। गोपीनाथ भी राज़ी हो गए और दोस्तों से सलाह करने का वादा किया।

मिलने पर पण्डित जी ने दोस्तों से यह बात कही। एक ने कहा—मैं तो साल भर से कह रहा हूँ कि या तो लड़की को आगे पढ़ाओ या व्याह दो। बेकार वक्त़ क्यों ज़ाया कर रहे हो?

दूसरा—नहीं, अभी तक तो वह शादी करने क़ाबिल न थी। अब १७ वर्ष की है। यही उम्र ठीक है।

गोपी—अच्छा, कोई लड़का तो बतलाओ। है कोई नज़र में?

एक—मैं तो समझता हूँ, रामेश्वरनाथ गायघाट वाला ख़ासा अच्छा है। बी० ए० में पढ़ता है। कोई ख़ास बुराई भी नहीं है।

दूसरा—हाँ, खाने-पहनने की भी कमी नहीं है। घर में माँ-बेटे दो ही हैं। यों तो सब ठीक है।

गोपी—सुना तो मैंने भी उसके ख़िलाफ़ कभी कुछ नहीं। लड़का भी तमीज़दार मालूम होता है। फिर भी सोच-समझ लो। मेरी लाड़ली बेटी को तकलीफ़ न हो। बुढ़िया का मिज़ाज कैसा है?

एक—वह तो बेचारी देवी है देवी!

दूसरा—बस, तो फिर ठीक है। हमारी मूला पढ़ी-लिखी है। उससे सास की जूतियाँ कब खाई जावेंगी?

* * *

रामेश्वरनाथ ने अपनी माँ से कहा—माँ, मेरा बी० ए० का नतीजा निकल गया। मैं पास हो गया, अब वकालत पढ़ूँगा।

विधवा माता बहुत ख़ुश हुई। बोली—परमेश्वर तुम्हें ख़ुश रक्खे। और बड़े-बड़े इम्तिहान पास करो, फलो-फूलो।

रामेश्वर—अच्छा, अम्मा मुँह मीठा करो तो ज़रा घूमने जाऊँगा।

माँ—मुँह मीठा सौ दफ़े करूँगी, मगर बेटा, देखो, कहीं बुरी लत न लगा लेना।

रामेश्वर—तुम तो रोज़ यही नाक में दम किए

रहती हो। थोड़ी देर दिल बहलाता हूँ, दो-चार रुपए हार गया तो हर्ज क्या है?

माता चुप हो गई। उसने देखा कि रामेश्वर को जुए का शौक़ हो रहा है, मगर मुहब्बत के मारे कुछ कहती भी न थी। उसे डर था कि कहीं दो-चार रुपयों से दो-चार सौ की नौबत न आ जाय और रहे-सहे ज़ेवर भी हाथ से निकल जायँ।

माँ—सुन तो बेटा, तेरी कुण्डली गोपीनाथ माँग रहे हैं। आज पुरोहित जी कहते थे।

रामेश्वर—फिर तुमने क्या कहा?

माँ—कहती क्या? यही कहा कि भई, लड़का बड़ा और समझदार है, पूछ लूँ तो दूँ।

रामेश्वर—अम्माँ, वह लड़की तो इन्ट्रेन्स पास है। उससे तुम्हारी कैसे निभेगी?

माँ—मेरी भली चलाई! मैं तो चार दिन की मेहमान हूँ। निभनी तुम्हारी चाहिए, मैं निभा लूँगी।

रामेश्वर—अच्छा अम्माँ, कल बताऊँगा।

उस रोज़ रामेश्वरनाथ जुआ खेलने नहीं गए, अपने मित्र बद्रीप्रसाद के घर पहुँचे। वहाँ दूसरे मित्र केदारनाथ भी बैठे थे। बैठते ही रामेश्वरनाथ ने कहा—आज यार यहीं बैठेंगे। कुछ सलाह करनी है।

बद्री—कहो, क्या बात है?

रामेश्वर—बात यह है कि गोपीनाथ की एक लड़की है इन्ट्रेन्स पास। वे उसे मुझसे ब्याहा चाहते हैं। तुम्हारी क्या राय है?

बद्री—यार, घर तो अच्छा है, लड़की बाप की वारिस है।

केदार—अङ्गरेज़ी पढ़ी-लिखी है। वह तुम्हारी माँ का अनादर करेगी।

बद्री—नहीं, यह फ़िज़ूल बात है, अङ्गरेज़ी पढ़ कर क्या लड़कियाँ पागल हो जाती हैं?

रामेश्वर—ख़ैर, अनादर तो नहीं करने पावेगी, मगर अङ्गरेज़ी पढ़ी लड़कियों से मुझे भी कुछ चिढ़ सी है।

बद्री—तुम कर भी लो, सीधा कर सकते हो। मैं दम हो तो क्या औरत चूँ कर सकती है?

२

रामेश्वर का ब्याह हो गया। आते ही मूलकुँअर ने सास की ऐसी ख़ातिर की कि वे पुत्रवधू पर लट्टू हो गईं। पहले ही दफ़े उसने भोजन बनाने का भार अपने ऊपर लिया और मना करने पर भी न मानी। पतिदेव को भी वह तरह-तरह के भोजन बना कर खिलाती और हर तरह से उन्हें ख़ुश रखने की कोशिश करती थी। मगर वह उन लड़कियों में न थी, जो किसी बात में अपनी राय देतीं ही नहीं। इसीसे रामेश्वर उससे नाराज़ रहा करता था।

एक दिन बद्रीनाथ और केदारनाथ बैठे यही चर्चा कर रहे थे। बद्री ने पूछा—कहो भाई रामेश्वर, इन्ट्रेन्स पास जोरू कैसी निकली? तुम्हारी माँ से निभी या नहीं?

रामेश्वर—जी हाँ, उनसे तो ख़ूब निभी, मगर मेरे नाक में दम रहता है। जब देखो तभी मुझसे जवाब तलब होता रहता है—यह कौन तुम्हारे पास आया था, कहाँ गए थे, क्यों देर से लौटे, आदि। जैसे मैं बच्चा होऊँ और वह मेरी बड़ी अम्माँ!

केदार—मेरी जोरू ऐसा करे तो न मालूम क्या कर डालूँ। जोरू को इस बात से क्या मतलब कि हम कहाँ जाते हैं, क्या करते हैं?

रामेश्वर—मैं पहले ही कहता था कि अङ्गरेज़ी पढ़ी औरत मुझे पसन्द नहीं। कितना क़ानून छाँटती है!

बद्री—भई, बुरा न मानो तो कहूँ। जोरू के ऐसे प्रश्नों में बुरा मानने की क्या बात है? तुमसे न पूछे तो पूछे किससे? क्या तुम यह चाहते हो कि हाथ बाँधे हरदम खड़ी रहे। क्या वह नौकरों से भी गई-बीती है?

रामेश्वर—चलिए, चलिए, अपनी शिक्षा रहने दीजिए। मैं कई दफ़े मना कर चुका हूँ कि मुझसे ऐसी बातें मत पूछा करो, वरना बुरा होगा; मगर मानती ही नहीं। अच्छा अब जाता हूँ, नहीं फिर वैसे सवाल होंगे और मुझे गुस्सा आ जावेगा।

केदार—आज खेलने न चलोगे?

रामेश्वर—आज पैसा तो है नहीं, माँ से कुछ वसूल नहीं कर सका। अच्छा, जय राम जी की।

* * *

रामेश्वर—मैं पहले ही कहता था कि कहाँ मुझे फँसाया !......उठती है कि डण्डा निकालूँ ?

मूल—जैसी आपकी मरज़ी। मुझे इक्का मँगा दीजिए। लल्लू को उठा लूँ तो जाती हूँ।

रामेश्वर—मुझे गरज़ ? निकल अभी मेरे घर से। जिस तरह तेरा जी चाहे, जा।

माँ—बेटी, मेरी भी सलाह है कि तू चली जा। ऐसे राक्षस के साथ देवी का निवाह कठिन है।

रामेश्वर—बड़ी देवी बनी है न चुड़ैल ! जा अपने बुड्ढे से मेरी शिकायतें कर। देखूँ वह मेरा क्या बिगाड़ लेता है ?

माँ—बेटा, तू ख़ुद पछतावेगा। ले, मैं भी जाती हूँ।

मूलकुँअर ने रोते-रोते अपने बच्चे को गोद में उठाया और रामेश्वर की माँ ने भी इसी बीच में अपनी गठरी बाँध ली, जिसमें मोती भी थे। फिर दोनों सास-बहू रोते-रोते एक ही वक़्त घर से बाहर निकलीं।

३

रामेश्वर चार-पाँच दिन घर से बाहर न निकले। कुछ झेंपे हुए से थे। माँ और जोरू के चले जाने से खाने-पीने की तकलीफ़ तो हो ही गई थी, साथ ही पैसे की भी तङ्गी थी। अभी तक अपनी तो कुछ कमाई थी नहीं। बाप की बचत पर गुज़र हो रही थी, और वह सब माँ के नाम था। उन्हें इसकी ख़बर न थी कि घर में जो कुछ था, वह सब जुए में उड़ गया। माँ ने जब हाथ रोका तो जोरू के पैसे की सफ़ाई हुई। एक-एक करके उसके भी सारे ज़ेवर ख़तम हो गए।

माता और पत्नी के जाने के बाद रामेश्वर ने घर की तलाशी ली तो कुल चार-पाँच सौ का माल निकला। उसे बेच कर रुपया घर में रक्खा ही था कि केदारनाथ आ पहुँचे।

केदार—कहो भाई, आज बड़े सुस्त हो ? क्या बात है ?

[illegible]—आपने जैसे कुछ सुना ही नहीं ?

[illegible]—तुम्हारी क़सम मुझे कुछ नहीं मालूम।

[illegible]—मेरी पढ़ी-लिखी जोरू ने मेरी माँ के ऐसे कान भरे कि वह मुझे छोड़ कर प्रयाग चली गई। उसके बाद वह ख़ुद भी भाग गई।

केदार—पढ़ी-लिखी औरतों से और क्या उम्मीद की जा सकती है। यह लो बद्रीप्रसाद भी आ गए। आओ भाई बद्री, आज हमारे दोस्त बड़ी मुसीबत में पड़े हैं।

बद्री—जी हाँ, मैं भी सुन कर आ रहा हूँ कि स्त्री को निकाल दिया, माँ नाराज़ होकर चली गई।

रामेश्वर—यह तो तुमने उस बुड्ढे से सुना होगा। वह ऐसा पाजी है कि उसकी बोटी-बोटी काट कर चीलों को खिला दे।

बद्री—यह तो तुम्हारी राय है। शायद उन्हें भी तुम्हारी तरफ़ से ऐसा ही ख़याल हो !

रामेश्वर—सो तो होगा ही। उसे अब क्या ख़याल है कि मैं भूखा मरता हूँ या मेरा क्या हाल है।

बद्री—वह तो कहते हैं कि दो साल के अन्दर मार-मार कर तुमने उनकी लड़की को अधमरी कर दिया है और अब चाहे जो कुछ हो, वे अपनी लड़की को तुम्हारे यहाँ न भेजेंगे।

रामेश्वर—अच्छा, उनकी यह मजाल ! देखो, ज़बरदस्ती लाता हूँ कि नहीं।

केदार—अरे भाई, यह बातें रहने भी दो। चलो आज मुद्दत बाद ज़रा जी बहलावें, दो-चार हाथ खेल लें।

बद्री—नहीं, अब यह बात छोड़ो। इसी जुए की बदौलत घर की ऐसी तबाही हुई।

रामेश्वर—मैं तो जान पर खेलूँगा, पहले इस नीच बूढ़े से तो फ़ैसला कर लूँ। कहो दोस्त, मदद दोगे न ?

केदार—दिल और जान से।

बद्री—लेकिन मेरी राय है कि कुछ और ठहर जाओ।

रामेश्वर—ठहरें तुम्हारे जैसे डरपोक।

* * *

तीन-चार दिन और बीत गए। रामेश्वर और केदारनाथ ने कुछ किराए के गुण्डे इकट्ठे किए और एक दिन शाम को गोपीनाथ के मकान पर जा पहुँचे। फाटक

(शेष मैटर ४४८ पृष्ठ पर देखिए)

[सम्पादक तथा स्वरकार—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

कजरी

(ताल कहरवा, मात्रा ४)

[शब्दकार—'रसीले']

स्थायी—छाई भादों की अँधियारी बदरा उमड़ि-घुमड़ि घहराय।
अन्तरा—दादुर मोर पपीहा बोले तनिको नाहिं सुहाय॥
विविध बयार डोलि थहरावत लेत करेजवा खाय।
कहत 'रसीले' श्याम सुन्दर की सुधि आए जिया जाय॥

स्थायी

नी	स	रे	—	रे	प	म	प	ग	म	ग	रे	स	रे	नी	—
छा	आ	ई	—	भा	आ	दों	ओं	की	ई	अँ	धि	या	आ	री	—

नी	स	रे	—	स	ग	ग	म	ग	र	स	नी	स	—	—	—
ब	द	रा	—	उ	म	ड़ि	घु	म	ड़ि	घ	ह	'रा	—	—	य

अन्तरा

स	—	स	स	रे	—	ग	ग	म	—	म	—	ग	रे	ग	—
दा	—	दु	र	मो	—	र	प	पी	—	हा	—	बो	ओ	ले	—

म	ध	ध	—	ध	—		प	ध	म	—	प	म	ग	रे	—
त	नि	को	—	ना	—		हिं	सु	हा	—	य	हा	आ	ई	—
रे	प	म	प	ग	म	ग	रे	स	रे	नी	—	नी	स	रे	—
भा	आ	दों	घों	की	ई	अँ	धि	या	आ	री	—	व	द	रा	—
स	ग	ग	म	ग	रे	स	नी	स	—	—	—				
उ	म	ड़ि	घु	म	ड़ि	घ	ह	रा	—	—	य				

(४४६ पृष्ठ का शेषांश)

खुला था। ऊपर की मञ्ज़िल पर मूलकुँअर और उसकी माँ बैठी थीं। गोपीनाथ नीचे बैठक में थे।

गली में खड़ा होकर रामेश्वर ने ललकारा—अबे ओ गोपीनाथ! पाजी, तूने मेरी जोरू को छिपा रक्खा है, उसे ज़बरदस्ती छीनने आया हूँ।

मूलकुँअर ने झाँक कर देखा और वहीं से बोली कि मेरी लाश को ले जाना, यों तो मुझको पा नहीं सकते।

गोपीनाथ—सुना, क्या कहती है? तुझ जैसे बद-माश जुआरी के साथ में अपनी लड़की को न भेजूँगा। मेरे जानते वह बेवा हो गई।

रामेश्वर—अबे, तेरी जोरू को मैं बेवा कर दूँगा। तू है किस घमण्ड में?

गोपीनाथ ने बैठक का दरवाज़ा बन्द कर दिया और आप अन्दर चले गए। रामेश्वर ने गुण्डों को ललकारा कि देखते क्या हो, तोड़ो दरवाज़ा! दरवाज़े पर लट्ठ पड़ने लगे।

गोपीनाथ ऊपर बेटी के पास जा रहे थे, मगर वह दरवाज़ा तोड़ने से इतना डरी कि ऊपर की छत पर भाग गई। गोपीनाथ भी पीछे दौड़े और बच्चे को लेकर फूल-कुँअर भी उनके साथ ही गई।

सबसे पहले मूलकुँअर ऊपर पहुँची और झाँक कर देखा तो दरवाज़ा टूट चुका था। रामेश्वर के गुण्डे भीतर घुस रहे थे। वह घबरा कर ऊपर से नीचे कूद पड़ी। बेटी पीछे गोपीनाथ भी कूदे और फिर बिना कुछ सोचे-समझे फूलकुँअर भी बच्चे को लिए कूद पड़ी। उस समय सोचने-समझने की फ़ुर्सत ही कहाँ थी?

रामेश्वर ने इतना नहीं समझा था। उसने गली में झाँक कर देखा तो सारा ख़ान्दान मरा पड़ा दिखाई दिया। फ़ौरन ही वह अपने गुण्डों को लेकर भागा।

गोपीनाथ के नौकरों ने सब लाशों को उठा कर अस्पताल पहुँचाया। डॉक्टर साहब ने कहा कि बच्चा तो मर गया है, मगर और सबका इलाज होगा। पन्द्रह-बीस दिन के इलाज के बाद और सब तो अच्छे हुए, सिर्फ़ फूलकुँअर का एक पैर काट देना पड़ा।

पाठकगण चाहेंगे कि रामेश्वर को सज़ा दी जाय, क्योंकि वह सारे घर पर ऐसी तबाही लाया। अपने बच्चे की जान ली। सास को अपाहिज बनाया। स्त्री और ससुर को मुद्दत तक खाट पर पड़ा रक्खा। मगर क़ानून की अँधी खोपड़ी है। गिरफ़्तार कौन हुआ कि जो लोग छत से कूदे थे। फिर उन पर अदालत में मामला चलाया गया।

कैसी उलटी बात है! जिसने मकान पर डाका डाला वह तो मूँछों पर ताव देता फिरे और जिसके घर डाका पड़ा वह गिरफ़्तार हो!! क्या अन्धेर है!!!

जज साहब ने मूलकुँअर और गोपीनाथ को बरी कर दिया, किन्तु फूलकुँअर को—जिसका एक अङ्ग ही जाता रहा था—जन्म-क़ैद की सज़ा मिली, क्योंकि वह बच्चे को लेकर छत से कूदी थी और बच्चा मर गया था। उस पर क़त्ल का इलज़ाम लगाया गया था। सज़ा होना ज़रूरी था।

वाह, क्या इन्साफ़ है!!

सत्याग्रह-संग्राम और महिलाएँ

वर्तमान सत्याग्रह संग्राम में भारतीय महिलाओं ने आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाया है। किसी को आशा नहीं थी कि इस देश की स्त्रियाँ, जिनमें से अधिकांश पर्दे में रहने वाली, भीरु, अज्ञान में डूबी और कुरीतियों के चङ्गुल में फँसी हुई हैं, इस प्रकार पुरुषों से भी दो क़दम आगे बढ़ कर राजनीतिक आन्दोलन में भाग ले सकती हैं। वास्तव में इस आन्दोलन ने ग्रामों और क़स्बों की नहीं तो कम से कम शहरों की स्त्रियों की तो कायापलट कर दी है। जहाँ कि स्त्रियों को देश-सेवा के मार्ग में बन्धन माना जाता था और उनके कारण कितने ही लोग राजनीतिक कामों में भाग लेने से असमर्थता प्रकट किया करते थे, वहाँ स्वयं महिलाएँ ही अधिकांश स्थानों में आन्दोलन का सञ्चालन कर रही हैं और ख़ुशी से जेल जा रही हैं, पुलिस की लाठियाँ खा रही हैं और सब प्रकार के कष्टों का वीरतापूर्वक सामना कर रही हैं। नीचे हम डेढ़-दो महीनों में होने वाली महिलाओं की गिरफ़्तारियों और उनके वीरतापूर्ण कार्यों का संक्षिप्त विवरण देते हैं। गिरफ़्तार होने वाली अथवा देश के कार्य में अन्य प्रकार के कष्ट उठाने वाली महिलाओं की सम्पूर्ण सूची बहुत लम्बी है, और उसके विवरण से नित्य दैनिक-पत्रों के कॉलम भरे रहते हैं। पर हम यहाँ पर सार-रूप में जो विवरण देते हैं वह भी इस बात को सिद्ध करने के लिए काफ़ी है कि अब भारतीय महिलाओं में नवीन शक्ति का सञ्चार हो गया है और उनके युगों के पुराने बन्धनों के टूटने का समय पास आ पहुँचा है।

बम्बई-प्रान्त

कुछ समय पूर्व बम्बई के आज़ाद-मैदान में राष्ट्रीय जलूस पर पुलिस वालों ने आक्रमण किया था। उस अवसर पर वहाँ की महिला स्वयंसेविकाओं और अन्य देवियों ने जिस साहस और वीरता का परिचय दिया वह भारतीय इतिहास में अनुपम है। उन कोमलाङ्गी बालाओं ने पुलिस की लाठियों को अपने शरीरों पर सहा और फिर भी क़दम पीछे न रक्खा। श्रीमती कृष्णकुमारी सर देसाई, जिनकी आयु केवल सोलह वर्ष की है, राष्ट्रीय झण्डा लिए हुए थीं। उनके ऊपर चार बार लाठियों से आक्रमण किया गया, पर उन्होंने झण्डे को न छोड़ा। एक सार्जेण्ट ने उनसे कहा—"झण्डा दे दो और यहाँ से हट जाओ।" वीर बाला ने उत्तर दिया—"मृत्यु से पूर्व यह असम्भव है।" वह धक्का देकर ज़मीन पर गिरा दी गईं, पर उसी समय उठ खड़ी हुईं। इसी प्रकार उनको चार बार गिराया गया और तब वह बेहोश हो गईं। जब उनकी आँखें खुलीं तो वे घायलों की डोली में थीं और झण्डा उनके हाथों में छाती से लगा हुआ था। श्री० गङ्गू बहन चोकसी पर भी कई बार मार पड़ी, पर वे जब तक बेहोश न हो गईं, अपनी जगह से एक इञ्च भी पीछे न हटीं। एक सिख महिला को, जो गर्भवती थीं, पुलिस वालों ने ज़मीन पर डाल कर लाठियों से ख़ूब मारा। वह इतनी आहत हुईं कि मुँह से बोल तक नहीं सकती थीं। श्रीमती मनोरमा देशसेविका के सिर पर लाठी पड़ी और कई जगह घाव लगे। मिस मेहरो शराफ़ नाम की एक १८ वर्ष की पारसी युवती ने एक अनजान

व्यक्ति को पुलिस द्वारा पीटे जाते देखा। उसे बचाने के लिए उन्होंने अपने हाथ आगे कर दिए। उनके हाथों और मुँह में चोट आई, पर उस व्यक्ति का सिर टूटने से बच गया।

ता० १ अगस्त को बम्बई में सरकारी आज्ञा के विरुद्ध जो जलूस निकाला गया था और जिसमें मालवीय जी और सरदार पटेल आदि नेता पकड़े गए थे, उसीके सम्बन्ध में श्रीमती हरनामकौर और अमृतकौर नाम की दो सिक्ख महिलाएँ भी गिरफ़्तार की गई थीं; सज़ा होने के बाद उन्होंने जो सन्देश दिया, उसका सारांश यह है :—

"हमको सिर्फ़ एक इसी बात का रञ्ज है कि हम पुलिस द्वारा लाठियों से नहीं पीटी गईं। उस दिन के जलूस में अकाली स्त्रियों ने भी पुरुषों के समान बड़ी संख्या में भाग लिया था। दूसरी बात जिसका हमको रञ्ज है, वह है कि जब कि हमारे माननीय नेताओं को तीन-तीन महीने की जेल दी गई, हमको केवल १५ दिन की सज़ा दी गई। भारतीय स्त्रियाँ इस भेदपूर्ण बर्ताव को पसन्द नहीं करतीं और जितना अधिक कष्ट सहना पड़े, उसके लिए तैयार हैं।"

बम्बई में डॉ० बी० पी० जानी नामक सज्जन को क्रिमिनल प्रॉसीजर कोड की दफ़ा १०८ के अनुसार १ वर्ष की सादी क़ैद की सज़ा दी गई है। इस दण्ड का हाल सुन कर उनकी पत्नी ने राजकोट (काठियावाड़) से जो पत्र भेजा है, वह इस बात का परिचायक है कि वर्तमान सत्याग्रह-आन्दोलन ने जनता के हृदय में कितना जोश भर दिया है और उसके कारण हमारे महिला-समाज में कैसा भारी परिवर्तन हो गया है। पत्र का सारांश नीचे दिया जाता है :—

"मैंने आपकी गिरफ़्तारी का समाचार सुना। भारत-माता के सच्चे सपूत की सेवा का सबसे बढ़िया सर्टिफ़िकेट जेल की सज़ा भोगना है। इससे अच्छा और अधिक सुन्दर सर्टिफ़िकेट दूसरा नहीं हो सकता। मैं नौजवान भारत-सभा की बागडोर ग्रहण करने को सर्वथा तैयार हूँ और अदम्य और सतर्क भाव से उसका सञ्चालन करूँगी, बशर्ते कि मैं इसके योग्य होऊँ। आप उन सबकी कुछ भी चिन्ता न करें। मैं आपका ही अनुकरण करने तथा आपके काम को जारी रखने को तैयार हूँ। जिस भाँति हम दोनों ने मिल कर सामाजिक बुराइयाँ अपनी जाति से दूर की थीं, उसी प्रकार मैं, बच्चों का प्रबन्ध करके, बम्बई आ जाऊँगी और वहाँ आपका काम आरम्भ कर दूँगी। आप हमारी कुछ भी चिन्ता न करें। हम सब आनन्द में हैं। आज मेरे जीवन में सबसे अधिक आनन्द का दिन है। वन्देमातरम् !!!"

बम्बई में पिकेटिङ्ग करने के क़ुसूर में श्रीयुत नरोत्तम सुन्दर जी नामक एक धनी व्यापारी को चार महीने की सख़्त क़ैद की सज़ा दी गई। जेल जाते समय उनकी बाल-पत्नी ने, जिसका विवाह हाल ही में हुआ है, उनको फूलों का हार पहिना कर विदा किया।

बम्बई में सुप्रसिद्ध देशसेविका श्रीमती पैरिन कप्तान और श्रीमती लीलावती मुन्शी को तीन-तीन मास की सज़ा मिली।

बम्बई के चेम्बूर नामक स्थान की एक ६५ वर्ष की महिला श्रीमती जमनानी को पिकेटिङ्ग के लिए जेल की सज़ा दी गई थी। जेल में बीमार हो जाने से उनको १५ दिन के लिए घर जाने की इजाज़त दी गई है!

अहमदाबाद के गर्ल्स हाई-स्कूल में, जो एक सरकारी संस्था है, १५ अगस्त को प्रातः ८॥ बजे, राष्ट्रीय झण्डा लगाने के लिए लड़कियों का एक बहुत बड़ा दल पहुँचा। ये उसी स्कूल की वर्तमान या पुरानी विद्यार्थिनियाँ थीं। परन्तु स्कूल के तमाम दरवाज़े पहले से ही बन्द कर दिए गए थे, इसलिए वे फाटक के सामने बैठ कर गीत गाने लगीं। लोगों की एक बड़ी भीड़ वहाँ जमा हो गई। लगभग १०॥ बजे बहुत सी लड़कियाँ पीछे की तरफ़ से सीढ़ी लगा कर स्कूल के हाते की दीवार पर चढ़ गईं। कई अध्यापिकाओं और चपरासियों ने उनको पीछे की तरफ़ ढकेला, पर वे भीतर कूद ही पड़ीं और दौड़ कर दरवाज़े को खोल दिया, जिससे बाहर खड़ी हुईं तमाम लड़कियाँ स्कूल में दाख़िल हो गईं। उन्होंने स्कूल पर

राष्ट्रीय झण्डा फहराया और उसके चारों तरफ खड़े होकर झण्डा-गीत गाया।

२० अगस्त को अहमदाबाद के आर०सी० हाई-स्कूल में, जोकि सरकारी है, झण्डा लगाने के लिए विभिन्न स्कूलों के लड़कों और स्वयंसेविकाओं का एक बड़ा दल पहुँचा। पुलिस ने लाठियों द्वारा जलूस को रोका। शाम को ५॥ बजे लड़कों का एक दल बलपूर्वक स्कूल के भीतर घुस गया। पुलिस उनके पीछे दौड़ी और जनता उत्तेजित हो उठी। भीड़ पर सिपाहियों ने लाठियों से हमला किया। कितनी ही स्वयंसेविकाओं ने बीच में खड़े होकर लोगों को बचाने की चेष्टा की, पर पुलिसवालों ने उनको हटा दिया। बाद में सोलह महिलाएँ गिरफ़्तार की गईं। एक वृद्धा रमणी घायल भी हुई है। जो महिलाएँ पकड़ी गई हैं उनमें सेठ अम्बालाल मिल-एजेण्ट की पुत्री श्रीमती मृदुला बहिन, और स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी की पौत्री खुरशेद बहिन भी सम्मिलित हैं।

* * *

बङ्गाल

राष्ट्रीय महिला-समिति की सेक्रेटरी श्रीमती इन्दुमती गोइनका, जोकि कलकत्ते के सुप्रसिद्ध नेता श्री० पद्मराज जैन की पुत्री हैं, प्रेस-एक्ट के खिलाफ़ बिना प्रेस के नाम वाला एक पर्चा निकालने के सम्बन्ध में गिरफ़्तार की गईं। इस पर्चे में पुलिस वालों से सरकारी नौकरी छोड़ने की अपील की गई थी। श्रीमती जी को छः महीने की सादी सज़ा दी गई।

गत २२ जून को कलकत्ते में देशबन्धुदास के श्राद्ध-दिवस के उपलक्ष में एक जलूस निकाला गया था। यह जलूस पुलिस की आज्ञा के विरुद्ध था, इसलिए पुलिस ने उसमें लोगों को शामिल होने से रोका। इस झगड़े में श्रीमती सरजू गुप्ता घोड़े के नीचे दब गईं और उनको चोट आई। पुलिस वालों ने देशबन्धु पार्क का, जिसमें सभा होने वाली थी, फाटक बन्द कर दिया, पर महिलाएँ और अन्य लोग रेलिङ्ग को फाँद कर भीतर पहुँच गए। वहाँ पर श्रीमती उर्मिला देवी के सभापतित्व में सभा हुई, जिसे सरकारी अफ़सरों ने ग़ैरक़ानूनी क़रार दिया। सभा के समाप्त होने पर फिर पुलिस के सवारों ने धावा किया, जिससे कितनी ही महिलाएँ और अन्य लोग घायल हुए। इसी दिन दक्षिण कलकत्ता में भी एक भारी जलूस निकला, जो अलीपुर जेल तक गया। यहाँ भी पुलिस वालों ने आक्रमण किया और राष्ट्रीय झण्डे को छीन लिया। झण्डे की रक्षा करते समय कई महिलाओं को चोट आई। इन जलूसों के सम्बन्ध में बाद में चार देवियाँ पकड़ी गईं, जिनके नाम ये हैं—श्रीमती उर्मिला देवी, श्रीमती विमल प्रतिभा देवी, श्रीमती मोहिनी देवी और श्रीमती ज्योतिर्मयी गाङ्गुली एम० ए०। (इन देवियों के चित्र अन्यत्र प्रकाशित किए गए हैं।) अदालत में मुक़दमा चलने पर इनको छः-छः मास की सादी सज़ा दी गई। मोहिनी देवी की अवस्था साठ वर्ष की है।

श्रीमती रमादेवी नाम की एक वृद्धा महिला बड़ा बाज़ार में विदेशी कपड़े की पिकेटिङ्ग करने के अपराध में गिरफ़्तार की गई। मैजिस्ट्रेट ने उसे छः मास की सादी सज़ा दी। इस पर उसने अदालत में कहा—"अगर मैंने कोई अपराध किया हो तो मुझे मार डालो, पर जेल मत भेजो।" इस पर मैजिस्ट्रेट ने कहा कि अगर तुम भविष्य में पिकेटिङ्ग न करने की प्रतिज्ञा करो तो तुमको छोड़ा जा सकता है। इस पर उस वीर-महिला ने उत्तर दिया कि—"यह तो न होगा। तुम चाहे जो करो, पर जब तक मेरी जान में जान है, मैं पिकेटिङ्ग करना न छोड़ूँगी।"

गत २४ जुलाई को बड़ा बाज़ार में पिकेटिङ्ग करने के लिए सात देवियों को जेल की भिन्न-भिन्न सज़ाएँ दी गईं। देवियों के नाम और सज़ा का ब्योरा इस प्रकार है:—

१—श्रीमती जोगेश्वरी देवी—४ मास की सादी क़ैद।
२—श्रीमती सरस्वती देवी—४ मास की सादी क़ैद।
३—श्रीमती भानुकुँवर देवी—४ मास की सादी क़ैद।
४—श्रीमती देवी— ४ मास की सादी क़ैद।
५—श्रीमती बचुली पटेल—४ मास की सादी क़ैद।
६—श्रीमती चमेली देवी—६ मास की सादी क़ैद।
७—श्रीमती शान्ति देवी—४ मास की सादी क़ैद।

श्रीमती चमेली देवी पर पिकेटिङ्ग के सिवा यह भी अभियोग लगाया गया था कि उन्होंने एक यूरोपियन व्यवसायी के मुँह पर थप्पड़ मारा था।

कलकत्ते के विक्टोरिया इन्स्टीट्यूट (कन्या-विद्यालय) की लेडी प्रिन्सिपल श्रीमती लतिका बसु ने शिक्षा-विभाग के अपमानजनक सरकुलर के विरोध-स्वरूप अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया। स्कूल को छोड़ते समय वहाँ की छात्राओं ने आपको अभिनन्दन-पत्र दिया और एक सोने का चरख़ा भेंट किया।

४ अगस्त को कलकत्ते में डॉ० प्रभावतीदास गुहा गिरफ़्तार कर ली गईं। उनके मकान की तलाशी ली गई और पुलिस कितने ही काग़ज़-पत्र उठा ले गई। आप 'बङ्गाल जूट वर्कर्स यूनियन' की प्रेसीडेण्ट थीं।

१२ अगस्त को महिला सत्याग्रह-कमेटी की प्रेसीडेण्ट श्रीमती इन्दुबाला देवी को चार मास की सख़्त क़ैद की सज़ा दी गई। ये सबसे पहली बङ्गाली महिला हैं, जिनको सपरिश्रम कारावास दण्ड दिया गया है।

१२ जुलाई को मिदनापुर में सम्भ्रान्त घरों की १६ महिलाएँ कॉलेज की पिकेटिङ्ग करने को गईं। इसकी ख़बर पाते ही एस० डी० ओ० और पुलिस सब-इन्सपेक्टर मौक़े पर पहुँचे और उन्होंने उन सबको गिरफ़्तार कर लिया। उनको मोटर लॉरी में बैठने को कहा गया। कुछ महिलाओं ने तब तक मोटर में बैठने से इन्कार किया जब तक कि यह न मालूम हो जाय कि उनको कहाँ ले जाया जायगा। पर उनको ज़बर्दस्ती गाड़ी में बैठाया गया और किसी अज्ञात स्थान में भेज दिया। इस ख़बर के फैलते ही शहर में हलचल मच गई और कॉलेज के लड़के भी विरोध-प्रदर्शन के लिए बाहर निकल आए। कुछ देर बाद पता चला कि पुलिस वाले उनको शहर से आठ मील दूर जङ्गल में छोड़ आए हैं। कुछ लोग उनको वापस लाने के लिए चेष्टा करने लगे, पर शहर का कोई मोटर लॉरी वाला इसके लिए राज़ी न हुआ, क्योंकि ऐसा करने पर पुलिस ने उनका लाइसेन्स छीन लेने की धमकी दी थी। अतः दो घोड़ा-गाड़ियाँ भेज कर उनको शहर में लाया गया। १६ तारीख़ की रात को इन महिलाओं की अध्यक्ष श्रीमती चारुशीला देवी गिरफ़्तार कर ली गईं और उनको दो महीने की सादी सज़ा दी गई।

ढाका के ईडन हाई-स्कूल और कॉलेज की छात्राओं ने स्वयंसेवकों पर पुलिस के अत्याचारों के विरोध में दो दिन की हड़ताल की थी। लेडी-प्रिन्सिपल ने छात्राओं को स्कूल से निकालने, छात्रवृत्ति ज़ब्त कर लेने आदि की धमकी दी। इतना ही नहीं, जिन लड़कियों के संरक्षक सरकारी नौकरी करते हैं, उनको नौकरी से भी छुड़ा देने की धमकी दी गई। पर इन धमकियों का कोई असर न पड़ा और बहुत कम लड़कियाँ हाज़िर हुईं। अब लेडी प्रिन्सिपल ने बीस छात्राओं से कहा है कि वे क्षमा-प्रार्थना करें और भविष्य में राजनीतिक कार्यों में भाग न लेने की प्रतिज्ञा करें। अन्यथा उनको निकाल दिया जायगा। लड़कियों ने इस अपमानजनक आज्ञा को मानने से क़तई इन्कार कर दिया।

बोगरा में छः महिलाएँ पिकेटिङ्ग के अभियोग में गिरफ़्तार की गई हैं।

* * *

संयुक्त-प्रान्त

श्रीमती पार्वती देवी उन इनी-गिनी महिलाओं में से एक हैं, जो भारतीय राजनीतिक आन्दोलन में लगातार कितने ही वर्षों से काम कर रही हैं और जिनकी सेवाएँ पुरुष आन्दोलनकारियों से किसी भाँति कम नहीं हैं। असहयोग के ज़माने में आपको दो वर्ष की कड़ी क़ैद की सज़ा दी गई थी। इस बार भी आप आन्दोलन के आरम्भ से ही आगरे में काम कर रही थीं। हाल में आप पर राजविद्रोह का मुक़दमा चलाया गया और एक वर्ष के लिए एक हज़ार रुपए का मुचलका और पाँच-पाँच सौ की दो ज़मानतें माँगी गईं। उत्तर में देवी जी ने कहा—"हिन्दुस्तान की सभ्यता में औरतें अपनी नेकचलनी की ज़मानतें नहीं दिया करतीं।" इस पर आपको एक वर्ष की सादी क़ैद की सज़ा दे दी गई। आपने जेल जाते

हुए कहा कि—"जब तक देश आज़ाद न हो जाय, नौकरशाही को सुख की नींद न सोने दिया जाय।"

आगरे के सदर बाज़ार में शराब की दुकानों पर महिलाओं ने पिकेटिङ्ग करना आरम्भ किया है। इसके कारण शराब वालों की बड़ी आर्थिक हानि हो रही है और वे लोग महिलाओं के साथ असभ्य व्यवहार करने लगे हैं। पर स्त्रियाँ साहसपूर्वक अपने कर्तव्य पर दृढ़ हैं। कपड़े की पिकेटिङ्ग में भी इन वीर महिलाओं ने धक्के खाए, असभ्य गालियाँ सहीं, और बुरी-भली बातें सुनीं। लोगों ने उन पर थूका और कुल्ले तक कर दिए। उन्होंने मन्दिरों और जमुना-स्नान को जाने वाली औरतों की भी पिकेटिङ्ग की और सैकड़ों औरतों से विदेशी कपड़ा न पहिनने की प्रतिज्ञा कराई।

६ अगस्त को फ़ीरोज़ाबाद (आगरा) में श्री० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल की धर्मपत्नी अन्य बारह महिलाओं के साथ, जो सब बड़े इज़्ज़तदार ख़ान्दानों की थीं, गिरफ़्तार कर ली गईं। ये सब एक मन्दिर पर इसलिए पिकेटिङ्ग कर रही थीं कि ठाकुर जी को खद्दर के वस्त्र पहनाए जायँ, मन्दिर में बिना खद्दर पहिने कोई आदमी न जाय और मन्दिर के ऊपर राष्ट्रीय झण्डा लगाया जाय।

किरावली (आगरा में) श्रीमती विद्यावती राठोर पिकेटिङ्ग के क़सूर में पकड़ी गईं। उनको छः महीने की सादी क़ैद की सज़ा दी गई।

मेरठ में श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री को छः महीने की सज़ा दी गई। आप आर्य-समाज के प्रसिद्ध नेता प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री, एम० ए० की विदुषी धर्मपत्नी हैं। आपके अथक प्रयत्न से मेरठ की स्त्रियों में अभूतपूर्व जागृति हो गई थी और राष्ट्रीय आन्दोलन को बहुत सहायता मिली थी।

* * *

पञ्जाब

पञ्जाब बार-कौन्सिल की आठवीं डिक्टेटर श्रीमती एल० आर० ज़ुतशी आधी रात को अपने मकान में गिरफ़्तार कर ली गईं। आप राजद्रोही भाषण के अभियोग में पकड़ी गई हैं। मैजिस्ट्रेट ने दस हज़ार की ज़मानत देकर आपसे छूट जाने को कहा, पर आपने जेल में रहना ही पसन्द किया। जेल में आपको फ़र्श पर सुलाया गया और मामूली क़ैदियों के समान व्यवहार किया गया। दूसरे दिन उनके सम्बन्धियों के शिकायत करने पर उनको 'ए' क्लास में रखने की आज्ञा दी गई।

लायलपुर में श्रीमती ज्ञानदेवी और श्रीमती धनदेवी पिकेटिङ्ग के अभियोग में गिरफ़्तार की गईं। ज्ञानदेवी जी की गोद में तीन वर्ष का बच्चा भी है। मैजिस्ट्रेट ने उनको १-१ मास की सख़्त क़ैद की सज़ा दी। उनको 'सी' क्लास में रक्खा गया है। अदालत में ज्ञानदेवी ने जेल के प्रबन्ध की शिकायत करते हुए कहा कि कोठरियों में कीड़े हैं जो उनको और बच्चे को दुःख देते हैं। जब उन्होंने यह बात जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट से कही तो उसने ताने के साथ जवाब दिया कि "वह बलिदान है।"

६ अगस्त को अमृतसर में पुलिस ने जलियानवाला बाग़ पर हमला किया, और सत्याग्रही स्वयंसेवकों की छावनी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। २३ व्यक्ति गिरफ़्तार किए गए, जिनमें काकोरी केस के शहीद श्री० रामप्रसाद बिस्मिल की बहिन श्रीमती विद्यावती भी हैं।

३० जुलाई को अमृतसर के स्वयंसेवक-दल की कप्तान श्रीमती आत्मादेवी जी सोते हुए पकड़ ली गईं।

* * *

मद्रास-प्रान्त

एलोर (मद्रास) में श्रीमती दाम राजू लक्ष्म्मा, दासारी लक्ष्मी वायम्मा, दासारी कृष्णा वेनम्मा और मुन्दीम्बी वैङ्कटम्मा नाम की चार भद्र कुल की महिलाएँ २१ जुलाई को १४४ दफ़ा तोड़ने के क़सूर में पकड़ी गईं। मैजिस्ट्रेट ने उनको तीन से छः महीने तक की सज़ाएँ दीं। श्रीमती वैङ्कटम्मा के पति और दो लड़के पहले से ही जेल में हैं और अब वह तीसरे लड़के के साथ, जिसकी उम्र दो वर्ष की है, जेल में गई हैं।

काञ्जीवरम (मद्रास) में श्रीमती वाराहालू अम्मल २२ जुलाई को सार्वजनिक सभा में नमक-क़ानून तोड़ने के अपराध में गिरफ़्तार की गईं। अदालत में उन्होंने कहा कि मैं अगर छोड़ी जाऊँगी तो फिर इस क़ानून को तोड़ूँगी। मैजिस्ट्रेट ने उनको ६ महीने की सादी क़ैद की सज़ा दी।

कोयम्बटूर में पुलिस वालों को भड़काने के क़सूर में श्रीमती मीनाक्षी अम्मल को ६ महीने की सादी क़ैद की सज़ा दी गई। नीलोर में भी तीन स्वयंसेविकाओं को छः-छः मास की सज़ा दी गई।

कोचीन रियासत के त्रिचूर नामक स्थान में श्रीमती कार्तिकायिनी अम्मल बी० ए० ने, जो वहाँ के जुबिली गर्ल्स हाई-स्कूल में अध्यापिका हैं, लड़कियों की एक सभा में व्याख्यान देते हुए खादी पहिनने और स्वदेशी चीज़ें इस्तेमाल करने का अनुरोध किया था। इस पर रियासत के शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने उनको एल० टी० की परीक्षा पास करने से रोक दिया है और ख़ुफ़िया पुलिस को उन पर निगरानी रखने की आज्ञा दी है।

* * *

अन्य प्रान्त

१२ अगस्त की रात को देहली में एक शराब की दुकान पर पिकेटिङ्ग करते हुए ४४८ स्वयंसेवक और १३ स्वयंसेविकाएँ गिरफ़्तार की गईं। स्वयंसेविकाओं के नाम उनकी उम्र सहित नीचे दिए जाते हैं:—श्रीमती कोहली २६ वर्ष; श्रीमती चन्द्रावती २७ वर्ष; श्रीमती पार्वती ३८ वर्ष; श्रीमती चमेली २० वर्ष; श्रीमती चन्दोदेवी ४० वर्ष; श्रीमती अनारदेवी ४० वर्ष; श्रीमती वसन्तीदेवी ४५ वर्ष; श्रीमती हीरादेवी ४५ वर्ष; श्रीमती जयदेवी ५० वर्ष; श्रीमती चम्पादेवी ५० वर्ष; श्रीमती ननकीदेवी ६० वर्ष; श्रीमती धनदेवी ७० वर्ष; श्रीमती मानकी देवी ७० वर्ष।

मुक़द्दमा आरम्भ होने पर श्रीमती कोहली और श्रीमती पार्वती के सिवाय ११ महिलाएँ छोड़ दी गईं।

२१ अगस्त को दिल्ली में ६ स्वयंसेविकाएँ शराब की पिकेटिङ्ग करने के क़सूर में गिरफ़्तार की गईं। इनमें स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी की पुत्री श्रीमती विद्यावती भी सम्मिलित हैं। ये नहर सादतख़ाँ नाम के स्थान में एक शराब के गोदाम की पिकेटिङ्ग करती थीं।

१५ अगस्त को एक बड़ा राष्ट्रीय जलूस अजमेर के नॉर्मल स्कूल में झण्डा लगाने को पहुँचा। पुलिस ने उसे रोकने को लाठियाँ चलाईं और २५० लोगों को गिरफ़्तार किया, जिनमें २० महिलाएँ भी शामिल थीं।

अजमेर में श्रीमती कृष्णादेवी को ३ मास की सज़ा दी गई है।

आसाम के शिक्षा-विभाग ने स्कूलों की छात्राओं से राजनीतिक आन्दोलन में भाग न लेने की प्रतिज्ञा करने को कहा था। पर ३०० में से केवल ५० छात्राएँ ऐसी प्रतिज्ञा करने को राज़ी हुईं। अन्त में अधिकारियों ने अपना हुक्म वापस ले लिया।

पटने के देशविख्यात बैरिस्टर श्री० हसन इमाम की पत्नी और पुत्री तथा अन्य दो महिलाओं पर पुलिस एक्ट की दफ़ा ३२ और ताज़ीरात हिन्द की दफ़ा १४३ के अनुसार मुक़दमा चलाया गया था। श्रीमती हसन इमाम पर २००) और अन्यों पर सौ-सौ रु० जुर्माना हुआ।

* * *

लन्दन में सत्याग्रह से सहानुभूति

भारतीय सत्याग्रह-संग्राम के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए २५ जून को लन्दन के फ्रेण्ड्स हाउस, यूस्टन रोड में भारतीय स्त्रियों की एक सार्वजनिक सभा हुई। उसमें सम्मिलित होने वाली महिलाओं में से कुछ के नाम यहाँ दिए जाते हैं:—श्रीमती हैदरी अहमद, श्रीमती सविता बी० पट्टनी, श्रीमती बाचूबाई कोतवाल, श्रीमती के० एम० पारघी, श्रीमती पेरीन के० मेहता, श्रीमती मुकर्जी, श्रीमती हेना सेन, श्रीमती सीता जामभा, श्रीमती यूरलकर, श्रीमती लीलावती उदानी, श्रीमती विनोदिनी याज्ञिक, और श्रीमती इन्दुमती मुन्सिफ़।

इस सभा में निम्नलिखित आशय के प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास किए गए :—

(१) इस सभा में उपस्थित होने वाली लन्दन की भारतीय स्त्रियाँ अपनी हिन्दुस्थान में रहने वाली बहिनों को बधाई देती हैं कि उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में ऐसा प्रशंसनीय भाग लिया है और इस काम में अपने प्राणों तक की परवाह नहीं की है। साथ ही यह सभा पुलिस वालों के उस व्यवहार की निन्दा करती है जो उन्होंने शान्त सत्याग्रही महिलाओं के प्रति किया है।

(२) यह सभा महात्मा गाँधी और अन्य समस्त राजनीतिक कार्यकर्ताओं की गिरफ़्तारी की और गवर्नमेण्ट की निर्दय दमन नीति की निन्दा करती है और समस्त राजनीतिक क़ैदियों और मेरठ-केस के क़ैदियों को बिना शर्त के छोड़ देने के लिए गवर्नमेण्ट से अनुरोध करती है।

(३) यह सभा इङ्गलैण्ड की गवर्नमेण्ट को बतला देना चाहती है कि राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स में भारत के भविष्य के सम्बन्ध जो कुछ निर्णय किया जायगा, वह तब तक कदापि स्वीकार न किया जायगा जब तक महात्मा गाँधी, जो कि भारतवासियों के सच्चे नेता हैं, उसमें सम्मिलित न होंगे।

(४) यह सभा साम्प्रदायिक और अन्य राजनीतिक दलों के नेताओं को चेतावनी देती है कि वर्तमान राष्ट्रीय भावना के विरुद्ध उनका राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स में शामिल होना मातृभूमि के प्रति विश्वासघात करना होगा।

* * *

मन्त्री जी की सुकीर्ति

आगरा में कोई विधवाश्रम है, जिसका मन्त्री केदारनाथ नाम का एक व्यक्ति है। थोड़े दिन पहले केदारनाथ दो साथियों की मदद से, जिनके नाम दयाशङ्कर और मूलचन्द हैं, लक्ष्मी नाम की एक नवयुवती हिन्दू-विधवा को ज़बर्दस्ती पकड़ लाया। यह स्त्री गङ्गाराम नामक व्यक्ति के साथ रहती थी। एक दिन शाम को उपरोक्त तीनों अभियुक्त एक इक्के में गङ्गाराम के मकान पर पहुँचे और लक्ष्मी को बलपूर्वक इक्के पर बिठा कर भाग गए। इसके पश्चात् धमका कर उससे विधवाश्रम के प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तख़त कराए गए कि मैं अपनी राज़ी-ख़ुशी से आश्रम में दाख़िल होती हूँ। वे लोग उसकी शादी देहली के किसी पोखनदास नामक पञ्जाबी से कराना चाहते थे और इसके लिए उस अभागी औरत को छः दिन तक हण्टरों और तमाचों से मार-मार कर राज़ी किया गया। पर जब पोखनदास को पता लगा कि यह स्त्री कुँवारी नहीं, वरन् विवाहिता है तो उसने उसे वापस लौटा दिया। आगरे आकर उसने तीनों अभियुक्तों पर मुक़दमा दायर किया जिसके फल-स्वरूप केदारनाथ और दयाशङ्कर को चार-चार वर्ष और मूलचन्द को कम उम्र का होने के कारण एक वर्ष की सख़्त क़ैद की सज़ा दी गई।

लेखकों से प्रार्थना

लेख, कविता, कहानी आदि भेजने वाले सज्जनों से सविनय प्रार्थना है कि यदि वे अपने पत्र का उत्तर चाहते हों तो जवाबी पोस्ट-कार्ड या टिकिट भेजें। यदि वे लेख को लौटाना चाहें तो भी टिकिट भेजना आवश्यक है। एक महीने के भीतर ही लेख को लौटाने की सूचना हमें मिल जानी चाहिए। इन नियमों के विरुद्ध हम किसी पत्र का उत्तर देने या लेख लौटाने में असमर्थ हैं।

—सम्पादक

* * *

मातृ-मन्दिर-कोष

मातृ-मन्दिर (इलाहाबाद) के मन्त्री महोदय सूचित करते हैं कि गत जुलाई मास के अङ्क में प्रकाशित सूचना के अनुसार मातृ-मन्दिर कोष में १११०॥)८ पाई प्राप्त हुए थे। विगत जुलाई तथा अगस्त मास में १२५।) और मिले हैं, जिसकी सूची इस प्रकार है :—

(१) एक गुप्त दान ... ... २)

(२) श्रीमती कुँवर प्रताप बहादुर, मार्फ़त गोवर्धनलाल साहब, असिस्टेण्ट मैनेजर—के० ओ० ई०, बहराइच, ... २)

(३) श्रीयुत श्याम जी विद्यार्थी, डाकख़ाना बिन्दकी, (फ़तेहपुर) ... ... २॥।=)

(४) श्रीयुत विद्याधर ... ... ५)

(५) श्रीयुत जगदीशनरायन सिंह, ग्राम और डाकख़ाना लखौरा, (चम्पारन) ... १)

(६) बा० बृजलाल जी कनोडिया, पोस्ट रुदौली, बाराबङ्की ... ... २)

(७) ला० ठाकुरदास ऑनरेरी असिस्टेण्ट कलेक्टर, पोस्ट धवनी, ज़िला बाँसबरेली... ५०)

(८) श्रीयुत हरीनरायन खोसला ... ३)

(९) श्रीमती सन्तराम और श्रीमती सोमदत्त, मार्फ़त मेसर्स देवीदयाल सन्तराम, रईस और ज़मींदार, पोस्ट कोट नाका, ज़िला गुजरानवाला ... ... १०)

(१०) श्रीयुत शङ्करलाल, बेङ्कर जॉन्स्टनगञ्ज, इलाहाबाद,... ... ... २)

(११) श्रीयुत जगतनरायन मेहरोत्रा, रोज़ विला, नैनीताल ... ... १४)

(१२) श्रीयुत रामसिंह मार्फ़त बाबू धूमबहादुर, वकील, चौबे मुहल्ला, बदायूँ । ... २)

(१३) श्रीयुत गुलज़ारीलाल जी इङ्गलिश मास्टर, मिडिल स्कूल बिन्दकी, फ़तेहपुर । ... ५)

(१४) मिस्टर जी० पण्ड्या मार्फ़त एच० एम० कस्टम्स, पोस्ट बॉक्स नं० ६१—मोम्बासा, ब्रिटिश ईस्ट अफ़्रीका... ... ... ३।=)

(१५) श्रीयुत रामस्वरूप माईवाल, मार्फ़त बा० सियाप्रसाद, पोस्ट सतना, जी० आई० पी० रेलवे । ... ... १०)

(१६) डॉक्टर अनन्तराम ओहरी एम० बी० बी०एस० असिस्टेण्ट सर्जन खैरपुर, टाम्बेवाली (बहावलपुर स्टेट) (फल वितरण करने के लिए) ... ६)

(१७) श्रीमती सावित्री देवी, मार्फ़त श्रीयुत एस० आर० वर्मा, एम० ए०, गली पुराना डाक बँगला, ज़िला लुधियाना... ... ५)

१२५।)

इस प्रकार अब तक १२३२५॥)८ पाई नक़द हमें प्राप्त हुए हैं। देशवासियों का कर्त्तव्य है कि वे यथाशक्ति सहायता भेज कर इस पुनीत कार्य में हमारा हाथ बटावें।

—अ० मन्त्री, मातृ-मन्दिर

* * *

लड़का गोद देना है

कलकत्ता निवासी एक देशवाल-अग्रवाल गर्ग गोत्र की स्त्री ग़रीबी के कारण अपने एक वर्ष के लड़के को किसी धनवान व्यक्ति को गोद देना चाहती है। वह थोड़े समय पहले बहुत धनवान थी, पर उसका पति फाटके में अपना सर्वस्व हार गया है। जो सज्जन इच्छुक हों, 'नं० १०१ मार्फ़त सम्पादक 'चाँद' इलाहाबाद, के पते पर पत्र-व्यवहार करें।

* * *

गर्भवती बहिन को सूचना

हमको एक बहिन का पत्र मिला है, जो अविवाहिता अवस्था में किसी प्रकार गर्भवती हो गई है और इस सङ्कट से छूटने में सहायता चाहती है। वह जब चाहे ख़ुशी से प्रयाग आकर 'चाँद' कार्यालय या मातृमन्दिर, रसूलाबाद, इलाहाबाद में उपस्थित हो सकती है। उसे यहाँ किसी प्रकार का कष्ट नहीं हो सकता और सब प्रकार से उसकी सहायता की जायगी। और भी जो बहिनें इस प्रकार के सङ्कट में फँसी हों, हमारी सहायता ग्रहण कर सकती हैं।

—प्रिन्सिपल मातृ-मन्दिर
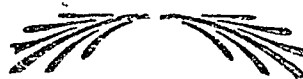
स्लोन के मलहम के द्वारा
छाती की सर्दी से
छुटकारा पाइए !
छाती में सर्दी लग जाने पर जब आप दर्द का अनुभव करें, उसी समय स्लोन के मलहम का व्यवहार कीजिए ।
स्लोन का मलहम शरीर के तकलीफ़देह हिस्से में ख़ून का प्रवाह जारी करता है और तकलीफ़ को फ़ौरन दूर कर देता है । स्लोन के मलहम का व्यवहार जारी रखिए और शीघ्र ही आपकी सर्दी बिलकुल दूर हो जायगी ।
Sloan's Liniment
kills pain!
SLOAN'S LINIMENT

दवाओं का ख़र्च बन्द करो

र बैठे रोगों से छूटने का उपाय

हमारी भिन्न-भिन्न रोगों पर सरल भाषा में निम्न-लिखित पुस्तकों को मँगा कर, साधारण पढ़े-लिखे मनुष्य भी इनकी सहायता से प्रत्येक रोग का पूरा इलाज बड़ी उत्तमता से कर सकते हैं।

वैद्यों एवं प्रत्येक गृहस्थी में इन पुस्तकों का रहना परमावश्यक है, क्योंकि ये समय पर सैकड़ों के ख़र्च को नहीं, बल्कि लाखों रुपए की जान की रक्षा करेंगी। अतएव आज ही इन पुस्तकों का ऑर्डर भेज कर मँगाइए, स्वयं पढ़िए और अपने इष्ट-मित्रों को पढ़ने की सलाह दीजिए।

राजयक्ष्मा—तपेदिक मिटाने के उपाय मू० =)
दमा—श्वास, खाँसी भगाने के उपाय मू० ।)
अर्श—बवासीर मेटने के उपाय ॥)
प्लीहा—ताप, तिल्ली भगाने के उपाय ।)
स्त्रीरोग—समस्त स्त्रीरोगों की चिकित्सा मू० ॥)
व्रणोपचार—सब प्रकार के घावों का इलाज ।=)
अश्मरी—पथरी का इलाज ।)
अण्डवृद्धि—फोता बढ़ने के उपाय ।)
वाजीकरण—नपुंसकता नष्ट करने के उपाय ॥)
ग्रहणी—संग्रहणी का इलाज ॥)
सुज़ाक—सुज़ाक की चिकित्सा ॥)
उपदंश—आतशक का इलाज ॥)
सिद्धौषधि-प्रकाश—समस्त शरीर के रोगों का इलाज इसमें है, मू० १॥)
सिद्ध-प्रयोग—१६८ प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वैद्यों के अनुभूत नुस्खे इसमें हैं। मू० दो भागों का १॥)
धातु-शुद्धि—प्रत्येक धातु का शोधन, मारण और उसका गुण व अनुपान का विस्तृत वर्णन है १)

सचाई के लिए गारण्टी

यदि हमारी कोई भी पुस्तक किसी कारण से नापसन्द हो तो वापस करके मूल्य मँगा लें। मँगाने का पता—

श्रीहरिहर प्रेस
बरालोकपुर, इटावा, (यू० पी०)

कठिन रोगों से पीछा छुड़ाने को

आयुर्वेदीय उच्चकोटि की

मासिक पत्रिका

अनुभूत योगमाला

का अवलोकन कीजिए

आज ८ वर्ष से घर-घर में जाकर रोगियों को निरोगी, पढ़े-लिखे लोगों को वैद्य बनाने के लिए प्रसिद्ध हो चुकी है। जो एक बार भी देख लेता है, वह इसकी उपयोगिता समझ कर ग्राहक बने बिना नहीं रहता—

आप भी नमूना मुफ़्त मँगा देखिए

मिलने का पता :—
मैनेजर,
अनुभूत योगमाला ऑफ़िस
बरालोकपुर, इटावा, (यू० पी०)

यदि आप—

आयुर्वेदीय, शुद्ध, सस्ती औषधियों का चमत्कार देखना चाहते हैं—

तो—

जगत्प्रसिद्ध—

श्रीहरिहर औषधालय

का नाम याद रखिए।

यह औषधालय आयुर्वेदीय औषधियें बड़े परिमाण में बना कर सस्ते मूल्य में देने के लिए जगत्-प्रसिद्ध है।

स्वर्णपदक व सार्टीफ़िकट

इसकी दवाइयों की उत्तमता पर मुग्ध होकर नि० भा० वैद्य-सम्मेलन से प्राप्त हो चुके हैं और व्यवस्थापक के विद्वत्तापूर्ण निबन्धादि लेख पर अव्वल दर्जे का सार्टीफ़िकट मिल चुका है।

स्वर्ण बसन्त मालती ८) तोला
चन्द्रोदय स्वर्ण-घटित ४) तोला
च्यवनप्राश अवलेह ३) सेर
लाक्षादि तेल ८) सेर
नारायण तैल १२) सेर
चन्द्रप्रभा १६) सेर
महायोगराज गूगल ४०) सेर
स्वर्ण वङ्ग ६०) सेर
वङ्ग भस्म श्वेत १६) सेर
नाग भस्म पीत १६) सेर
प्रवाल भस्म श्वेत ५ तोला १)
मण्डूर भस्म ५ तोला १)
लोह भस्म ५ तोला १)
चाँदी-भस्म १ तोला २)
स्वर्ण-भस्म १ तोला ३०)

विश्वास के लिए

हम सभी रसादिक आपके सामने बना कर दे सकते हैं।

मँगाने का पता :—

श्रीहरिहर औषधालय
बरालोकपुर, इटावा (यू० पी०)

यह बलकारक औषध

कमजोरी से पैदा हुई सुस्ती, नसों की थकावट, नसों की शिथिलता, दाम्पत्य धर्म-सम्बन्धी खराबी में बड़ी काम आती है और ऐसी हालतों में, जब कि अधिक कार्य या अन्य किसी बात की अधिकता से नियमों में कोई खराबी आ गई हो। यह बीमारी और कमजोरी की अवस्था में अपना आश्चर्यकारक प्रभाव दिखलाती है। साथ ही नसों और दिमाग़ को भी ताक़त पहुँचाती है।

बङ्गाल केमिकल ऐण्ड

फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स, लिमिटेड, कलकत्ता

शीघ्र आवश्यकता है

मारवाड़ी कन्या विद्यालय के लिए एक प्रधानाध्यापिका की, जो अङ्गरेज़ी-हिन्दी के अतिरिक्त बालिकोपयोगी अन्य विषयों का अच्छा ज्ञान रखती हो तथा स्कूल-प्रबन्ध अच्छी तरह कर सकती हो, तथा एक ऐसी अध्यापिका की, जो हाथ की कारीगरी में निपुण हो। वेतन योग्यतानुसार। अपने पिछले अनुभव, योग्यता तथा प्रमाण-पत्रों सहित निम्न-लिखित पते से पत्र-व्यवहार करें।

मन्त्री—

श्री० मारवाड़ी कन्या विद्यालय

C/o मोतीलाल गोवर्द्धनदास, कराची

बवासीर की अक्सीर दवा

अगर आप दवा करके निराश हो गए हों तो एक बार इस पेटेण्ट दवा को भी आज़मावें। ख़ूनी या बादी, नया चाहे पुराना १५ दिन में जड़ से आराम। २० दिन में शरीर बलवान न हो तो चौगुना दाम वापस। मू० १५ दिन का ३) रु०। २० दिन का ४) रु०। अपना पता पोस्ट तथा रेलवे का साफ़-साफ़ लिखें।

आयुर्वेदाचार्य पं० कीर्त्तिनाथ शुक्ल,

नं० ११, घोई, दरभङ्गा

श्वेत-कुष्ठ की अद्भुत जड़ी

प्रिय पाठकगण! औरों की भाँति मैं प्रशंसा करना नहीं चाहता। यदि इस जड़ी के तीन ही दिन के लेप से सुफ़ेदी जड़ से आराम न हो, तो दूना दाम वापस दूँगा। जो चाहें -) का टिकट भेज कर प्रतिज्ञा-पत्र लिखा लें! मू० ३) रु०।

पता—वैद्यराज पं० महावीर पाठक

नं० १२, दरभङ्गा

[लेखक—पं० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

हिन्दी-संसार में कौशिक जी की कहानियों का स्थान अन्यतम है, आपकी कहानियाँ प्रायः सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में केवल स्थान ही नहीं पातीं, बल्कि उनका आदर किया जाता है। इस पुस्तक में कौशिक जी की चुनी हुई १६ मौलिक सामाजिक कहानियों का सुन्दर संग्रह है। छपाई अङ्गरेज़ी ढङ्ग की बहुत ही सुन्दर हुई है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रु० रक्खा गया है!! ऊपर सुन्दर प्रोटेक्टिङ्ग-कवर भी दिया गया है! हर हालत में स्थायी तथा 'चाँद' के ग्राहकों को पुस्तक पौनी क़ीमत में ही दी जायगी!! केवल २,००० प्रतियाँ छपी हैं। शीघ्र ही मँगा लीजिए, अन्यथा हाथ मल कर रह जाना पड़ेगा; अपूर्व चीज़ है!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

बेफ़ायदा साबित करने पर

५००) इनाम

इस महात्मा-प्रदत्त विपनाशक जड़ी को लगाने, छूने और सूँघने की जरूरत नहीं, सिर्फ दिखाने ही से भयानक से भयानक बिच्छू, मधुमक्खी, हड्डा का विप तुरन्त आराम हो जाता है। लाखों को आराम कीजिए, सैकड़ों वर्ष पड़ी रहे, पर गुण में ज़रा भी कमी नहीं आती, मूल्य १)

पता—अखिलकिशोरराम

नं० ४८, कतरीसराय, गया

आवश्यकता है

पञ्जाब (अमृतसर) निवासी, ३४ वर्ष के पञ्जाबी जाट सिक्ख के लिए, एक विधवा की। विधवा खत्री या पञ्जाबी अरोड़ा जाति—यदि बङ्गाली हो तो केवल कायस्थ जाति की, पढ़ी-लिखी, २२ वर्ष तक की आयु की होनी चाहिए और उसके कोई लड़का न हो; वर वर्तमान समय, आसाम में ठेकेदार है। विशेष विवरण इस पते से मँगाइए।

N. H., C/o The CHAND
28, Edmonstone Road,
Chandralok, Allahabad

कविता की अनमोल पुस्तक

[रचयिता—प्रोफ़ेसर रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

यह वह पद्यमय पुस्तक है, जिसे पढ़ कर एक बार उन लोगों में भी शक्ति का सञ्चार हो जाता है, जो जीवन से विरक्त हो चुके हैं। वीर-प्रसविनी चित्तौड़ की माताओं का यदि आप स्वार्थ-त्याग, देश-भक्ति तथा कर्म-निष्ठा का ज्वलन्त उदाहरण देखना चाहते हैं, यदि आप चाहते हैं कि भारत का मातृ-मण्डल भी इन वीर क्षत्राणियों के आदर्श से शिक्षा ग्रहण कर अपने निरर्थक जीवन को भी उसी साँचे में ढाले, यदि आप चाहते हैं कि कायर बालकों के स्थान पर एक बार फिर वैसी ही आत्माओं की सृष्टि हो, जिनकी हुङ्कार से एक बार मृत्यु भी दहल जाया करती थी, तो इस वीर-रसपूर्ण ऐतिहासिक पुस्तक को स्वयं पढ़िए तथा घर की स्त्रियों और बच्चों को पढ़ाइए—सुन्दर छपी हुई पुस्तक का मूल्य केवल १॥) रु०; स्थायी ग्राहकों से १=) मात्र !

कविता में ऐसी सुन्दर वीर-रस में पगी हुई पुस्तक हिन्दी-संसार में अब तक प्रकाशित नहीं हुई थी। "कुमार" महोदय की कविताओं का जिन्होंने 'चाँद' द्वारा रसास्वादन किया, वे इन कविताओं की श्रेष्ठता का अभी से अनुभव कर सकते हैं।

निर्वासिता

[ले० "कैवर्त-कौमुदी"-सम्पादक श्री० अनूपलाल जी मण्डल, साहित्य-रत्न]

भूमिका-लेखक—

सुप्रसिद्ध आलोचक श्री० अवध उपाध्याय जी

समाज की दहकती हुई चिता उसमें स्त्रियों का तिल-तिल कर जलना; उनका नैराश्यपूर्ण जीवन और नाना प्रकार की व्यथाओं का सजीव चित्र । कैसा ही पत्थर-हृदय मनुष्य क्यों न हो, एक बार अवश्य ही द्रवित हो उठेगा। पढ़ते ही आँखों से आँसुओं की धारा बह निकलेगी। ऐसा मालूम होगा मानो आप नाटक देख रहे हैं। पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल व मुहावरेदार है, बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी इससे लाभ उठा सकते हैं। शीघ्रता कीजिए, केवल थोड़ी सी कॉपियाँ और शेष रही हैं। मूल्य केवल २)

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

CERTIFIED CIRCULATION EXCEEDS 15,000 COPIES

तीन आवश्यक सूचनाएँ

१—सचित्र राष्ट्रीय साप्ताहिक "भविष्य" प्रकाशित हो गया है। नमूने की एक कॉपी मँगा कर देख लीजिए, इतने उच्च कोटि का पत्र आज तक भारत में कभी भी प्रकाशित नहीं हुआ था मित्रों को 'भविष्य' में प्रकाशित अलभ्य सामग्री और उसके प्राप्त करने में जो असाधारण व्यय हुआ है, उसे दृष्टि की ओट न करना चाहिए। हिन्दी के सभी प्रसिद्ध लेखकों तथा कवियों का इसमें पूर्ण सहयोग है, अतएव अनेक मासिक पत्रिकाओं से भी इसका श्रेष्ठ सिद्ध होना अनिवार्य है ! 'भविष्य' के लिए 'फ़्री प्रेस' आदि कई समाचार देने वाली एजन्सियों से ख़ास प्रबन्ध किया गया है। सुन्दर विचारपूर्ण लेखों, कविताओं आदि के अतिरिक्त पूरे सप्ताह की डायरी आप इस अकेले पत्र में पा सकेंगे। इसीलिए 'चाँद' में से 'समाचार-संग्रह' स्तम्भ इस मास से निकाल दिया गया है।

२—वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुए एक अनिश्चित समय के लिए 'चाँद' के जातीय विशेषाङ्कों को प्रकाशित करने का प्रस्ताव स्थगित कर दिया गया है, किन्तु आगामी नवम्बर मास का 'चाँद' प्रवेशाङ्क होने के कारण, एक वृहत् विशेषाङ्क प्रकाशित हो रहा है। इस वर्ष से जर्मनी से 'चाँद' के लिए मँगाए गए एक ख़ास काग़ज़ पर 'चाँद' छपा करेगा। सामाजिक सुधार के साथ ही साथ उच्च कोटि के राजनीति की भी इसमें चर्चा रहा करेगी। कई नए और उपयोगी स्तम्भ बढ़ा दिए गए हैं। चित्रों की संख्या तथा पृष्ठ-संख्या भी अधिक रहा करेगी।

३—'चाँद' के उर्दू-संस्करण का नवम्बर तथा दिसम्बर का संयुक्ताङ्क "एडिटर नम्बर" के नाम से एक वृहत् विशेषाङ्क प्रकाशित हो रहा है। इसकी विशेषता यह होगी कि इसका प्रत्येक लेखक केवल पत्र-सम्पादक ही होगा। अब तक क़रीब १०० प्रतिष्ठित पत्र-सम्पादकों की रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं। प्रत्येक पत्रकार का चित्र भी इस विशेषाङ्क में प्रकाशित होगा। इस विशेषाङ्क का फुटकर मूल्य ३) होगा, उर्दू 'चाँद' की माँग असाधारण होने के कारण ८) रु० वार्षिक के स्थान पर इसका चन्दा घटा कर ६॥) रु० कर दिया गया है !!

THE FINE ART PRINTING COTTAGE
CHANDRALOK, ALLAHABAD

The Hon'ble Justice Sir B. J. Dalal of the Allahabad High Court, says:

Dear Mr Saigal,

Your album is a production of great taste & beauty & has come to me as a pleasant surprise as to what a press in Allahabad can turn out. Moon worshipped & Visit to the Temple are particularly charming pictures, life like & full of details. I congratulate you on your remarkable enterprise & thank you for a present which has given & will continue to give me a great deal of pleasure.

Yours Sincerely

B J Dalal.

[ले० "कैवर्त-कौमुदी"-सम्पादक श्री० अनूपलाल जी मण्डल, साहित्य-रत्न]

भूमिका-लेखक—

सुप्रसिद्ध आलोचक श्री० अवध उपाध्याय जी

निर्वासिता वह मौलिक उपन्यास है, जिसकी चोट से क्षीणकाय भारतीय समाज एक बार ही तिलमिला उठेगा। अन्नपूर्णा का नैराश्यपूर्ण जीवन-वृत्तान्त पढ़ कर अधिकांश भारतीय महिलाएँ आँसू बहावेंगी। कौशलकिशोर का चरित्र पढ़ कर समाज-सेवियों की छातियाँ फूल उठेंगी। यह उपन्यास घटना-प्रधान नहीं, चरित्र-चित्रण-प्रधान है। निर्वासिता उपन्यास नहीं, हिन्दू-समाज के वक्षस्थल पर

दहकती हुई चिता है

जिसके एक-एक स्फुलिङ्ग में जादू का असर है। इस उपन्यास को पढ़ कर पाठकों को अपनी परिस्थिति पर घण्टों विचार करना होगा, आँसू बहाना होगा, भेड़-बकरियों के समान समझी जाने वाली करोड़ों अभागिनी स्त्रियों के प्रति करुणा का स्रोत बहाना होगा, आँखों के मोती बिखेरने होंगे और समाज में प्रचलित कुरीतियों के विरुद्ध

क्रान्ति का झण्डा

बुलन्द करना होगा; यही इस उपन्यास का संक्षिप्त परिचय है। सुप्रसिद्ध आलोचक श्री० अवध उपाध्याय ने अपनी भूमिका में पुस्तक की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, पृष्ठ-संख्या लगभग २००, सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २) रु०; स्थायी ग्राहकों से १।) मात्र !!

यह वही क्रान्तिकारी उपन्यास है, जिसकी सालों से पाठक प्रतीक्षा कर रहे थे। ऐसी सुन्दर पुस्तक की प्रस्तावना लिख कर प्रेमचन्द जी ने इसे अमरत्व प्रदान कर दिया है। श्री० प्रेमचन्द जी अपनी प्रस्तावना में लिखते हैं :—

"उपन्यास का सबसे बड़ा गुण उसकी मनोरञ्जकता है। इस लिहाज से श्री० मदारीलाल जी गुप्त को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। पुस्तक की रचना-शैली सुन्दर है। पात्रों के मुख से वही बातें निकलती हैं, जो यथावसर निकलनी चाहिए, न कम न ज्यादा। उपन्यास में वर्णनात्मक भाग जितना ही कम और वार्त्ताभाग जितना ही अधिक होगा, उतनी ही कथा रोचक और ग्राह्य होगी। 'मानिक-मन्दिर' में इस बात का काफी लिहाज़ रक्खा गया है। वर्णनात्मक भाग जितना है, उसकी भाषा भी इतनी भावपूर्ण है कि पढ़ने में आनन्द आता है। कहीं-कहीं तो आपके भाव बहुत गहरे हो गए हैं और दिल पर चोट करते हैं। चरित्रों में, मेरे विचार में, सोना का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक हुआ है और देवी का सर्वाङ्ग सुन्दर। सोना अगर पतिता के मनोभावों का चित्र है, तो देवी सती के भावों की मूर्ति। पुरुषों में ओङ्कार का चरित्र बड़ा सुन्दर और सजीव है। विषय-वासना के भक्त कैसे चञ्चल, अस्थिर-चित्त और कितने मधुर-भाषी होते हैं, ओङ्कार इसका जीता-जागता, उदाहरण है। उसे अपनी पत्नी से प्रेम है, सोना से प्रेम है, कुमारी से प्रेम है और चन्दा से प्रेम है; जिस वक्त जिसे सामने देखता है, उसी के मोह में फँस जाता है। ओङ्कार ही पुस्तक की जान है। कथा में कई सीन बहुत मर्म-स्पर्शी हुए हैं। सोना के मिट्टी हो जाने का और ओङ्कार के सोना के कमरे में आने का वर्णन बड़े ही सनसनी पैदा करने वाले हैं, इत्यादि।" सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) रु०; नवीन संशोधित संस्करण अभी-अभी प्रकाशित हुआ है !!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

८,००० प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक चुकी हैं !!

इस पुस्तक में प्रत्येक प्रकार के अन्न तथा मसालों के गुण-अवगुण बतलाने के अलावा पाक-सम्बन्धी शायद ही कोई चीज़ ऐसी रह गई हो, जिसका सविस्तार वर्णन इस पुस्तक में न दिया गया हो। प्रत्येक चीज़ के बनाने की विधि इतनी सविस्तार और सरल भाषा में दी गई है कि थोड़ी पढ़ी-लिखी कन्याएँ भी इनसे भरपूर लाभ उठा सकती हैं। चाहे जो पदार्थ बनाना हो, पुस्तक सामने रख कर आसानी से तैयार किया जा सकता है। प्रत्येक तरह के मसालों का अन्दाज़ साफ़ तौर से लिखा गया है। पृष्ठ-संख्या लगभग ६००, मूल्य केवल ४) स्थायी ग्राहकों से ३) रु० मात्र ! चौथा संस्करण प्रेस में है।

८२६ प्रकार की खाद्य चीज़ों का बनाना सिखाने वाली अनमोल पुस्तक। दाल, चावल, रोटी पुलाव, मीठे और नमकीन चावल, भाँति-भाँति की स्वादिष्ट सब्जियाँ, सब प्रकार की मिठाइयाँ, नमकीन, बङ्गला मिठाई, पकवान, सैकड़ों तरह की चटनी, अचार, रायते और मुरब्बे आदि बनाने की विधि इस पुस्तक में विस्तृत रूप से वर्णन की गई है।

A RARE ENGLISH PUBLICATION

KAMALA'S LETTERS

TO

HER HUSBAND

THE whole book is a collection of sixty letters—letters, based purely on domestic affairs and society—letters in which the most ordinary details of family life are described. But the description is so interesting, so pungent, so piercing and inspite of all these so refreshingly beautiful that one cannot leave the book unfinished. But this is not all. The pungency of the style has got its inner allurements too. For there is hardly a single description devoid of the deepest love, which an extremely loving and sentimental wife conceives for a dearly loved husband and under there conceptions, the e are hidden a series of growling silence—the outpourings of love-fervour. This has made the book all the more interesting

The end of the book contains a few love letters. These letters are the masterpiece production of human centiments. They give us the clear glimpse of the ravages perpetrated by love's terrific storm and the beauty is that every ravage is laden with the deepest pathos which a human mind can scent.

Neatly Printed. Full Cloth Bound with Protecting Cover
Price Rs. 3 only.

The "CHAND" Office, Chandralok—Allahabad

नया स्टॉक आ गया ! शीघ्र मँगा लीजिए !!

विभिन्न विषयों की उत्तमोत्तम पुस्तकों

का

सुन्दर चुने हुए उपन्यासों, गल्प तथा अन्य पुस्तकों का भारी स्टॉक अभी-अभी संग्रहीत हुआ है। मनचाही पुस्तकें शीघ्र मँगा लीजिए, नहीं तो बिक जाने पर पछताना पड़ेगा। 'चाँद' तथा विद्याविनोद-ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहकों को एक आना फ़ी रुपया कमीशन भी दिया जायगा !!

—व्यवस्थापक 'चाँद'

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
माधुरी	।)	वसुमती	≡)	कुसुमलता (दो खण्ड)	२॥)
विचित्र ख़ून	।)	रसराज	।)	अभागिनी	॥)
विधाता की लीला	।)	कुलटा (उपन्यास)	≡)	अमृत पुलिन	॥)
विद्याधरी	=)	सरोजिनी (नाटक)	॥)	क़िले की रानी	।॥)
मीराबाई	≡)	अन्योक्ति कल्पद्रुम	।=)	खोई हुई दुलहिन	।)
विक्रमादित्य	-)	शृङ्गार दर्पण	॥)	हृदय-कण्टक	।-)
सभाविलास	।)	जय नारसिंह की	=)	सुलोचना	=)
बालोपदेश	।)	कविराज लच्छीराम	-)॥	वीरेन्द्रवीर या कटोरा भर ख़ून	
कुसुमकुमारी	१।)	पुर असर जादू	॥)	(दो भाग)	१।)
सुनहला विष	।=)	ललना-बुद्धि प्रकाशिनी	-)॥	अत्याचार (उपन्यास)	।)
सत्य हरिश्चन्द्र	।=)	अनेकार्थ और नाममाला	।)	सिद्धेश्वरी	।)
सूर रामायण	।=)	अकबर	॥)	चित्रकार	।)
बदरुन्निसा की मुसीबत	≡)	राजस्थान का इतिहास		लैला मजनूं	।)
भाषा सत्यनारायण कथा	=)	(१-९ भाग)	२॥)	विचित्र चोर	।)
भारत की देवियाँ	।-)	चन्द्रकान्ता	१॥)	बङ्गाली बाबू	।)
मायाविनी	।=)	सुरसुन्दरी	१॥)	विष-विवाह	।)
वसन्त का सौभाग्य	।)	प्रेम का मूल्य	।॥)	समझ का फेर	।)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

पकौड़ीमल ।)
आत्मत्याग ।)
श्यामा ।)
छुरी की आत्म-कथा ।)
ग़रीब की लड़की ।)
मित्र ।)
माधुरी ।)
रामरखा का ख़ून ।)
रूप का बाज़ार ।)
गर्म राख ।)
कठपुतली ।)
योगिनी विद्या ।)
संसार-विजयी ॥)
ललिता ॥)
हवाई कार १॥)
अद्भुत भूत ।)
छाती का छुरा -)
अज्ञातवास (नाटक) १)
अधःपतन ॥)
वनकन्या ।=)
दलित कुसुम ॥)
सुर-रामायण ।=)
विनय रसामृत -)
किरण-शशि ।-)
प्रेम का फल ।=)
कुली-कहानी ।-)
नागानन्द (नाटक) ।)
कपटी मुनि (नाटक) ।)
मदालसा ।-)
निरा गवार का घेरा ।≡)
मरता क्या न करता =)
सौतेली माँ =)
अब्दुल्ला का ख़ून =)
अवध की बेगम (दो भाग) ॥=)
लालमी डाकू १।)
परिणाम १)
ज़बर्दस्त की लाठी ॥)

इन्द्र-सभा =)
ईश्वरी लीला =)
मजमुआ नज़ीर ।)
कुण्डलिया गिरधरदास -)॥
क्या इसी को सभ्यता कहते हैं ? =)
चन्द्रकुमार =)
हवाई नाव ।)
पद्मिनी =)
व्यङ्गार्थ कौमुदी १।)
स्वर्णबाई ।-)
क़िस्मत का खेल ॥)
लावण्यमयी =)
नाट्य-सम्भव (रूपक) ।=)
जीवन-सन्ध्या १॥)
बजरङ्ग-बत्तीसी -)
कोकिला ।)
बालचर जीवन १)
लक्ष्मण-शतक ≡)
शृङ्गारदान ≡)
पद्मावती (नाटक) ।=)
दादाभाई नौरोजी -)॥
सूरदास (जीवन-चरित) =)
कलियुग-पचीसी =)
दिल दिवानी -)॥
अनुताप ।)
चित्र ≡)
गङ्गावतरण ॥)
भक्त सूरदास ॥=)
देश-दशा ॥)
दो ख़ून =)
निर्धन की कन्या ॥)
हँसाने की कल =)
दुश्मने-ईमान ॥=)
वीर कर्ण १॥)
काला चाँद ।=)
द्रौपदी-स्वयम्बर (नाटक) ।=)
आतशी नाग ॥

धर्मांजय ॥।
कलियुग का बुख़ार =)
सत्य हरिश्चन्द्र ॥=)
सौभाग्यसुन्दरी ॥)
गंदे-हवस ।≡)
गौतम-अहिल्या ॥-)
ख़ूने-नाहक़ ।≡)
धर्मयोगी ॥)
नौलखा हार =)
भूतों की लड़ाई -)॥
विश्वामित्र ॥)
उषा-अनिरुद्ध ॥)
सम्राट अशोक ॥-)
मेरी आशा १)
ख़ून का ख़ून ।≡)
एक प्याला १)
सती सुलोचना ॥)
काली नागिन ॥=)
शरीफ़ बदमाश ॥=)
ख़ूबसूरत बला ॥)
ख़्वाबहस्ती ।≡)
सती सुनीति ॥)
आँखों का गुनाह ॥)
वीरबाला वा जयश्री ॥)
चन्द्रशेखर १।-)
सोने की कण्ठी १)
तेग़ेसितम वा नर-पिशाच ॥)
रामप्यारी १।)
राजदुलारी १)
वीर वाराङ्गना ॥)
रमणी-रहस्य ॥)
दर्प-दलन ॥=)
भूखा मसख़रा -)
दिल्लगी का ख़ज़ाना =)
शिवाजी की चतुराई =)
रानी दुर्गावती =)
कालग्रास -)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

पुस्तक	मूल्य
क़हक़हे दीवार	=)
राजरानी	≡)॥
शृङ्गार तिलक	=)
रणबाँकुरा चौहान	१)
मेवाड़ के महावीर	१॥)
नैतिक जीवन	१)
जेहाद	॥)
मातृ-भाषा	॥)
तक़दीर का फ़ैसला	॥)
ऊषा-अनिरुद्ध	॥।)
परिवर्तन	१)
मशरक़ी हूर	१)
रुक्मिणी मङ्गल	॥।)
परम भक्त प्रह्लाद	१)
भारतमाता	।)
छत्रपति शिवाजी	१)
मीठी गुञ्जार	=)
पद्य पुष्पाञ्जलि	-)
मोहन गीतावली	≡)
बसन्त-वाटिका	=)
राधेश्याम-कीर्तन	॥)
कुसुमकुञ्ज	=)
रसीली तान	=)
मुसाफ़िर की पॉकेट बुक	॥)
गृहिणी गीताञ्जलि	।)
वियोग-कथा	।)
शतलड़ी	॥।)
अजायबघर	॥)
बिजली	१॥)
विनयपत्रिका	२)
प्रेतलोक	१)
भक्त स्त्रियाँ	॥)
योग वाशिष्ठ सार	।)
भीष्म-प्रतिज्ञा	।)
भीष्म-पराक्रम	।)
पाण्डव-जन्म	।)
महिषासुर बध	।)
शुम्भ का उत्पात	।)
चामुण्डा का पराक्रम	।)
अर्जुन-मोह	≡)
आत्मा की अमरता	≡)
कर्मयोग	≡)
विराट रूप दर्शन	≡)
जीव-ब्रह्म विवेक	≡)
अर्जुन का समाधान	≡)
द्रौपदी लीला	≡)
ध्रुव-चरित्र	।)
प्रह्लाद-चरित्र	।)
सुदामा-चरित्र	।)
सत्यनारायण की कथा	।)
बोध प्रकाशी	।)
सीता-बनवास	।)
रामाश्वमेध	।)
लवकुश की वीरता	।)
सतवन्ती सीता की विजय	।)
अहिरावण बध	≡)
राधेश्याम विलास	॥।)
काव्योपवन	॥।)
उपासना प्रकाश	॥)
जाति-भेद	॥।)
रजनी	॥)
पुण्यकीर्तन	१)
आल्हा-रहस्य	॥=)
मन की लहर	≡)॥
निर्मला	=)॥
इतिहास-समुच्चय	३)
दशावतार कथा	॥)
मृण्मयी	॥।)
चरित्र-सुधार	॥।=)
उपाङ्गिनी	१)
कृष्णकान्त का दान-पत्र	॥।)
भारतीय स्त्रियों की योग्यता (दो भाग)	१)
रघुवीर रसरङ्ग	॥=)
श्रीरघुवीर गुण-दर्पण	॥=)
देवी चौधरानी	॥)
दुर्गेशनन्दिनी	॥।=)
सुख शर्वरी	।-)
केला	-)
विज्ञान प्रवेशिका (दो भाग)	१)
सुवर्णकारी	।)
लाख की खेती	।)
कपास की खेती	॥)
देशी खेल	॥)
गृहिणी गौरव	१॥), २)
पुनरुत्थान	॥।=)
राजपथ का पथिक	।-)
दरिद्रता से बचने का उपाय	=)
विधवा-प्रार्थना	।-)
स्वदेशी धर्म	।)
रोहिणी	।≡)
मोहिनी	॥≡)
संसार सुख साधन	।≡)
अनन्तमती	॥।=)
गङ्गावतरण	॥)
अमरकोष	।)
गोरक्षा का सरल उपाय	)॥
गोपीचन्द भरथरी	।=)
कुण्डलिया गिरधर राय	-)॥
काया कल्प	३॥)
प्रेम-प्रतिमा	२)
वैताल पचीसी	।)
मनुस्मृति (भाषाटीका)	३॥)
प्रेम-सागर	२)
लोकवृत्ति	१।)
बद्रीनाथ-स्तोत्र	-)
चन्द्रावली (नाटक)	।)
भारतवर्ष का इतिहास	२॥।)
कल्याण-मार्ग का पथिक	१॥)
प्राचीन भारत	२॥।-)
जापान की राजनीतिक प्रगति	२॥।=)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

पुस्तक	मूल्य
संसार के व्यवसाय का इतिहास	॥=)
अंगरेज़ जाति का इतिहास	२॥)
इटली के विधायक महात्मागण	२)
रोम साम्राज्य	२॥)
एब्राहम लिङ्कन	॥)
गृह-शिल्प	॥)
अवध के किसानों की बरबादी	।)
कुसुम-संग्रह	१॥)
शैलबाला	१)
विसर्जन	॥)
राजारानी	॥।)
नल-दमयन्ती	॥।)
सत्य हरिश्चन्द्र	।≡)
अनुराग वाटिका	।-)
बनारस	१॥)
स्वयं स्वास्थ्य-रक्षक	॥।=)
अजेय तारा	१॥)
विश्राम बाग	१॥)
पृथ्वीराज चौहान	॥।)
छत्रपति शिवाजी	॥।)
सहधर्मिणी	॥।)
रूपनगर की राजकुमारी	३)
विचित्र डाकू	१।)
पाप की छाप	२)
शैतान पार्टी	॥।)
रमणी नवरत्न	१)
विचित्र घटना	।)
सावित्री-सत्यवान	॥।)
अत्याचार का अंत	।)
सदाचार दर्पण	१॥),२),२॥)
भारत इतिहास (सजिल्द)	३)
मज़ेदार कहानियाँ	१)
सूक्ति सरोवर	२॥)
कौतूहल भण्डार	१।)
अन्त्याक्षरी	॥)
पहेली बुझौवल	॥)
सच्ची कहानियाँ	॥)
इक्कीस खेल	।≡)
नवीन पत्र प्रकाश	॥=)
वक्तृत्वकला	१।)
स्वदेश की बलिवेदी पर	॥=)
शाहज़ादा और फ़क़ीर	॥।)
बाल नाटकमाला	।=)
गज्जू और गप्पू की मज़ेदार कहानियाँ	≡)
डल-बिल की कहानियाँ	≡)
विद्यार्थियों का स्वास्थ्य	।=)
फदलू और बदलू की कहानियाँ	≡)
टीपू और सुल्तान	।)
नटखटी रीछ	≡)
भिन्न-भिन्न देशों के अनोखे रीति-रिवाज	॥=)
परीक्षा कैसे पास करना	=)
पत्रावली	।-)
पञ्चवटी	।=)
रङ्ग में भङ्ग	।)
आत्मोपदेश	।)
स्वाधीनता के सिद्धान्त	॥)
सन्त-जीवनी	॥)
अमृत की घूँट	२॥)
विचित्र परिवर्तन	२)
पौराणिक गाथा	।-)
गुब्बारा	॥=)
दस कथाएँ	।=)॥
अनूठी कहानियाँ	।=)
मनोहर कहानियाँ	।=)
हँसी-खेल	॥।)
डल्लू और मल्लू	≡)
विज्ञान वाटिका	।=)
परियों का देश	१)
खोपड़ेसिंह	।)
बालक ध्रुव	।)
बच्चू का ब्याह	।-)
नानी की कहानी	।=)
मज़ेदार कहानियाँ	।-)
बाल कवितावली	१)
रसभरी कहानियाँ	॥)
बहता हुआ फूल	२॥), ३)
मि० व्यास की कथा	२॥), ३)
प्रेम-प्रसून	१=), १॥=)
विजया	१॥), २)
भिखारी से भगवान	१)
मूर्खमण्डली	॥=), १=)
जीवन का सद्व्यय	१), १॥)
साहित्य-सुमन	॥), १)
विवाह-विज्ञापन	१॥)
चित्रशाला (दो भाग)	३),४)
देव और बिहारी	१॥),२।)
मञ्जरी	१।),१॥।)
वर्वला	१॥),२)
रायबहादुर	॥)
प्राणायाम	॥=),१=)
पूर्वभारत	॥=),१=)
बुद्ध-चरित्र	॥),१॥)
भारत-गीत	॥।=)
वरमाला	॥।),१॥)
एशिया में प्रभात	॥),१)
कर्मयोग	॥),॥।)
संक्षिप्त शरीर विज्ञान	॥=)
लबड़धोंधों	॥।=),१॥=)
हठयोग	१।=)
कृष्णकुमारी	१),१॥)
प्राचीन पण्डित और कवि	॥।=),१॥=)
लवड़धबध	॥।),१=)
तात्कालिक चिकित्सा	१),१॥)
किशोरावस्था	॥=)
अद्भुत आलाप	१)
मनोविज्ञान	॥।),१॥)
अश्रुपात	१)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

पुस्तक	मूल्य
ईश्वरीय न्याय	॥)
सुख तथा सफलता	१)
किसान की कामधेनु	।=)
प्रायश्चित्त (प्रहसन)	=)
संसार-रहस्य	१॥)
नीति रत्नमाला	१)
मध्यम व्यायोग	=)
सम्राट चन्द्रगुप्त	१)
वीर भारत	॥)
केशवचन्द्र सेन	१=),१॥=)
बङ्किमचन्द्र चटर्जी	१=,१॥=)
देशहितैषी श्रीकृष्ण	=)
द्विजेन्द्रलाल राय	१)
भारत की विदुषी नारियाँ	॥)
वनिताविलास	१।)
पत्राञ्जलि	॥)
लक्ष्मी	॥=)
ऊषा	॥।=)
भगिनी-भूषण	=)
सुघड़ चमेली	=)
खिलवाड़	१)
देवी द्रौपदी	॥)
महिलामोद	॥)
गुप्त सन्देश	॥)
कमला-कुसुम	१)
मिश्रबन्धु-विनोद (तीन भाग)	७)
शिवराज विजय	२॥।
सत्य हरिश्चन्द्र (नाटक)	।=)
माधव निदान	१॥)
अनङ्ग-रङ्ग	२)
कुटुम्ब-चिकित्सा	१॥)
रामायण का अध्ययन	॥)
रचना नवनीति	१)
प्रवेशिका व्याकरण बोध	१)
अयोध्याकाण्ड रामायण	॥)
बाल महाभारत	।=)

पुस्तक	मूल्य
अलङ्कार चन्द्रिका	॥)
बालबोध रामायण	॥)
अपर प्रकृति पाठ	।=)॥
मिडिल प्रकृति परिचय	।-)।
शिशुवर्ण परिचय	-)
वर्णमाला और पहाड़े	–
शासन और सहयोग	=)।
शिशुकथा माला	=)
कन्या-साहित्य	=)।
पद्म-चन्द्रिका	१)
बालक	१)
स्वराज्य-संग्राम	।।=)
आर्यसमाज और कॉन्ग्रेस	।-)
हिन्दू-सङ्गठन	१)
शिक्षा-प्रणाली	१)
भारत-स्वर्ण-रत्न	॥=)
सन्ध्या पर व्याख्यान	१)
शिशु-सुधार	॥)
पुत्री-शिक्षक	॥)
स्त्री-शिक्षा	।=)
मनोहर पुष्पाञ्जलि	॥)
गृहिणी-शिक्षा	॥)
गुलदस्ता	॥।)
अक्षरबोध	)॥
उर्वशी	१)
ब्रह्मचर्य-शिक्षा	॥=)
तपस्वी भरत	।-)
दिलचस्प कहानियाँ	।=)
सूखा हुआ फूल	=)
हितोपदेश	॥)
पृथ्वीराज रासो	॥)
नवीन बीन	२)
बिहार का साहित्य	१॥)
जयमाल	।=)
प्रेम	।=)
मधु-सञ्चय	।=)
अशान्त	॥)

पुस्तक	मूल्य
[illegible]	१)
विद्यापति	१)
अहिल्याबाई	१)
सौरभ	१)
नवपल्लव	१॥)
देहाती दुनिया	१॥)
प्रेम-पथ	१)
[illegible]-परीक्षा	१)
सुधा-सरोवर	१)
स्वामी भक्त	१)
गुरु गोविन्दसिंह	१)
एकता	१)
अशोक	१)
[illegible]	१)
बाल-विलास	१)
[illegible]	१)
दुलहिन	१)
सोहराब	१)
शिवाजी	१)
माइकेल मधुसूदन	१)
भगवान बुद्ध	१)
[illegible] की [illegible]	-)
[illegible] की [illegible]	=)
[illegible]	।=)
[illegible] लाश	=)
चोर की तीर्थ-यात्रा	१)
[illegible] की [illegible]	=)
सूर्यकुमार सम्भव	१)
भयानक [illegible]	=)
[illegible] देवी	=)
भीषण सन्देह	॥)
माधवी	=)
पिशाच पति	॥)
अज्ञात हत्याकारी	=)
कविता-कुसुम	१)
बगुला भगत	॥)
बिलाई मौसी	॥)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

पुस्तक	मूल्य
सियार पाँडे	॥)
पृथ्वीराज	१)
शिवाजी	१)
राजर्षि ध्रुव	॥=)
सती पद्मिनी	॥=)
शर्मिष्ठा	॥=)
मनीषी चाणक्य	१)
अर्जुन	॥=)
चक्रवर्ती बप्पाराव	॥=)
वेश्यागमन	२)
नारी-विज्ञान	२)
जनन-विज्ञान	३)
गृहिणी भूषण	॥।=)
भारतीय नीति-कथा	॥।)
दम्पति शिक्षक	॥)
नाट्यकला दर्शन	॥।-)
शाही डाकू	१॥।)
शाही जादूगरनी	१॥)
शाही लकड़हारा	२)
शाही चोर	।)
गृहधर्म	॥।)
बालराम कथा	॥।)
माता और पुत्र	१॥=)
जातीय कविता	१॥)
मानवन्ती	१), २)
अनोखा जासूस	२)
सुप्रभात	१॥)
प्राचीन हिन्दू माताएँ	१)
महाभारत	१)
विधवाश्रम	१॥)
चालाक बिल्ली	=)
मुसाफ़िर की तड़प	।-)
यूरोपीय सभ्यता का दिवाला	।=)
अमृत में विष	।=)
मुसाफ़िर पुष्पाञ्जलि	।)
जया	।-)
मानवती	।-)
धर्म-अधर्म युद्ध	॥।)
नवीन भारत	॥।)
श्रीकृष्ण-सुदामा	।=)
ग़रीब हिन्दुस्तान	१)
भारतीय सभ्यता	१)
हरफ़नमौला	१)
दरबार का इतिहास	।=)
बोलशेविज़्म	१।=)
मुसाफ़िर भजनावली	।≡)
असहयोग दर्शन	१॥)
चेतावनी सङ्कीर्तन	।)
जन्मबधैया सङ्कीर्तन	।)
श्रीसतवानी सङ्कीर्तन	।=)
महात्मा गाँधी	≡)
गँवार मसखा	=)॥
सेवाश्रम	२॥)
महात्मा विदुर	१)
महामाया	॥=)
शकुन्तला	१=)
कृष्णकुमारी	।=)
क्षात्रधर्म	-)
बलिदान	≡)
भारतीय देश	)॥।
चित्रशाला	॥।)
दम्पति सुहृद	१)
रानी जयमती	॥)
तपस्वी अरविन्द के पत्र	।)
सुभद्रा	॥)
हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास	।=)
ग्रीस का इतिहास	१=)
श्रीबद्री-केदार यात्रा	।)
नवयुवको स्वाधीन बनो	॥)
असहयोग का इतिहास	॥।)
सफलता की कुंजी	।)
पाथेयिका	१)
रोम का इतिहास	॥।)
अपना सुधार	॥)
महादेव गोविन्द रानाडे	॥।)
दिल्ली अथवा इन्द्रप्रस्थ	॥)
गाँधी-दर्शन	१
बिखरा फूल	१॥)
प्रेम	।=)
इटली की स्वाधीनता	॥)
गाँधी जी कौन हैं ?	।-)
फ़्रान्स की राज्य-क्रान्ति का इतिहास	१=)
आकाश की बातें	≡)
जगमगाते हीरे	१)
मनुष्य-जीवन की उपयोगिता	॥=)
भारत के दस रत्न	।-)
वीरों की सच्ची कहानियाँ	॥।)
आहुतियाँ	।-)
वीर राजपूत	१)
पढ़ो और हँसो	॥)
ईश्वरीय बोध	॥।)
महात्मा टॉलस्टॉय	।)
कुसुम-कुञ्ज	।-)
हम सौ वर्ष कैसे जीवें ?	॥।)
चारु चिन्तामणि कोष	।-)
मराठों का उत्कर्ष	१॥)
ग्रीस का इतिहास	१=)
हृदय का काँटा	१॥)
सञ्जीवनी बूटी	॥=)
धर्म-शिक्षा	१)
जीवन, सौन्दर्य और प्रेम	१)
जीवन और उसका विकास	॥।)
चिन्तामणि	=)
अमरीका पथ-प्रदर्शक	॥)
प्रेम-लहरी	॥=)
अकालियों का आदर्श सत्याग्रह और उनकी विजय	॥)
कहावत रत्न-माला	॥)
महात्मा गाँधी की गिरफ़्तारी, मुक़दमा, जेल-यात्रा	॥=)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

श्रीमद्भगवत गीता (सजिल्द) ।।।)
हिन्दू विधवा ।।)
शकुन्तला (सजिल्द) १।)
टॉलस्टॉय के सिद्धान्त १।)
जर्मन जासूस की रामकहानी ।-)
आयर्लैण्ड में होमरूल ।।-)
बलिदान २)
श्रीकृष्ण-चरित्र ।=)
चेतसिंह और काशी का विद्रोह ।=)
रूस का राहु ।=)
एशिया निवासियों के प्रति यूरोपियनों का बर्ताव ।=)
सती सारन्धा ।।=)
जल के प्रयोग ।।)
शिक्षा-सुधार ।।)
कृष्णार्जुन युद्ध ।।=)
उद्योगी पुरुष ।=)
मेघनाद बध ।।।)
देवी जोन ।=)
सम्राट अशोक १)
दादाभाई नौरोजी =)।।
महादेव गोविन्द रानाडे =)।।
युद्ध की कहानियाँ ।)
कुसुमाञ्जलि =)
हिन्दी गीताञ्जलि १।।)
जल-चिकित्सा ।=)
आयर्लैण्ड में मातृभाषा ।=)
बीसवीं सदी का महाभारत ।।।)
सम्पत्ति-शास्त्र ४)
गोरा ३)
वज्राघात २।।)
घर और बाहर १।)
संसार की असभ्य स्त्रियाँ २।।)
फ़िजी में भा० प्र० कुली-प्रथा १)
चीन की राज्यक्रान्ति १।।)
त्रिशूल तरङ्ग ।।=)
अकाली दर्शन ।।।)

राईफ़ल सोखा (दो भाग) ।।=)
कृषक-क्रन्दन =)
आरोग्य सुधावली ।=)
कॉङ्ग्रेस का इतिहास ।।-)
मुसाफ़िर भीषण हास ।)
सरोजिनी नायडू ।=)
चम्पारन की आँच ।-)
फ़िजी में २१ वर्ष ।।)
सितार-शिक्षक ।=)
हिन्दी कवीश ।)
मुक्त धारा १)
महाराणा राजसिंह ।।=)
रेल से माल भेजने का क़ायदा २)
यतीन्द्रनाथ दास ।।।)
तिलक चित्रावली १)
व्यंग्य चित्रावली २)
वन्देमातरम् चित्राधार २)
अत्याचार का परिणाम ।।।)
भारतीय मेकस्विनी यतीन्द्र =
स्टॉक एक्सचेञ्ज १।।)
वन्देमातरम् १।।।)
सफ़ाई और स्वास्थ्य ।)
पं० मोतीलाल नेहरू ।।।)
सती सुलोचना ।।)
वीराङ्गना वीरा ।।)
धूर्ताख्यान ।।)
पञ्चवटी ।।।)
भीष्म-चरित्र ।।।=)
मधुप ।।)
भेड़ियाधसान १।।)
जीवन और मृत्यु का प्रश्न ।-)
धर्मविज्ञान १)
शान्ति और आनन्द का मार्ग ।।)
स्वाधीनता के सिद्धान्त १)
यङ्ग इण्डिया १
कृष्ण-चरित्र २।।
राग रामायण २)

फूल में काँटा ।।।)
अपना और पराया ।)
कवितावली रामायण १।)
लीलावती १।।।)
लव-कुश ।।=)
धर्मावतार ।।)
आदर्श माता ।।।)
महासती वृन्दा १)
रूस में युगान्तर २)
सती ऊषा ।।)
पतिव्रता मनसा ।।)
सती सुलक्षणा ।।)
सती सीमन्तिनी ।।।)
हिन्द १)
पतिव्रता अरुन्धती ।।=)
स्वराज्य की माँग १।।)
शर्मिष्ठा देवयानी ।।)
भारत-रमणी १।)
स्त्री-दर्पण ।।)
मेवाड़ का गौरव १)
शङ्कराचार्य १।।)
भीष्म ।।=)
शिवाजी १।।)
श्रीकृष्ण १।।)
देवी द्रौपदी ।।=)
सीता देवी ।।=)
शैव्या-हरिश्चन्द्र ।।)
पाक-शास्त्र १)
पतिव्रता रुक्मिणी ।।=)
सती पार्वती ।।)
पवित्र जाट ।।=)
सुभद्रा ।।=)
वीर अभिमन्यु ।।=)
भक्त प्रह्लाद ।।=)
भक्त ध्रुव ।।=)
सोहराब रुस्तम १।।)
पृथ्वीराज १)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

पुस्तक	मूल्य
सीता	२॥)
जासूसी पिटारा	॥)
शीशमहल	२)
श्रीमद्भगवतगीता	=)
कर्मक्षेत्र	३)
नराधम	१=)
सुन्दरी अमेलिया	॥)
महाराणा प्रतापसिंह	१)
महात्मा गाँधी	१)
धनकुबेर	१॥)
यो गनी	॥)
आदर्श डाकू	३)
नैपोलियन बोनापार्ट	२)
हेमलता	॥)
कलकत्ता ग इड	१)
सत्याग्रही प्रह्लाद	१)
सम्राट परीक्षित (सजिल्द)	१॥)
भारत के महापुरुष	३॥)
भारतीय गौरव	१)
पञ्जाब का भीषण हत्याकाण्ड	१॥)
प्रणवीर	१)
प्रायश्चित्त	३)
कामिनी-काञ्चन	३)
शैतानी करामात	१॥)
राष्ट्रीय झनकार (दो भाग)	॥)
महाराना हमीरसिंह	१)
महात्माओं की दिव्य वाणी	।)
गाँधी-सिद्धान्त	॥)
सत्यनारायण	१)
भक्त चन्द्रहास	१॥)
द्रौपदी	॥=)
लवकुश	१॥)
लॉर्ड किचनर	१)
सिन्धबाद जहाजी	।=)
पाक-कौमुदी	१)
देवल देवी	।-)
अछूतोन्नति पद्यमाला	≡)॥
कुल-ललना	॥=)
दुःखिनी	॥)
दिव्य देवियाँ	१॥=)
महिला स्वास्थ्य सञ्जीवन	१)
दमयन्ती चरित्र	=)॥
तरुण तपस्विनी	।)
सती पद्मिनी	।=)
इश्क़नामा (बोधाकृत)	।)
कॉन्स्टेबिल वृत्तान्तमाला	॥)
वेदोपदेश (२ भाग)	२)
आर्यजीवन (२ भाग)	२॥)
न्याय प्रवेशिका	॥=)
सर्वदर्शन संग्रह	१)
तत्त्वसमास	॥)
प्रश्नोपनिषद्	।-)
कठोपनिषद्	।≡)
केन उपनिषद्	≡)
एतरेय उपनिषद्	≡)
न्याय भाष्य	४)
मुण्डक उपनिषद्	।=)
ईशोपनिषद्	=)
वैशेषिक दर्शन	१॥)
निघण्टु	॥-)
निरुक्त भाष्य	४॥)
छान्दोग्योपनिषद्	२)
पारस्कर गृह्यसूत्र	१॥)
वेदान्त दर्शन भाष्य	४)
मनुस्मृति	३)
महाभारत (२ भाग)	१२)
आर्यदर्शन	१॥)
वाल्मीकीय रामायण	६)
बृहदारण्यक उपनिषद	२)
तैत्तिरीय उपनिषद	॥)
शास्त्र रहस्य (२ भाग)	१)
उपदेश सप्तक	॥-)
श्रीशङ्कराचार्य और कुमारिल भट्ट	॥)
शताब्दी शतक	≡)
श्वेताश्वतर	≡)
उपनिषदों की भूमिका	।-)
योग-दर्शन	१॥)
राजकोष	१॥)
शब्द शास्त्र	१)
हिन्दी टीचर	१)
उपनिषदों की शिक्षा	२)
वेदप्रकाश (३ भाग)	२≡)
प्रार्थना पुस्तक	-)
शूद्रपुत्रम्	॥)
वेद-शिक्षक	।=)
गीता हमें क्या सिखलाती है ?	।-)
नल-दमयन्ती	।)
द्रौपदी का पति केवल अर्जुन था	=)
शुद्धि शास्त्र	॥=)
हितोपदेश	॥)
रानी सुन्दरी	१)
फिर निराशा क्यों	॥≡)
प्रेमकली	१)
राष्ट्रीय तरङ्ग	।-)
सेवाधर्म	१॥)
कर्मफल	॥)
रसाल वन	।-)
दम्पति रहस्य	१॥)
हम असहयोग क्यों करें ?	॥)
म० गाँधी के उपदेश	-)
अदालतों की पोल	-)
दरिद्र कथा	॥)
प्रबन्ध पारिजात	॥-)
आनन्द मठ	॥)
शैतान की शैतानी	३)
आफ़त की पुड़िया	१॥)
मौत का नज़ारा	१)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

साप्ताहिक "भविष्य" के ग्राहक बनिए

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

पागल प्यार

[श्री० कृष्णवल्लभ जी द्विवेदी]

देव !......
......मेरे मतवाले देव !!
आज लौटा दो मेरा प्यार।
प्रणय के पागलपन से हीन,
दीन दुखिया का दुर्बल प्यार !
छीन लो चाहे सब अधिकार,
किन्तु लौटा दो पागल प्यार !!

प्यार ! इस निर्धन का वह प्यार—
काँपते हाथों जिसे समेट,
मिलन-मन्दिर में हो बेहोश,
कर दिया था चरणों पर भेंट ;
थरथराते थे नव-सोपान,
जिसे करते समौन स्वीकार !

अरे ! वह जीवन-रस सा प्यार !
तुम्हारे चरणों पर चुपचाप,
जिसे ढुलका कर यों बेमोल,
पा लिया क्रन्दन का अभिशाप !
हो गया जिसको खोकर आज,
हाय ! कितना सूना संसार !!
प्यार ! वह नव-कलिका सा प्यार !
पलक-प्यालों में भर-भर नीर,
जिसे सींचा—पल्लव की भाँति,
खींच आहों से मन्द समीर !
सुनहली आशा का अवलम्ब ;
साधना का सुन्दर उपहार !!
कभी बन चञ्चल विहग-कुमारि,
सिखाई पङ्खों की फड़कन !
रजत-किरणों सा मृदु कम्पन !!
पुतलियों की पुलकित थिरकन !!!
लजीली कलिका सा वह प्यार !
दीनता का सङ्कुचित दुलार !!
कभी बन कर उन्मत्त समीर,
रागिनी में भर-भर अनुराग,
सुनाया उसे निराला गीत,
बिखेरा गुप्त विराग-पराग !
जगाई एक व्यथा अनजान,
उठाया अरमानों का ज्वार !!
खिला असमय ही यों वह फूल !
ऊषा ही में अरुण का उदय !
बाल्य में यौवन की लालिमा !!
देख, उन्मत्त हो उठा हृदय !!!
गूँथ डाला आँसू के साथ,
प्यार ! जीवन का पहिला प्यार !!

उसी पागलपन में बेहोश,
स्नेह औ' आँसू की वह माल—
भूल कर निर्धनता की याद,
देव ! तव चरणों पर दी डाल !
भूल कर जीवन का अस्तित्व,
दिया पहना वह आँसू-हार !!
घड़ी थी वह कितनी अनमोल !
बिखेरा था कितना उन्माद !!
छा रही थी इक गहरी नींद,
सो रहा था सूना अवसाद !
अहा ! वे नीरवता के चित्र,
भग्न-स्मृतियों के टूटे तार !!
चेतना औ' मादकता बीच,
रह गई एक विभाजक डोर ।
मिट गया "मैं" औ "तू" का भाव,
आ रहा सब स्मृतियों का छोर !
भाप बन "अपनेपन" की बूँद,
उड़ गई जीवन के उस पार !!
किन्तु थक कर जब होने लगा—
निमीलित, स्मृति का अन्तिम द्वार,
क्षितिज, पर कृष्ण-घटा की भाँति,
उठा दुःखमय यह शून्य विचार—
बच रहा अब क्या मेरे पास ?
रह गया क्या कुछ भी अधिकार ?
हाय रे ! दुर्बल हीन विचार !
हाय री ! तुच्छ मानवी भ्रान्ति !
लालसा का यह नीरव-नृत्य !
और तू खोज रहा है शान्ति ?
कहाँ इस रव में नीरव शान्ति ?
जहाँ लोलुपता का व्यापार !!

हाय री ! अधिकारों की प्यास !
प्यार पाने की निष्फल प्यास !!
कामनाएँ सब हैं अतृप्त,
और फिर भी बुझने की आश !!!
हो सकेगा क्या बेसुध मिलन,
क्षीण मानव ! तुझको स्वीकार ?

प्रणय के बन्दी का उद्धार !
हाय ! कितना निराश असहाय !!
आँसुओं की अनहोनी भीख,
बन्दिनी आँखें कैसे पाय ?
लालसाओं की मौन पिपास—
हाय ! कितनी निस्सार पुकार !!

मनुज ! तू कितना दुर्बल ! भ्रान्त !!
छोड़ बेहोशी का आनन्द,
चेतना का करता आह्वान
वेदनाओं में—रे मतिमन्द !!
जा सकेगा तू फिर किस भाँति,
गहन विस्मृति-सीमा के पार ?

तुझे है तड़पन से क्यों प्यार,
रुदन में क्यों पाता तू राग ?
नहीं है क्या यह प्रेमोन्माद,
कर रहा है चिर सुख का त्याग ?
अरे मानव ! तेरी दुर्गम्य
पहेली का क्या पारावार !!

देव ! यह है हास्यास्पद बात ;
मनुज-जीवन की उलझन गूढ़ !
वेदना में मिलता आनन्द,
देख कर होती बुद्धि विमूढ़ !
मनुज को प्यारी है चिर-तृषा,
तृप्ति है नहीं उसे स्वीकार !!

नाथ ! मैं भी मानव हूँ, नाथ !
इसी से छोड़ रहा हूँ साथ ।
प्रेम की दुर्बलता है !!—किन्तु
रही यह बात न मेरे हाथ !
मुझे पी ा ही है स्वीकार ।
मुझे लौटा दो मेरा प्यार !!

वही लौटाना होगा, वही—
मुझे जो बाँध रहा है प्यार ।
खोल दो कातरता की ग्रन्थि,
तोड़ दो बेहोशी का तार ।
बिछुड़ने ही दो मुझको देव !
बिछुड़ कर ही होगा उद्धार !!

विरह ही है पीड़ा का मोल ।
विरह में होने दो बेचैन ।
उष्ण-उच्छ्वासों से हो तप्त,
पिघल जाने दो मेरे नैन !
तोड़ विस्मृति का सूखा द्वार,
बह चले चिर-पीड़ा का सार !!

जगत के कोलाहल से दूर,
विजन के एकान्तित आधार,
शून्य-साधक निर्झर की भाँति—
फूट जाने दो आँसू-धार !
जाग तो जाने दो इक बार,
वेदना की कलकल झनकार !!

अरे ! वह रुदन ! तड़पता रुदन !!
कहाँ वह प्रणय-जनित उन्माद ?
लालसाओं का अविकल द्वन्द !
भग्न मिलनाशा का आह्लाद ?
सुना दो मुझे काँपता रुदन,
अरे ! वह दर्द-भरी चित्कार !!

मुझे दुःख ही में है आनन्द।
वेदना में वैभव का भान।
मिट न जाए यह करुण अभाव,
रह गया एक यही अरमान!
बुझ न पाए आँसू की प्यास!
लुट न जाए यह हाहाकार!!

मिलन की वेहोशी में हाय!
सो गया मेरा सब उन्माद।
बुद्बुदों सी उठ कर मिट गई
प्रणय की पीड़ाओं की याद!
याद!—वह नव-प्रभात की याद,
उठ रहे थे जब चञ्चल ज्वार!!

न लूँगा मिलन, मद भरा मिलन!
मिलन है पागलपन का अन्त।
आत्म-विस्मृति की गहरी नींद!
वेदनाओं की सुप्ति अनन्त!
द्वैत की चिर-तड़पन का छोर!
नहीं यह मिलन मुझे स्वीकार!!

मिलन शीतल है, तप्त विछोह,
मिलन है मृत्यु! प्रदाह वियोग!!
दाह!—बस रही दाह की चाह,
दाह में जलने दो सब भोग!
किन्तु यह रहे झुलसता सदा,
हो न पाए चाहों का क्षार!!

अन्त तक रहना मुझसे भिन्न,
बुझाना मत मिलने की प्यास।
भिन्न रह कर ही तो हे देव!
रहोगे देव, और मैं दास!
कर सकूँगा तब ही तो नाथ!
आँसुओं का भवसागर पार!!

विपञ्ची में भी छूकर मीड़,
उँगलियाँ सारी समता त्याग—
तार छूकर होतीं जब भिन्न,
तभी निकला करता है राग!
एक हो यदि उँगली औ' तार,
कहाँ से फूटेगी झनकार?

रहो तुम ऊपर ही आसीन,
न आओ खिंच कर मेरी ओर।
यहीं शीतल चरणों के पास
तड़पने दो—यह ही है ठौर!
प्रेम के थके पथिक का ठौर—
यहीं तक है उसका अधिकार!!

किन्तु, अब दे दो वह वरदान,
"नहीं" कह मत देना दुतकार।
तुम्हारी निर्दयता हर बार,
सहन करता आया, मन मार!
आज तो लूँगा, लूँगा, देव!
छीन लूँगा! वह पागल प्यार!!!
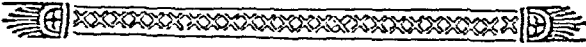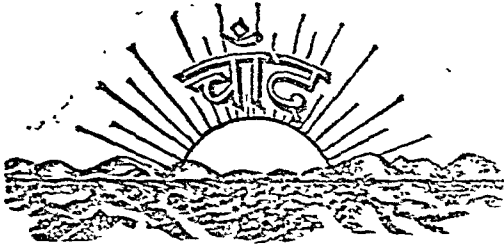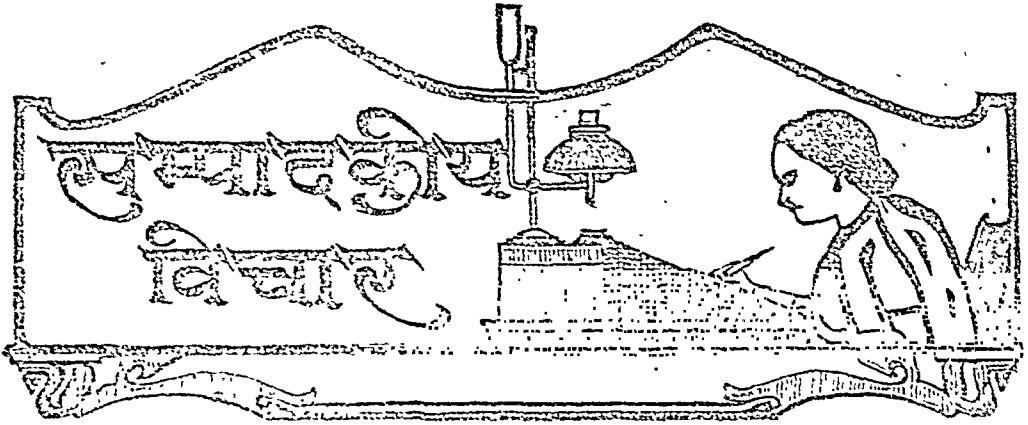
अक्टूबर, १६३०

क़ानून या काल ?

भारतीय ज्योतिःशास्त्र में भौगोलिक ज्ञान

[श्रीयुत रजनीकान्त जी शास्त्री, बी० ए०, बी० एल०]

जिस समय भूमण्डल की आधुनिक सभ्यताभिमानी जातियों के नग्नप्राय तथा वनचर पूर्वज अपना जीवन पशुवत व्यतीत करते, गिरि-गह्वरों में निवास करते तथा वन्य पशुओं को मार-मार कर अपनी क्षुधा शान्त किया करते थे; जिस समय वर्तमान सभ्यमन्य यूरोप के आदर्श रोमी और यूनानी सभ्यता का अभी अङ्कुर तक नहीं उगने पाया था; उस समय भारत के विद्वानों ने विज्ञान के ज्योतिष, गणित, चिकित्सा, अर्थशास्त्र, साहित्य आदि विविध विभागों में अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म बुद्धि द्वारा प्रवेश कर उन तत्त्वों को ढूँढ़ निकाला था, जिन्हें देख आधुनिक विदेशीय विद्वानों की अक़्ल चकरा जाती है। उदाहरण के लिए ज्योतिःशास्त्र को लीजिए। जिस समय अन्य देशवासियों को इतना भी ज्ञान नहीं था कि पृथ्वी, जिस पर हम बसते हैं, गोली है कि चिपटी; चल है कि अचल; उसी समय यहाँ के विद्वानों ने न केवल पृथ्वी के आकार तथा गति का ही पता लगा लिया था; बल्कि ज्योतिःशास्त्र सम्बन्धी उन गणित-क्रियाओं को, जिनका नाम भी अभी अन्य देश वालों ने नहीं सुना था, समतल तथा गोलीय त्रिकोण मिति-शास्त्र (Plane and Spherical Trigonometry) एवं चलन-कलन (Differential and Integral Calculus) के जटिल नियमों द्वारा, सम्पादन कर सूर्यादि स्थिर तथा चन्द्रादि गगनचारी पिण्डों के गत्यादि का ठीक-ठीक पता लगा लिया था और आधुनिक सूक्ष्म मापक यन्त्र (Micrometer) तथा दूरदर्शक यन्त्र (Telescope) आदि को नहीं रखते हुए भी केवल बाँस की बनी नलिका के द्वारा ग्रह-वेध कर वे जिस सूक्ष्मता के साथ गणित-फल निकाला करते थे, उसे देख विदेशियों के मुँह से, "वाह-वाह" बिना निकले नहीं रहता। पर समय ने कितना भारी पलटा खाया है! हमारा कितना अधःपतन हुआ है! हम ज्योतिष विषयक साधारण ज्ञान के लिए भी अपने को अङ्गरेज़ी स्कूलों का ही आभारी मान बैठते हैं; हमें इतना भी मालूम नहीं है कि जिन बातों को यूरोप-निवासी विद्वानों ने अब आविष्कृत किया है, वे सब यहाँ हज़ारों वर्ष पूर्व से ही मालूम थीं। पर जिस देश में शास्त्रों का पठन-पाठन किसी समुदाय का एकाधिकार (Monopoly) हो जाय; जिस देश में साधारण जनता को अज्ञान के कीचड़ में फँसा कर उसके साथ मनमाना व्यवहार करने की परिपाटी चल निकले; उस देश के लोगों में ऐसी भावना न फैले तो हो क्या? यदि हम किसी के सम्मुख यह कहें कि पृथ्वी नारङ्गी की तरह गोली है तथा वह अपनी धुरी तथा सूर्य के चारों तरफ़ परिभ्रमण करती है तो चट लोग यह कह बैठेंगे कि ऐसी ऊटपटाँग बातें अङ्गरेज़ी स्कूलों ने चलाई हैं; हमारे पूर्वज तो पृथ्वी को चिपटी तथा स्थिर लिख गए हैं। इस लेख में उन प्रमाणों तथा युक्तियों का वर्णन किया जाएगा, जिनके द्वारा प्राचीन भारतीय विद्वान पृथ्वी का गोलत्व सिद्ध किया करते थे और जो अपने ढङ्ग की एकदम निराली होने के कारण आधुनिक विद्वानों के मनन योग्य हैं। किसी अन्य लेख में पृथ्वी के चलत्व पर भी विचार किया जाएगा।

सिद्धान्त ज्योतिष ग्रन्थों में सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'सूर्य-सिद्धान्त' है, जिसकी गणित क्रियाएँ अब भी सर्वोपरि मानी जाती हैं तथा जिसके आधार पर प्रायः सभी तिथि-पत्र आज भी बनते हैं। इस ग्रन्थ की रचना कब हुई तथा इसे किसने रचा, इसका पता नहीं लगता। इस ग्रन्थ में इसके रचयिता तथा रचना-काल के विषय में जो कुछ लिखा है उस पर एक पौराणिक छाप लगी है, जिससे तथ्य का पता लगना ज़रा मुश्किल हो जाता है। कोई-कोई इस ग्रन्थ के निम्न-लिखित श्लोक से इसे त्रेतायुग के आदि में बना मानते हैं—

अष्टाविंशाद् युगादस्माद् यातमेतत्कृतं युगम्।
अतः कालं प्रसंख्याय संख्यामेकत्र पिण्डयेत्॥

अर्थ—वर्तमान (२८ वीं) चतुर्युगी में से यह

सत्ययुग बीत गया अर्थात अब त्रेतायुग वर्तमान है। इस त्रेतायुग से काल की गणना कर काल-मापक संख्या को इकट्ठी करे।

पर यह कोई आवश्यक नहीं कि उक्त श्लोक से रचना-काल का बोध हो। रचयिता ऋषि ने केवल यही बतलाया है कि इस सिद्धान्त ग्रन्थ के अनुसार त्रेतायुग से अहर्गण (दिन-संख्या) निकालना चाहिए। बिना अहर्गण जाने ग्रहों का स्पष्टीकरण अर्थात् राशिचक्र में उनके इष्टकालिक स्थान का ज्ञान नहीं हो सकता। चाहे कुछ भी हो, यह निर्विवाद है कि यह ग्रन्थ अति ही प्राचीन है। इसकी प्राचीनता का एक यह भी प्रमाण है कि इसमें किसी अन्य आचार्य के मत का उल्लेख नहीं है, जैसा कि भास्कराचार्य ने अपने 'सिद्धान्त-शिरोमणि' में जिष्णुसुत (ब्रह्मगुप्त) के मत का उल्लेख कर उसका खण्डन किया है। 'सूर्य-सिद्धान्त' जैसे प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थ में भी पृथ्वी के लिए "भूगोल" शब्द आया है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि उस काल में भी पृथ्वी का गोल होना भारतवासियों को मालूम था।

मध्ये समान्तादण्डस्य "भूगोलो" व्योम्नि तिष्ठति।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥

अर्थ—ब्रह्माण्ड के बीच में यह भूगोल (पृथ्वी का गोला) आकाश में परम ब्रह्म (भगवान्) की परम धारणात्मिका (धारण करने वाली) शक्ति से ठहरा है।

नोट—गोल उस ठोस आकार (Solid figure) का नाम है जो किसी वृत्त को उसके किसी एक व्यास पर नचाने से बनता है।

यह प्रमाण तो 'सूर्य-सिद्धान्त' का हुआ जो एक आर्ष ग्रन्थ माना जाता है। अब अनार्ष (पौरुषेय) ग्रन्थों के भी प्रमाण सुनिए। पौरुषेय ग्रन्थों में प्राचीनतम ग्रन्थ 'आर्य भटीय' नामक ज्योतिष ग्रन्थ है, जिसकी रचना आचार्य आर्यभट ने शाकाब्द ४२१ (ई० स० ४९९) में कुसुमपुर (बिहार प्रान्त के अन्तर्गत पाटलिपुत्र व पटना) नामक नगर में की थी।

ब्रह्मकु शशि भृगु रवि कुज
गुरु कोण भगणान् नमस्कृत्य।
आर्य भट स्त्विह निगदति
कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ॥

अर्थ—परम ब्रह्म (परमात्मा) से अधिष्ठित पृथ्वी, चन्द्र, बुद्ध, शुक्र, सूर्य, मङ्गल, बृहस्पति, शनि आदि ग्रहों तथा नक्षत्रगणों को नमस्कार कर आर्यभट कुसुमपुर-वासियों से सम्मानित ज्ञान (ज्योतिः शास्त्र) को कहते हैं।

उक्त श्लोक से सम्बन्धित ग्रन्थ के रचयिता तथा रचना-स्थान मालूम हो गए। अब इसका रचना-काल बतलाते हैं।

षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः।
अधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः ॥

अर्थ—जिस समय वर्त्तमान (२८वीं) चतुर्युगी के तीन चरण (सत्य, त्रेता और द्वापर) तथा वर्त्तमान चरण (कलियुग) के ३६०० वर्ष बीत चुके थे, उस समय मेरे जन्म से २३ वर्ष बीत गए।

उक्त श्लोक से स्पष्ट है कि आचार्य आर्यभट ने 'आर्य-भटीय' को कलि सम्वत् ३६०० में २३ वर्ष की उमर में रचा था। अतः वर्त्तमान कलि सम्वत् ५०३१ में से ३६०० घटाया तो शेष १४३१ वर्ष बचे। इतने वर्ष 'आर्य भटीय' को बने हुए हो गए। वर्त्तमान शक १८५२ में से १४३१ घटाया तो शाकाब्द ४२१ शेष बचा। इसी शाकाब्द में उक्त ग्रन्थ की रचना हुई थी। ४२१ में से २३ को घटाया तो शाकाब्द ३९८ आर्यभट का जन्माब्द हुआ, जिसमें ७८ मिलाने से उनका जन्म सन् ४७६ ई० में हुआ सिद्ध हुआ।

आचार्य आर्यभट ने अपने 'आर्यभटीय' में कतिपय स्थलों पर पृथ्वी के सम्बन्ध में "गोल" शब्द का व्यवहार किया है।

भूग्रहभानां गोलार्द्धानि स्वच्छायया विवर्णानि।
अर्द्धानि यथासारं सूर्याभिमुखानि दीप्यन्ते ॥
वृत्तभपञ्जरमध्ये कक्ष्या परिवेष्टितः खमध्यगतः।
मृज्जल शिखि वायुमयो "भूगोलः" सर्वतोवृत्तः ॥
यद्वत् कदम्बपुष्प ग्रन्थिः प्रचितः समन्ततः कुसुमैः।
तद्वद्धि सर्व सत्त्वैर्जलजैः स्थलजैश्च "भूगोलः" ॥

अर्थ—पृथ्वी, चन्द्रमा एवं अन्यान्य ग्रह तथा अश्विनी आदि तारागण के गोलार्द्ध अर्थात उनके गोलों का आधा भाग अपनी छाया से निस्तेज रहता है और इनका शेषार्द्ध सूर्य के सम्मुख होने से प्रकाशित रहता है। जिनका शरीर बड़ा है उनके गोलार्द्ध बड़े रूप से एवं

जिनका शरीर छोटा है उनके गोलार्द्ध अल्प रूप से प्रकाशित होते हैं। यहाँ 'गोलार्द्ध' शब्द से न केवल पृथ्वी का ही, बल्कि ग्रहों तथा तारागणों का भी गोलत्व सिद्ध होता है।

वृत्ताकार राशि-चक्र के बीच, सूर्यादि ग्रहों की कक्षाओं से घिरा हुआ, मृत्तिका, जल, अग्नि तथा वायु का विकार यह भूगोल, सब ओर से घिरा, आकाश के मध्य में अवस्थित है।

जिस प्रकार कदम्ब के फूल की गाँठ सब ओर केशर से घिरी रहती है, उसी प्रकार यह भूगोल स्थावर-जङ्गम प्राणियों एवं नदी, पर्वत, आराम, ग्राम आदि से सब ओर घिरा हुआ है।

पृथ्वी के आकार के विषय में यही उदाहरण भास्कराचार्य ने भी अपने 'सिद्धान्त-शिरोमणि' में, जिसे उन्होंने शाकाब्द १०३६ में ३६ वर्ष की अवस्था में बनाया था, दिया है।

सर्वतः पर्वताराम ग्राम चैत्य चयैश्चितः।
कदम्ब कुसुमग्रन्थिः केसरप्रसरैरिव ॥

अर्थ—चारों ओर से वन, पर्वत, गाँव, मन्दिरों के समूहों से घिरा हुआ यह भूगोल वैसा ही दीखता है, जैसा कि केसरों से घिरा हुआ कदम्ब के फूल की गाँठ।

आचार्य ब्रह्मगुप्त ने अपने 'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त' को भीलमाल नामक स्थान में शाकाब्द ५२० में लिखा था। इसमें उन्होंने पृथ्वी को "कपित्थाकारा" अर्थात कैत के फल की सी आकार वाली लिखा है। कैत का फल सर्व ओर से गोल होता है।

यहाँ यह शङ्का होती है कि यदि पृथ्वी गोल है तो चिपटी क्यों दीखती है? इसका कारण 'सूर्य-सिद्धान्त' में यह बतलाया गया है—

अल्पकायतया मर्त्याः स्वस्थानात् सर्वतोमुखम्।
पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्राकारां वसुन्धराम् ॥

अर्थ—मनुष्य पृथ्वी की अपेक्षा बहुत छोटे शरीर वाले होने के कारण अपने स्थान से चारों ओर मुँह करते हुए गोलाकार पृथ्वी को भी चक्र के सदृश (चिपटी) देखते हैं। 'सिद्धान्त-शिरोमणि' में भास्कराचार्य इस प्रश्न का यों उत्तर देते हैं—

समो यतः स्यात् परिधेः शतांशः
पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान्।
नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना
समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा ॥

अर्थ—प्रत्येक गोल वस्तु की परिधि का सौवाँ भाग चिपटा दीखता है। पृथ्वी का गोला अत्यन्त बड़ा और मनुष्य उसकी अपेक्षा अत्यन्त छोटा है। यही कारण है कि पृथ्वीतल पर बसने वाले मनुष्य को वह चिपटी सी प्रतीत होती है।

पुराणों में पृथ्वी का जो वर्णन आया है उससे वह चिपटी सी जान पड़ती है। इसके अतिरिक्त हम लोगों को प्रत्यक्ष भी वह वैसी ही दीख पड़ती है। पर ज्योतिःशास्त्र के आचार्यों ने इस मिथ्या ज्ञान के खण्डन में जो ज़बर्दस्त दलीलें पेश की हैं, उन्हें भी सुनिए। आचार्य लल्ल 'स्वसिद्धान्त' ग्रन्थ में लिखते हैं—

समता यदि विद्यते भुव स्तरवस्तालनिभा वहूच्छ्रयाः।
कथमेव न दृष्टिगोचरं नुरहो यान्ति सुदूर संस्थिताः॥

अर्थ—यदि पृथ्वी चिपटी है तो बहुत दूर स्थित, ताड़ के समान बहुत ऊँचे-ऊँचे वृक्ष पूरे दृष्टि-गोचर क्यों नहीं होते? अर्थात दूरस्थित वृक्षों के केवल ऊर्द्ध भाग देख पड़ने का कारण यही है कि उनका अधः भाग पृथ्वी की गोलाई की ओट में आ जाती है।

भास्कराचार्य पृथ्वी को चिपटी मानने वालों से अपने 'सिद्धान्त-शिरोमणि' के गोलाध्याय में निम्नलिखित प्रश्न करते हैं—

यदि समा मुकुरोदर सन्निभा
भगवती धरणी तरणिः क्षितेः।
उपरि दूर गतोऽपि परिभ्रमन्
किमु नरैरमरैरिव नेक्ष्यते ॥
यदि निशा जनकः कनकाचलः
किमु तदन्तरगःसन दृश्यते।
उदगयं ननु मेरु रथांशुमान्
कथमुदेति च दक्षिण भागवे ॥

अर्थ—यदि पृथ्वी आइने के पेट के समान चिपटी है तो पृथ्वी के ऊपर अथच दूर घूमता हुआ सूर्य मनुष्यों से देवताओं की तरह क्यों नहीं देखा जाता! अर्थात् जैसे देवगण छः महीने तक लगातार सूर्य को देखते हैं;

जिससे उनका दिन छः महीनों का होता है; वैसे ही मनुष्यों को वह क्यों नहीं देख पड़ता? यदि कहो कि सोने का पहाड़ जो मेरु है उसकी ओट में सूर्य के चले जाने से हमारे यहाँ रात हो जाती है; अतः देवताओं की भाँति हमको छः महीने तक लगातार वह नज़र नहीं आ सकता, पर देवगण मेरु के ऊपर रहने के कारण उसको बराबर देखा करते हैं तो यदि तुम्हारे मत में सोने का पहाड़ ही रात का करने वाला है तो बतलाओ वह पहाड़ ही क्यों नहीं दीखता? इतना ऊँचा पहाड़ समभूमि होने से अवश्य दीखना चाहिए। फिर तुम तो पहाड़ उत्तर की ओर मानते हो। यदि ऐसा है तो सूर्य को सदैव उत्तर की ओर से उदय होता हुआ दीखना चाहिए। पर ऐसा नहीं होता। वह दक्षिणायन में दक्षिण की ओर क्यों उदय होता है?

समभूमि होने से ये सब बातें होनी चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं होता; इसीसे जाना जाता है कि पृथ्वी गोलाकार है।

पृथ्वी की गोलाई के अन्य भी बहुत से प्रमाण हैं, जैसे कि पृथ्वी के भिन्न-भिन्न स्थलों से तारागणों की स्थिति भिन्न-भिन्न प्रकार की देख पड़ना; एक ही समय में पृथ्वी के एक भाग में दिन, तो दूसरे भाग में रात का होना, इत्यादि। सूर्य-सिद्धान्त में लिखा है—

> ध्रुवोन्नतिर्भचक्रस्य नतिं मेरुं प्रयास्यतः।
> निरक्षाभिमुखं यातुर्विपरीते नतोन्नते॥

अर्थ—मेरु (North Pole) की ओर जाने वाले को ध्रुव तारा ऊँचा उठता हुआ दिखलाई देता है तथा राशि-चक्र नीचे को जाता मालूम पड़ता है। इसी तरह दक्षिण दिशा में जाने वाले को इसके विपरीत दीख पड़ता है। 'सिद्धान्त-शिरोमणि' में भी यही दिखलाया गया है—

> उदग्ध्रुवं याति यथा यथा नरस
> तथा तथा खान्नत भृक्ष मण्डलम्।
> उदग्ध्रुवं पश्यति चोन्नतं क्षितेः
> इत्यादि।

अर्थ—जैसे-जैसे मनुष्य उत्तर ध्रुव की ओर जाता है वैसे-वैसे राशिचक्र उसे आकाश से नीचे की ओर जाता दीखता है एवं ध्रुव तारा पृथ्वी से ऊपर की ओर उठता मालूम पड़ता है। इस दृश्य का कारण पृथ्वी की गोलाई के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। निरक्षप्रदेश (Equatorial Regions) में ध्रुव तारा क्षितिज (Horizon) से सटा देख पड़ता है; पर जैसे-जैसे उत्तर की ओर जाइए, वह आकाश में उठता जाता है, यहाँ तक कि मेरु पर पहुँचने से वह ठीक सिर के ऊपर आ जाता है।

एक ही समय में पृथ्वी के एक भाग में दिन तथा दूसरे भाग में रात का होना भी पृथ्वी के गोलत्व को ही सिद्ध करता है। आचार्य आर्यभट कहते हैं—

> उदयो यो लङ्कायां सोऽस्तमयः सवितुरेव सिद्धपुरे।
> मध्याह्नो यमकोट्यां रोमक विषयेऽर्द्धरात्रिः स्यात्॥

अर्थ—जिस समय लङ्का में सूर्य का उदय होता है, उस समय सिद्धपुर में सूर्यास्त, यमकोटि में मध्याह्न, और रोम में आधी रात होती है। यदि पृथ्वी चिपटी होती तो सर्वत्र एक ही काल में सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त तथा अर्द्धरात्रि होते। यही बात 'सिद्धान्त शिरोमणि' में भास्कराचार्य ने भी लिखी है—

> लङ्कापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्यात्
> तदा दिनार्द्धं यमकोटि पुर्य्याम्।
> अधस्तदासिद्धपुरेऽस्तकालः
> स्याद् रोमके रात्रिदलं तदैव॥

इसका अर्थ भी वही है, जो पूर्व श्लोक का है।

अब लङ्का आदि स्थान भूपृष्ठ के किस-किस भाग में अवस्थित हैं, वह बतलाते हैं। भारतीय ज्योतिर्विद उस दक्षिणोत्तर रेखा को जो कुरुक्षेत्र तथा उज्जयिनी से होती हुई पृथ्वी के दोनों ध्रुवों को मिलाती है, गणित कार्य के लिए प्रधान द्राघिमा (Prime Meridian) मानते हैं। इस रेखा को वे भूमध्य रेखा कहते हैं। भास्कराचार्य लिखते हैं—

> यल्लङ्कोज्जयिनी पुरोपरि कुरुक्षेत्रादि देशान् स्पृशत्।
> सूत्रं मेरु गतं बुधैर्निगदिता सामध्य रेखा भुवः॥

अर्थ—जो रेखा लङ्का और उज्जैन के ऊपर से होती हुई तथा कुरुक्षेत्र आदि देशों को छूती हुई दोनों ध्रुवों पर जाती है, वही भूमध्य रेखा है। इसी रेखा से किसी स्थान का देशान्तर (Longitude) निकालते हैं।

रेखा जिस स्थान पर भौम विषुव रेखा (Terrestrial Equator) को स्पर्श करती है उसीका नाम लङ्का है। लङ्का से पूर्व ९० अंशों की दूरी पर निरक्ष देश में जो स्थान है उसीको यमकोटि कहते हैं। इसी प्रकार उतनी ही दूरी पर अवस्थित पश्चिम के स्थान को रोमक, उत्तर के स्थान को सुमेरु तथा दक्षिण के स्थान को वड़वानल कहते हैं और लङ्का के ठीक नीचे भूमण्डल के दूसरी ओर सिद्धपुर नामक स्थान है।

> लङ्का कुमध्ये यमकोटिरस्याः
> प्राक् पश्चिमे रोमक पत्तनं च।
> अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुः
> सौम्येऽथ याम्ये वड़वानलश्च॥
> कुवृत्त पादान्तरितानि तानि
> स्थानानिषड् गोलविदो वदन्ति।

अर्थ—पृथ्वी के मध्य भाग में लङ्का है। उस लङ्का से पृथ्वी की परिधि की चौथाई में (९० अंशों पर) पूर्व की ओर यमकोटि, उतनी ही दूरी पर पश्चिम की ओर रोमक, उत्तर की ओर सुमेरु, दक्षिण की ओर वड़वानल तथा लङ्का के नीचे सिद्धपुर है। गोल-विद्या के आचार्यों ने ये छः स्थान कहे हैं।

पृथ्वी की गोलाई का एक और प्रमाण देकर इस विषय को समाप्त करते हैं। यह बात प्रत्यक्ष है कि भूपृष्ठ पर केवल निरक्ष देश को छोड़ कर और कहीं भी दिन-रात के मान सदा एक ही नहीं रहते। जब सूर्य उत्तर गोलार्द्ध में आता है तो वहाँ दिन बड़ा तथा रात छोटी होती है। इसी प्रकार जब वह दक्षिण गोलार्द्ध में जाता है तो वहाँ भी यही हाल होता है। और जब उत्तर गोलार्द्ध में दिन बड़ा होने लगता है तो दक्षिण गोलार्द्ध में रात बड़ी होने लगती है। इसका कारण पृथ्वी की गोलाई है। सूर्य के पृथ्वी की गोलाई की ओट में बहुत देर रहने के कारण दक्षिण गोलार्द्धवासियों को वह उतनी देर तक नज़र नहीं आता, जिससे वहाँ रात बड़ी होती है। और सूर्य के दक्षिण गोलार्द्ध में जाने पर उत्तर गोलार्द्ध में ठीक पूर्वोक्त कारण से ही रात बड़ी होती है। यदि पृथ्वी चिपटी होती तो सर्वत्र दिन-रात के मान एक ही रहते।

जब पृथ्वी का आकार कदम्ब के फूल सरीखा है और उसके चारों ओर बस्ती है तो उन मनुष्यों की स्थिति, जो हमारे स्थान के ठीक नीचे बसे हैं, वैसी ही होगी जैसे किसी मनुष्य को उल्टी टाँग टाँग दिया जाय अर्थात उनका सिर तो नीचे और पाँव ऊपर की ओर होगा; ऐसी दशा में वे नीचे क्यों नहीं गिर पड़ते? इस शङ्का का समाधान भास्कराचार्य इस प्रकार करते हैं—

> यो यत्र तिष्ठत्यवनीं तलस्थाम्
> आत्मानमस्या उपरिस्थितं च।
> स मन्यतेऽतः कुचतुर्थ संस्था
> मिथश्चते तिर्यगिवामनन्ति॥
> अधः शिरस्काः कुदलान्तरस्थाश
> छायामनुष्या इव नीर तीरे।
> अनाकुलास्तिर्यगधः स्थिताश्च
> तिष्ठन्ति ते तत्र वयं यथात्र॥

अर्थ—जो जहाँ रहता है वह वहाँ पर पृथ्वी को नीचे और अपने को उसके ऊपर स्थित मानता है। इस कारण पृथ्वी के प्रत्येक चतुर्थ भाग पर रहने वाले एक दूसरे को अपने से तिर्छा समझते हैं। और प्रत्येक गोलार्द्ध के रहने वाले एक दूसरे की अपेक्षा नीचे सिर वाले इस भाँति हैं जैसे जल के किनारे खड़ा हुआ मनुष्य अपनी छाया देखता है। इस प्रकार तिर्छे तथा नीचे रहने वाले अपने-अपने स्थान में वैसे ही बिना किसी घबराहट के रहते हैं जैसे हम लोग यहाँ रहते हैं। यदि एशिया वाले कहें कि अमेरिका वाले क्यों नहीं गिर जाते तो अमेरिका वाले भी यही कह सकते हैं कि एशिया वाले क्यों नहीं गिरते? पर कोई नहीं गिरता, कारण कि पृथ्वी अपनी आकर्षण-शक्ति से सब पदार्थों को अपनी ओर खींचे रहती है। और चूँकि पृथ्वी के चारों तरफ़ तुल्य रूप से आकाश है, उस पर से गिरना मानो आकाश में उड़ जाना है; अतः न पृथ्वी, न उसकी कोई चीज़ ही गिर कर कहीं जा सकती। भास्कराचार्य लिखते हैं :—

> आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत्
> खस्थं गुरुस्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
> आकृष्यते तत् पततीव भाति
> समे समन्तात् क पतत्वियं खे॥

(शेष मैटर ४३४ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

हृदय की परीक्षा

["मुक्त"]

उस दिन क्लब में इसी बात पर बहस छिड़ी हुई थी—हृदय क्या है? कैसा है? कितना बड़ा है? मन से उसका क्या सम्बन्ध है? उसका आकार क्या है? उसका वज़न कितना है? उसमें चेतना कितनी है?

क्लब के एक सदस्य ने कहा—हृदय एक ऐसी अद्भुत वस्तु है, जिसके सम्बन्ध में कोई निश्चित सिद्धान्त बना लेना मूर्खता है।

दूसरे सदस्य ने बीच में ही बात काट दी—लेकिन संसार के कितने ही बड़े वैज्ञानिकों ने वह मूर्खता कर ही डाली है।

तीसरे सज्जन ने कहा—हाँ, मैंने भी किसी अख़बार में पढ़ा था कि हृदय का वज़न पाँच तोला है।

चौथे—और वह लोथड़े की तरह का एक मांस-पिण्ड है।

पाँचवें—और शरीर के अन्य सभी अङ्गों की अपेक्षा वह अधिक चेतन और अनुभव करने की शक्ति रखने वाला है।

इतनी देर के बाद पहले सज्जन को फिर कुछ कहने का मौक़ा मिला। उन्होंने गम्भीरतापूर्वक सिर हिलाते हुए कहा—लेकिन महाशयो, मुझे खेद है कि फिर भी आप लोग किसी निश्चित सिद्धान्त पर नहीं पहुँच सके। आप लोगों की कन्ट्रोवर्सी केवल बाह्य विषयों को लेकर ही हुई है। मैं चाहता हूँ कि उसके आन्तरिक भागों पर भी, हमारे विचार के द्वारा, कुछ प्रकाश पड़ सके। और ऐसा तभी हो सकता है, जब आप शान्त होकर, गम्भीरतापूर्वक, उस पर विचार करने और एक दूसरे की बातें सुनने के लिए तैयार हों।

दूसरे सदस्य ने पहले की ओर अभिप्राय भरी आँखों से देख कर मुस्करा दिया। बोले—अच्छी बात है, तब आप ही अपना वक्तव्य कह जाइए।

दूसरे सदस्य का मनोभाव ताड़ते हुए पहले ने कहा—मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि आप मेरे ही वक्तव्य पर विचार करें। मैं तो चाहता हूँ कि आप सभी लोग अपना-अपना स्वतन्त्र मत हमारे सामने रक्खें और उनमें जो-जो सबसे अधिक युक्तिसङ्गत प्रतीत हों, उन्हीं पर विचार किया जाय। मेरा तो यह विश्वास है कि हृदय के रहस्य की किसी प्रकार की कोई मीमांसा कर लेना आसान और युक्तिसङ्गत नहीं है। हृदय एक अद्भुत पदार्थ है। वह यदि दुर्बल है तो बलवान भी है; अस्थिर है तो दृढ़ भी है; भीरु है तो निर्भय भी है। फिर यह कैसे निश्चित कर दिया जा सकता है कि वह क्या है, कैसा है? समय और परिस्थिति के अनुसार उसकी स्थिति और उसके स्वरूप में भेद होता रहता है। उदाहरण के लिए × ×

एक सदस्य बीच में ही चिल्ला उठे—उदाहरण की बात छोड़िए।

दूसरे ने कहा—अरे यार, यह विवाद तो बहुत शुष्क हो गया। हम लोग यहाँ दो घड़ी दिल बहलाने के लिए आते हैं, दर्शनशास्त्र का लेक्चर सुनने नहीं। रहने दो यह डिस्कशन यहीं पर।

फिर पहले वक्ता का रङ्ग न जम सका। लोगों ने हल्ला-गुल्ला मचा कर उन्हें चुप कर दिया। बेचारे यह स्वर्ग-सुयोग व्यर्थ जाते देख जी मसोस कर रह गए। उस दिन इस विवाद की कोई मीमांसा न हो सकी।

एक-एक करके जब लोग घर चलने लगे तो एक सज्जन बोले—भाई, छेड़ा तो बड़े मज़े का मज़मून था, लेकिन सिलसिला जमा नहीं।

दूसरा—हाँ, कुछ जान नहीं आई।

तीसरा—सारे क्लब में एक ही ऐसा आदमी है, जो सड़ी सी बात में भी जान डाल दे और वह दिवाकर है।

चौथा—वह आया नहीं था क्या आज?

दूसरा—आया तो था, मगर कुछ बोला नहीं। शायद किसी सोच में था। चुपचाप अलग ही अलग बैठा रहा।

इतने में तीसरे सज्जन के इशारे से आकृष्ट होकर इस दल ने देखा कि दिवाकर सब लोगों से अलग सिर

मुँझाए चुपचाप चला जा रहा है। इन लोगों ने उससे मिल कर कुछ पूछने-जाँचने की बात सोची। लेकिन पास जाने पर दिवाकर कतरा कर निकल गया। इन लोगों को उलझने का उसने मौक़ा ही न दिया।

❀

धीरे-धीरे, दरवाज़े की आहट बचाते हुए, जब दिवाकर ने घर के अन्दर प्रवेश किया तो चारों ओर अँधेरा फैल चुका था। पत्नी के कमरे में जाकर उसने देखा कि मिट्टी का दीपक, सरसों के तेल का बूँद-बूँद सोख कर, स्थिर-मन्थर भाव से जल रहा है। उसकी क्षीण-मलिन ज्योति घर भर में बिखरी हुई है। उसने शान्त दृष्टि से पत्नी की ओर देखा—उसके पीले मुँह पर एक अपूर्व सौन्दर्य छिटका हुआ था। गोद का बच्चा, उस समय, शायद रोते-रोते, थक कर माँ की गोद में सो गया था। दिवाकर ने यह करुण दृश्य देखा। देख कर उसका हृदय पिघल उठा। हृदय का वह द्रव, आँखों की राह, दो-एक बूँद बाहर भी निकल पड़ा।

दिवाकर क्षण भर खड़ा-खड़ा यही देखता रहा और सोचता रहा अपना अतीत और भविष्य। वर्तमान उसके सामने ही था, उस पर सोचने-विचारने की गुञ्जायश न थी। फिर वह एक-एक पग बढ़ाता हुआ रोगिणी पत्नी के सिरहाने जा खड़ा हुआ। झुका, घुटनों के बल बैठा, दाहिने हाथ से पत्नी के ललाट का स्पर्श किया—वह तत्ते तवे सा जल रहा था। दिवाकर ने हाथ खींच लिया, साथ ही चन्द्रकला ने आँखें खोल दीं।

आँखें खोल कर चन्द्रकला ने देखा—सिरहाने पति-देव खड़े हैं। उसने सन्तोष की एक लम्बी साँस ली। कहा—आप आ गए?

"हाँ।"

"कहाँ गए थे?"

"कुच की ओर—और कहाँ जाता?"

"..............।"

"तबियत अब कैसी है?"

चन्द्रकला ने स्वामी के प्रश्न के उत्तर में हँसने की चेष्टा की। एक फीकी और मलिन एवं वेदना-भरी मुस्कराहट उसके ओठों पर खेल गई। उसने कहा—क्या कहूँ कैसी हूँ? यहाँ दर्द हो रहा है। बुख़ार तो है ही।

उसने हृदय की ओर इङ्गित किया। दिवाकर ने सोचा—छत्र वाला प्रश्न यहाँ भी आ पहुँचा। हृदय में दर्द है, ओह! कैसी भयानक बात है। वह तो कुछ दूसरी ही कल्पना करता हुआ घर आया था। दिवाकर ने पूछा—डॉक्टर साहब नहीं आए थे?

"ना।"

"अच्छा तो मैं ही एक बार उनके पास हो आऊँ।"

दिवाकर ने उतार कर रक्खी हुई चादर फिर काँधे पर डाल ली। वह दरवाज़े की ओर बढ़ा ही था कि चन्द्रकला ने दुर्बल आवाज़ में पुकारा—सुनिए!

दिवाकर ने लौट कर पीछे देखा, कहा—मुझे बुला रही हो?

"हाँ!"

नज़दीक जाकर दिवाकर ने पूछा—क्या कहती हो?

"बैठिए।"

"ज़रा डॉक्टर के यहाँ से हो आऊँ।"

"नहीं, बैठिए।"

दिवाकर बैठ गया। बोला—क्या है?

दिवाकर के कुर्ते के बटन में अपनी दुर्बल और पतली उँगलियाँ उलझाती हुई चन्द्रकला ने पूछा—एक बात कहूँ?

"कहो।"

"आप इतनी तकलीफ़ मेरे लिए क्यों उठाते हैं?"

अबकी दिवाकर की बारी थी। उसने भी मुश्किल से रुलाई रोक कर कहा—उसके लिए तुम्हें चिन्ता न करनी होगी कला! तुम अच्छी हो जाओगी तो मैं अपनी सारी तकलीफ़ भूल जाऊँगा।

"लेकिन मैं अच्छी हो जाऊँगी, इसका ही क्या निश्चय है?"

चन्द्रकला के प्रश्न में अविश्वास का कम्पन था और भय की दुर्बलता भी। चन्द्रकला के मन की बात दिवाकर ने समझी। आँखों में छलक आई हुई आँसू की बूँदों को उसने मुँह फिरा कर पोंछ लिया। भरे हुए गले से, स्नेह-भरी वाणी में कहा—ऐसी अमङ्गल की बात न कहो; तुम्हारी गोद में बच्चा है।

दिवाकर ने बच्चे की ओर इशारा किया। चन्द्रकला रो दी। बोली—उसी की तो मुझे भी चिन्ता है स्वामी, नहीं तो जिसे आप अमङ्गल कहते हैं, वही मेरे मङ्गल

की यात्रा होती। लेकिन काल बली है, उस पर किसका वश चलेगा ?

"तुम अच्छी हो जाओगी कला ! फ़िज़ूल की बातें न करो।"

"झूठी आशा पर मन को कब तक बहलाए रक्खूगी ? अब मुझे बहुत देर नहीं है।"

दिवाकर अब सँभाल न सका। टप-टप आँसू की बूँदें चन्द्रकला के गाल पर गिरीं। वह चौंक उठी। उसने हाथ बढ़ा कर आँचल से दिवाकर के आँसू पोंछ दिए। पर उस समय वह स्वयं ही रो रही थी; क्षण भर पति-पत्नी जी खोल कर रोए। रोदन का आवेग जिस समय मन्द पड़ा, उस समय दोनों का मन दृढ़ और शान्त था।

दिवाकर डॉक्टर को ले आने के लिए चला गया। एक बार चन्द्रकला के हृदय की परीक्षा करनी होगी। यही तो अन्तिम बाज़ी है !

५

"डॉक्टर ! डॉक्टर !!" रात को दस बजे के बाद जब दिवाकर ने डॉक्टर मनोहरलाल के दरवाज़े पर आवाज़ लगाई, उस समय वे सोने की तैयारी कर रहे थे। पत्नी ने कहा—कोई बाहर बुला रहा है।

डॉक्टर—भई, मैं तो इस पेशे से ऊब गया हूँ। न दिन को चैन, न रात को। रुपए ज़रूर मिलते हैं, मगर यह क्या रुपया कि दम भर आराम करने को जी तरस जाय। हमसे वही अच्छे जो दिन भर मजूरी करके और सूखी रोटी ही खाकर रात भर चैन से पैर फैला कर सो तो लेते हैं।

उधर पति-पत्नी में इस प्रकार बातचीत हो रही थी, इधर दिवाकर सड़क पर टहल-टहल कर न जाने किस उधेड़-बुन में पड़ा हुआ था। उसने एक बार मनोहरलाल की विशाल अट्टालिका पर नज़र डाली, फिर एक लम्बी साँस लेकर मुँह फेर लिया। उसे अतीत की न जाने कितनी घटनाएँ एक साथ ही याद आ गईं। मनोहरलाल उसके सहपाठी थे। आज मनोहरलाल धनी हैं, मानी हैं, सुखी हैं। और वह ? उसके भाग्य से तो मानों सुख और शान्ति का सम्पर्क ही नहीं है। वह फिर गम्भीर चिन्ता में डूब गया—इस वैषम्य का कारण क्या है ?

स्विच दबाते ही भक से बिजली की रोशनी जल उठी। उसके प्रखर प्रकाश में डॉक्टर ने दिवाकर को पहिचाना। बोले—अरे ! तुम हो दिवाकर ? इतनी रात को कहाँ ? कैसे ? कुशल तो है ? मैंने समझा कोई पेशेण्ट है।

"पेशेण्ट ही होकर आया हूँ भाई"—दिवाकर ने कहा—"एक बार ज़रा घर तक चलना होगा। उन्हें देख लो। तबियत फिर बहुत ख़राब हो गई है।"

"ओ हो ! क्या है ? ज्वर ? वेग बहुत बढ़ गया है क्या ? पहले क्यों नहीं ख़बर दी ?"

"नहीं, ज्वर नहीं। अबकी बार दूसरा मर्ज़ है—हृदय में दर्द है। तुम्हारा स्टेथेस्कोप है न ? ले लेना। एक बार परीक्षा करनी होगी। ज़रा सावधानी से देखना। चलो, जल्दी चलें।"

डॉक्टर ने कोचवान को आवाज़ दी—गाड़ी तैयार करो।

दिवाकर ने कहा—क्या करोगे गाड़ी-वाड़ी ? पैदल ही चले चलो न ! कितनी दूर है ?

"दूर की बात नहीं। फिर मुझे लौटना भी तो है न ?"

"न होगा मैं पहुँचा जाऊँगा। लेकिन नहीं, शायद न आ सकूँ। लाने दो गाड़ी।"

गाड़ी लाने में बहुत देर न लगी। दोनों मित्र घर की ओर रवाना हुए।

६

"कहाँ दर्द है ? इन्हें बतला दो। ये परीक्षा करेंगे।"

चन्द्रकला ने एक बार सिर उठा कर पति की ओर और फिर डॉक्टर की ओर देखा। कुछ बोली नहीं। डॉक्टर ने आगे बढ़ कर जेब से स्टेथेस्कोप निकालते हुए पूछा—दर्द कहाँ है ?

चन्द्रकला ने फिर एक बार कातर नयनों से डॉक्टर की ओर देखा। बोली—दर्द कहाँ है डॉक्टर साहब ? आपको उन्होंने मुफ़्त में तकलीफ़ दी है। मेरे दर्द की दवा आपके पास नहीं है और न इस यन्त्र के द्वारा मेरे दर्द की परीक्षा ही की जा सकती है। उसके लिए तो माँ का दिल चाहिए। ओह ! मेरा बच्चा !!

सहृदय डॉक्टर ने माँ के हृदय की व्यथा समझी। उन्होंने करुणा-भरी आँखों से एक बार चन्द्रकला की ओर

देखा—यदि वे उस पतिव्रता को किसी प्रकार बचा सकें !

डॉक्टर ने चन्द्रकला की नाड़ी देखी, हृदय की परीक्षा की, लक्षण देखे और समझ गए कि उसे सन्निपात होने में अब अधिक देर नहीं है। वे विचलित हुए। दिवाकर से उन्होंने कहा—देखो, घर जाकर मैं एक दवा भेज देता हूँ। दो-दो घण्टे पर उसे देते जाओ। इन्हें बहुत हिलने-डुलने मत देना। दवा भी सावधानी से देना। अवस्था चिन्ताजनक है, लेकिन यदि रात कुशलपूर्वक बीत गई तो फिर विशेष ख़तरा न रह जायगा।

डॉक्टर तो यह कह कर चले गए। दिवाकर हतप्रभ सा चुपचाप बैठा रह गया।

दिवाकर के गार्हस्थ्य जीवन का प्रारम्भ विपत्तियों और असुविधाओं के साथ हुआ था। निरन्तर दुख और विपत्ति के प्रहार सहते-सहते दिवाकर उन्मत्त सा हो गया था। उसमें अब और सहने की शक्ति न रह गई थी। आज रोगिणी पत्नी के सिरहाने बैठ कर वह उन्हीं दुखों और विपत्तियों की पुनरावृत्ति कर रहा था।

डॉक्टर का नौकर आकर दवा दे गया। यथारीति दिवाकर ने दवा देना प्रारम्भ कर दिया।

रात में कोई विशेष उपद्रव नहीं दीख पड़ा। बीच-बीच में रोगिणी कुछ असम्बद्ध प्रलाप ज़रूर करने लगती थी, किन्तु इसके अतिरिक्त और कोई उपद्रव न था। दो पहर रात बीत जाने के बाद तो उसे कुछ नींद भी आ गई। दिवाकर कुछ आश्वस्त हुआ।

उस समय तीन पहर रात बीत गई होगी, जब सहसा चन्द्रकला ने अत्यन्त क्षीण कण्ठ से पुकारा—अजी, सो गए क्या ?

दिवाकर को सचमुच ही कुछ झपकी आ रही थी। चन्द्रकला की आवाज़ सुन कर वह चौंक पड़ा। बोला—"क्या कहती हो कला ?" वह पत्नी के सिर के पास झुक गया।

"देखो, मेरे बच्चे को न जाने क्या हो गया है, हिलता-डोलता नहीं, रोता नहीं, दूध भी नहीं पीता। रात से इसके मुँह में एक बूँद भी दूध नहीं गया है।"—चन्द्रकला निःशब्द रोने लगी।

"रोती क्यों हो ? सोया होगा। अभी उठ जायगा"—कह कर दिवाकर ने पत्नी को ढाढ़स बँधाया, किन्तु अनिष्ट की किसी अज्ञात आशङ्का से उसका हृदय काँप उठा। वह बच्चे के पास गया।

बच्चा उस समय भी माँ की गोद में सुख से लेटा हुआ था, लेकिन जीवित नहीं, मृत था। दिवाकर ने उसे उलट-पुलट कर देखा—जीवन का कोई चिन्ह शेष नहीं था। उसकी इच्छा हुई कि एक बार जी खोल कर रो ले, मगर रो न सका। हृदय की व्यथा हृदय में ही बलपूर्वक दबा कर उसने बच्चे को उठा लिया और उसे दूसरे कमरे में ले गया। वहाँ जाकर माता के समान कोमल हृदय वाले दिवाकर ने बार-बार मृत पुत्र का मुख चूमा, फिर आत्मविस्मृत होकर, चुपचाप फूल-फूल कर रोने लगा। उस समय उसके ध्यान में आया कि मेरा बच्चा देख-रेख के अभाव में, भूख-प्यास से तड़प कर मर गया है। जब घर में मैं न रहा होऊँगा और चन्द्रकला ज्वर के उत्ताप में बेहोश रही होगी, उस समय भूख-प्यास से छटपटा-छटपटा कर यह सुकुमार बच्चा न जाने कितना रोया होगा ! न जाने कितनी बार इसने माता के सूखे स्तनों को चूसने का असफल प्रयत्न किया होगा और न जाने कितनी ही बार वह माता के संज्ञाहीन शरीर पर लोट-पोट हो गया होगा !! ओह ! उसकी थोड़ी सी असावधानी का यह कैसा भीषण परिणाम है !!

दिवाकर फिर रोया, फिर रोया, बार-बार रोया, मानो केवल एक रोना ही उसके जीवन का चिर-उद्देश्य हो ! फिर बच्चे की ममता छोड़ कर वह पत्नी के कमरे में गया। वह डर रहा था, जो कुछ उसने खो दिया है, उसकी ममता में जो है, कहीं उसे भी न खो देना पड़े। इसी से उसने अपना कलेजा पत्थर का बनाया। आज उसके हृदय की कैसी भीषण परीक्षा हो रही है !!

चन्द्रकला ने दिवाकर को देखते ही कहा—आप मेरे बच्चे को कहाँ छीन ले गए ? मैं अब थोड़ी ही देर की मेहमान हूँ। उसे मुझसे अलग न कीजिए।

एक बार दिवाकर के जी में आया कि वह चन्द्रकला को बता दे कि उसने चन्द्रकला से उसके बच्चे को अलग नहीं किया है, बल्कि बच्चा स्वयं ही सदा के लिए उसे छोड़ कर चला गया है, किन्तु यह बात वह किसी प्रकार ज़बान पर न ला सका। आँखों में आँसू और हृदय में तूफ़ान छिपा कर उसने धीरे से कहा—"वह सो रहा है, जाग जायगा।" इसके आगे दिवाकर से और

कुछ न कहा गया। मुँह फेर कर उसने उमड़े हुए आँसू पोंछ लिए।

चन्द्रकला ने कहा—मुझसे झूठ न बोलिए। अब मैं अधिक देर तक जीऊँगी नहीं। मुझे छलने से आपको क्या लाभ होगा? मेरा बच्चा फिर एक बार मेरी गोद में दे दीजिए।

दिवाकर बिना कुछ बोले कमरे से बाहर चला गया। बच्चे को एक कपड़े में लपेट कर वह ले आया और पत्नी की बग़ल में उसे सुला दिया। उस समय उसके हृदय में सौ-सौ बिच्छुओं के दंश से भी अधिक भयानक पीड़ा हो रही थी।

चन्द्रकला बोली—मेरे बच्चे को तुमने ढक क्यों रक्खा है? एक बार मुझे उसका मुँह देख लेने दो। एक बार मुझे उसको प्यार कर लेने दो। उसे मेरी छाती पर सुला दो।

चन्द्रकला स्वयं ही बच्चे का आवरण हटाने लगी। रोक कर दिवाकर ने कहा—हाँ, हाँ, यह क्या करती हो? कच्ची नींद से जागने पर उसकी तबियत ख़राब हो जायगी। अभी देख लेना। जल्दी क्या है?

चन्द्रकला ने फिर ज़िद नहीं किया। वह चुपचाप पड़ गई—जैसे थक गई हो।

पन्द्रह-बीस मिनट के बाद चन्द्रकला ने ही शान्ति भङ्ग की। बोली—अजी, मुझे एक शीशा देना। मुझे जैसे कुछ सूना-सूना सा मालूम पड़ता है—देखूँ!

यन्त्र की तरह उठ कर दिवाकर ने पत्नी के हाथ में शीशा दे दिया। चन्द्रकला ने शीशे में अपना क्षीणप्रभ, पीला, उदास चेहरा देखा। देख कर एक फीकी हँसी हँसी। फिर बोली—मेरी माँग का सेंदुर क्या हुआ? ओह! कैसा सूना-सूना सा लगता है। किसी ने मुझे सेंदुर भी नहीं लगा दिया!! लाओ डिबिया, आज मैं ख़ुद ही लगा लूँ।

चुपचाप दिवाकर ने डिबिया भी ला दी। चन्द्रकला ने काँपते हाथों से माँग में सिन्दूर लगाया। फिर उसने पति के चरणों का स्पर्श किया। शीशे में फिर अपना मुँह देखा। फिर हँसी। बोली—अब ठीक है। अब अच्छी लगती हूँ। अजी, आप इस तरह उदास क्यों हैं? एक बार पहले ही की तरह हँस कर कह दीजिए—तुम बड़ी सुन्दर हो!

चन्द्रकला ने पति की ओर देखा। वह पत्थर की तरह निश्चल था, निर्जीव! चन्द्रकला ने पुनः कहा—अच्छा, अब एक बात और कहती हूँ, बच्चे को उठा कर मेरी छाती पर लेटा दीजिए। फिर मैं सुखपूर्वक मर सकूँगी।

कातर नयनों से चन्द्रकला ने पति की ओर देखा। दिवाकर पत्नी की अन्तिम आकांक्षा की अवहेलना न कर सका। कपड़े में लिपटे हुए बच्चे को उसने पत्नी की छाती पर लेटा दिया।

चन्द्रकला ने बच्चे को बार-बार प्यार किया, चूमा, खेलाया, आदर किया; फिर उसे गोद से उतार कर बग़ल में सुला दिया। फिर वह चुप हो गई। आँखें उसने मूँद लीं—शायद सदा के लिए ही। दिवाकर ने एक बार उसे पुकार कर जान लिया कि वह अब चिर-जीवन के लिए उससे विदा ले चुकी है।

दिवाकर रोया नहीं, उसने आँसू भी नहीं बहाया। अपना सर्वस्व खो लेने के बाद रोने और आँसू बहाने के लिए उसके पास कुछ शेष नहीं रह गया था। वह चुपचाप अपनी सूनी आँखों से प्रभात की प्रथम आलोक-रश्मि की ओर देखता रह गया।

५

घर में उस समय भी दो लाशें पड़ी थीं। दिवाकर उन्मत्त की भाँति विमनस्क होकर चुपचाप बैठा था। अतीत की एक-एक घटनाएँ उसे आज प्रत्यक्ष की भाँति दीख पड़ रही थीं, और मन ही मन वह उनकी आवृत्ति कर रहा था। उस समय उसे और सब कुछ भूल गया था। केवल बीच-बीच में कभी पत्नी की ओर और कभी पुत्र की ओर देख लेता था। उस दृष्टि में कितनी गम्भीर वेदना होती थी, कितनी मर्मभेदी पीड़ा!!

उसे याद आई आज से सात बरस पहले की एक घटना। उस समय वह काशी के हिन्दू-विश्वविद्यालय में बी० ए० क्लास का विद्यार्थी था। उस बार बड़े दिन की छुट्टियों में घर जा रहा था। जाड़े का दिन था, सवेरे का पहर। लोग गाड़ी में अपने-अपने ओढ़ने-बिछौनों में लिपटे सो रहे थे। दिवाकर भी गले तक दुलाई ओढ़े कोई उपन्यास पढ़ रहा था। उसके बग़ल वाली तीन बेञ्चों पर एक परिवार यात्रा कर रहा था। दो स्त्रियाँ

थीं, एक बच्चा और एक पुरुष। स्त्रियों में एक प्रौढ़ा थी, दूसरी १२-१३ वर्ष की किशोरी। काशी से ही ये दिवाकर के सहगामी हुए थे।

सहसा दिवाकर की नज़र ऊपर वाले झूलते हुए बर्थ पर पड़ी। उस पर उक्त परिवार का सामान लदा हुआ था। ट्रङ्क थे, बाल्टियाँ थीं, खाट-खप्पर था और बिस्तर-कपड़ों का विशाल बण्डल भी था। एक ट्रङ्क खिसकता-खिसकता बिलकुल किनारे आ गया था और नज़दीक था कि वह बालिका के सिर पर गिर पड़े कि तड़ित् वेग से दिवाकर उठ खड़ा हुआ। उसने अपनी दोनों विशाल बलिष्ठ भुजाएँ सामने रोप दीं। ट्रङ्क भीषण आवाज़ के साथ दिवाकर के माथे पर से होता हुआ हाथों पर गिर पड़ा। बालिका की रक्षा हो गई।

बालिका की रक्षा तो हो गई, मगर दिवाकर का सिर फूट गया, हाथों की हड्डी टूट गई। सांघातिक चोट लगी। डब्बे भर में शोर मच गया। लोग जाग पड़े। चारों ओर दिवाकर की बहादुरी की तारीफ़ होने लगी। बालिका के माता-पिता भी जागे। माता ने दिवाकर को असंख्य आशीर्वाद दिए, पिता ने अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट की। रेशम की चादर फाड़ कर सिर का ज़ख़्म बाँध दिया गया। इलाहाबाद पहुँच कर बालिका के माता-पिता ने अत्यन्त आग्रहपूर्वक दिवाकर को वहीं उतार लिया। वह अपने घर—कानपुर—न जा सका।

बालिका के पिता का नाम था घनश्याम। माता शशिप्रभा थीं। बालिका चन्द्रकला और बालक शिवकुमार यही दो उनकी सन्तान थे। दिवाकर इसी परिवार में रह कर चिकित्सा कराने लगा। हाथ और सिर के ज़ख़्मों के अच्छा होने में प्रायः बड़े दिन की सारी छुट्टी समाप्त हो चली।

इन कई दिनों तक इस परिवार में रह कर दिवाकर ने सबके हृदय में अपने लिए एक स्थान बना लिया था। बालिका चन्द्रकला के हृदय में अपने त्राणकर्ता के प्रति जो कृतज्ञता का भाव था, धीरे-धीरे वह सहज-स्नेह के रूप में परिणत होता गया। दिवाकर ने भी बालिका से बड़ी ममता बढ़ा ली। यहाँ तक कि जब छुट्टियों के दिन समाप्त हो चले और दिवाकर बनारस लौट जाने की बात सोचने लगा तो बालिका बहुत उद्विग्न हो गई। उसने ६ बार एकान्त में दिवाकर से कहा कि बिना गए काम न चलेगा? पगली चन्द्रकला की बात का उत्तर प्रत्येक बार दिवाकर ने हँस कर ही दिया।

आख़िर बनारस जाने का दिन आ ही गया। दिवाकर जब घनश्याम जी से विदा होने गया, तो उनकी आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने कहा—बेटा, तुम्हारे प्रति तो मन में इतनी ममता हो गई है कि तुम्हें कहीं अलग जाने देने की इच्छा नहीं होती। जान पड़ता है, जैसे तुम उस जन्म के इसी घर के कोई हो। यहाँ भी तो कॉलेज हैं। तुम यहीं कहीं ऐडमिशन क्यों नहीं ले लेते?

दिवाकर ने अप्रस्तुत भाव से उत्तर दिया—कोई ख़ास बात तो नहीं है। पिता जी से एक बार पूछना पड़ेगा। बनारस छोड़ने का कारण बताना पड़ेगा। देखा जायगा, अगले साल से आ जाऊँगा।

घनश्याम—अगर कहो तो मैं तुम्हारे पिता जी से आज्ञा ले लूँ।

दिवाकर—इतनी जल्दी क्या है? अगले साल ज़रूर आ जाऊँगा।

घनश्याम ने फिर और आग्रह न किया। घर के अन्य लोगों से विदा होकर दिवाकर चन्द्रकला से विदा लेने चला। चन्द्रकला से विदा होना ज़रा मुश्किल था। लेकिन काम तो यह भी निबटाना ही था।

चन्द्रकला ने कहा—तो क्या आज ही जाइएगा?

दिवाकर—हाँ।

चन्द्रकला—क्या गए बिना किसी तरह काम नहीं चलेगा?

दिवाकर—नहीं चन्द्रकला, छुट्टियाँ ख़तम हो गई हैं। कॉलेज में हाज़िरी देनी है।

चन्द्रकला—आप यहीं के किसी कॉलेज में क्यों नहीं आ जाते?

दिवाकर—तुम्हारे पिता जी ने भी यही बात कही है। देखो, अगले साल यहाँ आने की कोशिश करूँगा।

चन्द्रकला—कोशिश क्या?

दिवाकर—पिता जी को भी तो समझाना है! पूछेंगे, बनारस छोड़ कर इलाहाबाद क्यों जा रहे हो, तब क्या जवाब दूँगा?

चन्द्रकला—उहँ, जवाबों की क्या कमी है? कह दीजिएगा, वहाँ से यहाँ पढ़ाई अच्छी होती है। वहाँ जी

नहीं लगता। स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। बहुत सी बातें हैं।

दिवाकर—अच्छी बात है चन्द्रकला, इस बार तुम्हें ही 'गुरु जी' बनाऊँगा। अब चलता हूँ। फिर मिलूँगा।

कितनी ही पुरानी बातों की स्मृति ने चन्द्रकला की आँखों में आदर के आँसू भर दिए। थोड़ी देर तक वह उन्हीं आँसू भरी आँखों से दिवाकर की ओर देखती रही। दिवाकर भी चुपचाप उसकी ओर ताकता रहा। कुछ देर इसी प्रकार बीत गया। दोनों ही निश्चेष्ट थे, मौन थे, उदास थे। दोनों ही के मन में भावनाओं का अपार समुद्र लहरा रहा था। मन की वह अवस्था कैसी दयनीय थी, कितनी अवाञ्छनीय !!

थोड़ी देर बाद चन्द्रकला ने ही मौन भङ्ग किया। बोली—आप मुझे भूल तो न जाइएगा ?

"नहीं चन्द्रकला, अब जीवन भर तुम लोगों को कभी न भूल सकूँगा।"

"यदि कभी मैं बीमार पड़ूँगी तो आप मुझे देखने चले आवेंगे ?"

"तुरत।"

"तब तो मैं ज़रूर बीमार पड़ूँगी।"

"पागल हो चन्द्रकला ? ऐसी बातें भी कहते हैं ?"

"अच्छा बताइए, कब आइएगा ?"

"जब छुट्टी मिलेगी, तभी चला आऊँगा।"

"अच्छा वादा कीजिए कि अगले साल ज़रूर यहाँ चले आइएगा।"

"विश्वास रक्खो चन्द्रकला, ज़रूर चला आऊँगा।"

थोड़ी देर फिर शान्ति रही। उसके बाद चन्द्रकला ने फिर कहा—मेरा मन न जाने कैसा करता है। जान पड़ता है, जैसे यहाँ से जाकर आप हम लोगों को भूल जाएँगे।

चन्द्रकला की आँखों में आँसू भर आए।

दिवाकर ने कहा—तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ चन्द्रकला कि मैं इस जीवन में तुम्हें भूल नहीं सकता ? मेरी बातों पर विश्वास न हो तो छाती चीर कर देख लो। तुम्हारा यह भरा हुआ चेहरा मुझसे देखा नहीं जाता। तुम दया कर मेरे लिए यह उदासी दूर कर दो।

चन्द्रकला अब तक अपने को रोके हुए थी। अब न सँभाल सकी। उसकी आँखों से बह-बह कर आँसुओं की धाराएँ उसके गालों को भिगाने लगीं। उसने आँचल से मुँह छिपा लिया।

दिवाकर का सारा शरीर जैसे अवश हो गया हो। उसने कहा—तुम रोती हो चन्द्रकला, तो यह लो, मैं कहीं नहीं जाता। पढ़ाई जाय चूल्हे में, मैं तुम्हें रोती हुई छोड़ कर पढ़ने नहीं जा सकता।

जैसे यही निश्चय करके दिवाकर धम्म से ज़मीन पर बैठ गया।

चन्द्रकला ने भीगा हुआ आँचल मुँह पर से हटा कर कहा—नहीं, यह न होगा। मैं स्त्री हूँ, दुर्बल हूँ, इसी से रोती हूँ। आप मेरे लिए अपनी पढ़ाई न छोड़िए। दया कर जाइए। अब मैं न रोऊँगी।

दिवाकर चन्द्रकला से विदा होकर चला गया। रास्ते में जब तक वह दीख पड़ता रहा, तब तक खिड़की में बैठी हुई चन्द्रकला अपलक नयनों से उसे निहारती रही। जब उसका एका आँखों से ओझल हो गया, तब अपने कमरे में जाकर वह फूल-फूल कर रोने लगी।

अगले साल दिवाकर प्रयाग में ही पढ़ने के लिए आ गया। घनश्याम जी के यहाँ ही उसे रहना पड़ा।

इसके बाद की कथा बहुत लम्बी है। दिवाकर ने बी० ए० पास किया। चन्द्रकला से उसका व्याह हो गया। व्याह के बाद कुछ दिन सुख से ही बीते, लेकिन इसके बाद ही विपत्ति का प्रारम्भ हुआ। महामारी से एक ही साल में माता-पिता, सास-ससुर सबका देहान्त हो गया। दिवाकर की परीक्षा के दिन आने लगे।

उसके बाद चन्द्रकला ने जीवन के थोड़े से दिन, विपत्तियों का आघात सहते हुए, जिस प्रकार बिताए, उनका उल्लेख न करना ही अच्छा है। आज वह चन्द्रकला भी न रही। एक बच्चा उसके गर्भ से हुआ था, फूल-सा सुन्दर, सुकुमार। दिवाकर अपनी लापरवाही से उसकी भी रक्षा न कर सका। आज वह भिखारी है, सर्वस्वहीन है !!

दिवाकर ने फिर एक बार दोनों शवों की ओर देखा। चन्द्रकला जैसे उस समय भी मुस्करा रही थी।

इसी समय डॉक्टर ने घर में प्रवेश किया। डॉक्टर को देखते ही दिवाकर के हृदय का रुद्ध उच्छ्वास फूट निकला। वह चिल्ला उठा—डॉक्टर ! डॉक्टर !! मैं तो

किसी तरह उसे नहीं बचा पाया भाई! दोनों ही मुझे अकेला छोड़ कर चले गए। अब मैं ही क्यों जीता हूँ?

डॉक्टर ने समझा-बुझा कर दिवाकर को शान्त किया। फिर दोनों बन्धु मृतकों के संस्कार का उद्योग करने लगे।

५

चन्द्रकला को मरे तीन साल बीत चुके थे।

गर्मी के दिन थे, सन्ध्या का समय। दिवाकर अपनी छत पर टहल रहा था। धीरे-धीरे सन्ध्या का अन्धकार गाढ़ से गाढ़तर होता हुआ धरित्री को आच्छन्न कर रहा था। उसी निविड़ अन्धकार में आँखें गड़ाए दिवाकर चुपचाप टहल रहा था। सहसा उसकी आँखों में एक प्रकाश-मूर्ति चमक उठी। सामने की छत पर बाल खोले हुए एक रूपसी सुन्दरी आ खड़ी हुई। वह जैसे साक्षात् अप्सरा हो। दिवाकर का ध्यान भङ्ग हुआ। उसने उत्सुक होकर आगता रमणी की ओर देखा।

"दिवाकर बाबू!"—रमणी ने कोमल कण्ठ से पुकारा।

(४६६ पृष्ठ का शेषांश)

अर्थ—पृथ्वी आकर्षण शक्ति वाली है। अतः वह अपनी शक्ति से आकाशस्थ भारी पदार्थ को अपनी ओर खींचती है, जिससे वह गिरता हुआ मालूम पड़ता है। परन्तु स्वयम् यह पृथ्वी, जिसके चारों तरफ़ तुल्य रूप से आकाश है, गिर कर कहाँ जाय! सारांश यह कि जैसे हम एशिया वाले ऊपर को नहीं उड़ जाते वैसे अमेरिका वाले भी ऊपर को नहीं उड़ सकते; क्योंकि जिसे हम "नीचे गिरना" समझते हैं वह उनके लिए "ऊपर को उड़ना" है।

पृथ्वी के आकार के विषय में प्राचीन भारतीय आचार्यों के मत का दिग्दर्शन पाठकों को इस प्रकार करा, अब केवल एक बात यहाँ बतला कर इस लेख का उपसंहार करते हैं। प्राचीन विद्वान पृथ्वी को पूर्णरूप से गोल (Perfect Sphere) मानते थे; पर आधुनिक विद्वान ऐसा न मान कर उसे, दोनों ध्रुव प्रदेशों के कुछ चिपटे होने के कारण, एक नत ध्रुव गोलाभास (Oblate Spheroid) मानते हैं, जिससे उसका ध्रुवीय व्यास विषुवीय व्यास से २६ मील कम आता है।

* * *

दिवाकर बाबू चमक उठे। बोले—क्या है मोहिनी!

"आज आप टेनिस खेलने नहीं गए?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"यों ही।"

"तबियत ठीक नहीं थी क्या?"

"हाँ, तबियत भी ठीक नहीं थी।"

"और?"

"और तो कुछ नहीं।"

"आप दिन पर दिन ऐसे क्यों हुए जा रहे हैं?"

"कैसा हुआ जा रहा हूँ मोहिनी?"

"ऐसे ही—न जाने कैसे-से।"

दिवाकर ने कुछ उत्तर नहीं दिया, जैसे उसके मन में कोई बड़ी गम्भीर पहेली हो। मोहिनी उस समय सीढ़ियाँ उतर कर सड़क पर आ गई थी।

घर में उस समय भी चिराग़ नहीं जलाया गया था, चारों ओर अन्धकार का अखण्ड राज्य था। मोहिनी अँधेरे में टटोलती-टटोलती छत पर जा पहुँची।

"दिवाकर बाबू!"—मोहिनी ने दिवाकर के पास पहुँच कर पुकारा।

दिवाकर जैसे सोते से जाग उठा, चौंक पड़ा। "अरे!" उसके मुँह से केवल यही एक शब्द निकला।

मोहिनी ने कहा—दिवाकर बाबू, मैं आपसे एक बात पूछने आई हूँ। आजकल आप इतने अनमने क्यों रहते हैं? आपको क्या हो गया है? मुझसे सच-सच कहिए।

दिवाकर ने धीर भाव से उत्तर दिया—कुछ नहीं मोहिनी, कोई बात नहीं है।

मोहिनी—नहीं, आप मुझसे छिपाते हैं। मेरी शपथ, दिवाकर बाबू, मुझसे छिपाइए नहीं। यह अधीरता मैं अपने हृदय में कई दिनों से पाल रही हूँ।

दिवाकर—क्या कहूँ मोहिनी! कुछ कहा नहीं जाता।

मोहिनी—मैं क्या कोई ग़ैर हूँ? आप मुझसे इतना छिपाव क्यों रखते हैं?

दिवाकर—अच्छा मोहिनी, मैं पूछता हूँ, मेरे लिए तुम इतनी चिन्ता क्यों करती हो? मैं तुम्हारा कौन हूँ?

मोहिनी दिवाकर के बिलकुल समीप चली गई। उसने उनका हाथ पकड़ लिया।

दिवाकर का शरीर झनझना उठा, जैसे बिजली छू गई हो। आदर और सोहाग से भरे हुए, भारी आवाज़ से मोहिनी ने कहा—यह आप क्या पूछते हैं ? अभी मुझे इसका भी जवाब देना होगा ?

दिवाकर सब कुछ भूल गया। रमणी की रूप-मदिरा ने उसे उन्मत्त बना दिया। कामनाओं की आँधी एक बार तूफ़ान के रूप में सामने आई, इसीसे दिवाकर सब कुछ भूल गया। उसे स्थान और काल का विचार न रहा। वह अपने को भूल गया, चन्द्रकला को भूल गया, अपनी प्रतिज्ञाओं को भी भूल गया। ओह ! विस्मृति में कैसा सुख है ! कैसा आनन्द है !!

यौवनमयी, गर्विणी मोहिनी को बलपूर्वक भुजाओं में बाँध कर दिवाकर ने बार-बार उसका चुम्बन किया। उस समय दोनों ही विसुध थे, विभोर थे, आत्म-विस्मृत थे।

किन्तु, यह उन्माद बहुत देर तक न टिक सका। रूप-मदिरा की ख़ुमारी जब उतर गई, तो दिवाकर ने सोचा—हाय ! मैंने यह क्या सर्वनाश कर डाला ? मनुष्य का हृदय, इतना दुर्बल है, इतना कमज़ोर ? वह इतनी जल्दी भूल जा सकता है ?

रात भर दिवाकर को नींद न आई। चुम्बन की वह ज्वाला विष बन कर उसके अधरों में जलन उत्पन्न कर रही थी। आलिङ्गन का वह दृढ़ बन्धन उसके हृदय को इतनी ज़ोर से कस रहा था, मानो उसका श्वास अवरुद्ध हो जायगा, दम निकल जायगा।

बार-बार उसे चन्द्रकला याद आने लगी। हाय ! किस विश्वास पर, किस बल पर उससे प्रतिज्ञा की थी—चन्द्रकला, जीवन में तुम्हें कभी न भूल सकूँगा ?

* * *

कई वर्ष बाद।

ऊँची-ऊँची भयावनी प्राचीरों से घिरा हुआ पागलख़ाना था। छोटे-छोटे बारकों में पागल बन्द थे। कोई हँसता था, कोई गाता था, कोई नाचता था, कोई अनाप-शनाप बकता था और कोई उच्च स्वर से चिल्लाता था। बड़ा अद्भुत, किन्तु बड़ा ही करुणाजनक दृश्य था।

पागलख़ाने के डॉक्टर पागलों को दवा दे रहे थे। उनकी परीक्षा भी कर रहे थे। क्रम से एक-एक करके वे तीस नम्बर की कोठरी में पहुँचे। लम्बी दाढ़ियों से भरा, सूखा हुआ, पीला, मलिन उसका मुँह था, जीर्ण-शीर्ण शरीर। उसकी कोटरलीन आँखों में एक विशेष चमक थी। एक विशेष प्रकार से वह ताकता भी था। डॉक्टर जब उसके पास पहुँचे तो उसने कहा—"डॉक्टर साहब ! दया करके मुझे थोड़ा समय दीजिए। आपसे कुछ बातें करनी हैं।"

लेकिन पागल की बातों के लिए समय किसके पास रक्खा है ? डॉक्टर हँस कर आगे बढ़ने लगे। पागल ने अत्यन्त करुण स्वर में कहा—दुहाई है डॉक्टर साहब, आप मेरी बात सुनते जायँ। अब डॉक्टर उपेक्षा न कर सके। पागल के पास ही वे एक कुर्सी पर आ बैठे।

पागल ने कहा—डॉक्टर साहब, आप पागल समझ कर मुझे मुफ़्त में क़ैद किए हुए हैं। मैं पागल नहीं हूँ। देखिए तो, कहाँ मैं पागल हूँ। आप मेरी बात नहीं सुनते। मेरी उपेक्षा करते हैं, इसीलिए न कि मैं पागल हूँ ? लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ डॉक्टर साहब, मैं पागल नहीं हूँ। एक महीने से दिन-रात मैं यही बात कह रहा हूँ। लेकिन मेरी बात कोई नहीं सुनता। डॉक्टर ! आप लोग मनुष्यों की इतनी अवहेलना क्यों करते हैं ?

डॉक्टर ने धैर्यपूर्वक पागल का व्याख्यान सुन लिया। फिर कहा—भाई, सब कहो, तुमने मुझे किस लिए बुलाया है ?

पागल ने कहा—हाँ, वही कहूँगा। डॉक्टर ! आप एक बार मेरे हृदय की परीक्षा करके मुझे बतावें, मनुष्य का हृदय क्या है, कैसा है ? मनुष्य के हृदय में संसार की कितनी विषमता भरी है। डॉक्टर साहब, मुझे बताइए, मनुष्य का हृदय क्या है ? आप बता सकते हैं, तो एक बार परीक्षा कीजिए।

कुरता खोल कर पागल डॉक्टर के सामने ज़मीन पर लेट गया। बोला—देखिए डॉक्टर साहब, मेरे यहीं पर ज़ख़्म है। यहीं पर दर्द होता है। ज़रा ठीक से परीक्षा करके देखिए, यह कैसा ज़ख़्म है, यह कैसा दर्द है !! ओह !!!

डॉक्टर निर्निमेष नयनों से उस अद्भुत पागल की ओर देखता रह गया। हृदय की परीक्षा उस बार भी न हो सकी।

कनौजियों की बारात-व्यवस्था

[पं० चन्द्रमौलि सुकुल, एम० ए०, एल० टी०]
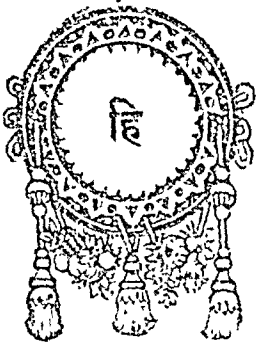
हिन्दुओं की कोई भी जाति या समाज हो, बारात की व्यवस्था प्रायः एक सी होती है, अर्थात् वर के साथ बहुत से पुरुषों का वधू के घर जाना और वहाँ कई दिन खा-पीकर तथा उत्सव मना कर लौट आना। तथापि जाति विशेष की मानसिक अवस्था एवम् रूढ़ियों के कारण बारात की व्यवस्था में विशेषताएँ हो जाती हैं। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की एक विशेष मानसिक दशा होती है, और उनकी विशेष रूढ़ियाँ होती हैं, अतः उनकी बारातों में कुछ विशेषताएँ होती हैं।

प्रधान मानसिक दशा यह है कि वर-पक्ष का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह जाति में, उमर में, विद्या में, धन में, प्रतिष्ठा में, बुद्धि में तथा अन्य बातों में कितना ही छोटा हो, बारात के समय अपने आपको कन्या-पक्ष के प्रत्येक व्यक्ति से बड़ा समझता है। समय के प्रभाव से इस रूढ़ि की जड़ें इतनी गहराई तक पहुँच गई हैं कि इसमें किसी को आपत्ति नहीं होती। कन्या-पक्ष वाले इस श्रेष्ठता को सर्वतोभावेन स्वीकार करते हैं। इसकी तुलना केवल उस व्यवहार से हो सकती है जो कचेहरी वाले लोग, अर्थात् पेशकार, मुहर्रिर तथा चपरासी एवम् मज़कूरी लोग, मुद्दई और मुद्दाअलेहों के साथ करते हैं।

वर-कन्या-पक्षों की इस श्रेष्ठता-हीनता रूढ़ि के समर्थन के लिए, उसे पूर्णतः अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए, बाह्याडम्बर भी उसके अनुकूल ही होना चाहिए। अतः वर-पक्ष वालों की वेष-भूषा, भाषा, प्रतिष्ठा आदि में गौरव का गहरा रङ्ग चढ़ा रहना चाहिए। इसके विपरीत, कन्या-पक्ष वालों की नस-नस में अल्पता, विनीतता तथा आदर की पूर्ण व्याप्ति होनी चाहिए।

इस मानसिक रूढ़ि की विचारपूर्ण मीमांसा करने पर आपको प्रतीत होगा कि इसका सिद्धान्त अत्यन्त शुद्ध तथा धार्मिकतापूर्ण रहा होगा। जिस ब्राह्मण को अपनी कन्या देना निश्चित किया, जिसे अपना 'मान्य' बनाना ठहराया, उसकी शुद्धता, विद्या, बुद्धि, प्रतिष्ठा आदि का निश्चय पहले ही कर लिया; अब उसके प्रति तथा उसके साथियों के प्रति अपनी विनीतता दिखलाना, प्रत्येक बात में उसका महत्व स्थिर रखना तथा उसे आदर देकर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना कन्या-पक्ष वालों का कर्त्तव्य हो गया। परन्तु इस प्रेममय, आदरमय, परम शिष्टभाव को तदनुकूल भाव से ही ग्रहण करना वर-पक्ष वालों का कर्त्तव्य होना चाहिए। आदर के बदले निरादर, प्रेम के जवाब में निन्दा, विनय के उत्तर में उद्धतता करना सर्वथा अनुचित है। परन्तु रूढ़ि इतनी गहरी हो गई है कि कुछ ही बारातों में ठीक-ठीक व्यवहार का पालन होता है, और दोनों पक्षों के हृदय अनुचित प्रहारों से बच पाते हैं।

यद्यपि सभी कनौजियों की मानसिक वृत्ति एक समान ही नहीं होती, यद्यपि विद्या, बुद्धि, चरित्रबल तथा स्वभाव के अनुसार बारातों की व्यवस्था में अन्तर पड़ जाता है, यद्यपि परिस्थिति का भी प्रभाव गहरा पड़ता है, तथापि हमें एक काल्पनिक बारात के साथ होकर साधारण गुण-दोष दिखलाने हैं। कुलीनता का नशा जितना ही अधिक होगा, उद्धतता भी उतनी ही अधिक होगी। स्वभाव की शिष्टता जितनी ही अधिक होगी, दुराधर्षता उतनी ही कम होगी। धन-लोलुपता जितनी ही अधिक होगी, कन्या-पक्ष की मानहानि उतनी ही अधिक होगी। बारात के साथ जितने ही अधिक मूढ़ होंगे, उत्पात भी उतना ही अधिक बढ़ेगा।

हम कल्पना करते हैं कि देवदत्त के विवाह के लिए रामपुर ग्राम से मधुपुर ग्राम को बारात जा रही है। शहर की बारात की कल्पना हम इसलिए नहीं करते कि कान्यकुब्ज जनता का अधिकांश देहात ही में रहता है, अतः

देहात की रीतियों को ही प्रधानता देनी उचित है। रामपुर ग्राम लखनऊ ज़िले में है और मधुपुर ग्राम रायबरेली ज़िले में है। चूँकि कनौजियों की प्रधान बस्ती लखनऊ, रायबरेली, उन्नाव आदि ज़िलों में है, इसलिए हम अपना उदाहरण वहीं से लेते हैं। कान्यकुब्ज-मण्डल के बाहर जहाँ कहीं कनौजियों की बस्ती हो गई है, वहाँ विशेष यत्न करने पर भी स्थानीय परिस्थिति का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य ही दृष्टिगोचर होता है; काशी की कई बारातें देख चुकने पर मुझे इस बात का निश्चय सा हो गया है।

अच्छा, रामपुर से बारात चली। वैशाख का महीना है। नौ कोस जाना है। खाते-पीते, जोग-जुगुत होते, नेग-निछावर के लिए झगड़ा होते, बारात का सामान जुटाते, एक बज गया। बैल-गाड़ियों पर सामान लदा, रथों, बहलों, रब्बों, अद्धों, लहड़ुवों आदि सवारियों पर लोग जम गए। छोटे-बड़े बच्चे कण्ठा, मोहनमाला, ज़ंजीर, बाला, झुमका, कड़ा, बजुल्ला आदि आभूषणों से लदे, सवारियों पर वृद्ध शौक़ीनों के बीच कुचले जा रहे हैं। परन्तु हर एक में इतना उत्साह है कि कष्ट की परवाह नहीं। दुलहे के पीनस के साथ नाई चँवर हिलाता जा रहा है; ताशे वाले, शहनाई वाले, तुरही वाले, और यदि आ गए हैं तो अङ्गरेज़ी बाजे वाले किसी की बात का सुनना असम्भव कर रहे हैं। घुड़सवार लोग पहले पहुँच गए, फिर क्रमशः अन्य लोग भी पहुँचे। मधुपुर के निकट किसी बाग़ में सब एकत्र हुए, और कपड़े बदल कर, पान सुर्ती खाकर, आगे बढ़ने के लिए तैयार हुए। इसी बीच कन्या-पक्ष वाले कुछ चतुर अनुभवी लोग बारात का अन्दाज़ा करने के लिए आ गए और इधर से उधर चक्कर काटने लगे।

अगवानी का समय आया। दोनों ओर के दल आमने-सामने पंक्तिबद्ध होकर खड़े हो गए। दोनों दलों के बीच घुड़सवार लोग घोड़े नचाने लगे; मशालों और पलीतों से पर्याप्त प्रकाश हो गया; चर्खियों, अनारों, बानों तथा गोलों आदि आतशबाज़ी के प्रकाश तथा धुएँ से आँखें और नथुने तृप्त हो गए; धूल ने भी अच्छा साथ दिया। पारी-पारी से एक-एक दल चावल-चावल आगे बढ़ने लगा। ऐसे समय तेज़ी से चलना या शीघ्रता करना असभ्य माना जाता है। ख़ैर, ज्यों-त्यों समागम हुआ, चरणवन्दन आदि रस्म के पश्चात् बारात कन्या के द्वार पर गई और वहाँ की रस्म के बाद शीघ्र ही लौट कर जनवासे में पहुँची।

सबसे पहली ख़ातिरदारी 'मिर्चवान' है। घड़ों में शर्बत भरा है और पिसी हुई काली मिर्च उसमें मिली है। कई जगह शहर वालों ने अब मिर्चवान के स्थान में मिठाई देना आरम्भ कर दिया है; परन्तु हमें तो इस समय मिर्चवान ही पीना है, सो भी 'पावँ-धोवा' के पहले नहीं। कन्या का भाई या उसीके समान कोई 'घरैया' आकर बारातियों के पैर धोता है, जिन्हें उससे धुलाना योग्य नहीं वे नाई से धुलाते हैं। इस समय "नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्र मूर्त्तये........," तथा "आपद्घन ध्वान्त सहस्र भावनः........" आदि पढ़ने का तुमुल शब्द सुनाई देता है।

मिर्चवान के साथ ही 'बागवार की पुड़ियाँ' भी आ गईं, चने की दाल (कच्ची) और गुड़, भङ्ग, सुर्ती, तमाखू, पान, दाने-चारे आदि का भी प्रबन्ध हो गया, नौकरों-चाकरों से अल्प वाग्युद्ध की भी नौबत आ गई। दुर्गा-जनेऊ, चढ़ावा, पाणिग्रहण, शाखोच्चार, कोहबर आदि कर्मों से छुट्टी मिली।

अब बारात की ख़ातिरदारी ही विशेष कार्य है। एक दिन 'भात' मिलेगा, और दो दिन 'बड़हार' (पक्की का भोजन); सो भी रात को। दिन को कलेवा आएगा जिसमें पूड़ी, पकवान, चने की दाल, गुड़, शर्करा, ठण्डाई, भङ्ग, पान, सुर्ती, तम्बाखू, मेवा, फल आदि अनेक चीज़ें रहेंगी। वर और 'शहबाला' (वर के छोटे भाई तथा समकक्ष बालक) को दो दिन कलेवा के लिए कन्या के घर जाना पड़ेगा, जहाँ अच्छी आय होगी। भात और बड़हार में सब बारातियों को कन्या के घर जाना पड़ेगा। कनौजियों में यह विशेषता है कि भात और बड़हार के विषय में कोई झगड़ा न करेंगे; नज़र दिखलाना ही एक मात्र प्रलोभन है। उनका भोजन भी प्रशंसा-योग्य माना जाता है। भात के साथ ३२ दोने 'सालन' के किसी दशा में न हो सकें तो कम से कम १६ तो हों। भोजन-द्रव्य का बाहुल्य भी होना चाहिए; ३२ पूड़ियों की 'पारस' उत्तम, १६ की मध्यम, ८ की निकृष्ट, ४ की नीच मानी जाती है; सो भी शहर वाली तोले-तोले की पूड़ियों की नहीं, किन्तु

बड़ी-बड़ी पूड़ियों की जिनका व्यास १२ इञ्च तो हो। हमारे घरों में जब तक अन्नपूर्णा जी की पूर्ण कृपा थी तब तक चार-चार दिन का ऐसा भोजन कष्टप्रद न होता था, परन्तु अब तो यह उदारता भारभूत हो रही है ; समय स्वयम् ही इसमें कमी करा रहा है।

भोजन के विषय में एक बात और कहनी है। अधिक मर्यादा उस बारात की मानी जाती है जिसमें 'सवाँग' अर्थात चौके पर एक साथ बैठ कर खाने वाले अधिक हों ; अन्य जातीय लोगों या 'कहरों' की भरती से बारात का कलेवर बढ़ाना प्रतिष्ठा का कारण नहीं माना जाता, फिर भी धन का स्वाँग दिखलाने वाले लोग इतनी बड़ी बारात ले जाने में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं, जिसके लिए कुँवों में पानी न मिल सके। तथापि यह सनक ब्राह्मणों में इतनी अधिक नहीं होती जितनी क्षत्रियों में होती है। ब्राह्मणों की बड़ी बारात की प्रशंसा नहीं, प्रत्युत किसी जाति की छोटी बारात को निन्दात्मक 'बँभन-बरतिया' शब्द से दूषित किया जाता है।

भोजन के साथ गाली-गान का भी महत्व है। यह पुरानी प्रथा है और ब्राह्मणों के ही नहीं, किन्तु क्षत्रियों, वैश्यों तथा सभी हिन्दुओं के घरों में समान रूप से वर्तमान है। इस प्रथा का मूल-रूप अवश्य ही विनोदमय, हास्यमय रहा होगा जिसका तात्पर्य स्तुति से था, किन्तु मूर्ख स्त्रियों के हाथ में पड़ कर इसमें अश्लीलता आ गई।

भोजन के विषय में कनौजियों की बारात की विशेषता ऊपर दिखलाई गई; अब अन्य विशेषताएँ सुनिए—

शिष्टाचार—अपराह्न में कन्या-पक्ष के बहुत से लोग फल-फूल, पान-सुपारी, अतर-गुलाब आदि सामान लेकर जनवासे (बारात टिकने के स्थान) में जाते हैं। बारातियों को इसकी सूचना पहले से रहती है, और वे सुसज्जित होकर महफ़िल में बैठे हुए मिलते हैं। वर की साधारण पूजा-रोचना आदि होकर विनय-विनिमय होता है ; कन्या और वर के पक्ष से यथाक्रम विनती पढ़ी जाती है। विनती संस्कृत के श्लोकों में होती है, उसका अर्थ भाषा में किया जाता है ; यदि विद्वान् पण्डित उस सभा में होते हैं तो लच्छेदार संस्कृत भी सुनाई देती है, कभी शास्त्रार्थ भी हो जाता है, परन्तु उद्धतता नहीं होती। पान, इतर आदि से परस्पर सम्मान किया जाता है। कन्या-पक्ष वाले बड़े-बूढ़े लोग वर-पक्ष वालों की सामग्री स्वीकार नहीं करते। यदि बारात के साथ वेश्याएँ गई हैं तो उनका नाच-गाना तथा समयानुसार गाली-गान भी, इस समय होता है ; परन्तु कान्यकुब्जों के शिष्ट समाज में वेश्याएँ ले जाना प्रायः घृणित समझा जाता है।

चतुर्थी कर्म—विवाह के चतुर्थ दिन वधू का स्नान एक विशेष विधि से होता है, तब उसे वस्त्रों, आभूषणों से सुसज्जित किया जाता है। उस समय वर के पिता, पितृव्य, ज्येष्ठ भ्राता आदि गुरुजन यदि वधू को देखना चाहें तो देख सकते हैं, नाउन बधू का मुखड़ा खोल देती है। परन्तु चूँकि यह दर्शन सस्ता नहीं होता, वधू के कोंछ में कोई आभूषण डालना पड़ता है, इसलिए दर्शकों की संख्या अधिक नहीं होती। इस पर्दे के युग में यही एक क़ायदे का अथवा वैध दर्शन है, इसके बाद फिर कभी उसका मुँह देखना नियम-विरुद्ध समझा जाता है। हाँ, चिर परिचय के पश्चात् यदि वधू ससुर के सिर पर नाचने लगे तो वह दूसरी बात है। स्मरण रखना चाहिए कि चतुर्थी कर्म कन्या के निजी घर में नहीं होता, किन्तु अड़ोस-पड़ोस के किसी अनुकूल गृह में सम्पादित होता है।

माँड़ौ तथा बरतौनी—चतुर्थी कर्म के पश्चात् कन्या के घर में माँड़ौ (मण्डप) के नीचे समग्र बारातियों का सम्मान 'बरतौनी' नामक दक्षिणा से किया जाता है। प्रशंसा इसी में है कि बारात का कोई भी व्यक्ति बिना बरतौनी पाए न रहे। कन्या का पिता या अभिभावक रुपयों की थैली लेकर बैठता है, पास में एक पीढ़ा डाल दिया जाता है ; कन्या, वर, शहबाला तथा बारातियों की पूजा यथाक्रम होती है। नामों की सूची पहले से तैयार रहती है ; एक-एक नाम पुकारा जाता है, और तन्नामधारी व्यक्ति अपने आसन से उठ कर उस पीढ़े पर जा बैठता है। पूजक उसके चरण पखार कर, ललाट में रोचना लगा कर दक्षिणा मुट्ठी में दे देता है ; तब वह 'स्वस्ति' कह कर वर, कन्या तथा पूजक पर अक्षत छिड़क कर अपने आसन पर चला जाता है। इसी प्रकार क्रमशः पूजा होती जाती है। समगोत्र या अल्प मर्यादा के कारण जो लोग पाद-प्रक्षालन

कराना नहीं चाहते, वे केवल रोचना लगवा कर दक्षिणा ले लेते हैं। क्षत्रिय, वैश्य आदि बारातियों को प्रायः उन्हीं के आसन पर रोचना और दक्षिणा मिल जाती है। नाऊ, बारी आदि के ललाटों पर कन्या-पक्ष का नाऊ रोचना लगा देता है। इस प्रकार सम्मान सबका किया जाता है। समधी जी का विशेष सम्मान रुपयों से पूर्ण 'खोरवा' से होता है।

माँड़ौ में दोनों दलों के समारोह के अतिरिक्त एक भाग सामान के प्रदर्शन के लिए रहता है। एक पलँग पर चमकती हुई बहड़ोरें (लहँगे फरिया) तथा अन्य वस्त्र सुसज्जित हैं; आटा, दाल, चावल, मैदा, मुँगौरी, मिथौरी आदि के बड़े-बड़े ढेर लगे हैं; घी, तेल, मिठाई, कसार आदि की हाँडियाँ, हल्दी और चावल के पीठे से रँगी हुई सुसज्जित हैं; पिटारे-पिटारियाँ भी रक्खी हुई हैं; पँचहँड़ के भारी-भारी बरतन भी रक्खे हैं, इस प्रकार देने के लायक़ सभी सामान जमा है; इन सबका सामूहिक नाम 'लायन' है। बाराती तथा 'जनवाती' लोग भिन्न-भिन्न भावों से लायन पर तिरछी दृष्टि डाल देते हैं। 'जिनकी रही भावना जैसी, सामग्री देखी तिन तैसी'— कन्या का बाप सोचता है कि इसी सामग्री के लिए पैतृक खेत रेहन करने पड़े; गाँव वाले विचारते हैं कि इन विप्र जी की दूसरी कन्या के विवाह के साथ ही इनका घर भी महाजन की सम्पत्ति हो जायगा। समधी जी का भीतरी भाव तो यह है कि अच्छा, मतलब हो गया, परन्तु बाहरी दिखाव में कुछ तेउरी चढ़ी हुई है; सन्तोष का भाव किसी प्रकार न प्रकट होना चाहिए, नहीं तो आगे की उम्मीद जाती रहेगी।

माँड़ौ तथा बरतौनी का उज्ज्वल रूप तो हमने दिखा दिया, परन्तु उसका एक कलुषित रूप भी है। हम कह चुके हैं कि बरतौनी की सूची पहले से तैयार रहती है। बस, यह सूची ही समधी जी के भावों का सूचक है; यही उनकी शिष्टता-अशिष्टता का परिचायक है; यही पक्षद्वय के मनोमालिन्य का मूल है; यही कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का पिण्डीभूत कलङ्क है; यही पिशाचिनी ठहरौनी का परमास्त्र है; बिचवानी का मुँह काला करने के लिए यही कालिख है; लोभ का जीता-जागता यही पुतला है। इसी सूची के तै करने के लिए दो-चार आदमी दिन भर में बीसों चक्कर जनवासे तक लगा चुके हैं, इसी की कमी की इनकारी में समधी जी का फूला हुआ मुँह अनेक बार 'उहूँ' शब्द उच्चारण कर चुका है। बारातियों की बरतौनी के लिए किसी को विशेष आपत्ति नहीं; 'उज्र' तो उन सैकड़ों नामों के ख़ारिज करने के लिए है, जिनकी कल्पना या स्मृति का श्रेय समधी जी को है। नगड़दादों तक के शुभ नामों का उल्लेखन करने, नातेदारों के नातेदारों तथा उनके भी नातेदारों के लिए सम्मान दिखाने का अवसर यही है; यदि इससे भी पेट न भरा तो कल्पना देवी की शरण कहीं गई नहीं। बारात में आए हैं दस आदमी, बरतौनी चाहिए एक सौ दस आदमियों की। यदि कन्या-पक्ष में कोई कड़ेदम या क़ानूनी आदमी हुए और उन्होंने कहा कि महाराज, आपको जिस 'रक़म' के लिए 'क़रार' हुआ है उससे कुछ अधिक ले लीजिए, 'नक़ई' क्यों करते हैं, तो सीधा सा उत्तर मिला कि हाँ, जितना हमको क़ायदे से चाहिए उतना अँगौछे में बाँध कर जनवासे में दे जाइए और 'लड़किनी' को विदा कर दीजिए, हमें कोई उज्र नहीं। दूसरे शब्दों में इसका यह अर्थ हुआ कि 'माँड़ौ' में न जाने से कन्या-पक्ष की बड़ी अकीर्त्ति होगी। अतः या तो वह अकीर्त्ति झेले या समधी जी को प्रसन्न करे।

तात्पर्य यह है कि यदि बाराती लोग शिष्ट, सज्जन, विचारवान हुए तो सब काम हर्ष के साथ हुआ; यदि दुष्ट, लोभी, अविवेकी हुए तो झगड़ा खड़ा हो गया।

बड़ी-बड़ी विशेषताओं का हाल हमने ऊपर दिखाने की चेष्टा की है; छोटी-छोटी विशेषताएँ अनेक हैं, परन्तु उनका उल्लेख साधारण पाठकों के अनुकूल न समझ कर नहीं किया। विचार से देखने पर प्रतीत होगा कि कनौजियों की बारात की जितनी व्यवस्था रक्खी गई है, उसका मूल अत्यन्त शिष्ट है, परन्तु अशिष्टों के हाथ में पड़ कर उसका रूप कलुषित हो जाता है। विचारवान लोग अब भी सुन्दरता के साथ सब कार्य सम्पादित करते हैं। शुभम्।

जमुना
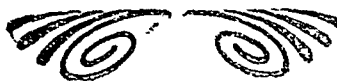
[उर्दू 'चाँद' से]

[श्री० मुन्शी सुखदेवप्रसाद जी सिन्हा "बिस्मिल"]

नाज़ क्यों हो न तुझे कृष्ण-दुलारी जमुना,
तू तो राधा की सहेली बनी प्यारी जमुना।
रुतवा आली है तेरा, मर्तबा भारी जमुना,
हर जगह फ़ैज़े-आम[1] रहता है जारी जमुना॥

है यक़ीं गर्म किसी दिन भरी महफ़िल होगी।
रासमण्डल की वह लीला लबे-साहिल[2] होगी॥

मिट गया लुत्फ़ तेरा, छिन गया गहना तेरा,
जब कन्हैया नहीं, बेलुत्फ़ है रहना तेरा।
ग़म उठाना, सितमो ज़ोर को सहना तेरा,
पानी हो-हो के शबो-रोज़[3] यह बहना तेरा॥

आतिशे हिज्र[4] कुछ इस दर्जा लगी है तन में।
दिल न मथुरा में बहलता है, न वृन्दावन में॥

बात बिगड़ी नहीं, अब भी है वही बात तेरी,
वही जाड़ा, वही गर्मी, वही बर्सात तेरी।
दिन उसी ढङ्ग, उसी रङ्ग की है रात तेरी,
कौन कह सकता है कुछ भी नहीं औक़ात तेरी॥

"कृष्ण सदक़े[5] हैं तो राधा हैं फ़िदाई जमुना।
हर तरफ़ ख़ुतन[6] में है तेरी दुहाई जमुना॥"

सादी-सादी है रविश, वज़ा[7] है भोली भाली,
है रवानी[8] भी ग़ज़ब, चाल भी है मतवाली।
नीली मौजों से परीशाँ[9] हुईं ज़ुल्फ़ें काली,
हुस्नो आराइशो[10] ज़ीनत[11] से बड़ी ख़ुशहाली॥

अल्ला-अल्ला रे इस नाज़ोअदा की हस्ती।
तेरे आगे नहीं कुछ आबे-बक़ा[12] की हस्ती॥

१—सार्वजनिक भलाई। २—नदी तट। ३—अहर्निश। ४—वियोगाग्नि। ५—बलिहारी। ६—संसार ७—वेष। ८—बहाव। ९—लज्जित। १०—श्रृङ्गार। ११—शोभा। १२—अमृत।

पूछे राधा से कोई क़द्रे-हक़ीक़त तेरी,
कृष्ण से जाँचे कोई ख़ूबिए-इज़्ज़त तेरी।
सारी दुनिया में है फैली हुई अज़मत[1] तेरी,
उसको जन्नत मिली, की जिसने भी ख़िदमत तेरी॥

अपना हमरुतबा जो पाया तुझे गङ्गा जी ने।
अपने पहलू में बिठाया तुझे गङ्गा जी ने॥

बायसे नाज़[2] है बेशुबा हिमाला के लिए,
सबबे फ़ख़्र व शर्फ़ गोकुल व मथुरा के लिए।
ख़ास यक नियामते हक़ वादीओ सेहरा[3] के लिए,
मुख़्तसर यह है, बड़ी चीज़ है दुनिया के लिए॥

दिल को सरबस्ता[4] कली फ़िर्ते[5] ख़ुशी से खिल जाए।
उसको अमृत मिले जिसको तेरा पानी मिल जाए॥

सच है इसरारे-हक़ीक़त[6] का ख़ज़ाना तू है,
हालो[7] व मुस्तक़बलो[8] माज़ी[9] का ज़माना तू है।
लुत्फ़ आगीं[10] तरब आमेज़ फ़िसाना तू है,
सब हैं बेगाने, अगर है तो यगाना तू है॥

साफ़ आइने की सूरत है सफ़ाई तेरी।
बन्दगी क्यों न करे सारी ख़ुदाई तेरी॥

निगहे-फ़ैज़[11] व तरहम[12] से इशारा कर दे,
जो न हो काम किसी से वह ख़ुदारा कर दे।
रञ्जो-ग़म दर्दो-क़लक़ दूर हमारा कर दे,
प्यारी मख़लूक़ में कुछ और भी प्यारा कर दे॥

रहनुमाई तेरी "बिस्मिल" के लिए सब कुछ है।
नाख़ुदाई तेरी "बिस्मिल" के लिए सब कुछ है॥

१—प्रतिष्ठा। २—आदर। ३—पहाड़ तथा वन। ४—बँधी हुई। ५—आधिक्य। ६—ईश्वरी रहस्य। ७—वर्तमान। ८—भविष्य। ९—भूत। १०—आनन्ददायक,सुखपूर्ण। ११—उदारतापूर्ण दृष्टि। १२—दया।

प्रेमोन्मत्त मीरा

"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई.........
जाके सिर मोर-मुकुट मेरो पति सोई। मेरे तो......"

Special for the CHAND]

[जोधपुर-क़िले के एक प्राचीन चित्र से

लालबुझक्कड़
[लेखक—श्री० जी० पी० श्रीवास्तव,
बी० ए०, एल्-एल्० बी०]
श्री० श्रीवास्तव महोदय संसार के सबसे श्रेष्ठ हास्य-नाटककार फ़ान्स के 'मोलियर' (Moliere) की चुनी हुई रचनाओं का रसास्वादन हिन्दी-पाठकों को अनेक बार करा चुके हैं। प्रस्तुत नाटक मोलियर महोदय की चुनी हुई रचनाओं में से है। यह नाटक सर्व-प्रथम सन् १६५३ या १६५५ ईस्वी में लॉयन (Lyons) नगर में, उसके बाद सन् १६५८ में फ़ान्स की राजधानी पेरिस में बादशाह के समक्ष खेला गया था और सारे विश्व ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।
श्रीवास्तव महोदय ने जिस बाने में इसे हिन्दी-संसार में उपस्थित किया है, वह देखने योग्य है। हँसते-हँसते पेट न फूल जाय तो पुस्तक का दाम वापस !!! मूल्य २)
व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

[श्री० भोलालाल दास जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

दत्तक में स्त्रियों का अधिकार

दत्तक की आवश्यकता

प्रत्येक जीव-जन्तु में आत्मरक्षा और वंशरक्षा की प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। किन्तु मानव समाज में अन्यान्य जीवों से विशेषता यह है कि वह उच्चतम ज्ञान से सम्पन्न है, एवं इसमें समाज की शृङ्खला विशेष रीति से नियमित है। हरेक व्यक्ति का एक-एक स्वतन्त्र परिवार है, कई परिवारों का एक ग्राम, कई ग्रामों का थाना, ज़िला, प्रान्त आदि का विभाग है। इस प्रकार सम्पूर्ण मानव समाज राष्ट्रों में शृङ्खलाबद्ध है और उनमें भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध (International connexion) है। ऐसी संस्था के लिए हर बात में विशेषता होना अनिवार्य है। पशुओं में इस प्रकार की कोई शृङ्खला नहीं है, सुतराम् उनके लिए पुत्रोत्पत्ति और कन्योत्पत्ति में कोई अन्तर नहीं है। किन्तु मानव समाज कई उपयुक्त कारणों से पुत्रोत्पत्ति को विशेष आनन्द और आशा की दृष्टि से देखता आया है। उसमें भी हिन्दू संयुक्त परिवार की संस्था पर ध्यान देने से पुत्रोत्पत्ति की इस विशेषता का रहस्य अनायास विदित हो जायगा। यहाँ आमरण गृहपति अपने पुत्र-पौत्रों के साथ रहता और संरक्षित होता है। कन्याएँ विवाहिता होकर दूसरे कुलों में चली जाती हैं, एवं पुत्रों के द्वारा अन्य कुलों से कन्याएँ वधुओं के रूप में आकर परिवार की शक्ति को बढ़ाती हैं। पुत्र के द्वारा ही किसी पुरुष की वंशरक्षा समझी जाती है। ऐसी स्थिति में पुत्रोत्पत्ति स्वभावतः स्पृहनीय हुई। प्राचीन धर्मशास्त्रों के अध्ययन से यह विदित हुए बिना नहीं रहता है कि उन दिनों वंशवृद्धि की आवश्यकता और भी अधिक थी, इसीलिए धर्मशास्त्रों में पुत्र-प्राप्ति के ऊपर अधिकाधिक ज़ोर दिया गया। उन्होंने विवाह का उद्देश्य ही पुत्र-प्राप्ति समझा—"पुत्रप्रयोजनाय भार्य्या"। जिसने पुत्र नहीं उत्पन्न किया, उसका जीवन ही व्यर्थ हो गया। लोक-परलोक दोनों जगह उसकी दशा बुरी हो गई। इत्यादि।

श्रुति का यह वाक्य बहुधा पुत्रोत्पत्ति के महत्व को प्रमाणित करने के लिए उपस्थित किया जाता है :—

"जायमानो ह वै ब्राह्मणम्, त्रिभिर्ऋणैः ऋणवान जायते। ब्रह्मचर्य्येण ऋषिभ्यो, यज्ञेन देवेभ्यः, प्रजया पितृभ्यः। एष वा अनृणी यः पुत्री, यज्वा, ब्रह्मचारी च।"

अर्थात—"ब्राह्मण [क्षत्री तथा वैश्य] तीन प्रकार के ऋणों के साथ उत्पन्न होता है। ब्रह्मचर्य से ऋषियों के लिए, यज्ञ से देवताओं के लिए, और प्रजा (सन्तति) से पितरों के लिए। इसलिए जिसने वेदों का अध्ययन किया वह ऋषिऋण से, जिसने यज्ञ किया वह देवऋण से और जिसने पुत्र-प्राप्ति की वह पितृऋण से मुक्त हुआ।" सूत्र ग्रन्थों में भी इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। वशिष्ठ लिखते हैं :—

ऋणमस्मिन् सन्नयति अमृतत्त्वञ्च गच्छति
पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेत् जीवतो मुखम्
अनन्ताः पुत्रिणां लोकाः नापुत्रस्य लोकोऽस्ति श्रूयते।

अर्थात—"पिता यदि अपने जीवन में उत्पन्न हुए

पुत्र का मुख देख लेता है तो वह अपना पितृऋण उसके ऊपर डाल देता है। पुत्रवानों को अनन्त लोकों की प्राप्ति होती है, किन्तु अपुत्रों की कोई गति वेदों में नहीं सुनी जाती है।" स्मृति ग्रन्थों में तो पूछना ही नहीं। वृहस्पति लिखते हैं :—

> कांक्षन्ति पितरः सर्वे नरकाद्भयभीरवः
> गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति
> एष्टव्या बहवः पुत्राः यद्येकोऽपि गयां व्रजेत
> यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्।

अर्थात—"नरक के भय से पितर गण सर्वदा यही इच्छा करते हैं कि जो पुत्र हमारा गया जायगा, वह हम लोगों का उद्धार करेगा। इसलिए बहुत पुत्रों की इच्छा करनी चाहिए, ताकि उनमें से कोई एक भी गया जाय अथवा नीले साँड़ का उत्सर्ग (वृषभोत्सर्ग श्राद्ध) करे तो पितरों का उद्धार हो।" दत्तक मीमांसा में मनु का एक वचन इस प्रकार उद्धृत हुआ है :—

> अपुत्रेण सुतः कार्य्यो यादृक् तादृक् प्रयत्नतः।
> पिण्डोदक क्रिया हेतोर्नाम सङ्कीर्त्तनाय च ॥

अर्थात—"अपुत्रों को यत्नपूर्वक किसी न किसी उपाय से पुत्र करना चाहिए, जिससे पितरों का पिण्डलोप न हो और अपना नाम भी न मिटे।" इन वचनों से सिद्ध है कि हमारे पूर्वजों ने पुत्रोत्पत्ति को कैसा महत्वपूर्ण वस्तु समझा है। सुतराम् उन्होंने कई प्रकार से पुत्रत्व की कल्पना की है और जैसे-जैसे इसकी आवश्यकता प्रखर होती गई, वैसे ही वैसे भिन्न-भिन्न पुत्रों की संख्या बढ़ चली। यहाँ हम भिन्न-भिन्न ऋषियों के वचन न लिख कर मेन साहब के हिन्दू-लॉ से उसका एकत्रित विवरण देंगे। अगले पृष्ठ पर यह विवरण एक सूची के रूप में दिया जा रहा है, जिससे यह विदित हो जाय कि किन ऋषियों ने कितने प्रकार के पुत्र माने हैं एवं उनका स्थान भिन्न-भिन्न ऋषियों के मत में क्या है।

इस विवरण से हम जान सकते हैं कि ऋषियों ने पुत्र-प्राप्ति के कितने मार्ग अवलम्बन किए। कुल ऋषियों ने एक स्वर से औरस पुत्र को ही प्रथम स्थान दिया है। यह उचित भी है, क्योंकि वास्तव में विचार कर देखा जाय तो औरस पुत्र ही पुत्र है, अन्यान्य सभी पुत्र या तो वैवाहिक बन्धन के अतिचार से अथवा यों ही मान लेने से पुत्रत्व को प्राप्त करते हैं। इसमें हम देखते हैं कि अपनी पत्नी से यदि पुत्र-प्राप्ति की कोई आशा नहीं है तो अन्य व्यक्ति के पुत्र को भी पुत्र-रूप से ग्रहण किया जा सकता है और उसके भी कई भेद हैं। इनमें सबसे प्रधान दत्तक पुत्र है। दत्तक पुत्र की परिभाषा मनु इस प्रकार देते हैं :—

> माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि।
> सदृशं प्रीतिसंयुक्तं सज्ञेयो दत्रिमः सुतः ॥
>
> —मनु ६, १६८

अपुत्र रहने की आपत्ति में यदि कृपा कर कोई माता-पिता उस अपुत्र को प्रसन्नतापूर्वक अपना पुत्र दे देता है तो वह ग्रहीता का दत्तक पुत्र कहा जाता है। अस्तु, मन्वादि स्मृतिकारों ने जितने प्रकार के पुत्र कहे हैं, अब उतने प्रकार के पुत्र नहीं होते। पराशर-स्मृति, जो विशेष-कर कलियुग के लिए बनाई गई है, केवल चार ही प्रकार के पुत्रों को मानती है :—

> औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः।

(१) औरस (२) क्षेत्रज (३) दत्तक और (४) कृत्रिम। इसमें भी अब क्षेत्रज पुत्र का अभाव हो गया है। औरस के विषय में कोई मतभेद है ही नहीं। यही अपना लड़का है। किन्तु इसके अभाव में लोग अब तक किसी दूसरे के पुत्र को गोद ले लेते हैं, याने अपना लड़का बना लेते हैं। इनके दो भेद हैं, एक दत्तक और दूसरा कृत्रिम। इस अध्याय में दत्तक पुत्र के सम्बन्ध में ही स्त्रियों के अधिकार का विचार किया जायगा। कृत्रिम पुत्र की प्रथा मिथिला में है और उसका भी वर्णन इस अध्याय के अन्त में किया जायगा। इस प्रकार दूसरे के पुत्र को पुत्र बनाने की प्रथा मुसलमान, पारसी, या क्रिस्तान आदि जातियों में नहीं है, किन्तु हिन्दुओं में है। पुरुष को साधारणतया गोद लेने का अधिकार है ही, यहाँ हमें स्त्रियों के अधिकार पर विचार करना है। इसकी व्याख्या इन पाँच शीर्षकों में भली भाँति होगी—(१) गोद लेने का अधिकार किसे है, (२) गोद में देने का अधिकार किसे है, (३) किसको गोद लिया जा सकता है, (४) गोद लेने की विधि क्या है, और (५) गोद लेने का क़ानूनी परिणाम क्या होता है।

(१) गोद लेने का अधिकार किसे है ?

ऋषियों के नाम और वचन	औरस अर्थात अपनी स्त्री में अपने शुक्र से उत्पन्न पुत्र।	क्षेत्रज—अपनी स्त्री में अन्य पुरुष द्वारा नियोग की प्रथा से उत्पन्न पुत्र।	पुत्रिकापुत्र—ऐसी कन्या का पुत्र जिसको पिता सब दिन के लिए अपने घर में रख लेता है एवं जिसके पुत्र को अपना पुत्र बना लेता है।	कानीन—कुमारी कन्या से उत्पन्न पुत्र। इस पर कन्या के पिता का अधिकार होता था।	गूढ़ज—छिप कर अर्थात व्यभिचार से जिसका जन्म हुआ है। इस पर पति का अधिकार होता था।	पौनर्भव—स्त्री यदि पुनर्विवाहिता हुई तो उससे उत्पन्न पुत्र को पौनर्भव संज्ञा होती थी।	सहोढ़—माता के विवाह-काल में जो गर्भ में आ चुका था ऐसा पुत्र।	निषाद—शूद्रा स्त्री और द्विजाति पति से उत्पन्न।	दत्तक—गोद लिया हुआ पुत्र।	कृत्रिम—कृत्रिम विधि से बनाया हुआ पुत्र।	क्रीत—ख़रीदा हुआ पुत्र।	अपविद्ध—अनाथ बच्चे को यदि किसी ने अपना पुत्र बना लिया तो ऐसा पुत्र।	स्वयंदत्त—जिसने स्वयं किसी व्यक्ति को अपना पिता मान लिया।
बौधायन अ० २, श्लो० २	१	३	२	८	६	११	९	१३	४	५	१०	७	१२
गौतम० २८,३२-३३	१	२	१०	७	५	९	८	×	३	४	१२	६	११
वशिष्ठ १७, ९-२१	१	२	३	५	६	४	७	१२	८	×	९	११	१०
विष्णु १५, १-२७	१	२	३	५	६	४	७	१२	८	×	९	११	१०
मनु ९, १५८-१६०	१	२	×	७	५	१०	८	१२	३	४	९	६	११
कालिकापुराण डाइजेष्ट २-१५५	१	२	×	७	५	१०	८	१२	३	४	९	६	११
याज्ञवल्क्य २, १२८-१३२	१	३	२	५	४	६	११	×	७	९	८	१२	१०
नारद १३, ४५-४६	१	२	३	४	६	७	५	×	९	११	१०	८	१२
शङ्ख और लिखित डाइजेष्ट ३-१५१	१	२	३	५	६	४	८	११	९	×	१०	७	१२
हारीत डाइजेष्ट ३-१५२	१	२	५	४	६	३	१०	×	७	१२	८	९	११
देवल डाइजेष्ट २-१५३	१	३	२	४	५	८	७	×	९	११	१२	६	१०
यम डाइजेष्ट ३-१५४	१	२	३	५	६	४	८	×	९	१०	११	७	१२
वृहस्पति डाइजेष्ट ३-१६२, १७१	१	८	२	१०	१२	९	११	७	३	६	५	४	×
ब्रह्मपुराण ३-१७४	१	२	३		५	१०	८	१२	४	×	९	६	१

Mayne's Hindu Law, page 82—[7th. Edition].

पुत्र के अभाव में हर पुरुष को गोद लेने का अधिकार है, किन्तु गर्भस्थ, अन्ध, या अन्य प्रकार से उत्तराधिकार के अयोग्य बालक भी इसके बाधक नहीं हैं। योग्य पुत्र के रहते हुए भी दूसरा बालक गोद लिया जा सकता है, किन्तु इसमें उसकी सम्मति अपेक्षित है। परलोक जिस प्रकार बने, उसमें सबको क़ानूनी स्वतन्त्रता

है। अस्तु, यह अधिकार स्त्रियों को कहाँ तक है, अब हमें यही देखना है। वशिष्ठ ने इस विषय में लिखा है:—

न स्त्री दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा अन्यत्रानुज्ञानात् भर्त्तुः।

पति की आज्ञा बिना स्त्री को न तो पुत्र-दान का अधिकार है और न पुत्र-ग्रहण का अधिकार है। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के विषय में हम कह चुके हैं कि इनका मूलाधार एक ही है, किन्तु उन आधार वचनों की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रान्तों के टीकाकारों या निबन्धकारों ने भिन्न-भिन्न की है, इसीलिए भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की सृष्टि हुई है। अस्तु, इस विषय में भी वशिष्ठ महाराज का ही उपरोक्त सूत्र सभी सम्प्रदायों का प्रमाणाधार है, किन्तु इसकी व्याख्या भिन्न-भिन्न होने से हर प्रान्त की व्यवस्था विभिन्न हो गई है, जिसका ब्यौरा इस प्रकार है :—

मिथिला सम्प्रदाय—मिथिला में दत्तक विधि से बालकों को गोद लेने की प्रथा नहीं थी, इसलिए वहाँ के निबन्धकारों ने इस वचन का अर्थ यह किया है कि पति की जीवित अवस्था में स्त्री अवश्य ही उसकी आज्ञा से गोद ले सकती है, परन्तु जब पति नहीं है—मर गया—तो स्त्री के अधिकार का उसके साथ ही साथ अन्त हो गया, इसलिए मिथिला में पति की आज्ञा रहने पर भी स्त्री उसके मरने के बाद दत्तक विधि से गोद नहीं ले सकती।

काशी और दायभाग सम्प्रदाय—इन दोनों सम्प्रदायों के अनुसार स्त्री को पति के मरणान्तर भी गोद लेने का अधिकार है, यदि वह इसकी आज्ञा स्त्री को दे गया हो।

मद्रास या द्राविड़ सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय में इससे भी कुछ उदार अर्थ किया गया है। इस सम्प्रदाय के अनुसार "पति की आज्ञा" का तात्पर्य यही समझा गया है कि स्त्री को उतनी समझ-बूझ नहीं रहती है, इसलिए किसी संरक्षक की सम्मति से उसे चलना चाहिए। इसीलिए पति की आज्ञा आवश्यक बतलाई गई। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं हो सकता कि केवल पति की आज्ञा रहने पर ही विधवा ऐसा कर सकती है। हाँ, वह यदि सधवा है तो पति की आज्ञा बिना गोद नहीं ले सकती, किन्तु यह कोई विधि-वाक्य नहीं है कि यदि पति मर गया और आज्ञा नहीं दे गया तो विधवा किसी प्रकार गोद न ले। हाँ, स्त्री उतनी बुद्धिमती नहीं होती है, इसलिए ऐसी दशा में उसे किसी न किसी संरक्षक की सम्मति लेना अनिवार्य है। सुतराम् मद्रास-प्रान्त में पति के निकटतम सपिण्डों की सम्मति से भी विधवा गोद ले सकती है।

बम्बई या महाराष्ट्र सम्प्रदाय—यह सम्प्रदाय इससे भी एक पग आगे जाता है और कहता है कि पति की जीवित अवस्था के लिए ही यह एक विधि-वाक्य है। उसके पश्चात न तो उसे पति की आज्ञा अपेक्षणीय है और न सपिण्डों की सम्मति। इसलिए इस सम्प्रदाय के अनुसार विधवा को गोद लेने का स्वतन्त्र अधिकार है, चाहे पति आज्ञा दे गया हो अथवा नहीं, पति के सपिण्ड इसका समर्थन करते हों वा नहीं। हाँ, इतना बन्धन अवश्य है कि पति ने स्पष्टतः मना नहीं किया हो।

स्त्रियों के अधिकार का स्वरूप

वर्तमान हिन्दू-लॉ के अनुसार स्त्रियों को गोद लेने का अधिकार स्वतः प्राप्त नहीं है[1], प्रत्युत् पति का प्रतिनिधि होने की योग्यता से ही प्राप्त है[2], सुतराम् पति की आज्ञा वा सम्मति ही इस अधिकार का आधार है। पागल मनुष्य अपनी स्त्री को ऐसी अनुमति प्रदान नहीं कर सकता है, अतः उसकी जीवितावस्था में उसकी स्त्री गोद नहीं ले सकती है। उसके मरने पर उपरोक्त नियमों के अनुसार वह गोद ले सकती है, अर्थात मद्रास में उसके सपिण्डों की सम्मति से और बम्बई में यों ही गोद ले सकती है। किन्तु काशी और बङ्गाल सम्प्रदायों में ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि पागल मनुष्य की आज्ञा, आज्ञा नहीं कही जा सकती। मिथिला का पूछना ही नहीं, क्योंकि वहाँ पति चाहे पागल हो या बुद्धिमान हो, उसके मरने पर उसकी सम्मति या आज्ञा काम में नहीं लाई जा सकती। पति ने यदि मना किया हो तो विधवा किसी प्रकार गोद नहीं ले सकती, चाहे वह बम्बई सम्प्रदाय की ही स्त्री क्यों न हो। इससे भी स्पष्ट है कि स्त्री के गोद लेने का अधिकार प्रतिनिध्यात्मक है, न कि वैयक्तिक है। किन्तु

(1) 36 Cal. 821; 37 All. 359, 366; P. C.=13 C. W. N. 841.

(2) 12 M. I. A. 435=10 W. R. P. C. 17; 19 C. W. N. 841 P. C.=37 All. 359.

स्मरण रखना चाहिए कि पति के अतिरिक्त और किसी व्यक्ति को इस अधिकार के खर्च करने की शक्ति नहीं है। इसलिए ससुर किसी विल के द्वारा अपनी पुत्रवधू के इस अधिकार को रोक नहीं सकता[1]। इसके अतिरिक्त पति की अनुमति का भी यथासम्भव उदार ही अर्थ किया जायगा, इसलिए पति ने जहाँ गोद लेने का अधिकार दिया था और दूसरे बार गोद लेने का निषेध नहीं किया था, वहाँ पहले दत्तक पुत्र के मर जाने पर स्त्री के दूसरे बार दूसरे बालक के गोद लेने को अवैध नहीं माना गया[2]।

सपत्नियों की विशेषता

यदि कई सपत्नियाँ हैं, तो वही विधवा गोद ले सकती है, जिसको पति ने ऐसी आज्ञा दी है और यदि उसने किसी विशेष सपत्नी को आज्ञा नहीं दी है तो सब से बड़ी सपत्नी ही इसकी अधिकारिणी है[3]। किन्तु यदि वह इस अधिकार को काम में नहीं लाती है, तो छोटी सपत्नी भी गोद ले सकती है[4]। किन्तु पति की आज्ञा से विधवा को गोद लेने की कोई विवशता नहीं होती कि उसे अवश्य गोद लेना पड़े। इससे उसको एक अधिकार प्राप्त होता है, जिसका उपयोग करना न करना उसकी इच्छा पर अवलम्बित है। यदि कई सपत्नियाँ हैं, तो किसी एक के अस्वीकार करने से, पति की आज्ञा उठ नहीं जाती है, प्रत्युत ऐसी स्थिति में हमने देखा है कि दूसरी सपत्नी भी गोद ले सकती है, किन्तु यदि कुल सपत्नियाँ मिल कर इसे उठा देती हैं, तो ऐसी आज्ञा का अन्त हो जाता है।

अनुमति किस प्रकार दी जा सकती है ?

अनुमति या तो मौखिक (ज़बानी) हो सकती है अथवा लिख कर दी जा सकती है, जिसे अनुमति-पत्र या आज्ञापत्र कहते हैं। ऐसे अनुमति-पत्र का सरकारी स्टैम्प पेपर पर लिखा जाना एवं रजिस्ट्री होना आवश्यक है[5]।

(1) 55 I. C. 313=22 Bom. L. R. 71.

(2) 33 I. A. 145=29 Mad. 382.

(3) 39 Cal. 582=16 C. W. N. 440; 39 Mad. 792=29 M. L. J. 18; 28 Mad. L. J. 72=27 I. C. 775.

(4) 50 I. C. 599 (Nagpur).

(5) 33 I. A. 55; 55 I. C. 38 (Nagpur); 27 Mad. 30.

विधवा के इस अधिकार की सीमा

चूँकि विधवा को गोद लेने का अधिकार स्वतः प्राप्त नहीं है, इसलिए पति की आज्ञा से वह बाहर नहीं जा सकती। पति ने जिस सीमा के अन्दर उसे यह अधिकार दिया है, उसी सीमा के अन्दर विधवा को गोद लेना पड़ेगा[1]। इतना अवश्य है कि पति की आदिष्ट सीमा में कोई अवैधता न हो, जिससे गोद लेना असम्भव हो जाय। उदाहरण के लिए मान लीजिए किसी पुरुष ने अपनी स्त्री को यह आज्ञा दी है कि तुम और अमुक पुरुष मिल कर गोद लेना अथवा यह कहा है कि यदि तुम्हें अपने लड़के से झगड़ा हो जाय तो गोद लेना, अन्यथा नहीं, तो ऐसी आज्ञा अवैध होगी[2]। किन्तु यदि वह यह कहे कि अमुक पुरुष की सम्मति से गोद लेना, तो इसमें कोई अवैधता नहीं है। यदि उस पुरुष ने अपनी स्त्री को किसी व्यक्ति विशेष की सम्मति बिना गोद लेने से मना किया है तो विधवा उस व्यक्ति की सम्मति बिना गोद नहीं ले सकती। यदि वह ऐसा करती है, तो दत्तक अवैध हो जाता है[3], और यदि ऐसी सम्मति लेने की आज्ञा नहीं दी गई हो, प्रत्युत सम्मति मात्र दी गई हो तो विधवा बिना उस व्यक्ति के पूछे भी गोद ले सकती है[4]। इस प्रकार की सभी वैध सीमाओं से विधवा का अधिकार सीमाबद्ध है[5]। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

यदि पति ने किसी निश्चित समय के अभ्यन्तर गोद लेने की आज्ञा दी है, तो वह उसके पश्चात ऐसी आज्ञा को काम में नहीं ला सकती है[6]। पति ने यदि ऐसा आदेश दिया हो कि हमारे पश्चात यदि लड़का या लड़की कुछ न उत्पन्न हो तो गोद लेना और लड़का न होकर लड़की जनमी, तो विधवा गोद नहीं ले सकती[7]।

(1) 11 Beng. L. R. 391.

(2) 27 Cal. 926; 27 I. A. 128; 1 Beng. S. D. 324 (Second Edition 434).

(3) 2 Bom. 377; 27 Cal. 996, 1002; 27 I. A. 128, 134; 42 I. A. 135; 39 Bom. 441.

(4) 18 Cal. 385.

(5) 47 I. A. 202, 205; 47 Cal. 1012, 1018; 48 I. A. 513, 522; 49 Cal. 112.

(6) 228 All. 377; 33 I. A. 55.

(7) 46 I. A. 259; 47 Cal. 466.

प्रेम

[डॉ० धनीराम जी 'प्रेम' साहित्य-कोविद, एम० सी० पी० एस०]

'मञ्जरी !'

किसी ने पीछे से पुकारा। मैं चौंक पड़ी। मैं एकान्त की खोज में बम्बई से इतनी दूर समुद्र के तट पर आई थी। वह स्थान ऐसा था कि जहाँ किसी परिचित पुरुष के मिल जाने की मुझे तनिक भी सम्भावना न थी। क्योंकि इस स्थान के लिए कोई सड़क न थी, न कोई पगडण्डी। और न इनकी वहाँ कोई आवश्यकता थी—न वहाँ चौपाटी की भाँति खेल-तमाशे ही देखने को मिलते थे, न हेङ्गिङ्ग-गार्डन की भाँति वहाँ कोई सुरम्य पार्क ही था और न वहाँ वर्ली की भाँति हवा खाने के लिए अस्फ़ाल्ट की सड़कों वाला समुद्र-तट ही था। केवल समुद्र का एक भाग कुछ खेतों की छाती को चीर कर इधर आ निकला था और उसके छोटे से दरारेदार तट पर कुछ ताड़ के वृक्ष खड़े हुए थे। मैं खेतों के बीच में होकर इधर आई थी और ध्यान-मग्न हुई डूबते हुए रक्त-वर्ण रविराज की ओर टकटकी लगाए देख रही थी। इसीलिए किसी के द्वारा अपना नाम पुकारे जाने पर मुझे आश्चर्य हुआ।

मैंने पीछे फिर कर देखा। माधव खड़ा हुआ हँस रहा था। मैं किनारे से उठने लगी। उसने मेरे कन्धों पर हाथ रख कर कहा—उठो मत, मञ्जु !

"क्यों ?"

"यह पूछती हो ? यह भी कोई पूछने और बताने की बात है ? ओह, इस 'क्यों' को किसने जन्म दिया था ? ज़रा सा शब्द है, पर है कितने ग़ज़ब का ! संसार का सारा रहस्य इस 'क्यों' में भरा है। क्या इसका उत्तर अवश्य चाहती हो ?"

"हाँ !"

"मेरी ओर आँखें फिराओ।"

मैंने उसकी ओर आँखें फिरा दीं।

"अब मेरी आँखों में अपनी आकृति देखो।"

मुझे हँसी आई। मैंने कहा—माधव, तुम आज भाँग तो नहीं पी आए ?

"पहले अपनी आकृति देखो।"

"अच्छा, देख ली।"

"अब उस बेचारे सूर्य की ओर देखो।"

मैंने सूर्य की ओर देखा।

"अब समझ में आया, मैं क्यों तुम्हें बैठे रहने को कह रहा था ?"

"नहीं।"

"तुम्हारे नेत्रों का तेज सूर्य सहन नहीं कर सकता। इसीलिए वह निष्प्रभ होता जा रहा है। मैं चाहता था कि तुम उसे शीघ्र छिपा दो, ताकि चन्द्रोदय होने पर मैं तुम्हारे और उसके प्रकाश की तुलना कर सकूँ। ओह, मञ्जु ! तुम बड़ा अत्याचार करती हो। इस नीरव स्थान में आकर छिपी हो कि कोई पता भी न पा सके !"

"तुम यहाँ कैसे आ पहुँचे ?"

"तुम्हारी मोटर के पीछे साइकिल पर। ऑफ़िस से घर जा रहा था। जब तुम्हारी मोटर को इधर आते हुए देखा तो मैं भी इधर को ही चल पड़ा।"

"और यह सब किस लिए ?"

"तुम्हें मैट्रिक में पास होने पर बधाई देने के लिए। और........."

"और ?"

"आज मेरे लिए भी तो यह बड़ा भाग्यशाली दिन है, मञ्जु !"

"भाग्यशाली ? तुम्हारे लिए ?"

वह आकाश की ओर देखता हुआ बोला—"हाँ, मञ्जु, दो वर्ष के स्वप्न अब सत्य होंगे। किस प्रकार गिन-गिन कर यह सात सौ तीस दिन व्यतीत हुए हैं ! तुम मैट्रिक पास करना चाहती थीं, मैंने आपत्ति नहीं की। तुमने दो वर्ष माँगे थे, मैंने धैर्य धारण करके वे दो वर्ष दिए। तुमने इन दो वर्षों में तुमसे न मिलने की

प्रतिज्ञा चाही थी, वह हृदय मसोस कर पूर्ण की। तुम्हें याद है कुछ? वह प्रकाशमयी रजनी, वह नीलाकाश, वह शरत् चन्द्र की सुमधुर ज्योत्स्ना, मलावर हिल की वह हरी-हरी कोमल घास, समुद्र का शीतल समीर, और फिर मञ्जरी और माधव! कुछ याद है? मैंने तुम्हारा मुख चन्द्रमा की ओर फिरा कर कहा था—'कहो चन्द्र महाराज, तुम इससे भी सुन्दर हो?' और चन्द्रमा लज्जा से उस छोटे से बादल के पर्दे में छिप गया था। फिर मेरे ओष्ठों ने तुम्हारे इन कपोलों को उस विजय के लिए शाबासी दी थी। तुम बहुत कम बोली थीं, परन्तु ये शब्द "मैट्रिक के बाद। अभी दो वर्ष और" ही काफ़ी आशाजनक थे। उस आशा के वृक्ष पर अब फूल लगेंगे, अब फल खिलेंगे! मेरी मञ्जरी!

यह कह कर माधव मेरे गले में अपनी भुजाएँ डालने लगा। मैं उसका हाथ वहीं रोक कर बोली—माधव!

"मञ्जरी!"

"ऐसा न करो!"

उसका मुख म्लान हो गया। उसने अपने हाथ मेरे कन्धे से हटा लिए और क्षीण स्वर में बोला—मञ्जरी, आज यह क्या बात है?

"सुन सकोगे?"

"क्या हृदय-विदारक है?"

"मेरे लिए नहीं। तुम्हारे लिए, शायद।"

"कहो मञ्जु, सुन सकने की चेष्टा करूँगा।"

"स्वप्न देखना छोड़ दो!"

"तुम्हारे स्वप्न?"

"हाँ!"

"और, क्यों?"

"क्योंकि वे स्वप्न कभी सत्य नहीं होंगे।"

"सत्य नहीं होंगे?"—उसने उछल कर पूछा।

"नहीं होंगे, माधव!"

"तुम समझती हो, तुम क्या कह रही हो? मञ्जु, तुम हँसी कर रही हो। तुम इतनी निष्ठुर नहीं बन सकतीं। दो वर्ष तक मैंने प्रतीक्षा की है, किस भरोसे पर? आशा के भरोसे पर। यह समझ कर कि एक दिन तुम मेरी बनोगी। और अब तुम कहती हो कि मैं स्वप्न देखना छोड़ दूँ। आशा को घातक निराशा में परिणत कर दूँ। नहीं, मञ्जु, तुम यह नहीं कर सकतीं। कह दो, कि तुम हँसी कर रही थीं।"

"नहीं, माधव, यह हँसी नहीं है।"

"तो क्या.........?"

"मैं तुमसे विवाह नहीं कर सकूँगी!"

कुछ देर तक वह चुप रहा। यह मैं जानती थी कि उसके हृदय को इन बातों से आघात पहुँचेगा। परन्तु फिर भी मुझे यह बात कभी न कभी उस पर प्रगट करनी ही थी। मैं उस पर अन्याय कर रही थी? इसका उत्तर देना मेरे लिए कठिन था। मैंने उसे प्यार किया था और एक पागल की भाँति प्यार किया था। जब हम सहपाठी थे, मुझे उसके बिना चैन तक न पड़ता था। परन्तु यह दो वर्ष पहले था। उस समय मैं बाह्य संसार से इतनी परिचित न थी। स्कूल के संसार में उसका साथ मैं सौभाग्य समझती थी। वह रूप-गुण में एक ही था; उसकी बुद्धि की प्रखरता स्कूल में प्रसिद्ध थी; उसकी वाक्पटुता को बिरले ही पहुँच पाते थे; उसकी सङ्गीत-प्रवीणता मोहित किए बिना नहीं रह सकती थी! फिर मुझे और क्या चाहिए था? वह मुझसे प्रेम करता था, इससे बढ़ कर मुझे और किस बात की आशा हो सकती थी? परन्तु वह स्कूल की सृष्टि के विचार थे। अब वह बात न थी। मैं अब बीस वर्ष की थी। मैंने बाह्य जगत का अनुभव किया था। जिस समय मैंने उसे विवाह का वचन दिया था, उस समय मेरे मन में भविष्य के विचार न आए थे। अब, जब मैंने उस पर विचार किया, तो मुझे विदित हुआ कि मैं उसके साथ सुखी न हो सकूँगी। वह, अपने पिता की मृत्यु हो जाने के कारण पढ़ना छोड़ कर, क्लर्क हो गया था। महीने में चालीस रुपए लाकर वह मुझे क्या सुख पहुँचा सकता था? मैंने जो आकांक्षाएँ अपने हृदय में पाल रक्खी थीं, वे क्या उसके द्वारा पूर्ण हो सकती थीं? उसके साथ सदा के लिए निर्धनता का जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। क्या मैं उस त्याग के लिए तैयार थी? मैंने बार-बार हृदय से यह प्रश्न किया था और प्रत्येक बार उसका उत्तर मुझे 'नहीं' में मिला था। तो क्या मैं उसके साथ अन्याय कर रही थी? शायद हाँ, शायद नहीं!

मैंने उसकी ओर देखा। वह मूर्तिमान हुआ बैठा था। उसका सारा शरीर गतिहीन था, केवल उसके

नेत्रों की कोर में दो आँसू छलछला रहे थे। मैंने उसका हाथ पकड़ कर कहा—माधव, मैं नहीं समझती थी कि तुम्हें इतना दुःख होगा।

"न मैं यह समझता था कि तुम अपने प्रेम को और अपनी प्रतिज्ञा को इस प्रकार भूल जाओगी।"

"क्या तुम उन सब बातों को इतना गम्भीर समझ रहे थे? वह स्कूल की बातें थीं, माधव! क्या स्कूल का जीवन वास्तविक जीवन होता है? क्या वहाँ की की हुई प्रतिज्ञाओं और वहाँ के मोल लिए हुए झगड़ों में कुछ सार होता है?"

"मञ्जरी, मुझे भुलावा न दो। साफ़ क्यों नहीं कहती हो कि तुम मुझसे अब प्रेम नहीं करती हो। मैं समझता हूँ, मञ्जरी! इसमें तुम्हारा दोष नहीं है। मैं स्वयं अभागा हूँ। मैं तुम्हारे योग्य हो सकता हूँ, इसमें सन्देह है। तुम एक बड़े आदमी की लड़की हो। मैं एक निर्धन क्लर्क हूँ। मैं यह भूल गया था। तुम्हारे लिए मैं सुन्दर बङ्गले कहाँ से ला सकूँगा? तुम्हारे पहनने के लिए रेशमी वस्त्र, मोतियों की मालाएँ, जवाहिरात कहाँ से ला सकूँगा? तुम्हारी सवारी के लिए मोटरें, लेण्डो आदि कहाँ से ला सकूँगा? मेरे पास तुम्हें देने के लिए केवल अपना प्रेम, अपना हृदय था। वह तुमने ठुकरा दिया। अच्छा मञ्जरी! ठुकरा दो। धन की लालसा के पीछे प्रेम को फेंक दो। परन्तु याद रक्खो, धन से तुम प्रेम नहीं ख़रीद सकोगी। प्रेम केवल त्याग से मोल लिया जा सकता है।"

वह एक श्वास में यह सब कुछ कह गया। उसने मुझे इतना भी अवसर न दिया कि मैं कुछ कह सकती। मैंने उसकी ओर देखा, वह उठ खड़ा हुआ। धीरे-धीरे वह खेत की ओर जाने लगा। मैंने देखा कि वह रूमाल से अपने आँसू पोंछता जाता था। मैंने पुकारा—'माधव!', वह मुड़ा नहीं। बहुत दूर सड़क पर मैंने केवल एक बार उसकी साइकिल की घण्टी सुनी।

२

कई सप्ताह व्यतीत हो गए। इन सप्ताहों में मेरे मन में उथल-पुथल होती रही। मैं घण्टों तक उस दिन की घटना की आलोचना करती। कभी अपने को धिक्कारती, कभी अपने व्यवहार का अनुमोदन करती। 'याद रक्खो, धन से तुम प्रेम नहीं ख़रीद सकोगी। प्रेम केवल त्याग से मोल लिया जा सकता है।' माधव के ये वाक्य रह-रह कर मेरे कानों में गूँजते थे। क्या उनमें कुछ सार है? क्या यह सम्भव नहीं कि मैं एक ऐसे धनिक व्यक्ति को पा सकूँ जो मुझे सांसारिक वैभव के साथ ही अपना प्रेम भी प्रदान कर सके। और फिर प्रेम के विषय में भी मेरे विचित्र विचार हो गए थे। मैं प्रेम के वास्तविक रहस्य को नहीं समझ सकी। मैं तो यही समझती थी कि जिससे विवाह होगा, उसी से प्रेम भी अवश्य ही हो जायगा। मैंने अङ्गरेज़ी शिक्षा प्राप्त की थी। घराना मेरा आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता को अपना चुका था। मैं किसी भी पुरुष से विवाह करने के लिए स्वतन्त्र थी। फिर भी मैं प्रेम को विवाह के पूर्व न रख कर पीछे ही रखती थी। प्रायः सभी हिन्दू युवक तथा युवतियाँ ऐसा सोचती हैं। हिन्दू समाज का आदर्श ही आजकल यह है। परन्तु मैंने अपना विचार केवल उस आदर्श के कारण नहीं बनाया था। उस विचार का जन्म समाज की परिस्थिति के कारण हुआ था। मैं धीरे-धीरे यह समझने लगी थी कि धन और प्रेम में भी सम्बन्ध हो सकता है।

इन सब विचारों के होते हुए भी कभी-कभी मैं माधव के लिए व्याकुल हो उठती थी और इसी कारण उस पर मुझे क्रोध हो आता था। मैं स्वयं अपने से पूछती—'मञ्जु! जब तुझे माधव से विवाह नहीं करना है, तो उसका विचार तेरे हृदय में क्यों आता है? वह आख़िर तेरा कौन है? उसे भूल जा।' जितनी ही मुझे उसकी याद आती थी, उतनी ही मुझे उससे घृणा होती थी। वह मेरे जीवन के उद्देश्य के मार्ग में आ रहा था, इसे मैं सहन नहीं कर सकती थी। कैसे विचित्र भाव थे! उससे इसलिए घृणा करना कि उससे मैं प्रेम करती थी!! मानव हृदय कितना रहस्यमय है!

कुछ दिनों बाद मैं अपने कमरे में बैठी थी कि पिता जी ने आकर मुझे एक निमन्त्रण-पत्र दिखाया।

"तुम मि० देसाई से कभी मिली हो, मञ्जरी!"

"नहीं, मैंने अभी तक उनको देखा भी नहीं।"

"बम्बई के धनाढ्यों में उनका बड़ा ऊँचा दर्जा है। इम्पीरियल सिनेमा उन्हीं का है। देसाई फ़िल्म कम्पनी पिछले महीने उन्होंने स्थापित की थी। इस पार्टी के समय उसका पहला फ़िल्म 'संनमनी शोध माँ' (प्यारे की खोज

में) दिखाया जायगा। तुम्हें तो उन्होंने पास होने की बधाई दी है और पार्टी में सम्मिलित होने का विशेष आग्रह किया है।"

"मुझे तो वे जानते न होंगे?"

"तुम्हें एक बार उन्होंने विक्टोरिया गार्डन में देखा था।"

"मैं चलूँगी।"

मैं मन ही मन प्रसन्न थी। देसाई से मिल कर कदाचित माधव के विचारों को भ्रान्तिजनक सिद्ध कर सकूँ। मेरे सामने एक अवसर था और उससे पूरा लाभ उठाने का मैंने निश्चय कर लिया।

जब फ़िल्म दिखाया जाने लगा तो मुझे यह देख कर बड़ा कौतूहल हुआ कि कहानी माधव की लिखी हुई थी। मैंने फ़िल्म बड़ी व्याकुलता से समाप्त कर पाया। कहानी क्या थी, मेरा इतिहास था। मैं उसकी नायिका थी और माधव उसका नायक। मैंने उससे प्रेम करके भी उसे एक ओर को फेंक दिया और उसको धोखा दिया। फिर मैं एक दुश्चरित्र धनिक से उसके धन के लिए प्रेम करने लगी। परन्तु वह मुझसे भी चतुर निकला। वह स्वयं मुझे धोखा देने का प्रयत्न करने लगा। फिर मुझे ध्यान आया और मुझे अन्त में अपने प्रेमी को ही अपनाना पड़ा। यह उसकी कहानी का सार था। उसने मुझे कहानी का लक्ष्य ही न बनाया था, उसमें नायिका का नाम भी 'मञ्जरी' रक्खा था। मेरा मुख क्रोध से लाल हो गया। सो माधव ने इस प्रकार मुझसे बदला लिया? देखने वाले न समझें, परन्तु मैं तो अन्धी न थी, मूर्ख न थी। मैं तो उसके आशय को समझ सकती थी। क्रूर, नीच, कलुषित हृदय—मैं मन ही मन उसे गालियाँ देने लगी। कहानी का किस प्रकार अन्त किया है! वह समझता है कि मैं किसी दुराचारी द्वारा ठुकराई जाकर उसके द्वार पर उसके प्रेम की भिक्षा माँगने जाऊँगी। मैं, और उसके द्वार पर! कैसा दुस्साहस है! चाहे मुझे एक कुरूप निर्धन से विवाह करना पड़े, परन्तु उसकी ओर मैं आँख भी न उठाऊँगी। पशु, अभिमानी, दम्भी, ओह! उसे मैं घृणा करती हूँ।

मि० देसाई मेरे पास ही बैठे थे। वह मेरी दशा देख कर बोले—मिस मञ्जरी, क्या तबीयत ठीक नहीं है?

"नहीं, तबीयत तो ठीक है। ज़रा सर चकराने लगा था। बाहर ताज़ी हवा से ठीक हो जाऊँगी।"

"क्या मैं तुम्हें पीछे के बाग़ीचे में ले चलूँ?"

"आपको कष्ट होगा।"

"कष्ट? ओह मिस मञ्जरी, यदि मैं तुम्हारे लिए कुछ कर सकूँ तो मेरा बड़ा सौभाग्य होगा।"

हम दोनों बाग़ीचे की ओर चले। मार्ग में मैं माधव को एक ओर खड़ा देख कर चकित हो गई। घृणा तथा क्रोध का भाव मेरे मस्तक पर आना चाहता था, परन्तु मि० देसाई के साथ होने के कारण मैंने वह भाव दबा दिया। वह एकटक मेरी ओर देख रहा था। मैंने उपेक्षा का भाव दिखाने के लिए उसकी ओर से मुख फेर लिया। मि० देसाई ने शायद यह देखा। वह बोले—मिस मञ्जरी!.........।

"मुझे आप केवल 'मञ्जरी' कहें तो अच्छा होगा।"

"मञ्जरी?"

"हाँ।"

"क्या तुम इस नवयुवक को जानती हो?"

"कुछ याद नहीं आता।"

"यह कहानी इसी की लिखी हुई थी।"

"तो क्या इन्हीं का नाम माधव है?"

मैंने जिज्ञासा से पूछा, मानो मैं वास्तव में उससे अपरिचित थी।

"तुम्हें कहानी पसन्द आई?"

"मैं भी अपने से यह प्रश्न कर चुकी हूँ, परन्तु कुछ उत्तर नहीं मिला।"

"मैं तो समझता हूँ कि माधव ने इस कहानी में अपना हृदय निकाल कर रख दिया है। शायद वह स्वयं इस प्रेम-निराशा का अनुभव कर चुका है। कुछ भी हो, यह फ़िल्म हमारे सिनेमा में चार सप्ताह से चल रहा है।"

"क्या माधव पुराना लेखक है?"

"नहीं, यह उसकी पहली ही कहानी है। परन्तु मेरा विचार है कि उसको अपनी कम्पनी में ही लेखक का पद दे दूँ।"

मुझे यह बहुत बुरा लगा। घृणा से मुझे इतना पागलपन हो गया था कि मैं मन ही मन उसके अनिष्ट तक की प्रार्थना करने लगी। मेरी घबराहट देख कर मि०

देसाई बोले—क्यों, तुम्हें इस फ़िल्म से कुछ दिलचस्पी नहीं ?

"और किसी बात से नहीं तो अपने नाम से तो है ही। मुझे आश्चर्य है कि नायिका के और मेरे नाम में समानता कैसे हो गई !"

"यह तो मैं नहीं जानता कि माधव ने यह नाम किस प्रकार निश्चित किया, परन्तु मुझे यह नाम सुन्दर लगता है।"

"और उसके साथ ही शायद, नायिका की हीन दशा भी आपको सुन्दर लगती है !"

"बस वहीं माधव से मैं सहमत नहीं। यदि मैं कहानी का लेखक होता तो मञ्जरी का चित्रण दूसरी ही तरह से करता।"

"किस तरह से ?"

"वह दो प्रेमियों के बीच में पड़ती ही नहीं। सनम की शोध में निकलती और उसे एक ही सनम ऐसा मिलता जो उसकी पूजा करता उसे वस्त्राभूषणों से लाद देता, उसे मोटर से पृथ्वी पर पैर न रखने देता, उसे वह बना देता, जिसे देख कर स्वर्ग की परियाँ भी लज्जित हो जातीं।"

"आपने भी इसी भाँति किसी की पूजा की है ?"

"मैं पूजा कर रहा हूँ मञ्जरी ! परन्तु मेरी देवी अभी प्रसन्न नहीं हुई।"

"शायद आप हृदय से पूजा नहीं करते, नहीं तो पूजा के सामने कौन सी देवी है, जो प्रसन्न न हो जाय ?"

"देवी से भय लगता है कि वह कहीं इस भक्त का तिरस्कार न कर दे।"

"अच्छा, बताइए तो सही, वह ऐसी कौन सी देवी है।"

"मैंने कह दिया कि देवी से भय लगता है। यदि बता दिया तो......"

"तो यह तो बता दीजिए कि आपकी देवी देखने में कैसी है ?"

"यह तो उतना कठिन नहीं है। यदि तुम्हें एक दर्पण के सम्मुख खड़ा कर दिया जाय तो तुम्हारा प्रतिबिम्ब मेरी देवी से बिलकुल मिलता-जुलता होगा।"

"यदि मैं किसी की भक्त होती तो अपनी देवी के सामने ही पूजा के मन्त्र पढ़ती।"

"और यदि तुम किसी की देवी होतीं तो ?"

"तो मैं अपने भक्त से प्रसन्न होती न कि अप्रसन्न !"

"सच ?"

"सच !"

देसाई ने मेरा मुख अपनी ओर को करके उमङ्ग भरे स्वर से कहा—मञ्जरी, मेरी देवी !

*　　　*　　　*

मैं अपनी इस विजय पर हर्षित हुई अपनी मोटर पर सवार होने के लिए चली। मि० देसाई से मैं भीतर ही विदा ले चुकी थी, अतः वे मेरे साथ मोटर तक न आए थे। मैंने मोटर का द्वार खोला ही था कि माधव का शब्द मेरे कान में पड़ा—मञ्जरी !

मैंने उसकी ओर मुड़ कर देखा भी नहीं और अपनी सीट पर बैठ कर ऐञ्जिन को चला दिया। मैंने यह सब उस घृणा के कारण किया, जिसकी ज्वाला मेरे हृदय में जल रही थी। जब किसी व्यक्ति के आचरण पर घृणा होती है, तो उसका बदला लेने के लिए हम उसका अपमान कर बैठते हैं। यह स्वाभाविक है। उसका अपमान करके ही मुझे सन्तोष न हुआ। मैं तो यह चाहती थी कि वह उस व्यवहार को अपमान समझे और उसके हृदय में प्रतिक्रिया का भाव उत्पन्न हो। शत्रु की पीठ पर वार करने में कुछ आनन्द थोड़ा ही है। आनन्द तो इस बात में है कि उस पर सामने से वार किया जाय और वह भी प्रत्युत्तर दे। इसी बात का अनुभव करने के लिए मैंने अभी मोटर को नहीं चलाया। मैं समझती थी कि वह इस अपमान से क्रुद्ध होगा, उसके मुख पर बल पड़ जायँगे और वह जली-कटी बातें करके एक ओर चला जायगा। मैं उसके हृदय पर तो चोट कर ही चुकी थी, अब उसकी पीड़ा से उसे तड़पते हुए देखना चाहती थी, उसकी सिसकारी सुनना चाहती थी। परन्तु उसने प्रतिक्रिया का कोई लक्षण न दिखाया। मुझे निराशा हुई। वह शान्ति से खिड़की के पास आया और कहने लगा—

"मञ्जरी ! तुम्हारे व्यवहार पर मुझे आश्चर्य नहीं है। मुझे ज्ञात था कि तुम मेरे आने का अर्थ कुछ और ही लगाओगी और फलतः मेरा अपमान करोगी। तुम्हारा हृदय मेरा अपमान करने के लिए व्याकुल था, तुमने अब मेरा अपमान कर लिया; अब वह व्याकुलता दूर हो गई

होगी। अब, क्या तुम दो-एक बात सुन सकोगी? मैं अपने लिए कुछ कहने नहीं आया हूँ।"

"फिर किसके लिए कहने आए हो?"

"तुम्हारे लिए।"

"और शायद, मि० देसाई के लिए भी?"

"हाँ, परन्तु अधिक नहीं।"

"तुम्हें निराशा तो होगी, परन्तु मैं इस विषय में कुछ भी सुनना नहीं चाहती।"

"तुम नहीं सुनना चाहोगी, यह मैं जानता था। फिर भी मेरा कर्तव्य है कि मैं तुम्हें सावधान कर दूँ। क्या तुम मि० देसाई से विवाह करने जा रही हो?"

"हाँ। कुछ आपत्ति है?"

"है। तुम मि० देसाई के साथ विवाह न करो"

"ईर्ष्या! यही बात है न?"

"तुम अवश्य ही ऐसा समझोगी। परन्तु यह ठीक नहीं है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मैं इस विषय से अलग हूँ। बात केवल यही है कि तुम मि० देसाई को भली भाँति नहीं जानती। तुम्हें धन, वस्त्र, आभूषण, मोहरें, सभी कुछ मिलेंगे। परन्तु जिस सुख का तुम स्वप्न देख रही हो, वह तुम्हें नहीं मिलेगा। देसाई के चरित्र को तुम नहीं जानती हो।"

"यदि मैं नहीं जानती तो तुमसे उसे सीखना भी नहीं चाहती। तुम चाहे जितना छिपाओ, तुम्हारे नेत्र ईर्ष्या से अन्धे हो रहे हैं। मेरे हितैषी बनते हो, इसीलिए कि मेरे वैभव को देख कर तुम्हें जलना न पड़े, मुझे जो सुखी भविष्य मिल रहा है, उसे मेरे देखते-देखते ही चकनाचूर कर डालो। तुम्हारी मनोवृत्ति उस कहानी में स्पष्ट देखती थी। तुम यदि यह समझते हो कि मैं तुम्हारे सामने प्रेम की भिक्षा माँगने आऊँगी तो एक भारी भूल करते हो। मैं तुमसे अन्तिम बार कहे देती हूँ कि मैं तुम्हारा मुख भी नहीं देखना चाहती। तुम देख कर जलो, परन्तु मैं देसाई से विवाह करूँगी, करूँगी, करूँगी!"

मैं क्रोध में यह सब एक श्वास में कह गई। माधव कुछ कहना चाहता था, परन्तु मैंने उसको इस बात के लिए अवसर भी न दिया और अपनी कार का पहिया घुमा दिया।

३

इस घटना को छः मास व्यतीत हो गए। मि० देसाई के साथ मेरा विवाह होगा, यह बात लगभग निश्चित हो चुकी थी। सम्बन्ध पक्का करने से पूर्व पिता जी की सम्मति हुई कि हम लोग कहीं जाकर वर्षा के दिन व्यतीत करें। बहुत सोच-विचार के बाद हम लोगों ने रत्नागिरि की ओर एक छोटे से द्वीप पर जाकर रहने का निश्चय किया। वहाँ के लिए प्रति मास एक छोटा सा जहाज़ जाता था। वह भी वर्षा-काल के दो मास के लिए बन्द हो जाता था। वही दो मास हमने वहाँ रहने के लिए रक्खे थे।

बम्बई छोड़ कर जब जहाज़ समुद्र में कुछ दूर निकल गया तो मैं कौतूहलवश थर्ड क्लास के डेक पर जाकर समुद्र की लहरों को देखने लगी। जहाज़ समुद्र की छाती को चीरता हुआ जा रहा था। पीछे की ओर देखने पर पता लगता था कि मीलों तक समुद्र अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त नहीं होता था, प्रत्युत एक श्वेत रेखा उसके ऊपर दिखाई देती थी। हमारे जीवन की छाती को चीर कर भी कितनी घटनाएँ इस विश्व में निकल जाती हैं, परन्तु उनका कुछ चिन्ह अवश्य ही जीवन में रह जाता है। जिन घटनाओं ने मेरे जीवन में प्रवेश किया था, वे सब मेरे सामने नाचने लगीं। एक ओर मैंने म्लान-मुख माधव को देखा, दूसरी ओर हर्षोन्मत्त देसाई को। कितना अन्तर था, और यह सब मेरे कारण। क्या मेरा माधव के प्रति उस दिन का व्यवहार उचित था? मेरी यह बड़ी क्रूरता थी, इस प्रकार मुझे उसका अपमान तो नहीं करना चाहिए था। मैं उसके साथ पहले ही अन्याय कर चुकी थी, फिर उसके हृदय को इस प्रकार दुखाना क्या न्याय-सङ्गत था? इस प्रकार मैं अपनी ही भर्त्सना कर रही थी कि जहाज़ की पोशाक में माधव को एक ओर जाते हुए देख कर मैं आश्चर्यान्वित हो गई। मैंने पुकारा—माधव!

उसने सुना, मेरी ओर को मुख फिराया और शीघ्र ही दूसरी ओर को, बिना कुछ कहे हुए, चला गया। मुझे उससे यह आशा नहीं थी। जिस दिन मैंने उसका अपमान किया था, उस दिन यदि वह इस प्रकार का व्यवहार करता तो उसे मैं अपनी विजय समझती।

परन्तु आज का उसका व्यवहार मुझे अपनी पराजय समझ पड़ी। इतना अभिमान? ऐसा व्यवहार तो मैंने भी न किया था। मैं बोली तो थी, उसकी कुछ बातें सुनी तो थीं। परन्तु उसने तो मेरी ओर देखा भी नहीं और मुख फिरा कर चल दिया। अब भी समझता है कि मैं ख़ुशामद करूँगी। समझता रहे, मन के लड्डू खाता रहे। मैं भी क्या चिन्ता करती हूँ? जहाज़ पर अच्छा पद मिल जाने से ही मुँह फूल गया, दिमाग़ आसमान पर चढ़ गया। है तो आख़िर कम्पनी का नौकर ही। मैं फिर भी फ़र्स्ट-क्लास की यात्री हूँ। उसके लिए यदि कुछ समवेदना तथा मैत्री के भाव आए थे, वह भी इस घटना से दूर हो गए। दो दिन जहाज़ पर हम रहे, परन्तु मैंने उसकी ओर देखा तक नहीं, न उसने ही मेरी ओर देखा। यदि देसाई मेरे साथ होते तो मैं उसे दिखा-दिखा कर कुढ़ाती, परन्तु उनके वहाँ न होने से मन मार कर रह जाती थी।

तीसरे दिन जब केवल बीस मील पूरे करने को रहे थे, भारी तूफ़ान आने लगा। चारों ओर अन्धकार हो गया। वायु वेग से बहने लगी। जिस प्रकार खौलता हुआ पानी कड़ाही में उबलता है, उसी प्रकार समुद्र में उबाल आने लगे। जहाज़ डगमग हिलने लगा। चारों ओर हाहाकार मचने लगा। सब अपने-अपने प्राणों के लाले कर रहे थे। मैं भी भयभीत हुई एक ओर खड़ी थी कि माधव उस ओर दौड़ता हुआ आया।

"मञ्जरी! शीघ्र मेरे साथ चलो।"

"किस लिए?"

"मैं एक नाव में तुम्हें किनारे पर ले जाना चाहता हूँ। जहाज़ ख़तरे में है। डूब जाने का भय है।"

"मैं नहीं जाना चाहती।"

"मूर्ख मत बनो, यह घृणा और अभिमान का समय नहीं है। इनके लिए फिर भी अवसर मिलेगा।"

"मैं नहीं चलूँगी।"

"मैं तुम्हें यहाँ नहीं छोड़ सकता।"—कह कर उसने मुझे अपनी गोद में उठा लिया और समुद्र में कूद पड़ा। इसके अनन्तर क्या हुआ, मुझे पता न रहा।

४

जब मेरी मूर्च्छा दूर हुई तो मैंने देखा कि एक छोटे से कमरे में मैं एक टूटी सी चारपाई पर पड़ी हूँ और माधव मेरे पास भीगे हुए कपड़े पहने बैठा है। मुझे हिलते हुए देख कर वह बोला—मञ्जरी! जी कैसा है?

"यह कौन सा स्थान है?"—मैंने आश्चर्य से चारों ओर देख कर माधव से पूछा।

"इस बात की चिन्ता न करो। यह सब तुम्हें शीघ्र ही विदित हो जायगा। तुम शिथिल हो रही हो, पहले कुछ दूध पीलो।"

मैं सचमुच शिथिल हो रही थी। उसने कुछ गर्म दूध दिया, जिसे मैं एक श्वास में पी गई। कुछ देर बाद ही मेरी शिथिलता कुछ दूर हुई और मुझे सारी घटनाएँ याद आने लगीं। मैंने व्यग्र होकर माधव से पूछा—मुझे अब सब याद आ रहा है। तुम मुझे जहाज़ से एक नाव में चढ़ा कर इधर लाए थे। बोलो, जहाज़ का क्या हुआ, पिता जी का क्या हुआ?

"जहाज़ में छेद होगया था, मञ्जु! यह बात केवल हम लोगों को ही विदित थी। इसीलिए मैं तुम्हें बचाने के विचार से नाव पर लाया था। तुम्हें याद नहीं है, हमारी नाव भी तूफ़ान में आकर टुकड़े-टुकड़े हो गई थी!"

"तो क्या तुम मुझे तैर कर इधर लाए थे?"

"हाँ।"

"और जहाज़?"

"शायद डूब गया होगा।"

"और पिता जी?"

"शायद उसके साथ.........!"

"यहाँ कुछ समाचार नहीं मिल सकेगा?"

"मुझे यह भी तो पता नहीं कि यह कौन सा द्वीप है। यहाँ केवल २०-२५ झोपड़ियाँ हैं। इन लोगों की भाषा भी तो मेरी समझ में नहीं आती। बड़ी कठिनता से यह झोपड़ा ठहरने को और कुछ दूध पीने को मिला है।"

"फिर यहाँ से चलते क्यों नहीं?"

"कहाँ को?"

"कहीं भी, जहाँ कुछ समाचार मिल सके।"

"कहीं जाने का मार्ग नहीं है।"

"क्या?"—मैंने विस्मय-मिश्रित वेदना से पूछा।

"आश्चर्य क्यों करती हो? यह एक छोटा सा द्वीप है। जिधर जाओगी, उधर ही झोपड़ों के झुण्ड मिलेंगे।

या फिर समुद्र का किनारा। यह बम्बई का प्रान्त तो है ही नहीं, जहाँ रेलें, तार या सड़कें मिल सकें।"

"तो क्या फिर हम लोग बम्बई न लौट सकेंगे?"

"लौट सकेंगे, परन्तु अभी नहीं।"

"क्यों?"

"दो मास तक कोई जहाज़ इधर नहीं आता।"

"दो मास तक!"—मैं चिल्ला पड़ी।

"हाँ, दो मास तक!"—माधव शान्ति से बोला—"क्यों, क्या दो मास भी इस स्थान पर नहीं बिता सकोगी?"

"दो मास? मैं एक दिन भी नहीं बिता सकूँगी। लम्बे-लम्बे साठ दिन, इस नरक में, तुम्हारे साथ! ओह, तुम मुझे जहाज़ से क्यों ले आए?"

"क्या मुझसे इतनी घृणा है?"

"तुम मुझे क्यों लाए? यह सब तुमने किस लिए किया? इसलिए कि मैं यहाँ रह कर तुमसे फिर प्रेम करना सीख सकूँ? तुम्हारी कहानी के अन्तिम भाग को सत्य सिद्ध कर सकूँ? अपने सारे भविष्य को एक अन्धकारमय गर्त्त में फेंक दूँ? मैं तुम्हारे साथ एक दिन भी न रहूँगी।"

मैं उत्तेजित हुई; चारपाई से उठ कर उस झोपड़े में टहलने लगी। माधव उठा। मेरे पास आकर वह बोला—मञ्जरी!

"कहो, और क्या कहना रह गया है, वह भी सुन लूँ।"

"यहाँ नहीं।"

"फिर कहाँ?"

"सामने समुद्र-तट पर। उस पर्वती के ऊपर। कदाचित तुम्हारी यह उत्तेजना वहाँ शान्त हो जाय।"

मैंने कुछ कहा नहीं। उसके पीछे-पीछे हो ली। पर्वती की खोपड़ी पर हरियाली लदी हुई थी। तूफ़ान के पश्चात आकाश बिलकुल साफ़ था। समुद्र जो क्रोध से उबल रहा था, अब शान्ति से हिलोरें ले रहा था। जब हम बैठ गए तो माधव बोला—समुद्र को देखती हो, मञ्जरी!

"हाँ।"—मैंने उपेक्षा से कहा।

"कितना शान्त है!"

"है।"

"कौन कह सकता है कि कल यही समुद्र तूफ़ान की ज्वाला उगल रहा था?"

मैं चुप रही।

"यदि तुम भी इसी प्रकार शान्त हो सको!"

मैं फिर चुप रही।

"मुझे दुःख है कि भाग्य ने हम दोनों को इस प्रकार यहाँ एकत्र कर दिया। मैं स्वयं नहीं समझ सकता कि मैं क्यों तुम्हें जहाज़ से लाया। उस समय मेरे हृदय में केवल एक यही भावना थी कि तुम्हारी रक्षा कर सकूँ। परन्तु उसका कारण वह नहीं है, जो तुम समझ रही हो। यह मैं तुम्हें किस प्रकार बताऊँ कि मैं तुम्हें कभी भी अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न नहीं करता।"

"बोलो माधव, क्या अब भी तुम प्रेम के स्वप्न देखा करते हो?"

"स्वप्न? नहीं मञ्जरी! प्रेम मेरे लिए एक स्वप्न नहीं है, वह सजीवता है, वास्तविकता है। कभी वह स्वप्न था, परन्तु आज नहीं। स्वप्न का क्या मूल्य? यदि वह सत्य हुआ तो ठीक है, नहीं तो? और कितने स्वप्न सत्य होते हैं? कितने ऐसे पुरुष हैं, जिन्होंने स्वप्न देखे हैं, परन्तु अचानक उन्हें विदित हुआ है कि वह कुछ भी नहीं था। सजीव प्रेम कुछ और ही चीज़ है। वहाँ धोखा नहीं, निराशा नहीं। वहाँ जो कुछ है, वह है। जो देखते हैं, वही अनुभव करते हैं। जो अनुभव करते हैं, उसी की आशा करते हैं। जिसकी आशा करते हैं, वही प्राप्त होता है। वह प्रेम सम्पूर्ण है। जितना है, उससे न तो कभी कम हो सकता है और न उससे अधिक की इच्छा हो सकती है।"

"यह सजीव प्रेम क्या है?"—मैंने उत्सुकता से पूछा। मैं स्वप्न देखती थी। उसके परे भी कोई प्रेम है, उसका ज्ञान मुझे न था। इस दार्शनिक प्रेम की मीमांसा मेरी समझ में न आई।

"शायद तुम इसे न समझ सको। लोग इस प्रकार के प्रेम पर हँसते हैं, उसे पागलपन कहते हैं। क्योंकि हममें से अधिकांश केवल स्वप्न देखने वाले होते हैं। और वह स्वप्न भी ऐसे, जो कभी वास्तविकता का रूप धारण कर ही नहीं सकते। इस प्रेम को केवल प्रेम के लिए ही

नहीं अपनाते। उससे हम कुछ न कुछ प्राप्त करना चाहते हैं। कोई भोग, कोई रूप, कोई सुख। प्रेम हमारा ध्येय थोड़े ही होता है? वह तो हमारे लिए किसी और ध्येय का साधन मात्र होता है। सजीव प्रेम इससे बहुत परे है। वह प्रेम केवल प्रेम के लिए किया जाता है। वह साधन नहीं, ध्येय होता है। वहाँ मनुष्य कुछ प्राप्त करने की आशा नहीं करता, बल्कि कुछ देने की इच्छा रखता है। ऐसा प्रेम किस प्रकार मर सकता है? ऐसा प्रेम किस प्रकार कम हो सकता है? उसमें नैराश्य के लिए स्थान क्योंकर हो सकता है? मैं इसी प्रेम का साधक हूँ, मञ्जरी! यह बड़ी कठिन साधना है, परन्तु है बड़ी शान्ति-प्रदायिनी। यह ठीक है मञ्जु, कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ। चाहे जब, चाहे जहाँ, चाहे जो कोई पूछे, मैं सदा यही कहूँगा। परन्तु मेरा प्रेम अब स्वप्नों का प्रेम नहीं है। मैं उसके बदले में कुछ नहीं चाहता। मैंने तुम्हें प्रेम किया है और करता रहूँगा। परन्तु मैं यह आशा कभी न करूँगा कि तुम भी मुझे अपना प्रेम प्रदान करो। यह स्वार्थ-साधन के अतिरिक्त और कुछ न होगा। मैं सदा यही उद्योग करूँगा कि तुम सुखी रहो। यदि मैंने मि० देसाई के विषय में कुछ कहा तो वह इसीलिए कि वह तुम्हें भविष्य में दुख की ओर को खींचते। यदि मैं तुम्हें जहाज़ से बचा कर यहाँ लाया तो तुम्हारे लिए, न कि अपने लिए। यदि तुम देसाई के साथ सुखी रह सकती हो तो मैं इसमें बाधा नहीं डालूँगा, न मैं उनसे या तुमसे इस विषय में घृणा ही करता हूँ, क्योंकि जहाँ प्रेम है, वहाँ घृणा का, ईर्ष्या का, द्वेष का क्या काम? तुम समझती हो कि मैं मि० देसाई से ईर्ष्या करता हूँ। नहीं, मञ्जरी! तुम नहीं समझ सकोगी कि किस प्रकार मैं परमेश्वर से यह प्रार्थना करता रहा हूँ कि वह देसाई को सद्बुद्धि दे, ताकि तुम्हारा भविष्य उनके साथ में सुख-पूर्वक व्यतीत हो सके। मैं तुम्हें देसाई के पास शीघ्र ही पहुँचाने का प्रयत्न करूँगा।"

"वह किस प्रकार?"

"यहाँ से एक मील की दूरी पर जो द्वीप है, वहाँ से बम्बई को केबिल किया जा सकता है।"

"उससे क्या होगा? जहाज़ तो दो मास तक इधर आएगा ही नहीं।"

"सरकारी जहाज़ नहीं आएगा, परन्तु देसाई की अपनी स्टीम-बोट तो है। वह स्वयं तुम्हें लेने के लिए इधर आ सकते हैं।"

"परन्तु उस द्वीप तक क्या तुम जाओगे?"

"हाँ, मैं एक बोट लेकर उधर जाऊँगा।"

मैं लज्जा से पानी-पानी हो गई। मेरा माधव के प्रति कैसा भ्रम था! मैं बोली—माधव! मुझे क्षमा करना। मैं नहीं जानती थी कि तुम्हारा हृदय इतना महान है।

* * *

एक सप्ताह व्यतीत हो गया। माधव ने मेरे भोजन आदि का प्रबन्ध ठीक कर दिया था। दूध हमें द्वीप वालों से मिल जाता था और माधव समुद्र के किनारे से नारियल और केले ले आता था। सारे दिन वह उन ग्रामीणों के बच्चों के साथ खेला करता था। उसे उन्हीं में बड़ा आनन्द आता था। एक दिन सन्ध्या के समय वह आया तो उसकी गोद में एक बारह वर्ष की काली कुरूप बच्ची थी। मेरे पास आकर वह बोला—मञ्जरी! तुम्हें एक कष्ट उठाना पड़ेगा। ग्राम में प्लेग का प्रकोप प्रारम्भ हो गया है।

"फिर मैं क्या करूँ? यह कौन है?"

"इसके वृद्ध पिता का अभी देहान्त हो गया है। इसकी देख-रेख करने वाला कोई नहीं है। क्या तुम इसे आज रात भर अपने कमरे के एक कोने में स्थान दे सकोगी?"

"इसके घर में ही इसे क्यों न छोड़ आए?"

"इसे थोड़ा ज्वर हो रहा है। वहाँ कोई ख़बर लेने वाला भी नहीं है।"

"तो यहाँ ही ख़बर लेने वाला कौन है? मैं इसकी नौकरानी का काम करूँगी?"

वह सरोष स्वर में मेरी ओर देख कर बोला—मुझे तुमसे यह आशा नहीं थी, मञ्जरी!

"परन्तु माधव! मैं कभी शूद्रों के गन्दे बच्चों के साथ नहीं रही।"

"तुम शूद्रों को मनुष्य नहीं समझती हो। इसीलिए कि उनके पास धन नहीं है, वे निर्बल हैं, निराश्रय हैं। परन्तु याद रक्खो मञ्जरी! यह तुम धनिक लोगों से अधिक पवित्र हैं। इनके शरीर मैले हैं, पर हृदय मैले नहीं हैं। इनका बाहरी रूप काला है, परन्तु भीतर यह

हीरे की भाँति सफ़ेद हैं। जो धनिक और उच्च वर्ण के हिन्दू, पापों का जीवन व्यतीत करते हुए भी, अत्याचारों की कमाई खाकर मोटे होते हुए भी, बड़े होने का दावा करते हैं, उनसे ये कहीं अधिक पवित्र हैं। अच्छा, यदि तुम इसे नीच समझती हो, तो समझो। मैं इसे अपने कमरे में सुलाऊँगा।"

"और तुम कहाँ सोओगे?"

"बाहर घास पर।"

वह लड़की को लेकर झोपड़े में, अपने कमरे में चला गया। मैं कुछ देर तक उसकी ओर देखती रही। फिर वहीं पृथ्वी पर बैठ कर घण्टों विचार करती रही। मुझमें और माधव में कितना अन्तर है! जिसे मैं बुरा समझती हूँ, उसी को वह अच्छा समझता है। मैं धन और उच्चता पर मरती हूँ; वह सेवा और समानता पर जान देता है। परन्तु किसका महत्व संसार में अधिक है? इस द्वीप पर ही मेरी ओर कोई देखता भी नहीं, परन्तु उसको सब प्यार करते हैं, उस पर जान देते हैं। क्या प्रेम वास्तव में धन से नहीं जीता जा सकता? क्या त्याग ही उसके प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन है? मैं रात भर सोई नहीं। यही विचार मेरे हृदय में उथल-पुथल मचाते रहे।

प्लेग के फैलते ही सारे झोपड़ों में रोगियों की संख्या बढ़ने लगी। माधव ने मुझे ग्राम से दूर एक झोपड़े में रख दिया था। परन्तु वह स्वयं दिन-रात ग्राम में ही रहता था। उसे भोजन-पानी तक की सुध नहीं थी। कभी इस घर में, कभी उस घर में, सर्वत्र वह दवा-पानी करता फिरता था। रातों जागने और भोजन समय पर न पाने से वह शिथिल हो गया था, परन्तु फिर भी उसका ध्येय सेवा ही था, वह उस पर अटल था। मैं यह सब कुछ देखती थी और मुझे अपने से ही ग्लानि होती जा रही थी। वह कितना विशाल-हृदय है और मैं कितनी नीच हूँ! वह रोगियों की सेवा में रत है और मैं उनसे घृणा करती हूँ। मेरा हृदय खेद के आँसू रोने लगा। क्या उसके समान मैं भी सजीव प्रेम कर सकती हूँ—प्रेम प्रेम के लिए, न कि उससे कुछ प्राप्त करने के लिए? माधव ने मुझे उसका पाठ नहीं पढ़ा दिया था?

मैं दौड़ी हुई वहाँ गई, जहाँ माधव रोगियों की सेवा कर रहा था। वह थका हुआ घास पर पड़ा था, उसके मुख पर ज्वर के लक्षण थे। मैंने उसका हाथ पकड़ कर कहा—माधव! तुम आराम करो। मैं रोगियों की सेवा करूँगी।

"नहीं मञ्जरी! यह तुम्हारा काम नहीं है।"

"लज्जित न करो, माधव! मुझे स्वयं अपने से घृणा हो रही है। तुमने मुझे शिक्षा दे दी है।"

"परन्तु तुम्हें लेने के लिए देसाई का आदमी आया है। यह उनका पत्र है। तुम बम्बई जाओ, मन्जु!"

"और तुम?"

"मैं जीवन के शेष दिन यहीं बिता दूँगा।"

"माधव!"

"मञ्जरी!"

"तुमने मुझे सजीव प्रेम का पाठ पढ़ा दिया है। मैं बम्बई नहीं जाऊँगी! मेरा प्रेम तुम्हारे चरणों में अर्पित है!"

"माधव निर्धन है, मन्जु!"

"परन्तु याद रक्खो, प्रेम धन से नहीं ख़रीदा जाता। त्याग ही प्रेम को मोल ले सकता है।"—मैंने कहा।

उसके होठ मुसकुराए, परन्तु मेरा सारा शरीर मुसकुरा रहा था।

शीघ्र मँगा लीजिए ! थोड़ी सी प्रतियाँ शेष बची हैं !!

सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्र

कर्मवीर का कहना है :—"श्री० विजयानन्द दुबे के सामाजिक विनोद बहुत चुटीले और शिष्ट हुआ करते हैं !!"

सुन्दर छपी हुई सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रु०, 'चाँद' के समस्त ग्राहकों से २।) रु० मात्र !

PIONEER

MAY 25, 1930

This book contains a series of letters by "Vijyanand" dealing mostly with current social topics and especially Hindu society. The letters are written in lighter vein, and do credit to the writer. Most of his jokes are against himself. When he wanted to begin writing these letters, he asked his wife (whom he calls "Lalla ki Mahtari"—the mother of his son, Lall!) to give him two annas to buy some paper. He could not satisfy her that he really would buy paper and not bhang, and could not explain how he needed as much paper as would cost two annas! He was assaulted, and saved the earthen pitcher by letting the poker fall on him rather than the utensil containing cold water! The Hindi is very easy, simple enough even to be followed by "the Collector Sahib who wanted to give a Rai Sahibship" to "Vijyanand" for writing these letters, but who insisted that the Rai Sahibship should be given to "Lalla ki Mahtari." The book is neatly printed in the usual style of the CHAND Press Publications.

प्रत्येक चिट्ठी में समाज तथा देश का अच्छा चित्र खींचा गया है। पढ़ने वाला हँस-हँस कर लोट-पोट न हो जाय तो पुस्तक का मूल्य वापस !!

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

लाल बुझक्कड़
[लेखक—श्री० जी० पी० श्रीवास्तव,
बी० ए०, एल्-एल्० बी०]
श्री० श्रीवास्तव महोदय संसार के सबसे श्रेष्ठ हास्य-नाटककार फ़्रान्स के 'मोलियर' (Moliere) की चुनी हुई रचनाओं का रसास्वादन हिन्दी-पाठकों को अनेक बार करा चुके हैं। प्रस्तुत नाटक मोलियर महोदय की चुनी हुई रचनाओं में से है। यह नाटक सर्व-प्रथम सन् १६५३ या १६५५ ईस्वी में लॉयन (Lyons) नगर में, उसके बाद सन् १६५८ में फ़्रान्स की राजधानी पेरिस में बादशाह के समक्ष खेला गया था और सारे विश्व ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।
श्रीवास्तव महोदय ने जिस बाने में इसे हिन्दी-संसार में उपस्थित किया है, वह देखने योग्य है। हँसते-हँसते पेट न फूल जाय तो पुस्तक का दाम वापस !!! मूल्य २)
व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

देवदास

[मूल-ले० — बाबू शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय]

देवदास को उपन्यास न कह कर, यदि विविध अवस्थाओं के मानवी हृद्गत भावों का जीता-जागता चित्र कहें तो विशेष सार्थक होगा। देवदास पर पार्वती का अगाध प्रेम तथा धनी और निर्धन के कुटिल प्रश्न के कारण पार्वती का देवदास के साथ विवाह न होने पर भी उसका देवदास पर अपने पति से अधिक प्रेम देख कर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है! पार्वती के वियोग के कारण देवदास का विक्षिप्तावस्था में करुणाजनक पतन पढ़ कर हृदय व्याकुल हो जाता है। सच्चे प्रेम के अद्भुत प्रभाव के कारण चन्द्रमुखी नाम की एक पतिता वेश्या का धर्ममय जीवन को अपनाते देख कर चमत्कृत हो जाना पड़ता है। अधिक प्रशंसा कर काग़ज़ काला करने से कोई लाभ नहीं। पुस्तक पढ़ने ही से सच्चा आनन्द मिलेगा और उसका महत्व मालूम होगा। पुस्तक की भाषा भी सरल, ललित और मुहावरेदार लिखी गई है। लगभग ढाई सौ पृष्ठों की इस उत्तम पुस्तक का मूल्य केवल १॥) है; पर ग्रन्थ-माला के स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य अर्थात् १=) में ही दी जाती है। नवीन संशोधित संस्करण इस समय प्रेस में है!!

ग्रह का फेर

[मूल-लेखक — श्री० योगेन्द्रनाथ चौधरी, एम० ए०]

इस पुस्तक की विशेषता लेखक के नाम ही से प्रकट हो जाती है। यह बङ्गला के एक प्रसिद्ध उपन्यास का अनुवाद है। लड़के-लड़कियों के शादी-विवाह में असावधानी करने से जो भयङ्कर परिणाम होता है, उसका इसमें अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। इसके अतिरिक्त यह बात भी इसमें अङ्कित की गई है कि अनाथ हिन्दू-बालिकाएँ किस प्रकार ठुकराई जाती हैं और उन्हें किस प्रकार ईसाई अपने चङ्गुल में फँसाते हैं। पुस्तक पढ़ने से पाठकों को जो आनन्द आता है वह अकथनीय है। छपाई-सफ़ाई सब सुन्दर होते हुए भी पुस्तक का मूल्य केवल आठ आने तथा स्थायी ग्राहकों से छः आने मात्र!

राष्ट्रीय गान

यह पुस्तक पाँचवीं बार छप कर तैयार हुई है, इसी से इसकी लोक-प्रियता का अनुमान हो सकता है। इसमें वीर-रस में सने हुए देश-भक्तिपूर्ण सुन्दर गानों का अपूर्व संग्रह है, इन्हें पढ़ कर आपका दिल फड़क उठेगा। सभी गाने हारमोनियम पर भी गाने क़ाबिल हैं। ये गाने बालक-बालिकाओं को कण्ठस्थ कराने के योग्य भी हैं। ४६ पृष्ठ की पुस्तक का दाम केवल ।) चार आने!! सौ पुस्तकें एक साथ मँगाने से २०) रु०। एक पुस्तक वी० पी० द्वारा नहीं भेजी जाती। एक पुस्तक मँगाने के लिए ।-) का टिकट भेजना चाहिए।

व्यवस्थापिका

'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

[रचयिता—प्रोफ़ेसर रामकुमार जी वर्मा, 'कुमार']

हिन्दी-संसार 'कुमार' महोदय के नाम से पूर्ण परिचित है। इस छोटी-सी पुस्तक में कुमार जी की वे कविताएँ संग्रहीत हैं, जिन पर हिन्दी-साहित्य को गर्व हो सकता है। आप यदि कल्पना का वास्तविक सौन्दर्य अनुभव करना चाहते हैं—यदि भावों की सुकुमार छवि और रचना का रसीलतमय प्रवाह देखना चाहते हैं, तो इस मधुवन में अवश्य विहार कीजिए। कुमार जी ने अभी तक सैकड़ों कविताएँ लिखी हैं, पर इस मधुवन में उनकी केवल उन २६ चुनी हुई रचनाओं ही का समावेश है, जो उनकी उत्कृष्ट काव्य-कला का परिचय देती हैं।

हिन्दी-कविता में यह पुस्तक एक आदर की वस्तु होगी। पुस्तक बहुत ही सुन्दर दो रङ्गों में छप रही है। मूल्य केवल १) रु०;

[संग्रहकर्ता—त्रिवेणीलाल जी श्रीवास्तव, बी० ए०]

पुस्तक क्या है, मनोरञ्जन के लिए अपूर्व सामग्री है। केवल एक चुटकुला पढ़ लीजिए, हँसते-हँसते पेट में बल पड़ जायँगे। काम की थका-वट से जब कभी जी ऊब जाय, उस समय केवल पाँच मिनट के लिए इस पुस्तक को उठा लीजिए, सारी उदासीनता काफ़ूर हो जायगी। इसमें इसी प्रकार के उत्तमोत्तम, हास्य-रसपूर्ण चुटकुलों का संग्रह किया गया है। पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल तथा मुहावरेदार है। बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष—सभी के काम की चीज़ है। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल लागत १); स्थायी ग्राहकों से ॥।) मात्र!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

सामाजिक कोढ़

ब्राह्मणों में नीच-ऊँच का भाव

इस समय रूढ़ि के पुजारियों से यह पूछा जाता है कि क्यों महाशय, आज जब कि सारा संसार अपनी कमज़ोरियों तथा कुरीतियों और कुप्रथाओं को जलाञ्जलि देकर स्वतन्त्र वायुमण्डल में विचरण कर रहा है, आप हाथ पर हाथ धरे, सर्वनाशिनी कुप्रथा देवी की उपासना में इतना अस्त-व्यस्त क्यों हैं? तब इसका सीधा उत्तर यह मिलता है कि "जो प्राचीन प्रथा बहुत दिनों से चली आ रही है, उसे अवश्य पालन करना चाहिए।" अब विचार करना चाहिए कि इस दलील में कुछ युक्ति का भी अंश है अथवा योंही बाबा वाक्यं प्रमाणम् की भाँति वह निस्सार है। पूर्वोक्त दलील को कोई विज्ञ मनुष्य आदर की दृष्टि से नहीं देखता, इतना तो स्पष्ट ही है। यह बात किञ्चिन्मात्र भी बुद्धिगम्य नहीं है कि किसी प्रथा से हानि हो या लाभ, पर प्राचीनता के ख़्याल से आँख मूँद कर उसका पालन करते ही चले जाना चाहिए।

पाठकों को यह सुन कर आश्चर्य होगा कि यद्यपि हमारे कुछ अन्त्यज भाई ही अछूत कह कर विख्यात हैं, तथापि इस विचार को आपको थोड़ी देर के लिए बदलना होगा, क्योंकि ब्राह्मण भी तो एक प्रकार से अछूत हैं। सर्वांश में न सही, पर अधिकांश में तो आपको मानना ही पड़ेगा कि अछूतों के साथ जैसा व्यवहार हम लोग करते हैं, ठीक वैसा ही व्यवहार कई अंशों में, ब्राह्मणों ने भी परस्पर में चला रक्खा है। जब एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण से कहता है कि हम तुम्हारा छुआ नहीं खाएँगे, तब क्या कोई कह सकता है कि इस दशा में दूसरा ब्राह्मण अछूत से कुछ अधिक महत्व रखता है? ऐसी हालत में तो उसे अछूत कहना अनुचित न होगा।

अब आगे चलिए। विवाहादि सम्बन्ध ब्राह्मण लोग अछूतों के साथ नहीं करते; ठीक वैसे ही वे आपस में भी विवाहादि सम्बन्ध करते हिचकते हैं। इस प्रकार ब्राह्मण स्वयं ही एक दूसरे को अछूत ठहरा देते हैं। यदि कोई कहे कि ब्राह्मण तो क्षत्रियादि के साथ भी विवाह नहीं करते तो इसका सरल उत्तर यह है कि स्मृतिकारों ने अपने से नीच वर्ण में कन्या देना सर्वथा मना किया है। अतः अपने से हीन क्षत्रियादि वर्णों में ब्राह्मण कन्या का विवाह नहीं करते। साथ ही स्मृतिकारों ने अपने समान वर्ण तथा अपने से श्रेष्ठ वर्ण में कन्या विवाह देने के लिए आज्ञा दी है, जिसके फलस्वरूप ब्राह्मण ऋषियों ने समय-समय पर क्षत्रिय राजाओं की कन्याओं के साथ विवाह किया है, जिसकी अनेक गाथाएँ इतिहास-पुराणों में पाई जाती हैं। रही अस्पृश्य की बात, सो तो ब्राह्मणों ने सम्प्रदाय और उपजाति की रूढ़ि चला कर अपने बीच अस्पृश्यता की जो भीषण दीवार खड़ी कर रक्खी है, उसके अस्तित्व को अस्वीकार करना असम्भव है।

हर एक ब्राह्मण की ऐसी धारणा है तथा समय-समय पर वह खुले शब्दों में ऐसा कह भी देता है कि हम सब ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं। यद्यपि श्रेष्ठता के अभिमान का रोग, कम या अधिक मात्रा में, सब ब्राह्मणों में पाया जाता है, पर दो-चार ब्राह्मणों में तो यह रोग बुरी तरह लग गया है। वे कुछ करें चाहे न करें, उनमें कुछ पुरुषार्थ

हो चाहे न हो, पर दिन-रात अपने को श्रेष्ठ तथा दूसरों को निकृष्ट बताने में ही वे मस्त रहते हैं। ऐसे नर-पुङ्गव ब्राह्मण नामधारी "ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्" को अपने ऊपर सोलहो आना चरितार्थ करना चाहते हैं।

जब तक आस्तिक हिन्दुओं का वेद सर्वमान्य ग्रन्थ है तब तक 'हम सब ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं,' यह कहना चण्डू-

अमेरिका का सर्वश्रेष्ठ उड़ाका दम्पति

अमरीका के सर्वश्रेष्ठ उड़ाका कर्नल लिण्डबर्ग अपनी पत्नी को हवाई जहाज़ चलाना सिखा रहे हैं। अमेरिका के और भी अनेक उड़ाकों ने अपनी पत्नियों को हवाई जहाज़ चलाना सिखाया है और सिखा रहे हैं।

खाने की गप्प से अधिक महत्व नहीं रखता। वेद में कहीं भी यह बात देखने में नहीं आती कि अमुक ब्राह्मण श्रेष्ठ है और अमुक निकृष्ट। साथ ही स्मृतियों में भी ब्राह्मणों की पारस्परिक अस्पृश्यता का उल्लेख नहीं है, यदि आज कहीं-कहीं ऐसा उल्लेख देखा भी जाता हो तो यह स्वार्थी तथा निज गौरवार्थी ब्राह्मणों की चालाकी का ही फल है। पहले "ब्राह्मणस्य मुखमासीत्" श्रुति वाक्यानुसार केवल एक ब्राह्मण जाति थी, बाद में सङ्कीर्णता-निवारण के लिए अथवा स्थानादि भेद से या और किन्हीं कारणों से ब्राह्मणों में अलग-अलग उपजातियाँ हुईं। बस इनमें से जो चालाक थे उन्होंने अपनी श्रेष्ठता के कुछ वर्णन स्मृतियों में घुसा दिए अथवा इतने से भी सन्तोष न हुआ तो अपनी श्रेष्ठता के वर्णन में अलग पुस्तक लिख कर ही उसे किसी 'ऋषि' के नाम से प्रसिद्ध कर दिया। भला 'ऋषियों' की क्या कमी थी? ऐसी पुस्तकों के लिए भी किसी न किसी 'ऋषि' का नाम मिल ही जाता था। जो लोग इस कपट-व्यवहार में चतुर न थे, वे बेचारे निकृष्ट रह गए। यद्यपि इन अनर्थों का मूल प्रमाण स्मृति भी नहीं हैं, तथापि इन ब्राह्मणों ने ऐसी धाँधली मचा रक्खी है कि अपनी श्रेष्ठता के सामने वे शास्त्र को भी अमान्य कर बैठने में कोई हर्ज नहीं समझते। ब्राह्मणों ने दूसरों को नीच बनाने में तो कोई कसर रक्खी ही नहीं है, साथ ही तवेले में घोड़ों की लतिऔअल की तरह आपस में भी श्रेष्ठता की ख़ासी चहल-पहल मचा दी है। कुछ ब्राह्मणों ने तो सब को ही नकटा बना कर छोड़ दिया है और वे हैं आर्य-सपूत दक्षिणी ब्राह्मण, जिनके मत में 'काशी शूद्र' प्रचलित है। इनकी श्रेष्ठता ने अन्य सब ब्राह्मणों की श्रेष्ठता पर काली पोत दी है। यह कितने अनर्थ की जड़ है, यह कहना प्रकरण-विरोध होगा।

यदि आपको कुछ श्रेष्ठता का उदाहरण लेना हो तो बङ्गाल और मिथिला से ले सकते हैं। इसमें तारीफ़ की बात यह है कि श्रेष्ठ ब्राह्मणों के आठ-आठ, दस-दस विवाह हो जाते हैं, उस पर भी तुर्रा यह कि हरेक विवाह में दो-चार सौ रुपए के बिना विवाह स्वीकृत नहीं होता। वर महाशय लँगड़े-लूले, काने-कुबड़े, हिजड़े, रोगी चाहे जैसे भी हों, चाहे उनमें एक स्त्री का भी पति बनने की योग्यता न हो, पर आठ-दस लड़कियों का पति उन्हें ही बनना होगा, क्योंकि श्रेष्ठता की मुहर ईश्वर के यहाँ से केवल उन्हीं पर लगी है। ऐसे लोगों की स्त्री नहीं—बल्कि स्त्रियों, आठ-आठ, दस-दस, की क्या दशा होती होगी। इसका अनुमान विज्ञ पाठक स्वयं ही लगा लें।

मैं एक बात कहना भूल ही गया था। वह यह है कि जब ब्राह्मणों को शूद्रों से काम लेना होता है, उस समय अछूत संज्ञा नहीं रहती है, क्योंकि अपना काम निकालना है न। ऐसे समय छूत रूपी आपत्ति के निवारण के लिए धूर्त लोगों ने श्लोक बना रक्खा है। श्लोक मुझे इस समय ठीक-ठीक याद तो नहीं आता, पर टूटा-फूटा इस प्रकार है—"उत्सवे तीर्थ-गमने युद्धकाल उपस्थिते, विवाहादौ प्रवासे चार्थे स्पृश्यास्पृश्योन मन्यते।" यदि वही अछूत मन्दिर में दर्शन के लिए जाना चाहे तो नहीं जा सकता; अधिक कहने-सुनने पर पुजारी लोग (देवताओं के ग़ुलाम) उन पर प्रहार तक कर देते हैं। परन्तु मन्दिर की मूर्ति को गाड़ी या पालकी में बैठा कर नगर-भ्रमण (ठाकुर जी आहार, निद्रा, भय, मैथुन, विहार, भ्रमण आदि सब कुछ करते हैं) या किसी उत्सव के लिए ले जाना हो तो वही हमारे अछूत नामधारी भाई गाड़ी या पालकी खींचने में अग्रसर किए जाते हैं। यदि इस समय इनसे कोई प्रश्न कर बैठे कि क्यों साहब, आपके ठाकुर जी मन्दिर में अछूतों के प्रवेश करने से तो अपवित्र हो जाते हैं, पर इस समय तो हम देखते हैं कि खुदावन्द चूँ तक नहीं करते, इसका क्या कारण? तो इस प्रश्न के समाप्त होने के पहले ही झट उपरोक्त श्लोक पढ़ दिया जायगा। क्या इस ढोंग का यह माने नहीं हुआ कि अछूत जब तक ब्राह्मण देव की सेवा करता रहे तब तक तो "उत्सवे...... स्पृश्यास्पृश्योन मन्यन्ते" का सिद्धान्त लागू होता है, पर वह सेवा ने अलग हुआ नहीं कि यह सिद्धान्त भी ब्राह्मणदेव के मस्तिष्क से विदा हो जाता है और बेचारा अछूत पुनः नमःशूद्र आदि न जाने क्या-क्या बन जाता है? झूठी श्रेष्ठता के लिए सत्य और न्याय की यह निर्मम हत्या देख कर किस सहृदय का हृदय द्रवीभूत न हो जायगा?

यह विषयान्तर मैंने यहाँ जान-बूझ कर इसलिए उपस्थित किया है कि ब्राह्मणों में प्रचलित ऊँच-नीच के भाव का सच्चा स्वरूप मालूम हो जाय। एक ब्राह्मण अपने से जिसको छोटा समझता है, उसके साथ कुछ अपमानजनक व्यवहार करता ही है। जो बहुत छोटा, उसका बहुत अपमान; जो कम छोटा उसका कम अपमान। अछूतों को ब्राह्मण लोग अपने से बहुत ही नीचा समझते हैं, अतः उनके साथ घोर अमानुषिक व्यवहार करते हैं; एक उपजाति का ब्राह्मण दूसरी उपजाति के ब्राह्मण को उतना नीचा नहीं समझता, जितना अछूत को समझता है, अतः उसके साथ अछूत की अपेक्षा कुछ कम अमानुषिक व्यवहार करता है, पर अमानुषिक व्यवहार अवश्य करता है। इन दोनों दशाओं में भेद केवल मात्रा का है, प्रकार का नहीं।

श्रीमती केरी चैपमैन कैट

आप उन महिलाओं में से एक हैं, जिन्होंने अमरीका और यूरोप में स्त्री-स्वातन्त्र्य के वर्तमान आन्दोलन को जन्म दिया है। आप ही के प्रयत्न से आज से दस साल पहिले अमरीका की स्त्रियों को वोट देने का अधिकार मिला था, और हाल ही में आपने उस अधिकार का पुनः बड़े ज़ोरों से समर्थन किया है।

यू० पी० में रहने वाले एक प्रकार के ब्राह्मण हैं, जो केवल अपनी श्रेष्ठता के गर्व में फूले रहने के लिए ही प्रसिद्ध हैं। परन्तु द्राविड़ ब्राह्मणों ने तो इस मामले में उनके भी कान काट लिए हैं। द्राविड़ ब्राह्मणों की उक्ति 'काशी शूद्र' प्रसिद्ध है, जिसका आशय यह है कि काशी के समीपस्थ शूद्र, वैश्यों को तो कौन कहे, कर्मनिष्ठ

निकृष्ट समझना तथा दूसरों की निन्दा करना छोड़ कर ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। ज्ञान और त्याग ही ऐसी दो कसौटियाँ हैं, जिनसे ब्राह्मण की श्रेष्ठता का निर्णय किया जा सकता है।

—महेन्द्रनाथ शर्मा

* * *

सम्मोहन-विद्या

डॉक्टर मिस्मर (Dr. Friadrich Anton Mesmer) ने मिस्मेरिज़्म-विद्या का, वैज्ञानिक संसार में, पहले पहल आविष्कार किया। इसी कारण उनके नाम पर इस विद्या का नाम मिस्मेरिज़्म हुआ। इनका जन्म १७३३ ई० में जर्मनी में हुआ था। ये एक सुप्रसिद्ध चिकित्सा-व्यवसायी थे। एक बार घटनाक्रम से इन्होंने एक नई शक्ति का आविष्कार किया। पहले उन्होंने उस शक्ति को विद्युच्छक्ति (Electrical power) समझा था। फिर इस सम्बन्ध में अनेक अनुसन्धान और गम्भीर अनुशीलन के बाद वे इस सिद्धान्त पर पहुँचे कि यह शक्ति चुम्बकाकर्षण-शक्ति (Magnetic force) है।
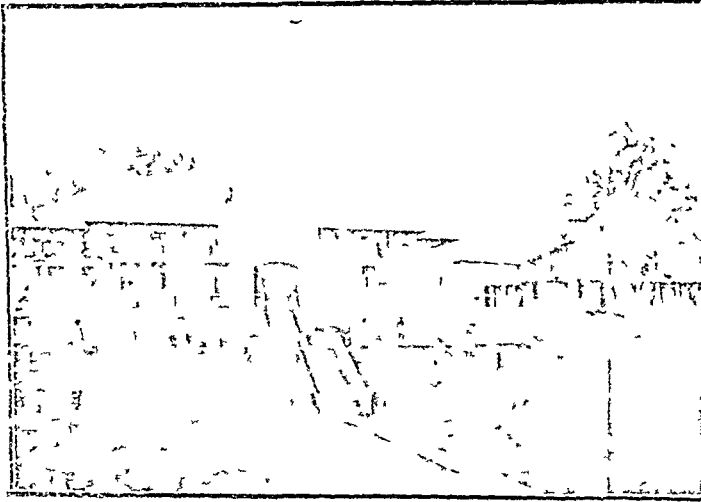
त्रिवेन्द्रम में स्त्रियों और बच्चों का अस्पताल
इस अस्पताल की गणना भारत के इस ढङ्ग के सबसे प्रसिद्ध अस्पतालों में की जाती है।

इसी सिद्धान्त के अनुसार वे अपने अनेक रोगियों को उनके व्याधिग्रस्त स्थान में चुम्बक पत्थर का स्पर्श करा कर भले-चङ्गे करने लगे। चुम्बक-व्यवहार से अक्षय कीर्त्ति लाभ कर कुछ दिनों तक उन्होंने अपनी चिकित्सा का सिलसिला इसी प्रकार जारी रक्खा, तत्पश्चात् कृत्रिम चुम्बक-व्यवहार को भी उन्होंने छोड़ दिया और चुम्बकाकर्षण-शक्ति के सूक्ष्म तत्व के आविष्कार में दत्तचित्त हो गए। अन्त में उन्हें ज्ञान हुआ कि पृथ्वी-मण्डल में एक प्रकार का अति सूक्ष्म अननुभवनीय शक्ति-स्रोत (Fluid) प्रवाहित हो रहा है। यों तो वह स्रोत जड़ जगत व प्राणि जगत में सर्वत्र विद्यमान है, किन्तु मानव शरीर में इसकी अधिकता और प्रचुरता पाई जाती है। मनुष्य बुद्धि द्वारा उसे अपने शरीर से निकाल कर दूसरे मनुष्य के शरीर में प्रवेश करा सकता है और इस प्रकार उसके ऊपर अपना प्रभाव भी डाल सकता है।

व्यक्ति-विशेष के सम्मोहित (Mesmerised) करने के लिए पहले पहल वे जिन-जिन प्रक्रियाओं को काम में लाते थे, उनके बाद उनके शिष्यों ने उनमें अनेक परिवर्त्तन किए और आज प्रधानतः तीन प्रकार की क्रियाओं की प्रणाली प्रचलित है।

आजकल यूरोप और अमेरिका आदि देशों में अनेक बड़े-बड़े चिकित्सक इस विद्या का अभ्यास करने लगे हैं। अस्त्र-चिकित्सा (चीर-फाड़) के कामों के लिए क्लोरोफ़ॉर्म वा कोकेन खिला कर बेहोश करने के बदले मिस्मेरिज़्म द्वारा रोगी का अङ्ग-विशेष शिथिल और मुर्दा (Anaesthesia) बना देते हैं और उस पर अस्त्र-प्रयोग करते हैं। ऐसा करने से रोगी को कोई यन्त्रणा नहीं होती और क्लोरोफ़ॉर्म व कोकेन इत्यादि के व्यवहार से जो कोई भावी अशुभ का भय रहता है, वह भी नहीं रह जाता।

सम्मोहन-विद्याविद् विद्वानों का कहना है कि जान्तव चुम्बक (Animal Magnetism) वाष्पीय पदार्थ—वा

उज्ज्वल और रुग्ण शरीर में मलिन व निष्प्रभ होता है। मृत्यु के समय वह तिरोहित हो जाता है। यह शक्ति-अदृश्य वाष्पवत् हमारे शरीर से कुछ इञ्च आगे तक विक्षिप्तावस्था में रहती है।* डॉक्टर मिस्मर ने व्यक्ति-विशेष की देह पर हाथ फेर कर वा अँगुली को स्पर्श कर अपनी देह से उक्त वाष्पीय पदार्थ को दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कराने की प्रक्रिया का आविष्कार किया। अङ्गरेज़ी में इसे "पास" (Pass व Mesmeric Pass) कहते हैं। उनके मत से कोई मन्त्र वा आदेश की आवश्यकता नहीं; केवल प्रबल इच्छा-शक्ति (Will Power) की सहायता से यथाविधि 'पास' देने से ही सफल-मनोरथ हो सकते हैं। इच्छा-शक्ति के द्वारा किसी व्यक्ति की देह पर 'पास' देने से वह सहज ही निद्राभिभूत हो जाता है। उसको इस प्रकार निद्राभिभूत कर सम्मोहन-कारी अपनी इच्छानुसार उसे नचा, रुला और हँसा सकता है। उसके द्वारा अत्याश्चर्यमय और अलौकिक क्रियाओं के करने में वह समर्थ हो सकता है। अधिक क्या, उस व्यक्ति का कोई असाध्य रोग व कठिन व्याधि भी बात की बात में दूर कर दे सकता है।

जापान के महिला डॉक्टरों का यह दल कुछ ही दिनों पहले अमेरिका के संयुक्त राज्यों का भ्रमण करके लौटा है। इस भ्रमण का उद्देश्य था जापान और अमेरिका के बीच सौहार्द उत्पन्न करना। कहा जाता है इस कार्य में इन सुदक्ष महिलाओं को अपूर्व सफलता मिली है।

*Animal magnetism is a subtle fluid emanating from individual. It extends out for some inches into the atmosphere. It resembles a cloud or Haze ; in health bright and ill-heal th dark. In death it is absent.

(Vide *Personal Magnetism and Will-Power.* Page 3).

ग्रीक भाषा में निद्रा को 'हिपनस' (Hypnos) कहते हैं। मैन्चैस्टर निवासी सुविख्यात डॉक्टर ब्रेड (Braid) ने इसी कारण इस विज्ञान का नाम "हिपनॉटिज़्म" (Hypnotism) रक्खा। अतः "हिपनॉटिज़्म" का दूसरा नाम "मिस्मेरिज़्म" कह सकते हैं। निद्रा की मात्रा और गाढ़ी होती है। जिस निद्रा से मन तन्द्राभिभूत होता और स्वप्नलोक में विचरण करने लगता है, उसी निद्रा-वस्था को 'हिपनॉटिक' (Hypnotic) कहते हैं। निद्रा की जिस अवस्था में इन्द्रियों के साथ मन जाग्रद्वस्था में रहता है उसी अवस्था को 'मिस्मेरिक' कहते हैं।
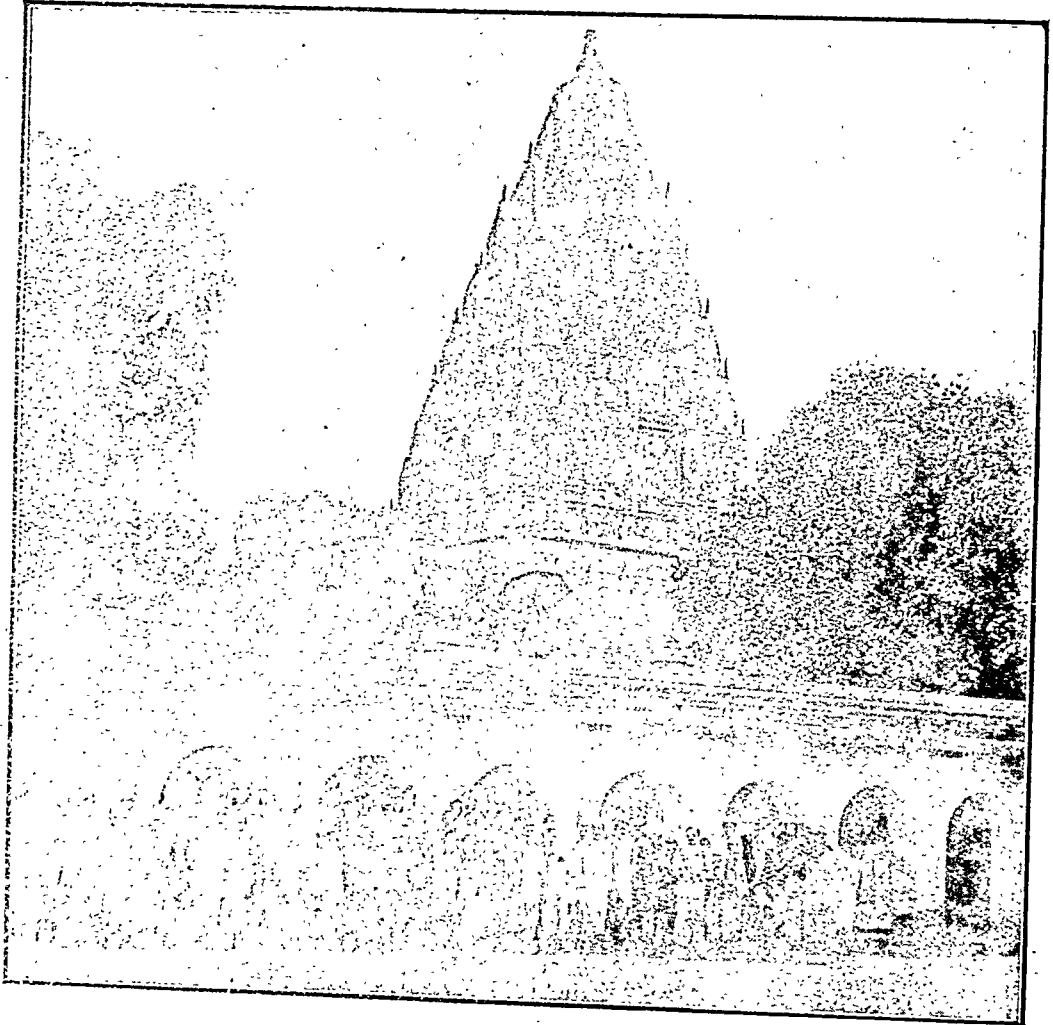
यह मिथिला के अन्तर्गत सौराठ गाँव का सुप्रसिद्ध शिवालय है, जहाँ मैथिलों की सबसे बड़ी वैवाहिक सभा लगती है। मन्दिर के सामने उन नरपुङ्गवों का एक दल खड़ा है, जो इस वर्ष की सभा में वर-कन्याओं की ख़रीद-बिक्री के लिए उपस्थित हुए थे।

प्रकृति-भेद के अनुसार कोई-कोई विद्वान कहते हैं कि सम्मोहन निद्रा के आकर्षण की अनेक प्रक्रियाएँ हैं, उन्हीं प्रक्रियाओं की शक्ति के अनुसार निद्रा हलकी व

अतः इन उभय अवस्थाओं को परावस्था और गाढ़ी निद्रावस्था को सुपुप्त (Psychic) अवस्था कहते हैं। इसी सुपुप्त व 'साइकिक' अवस्था में मन अधिकतर

निर्मल रहता है और भूत, भविष्य और वर्तमान साफ़-साफ़ झलकता है।

इसी सुषुप्तावस्था में पात्र से अनेक अद्भुत और विस्मयोत्पादक काम कराए जा सकते हैं। सिद्ध योगी की भाईं पात्र-विशेष सम्मोहनकारी की इच्छा-शक्ति के प्रभाव से दूरवर्ती घटना को प्रत्यक्ष अपने सामने देख सकता है। हम लोग योगशास्त्र की आश्चर्य भरी बातों को सुन कर उन पर विश्वास नहीं करते, किन्तु मिस्मेरिज़्म-विद्या को देख कर उन पहुँचे हुए योगियों की करामातों में सन्देह करने का अवसर ही नहीं रह जाता। लेकिन योगी की दिव्य दृष्टि और इस प्रयोग में आकाश-पाताल का भेद है। योगी अपनी अखण्ड साधना का फल प्राप्त करते हैं, वह चिरस्थायी होता है और मिस्मेरिज़्म द्वारा—सम्मोहनकारी की प्रबल इच्छा-शक्ति द्वारा—जिस फल की प्राप्ति होती है वह क्षणिक और सामयिक होता है। सुषुप्तावस्था से विरत होते ही पात्र की दिव्य दृष्टि काफ़ूर हो जाती है और उस अवस्था में वह जो कुछ देखे-सुने वा किए रहता है, कुछ भी स्मरण नहीं रह जाता।

मिस्मेरिज़्म विज्ञान को व्यावहारिक मनोविज्ञान (Practical Psychology) कह सकते हैं। कारण, मनोविज्ञान से जो बात मालूम होती है, उसका कुछ अंश मिस्मेरिज़्म विज्ञान के व्यवहार से भी जाना जा सकता है।

हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, क्रिश्चियन आदि धर्म-प्रचारकों का कहना है—"जिसकी जो भावना होती है उसकी गति भी उसी प्रकार की होती है" (What a man thinks on, that he becomes)। उनका और भी कहना है—"मनुष्य चिन्ता का पुतला है" (All that we are, is made up of our thoughts), तथा "गम्भीर चिन्ता में निमग्न होने पर तन्मयता प्राप्त होती है" (As he thinketh in his heart, so is he)। ये सब बातें मिस्मेरिज़्म विज्ञान में साफ़-साफ़ प्रगट हो जाती हैं।

यदि कोई पात्र (Object) किसी सम्मोहनकारी के कथनानुसार बेञ्च वा कुर्सी पर बैठकर मन ही मन चिन्ता करने लगे कि उसका शरीर बैठे हुए बेञ्च वा कुर्सी से चिपक गया है तो वह बेञ्च वा कुर्सी से नहीं उठ सकेगा। यदि वह और भी गम्भीर मनोयोगपूर्वक चिन्ता में डूब जावे, और सोचे कि "मेरे दोनों पैर स्थूल और कड़े हुए जाते हैं, अब मैं इन्हें इच्छानुसार घुमा-फिरा और मोड़ नहीं सकूँगा तथा इन्हें उठाने की चेष्टा करते ही मैं गिर जाऊँगा", तो सम्मोहनकारी के सँभाले विना वह बैठ भी नहीं सकेगा। इसी तरह यदि वह सोचने लगे कि "मेरी आँखें और मुँह बन्द हो गए हैं, अब मैं अपनी आँखों और मुँह को खोल नहीं सकूँगा", तो सचमुच ही वह मुँह और आँखें हज़ार चेष्टा करने पर भी खोल नहीं सकेगा। जो पात्र जिस किसी विषय को गम्भीर चिन्ता में डूब कर सोचने लगता है, वह उसी रूप में लीन हो जाता है। किन्तु साधारण व्यक्ति किसी एक विषय पर अधिक देर तक ध्यानावस्थित नहीं रह सकता। इसीलिए निपुण सम्मोहनकारी अपने पात्र के मुख वा भ्रूमध्य पर तीक्ष्ण दृष्टि रखता है और उसका ध्यान इधर-उधर बँट न जाय, इसका ख़याल बराबर रखता है। आवश्यकता

श्रीमती पी० सौभाग्यवती अम्मा गारू

आप हाल ही में गञ्जाम ज़िले की ब्रह्मपुर म्युनिसिपैलिटी की सदस्या नियुक्त हुई हैं।

होने पर वह अपनी आँखों से पात्र की दोनों आँखों पर निरन्तर एकटक यथा-नियम देखा करता है।

अनेक चिन्ताशील अनुभवी पण्डित कहते हैं—"मैं पवित्र हूँ, मैं दीर्घायु और नीरोग रहूँगा।" यदि इसी

मिस एली जोशुआ, एम० ए०
अन्ना जोशुआ, बी० ए०
ये दोनों विदुषी बहिनें सिलोन के एडिशनल जज मि० के० सी० जोशुआ की सुपुत्रियाँ हैं और हाल ही में यूरोप से उच्च शिक्षा समाप्त करके स्वदेश को वापस आई हैं।

प्रकार बराबर गम्भीर चिन्ता और अटल धारणा का अभ्यास करता रहे तो मनुष्य अवश्य ही पवित्र, दीर्घायु और निरोग हो सकता है। मिस्मेरिज़्म विज्ञान की आलोचना से जाना गया है कि यदि किसी व्यक्ति के मन में इस प्रकार की धारणा उत्पन्न करा दी जावे कि उसको कठिन पीड़ा हुई है तो उसे पीड़ा नहीं होने पर भी पीड़ा हो जायगी और यदि उसे कहीं दर्द होगा तो इसकी उलटी क्रिया से वह दूर भी हो जायगा।

"मेरी कनिष्ठा अँगुली किस प्रकार थर-थर काँप रही है और भारी मालूम होती है; आह! बड़ा दर्द है, असह्य यन्त्रणा है"—इस प्रकार की भावनाएँ आठ-दस मिनट तक आँखें बन्द कर भावने से ही सच्चे रूप में यन्त्रणा अनुभव होने लगेगी।

आँखें मूँदने पर बाहर की चीज़ें साफ़-साफ़ नहीं दीखतीं; अतः मन अनेकांशों में एकाग्र रहता है। किन्तु मन तो मर्कट की नाईं चञ्चल ठहरा; आँखें मूँदने पर भी किसी एक विषय पर अधिक देर तक स्थिर नहीं रह सकता, और दूसरे-दूसरे विषय पर दौड़ मारता है। इस कारण सम्मोहनकारी को अपने पात्र के मन को एक विषय पर तन्मय वा ध्यानस्थ कराने के लिए कतिपय प्रक्रियाओं का अवलम्बन करना पड़ता है। पात्र-विशेष उस अवस्था में जिस किसी विषय की गम्भीर चिन्ता वा भावना करेगा उसे वही प्राप्त होगा। ये सब जाग्रतावस्था की बातें हैं। यदि जाग्रतावस्था में ही दृढ़ धारणा पैदा करा दी जावे तो मारण, मोहन, उच्चाटन इत्यादि क्रियाएँ भी सिद्ध की जा सकती हैं। किन्तु परोपकारिता की दृष्टि से वा धार्मिक क्षेत्र में इन क्रियाओं का अनुष्ठान सर्वतोभावेन वर्जनीय है। ऐसा करने से सम्मोहनकारी की दुर्लभ इच्छा-शक्ति का ह्रास होता है, सफलता-शक्ति का नाश होता है और पद-पद पर लाञ्छित होना पड़ता है। दैव-शक्ति स्वरूपिणी इच्छा-शक्ति को दुरुपयोग के लिए परमपिता परमात्मा ने हमें प्रदान नहीं किया। इसको सदुपयोग के लिए ही वर्तना हमारा एक मात्र उद्देश्य होना चाहिए। इसी कारण 'मारण' क्रिया मिस्मेरिज़्म विद्या के अन्तर्गत नहीं रहा। आर्यतन्त्रशास्त्र में मारण 'षट्कर्मों' में एक प्रधान कर्म माना गया है। किन्तु जिन्होंने इन 'षट्कर्मों' का अनुष्ठान किया था, वे सिद्ध योगी पुरुष थे। जब कभी संसार की शान्ति स्थापना और मङ्गल कामना के लिए किसी अजेय शत्रु के विनाश करने की एकान्त आवश्यकता आ पड़ती थी, केवल मात्र उसी समय वे अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति के प्रताप से तीव्र नयन-बाण के द्वारा उस शत्रु का नाश करते थे

और इच्छा करते ही उसे पुनर्जीवित कर देते थे। लेकिन यहाँ मिस्मेरिज़्म विद्या का अत्यधिक अभ्यास करने वालों की भी इतनी शक्ति नहीं है कि किसी को पुनर्जीवित कर सके। अस्तु, जिसे बचाने की शक्ति नहीं, उसे मारने की चेष्टा करना वा मन में ऐसा सङ्कल्प करना भी अति जघन्य काम है।

—गोपीनाथ वर्मा

* * *

नसीहत की दो बातें

पाश्चात्य देशों का हूबहू अनुकरण कर भारत संसार का शिरोमौलि नहीं हो सकता। यहाँ की सभ्यता या विशेषता कुछ और ही है। पूर्ण स्वतन्त्र हो कर भी यहाँ की सुकुमारियाँ पतिपरायणा या सहधर्मिणी ही हैं। स्वामी की मङ्गल-कामना से ही उनका हृदय सतत भरा रहता है। वे अपने जीवन को स्वामी की सेवा में निछावर कर देती हैं। और इसी निःस्वार्थ सेवा रूपी सद्गुण से वे पति की सहानुभूति या निश्छल प्रेम की एकमात्र अधिकारिणी बनी रहती हैं।

ईश्वर की ओर से ही नर-नारियों के कार्य विभक्त हैं। पुरुष कठिन परिश्रमपूर्वक उपार्जन करता है, और स्त्री उसे सुचारु रूप से गृह-कार्य में व्यय करती है; क्योंकि वह गृहिणी है, लक्ष्मी है, घर के भीतर उसका अखण्ड आधिपत्य है।

एक के काम में दूसरे को सहायता पहुँचाने का पूरा अधिकार है। फिर भी दफ़्तर में काम करने वाले अपने हृदयेश्वर को होटल में खिलाना किसी भी गृहस्थ कन्या को भला नहीं जँचेगा! यह तो उस देश की सभ्यता है, जहाँ अपने पति से भी पत्नी रोटी बनाने की मज़दूरी वसूल कर लेती है!

ऊँची कक्षा में शिक्षा पाकर भी स्त्रियाँ अपने से मातृ-हृदय को दूर नहीं कर सकतीं, क्योंकि यही उनकी शोभा है, ख़ूबी है। भविष्य की उज्ज्वल कल्पना जिन बच्चों पर अवलम्बित है, उनके चरित्र-निर्माण तथा शरीर-निर्माण का उत्तरदायित्व हमारी गृहिणियों पर ही है। एक सच्ची सद्गृहिणी को अपने कामों से शायद ही कभी अवकाश मिल पाता है, क्योंकि उसकी ज़िम्मेदारियाँ इतनी बड़ी और बहुसंख्यक हैं कि वह उन सबका पालन करते हुए अपने सुख या सुविधे का ध्यान रख ही नहीं सकती। पति-पुत्र की मङ्गल-कामना में उन्हें अपने अस्तित्व तक को भुला देना पड़ता है।

स्त्रियों का हृदय यद्यपि देखने में कभी-कभी पत्थर सा कठोर प्रतीत होता है, फिर भी वह सुकुमार है, कोमल है। वह अपने प्रेम-पात्र के लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत रहता है, अपना रक्त बहा कर भी उसकी

कुमारी एम० वारकी

आप धारापुरम की ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट हैं और हाल ही में वहाँ की ऑनरेरी मेडिकल ऑफ़िसर भी नियुक्त हुई हैं।

सेवा करते रहने में वह नहीं हिचकता। इस निष्कपटता का परिणाम यह होता है कि पति का भी हृदय बरबस उसकी ओर खिंच जाता है। ऐसे दम्पति में परस्पर का प्रेम अक्षुण्ण और अक्षय होता है, वह किसी तरफ़ भी मनोमालिन्य सहन नहीं कर सकता। पति का मलिन मुख देख कर ही स्त्रियाँ तो मन्नतें मानने लगती हैं, उन्हें यह सुध भी नहीं रह जाती कि मेरे मुरझाए अधर या सूखे चेहरे को देख कर पति को कितना कष्ट

होगा! बहुत बार तो यहाँ तक देखा गया है कि घर वालों को चिन्ता और कष्ट से बचाने के लिए स्त्रियाँ अपने रोगों की चर्चा तक नहीं करतीं।

परन्तु वस्तुओं का महत्व सीमा के भीतर ही है। यद्यपि लज्जा स्त्रियों का भूषण है, परन्तु अतिशय लज्जा दूषण ही है। निर्लज्जता जितनी भयावनी है, बात-बात पर लज्जित और सङ्कुचित होने की आदत उससे कम
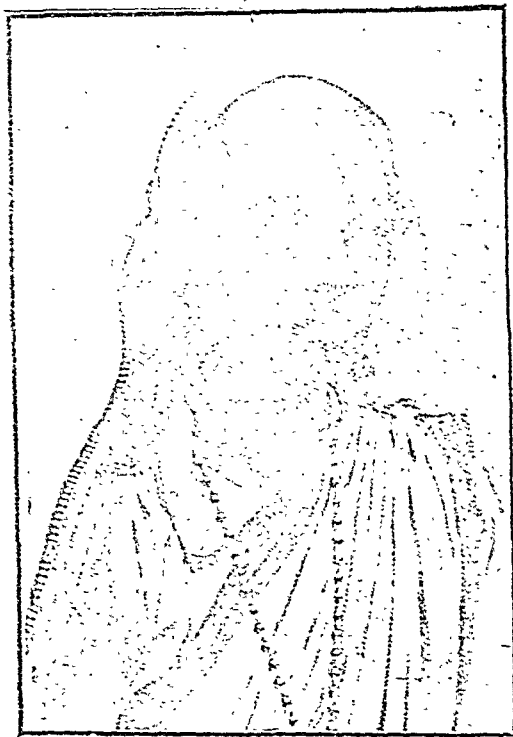
श्रीमती के० आर० के० आयङ्गर

आप लन्दन युनिवर्सिटी की एक विख्यात ग्रेजुएट हैं और हाल ही में कोनूर की ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं।

भयावनी नहीं है। परदे की प्रथा एक ऐसी प्राणघातक प्रथा है कि इसने हम लोगों को, जहाँ लज्जा की कोई आवश्यकता नहीं है, बल्कि जहाँ लज्जा निश्चय ही घातक है, वहाँ भी लज्जित होना सिखा रक्खा है।

वर्तमान समय में स्त्रियाँ पुरुषोचित कार्य में हाथ बढ़ा रही हैं और दिन दूने उत्साह से काम कर जो सफलता पा रही हैं, वही भारतवर्ष के उत्कर्ष का सोपान है। परन्तु इस उत्कर्ष का यह अर्थ कदापि न होना चाहिए कि स्त्रियाँ बिना सोचे-समझे अपने पतियों की अवहेलना करना आरम्भ कर दें। किसी की अवहेलना करने से कोई ऊँचा नहीं हो सकता। ऊँचा होने का साधन नम्रता है। जङ्गल का राजा सिंह भी आगे से झुक कर ही शिकार पर वार करता है।

पति के अनुकूल चलने से ही नारियों को सुख, सम्पत्ति मिलती है। अर्द्धाङ्गिनी होकर भी यदि उसे स्वामी के सारे रहस्य अवगत नहीं हुए तो उसके आत्म-बल को धिक्कार है। कुछ दिन के लिए धीरज धर, अपनी अभिलाषा को सर्वथा पद-दलित कर उसे पति में मिल जाना चाहिए। फिर तो दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध इतना मधुर हो उठेगा कि उसकी माधुरी से संसार एक बार मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि इस शुभानुष्ठान का प्रारम्भ वामाङ्ग को ही करना पड़ेगा, क्योंकि अभिमानी और दुर्द्धर्ष पुरुष जाति में इतनी नम्रता और कोमलता कहाँ कि वह इस अलौकिक प्रेम-यज्ञ का आरम्भ कर सके?

जैसे पुरुष के अधिकार में स्त्री रहती है, वैसे ही स्त्री के अधिकार में पुरुष भी रहता है। अतः अधीनस्थ व्यक्ति के ऊपर हुकूमत कर या दबाव डाल मनमानी मुराद पूरी कर लेने से कलह का बीज अङ्कुरित हो जाता है। पारस्परिक व्यवहार में अपने सुख और अपने स्वार्थ की भावना छोड़ कर सदा दूसरे के सुख और सन्तोष को अपना ध्येय बनाना चाहिए। परिवार के सुख और समृद्धि का यही मूल मन्त्र है। इसके विपरीत जाने से कलह पैदा होता है और कलह से सर्वनाश।

स्वाभिमान को नम्रता के अधीन रखना और आत्म-बलिदान द्वारा दूसरे की आत्मा पर विजय पाना चतुर विजेताओं के लक्षण हैं। इसी सूत्र का अवलम्बन कर स्त्रियाँ गृह-सम्बन्धी सभी समस्याओं को हल कर सकती हैं। अन्त में मुझे यह कह देना भी आवश्यक प्रतीत होता है—"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।" अर्थात्, मनुष्य मनोवेग को—मदमत्त मदन की मादकता को—उपभोग से विरत होकर ही रोक सकता है। तुलसीदास ने भी कहा है—"तुलसी काम अगिनि नहिं बूझै विषय-भोग बहु घी ते।" इस मन्त्र को हृदयङ्गम किए

बिना कोई स्त्री या पुरुष सुखी नहीं हो सकता। क्योंकि पति पत्नी में चाहे कितना ही मेल क्यों न हो, किसी समय उनकी इच्छाओं में अन्तर भी पड़ सकता है और यह अन्तर ही कलह का मूल है। अतः इस अन्तर को महत्व न देकर जहाँ तक एक को दूसरे से सुख मिले, वहाँ तक सुख भोग कर ही सन्तोष करना चाहिए। अधिक की इच्छा करने से सदा दुःख ही मिलेगा। संसार के किसी भी दो प्राणियों में सर्वांश में और सर्वदा मेल होना असम्भव है।

—(साहित्याचार्य) "मग"

* * *

पापी

वेदना के संसार में उसके लिए एक सुनसान कोना पड़ा था। उस ओर—जहाँ उसकी कुटिया थी—कोई भूल कर भी जाने का साहस नहीं कर सकता था। जाता ही क्यों, जब उसका वह सोने का संसार दूसरे के लिए बिलकुल उजाड़ था? न तो वहाँ गोरी गङ्गा थी, न काली कालिन्दी, न चञ्चला सरयू थी और न अन्तः-सलिला सरस्वती—फिर किस पुण्य-प्रसाद की आशा में लोग उधर बढ़ते?

आँसू की अविरल धारा—उसके तीर बनी हुई वह दरिद्र कुटिया, कुचली हुई उमङ्गों की आँधी के थपेड़ों से कभी-कभी डोलने लगती। संसार—पञ्चभूत से बना यह संसार—उस समय भय से काँप उठता।

धारा की गति मन्द पड़ते ही कुटिया भी शान्त हो जाती। उस समय उसके भीतर से एक अपूर्व सङ्गीत की ध्वनि सुन पड़ती। संसार की आँखों में वह पापी स्नेह के सिंहासन पर बैठ कर वीणा के टूटे तारों को जोड़ने लगता। थोड़ी ही देर में आकाश-पाताल रङ्गमय—अनुरागमय—बन जाता।

उसी समय न जाने कौन बालिका उस दरिद्र कुटिया में आकर दीप जला जाती। पापी देखने की इच्छा रखने पर भी उसे देख नहीं पाता, पकड़ने की इच्छा होने पर भी पकड़ नहीं पाता। और बोलने की उत्कण्ठा होने पर भी बोल नहीं पाता। यही उसके पापी जीवन का पवित्र सौदा था। शायद इसीलिए उसने इस संसार से दूर—बहुत दूर—उस ओर, जहाँ कोई नज़र न डाल सके—अपनी कुटिया बसाई थी।

२

पापी के जीवन की आज वसन्त-सन्ध्या थी। सदा की तरह वह आज नए उल्लास, नए उत्साह, नई उमङ्ग, और नई तरङ्ग में मस्त होकर गाने बैठा। उसके एक-एक तान और एक-एक मूर्च्छना में कितने ही स्वर्ग की

श्रीमती पी० डी० आशेर

आप तिरुपुर के नव सङ्गठित महिला-ऐसोसिएशन की प्रेसिडेण्ट चुनी गई हैं।

सृष्टि हो रही थी। वह गाता तो था, परन्तु उसके हृदय का चिर सञ्चित धन—आनन्द—मोती होकर आज उन्हीं आँखों के सामने दूसरे का हो रहा था। उधर अश्रान्त सरिता के तट पर बैठा हुआ एक पागल अपना प्रलाप भूल कर, उस पापी के सङ्गीत-माधुर्य में मस्त होकर झूम रहा था। एकाएक दीप बुझ गया। पापी की वीणा के

तार टूट गए। वह दीप की ओर लपका ही था कि पागल भी एक दूसरे संसार में पहुँच गया।

रुदन का रूप संसार में सबसे कोमल है। वह गिरती हुई लहरों का चुम्बन, दलित कुसुमों का गुम्फन है। कठोर मोती का दाना उसके आगे अपनी चमक नहीं रख सकता।

पापी का दलित जीवन आज संसार में दूसरा ही स्वप्न देख रहा था। अचानक दीप के बुझ जाने से उसके

कुमारी मेरी मोरडेके

आप बङ्गाल के महिला-हॉकी-एसोसिएशन की वाइस प्रेसिडेण्ट निर्वाचित हुई हैं।

प्राण छटपटाने लगे। उसकी वह वीणा, जिसको सँवार कर गाने बैठा था, बिलकुल बेकार पड़ी थी। वह वहीं उस दीप की स्मृति में, विधाता की विभूतियों को पैरों से ठुकराता हुआ, धूल में लोट-पोट होकर अपने को बलिदान कर देना चाहता था। एकटक वह बुझे दीप की ओर देख रहा था। शायद उसके जीवन में अभी उसके सम्बन्ध में कुछ साध—कुछ हौसले शेष थे।

उधर पागल भी मस्त होकर आकाश की ओर देख रहा था। कभी तारों के गिनने की चेष्टा करता, कभी बालु-कणों को उनकी प्रतिच्छाया समझ, पकड़ने को लपक पड़ता। वह अबोध बालक की तरह प्रकृति से खेल रहा था। कौन कहे यही प्रकृति का खेल कभी मेल का कारण भी होगा?

२

फिर भी वही सन्ध्या—मदिरा से मस्त, मतवाली सन्ध्या—पापी के जीवन को सावधान करने आ गई। आँखें अब भी श्रद्धा के दो-चार मोती बिखेरे पड़ी थीं। फिर भी बालिका आई और दीप जला कर चली गई। पापी का जीवन तड़फड़ा उठा। वह एक बार उठा—उस छोटी सी कुटिया का कोना-कोना छान डाला। बालिका का पता न लगा। अब उसने अपने हृदय की ठेस और उसकी शान्ति के लिए दीप को बुझा देना ही उचित समझा। एक बार लपका, दीप बुझाया ही चाहता था कि आवाज़ आई—ठहरो!

पापी सहम गया, पूछा—तुम कौन हो? क्यों मेरी कुटिया में आकर चुपके से दीप जलाया करती हो? मेरे इस पापी जीवन से—जिसे इस संसार ने हज़ारों बार पैरों से ठुकराया है, घृणा की है—तुम किस आशा से प्रेम करती हो प्रतिमे?

बालिका की प्रदीप्त प्रतिमा, जिससे पवित्रता की लाखों किरणें फूटी पड़ती थीं, बोली—इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि तुम इस संसार की दृष्टि में पापी हो। तुम्हारे हृदय की पवित्रता तुम्हारी पवित्र आत्मा ही समझती है; इसको दूसरा प्रयत्न करने पर भी नहीं समझ सकता देवदूत! तुम्हारा मार्ग—संसार के परे—दूसरी ओर है। इसकी चिन्ता मत करना वीर! देखते-देखते वह पवित्र प्रतिमा ज्योति में विलीन हो गई।

पापी का मस्तक अभिमान से उठ गया। जिसे संसार ने पाप समझा था, वही आज पापी के जीवन का पवित्र प्रसाद हुआ। वह बोल उठा—तो सचमुच इस पापी जीवन से बढ़ कर कोई पवित्र जीवन नहीं हो सकता? उधर समय साँय-साँय करता भागा जा रहा था और इधर पापी के चरणों पर वह पागल लोट-पोट हो रहा था।

फिर न कभी वह पापी देखने में आया और न वह पागल। हाँ, वह धारा, वह कुटिया और वह देवी की प्रतिमा आज भी सोते हुए कवि-कुमार को चौंका दिया करती है।

—जगदम्बाप्रसाद शर्मा "विकल"

* * *

कुमार्ग और विवाह

अत्यन्त हर्ष की बात है कि विधवाओं के करुण क्रन्दन और आर्तनाद से हिन्दू समाज की निद्रा भङ्ग हो गई है और उसने विधवाओं की असहाय दशा की ओर ध्यान देना आरम्भ कर दिया है। किन्तु जो प्रयत्न अभी तक होने आरम्भ हुए हैं, वे ऐसे नहीं हैं कि उनसे रोग का बिलकुल नाश हो जाय। विधवाओं की संख्या ह्रास करना, उनकी दुर्दशा का नाश करना, उनको कुमार्ग से बचाना आदि बातों से विधवा-विवाह का प्रश्न उठता है। परन्तु केवल विधवा-विवाह ही से व्यभिचार का होना नहीं रोका जा सकता। व्यभिचार के रोकने और विधवाओं की दशा में सुधार करने के लिए हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि विधवा होवें ही नहीं। विधवाओं की संख्या ह्रास करने के लिए हमें चाहिए कि बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु-विवाह को शीघ्र ही रोकें। इन सबके अतिरिक्त एक प्रकार का और भी विवाह है, जिसके सबब से हिन्दू-समाज का भीषण अधःपतन हो रहा है, हमारा पवित्र गार्हस्थ्य जीवन अशान्तिमय हो रहा है, स्त्रियों पर पाशविक अत्याचार हो रहे हैं और लोग कर्त्तव्य-भ्रष्ट हो रहे हैं। यह कौन सा विवाह है? यह है "असंयमी और चरित्रहीन का विवाह।" मेरी इस बात को सुन कर बहुत लोग आश्चर्यान्वित होंगे। कुछ लोगों की यह धारणा है कि कुमार्ग से बचाने के लिए ही विवाह-प्रथा की स्थापना हुई है, किन्तु मेरी समझ में यह धारणा ठीक नहीं है। हिन्दू-धर्मानुसार असंयमी और इन्द्रियासक्त कामी लोगों को विवाह करने का अधिकार नहीं है। संयम-अभ्यास ही उन लोगों का प्रशस्त मार्ग है। प्राचीन काल में ब्रह्मचर्य से काम-दमन-शक्ति लाभ करने के बाद लोग विवाह योग्य समझे जाते थे। आजकल भी ऐसे आदमी बहुत कम हैं, जो जान-बूझ कर व्यभिचारी कामातुर को कन्या देते हैं। परन्तु पुरुषों की दशा इतनी शोचनीय हो गई है कि आज अधिकांश रूप से कन्याओं को दुश्चरित्र पति ही मिलता है। हम यहाँ एक सरल प्रश्न कर सकते हैं कि यदि विवाह कुमार्ग से रोकने के लिए ही है तब बाल-विवाह होने और विवाह में कुछ रोक-टोक न रहते हुए भी स्त्रियों से पुरुषों में ही
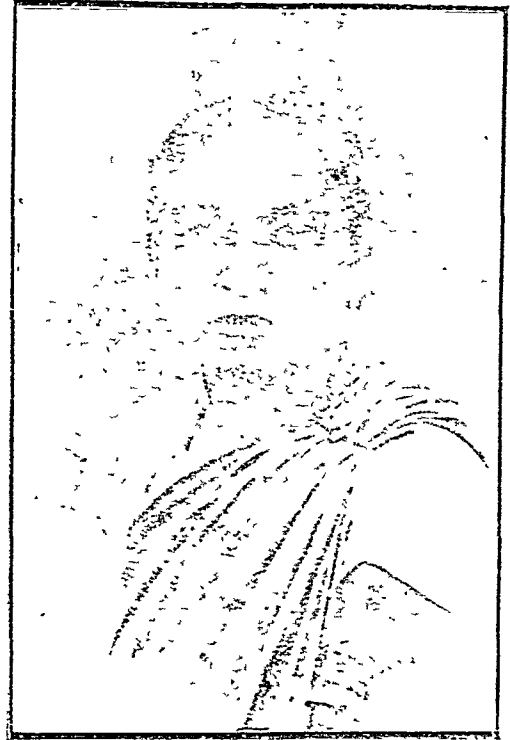
कुमारी टी० के० राजन

आप त्रिचनापल्ली के डेपुटी पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट श्रीयुत टी० वी० कृष्णस्वामी अय्यर की सुपुत्री हैं और हाल ही में पदुकोट्टा के गर्ल्स हाई स्कूल की प्रधानाध्यापिका नियुक्त हुई हैं।

व्यभिचार का प्राबल्य इतना अधिक क्यों हुआ? वास्तव में विवाह कुमार्ग से रोक नहीं सकता है, बल्कि व्यभिचारी और असंयमी पुरुषों का विवाह कर देने से ही व्यभिचार की वृद्धि होती है। यदि पुरुष व्यभिचारी है और दूसरी स्त्री से प्रेम करता है, तो यह निश्चित है कि वह अपनी स्त्री से प्रेम न करेगा और जब पति स्त्री

से प्रेम न करेगा, तो अधिकांश तौर से यह देखा जाता है कि ऐसी स्त्रियाँ दूसरे पुरुष से प्रेम करने लगती हैं। ऐसे विवाह बजाय व्यभिचार कम करने के उसे और बढ़ा देते हैं।

मेरे विचार में विधवाओं की बढ़ती हुई संख्या को रोकने के लिए सबसे पहिले यह होना चाहिए कि ऐसे व्यभिचारी पुरुषों का विवाह होना बन्द कर दिया जाय।
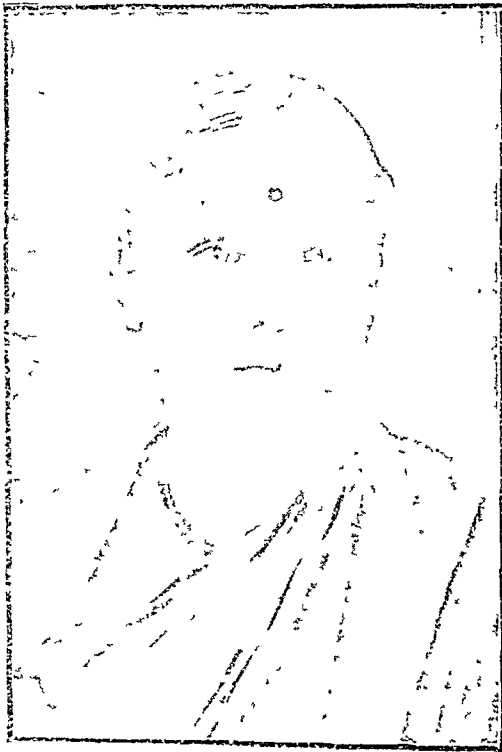
श्रीमती शान्तिबाई वेङ्गासरकारे

आप दादर (बम्बई प्रान्त) के देशसेविका-सङ्घ की कैप्टन हैं और कॉङ्ग्रेस के कार्य में बड़े उत्साह के साथ भाग ले रही हैं।

इससे लाभ यह होगा कि युवक लोग विवाह न होने तक ब्रह्मचर्य क़ायम रखने पर बाध्य होंगे और यदि ब्रह्मचर्य का पालन हुआ तो वे अकाल काल के ग्रास न बनेंगे और इस प्रकार विधवाओं की संख्या न बढ़ेगी। आज दाम्पत्य जीवन में अधिकांश स्त्री-पुरुषों का स्वास्थ्य क्यों ठीक नहीं रहता? जननेन्द्रिय के विविध रोग प्रबल रूप से स्त्री-पुरुषों पर क्यों आक्रमण कर रहे हैं? सन्तान क्यों दुर्बल होती है? शिशु-मृत्यु-वृद्धि के कारण क्या हैं? लोग क्यों बल-वीर्य-हीन, आलसी और विलासी हो रहे हैं? कर्त्तव्य-ज्ञान क्यों लोप हो रहा है? अकाल मृत्यु, आत्महत्या का कारण क्या है? ख़ास करके भीषण उपदंश व्याधि ने भारत की जनता पर पूर्ण दख़ल क्यों कर लिया है? उसकी भीषण यन्त्रणा स्वयं तो भोगनी ही पड़ती है; स्त्री, पुत्र, कन्या इत्यादि को भी इसका फल भोगना पड़ता है। अनेक स्त्रियाँ वन्ध्यात्व को प्राप्त होती हैं। अनेक स्त्रियाँ अकाल में गर्भ नष्ट होने की यन्त्रणा भोग करती हैं। अनेक स्त्रियाँ दुर्बल सन्तान प्रसव करके नाना प्रकार के कष्ट सहती हैं। आजकल के दाम्पत्य जीवन का यह संक्षिप्त वर्णन है। चाहे जो हो, अब तो इसका प्रतिकार अवश्य ही हमें करना चाहिए।

क्या विधवा-विवाह के प्रचार से इसका प्रतिकार होगा? मेरी बुद्धि से यह असम्भव मालूम होता है; क्योंकि इसके लिए हिन्दू-समाज को काम का पूर्ण दासत्व स्वीकार करना पड़ेगा। दासत्व हम इसलिए कहते हैं कि हमें आत्मशक्ति को त्याग करके काम का आश्रय लेने के लिए प्रकाश्य आज्ञा देनी पड़ेगी, जोकि सनातन सत्य का सम्पूर्ण विरोधी है। वंश-इच्छा के अतिरिक्त काम को अन्य उपयोग में लाना समाज की मूर्खता तो है ही, पर इससे सनातन सत्य पर भी पदाघात होता है। कुछ महाशय विधवा-विवाह की सम्मति इसलिए देते हैं कि काम-वासना मनुष्य के लिए उतनी स्वाभाविक है, जितनी कि भूख या प्यास। अतएव समाज को इसकी तृप्ति के लिए कुछ उपाय करना धर्म-सम्मत है। वे पौराणिक युग के नियोग के दृष्टान्त खींच कर मोह उत्पन्न करते हैं। कहते हैं कि ये प्रथाएँ तब व्यभिचार रोकने के लिए प्रचलित थीं, अतएव सब स्त्री-पुरुषों के लिए काम-सम्भोग का इन्तज़ाम करना समाज-सुधारकों का धर्म है! मेरी बुद्धि जहाँ तक दौड़ती है, यह धारणा कोरी भूल ही मालूम होती है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि मनुष्य की स्वाभाविक अवस्था काम-चिन्ता का अभाव अर्थात ब्रह्मचर्य है। कुछ विशेष कारण न होने से वे कभी कामातुर नहीं होते हैं। इसलिए इस अवस्था को स्वाभाविक अवस्था का विकार ही कहते हैं, स्वाभाविक नहीं। परन्तु कुसंसर्ग, अश्लील विषय की आलोचना, कुग्रन्थ-पाठ

इत्यादि से यह स्वाभाविक सा हो जाता है, तो भी उसे स्वाभाविक कहने का हमें अधिकार नहीं है, क्योंकि मनुष्य-स्वभाव उच्चगामी है और यह सब शत्रु बलपूर्वक उसे कुपथगामी करने की चेष्टा करते हैं।

गीता में अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से प्रश्न किया था :—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

इस पर भगवान कृष्ण ने उत्तर दिया है :—

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥
धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्॥
आवृतम् ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्य वैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥

गीता के इस उपदेश का क्या आप तिरस्कार कर सकेंगे? मेरा दृढ़ विश्वास है, आपका हृदय कभी ऐसा नहीं करने देगा। इस हालत में आप कैसे अस्वीकार कर सकते हैं कि शीघ्र विवाह कर देने के सिवा आत्मरक्षा करने का दूसरा अति सरल और सुसाध्य उपाय नहीं है? एक दिन भारत में ब्रह्मचर्य की शीतल छाया कैसे वर्तमान थी? आज भी आप कामी, क्रोधी, लोभी से क्यों घृणा करते हैं? पतिव्रत और ब्रह्मचर्य का आप क्यों सम्मान करते हैं? मेरी समझ में तो हम लोग उनका सम्मान इसलिए करते हैं कि वे हमें कुमार्ग से बचाते हैं और हमारे जीवन को सुखपूर्ण बनाते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम प्रथम इसलिए निर्दिष्ट हुआ है कि वह मनुष्य का सब से प्रथम स्वाभाविक नियम है।

आधुनिक दृष्टि से ब्रह्मचर्य का वर्णन करना कुछ कठोर सा मालूम होता है। आजकल ब्रह्मचर्य का नाम सुनते ही लोग काँप उठते हैं। मेरी राय में इसके वर्णन को कुछ रोचक करके जनता के सामने उपस्थित करने से बहुत कुछ लाभ हो सकता है। ब्रह्मचर्य का सरल अर्थ है—"काम-चिन्ता का अभाव"। यह मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है, अतएव अति सामान्य चेष्टा से जैसे कि कुचर्चा, कुचिन्ता, कुग्रन्थ और विलासिता आदि के त्याग से, ब्रह्मचर्य-पालन अति सहज से हो सकता है। बाल्यकाल से इस तरह काम से असहयोग होने से सब प्रश्न बहुत ही सरल हो जायगा।

काम के अधीन होने से जब प्रकृति की तरफ़ से ही कठिन से कठिन दण्ड भोगना पड़ता है, तब ऐसा होने का मनुष्य का प्राकृतिक अधिकार कहाँ है? यह भी आप

कुमारी मालती नायक

आप बीजापुर के श्रीयुत नायक की सुपुत्री हैं और वहाँ के राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रमुख भाग ले रही हैं।

कैसे कह सकते हैं कि यह मनुष्य का स्वाभाविक नियम है और उसको रोकने के लिए कुछ सरल उपाय नहीं है? स्वाभाविक कार्य में कभी दुख और अशान्ति नहीं मिलती है। यदि वह मनुष्य का स्वाभाविक नियम है, तो इसमें लज्जा क्यों आती है? इसे अश्लील और पाप क्यों कहते हैं? विवेक क्यों ऐसा करने को मना करता है? वास्तव में स्वाभाविक कार्य वह है जिससे उचित मार्ग पर चलने में सहायता मिलती है। काम-

प्रवृत्ति यदि मनुष्य का स्वाभाविक नियम होता तो इतने प्रलोभन की कौन आवश्यकता थी? वह मनुष्य का स्वभाव नहीं है, इसीलिए विवाह-प्रथा को आश्रय देने की आवश्यकता पड़ी, नहीं तो विवाह-प्रथा की ही कौन आवश्यकता थी? मेरी बुद्धि में काम-वासना की तृप्ति के लिए मनुष्य को कुछ भी प्राकृतिक आवश्यकता नहीं है। मैं तो कहता हूँ यह सब प्रकृति-विरुद्ध है। अतः उसका नाश करना ही सर्वथा कर्त्तव्य है।

अब यह प्रश्न है कि पौराणिक युग में नियोग और पत्यन्तर ग्रहण की प्रथाएँ प्रचलित थीं या नहीं। मैं यह कैसे अस्वीकार कर सकता हूँ? तब साथ ही साथ यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उसका उद्देश्य भी सत्य के ऊपर ही प्रतिष्ठित था। काम-वासना की तृप्ति अथवा व्यभिचार रोकने की धारणा पर यह प्रथा नहीं प्रचलित थी और फिर उसके लिए सिर्फ़ ब्रह्मचर्यनिष्ठ, जितेन्द्रिय नर-नारी को ही अनुमति दी जाती थी। धर्मराज यम ने आदर्श हिन्दू-रमणी, परम सती सावित्री देवी से पुनर्विवाह के लिए अनुरोध किया था। मानव के

हर हाइनेस सेट्ट् लक्ष्मीबाई

आप ट्रावनकोर की महारानी-रीजेण्ट हैं। आपने ट्रावनकोर के उन मन्दिरों में से, जिनका प्रबन्ध सरकार के हाथ में है, देवदासी की घृणित प्रथा को सर्वथा उठा दिया है। कुछ समय पहले आप इसी प्रकार सरकारी मन्दिरों में से पशुओं के बलिदान की प्रथा को भी बन्द करा चुकी हैं।

परम शत्रु काम को इस तरह से सम्मुख युद्ध में जय करने के लिए प्रबल आत्मशक्ति की आवश्यकता होती है। उस समय लोग कठोर ब्रह्मचर्य पालन करते थे, उसका कारण यही है। आज सम्मुख युद्ध में उसे हराने की शक्ति हममें नहीं है। अतः उसके दासत्व से मुक्त होने के लिए महात्मा गाँधी के शब्दों में विवाह से असहयोग कर देना श्रेष्ठ है। किन्तु हाय! हिन्दू-समाज के प्रतिष्ठित सज्जन क्या कहते हैं? कहते हैं कि जो व्यक्ति काम दमन करने में समर्थ हैं, वे विवाह न करें; परन्तु जो असमर्थ हैं उनको अवश्य करना चाहिए।

बाल विवाह कुप्रथा हिन्दू-समाज में विधवा-वृद्धि का एक मुख्य कारण तो है ही, पर यह प्रथा इसलिए और भी घृणित है कि हमारे यह सार्वजनिक दासत्व की ही जन्मदाता है। क्योंकि यह शत्रु हमारे प्रधान सहायक और रक्षक ब्रह्मचर्य पर विचार करने तक का अवसर नहीं देता है। इस कारण पुरुष ज्यों-ज्यों दुर्दशाग्रस्त होते गए, त्यों-त्यों दासत्व करने के लिए विवाह को भी कलङ्कित करते रहे। पुरुषों के व्यभिचारी होने से फल यह हुआ कि स्त्रियों के पवित्र हृदय में भी पाप का सञ्चार होने लगा। वे यह सोचने लगीं—"शायद काम-प्रवृत्ति मनुष्य में स्वाभाविक ही होगी, उसकी तृप्ति करने के सिवा दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। नहीं तो पुरुष क्यों इतना व्यभिचार में लिप्त होते हैं?" स्त्रियों की यह दुर्बलता देख कर वह शत्रु उन पर भी धीरे-धीरे आधिपत्य जमाने लगा। उनका हृदय भी दासत्व के बोझ से ऐसा अवनत हो गया है कि कुछ बुद्धिमती सती स्त्रियाँ भी हृदय के आवेग से कहती हैं कि "शायद स्त्रियों में पुनर्विवाह का अधिकार रहने से वे ऐसी पतिता न होतीं।" उनका उद्देश्य महत है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। इसलिए मैं भी उनको अश्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखता हूँ। हाँ, पुरुष का दृष्टान्त उनके सामने रख कर मैं उनसे सविनय निवेदन करना चाहता हूँ कि "आप दुर्दशा के कारण का निर्णय करने में भूल करती हैं। वास्तव में इस दुर्दशा का कारण स्वाभाविक धर्म का अभाव ही है। पुरुष की दुर्दशा का तो अन्त ही नहीं है। मेरी समझ में स्त्रियों से पुरुष ही कई गुणा अधिक अशान्ति और दासत्व भोग करते हैं। अतएव पुरुषों के सुधार की तरफ़ ही समाज को प्रखर दृष्टि रखनी चाहिए। यद्यपि कायर पुरुषों के संसर्ग से ही स्त्रियों की प्रवृत्ति कुछ नीच हो गई है, तथापि मेरा दृढ़ विश्वास है कि पतिव्रत के प्रभाव से अभी तक हिन्दू स्त्रियों में जो कुछ स्वाधीनता के भाव वर्तमान हैं, वे ही वर्तमान सुधार के लिए काफ़ी होंगे। पुरुषों को पाप से उद्धार करने के लिए उन्हें हृदय में बल का सञ्चार करना चाहिए। वे ही वर्तमान सुधार

सौभाग्यवती रङ्गनायकी अम्मल
आप हाल ही में चीतलदुग डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सदस्या नियुक्त हुई हैं। मण्ड्यम आयङ्गर समाज में आप पहिली महिला-रत्न हैं, जिन्हें यह सम्मान प्राप्त हुआ है।

की एक मात्र आशा हैं। उनको फिर से यह शिक्षा देनी चाहिए कि वे व्यभिचार और कुकार्य में पुरुषों की सहायता न करें, उनकी विलास-सामग्री न बनें।

इसलिए मैं बड़े ज़ोरदार शब्दों में हिन्दू-समाज से अपील करूँगा कि विवाह के समय लड़कों के चरित्र की परीक्षा ख़ूब अच्छी तरह कर लेनी चाहिए। अगर कन्या

चिरकुमारी भी रह जाय तो यही कहीं अच्छा है, लेकिन कायर, व्यभिचारी और असंयमी पुरुष से कदापि विवाह न करना चाहिए।

पतिव्रत धर्म के विषय में भी बहुत-कुछ भ्रम फैल गया है। इस समय लोगों का विश्वास है कि पति के आदेश पर न्याय-अन्याय कुछ विचार न करके चलना ही पतिव्रत धर्म है। परन्तु पूर्व इतिहास से मालूम होता

श्रीमती उमाबाई कुन्दापुर

आप हुबली ज़िले के गाँवों में बड़े उत्साह और लगन के साथ काँग्रेस का प्रचार-कार्य कर रही हैं।

है कि यह विश्वास पतिव्रत धर्म के सर्वथा प्रतिकूल है। पति को धर्म-कार्य में सहायता करना और कुकार्य में बाधा देना, यही पतिव्रता का धर्म है। पति को धर्म-विरुद्ध कार्य में सहायता करने से नारी पतिव्रत धर्म से भ्रष्ट होती है।

यदि इस महत्वपूर्ण कार्य में हमें सफलता प्राप्त हो गई तो पुरुषों की नैतिक अवस्था में भी परिवर्तन अवश्य होगा। इस विषय में जब माता-पिता अपना कर्तव्य पालन करेंगे, तब यह कार्य बहुत ही सरल हो जायगा, लोगों को नारी-महत्व के अनुभव करने का अवसर मिलेगा, नारी जाति का सम्मान बढ़ेगा, न्याय, सत्य और धर्म का आदर होगा, विधवाएँ भी समाज में प्रतिष्ठा लाभ करेंगी, उनका उच्चादर्श लोगों को पाप से निवृत्त करेगा, लोग विधवाओं में स्वर्गीय पवित्रता का अनुभव करेंगे और उनका जीवन सुख तथा शान्ति से व्यतीत होगा। इस प्रकार काम के दासत्व से मुक्त होने के बाद पृथ्वी में ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जो भारत को अधीन रख सके।

परन्तु विधवा का प्रश्न यदि विधवा-विवाह से हल करने का प्रयत्न किया जाय और कुमार्ग से बचाने का भार समाज के ऊपर न रख कर विधवाओं के ऊपर ही लादा जाय, तब उन पर भार दिन-दिन इतना बढ़ता जायगा कि उन्हें हिन्दू-समाज को अन्तिम नमस्कार करने का विचार करना पड़ेगा। इसलिए हमें चाहिए कि मनुष्यत्व का विकास करें, कर्तव्य-ज्ञान को पुष्ट करें, बाल्यकाल से ही लड़के-लड़की के संयम, अभ्यास और सुशिक्षा का प्रबन्ध करें। तभी व्यभिचारी स्त्री-पुरुषों की संख्या कम होगी, पुरुष लोग अकाल ही काल के ग्रास न बनेंगे और तभी विधवाओं की संख्या न बढ़ेगी। मेरी समझ में हिन्दू-समाज को पुनर्जीवित करने का यही एक मात्र उपाय है और इसी से भारत का उद्धार भी होगा।

—ज्वालाप्रसाद साहा

* * *

स्वामी विवेकानन्द का स्वदेश-प्रेम

स्वामी विवेकानन्द जब विलायत से हिन्दुस्थान को आने की तैयारियाँ कर रहे थे, तब आप के किसी अङ्गरेज़ मित्र ने आपसे पूछा—"स्वामी जी! भोग के लीला-निकेतन पाश्चात्य देशों में इतने दिन तक रह कर अब दरिद्र भारतभूमि को आप किस दृष्टि से देखेंगे?" स्वामी जी ने तुरत जवाब दिया—"दोस्त! इस देश में आने के पहिले भारत-भूमि मेरी बड़ी प्यार

थी, परन्तु अब भारत का प्रत्येक धूल-कण मेरे लिए स्वर्ग से भी पवित्र है।" स्वामी जी की इस उक्ति से मालूम होता है कि अपनी जन्मभूमि के प्रति आपका प्रेम कैसा गाढ़ा था! आपके लेख और वक्तृताओं से हमें स्पष्टतया प्रतीत होता है कि स्वदेश-प्रेम आपका अस्थिमज्जागत गुण था। आपके लेख और वक्तृताओं को पढ़ते-पढ़ते हम इतने तन्मय हो जाते हैं कि अपनी प्यारी जन्मभूमि का अतीत गौरव हमारी आँखों के सामने प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता है और इस गौरवमयी पुण्य-भूमि के भविष्य का उज्ज्वल चित्र हमारे मानस-क्षेत्र में अङ्कित हो जाता है। जिनकी वाणी में इतनी आकर्षण-शक्ति है, वे पुरुष कैसे मेधावी और महान थे, यह किसी को बतलाना नहीं पड़ेगा।

स्वामी जी ने स्वदेश-प्रेम के तीन लक्षण बतलाए हैं। अपनी My Plan of Campaign (मेरी समर नीति) नामक वक्तृता में स्वामी जी ने कहा है—

"I believe in patriotism and I also have my own ideal of patriotism. Three things are necessary for grand achievements. First feel from the heart. What is in intellect or reason? It goes a few steps and there it stops. But through the heart comes inspiration. Love opens the most impossible gates. Love is the gate to all the secrets of the universe. Feel, therefore, my would-be reformers, my would-be patriots. Do you feel? Do you feel that millions and millions of the decendants of Gods and of sages have become next door neighbour to brutes? Do you feel that millions are starving to-day and millions have been starving for ages? Do you feel that ignorance has come over the land like a dark cloud? Does it make you restless? Does it make you sleepless? Has it gone into your blood, coursing through your veins, becoming constant with your heartbeats? Has it made you almost mad? Are you seized with that one idea of misery, of ruin and have you forgotten all about your name, your fame, your wives, your children, your property, even your own bodies? Have you done that? This is the first step to become patriot, the very first step."

"स्वदेश-प्रेम में मेरा विश्वास है, और उसके विषय में मैंने अपना आदर्श भी बना रक्खा है। कोई बड़ा काम करने में तीन चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है। पहिले दिल से अनुभव करना चाहिए। केवल विचार व बुद्धि क्या कर सकती है? वह कुछ दूर तक चल कर चुप हो जाती है। परन्तु प्रेरणा हृदय के भीतर से आती है, प्रेम से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। दुनिया के सारे रहस्य के जानने का दरवाज़ा प्रेम ही है। अतः हे मेरे भावी सुधारको! हे मेरे भावी देश-सेवको! तुम्हें देश के दुःख को हृदय से अनुभव करना पड़ेगा। क्या यह सोच कर तुम्हारे हृदय को कभी वेदना होती है कि देव और ऋषियों की लाखों सन्तानें आज जानवरों के समकक्ष बन बैठी हैं? क्या यह बात तुम्हें दिल में कभी चुभती है कि आज लाखों भारतवासी भूखे मर रहे हैं और लाखों नर-नारी वर्षों से भूखे मरते आए हैं? क्या तुम्हारे हृदय को यह बात कभी अखरती है कि काले बादलों की भाँति अज्ञान हमारे देश पर छा गया है? क्या इस चिन्ता से कभी तुम बेचैन होते हो; तुम्हारी भूख और नींद मारी जाती है? क्या इस चिन्ता से कभी तुम्हारा हृदय द्रवित होता है? क्या इस चिन्ता से कभी तुम पागल से हो जाते हो? देश में चारों ओर जो दुःख, हाहाकार और सर्वनाश फैला हुआ है, इससे तुम्हारे प्राणों को कभी पीड़ा होती है? क्या इस पीड़ा से कभी तुम इतने व्याकुल हो जाते हो कि तुम्हें अपने नाम, यश, बाल-बच्चे, धन-दौलत, यहाँ तक कि अपने शरीर की भी सुधि भूल जाय? क्या तुमने देश के दुःख को कभी इस प्रकार अनुभव किया? याद रक्खो, देशभक्त बनने की यही पहिली सीढ़ी है—सबसे पहिली सीढ़ी।"

इन शब्दों में कैसा जादू भरा हुआ है! किस प्रकार ये सीधे हृदय तक पहुँचते हैं! स्वदेश-प्रेम की यह विवेचना कितनी वैज्ञानिक है! पर साथ ही कितनी ओजस्विनी! निस्सन्देह सच्चा स्वदेश-प्रेम एक दुर्लभ वस्तु है, जो महान तपस्या, स्वार्थ-त्याग और पवित्रता से हमें मिलती है। जो लोग वास्तव में स्वदेश-प्रेमी हैं और सच्चे दिल से अपने देश का कल्याण करना चाहते हैं, वे फल की कोई आशा नहीं रखते; केवल प्रेम ही के लिए वे हज़ारों दुःखद यातनाएँ, लाखों भयङ्कर कष्ट झेलने को प्रस्तुत रहते हैं। स्वामी जी ने स्वयं अपने जीवन में इस

प्रथम सीढ़ी को किस तरह पार किया था, इसका वर्णन उन्होंने उपरोक्त वक्तृता में इस प्रकार किया है :—

"आप लोगों में से बहुतेरों ने यह सुना होगा कि मैं धर्म-महासभा में शरीक होने के लिए अमेरिका गया था, परन्तु वास्तव में बात यह नहीं है। मेरे मन पर और मेरी आत्मा पर देश-प्रेम का भूत सवार था। मैं बारह वर्ष तक सारे हिन्दुस्तान में घूमता रहा, परन्तु कोई ऐसा उपाय नहीं सूझा जिससे मैं अपने देश-वासियों की सेवा कर सकता। तब मैं अमेरिका गया। जो लोग मुझे उस समय जानते थे, प्रायः उन सबको यह बात मालूम है। यहाँ (हिन्दुस्तान में) तो लोग घुल-घुल कर मर रहे थे, उनकी सेवा करने वाला कोई नहीं था, ऐसी हालत में धर्म-महासभा की परवा ही कौन कर सकता था? यही थी मेरी पहली सीढ़ी!"

हम यहाँ स्वामी जी के जीवन की एक घटना का वर्णन करेंगे, जिससे साफ़-साफ़ मालूम हो जायगा कि स्वामी जी का देश-प्रेम कितना ज्वलन्त था, तथा उस प्रेम की प्रेरणा से आप किस तरह बेचैन बने रहते थे। अमेरिका के एक विख्यात धनी सज्जन स्वामी जी के शिष्य बन गए थे, उन्होंने एक रोज़ स्वामी जी को अपने मकान पर बुला कर बड़े प्रेम से उनको खिलाया-पिलाया और रात को सोने के लिए सजे हुए कमरे में एक बड़ा क़ीमती नरम गद्दादार बिछौना बिछवा दिया। स्वामी जी उस स्प्रिंगदार प्लाँग पर लेटे तो एकाएक अपनी प्यारी जन्मभूमि की याद आई और उसके साथ ही याद आई उसकी वर्तमान दुर्दशा, उसकी भयावह दरिद्रता और उसके शोचनीय अधःपतन की। स्वामी जी उसी वक्त उस नर्म बिछौने से उतर कर ज़मीन पर लोटने लगे और रो-रोकर जगन्माता से प्रार्थना करने लगे—"माँ! यह तेरा कैसा विचार है? यहाँ के आदमी इतने अमीर और हमारे देश में लोगों को भरपेट भोजन भी न मिले?"

इस प्रकार भारतमाता के इस प्यारे लाल ने देश-प्रेम की पहिली सीढ़ी पार की। अब इसके आगे की सीढ़ी के विषय में स्वामी जी कहते हैं—

"You may feel then. But instead of spending your energy in frothy talk, have you found any way out, any practical solution, some help without condemnation, some sweet words to soothe their miseries, to bring them out of this living death?"

अर्थात्—"पहली सीढ़ी पार कर तुम अपने देश-वासियों के दुख से द्रवित, उनके कष्टों से व्याकुल हो सकते हो। परन्तु व्यर्थ की बकवाद में अपने उत्साह को नष्ट करने के बदले, क्या तुमने किसी कार्यकारी उपाय को ढूंढ़ा, किसी अमोघ अस्त्र का आविष्कार किया, किसी

बाई कमलाबाई भगवान जी

आप हाल ही में जूनागढ़ रियासत में स्वास्थ्य-विभाग की निरीक्षिका नियुक्त हुई हैं।

प्रेममयी वाणी को अपने हृदय में स्थान दिया, जिसके द्वारा तुम अपने देशवासियों की वेदना में शान्ति का सञ्चार कर सको, उन्हें जीते जी मृतवत् जीवन व्यतीत करने से बचा सको?"

स्वामी जी को इसका उपाय भी मालूम था, आप कहा करते थे—"Give and take is the plan of nature."

लेन-देन ही प्रकृति का क़ानून है। किसी से कुछ लेना हो तो उसको कुछ देना भी होगा, नहीं तो केवल उसकी कृपा का भिखारी बन कर हम सफल नहीं हो सकते। जीवन-संग्राम में भिखारी जयी नहीं हो सकता। उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। इसी कारण स्वामी जी ने बारह वर्ष तक हिन्दुस्तान में घूम-घूम कर देखा कि केवल धर्म के सिवाय दूसरों को देने लायक़ हमारे पास और कुछ भी नहीं है। यदि पश्चिमी देशों से हम कुछ भौतिक सहायता लेना चाहते हैं तो हमें उनकी आध्यात्मिक सहायता करनी पड़ेगी। इस उपाय को मन में पूर्णतः दृढ़ करके ही स्वामी जी अमेरिका गए थे। और स्वामी जी में इस कार्य को पूरा करने की भी अपूर्व क्षमता थी। हज़ारों वर्ष के प्राचीन सनातन-धर्म को नए साँचे में ढाल कर उसे यूरोप और अमेरिका के लोगों के लिए रुचिकर और उनकी आध्यात्मिक जिज्ञासाओं को शान्त करने योग्य बना देना स्वामी जी की ही प्रतिभा का काम था, और इस काम में स्वामी जी कितने सफल हुए, यह किसी को अविदित नहीं है।

केवल मात्र उपाय ढूँढ़ निकालने में ही स्वदेश-सेवा की इतिश्री नहीं हो जाती। उस उपाय को कार्य-रूप में परिणत करना पड़ता है। उसमें कितनी हिम्मत, आत्मत्याग और सहनशीलता की ज़रूरत पड़ती है, यह भी स्वामी जी के ही शब्दों में सुनिए—

"Yet that is not all. Have you got that will to surmount mountain-high obstructions? If the whole world stands against you sword in hand, would you still dare to do what you think is right? If your wives and children are against you, if all your money goes, your name dies, your wealth vanishes, would you still stick to it? Would you still pursue it and go steadily towards your own goal? Have you got that steadfastness? If you have these three things, each one of you will work miracles, you need not write in the newspaper, you need not go about lecturing, your very face will shine. If you live in a cave your thoughts will permeate even through the rock walls, will go vibrating all over the world for hundreds of years, may be, until they will fasten on to some brain and work out there. Such is the power of thought, of sincerity and of purity of purpose."

अर्थात्—"केवल उपाय ढूँढ़ लेना ही पर्याप्त नहीं है। क्या तुममें वह प्रबल इच्छाशक्ति है, जो विघ्न-बाधाओं के ऊँचे पर्वतों को पार कर सकती है? यदि सारी दुनिया हाथ में तलवार लेकर तुम्हारे विपक्ष में खड़ी हो जावे, तो भी क्या तुम जिस बात को अच्छी समझते हो, उसे करने की हिम्मत करोगे? यदि तुम्हारी स्त्री और बच्चे तुम्हारे विरोधी हो जायँ, यदि तुम्हारी सम्पत्ति नष्ट हो जाय, तुम्हारी कीर्ति डूब जाय और जायदाद न रहे, क्या तब भी तुम अपने आदर्श पर रह सकोगे? क्या तुममें इतना धैर्य और स्थिरता है? यदि तुम इन तीन कामों (देश-सेवा की सच्ची लगन, देशोद्धार के उपायों का ज्ञान, और उस ज्ञान को निर्भयता के साथ काम में लाने का साहस) को पूरा कर सको तो तुममें से हर एक में वह जादू की शक्ति आ जायगी, जिससे असम्भव को सम्भव और कठिन को सहज करके दिखा सको। तब तुम्हें अख़बारों में लेख नहीं लिखने पड़ेंगे, गला फाड़-फाड़ कर व्याख्यान देने की भी ज़रूरत नहीं होगी, तुम्हारे हृदय में छिपी हुई वेदना तुम्हारे चेहरे की ज्योति बन कर चमक उठेगी और जो उसके सामने पड़ेगा उसे भी एक बार चमकाए बग़ैर न छोड़ेगी। यदि तुम किसी गुफा में बैठ रहोगे तो भी तुम्हारी विचार-तरङ्गें पत्थर की दीवारों को फोड़ कर बाहर आवेंगी और चाहे सैकड़ों वर्षों तक वे पृथ्वी पर विचरती फिरें, पर अन्त में किसी उपयुक्त व्यक्ति के मस्तिष्क को पकड़ कर कार्य-रूप में प्रकट हो ही जाएँगी। सङ्कल्प, सचाई और उद्देश्य की पवित्रता में ऐसी ही विचित्र शक्ति है।"

स्वामी जी में ये तीनों गुण प्रचुर मात्रा में मौजूद थे। वे जिस काम को अच्छा समझते थे, उसे पूरा करने में कभी हिम्मत नहीं हारते थे। अमेरिका में स्वामी जी जब सफल हुए तब वहाँ के बड़े-बड़े पुरुष और महिलाएँ आपके शिष्य बन गईं। उनकी सहायता से स्वामी जी ने बेलूड़ मठ बना कर जब "रामकृष्ण मिशन" की स्थापना करने का प्रस्ताव किया तो श्रीरामकृष्ण के प्रायः सभी संन्यासी शिष्य और गृहस्थ शिष्यों में अधिकांश उनके विरोधी बन बैठे। शिष्यों का कहना था कि ध्यान-भजन करके भगवान को प्राप्त करना और महाशान्ति

पाने का प्रयत्न करना ही श्रीरामकृष्ण की शिक्षा है। श्रीरामकृष्ण की बहुमुखी प्रतिभा को उनके शिष्यगण पहिचान नहीं सके थे। उन्हें भय था कि यदि वे स्वामी जी के प्रस्ताव को मान लें और उसके अनुसार कार्य करने लगें तो वे कर्म-रूपी समुद्र में डूब कर माया के बन्धन में फँस जायँगे और मोक्ष-साधन उनसे न हो सकेगा। इसी भय से उन लोगों ने स्वामी जी का विरोध किया।

श्रीमती पी० शिवज्ञानम मुदालियर

आप पुदुकोटा चीफ़ कोर्ट के चीफ़ जज की धर्मपत्नी हैं और हाल ही में वहाँ के नव सङ्गठित महिला-क्लब की वाइस प्रेज़िडेण्ट निर्वाचित हुई हैं।

परन्तु स्वामी जी के स्वार्थ-त्याग, उनकी महाप्राणता, विचार-बुद्धि एवं सर्वोपरि उनके आध्यात्मिक तेज ने सब विघ्न-बाधाओं को उठा दिया। स्वामी जी ने अपने गुरु-भाइयों और शिष्यों को "बेलूडमठ" में इकट्ठा किया और उन्हें समझाया कि शिवज्ञानपूर्वक जीवों की सेवा करने से अपना मोक्ष तो होगा ही, साथ ही जगत का भी कल्याण होगा। इसी सिद्धान्त को लेकर 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना हुई।

स्वामी जी अपनी मातृभूमि को जीवन से भी प्यारी समझते थे। उन्हें इस देश के समस्त नर-नारी वैसे ही प्यारे थे, जैसे अपने शरीर का अस्थि-मांस। यही कारण था कि वे हम लोगों के बीच में सुधारक, नेता या विधा-यक के रूप में नहीं आए, वे आए प्यारे भाई की तरह, स्नेही सहचर और उदार सेवक के रूप में। पञ्जाब में अपने एक भाषण में स्वामी जी ने कहा था—

"Here in this land of ours, Children of the land of five rivers, I stand before you, not as a leader but as one who has come from the East to exchange words of greetings with the brothers of the West—to compare notes. Here I am not to find out differences that exist among us, but to find where we agree."

अर्थात—"पञ्चनद देश की सन्तानो! मैं इस प्राचीन भूमि पर, आप लोगों के सामने, नेता के रूप में नहीं खड़ा हुआ हूँ। मैं पूर्व देश से प्रेम का सन्देश लेकर अपने पश्चिमी भाइयों से मिलने के लिए, उनके साथ भावों का आदान-प्रदान करने के लिए आया हूँ। मैं यहाँ उन मत-मतान्तरों को ढूँढ़ने के लिए नहीं आया हूँ, जो हमारे बीच में मौजूद हैं, बल्कि यह देखने के लिए आया हूँ कि हम लोगों में एकता किस स्थल पर है।"

स्वामी जी कहा करते थे—"The national ideal of India is renunciation and service, intensify her in that channel and the rest will take care of itself." अर्थात—"त्याग और सेवा ही भारत का जातीय आदर्श है। इसी भाव को पुनः जगा देना चाहिए। बाक़ी आप ही आप ठीक हो जायगा।" स्वामी जी सब तरह से हमारे लिए आदर्श रूप होते हुए भी अपने को हमसे बड़ा नहीं समझते थे, इसी में आपके महत्व का प्रकाश विशेष रूप से हुआ है। उनके हृदय में जो देश-प्रेम की आग जल रही थी, उसी का यह परिणाम था। प्रेमी का स्वभाव ही ऐसा है कि वह अपने को प्रेमास्पद से सदा अभिन्न सम-झता है, उसको सुख पहुँचा कर अपने को भाग्यवान मानता है। चाहे जिस तरह विचारें, हम इसी नतीजे पर

रक्तार्श

पुराना गुड़ १ तोला, रीठा के बक्कल १ तोला, रसौत ६ माशे, तीनों औषधियों को ख़ूब खरल करके मटर के समान गोलियाँ बना कर प्रातः और सायङ्काल दूध के साथ प्रयोग करना चाहिए।

* * *

बहुमूत्र

यह रोग कभी-कभी बालकों को भी हो जाता है। ऐसी अवस्था में उन्हें केले की पकी हुई फलियाँ खिलाना चाहिए।

* * *

सरदी लगना

बालकों को सरदी लगने पर मोरपङ्ख का अगला भाग जला कर २ रत्ती राख को शहद के साथ चटाना चाहिए।

—(डॉक्टर) रामशङ्कर मिश्र,

* * *

मुँहासे व झाईं इत्यादि की दवा

प्रति दिन गरम पानी से रात को मुँह धोकर, पाँच मिनट तक मामूली फिटकरी गीली करके मुँह पर मले। मुँहासे व झाईं इत्यादि इसके तीन महीने के सेवन के बाद जाते रहेंगे।

* * *

सिर के बाल बढ़ाने की दवा

सरसों की खल को ख़ूब महीन पीस ले। बाद में बेसन की तरह घोल कर प्रतिदिन उससे सिर धोवे व नारियल का तेल लगावे। इससे सिर के बाल बढ़ेंगे।

—प्रकाशवन्ती

* * *

ख़ूनी बवासीर

नारियल के फल का छिलका अग्नि में भस्म करके छान लेना चाहिए। उसी भस्म के बराबर अकरकरा का चूर्ण छना हुआ मिला देना चाहिए। ६ माशा दवा जल के साथ दिन में तीन बार खाना चाहिए। ख़ूनी बवासीर के लिए लाभकारी है।

मृगी की दवा

प्याज़ का बीज १ तोला, नकछिकनी १ तोला, दोनों को कूट, पीस, छान कर नास बना लेना चाहिए। मृगी के दौरे के समय तथा साधारण दशा में भी रोगी को इस नास के सुँघाने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

—(साहित्याचार्य) गयाप्रसाद शास्त्री

* * *

थनैली या दूध की गाँठ

एक छटाँक के लगभग मूँग की खिचड़ी डेढ़-दो लोटा जल में पकाए। पक जाने पर पानी किसी दूसरे पात्र में निकाल ले और जब वह सहने के योग्य हो जाय, तब उसी गर्म जल से गाँठ को दिन में पाँच-सात बार धोए।

* * *

वमन

स्त्रियों को गर्भावस्था में प्रायः वमन होता है। इसके लिए मोरपङ्ख, आमले का बीज और बेर का बीज, इन तीनों को जला कर राख बना ले और थोड़े-थोड़े शहद के साथ चटाए जाय। याद रखना चाहिए कि यह बीज छोटी गुठलियों के अन्दर से निकलते हैं।

—चम्पावती देवी श्रीवास्तव

* * *

बच्चों के लिए

दस्त साफ़ न होता हो या पेट फूल जाता हो तो तुलसी के पत्तों का रस गुनगुना कर पिलाने से दस्त साफ़ होता है, पेट की गुड़गुड़ाहट, पेट फूलना, सर्दी इत्यादि सब शिकायतें दूर होती हैं।

* * *

पसली का दर्द

तुलसी के पत्तों का रस, अदरक का रस, पोहकर मूल पीस कर कुछ गर्म कर, गाढ़ा-गाढ़ा लेप करने से पसली का दर्द दूर होता है।

—श्रीमती शिवदत्तप्रसाद बाजपेयी
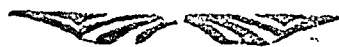
पतिव्रता

[श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]
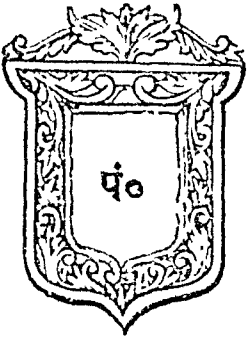
पं० रामाधार वाजपेयी, बी० ए०, एल-एल० बी० एडवोकेट उन लोगों में हैं, जो संसार में जन्म लेने का अर्थ यह समझते हैं कि जिस प्रकार से भी हो अपना स्वार्थ साधन किया जाय। साथ ही दूसरों के हित और लाभ की बातों को वह उतनी ही उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं जितना कि किसी निर्धन मुवक्किल के मुक़द्दमे को। उनका सिद्धान्त है कि अपने छोटे से छोटे लाभ के लिए दूसरों को बड़ी से बड़ी हानि पहुँचा देने में कोई हर्ज नहीं है, जब कि दूसरों के बड़े से बड़े लाभ के लिए स्वयं छोटी से छोटी हानि सहने की कोई आवश्यकता नहीं है। उनका बाहरी जीवन बड़ा ढोंगपूर्ण है, जिसके कारण लोग उन्हें बड़ा सभ्य और सुशिक्षित समझते हैं। परन्तु उनका घरेलू जीवन उतना ही निकृष्ट तथा नीचतापूर्ण है। घर के बाहर वह बीसवीं सदी छोड़ इक्कीसवीं सदी के आदमी हैं और घर के भीतर सत्रहवीं सदी के प्राणी। उनके परिवार में केवल चार प्राणी हैं, एक वह स्वयम्, दूसरी उनकी पत्नी, माता तथा पिता।

शाम के पाँच बज चुके थे। वाजपेयी जी अपने कमरे में बैठे दो मित्रों के साथ वार्त्तालाप कर रहे थे। वह कह रहे थे—हमारे हिन्दू-समाज में अभी बहुत सी त्रुटियाँ हैं, जब तक वे त्रुटियाँ दूर नहीं होतीं तब तक हमारा समाज आदर्श समाज नहीं हो सकता। एक मित्र महोदय बोले—परन्तु प्रश्न तो यह है कि वे त्रुटियाँ दूर कैसे हों।

वाजपेयी जी मुँह बना कर बोले—लोगों के हृदय में जब तक साहस उत्पन्न न होगा तब तक वे त्रुटियाँ दूर नहीं हो सकतीं।

दूसरे मित्र महाशय बोले—ख़ैर, साहस होना तो आवश्यक है ही, परन्तु मेरा अपना विचार यह है कि जब तक पुराने आचार-विचार के लोग जीवित हैं तब तक त्रुटियाँ दूर होना कठिन है। मैं तो अपनी कहता हूँ कि अनेक बातों को मैं अनावश्यक और व्यर्थ समझता हूँ, परन्तु अपने माता-पिता के कारण मुझे उन्हीं बातों का समर्थन करना पड़ता है।

वकील साहब बोले—इसका कारण वही है, जो मैं अभी कह चुका—आपके हृदय में साहस की कमी है।

"यह मैं नहीं मान सकता; परन्तु हाँ, मैं ऐसा साहस करना अच्छा नहीं समझता, जिससे कि मेरे माता-पिता का अन्तिम जीवन दुःखपूर्ण हो जाय।"

"यह अच्छी रही! आप अपने माता-पिता को प्रसन्न रखने के लिए उन बातों को करना अच्छा समझते हैं, जिन बातों के करने के लिए आपका अन्तःकरण आज्ञा नहीं देता!" वकील साहब ने घृणायुक्त मुस्कान के साथ कहा।

"मुझी पर क्या है, अनेकों आदमी ऐसा करते हैं।"

"करते होंगे, मैं तो ऐसा कभी न करूँ। क्यों भई राधाचरण, तुम्हारा क्या विचार है?"

राधाचरण बोले—मैं तो समझता हूँ कि अधिकांश ऐसा ही होता है, जैसा कि घनश्याम करते हैं। रही आपकी बात, सो आपका तो मामला ही दूसरा है, आप सब कुछ कर सकते हैं।

"हाँ, मैं तो वही करता हूँ जिसके लिए मेरा अन्तःकरण गवाही देता है। चाहे उससे माता-पिता को सुख हो या दुख। मैं तो यह जानता हूँ कि मनुष्य का सब से बड़ा गुण यह है कि वह अपने विचारों और अपने कामों में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो।"

राधाचरण बोले—हाँ, यह ठीक है, परन्तु आवश्यकता से अधिक स्वतन्त्रता भी अच्छी नहीं समझी जा सकती। औसत दर्जे की सब बातें अच्छी होती हैं।

वकील साहब हँस कर बोले—अजी आप भी क्या बातें करते हैं! औसत दर्जा है क्या चीज़? इन्हीं विचारों से तो हमारा समाज उन्नति नहीं कर पाता। लोग अपनी कमज़ोरियों और साहसहीनता को औसत दर्जे की ओट में छिपाते हैं। मनुष्य वही है कि जो करे वह खुल कर करे।

"तो क्या आपका विचार है कि यदि कोई मनुष्य व्यभिचार करता है तो खुल कर व्यभिचार करे, झूठ बोलता है तो खुल कर झूठ बोले, चोरी करता है तो खुल कर चोरी करे।"

"हाँ और क्या? जब करता है तो खुल कर करे।"

"तो जनाब क्षमा कीजिएगा, ऐसे आदमी आपको संसार में गिनती के ही मिलेंगे। उनका कार्यक्षेत्र बड़ा सङ्कुचित होगा और साथ ही उनकी स्वतन्त्रता भी बहुत अल्प काल के लिए होगी। खुल कर चोरी करने वाला अधिकतर जेल के अन्दर ही रहेगा, खुल कर व्यभिचार करने वाला बहुत शीघ्र तिरस्कृत हो जायगा।"

"यह अच्छा है, परन्तु ढोंग अच्छा नहीं। मनुष्य की सब से बड़ी नीचता और सब से बड़ा दुर्गुण ढोंग ही है।"

"हाँ, ढोंग तो बुरा है ही, इसे कौन न मानेगा? परन्तु साथ ही सभ्यता और शिष्टता को ताक पर रख कर खुल खेलना भी बुरा है।"—राधाचरण ने कहा।

"परन्तु ये दोनों बातें साथ-साथ नहीं हो सकतीं।"

"हो क्यों नहीं सकतीं? ढोंग वह कहलाता है कि जिसे आप स्वयम् करते हुए बाहर से उसकी तीव्र निन्दा करें। यदि आप झूठ बोलते हुए ऊपर से पूरे हरिश्चन्द्र का अवतार बनें तो यह ढोंग है; परन्तु यदि आप झूठ बोलना बुरा मानते हुए कभी-कभी आवश्यकता-वश झूठ बोलें तो यह ढोंग नहीं है।"

"ख़ैर, यह अपना-अपना दृष्टिकोण है। मैं तो जो बात बुरी समझता हूँ, वह प्रत्येक दशा और प्रत्येक अंश में बुरी समझता हूँ और जिसे अच्छी समझता हूँ उसे हर हालत में अच्छी समझता हूँ।"

घनश्याम मुस्कुरा कर बोले—अच्छा तो आप झूठ बोलना बुरा समझते हैं या नहीं?

"हाँ, अवश्य बुरा समझता हूँ!"—वकील साहब ने उत्तर दिया।

"तो आप अदालत में तो झूठ न बोलते होंगे और गवाहों तथा मुवक्किलों को झूठ न बोलने देते होंगे।"

वकील साहब झेंप कर हँसते हुए बोले—भई वह बात दूसरी है। वहाँ तो बिना झूठ के काम नहीं चलता। हाँ, मैं अपने पेशे के बाहर झूठ बहुत ही कम बोलता हूँ।

"परन्तु बोलते अवश्य हैं।"

"वह नहीं के बराबर है।"

"तब तो आपको उन लोगों के साथ भी, जो कभी-कभी आवश्यकतावश झूठ बोलते हैं, कुछ रिआयत करनी चाहिए।"

"सो तो करनी ही पड़ती है; वैसे मैंने आप से अपने स्वभाव की बात बताई।"

"हाँ, तो यह कौन कहता है कि बुरी बात को बुरा न समझा जाय? परन्तु मनुष्य को यह सोचना चाहिए कि प्रत्येक मनुष्य में कोई न कोई कमज़ोरी होती ही है। अतएव उस कमज़ोरी के लिए उसे घृणित समझना, उसका तिरस्कार करना—यह बुरी बात है।"—घनश्याम ने कहा।

राधाचरण बोल उठे—अच्छा अब कहीं घूमने चलोगे या यहीं बैठे रहोगे?

"हाँ-हाँ चलेंगे क्यों नहीं?"—वकील साहब बोले।

"तो चलो न; फिर क्या रात में चलोगे?"

"चलता हूँ"—कह कर वकील साहब उठ खड़े हुए और घर के भीतर चले गए।

२

वाजपेयी जी के यहाँ आज स्त्रियों का आवागमन लगा हुआ है। कारण आज वकील साहब की वर्ष-गाँठ है। वकील साहब के पिता वकील साहब की वर्ष-गाँठ बड़े शौक़ से मनाया करते थे। वकील साहब भी इस उत्सव में पूरी दिलचस्पी लेते थे, क्योंकि वर्ष-गाँठ मनाने का रिवाज पाश्चात्य सभ्यता में भी है। आज वकील साहब कचहरी भी नहीं गए—वर्ष-गाँठ जो है। आज से उन्होंने सत्ताइसवें वर्ष में पदार्पण किया है।

मकान के ऊपरी दर्जे में स्त्रियों का जमाव था। गाना-बजाना हो रहा था। वकील साहब अपने कमरे में बैठे समाचारपत्र पढ़ रहे थे। हठात् उन्होंने समाचारपत्र अलग रख दिया और एक अँगड़ाई ली। तत्पश्चात् बाहरी ज़ीने से अपने दूसरी मञ्ज़िल के कमरे में पहुँचे। कमरा चारों ओर से बन्द। वाजपेयी जी धीरे से द्वार खोल कर कमरे के अन्दर घुस गए।

कमरे में किवाड़े हिन्दुस्तानी ढङ्ग के लगे हुए थे। अतएव किवाड़ों के तख़्तों के मध्य थोड़ा स्थान ऐसा

था जिसके द्वारा कमरे के भीतर से, द्वार बन्द रहने पर भी, बाहर आँगन का दृश्य देखा जा सकता था। वकील साहब किवाड़े से सट कर खड़े हो गए और बाहर का दृश्य देखने लगे। थोड़ी देर तक देखते रहे, तत्पश्चात अलग हट आए और कमरे में टहलने लगे। थोड़ी देर तक टहलते रहे, तत्पश्चात फिर देखने लगे। इसी प्रकार आध घण्टे तक वह कभी टहलते और कभी देखते रहे। इसके उपरान्त नीचे वाले कमरे में चले आए और पत्र उठा कर पुनः पढ़ने लगे।

* * *

वाजपेयी जी ने रात में अपनी पत्नी से पूछा—आज कितनी स्त्रियाँ जमा हुई थीं?

"होंगी कोई पचीस-तीस।"

"वह एक हरी बनारसी साड़ी पहने कौन थी?"

"तुमने कहाँ देखा?"—पत्नी ने किञ्चित मुस्करा कर पूछा?

वाजपेयी जी ने लापरवाही के साथ उत्तर दिया—ऐसे ही अन्दर आते हुए दृष्टि पड़ गई थी

"वह राधाचरण की स्त्री थी।"

"अच्छा!"

इसके पश्चात् वाजपेयी जी थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करके बोले—तुम जानती हो कि पतिव्रता स्त्री का क्या धर्म है?

"पति को प्रसन्न रखना, पति की सेवा करना, यह पतिव्रता स्त्री का धर्म है।"—पत्नी ने उत्तर दिया।

"पति की आज्ञा मानना भी तो है।"

पत्नी ने हँस कर कहा—प्रसन्न रखने में सब आ गया। जब आज्ञा मानी जायगी तभी पति प्रसन्न रहेगा।

"अच्छा अब यह बताओ तुम पतिव्रता हो कि नहीं।"

"कौन मैं?"—पत्नी ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ तुम!"

"क्यों, ऐसा प्रश्न क्यों करते हो?"

"इच्छा हुई, इसलिए पूछता हूँ।"

"पतिव्रताओं के तो मैं पैर की धूल भी नहीं हूँ, परन्तु मैं अपनी ओर से पतिव्रता रहने का पूरा प्रयत्न करती रहती हूँ।"

"तो तुम हमारी प्रत्येक आज्ञा मानने को तैयार हो?"

"हाँ, मेरी शक्ति के अन्दर जो बात है वह तो अवश्य मानूँगी।"

"जो मैं कहूँ वह कर सकती हो?"

"हाँ, यदि तुम्हारी प्रसन्नता किसी बात में है तो उसे करना मेरा धर्म है।"

"अच्छा तो मैं एक बात कहता हूँ। उसे पूरी कर दो तो मैं समझूँ तुम पतिव्रता हो।"

"कहो, मेरे वश की बात होगी तो अवश्य करूँगी।"

"अच्छा कान इधर लाओ।"

"कहो न, यहाँ तीसरा है कौन?"

"नहीं, कभी-कभी दीवार के भी कान हो जाते हैं, इसलिए ऐसी बातें कान ही में कही जाती हैं।"

"ऐसी कौन सी बात है, अच्छा कहो।"

इतना कह कर पत्नी ने अपना कान पति के मुख में लगाया।

वाजपेयी जी ने कुछ क्षण तक कुछ कहा, तत्पश्चात् पत्नी के कान से मुख हटा कर उसकी ओर झेंपी हुई मुस्कराहट के साथ देखते हुए बोले—"बोलो, कर सकती हो?"

वाजपेयी जी की बात सुन कर पत्नी का मुख पीला पड़ गया। उसके सहास्य सुन्दर मुख पर रोष के चिन्ह प्रस्फुटित हो उठे। उसके मुख से बात नहीं निकली—स्थिर दृष्टि से पति की ओर देखती रही। वाजपेयी जी उसी प्रकार मुस्कराते हुए बोले—"कहो, सन्नाटे में क्यों आ गईं? वह पातिव्रत कहाँ चला गया?"

इस बार पत्नी ने रूखेपन के साथ कहा—ठठोली करते हो या परीक्षा लेते हो?

"ठठोली तो मैं करता नहीं; हाँ और जो कुछ चाहो समझ लो।"

"भला तुम्हें ऐसी बात कहनी चाहिए? राधाचरण तुम्हारे मित्र हैं—यह भी याद है कि नहीं?"

"ख़ैर, उसका पाप-पुण्य मेरे ऊपर है, तुम उसकी चिन्ता मत करो। यदि तुम पतिव्रता हो तो मेरी आज्ञा का पालन करो, अन्यथा अस्वीकार कर दो।"

"तुम्हें ऐसी बात कहते—और वह भी मुझसे कहते—लज्जा नहीं लगती?"

"तुमसे कहने में लज्जा लगेगी तो बस फिर हो

चुका ! तुम तो अर्द्धाङ्गिनी हो न—तुमसे छिपाना तो पाप में दाख़िल है।"

"अच्छा बहुत बातें मत बनाओ। मैं ऐसी बातें नहीं सुनना चाहती।"

"परन्तु अब तो सुन ही चुकी हो, अब तो उसका उत्तर देना ही पड़ेगा।" वाजपेयी जी मुँह बना कर बोले।

"और जो न दूँ तो ?"

"उत्तर तो देना ही पड़ेगा, चाहे जो हो। मैं यह नहीं कहता कि तुम मेरी बात स्वीकार ही कर लो। नहीं, तुम्हें अस्वीकार कर देने का पूरा अधिकार प्राप्त है। मुझे तो केवल यह देखना है कि तुम्हारे पातिव्रत की गहराई कितनी है !"

"परन्तु तुम्हारा भी तो कुछ धर्म है। तुम मेरे सामने ऐसी बात कहते हो और मुझी से वह बात कराना चाहते हो—इससे तुम्हारे धर्म पर चोट पहुँचती है कि नहीं ?"

"वह तो बाद की बात है। तुम्हारा उत्तर पाने के पश्चात् मैं सोचूँगा कि मेरा क्या कर्त्तव्य है। पहले तो तुम्हें उत्तर देना चाहिए, केवल हाँ और नहीं की तो बात ही है। या तो हाँ कह दो या नहीं।"

"क्या यही हठ है ?"

"हाँ, यही हठ है।"

पत्नी के नेत्रों में आँसू छलछला आए। उसने कुछ क्षण तक चुप रहने के पश्चात् कहा—तो मुझे दो-एक दिन का समय दो। मुझे विचार कर लेने दो। सम्भव है, इस समय जल्दी में ऐसा उत्तर निकल जाय जो मेरे धर्म्म के विरुद्ध हो।

वाजपेयी जी बोल उठे—हाँ-हाँ, ख़ूब विचार कर लो, अच्छी तरह सोच लो।

३

वाजपेयी जी की पत्नी सुशीला इस समय बड़ी विकट परिस्थिति में पड़ गई। जिस समय वह पति के प्रस्ताव पर विचार करती थी, उसका हृदय अपमान तथा घृणा से भर जाता था। "क्या उसके पति-देवता वास्तव में ऐसी दुर्भावना रखते हैं अथवा वह केवल उसकी परीक्षा ले रहे हैं ?"—यह प्रश्न बारम्बार उसके हृदय में उठता था। परन्तु हर बार उसके अन्तःकरण से यह उत्तर मिलता था—"परीक्षा वरीक्षा सब ढोंग है। पति महोदय का हृदय पाप-वासना से परिपूर्ण है। ओफ़ ! इस नीचता की भी कोई हद है ! अपने प्रिय मित्र की पत्नी के प्रति ऐसी पाप-वासना ! परन्तु इस समय मेरा क्या कर्त्तव्य है ? इसमें सन्देह नहीं कि मैं उन्हें प्रसन्न रखना चाहती हूँ, उनके लिए अपने प्राण तक दे सकती हूँ। परन्तु यह नीच धर्म तो मुझसे कभी न होगा। अपनी सखी के साथ विश्वासघात करूँ ! जिस कार्य की कल्पना मात्र से रोमाञ्च हो आता है, उसे मैं स्वयं करूँ! परन्तु इस कार्य को न करने से कहीं मेरी पतिभक्ति पर तो व्याघात न लगेगा ?" सुशीला दो दिन तक इसी उधेड़-बुन में रही। अन्त में उसने निश्चय किया कि वह यह कार्य कभी न करेगी। पतिव्रता स्त्री का धर्म्म है कि पति को पाप-मार्ग पर जाने से रोके, पाप के आक्रमण से उसकी रक्षा करे। अतएव वह भी ऐसा ही करेगी। इसमें सन्देह नहीं कि उसके ऐसा करने से पति महोदय बहुत चिढ़ेंगे, बहुत क्रुद्ध होंगे, परन्तु क्या किया जाय ? रोगी को रोग-मुक्त करने के लिए कड़ुवी दवा पिलानी ही पड़ती है। यदि रोगी को उसकी इच्छा के अनुसार पदार्थ दिए जायँ, तो वह निश्चय ही यमपुर सिधार जाय।

इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके तीसरे दिन सुशीला ने पति को अपना उत्तर दिया। उसने कहा—"मैं यह पापकर्म कभी न करूँगी, चाहे मेरे प्राण भले ही चले जायँ।"

सुशीला का यह उत्तर सुन कर वकील साहब कुछ क्षणों के लिए अप्रतिभ होगए—उसी प्रकार अप्रतिभ हो गए, जिस प्रकार पापी अपने पापकर्म में असफल होने पर अप्रतिभ हो जाता है। परन्तु फिर शीघ्र ही सँभल कर निर्लज्जता के साथ मुस्कराते हुए बोले—"अच्छा तो इसके अर्थ यह हुए कि तुम मेरी आज्ञा नहीं मानतीं, मुझे प्रसन्न नहीं करना चाहतीं। तुम्हारा वह पातिव्रत चला गया ?"

सुशीला बोली—नहीं, इसके अर्थ यह नहीं हैं। इसके अर्थ यह हैं कि मैं तुम्हें पाप-कर्म से बचाती हूँ, पाप से तुम्हारी रक्षा करती हूँ।

वकील साहब अट्टहास करके बोले—तुम बेचारी मेरी रक्षा क्या करोगी ! मैं जो चाहूँ वह कर सकता हूँ; मुझे रोक कौन सकता है ?

"जो बात मेरे वश में है, मेरी शक्ति के अन्दर है,

उससे मैं तुम्हें अवश्य रोकूँगी ; जो बात मेरी शक्ति के बाहर है, उसमें मैं मजबूर हूँ।"

"बस रहने दो, व्यर्थ बातें मत बनाओ। सीधी यह बात क्यों नहीं कहतीं कि यह बात तुम्हारी इच्छा और तुम्हारे स्त्री-स्वभाव के प्रतिकूल है।"

"यदि ऐसा भी है तो कौन सी अनुचित बात है? ऐसा कर्म कोई स्त्री न करेगी।"

"बस रहने दो। जो स्त्रियाँ अपने पति से सच्चा प्रेम करती हैं, जिन्हें पति को प्रसन्न रखने की लगन होती है, वे करती ही हैं। मेरे एक मित्र हैं, उनकी पत्नी ने यही कार्य किया था, जिसके लिए तुम इन्कार कर रही हो। वह निश्चय पतिव्रता है।"

"उसे तुम पतिव्रता कहते हो! वह कुलटा है। वह स्वयम् दुश्चरित्र होगी, तभी उसने ऐसा करना स्वीकार किया। सच्चरित्र और पतिव्रता स्त्री ऐसा कभी न करेगी।"

"तुम उसे कुलटा समझा करो, उसका पति तो उसे पतिव्रता समझता है। और पत्नी के लिए पति की राय मुख्य है, संसार चाहे जो कहे।"

"वह पति, जो अपनी ऐसी पत्नी को सच्चरित्र तथा पतिव्रता समझता है, महामूर्ख तथा बुद्धिहीन है। उसे संसार का, मनुष्य-चरित्र का ज्ञान बिल्कुल नहीं है।"—सुशीला ने घृणा के साथ कहा।

"क्यों नहीं, संसार के ज्ञान का ठेका तो तुमने ले रक्खा है!"

"यदि मैंने नहीं ले रक्खा तो उन लोगों ने भी नहीं ले रक्खा है, जो वेश्यापन को पातिव्रत समझते हैं।"

"तुम्हें अपने शास्त्रों का ज्ञान होता तो तुम ऐसी बात कदापि न कहतीं। शास्त्रों में कहा गया है कि पतिव्रता वही है जो अपने पति की भली-बुरी आज्ञाएँ माने, जिस प्रकार पति प्रसन्न हो, उस प्रकार उसे प्रसन्न करे।"

"मैंने शास्त्र नहीं पढ़े हैं; परन्तु मेरा विश्वास है कि उनमें ऐसा कभी न कहा गया होगा।"

"यदि कहा गया हो तो? कुछ शर्त बदती हो?"

"यह कहा गया है कि उचित-अनुचित सब प्रकार की आज्ञाएँ माने?"

"हाँ, यह कहा गया है।"

"तो ऐसे शास्त्रों को मैं ठोकर मारती हूँ।" अब वकील साहब को क्रोध आ गया। वह उछल कर खड़े हो गए और बोले—हैं, तुम्हारा इतना साहस! तुम आज शास्त्रों को ठोकर मार सकती हो तो कल मुझे भी ठोकर मार सकती हो। तुम्हारा कोई विश्वास नहीं।

सुशीला के नेत्रों में आँसू भर आए। उसने क्रन्दन-स्वर में कहा—तो तुम जो मेरी ही सहायता से मेरी छाती पर मूँग दलना चाहते हो—अपने एक घनिष्ट मित्र की पत्नी का सतीत्व नष्ट करना चाहते हो—तुम्हारा ही क्या विश्वास है?

"हरामज़ादी, बके ही चली जाती है।"—इतना कह कर वकील साहब ने कमरे के एक कोने में रक्खा हुआ बेत उठा लिया और अबला सुशीला को पीटना आरम्भ किया। जब वह इस प्रकार सुशीला पर अपने बल तथा साहस को प्रकट करके थक गए तो बेत फेंक कर बोले—जा हरामज़ादी, आज से मैं तुझसे सम्बन्ध-विच्छेद करता हूँ। आज से न तू मेरी पत्नी और न मैं तेरा पति। जहाँ तेरी इच्छा हो चली जा।

सुशीला रोती हुई कमरे के बाहर चली गई। वकील साहब बड़े गर्व के साथ, मानो कोई गढ़ जीत चुके हों, पलँग पर बैठ गए। उनको बैठे हुए कुछ ही क्षण हुए थे कि उनकी माता दौड़ी हुई आई और बोली—अरे बेटा, बहू को क्यों मारा? देखो तो बेचारी की पीठ लहू-लुहान हो गई। ऐसा उसने कौन सा अपराध किया था?

"तुम्हें उसका अपराध जानने की कोई आवश्यकता नहीं। आज से मैंने उसे त्याग दिया। उसे उसके मायके भेज दो।"

"तू त्याग दे, हम थोड़ा ही त्याग सकते हैं। एक तो बेचारी को इस बेदर्दी से पीटा, ऊपर से कहता है त्याग दिया; हत्यारा कहीं का!"

"तू हरामज़ादी उसकी हिमायत करेगी तो तेरी भी वही गत करूँगा, यह याद रखना।"

माता भय के मारे बड़बड़ाती हुई चली गई।

थोड़ी देर पश्चात् पिता आए। उन्होंने कहा—क्यों भई रामाधार, यह क्या बात है?

"बात चाहे जो हो, आप इस झगड़े में मत पड़िए, अपना काम देखिए।"

"क्यों न पड़ूँ, मेरा घर जो है? तू होता कौन है?"

"तुम्हारा घर है तो मैं इस घर में आग लगा दूँगा

और तुम्हें इसी में भस्म कर दूँगा, यह याद रखना। चले हैं बड़े घर वाले बन कर !"

"नालायक़, कमीने, कपूत, तू पैदा होते ही मर जाता तो अच्छा था।"

"बस मुँह सँभाल कर बात करो, वरना ज़बान पकड़ कर खींच लूँगा।"—वृद्ध पिता भी भयभीत होकर गालियाँ देते चले गए और सुशिक्षित, सभ्य-शिरोमणि तथा स्वतन्त्रता के पुजारी वकील साहब दिग्विजयी राजा की भाँति अपने पलँग-रूपी सिंहासन के एक मात्र अधिपति होकर बैठे रह गए

४

सुशीला को मायके गए हुए एक वर्ष व्यतीत हो गया। इस बीच में न वकील साहब ने ही उसे बुलाया और न सुशीला के मायके वालों ने ही उसे भेजा। इधर वकील साहब को रुपया कमा कर लखपती बनने की धुन सवार हुई ; क्योंकि उनका सिद्धान्त था कि मनुष्य का मनुष्यत्व, प्रतिष्ठा, बल, पराक्रम, जो कुछ है वह रुपया है। रुपये वाला चाहे जो करे, उसका कोई बाल बाँका नहीं कर सकता। रुपए वाले के सामने सब झुकते हैं, सब उसका आदर करते हैं, अतएव वकील साहब जिस प्रकार से भी हो, रुपया कमाने के फेर में थे। ऊपर से यद्यपि वकील साहब बड़े सभ्य, सुशिक्षित, आत्म-गौरवी, सच्चे, ईमानदार तथा शान वाले बनते थे, परन्तु तबीयत के पूरे उठाईगीर, धूर्त तथा नीच थे। अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए नीच से नीच कर्म करने में भी उन्हें सङ्कोच न था। मित्रों की चीज़ें माँग कर हड़प जाना, दूकानदारों से सौदा ख़रीद कर उन्हें महीनों टालना और यह आशा करना कि वह दाम माँगना भूल जाय तो अच्छा है, इत्यादि कर्म उनके बाएँ हाथ के खेल थे। बात पड़ने पर आप अपनी इस आदत को लापरवाही तथा भुलक्कड़-पन कह कर टाल दिया करते थे। उनके पिता गवर्नमेण्ट पेन्शनर थे, इसलिए उनका यथेष्ट मान तथा प्रतिष्ठा थी। इसी के कारण एक बड़ा मुक़द्दमा उनके हाथ में आ गया। मुक़द्दमे के दौरान में आपको एक युक्ति सूझी। आपने अपने मुवक्किल से एक दिन कहा—सुनते हो भई, मैं मुक़द्दमा जीतने की पूरी चेष्टा कर रहा हूँ, परन्तु फिर भी हाकिम की इच्छा पर सारा दारोमदार है। यदि कुछ थोड़ा और ख़र्च करो तो यह खटका भी दूर हो जाय।

मुवक्किल ने कहा—जो आप बताइए। हमें जितवा दीजिए, ख़र्च करने को हम तैयार हैं।

"बात यह है कि यह हाकिम, जिसके इजलास में तुम्हारा मुक़द्दमा है, बड़ा रिश्वतख़ोर है। यदि तुम कुछ रिश्वत दे सको तो मामला पक्का हो जाय।"

मुवक्किल ने कुछ क्षणों तक विचार करके कहा—यदि आप उचित समझें तो हम इसके लिए भी तैयार हैं ; परन्तु उनसे ऐसा प्रस्ताव करने का साहस कौन करेगा ?

"वह सब हम कर लेंगे, तुम राज़ी भर हो जाओ।"

"हम तो जैसा आप कहें, करने को तैयार हैं।"

"अच्छी बात है। तो आज मैं उनसे मिलूँगा और उनकी तबीयत टटोलूँगा।"

"तो हमें कब बताइएगा ?"

"कल सब मालूम हो जायगा।"

"अच्छी बात है।"

इस वार्तालाप के दूसरे दिन आपने मुवक्किल से कहा—मैंने सब ठीक कर लिया है। वह दो हज़ार रुपए माँगते हैं। यदि तुम इतना दे सको तो मामला पक्का हो जायगा—ऐसा पक्का कि प्रिवी काउन्सिल तक हिलाए न हिलेगा। फ़ैसला लिखने में यह हाकिम एक ही है। इसका फ़ैसला आज तक हाईकोर्ट से रद्द हुआ ही नहीं। मुवक्किल को तो मुक़द्दमा जीतने की ग़रज़ थी, उसने तुरन्त कहा—यदि यह बात है तो मैं दो हज़ार देने को तैयार हूँ। जब और जहाँ कहिए लेकर हाज़िर हो जाऊँ।

"बस मुझे ही दे जाओ, मैं चुपके से दे आऊँगा। आप जाने रिश्वत का मामला है। बड़े हाकिम जाने-बूझे आदमियों के हाथ से ही रिश्वत लेते हैं। यदि तुम्हें मुझ पर विश्वास हो तो मुझे दे दो, मैं दे आऊँगा।"

मुवक्किल दाँत निकाल कर बोला—आप भी क्या बातें करते हैं ? आप पर विश्वास न होने के क्या अर्थ ? आप पर तो सारा दारोमदार ही है।

"तो बस फिर कल दो हज़ार के नोट ले आओ—काम फ़तह है। मान लो यहाँ से हार गए तो हाईकोर्ट जाने में भी तुम्हारे दो हज़ार ख़र्च हो जायँगे, फिर यह नहीं कहा जा सकता कि हाईकोर्ट से तुम जीत ही जाओगे, क्योंकि इस हाकिम के फ़ैसले अधिकतर हाई-

कोर्ट में भी बहाल रहते हैं। इसलिए कचा काम क्यों रक्खो, क्यों ठीक है न ?"

"बिलकुल ठीक है। कल सवेरे आपको दो हज़ार मिल जायँगे।"

दूसरे दिन सवेरे वकील साहब को दो हज़ार प्राप्त हो गए। वकील साहब ने मूँछों पर ताव देकर वे रुपए सीधे बैङ्क भेज कर अपने खाते में जमा करा दिए। उन्हें अपनी बुद्धि पर इतना विश्वास था कि वह मुक़द्दमे को जीता हुआ ही समझे बैठे थे; इसीलिए उन्होंने सोचा कि इस प्रकार दो हज़ार और ऐंठ लो।

निश्चित समय पर मुक़द्दमे का फ़ैसला सुनाया गया। फ़ैसला बाजपेयी जी के मुवक्किल के विरुद्ध था। फ़ैसला सुन कर मुवक्किल के तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इधर वकील साहब का चेहरा भी फ़क़ होगया।

अदालत के बाहर आकर मुवक्किल ने कहा—यह क्या बात है ? हाकिम रुपए भी खा गया और मुक़द्दमा भी हरा दिया ? ऐसा अन्धेर ! यह क्या गड़बड़ होगया ?

वकील साहब बोले—कुछ समझ में नहीं आता। अच्छा, आज शाम को मैं उनसे मिलूँगा। कल जैसा होगा, बताऊँगा। तुम कल घर पर हमसे मिलना।

यह कह कर वकील साहब ने उस समय अपना पिण्ड छुड़ाया।

घर आकर रात में आपने अपने दिमाग़ की मैशीन को पूरी चाल से चला कर यह निश्चित किया कि मुवक्किल के पास रुपयों की कोई रसीद तो है नहीं, वह हमारा कर ही क्या सकता है। साफ़ मुकर जाओ।

दूसरे दिन सवेरे मुवक्किल के आने पर आप उससे बड़ी लापरवाही से बोले—तुम अपील करो, निश्चय जीतोगे।

मुवक्किल बोला—अरे साहब, पहले उन दो हज़ार रुपयों का हिसाब बताइए, पीछे अपील की बातचीत कीजिए।

आप बोले—कैसे रुपए ? रुपए कैसे ?

वकील साहब का यह उत्तर सुन कर कुछ क्षणों के लिए मुवक्किल अवाक् होगया। परन्तु फिर उत्तेजित होकर बोला—अब ऐसी बातें कीजिएगा ? ख़ैरियत इसी में है कि वह रुपए चुपचाप लौटा दीजिए, नहीं तो अच्छा न होगा। मुक़द्दमा हार गया तो कोई परवा नहीं; परन्तु रुपए तो वापस मिलने चाहिए।

वकील साहब बोले—सुनो जी, सच्ची बात यह है कि रुपए हाकिम खा गया। अब वह बेईमानी कर गया तो मैं क्या करूँ ? मैं अपने पास से तो रुपए देने से रहा।

"ज़िम्मेदार तो आप ही हैं। हम क्या जानें, आपने रुपए दिए या नहीं दिए ?"

"हम कुछ नहीं जानते"—वकील साहब रुखाई से बोले।

"तो आप रुपए वापस न करेंगे ?"

"कैसे रुपए, कुछ घास खा गए हो ?"

"अच्छी बात है।"—कह कर मुवक्किल चला गया।

वकील साहब यह सोच कर कि कर ही क्या सकता है, निश्चिन्त हो गए।

परन्तु मुवक्किल भी बड़ा चलता हुआ था। उसने भी पहले ही सब प्रबन्ध कर रक्खा था। नोटों के नम्बर टीप रक्खे थे। अपनी बही में वकील साहब के नाम दो हज़ार लिख रक्खे थे और ब्योरे में लिख रक्खा था—हाकिम को डाली देने के लिए। जब रुपए देने आया था तब दो आदमियों को साथ लाया था। इन्हीं प्रमाणों के बल पर उसने वकील साहब पर फ़ौजदारी में दावा कर दिया। वकील साहब पर मुक़द्दमा क़ायम हो गया। अब वकील साहब की आँखें खुलीं और दौड़-धूप होने लगी।

निश्चित समय पर मुक़द्दमा पेश हुआ। मुवक्किल की ओर से उक्त प्रमाण पेश किए गए और बैङ्क से वकील साहब का खाता तलब कराया गया। खाते में उसी तारीख़ में वकील साहब के दो हज़ार रुपए जमा थे। परिणाम यह हुआ कि वकील साहब को दो वर्ष की सख़्त क़ैद और एक हज़ार रुपया जुर्माना हुआ।

ज़मानत देकर वकील साहब छुड़ा लिए गए और अपील की गई।

इसकी सूचना वकील साहब की ससुराल वालों को मिली। सुशीला ने जब पति की इस मुसीबत का हाल सुना तो वह बहुत व्याकुल हो गई। वह तुरन्त हठ करके अपने भाई के साथ ससुराल आ गई।

वकील साहब सुशीला को देख कर कुछ नहीं बोले। उन्होंने उससे अलग रहने की चेष्टा की, परन्तु सुशीला ने स्वयम् ही उन्हें छेड़ कर उनसे सब वृत्तान्त पूछा।

वकील साहब तो इस समय दुखी और घबराए हुए थे, अतएव सुशीला के वार्तालाप में प्रेम तथा सहानुभूति पाकर वह अपना पुराना रोष भूल गए। उन्होंने आँखों में आँसू भर कर सब हाल कह सुनाया। सुशीला ने सब सुन कर कहा—ख़ैर, जो हुआ सो हुआ, तुम इतना घबराते क्यों हो? भगवान चाहेगा तो तुम जेल से बच जाओगे। हाँ, जुर्माना-उर्माना चाहे हो जाय। वकील साहब उत्सुकतापूर्वक बोले—जेल से बच जाऊँ, बस मैं यही चाहता हूँ, जुर्माना हो जाय उसकी परवा नहीं।

"मेरा मन बोलता है कि तुम जेल से बच जाओगे।"

"देखो, आशा तो बहुत कम है।"

सुशीला एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर बोली—"यदि भगवान की मुझ पर कुछ भी दया होगी, यदि मुझमें पातिव्रत का कुछ भी अंश होगा तो तुम निश्चय जेल से बच जाओगे।"

"यदि मुझमें पातिव्रत का कुछ भी अंश होगा"—इस वाक्य को सुन कर वकील साहब चौंक पड़े। उन्होंने सुशीला को ग़ौर से देखा, परन्तु वह कुछ बोले नहीं, चुपचाप सिर झुका लिया।

निश्चित समय पर अपील की सुनाई हुई। वाजपेयी जी के वकीलों ने उचित बहस के पश्चात् अन्त में वाजपेयी जी के पिता की मान-प्रतिष्ठा तथा उनकी सरकारी सेवाओं का उल्लेख करते हुए अदालत से रिआयत की प्रार्थना भी कर दी। इसके परिणाम-स्वरूप अदालत ने वाजपेयी जी की सज़ा रद्द करके जुर्माने की रक़म बढ़ा कर तीन हज़ार कर दी।

वाजपेयी जी घर आकर सुशीला से बोले—जैसा तुमने कहा था वैसा ही हुआ। निश्चय तुम पतिव्रता हो, मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया। यदि क्षमा कर सको तो क्षमा कर दो।

इतना कह कर वाजपेयी जी आँखों में आँसू भर लाए।

सुशीला नम्रता तथा प्रेमपूर्वक बोली—मैंने तुम्हें कभी दोषी समझा ही नहीं, मैंने अपने भाग्य को ही दोष दिया था। तुम व्यर्थ दुखी होते हो और मुझसे क्षमा माँगते हो। हाँ, यदि मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो तुम क्षमा कर दो।

"मैं और तुम्हें क्षमा करूँ! अपराध करने वाला भी कहीं क्षमा कर सकता है?"

इतना कह कर वाजपेयी जी ने पत्नी को हृदय से लगा लिया।

परिचय

[श्री० श्यामापति जी पाण्डेय, बी० ए०]

भाग्यहीन का गिरा भाग्य हूँ,
विपद काल की छाया हूँ!
बहते हुए अथाह नीर में
मैं तिनका ठुकराया हूँ!!

किसी पथिक का त्यक्त मार्ग हूँ,
गिरा राह पर शव का फूल!
जला हृदय उस दुखिया का हूँ—
जिसे मिला सुख, कभी न भूल!!

संसृति की अन्तिम माया हूँ,
छुटा गगन का तारा हूँ!
जिसे स्वप्न में भी न शान्ति है,
आकुल का मैं प्यारा हूँ!!
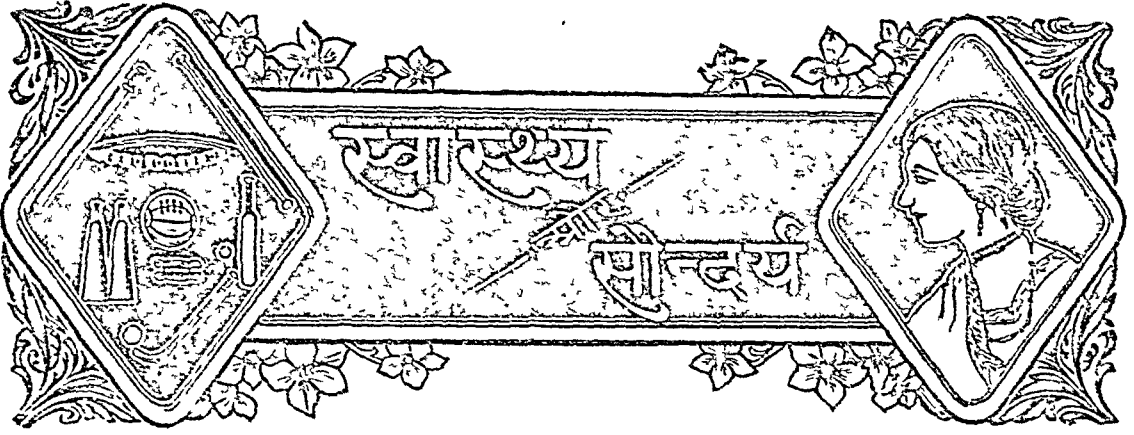
[श्री० गणेश प्रसाद जी सेठ]

जल का उचित सेवन

इस लेख के द्वारा हम अपनी बहिनों का ध्यान एक ऐसे विषय की ओर आकर्षित करना चाहते हैं, जिसका हमारे जीवन से बहुत ही घना सम्बन्ध है। परन्तु दुर्भाग्यवश उसकी अधिक से अधिक उपेक्षा की जाती है।

हवा, पानी, भोजन हमारे जीवन के लिए बहुत आवश्यक हैं। मनुष्य बग़ैर हवा के ३ मिनट से ज़्यादा जीवित नहीं रह सकता, बग़ैर पानी के हफ़्ते से अधिक, तथा बग़ैर भोजन के ३ महीने के ऊपर ज़िन्दा रह सकना मुश्किल है। इन तीनों चीज़ों के उचित सेवन पर हमारी तन्दुरुस्ती निर्भर है। यह तो सभी जानते हैं कि निर्मल और शुद्ध वायु के सेवन से चित्त प्रसन्न होता है, तथा रोग शरीर से कोसों दूर रहता है। शुद्ध वायु के उचित सेवन के लिए लोग प्रातःकाल घूमने जाया करते हैं, स्त्रियाँ गङ्गा-स्नान करने जाती , धनी लोग पहाड़ों और समुद्रतटों तक का परिभ्रमण कर आते हैं। क्षय रोग से पीड़ित रोगी यदि पहाड़ नहीं जा सकते तो अक्सर गङ्गा-जमुना में नाव पर रहते हैं, और इससे उन्हें चामत्कारिक लाभ होता है। शुद्ध वायु में प्राणायाम करने की प्रणाली हमारे पूर्वजों ने इसी कारण से चलाई है कि वायु का उचित और पूर्ण सेवन कर हम नीरोग रह सकें। गर्मी में खुली जगह में सोना तथा जाड़े-बरसात में ऐसे कमरे में सोना जिसके खिड़की-दरवाज़े खुले रह सकें, परमावश्यक है। जो बहिनें लिहाफ़ या चादर से मुँह ढँक कर सोती हैं, या मुँह से साँस लेती हैं, अथवा अपने बच्चे को साथ सुला कर मुँह ढँक देती हैं, वे अपने स्वास्थ्य के साथ ही साथ बच्चे का स्वास्थ्य तथा उसका जीवन भी नष्ट करती हैं। प्रत्येक मनुष्य को अलग सोना चाहिए और चाहे जितना कठिन जाड़ा पड़ता हो, मुँह लिहाफ़ से बाहर रखना चाहिए। यह निर्मूल बात है कि ऐसा करने से ज़ुकाम की शिकायत होगी या सर्दी लग जायगी। एक साथ सोने में अक्सर एक शरीर की निकली हुई गन्दी साँस को दूसरा शरीर अन्दर खींचता है। अतएव एक साथ सोने वालों को शुद्ध वायु का सेवन दुर्लभ हो जाता है। हमारी बहिनें अक्सर बच्चों को छाती से लगा कर लिहाफ़ में मुँह ढँक कर सोया करती हैं और इस प्रकार निर्मल वायु के उचित सेवन से वञ्चित रहती हैं।

इसी प्रकार हमें जल-सेवन के विषय में भी कुछ आवश्यक नियमों को जानना और मानना चाहिए। ऊपर कह चुका हूँ कि मनुष्य ३ सप्ताह तक बग़ैर पानी के ज़िन्दा रह सकता है। इसका एक विशेष कारण है। हमारे शरीर का दो तिहाई हिस्सा पानी से भरा हुआ है, अथवा यों कहिए कि पानी से बना हुआ है। यह बराबर ख़र्च होता रहता है, और २० दिन तक शरीर को जीवित रख सकता है। पानी कम पीने से उसकी पूर्ति शरीर अपने कोष से करता है। परन्तु कोष की न्यूनता रोग का कारण है। इसलिए हमको चाहिए कि शरीर में पानी का कोष कभी कम न होने दें। अगर हमको यह मालूम हो जाय कि हमारा शरीर २४ घण्टे में किस-किस प्रकार से और कितना पानी ख़र्च करता

है, तो उसी हिसाब से पानी पीकर हम जल के अनुपात को समानावस्था में रख सकते हैं।

पानी का ख़र्च

शरीर अनेक प्रकार से करता है, जैसे मल-मूत्र तथा पसीने द्वारा, साँस बाहर फेंकने में, थूक, राल, पाचन-रस (Gastric juices) इत्यादि बनाने में। आपको आश्चर्य होगा कि हमारे शरीर के सतह पर, चमड़े में, ७० लाख छेद हैं, जिनके द्वारा प्रति चण हर एक मौसिम में दिन-रात पसीना बहता रहता है। पसीने के रूप में विकार और विषैली वस्तुओं को हमारा शरीर बराबर बाहर फेंकता रहता है।

डॉक्टरों ने एक मोटा हिसाब लगा कर पानी के ख़र्च की तादाद जाड़े में लगभग ३॥-४ सेर, बरसात में ५-५॥ सेर तथा गर्मी में ६॥-७ सेर बतलाई है। बरसात और गर्मी में पेशाब तथा पसीने द्वारा ख़र्च बहुत बढ़ जाता है। बरसात में पेशाब ज़्यादा होता है, और गर्मी के मुक़ाबिले प्यास कम लगती है। इसका कारण यह है कि बरसात में हवा में नमी होने के कारण हम साँस द्वारा कुछ पानी ग्रहण कर लेते हैं। काफ़ी पानी पीने से पेशाब सादे रङ्ग का होता है, भूरे तथा लाल रङ्ग का नहीं, तथा बहुतायत से होता है। यह सब आरोग्य के चिन्ह हैं। गर्मी में पसीना बहुत निकलता है, इसलिए प्यास ज़्यादा लगती है। हिन्दुस्तान में गर्मी का महीना रोग-रहित कहा गया है। इसका मूल कारण यह है कि पानी ख़ूब पिया जाता है और पसीने द्वारा शरीर का विकार और विष घुल-घुल कर बाहर निकल जाता है। जैसे स्नान करने से शरीर के ऊपर का मल साफ़ हो जाता है, इसी तरह पानी ज़्यादा पीने से शरीर का भीतरी मल साफ़ होता है। आपने देखा होगा कि रोगी को जब पसीना छूटता है तब बुख़ार कम हो जाता है, क्योंकि विष बाहर हो जाने से शरीर चङ्गा होने लगता है। चलने-फिरने से, कसरत करने से, शरीर से पसीना ख़ूब निकलता है और यदि हम पानी काफ़ी पिए रहें तो शरीर स्वच्छ तथा हलका मालूम पड़ता है। जाड़े में प्रातःकाल साँस फेंकने में अक्सर देख पड़ता है कि भाप निकल रही है। इसी प्रकार साँस से होकर हमेशा भाप निकला करती है, परन्तु गरम ऋतुओं में हम उसे देख नहीं पाते। अब जब हमें पानी के २४ घण्टे के ख़र्च का अन्दाज़ हो गया, तब यह बात सरल हो गई कि हमको कितना पानी दिन-रात में पीना चाहिए, जिससे

आमदनी ख़र्च से कम न हो

बल्कि कुछ बचत की ही गुञ्जाइश रहे। बहुत सी बहिनें कहेंगी कि इस हिसाब-किताब के झगड़े में कौन माथा-पच्ची करे, हम तो यह जानती हैं कि जितनी प्यास लगी, उतना पानी पिया, झगड़ा ख़तम। परन्तु यह कसौटी ठीक नहीं। हमारा शरीर बड़ा अद्भुत है। इसमें मिज़ाज-पुर्सी बहुत है। इससे हम लोग बहुत बार आदत से लाचार हो जाया करते हैं। शुरू से पानी कम पीने की आदत पड़ जाने से प्यास कम लगती है। खाना कम खाने से भूख कम लगती है। नशीली वस्तु खाइए—पान ख़ूब चबाइए—उसकी चाट बढ़ेगी। शरीर को जिस चीज़ का आदी बनाइए, वह उसी का आदी हो जायगा। कुछ बहिनें कहेंगी कि हमको बहुत प्यास लगती है और तुमको कम, बताओ कौन रोगी है? तभी तो हम कहते हैं कि यह कसौटी ठीक नहीं है। जिस प्रकार आप तादाद से खाना खाती हैं कि शरीर तन्दुरुस्त बना रहे, उसी प्रकार आप यह भी हिसाब आज समझ लें कि कितना पानी पीना हमको आवश्यक है। मुमकिन है कि जल के उचित सेवन से आप अपने घर वालों तथा बाल-बच्चों को नीरोग रख सकें। हमारा अनुभव यह कहता है कि संसार में बहुत से आदमी पानी काफ़ी तादाद में न पीकर रोग बुलाते हैं। भारत की औरतें तो पानी से डरती हैं, समझती हैं कि पानी सर्दी-ज़ुकाम का कारण है। परन्तु ऐसा नहीं है। २४ घण्टे में

कितना पानी पीना चाहिए

इसका हिसाब इस प्रकार है—जाड़े में आठ गिलास याने ४ सेर, बरसात में ५-६ सेर तथा गर्मी में ७-८ सेर। इतना जल भारत के हर एक मर्द और औरत को पीना चाहिए। यह नियम औसत दर्जे के मनुष्यों के लिए है, परन्तु रोगियों और बच्चों के लिए इसमें फेरफार करना आवश्यक है।

जो लोग ज़्यादा घूमते-फिरते हैं, शारीरिक काम करते हैं, कसरत करते हैं, घोड़े तथा बाइसिकिल पर चढ़ते हैं, उनको ऊपर लिखी तादाद से सेर-आध सेर पानी

अधिक पीना चाहिए। गर्भवती स्त्रियों को तथा अन-व्याहे लड़के-लड़कियों को भी कुछ अधिक पानी पीना चाहिए। छोटे बच्चे को, वह जब जागे, पानी पिलाना चाहिए। काफ़ी पानी पीने से सुस्ती दूर होती है, बदन में फुर्ती आती है, शरीर का ख़ून वेग से दौड़ता है तथा साफ़ होता है, क़ब्ज़ की शिकायत नहीं होती, भूख से ज़्यादा खाने की आदत दूर हो जाती है, और बराबर भूख लगती है। अब प्रश्न यह उठता है कि

किस समय पानी पीना चाहिए ?

प्रातःकाल उठ कर, कुल्ला कर, बासी मुँह १-२ गिलास (अध-सेरा) गुनगुना पानी आहिस्ता-आहिस्ता पीने से लाभ होता है। गर्मी में नल का पानी गुनगुना रहता है, उसे पी सकते हैं। बरसात और जाड़े में पानी उबाल कर बाद को ठण्डा कर गुनगुना पीना चाहिए। एक गिलास से शुरू कर थोड़े दिनों में १-२ गिलास तक पीजिए। यदि २-४ दिन मिचली मालूम हो तो परवाह न कीजिए। गुनगुने उबाले पानी का स्वाद अच्छा न लगे तो भी उसे सहन कीजिए, थोड़े दिनों में स्वादिष्ट मालूम पड़ने लगेगा। रात को सोते वक्त भी ठीक इसी नियम का पालन कीजिए। आपको शायद शङ्का होगी कि सुबह उठ कर बग़ैर खाए पानी पीने से सर्दी हो जायगी तथा रात को सोने के पहिले गिलास भर पानी पीने से नींद ठीक नहीं आएगी। बात बिलकुल उलटी है। सुबह पानी पीने से कभी ज़ुकाम न होगा। डॉक्टर कहते हैं कि सुबह गुनगुना पानी पीने वाला तथा ठण्डे पानी से बन्द कमरे में नहाने वाला कभी सर्दी नहीं खा सकता। इसी प्रकार यदि गाढ़ी नींद का मज़ा उठाना चाहते हों तो पानी पीकर सोइए। गरमी में सुराही सिरहाने रखिए। जब कभी नींद खुले, पानी पी लीजिए। कारण यह है कि सोते समय पसीने से शरीर के पानी का कोष ख़र्च होता रहता है। इसलिए शरीर में थोड़ा पानी जमा कर लीजिए और रात को निद्रावस्था में उसे ख़र्च होने दीजिए। फिर प्रातःकाल उठ कर इस ख़र्च की कमी को पूरा करने के लिए उपरोक्त विधि से और पानी पीजिए।

भोजन के साथ आधा गिलास से अधिक पानी नहीं पीना चाहिए। पर भोजन के घण्टे डेढ़ घण्टे बाद १-२ गिलास पानी ज़रूर पीना चाहिए। बहुत सी स्त्रियाँ खाने के साथ २-२ गिलास पानी पी जाती हैं; कहती हैं ग्रास गले में अटकता है, क्या करें पानी से उतारना पड़ता है। शास्त्र कहता है कि प्रत्येक ग्रास को ३२ मर्तबा चबाना चाहिए और तदोपरान्त निगलना चाहिए। चबाना तो दूर रहा, एक ग्रास के बाद दूसरा ग्रास पेट में पानी से ढकेला जाता है! इस अत्याचार का कुछ ठिकाना है! थूँक, राल, पित्त, पाचन-रस सब पानी-पानी होकर पेट में हौल पैदा कर देते हैं, जिससे अजीर्ण हो जाता है। आप लोटा भर पानी लेकर कभी खाने मत बैठिए। और साधारण अवस्था में घर के अन्य लोगों को भी खाने के साथ अधिक पानी न पीने दीजिए। अब इस लेख को केवल यह बतला कर कि

कैसा पानी पीना चाहिए ?

हम समाप्त करेंगे। जैसे शुद्ध वायु के सेवन से शरीर नीरोग रहता है, उसी प्रकार निर्मल जल के सेवन से भोजन ठीक पचता है तथा तन्दुरुस्ती अच्छी बनी रहती है। उबाला या फ़िल्टर किया पानी हर एक को हमेशा पीना चाहिए। चाहे आप नल का पानी पिएँ, चाहे कुएँ का, अथवा नदी का, पहिले फ़िल्टर कर लीजिए, या अच्छी तरह उबाल कर छान डालिए और ठण्डा कर लीजिए। कच्चा पानी मत पीजिए। केवल बहती नदी का ताज़ा बहता हुआ पानी, आप जब स्नान करने जाएँ, अवश्य सेर-आध सेर पिएँ। मगर पानी धारा का हो, उसमें बालू हो तो उसे छानिए मत। एक जर्मन डॉक्टर का मत है कि बालू-मिश्रित जल (जैसे ताज़ा गङ्गा-जल) पीने से शरीर का विष दूर होता है। कदाचित हमारे पूर्वजों ने प्रायश्चित्त में बालू फाँकने का विधान इसीलिए किया है कि उन्हें बालू द्वारा शरीर-शुद्धि की प्रक्रिया का स्पष्ट ज्ञान था।

उबाले पानी का स्वाद शुरू में रुचिकर न होगा, परन्तु अभ्यास करने से थोड़े ही काल में स्वादिष्ट मालूम होने लगेगा। मट्ठा, शरबत, सोडा, लेमनेड आप शौक़ से पीजिए, परन्तु याद रखिए कि तरल पदार्थ सब आहि-स्ता-आहिस्ता पीना चाहिए। नींबू का ताज़ा शरबत बड़ा गुणकारी होता है। सन्तरे का ताज़ा शरबत भी बहुत फ़ायदेमन्द है। बरफ़ की आदत ख़राब है। इसे त्याग देना चाहिए। यदि एकदम न छूटे तो बरफ़ का पानी छान कर पीजिए। अक्सर जिस पानी से बरफ़ बनती है, वह निर्मल नहीं होता। दूसरी बात यह है कि ठण्डक से

पेट को बहुत नुक़सान होता है। जो बहिन मोटी हों और दुबली होना चाहती हों, अथवा यह चाहती हों कि और मोटी न हों, उनको बरफ़ का पानी हरगिज़ न पीना चाहिए, बल्कि सदा गुनगुना पानी पीना चाहिए और वह भी काफ़ी तादाद में। इसके अलावा भोजन बहुत कम करना चाहिए। यदि खाना खाने के आध घण्टा पहिले एक गिलास गुनगुना जल पी लें तो आप बहुत ज़्यादह भोजन नहीं कर सकतीं। आप देखेंगी कि महीने दो महीने ऐसा करने से शरीर की चर्बी घटने लगेगी। इसके अलावा मोटा अन्न खाना तथा आहिस्ता-आहिस्ता खाना भी आवश्यक है और शारीरिक काम का आधिक्य अनिवार्य है। सारांश यह कि हर एक स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े, नौजवान को चाहिए कि उबाला हुआ जल काफ़ी तादाद में पिएँ।

दाम्पत्य प्रेम

नारी-जीवन

[श्री० आनन्दिप्रसाद जी श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या—११

[वृद्ध पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

किया था गया जान कर—
यह अतीव भीषण पड्यन्त्र,
चलता है अत्याचारों में—
मिथ्या भाषण ही का यन्त्र।

विधवा होने पर हो जाती—
अबला अपने गृह पर भार,
इसीलिए उस पर होता है,
इस प्रकार गुरु अत्याचार !

नहीं चाहते घर में रखना—
उसे लोग, इसलिए अनेक !
दोष लगा देते हैं उस पर,
और बहाने से बस एक !!

घर से करते उसे बहिष्कृत,
यों ही चलता है सम्भार,
भारत के विधवा जीवन का—
है केवल विपत्ति ही सार !

भारतीय हैं यही चाहते—
रहे जन्म भर वह पावन,
कभी मदन के कठिन बाण कर—
सकें न उसका विचलित मन !

नित व्यतीत वह करे प्रलोभन—
मय जग में जीवन आदर्श,
करे न उसको मनुज-जाति के
षड्रिपु की छाया भी स्पर्श !

है सारांश, रहे वह बन कर—
देवी दानव-मय जग में,
चली जाय वह सदा अविचलित,
अपने अति पवित्र मग में !

पर इस महत्कार्य के हित वह—
देते उसको क्या साधन ?
नित प्रति के अत्याचारों से—
पीड़ित तन अति पीड़ित मन !

सास उन्हें 'डायन' कहती है,
रहती है उन पर विकराल,
ननदों की उसके विरुद्ध नित
रहती अति कठोर है चाल !

करता दृग-शर का प्रहार है
उन पर नित अधिकांश समाज,
कुछ घर वाले ही उनके हित—
सजते प्रलोभनों का साज।

किस प्रकार वे कर सकती हैं—
फिर व्यतीत अच्छा जीवन ?
सदा चाहता कठिन साधना—
के हित विमल परिस्थिति मन !

यदि उसको भोजन देकर ही—
करें पड़ोसी जन भोजन,
यदि उसको समझे समाज—
सब पूज्य सजीव मूर्ति पावन !

उसे छेड़ने वालों के हित
करे कठिन यदि दण्ड-विधान,
यदि शुभ कार्यों में आवश्यक—
शुभ समझे उसका आह्वान,

तो चाहे वह वैसा उन्नत, शुभ—
जीवन कर सके व्यतीत,
और नहीं तो वैसा जीवन
होता सम्भव नहीं प्रतीत !

सुनो वहिन, मैं तुम्हें सुनाती—
हूँ अब फिर आगे का हाल,
घोर परिस्थिति में जो मैंने—
निश्चय सुदृढ़ किया तत्काल !

मैंने सोचा—'किया न मैंने
मन से इस बुड्ढे से व्याह;
किया पिता ने बेमन, कुछ—
कारन से इस बुड्ढे से व्याह ।

वह दहेज की क्रूर प्रथा थी—
जिसने परवश किया उन्हें,
वह समाज की परम कृपा थी
जिसने यह यश दिया उन्हें !

पढ़े गए जो वेद-मन्त्र थे—
उनका थी कर रही विरोध,
अपने मन ही मन में मैं तो,
थी न उस समय मैं निर्बोध ।

फिर न तोड़ दूँ क्यों स्वशक्ति भर
इस विवाह का मैं बन्धन ?
रक्षा क्यों न करूँ सतीत्व की ?
क्यों होने दूँ भ्रष्ट स्वतन ?

ब्रह्मचर्यमय पावन जीवन—
क्यों न व्यतीत करूँ सब काल ?
क्यों न देश-सेवा में अर्पित
करूँ स्वनारी-हृदय विशाल ?

कहाँ हृदय-सङ्कोच-विधायक;
दुष्ट-वृद्ध-सेवा का भार,
और कहाँ मानस-विशाल-कर—
शुचि स्वदेश-सेवा का प्यार ?

मैं न करूँगी आत्म-समर्पण—
चाहे उलट जाय संसार,
चाहे इस प्रण के कारण ही
पड़े छोड़ना तन का भार !!

वृद्ध कर सकेगा क्या मेरा ?
कर लूँगी मैं ठीक उसे ।
पावन दृढ़ता रँग सकती है
अपने रँग में नहीं किसे ?'

यह निश्चय कर कहा वृद्ध से—
आप तनिक बाहर जावें,
मेरा मन अस्वस्थ आज है,
तरस तनिक मुझ पर खावें !

पत्र-संख्या—१२

[बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

वहिन,

वहुत ही सुन्दर था उस—
समय तुम्हारा सोच-विचार,
उससे तो उपकृत हो सकता—
है सारा नारी-संसार !

आज तुम्हारा निश्चय पढ़ कर,
तुम पर श्रद्धा बढ़ी विशेष,
और आ रहा इस समाज के
ऊपर और अधिक है द्वेष !

यदि होतीं परिणीत योग्य वर-
से तो तुम उन्नति-पथ पर
चल कर होतीं और समुन्नत,
कितनी होती बुद्धि प्रखर !

कुचल-कुचल नारी-रत्नों को—
निज अत्याचारी पद से,
चलता भारतीय पुरुषों का—
दल है भरा मोह-मद से !

आज खो गया है भारत का—
वह अति शुद्ध भाव प्राचीन,
ऐक्य पुरुष-महिला का, जो है—
अब भी जग के लिए नवीन !

प्रथा स्वपति के निर्वाचन की,
आज खो गई, वदल गया—
अब तो यह सारा समाज ही
मानो है हो गया नया !

समझी थी मैं वहिन कर चुकीं—
आत्म-समर्पण तुम उसको,
बना सदा के लिए चुकी हो—
दुख का कारण तुम उसको !

इसीलिए उतना लिख डाला,
उसके लिए क्षमा करना,
मेरा केवल सहानुभव का—
भाव हृदय में तुम धरना !

मेरा हाल सुनो अब, लख कर
व्यर्थ सास की आँखें लाल—
सहन कर सकी मैं न, दे दिया
उसको यों उत्तर तत्काल—

"मैंने कुछ भी किया न, मुझको
दोष लगाती हो क्यों तुम ?
क्या जाने किस बल पर मुझको
रोष दिखाती हो यों तुम ?

खाती हूँ जो दो रोटी, तो—
करती बहुत अधिक हूँ काम,
तिस पर भी मुझको करती हो
तुम सदैव सब में बदनाम !

मैं यह सब सह नहीं सकूँगी—
जो करना हो तुम कर लो,
मेरी जान चाहती हो तो,
लेकर उससे घर भर लो।"

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह

["पागल"]

पाँचवाँ खण्ड

५

जिस तरह से मैं तारा की ज्ञान भरी बातों पर अक्सर चकित हो जाता था, उसी तरह मैं जहानारा के देशोन्नति सम्बन्धी विचार पर दङ्ग होकर रह गया। हमारे देश की देवियाँ क्या भाव, क्या ज्ञान और क्या आत्म-त्याग में, बिना उचित शिक्षा और सत्कार पाए हुए भी, जब यह कमाल रखती हैं, तब अगर समाज इन्हें उपयुक्त आदर का स्थान देकर अबला से सबला बनावे और शिक्षा द्वारा मूर्खता का अन्धकार हटा कर इनके ज्ञान-नेत्र अच्छी तरह से खोल दे तो इसमें शक नहीं कि देश की दशा ही और हो जाय। क्योंकि हमारी दुर्दशा का एक बहुत बड़ा कारण यह भी है कि हमने अपने आधे अङ्ग को अपनी अज्ञानता, अत्याचार और स्वार्थ में पड़ कर बिलकुल सुन्न बना रक्खा है। ऐसी काया से, जो आधी निकम्मी हो, संसार में भला कोई भी काम हो सकता है? दोनों पैर जब तक बराबर नहीं पड़ेंगे, तब तक आगे बढ़ने का ख़याल स्वप्न ही है। यदि जहानारा ऐसी देवियाँ सौ में पचास भी हो जाएँ और उसके बताए हुए देशोन्नति के उपाय प्रयोग किए जावें तो निस्सन्देह भारत की सब दुर्दशाएँ मिट जायँ। मगर जितना ही मैं उसके विचारों पर मुग्ध हो रहा था उतना ही उसके प्रति नर-पिशाचों के बर्तावों पर मेरा कलेजा फटा जा रहा था और आँखों से बेअख़्तियार आँसू बह रहे थे। अस्तु, उसके आगे का हाल जानने की उत्कण्ठा और आशा में मैंने किसी तरह आँसू पोंछ कर उसका तीसरा पत्र उठाया।

तीसरा पत्र

(इसकी तारीख़ एक महीना बाद की थी)

निर्मोही,

उफ़! तुमने अब भी सुधि नहीं ली? तुम और ऐसे वज्र-हृदय! विश्वास नहीं होता अलिन्द! नित्य ही आँखें बिछाए डाकिए का आसरा देखती हूँ और नित्य ही कलेजा मसोस कर रह जाती हूँ। मगर तुम्हारा हृदय अब भी न पसीजा और न पसीजा। संसार से प्रेम उठ गया तो क्या उसके साथ सद्व्यवहार भी? मुहब्बत न सही, मुरव्वत तो कुछ मेरे लिए रख छोड़ी होती? पुरुष जाति से तो मेरा दिल पका हुआ था ही; मगर न जाने कैसे मैं तुम्हें प्यार करने लग गई। ईश्वर के लिए तुम तो अपनी हत्यारी जाति के क़दम पर न चलो। तुम्हें घृणा करने के लिए मैं कहाँ से हृदय लाऊँगी? यह हृदय तो तुम्हें बस पूजना ही जानता है।

आह! समझी। यद्यपि तुम मेरे त्यागे जाने के बारे में मुझे निर्दोष मानते होगे, फिर भी मेरे सम्बन्ध में इतनी बातें जान कर तुम दिल में अब अवश्य यही शक करते होगे कि ससुराल-मैका दोनों ही जगह ठौर न पाकर मुझे वेश्यावृत्ति ही पर निर्वाह करना पड़ा होगा। इसीलिए तुम्हें मेरे पत्रों का उत्तर भी देने का जी नहीं चाहता। क्यों? यह धारणा कुछ अनुचित नहीं है। मेरी ऐसी परिस्थिति में पड़ कर कोई भी हिन्दू आश्रयहीना अबला अपनी किसी तरह से भी रक्षा नहीं कर सकती। मांस की बोटी सड़कों पर उछालने से वह बोटी कदापि चील्ह के झपटों से नहीं बच सकती। मगर इसके लिए अलिन्द तुम दोष किसको दोगे? मांस के टुकड़े को या इस मूर्ख हिन्दू-समाज को, जो अपनी ठोकरों से बेदर्दी के साथ अपने ही शरीर के मांस को काट कर सरेआम उछालता फिरता है? अगर तुम्हारी पुरुष जाति स्त्रियों

का तनिक भी सम्मान करना जानती तो किसकी मजाल होती कि उन्हें घर से निकालता या घर के बाहर तुम्हारी आँखों के सामने उन पर अत्याचार करता? मगर अफ़सोस! यहाँ तो झूठे कलङ्क पर भी लोग उन्हें त्यागने में धर्म की सफ़ाई समझते हैं, उनकी नाक या सर काटने में अपनी बड़ाई मानते हैं। तब दूसरे उनके साथ जो न करें, वही थोड़ा है। थुड़ी है ऐसे विचार पर! यह धर्म की रक्षा है या धर्म की सत्यानाशी? वीरता है या महा नीचता और कायरता? धर्म का गौरव और मनुष्यत्व की शोभा तो इसमें है कि पतिता को पतिता जानते हुए भी उसे अपना कर उसकी रक्षा और उद्धार करे। अगर अलिन्द, कहीं मैं भी भ्रष्टा रही होती और तुम मुझे ऐसा जान कर भी हृदय के भीतर स्थान देते—कलेजे से लगा कर मुझे अपना लेते, आह! तब तो तुम मनुष्य काहे को, साक्षात् देवता होते। इस तरह तुम मेरा ही उद्धार नहीं करते, बल्कि देश का उद्धार करते, अपने धर्म की रक्षा करते और अपनी अबलाओं को सबला बनाते। मगर भाग्य में तुम्हारी इतनी बड़ी, उच्च और विशाल हृदयता देखनी बदी ही न थी। क्योंकि मैं तो और ही घटना-चक्र में पड़ कर इस पाप-कीच में गिरने ही नहीं पाई। उस पर भी तुम मुझे पापिनी जान कर मुँह मोड़ते हो। घोर अन्याय करते हो अलिन्द!

इसमें सन्देह नहीं कि ससुराल से दुतकारे जाने पर मेरे लिए सिवाय मृत्यु की गोद के और संसार में कहीं भी ठिकाना न था। मगर गर्भ के कारण उफ़! मौत भी दुष्कर थी। मेरे रोम-रोम में पति की इतनी घृणा भर गई थी कि उनके नगर में मुझे श्वास तक लेना गवारा न था। मैं स्टेशन आई। दासी मुझे मुसाफ़िरख़ाने में बैठाल कर मेरे पति को समझाने फिर उनके यहाँ गई। उसके लौटने पर मालूम हुआ कि मेरे आने के कुछ ही देर बाद ससुर जी का देहान्त होगया और दासी वहाँ से मार-पीट कर फिर निकाल दी गई।

दासी मेरे मैके ही की रहने वाली थी। उसके आगे-पीछे कोई न था। उसका घर-द्वार गिर-पड़ चुका था। मेरे ही यहाँ रहती थी। उसके पास भी मुझे छाँह देने को एक छप्पर तक न थी। मैं कहाँ जाती? आख़िर दासी ने कहा कि उसका एक दूर का सम्बन्धी एक बड़े नगर में नौकरी करने गया था। चल कर उसको ढूँढ़ें और उसकी शरण में रह कर दिन काटने के लिए कोई काम-धन्धा करें। डूबते को तिनके का सहारा बहुत होता है। इसलिए मैं दासी के साथ उस नगर में पहुँची। जब किसी स्थान का मैंने अपने पत्रों में नाम नहीं दिया है तो उस जगह का भी नाम बताना मुझे अब बेकार ही सा जान पड़ता है। मगर उस नगर में दासी के सम्बन्धी का पता लगाना भूसे भरी कोठरी में एक सूई ढूँढ़ने के बराबर था। वह नहीं मिला। विवश होकर एक उजाड़ मुहल्ले में एक छोटा सा खण्डहर किराए पर लेकर रहने और ज़ेवर बेंच-बेंच कर गुज़र-बसर करने लगी।

रातों-दिन मकान के भीतर ही रहने के कारण लोगों की दृष्टि मुझ पर बहुत कम पड़ती थी। जिनकी कभी पड़ती थी या पड़ चुकी थी, वे मेरे रूप पर तो अवश्य चकित हो जाते थे, मगर मुझे गर्भवती जान कर उनकी दिलचस्पी भड़कने नहीं पाती थी। उचित समय पर मेरे पुत्री उत्पन्न हुई। और उसीके लाड़-प्यार में लगभग सात महीने और कट गए। मगर इस तरह से कब तक चलता? माना कि मैं साल दो साल तक निबाह ले जाती। फिर भी बच्ची का ऐसी अवस्था में एक भिखमङ्गी द्वारा पालन-पोषण होकर उसका आगामी जीवन एकदम सत्यानाश हो जाता। कोई भी कुलीन अपने वंश में उसका ब्याहा जाना कदापि स्वीकार न करता। इसलिए विवश होकर मैंने कई पत्र पति जी को लिखा कि मुझे त्यागा तो त्यागा, मगर अपनी बच्ची को तो अपने पास बुला लीजिए। मेरे गली-गली ठोकरें खाने में शायद आपका दिल न दुखता होगा, क्योंकि केवल सांसारिक सम्बन्ध के नाते मैं आपकी पत्नी हूँ सही, फिर भी मैं ग़ैर की लड़की हूँ। मगर यह अबोध बच्ची तो आप ही के कलेजे का ख़ून है। इसके भविष्य की दुर्दशा आप कैसे गवारा कर सकेंगे? मगर उस हृदयहीन के कान पर जूँ तक न रेंगी। तब हताश होकर उन्हें मैंने फिर लिखा कि मैं जानती हूँ कि आपके मेरे मरने-जीने से कुछ भी सरोकार नहीं है। बल्कि मेरा संसार से उठ जाना ही आपको अति रुचिकर होगा। मैं भी इसके लिए तैयार हूँ। मगर मैं इस बच्ची की ख़ातिर अब तक ऐसा न कर सकी। इसको किसके ऊपर छोड़ जाती?

अस्तु, मैंने एक ऐसी युक्ति सोची है जिससे आपको झख मार कर बच्ची को अपनाना और उसके जीवन को उत्तम बनाने का प्रबन्ध, मेरे या बच्ची के ख़याल से नहीं तो कम से कम अपने नाम की लाज की ख़ातिर, करना पड़ेगा। इसलिए बच्ची की पीठ में कमर के पास मैंने आपके नाम का गोदना आज गोदवा कर यह अङ्कित करा दिया है कि यह किसकी पुत्री है, ताकि संसार इसकी दुर्दशा में जाने तो कि इसका पिता कौन है और वह कैसा निर्लज्ज और हत्यारा है! उफ़! गोदना गोदवाते समय बच्ची किस तरह तड़प-तड़प कर चिल्लाती थी, मेरा ही पत्थर का कलेजा जानता है। मगर हाय! आप ऐसे नीच को अपना उत्तरदायित्व समझने के लिए उसे यह वेदना गवारा करनी पड़ी। अगर सातवें दिन आप अपनी बच्ची को लेने नहीं आए तो इसे दासी के हाथ आपके पास पहुँचा कर मैं आत्महत्या कर लूँगी। तब तो विवश होकर आप इसे अपनी गोद में स्थान देंगे?

मगर सात दिन कौन कहे, दस दिन तक मैं उनकी राह देखती रही! अन्त में ग्यारहवें दिन हताश होकर आधी रात के समय मैं दासी के साथ बच्ची को स्टेशन पर विदा करने आई। जो कुछ मेरे पास बचे हुए ज़ेवर और रुपए-पैसे थे, सब मैंने दासी को यह कह कर दे दिया कि मुझे अकेली पाकर शायद उन्हें कोई लूट न ले। केवल इतना ख़र्चा अपने पास रहने दिया जो उसके लौटने तक मेरे लिए काफ़ी हो, ताकि उसे मेरी आत्म-हत्या के विचार का तनिक भी गुमान न होने पावे। बिछुड़ते समय बच्ची को प्यार करके ख़ूब रोई। गाड़ी छूट गई और मेरी छाती फट गई। आह! उसकी याद आज के दिन भी कलेजे में बर्छियाँ चलाती है।

सोचे हुए थी कि उसी चलती हुई गाड़ी के नीचे जान दे दूँगी। मगर मैं बच्ची के लिए ऐसी दीवानी हो रही थी कि समय पर इसका मुझे ख़याल ही नहीं हुआ।

मैं पगली सी अँधेरी सड़कों पर बदहवास दौड़ रही थी; न घर का रास्ता मिलता था और न कहीं डूब मरने के लिए कुआँ। इतने में बग़ल की मोड़ से एक मोटर-गाड़ी निकली। मैं उसके नीचे दबने के लिए झपटी। सर में कुछ चोट सी लगी और उसके बाद होश जाता रहा।

आँख खुली तो धूप निकल चुकी थी। मैं एक सजे-सजाए कमरे में चारपाई पर पड़ी थी और सामने कोच पर एक अति सुन्दरी स्त्री बैठी हुई थी। मुझे अचरज में पड़ते देख वह स्वयं ही कहने लगी कि रात को जब मैं थिएटर से तमाशा करके लौट रही थी तब शोफ़र की होशियारी से मेरे मोटर के नीचे दबने से तुम बाल-बाल बच गईं। तुम बेहोश थीं। मैंने जाना तुम्हें कहीं गहरी चोट लगी है और तुम्हारे साथ कोई आदमी भी न था, इसलिए तुम्हें अस्पताल भिजवाने के लिए अपने साथ यहाँ ले आई। शुक्र है, तुम होश में आगईं। अब बताओ कैसा हाल है और तुम कहाँ जाना चाहती हो? मैंने धन्यवाद देने के बदले अपने आवेश में उत्तर दिया कि आपने मुझे बचा कर मेरे साथ अच्छाई नहीं, बल्कि बुराई की है। सिवाय परमात्मा के घर के और कहीं भी मेरा ठिकाना नहीं है। मैं वहीं जाऊँगी।

कहने को तो यह कह गई, मगर बाद को बहुत पछताई। क्योंकि उसकी उत्सुकता इतनी बढ़ी कि मुझे विवश होकर अपना सारा दुखड़ा उसके आगे रो देना पड़ा। उसे सुन कर वह मेरे पीछे ऐसी पड़ी कि वह निगाहों की ओट भी मुझे नहीं होने देती थी। यहाँ तक कि जब वह नाट्य करने रङ्गमञ्च पर जाती थी तो मुझे उसकी किताब या कोई पोशाक लेकर पर्दे के किनारे आड़ में खड़ी रहना पड़ता था। वह कम्पनी के मालिक की कृपा-पात्री थी, इसलिए सभी कर्मचारी-गण उससे दबते थे और उसके दबाव से कोई मुझसे भी चूँ नहीं करता था। वह पारसिन थी, मगर मेरे खाने-पीने का उसने हिन्दू-धर्म के अनुसार प्रबन्ध कर दिया था। वह नित्य ही अपना आदमी मेरे बताए हुए ठिकाने पर, मेरी दासी के लौटने का हाल जानने को भेजती थी। मगर जब महीना भर तक उसका कोई समाचार नहीं मिला तब मैंने यह समझ कर कुछ सन्तोष कर लिया कि बच्ची के साथ वह भी शायद पति जी के यहाँ रह गई।

इस बीच में उस अभिनेत्री की सङ्गति में नाट्यकला का मर्म मैं बहुत-कुछ समझ गई। क्योंकि उसे पढ़ने से चिढ़ थी। उसकी हमेशा की यही आदत थी कि कोई उसे उसका पार्ट पढ़ कर सुनाए, तब वह उसे याद करे। जब से मैं उसके साथ हुई तब से यह काम मेरे सर पड़ा। इस तरह उसके सभी पार्ट मुझे भी याद हो जाते थे। इससे उसको बड़ी सहूलियत हो गई। क्योंकि रङ्गमञ्च

पर जाने के पहिले वह अपने कमरे में अपने नाट्य का अभ्यास करके मुझ से वैसा ही करने को कहती थी। तब मेरे नाट्य में अपनी त्रुटियों को ताड़ कर अपने ऐब सुधारती थी।

कम्पनी महीने भर बाद वहाँ से दूसरे शहर के लिए रवाना हुई। वहाँ कॉङ्ग्रेस और प्रदर्शिनी का ज़माना होने के कारण कई और कम्पनियाँ भी आई हुई थीं। इसका अनुमान हमारी मण्डली ने पहिले ही कर लिया था। इसलिए वहाँ के लिए इसने ख़ास तौर से एक नया तमाशा तैयार किया था, जिसके अभिनय से वह सभों से बाज़ी मार ले जाने की आशा रखती थी। मगर उसकी सफलता जहानारा नामक चरित्र के नाट्य पर निर्भर थी, जिसका पार्ट मेरी सखी करने वाली थी। इसका पता अन्य कम्पनियों को चल गया। उन सभों ने लाग-डाँट में पड़ कर किसी दुष्ट के ज़रिए से मेरी सखी को सेंदुर खिलवा दिया। ऐन वक़्त पर मालूम हुआ कि सखी की आवाज़ फट गई और वह रङ्गमञ्च के लिए बेकाम हो गई। मेरी मण्डली पर एकाएक वज्र गिर पड़ा। अवस्था सुधारने की कोई युक्ति न थी। इतनी जल्दी कोई भी उसका पार्ट तैयार नहीं कर सकता था। ऐसे समय में मैंने बीड़ा उठाया। और सखी की जगह पर मैं नाट्य करने गई। ईश्वर मुझे यश देने वाले थे। मेरा पार्ट इतना उत्तम हुआ कि उसी दिन से मैं जहानारा के नाम से मशहूर हो गई। मैंने भी अपना अब यही नाम धारण करके मुसलमानी रहन-सहन अख़्तियार कर लिया। छुआछूत का मैंने कुछ भी ढकोसला नहीं रक्खा, क्योंकि इसको मैं दिल में पाखण्ड ही समझती थी। धर्म का आधार मैं विश्वास मानती हूँ, न कि छुआछूत का

प्रकाशित हो गया !   प्रकाशित हो गया !!

सचित्र राष्ट्रीय साप्ताहिक

का

पहिला अङ्क प्रकाशित हो गया, दूसरा अङ्क छप रहा है। शीघ्र ही ग्राहकों की श्रेणी में नाम लिखा लीजिए, अन्यथा आपकी फ़ाइल अधूरी रह जायगी।

पृष्ठ-संख्या ('चाँद' के दूने)	....	४४
चित्र-संख्या	....	२०
कार्टून	....	४

(आर्ट पेपर का कवर)

एक से एक महत्वपूर्ण लेख, जोशीली कविताएँ, कहानियाँ, विनोद, चुटकुले, 'क़हक़हे' केसर की क्यारियाँ—इन सारी चीज़ों की प्रत्येक सप्ताह सैर कीजिए। 'भविष्य' के लिए तारों द्वारा बिल्कुल नए समाचारों को प्राप्त करने का विशेष प्रबन्ध किया गया है। सभी सुप्रसिद्ध लेखकों का पूर्ण सहयोग आपको केवल 'भविष्य' में ही दिखाई देगा। एजन्टों को भी शीघ्रता करनी चाहिए

☞ मैनेजर 'भविष्य' चन्द्रलोक, इलाहाबाद

सीता	२॥)	अबलोन्नति पद्यमाला	≡)॥	श्रीशङ्कराचार्य और कुमारिल भट्ट	।॥)
जासूसी पिटारा	।॥)	कुल-ललना	।॥≈)	शताब्दी शतक	≡)
शीशमहल	२)	दुःखिनी	।॥)	श्वेताश्वतर	≡)
श्रीमद्भगवतगीता	≈)	दिव्य देवियाँ	१।॥≈)	उपनिषदों की भूमिका	।–)
कर्मक्षेत्र	३)	महिला स्वास्थ्य सञ्जीवन	१।)	योग-दर्शन	१॥)
नराधम	१≈)	दमयन्ती चरित्र	≈)॥	राजकोष	१॥)
सुन्दरी अमेलिया	।॥)	तरुण तपस्विनी	।)	शब्द शास्त्र	१।)
महाराणा प्रतापसिंह	१।)	सती पद्मिनी	।≈)	हिन्दी टीचर	१)
महात्मा गाँधी	१)	इश्कनामा (बोधाकृत)	।)	उपनिषदों की शिक्षा	२।)
धनकुबेर	१।॥)	कॉन्स्टेबिल वृत्तान्तमाला	।॥)	वेदप्रकाश (३ भाग)	२≡)
यो गर्नी	।॥)	वेदोपदेश (२ भाग)	२)	प्रार्थना पुस्तक	–)
आदर्श डाकू	३)	आर्यजीवन (२ भाग)	२॥)	शूद्रपुत्रम्	॥)
नैपोलियन बोनापार्ट	२)	न्याय प्रवेशिका	॥≈)	वेद-शिक्षक	।≈)
हेमलता	॥)	सर्वदर्शन संग्रह	१।)	गीता हमें क्या सिखलाती है ?	।–)
कलकत्ता ग[illegible]	१।)	तत्त्वसमास	॥)	नल-दमयन्ती	।)
सत्याग्रही प्रह्लाद	१)	प्रश्नोपनिषद्	।–)	द्रौपदी का पति केवल अर्जुन था	≈)
सम्राट परीक्षित (सजिल्द)	१॥)	कठोपनिषद्	।≡)	शुद्धि शास्त्र	॥≈)
भारत के महापुरुष	३॥)	केन उपनिषद्	≡)	हितोपदेश	॥)
भारतीय गौरव	१)	ऐतरेय उपनिषद्	≡)	रानी सुन्दरी	१।)
पञ्जाब का भीषण हत्याकाण्ड	१॥)	न्याय भाष्य	४)	फिर निराशा क्यों	।॥≡)
महावीर	१)	मुण्डक उपनिषद्	।≈)	प्रेमकली	१)
प्रवरिचन्त	३)	ईशोपनिषद्	≈)	राष्ट्रीय तरङ्ग	।–)
कामिनी-कानन	३)	वैशेषिक दर्शन	१॥)	सेवाधर्म	१।॥)
शैतानी करामात	१॥)	निघण्टु	॥–)	कर्मफल	।॥)
राष्ट्रीय झनकार (दो भाग)	॥)	निरुक्त भाष्य	४॥)	रसाल वन	।–)
महाराना हमीरसिंह	१)	छान्दोग्योपनिषद्	२।)	दम्पति रहस्य	१।॥)
महात्माओं की दिव्य वाणी	।)	पारस्कर गृह्यसूत्र	१।॥)	हम असहयोग क्यों करें ?	॥)
गाँधी-सिद्धान्त	॥)	वेदान्त दर्शन भाष्य	४)	म० गाँधी के उपदेश	–)
सत्यनारायण	१।)	मनुस्मृति	२।)	अदालतों की पोल	–)
भक्त चन्द्रहास	१॥)	महाभारत (२ भाग)	१२)	दरिद्र कथा	॥)
द्रौपदी	॥≈)	आर्यदर्शन	१॥)	प्रबन्ध पारिजात	॥–)
लवकुश	१।॥)	वाल्मीकीय रामायण	६)	आनन्द मठ	॥)
[illegible]	१)	वृहदारण्यक उपनिषद	२।)	शैतान की शैतानी	३)
सिन्दबाद जहाजी	।≈)	तैत्तीरीय उपनिषद्	॥)	आफ़त की पुड़िया	१॥)
पाक-कौमुदी	१)	शास्त्र रहस्य (२ भाग)	१।)	मौत का नज़ारा	१)
देवल देवी	।–)	उपदेश सप्तक	॥–)		

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

उदारता का पुरस्कार

एक गाँव में तीन भाई रहते थे। वे बहुत ग़रीब थे। उनके पास केवल एक छोटा बगीचा था। उसमें निंबू, आम, सन्तरे ,खूब फल-फूल रहे थे। तीनों भाई बारी-बारी से जग कर उसकी रखवाली करते थे।

एक दिन बड़े भोर ही भिखारिन के भेष में एक देवी बड़े भाई के पास गई और गिड़गिड़ा कर कहने लगी—भैया, मैं बहुत भूखी हूँ। तीन दिन से कुछ नहीं खाया। क्या मुझे कुछ खाने को दोगे?

बड़े भाई ने अपने दोनों भाइयों को बुला कर उस देवी को ख़ूब फल तुड़वा कर दिए। फलों से देवी ने अपनी भूख मिटाई और फिर अपने आपको प्रकट किया। कहा—"सचमुच तुम लोग बड़े अच्छे हो, मैं तुम्हें यथोचित पुरस्कार दूँगी।" दूसरे दिन देवी ने उन तीनों को नदी के तट पर ले जाकर पूछा—"अब बतलाओ, तुम क्या चाहते हो?" बड़ा भाई उस समय बहुत भूखा था। बोला—"यह नदी दूध की हो जाय।" देवी ने कहा—"ऐसा ही होगा; किन्तु इसको तुम अच्छे काम में लाना।"

मझले भाई से पूछा। उसने कहा—"मुझे बड़ा विद्वान बना दो।" देवी ने कहा—"ऐसा ही होगा।" अब छोटे भाई से कहा कि तुम अपनी इच्छा प्रकट करो। छोटे भाई ने सोच-समझ कर कहा—"मैं तुम्हारी ही तरह रूपवती, गुणवती और दयावती राजकुमारी चाहता हूँ।" यह सुन कर देवी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह उसे साथ ले चली और कुछ दिनों पश्चात् एक बड़े राज्य में पहुँची। वहाँ की राजपुत्री सब गुणों से सम्पन्न थी। किन्तु उसने प्रण किया था कि जो कोई मेरे प्रश्न का उत्तर ठीक-ठीक देगा, उसी के साथ विवाह करूँगी। इसी कारण बहुत से राजकुमार निराश होकर चले गए थे। जब छोटा भाई, जिसका नाम मनमोहन था, अपना भाग्य आज़माने वहाँ गया, तो राजकुमारी ने अपने दोनों प्रश्नों को इस प्रकार कहा—

प्रश्न (१) कहा न तिरिया कर सके,
कहा न सिन्धु समाय?
कहा न पावक में जरे,
कहा काल नहिं खाय?
(२) कौन तपस्वी तप करे,
को नित उठ कर न्हाय?
को उगले सब रसन को,
को सब रस को खाय?

इन प्रश्नों को सुन कर मनमोहन विचार करने लगा। देवी ने गुप्त रूप से उसके कानों में कुछ कह दिया। सुनते ही मनमोहन उत्तर देने लगा—

उत्तर (१) पुत्र न तिरिया जन सके,
मन नहिं सिन्धु समाय।
धर्म न पावक में जरे,
नाम काल नहिं खाय॥

(२) सूरज तपसी तप करे,
ब्रह्मा नित उठ न्हाय।
इन्द्र उगले सब रसन को,
धरती सब रस खाय॥

जब राजकुमारी अपने प्रश्नों के उत्तर से सन्तुष्ट हो गईं, तब इनका धूमधाम से विवाह होगया। देवी ने एक जङ्गल में कुटिया बना दी, उसमें ये रहने लगे।

कुछ दिनों पश्चात् देवी फिर तीनों को देखने की लालसा से निकली। बड़े भाई के समीप जाकर वह दूध माँगने लगी। बड़ा भाई दूध के व्यापार में ख़ूब धनी होगया था। उसने कहा—"वाह! ऐसे ही सब दूध बाँटता रहूँ, तो मैं क्या खाऊँगा?" देवी ने कहा—"फिर दरिद्र हो जा।" वह वैसा ही बन गया।

अब देवी मँझले भाई के पास गई और उससे भी भिखारिन बन कर कुछ माँगा। अन्त में रूखा उत्तर पा, रोष के साथ बोली—"तुम भी महा कङ्गाल हो जाओ।" वह कङ्गाल होगया। बेचारा बहुत रोया-गिड़गिड़ाया, पर सब व्यर्थ हुआ।

अन्त में वह मनमोहन के पास गई। बोली—"मैं बहुत दुखिया हूँ। रात भर ठहरने दो, और कुछ खाने को दो।" राजकुमारी तथा मनमोहन ने भिखारिन का बड़ा स्वागत किया, आराम से ठहराया और खाना बना कर खिलाया। छोटी सी झोपड़ी थी, इसलिए वे दोनों बाहर सोए, भिखारिन बड़े सुख से अन्दर सोई। आधी रात को जब दोनों की नींद टूटी तो क्या देखते हैं कि सारे जङ्गल के पेड़-पत्ते बड़े ज़ोर से हिल रहे हैं।

बस देखते ही देखते झोपड़ी, एक सुन्दर महल के रूप में बदल गई। देवी ने प्रत्यक्ष होकर अपने को प्रकट किया, और दयार्द्र हो कहने लगी:—

"मनमोहन! यही मैं तुमको, दयालुता के वशीभूत हो, तुम्हारी उदारता का पुरस्कार दे रही हूँ। मैं सदा तुम्हारी रक्षक होकर समय-समय पर तुम्हारी सुधि लेती रहूँगी। तुम दोनों चिरञ्जीवी हो।"

—सैयद क़ासिमअली, विशारद, साहित्यालङ्कार

* * *

बाल-विनय

हे भगवान,
दो बरदान,
महा पुरुष मैं कहलाऊँ।
दुर्गण छोड़,
सद्गुण जोड़,
सज्जन बन सुख उपजाऊँ॥
अपना देश,
अपना वेश,
अपनी भाषा अपनाऊँ।
बन बलवान,
बन विद्वान,
अमर नाम मैं कर जाऊँ॥

—सोहनलाल द्विवेदी

* * *

किसी आदमी का नौकर छुप कर शराब पिया करता था। एक दिन उन्होंने नौकर की कोठरी में शराब का पीपा देख लिया और बड़े नाराज़ हुए। नौकर ने बात बना कर कहा कि डॉक्टर ने तन्दुरुस्ती ठीक रखने के लिए मुझको शराब पीने की राय दी थी। तब वे कुछ ठण्डा होकर पूछने लगे—तो इससे कुछ फ़ायदा हुआ?

नौकर—जी हाँ, जिस रोज़ यह पीपा आया था उस रोज़ दो आदमी भी इसे मुश्किल से उठा सकते थे, पर आज मैं अकेला इसे सहज में ले जा सकता हूँ।

पति—(बीबी से लड़ाई होने पर) मैं बड़ा बेवक़ूफ़ था जो तुमसे शादी की।

स्त्री—मैं भी इस बात को जानती थी, पर मैं समझती थी कि आगे चल कर तुम सुधर जाओगे।

* * *

डॉक्टर—आप रात को सोने से पहले एक चमचा दवा और चार चमचा पानी सेवन कीजिए।

मरीज़—पर डॉक्टर साहब, हमारे घर में तीन ही चमचे हैं।
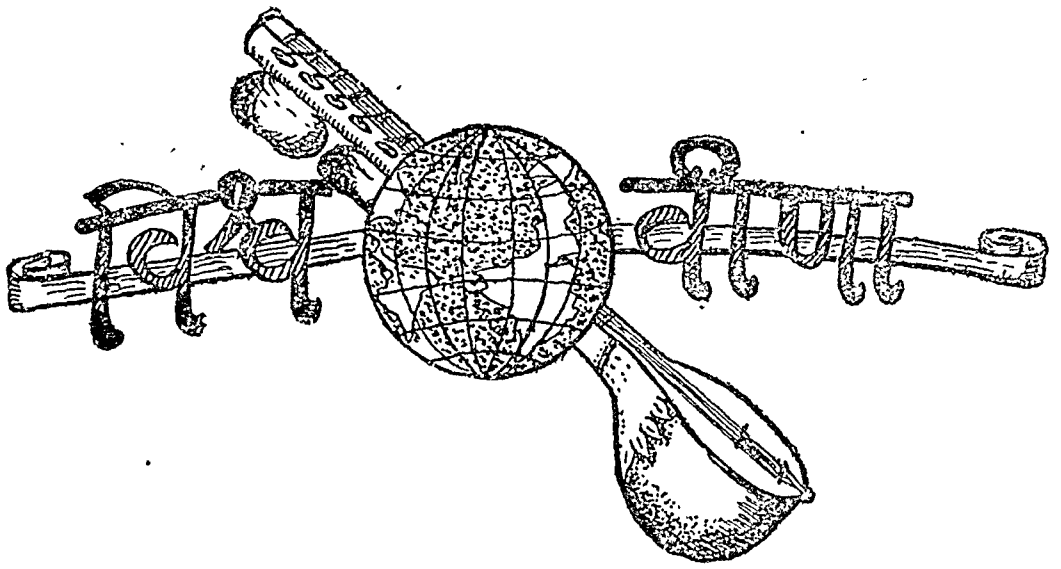
शारदा एक्ट

आर्य-समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान पण्डित गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए० ने 'वेदोदय' के वैशाख के अङ्क में बाल-विवाह-निषेध क़ानून पर एक विचारपूर्ण लेख लिखा है, जिसे हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं :—

भारतवर्ष में बाल-विवाह का बड़ा प्रचार है। इससे देश तथा जाति की हर तरह की हानि हो रही है। एक-एक, दो-दो वर्ष के बच्चों का विवाह कर दिया जाता है और बहुत कम बालक ऐसे मिलेंगे जिनका १२ या १४ वर्ष की अवस्था में विवाह न हो गया हो। ऐसी कुप्रथा को देख कर महाशय हरिविलास जी शारदा ने, जो लेजिस्लेटिव एसेम्बली के मेम्बर हैं, एक क़ानून पेश किया जिसके अनुसार कोई लड़की १४ वर्ष से कम की और कोई लड़का १८ वर्ष से कम का विवाहित न हो सके। यह बिल २३ सितम्बर १९२९ को लेजिस्लेटिव एसेम्बली में पास हुआ। २८ सितम्बर १९२९ की स्टेट काउन्सिल ने भी इसे पास कर दिया और १ अक्टूबर सन् १९२९ ई० को गवर्नर जनरल महोदय ने इसकी स्वीकारी दे दी। यह एक्ट १ अप्रैल, १९३० से जारी हो गया।

इस एक्ट के विरुद्ध तथा अनुकूल देश भर में आन्दोलन हो रहा है। भिन्न-भिन्न सुधारक सभाओं और पुरुष-स्त्रियों ने इस पर हर्ष प्रकट किया, परन्तु बहुत से पुरानी चाल के लोग इसका विरोध भी कर रहे हैं।

इस एक्ट के सम्बन्ध में नीचे लिखी बातों पर विचार करना उचित है :—

(१) क्या १४ वर्ष से कम की लड़की और १८ वर्ष से कम के लड़के का विवाह शारीरिक निर्बलता का कारण है?

(२) क्या इस प्रकार के विवाहों से सामाजिक हानियाँ होती हैं?

(३) क्या इस प्रकार के विवाहों को रोकना किसी धर्म के विरुद्ध है?

(४) क्या इस प्रकार के सुधार के लिए सरकारी क़ानून की सहायता के बिना काम नहीं चल सकता?

(५) क्या इस प्रकार के सुधार में सरकारी क़ानून की सहायता लेनी चाहिए?

(६) क्या शारदा एक्ट में कोई ऐसी धारा है जिसके अनुसार पुलिस या सरकार से अन्याय की सम्भावना है?

हम प्रत्येक बात को अलग-अलग लेंगे। जो लोग विवाह के उद्देश्य तथा ब्रह्मचर्य के महत्व को जानते हैं, वह कह सकते हैं कि सन्तानोत्पत्ति के लिए कम से कम १६ वर्ष की स्त्री और २५ वर्ष का पुरुष चाहिए। सुश्रुत में लिखा है—

> ऊनषोडश वर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
> यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते॥
> जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
> तस्मादत्यन्त बालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥
>
> —सुश्रुत शरीरस्थाने १०। ४७, ४८

अर्थात्—यदि १६ वर्ष से कम की स्त्री और २५ वर्ष से कम के पुरुष सन्तानोत्पत्ति करेंगे तो तीन बातें होंगी; (१) या तो गर्भ गिर जाय (२) या बालक उत्पन्न हो, परन्तु बहुत दिन न जिए (३) या जितने दिनों जिए निर्बल रहे। पश्चिम के आधुनिक डॉक्टरों की भी यही राय है कि बाल-विवाह से शरीर क्षीण और निर्बल होता है। इसलिए शारदा एक्ट ने १४ और १८ वर्ष की जो क़ैद रक्खी है वह थोड़ी है। कम से कम १६ और २५ की क़ैद रखनी चाहिए थी।

२

शारीरिक हानि के अतिरिक्त सामाजिक हानि भी बहुत हो रही है। छोटी आयु में विवाह होने के कारण लड़कियाँ और लड़के पढ़ने नहीं पाते। लड़कियाँ या तो पढ़तीं नहीं या विवाह होते ही पाठशालाओं से उठा ली जाती हैं। लड़के छोटी आयु में ही स्त्री के भार से दब जाते हैं। उनका ध्यान बट जाता है, उनकी स्मृति कम हो जाती है और वह अनेक कष्टों को सहन करते हैं। बच्चों को शारीरिक तथा मानसिक उन्नति के लिए जो स्वतन्त्रता तथा चिन्ता-रहितता चाहिए वह नहीं रहती। इसलिए बाल-विवाह से हानि ही हानि है।

छोटी अवस्था में चेचक आदि से मृत्यु बहुत होती है, इसलिए भारतवर्ष में विधवाओं की संख्या बहुत बढ़ रही है। बाल-विधवाओं के बढ़ने से पातिव्रत्य धर्म की हानि, भ्रूणहत्या तथा अनेक प्रकार के पाप और अनाचार बढ़ रहे हैं।

बालिकाओं के मर जाने से यह दशा हो रही है कि बीस-बीस वर्ष के लड़कों के तीन-तीन विवाह करने पड़ते हैं। इसलिए धन की भी बड़ी हानि होती है।

सबसे बड़ी हानि यह है कि बल-वीर्य के घटने से लोग न देश-सेवा कर सकते हैं, न जाति-सेवा। और देशों में जिस अवस्था के लड़के अपनी शक्ति बढ़ाने और चैन से जीवन व्यतीत करने में लगे रहते हैं, उस अवस्था में हमारे देश के लड़के-लड़कियों के चार-चार सन्तान हो जाती हैं। उनके पास उनके पालन-पोषण की सामग्री भी नहीं होती। और इसलिए उनका समस्त जीवन दुःखमय हो जाता है। ३५ या ३५ वर्ष का पुरुष न केवल अपने पुत्र-पुत्रियों, किन्तु पौत्र-पौत्रियों के विवाह की चिन्ता में ग्रस्त हो जाता है। शारदा एक्ट से इन हानियों में अवश्य कमी होगी।

३

क्या शारदा एक्ट किसी धर्म के विरुद्ध है? इस समय भारतवर्ष में तीन धर्म हैं। ईसाई तो बड़ी अवस्था में ही विवाह करते हैं। मुसलमानों में और विशेष कर बङ्गाल के मुसलमानों में बहुत छोटी आयु में विवाह होता है। बहुत से मुसलमान नेता इस हानि को समझते हैं और इसलिए वह शारदा एक्ट के पक्ष में हैं। परन्तु कुछ मुसलमानों को दो आक्षेप हैं:—

(१) उनके पैग़म्बर मुहम्मद साहेब ने हज़रत आयिशा से जब विवाह किया था, उस समय हज़रत आयिशा की आयु १४ वर्ष से बहुत कम थी।

(२) वह सरकार का हस्तक्षेप नहीं चाहते।

मुसलमान नेताओं की राय है कि मुसलमानी धर्म बाल-विवाह का विरोधी है। ऐसी अवस्था में यदि उनके पैग़म्बर ने किसी कारण हज़रत आयिशा से कम आयु में विवाह कर भी लिया तो वह दूसरों के लिए उदाहरण नहीं हो सकता; न उन्होंने कहीं कहा कि मेरे अनुयायियों को ऐसा करना चाहिए। प्रत्येक मुसलमान पैग़म्बर होने का दावा नहीं करता। इसलिए पैग़म्बरों की बात पैग़म्बर के लिए छोड़ देनी चाहिए। मुसलमानी धर्म के अनुसार हज़रत मुहम्मद साहेब आख़िरी पैग़म्बर थे। अतः अब न कोई पैग़म्बर होगा और न उसके लिए पैग़म्बरों की सी आवश्यकता होगी। जब पैग़म्बर साहब ने कहीं ऐसी आज्ञा नहीं दी कि छोटी आयु में विवाह करो तो इस आक्षेप को छोड़ ही देना चाहिए। वस्तुतः मुसलमान नेताओं ने भी ऐसा ही किया है। उन्होंने इस आक्षेप में कोई तत्व न देख कर ही उस पर कार्य नहीं किया और शारदा एक्ट के पक्ष में सम्मतियाँ दीं।

यह कहना भी ठीक नहीं है कि मुसलमान गवर्नमेण्ट का हस्तक्षेप नहीं चाहते। बहुत से धार्मिक कृत्यों में भी, जहाँ व्यक्तिगत जीवन-मरण का प्रश्न होता है, सरकारी क़ानून की सहायता लेनी पड़ती है। बाल-विवाह में तो मुसलमानों के स्वार्थ की हानि है, इसलिए बाल-विवाह बन्द करने का नियम केवल धार्मिक ही नहीं, किन्तु अधिकतर सामाजिक भी है।

अब रहे हिन्दू। हिन्दुओं के धर्माध्यक्ष पुरानी चाल के पण्डित बड़ी हाय-तोबा मचा रहे हैं। वह कहते हैं कि बाल-विवाह शास्त्रोक्त है। उनका कहना है कि—

(१) शास्त्रों ने लड़की का विवाह छोटी आयु में करने की आज्ञा दी है।

(२) रजस्वला होने के पश्चात् विवाह करना पाप है।

वह इसके लिए शीघ्रबोध का यह श्लोक देते हैं :—

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नव वर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेद् कन्या तदूर्ध्वं रजस्वला॥
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्या रजस्वलाम्॥

अर्थात् यदि घर में रजस्वला बिन ब्याही कन्या रहे तो माता, पिता और बड़े भाई नरक को जाते हैं। वस्तुतः इस श्लोक ने हिन्दुओं की जितनी हानि की है उतनी शायद ही किसी ने की हो। यद्यपि हिन्दू लोग सैकड़ों ऐसे काम नित्य प्रति करते हैं, जिनसे सिवाय नरक के स्वर्ग की आशा ही नहीं हो सकती, तथापि नरक के डर से अपने बच्चे-बच्चियों का विवाह अवश्य कर देते हैं। हम यहाँ कुछ प्रमाण देते हैं, जिनसे सिद्ध होगा कि नरक का यह डर ग़लत है और ऊपर का शीघ्रबोध का श्लोक धर्म-शास्त्रों से विरुद्ध है :—

पहिला प्रमाण

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्॥

—अथर्ववेद ११।५।१८

अर्थ—ब्रह्मचर्य पालन करके कन्या जवान पति को प्राप्त होती है।

यहाँ कन्या और वर दोनों को ब्रह्मचर्य पूर्ण करके अर्थात् जवान होकर विवाह का आदेश है। १४ वर्ष से कम की लड़की और १८ वर्ष से कम का वर जवान नहीं कहलाया जा सकता।

प्रश्न—इस मन्त्र में पति के लिए जवान होना लिखा है, लड़की के लिए नहीं। देखो "ब्रह्मचर्येण" पद पति के लिए आया है, कन्या के लिए नहीं।

उत्तर—अर्थ का अनर्थ मत करो। "ब्रह्मचर्येण" पद पहले ही पड़ा है, अतः वह कन्या और वर दोनों के लिए है। यदि विवाह के लिए पति को जवान होना ज़रूरी है तो स्त्री को भी जवान ही होना ज़रूरी है। देखो सायणाचार्य जी इस मन्त्र का क्या भाष्य करते हैं:—

कन्या अकृत विवाहा स्त्री ब्रह्मचर्यं चरन्ती तेन ब्रह्मचर्येण युवानम् युवत्वगुणोपेतम् उत्कृष्टं पतिं विन्दते लभते।

"ब्रह्मचर्यं चरन्ती" पद कन्या के लिए ही आया है।

दूसरा प्रमाण

उदसौ सूर्यो अगादुदयं मामको भगः।
अहं तद्विद् वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः॥

—ऋग्वेद १७।१५९।१

अर्थ—यह देखो सूर्य उदय हुआ और इसी के साथ मेरे भाग्य भी उदय हुए, क्योंकि मैं जानने वाली और बला अर्थात् बलयुक्त स्त्री आज पति को प्राप्त हुई हूँ।

यहाँ स्त्री को (तद्विद्) अर्थात् जानने वाली और (बला) अर्थात् बलयुक्त कहा है। अबोध छोटी बालिका में यह गुण नहीं हो सकते। अतः सिद्ध है कि बालिकाओं के विवाह का वेद में निषेध है।

तीसरा प्रमाण

अहं केतुरहं मूर्धाहं मुग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः से हानाया उपचरेत्॥

—ऋग्वेद १०।१५९।२

अर्थ—वधू कहती है कि मैं पताका हूँ। मैं शिर हूँ। मैं तेज-निर्णायक हूँ। मेरा पति मेरी सलाह से काम करे। क्या छोटी बच्ची ऐसा कह सकती है?

चौथा प्रमाण

सोमो वधूयरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यांयत्पत्ये शसन्तीं मनसा सविता ददात्॥

—ऋग्वेद १०।८५।

अर्थ—युवक को वधू की इच्छा हुई। इसलिए कन्या और पुरुष की वर संज्ञा हुई। अर्थात् दोनों (वरश्च वराच वरौ) वर कहलाए। पिता ने पति की प्रशंसा करने वाली लड़की को हर्षपूर्वक विवाह में दे दिया।

यहाँ दो शब्दों पर विचार करो और फिर शङ्का न रहेगी। पहला शब्द है "वधूयः" अर्थात् वधू की इच्छा वाला। ऐसा पुरुष जवान ही हो सकता है। दूसरा शब्द है "पत्येशसन्ती" अर्थात् पति की प्रशंसा करने वाली। ऐसी वधू भी जवान ही हो सकती है, बालिका नहीं।

पाँचवाँ प्रमाण

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति यईं।
वहाते महिषीमिषिराम् ॥

—ऋग्वेद ५। ३७। ३

अर्थ—यह वधू पति की इच्छा करती हुई आती है। पति इस बलवती वधू को ले जाता है।

यहाँ 'इषिरा' शब्द का अर्थ है बलवती, न कि बालिका।

४

अब प्रश्न यह है कि यदि बाल-विवाह धर्म-विरुद्ध है तो क्या इसको बिना गवर्नमेण्ट की सहायता के रोका नहीं जा सकता? बात यह है कि यदि ऐसा सम्भव होता तो हम कदापि सरकारी द्वार खटखटाने के पक्ष में न होते। किसी पाप के रोकने के दो ही तरीक़े हैं, एक तो सामाजिक दबाव, दूसरा सरकारी दण्ड का भय। सामाजिक दबाव, बाल-विवाह के विरुद्ध बिल्कुल नहीं है। स्वयं संस्कृतज्ञ पण्डितों को हमने बूढ़ी आयु में छोटी बच्चियों से विवाह करते देखा है। पचास-साठ वर्ष के घोर सुधार-आन्दोलन ने भी इनके कान पर जूँ नहीं रेंगने दी। वह अपने को सुरक्षित समझते हैं। दबाव कौन डाले? पण्डित-वर्ग तो डालने से रहे। यह स्वयं बाल-विवाह करते और "रजस्वला" आदि के मनगढ़न्त बहाने पब्लिक के सामने रखते हैं। हमको बड़ा शोक होता है, जब हम देखते हैं कि बड़े-बड़े पण्डित ही सामाजिक कुरीतियों की बहुत सहायता करते हैं और सुधार का वायुमण्डल बनाने में विघ्नकारक होते हैं। यह तो सभी कह बैठते हैं कि सरकार की सहायता न लो, परन्तु बिना सरकार की सहायता के वे स्वयं सुधार करने में सहायता भी तो नहीं देते। जब १२ वर्ष का रज़ामन्दी का क़ानून (Age of Consent) पास हुआ था तो कुछ लोगों ने विरोध किया था कि सरकार की सहायता मत लो। परन्तु किसी ने स्वयं इस घोर अत्याचार के रोकने के लिए उद्योग नहीं किया। आज भी वही बात है। बिना सरकारी क़ानून के काम नहीं चल सकता। इसके लिए सबसे भारी प्रमाण यह है कि १ अप्रैल से पहले पण्डितों द्वारा ही बाल-विवाह कराए जा रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि पण्डित-वर्ग सुधार के पक्ष में नहीं। यदि वे अपने कर्त्तव्य को समझते तो कदापि बाल-विवाह कराने में योग न देते। बहुत से पण्डित-वर्ग तो क़ानून भङ्ग करने की धमकी देते हैं। वह यह नहीं जानते कि बाल-विवाह रोकने वाले नियम का भङ्ग करना सत्याग्रह नहीं, किन्तु मिथ्याग्रह है।

५

ऊपर की बातें सोचने से यही अभीष्ट प्रतीत होता है कि सरकारी नियम बनाया जाता। और चूँकि अब यह नियम बन गया है, इसलिए हम सभी को रायसाहब बाबू हरविलास जी शारदा का कृतज्ञ होना चाहिए। मैं पूछता हूँ कि यदि सरकार से तुम पाप और अत्याचार के रोकने में सहायता नहीं ले सकते तो सरकार है किस रोग की दवा? क्या सरकार केवल कर लेने के लिए है? क्या कोई चोरी करे तो पुलिस में तुम सूचना करने नहीं जाते? क्या डाका पड़े तो सरकार की सहायता नहीं लेते? यह तो चोरी और डाके से भी अधिक अत्याचार है कि करोड़ों बेचारी बच्चियों पर धर्म के नाम पर अत्याचार किया जाय और उनको सैकड़ों शारीरिक और मानसिक रोगों का शिकार बना दिया जाय।

६

कुछ लोग कहते हैं कि शारदा एक्ट पुलिस को अत्याचार करने का अवसर देगा। परन्तु ऐसा नहीं है। समस्त एक्ट इस चातुर्य से बनाया गया है कि पुलिस के स्वयं आक्षेप करने का भय नहीं है।

* * *

राष्ट्रीय सङ्गठन का प्रश्न

आधुनिक युग में सङ्घ-शक्ति और सङ्गठन-शक्ति का महत्व कितना अधिक है, इसका विवेचन करते हुए "बरनवाल-चन्द्रिका" के सुयोग्य सम्पादक महोदय ने कुछ काल पूर्व

एक बहुत विचारपूर्ण लेख अपने पत्र में लिखा था। उसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

क्या कारण है कि भारत के एक कोने में रहने वाले भारतवासियों की संख्या के बराबर रहते हुए भी जापानियों की गणना संसार की प्रबलतर शक्तियों में होती है? क्या बोलशेविक रूस के सङ्गठित होने ही का यह परिणाम नहीं है कि आज संसार के सारे बलशाली राष्ट्र उसकी ओर अपने कान किए हुए हैं? क्या यह सत्य नहीं है कि एक देशभक्त अङ्गरेज़ के पीछे अङ्गरेज़ों की सारी सल्तनत अपना सर्वस्व स्वाहा करने को तैयार है? क्या यह उनके परस्पर प्रेम ही का प्रभाव नहीं है, जो हम ३३ कोटि भारतवासियों को उनकी मुट्ठी भर संख्या भेड़ों की भाँति जब चाहें बाँध कर जेलों में ठूँस दें, और जब चाहें यत्र-तत्र चरने को छोड़ दें? हम इतनी संख्या में होते हुए भी उनके हाथों की कठपुतली बने हुए हैं। हमें तो भेड़ों की भाँति मरना भी नहीं आता, नहीं तो कदाचित् हम भेड़ों के मरणोपरान्त उससे जो दुर्गन्ध निकलती उसीसे वे हमारा देश छोड़ कर भाग जाते। आज अफ़ग़ानिस्तान की दशा चाहे बुरी हो रही है, पर उसमें अभी तङ्ग आमद में जङ्ग आमद की शक्ति तो वर्तमान है। आख़िर हम क्यों इतने निर्जीव हो रहे हैं? हममें जीवन क्यों नहीं है? हममें भी उत्साहपूर्वक मिल कर काम करने की शक्ति क्यों नहीं है? इसका कारण है और वह प्रत्यक्ष है।

हमारे ऋषियों के, हमारे आचार्यों के आदर्श भले ही सर्वाङ्ग परिपूर्ण रहे हों, उनमें चाहे हज़ारों गुण और दोष नाम मात्र को भी न रहे हों, पर प्राचीनता के नाम पर, उनके बनाए हुए धर्म-ग्रन्थों के नाम पर आज बड़ा अनर्थ किया जा रहा है। आज न हम शास्त्रों को मानते हैं, न अपने ऋषियों के प्रणीत और कथित आदर्शों को मानते हैं। हाँ, मानते हैं उन पोप-पाखण्डियों के मोह और नाश-जाल को, जिसमें फँस कर आज हमारा सर्वस्व स्वाहा हो रहा है। यद्यपि भिन्न-भिन्न जातियों के प्रारम्भ होने का सम्यक् इतिहास अभी तक नहीं मिला है, पर यह तो प्रत्यक्ष है कि हमारे यहाँ चार वर्ण और चार आश्रम थे। दैव-दुर्विपाक से, मालूम नहीं कब से, इन वर्णों में भी उपवर्ण और उपवर्णों के अन्दर भी अनेक जातियाँ और उनकी शाखा-दरशाखा लेकर हज़ारों जातियाँ बन गईं। इधर आपस में भेद डालने वाली, परस्पर राग-द्वेष की मूर्त्ति (जाति-उपजाति आदि) की संख्या का निरन्तर बढ़ना जारी हो गया और उधर चारों आश्रमों की भी कायापलट होने लगी। ब्रह्मचर्य अवस्था के अन्दर ही पढ़ाई-लिखाई ख़तम कर चार-चार बच्चों के पिता होने का सौभाग्य मिलने लगा। यही नहीं, इस विवाह-विषय-जाल ने साठ-साठ, सत्तर-सत्तर वर्ष के वाणप्रस्थ और संन्यासावस्था को प्राप्त वृद्ध पुरुषों को भी न छोड़ा और उन्हें भी फँसा-फँसा कर छोटी-छोटी छोकरियों के साथ काम-क्रीड़ा करने में प्रवृत्त कर दिया। सारांश ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ और संन्यास—चारों आश्रमों के स्थान में केवल एक पाप का पुञ्ज गृहस्थ आश्रम ही रह गया। फिर गृहस्थी में रह कर, लड़के-बालों के फेर में पड़ कर, सिवा स्वार्थ-सिद्धि के, परोपकार करने की शक्ति कितने लोगों में रहती है? जब सब गृहस्थ जीवन ही व्यतीत करने लगे तो कौन उपदेश दे, कौन दूसरों के हित, जाति-देश के लिए मरने की शिक्षा दे और पथभ्रान्त मनुष्यों को सन्मार्ग बतलावे? इस प्रकार जब विद्या और ज्ञान का लोप हुआ तो लोग वास्तविक बड़प्पन को छोड़ पाखण्ड द्वारा ऊँचा बनने की कोशिश करने लगे। जातियों की संख्या बढ़ ही चुकी थी, किसी विशेष स्थान का ब्राह्मण दूसरे स्थान के ब्राह्मण से अपने को बड़ा कहने लगा और उससे खान-पान, रोटी-बेटी से अपना सम्बन्ध करना विच्छेद कर दिया। यही दशा क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की भी हो गई।

जब ब्राह्मण, ब्राह्मण के हाथ का बनाया भोजन नहीं खा सकता—यही क्यों, मैंने अनेक निम्न जातियों के (मैं निम्न नहीं कहता) व्यक्ति को यह कहते सुना है कि मैं ब्राह्मणों के हाथ का बनाया न खाऊँगा—तो भला छुआछूत का बल क्यों न बढ़े और परस्पर प्रेम-भाव की कमी क्यों न हो जाय? फिर जीवन आवे तो कैसे आवे? जीवन तो समूह में है, प्रेम में है, सङ्गठन में है। आज यदि एक मुसलमान पर आक्रमण होता है तो सारे मुसलमान—मुसलमान होने की हैसियत से उसका पक्ष लेते हैं; आज यदि एक ईसाई पर आफ़त आती है तो सारा ईसाई-समाज उसके साथ होता है; पर यहाँ तो सरयूपारी ब्राह्मण मार खाता है, फिर और ब्राह्मणों तथा वर्णों से क्या सम्बन्ध? क्षत्रिय मार खाता है तो रघुवंशी, औरों से क्या

सम्बन्ध ? इसी प्रकार सबकी एक न एक दिन पीटे जाने की नौबत आ जाती है, पर हम अपनी-अपनी जाति और कुटुम्ब लेकर मुर्दों की तरह पड़े रह जाते हैं। हममें इस बात का ध्यान ही नहीं, इसका ज्ञान ही नहीं होता कि हिन्दू मारा जाता है, और हिन्दू के नाते हम सबका कर्तव्य है कि आँख दिखाने वाले की आँख हम निकाल लें।

पर यह हो कैसे ? हमारे हिन्दू-समाज का धागा तो इतना निर्बल है कि छूने से टूट जाता है। हम अपने प्राण से प्यारे मित्र के साथ—यदि वह अन्य जाति का है—भोजन आदि कार्यों में स्वतन्त्रता-पूर्वक भाग नहीं ले सकते। उसके साथ भी ऐसा करने से हिन्दू-समाज की डोरी बिखरने लगती है। एक दूसरे के हाथ का पानी पी लेने में जाति-बहिष्कृत होने का फ़तवा मिलता है। फिर एक दूसरे के लिए प्रेम क्योंकर पैदा हो और एक दूसरे पर काम पड़ने पर निछावर क्योंकर हों ? आज हम २२ करोड़ हिन्दुओं का कार्य छुआछूत और नित्य नई-नई जाति-उपजाति का निर्माण करना और इस प्रकार आपस में द्वेषभाव फैलाना रह गया है। फिर इसके परिणाम को हम न भोगेंगे तो कौन भोगेगा ?

जब तक हम इन क्षुद्र बन्धनों को काट कर एक साथ सुसङ्गठित रूप में कार्य करने की क्षमता नहीं प्राप्त कर लेते, तब तक हमारी परतन्त्रता की बेड़ियों का कटना और हमारा जीवनमय होना असम्भव है

* * *

गुण्डों के आक्रमण से स्त्रियों की आत्मरक्षा के कुछ उपाय

इस विषय पर सहयोगी "सैनिक" में कुछ समय पहले एक बहुत ही उपयोगी लेख प्रकाशित हुआ था, जिसे हम अविकल रूप में यहाँ उद्धृत करते हैं। पाठकों को याद होगा, अभी हाल ही में ढाका (बङ्गाल) में दो नवयुवतियों ने गुण्डों के एक बड़े गिरोह के साथ अद्भुत वीरता से लाठी-युद्ध किया था और पूरे आध घण्टे तक उन्हें घर में घुसने से रोक रक्खा था। यह उदाहरण इस बात को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि इस लेख में वर्णित दाव-पेंच केवल पुस्तकों और पत्रिकाओं के पन्नों में रहने के लिए ही नहीं हैं, वरन् इनसे काम भी लिया जा सकता है।

हिन्दुस्तान में आजकल आए-दिन हिन्दू औरतों के उड़ाए और भगाए जाने की ख़बरें अख़बारों में छपती रहती हैं। लेकिन आज तक किसी का ध्यान इस बात की ओर नहीं गया कि अगर औरतों को आत्म-रक्षा के कुछ साधन बता दिए जायँ तो वे गुण्डों से अपनी रक्षा कर सकें और कोई गुण्डा उन्हें कम से कम ज़बरदस्ती न भगा ले जा सके। जहाँ के मूर्ख मर्द तक व्यायाम करना, कुश्ती लड़ना, दाव-पेंच सीखना, लाठी चलाना शान तथा इज़्ज़त के ख़िलाफ़ और गँवारू काम समझते हैं वहाँ की औरतें नाम की गुड़ियाएँ ये सद्गुण कहाँ से सीख सकती हैं !

लेकिन जहाँ के लोग वाक़ई मर्द हैं, आज़ाद हैं और शेरों की तरह स्वतन्त्र विचरते हैं, वहाँ की स्त्रियाँ भी शेरनियों की तरह अपनी रक्षा अपने आप कर सकती हैं। बदमाशी और बदमाश सब जगह होते हैं। औरतों को भगाने वाले, उनसे छेड़-छाड़ करने वाले, उनको अकेली-दुकेली पाकर उन पर हमला करने वाले बदमाश सब देशों में होते हैं। हिन्दुस्तान में यह बदमाशी दीन और क़ौम के नाम पर भी होती है, बस इतना फ़र्क़ है। नहीं तो शेख़ लोग ये सब बदमाशियाँ अमेरिका में भी करते हैं। इस बदमाशी के डर से अमेरिका के शेर अपनी शेरनियों को परदे में बन्द करके अपने हिजड़ेपन का परिचय नहीं देते, बल्कि उनकी शेरनी के से ख़ूँख़्वार पञ्जे पैना कर उन्हें इस लायक़ बना देते हैं कि जिससे वे बदमाशों को चुटकी बजाते पछाड़ सकें। वहाँ की नवयौवना ललनाएँ घरों में बन्द न रह कर मज़े से, निडर होकर, जहाँ चाहती हैं, फुदकती फिरती हैं। इसलिए इन नवयुवतियों को आत्म-रक्षा के उपाय सिखा देना बहुत आवश्यक और महत्वपूर्ण माना जाता है। इसके लिए कप्तान ओब्राइन नाम के एक अमेरिकन ने कुछ ऐसे दाव-पेंच खोज निकाले हैं, जिन्हें सीख कर फूलों से भी कोमल कुमारियाँ मज़बूत से मज़बूत बदमाश को ज़मीन दिखा कर उनसे चीं बोला सकें। ये कप्तान ओब्राइन अमेरिका की पुरानी

नौ-सेना के एक ग्रैजुएट हैं, नागस्की में कुछ साल पुलिस-इन्सपेक्टर भी रह चुके हैं। इन्होंने अमेरिका के बहुत बड़े-बड़े आदमियों को, प्रेसिडेण्ट रुजवैल्ट जैसे आदमियों तक को, आत्मरक्षा के दाव-पेंच सिखाए हैं। ये दाव-पेंच वास्तव में जापान के जुजुत्सु नाम के मशहूर दाव-पेंचों में कुछ हेर-फेर करके निकाले गए हैं। हाँ, इन दाव-पेंचों के निकालने में मानवीय शरीर के मशीन सम्बन्धी सिद्धान्तों और लिवर के नियमों को आधार बनाया गया है। इनमें ऐसी करामात है कि अगर पूरी ताक़त से इन पेंचों से काम लिया जाय तो ये आसानी से हड्डियाँ तोड़ सकते हैं और पुट्ठों को उखाड़ सकते हैं।

फ़िलैडलफ़िया (अमेरिका) के 'पब्लिक लेजर' (Public Ledger) नामक अख़बार में इन दाव-पेंचों का जो मनोरञ्जक वर्णन दिया गया है, नीचे दिया जाता है। उस अख़बार में लिखा है :—

शेख़ जी ज़मीन नापने लगेंगे

"एक ऐसी बात ले लीजिए जो रोज़मर्रह होती रहती है। एक बदमाश किसी नवयुवती से छेड़ख़ानी करना चाहता है। वह उसके पास आकर उससे बातचीत शुरू कर देता है और फिर उसकी बाँह पकड़ लेता है। वह अपनी बाँह उसकी बाँह के नीचे डाल देती है, मानो उसे अपने नज़दीक खींच रही हो। शेख़ जी को इससे कुछ उज़्र नहीं होता। वे तो समझते हैं कि उनकी तक़दीर खुल गई। इतना मौक़ा मिलते ही लड़की अपने हाथ को उसकी कुहनी से ऊपर भुजा पर लपेट ले और फिर ज़ोर से उसे दबाना शुरू करे। बेचारे का हाथ सीधा हो जायगा और शेख़ जी भी हमेशा के लिए सीधे हो जाएँगे। अब वह लड़की ज्यों-ज्यों ज़्यादा ताक़त लगावेगी, मानो अपने हाथ को सीधा कर रही हो, त्यों-त्यों शेख़ जी का हाथ उलटी तरफ़ को मुड़ता जायगा। शेख़ जी अपना हाथ छुड़ा नहीं सकते। उनका हाथ इस तरह पकड़ में आ जाता है कि वे उससे पीछा नहीं छुड़ा सकते। वे दूसरे हाथ से भी उस पर हमला नहीं कर सकते, क्योंकि लड़की जिस तरफ़ खड़ी हुई है उस तरफ़ वह अपना हाथ नहीं फेंक सकते। वह अपने हाथ को दूसरे हाथ से पकड़ कर तो शेख़ जी का कचूमर निकाल सकती है। इससे शेख़ जी ऊपर को पैर और नीचे को सिर करके ज़मीन नापने लगेंगे। वह मज़े से जहाँ जाना चाहे चली जाय। ज़ोर से जल्दी में खींचने पर शेख़ जी की कुहनी टूट जायगी। यह दाँव बड़ा लम्बा मालूम होता है, लेकिन किसी सखी या सखा के साथ इसका अभ्यास करो तो मालूम होगा कि वह कितनी जल्दी और कितनी आसानी से बिना कुछ ताक़त लगाए ही किया जा सकता है।"

दोनों आँखों में उँगली

"अब मान लीजिए कि कोई गुण्डा किसी लड़की के पास आकर उसका रास्ता घेर ले और उससे कहे कि मेरे साथ चल। लड़की डर के मारे पीछे को हट जाय। वह उसे अपनी गोद में पकड़ने के लिए आगे बढ़े। ऐसी हालत में अगर लड़की झटपट अपना हाथ फैला कर दो उँगलियाँ कड़ी करके गुण्डे की आँखों में घुसेड़े तो मियाँ जी फिर उम्र भर किसी परी-रू के पास नहीं फटकेंगे!"

पकड़ ले तो ?

"और अगर बदमाश कहीं आकर पकड़ ले तो ? तो सब से अच्छा पेंच यह है कि अपने हाथ की हथेली उसकी नाक पर जमा दो और ज़ोर से उसे मसल दो। ख़ाँ साहब का मुँह पीछे को ऐसे ज़ोर से फिर जायगा कि वे अपनी हूर को छोड़ देंगे। वह जहाँ चाहे जा सकती है।"

उँगली मरोड़ दो

"अब मान लीजिए कि कहीं बदमाश किसी औरत का गला दबा ले और उसे चिल्लाने भी न दे तो लोग तो फ़ौरन यह करते हैं कि बदमाश के हाथ पकड़ कर उसे गले से हटाना चाहते हैं। परन्तु कप्तान ओब्राइन का कहना है कि आप इस तरह नहीं छूट सकते। हमला करने वाले के हाथों को पकड़ कर गला छुड़ाना क़रीब-क़रीब नामुमकिन ही है। गला घोंटने से गला छुड़ाने के लिए सब से अच्छा पेंच यही है कि अपने हाथ को बदमाश के हाथ के पास ले जाकर उसकी एक उँगली मरोड़ दो। उँगली ख़ूब ज़ोर से आगे की तरफ़, हमला करने वाले की तरफ़, मरोड़नी चाहिए, ऐसे ज़ोर से मानो उसे तोड़ ही डालना चाहती हो। उँगली छोटी सी तो

(शेष मैटर ५५५ पृष्ठ में देखिए)
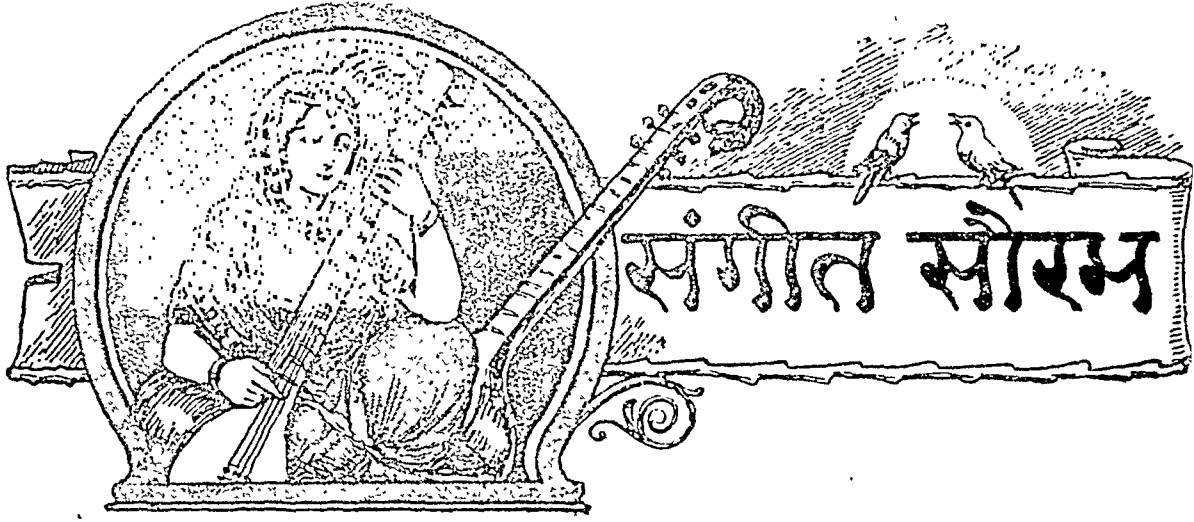
[सम्पादक तथा स्वरकार—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

मिश्र गौड़ सारङ्ग—३ ताल

(मात्रा १६)

[शब्दकार—'अज्ञात

स्थायी—झण्डा ऊँचा रहे हमारा ।

अन्तरा १—विजयी विश्व तिरङ्गा प्यारा,
झण्डा ऊँचा रहे हमारा ॥
सदा शक्ति बरसाने वाला,
वीरों को हर्षाने वाला,
मातृभूमि का तन-मन सारा ।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा ॥

अन्तरा २—स्वतन्त्रता के भीषण रण में,
लख कर बढ़े जोश क्षण-क्षण में,
काँपे शत्रु देख कर मन में,
मिट जावे भय सङ्कट सारा ।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा ॥

अन्तरा ३—इस झण्डे के नीचे निर्भय,
लें स्वराज्य यह अविचल निश्चय,
बोलो भारत माता की जय,
स्वतन्त्रता हो ध्येय हमारा ।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा ॥

स्थायी

×				३				०				१			
ग	म	ग	रे	स	रे	नी	—	स	ग	—	रे	ग	म	ग	—
झं	अं	डा	आ	ऊँ	ऊँ	चा	—	र	हे	—	ह	मा	आ	रा	—
म	म	ग	रे	स	रे	नी	नी	स	—	ग	रे	ग	म	ग	—
त्रि	ज	ई	ई	वि	ई	श्व	ति	रं	—	गा	आ	प्या	आ	रा	—

अन्तरा

ग	प	—	प	—	प	प		ग	प	प	—	ग	म	ग	—
स	दा	—	शक	—	ति	व	र	सा	आ	ने	—	वा	आ	ला	—
ग	प	प	—	प	—	प	प	ग	प	प	—	ग	म	ग	—
वी	ई	रों	—	को	—	ह	र	षा	आ	ने	—	वा	आ	ला	—
						क			त						
ग	—	ध	ध	—	ध	नी	ध	प	म	प	ध	ग	म	ग	—
मा	—	तृ	भू	—	मि	का	आ	त	न	म	न	सा	आ	रा	—

(५५३ पृष्ठ का शेषांश)

होती है, लेकिन उसे इस तरह मरोड़ने से बदमाश को इतनी तकलीफ़ होगी कि उसका तमाम शरीर उसी तरफ़ को मुड़ने लगेगा, जिस तरफ़ को उसकी उँगली मुड़ रही है। उसके हाथ गले को छोड़ देंगे।"

ख़ुद हमला करो

"अब देवी जी चाहें तो बदमाश पर ख़ुद हमला कर सकती हैं। वे देवता जी तो उँगली के दर्द में दिल के दर्द को भूल चुके होंगे, देवी जी इनके हाथ के नीचे से अपना हाथ निकाल कर उसकी कुहनी के ऊपर ला जमावें और उँगली मरोड़ती जायँ। बदमाश साहब अपना दूसरा हाथ उनके पास नहीं ला सकते। देवी जी पहले पेंच को काम में लाकर उनसे ज़मीन नपा दें और नौ-दो ग्यारह हो जायँ।"

पीछे से कमर पकड़ ले तो ?

"और अगर कहीं कोई बदमाश पीछे से आकर कमर पकड़ ले तो पतली कमर वाली श्रीमती जी को पहलवानों के पेंच से काम लेना पड़ेगा। अपने शरीर को दाएँ-बाएँ झुला दो और तुम्हारा जो पैर बदमाश के नज़दीक हो, उसे उसके पैरों के बीच में घुसेड़ दो। फिर सीधी हो जाओ। बदमाश धड़ाम से पीछे जा गिरेगा। इसे टाँग मारना समझिए।"

घर में घेर लेने पर

"ये सब दाव-पेंच गली-कूचों में काम देते हैं। घर में अकेले-दुकेले में कोई बदमाश आ घेरे, तो "मुए, इधर न आना, ज़नाना है" से काम न लेकर उनका हाथ पकड़ लीजिए। दो उँगलियाँ काफ़ी हैं। उन्हें ज़ोर से पकड़ कर उसका हाथ ऊपर को उठा दो, फिर उन्हें मरोड़ो। गुण्डे मियाँ जिधर कहोगे, चुपचाप उधर ही को चले जायँगे। यह याद रहे, बदमाश के सामने कभी न आना चाहिए, बग़ल में ही रहना चाहिए। इस पेंच से बदमाश घर से बाहर निकाला जा सकता है या जब तक मदद आवे, तब तक क़ाबू में रक्खा जा सकता है।"

फुटकर दाव-पेंच

"अगर कोई औरत किसी बदमाश का एक हाथ अपने दोनों हाथों से पकड़ सके तो दोनों अँगूठों के ज़ोर से उसकी हथेली की पीठ को दाबते हुए उसका हाथ मरोड़ कर उसे ज़मीन पर पटका जा सकता है। अगर कोई आदमी दीवाल से सट कर जम जाय तो एक हाथ से उसकी ठोड़ी, दूसरे से सिर पकड़ कर धक्का दो। वह वहाँ से हट जायगा। फिर एक धक्के में बेड़ा पार है।"

कप्तान साहब का कहना है कि निस्सन्देह, सङ्कट आने पर फ़ौरन सोच लेने और स्थिर तथा शान्त चित्त रहने की अनिवार्य आवश्यकता है। श्रीमती जी के होश-हवास दुरुस्त रहने चाहिए और उन्हें हमेशा झटपट पेंच चला देना चाहिए। इन पेंचों को पहले करके देख लेने से उन्हें अपने ऊपर भरोसा हो जायगा।
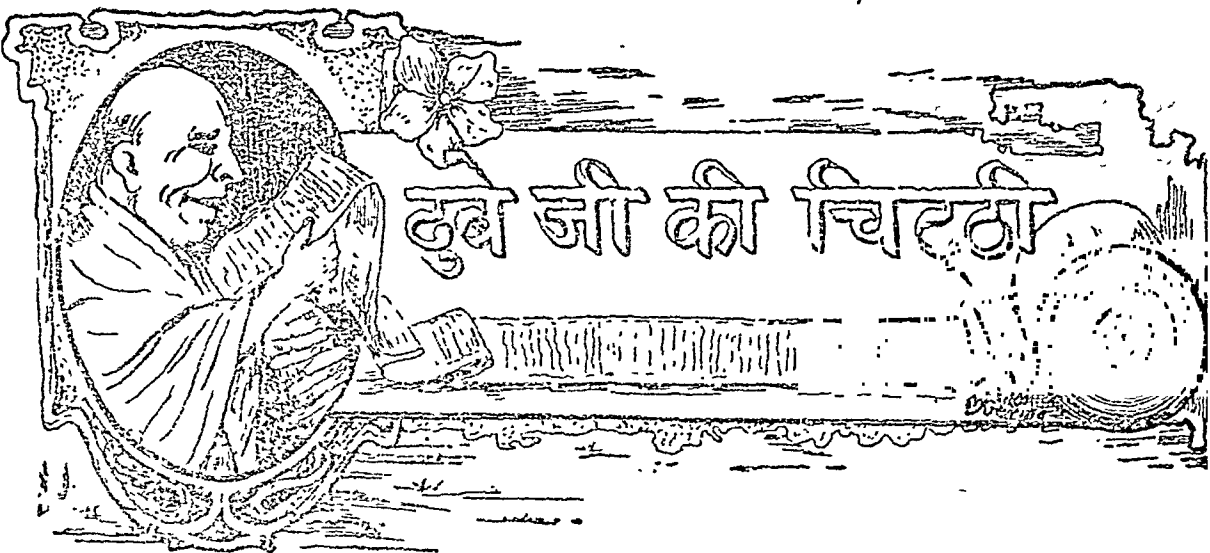
अजी सम्पादक जी महाराज

जय राम जी की !

दो सप्ताह हुए हमारे मुहल्ले में एक बड़ा शुभ कार्य हो गया। एक कान्यकुब्ज-कुल-भूषण ने अपनी युवती पत्नी को जीवित ही जला दिया। स्त्री चौबीस घण्टे जीवित रह कर परम धाम सिधार गई। स्त्री बहुत सीधी और सच्चरित्र थी, परन्तु न जाने सास से उसकी क्यों नहीं पटती थी—यद्यपि उसकी सास भी (उसके ससुर के कथनानुसार) साक्षात् देवी है। ठीक है, दो देवियों में पटना ज़रा टेढ़ी खीर है ! क्योंकि जहाँ दो देवियाँ एकत्र होंगी, उपासक और भक्त विभाजित हो जायँगे। जिस प्रकार एक देश में दो राजा, एक म्यान में दो तलवारें, एक पैर में दो जूते, एक सिर पर दो टोपियाँ, एक मुँह पर दो नाक नहीं रह सकतीं, उसी प्रकार एक घर में दो देवियों का गुज़ारा भी नहीं हो सकता। इस बीसवीं शताब्दी में, जब कि चारों ओर शिक्षा और सभ्यता की पुकार मची हुई है, ऐसे दर्शनीय काण्ड देख कर हृदय को परम सुख प्राप्त होता है। जिस प्रकार एक ही दृश्य देखते रहने, एक ही प्रकार का भोजन करते रहने से जी ऊब जाता है, उसी प्रकार शान्ति और सभ्यता से भी चित्त घबरा उठता है। इसलिए प्रत्येक सद्गृहस्थ का यह कर्त्तव्य है कि कम से कम सप्ताह में एक बार अपने घर में जूता-लात कर लिया करे और साल भर में एकाध हत्या कर डाला करे। परन्तु लात-जूता, हत्या इत्यादि जो कुछ करे वह स्त्री के साथ ही करे और अपनी ही स्त्री के साथ; क्योंकि पुरुषों के साथ और दूसरों की स्त्री के साथ यह सद्व्यवहार करने में ख़तरा है। हाँ, यदि पुरुष अपना पिता हो और वृद्ध तथा अशक्त हो तो उसके साथ भी ऐसा व्यवहार बेखटके किया जा सकता है। ऐसा करते रहने से एक तो मनोरञ्जन होता रहता है, दूसरे साहस, शक्ति तथा वीरता में वृद्धि होती रहती है। ऐसा आदमी बाहर किसी के सामने से दुम दबा कर भले ही भाग खड़ा हो, परन्तु अपने घर में तो कभी किसी से दब ही नहीं सकता—बशर्ते कि घर में केवल स्त्रियों और वृद्ध पुरुषों का ही जमघट हो।

वैसे तो देश में स्त्रियों की दशा अधिकांश में सन्तोषजनक ही है, परन्तु कान्यकुब्जों में उनका जो मान तथा आदर है, उसे देख कर प्रसन्नता के मारे हृदय फटने लगता है। कान्यकुब्जों में स्त्रियों को पैर की जूती समझा जाता है। कितना आदरपूर्ण पद है ! जूती की महिमा किसी से छिपी नहीं है। जिसके पैर में जूती नहीं, उसकी कोई हैसियत नहीं (साधु-महात्माओं की बात छोड़ दीजिए)। सिर पर टोपी न हो तो कोई हर्ज नहीं—बङ्गाली टोपी नहीं ओढ़ते तो उनकी शान में कौन कमी हो जाती है ? परन्तु पैर में जूती होना तो आवश्यक है। हाँ, एक बात के जानने की उत्सुकता अवश्य है। यदि स्त्रियाँ कनौजिया भाइयों के पैर की जूती हैं तो उनका जूता क्या और कैसा होता होगा !

कुछ लोगों का विचार है कि स्त्रियाँ कनौजियों की आमदनी का द्वार हैं (केवल दहेज रूपी आमदनी, और कोई आमदनी न समझ लीजिएगा)। इसलिए वे स्त्रियों का इतना आदर करते हैं, परन्तु यह बात अपने राम की समझ में बिल्कुल नहीं आती। बात यह है कि कुछ लोग अपनी पत्नियों से इतना प्रेम करते हैं कि वे उन्हें इस संसार में कष्ट भोगने के लिए नहीं रहने देना चाहते, इसलिए ऐसा प्रयत्न करते हैं कि जितना शीघ्र इस संसार से उनका मोक्ष हो जाय उतना ही अच्छा। संसार से मोक्ष पाने के लिए साधु-महात्मा लोग तपस्या करते हैं। अतएव यदि वे लोग, जिन पर यह दोषारोपण किया जाता है कि दहेज के लालच से अपनी स्त्रियों को मृत्यु-पथ पर ढकेलते हैं, उन्हें मोक्ष दिला देते हैं तो कौन बेजा करते हैं ?

कनौजिया भाइयों पर यह दोषारोपण भी किया जाता है कि वे स्त्रियों को केवल पुरुषों की सेवा तथा कामाग्नि शान्त करने की वस्तु समझते हैं। उनके विचार में स्त्री के न अन्तःकरण है, न मस्तिष्क है, और न उसकी कोई अभिलाषाएँ तथा महत्वाकांक्षाएँ हैं। स्त्री एक ऐसा मूक प्राणी है कि उसमें ईश्वर ने चेतना केवल पुरुषों के लाभार्थ ही रक्खी है। स्त्री को स्वयम् अपनी इच्छा से कोई कार्य करने का अधिकार नहीं। पति जब चाहे तब स्त्री हँसे, पति की इच्छा से बोले। जब पति आज्ञा दे तब भोजन करे, जब पति कहे तब पानी पिए, इत्यादि-इत्यादि। यदि स्त्री ऐसा नहीं करती तो दण्डनीय है।

परन्तु अपने राम की समझ में ये सब बातें ठीक होते हुए भी एक सिरे से ग़लत हैं। जब स्त्री पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी कहलाती है तो उसे स्वेच्छा से कोई कार्य करने का क्या अधिकार है ? उसे तो कुछ करना ही नहीं चाहिए। जब पति हँसा तो मानो स्त्री हँसी—अर्द्धाङ्गिनी है कि नहीं ? अतएव अब उसे अपनी इच्छा से और अपने अर्द्धाङ्ग से विलग होकर हँसने की क्या आवश्यकता है ? इसी प्रकार अन्य बातों को भी समझ लीजिए। अतएव स्त्री को न भोजन करने की आवश्यकता है, न पानी पीने की, न हँसने की, न बोलने की। यह पुरुषों की कृपा है जो उन्हें भोजन देते हैं, पानी पिलाते हैं। परन्तु यह फ़ालतू रासन सब बेकार जाता है। इस मँहगी के समय में यह फ़िज़ूलख़र्ची खटकने वाली बात है। रही स्त्रियों को दण्ड देने की बात, सो उसकी आज्ञा तो तुलसीदास जी ऐसे महात्मा दे गए हैं—शूद्र, गँवार, ढोल, पशु, नारी, इन्हें पीटते ही रहना चाहिए, बिना पीटे यह ठीक नहीं रहते। तुलसीदास जी कुछ लौंडे थे नहीं। स्त्री के उपदेश से ही उनके हृदय में राम-भक्ति उत्पन्न हुई थी। वे ऐसे कृतघ्न नहीं थे, जो स्त्री के लिए ऐसी आज्ञा दे जाते। परन्तु उन्होंने जो कुछ कहा वह कुछ समझ कर ही कहा होगा। महात्माओं का रहस्य कौन जान सकता है! जानने की चेष्टा भी नहीं करनी चाहिए। बस जो वे कहें आँखें मूँद कर करता चला जाय, ईश्वर बेड़ा पार लगा ही देगा। पिटने से तो सभी ठीक हो जाते हैं। केवल स्त्री ही नहीं, बड़े-बड़े अकड़ख़ाँ और नाक पर मक्खी न बैठने देने वाले पुरुष भी पिट कर ठीक हो जाते हैं। मार के आगे भूत तक भागता है।

तुलसीदास जी को कदाचित् यह बात मालूम न रही होगी, अन्यथा वह पुरुषों के लिए भी इस अमोघ औषधि के सेवन की विधि लिख जाते। स्त्रियों को यह बात मालूम है, परन्तु वे कर ही क्या सकती हैं ? अबला और कोमलाङ्गी होने के कारण उनके शरीर में इतना बल ही नहीं जो पुरुषों को पीट सकें। यह पुरुषों का सौभाग्य है कि उधर तो तुलसीदास जी भी उनके पीटने की आज्ञा दे गए, और इधर स्त्रियों में शक्ति भी नहीं, अन्यथा पुरुष बेचारे बड़ी मुसीबत में पड़ जाते; क्योंकि ये बहुधा मार खाने का काम करते रहते हैं।

हमारे मुहल्ले में एक कान्यकुब्ज परिवार रहता है। उसके एक लड़के का विवाह हुआ। लड़के की पत्नी सुन्दर तथा कोमलाङ्गी थी। विवाह के पश्चात एक मास तक तो उसकी ख़ातिर होती रही थी, तत्पश्चात उससे घर का काम लिया जाने लगा। जिस रोज़ से पुत्र-वधू ने कार्य करना आरम्भ किया, उस रोज़ से सास देवी को पेनशन मिल गई। कहाँ तो पहले सास देवी सब काम करती थीं ; परन्तु जिस दिन से पुत्रवधू ने काम में हाथ लगाया, उसी दिन से उनका मिज़ाज थर्मामीटर का पारा बन गया। रोटी बनाने से धूएँ के कारण उनकी आँखें ख़राब होने लगीं। घर में झाड़ू लगाने से धूल के कारण खाँसी आने लगी। नीचे से पानी भर कर ऊपर लाने में उनको दमे के रोग का भय होने लगा। अब उनके स्वास्थ्य के लिए यदि कोई बात हितकर थी

तो वह केवल बहू पर हुक्म चलाना और समय पर पका-पकाया खा लेना ही। गर्मियों के दिन थे। बेचारी फूल सी नाज़ुक लड़की कलसे भर कर तीसरे खण्ड की छत पर ले जाकर छत को तर करती थी—बिस्तर बिछाती थी तथा अन्य आवश्यक सामग्रियाँ पहुँचाती थी। इसके पश्चात् भोजन पकाती और सबको खिला कर पीछे स्वयम् खाती थी। इसके उपरान्त घण्टा भर सास देवी की चरण-सेवा करती थी। उसके साथ केवल इतनी रिआयत अवश्य थी कि उसे छत पर सोने वालों को पीठ पर लाद कर ऊपर नहीं पहुँचाना पड़ता था। वे सब उस पर दया करके अपने पैरों ऊपर चले जाते थे। अन्यथा और कोई ऐसा कार्य नहीं था जो उसे न करना पड़ता हो। बेचारी को समय पर निद्रा भी प्राप्त नहीं होने पाती थी—अभी पति की चरण-सेवा जो बाक़ी है। बिना चरण-सेवा किए स्त्री का पातिव्रत और पति महोदय का पुरुषत्व दोनों अधूरा ही रह जायगा। इसलिए वह तो होना ही चाहिए। उसमें कमी रह गई तो पति महोदय की नाक और मूँछों को धिक्कार है। बारह बजे रात तक चरण-सेवा हुई, तब जाकर उस बेचारी को सोना नसीब हुआ। यहीं से इतिश्री हो जाती तो भी ग़नीमत था। रात के दो बजे किसी को प्यास लगी तो झट उसने हुक्म सादिर फ़र्माया—"बहू, एक गिलास पानी लाओ।" बहू बेचारी दिन भर की थकी बेहोश पड़ी है। उसको ज़रा उठने देर हुई तो बस मिज़ाज का पारा उबलने लगा—"वाह! ऐसा भी क्या सोना कि तन-बदन की सुधि न रहे; सिर पर तोपें छूटा करें, फिर भी ख़बर न हो।" और सुनिए, एक बार साधारण स्वर में कहा हुआ वाक्य तोप की आवाज़ हो गया!

इस प्रकार वह बेचारी सबेरे से उठ कर रात के बारह बजे तक मशीन की तरह काम करती रहती थी। रात के बारह बजे के पश्चात बीच-बीच में उसे जो दो-एक बार उठना पड़ता था, वह घाते में या ओवर टाइम समझ लीजिए। पति पाँच हाथ का दण्डपेल ज्वान, श्वसुर महाशय भी हृष्ट-पुष्ट और सास देवी भी ऐसी कि यदि बिगड़ उठें तो पिता-पुत्र की खोपड़ी पकड़ कर लड़ा दें, परन्तु काम करने की शक्ति किसी में नहीं। काम के लिए सबका स्वास्थ्य बिगड़ा रहता था। पुरुष तो मानो काम कर ही नहीं सकते थे, स्त्री के रहते हुए पुरुष किसी काम में हाथ लगावें—शिव! शिव! जड़ से कट जावें; किसी को मुँह दिखाने योग्य भी न रहें। नौकर रखने की क्षमता नहीं या आवश्यकता नहीं। बहू किस लिए है? आख़िर वह भी तो ख़ाली रहेगी। स्त्रियों को एक मिनट ख़ाली बैठने देना जोखिम से ख़ाली नहीं, न जाने कौन सा प्रलय खड़ा कर दें! यद्यपि सास देवी भी स्त्री ही थीं और दिन भर ख़ाली बैठी रहती थीं, परन्तु उनके ख़ाली बैठने से कोई दुर्घटना नहीं होती थी। कदाचित् इसलिए कि वह दुर्घटना-उत्पादक वयस यौवनावस्था को पार करके प्रौढ़ावस्था में पदार्पण कर चुकी थीं अथवा दिन भर बहू पर हुक्म चलाने का कठोर कार्य करती रहती थीं।

इस प्रकार बहू बेचारी कठोर परिश्रम करती रहती थी और दूसरे-तीसरे उसके पति महोदय तुलसीदास जी का उपदेश स्मरण करके उसे पीट भी दिया करते थे। वैसे चाहे बाहर गालियाँ और जूते खाकर भी दुम दबाए हुए घर चले आवें; परन्तु पत्नी के सामने यदि नाक पर मक्खी भी बैठ जावे तो इसमें भी पत्नी ही का अपराध, लगे तड़ातड़ अपने पुरुषार्थ का सदुपयोग करने।

इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि छः मास के भीतर ही उस अबला को क्षयरोग होगया। उस दशा में भी वे पिशाच उससे वैसा ही कठोर परिश्रम लेते रहे। अन्त को जब वह बिल्कुल ही निर्बल तथा अशक्त हो गई तब उसका पिण्ड छोड़ा। अब उसकी चिकित्सा का विचार हुआ। परन्तु चिकित्सा के लिए पैसे चाहिए और पैसे ख़र्च करना ग्याऊँ का ठौर था। अतएव इसके लिए उन्होंने दूसरी युक्ति सोची। उसके मायके वालों को बुला कर मायके भेज दिया और कह दिया जब अच्छी हो जाय तब भेज देना। कितना सहल नुस्ख़ा है!

एक दिन लड़के के पिता से बातचीत हुई। मैंने पूछा—कहिए, आपकी पुत्रवधू का क्या हाल है?

बोले—पता नहीं, इधर कोई चिट्ठी नहीं आई।

मैंने कहा—उससे परिश्रम बहुत लिया गया। इतने परिश्रम के योग्य वह नहीं थी।

"परिश्रम न लेते तो क्या उसकी पूजा करते? यह आप ही लोगों में होता है। हमारे यहाँ स्त्री को सिर पर नहीं चढ़ाया जाता।"

"क्या किसी व्यक्ति से उसकी शक्ति के अनुसार

काम लेना उसे सिर पर चढ़ाना है ? उससे प्रेम करना, उसका आदर करना सिर पर चढ़ाना है ?"

"सो तो होता ही था। घर में जितना काम होता था वही लिया जाता था। कोई बाहरी काम तो कराया नहीं जाता था।"

मैंने कहा—सो भी करा लेते, अरमान तो न रह जाता, और कुछ कमाई हो जाती।

वह बड़े शान से अकड़ कर बोले—हम लोग इतने पतित नहीं हैं।

मैंने कहा—मैंने सुना है—पता नहीं कहाँ तक ठीक है—उसे घी-दूध भी नहीं दिया जाता था। परिश्रम कराया जाता था तो घी-दूध ख़ूब खिलाया जाता।

वह मुँह बना कर बोले—स्त्रियों को और घी-दूध! बिना दूध-घी के ही स्त्रियाँ उपद्रव करती रहती हैं, घी-दूध खाकर फिर वह धरे-थामे रहेंगी।

इस मूर्खतापूर्ण उत्तर को सुन कर मैं तो अवाक् रह गया। मैंने पुनः साहस करके कहा—यदि मर गई तो क्या होगा ?

"होगा क्या ? दूसरी आ जायगी और दो-चार हज़ार की रक़म साथ में मिलेगी। उसके मरने से हमारा तो फ़ायदा ही है।"

यह उत्तर सुन कर मुझे उस व्यक्ति की सूरत से घृणा हो गई। यह हम लोगों की सभ्यता है कि जहाँ ऐसे-ऐसे नर-पिशाच भी समाज में सिर उठा कर शान से चलते हैं। हत्या के लिए क़ानून है। परन्तु इस हत्या के लिए, जो Wilful Murder से भी कहीं अधिक भयानक है, कोई क़ानून नहीं। यह सारी ख़राबी दहेज और कुलीनों को सरलतापूर्वक कन्याएँ मिल जाने के कारण हैं। कान्यकुब्जों में कुलीनों को कन्याएँ इतनी सरलतापूर्वक मिल जाती हैं कि वे चाहें तो दर्जनों विवाह कर लें और साथ में दहेज भी ख़ासा मिलता है। इस कारण वे अधिक विवाह करके दहेज पाने की चाट में स्त्रियों को इस प्रकार घुला-घुला कर मारते हैं। और कान्यकुब्जों में ही क्या—अन्य ऐसी जातियों में भी जिनमें लड़कियों के मिलने में कठिनाई नहीं होती और दहेज भी (ठहरौनी न होते हुए भी) मिलता ही है, उन सब में यह प्रवृत्ति पाई जाती है। भगवान जाने इस राक्षसी प्रथा के चङ्गुल से हिन्दू जाति कब छूटेगी।

भवदीय,
विजयानन्द (दुबे जी)

खोलो द्वार

[श्री० चन्द्रनाथ जी मालवीय 'वारीश']

काले बादल घिरे हुए थे,
काली थी वह कैसी रात !
बिजली कैसी कड़क रही थी,
महा भयानक झञ्झावात !!

खड़खड़ सूखे पत्ते करते,
झञ्झा का झोंका खाकर !
दुर्दिन थे मेरे आये, मैं—
निकल पड़ी घर से बाहर !!

घोर निशा में, विजन विपिन में
निद्रित था जब सब संसार !
एकाकी मैं दौड़ी आई—
खोलो प्रियतम ! खोलो द्वार !!

[श्री० गणेशदत्त जी शर्मा, गौड़ 'इन्द्र']

शारदीय पौर्णिमा के दिन अमृत-पान

जिस प्रकार छः ऋतुओं में बसन्त को सबसे श्रेष्ठ माना जाता है, उसी तरह ऋतुओं में शरद् भी कम महत्व की ऋतु नहीं है। बसन्त ऋतु को यदि ऋतुराज कहा जाता है तो शरद् ऋतु को ऋतुश्रेष्ठ कह देने में कदापि अतिशयोक्ति न होगी। मेरी दृष्टि में तो बसन्त और शरद् का पद समान ही है। बसन्त में यदि प्राकृतिक सौन्दर्य बढ़ जाता है, तो मैं यह भी कह सकता हूँ कि शरद् ऋतु में बसन्त की अपेक्षा प्राकृतिक सौन्दर्य ख़राब भी नहीं होता है। वेदों में जितना शरद् ऋतु के महत्व का वर्णन है उतना बसन्त का नहीं है। सैकड़ों मन्त्र ऐसे हैं, जिनमें शरद् के नाम का उल्लेख है।

पश्येम शरदः शतम् जीवेम शरदः शतम्।

इत्यादि मन्त्र बतलाते हैं कि दीर्घायु की प्रार्थना के साथ ही साथ शरद् ऋतु को ही उल्लेख होने का सौभाग्य है। माना कि कहीं-कहीं पर बसन्त ऋतु को भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ है, किन्तु वह नहीं के बराबर है।

बसन्त और शरद् दोनों ही समशीतोष्ण हैं। एक वर्षा के बाद है तो दूसरी हिम-वर्षा के बाद। बसन्त में वृक्ष-वनस्पति अपने पुराने पत्तों को त्याग कर नवीन पत्ते धारण करते हैं, तो शरद् में नवीन-नवीन वनस्पतियों से समाकीर्ण भूतल दृष्टिगोचर होता है और वृक्ष, लता, गुल्मादि के पत्ते धुले धुलाए स्वच्छ दीख पड़ते हैं। शरद् ऋतु में वर्षा द्वारा उत्पन्न होने वाले अन्न की खेती लहराती है, तो बसन्त में सींच से उत्पन्न होने वाले अन्न की खेती लहलहाती दिखाई देती है। मुझे तो बसन्त की अपेक्षा शरद् में कुछ विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। वर्षा में जिस प्रकार देवी वसुन्धरा हरी साड़ी पहन कर गर्विता होती हैं, उस तरह बसन्त में नहीं होतीं। शरद् में सारी पृथ्वी पर हरा गलीचा सा बिछा हुआ नज़र आता है, परन्तु बसन्त में सूखे पत्ते हवा के कारण इतस्ततः उड़ते हुए बुरे मालूम होते हैं। शरद् में पशु-पक्षी अन्न-जल पाकर परम सुखी होते हैं, किन्तु बसन्त में प्राणियों को अन्न-जल की ओर विशेषतः जल की उतनी प्रचुरता नहीं मिलती। शरद् में नद, नदी, ताल, तलैया, कुएँ, बावली, झरने इत्यादि पानी से परिपूर्ण होने के कारण अत्यन्त नयनाभिराम होते हैं, किन्तु बसन्त में इनकी वह बहार नहीं रहती। शरद् में जितने त्यौहार हैं, उतने बसन्त में नहीं हैं। इत्यादि बातों से यह सिद्ध होता है कि शरद् ऋतु, बसन्त की अपेक्षा कई बातों में विशेषता रखती है, यही कारण है कि वेद ने भी शरद् ऋतु का ही बारम्बार उल्लेख किया है—

वसन्तोस्यासिदाज्यं—
ग्रीष्म इध्मः—
शरद्धवि— (वेद)

इसमें बसन्त ऋतु को आज्य (घृत) और शरद् ऋतु को हवि कहा है। यहाँ आज्य और हवि का जितना सम्बन्ध है, उतना ही शरद् और बसन्त ऋतु का है।

शरद् ऋतु में एक त्यौहार बड़े ही महत्व का है। यह आश्विन शुक्ला १५ को होता है। इसका नाम "शारदीय पौर्णिमा" है। इस दिन लोग मन्दिरों में खीर बनाते हैं और देवता को समर्पण करने के पश्चात् उसे प्रसाद रूप में आपस में बाँट कर खाते हैं। यह उत्सव प्रायः प्रत्येक मन्दिर में होता है। आज हमें इस पर विचार करना है कि इस त्यौहार में क्या विशेषता है, और खीर ही सर्वत्र क्यों बनाई जाती है। यह उत्सव हमारे पूर्वजों ने बड़ी ही बुद्धिमत्ता से नियत किया है। परन्तु आज हम लोग उसके सच्चे कारण को न जान सकने के कारण, उस लकीर को पीटते चले आ रहे हैं।

शरद् ऋतु की महत्ता हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं, अब यह देखना है कि पौर्णिमा के दिन इसको मनाने का कारण क्या है? पौर्णिमा से यह प्रकट होता है कि इस का सम्बन्ध चन्द्रमा से अवश्य होना चाहिए। यहाँ इस बात की आवश्यकता नहीं है कि चन्द्रमा के गुणों का वर्णन करके व्यर्थ ही इस लेख का कलेवर बढ़ाया जाय। इसे सब लोग जानते हैं कि चन्द्रमा अमृत-जीवन का प्रदाता है। वृक्ष-वनस्पति, जड़-चेतन, सभी को नवजीवन प्रदान करता है। इसे "औषधिराज" भी कहते हैं। यहाँ अथर्ववेद के ७।८१।३ का यह मन्त्र विचारने योग्य है—

सोमस्यांशो युधांपतेऽनूनोनाम नामवा असि।
अनूनं दर्शमाकृधि प्रजयाच धनेनच।

(सोमस्य) अमृत के (अंशो) बाँटने वाले, (युधाम्) युद्धों के (पते) स्वामिन्, (वैः) वास्तव में तू (अनूनः) न्यूनता रहित (नाम) प्रसिद्ध (असि) है, (दर्श) हे दर्शनीय, (मा) मुझे (प्रजया) प्रजा से (च) और (धनेन) धन से (अनूनम्) परिपूर्ण (कृधि) कर।

"अमृत के बाँटने वाले" यह वाक्य इस मन्त्र में चन्द्रमा के लिए सम्बोधनार्थ प्रयुक्त है। अर्थात् चन्द्रमा अमृत-प्रदाता है। अमृत का गुण, मृत्यु को हटा कर अमरत्व प्रदान करना है। अर्थात् अमृत पान द्वारा, पूर्णायुष्य और आरोग्य प्राप्त होता है। इस मन्त्र के पहले वाले मन्त्र को अब देखना चाहिए।

नवो नवो भवसि जायमानोऽह्नां
केतुरुष सामेष्यग्रम्।
भागं देवेभ्यो विदधास्यायन्
प्रचन्द्रभस्ति रसे दीर्घमायुः।

(चन्द्रमः) हे चन्द्रदेव, तू शुक्ल पक्ष में (नवोनवः) नया-नया (जायमानः) प्रकट होता हुआ (भवसि) रहता है। (अह्नाम्) दिनों का (केतुः) जताने वाला (उपसाम्) उषाओं के (अग्रम्) आगे (एषि) चलता है। (आयन्) आता हुआ (देवेभ्यः) उत्तम पदार्थों को (भागम्) सेवनीय उत्तम गुण (विदधासि) विविध प्रकार देना है (दीर्घम्) लम्बे (आयुः) जीवन काल को (प्र) अच्छी तरह (तिरसे) पार लगाता है।

इस मन्त्र से स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रमा प्राणियों का दीर्घ जीवनदाता है। तात्पर्य यह कि यदि हम चन्द्रमा की किरणों द्वारा लाभ उठा सकें तो हम अवश्य दीर्घायु प्राप्त करेंगे।

शारदीय पौर्णिमा चन्द्र-किरणों से लाभ उठाने का उपयुक्त दिन है। अन्य पौर्णिमाएँ उतनी लाभदायक नहीं हो सकतीं जितनी कि यह है। इसका कारण यह है कि और महीनों की पौर्णिमाओं में चन्द्र-किरणों को पृथ्वी-तल तक आने के लिए रोकने में कई बाधक पदार्थ आकाश में मौजूद रहते हैं; जैसे धूलिकण, धुआँ, गर्द, गुब्बार वग़ैरह, परन्तु इस शारदीय पौर्णिमा के दिन आकाश में चन्द्र-किरणों का बाधक एक भी परिमाणु नहीं होता; क्योंकि पानी बरस जाने के कारण जो कुछ भी आकाशस्थ कचरा-कूड़ा होता है, पृथ्वी पर पानी के साथ आ जाता है, इस कारण आकाश अत्यन्त निर्मल हो जाता है। इसी प्रकार आषाढ़, श्रावण और भाद्र मासों की पौर्णिमाएँ भी चन्द्रमा से अमृत गुण प्राप्त करने के लिए उपयोगी मानी जा सकती हैं, किन्तु ये महीने मुख्यतः वर्षा के हैं। अतएव आकाश मेघाच्छन्न रहने के कारण हमारे पूर्वजों ने इन पौर्णिमाओं को अमृत-पान के लिए ठीक नहीं समझा। आश्विन में वर्षा का अन्त हो जाता है, आकाश स्वच्छ मेघहीन हो जाता है। इसी कारण यह आश्विनी पौर्णिमा ही इसके लिए ठीक समझी गई।

(शेष मैटर ५६३ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

[श्री० चन्द्रशेखर जी शर्मा]

सब से भयानक विष और उससे बचने का उपाय

प्रूसिक ऐसिड (Prussic Acid), जिसको हाइड्रो-सायनिक ऐसिड (Hydrocyanic Acid) भी कहते हैं, एक प्रकार का विष है, जिसमें कड़वी बादाम की सी बू आती है। यह बड़ा भयानक विष समझा जाता है। यदि इसकी बोतल का काग खोल कर कोई इसको तेज़ (Pure) हालत में सूँघ ले, तो जिस प्रकार गोली मार देने से तत्काल मृत्यु हो जाती है, उसी प्रकार हृत्पिण्ड पर इसका सीधा प्रभाव होने से फ़ौरन मौत हो जाती है।

किन्तु प्रुसिक से भी एक अधिक घातक विष है, जिसे बोटूलीनस (Botulinus) कहते हैं। इस विष का ·०००००००००००००००१ घन शतांश मीटर एक आदमी को मार देने के लिए पर्याप्त है। इसकी एक बूँद सारे संसार के मनुष्यों का प्राणनाश करने को काफ़ी है। यदि एक घन शतांश मीटर बोटूलीनस किसी के पास हो तो उसका भी सौवाँ भाग विश्व भर का संहार करने को काफ़ी होगा।

यही भयानक विष कभी-कभी टीन के डिब्बों में रक्षित खाद्य पदार्थों और फलादि (Tinned food and fruits) में पाया जाता है, जो विलायत से आते हैं, तथा जिन्हें शौक़ीन बाबू लोग बड़े चाव से दसगुने से बीसगुने तक क़ीमत पर ख़रीद कर खाते हैं। बिगड़े हुए वानस्पतिक भोजन और मांस में भी इसका अंश मिलता है। अतएव सड़े हुए और बासी खाने से सावधान रहना चाहिए। विशेषतः मैं स्त्रियों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ, क्योंकि प्रायः घरों में स्त्रियाँ बासी खाने आदि के सम्बन्ध में बड़ी असावधानी करती देखी जाती हैं। एक तिथि-विशेष पर तो बासी खाने का विशेष माहात्म्य तक माना जाता है। इसको "बसीड़े की अष्टमी" कहते हैं। अस्तु।

यह विष एक प्रकार के शलाकाकार जीवाणु से पैदा होता है, जिसको बोटूलीनस का जीवाणु (Bacillus Botulinus) कहते हैं। इस जीवाणु का बयान अङ्गरेज़ी के एक प्रामाणिक चिकित्सा-ग्रन्थ * में इस प्रकार दिया है :—

"*Bacillus Botulinus*—This organism is found in a certain kind of meat-poisoning designated 'Botulismus.' An obligate anaerobe, Motile-produces, a gas which splits up the medium in glucose agar-stab-cultures. It is gram+staining. Hasterminal spores, Bacteria of poisoned meat.

—*Br. Med. Journal.*

Bac. Botulinus spores are highly resistant to heat."

भावार्थ यह कि यह जीवाणु एक विशेष प्रकार के दूषित विषाक्त मांस में पाया जाता है। यह वायु के बिना ही वृद्धि पाता है, जैसा कि विलायत से डिब्बों में भर कर

---

* Extra Pharmacopoea by Marlindale and Westcott, सन् १९२१, भाग २, पृष्ठ ४६१।

आए हुए भोज्य पदार्थों में। इन डिब्बों के भीतर हवा न होने के कारण इस कीटाणु को पैदा होने और बढ़ने का अच्छा मौक़ा मिलता है। इसके सिरों पर एक प्रकार के अण्डे पाए जाते हैं, जो कि मामूली आँच देने से नहीं मरते हैं। अतएव डिब्बों में भर कर आने वाले पदार्थों (Tinned food) को बग़ैर अच्छी तरह पकाए कदापि न खाना चाहिए।

यह जीवाणु कहीं-कहीं धरती में भी पाया जाता है। इसके अण्डे धरती में से हवा के झोकों के साथ उड़ कर सर्वत्र पहुँच जाते हैं। हम लोग नित्य सैकड़ों क्या, हज़ारों दाने खा जाते हैं, परन्तु पेट में पहुँच कर ये हज़म हो जाते हैं।

जब ये दाने खाने की चीज़ों में पहुँच जाते हैं तो वहाँ ठण्डक पाकर कुछ समय में जीवाणु पैदा होने लगते हैं। परमात्मा को धन्यवाद है कि इस जीवाणु के लिए वायु घातक है। वायु की उपस्थिति में यह पैदा नहीं हो सकता, किन्तु यदि खाद्य-पदार्थ बोतल या डिब्बों में बन्द कर दिया जाय और बोतल में से वायु निकाल दी जाय, जैसा कि विलायती बोतलों और डिब्बों में किया जाता है, तो इन जीवाणुओं की ख़ूब वृद्धि होती है और इनका विष खाने के पदार्थ में मिल जाता है। बोतल या डिब्बा खोलने पर यदि उसमें का पदार्थ १००° शतांश तक गरम कर लिया जाय तो विष का नाश हो जाता है। यही कारण है कि अब तक विलायती डिब्बों और बोतलों के पदार्थ खाने वाले शौक़ीन बचे हुए हैं। फ़ैशन के ऊपर मरने वाले हिन्दुस्तानी भाइयों में से बहुतेरे तो इन पदार्थों (Tinned food) को यों ही उड़ा जाते हैं। उन्हें विशेष रूप से सावधान रहना चाहिए। सबसे अच्छी बात तो यह हो कि विलायत से आई हुई, महीनों और वर्षों की, उन पुरानी चीज़ों के बदले हम अपने देश की ताज़ी चीज़ें व्यवहार करें।

बोतल में बन्द करके फलों की रक्षा करने से तो हमारी पुरानी प्रथा ही अच्छी मालूम होती है, अर्थात् यदि मुरब्बा या अचार बना कर अथवा सुखा कर फल रक्खे जायँ तो उपरोक्त जीवाणु की गुज़र नहीं हो सकती।

(५६१ पृष्ठ का शेषांश)

जब यह मान लिया गया कि यह पौर्णिमा इस अमृत-पान के लिए ठीक है तो यह प्रश्न सामने आया कि यह अमृत-पान कैसे किया जाय? इसके लिए उन कुशाग्र-बुद्धि महापुरुषों ने दूध को ठीक समझा। दुग्ध इस भूतल का अमृत है, सर्व-श्रेष्ठ पदार्थ है, देव-प्रिय वस्तु है। साथ ही दूध में भले-बुरे का जितना जल्दी प्रभाव होता है, उतना दूसरी किसी भी खाद्य वस्तु पर नहीं होता। तात्पर्य यह है कि चन्द्रमा की अमृतप्रद किरणों को गोदुग्ध रूपी अमृत में मिला कर यह अमृत-पान करने की प्रथा हमारे पूर्वजों ने प्रचलित कर दी।

शारदीय पौर्णिमा को ही इसलिए महत्ता दी गई कि भाद्र, श्रावण और आषाढ़ी पौर्णिमाओं पर उत्तम गो-दुग्ध प्राप्त करना कठिन हो जाता है। क्योंकि दुग्ध-प्रदाता पशु के कच्चे, सारहीन घास चरने के कारण दुग्ध के गुणों में भी न्यूनता आ जाती है, और आश्विन मास में घास के सारयुक्त और पकी होने के कारण दूध के गुणों में कोई कमी नहीं रह जाती।

सारांश यह कि इस दिन प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि गोदुग्ध प्राप्त करे और चन्द्र के प्रकाश में ही औटावे। यदि इच्छा हो तो, उसमें सागूदाने, चावल, किशमिश, बादाम, चिरौंजी, छुहारे, केशर, कस्तूरी, इलायची आदि उत्तम चीज़ें भी डाल दे और उसे बिना ढाँके हुए रात्रि भर चन्द्र के प्रकाश में रहने दे। प्रातः चार बजे स्नान, ईश्वरोपासना आदि दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर उषा-काल में इस अमृतमय दुग्ध अथवा खीर का आनन्द-पूर्वक पान करे। इस प्रकार अमृत-पान करने से स्वास्थ्य उत्तम रह कर मनुष्य दीर्घायुषी बन जाता है, क्षय, दमा, आदि भयङ्कर रोग नहीं होने पाते। आशा है, पाठक विधिपूर्वक अमृत पान कर, अवश्य लाभ उठावेंगे।

* * *

पतझड़—प्रणेता श्री० प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'; प्रकाशक ओझाबन्धु आश्रम, इलाहाबाद; पृष्ठ-संख्या २११; मूल्य १।)

जैसा इसके नाम से ही प्रगट है, यह एक दुःखान्त उपन्यास है। 'वसन्त' नाम का एक मातृ-पितृ-हीन लड़का चाची के अत्याचारों से त्रस्त होकर घर से भाग खड़ा होता है। उसकी बाल-प्रणयिनी जोना भी माता के मर जाने से अरक्षिता हो जाती है और गुण्डों के हथ-कण्डों से त्राण पाने के लिए एक क्रिश्चियन मिशनरी के यहाँ शरण लेती है। वहाँ वह क्रिश्चियन धर्म स्वीकार कर लेती है। बहुत समय बाद एक दिन घटना-क्रम से वसन्त से उसकी मुलाक़ात होती है। इस समय तक वसन्त का परिचय एक धनी परिवार से हो गया रहता है। उस परिवार की सहायता से वह पढ़ता-लिखता है और उसी में हिल-मिल जाता है। क्रिश्चियन-वेश-धारिणी जोना को वसन्त पहचान नहीं पाता है, फिर भी उसके प्रति आकर्षित होता है और उससे विवाह का प्रस्ताव करता है। जोना वसन्त को पहचानती है और उसे हृदय से प्यार भी करती है। पर दोनों के मिलन में धर्म और समाज-नीति की बाधा है। अन्त में जोना अपनी वासना पर विजय प्राप्त करती है, और कहती है—"मिलन में वासना की बदबू है। अलग रह कर शुद्ध मन से प्रेम करने में त्याग और उत्सर्ग की स्वर्गीय सुगन्ध। आओ, वसन्त! हम लोग आज प्रतिज्ञा करें कि आजन्म अलग रह कर हम लोग एक दूसरे को प्यार करेंगे और देश के कल्याण के लिए अपने जीवन की आहुति दे देंगे। बोलो, तैयार हो?"

यहाँ तक तो कहानी का प्रवाह बहुत ही स्वाभाविक, बहुत ही सुन्दर और उत्साहप्रद है, परन्तु इसके बाद ही लेखक की दुर्बलताएँ प्रगट होती हैं। जहाँ ऊँचे से ऊँचा आदर्श उपस्थित करने का मौक़ा है, जहाँ स्वभावतः वीरत्व, उत्साह और पराक्रम को स्थान मिलना चाहिए, वहाँ लेखक अपने पात्रों को निरुत्साह कर देता है, उन्हें रुलाता है और उनकी एक दूसरे से हत्या करता है। और हत्या भी किस तरह? बिलकुल बेमौक़े और बेढङ्गे तरीक़े से। शायद निरे हत्या-प्रेम के कारण ही ये हत्याएँ कराई गई हैं!

जोना की उत्साह भरी बातें वसन्त को पसन्द नहीं आतीं। वह दुःखी होकर लौट जाता है। इधर क्रिश्चियन मिशनरी का लड़का विलियम जोना से प्रेम करने लगता है। इस कारण विलियम को चाहने वाली एक दूसरी रमणी जोना को पिस्तौल से मार डालती है। जोना की मृत्यु क्या है, वसन्त के यौवन-वसन्त में अचानक पतझड़ का आगमन। यही संक्षेप में इस उपन्यास का कथानक है। नायिका की अकाल मृत्यु होती है, और नायक देश जीवन के लिए मोहर्रमी सूरत बना लेता है।

बाल्यकाल में नायक और नायिका दोनों ने अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह किया था, दोनों शौर्य और वीरत्व के साथ घर-बार छोड़ कर अपना उद्धार करने चले थे। दोनों को कुछ दूर तक सफलता भी मिली। ऐसे कर्मवीर पात्रों का करुण अन्त स्वाभाविक नहीं जँचता। यदि इन पात्रों ने किसी पर अत्याचार किया होता, किसी कुमार्ग पर पैर रक्खा होता अथवा कोई अनुचित महात्वाकांक्षा दिखाई होती तो इनका ऐसा शोचनीय अन्त स्वाभाविक होता। पर बसन्त जैसे भलेमानस को मनस्ताप की ज्वाला में जलाना—और सो भी जीवन भर—और जोना जैसी प्रेममयी देवी को मरवा डालना—एक पिचाशिनी के हाथ से—लेखक की रुग्ण मनोवृत्ति का परिचायक है, अथवा फिर यह कहना होगा कि उसे मानव स्वभाव का ज्ञान नहीं है।

लेखक स्वभाव से ही निराशावादी मालूम होता है। रात्रि की शान्ति में, 'आसमान में टँके हुए सितारों की झलमलाहट' में उसे 'मौत का सा भयावना सन्नाटा' मालूम होता है। सन्ध्या के सौन्दर्य और दक्खिनी हवा की सरसराहट में उसे 'उदासी' नज़र आती है। 'चाँदनी रात का दृश्य, दूर तक फैली हुई हरियाली और उस पर पड़ती हुई ज्योत्स्ना की किरणें' लेखक के 'हृदय में एक अपूर्व शान्ति और विषाद भर देती हैं।' भला शान्ति और विषाद का कैसा संयोग? शान्ति में विषाद कहाँ? और विषाद में शान्ति कहाँ? शायद लेखक के इस विषाद-प्रेम का ही यह परिणाम है कि यह उपन्यास अन्त में दुःखमय बन जाता है। जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, लेखक को मानव-चरित्र का सच्चा और स्वाभाविक चित्रण करने की अपेक्षा दुःख, विषाद, ग्लानि, कष्ट और मृत्यु का वर्णन करना अधिक प्रिय है।

परन्तु यह सब होने पर भी, इस उपन्यास के अन्त में, जैसा कि ऊपर कहा गया है, यदि व्यतिक्रम दोष न आगया होता तो निस्सन्देह यह एक पूर्ण सफल रचना था। इसके कई स्थल तो बहुत ही मनोरञ्जक हैं। अन्धे विलियम के मुँह से सन्तोष और त्याग की बातें सुनने में बहुत ही भली लगती हैं। विलियम ने अन्धत्व के दुःख को किस भाव से सहन किया है, इसकी व्याख्या करते हुए वह कहता है—"वस्तु का स्वरूप कल्पना में जितना भयङ्कर होता है, वास्तव में वह उतना भयङ्कर नहीं होता। सोचने में अधिक कष्ट है, सह लेने में नहीं। फाँसी का दण्ड पाया हुआ व्यक्ति फाँसी की कल्पना से जितना व्यथित और उद्विग्न होता है, उतना फाँसी पाने पर (या से ?) नहीं होता। दुःख अलग से अधिक डरावने मालूम पड़ते हैं, पास आ जाने पर नहीं। मुझे भी (आँखों के जाने से) दुःख हुआ था बहुत, पर अब तो सह गया हूँ।" एक अन्धे के मुँह से इन वाक्यों की योजना कितनी स्वाभाविक और मनोहर हुई है!

इस पुस्तक में इसी प्रकार की और भी अनेक

से

१०००) की नई ज़मानत

पाठकों को स्मरण होगा कि विगत जुलाई मास में इस संस्था से ४०००) की ज़मानत माँगी गई थी—२०००) 'चाँद' के प्रकाशक से तथा २०००) प्रेस के अधिकारी से। बाद में 'चाँद' की ज़मानत की आज्ञा रद्द कर दी गई और प्रेस की ज़मानत घटा कर १०००) कर दी गई, जो जमा की जा चुकी है।

अब यू० पी० गवर्नमेण्ट ने 'चाँद' के प्रकाशक से पुनः १०००) की नई ज़मानत माँगी है। इस अङ्क के प्रकाशित होने के पहले ही यह ज़मानत भी जमा कर देनी पड़ेगी। पाठकों को यह जान कर शायद आश्चर्य होगा कि 'चाँद' के अगस्त-सितम्बर वाले संयुक्ताङ्क में 'स्त्रियों के आदर्श' शीर्षक जो कविता और 'सत्याग्रह-संग्राम में स्त्रियाँ' शीर्षक जो समाचार छपा था, उसके लिए यह ज़मानत माँगी गई है!

मनोहर उक्तियाँ हैं। अरक्षिता स्त्रियों को छेड़ने और सताने वाले लम्पटों के विषय में कहा गया है—"एक पतङ्ग होते हैं वे, जो रूप की माधुरी पर मुग्ध होकर अपने आपको निछावर कर देते, रूप की ज्वाला में जल मरते हैं; पर ये पतङ्ग मरना नहीं मारना जानते हैं, जलना नहीं जलाना चाहते हैं। ये जलाते हैं, चूस लेते हैं।"

पुस्तक की भाषा में प्रवाह और ज़ोर है। शब्दों की योजना बहुत सुन्दर हुई है। एक उदीयमान लेखक की रचना होने की हैसियत से इसे हम सफल रचना कह सकते हैं।

* * *

सरल भारतीय शासन—लेखक भगवानदास केला; प्रकाशक भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन; पृष्ठ-संख्या १३२; मूल्य ॥)

आजकल जब कि हमारे देश में शासन-सुधार का आन्दोलन इतने ज़ोरों पर है, जब कि प्रजा के अधिकारों और कर्त्तव्यों की चर्चा दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है, श्री० केला जी ने इस विषय पर विद्यार्थी-वर्ग तथा लोकमत को शिक्षित करने का नियमित प्रयत्न आरम्भ करके अभीष्ट दिशा में ही पैर बढ़ाया है। अब तक श्री० केला जी इस विषय पर अनेक ग्रन्थ लिख चुके हैं। आपके 'भारतीय शासन' का तो हिन्दी-संसार में अभूतपूर्व आदर हुआ है। अब तक उसके पाँच संस्करण हो चुके हैं, और प्रस्तुत पुस्तक उसी का संक्षिप्त रूप है।

इसकी भूमिका में लेखक ने बहुत ठीक कहा है कि भारतीय शासन पर अब तक जो पुस्तकें हिन्दी या अङ्गरेज़ी में लिखी गई हैं, प्रायः सब में यह दूषण है कि लेखकों ने सरलता की आड़ में वर्तमान शासन-पद्धति का समर्थन या प्रशंसा की है। लेखक के शब्द में, "जबकि यहाँ शासन-पद्धति में महान परिवर्तनों की आवश्यकता हो, और कुछ परिवर्तन हो भी रहे हों", उन लेखकों का ऐसा करना सर्वथा "अनावश्यक और अनुचित" है। हम निस्सङ्कोच कह सकते हैं कि स्वयं अपनी पुस्तक को इस कसौटी पर खरा उतारने में श्री० केला जी को पूरी-पूरी सफलता मिली है।

विद्यार्थियों की पाठ्य पुस्तक के लिए यह बहुत ज़रूरी है कि उसमें वर्तमान शासन-पद्धति की न तो अनुचित प्रशंसा की जाय और न इसके प्रति अनावश्यक रूप से आग उगली जाय। 'सरल भारतीय शासन' में ये दोनों गुण पर्याप्त मात्रा में मौजूद हैं।

इसमें ज़िले, प्रान्त और भारत के शासन के अतिरिक्त स्थानीय स्वराज्य (पञ्चायतों, ज़िला बोर्डों, म्युनिसिपैलिटियों आदि) और प्रान्तीय तथा केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं का सरल भाषा में बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है। पार्लामेण्ट, भारत-मन्त्री और उसकी सभा, देशी रियासतों तथा कर और सरकारी आय पर भी प्रकाश डाला गया है।

पुस्तक के अन्त में नागरिकों के कर्तव्य पर एक परिच्छेद लिखा गया है। इसमें नागरिकों से अनुरोध किया गया है कि उन्हें देश के क़ानूनों को अपना कर्तव्य समझ कर पालन करना चाहिए। परन्तु साथ ही यह भी कहा गया है कि "यदि कोई क़ानून कहीं अहितकर प्रतीत हो तो बड़ी आयु वाले, योग्य तथा अनुभवी नागरिकों को उसका विचार करके, आवश्यकता होने पर, उसे बदलवाने या रद्द कराने का प्रयत्न करना चाहिए।"

इस प्रकार यह पुस्तक विद्यार्थियों की पाठ्य पुस्तक होने के लिए पूर्णतः उपयुक्त है। साथ ही इससे सर्वसाधारण के ज्ञान की भी वृद्धि हो सकती है। पुस्तक की भाषा सरल रक्खी गई है, यह उचित ही हुआ है। एक ऐसे गहन विषय पर सरल पुस्तक इतनी सफलता के साथ लिख सकने के लिए श्री० केला जी हिन्दी-संसार के समीप निस्सन्देह बधाई के पात्र हैं।

* * *

नागरिक शिक्षा—लेखक भगवानदास केला; प्रकाशक भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन; पृष्ठ-संख्या १२९; मूल्य ॥)

यह श्री० केला जी की दूसरी कृति है। इसकी भूमिका लिखी है प्रेम-महाविद्यालय (वृन्दावन) के आचार्य श्री० जुगलकिशोर जी ने। भूमिका में आपने वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की, नागरिक शास्त्र की शिक्षा के प्रति उदासीनता दिखाने के कारण, तीव्र निन्दा की है, और नागरिक शिक्षा का महत्व दिखाया है। परन्तु आपने भूमिका लिखी है अङ्गरेज़ी में, यह अत्यन्त अनुचित

हुआ है। एक राष्ट्रीय महाविद्यालय का आचार्य एक हिन्दी पुस्तक की भूमिका लिखे अङ्गरेज़ी में, यह हम लोगों की घोर मानसिक ग़ुलामी का परिचायक नहीं तो और क्या है? पुस्तक के मुख-पृष्ट पर भी पुस्तक के नाम के नीचे अङ्गरेज़ी में लिखा है—Elementary Civics। क्या इन दो विदेशी शब्दों के बिना पुस्तक के नाम का आशय पाठकों की समझ में नहीं आता? भारतीय ग्रन्थ-माला की और भी कई पुस्तकों में यह दोष देखा जाता है कि पुस्तक के नाम के नीचे उसका अङ्गरेज़ी अनुवाद छपा रहता है। कम से कम नागरिक शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों में राष्ट्र भाषा के मुक़ाबले एक विदेशी भाषा को इस प्रकार का अनुचित महत्व कभी न मिलना चाहिए।

जिन पाठकों को भारतीय शासन-यन्त्र के ढाँचे का साधारण ज्ञान हो चुका हो, उनके लिए, यह पुस्तक विशेष उपयोगी है। इसमें भारत की सेना, पुलिस, अदालत, जेल, डाक और तार, रेल, बैङ्क, प्रॉविडेण्ट फ़ण्ड और बीमा आदि का बहुत ही मनोरञ्जक वर्णन किया गया है। विषय को समझाने का ढङ्ग अनूठा है। यात्रा, शिक्षा, शिल्प, खेल आदि के कई चित्र देकर पुस्तक को बालकों के लिए आकर्षक बनाने की भी चेष्टा की गई है।

इसके ख़ास कर कृषि, उद्योग-धन्धे और व्यापार वाले तीन परिच्छेद तो अत्यन्त उत्कृष्ट हुए हैं। इनमें हमारे देश की अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं का संक्षेप में, पर बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ, निदर्शन कर दिया गया है। भारत में कृषि की अवनति के क्या कारण हैं, सरकारी कृषि-विभाग इस अवनति को दूर करने के लिए कौन से प्रयत्न करता है, तथा इन प्रयत्नों में कौन सी त्रुटियाँ हैं, कृषि-शिक्षा का प्रबन्ध कैसा है, उस प्रबन्ध में कौन-कौन से सुधार होने से वह हमारे देश के लिए उपयोगी हो सकता है, कल-कारख़ानों की वृद्धि का हमारे घरेलू शिल्प पर क्या प्रभाव पड़ा है, घरेलू शिल्पों की उन्नति से हमें कौन से लाभ पहुँच सकते हैं, हमारे देश की व्यापार-नीति क्या है, उससे हमें कहाँ तक लाभ या नुक़सान पहुँचता है, हमारे लिए कौन सी व्यापार-नीति उपयुक्त होगी आदि बातों का वर्णन बड़े सरल और बड़े मनोरञ्जक ढङ्ग से किया गया है। यदि शिक्षक में योग्यता हो तो वह इस पुस्तक के सहारे अपने विद्यार्थियों को इस विषय की अनेक गहन और विवादग्रस्त बातों का भी ज्ञान आसानी से करा दे सकता है।

पुस्तक के अन्त में पारिभाषिक शब्दों की एक सूची भी दी गई है। इससे नवीन लेखकों को इस विषय पर लिखने में बहुमूल्य सहायता मिल सकती है।

—शुकदेव राय

* * *

लेखकों से निवेदन

हमारे पास बहुत से लेख, कविताएँ तथा कहानियाँ आदि अस्वीकृत पड़ी हुई हैं। यदि इनके लेखकगण डाक-व्यय के लिए टिकट भेज कर अपनी रचनाएँ मँगा लें तो हम उनके बड़े कृतज्ञ होंगे। अन्यथा तीन महीने के बाद हम इन रचनाओं को वापस लौटाने के लिए ज़िम्मेदार न होंगे।

भविष्य में लेखादि भेजने वाले सज्जनों से भी प्रार्थना है कि वे अपने लेख की वापसी या उसके सम्बन्ध की सूचना भेजने के लिए टिकट अवश्य भेजें, अन्यथा उनके लेखों आदि के लिए हम उत्तरदायी न होंगे।

—सम्पादक 'चाँद'

मगन रहु चोला—लेखक श्रीयुत अन्नपूर्णानन्द; प्रकाशक बलदेव-मित्रमण्डल, राजा दरवाज़ा, काशी; पृष्ठ-संख्या १२५; मूल्य ।।।); छपाई और सफ़ाई सुन्दर।

वास्तव में हास्यरस का सफलतापूर्वक लिखना बहुत कठिन काम है। यही कारण है कि प्रत्येक भाषा में शुद्ध हास्यरस सम्बन्धी पुस्तकों की संख्या बहुत कम है। बहुत लोग इसके महत्व को कुछ भी नहीं समझते, परन्तु यह उनकी बड़ी भारी भूल है। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी भाषा में भी हास्यरस के कुछ सिद्धहस्त लेखक

पैदा हो रहे हैं। श्रीयुत अन्नपूर्णानन्द जी ऐसे ही लेखक हैं। वास्तव में उनकी 'मगन रहु चोला' नामक पुस्तक हिन्दी-भाषा के एक बड़े भारी अभाव की पूर्त्ति करती है।

हिन्दी में हास्यरस सम्बन्धी पुस्तकें अब इधर लिखी जानी लगी हैं। परन्तु उनमें से बहुत तो बिलकुल भद्दी हैं। मैंने एक पुस्तक की बड़ी प्रशंसा सुनी। लोगों ने कहा कि इसके पढ़ने से हँसते-हँसते नाक में दम आ जाता है, बड़ी अच्छी पुस्तक है। मैंने उसे पढ़ना प्रारम्भ किया। मैं सच कहता हूँ, मैं उसे प्रयत्न करने पर भी नहीं पढ़ सका। उसकी लगभग सब हँसी गँवारों की हँसी थी। मुझे आनन्द मिलने के बजाय उसका पढ़ना बहुत बुरा लगा। मैंने उसे उठा कर फेंक दिया। मैं इस बात को अब भी मानता हूँ कि गँवार लोग उसे बड़े आनन्द से अवश्य पढ़ेंगे। हँसी के भी कई भेद हैं। हँसी सम्बन्धी ऐसी पुस्तकें भी चाहिए जिसे पढ़ कर सभ्य लोगों को भी आनन्द आवे। 'मगन रहु चोला' वास्तव में ऐसी ही पुस्तक है। इसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इसे पढ़ कर मेरा हृदय आनन्द से नाच उठा और मैं सहसा कह उठा—"वास्तव में हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल है।"

इस पुस्तक के विचार मौलिक हैं और यह पुस्तक अपने ढङ्ग की अनूठी है। इसके लिखने में लेखक ने दूसरों के दरवाज़ों को नहीं खटखटाया है। इसकी भाषा की मौलिकता का प्रत्येक पाठक क़ायल हो जायगा। इसकी भाषा बहुत सुन्दर, मार्मिक तथा परिमार्जित है। प्रत्येक पृष्ठ में अवश्य ही हँसना पड़ता है। यदि आपका मन उदास हो, यदि आपका मन किसी काम में न लगता हो तो आप इसे उठा लीजिए और पढ़ना प्रारम्भ कर दीजिए, आप हँसी के मारे लोट-पोट हो जायँगे। उसमें भी ख़ूबी यह है कि इसमें अश्लीलता का नाम भी नहीं है। आप बिना सङ्कोच यह पुस्तक बालक, वृद्ध, युवा, कन्या अथवा स्त्री के हाथ में दे सकते हैं।

यदि इस ग्रन्थ में केवल हँसी ही हँसी होती, तो भी यह ग्रन्थ अद्वितीय कहा जा सकता था, परन्तु इसमें और भी कई विशेषताएँ हैं, जिनसे इस ग्रन्थ का मूल्य अधिक बढ़ जाता है। इसमें समाज की ख़ूब अच्छी समालोचना की गई है। कभी-कभी तो यह समालोचना बहुत ही उपयुक्त तथा मार्मिक हो गई है। कभी-कभी हँसी के रूप में शिक्षाएँ भी दी गई हैं जो शुष्क उपदेश नहीं रह जातीं, किन्तु हृदय पर प्रभाव डालती हैं और चोट करती हैं।

इस ग्रन्थ के पढ़ जाने से ठीक-ठीक पता चल जाता है कि लेखक का समाज का ज्ञान बहुत विस्तृत तथा गहरा है। लेखक ने आकाश में उड़ने का प्रयत्न नहीं किया है, परन्तु पृथ्वी पर ही चलने का प्रयत्न किया है। इसकी कोई घटना असम्भव नहीं जान पड़ती।

जहाँ इस पुस्तक में इतने गुण हैं, वहाँ कुछ दोष भी हैं और कुछ कमी भी है। कमी तो इस बात की है कि इस पुस्तक में व्यङ्ग और ध्वनि की बहुत ही अधिक कमी है। मेरी समझ में दोष यह है कि 'सभ्यता का शिखर' शीर्षक भाग में पं० विलवासी मिश्र का व्याख्यान बहुत बड़ा है। वास्तव में ऐसा नहीं होना चाहिए था। इतना बड़ा व्याख्यान बहुत खटकता है। पुस्तक के अन्त में लेखक ने लिखा है—"मगन रहु चोला! कैसी अच्छी सलाह है! प्यारे पाठको! आइए हम आप इसे अपना सिद्धान्त बना लें।" इस प्रकार स्वयं लेखक ने उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया है। परन्तु पुस्तकों में प्रकट रूप से लेखक को पाठकों के सामने यथासम्भव कभी नहीं आना चाहिए। इससे उपदेश की उपादेयता कम हो जाती है।

तथापि मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक को हिन्दी साहित्य में अच्छा स्थान मिलेगा और हिन्दी-भाषा-भाषियों में इसका अच्छा आदर होगा।

—अवध उपाध्याय

वार्षिक मूल्य ६॥)

छःमाही मूल्य ३॥)

चाँद
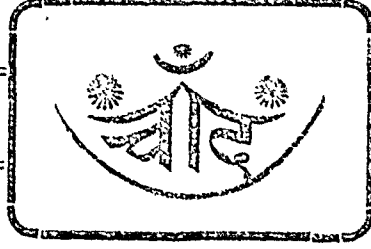
वर्ष ८, खण्ड २

मई, सन् १९३० से अक्टूबर, सन् १९३० ई० तक

सम्पादक—

श्रीरामरखसिंह सहगल

श्रीशुकदेव राय

सञ्चालिका—

श्रीमती विद्यावती सहगल
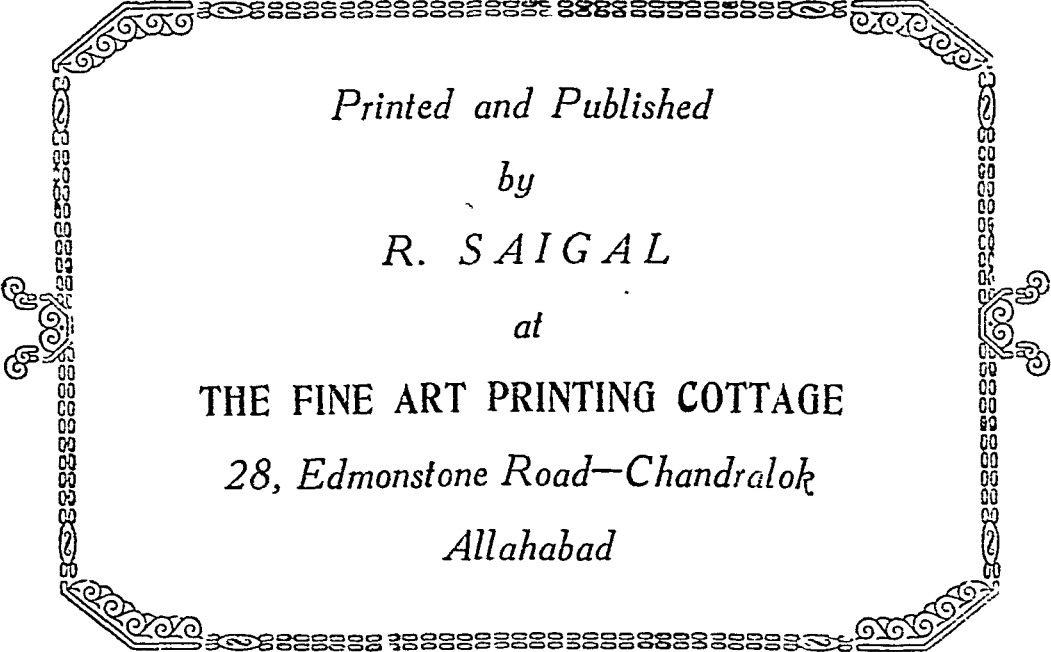
'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक,

इलाहाबाद

मुद्रक—

फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज,

इलाहाबाद

Printed and Published

by

R. SAIGAL

at

THE FINE ART PRINTING COTTAGE

28, Edmonstone Road—Chandralok

Allahabad

१—गद्य

* * *

विविध-विषय

* * *

विश्व-वीणा

स्लोन का मलहम

दर्दों का नाशक है !

चोट और मोच के लिए स्लोन के मलहम का भरोसा करो

सभी खिलाड़ियों को स्लोन के मलहम की एक शीशी अपने पास रखनी चाहिए। घाव हो जाने, मोच आ जाने या दर्द होने पर, यह उन जगहों में रक्त का स्वाभाविक दौरा जारी कर आराम पहुँचाता है। स्लोन के मलहम का व्यवहार कीजिए, यह शीघ्र ही आपके चोट और मोच को आराम कर देगा।

स्लोन का मलहम दर्दों का
नाश करता है !

आदर्श चित्रावली

(पहिला भाग)

यह वह चीज़ है, जो आज तक भारत में नसीब नहीं हुई !

यदि 'चाँद' के निजी प्रेस फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज की

छपाई और सुघड़ता

का रसास्वादन करना चाहते हों तो एक बार इसे देखिए

बहू-बेटियों को उपहार दीजिए और इष्ट-मित्रों का मनोरञ्जन कीजिए

मूल्य केवल ४) रु०, स्थायी ग्राहकों से ३) मात्र !!

विलायती पत्रों में इस

चित्रावली की धूम मची हुई है

कुछ भारतीय प्रतिष्ठित विद्वानों और पत्रों की सम्मतियाँ मँगा कर देखिए—

The Hon'ble Mr. Justice B. J. Dalal of the Allahabad High Court :

Your Album (*Adarsh Chittrawali*) is a production of great taste and beauty and has come to me as a pleasant surprise as to what a press in Allahabad can turn out. Moon-worshipping and visit to the temple are particularly charming pictures—life-like and full of details. I congratulate you on your remarkable enterprise . . . .

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

अर्थात्

पूर्व और पश्चिम

इस पुस्तक में पूर्व और पश्चिम का आदर्श, दोनों की तुलना, मनुष्य-जीवन के लिए भारत की प्राचीन मर्यादा का सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होना, भारत की वर्त्तमान सामाजिक कुरीतियाँ तथा उनका भयङ्कर परिणाम, यूरोप की विलास-प्रियता और उससे होने वाली अशान्ति का वर्णन बड़े ही मनोहर ढङ्ग से किया गया है। पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल और मुहावरेदार है।

इङ्गलैण्ड की सोफ़िया नामक एक अनाथ बालिका का भारत के प्रति अगाध प्रेम एवं श्रद्धा, चिकित्सा-कार्य द्वारा उसका भारतीय जनता की निस्स्वार्थ सेवा करना, डॉक्टर चन्द्रस्वरूप शुक्र तथा उनकी धर्मपत्नी फूलकुमारी से सोफ़िया का घनिष्ट प्रेम, फूलकुमारी की मृत्यु के बाद शुक्र और सोफ़िया का प्रणय, एक-दूसरे को अपना हृदय समर्पण करना, किन्तु सामाजिक रूढ़ियों के भय एवं पिता के अनुरोध से बाध्य होकर शुक्र का दूसरी स्त्री से पाणि-ग्रहण करना, फल-स्वरूप दोनों का निराशा एवं आन्तरिक दुख से व्यथित होना और अन्त में संन्यास लेकर दोनों का तन, मन, धन से देश-सेवा करना ऐसी मनोरञ्जक कहानी है कि पढ़ते ही तबीयत फड़क उठती है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥), स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र।

आदर्श चित्रावली

(पहिला भाग)

यह वह चीज़ है, जो आज तक भारत में नसीब नहीं हुई !

यदि 'चाँद' के निजी प्रेस फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज की

छपाई और सुघड़ता

का रसास्वादन करना चाहते हों तो एक बार इसे देखिए

बहू-बेटियों को उपहार दीजिए और इष्ट-मित्रों का मनोरञ्जन कीजिए

मूल्य केवल ४) रु०, स्थायी ग्राहकों से ३) मात्र !!

विलायती पत्रों में इस

चित्रावली की धूम मची हुई है

कुछ भारतीय प्रतिष्ठित विद्वानों और पत्रों की सम्मतियाँ मँगा कर देखिए—

The Hon'ble Mr. Justice B. J. Dalal of the Allahabad High Court :

Your Album (*Adarsh Chittrawali*) is a production of great taste and beauty and has come to me as a pleasant surprise as to what a press in Allahabad can turn out. Moon-worshipping and visit to the temple are particularly charming pictures—life-like and full of details. I congratulate you on your remarkable enterprise . . . .

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

अर्थात्—

ईसा-चरित्र पर एक आलोचनात्मक दृष्टि

लेखक—श्री० प्रो० विश्वेश्वर जी, 'सिद्धान्त-शिरोमणि'

भूमिका-लेखक—आचार्य श्री० गङ्गाप्रसाद जी, एम० ए०, एम० आर० ए० एस०, चीफ़ जज

"PIONEER"

Sunday, August 31st. 1930

Hindi literature has a large number of propagandist and other kind of books on Christianity, but there has been no book giving the life of Jesus Christ in an uncoloured way. This book is an attempt —and a good one—to remove that deficiency. Coming as it does from the pen of an Arya Samajist, it does credit to the writer for his sympathetic style. He has rightly shown Christ as a great *Bhakt* (lover) of God and has shown how the life of Christ was a life of sacrifice. The book should be read by all who want to know the life of the founder of a religion which is now followed by a very large number of persons throughout the world. The book is well-illustrated.

इस पुस्तक में महापुरुष ईसा के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएँ तथा उनके अमृत-मय उपदेश बहुत ही सुन्दरतापूर्वक वर्णन किए गए हैं। सांसारिक मनुष्यों के लिए यह पुस्तक स्वर्गीय वस्तु है ! केवल एक बार के पढ़ने से आपकी आत्मा में एक दिव्य ज्योति उत्पन्न हो जायगी, महान से महान विघ्न-बाधाएँ तथा आपत्तियाँ आपको तुच्छ प्रतीत होंगी। पुस्तक की भाषा अत्यन्त मधुर, मुहावरेदार और ओजस्विनी है। भाव अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। छपाई-सफ़ाई बहुत सुन्दर; सचित्र एवं सजिल्द; तिरङ्गे प्रोटेक्टिङ्ग कवर से सुशोभित पुस्तक का मूल्य केवल २॥); स्थायी ग्राहकों के लिए १॥।=) मात्र !!

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही ३॥)

Printed at the Fine Art Printing Cottage
Chandralok—Allahabad.

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य १)

दाम्पत्य जीवन

इस पुस्तक के सम्बन्ध में प्रकाशक के नाते हम केवल इतना ही कहना काफ़ी समझते हैं कि ऐसे नाज़ुक विषय पर इतनी सुन्दर, सरल और प्रामाणिक पुस्तक हिन्दी में अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। इसकी सुयोग्य लेखिका ने काम-विज्ञान (Sexual Science) सम्बन्धी अनेक अङ्गरेज़ी, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी तथा गुजराती भाषा की पुस्तकें मनन करके इस कार्य में हाथ लगाया है। जिन अनेक पुस्तकों से सहायता ली गई है, उनमें से कुछ मूल्यवान् और प्रामाणिक पुस्तकों के नाम ये हैं:—

(1) Motherhood and the Relationship of the Sexes by *C. Gasquoine Hartly* (2) Confidential Talks with Husband & Wife by *Layman B. Sperry* (3) Youth's Secret Conflict by *Walter M. Gallichan* (4) The Threshold of Motherhood by *R. Douglas Howat* (5) Radiant Motherhood (6) Married Love and (7) Wise Parenthood by *Dr. Marie Stopes.*

जिन महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है, उनमें से कुछ ये हैं:—

सहगमन, ब्रह्मचर्य, विवाह, आदर्श-विवाह, गर्भाशय में जल-सञ्चय, योनि प्रदाह, योनि की खुजली स्वप्न-दोष, डिम्ब-कोष के रोग, कामोन्माद, मूत्राशय, जननेन्द्रिय, नपुंसक, अति-मैथुन, शयन-गृह कैसा होना चाहिए? सन्तान-वृद्धि-निग्रह, गर्भ के पूर्व माता-पिता का प्रभाव, मनचाही सन्तान उत्पन्न करना, गर्भ पर तात्कालिक परिस्थिति का असर, गर्भ के समय दम्पति का व्यवहार, यौवन के उतार पर स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध, रबर-कैप का प्रयोग, माता का उत्तरदायित्व आदि-आदि सैकड़ों महत्वपूर्ण विषयों पर—उन विषयों पर, जिनके सम्बन्ध में जानकारी न होने के कारण हज़ारों युवक-युवतियाँ बुरी सोसाइटी में पड़ कर अपना जीवन नष्ट कर लेती हैं; उन महत्वपूर्ण विषयों पर जिनकी अनभिज्ञता के कारण अधिकांश भारतीय गृह नरक की अग्नि में जल रहे हैं; उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनको न जानने के कारण स्त्री पुरुष से और पुरुष स्त्री से असन्तुष्ट रहते हैं—भरपूर प्रकाश डाला गया है। हमें आशा है, देशवासी इस महत्वपूर्ण पुस्तक से लाभ उठाएँगे। पृष्ठ-संख्या लगभग ३५०, तिरङ्गे Protecting cover सहित सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) रु० 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र! पुस्तक सचित्र है!! केवल विवाहित स्त्री-पुरुष ही पुस्तक मँगावें!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

हर एक रोग में जादू का सा गुण दिखाती हैं।

चालीस वर्षों की परीक्षा में किसी ने किसी प्रकार की शिकायत नहीं की

कफ, खाँसी, हैज़ा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट-दर्द, क़ै, दस्त, इन्फ़्लूऐंज़ा, बालकों के हरे-पीले दस्त और पाकाशय की गड़बड़ी से होने वाले रोगों की एक-मात्र दवा। इसके सेवन में किसी अनुपान की ज़रूरत नहीं। मुसाफ़िरी में इसे ही साथ रखिए। क़ीमत ॥) आना। डाक-ख़र्च एक से दो शीशी तक ।=)

शरीर में तत्काल बल बढ़ाता है ; क़ब्ज़, बदहज़मी, कमज़ोरी, खाँसी को दूर करता है ; बुढ़ापे के कारण होने वाले सभी कष्टों से बचाता है, नींद लाता है और पीने में मीठा व स्वादिष्ट है। क़ीमत तीन पाव की बड़ी बोतल २) ; डाक-ख़र्च १।) ; छोटी १) डाक-ख़र्च ।॥=)

ये तीनों दवाइयाँ सब दूकानदारों के पास मिलती हैं।

बच्चों को बलवान, सुन्दर और सुखी बनाने के लिए यह मीठा "बालसुधा" उन्हें पिलाइए, क़ीमत ॥।), डाक-ख़र्च ॥)

यदि आपके शहर में न मिलें तो इस पते से मँगाइए !

सुख-सञ्चारक कम्पनी, मथुरा

नवीन संशोधित संस्करण ! नवीन संशोधित संस्करण !!

विधवा-विवाह-मीमांसा
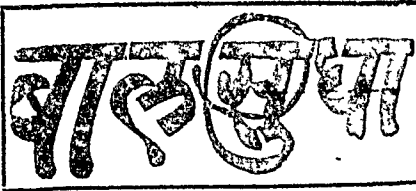
[ले० श्री० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए०]

यह महत्वपूर्ण पुस्तक प्रत्येक भारतीय गृह में रहनी चाहिए। इसमें नीचे लिखी सभी बातों पर बहुत ही योग्यतापूर्ण और ज़बरदस्त दलीलों के साथ प्रकाश डाला गया है :—

(१) विवाह का प्रयोजन क्या है? मुख्य प्रयोजन क्या है और गौण प्रयोजन क्या है? आजकल विवाह में किन-किन प्रयोजन पर दृष्टि रक्खी जाती है? (२) विवाह के सम्बन्ध में स्त्री और पुरुष के अधिकार और कर्तव्य समान हैं या असमान? यदि समानता है, तो किन-किन बातों में और यदि भेद है, तो किन-किन बातों में? (३) पुरुषों के पुनर्विवाह और बहुविवाह धर्मानुकूल हैं या धर्म-विरुद्ध? शास्त्र इस विषय में क्या कहता है? (४) स्त्री का पुनर्विवाह उपर्युक्त हेतुओं से उचित है या अनुचित? (५) वेदों से विधवा-विवाह की सिद्धि (६) स्मृतियों की सम्मति (७) पुराणों की साक्षी (८) अङ्गरेज़ी क़ानून (English Law) की आज्ञा (९) अन्य युक्तियाँ (१०) विधवा-विवाह के विरुद्ध आक्षेपों का उत्तर—(अ) क्या स्वामी दयानन्द विधवा-विवाह के विरुद्ध हैं? (आ) विधवाएँ और उनके कर्म तथा ईश्वर-इच्छा (इ) पुरुषों के दोष स्त्रियों को अनुकरणीय नहीं (ई) कलियुग और विधवा-विवाह (उ) कन्यादान-विषयक आक्षेप (ऊ) गोत्र-विषयक प्रश्न (ऋ) कन्यादान होने पर विवाह वर्जित है? (ॠ) बाल-विवाह रोकना चाहिए, न कि विधवा-विवाह को प्रथा चलाना (ऌ) क्या विधवा-विवाह लोक-व्यवहार के विरुद्ध है? (ॡ) क्या हम आर्यसमाजी हैं, जो विधवा-विवाह के पोषक हैं? (११) विधवा-विवाह के न होने से हानियाँ—(क) व्यभिचार का आधिक्य (ख) वेश्याओं की वृद्धि (ग) भ्रूण-हत्या तथा बाल-हत्या (घ) अन्य क्रूरताएँ (ङ) जाति का ह्रास (१२) विधवाओं का कच्चा चिट्ठा।

इस पुस्तक में १२ अध्याय हैं, जिनमें क्रमशः उपर्युक्त विषयों की आलोचना की गई है। कई सादे और तिरङ्गे चित्र भी हैं। इस मोटी-ताज़ी सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रु० है, पर स्थायी-ग्राहकों को पौने मूल्य अर्थात् २।) रु० में दी जाती है। पुस्तक में दो तिरङ्गे, एक दुरङ्गा और चार रङ्गीन चित्र हैं!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

सती-दाह

[ले० अनेक पुस्तकों के रचयिता—श्रीयुत पं० शिवसहाय जी चतुर्वेदी]

सती-प्रथा का रक्त-रञ्जित इतिहास

यदि धर्म के नाम पर स्वेच्छाचारिता का नङ्गा चित्र आप देखना चाहते हैं, तो इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को एक बार अवश्य पढ़िए। रूढ़ियों से चली आई इस रक्त-रञ्जित कुप्रथा ने न जाने कितनी होनहार युवतियों की हत्याएँ की हैं। किस प्रकार विधवाओं को सती होने पर मजबूर किया जाता था, उनकी इच्छा न होने पर भी, किस प्रकार उन्हें दहकती हुई अग्नि में झोंक दिया जाता था; किस प्रकार विधवाओं को जमीन में जीवित गाड़ दिया जाता था; उनके सम्बन्धी अन्ध-विश्वास के वशीभूत होकर किस प्रकार उन पर अत्याचार करते थे तथा भारतीय महिलाओं की कैसी दुर्दशा होती थी—यदि ये सब बातें प्रामाणिक रूप से आप जानना चाहते हैं तो एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। ये भारतीय इतिहास के वे रक्त-रञ्जित पृष्ठ हैं, जिन्हें पढ़ कर आँखों से आँसुओं की धारा अपने समस्त वेग से प्रवाहित होकर भारतीय समाज को एक बार ही बहा देने का प्रयत्न करती है। मूल्य २॥)

[ले० स्वर्गीय चण्डीप्रसाद जी, बी० ए०]

समाज का नङ्गा चित्र जिस योग्यता से इस पुस्तक में अङ्कित किया गया है, हम दावे के साथ कह सकते हैं, अब तक ऐसा एक भी उपन्यास हिन्दी-संसार में नहीं निकला है। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के भयङ्कर दुष्परिणामों के अलावा भारतीय हिन्दू-विधवा का जीवन जैसा आदर्श और उच्च दिखलाया गया है, वह बड़ा ही स्वाभाविक है, पढ़ते ही तबीयत फड़क उठती है। भाषा अत्यन्त सरल और मुहावरेदार है। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, मूल्य केवल २॥); स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र !

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

मेस्मिरेज़म विद्या सीख कर धन व यश कमाइए

मेस्मिरेज़म के साधनों द्वारा आप पृथ्वी में गड़ा धन या चोरी गई चीज़ का क्षण-मात्र में पता लगा सकते हैं। इसी विद्या के द्वारा मुक़द्दमों का परिणाम जान लेना, मृत पुरुषों की आत्माओं को बुला कर वार्तालाप करना, बिछुड़े हुए स्नेही का पता लगा लेना, पीड़ा से रोते हुए रोगी को तत्काल भला-चङ्गा कर देना, केवल दृष्टि-मात्र से ही पुरुष आदि सब जीवों को मोहित एवं वशीकरण करके मनमाना काम करा लेना आदि आश्चर्यप्रद शक्तियाँ आ जाती हैं। हमने स्वयं इस विद्या से लाखों रुपए कमाए और इसके अजीब करिश्मे दिखा कर बड़ी-बड़ी सभाओं को चकित कर दिया। हमारी "मेस्मिरेज़म विद्या" नामक पुस्तक मँगा कर आप भी घर बैठे इस अद्भुत विद्या को सीख कर धन व यश कमाइए। मय डाक-महसूल मूल्य सिर्फ़ ५) रुपए।

हज़ारों प्रशंसा-पत्रों में से एक

बाबू सीताराम जी बी० ए०, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता से लिखते हैं कि मैंने आपकी 'मेस्मिरेज़म विद्या' पुस्तक के ज़रिए मेस्मिरेज़म का ख़ासा अभ्यास कर लिया है। मुझे मेरे घर में धन गड़े होने का मेरी माता द्वारा दिलाया हुआ बहुत दिनों का सन्देह था। आज मैंने पवित्रता के साथ बैठ कर अपने पिता की आत्मा का आवाहन किया और गड़े धन का प्रश्न किया। उत्तर मिला "ईंधन वाली कोठरी में दो गज़ गहरा गड़ा है।" आत्मा का विसर्जन करके स्वयं खुदाई में जुट गया। ठीक दो गज़ की गहराई पर दो कलसे निकले, उन पर एक-एक सर्प बैठे हुए थे। एक कलसे में सोने-चाँदी के ज़ेवर तथा दूसरे में गिन्नियाँ व रुपए थे। आपकी पुस्तक 'यथा नाम तथा गुण' सिद्ध हुई।

मैनेजर, मेस्मिरेज़म-हाउस नं० ११, अलीगढ़

सुगन्धित तैलों के नुस्खे

[लेखक—वैद्यभूषण पं० [illegible]]

हमने हज़ारों रुपए व्यय करके देश के सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तेलों के नुस्खे प्राप्त किए हैं और अपने बीस साल के परिश्रम को हृदय खोल कर जनता के सामने रख दिया है। पुस्तक में सैकड़ों मशहूर तेलों के नुस्खे दिए गए हैं, जिनमें कुछ के नाम यह हैं—हिमसागर तेल, केशराज, आमला तैल, केशराज वाली बुद्धि सागर तैल, मनमोहनी तेल, कलकत्ते के डॉ० नगेन्द्रनाथ सेन का केशरञ्जन तैल, विख्यात जवाकुसुम तैल, लक्ष्मी तैल, प्रसिद्ध हिम-कल्याण तैल, गुलरोग़न बहार तैल, कामिनिया तैल, आमी-विलास तैल, मालती तैल आदि के नुस्खे आपको इसमें मिलेंगे। सुन्दर दूधिया एण्टिक काग़ज़ पर छपी हुई पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ १) डा० म० ।-)

सामुद्रिक विद्या

[लेखक—पं० चन्द्रशेखर जी शास्त्री]

इस पुस्तक को पढ़ कर आप प्रत्येक मनुष्य के मुख आदि अङ्गों को देख कर फ़ौरन ही बता सकते हैं कि उसकी आयु कितनी होगी और उम्र के किस वर्ष में कितना सुख या दुख होगा, कितने पुत्र या कन्या होंगे। केवल अङ्ग देख कर ही उसके बाँझ, विधवा, नपुंसक होने की बातें भी बता सकते हैं। राजा या प्रजा, धनी या दरिद्री, पण्डित या मूर्ख रहने की बात आप इस पुस्तक से अङ्ग देख कर तुरन्त बता सकते हैं। मूल्य १॥) सजिल्द २)

मँगाने का पता—चाँद प्रेस, अलीगढ़

अर्थात्—

ईसा-चरित्र पर एक आलोचनात्मक दृष्टि

लेखक—श्री० प्रो० विश्वेश्वर जी, 'सिद्धान्त-शिरोमणि'

भूमिका-लेखक—आचार्य श्री० गङ्गाप्रसाद जी, एम० ए०, एम० आर० ए० एस०, चीफ़ जज

"PIONEER"

Sunday, August 31st. 1930

Hindi literature has a large number of propagandist and other kind of books on Christianity, but there has been no book giving the life of Jesus Christ in an uncoloured way. This book is an attempt —and a good one—to remove that deficiency. Coming as it does from the pen of an Arya Samajist, it does credit to the writer for his sympathetic style. He has rightly shown Christ as a great *Bhakt* (lover) of God and has shown how the life of Christ was a life of sacrifice. The book should be read by all who want to know the life of the founder of a religion which is now followed by a very large number of persons throughout the world. The book is well-illustrated.

इस पुस्तक में महापुरुष ईसा के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएँ तथा उनके अमृत-मय उपदेश बहुत ही सुन्दरतापूर्वक वर्णन किए गए हैं। सांसारिक मनुष्यों के लिए यह पुस्तक स्वर्गीय वस्तु है! केवल एक बार के पढ़ने से आपकी आत्मा में एक दिव्य ज्योति उत्पन्न हो जायगी, महान से महान विघ्न-बाधाएँ तथा आपत्तियाँ आपको तुच्छ प्रतीत होंगी। पुस्तक की भाषा अत्यन्त मधुर, मुहावरेदार और ओजस्विनी है। भाव अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। छपाई-सफ़ाई बहुत सुन्दर; सचित्र एवं सजिल्द; तिरङ्गे प्रोटेक्टिङ्ग कवर से सुशोभित पुस्तक का मूल्य केवल २।।); स्थायी ग्राहकों के लिए १।।।=) मात्र !!

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

अफ्रिका-प्रवासी

भाई भवानीदयाल जी संन्यासी-लिखित

दक्षिण अफ्रिका के मेरे अनुभव

दक्षिण अफ्रिका के प्रवासी भारतवासियों की नरक-यातना की कहानी आजकल प्रत्येक समाचार-पत्र में छप रही है। बड़े-बड़े भारतीय नेता इनके उद्धार के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न कर रहे हैं। महात्मा गाँधी, मि० सी० एफ़ एण्ड्रूज़, मि० पोलक आदि बड़े-बड़े नेताओं ने इन प्रवासी-भाइयों की करुण-स्थिति देख कर ख़ून के आँसू बहाए हैं। पं० भवानीदयाल जी (सम्पादक 'हिन्दी') ने अपनी सारी ज़िन्दगी ही इन अभागे प्रवासी-भाइयों के सुधार में बिताई है। संन्यास ले चुकने पर भी आपको चैन नहीं पड़ा, आप फिर दक्षिण अफ्रिका गए हैं। इस पुस्तक में आपके निजी अनुभवों का समावेश है। पुस्तक बड़ी रोचक है। पढ़ने में अच्छे उच्च-कोटि के उपन्यास का आनन्द आता है। इस एक पुस्तक को पढ़ लेने से सारे अफ्रिका की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थिति का सहज ही दिग्दर्शन हो जाता है, और वहाँ के स्थायी गोरों की स्वार्थपरता और धन-लोलुपता एवं अन्याय-प्रियता का अच्छा पता लग जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रवासी-भारतीयों की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति जानने के लिए यह पुस्तक दर्पण-स्वरूप है। पुस्तक सजिल्द है और Protecting Cover भी लगाया गया है। मूल्य लागत मात्र केवल २॥) रक्खा गया है। स्थायी ग्राहकों से १॥।=); प्रत्येक स्त्री-पुरुष को पुस्तक एक बार अवश्य पढ़ कर अपनी ज्ञान-वृद्धि करनी चाहिए।

एक स्त्री-द्वारा लिखे हुए क्रान्तिकारी पत्रों का अपूर्व संग्रह

यह पुस्तक 'कमला' नामक एक शिक्षित मद्रासी महिला के द्वारा अपने पति के पास लिखे हुए पत्रों का हिन्दी-अनुवाद है। इन गम्भीर, विद्वत्तापूर्ण एवं अमूल्य पत्रों का मराठी, बँगला तथा कई अन्य भारतीय भाषाओं में बहुत पहले अनुवाद हो चुका है। पर आज तक हिन्दी-संसार को इन पत्रों के पढ़ने का सुअवसर नहीं मिला था।

इन पत्रों में कुछ पत्रों को छोड़, प्रायः सभी पत्र सामाजिक प्रथाओं एवं साधारण चर्चाओं से परिपूर्ण हैं। पर उन साधारण चर्चाओं में भी जिस मार्मिक ढङ्ग से रमणी-हृदय का अनन्त प्रणय, उसकी विश्व-व्यापी महानता, उसका उज्ज्वल पतिभाव और प्रणय-पथ में उसकी अक्षय साधना की पुनीत प्रतिमा चित्रित की गई है, उसे पढ़ते ही आँखें भर आती हैं। दुर्भाग्यवश रमणी-हृदय की उठती हुई सन्दिग्ध भावनाओं के कारण कमला की आशा ज्योति अपनी सारी प्रभा छिटकाने के पहले ही सन्देह एवं निराशा के अनन्त तम में विलीन हो गई। इसका परिणाम वही हुआ जो होना चाहिए—कमला को उन्माद-रोग हो गया। जो हो, इन पत्रों में जिन भावों की प्रतिपूर्त्ति की गई है, वे विशाल और महान् हैं। अनुवाद में इस बात का विशेष रूप से ध्यान रक्खा गया है कि भाषा सरल, सरस और सुबोध हो और मूल-लेखिका की स्वाभाविकता किसी प्रकार नष्ट न होने पाए। काग़ज ४० पाउण्ड एण्टिक, पृष्ठ-संख्या २००, मूल्य केवल ३) रु० ! स्थायी ग्राहकों के लिए २।) मात्र ! पुस्तक सुनहरी जिल्द से मण्डित है और ऊपर तिरङ्गा Protecting Cover भी दिया गया है !! नवीन संस्करण प्रेस में है !!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

The Hon'ble Justice Sir B. J. Dalal of the Allahabad High Court, says:

Dear Mr Saigal,

Your album is a production of great taste & beauty & has come to me as a pleasant surprise as to what a press in Allahabad can turn out. Moon worshippers & visit to the Temple are particularly charming pictures, life like & full of details. I congratulate you on your remarkable enterprise & thank you for a present which has given & will continue to give me a great deal of pleasure.

Yours sincerely

B J Dalal.

Price Rs. 4/- only. (Postage extra)

The "CHAND" Office

CHANDRALOK, ALLAHABAD

D. 1. III. 30

प्रवेशाङ्क

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

प्रातःकाल

[पं० चन्द्रनाथ मालवीय "वारीश"]

'चाँद'! तुम्हारी अटल नीति ने किया देश का है कल्याण!
छोड़े गए प्राण हरने को तुम पर फिर क्यों इतने बाण??
डरे नहीं! क्यों? बढ़ते ही तुम गए सदा सङ्कट की ओर!
आ ही गया आज तो भी नव-वर्ष, तुम्हारा यह नव-भोर!!

विहँस इन्दु ने कहा (कष्ट से करुणा-भरी हँसी हँस कर)—
"जागे यह समाज तो पहले, मरने को मैं हूँ तत्पर॥
"आध्यात्मिक स्वराज्य मेरा है ध्येय, सत्य मेरा साधन।
"मेरी प्रेम प्रणाली है, यह अनुष्ठान है अति पावन॥

"मैं अविचल की भाँति अन्त तक, कभी न कर सकता परवाह!
"कितनी संख्या है विरोधियों की, कितनी है शक्ति अथाह!!"
चुए अश्रु-कण, दिए दिखाई ओस-विन्दु सम प्रातःकाल।
"निन्दा कौन करेगा शशि की"—कहा अरुण ने होकर लाल॥

नवम्बर, १६३०
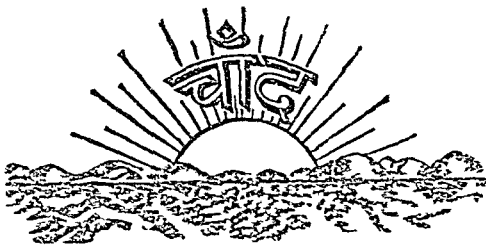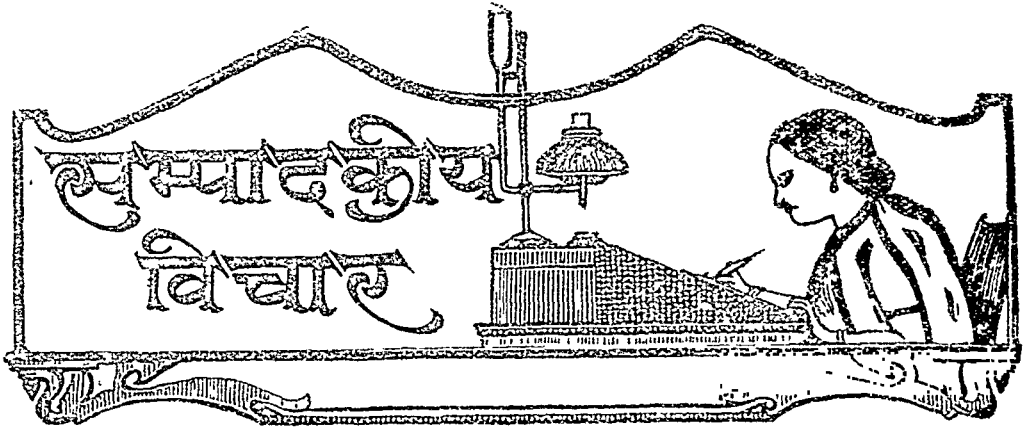
ऑर्डिनेन्स-युग

आज पूरे छः महीने के बाद भारतीय प्रेसों को थोड़ा खुल कर साँस लेने का मौक़ा मिला है। पिछले छः महीनों में प्रेस-ऑर्डिनेन्स के कारण हमारे राष्ट्रीय प्रेसों पर कैसी-कैसी भीषण विपत्तियाँ आई हैं—किस तरह देश भर के प्रायः समस्त राष्ट्रीय पत्रों का प्रकाशन बन्द हो गया है और किस तरह जो पत्र-पत्रिकाएँ निकलती भी रही हैं, वे निर्जीव और निस्तेज हो गई हैं—यह पाठकों से छिपा हुआ नहीं है। ये छः महीने वास्तव में हमारे निर्भीक राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं के लिए कठोर यातनाओं और विकट अग्निपरीक्षा के दिन रहे हैं। हर्ष की बात है कि हमारे पत्र इस परीक्षा में सच्चे वीर की तरह अपने आदर्शों पर निश्चल और सङ्कल्पों में सुदृढ़ प्रमाणित हुए हैं। परन्तु अब प्रेस-ऑर्डिनेन्स की भीषण कालरात्रि समाप्त हो गई है; सिद्धान्ततः हमारे पत्रों को सामयिक घटनाओं पर टीका-टिप्पणी करने की पूर्ववत स्वाधीनता मिल गई है। परन्तु यह सैद्धान्तिक स्वाधीनता भी हमें कितने दिनों तक प्राप्त रहेगी, यह नहीं कहा जा सकता। अतः किसी विशेष घटना या प्रसङ्ग की समालोचना करने के पूर्व हम संक्षेप में पिछले छः मास की घटनाओं पर एक विहङ्गम-दृष्टि डाल लेना आवश्यक समझते हैं।

पिछले छः महीने, राष्ट्रीय आन्दोलन और गवर्नमेण्ट की कार्रवाई दोनों की दृष्टि से, क़ानून-भङ्ग के दिन रहे हैं। इन महीनों में जहाँ राष्ट्रीय नेताओं ने गवर्नमेण्ट के नियमों को भङ्ग करके उसकी नैतिक सत्ता को एक ज़बर्दस्त आघात पहुँचाया है, वहाँ गवर्नमेण्ट ने स्वयं भी अपने नियमों और क़ानूनों की मर्यादा नष्ट करने में कुछ कम तत्परता नहीं दिखलाई है। गवर्नमेण्ट ने देश के साधारण क़ानूनों को ताक में रख कर छः महीनों के भीतर ही भीतर नौ असाधारण क़ानून या ऑर्डिनेन्स जारी कर दिए हैं। आज इन पंक्तियों के लिखे जाने के समय भी देश में ऐसे लगभग आधे दर्जन असाधारण क़ानून एक साथ ही जारी हैं। ऐसा मालूम होता है मानो भारत से साधारण क़ानून की सत्ता ही उठ गई है और हम लोग निरङ्कुश ऑर्डिनेन्सों के युग में रह रहे हैं।

सब से पहला ऑर्डिनेन्स विगत एप्रिल मास की १६ वीं तारीख़ को जारी हुआ। यह था बङ्गाल क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट ऑर्डिनेन्स। इसके अनुसार बङ्गाल

गवर्नमेण्ट को यह अधिकार प्राप्त हो गया कि उसके कर्मचारी जिसकी चाहें बिना वारण्ट के तलाशी लें और जिसको चाहें बिना वारण्ट के पकड़ कर अनिश्चित काल के लिए जेल में बन्द कर दें। इसके ठीक आठ दिन बाद २७ एप्रिल को वह भीषण ऑर्डिनेन्स जारी किया गया, जिसने समस्त देश को राष्ट्रीय पत्रों से वीरान बना दिया। यह था इस साल का दूसरा असाधारण क़ानून प्रेस-ऑर्डिनेन्स। इसके बाद पूरे चार दिन भी न बीतने पाए कि १ ली मई को लाहौर कॉन्सपिरेसी केस ऑर्डिनेन्स नाम का एक तीसरा ऑर्डिनेन्स जारी करके गवर्नर जेनरल ने लाहौर षड्यन्त्र केस के अभियुक्तों को, उनके मुक़दमे की प्रारम्भिक जाँच समाप्त होने के पहले ही, एक विशेष अदालत के सुपुर्द कर दिया और साथ ही यह भी निश्चित कर दिया कि इनके मुक़दमे की अपील हाईकोर्ट में न हो सकेगी। इसके दो सप्ताह बाद १५ मई को इस साल के चौथे ऑर्डिनेन्स द्वारा शोलापुर में मार्शल लॉ जारी किया गया। इसके बाद और दो सप्ताह बीतते ही बीतते गवर्नर जेनरल को पुनः नए ऑर्डिनेन्सों की आवश्यकता महसूस हुई। इस बार ३० मई के एक असाधारण गज़ट में एक साथ ही दो असाधारण क़ानूनों की घोषणा कर दी गई। ये थे अनलॉफ़ुल इन्स्टिगेशन ऑर्डिनेन्स और प्रिवेन्शन ऑफ़ इन्टिमिडेशन ऑर्डिनेन्स। ये दोनों इस साल के क्रमशः पाँचवें और छठें ऑर्डिनेन्स थे। इनमें से प्रथम द्वारा उन लोगों को दण्ड देने का उपाय किया गया, जो अन्य लोगों को गवर्नमेण्ट के टैक्स या लगान इत्यादि न देने के लिए प्रोत्साहित करते हों और दूसरे के द्वारा विदेशी कपड़ों और शराब की दूकानों पर धरना देना ग़ैरक़ानूनी क़रार दे दिया गया। इसके बाद एक महीने तक ऑर्डिनेन्सों के समुद्र में कोई ज्वार न आया। परन्तु २ जुलाई को पुनः एक नया ऑर्डिनेन्स जारी हुआ। यह इस साल का सातवाँ असाधारण क़ानून था—अन-अथराइज़्ड न्यूज़शीट्स एण्ड न्यूज़पेपर्स ऑर्डिनेन्स। इसके द्वारा लीथो से छपे हुए अन-रजिस्टर्ड पर्चों का दमन किया गया। इसके बाद अगस्त के मध्य में सीमा प्रान्त की स्थिति को वश में करने के लिए गवर्नमेण्ट को वहाँ मार्शल लॉ जारी करने की आवश्यकता मालूम हुई। इस बार गवर्नमेण्ट ने केवल वहीं के लिए एक ऑर्डिनेन्स न बना कर एक अत्यन्त व्यापक ऑर्डिनेन्स जारी कर दिया, जिसके अनुसार भारत के किसी भी भाग में जब चाहे मार्शल लॉ घोषित कर दिया जा सकता है। यह इस साल का आठवाँ असाधारण क़ानून—मार्शल लॉ ऑर्डिनेन्स—है, जो विगत १४ अगस्त को घोषित हुआ। इसके बाद विगत १० अक्टूबर को इस साल का नवाँ ऑर्डिनेन्स घोषित हुआ, जिसे अनलॉफ़ुल एसोसिएशन ऑर्डिनेन्स कहते हैं। इसके अनुसार गवर्नमेण्ट के कर्मचारियों को यह अनियन्त्रित अधिकार मिल गया है कि वे जिन संस्थाओं को ग़ैरक़ानूनी समझें उनका मकान, उनका सामान, उनकी धन-सम्पत्ति, रुपया-पैसा सब कुछ बिना मुक़दमा चलाए ज़ब्त कर लें।

इस अन्तिम ऑर्डिनेन्स का विरोध करते हुए महाराष्ट्र चेम्बर ऑफ़ कमर्स की कमिटी ने गवर्नमेण्ट ऑफ़ इण्डिया के सेक्रेटरी के पास एक पत्र भेजा है। इसमें कमिटी ने समस्त ऑर्डिनेन्सों की नीति की कठोर समालोचना की है। कमिटी का कहना है—"छः महीने के अन्दर ही धड़ाधड़ नौ ऑर्डिनेन्स जारी किए जा चुके हैं। इसका मतलब तो यह है कि शासन-पद्धति बिलकुल उलट दी गई है। इन ऑर्डिनेन्सों द्वारा पुलिस तथा मैजिस्ट्रेटों के हाथ में अनियमित शक्ति दे दी गई है और इसमें भी सन्देह नहीं कि कई बार उस शक्ति का भयङ्कर दुरुपयोग किया गया है। जैसे एक ओर इस आन्दोलन के आदमी क़ानून तोड़ने वाले हैं, उसी तरह गवर्नमेण्ट की ओर से भी क़ानून तोड़ने वाले सरकारी आदमी तैयार कर दिए गए हैं। इससे यह प्रत्यक्ष होता है कि क़ानून का तो नाश ही हो चुका है। गवर्नमेण्ट के पदाधिकारियों ने स्वतः क़ानून की अवहेलना करना आरम्भ कर दिया है। इधर जो सब से नया ऑर्डिनेन्स जारी किया गया है, उसके द्वारा प्रजा का एकत्रित होने का अधिकार छीन लिया गया है और व्यक्तिगत धन के अधिकार पर भी धावा बोल दिया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस क़ानून से न्याय-सङ्गत तथा शान्त लोगों को भी, जो इस आन्दोलन से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते, बहुत कष्ट और क्षति पहुँचेगी। अब सम्पत्ति, धन तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सभी ख़तरे में पड़ गए हैं। यह भयानक दशा आजकल के गिरे हुए व्यापार को और भी धक्का पहुँचाएगी। हमारा तो यह ख़्याल है कि

यह क़ानून शान्ति स्थापित करने के बदले मनुष्यों के हृदय में आत्म-बलिदान की भावना को और भी दृढ़ बनावेगा और उनमें स्वतन्त्रता की अग्नि को प्रज्वलित कर देगा। यह निश्चित है कि यह क़ानून प्रजा के चित्त को गवर्नमेण्ट की ओर से हटा कर सुलह में बड़ी भारी बाधा उपस्थित कर देगा।"

महाराष्ट्र चेम्बर ऑफ़ कमर्स की यह आशङ्का कहाँ तक उचित और युक्ति-सङ्गत है, इसका पता पिछले छः महीनों की देश की परिस्थिति पर विचार करने से आसानी से लग जायगा। इन महीनों में जैसे-जैसे ये ऑर्डिनेन्स, एक के बाद दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे, जारी होते गए हैं और जैसे-जैसे इनके द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन को दमन करने की चेष्टा की गई है, वैसे ही वैसे यह आन्दोलन और भी उग्र रूप धारण करता गया है। इन छः महीनों के भीतर सत्याग्रहियों की शक्ति घटने के बदले बराबर बढ़ती गई है। आज की अवस्था यह है कि एक ओर अनेक भीषण से भीषण ऑर्डिनेन्स जारी हैं और दूसरी ओर सत्याग्रह आन्दोलन—बिना किसी नेता और बिना किसी कोष अथवा साधन के—निर्बाध गति से बढ़ता चला जा रहा है। आज संसार की कोई भी शक्ति इसे रोकने में असमर्थ दिखाई देती है। इस थोड़े से समय के भीतर ही भीतर इस आन्दोलन ने, अनेकों ऑर्डिनेन्सों और अनेकों दमनकारी क़ानूनों के रहते हुए भी, भारत के महिला-समाज में, भारत के सामाजिक जीवन में, भारत के स्वदेशी शिल्प और उद्योग धन्धों में जो अभूतपूर्व जागृति और जीवन फूँक दिया है, वह एकबारगी चकित करने वाला है।

भारतीय स्त्रियों की जागृति

भारतीय स्त्रियों ने इस आन्दोलन में भाग लेकर जो महान पराक्रम दिखाया है, वह मानव जाति के इतिहास में सदा स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रहेगा। इस आन्दोलन की पद्धतियों से किसी का कितना ही मतभेद क्यों न हो, इस बात को कदापि अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इसने कुछ महीनों के भीतर ही भीतर भारत की स्त्रियों को सदियों की पराधीनता के कठिन पाश से मुक्त कर दिया है। भारतीय महिला-सङ्घ के मुखपत्र 'स्त्री-धर्म' का तो यहाँ तक कहना है कि इस आन्दोलन में सत्य, धैर्य, तपस्या और आत्मशुद्धि आदि जिन शस्त्रों से काम लिया जा रहा है, वे वास्तव में स्त्रियों के शस्त्र हैं, पुरुषों के नहीं। ऐसी अवस्था में क्या आश्चर्य है यदि इस आन्दोलन में स्त्रियाँ प्रमुख भाग लें? इङ्गलैण्ड के मज़दूर दल के सुप्रसिद्ध पत्रकार और लेखक श्री० ब्रेल्सफ़ोर्ड, जो आजकल भारत में घूम-घूम कर यहाँ की दशा का निरीक्षण कर रहे हैं, भारतीय स्त्रियों की जागृति को देख कर अत्यन्त प्रभावित हुए हैं। वह कहते हैं—"इस आश्चर्यजनक आन्दोलन में जो सब से आश्चर्यजनक बात है, वह है भारतीय स्त्रियों की अभूतपूर्व जागृति। शताब्दियों की ग़ुलामी के बाद वे स्वाधीनता के संग्राम में आई हैं और यदि इस संग्राम द्वारा उन्होंने सम्पूर्ण भारत के लिए स्वराज्य नहीं प्राप्त कर लिया तो कम से कम अपना उद्धार तो अवश्य कर लिया है। बम्बई में स्त्रियों की दशा देख कर यह विश्वास नहीं होता कि कभी यहाँ परदे की प्रथा भी रही होगी।" केवल बम्बई तथा गुजरात में ही नहीं, स्त्रियों की यह जागृति भारत के कोने-कोने में व्याप गई है। पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि इस आन्दोलन में भाग लेकर जेल जाने वाली स्त्रियों की संख्या आज जिस प्रान्त में सब से अधिक है, वह एक परदा-ग्रसित प्रान्त है—बङ्गाल। गुजरात आदि प्रान्तों में तो, जहाँ परदे की प्रथा नहीं है, स्त्रियों ने इस आन्दोलन में भाग लिया ही है, परन्तु दिल्ली, यू० पी०, बिहार और सी० पी० आदि परदा-ग्रसित प्रान्तों की स्त्रियों ने भी कुछ कम शौर्य और कम वीरत्व तथा साहस का परिचय नहीं दिया है। निस्सन्देह यह एक ऐसा दृश्य है, जिसे देख कर किसी भी सच्चे देशभक्त और सच्चे मनुष्य की आँखें तृप्त हुए बिना नहीं रह सकतीं। अब भी जो लोग स्त्रियों की शिक्षा और उनकी स्वाधीनता का विरोध किया करते हैं, वे इस स्वर्गीय दृश्य को देख कर बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

अछूतों की समस्या और स्वराज्य

अछूतों और दलित जातियों की समस्या भी आज उतनी विकट नहीं दिखाई देती, जितनी हमारे श्वेताङ्ग शासकगण इसे बनाने की कोशिश करते हैं। पिछले अगस्त मास में नागपुर में अखिल भारतीय दलित सम्मे-

डन के प्रथम अधिवेशन के सभापति की हैसियत से अछूतों के प्रमुख नेता डॉ० आम्बेडकर ने इस विषय पर एक ऐसा भाषण दिया है, जिसने इङ्गलैण्ड के कई धुरंधर नीतिज्ञों के कान खड़े कर दिए हैं। उन्हें अपने जीते जी अछूतों की समस्या को इतनी आसानी के साथ हल हो जाते देख कर घोर मानसिक वेदना हो रही है। लॉर्ड समनर, लॉर्ड सिडेनहम, सर चार्ल्स ओमन, सर जॉर्ज मैकमुन, सर माइकेल ओडायर और सर क्लॉड जैकब, ये छः अङ्गरेज़ नीतिज्ञ डॉ० आम्बेडकर पर अत्यन्त रुष्ट हो गए हैं। इनका कहना है कि यदि डॉ० आम्बेडकर अपनी जाति वालों को इसी तरह हिन्दुओं से मिलने और ब्रिटिश शासकों में अविश्वास करने का उपदेश देते रहेंगे तो वह दिन दूर नहीं जब वह अपनी जाति का नेतृत्व खो बैठेंगे। आख़िर वह बात कौन सी है, जिसके कारण अछूतों और दलितों के ये नमकहलाल श्वेताङ्ग हितैषी इतने चिन्तित हो गए हैं? वह बात यह है कि अब तक हमारे श्वेताङ्ग प्रभुगण भारत को स्वराज्य देने के विरुद्ध जो अनेक उलटी-सीधी दलीलें दिया करते थे, उनमें अछूतों की समस्या एक बहुत बड़ी दलील थी; परन्तु डॉ० आम्बेडकर ने अपने उपरोक्त भाषण में इस दलील का पूर्णतः खण्डन करके यह अकाट्य रूप से प्रमाणित कर दिया है कि अछूतों का सच्चा हित इसी बात में है कि वे ब्रिटिश शासकों की शरण में न जाकर अपने देश-वासियों का साथ दें और भारत को शीघ्र से शीघ्र स्वराज्य दिलाने का प्रयत्न करें।

डॉ० आम्बेडकर कहते हैं कि अनेक जातियाँ, अनेक धर्म, अनेक भाषाएँ केवल भारतवर्ष में ही नहीं हैं। यूरोप के कई स्वतन्त्र देशों में भी जाति, धर्म और भाषा सम्बन्धी अनेकता पाई जाती है। विगत यूरोपीय महायुद्ध के बाद लटेविया, रूमानिया, लिथुआनिया, युगोस्लाविया, एस्थोनिया और ज़ेकोस्लोवाकिया आदि जिन अनेक छोटे-छोटे स्वतन्त्र देशों की सृष्टि की गई है, उनकी अवस्था इस मामले में भारत से किसी भी प्रकार अच्छी नहीं है। लटेविया में लेट, रूसी, यहूदी और जर्मन, इन चार जातियों के अलावे भी और कई वर्ग और छोटी-छोटी जातियाँ हैं। लिथुआनिया में लिथुनिआनियन हैं, यहूदी हैं, पोल और रूसी हैं, और इनके अलावे भी और अनेक छोटी-छोटी जातियाँ हैं। युगोस्लाविया में सर्ब, क्रोट, स्लोवनीज़, रूमानियन, हङ्गेरियन, अल्बेनियन, जर्मन आदि अनेक जातियाँ निवास करती हैं। इसी तरह एस्थोनिया में भी एस्थोनियन, रूसी, जर्मन तथा और कई छोटी-छोटी जातियाँ हैं। ज़ेकोस्लोवाकिया में ज़ेक, जर्मन, मेगर, रूथीनियन तथा हङ्गरी में मेगर, जर्मन, स्लोवाक इत्यादि अनेक जातियाँ हैं। इन जातियों में धर्म और भाषा का भेद भी भारत की अपेक्षा कम नहीं है। इनमें से कई देशों की अवस्था तो इन मामलों में भारत से भी गई-गुज़री है। फिर ये देश जब स्वतन्त्र हो सकते हैं, अपनी भीतरी और बाहरी नीति का स्वयं निर्णय कर सकते हैं, तब—डॉ० आम्बेडकर पूछते हैं—भारतवर्ष क्यों नहीं स्वतन्त्र हो सकता, भारतवर्ष अपने भाग्य का निर्णय क्यों नहीं स्वयं कर सकता? डॉ० आम्बेडकर का कहना है कि यह तर्क मूर्खतापूर्ण है कि भारत की विभिन्न जातियों में एकता होने पर स्वराज्य मिलेगा; बल्कि सीधा और सच्चा तर्क यह है कि स्वराज्य होने पर ही इन जातियों में एकता स्थापित हो सकती है।

डॉ० आम्बेडकर अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण में बड़े ज़ोरदार शब्दों में पूछते हैं कि वे कौन से प्रयत्न हैं, जो ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने अपने डेढ़ सौ वर्षों के शासन में अछूतों के उद्धार के लिए किए हैं? अङ्गरेज़ों के आने के पहले अछूत लोग सार्वजनिक कुँओं से पानी नहीं भर सकते थे; क्या अङ्गरेज़ों ने अछूतों का यह दुःख दूर कर दिया? अङ्गरेज़ों के आगमन के पूर्व अछूत लोग मन्दिरों में नहीं प्रवेश कर सकते थे, क्या अब उन्हें यह अधिकार मिल गया है? अङ्गरेज़ी राज्य से पूर्व अछूत लोग पुलिस में नहीं भर्ती किए जाते थे; क्या अङ्गरेज़ी राज्य में वे पुलिस में भर्ती किए जाते हैं? अङ्गरेज़ी शासन के पहले सेना में अछूतों का प्रवेश निषिद्ध था, क्या अङ्गरेज़ी शासन में, उन्हें यह अधिकार मिल गया? नहीं! नहीं!! नहीं!!! फिर किस बात के लिए हम अङ्गरेज़ी राज्य को अछूतों का हितैषी समझें? सच बात यह है कि अङ्गरेज़ लोग अछूतों की दुर्दशा का इतना बढ़ा-चढ़ा कर चित्र इसलिए नहीं खींचते कि उन्हें भारत के करोड़ों अछूतों और दलितों के साथ कोई हार्दिक सहानुभूति है और वे उनकी दुर्दशा का निवारण करना चाहते हैं, बल्कि इसका सच्चा कारण यह है कि इन बातों का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करने से अङ्गरेज़ नीतिज्ञों

को भारत की राजनीतिक प्रगति के मार्ग में रोड़े अटकाने में सहायता मिलती है।'

इन सभी बातों पर प्रकाश डालते हुए डॉ० आम्बेडकर ने अपने जाति-भाइयों से बड़े ही ज़ोरदार और ओजस्वी शब्दों में यह अपील की है कि वे सच्चे दिल से भारतीय स्वराज्य का समर्थन करें। क्योंकि डॉ० आम्बेडकर का कहना है कि स्वयं अछूतों के अतिरिक्त उनका उद्धार और कोई नहीं कर सकता, और वे भी अपना उद्धार तब तक नहीं कर सकते जब तक उनके हाथों में राजनीतिक शक्ति न आ जाय, और राजनीतिक शक्ति उन्हें तभी मिल सकती है, जब अङ्गरेज़ी राज्य का वर्तमान रूप बदल जाय और भारत को स्वराज्य मिल जाय। स्वराज्य ही एक मात्र ऐसी अवस्था है, जिसमें दलित लोग अपने हाथों में राजनीतिक अधिकार के आने की आशा कर सकते हैं। भारत को स्वराज्य मिले बिना अछूतों का उद्धार असम्भव है। इसलिए अछूतों को भारत की अन्य जातियों के साथ मिल कर प्राणपन से यह प्रयत्न करना चाहिए कि इस देश में शीघ्र से शीघ्र एक ऐसा शासन स्थापित हो जाय, जो यहाँ के करोड़ों ग़रीबों की आर्थिक दशा सुधारने का प्रयत्न करे। क्योंकि अछूतों के लिए सब से पहिली आवश्यकता आर्थिक सुधार की ही है। बिना आर्थिक उन्नति के वे और किसी प्रकार की उन्नति करने में सदा असमर्थ रहेंगे।

भारत की आर्थिक दुरवस्था

डॉ० आम्बेडकर ने अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण में भारत की आर्थिक दुरवस्था का भी बड़ा ही करुणापूर्ण चित्र खींचा है। वह कहते हैं कि अङ्गरेज़ों ने हमें निस्सन्देह उन्नत सड़कें दी हैं, हमारे देश में नहरें खोदी हैं, गमनागमन के लिए रेलों का निर्माण किया है, डाक और तार का प्रबन्ध किया है, सिक्कों और माप-जोख के बटखरों को स्थिर किया है तथा देश के भीतर शान्ति और व्यवस्था स्थापित की है। इसके लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, सब थोड़ी है। परन्तु यहाँ प्रश्न तो यह है कि हम इस अनुपम शान्ति और इस स्वर्गीय व्यवस्था को लेकर क्या करें, जबकि हमारे पेट में भोजन और शरीर पर वस्त्र नहीं है? शान्ति और व्यवस्था को लेकर हम नहीं जी सकते; हमें जीने के लिए रोटी और वस्त्र चाहिए। और यही दो चीज़ें हैं, जिनका हमारे देश में आज सर्वत्र अभाव है। हमारे शासकों ने इस देश के शिल्प और कला-कौशल को इस बेरहमी के साथ कुचला है कि आज हम अपना तन-बदन ढकने और अपने नन्हें-नन्हें बच्चों तक का पेट भरने में असमर्थ हो गए हैं। ब्रिटिश शासकों की सदा यह नीति रही है कि भारत के उद्योग-धन्धों को कभी पनपने न दिया जाय और इस देश को सदा अङ्गरेज़ी माल की खपत के लिए एक खुला बाज़ार बनाए रक्खा जाय। डॉ० आम्बेडकर की सम्मति में इस शोषण-नीति का सब से घातक प्रभाव दलित जातियों पर पड़ा है, क्योंकि ये जातियाँ अधिकतर खेती-बारी अथवा अन्य उद्योग-धन्धों का ही काम करती हैं। इसीलिए डॉ० आम्बेडकर का कहना है कि दलित जातियों को सबसे पहले स्वराज्य पाने का उद्योग करना चाहिए। बिना स्वराज्य के—बिना एक ऐसी शासन-प्रणाली के, जो इस देश के शिल्प और उद्योग-धन्धों की उन्नति करने का प्रयत्न करे—दलित जातियों की अवस्था सुधरना सर्वथा असम्भव है। हमारी सम्मति में ये ऐसी बातें हैं, जिनके साथ न केवल दलित जातियों का, वरन् भारत की सभी जातियों के हित का घनिष्ट सम्बन्ध है।

ऊपर वर्णित आर्थिक दुरवस्था के साथ यदि आजकल की असाधारण आर्थिक कठिनाइयों का वर्णन और जोड़ दिया जाय तो सचमुच भारत की भीषण दरिद्रता का वर्णन सम्पूर्ण हो जाता है। आजकल नाज तथा ज़मीन की अन्य पैदावारों की सस्ती हो जाने के कारण किसानों के ऊपर एक ऐसे भयावह सङ्कट का समय उपस्थित हो गया है, जैसा पिछली एक पीढ़ी के भीतर कभी न हुआ था। आजकल बङ्गाल में जूट के पैदावार की हालत यह है कि जितने जूट को पैदा करने में सौ रुपया ख़र्च होता है, उतने को बेचने से केवल पचास ही रुपए मिलते हैं। 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' का कहना है कि दक्षिण भारत के किसान खेतों की बढ़ी हुई मालगुज़ारी चुकाने के लिए अपनी स्त्रियों के बदन पर के गहने बेचने को मजबूर हो गए हैं। बम्बई प्रान्त में रूई के पैदावार की भी ऐसी ही दुर्दशा है। वहाँ एक एकड़ में रूई पैदा करने में जहाँ चालीस रुपए का ख़र्च है, वहाँ उसकी रूई को बेचने से केवल तीस ही रुपए प्राप्त हैं। इस प्रकार वहाँ के दरिद्र

किसानों को फ़ी एकड़ पूरे दस रुपए का घाटा पड़ रहा है। यदि इन चीज़ों की क़ीमत में वृद्धि न हुई तो आगे चल कर किसानों की दशा कैसी भयङ्कर हो जायगी, यह आसानी से समझा जा सकता है। ऐसे सङ्कट के समय किसानों की रक्षा का एक ही उपाय था—लगान माफ़ कर देना, कम कर देना या कुछ दिन ठहर कर वसूल करना। परन्तु बम्बई गवर्नमेण्ट इस समय सचमुच जो कर रही है वह यह है कि जिस लगान को अगली जनवरी में वसूल करना चाहिए था, उसे वह इसी समय वसूल कर लेना चाहती है। सब से बड़े दुःख की बात तो यह है कि हमारे किसानों की ऐसी दुर्दशा करने में स्वयं हमारी ही गवर्नमेण्ट की व्यापार-नीति और विनिमय नीति का बहुत बड़ा हाथ है। इस असाधारण सस्ती के कुछ ऐसे कारण भले ही हों, जो संसारव्यापी हों और जिन पर हमारी गवर्नमेण्ट का कोई प्रभुत्व न हो, परन्तु सर पुरुषोत्तमदास के इस कथन में तथ्य अवश्य है कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने रुपए का विनिमय-दर बदल कर भारत के ग़रीब किसानों की पैदावार का साढ़े बारह प्रतिशत ज़बर्दस्ती लूट लिया है।

स्वदेशी आन्दोलन की प्रगति

इस समस्त दुःखमय गाथा में स्वदेशी आन्दोलन की प्रगति ही एक ऐसी बात है, जिस पर ग़रीब भारत की आशाएँ लगी हुई हैं। पिछले कई महीनों में भारत में विदेशी माल के, ख़ासकर विदेशी कपड़े के, बहिष्कार का आन्दोलन बड़े ज़ोरों पर रहा है। इस आन्दोलन से इस देश के घरेलू उद्योग-धन्धों और शिल्प को अपूर्व प्रोत्साहन मिला है। वास्तव में स्वदेशी आन्दोलन केवल भारत तक ही परिमित नहीं है, वरन यह समस्त संसार में व्याप गया है। अब तक इस आन्दोलन का सहारा केवल पीड़ित और परतन्त्र राष्ट्र ही लेते थे, परन्तु पिछले कई महीनों में तो बड़े-बड़े साम्राज्यों और शिल्प-प्रधान देशों को भी इसकी शरण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा है। इस समय समस्त संसार में स्वदेशी की एक लहर सी बह चली है। सभी राष्ट्र यह प्रयत्न करने लगे हैं कि अपनी जीवन-यात्रा के लिए आवश्यक तमाम वस्तुएँ अपने ही देश में पैदा की जायँ। जिन-जिन देशों में वहाँ के निवासियों के खाने के लिए यथेष्ट खाद्य पदार्थ पैदा होते हैं, वहाँ-वहाँ यह आन्दोलन बड़े ज़ोरों पर है। इससे इङ्गलैण्ड तथा जापान आदि साम्राज्यवादी देशों में खलबली सी मच गई है। इङ्गलैण्ड में इतना अन्न नहीं पैदा होता, जो वहाँ के निवासियों के खाने के लिए यथेष्ट हो। इङ्गलैण्ड के अधिकांश निवासियों की जीविका कारख़ानों और पुतलीघरों पर निर्भर है। इन कारख़ानों में बने हुए माल इङ्गलैण्ड के बाहर अन्य देशों में, जैसे भारत में, ऑस्ट्रेलिया में, दक्षिण अफ़्रीका और कनाडा आदि में, जाकर बिकते हैं और वहाँ से बदले में इङ्गलैण्ड को खाद्य पदार्थ भेजे जाते हैं। अब समस्या यह है कि यदि भारत, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ़्रीका तथा कनाडा आदि अपनी ज़रूरत की सभी चीज़ें स्वयं ही तैयार

नवीन वर्ष का स्वागत

विगत वर्ष, जैसे देश के जीवन में वैसे ही 'चाँद' के जीवन में भी, उथल-पुथल और क्रान्ति का वर्ष रहा है। इस वर्ष 'चाँद' पर अनेक असाधारण विपत्तियाँ आई हैं। ख़ासकर जब से प्रेस-ऑर्डिनेन्स जारी हुआ तब से तो एक तरह से 'चाँद' के जीवन पर ही सङ्कट उपस्थित हो गया था। परन्तु ग्राहक-अनुग्राहकों की कृपा, पाठकों की सद्भावनाएँ और लेखकों तथा कवियों का सहयोग पाकर 'चाँद' का यह वर्ष भी सकुशल समाप्त हो गया। इस वर्ष निस्सन्देह पत्र के प्रकाशन में कुछ त्रुटियाँ हो गई हैं, परन्तु आजकल के समान युद्धकाल में इस प्रकार की त्रुटियाँ हो जाना अनिवार्य है। हमने अपनी शक्ति भर 'चाँद' को ठीक समय पर और सर्वाङ्गपूर्ण निकालने में कोई प्रयत्न उठा नहीं रक्खा है। यदि ग्राहकों और पाठकों से इसी तरह सहयोग प्राप्त होता रहा तो 'चाँद' इस वर्ष पहले की अपेक्षा अधिक सज-धज और सुन्दर लेखों तथा कविताओं के साथ प्रकाशित होगा। यही आशा और महत्वाकांक्षा लेकर हम नवीन वर्ष का हृदय से स्वागत करते हैं।

करने लगें—वे इङ्गलैण्ड का बना हुआ कपड़ा और लोहे का सामान न ख़रीदें और इन वस्तुओं को स्वयं ही बनाने लगें—तो इङ्गलैण्ड क्या करे ? यदि उसके पक्के माल की खपत इन देशों में न हो तो वह इन देशों से गेहूँ, मांस, फल, ऊन आदि कच्चे पदार्थ ख़रीदने के लिए पैसे कहाँ से ले आवे ? वास्तव में इङ्गलैण्ड जैसे राष्ट्रों के सामने, जो खाद्य पदार्थों के लिए दूसरे देशों पर निर्भर हैं, यह एक बहुत बड़ी समस्या है। ब्रिटेन के नीतिज्ञ इस कठिन समस्या को देख कर अत्यन्त व्याकुल हो गए हैं। ख़ासकर भारत में ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार का आन्दोलन उठ खड़े होने के कारण ब्रिटिश नीतिज्ञों की चिन्ता और भी बढ़ गई है।

इसी प्रकार की समस्या संसार के अन्य शिल्प-प्रधान देशों के सामने भी उपस्थित है और वे इसे हल करने का प्राणपन से उद्योग कर रहे हैं। परन्तु अभी तक कोई उपयोगी उपाय नज़र नहीं आता। ब्रिटेन का एक दल अपनी इस समस्या को इस तरह हल करना चाहता है कि ब्रिटिश साम्राज्य के स्वतन्त्र उपनिवेशों को जो माल बाहर से ख़रीदना पड़े, उसे वे अमेरिका या जर्मनी या किसी अन्य देश से न ख़रीद कर ब्रिटेन से ख़रीदें और इसके बदले ब्रिटेन उन्हें यह सुविधा दे कि उसे बाहर से जो खाद्य पदार्थ ख़रीदने पड़ते हैं, उनमें वह इन उपनिवेशों की पैदावार को पहले स्थान दे अर्थात् इनकी पैदावार पर वह, अन्य देशों की पैदावार की अपेक्षा, कम टैक्स लगावेगा। इस तरह उपनिवेशों की पैदावार को ब्रिटेन में, साम्राज्य के बाहर वाले देशों की पैदावार के मुक़ाबले, सस्ते दामों बिकने का मौक़ा रहेगा। परन्तु इस नीति में सब से बड़ी कठिनाई यह है कि ब्रिटेन को स्वतन्त्र व्यापार की नीति त्यागनी पड़ेगी। अब तक ब्रिटेन में बाहर से आने वाले खाद्य पदार्थों पर टैक्स नहीं लगाया जाता। परन्तु इस नीति को स्वीकार करने पर उसे इन पदार्थों पर न केवल टैक्स लगाना पड़ेगा, बल्कि साम्राज्य के बाहर वाले देशों के माल पर अपेक्षाकृत अधिक टैक्स लगाना पड़ेगा। इससे साम्राज्य के बाहर वाले देश भी इङ्गलैण्ड के माल पर टैक्स बढ़ाने के लिए विवश होंगे, जिससे उन देशों में इङ्गलैण्ड के माल की खपत कम हो जायगी। अब यदि ब्रिटेन स्वतन्त्र व्यापार की नीति पर दृढ़ रहता है तो ब्रिटिश उपनिवेशों और भारत में उसके माल की खपत कम होती है—क्योंकि ऐसी दशा में ये देश ब्रिटिश माल की अपेक्षा अन्य देशों का माल सस्ते दाम पर ख़रीद सकते हैं—और यदि वह इन देशों में अपने माल की खपत बढ़ाने के लिए संरक्षण की नीति अख़्तियार करता है तो साम्राज्य के बाहर वाले देशों में उसके माल के लिए बाज़ार नहीं रह जाता। दोनों हालतों में ब्रिटेन में बेकारों की संख्या बढ़ती है और ब्रिटेन के वैभव को आघात पहुँचता है। ब्रिटिश नीतिज्ञ चाहे जो प्रयत्न करें, इस विपत्ति से ब्रिटेन की मुक्ति होती नहीं दिखाई पड़ती। संसार के परतन्त्र देशों में, ख़ास कर भारत में, स्वदेशी का आन्दोलन जैसे-जैसे बढ़ता जायगा, वैसे ही वैसे ब्रिटेन की यह विपत्ति और भी भयङ्कर रूप धारण करती जायगी।

हर्ष की बात है कि पिछले कई महीनों में भारत ने इस दिशा में यथेष्ट प्रगति की है। पिछले मास के समाचारों से विदित होता है कि भारत में मैनचेस्टर के कपड़ों की खपत पचहत्तर फ़ीसदी कम हो गई है। इससे मैनचेस्टर के व्यापार को गहरा आघात पहुँचा है। यदि यही अवस्था कुछ दिन और बनी रही तो वहाँ के व्यापार का पुनरुज्जीवित होना असम्भव हो जायगा। अभी तक वहाँ के कारख़ानेदार इस ताक में बैठे हुए हैं कि भारत में स्वदेशी आन्दोलन की प्रगति शिथिल पड़े और वे इस देश के बाज़ारों को अपने यहाँ के बने सूती कपड़ों से भर दें। उनकी यह नीति कहाँ तक सफल होगी, यह बहुत कुछ इस बात पर अवलम्बित है कि भारत के स्त्री-पुरुष स्वदेशी व्रत से कहाँ तक मुख मोड़ेंगे। परन्तु भारतीय आन्दोलन के लक्षणों को देख कर बहुत से नीतिज्ञ अभी से यह कहने लग गए हैं कि मैनचेस्टर वालों को भारत के हाथ अपने कपड़े बेच कर मालामाल होने की आशा अब सदा के लिए छोड़ देनी चाहिए। जो हो, भारतवासियों को यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि भारत की सब प्रकार की उन्नति का रहस्य जिस एक मन्त्र के भीतर छिपा हुआ है, वह है—'स्वदेशी ! स्वदेशी !! स्वदेशी !!!' इसी महा मन्त्र को अपनाने से भारतवर्ष गुलामी की शृङ्खला से मुक्त हो सकेगा। यही वह मन्त्र है जो संसार के पीड़ित और परतन्त्र राष्ट्रों का उद्धार करेगा। तथा इसी मन्त्र के प्रचार से समस्त संसार में शान्ति का साम्राज्य फैलेगा।

मातृ-मन्दिर

[डॉक्टर धनीराम 'प्रेम', लन्दन]
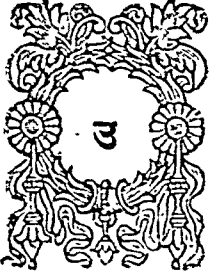
उस समय मेरी अवस्था सोलह वर्ष की थी। इस आयु में हिन्दू बालिकाएँ भाँति-भाँति की कामनाएँ करती हैं, आशाएँ बाँधती हैं, सुख-स्वप्न देखती हैं। परन्तु मेरे भाग्य में यह सब कुछ न था। मेरी कामनाएँ उत्पन्न होने से पूर्व ही मर चुकी थीं। मेरी आशाओं को पनपने का अवसर न मिला था। मैं स्वप्न देखने की अधिकारिणी भी नहीं रह गई थी। मैं एक विधवा थी, बाल-विधवा। मेरे लिए दिन और रात एक समान थे। सौभाग्य मैंने देखा नहीं था, फिर वैधव्य को क्या समझती? मैं केवल इतना जानती थी और जानने के लिए विवश की गई थी कि मेरे लिए जीवन एक लम्बी यात्रा है, जिसमें न विश्राम के लिए अवकाश है, न शरण के लिए हरे वृक्ष हैं, न शान्ति के लिए मधुर जल के स्रोत। इन बातों के कारण यदि मेरे हृदय में नैसर्गिक भावनाएँ तथा सुख-दुख का परिज्ञान आदि उत्पन्न न हुए थे तो कोई आश्चर्य नहीं। उस विचार-शून्य रूखे-सूखे जीवन में यदि कभी समीक्षा के योग्य कोई विषय मेरे सम्मुख आता था तो वह केवल सास का अत्याचार था। परन्तु वह भी क्षणिक होता था। क्योंकि मैं यह समझने लगी थी कि एक विधवा के जीवन-क्रम का वह भी एक आवश्यक भाग है।

मेरे दिन किस प्रकार कट रहे थे, यह बताने की क्या आवश्यकता है? विधवाओं का जीवन जिस प्रकार व्यतीत होता है, वह किस पर अविदित है? प्रातःकाल से अर्द्ध रात्रि तक मशीन की भाँति काम करना, रूखे टुकड़े खा कर ठण्डा पानी पी लेना, औरों के उतरे हुए वस्त्र पहन लेना और नित्य प्रति नियम से सास की गालियाँ और जूतियाँ खा लेना, यही मेरी दिनचर्या थी।

उस दिन सोमवती अमावस्या थी। मेरे मुहल्ले में सभी घरों में राजघाट जाने की तैयारियाँ हो रही थीं। सास जी थीं कृपण। वे कहीं पाँच वर्ष में एक बार गङ्गा-स्नान को जाती थीं। श्वसुर जी पीछे पड़ते तो कह देतीं—"बार-बार गङ्गा नहाने में ही कौन सा पुन्य होता है? पाँच वर्ष के पाप एक बार जाकर धो आए, यह काफ़ी है। व्यर्थ ही हर बार ढाई-तीन रुपया व्यय करने से क्या लाभ?" उस रात श्वसुर जी व्यालू करने आए तो कहने लगे—"सुनती हो, रामू की माँ, अमावस्या आ पहुँची है।"

"तो कहते किससे हो, जाने की इच्छा है तो नहा आओ।"

"मेरी इच्छा नहीं है। मैं तुम्हारे लिए कह रहा था। अबकी बार कर्णवास के भी दर्शन कर आना।"

"मुझे तो अभी दो ही वर्ष हुए हैं। अभी से क्या जल्दी है। अभी मरी नहीं जाती हूँ।"

"मेरी सलाह है कि अबकी बार बहू को भी गङ्गा-स्नान करा लाओ।"

"बहू को? वह पुन्न लूट के क्या करेगी? ऐसी होती तो मेरे लाल को ही क्यों डस लेती? तुम्हें ऐसी प्यारी लगती है तो ख़ुद ले जाओ। घर में अच्छे से अच्छा खाती है, अच्छे से अच्छा पहनती है, अब तीन-चार रुपया ख़र्च करके रानी जी को गङ्गा जी ले जाओ।"

"यह सब तो ठीक है, पर जिस दिन से विधवा हुई है, बेचारी ने बाहर पैर नहीं रक्खा। मायके में भी तो कोई नहीं है, जो कुछ दिनों वहीं जी बहला आवे। बेचारी बच्चा उमर है, दो दिन गङ्गा मैया के किनारे खेल-खाइ आवेगी।"

सास ने मेरी ओर देख कर पूछा—"क्यों, रानी जू! गङ्गा जी चलोगी?"

मैं चुप रही। श्वसुर जी बोले—"वह बेचारी क्या बतावेगी? जाओ इस बार उसे भी गोता लगवाइ लाओ।"

मेरे लिए वर्षों के बाद घर से बाहर पैर निकालने का यह प्रथम अवसर था। घर की चहारदीवारी के बाहर क्या होता है, इसका मुझे अधिक ज्ञान नहीं था। हम लोग एक इक्के में बैठ कर स्टेशन पहुँचे। भीड़ का क्या ठीक था। जिनके घर में खाने को अन्न नहीं था, वे भी गङ्गा जी के दर्शन के लिए निकल पड़े थे। प्लेटफ़ॉर्म खचाखच भरे थे। स्टेशन के बाहर ग्रामों से आए हुए

किसान, कम्बल बिछाए, पोटरियाँ बग़ल में दबाए, बैठे थे। टिकट-घर के बाहर तो एक प्रकार का युद्ध हो रहा था। मनुष्य एक के ऊपर एक गिरे पड़ते थे। श्वसुर जी हमें स्टेशन तक पहुँचाने आना चाहते थे, परन्तु इक्के के दो आने बचाने के लिए सास जी ने उन्हें रोक दिया। अब इधर-उधर फिर रही थीं। उस भीड़ में टिकट मिलना सरल न था। एक बार उन्होंने भीड़ को चीर कर खिड़की तक जाने का प्रयत्न किया तो किसी के जूते से उनका पैर कुचल गया। रोती हुई बाहर आईं। और किसी से तो कुछ कह नहीं सकती थीं, मेरे ऊपर क्रोध उतारा। चिल्लाने लगीं—"आग लगे ऐसी गङ्गा में! सारे पैर का हलुआ हो गया! यह कम्बख़्त जहाँ जायगी, वहीं ऐसा करेगी! राँड़ को मौत भी तो नहीं आती!"

मैं अब तक तो चुप थी, मेरे मुख से केवल इतना निकल गया—"तो इसमें मैंने क्या कर दिया? देखती तो हो कि भीड़ हो रही है?" बस फिर क्या था, अङ्गार की भाँति लाल हो गईं। "राम-राम! देखो इस हत्यारी की बातें! मुझे सीख देने चली है! है तो कलजुगियाई!" इतना कह कर उन्होंने दो चाँटे भी मेरे रसीद कर दिए। जिस समय वह मुझे इस प्रकार गालियाँ दे रही थीं, मेरे पास ही एक नवयुवक अङ्गरेज़ी सूट पहने खड़ा था। अवस्था बाईस के लगभग होगी। मुख पर लावण्य था और नेत्रों में दया तथा सहानुभूति का भाव। जब गालियाँ समाप्त करके सास मुझ पर हाथ चलाने लगीं तो वह धीरे-धीरे मेरी ओर आया और सास की ओर दृष्टि फिरा कर खड़ा हो गया। सास ने उसे देख कर हाथ चलाना तो बन्द कर दिया, परन्तु आप ही आप बड़बड़ाती रहीं।

वह धीरे से सास के कन्धे को झकझोर कर बोला—"बुढ़िया! इस बेचारी को क्यों पीट रही है?"

"तू कौन, राजा कै मन्त्री? मेरी बहू है, चाहे जो कुछ करूँ।"

"तेरी बहू तो है, पर यहाँ तो तुझे उसके ऊपर हाथ नहीं उठाना चाहिए।"

"अरे भैया, तू क्या जाने, डाइन है! अब देखो कैसी सीधी बनी खड़ी है!"

"देख बुढ़िया! घर चाहे जो कुछ कर, बाहर इस बेचारी को न मारना। अगर पुलिस देख लेगी तो तू ...धी फिरेगी। समझी?"

"वैसे तो भैया मेरी प्रान है। पर जब आपे से बाहर हो जाय तो क्या करूँ? मैं बुड्ढी हूँ। मुझसे भीड़ में टिकट लिया नहीं जायगा। इससे ज़रा टिकट ले लेने को कहा तो आग-बबूला हो गई। थोड़ी डाट-डपट न करूँ तो कैसे काम चले?"

"क्या गङ्गा जा रही है? ला, मैं तेरे लिए टिकट ला दूँ।"

"तू जुग-जुग जिए, भैया!" कह कर सास ने एक रुपया निकाल कर उसे दे दिया। नवयुवक ने अपनी टोपी मेरी ओर करके कहा—"ज़रा मेरी टोपी पकड़ना। मैं अभी टिकट लिए आता हूँ।"

वह टिकट लेने चला गया। सास अपना बचाव करने के लिए उससे सरासर झूठ बोली थीं। मैं शान्त रही। मेरी इस शान्ति और नवयुवक की सहानुभूति पर वह कुढ़ रही थीं और मन ही मन संसार के सारे कोप मेरे ऊपर गिराने की प्रार्थना कर रही थीं। मैं मन ही मन एक अज्ञात आनन्द का अनुभव कर रही थी। आज तक गालियों और कटु वाक्यों के अतिरिक्त और कुछ मेरे भाग में न आया था। आज यह सहानुभूति, यह दयार्द्रता! वर्षों रूखी रोटी खाकर किसी को एक गुड़ की डली खाने को मिले तो वह कितनी मधुर मालूम देती है! इसी प्रकार मैं अपने जीवन में इसे एक नवीनता और वह भी एक वाञ्छनीय नवीनता समझ रही थी। मैं अपने विचारों में मग्न थी और वृद्धा अपने विचारों में। आज तक उसने मेरे ऊपर एकतन्त्र राज्य किया था। मेरे लिए उस नवयुवक की सहानुभूति उसे कुछ खटकी। सास को शायद ऐसा प्रतीत होने लगा कि उसके निरङ्कुश राज्य के विरुद्ध एक विद्रोही खड़ा हो गया है। प्रकृति ने मनुष्य में यह भाव क्यों भर दिया है कि जब वह अपने आश्रित को किसी की सहानुभूति पाते हुए देखता है तो उसके हृदय में अत्याचार की वासना और भी प्रबल हो उठती है? वह बोली—"सुनती है, मुझे दे टोपी। बहू-बेटी के हाथ में पराए मर्द-मानस की चीज़ अच्छी नहीं लगती।"

उसने मेरे हाथ से टोपी छीन ली। वह एक साधारण बात थी। परन्तु मुझे उससे दुःख हुआ। क्या उस टोपी से मुझे कुछ अपनापन हो गया था, उस समय इसका उत्तर मेरे पास न था। नवयुवक ने लाकर टिकटें मेरी सास के हाथ में दे दीं और अपनी टोपी लेकर वह चल

दिया। मैं लम्बा घूँघट काढ़े हुए थी। उसमें से मैंने उसकी ओर एक बार देख लिया। सास अपनी पराजय समझ कर उस पर क्रोधित हो रही थीं, अतः उन्होंने धन्यवाद देना भी उचित न समझा।

जब टिकट लेने में इतनी कठिनाई उठानी पड़ी थी तो फिर गाड़ी में बैठना किस प्रकार सरल हो सकता था? गाड़ियों में मनुष्य भेड़-बकरी की भाँति भरे हुए थे। वैसे तो लोग हिन्दू सभ्यता की बड़ी डींग मारते हैं, परन्तु उस सभ्यता से स्त्रियाँ तो बिलकुल ही परे हैं। उन लम्बी-लम्बी चोटी रखानेवालों को, जो गङ्गा के तट पर धर्म का सौदा करने जा रहे थे, अबला स्त्रियों की सहायता का विचार कैसे हो सकता था? जिधर हम जाते, उधर ही लोग "आगे जा, यहाँ जगह कहाँ से आई?" कह कर हमें कुत्ते-बिल्लियों की भाँति भगा देते थे। सास निहोरे करतीं, हाथ जोड़तीं, कहतीं—"अरे भैया, हम गरीबिनी खड़ी ही रहेंगी?" परन्तु कौन सुनता था। मैं घूँघट अभी तक काढ़े हुए थी। मुख खोलना सास के शिर में तेल की कड़ाई खौलाना था। न मुख से शब्द निकालने का ही मुझे अधिकार था। अतः मैं बिना कुछ किए अथवा सोचे, सास के पीछे-पीछे चल रही थी। अन्त में एक स्थान पर बड़ी प्रार्थनाएँ करने पर कुछ पुरुषों ने सास को बन्द द्वार की खिड़की में से भीतर खींचना स्वीकार किया। मैं अभी बाहर ही खड़ी थी कि भीड़ का एक रेला आया। मैं सास से बिछुड़ गई। मुझे यह भी पता न था कि सास किस डब्बे में चढ़ी थीं। मैं व्याकुल होकर इधर-उधर भीड़ में घूमने लगी। परन्तु पर्दा अभी मुख पर पड़ा था। हाय रे! हम हिन्दू स्त्रियों की दशा! नेत्र है, परन्तु देख नहीं सकतीं! मुख में जिह्वा है, पर बोल नहीं सकतीं! कभी समय आएगा जब हिन्दू पुरुषों को स्त्रियों को इस प्रकार गई-बीती बना देने के लिए दण्ड भोगना पड़ेगा। कभी स्त्रीत्व की आत्मा जगेगी और जब उसके अन्दर स्वाभिमान की ज्वाला प्रज्वलित हो जायगी तो पुरुषों की यह निरङ्कुशता उसमें तृण की भाँति भस्म हो जायगी।

कुछ देर तक मैं इसी प्रकार घूमती रही। न मुझे सास का पता लगा और न शायद मैं उन्हें ही दिखाई दी। इतने ही में गाड़ी ने सीटी दी। मैं हक्का-बक्का होकर इधर-उधर देखने लगी। जब कुछ न सूझा तो अपने सामने वाले डब्बे में चढ़ने के लिए बढ़ी। वह था दूसरा दर्जा। मेरे खिड़की से हाथ लगाते ही भीतर से लोग चिल्ला उठे—"यहाँ कहाँ घुसी आती है? सैकिण्ड क्लास है, दीखता नहीं?" मैंने भयभीत होकर खिड़की से हाथ हटा लिया। घबराहट के कारण मेरे आँसू निकल आए। इतने ही में मेरे कानों में वही परिचित शब्द पड़ा—"हट जाओ खिड़की के पास से, आने दो उसको अन्दर!" युवक के इतना कहते ही सब चुप हो गए। उसने खिड़की खोल कर मुझे भीतर खींचा और अपने पास एक कोने में कुछ स्थान निकाल कर मुझे बिठा लिया। मेरी घबराहट दूर हो गई। उसके पास होने से ही मुझे एक प्रकार का सन्तोष-सा हो गया। गाड़ी चल दी।

२

गाड़ी के चलते ही डब्बे में शान्ति होने लगी। जो खड़े रहे थे, उन्होंने बैठे हुओं को सरका-सरका कर अपने बैठने के लिए स्थान निकाल लिया। जिनके पास तीसरे दर्जे के टिकट थे, उन्होंने अपना डेरा फ़र्श पर लगाया। जब सब बैठ गए तो कुछ तीसरे दर्जे वाली स्त्रियों ने गङ्गा जी के गीत गाना प्रारम्भ कर दिया। कुछ इन गीतों को ध्यान से सुनने लगे, कुछ आपस में बातें करते हुए हँसी उड़ाने लगे। हमारी ओर किसी का अधिक ध्यान न था, क्योंकि, शायद, लोगों ने मुझे युवक के घर की ही स्त्री समझ लिया था। जब इस प्रकार सब किसी न किसी काम में लगे हुए थे, युवक ने मुझसे वार्तालाप करना प्रारम्भ किया—"अब तो घबराहट नहीं है?"

"नहीं।" मैं घूँघट में से ही धीरे से बोली।

"तुम्हारी सास बड़ी अत्याचारिणी दीखती है। देखो न, स्वयं तो गाड़ी में बैठ गई और तुम्हें भटकने के लिए छोड़ दिया! हिन्दू घरों की बहुओं का भाग्य सचमुच बड़ा खोटा है! अगर तुम बुरा न मानो तो मैं एक बात पूछना चाहता हूँ, उत्तर दोगी?"

"अवश्य।" मैंने बहुत ही धीरे से कहा। शायद युवक को कुछ सुनाई न दिया। अतः वह हँस कर कहने लगा—"क्षमा करना, लेकिन तुमने जो कुछ कहा वह तो तुम्हारे घूँघट ने ही पी लिया। क्या इतना लम्बा घूँघट

मारे बिना तुम्हारा काम नहीं चल सकता ? मुझे तुम अपना हितैषी समझो।"

मैंने अपना घूँघट कुछ ऊँचा कर लिया।

"क्या तुम्हारे पति.........?"—युवक ने सङ्कोच के साथ पूछा।

"पति का देहान्त हो गया।"

"ओह, भगवान ! तो क्या तुम विधवा हो ?"

"जी हाँ।"

"कितने दिन हुए ?"

"विवाह के दो मास पश्चात् ही। इस बात को चार वर्ष हो गए।"

"ब्राह्मणी हो ?"

"वैश्य, अग्रवाल।"

"अग्रवाल ?" उसने उत्सुकता से पूछा।

"हाँ, हाँ, क्यों, आप क्यों चौंके ?"

"मैं भी अग्रवाल हूँ, इसीलिए। मैं जात-पाँत का इतना भेद-भाव नहीं मानता, फिर भी संस्कार तो नहीं मिटते। अपनी बिरादरी का नाम कुछ अपनापन पैदा कर ही देता है।"

"आप भी अलीगढ़ से ही आ रहे हैं ?"

"हाँ, ऊपरकोट में हमारा मकान है।"

"मैं मानिक-चौक में रहती हूँ।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"फूल।"

"हिन्दी पढ़ी हो ?"

"हाँ।"

उसने अपने हाथ की पुस्तक को मेरी ओर कर दिया। उस पर उसका नाम लिखा था।

"इसे पढ़ो।"

मैंने पढ़ा—"मुरारीलाल गुप्त।"

"यह मेरा नाम है।"

"मुरारीलाल"—यह नाम तो मैंने कहीं सुना था। हाँ, ठीक है, एक दिन सास-श्वसुर इसी नाम के विषय में बातें कर रहे थे कि इस लड़के का दिमाग़ बिगड़ गया है। बी० ए० पास करने से पहले विवाह ही नहीं करना चाहता। मैं बोली—"क्या आप ही के विषय में बिरादरी में चर्चा हो रही थी कि आप किसी से विवाह की बात नहीं करना चाहते ?"

"हाँ, पर तुम्हें यह सब कैसे मालूम हुआ ?"

"बाहर की बातें कभी-कभी घरों की चहारदीवारी तक भी पहुँच जाती हैं।"

"बात यह है कि मैं आर्य-समाजी हो गया हूँ। मेरे चचा भी नौजवान हैं, परन्तु वे कट्टर सनातनी हैं। उन्हीं के रुपए से मेरा पालन-पोषण हो रहा है। विवाह आदि के ऊपर हममें झगड़ा होता रहता है, वही बात बिरादरी में भी फैल जाती है।"

"आप आर्य-समाजी हैं तो फिर गङ्गा-स्नान को क्यों जा रहे हैं ?"

"मैं पुण्य लूटने नहीं जा रहा हूँ। हमारी सेवा-समिति वहाँ जा रही है, उसीके साथ मैं जा रहा हूँ।" वह हँस कर बोला। मैं मन ही मन उसके इन भावों की सराहना करने लगी। परन्तु मुझे उसके विषय में अधिक सोचने का अधिकार कहाँ था ? मेरे मन में केवल एक विचार आया था—"वह स्त्री कितनी भाग्यशालिनी होगी, जिसे इसकी सहधर्मिणी होने का अवसर प्राप्त होगा !"

मुझे चुप देख कर वह बोला—"तुम क्या सोच रही हो ? क्या मेरा आर्य-समाजी होना तुम्हें अच्छा नहीं लगता ? शायद तुम तो कट्टर सनातनी होगी।"

"नहीं, मुझे आपकी बातों से प्रसन्नता ही होती है। मैं आर्य-समाज और सनातन-धर्म की बातें तो नहीं जानती ; हाँ इतना जानती हूँ कि मेरा धर्म सोना-उठना, खाना-पीना और काम में लगे रहना है। इसके अतिरिक्त न और कुछ मेरे जानने के लिए है और न मुझे जानने का अधिकार ही है।"

"अभागिनी फूल !" कह कर उसने वायु में एक दबी हुई निःश्वास छोड़ दी।

गाड़ी अतरौली स्टेशन पर खड़ी हुई। भीड़ में मनुष्य एक-दूसरे को कुचले जा रहे थे। मुरारी बोला—"देखती हो न फूल ! सारा हिन्दू-समाज स्वर्ग के लिए पागल हो रहा है ! कितना सस्ता स्वर्ग है ! रेल में फिर भी दो पैसे मील लगता है, परन्तु स्वर्ग गङ्गा की एक डुबकी में मिलता है !"

"परन्तु मैं स्वर्ग लूटने नहीं जा रही हूँ। जिसे पृथ्वी पर सुख नहीं, उसे स्वर्ग में क्या सुख मिलेगा ?"

"तो फिर राजघाट किस लिए जा रही हो ?"

"यह तो सास को स्वर्ग पहुँचाने को है।" मैं हँस

लाहौर-षड्यन्त्र केस के कुछ अभिनेता
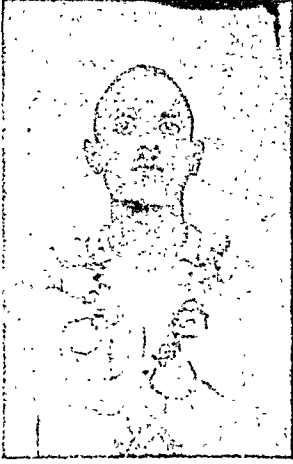
श्री० सुखदेव
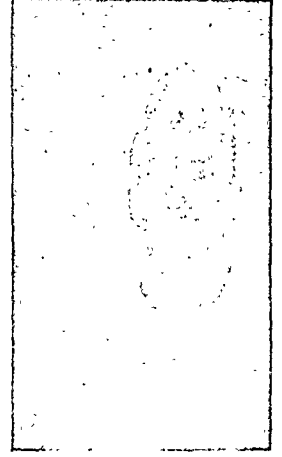
श्री० राजगुरु
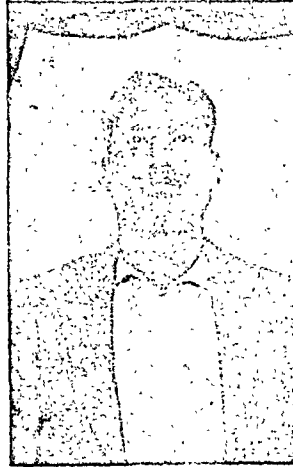
श्री० महावीर सिंह

श्री० गयाप्रसाद
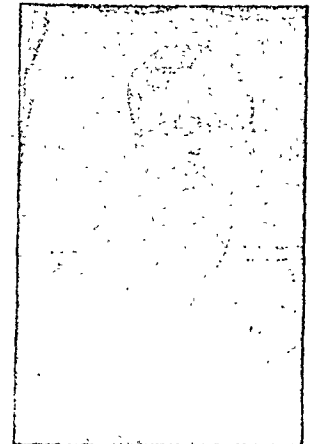
श्री० विजयकुमार सिंह

लाहौर-षड्यन्त्र केस के कुछ अभिनेता
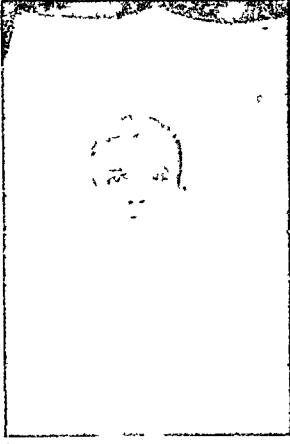
श्री० कमलनाथ तिवारी
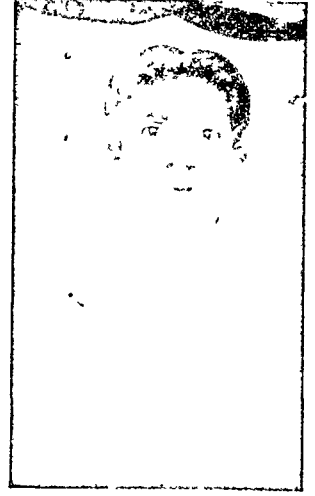
श्री० प्रेमदत्त
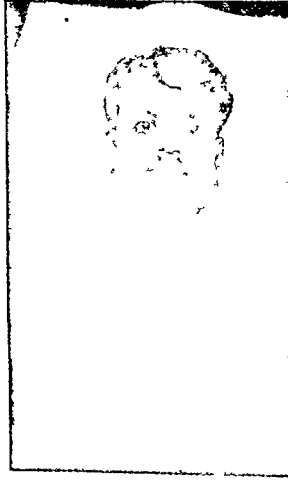
श्री० यतीन्द्रनाथ सान्याल
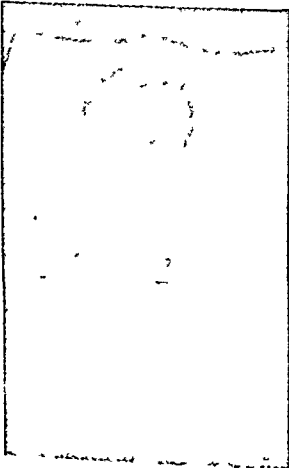
श्री० देसराज
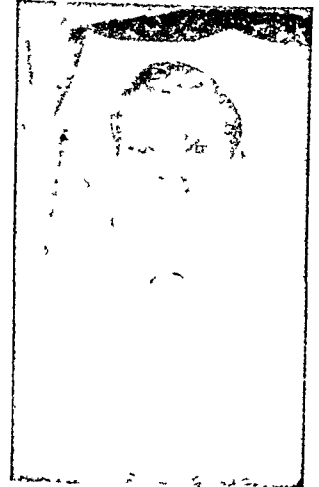
श्री० अजयकुमार घोष

कर बोली। वह भी ख़ूब हँसा और हँसते-हँसते बोला—"यह तुमने एक ही कही। गङ्गा पर पहुँचने दो। तुम्हारी बुढ़िया को ज़रा गहरा स्वर्ग दिलवाएँगे। हाँ, तुमने कुछ कलेवा तो किया ही न होगा। पोटली तो बुढ़िया के पास है। कुछ फलाकन्द ले लूँ?"

"आप अपने लिए ले लीजिए। मैं तो खाऊँगी नहीं।"

"क्या पाप चढ़ जायगा? परन्तु वह तो गङ्गा में धो आना!" वह हँस कर बोला।

"नहीं, पाप तो नहीं, परन्तु मैं दूसरे की चीज़ किस प्रकार.........?"

"ओह हो! यह तो मैं भूल ही गया था। हमारे समाज में एक स्त्री और पुरुष में सच्ची मित्रता तो हो ही नहीं सकती। फिर भी, विरादरी के नाते तो मैं तुम्हें यह निमन्त्रण दे ही सकता हूँ। क्या अब भी तुम मुझे बिलकुल ही ग़ैर समझती हो?"

"यदि आप बुरा मानते हैं तो मैं खा लूँगी।"

* * *

जब डिनाई का स्टेशन निकल गया तो युवक मुझसे बोला—"समय कितना शीघ्र व्यतीत होता है फूल!"

"मेरे जीवन में तो समय कभी इतना शीघ्र नहीं व्यतीत हुआ, जितना आज। परन्तु अब क्या? फिर वही दिनचर्या, वही अत्याचार, वही नीरस जीवन। दिन के बाद दिन, सप्ताह के बाद सप्ताह, मास के बाद मास, वर्ष के बाद वर्ष; महीनों, वर्षों, सारे जीवन भर वही बात, अनुल्लङ्घनीय, अपरिवर्तनीय। इसी का नाम वैधव्य है।"

"तो क्या फिर न मिलोगी?"

"आप दयालु हैं, सहृदय हैं, मेरे साथ सहानुभूति दिखा रहे हैं, यह मेरे बड़े सौभाग्य की बात है, परन्तु........।"

'परन्तु क्या?'

"कुछ नहीं। उन सब बातों से क्या लाभ है? राजघाट कब पहुँचेंगे?"

"पाँच मिनट की देर है।"

मैं चुप रही। वह भी चुप रहा। जब हमारा स्टेशन कुछ दूर रह गया तो वह कुछ हिचकिचाहट दिखाता हुआ बोला—"बोलो फूल! क्या फिर मिलोगी?"

"नहीं।" मैंने धड़कते हुए हृदय को थाम कर कहा।

"नहीं?"

"आप नहीं समझते या नहीं समझना चाहते। एक हिन्दू विधवा को पराए पुरुष से मिलने का अधिकार कहाँ है? मैं यदि चाहूँ भी तो क्या सास मुझे आज्ञा दे सकती हैं? क्या बिरादरी इस बात को जान कर चुप रह सकती है? यदि लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे? मैं भी बदनाम हूँगी, आप भी बदनाम होंगे। मेरा क्या है, जिसकी अधिक चिन्ता हो, परन्तु आप? आप नवयुवक हैं। आपके सामने सारा जीवन पड़ा है, जो बिरादरी में ही काटना है। नहीं, मैं नहीं मिलूँगी।"

क्या मेरे हृदय में उसके पुनर्दर्शन की लालसा न थी? सारे जीवन में जिस एक पुरुष की वाणी में माधुर्य पाया हो, हृदय में भावुकता पाई हो, नेत्रों में सहानुभूति पाई हो, जिसने दो घण्टे वार्तालाप करके जीवन की सुप्त वास्तविकताओं को जगा दिया हो, उसको फिर देखने की इच्छा किसे न होगी? मेरा हृदय दलित था, परन्तु था तो वह हृदय। मेरी भावुकता मृतप्राय थी, परन्तु थी तो वह भावुकता। मैं विधवा थी, परन्तु मेरा शरीर तो हाड़-मांस का शरीर था। फिर मैं उस आशा-स्रोत से, उस उमङ्गों के केन्द्र से, बिलकुल ही विमुख कैसे रह सकती थी? क्या ऐसा करने में मैं पतन की ओर जा रही थी? विधवा होकर एक पर-पुरुष के लिए सोचने में अधर्म कर रही थी? कह लो। धर्म तो हिन्दू समाज के पुरुषों तथा विवाहिता स्त्रियों के हिस्से में पड़ा है। क्योंकि वे अपने पापों को छिपा सकते हैं। यदि वे भी इस आयु में वैधव्य-यन्त्रणा से छटपटाते तो उन्हें धर्म और अधर्म का रहस्य प्रतीत होता।

मेरी उस भावावलि को उसने तोड़ा। वह बोला। स्वर में एक वेदना का भाव भरा था। "तुम सच कहती हो फूल! तुम अब एक अभागिनी बालिका हो?" उसने कहा।

"अब ही क्या, भाग्य लेकर कब आई थी? जो कुछ भाग्य था, वह तो उसी दिन फूट गया, जिस दिन हिन्दू समाज में उत्पन्न हुई थी।"

"परन्तु अब समाज की वह दशा नहीं है। पूरा समाज नहीं तो उसका एक अङ्ग तुम जैसी अभागिनी बालिकाओं को सुखी जीवन की ओर ले जाने का प्रयत्न अवश्य कर रहा है। इसीलिए मैं तुमसे फिर मिलना

चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि तुम इस योग्य हो जाओ कि अपने भाग्य का सञ्चालन स्वयं कर सको। बोलो फूल ! राजघाट-गङ्गा में एक बार मिलने दोगी ?"

"यदि आप मिलेंगे तो रोक थोड़ा ही लूँगी ?"

गाड़ी स्टेशन पर खड़ी हुई। 'गङ्गा मैया की जै, भगवती भागीरथी की जै, बोल श्रीराधे !' आदि से आकाश गूँजने लगा। लोग भेड़-बकरी की भाँति इधर-उधर भाग रहे थे। किसी का लड़का खो गया था, किसी की पर्दे वाली स्त्री नहीं मिल रही थी, किसी की पूड़ी-कचौड़ी की पोटली का पता न था।

गाड़ी से उतर कर मुरारी बोला—"तुम ज़रा इधर ही खड़ी रहो, मैं तुम्हारी सास को थोड़ा तङ्ग करूँगा।"

उसने सास को खोज कर पूछा—"कह बुढ़िया ! राज़ी-ख़ुशी चली आई न ?"

सास ने उसे देखते ही रोना मचा दिया—"ऐ भैया ! तैंने कहीं बहू देखी थी ?"

"बहू ? क्यों, क्या वह तेरे साथ नहीं है ?"

"नहीं तो। न जानै अलीगढ़ रह गई क्या ! अब मैं कैसे खोज करूँ ?"

"अब बातें क्यों बना रही है ? बता उसे कहाँ मार-पीट कर छोड़ दिया ?"

सास सिटपिटा कर कहने लगीं—"भैया ! मुझसे चाहे जैसी किसम लै ले। मैं गङ्गा जी के किनारे जो झूँठ बोलूँ तौ कोढ़िन बनूँ।"

"अच्छा, देख, मैं पुलिस से कह कर पता लगवाता हूँ। जो मिल जाय तो क्या देगी ?"

"गङ्गा मैया तेरा भला करेंगी !"

"गङ्गा मैया तो भला करेंगी, तू भी कुछ खिलाएगी ? इस पोटरी में क्या लाई है ?"—वह यह कह कर पोटली को छूने लगा। त्योंही सास ने पोटली को एक ओर हटा कर कहा—"इसमें खाने-पीने की चीज़ें हैं। तू कौन जाति है ?"

"कायस्थ !"

"कायथ ? तो क्या मैं अपना खाना कायथ को छूने दूँगी ? कायथ तो आधा मुसलमान होता है !"

"पर गङ्गा जी पर तो सब शुद्ध हो जाते हैं।"

"सो नहीं। मैं अपने हाथ से निकाल कर दे दूँगी।"

"अच्छा।"

वह कुछ देर के लिए इधर-उधर घूमने निकल गया। फिर मुझे लेकर सास के पास पहुँचा और कहने लगा—ले, तेरी बहू को तलाश कर लाया हूँ। इसे अब मत खोने देना और इसे डाँटना मत।

"नहीं भैया ! डाटूँगी क्यों ? मेरे तो पिरान से प्यारी है। कुछ लड्डू खायगा ?"

"अब गङ्गा जी के किनारे !"

स्टेशन लगभग ख़ाली हो गया था। उसने हम दोनों को एक बैलगाड़ी में बिठा दिया। गाड़ी चली, सास 'गङ्गा मैया की जै' बोलीं। उसने कुछ कहा नहीं, परन्तु उसकी आँखें चुप न थीं। वे मेरे समझने लायक़ बहुत कुछ कह रही थीं। मैंने भी घूँघट में से अपनी आँखें उसकी ओर फिराईं। उन्होंने कुछ कहा या नहीं, कह नहीं सकती।

३

स्टेशन से हम लोग चले तो सास मुरारी की बड़ी प्रशंसा करने लगीं। बोलीं—"कैसा अच्छा लड़का है ! हर घड़ी हँसता रहता है। स्टेशन पर पूरी-कचौरी माँगने लगा। मेरे तो भाग फूट गए बहू ! नहीं तो मेरा कुमर भी ऐसा ही होता।"

"तो अम्माँ ! इन्हीं को अपना लड़का क्यों नहीं बना लेती हो ?" मैंने कहा।

"इसे अपना लड़का ? कायथ के जाए को अपना लड़का बना लूँ ? धरम भिरिस्ट करूँ ? तुझे कितनी बार बताया है कि कायथ निरे मुसल्ला होते हैं !"

"फिर हैं तो वे हिन्दू ही। अम्माँ ! बेचारे कितने भले-मानस हैं ! मुझे भीड़ में गाड़ी में बिठाया और तुम्हारे पास पहुँचा दिया। सेवा-समिति के कप्तान हैं।"

स्वयं तो वे मुरारी की प्रशंसा कर रही थीं, परन्तु जब मैं कुछ प्रशंसा करने लगी तो जल-भुन कर कहने लगीं—"सेवा-सम्मती का कप्तान होय चाहे लफटण्ट, है लफङ्गा। जरा सी बात पर मुझे घुड़की दे दी, मानो यही दरोगा जी हैं। कहै—'थाने में रपट कर दूँगा।' तू बहू ! बच कर रहना। मर्द बच्चा है, न जाने क्या कर बैठे।"

गङ्गा के किनारे बाज़ार लगा था। चारों ओर से गन्ध आ रही थी। हलवाइयों के थालों पर आदमी गिरे पड़ते थे। कच्ची-पक्की, जली-भुनी, तेल की पूरियाँ, कुत्ते के भी न खाने योग्य भाजियाँ, गन्दी मिठाइयाँ बेच-बेच कर हलवाई पैसा लूट रहे थे। गङ्गा के घाट पर कहीं गङ्गा

वासी पण्डों की कुटियाँ बनी थीं, कहीं साधू-सन्त (?) शारीरिक तपस्या कर रहे थे। अब तक मैंने लम्बा घूँघट मारना नहीं छोड़ा था। परन्तु यहाँ जो कुछ देखा उससे मैं अवाक् रह गई। यहाँ मुख का पर्दा ही क्या, शरीर का पर्दा भी उठ गया था। हम लोगों ने कपड़े एक ओर रख दिए, मैं उनकी रक्षा करती रही और सास स्नान करने चली गईं। वह जब लौट कर आईं तो उन्होंने एक पण्डा बुला कर उसे भोजन कराने बिठा दिया। मैं तब तक स्नान करने चली गई। एक डुबकी लगाई ही थी कि मुझे ऐसा विदित हुआ कि कोई मेरा पैर खींच रहा है। मैं चौंक कर पानी के बाहर शिर निकाल कर खड़ी हो गई। देखती हूँ तो मुरारी खड़ा मुस्करा रहा है। मैं अपने शिर का घूँघट आगे करने लगी, इतने ही में वह बोला—"ढँक लो, सारे शरीर को कम्बलों से लपेट लो। और कपड़े ला दूँ?"

मैंने मुख नहीं ढँका, केवल उधर से दृष्टि दूसरी ओर को फिरा कर बोली—"मैं तो समझी थी कि किसी कछुए ने मेरा पैर पकड़ लिया। तुमने तो मुझे बिलकुल ही डरा दिया।"

"क्या ही अच्छा होता कि मैं कछुआ होता।"

"क्यों?"

"एक तो गङ्गा जी में हर समय रहने से स्वर्ग में बड़ा ऊँचा दर्जा मिलता......।"

"और?"

"और कुछ भी नहीं।"

"कुछ था तो सही, परन्तु कहोगे काहे को!"

"नहीं मानती हो तो सुनो। तुम जब भी जल में स्नान के लिए आतीं, तुम्हारे चरणों के पास पड़ा रहता।"

"तुम तो पहेलियाँ बुझा रहे हो। मैं क्या समझूँ, इन बातों को।"

वह कुछ उत्तर न दे पाया था कि एक फूल बेचने वाली आ गई और मुरारी से बोली—"बाबू जी! एक पैसा के फूल-बतासे गङ्गा मैया पै चढ़ाइवे कूँ लै लेउ।"

"गङ्गा मैया फूल-बताशे की भूखी थोड़े ही हैं?"

"भूखी तौ नाएँ, परि पुन्न हौत्वै।"

"तूने कितना पुन्न लूटा है?"

"अए, तुम तौ गङ्गा जी तेऊ दिल्लगी कत्तौगे।"

मुरारी ने हँस कर उसे एक पैसा दिया और कहा—"देख री, फूल तो हमारे पास है। तू बस बताशे दे जा।" उसने हँस कर कुछ बताशे दिए और बोली—"त्यारी और त्यारी सेठानी की जोड़ी फली फूली रहे।"

जब वह चली गई तो मुरारी बोला—"देखो, तुम मेरी बातें तो नहीं समझती थीं। अब उस फूल वाली की बात तो समझी होगी?"

"क्या?"

"उसने हम दोनों को उठा कर एक कर दिया।"

"यह बातें फिर करना। पहले गङ्गा जी का चढ़ावा तो चढ़ा दो।"

"लेकिन कोई सङ्कल्प पढ़ाने वाला तो है ही नहीं।"

"और तुम कहते थे कि फूल तुम्हारे पास हैं?"

"हाँ हैं।"

"कहाँ?"

"मेरा फूल तुम्हें नहीं दीखता?"

"नहीं।"

उसने मेरी ठुड्डी हिला कर कहा—"यह है मेरा फूल।" मैं चुप रही। वह बोला—"अब देखो, बताशे गङ्गा जी के पास पहुँचते हैं।"

"किस प्रकार?"

"उसके दलाल के द्वारा।"

"दलाल कौन है?"

"देखो।" कह कर उसने बताशे अपने मुख में रख लिए। मैं हँस कर बोली—"और फूल को गङ्गा जी पर किस प्रकार चढ़ाओगे?"

"दलाल के ही द्वारा।"

"वह कैसे?"

"वह ऐसे।" कह कर उसने झट से मेरा हाथ चूम लिया।

४

उस दिन की घटना ने मेरे मानसिक जगत में एक विप्लव उत्पन्न कर दिया था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि मैं एक ऐसी धारा में हूँ, जिसका बहाव दोनों ओर को है, कभी इधर और कभी उधर। मैं भी उस धारा के बहाव के साथ ही कभी इधर, कभी उधर बह रही हूँ; न इधर ही जा पाती हूँ, न उधर ही। कुछ दिनों पूर्व ही न मेरी कोई कामना थी, न कोई आशा, न कोई सुख-

स्वप्न। परन्तु अब बात और ही थी। अब मेरा हृदय ख़ाली न था, उसमें आशा थी; मेरा मन ख़ाली न था, उसमें कामना थी ; मेरा मस्तिष्क ख़ाली न था, उसमें सुख-स्वप्न थे। इस थोड़े से समय में ही इतना परिवर्तन ! मैंने जब अपने अन्तस्थल को टटोला तो मुझे इसका कारण यही दिखाई दिया कि मेरे जीवन में पहले वह वस्तु न थी, जिसका आश्रय पाकर यह सब बातें पनपतीं। एक हरी वेल बिना किसी सहारे के अपना विस्तार कैसे कर सकती है ? मैं किसके भरोसे पर आशाओं तथा कामनाओं को जन्म देती ? अब मेरे जीवन में एक सहारा दिखाई दिया था। उसीके चतुर्दिक मेरी आशाएँ, मेरी कामनाएँ आदि केन्द्रस्थ होने लगी थीं। एक ऐसा सहारा पा जाने पर मुझे हर्ष था। मैं उसके नाम पर कुछ अपना अधिकार समझने लगी थी। उसका विचार करने में मुझे आनन्द आता था। उसका स्मरण मेरे शरीर में नवीन शक्ति का सञ्चार कर देता था। झूठ क्यों बोलूँ, मैं मुरारी में लीन हो गई थी ; उसे मैं प्रेम करने लगी थी।

मैं मन ही मन प्रसन्न हुई, रात्रि को शय्या पर गई। शय्या कितनी विचित्र वस्तु है, इसका पता कितनों को है ? उस रात्रि से पूर्व मैं नित्य शय्या पर सोती थी, परन्तु मुझे उसमें कोई विचित्रता दिखाई न दी थी। आज ज्योंही मैं उस पर लेटी, मेरे नेत्रों के सामने भूत, वर्तमान और भविष्य सब नाचने लगे। मैंने भूत पर विचार किया, उसमें कोई विशेषता न थी। यद्यपि मेरा सर्वस्व भूत ने ही लूटा था, परन्तु मुझे उसका इतना ज्ञान न था। अतः भूत को मैंने अपने मन से शीघ्र ही निकाल दिया। वर्तमान को टटोला तो उसमें हर्ष, आशा, आमोद आदि को पाया। जब वर्तमान के उस सुखकारी चित्र के बाद भविष्य का ध्यान आया तो सामने केवल अन्धकार दिखाई दिया। उस अँधेरे पर्दे पर कल्पना ने कुछ चित्र बनाए और मैं उनकी परीक्षा करने लगी। मुरारी के साथ मैं किधर जा रही हूँ ? हम दोनों नहीं मिल सकते, यह निश्चित बात है। फिर मैं इतने वेग से उसकी ओर क्यों दौड़ रही हूँ ? यदि हम दोनों का विवाह हो सकता तो कोई बात नहीं थी, परन्तु एक विधवा का विवाह होने की कल्पना मेरे मन में आ ही सकती थी। वैधव्य और विवाह दोनों में तनिक भी सम्बन्ध हो सकता है, यह हिन्दू धर्म कभी सहन कर ही नहीं सकता। परन्तु मैं मुरारी की ओर विवाह के लिए ही न झुकी थी। यह तो उसका व्यक्तित्व था, जो मुझे उसकी ओर खींचे लिए जा रहा था। कदाचित वह इसलिए था कि वह एक मात्र व्यक्ति था जिसने मुझसे इतनी सहानुभूति दिखाई थी। या कदाचित वह इसलिए था कि मेरे जीवन में वह पहला पुरुष था।

रात्रि भर मैं विचार करती रही। अन्त में मैंने यही निष्कर्ष निकाला कि मैं मुरारी से मिलना छोड़ दूँगी। यह बात मुझे बेचैन बना देगी, मेरे हृदय को मसोस लेगी, परन्तु फिर भी यह करना ही पड़ेगा। दोनों के लाभ के लिए, बिरादरी के लिए, समाज के लिए मुझे दृढ़ होना ही पड़ेगा। मैंने निश्चय कर लिया कि जो बालू के क़िले बनाए थे उन्हें तोड़ डालूँगी; जो आशाओं के पुल बाँधे थे, उन्हें ढहा दूँगी; जो कामनाओं के बाग़ लगाए थे, उन्हें उजाड़ डालूँगी।

जिस दिन हम लोग राजघाट छोड़ रहे थे, उस दिन मैं मुरारी से मिली। मैं अनिच्छा होते हुए भी उसके सामने रूखापन दिखाने लगी। वह यह भाव देख कर बोला—"क्यों फूल ! आज यह क्या बात है ?"

"बात कुछ नहीं है, मुरारी ! परन्तु मैं तुमसे यह कहने आई हूँ कि उस दिन हम दोनों का व्यवहार उचित नहीं था। मैं उस दिन अपने को भूल गई थी। कदाचित मैं उस समय स्वप्न देख रही थी। परन्तु स्वप्न में और वास्तविक जीवन में बड़ा अन्तर है। जब मैंने वास्तविक जीवन पर ध्यान दिया तो मुझे समझ पड़ा कि हम दोनों कैसी मूर्खता कर रहे थे।"

वह कुछ देर तक शिर नीचा किए कुछ सोचता रहा; फिर बड़ी गम्भीरता से बोला—"तुम ठीक कहती हो, फूल ! मुझे दुःख है कि मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया। परन्तु मैं तुम्हें यह विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे हृदय में कोई कलुषित विचार नहीं था और न है। मैं तुमसे कुछ कहना चाहता था, परन्तु तुमने सुना नहीं। मैं नहीं जानता क्यों, परन्तु मेरे हृदय में तुमने एक-स्थान प्राप्त कर लिया है। मैं घण्टों यही विचार करता रहा हूँ कि तुम्हें उस स्थान पर बिठाने का किसी प्रकार अधिकार पा लूँ। परन्तु तुम उन विचारों से बहुत दूर हो। अब उन बातों से क्या लाभ है ? अच्छा, फूल ! शायद........।"

"परन्तु क्या तुम्हारा अर्थ यह है कि........?"

"कि..... कि .....हम दोनों विवाह करके एक हो जाते।"

"विवाह? मैं तो विधवा हूँ।"

"और तुम समझती हो कि एक विधवा का विवाह नहीं हो सकता?"

"यह कभी हुआ भी है? एक विधवा विवाह करे, यह धर्म कभी आज्ञा दे सकता है? सारी बिरादरी में हम लोगों की बेइज़्ज़ती हो जायगी।"

"यही तो तुम नहीं जानती हो, फूल! धर्म यह कभी नहीं कहता कि एक विधवा विवाह न करे। जब पुरुष अपने दर्जनों विवाह कर सकता है तो स्त्री को पुनर्विवाह करने का अधिकार क्यों न दिया जाय? यह सब स्वार्थी पुरुषों की बर्बरता है। यदि तुम शास्त्रों को पढ़ो तो तुम्हें विधवा-विवाह का विधान स्पष्ट रूप में मिलेगा। यह तुम्हारा विचार तुम्हारी परिस्थितियों का फल है। तुम स्वयं सोचो। तुम एक पुरुष को चाहती हो, वह तुम्हें प्यार करता है। तुम पढ़ी-लिखी हो, समझदार हो, अपूर्व सुन्दरी हो, विवाह करके सुखी जीवन व्यतीत कर सकती हो। परन्तु केवल बिरादरी के भय से तुम यह न करके, अनिच्छा का ब्रह्मचर्य अपने ऊपर लादना चाहती हो। शायद तुममें इतना मानसिक बल हो कि तुम इन सब प्रलोभनों के होते हुए भी अटल रह ही आओ। परन्तु वे युवतियाँ जिन्हें इतना मानसिक बल प्राप्त नहीं हुआ, दुश्चरित्र होने के अतिरिक्त और क्या कर सकती हैं? समाज, बिरादरी, धर्म-शास्त्रों की दुहाई देने वाले पण्डित, सब गुप्त व्यभिचार अथवा आत्म-हनन को सहन कर सकते हैं, परन्तु वे एक युवती विधवा को सुखी, धार्मिक जीवन व्यतीत करने की आज्ञा नहीं दे सकते। फूल! मैं तुम्हें किसी भी कार्य के लिए विवश नहीं कर सकता। यदि तुम ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना चाहती हो तो प्रसन्नता से करो। मेरी सदिच्छाएँ तुम्हारे साथ होंगी। परन्तु यदि तुम्हारे हृदय में प्रेम की कुछ भी चिनगारी है और तुम उसे बलपूर्वक दमन कर रही हो तो यह तुम्हारा बड़ा अत्याचार है, मेरे ही ऊपर नहीं, अपने ऊपर भी। यदि बिरादरी के कुछ नवयुवक तथा नवयुवतियाँ साहस करके आगे बढ़ें, तो बिरादरी उनके सम्मुख अवश्य ही झुकेगी। परन्तु........।"

मैं उस समय अपनी चिन्तन-शक्ति को खो चुकी थी। मुझसे केवल इतना कहा गया—"मुरारी! यह मुझसे न हो सकेगा। तुम मेरे लिए क्या हो, यह तुम जानते हो। परन्तु तुम जो कहते हो, वह करने का मुझमें साहस नहीं है। ओह, मुरारी! बस अधिक न कहो। मेरी सहन-शक्ति का बाँध टूट जायगा। मुझे जाने दो, कष्ट सहने के लिए, स्वप्नों और निराशाओं का जीवन व्यतीत करने के लिए। मेरे भाग्य में और कुछ नहीं है।"

"जाओ फूल! परन्तु याद रक्खो कि मुरारी सदा तुम्हारी सहायता के लिए तैयार रहेगा।"

"नहीं, नहीं, मुरारी! मैं चाहती हूँ कि तुम मुझे बिलकुल भूल जाओ। प्रतिज्ञा करो कि तुम मुझसे कभी नहीं मिलोगे।"

"प्रतिज्ञा? फूल!"

"हाँ, मुरारी!"

"अच्छा, फूल! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। परन्तु यदि कभी तुम्हें अपना विचार बदलने की आवश्यकता पड़े तो मुझे लिखना।"

"शायद ऐसा अवसर न आवे।" मैंने दृढ़ता से कहा।

"तो यह अन्तिम विदा है? क्या एक बार अन्तिम बार तुम्हारा हाथ ...."

"नहीं, मुरारी!"

वह चला गया, गङ्गा के किनारे से, परन्तु मेरे नेत्रों से नहीं, मेरे हृदय से नहीं। मेरे नेत्रों में उसकी मूर्त्ति का चित्र खिंच गया था। मेरे हृदय पर उसकी मुद्रा लग गई थी।

५

गङ्गा जी से लौट कर आने के बाद मुझमें बड़ा परिवर्तन हो गया था। जिस प्रकार राजघाट जाने से पूर्व जीवन व्यतीत हो रहा था, उसी प्रकार रहने का मैंने भरसक प्रयत्न किया, परन्तु 'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।' मैं मुरारी को भूल न सकी। जितना ही उसे भूलने का उद्योग करती, उतना ही हृदय अधिक मचलता। अब भी मैं उसी प्रकार घर का सारा काम करती। किसी को भी अपनी आन्तरिक पीड़ा का आभास न होने देती। मन बहलाने के लिए घण्टों गीता, रामायण तथा विष्णु-सहस्र नाम पढ़ती। परन्तु कुछ फल नहीं। लोग कहते हैं

कि यह पुस्तकें मन के भावों पर विजय प्राप्त करने के लिए अनुपमेय हैं। होंगी। अपने-अपने हृदय की बात है। मेरी यह मानसिक शिथिलता हो, परन्तु मेरे हृदय के भाव गीता से शान्त न हुए। जिसकी आयु संसार में प्रवेश करने की है, उसको संसार से विरक्त होने के लिए विवश करना न्याय-सङ्गत है या नहीं, यह मैं धर्म के व्यवस्थापकों पर छोड़ती हूँ। परन्तु मैं अब मुरारी के शब्दों की सत्यता समझ रही थी। मैं उन घटनाओं पर घण्टों विचार करती। क्या सचमुच हिन्दू-शास्त्र विधवा-विवाह के विरुद्ध हैं या केवल लोकमत ही इसके विरुद्ध है? क्या विधवा का मोक्ष इसी में है कि वह अपने नैसर्गिक भावों को इतना दबाती जाय कि उस दमन में उसकी आत्मा का भी लोप हो जाय? मैंने वास्तव में मुरारी पर बड़ा अत्याचार किया था कि उससे फिर न मिलने तक की प्रतिज्ञा करा ली। यह मेरी क्रूरता थी। और कुछ न होता तो उससे कभी-कभी मिल कर कुछ शान्ति तो हो जाया करती।

जब से विधवा-विवाह का प्रश्न मैंने अपने सम्मुख उपस्थित किया था, तब से मुझे उसके विषय में प्रत्येक बात जानने की जिज्ञासा हो गई थी। उस वर्ष रामलीला का मेला हुआ तो सास बड़े आग्रह से मुझे 'भगवान' के दर्शन करने के लिए ले गईं। मैं इसलिए साथ हो ली कि शायद मुरारी का दर्शन करने को मिल जाय। मुरारी तो मुझे न मिला, परन्तु एक पुस्तकों की छोटी दूकान पर मुझे 'विधवा-विवाह' नामक पुस्तक रक्खी हुई दीख पड़ी। मैंने सास से कहा—"अम्माँ! इनमें से एक पुस्तक ख़रीद लें। तुम्हें कभी-कभी पढ़ कर सुना दिया करूँगी।"

"मुझे नहीं चाहिए तेरी पुस्तक-सुस्तक। इतने पैसे कहाँ हैं?"

"जब पुरोहित जी को बुला कर कथा कहलवाती हो तब भी तो पैसे देने पड़ते हैं। एक बार कोई धार्मिक पुस्तक ले लोगी तो पुरोहित जी का ख़र्च तो बचेगा?"

वह बात उन्हें जँच गई। बोलीं—"अच्छा पुरो-तानी! तो 'हनूमान-चालीसा' ख़रीद लो।"

उनसे तो यही कहा कि वह 'हनूमान-चालीसा' था, परन्तु मैंने ख़रीदी 'विधवा-विवाह' की पुस्तक। वहाँ से चले तो स्त्री-आर्य-समाज का उत्सव हो रहा था। मैंने सास से वहाँ जाकर कुछ व्याख्यान सुनने को कहा तो वे नाक-भौं चढ़ा कर बोलीं—"हमारी सात पुश्त में कोई आरिया नहीं हुआ और तू आरियन की सभा में जाना चाहती है? इन सबकी तो मत मारी गई है! मैं बावरी हूँ जो इनकी अधरम की बातें सुनूँ?"

मैं चुप रही। यही बहुत था कि उन्होंने पुस्तक ख़रीदने के लिए पैसे दे दिए थे। घर आकर मैंने वह पुस्तक ध्यान से पढ़ी। उसमें वही बातें थीं जो मुरारी ने मुझसे कही थीं। मुझे यह निश्चय हो गया कि शास्त्रों की दुहाई केवल स्वार्थ-साधन के लिए दी जाती है। क्या मैं ब्रह्मचारिणी का जीवन समाज के विषमय वातावरण में निभा सकूँगी? उन विधवाओं की कहानियाँ, जो औरों के साथ घरों से भाग गई थीं, मुझे याद आईं। अवसर पड़ने पर जब मैंने किसी समवयस्क विधवा से वार्तालाप किया तो मुझे यही विदित हुआ कि वे विवाह करने के लिए बिलकुल तैयार थीं। परन्तु समाज की आज्ञा न होने से वे ज़बरदस्ती से 'पवित्र जीवन' व्यतीत कर रही थीं। जब विवाह धर्म के प्रतिकूल नहीं है और मुझे अपनी ही बिरादरी का एक ऐसा नवयुवक मिल रहा है, जिसे मैं प्राणों से भी प्यारा समझती हूँ तो फिर मैं विवाह क्यों न करूँ?

मैं मुरारी से फिर मिली। एक बार, दो बार, अनेकों बार। मिलना कोई सरल बात न थी। कभी तो सप्ताह पर सप्ताह बिना मिले व्यतीत हो जाते थे। फिर भी वे मास मेरे जीवन के सब से अधिक सुखमय मास थे। मिलन जितना ही मधुर लगता था, उतनी ही मधुर उस मिलन की प्रतीक्षा। मुरारी मेरे लिए मरता था। हममें यह निर्णय हो गया था कि कुछ महीनों बाद, जब मुरारी बी० ए० पास कर लेगा, तब हम इस भेद को सब पर खोलेंगे और फिर हमारा विवाह हो जायगा। इस बीच में, संसार के बिना जाने, हम पति-पत्नी के ही समान हो गए थे। मैं मुरारी में इतनी अनुरक्त हो गई थी कि मैंने अपना 'सर्वस्व' तक उसके समर्पण कर दिया।

६

सुख के दिन अधिक काल तक नहीं रहते। तीन मास व्यतीत होने पर मुझे यह प्रतीत हो गया कि मेरे पेट में कुछ है। इस बात का हम लोगों को कभी विचार तक नहीं हुआ था। मुझे इससे बड़ी चिन्ता हो गई। मुरारी की परीक्षा में कई महीने थे। बात किस प्रकार

छिपी रह सकेगी ? बहुत दिनों तक मैं घर वालों से यह बात छिपाने का प्रयत्न करती रही। परन्तु अन्त में सास को कुछ सन्देह होने लगा। मेरे व्यवहार में भी परिवर्त्तन हो गया था। सास का अत्याचार मैं अब सहन नहीं कर सकती थी। कुछ समय के बाद ही स्वतन्त्र होने की आशा से मैं निडर हो गई थी। सास को मैं कभी-कभी उत्तर भी दे दिया करती थी। उन्हें आश्चर्य तो होता था, परन्तु उनकी कर्कशता कुछ-कुछ कम अवश्य हो गई थी, वह शायद इस विचार से कि मैं अब यह समझने लग गई थी कि उनका व्यवहार अन्यायपूर्ण था और उसे मैं अधिक समय तक सहन न करूँगी।

पुरुषों से बात छिपाई जा सकती है, परन्तु स्त्रियों से कब तक ? फिर सास ठहरीं इस बात में उस्ताद ! उनकी आयु इन्हीं बातों में व्यतीत हुई थी। कुछ दिन तक तो उन्होंने सन्देह को केवल सन्देह ही समझा। परन्तु जब उन्हें विश्वास हो गया तो एक रात्रि को वह चुपचाप श्वसुर जी से कुछ सलाह करने लगीं। मेरे कान में भनक पड़ गई। मैं समझ गई वे क्या करेंगे। क्या मैं उनसे भिड़ने के लिए तैयार थी ? क्यों नहीं ? मैंने जो कुछ भी किया था, पाप समझ कर नहीं किया था, छिपाने के लिए नहीं किया था। मैं निर्भय होकर समाज पर सारा रहस्य प्रगट कर सकती थी। मुरारी तो मेरे साथ था, फिर मुझे भय किस बात का था ? मैंने उसी रात्रि को एक पत्र मुरारी के नाम लिख दिया—

"मेरे प्राण !

तुम्हारे बिना मैं कितनी व्याकुल रहती हूँ, यह तुम जानते हो। कई मास हो गए हैं, तुम्हारे दर्शन नहीं हुए। मैं यह सब इसलिए सहन कर रही थी कि तुम परीक्षा के लिए बिना किसी विघ्न के तैयारी कर सको। मैं तुम्हें उस समय तक लिखना भी नहीं चाहती थी, जब तक कि तुम्हारा परीक्षा-फल विदित न हो जाय। परन्तु अब कई घटनाएँ ऐसी हो गई हैं कि तुम्हें बिना कष्ट दिए काम नहीं चल सकता।

तुम यह जानते ही हो, मेरे हृदय-देव, कि इस घर में मैं बन्दी की भाँति पड़ी हूँ। यदि मैं गर्भवती न होती तो कोई बात न थी, परन्तु अब तो बात उतनी सरल नहीं है। शायद यह हमारी मूर्खता थी, शायद नहीं। परन्तु जो हो गया, उस पर आँसू बहाने से कोई लाभ नहीं। संसार की दृष्टि में कदाचित हम पापी हों। परन्तु परमेश्वर की दृष्टि में तो हम स्त्री-पुरुष हैं। हम उन युवक-युवतियों से तो अच्छे हैं, जो न तो समाज के नियमों से ही बद्ध हैं, न परमेश्वर के नियमों से ही, और फिर भी यह कृत्य करते हैं। वे समाज से भागते हैं। परन्तु हम तो समाज के नियमों की अपने कृत्य पर छाप लगवाना चाहते हैं।

मेरे नाथ, यहाँ वालों को सब बातों का पता लग गया है। अभी उन्होंने मुझसे कुछ कहा नहीं है, परन्तु आज नहीं तो कल चर्चा चलाई ही जायगी। मैं डरती नहीं हूँ। एक दिन घर छोड़ना तो है ही, अभी सही। मुझे आशा है कि तुम भी समाज की बदनामी से न डरोगे और इस बात को प्रत्यक्ष हो जाने दोगे। कदाचित तुम्हें कुछ असुविधा होगी, परन्तु कुछ सप्ताह बाद ही तुम बी० ए० पास हो जाओगे। विवाह तो हमें करना ही है, फिर ऐसी दशा में 'शुभस्य शीघ्रम्' ही ठीक रहेगा। मैं तो उस दिन को देखने के लिए मर रही हूँ, और तुम ? तुम क्या फूल को अपने नेत्रों से लगाने के लिए अधीर नहीं हो ? तुम अब मुख से 'हाँ' कहने के लिए तैयार नहीं होगे, परन्तु मैं तुम्हारे नेत्रों में सब कुछ पढ़ लूँगी। पुरुष होते ही ऐसे हैं। जब प्रेम का प्रारम्भ होता है तो स्त्री को स्वर्ग की देवी बना देते हैं, उसकी प्रशंसा के लिए सारे संसार की उपमाओं को चुरा लाते हैं, उसकी एक मुस्कान पर सारे संसार को बलिदान करने की बातें करते हैं; परन्तु जब प्रेम परिपक्व हो जाता है तो स्वयं कठोर बन जाते हैं और बेचारी प्रेमिका को उलटी प्रार्थना करनी पड़ती है। परन्तु मेरे सर्वस्व ! मुझे तो प्रार्थना करने में ही आनन्द मिलता है। तुम्हारे चरणों की सेवा करने की अधिकारिणी बन सकूँ, इसके अतिरिक्त और मैं कुछ नहीं चाहती। मुझे धन की चिन्ता नहीं है, तुमसे बड़ा धन और क्या मिलेगा ? मुझे सुसज्जित प्रासादों की चाह नहीं है, तुम्हारे वक्षस्थल से अधिक सुसज्जित प्रासाद संसार में कहाँ मिलेगा ? मैं संसार का कोई भोग नहीं चाहती, मैं चाहती हूँ तुम्हें, तुम्हें, केवल तुम्हें ! और तुम मेरे हो ही, हो न ?

कल सन्ध्या को 'नादिया वाली बग़ीची' में तुम आना। मैं वहीं मिलूँगी। फिर हम अपना भावी कार्य-क्रम सोचेंगे। मैंने अभी तक तुम्हारा नाम प्रगट नहीं

होने दिया और न विवाह तक होने दूँगी। तुम्हें देखे बिना अभी ३६ घण्टे व्यतीत करने पड़ेंगे। तुम्हें उन घण्टों के लिए मेरा छत्तीस सौ बार प्यार !

सदा तुम्हारी—फूल"

यह पत्र भेज देने पर मैं सास का सामना करने की प्रतीक्षा करने लगी। मुझे विश्वास था कि मुरारी बग़ीची में मुझसे मिलने अवश्य आएगा, अतः जब दूसरे दिन सास ने इस विषय पर वार्तालाप करना प्रारम्भ किया तो मैं बड़ी दृढ़ता से मोरचा लेने लगी। क्रोध में भरी हुई वे बोलीं—"क्यों री, यह क्या है ? यह छिप-छिपा के तू क्या करती रही है ?"

"जो कुछ भी मैं करती रही हूँ, उसे छिपाना नहीं चाहती। मैं पेट से हूँ।"

"हाँ, अब बात छिप नहीं सकती तो तू छिपाएगी कैसे ? पर किससे यह काला मुँह कराया है ?"

"यह सब तुम्हें दो-चार दिन में मालूम पड़ जायगा।"

"तुझे ऐसा करते शरम न आई ? ख़लक़ख़्वार ! जो काम कभी इस कुल में नहीं हुआ, वह तैंने करके सारे कुल की मर्जादा में कालिख लगा दी।"

"तुम्हें अपने कुल की ऐसी चिन्ता है और मेरे भविष्य की कुछ भी चिन्ता नहीं ? तुम बुढ़ापे में भी शृङ्गार करो, सुन्दर से सुन्दर वस्त्र-आभूषण पहनो, संसार के सारे भोग भोगो, और मैं युवती होते हुए भी एक भिखारिणी की भाँति तुम्हारे घर में पड़ी रहूँ, न किसी से बात करूँ, न किसी से हँसूँ ? मैं तुम्हारे कुल की रत्ती भर पर्वाह नहीं करती ! तुम्हें दीखे सो तुम करो, मुझे दीखेगा वह मैं करूँगी।"

"अब और कुछ करने की कसर बाक़ी है ? अब हरदुआर चल कर रहने के सिवा और क्या हो सकता है ?"

"हरदुआर ? किस लिए ?"

"गिराने के लिए।"

"हत्या करने के लिए ? न, मैं ऐसा नहीं कर सकती।'

"तो क्या विधवा होकर लला खिलाने की हौस है ?"

"हाँ, है।"

"तो मैं अपने घर में यह न होने दूँगी। लोग क्या कहेंगे ? सारी बिरादरी जनम में थूकेगी।"

"तुम्हारे घर में यह नहीं होगा, मैं तुम्हारा घर छोड़ दूँ।"

"यार के साथ भागेगी ?"

"भागूँगी क्यों ? मैंने कोई पाप किया है जो भागूँगी ? मैं सबके सामने उससे विवाह करूँगी और गृहस्थ-जीवन बिताऊँगी।"

"हाय राम ! इसकी मत तौ न जाने किसने हर ली ! घोर कलयुग है न ! एक राँड ब्याह करेगी ! महारानी के लिए फिर मँड़वा छवेगा, फिर सात फिरकयाँ पड़ेंगी ! एक क्यों, रोज़ एक खसम कर और छोड़ ! परलै (प्रलय) आ गई न ! भला तीनों तिल्लोकी में राँड़न के ब्याह सुने हैं ? किस्टान बन जा, धरम पर आग-भूभर डाल दे। हमें क्या ख़बर थी कि तू ऐसी सीरी स्याँपिनि निकलेगी !"

"हाँ, तुम कुछ भी कहो, लेकिन अब मुझे मालूम हुआ कि छिप कर पाप करने से, अपने घर वालों से ही भ्रष्ट होने से और गर्भ गिराने से तुम्हारे कुल में दाग़ नहीं लगता, तुम सब बिरादरी में लम्बी नाक लटकाए फिर सकती हो। परन्तु यदि एक विधवा अपनी ही बिरादरी के एक नवयुवक से विवाह करके धर्म का जीवन व्यतीत करना चाहती है तो वह पाप है, अधर्म है ! उस पर बिरादरी बदनामी करेगी, दुनिया हँसेगी। अच्छा है, रक्खो सँभाल कर अपनी इस कुल-मर्यादा को। मैं चली।"

* * *

सन्ध्या हो गई थी। मैं केवल एक चद्दर ओढ़ कर उस घर को सदा के लिए छोड़ बग़ीची की ओर चल दी। अन्धकार हो गया था। उस ओर लोगों का आवागमन बन्द सा हो गया था। एक वृक्ष के नीचे मैंने एक नवयुवक को खड़ा देखा। मैं प्रसन्न हो गई। पास जाकर मैंने धीरे से पुकारा 'मुरारी !' युवक मेरी ओर को बढ़ा। जब वह पास आ गया तो एक साथ मैं चौंक पड़ी। वह मुरारी न था। वह बोला—"तुम्हारा ही नाम फूल है ?"

"तुम्हें इससे क्या काम ? तुम कौन हो ?"

"मैं मुरारी का चचा, गिरधारीलाल हूँ।"

"तुम मुरारी के चचा ? तुम यहाँ किस लिए आए ?"

"तुमने मुरारी को यहाँ बुलाया था ?"

"हाँ ! परन्तु तुम्हें यह सब किस प्रकार पता लग गया ? मुरारी कहाँ है ?"

"मैं तुमसे यही कहने आया हूँ कि मुरारी यहाँ नहीं आएगा।"

"तो क्या आज कोई आवश्यक कार्य लग गया था ?"

"आज ही क्यों, उसे सदा के लिए आवश्यक कार्य लग गया है।"

"यानी ?"

"वह तुमसे कभी नहीं मिलेगा।"

मेरे होश उड़ गए। मुरारी मुझसे कभी नहीं मिलेगा! यह सत्य हो सकता है ? मैं इस बात पर विश्वास न कर सकी। मैं उत्तेजित होकर बोली—"मुझसे कभी नहीं मिलेगा ? मेरा मुरारी ? तुम असत्य बोल रहे हो। मुझे भुलावा दे रहे हो। मैं तुम पर विश्वास नहीं कर सकती, नहीं कर सकती!"

उसने धीरे से जेब से एक लिफ़ाफ़ा निकाला और मेरे हाथ में देकर कहा—"यदि विश्वास नहीं करती हो तो यह देखो, किसकी हस्त-लिपि है ?"

लिफ़ाफ़े पर मेरा नाम लिखा था। वह मुरारी ने अपने ही हाथ से लिखा था, इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता था। अतः मैंने कहा—"मुरारी की।"

"इसमें मुरारी का पत्र है, उसे पढ़ो।"

मैंने पत्र पढ़ा—

"फूल !

तुम्हारा पत्र मिला। तुम मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी, परन्तु मुझे दुःख है कि घटना-चक्र ने मुझे न आने के लिए विवश कर दिया है।

तुम्हारा पत्र पाने पर मेरे सम्मुख केवल एक ही मार्ग था, अर्थात अपनी माता और चचा पर इस रहस्य का उद्घाटन कर देना। मैंने उनसे सब बातें कहीं और तुमसे विवाह करने की आज्ञा चाही। परन्तु आज्ञा मिलना तो अलग, मुझे लेने के देने पड़ गए। चचा तो इस बात के घोर विरोधी रहे हैं, परन्तु उनकी मैं इतनी पर्वाह नहीं करता। माता का विचार मुझे अवश्य करना पड़ता है। जब से उन्हें मेरे विचार विदित हुए, उन्होंने भोजन-पानी छोड़ दिया और मर जाने की धमकी दी। अन्त में विवश होकर मुझे यह प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि मैं तुमसे विवाह नहीं करूँगा। मैं स्वयं तुमसे मिलने आता, परन्तु एक तो मुझे तुम्हें मुख दिखाने का साहस न हुआ, दूसरे चचा ने मुझ पर विश्वास न किया। तुम मुझे कायर कहोगी, फूल ! हाँ, मैं हूँ। मैं वीरता की तथा साहस की डींग हाँकता रहा हूँ। परन्तु मुझे अब विदित हुआ कि एक कट्टर समाज-सुधारक भी घटनाओं से विवश होकर अपने मार्ग से विचलित हो सकता है।

वास्तव में मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है, फूल ! तुम्हें इस दशा को पहुँचाने का मैं अपराधी हूँ। परन्तु चचा ने तुम्हारी सहायता करने का वचन दे दिया है। यह सन्तोष है। आशा है तुम मुझे भूल जाओगी और क्षमा करोगी।

—मुरारी"

पत्र पढ़ कर मेरी जो दशा हुई, यह वही जान सकता है, जिसने मनुष्य-जन्म लेने का इतना भारी दण्ड पाया हो। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मेरी जीवनी शक्ति मेरे शरीर से निकल गई। मैं पृथ्वी पर बैठ गई। क्या यह वही मुरारी है, जिसके साथ मैंने महीनों व्यतीत किए थे ? वह मुरारी कितना वीर, साहसी, दयालु तथा मनोरम था! यह मुरारी कितना कायर, डरपोक, क्रूर तथा अवहेलनीय है ! जो समाज-सुधार के ऊँचे-ऊँचे विशाल भवन बनावे, उन्हें सुसज्जित करे और फिर घर वालों की एक आह से, एक क्षण में, उन्हें पृथ्वी पर गिरा दे, उससे तो परमात्मा ही हिन्दू समाज को बचाए ! यही आजकल के समाज-सुधारकों का नमूना है ! यदि यह शिक्षित लोग ऐसे आचार-विचार वाले हैं तो उन अशिक्षितों का रूढ़ियों से चिपटे रहने में क्या दोष है ? कम से कम उनमें सत्यता तो है, इन सुधारकों जैसा छल-कपट तो नहीं है। मुरारी से कभी यह आशा हो सकती थी ! माता के भोजन न करने से उसकी आत्मा विचलित हो गई और मेरा जीवन जो नष्ट हो गया, उसकी उसे कुछ चिन्ता नहीं ! मेरे आँसुओं की, मेरे कष्टों की, इस आने वाले बच्चे की, उसे बिलकुल ही सुध न रही ! मैंने सास-श्वसुर छोड़े, घर छोड़ा, सारे शहर की बदनामी लेने की भी परवाह न की, यह सब बातें उसे बिलकुल ही याद न आईं ! इन सबके अतिरिक्त उसे मेरे प्रगाढ़ प्रेम का किञ्चिन्मात्र भी विचार न हुआ और सब कुछ सहन कर लूँगी, परन्तु उसके बिना मेरी क्या दशा होगी ? यदि मेरे जीवन में वह न आता तो कोई बात न थी। परन्तु उसे पाकर भी खो रही हूँ ! हे भगवान ! सारी आशाओं का ख़ून हो गया ! सारी कामनाएँ उसकी क्रूरता में भस्म हो गईं ! सारे स्वप्न छाया की भाँति मिट

गए! किस प्रकार हृदय में एक मन्दिर बनाया था, परन्तु हा! जिसकी मूर्ति उसमें बिठाना चाहती थी, उसीने उस पर वज्र गिरा दिया! मैं रोने लगी।

अब तक गिरधारीलाल चुपचाप खड़े थे, परन्तु अब मेरे पास आकर बोले—"मुझे दुःख है, फूलवती! परन्तु तुम्हीं सोचो कि यह विवाह किस प्रकार हो सकता था? तुम विधवा हो; हमारे कुल में अभी तक ऐसा काम कभी नहीं हुआ। मुरारी तो अभी नासमझ है। कुछ आर्यसमाजियों की बातों में आकर उसका दिमाग़ फिर गया है। परन्तु हमारा कर्त्तव्य है कि उससे कोई काम ऐसा न होने दें, जो कुल के नाम पर धब्बा लगावे। फिर उसके विवाह के लिए एक रईस पीछे पड़ रहे हैं, जो उसे डिप्टी-कलक्टर बनवाने का उद्योग कर रहे हैं। तुम उसे भूल जाओ।"

"ठीक है! तुमने अपने कुल की नाक बचा ली और मुरारी को भी डिप्टी-कलक्टर बना लिया। परन्तु एक निर्दोष बालिका का कुछ भी विचार न किया!"

"तुम्हारा क्या बिगड़ा है? तुम विधवा हो। जिस प्रकार उससे मिलने के पूर्व जीवन व्यतीत कर रही थीं, उसी प्रकार अब भी कर सकती हो।"

मेरे नेत्र लाल हो गए। मैं क्रोध से बोली—"मेरा क्या बिगड़ा है? तुम्हें बताऊँ मेरा क्या बिगड़ा है? मैंने सास-ससुर छोड़े, चरित्र-भ्रष्ट हुई, सारे शहर में कल पापिनी के नाम से पुकारी जाऊँगी और जिसको मैंने प्राणों से भी अधिक प्यार किया है उसे तुम छीने ले जा रहे हो, और कहते हो कि मेरा क्या बिगड़ा है? मैं विधवा हूँ तो क्या मेरा समाज में कोई स्थान नहीं? विधवा को चाहे जो कोई आकर बिगाड़ दे और फिर एक ओर फेंक कर चला जाय? वह सबके भोग की सामग्री हो गई! कैसे यह कुलीन हैं, धर्मात्मा हैं, बिरादरी के पञ्च हैं! ....."

वह बीच ही में बोले—"सुनो, सुनो, लड़की! इस प्रकार उत्तेजित न होओ। मुरारी ने जो मूर्खता की है, उसके लिए तुम्हारा मूल्य चुका सकता हूँ।"

"मेरा मूल्य? मेरे प्रेम का मूल्य तुम पैसों में चुकाओगे? तुमने मुझे वेश्या समझा है? तुम मेरे सामने से चले जाओ, अभी चले जाओ! मैं तुम्हारा मुख नहीं देखना चाहती; तुम्हारा, मुरारी का, किसी भी पुरुष का। मैं सारी पुरुष-जाति से घृणा करती हूँ।"

७

भविष्य के पर्दे के पीछे क्या छिपा है, यह जान जाती तो यह अनर्थ क्यों होता? परन्तु भाग्य में तो आपत्तियाँ ही लिखी थीं। वैधव्य, कलङ्क-कालिमा और फिर प्रेम-निराशा; संसार में जीने की और क्या साध रह गई थी? सास के पास किस मुख से लौट कर जाती? और जाती भी तो क्या वे ग्रहण करतीं? और फिर उस समय तक बिरादरी और मुहल्ले में मेरे निकल जाने की बात फैल ही चुकी होगी। फिर सदा के लिए समाज में एक घृण्य जीव की भाँति रह सकूँगी? नहीं, यदि यह नहीं तो फिर दूसरा मार्ग है अचल-ताल। उसने न जाने कितनी मुझ-सी अभागिनी युवतियों को शरण दी है। फिर क्या वह मुझे भी शरण न देगा? वह हिन्दू-समाज से तो अधिक दयालु है ही। जिसे समाज में स्थान नहीं मिलता, उसे वह स्थान देता है। निर्धन धनिक, युवती वृद्धा, भङ्गी ब्राह्मण, वह सबका एक समान स्वागत करता है। मैं उसी ओर चल दी।

मरने के लिए जा रही थी, फिर भी मुरारी का ध्यान आ रहा था। हाय! निष्ठुर ने अन्तिम बार दर्शन भी न दिए! संसार से विदा होने से पूर्व यदि उसे एक बार देख लेती तो हृदय की आग बुझ जाती।

पर्कीसराय की ओर जो सड़क गई है, उधर अचल-ताल पर बहुत कम मनुष्य जाते हैं। अँधेरी रात साँय-साँय कर रही थी। उस ओर उल्लू बोल रहे थे। इसके अतिरिक्त दो-एक कुत्ते और भौंक रहे थे; नहीं तो दृश्य बड़ा नीरव था। मैं अचल की सिढ़ियों पर जा बैठी। जल को देखा और फिर आकाश की ओर देखा। हृदय काँप गया। फिर साहस किया, परन्तु जिस संसार को सदा के लिए छोड़ने जा रही थी, उसे फिर एक बार देख लेने की इच्छा हुई। आकाश की ओर दृष्टि की, वह अपूर्ण रजनीपति आज कितना मधुर लगता था! पृथ्वी पर चारों ओर दृष्टि फिराई, पीछे से सड़क पर के मकानों की खिड़कियाँ दिखाई दे रही थीं। इतने ही में एक मकान से ढोलक तथा गायन के शब्द सुनाई दिए। मैंने ध्यान से सुना, किसी के यहाँ लड़का पैदा हुआ होगा, उसीके गीत गाए जा रहे थे। मैं वहीं बैठ गई। मेरे नेत्रों के सामने मेरे अपने बच्चे के दृश्य आ गए। मैं इसे भूल गई थी। मैं कातर होकर रो पड़ी।

मेरा हृदय चिल्ला रहा था—"भगवान ! मुझे जीवित रहने की शक्ति दो। अपने लिए नहीं, उस बच्चे के लिए, जो संसार में आना चाहता है। मुझे उसका जीवन लेने का कोई अधिकार नहीं है। मैं मज़दूरी करके निर्वाह कर लूँगी, भूखों रह लूँगी, परन्तु उसके लिए, अपने प्रेमी के एकमात्र चिन्ह को सुरक्षित रखने के लिए, मैं जिऊँगी।"

उस शून्य स्थान से चल कर मैं सड़क पर आई तो एक ओर को एक छोटी सी झोपड़ी दीख पड़ी। मैंने द्वार पर धक्का दिया। एक बुढ़िया ने द्वार खोला।

"मुझे आज रात भर ठहरने दोगी, माई ?"

"तुम कौन हो ?"

"एक दुखिया हूँ, और क्या बताऊँ।"

"हिन्दू हो ?"

"हाँ।"

"लेकिन मैं तो मुसलमान हूँ, बेटी ! मेरे घर में तुम कैसे रहोगी ?"

मैंने कुछ देर विचार किया और फिर बोली—"तुम कोई भी हो, मैं तुम्हारे पास रात गुज़ारूँगी। बोलो, रहने दोगी ? मैं किसी हिन्दू के घर नहीं जाना चाहती।"

बुढ़िया ने मुझे रख लिया। घर में वही अकेली थी। कुछ मेहनत करके काम चलाती थी। वह इतनी दयालु थी कि मैंने जब उससे अपनी कहानी कही, तो वह बोली—"अगर तुम रहना चाहो तो मेरा घर पड़ा है, बेटी ! जब तक बच्चा हो, तुम यहाँ रह सकती हो।"

कुछ दिनों बुढ़िया के साथ रहने पर मुझे अपने ही धर्मवालों से घृणा होने लगी। कोई हिन्दू ऐसा था जो मुझे अपने यहाँ शरण दे देता ? कोई ऐसी संस्था थी जो मेरे बच्चे की रक्षा के लिए तत्पर होती ? इन विचारों से और बुढ़िया की शिक्षा के प्रभाव से कुछ दिनों बाद ही चुपचाप मैं मुसलमान हो गई। फिर मैंने सुना कि मेरे विषय में बिरादरी में यह विख्यात हो गया है कि पेट रहने के कारण मैं अचल में डूब कर मर गई। मैंने किसी को अपना पता न चलने दिया। बुढ़िया की सहायता कर कुछ कमाती और उसी से व्यय चल जाता था। बुढ़िया एक दिन बोली—"बेटी ! तू नौजवान है, किसी के साथ निकाह करके क्यों नहीं बैठ जाती ?"

"नहीं माँ, मैं इसलिए मुसलमान नहीं हुई। मैं सिर्फ़ हिन्दुओं से बदला लेने के लिए मुसलमान हुई हूँ।"

वह चुप हो गई। कुछ दिनों में ही मेरा बच्चा, मेरी आँखों का पुतला, पृथ्वी पर आ गया। लड़का है, यह जब मैंने देखा तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसकी आकृति बिलकुल मुरारी की सी थी। उसे देख कर मैं मुरारी को याद कर लेती थी। मैं मुसलमान हो गई थी, परन्तु मेरा हृदय तो मुसलमान नहीं हुआ था। हृदय-मन्दिर के केवल भग्नावशेष ही शेष थे, फिर भी ढूँढ़ने पर मेरे देवता की टूटी हुई मूर्ति भी वहाँ मिल सकती थी।

८

सोलह वर्ष व्यतीत हो गए। उन सोलह वर्षों में मैं घर से बाहर बहुत कम गई थी। बुढ़िया ने पड़ोसियों से कह दिया था कि मैं उसकी एक रिश्तेदार हूँ, अतः किसी को किसी प्रकार का सन्देह न हो पाया था। इन दिनों में मेरे सास-श्वसुर का देहान्त हो गया था और मुरारी ने अपना विवाह कर लिया था। कभी-कभी मुरारी के दर्शनों की इच्छा बहुत प्रबल हो जाती थी, परन्तु मैं अपने मन के भावों को दबा जाती। अब वह दूसरे का था। उस पर मेरा क्या अधिकार ? उसने मेरे साथ घोर अन्याय किया था, फिर भी मेरे हृदय से उसकी मङ्गल-कामना की प्रार्थना ही निकलती थी।

दो-चार बार मुझे अपने मुसलमान होने पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। रह-रह कर, मैं घृणा तथा क्षोभ के आवेश में जो कुछ कर बैठी थी, उस पर मुझे ग्लानि होने लगती, परन्तु कोई उपाय उस दशा से निकलने का न था। हिन्दू-धर्म के द्वार तो मेरे लिए सदा को बन्द हो गए थे। यदि फिर हिन्दू होना भी चाहती तो मुझे कौन अङ्गीकार करता ? मेरे बच्चे की क्या दशा होती ? क्या उसे अच्छे हिन्दुओं का सा दर्जा मिलता ? हिन्दू उसे जारज समझ कर उससे उपेक्षा न दिखाते ? मुसलमान रहने पर मेरे बच्चे का मार्ग तो साफ़ था, उसका भविष्य तो अन्धकारमय न था। उसके सामाजिक अधिकारों को कुचलने वाला तो कोई न था ? यही विचार थे, जो मुझे मुसलमान बनाए रहे। मुझ जैसी युवतियों की संख्या कुछ कम नहीं है, जिन्हें हिन्दुओं ने अपनी ही मूर्खता से सदा के लिए खो दिया है।

मेरा सारा प्रेम अब 'अब्दुल' पर केन्द्रस्थ हो गया था। उसे मेरे अतीत जीवन का कुछ पता न था। शायद

यह मेरी हिन्दुओं के प्रति घृणा थी कि जिसने अब्दुल के हृदय में हिन्दुओं के प्रति प्रतिहिंसा भर दी थी। वह बहुधा हिन्दू लड़कों को मार-पीट कर घर आता था। मुझे इससे बड़ा दुःख होता था, परन्तु मैं उससे कुछ भी न कहती थी, इस डर से कि कहीं वह सारा रहस्य जान न जाय।

उस वर्ष सारे संयुक्त प्रान्त में हिन्दू तथा मुसलमानों में विग्रह हो रहे थे। अलीगढ़ भी उस छूत से बचा न था। इधर-उधर हिन्दू और मुसलमान मार-काट कर देते थे। अब्दुल मस्जिद में सुन आया था कि काफ़िरों को मारने से बड़ा पुण्य होता है। अतः वह बड़े उत्साह से पुण्य लूटने की तैयारी कर रहा था। अब्दुल एक दिन बड़ा सा छुरा लेकर एक पत्थर पर तेज़ कर रहा था। मैं देख कर घबरा गई। मैंने उससे कहा—"अब्दुल! यह क्या कर रहा है?"

"कल बकरीद है, उसकी तैयारी कर रहा हूँ।"

"यह छुरी क्या बकरा हलाल करने के लिए है?"

"हिन्दुओं को हलाल करने के लिए।" वह हँस कर बोला।

"पागल हुआ है? तू अभी बच्चा है, अभी से हाथ चलाना—"

"मैं बच्चा हूँ? वाह! मौलवी साहब ने सबको यही तालीम दी है। कम से कम एक हिन्दू को मैं ज़रूर क़त्ल करूँगा।"

बकरीद के दिन अब्दुल मेरे रोकने पर भी बाहर निकल गया। मैंने एक हिन्दू के पुत्र को ही हिन्दू-घातक बना दिया। मैं यह कैसा अपराध कर रही हूँ! मुझे स्वयं अपने आपसे घृणा होने लगी। क्या यह बदला लेने का ढङ्ग है? मुझे सारी बीती हुई घटनाएँ मस्तिष्क में घूमती हुई मालूम दीं। उन सब में मुरारी की सुन्दर आकृति को देख कर मैं व्याकुल हो उठी। कहीं वह भी किसी मुसलमान द्वारा मारा न गया हो। मैं उसकी कुशल की कामना करने लगी।

मैं अपने विचारों में मग्न थी कि मुझे बाहर शोर सुनाई दिया। 'अल्लाहो अकबर' के नारे बलन्द थे। इतने ही में द्वार पर धक्के का शब्द सुनाई दिया। मैंने जाकर द्वार खोला।

एक मनुष्य, जो हिन्दू विदित होता था, भीतर घुसा। उसका मुख शाल में छिपा हुआ था। मैंने विस्मय से पूछा—"तुम क्या चाहते हो?"

"शीघ्र द्वार बन्द कर दो। मुसलमान छुरियाँ लिए मेरा पीछा कर रहे हैं।"

मैंने द्वार बन्द करके उसकी ओर देखा। मेरे वस्त्र रँगे देख कर वह कराहता हुआ बोला—"एक मुसलमान का घर? कैसा दुर्भाग्य है!"

यह कह कर वह द्वार की ओर चलने लगा। मैंने उसे रोक कर कहा—"मैं मुसलमान हूँ, यह ठीक है, लेकिन यहाँ तुम्हारा कोई बाल भी बाँका न कर सकेगा।"

उसने अपने मुख से शाल हटाई। मैं हठात् चिल्ला पड़ी—"मुरारी!"

उसने भी मेरे मुख की ओर देखा और वह भी चिल्ला उठा—"फूल!"

कैसा मिलन था! सोलह वर्ष के बाद मुरारी के फिर दर्शन हुए और वह भी इस प्रकार! उस समय मुरारी ने मुझे ठुकरा दिया था, आज वह स्वयं मेरे द्वार पर शरण लेने के लिए आया! समय का कैसा खेल है!

वह बोला—"फूल! यह सत्य है या स्वप्न? तुम वास्तव में जीवित हो? मैंने तो सुना था कि तुम........"

"...मैं मर गई थी? हाँ, हिन्दू फूल मर गई। यह मुसलमान फूल है जो जीवित है। तुम्हें तो एक हिन्दू स्त्री को मुसलमानी जीवन में देख कर प्रसन्नता हुई होगी! सच्चे सुधारकों का आदर्श ही यह है!"

"ताने न मारो, फूल! मैं जानता हूँ मैं पापी हूँ, मैं अपराधी हूँ। परन्तु यदि तुम कुछ सुनोगी तो शायद क्षमा कर दोगी।"

"इससे क्या लाभ है?"

"आह! यह पूछती हो फूल? एक बार मेरे नेत्रों में तुमने मेरे हृदय के भाव पढ़े थे। क्या आज मेरे नेत्रों में उसी हृदय के भाव नहीं पढ़ सकोगी? यह मत समझो कि तुम्हें मैं भूल गया था। तुम्हें वह पत्र तो मैंने लिख दिया था, परन्तु पीछे से मुझे अपनी कायरता पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। क्षणिक दुर्बलता के कारण तुम्हें मैंने खो दिया। परन्तु पीछे लाख प्रयत्न करने पर भी तुम्हारा पता न लगा। अन्त में तुम्हारे ताल में डूब जाने की कहानी पर विश्वास करके धैर्य रखना पड़ा। परन्तु उस दिन से हृदय चोट खाए हुए पक्षी की भाँति तड़पता रहा

है। अब तक वह घाव भरा नहीं है। फूल! मेरी प्यारी! क्या अपने अपराधी को क्षमा न करोगी? क्या अतीत को स्मृति-पटल से न मिटाओगी?"

"क्षमा चाहते हो मुरारी? परन्तु किस लिए? मुझे तुमने ठुकरा दिया, धर्म-परिवर्तन के लिए विवश कर दिया, जीवन की आशा-लता को जला डाला; फिर भी, आज तक, इस क्षण तक, तुम्हारे अतिरिक्त इस मन ने किसी और पुरुष का चिन्तन नहीं किया, हृदय ने किसी और की पूजा नहीं की। ओह मुरारी! जीवन के कठिनतम सोलह वर्षों के अनन्तर तुम और मैं! नींद से जग कर फिर स्वप्न देख रही हूँ! क्या यह चिरस्थायी रहेगा?"

"चिरस्थायी, फूल! स जन्म में, अगले जन्म में, प्रत्येक जन्म में, अनन्त काल तक। मैं तुम्हें तुम्हारे सिंहासन पर फिर बिठाऊँगा। जिस लड़की से मुझे विवाह करना पड़ा था, वह दो वर्ष बाद ही उड़ गई। तब से मैंने त्याग और सेवा का जीवन व्यतीत किया है। अब सारे समाज के सामने तुम्हें अपन बनाऊँगा।"

मेरे नेत्रों में हर्ष के आँसू भरे थे। मैं मुरारी के वक्ष-स्थल पर शिर रख कर उसे आँसुओं से भिगोने लगी। इतने ही में द्वार खुला और अब्दुल भीतर आ गया। उसके हाथ में छुरी लगी हुई थी। वह द्वार से ही चिल्ला कर बोला—"एक हिन्दू को ख़तम करके आया हूँ, अम्मी!" हम दोनों अवाक् होकर उसकी ओर देख रहे थे कि वह मुरारी की ओर देख कर विस्मय से बोला—"एक हिन्दू, हमारे घर में?"

मैंने उसका हाथ पकड़ कर कहा—"अब्दुल! ख़बरदार, हाथ न चलाना।"

"क्यों?"

"यह तेरे बाप हैं।"

"मेरे बाप, एक हिन्दू?" वह विस्मय से बोला।

"हाँ, बेटा! तू एक हिन्दू का पुत्र है, एक हिन्दू है।"

वह विस्मय से मुरारी की ओर देखता रहा। मुरारी ने मुझसे पूछा—"फूल! क्या वह यही है?"

"हाँ।"

"पगली! तुमने बड़ा अत्याचार किया। कभी मुझे समाचार तक न दिया।"

धीरे-धीरे मुरारी की भुजाएँ आगे बढ़ीं। अब्दुल ने एक शब्द भी न निकाला। उसके नेत्रों में आँसू थे। उसे हिन्दू और मुसलमान का कुछ ध्यान न रहा। जिस पिता के लिए वह कभी तड़पा करता था, उसे सामने खड़ा देख कर उसका पितृ-प्रेम उमड़ पड़ा। वह दौड़ कर मुरारी के गले से लिपट गया। मुरारी का गला भर आया था। उसने केवल 'मेरा बेटा!' ही कहा और उसे छाती से लगा कर चूमने लगा। अपरिचित पिता-पुत्र का वह सम्मिलन, सोलह वर्ष बाद, स्नेह तथा ममता का एक सजीव दृश्य था। उसे क्या मैं जीवन भर भूल सकती हूँ!

फिर द्वार खुला और एक वृद्ध हिन्दू रक्त में लथपथ आँगन में गिर पड़ा। हम सब उसकी ओर दौड़े। हैं, यह तो गिरधारीलाल है! मुरारी ने उसकी ओर देख कर कहा—"चाचा, यह तुम्हारी क्या दशा?"

गिरधारीलाल ने उधर आँखें फिराईं। अब्दुल अब भी उसकी छाती से लगा हुआ था। उसे देखते ही गिरधारीलाल ज़ोर से बोला—"मुरारी! यह मैं क्या देख रहा हूँ? मुसलमान, मेरा हत्यारा, तुम्हारी गोद में!"

"यह मेरा पुत्र है, चाचा!"

"तुम्हारा पुत्र?"

"हाँ, मेरा और फूल का पुत्र!"

"अब मैं समझा! सो फूल हिन्दू समाज में शरण न मिलने से मुसलमान हो गई और एक हिन्दू के पुत्र ने ही एक हिन्दू का वध किया!"

वह निर्जीव होने लगा। मैंने उसके मुख में थोड़ा जल डाल कर कहा—"आपको उठा कर पलङ्ग पर लिटा दें तो अच्छा होगा।"

वह कुछ सँभल कर बोला—"पलङ्ग पर? नहीं, अब मुझमें रह क्या गया है? चोट घातक है। कुछ देर में प्राण-पक्षी उड़ जाएँगे। परन्तु मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। फूल! मुझे अपना हाथ दो। मुरारी! तुम भी मुझे अपना हाथ दो।" हम दोनों ने उसका एक-एक हाथ पकड़ लिया और उसका शिर मुरारी ने अपनी जङ्घा पर रख लिया।

बड़े कष्ट से गिरधारीलाल बोला—"मुझे सारी बीती हुई घटनाओं के चित्र इस समय दीख रहे हैं। मैं कितना अन्धा था? तुम दोनों के जीवन को मैंने कितना दुःखमय बना दिया था। समाज का झूठा भय, व्यर्थ का बड़प्पन और मानसिक दासत्व ने हम

हिन्दुओं की बुद्धि पर कैसा पर्दा डाल दिया है ! यदि तुम दोनों का विवाह उस समय हो जाता तो एक परिवार विधर्मी होने से बचता। हिन्दू हिन्दू का ही घातक न होता। हम स्वयं ही अपने शत्रुओं की संख्या बढ़ा कर अपने पैर में कुल्हाड़ा मार रहे हैं ! हम इन भोली विधवाओं पर अत्याचार तो करते हैं, परन्तु उनकी रक्षा का उपाय कुछ नहीं करते। फल यह होता है कि या तो वे वेश्या हो जाती हैं या विधर्मी। और या फिर भ्रूण-हत्या का पाप करती हैं। यदि हमारे यहाँ ऐसे स्थान हों, जहाँ ऐसे अभागे बालकों का पालन-पोषण हो सके तो समाज का कितना भला हो ! दुःख है कि मेरी आँखें अब खुली हैं। परन्तु, मुरारी ! तुम मेरे अपराध को हल्का करने के लिए एक काम कर सकते हो ? अलीगढ़ में मेरी आधी सम्पत्ति से एक 'मातृ-मन्दिर' खोलना, जिसमें ऐसी माताओं तथा ऐसे शिशुओं की रक्षा की जा सके। करोगे, मुरारी ?"

"अवश्य चाचा ! इतना ही नहीं, मैं अपने अपराध को हल्का करने के लिए फूल से विवाह करूँगा और हम दोनों 'मातृ-मन्दिर' की सेवा में अपना जीवन लगा देंगे।"

"अब मैं शान्ति से मर सकूँगा। मुझे क्षमा करना फूल ! क्षमा करना, मुरारी !"

पाँच वर्ष बाद 'मातृ-मन्दिर' के निकटस्थ अपने बँगले में हम दोनों खिड़की के पास खड़े सामने वाले बाग़ में 'मन्दिर' के बालकों का खेल देख रहे थे। मुरारी बोला—"देखो न फूल ! बच्चों का खेल कितना प्यारा लगता है ! यदि 'मातृ-मन्दिर' न होता तो यह पचास बालक कहाँ होते ? या तो हरिद्वार के जल में या तीर्थ-स्थानों की मृत्तिका में या ईसाई तथा मुसलमानों की शरण में। जिस दिन प्रत्येक नगर में ऐसे आश्रम स्थापित हो जायँगे, उसी दिन मेरे जीवन का उद्देश्य सफल होगा।"

"यह तुम्हारे साहस तथा कर्मयोगिता का फल है।"

"नहीं, पगली ! यह तुम्हारी वीरता तथा स्वार्थ-त्याग का फल है।"

"सच पूछो तो यह गङ्गा जी का प्रभाव है। न हम उसके तट पर मिलते न यह दिन देखने को मिलता।"

"तो फिर गङ्गा जी पर चढ़ावा चढ़ाना चाहिए।"

"फूल-बताशे कहाँ हैं ?"

उसने अपनी जेब में से कुछ बताशे निकाल कर चबा लिए और बोला—"कहो, बताशे तो चढ़ा दिए ?"

"और फूल ?"

"और यह फूल" कह कर उसने मुझे अपने वक्ष-स्थल में छिपा लिया।

भेंट

[श्री० बद्रीनारायण शुक्ल]

(१)

गूँथ कर हृदय-पुष्प की माल,
पिरोया उसमें प्रेम-प्रवाल।
पाद-पद्मों पर तेरे डाल,
आज मैं दुखिनी हुई निहाल ॥

(२)

बेर शबरी के इसको मान,
सुदामा के वा तन्दुल जान।
करो स्वीकार इसे भगवान !
त्याग कर कठिन कष्ट का ध्यान ॥
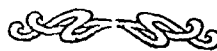
चोट पर चोट

सोने की चोट, दिल की औ पहलू की हाय चोट !
खाऊँ किधर की चोट, बचाऊँ किधर की चोट !!

वारन हेस्टिंग्ज़ और महाराज चेतसिंह

[पं० तेजनारायण काक 'क्रान्ति']

काशी के विद्रोह के कई वर्षों बाद जब हाउस ऑफ़ कॉमन्स में वारन हेस्टिंग्ज़ का मुक़दमा चल रहा था, तब उसके ऊपर शत्रुओं द्वारा लगाए गए बीस मुख्य अभियोगों में से "काशी के महाराज चेतसिंह के साथ किया गया नीच और घृणित व्यवहार" भी एक था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हेस्टिंग्ज़ के शत्रुओं ने, जिनमें बर्क, फॉक्स, शारिडान प्रभृति अनेकों दिग्गज वाग्मी थे, अपनी वाक्य-कुशलता द्वारा उसके छोटे से छोटे दोष को भी तिल का ताड़ बनाने में ज़रा भी कोर-कसर न रक्खी, पर केवल इसीलिए हम ग्लीग महाशय अथवा हेस्टिंग्ज़ के अन्य प्रशंसकों के इस कथन से कदापि सहमत नहीं हो सकते कि हेस्टिंग्ज़ का प्रत्येक कार्य न्याययुक्त था और उसने जो कुछ किया वह ठीक किया। क्या हेस्टिंग्ज़ के हित-विधायक मित्र विलियम पिट का महाराज चेतसिंह से सम्बन्ध रखने वाली घटना में उसे दोषी ठहराना इस बात का अकाट्य प्रमाण नहीं है कि उसके शत्रु ही नहीं, वरन् मित्र भी उसके दोषों को स्वीकार करते थे। हेस्टिंग्ज़ को निर्दोष सिद्ध करके उसकी प्रशंसा के व्यर्थ के पुल बाँधने को यदि पानी के ऊपर लकीर खींचने के समान निष्फल कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। दोष प्राणी मात्र से होते आए हैं और यदि हेस्टिंग्ज़ से भी कोई अपराध हो गया तो यह किसी सांसारिक नियम का अपवाद नहीं कहा जा सकता। अपराध तो वास्तव में उन सज्जनों का है, जिन्होंने जान-बूझ कर सच्ची बातों को झूठ तथा अप्रामाणिक सिद्ध करने में अपना बहुत सा अमूल्य समय व्यर्थ ही नष्ट किया है।

महाराज चेतसिंह सम्बन्धी घटना का संक्षिप्त ब्योरा इस प्रकार है। सम्राट औरङ्गज़ेब की मृत्यु के पश्चात मुग़ल साम्राज्य की नींव डाँवाडोल होने लगी। सारे देश में अराजकता फैल गई। फिर क्या था, जिसे देखिए वही अपनी मनमानी करने लगा। प्रत्येक सूबे का सूबेदार स्वतन्त्र बन बैठा। यहाँ तक कि देहली के आस-पास के कुछ भाग को छोड़ सारा देश मुग़लों के हाथ से निकल गया। ठीक इसी समय बनारस के राजा ने भी अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करवा दी। अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने बनारस को हस्तगत करने का यह अच्छा अवसर देखा। एक छोटा सा राज्य कब तक इतने बड़े सूबेदार का सामना करता? अन्त में बनारस के राजा को अवध के नवाब से हार माननी पड़ी और उसके अधीनस्थ होकर रहना पड़ा। विधाता की गति जानी नहीं जाती। अवध के नवाब को यह स्वप्न में भी ख़याल नहीं था कि जिस बनारस को उसने बड़ी लालसा से इतने रक्तपात के पश्चात विजय किया है वही अब उससे छीन लिया जायगा। और यही कौन जानता था कि अवध के कुत्सित शासन से निकल कर थोड़े ही समय में बनारस को एक विदेशी जाति का दासत्व स्वीकार करना पड़ेगा, एक गहरे गर्त से निकल उससे भी अधिक भयानक तथा अन्धकारमय कूप में गिरना पड़ेगा? किन्तु हुआ ऐसा ही। रुहिला युद्ध की समाप्ति होने के थोड़े ही समय उपरान्त शुजाउद्दौला की मृत्यु हो गई। उसके मरने पर उसके पुत्र आसफ़उद्दौला से जो नई सन्धि हुई उसके अनुसार बनारस अङ्गरेज़ों को मिला। इसी समय से बनारस के महाराज चेतसिंह को साढ़े बाईस लाख रुपया प्रति वर्ष कम्पनी को कर-स्वरूप देना पड़ता था। चेतसिंह ने कभी रुपया चुकाने में विलम्ब नहीं किया। कदाचित इसी के फलस्वरूप ज़ब सन् १७७८ में अङ्गरेज़ तथा फ्रान्सीसियों के बीच युद्ध छिड़ा तो वारन हेस्टिंग्ज़ ने बँधे हुए वार्षिक कर के अतिरिक्त युद्ध के व्यय के लिए महाराज से पाँच लाख रुपए और माँगे। इस आदेश का पत्र जिस समय बङ्गाल काउन्सिल के सामने रक्खा गया तो उसके मेम्बरों ने उसकी कड़ी भाषा की आलोचना करते हुए उसे कुछ विनम्र बनाने की इच्छा प्रगट की। वे चाहते थे कि पत्र में 'Demand' शब्द की जगह 'Request' रख दिया जाय। क्योंकि उनका

कहना था कि कर के अतिरिक्त चेतसिंह से और कुछ लेने का कम्पनी को कोई अधिकार नहीं है। वास्तव में बात भी ऐसी ही थी। परन्तु हेस्टिंग्ज़ यह सब कब मानने वाला था? उसके मतानुसार कम्पनी को जब चाहे जितना रुपया लेने का अधिकार प्राप्त था। अन्त में बहुत वाद-विवाद के बाद हेस्टिंग्ज़ ही की बात रही और वह पत्र ज्यों का त्यों महाराज चेतसिंह के पास भेज दिया गया। उत्तर में जब उन्होंने कहला भेजा कि रुपया उनसे केवल एक ही वर्ष के लिए लिया जावे तो उनकी इस "धृष्टता" पर चिढ़ कर हेस्टिंग्ज़ ने हुक्म दिया कि सब वर्षों का रुपया एक ही साथ चुकाना होगा। चेतसिंह बहुत घबराए और उन्होंने प्रार्थना-पत्र भेज कर हेस्टिंग्ज़ से रुपया चुकाने के लिए छः-सात महीने की मोहलत माँगी। पर अब हेस्टिंग्ज़ के क्रोध का वारापार नहीं रहा। भला उसे इतनी मानहानि कहाँ सहनीय थी? महाराज को उसी समय कहलाया गया कि या तो वे रुपया पाँच दिन के भीतर ही दे डालें, नहीं तो कम्पनी की ओर से समझ लिया जायगा कि वे ऐसा करने से इनकार करते हैं। फिर इसका क्या परिणाम निकले , यह वे भली भाँति विचार सकते हैं। अपनी प्रार्थना । कुछ फल न निकलते देख चेतसिंह ने किसी तरह स ; रुपया जुटा कर नियत समय के भीतर ही कम्पनी के हवाले कया।

सन् १७७९ में रुपए की माँग फिर दोहराई गई। अबकी बार चेतसिंह ने बड़ी नम्रता-सहित प्रार्थना की कि कम्पनी से उन्होंने जो सन्धि की थी उसके अनुसार कर के अतिरिक्त रुपया देने के लिए वे बाध्य नहीं हैं। हेस्टिंग्ज़ ने बिना कुछ सोचे-विचारे अङ्गरेज़ सेना को बनारस पर धावा बोल देने की आज्ञा दे दी। किन्तु चेतसिंह व्यर्थ का झगड़ा मोल लेना नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने पचास हज़ार पौण्ड दे दिए। हेस्टिंग्ज़ ने इतने पर भी उनका पीछा नहीं छोड़ा और उन पर धावा करने को जो सेना भेजी गई थी उसको किसी प्रकार की क्षति न पहुँचने पर भी उसके व्यय के लिए दण्डस्वरूप दो हज़ार पौण्ड और वसूल कर लिए। तीसरी बार फिर सन् १७८० में चेतसिंह से पाँच लाख रुपए माँगे गए। सीधी तरह प्राण न छुटते देख अबकी महाराज ने दूसरी युक्ति का आश्रय ग्रहण किया। उन्होंने हेस्टिंग्ज़ को बीस हज़ार पौण्ड घूँस में भेजे। कहते हैं पहिले तो उसने इन्हें लेने से इनकार किया, किन्तु पीछे न जाने क्या सोच कर ले लिया। इसी बात को उसके प्रतिद्वन्द्वी मुक़दमे के समय ले उड़े थे। बहुतों का मत है कि कम्पनी के कोषागार में टोटा आ जाने के कारण ही उसने यह रक़म लेना स्वीकार किया था और उसने उसे व्यय भी कम्पनी ही के ख़र्च में किया। किन्तु यदि उसकी अन्तरात्मा दोषी नहीं थी तो उसने इस मामले को, अपने काउन्सिल के मेम्बरों से ऐसा कह कर कि यह रुपया मैं कम्पनी को अपने पास से देता हूँ, पाँच महीने तक प्रगट क्यों नहीं होने दिया? सब से अधिक आश्चर्य की बात यह है कि डाइरेक्टरों तक को इसकी कानोंकान ख़बर न होने पाई। हमें तो अवश्य कुछ दाल में काला दिखाई देता है। मालूम होता है कि पहिले लालच में पड़ कर उसने रुपया स्वीकार कर लिया, पर फिर भेद खुल जाने के भय से ऊपर लिखा हुआ बहाना बना मामले को दबा दिया। वस्तुतः बात कुछ भी क्यों न हो, कम से कम हेस्टिंग्ज़ के लिए सब से सीधा मार्ग उपहार को अस्वीकार कर देना ही होता। केवल इतने ही पर बस न करके उसने वह पाँच लाख रुपया भी चेतसिंह से ले लिया और साथ ही दस हज़ार पौण्ड जुर्माने के तौर पर भी लिया। हेस्टिंग्ज़ भली भाँति जानता था कि चेतसिंह ने बीस हज़ार पौण्ड इसीलिए दिए हैं कि उनसे पाँच लाख रुपया न लिया जाय। इतना जानते हुए भी जब उसने चेतसिंह के साथ छल तथा कौशल से काम लिया तो हम दावे के साथ कह सकते हैं कि सन् १७८३ में सिलेक्ट कमिटी की रिपोर्ट में इस मामले के प्रति जो कुछ लिखा था वह अक्षरशः सत्य है। पाठकों के मनोरञ्जनार्थ हम उसे यहाँ उद्धृत करते हैं:—

"The complication of cruelty and fraud in this transaction admits of few parallels. Mr. Hastings....displays himself as a zealous servant of the company, bountifully giving from his own fortune ......on the credit of supplies, derived from the gift of a man whom he treats with the utmost severity and whom he accuses in this particular of disaffection to the company's cause and interests.

With £. 23,000 of the raja's money in his pocket, he persecutes him to his destruction."*

इस विषय में अधिक टीका-टिप्पणी करना व्यर्थ है।

इतना सब कुछ हो जाने पर भी हेस्टिंग्ज़ को शान्ति नहीं मिली। थोड़े ही समय पहिले दक्षिण के युद्धों में कम्पनी का बहुत रुपया चुक गया था। यदि रुपया नहीं मिलता तो दिवाला निकल जाने का भय था। गवर्नर हेस्टिंग्ज़ ने सोचा चेतसिंह हाथ में है ही, इसीसे रुपया ऐंठना चाहिए। इससे अच्छा असामी और कहाँ मिल सकता है? उसने तुरन्त एक उपाय खोज निकाला। चेतसिंह को कहलाया गया कि वह दो हज़ार घुड़सवार फ़ौज अङ्गरेज़ों को अपने पास से दे। हेस्टिंग्ज़ ने सोचा था कि जब महाराज तङ्ग आ जावेंगे और ऐसा करने से इनकार करेंगे तो वह तुरन्त उन्हें आज्ञाभङ्ग करने के अपराध में फाँस कर रुपया देने पर बाध्य करेगा और यदि ऐसा न हो सका तो अवध के हाथों बनारस फिर से बेच दिया जायगा। किन्तु यहाँ तो बात ही उलटी पड़ गई। महाराज ने बड़ी कठिनाई से एक हज़ार फ़ौज इकट्ठी करके कहला भेजा कि वह बङ्गाल सरकार का हुक्म मानने को प्रस्तुत हैं। हेस्टिंग्ज़ ने किसी तरह दाल गलती न देख चुप्पी साध ली, मानो उसे यह ख़बर मिली ही नहीं, क्योंकि उसे तो महाराज से पचास हज़ार पौण्ड दण्ड में लेने थे। उसने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है। वह लिखता है :—

"I resolved to draw from his guilt the means of relief to the company's distress—to make him pay largely for his pardon, or to exact severe vengeance for past delinquency."†

उसने यह भी स्वयं ही लिखा है कि उसकी ओर से चेतसिंह को कोई उत्तर नहीं दिया गया था।‡

इतनी दूर से काम न बनता देख वारन हेस्टिंग्ज़ ने बनारस जाना ही स्थिर किया। वह जुलाई में कलकत्ते से रवाना हो गया। महाराज चेतसिंह उसकी अगवानी के लिए ६० मील चल कर बक्सर आए और बहुत आदर-सत्कार के साथ उसे काशी लिवा ले गए। यहाँ तक सुनने में आता है कि उन्होंने स्वयं अपनी पगड़ी उसके पैरों में रक्खी थी। बनारस आने पर हेस्टिंग्ज़ ने महाराज से मुलाक़ात करने से इनकार किया और केवल अपनी शर्तें लिख कर उनके पास भिजवा दीं। उसी पत्र में उन पर आज्ञा-उल्लङ्घन और कर देने में आनाकानी करने के दोष भी लगाए गए थे। चेतसिंह ने बड़ी नम्रता से अपने ऊपर लगाए गए झूठे आक्षेपों का उत्तर लिख भेजा। पर हेस्टिंग्ज़ तो रुपया लेने पर तुला हुआ था। वह इन सब बातों को कैसे मानता। उसने महाराज के पत्र को झूठा तथा अपमानसूचक बतला कर उन्हें तुरन्त गिरफ़्तार कर लिया और उनके पहरे पर दो पल्टनें नियुक्त करवा दीं।

संसार का यह नियम है कि जब कोई वस्तु, चाहे वह कितनी ही तुच्छ क्यों न हो, बहुत दबाई जाती है, सीमा से अधिक दबाई जाती है, तब कभी न कभी उसका प्रतिघात अवश्य होता है। बनारस की प्रजा इतने दिन से ख़ून का घूँट पिए अपने राजा पर अङ्गरेज़ सरकार द्वारा किए गए अत्याचारों को चुपचाप देख रही थी। पर अब उसका क्रोध असह्य हो गया। वह भीषण ज्वालामुखी की भाँति भड़क उठा। क्या वह अपनी आँखों के सामने अपने प्यारे देव-तुल्य राजा को एक विदेशी गवर्नर द्वारा पददलित होते देख सकती थी? कदापि नहीं। शहर में भयानक बलवा मच गया, भीषण मार-काट जारी हो गई। असंख्य अङ्गरेज़ सिपाही क़त्ल कर दिए गए और बचे-खुचों ने भाग कर अपने प्राणों की रक्षा की। पर ऐसे भयङ्कर समय में वारन हेस्टिंग्ज़ ज़रा भी विचलित नहीं हुआ। इसे यदि उसका मानसिक स्थैर्य न कहें तो और क्या? अनेक दुर्गुण होने पर भी उसमें एक बड़ा भारी गुण था। वह था यही उसका मानसिक स्थैर्य। इसी के प्रताप से उसने अनेकों कठिनाइयों का सामना करते हुए भी बड़ी योग्यता से इतने उत्तरदायित्वपूर्ण पद का कार्य भली भाँति सञ्चालन किया। उसने प्रति दिन की भाँति ही, मानो कुछ हुआ ही नहीं था, दो पत्र लिखे। उनमें से एक तो उसकी स्त्री के नाम था, जिसमें

* *Reports of the House of Commons, Vol. VI, p. 582.*

† Macaulay's *Warren Hastings*, (Ward Lock), *p. 98.*

‡ See His Narrative of the Insurrection which happened in the Zemeendary of Benares.

उसने उसे लिखा था कि वह ख़ूब सुरक्षित है, और दूसरा कम्पनी के नाम, जिसमें उन्हें बनारस सहायक सेना भेजने का आदेश किया गया था। अब कठिनाई यह थी कि पत्र लेकर जावे कौन, चारों ओर तो चेतसिंह की सेना ने घेर रक्खा था। अन्त में यह निश्चित हुआ कि कुछ स्वामिभक्त हिन्दू सिपाहियों के कानों के छिद्रों में, जो कि प्रायः बहुत बड़े हुआ करते थे और जिनमें बड़े-बड़े सोने के छल्ले पहिने जाते थे, वह पत्र लपेट कर डाल दिए जावें और फिर उन्हें भेज दिया जावे। इसमें सन्देह होने की कोई गुञ्जाइश भी नहीं थी, क्योंकि बहुधा यात्रा के समय लुट जाने के भय से लोग छल्ले उतार कर उनके स्थान में काग़ज़ अथवा और कोई चीज़ डाल लिया करते थे, ताकि कान बन्द न हो जावें। अस्तु, जिस किसी तरह दोनों पत्र निश्चित स्थान पर पहुँचा दिए गए।

इसी बीच में समय पाकर चेतसिंह निकल भागे। उन्होंने एक बार फिर हेस्टिंग्ज़ से सन्धि करने का प्रस्ताव किया, लेकिन उसने उसे अस्वीकार कर दिया। इधर एक नई घटना और घटी। एक नासमझ अङ्गरेज़ युवक ऑफ़िसर ने महाराज चेतसिंह के पड़ाव पर आक्रमण कर दिया। उसका ऐसा करना था कि सारी प्रजा उसकी सेना पर टूट पड़ी और उसे छिन्न-विच्छिन्न कर दिया। अवध की प्रजा नवाब के शिथिल शासन से अत्यन्त अप्रसन्न थी ही, उसे जब काशी के विद्रोह के समाचार मिले तो उसने भी नवाब के विरुद्ध कर देने की बग़ावत शुरू कर दी। पर अब तक हेस्टिंग्ज़ के गुप्तादेशानुसार अङ्गरेज़ों की एक बड़ी भारी सेना काशी में आ पहुँची थी। उसने शीघ्र ही विद्रोहियों का दमन करके वहाँ फिर से शान्ति स्थापित कर दी। महाराज चेतसिंह पर बग़ावत खड़ी करने तथा कृतघ्नता का दोष लगा कर उन्हें ग्वालियर भेज दिया गया। गद्दी का अधिकारी उनका भतीजा बनाया गया और उसके साथ जो नई सन्धि हुई उसके अनुसार बनारस को साढ़े बाईस लाख से बढ़ा कर चालीस लाख रुपया बङ्गाल सर्कार को कर में देने का तय पाया।

यही संक्षेप में काशी के विद्रोह की दुःखद कहानी है। समस्त कथा को पढ़ जाने पर हमारे समक्ष तीन प्रश्न

काशी-नरेश महाराजा चेतसिंह

उपस्थित होते हैं, जिन पर हमें पृथक-पृथक सुचारु रूप से विचार करना होगा। प्रथम तो यह कि कर के अतिरिक्त हेस्टिंग्ज़ को चेतसिंह से रुपया लेने का अधिकार था अथवा नहीं? दूसरे जब चेतसिंह ने हेस्टिंग्ज़ की प्रत्येक माँग की पूर्ति कर दी तो उन्हें क़ैद क्यों किया गया?

हमारा अन्तिम प्रश्न ।इस बात का विवेचन करना होगा कि हेस्टिंग्ज़ का यह कार्य कहाँ तक सराहनीय कहा जा सकता है ?

यह विषय बड़ा विवादग्रस्त है कि महाराज चेतसिंह से बङ्गाल सरकार का वास्तविक सम्बन्ध क्या था। कुछ लोगों के कथनानुसार तो चेतसिंह कम्पनी के आश्रित एक साधारण ज़मीन्दार थे और समय पर धन तथा जन से कम्पनी की सहायता करना उनका कर्तव्य था। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इस बात से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि चेतसिंह एक स्वतन्त्र राज्य के अधिकारी थे और वारन हेस्टिंग्ज़ को उनसे कर के अतिरिक्त और कुछ लेने का कोई अधिकार नहीं था। हमें दोनों ही पक्ष के कथन ठीक नहीं जँचते। वास्तव में बात कुछ और ही थी। हम ऊपर लख आए हैं कि उस समय भारत की राजनैतिक स्थिति बहुत ही अस्थिर थी। मुग़ल साम्राज्य का ह्रास हो चुका था और चारों ओर अशान्ति तथा अराजकता की आँधी सी चल रही थी। ऐसे समय में, जबकि क़ायदे और क़ानून का अस्तित्व ही नहीं हो सकता, धूर्त और कपटी लोगों की ख़ूब बन आई थी और वे अपनी मनमानी कर रहे थे। यह बात हेस्टिंग्ज़ की पैनी दृष्टि से छिपी न रह सकी। अपना कार्य साधन करना ही उसका एक मात्र ध्येय था। चाहे उसके लिए कितनी ही धूर्तता अथवा कूटनीतिज्ञता से काम क्यों न लेना पड़े, कितने ही अकाण्ड-ताण्डव क्यों न करने पड़ें, इसकी उसे ज़रा भी परवा न थी। उसने तुरन्त अपना पथ निश्चित कर लिया। जब कभी कम्पनी को यह सिद्ध करने की आवश्यकता होती कि बङ्गाल से कर लेने का उन्हें अधिकार है, तो तुरन्त मुग़ल सम्राट की मुहर की हुई फ़र्मान दिखा दी जाती। पर इस फ़र्मान को देने वाला नाम मात्र का सम्राट अन्धा शाहआलम था, यह नहीं बतलाया जाता था। उस समय वह भारत के शाहन्शाह दिल्लीश्वर सम्राट शाहआलम हो जाते थे। परन्तु जहाँ बादशाह ने बङ्गाल से कर लेने का अधिकार प्रगट किया कि उसे तुरन्त एक नाम मात्र का सम्राट बता कर दुत्कार दिया जाता। कहने का तात्पर्य यह है कि चेतसिंह न तो ज़मीन्दार ही कहे जा सकते हैं और न स्वतन्त्र राजा ही। वास्तव में वह थे केवल वारन हेस्टिंग्ज़ के हाथ का एक [illegible]न। यही कारण था कि उसने जब जैसा चाहा वैसा ही महाराज चेतसिंह से कराया। ज़मीन्दार बना कर उनसे रुपया वसूल किया और स्वतन्त्र राजा कह कर उन्हें अपनी ओर मिलाए रक्खा। किन्तु हम इसमें हेस्टिंग्ज़ का कोई बड़ा भारी दोष नहीं समझते, क्योंकि उस समय का यह एक साधारण नियम सा हो गया था। हाँ, इतना तो अवश्य कहना ही होगा कि अङ्गरेज़ी सभ्यता के "आदर्श सिद्धान्तों" की दृष्टि से उसका यह कार्य निन्दनीय था।

चेतसिंह ज़मीन्दार थे अथवा स्वतन्त्र राजा, इससे हमें कोई विशेष मतलब नहीं। निर्णय केवल इसी बात का करना है कि क्या कम्पनी ने उनसे कभी कोई ऐसी सन्धि की थी जिसके द्वारा यह सिद्ध हो जाय कि वार्षिक कर के अतिरिक्त उसे और कुछ भी लेने का अधिकार था। यदि यह सत्य है तब तो हेस्टिंग्ज़ का कोई दोष नहीं कहा जा सकता, किन्तु अगर ऐसी कोई सन्धि नहीं हुई थी तो फिर निस्सन्देह वह दोषी ठहरता है। पाश्चात्य इतिहासकार विलसन साहब लिखते हैं कि इस आदेश की कोई सन्धि नहीं हुई थी, केवल बङ्गाल कौन्सिल ने एक ऐसा प्रस्ताव पास किया था जो कि सन्धि के रूप में परिणत नहीं हुआ। उनका यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि यथार्थ में पाँच जुलाई सन् १७७५ को हेस्टिंग्ज़ और चेतसिंह के बीच जो सनद लिखी गई थी उसमें लिखा था :—

"While he (Chait Singh) paid his contribution, no demand shall be made upon him by the Hon'ble. Company, of any kind, or on any pretence whatsoever, nor shall any person be allowed to interfere with his authority, or to disturb the peace of his country."*

सनद के उपरोक्त उद्धृत अंश से साफ़ प्रगट होता है कि हेस्टिंग्ज़ ने महाराज से वादा किया था कि कर के अतिरिक्त वह उनसे और कुछ नहीं माँगेगा और न किसी को उनके राज्य सम्बन्धी आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का ही अधिकार होगा। अब प्रश्न यह उठ सकता है कि वारन हेस्टिंग्ज़ ने ऐसी सन्धि की ही क्यों, जबकि

* *Selections from the Letters, Despatches and other State Papers in the Foreign Dept. of the Govt. of India 1772-85.* G. W. Forrest, *Vol. ii, p. 402.*

वह एक सर्वोच्च शासक (Paramount Power) की हैसियत में चाहे जैसी सनद महाराज से लिखा सकता था ? इसका उत्तर वह स्वयं इस प्रकार देता है :—

" Without some such an arrangement, Chait Singh will expect from every change of government, additional demands to be made upon him, and will of-course descend to all the arts of intrigue and concealment practised by other dependent Rajas."*

अब यह तो स्पष्ट सिद्ध हो गया कि ऐसी कोई शर्त सन्धि में अवश्य थी। आगे चल कर अपने ब्रिटिश भारत के इतिहास में, जिल्द ४, पृष्ठ २९६ पर विलसन साहब ने लिखा है कि सन् १७७६ में जो सनद चेतसिंह के साथ की गई थी उसमें ऐसी कोई शर्त नहीं थी, और चूँकि इस सनद द्वारा पिछली सब सनदें रद्द हो गई थीं, इसलिए रुपया लेने के मामले में सन् १७७५ के प्रस्ताव की (जोकि वास्तव में सनद ही थी, जैसा कि ऊपर सिद्ध किया जा चुका है) दोहाई देना अत्यन्त अनुचित है। पर शायद विलसन सहब को यह नहीं मालूम था कि सन् १७७६ की सनद का वह अंश, जिसके द्वारा वह सन् १७७५ की सनद का रद्द होना बतलाते हैं, चेतसिंह के ही कहने-सुनने पर, कुछ ही समय बाद, स्वयं वारन हेस्टिंग्ज़ और उसकी कौन्सिल के मेम्बरों द्वारा निकाल दिया गया था और उसमें भी सन् १७७५ की सनद का यह अंश ज्यों का त्यों बना रहा †। अतः सन् १७७५ की शर्तों पर सन् १७७६ की सनद का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सब बातों पर ध्यान देने से यही निष्कर्ष निकलता है कि कर के अतिरिक्त हेस्टिंग्ज़ को चेतसिंह से एक फूटी कौड़ी लेने का भी अधिकार नहीं था। हाँ, यह बात दूसरी है कि सन्धि को हम एक रद्दी काग़ज़ का टुकड़ा ही समझें, जैसा कि आजकल की सभ्य जातियों का सिद्धान्त सा हो रहा है।

भारत के पाश्चात्य इतिहासकारों के मत से चेतसिंह पर हेस्टिंग्ज़ द्वारा किए गए अत्याचार, अत्याचार नहीं कहला सकते। वे तो केवल समयोचित कर्त्तव्य की पूर्त्ति के साधन मात्र थे। हेस्टिंग्ज़ की सी दशा में होने पर प्रत्येक मुख्य सरकार, चाहे वह भारतीय हो अथवा विजातीय, ऐसा ही करती। सेन्ट्रल गवर्नमेण्ट भी तो कोई अधिकार रखती है। जब समस्त साम्राज्य पर सङ्कट पड़ता है, उस समय स्थानीय प्रान्तों की सुख-शान्ति पर ध्यान नहीं दिया जा सकता, वरन् आवश्यकता पड़ने पर उनका बलिदान तक करना होता है। क्योंकि स्थानीय प्रान्तों की सुख-शान्ति भी तो मुख्य सरकार ही पर आश्रित है। जहाँ मुख्य सरकार का शासन शिथिल हुआ कि उसे शत्रुओं ने आ दबाया। उसी समय स्थानीय सरकारों के भाग्य का निबटारा भी हो जाता है। उन्हें परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़े रह कर नर्क की यन्त्रणा भोगनी पड़ती है। वह समय ऐसा ही था। मैसूर के नवाब हैदरअली और मरहठों से कम्पनी के नौकर से लगा कर मुख्य अफ़सर तक सदा चौकन्ने रहते थे। न जाने वे कब चढ़ आवें, यही ध्यान उन्हें आठों पहर सताया करता था। ऐसे समय में सेना की सुव्यवस्था के लिए रुपया न रहा तो दो-दो बलिष्ट शत्रुओं के सम्मुख वह कर ही क्या सकती थी ? इन्हीं सब कारणों से प्रेरित होकर यदि हेस्टिंग्ज़ ने चेतसिंह से येन-केन-प्रकारेण रुपया वसूल करने का प्रयत्न किया तो इसमें उसका दोष ही क्या था ? क्या कम्पनी के पैर उखाड़ डालने के बाद किसी दिन बनारस पर भी हैदरअली न आ धमकता ? प्रायः इसी प्रकार की युक्तियों द्वारा पाश्चात्य इतिहासकार हेस्टिंग्ज़ के पक्ष का समर्थन किया करते हैं। किन्तु हमें तो यह देखना ही होगा कि उनकी इन युक्तियों में कितना तथ्य है, कहाँ तक बल है।

थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि हेस्टिंग्ज़ ने जो कुछ किया, समय की प्रतिकूलता के कारण ही किया, तो भी नैतिक दृष्टि से उसका यह कार्य कदापि समीचीन नहीं कहा जा सकता। क्या एक बलवान मनुष्य का अपने दुर्बल पड़ोसी के प्रति ऐसा ही कर्त्तव्य है ? क्या महात्मा ईसा के इस उपदेश का कि "Do unto your neigh bour as you would that he should do unto you," एक भी अक्षर सत्य तथा सर्वमान्य नहीं ? और

---

* *Reports from Committees of the House of Commons. Vol. V. pp. 618-19.*

† *Selections from the Letters, Despatches and other State Papers in the Foreign Dept. of the Govt. of India.* G. W. Forrest, *Vol ii, pp 512, 549, 557*

क्या इसी सिद्धान्त का अनुसरण करने के लिए गत महायुद्ध में समस्त सभ्य संसार ने भाग नहीं लिया था? लोग कहेंगे, इस समय और उस समय में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। आज समाज सभ्यता के सर्वोत्कृष्ट आसन पर विराजमान है। इस समय से उस समय की तुलना कैसी? पर मैं कहता हूँ कि महात्मा ईसा का वह वाक्य आज की ही भाँति उस समय भी समस्त संसार में शान्ति तथा आनन्द की अविरल धारा प्रवाहित करता हुआ विश्वमैत्री के पथ पर अग्रसर हो रहा था। यदि कुछ थोड़े से क्षुद्राशयों ने उसका स्वाद नहीं चक्खा, उसमें एक बार गोता नहीं लगाया, तो इससे बनता-बिगड़ता ही क्या है? उस समय भी नैतिक विचार (Morality) का आसन इतना ही ऊँचा था, जितना कि वह आज है।

केवल इतना ही नहीं। हेस्टिंग्ज़ के रुपया लेने की विधि भी गर्ह्य थी। जब सन्धि द्वारा ऐसी कोई शर्त न होने पर भी चेतसिंह बराबर उसकी इच्छानुसार उसे रुपया देते गए, उसका आदर करते गए, उसका हुक्म मानते गए, तब भी उन पर कृतघ्नता का झूठा दोष लगा कर उन्हें गद्दी से उतार देना हेस्टिंग्ज़ की वीभत्स स्वेच्छाचारिता के अतिरिक्त और कहा ही क्या जा सकता है। यदि बनारस के महाराज का यह कर्त्तव्य बतलाया जाता है कि वे अङ्गरेज़ सरकार की प्रत्येक आज्ञा का बिना जीभ हिलाए पालन करते, तो क्या प्रत्युत्तर में यह नहीं कहा जा सकता कि बनारस की प्रजा के सुख-शान्ति का प्रयत्न करना अङ्गरेज़ सरकार का कर्त्तव्य भी था? इतिहास साक्षी है कि उसने ठीक इसका उल्टा किया। एक सर्वमान्य राजा को गद्दी से हटा कर एक निपट निकम्मे राजा को उसने उसकी जगह स्थापित किया। अधिक लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। वारन हेस्टिंग्ज़ के ये शब्द स्वयं उसे सबकी दृष्टि में दोषी ठहराते हैं। सन् १७७५ में बनारस जाने पर उसने लिखा था—"The province of Chait Singh is as rich and well-cultivated a territory as any district, perhaps, of the same extent in India." किन्तु वही सन् १७८४ में बनारस के विषय में लिखता है—"I was followed and fatigued by the clamours of the discontented inhabitants and the cause of their dissatisfaction existed principally in a defective, if not corrupt and oppressive, administration."* पर इस सब से क्या? यहाँ कर्त्तव्याकर्त्तव्य की तो चर्चा ही नहीं चलाई जा सकती। इस जगह तो 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत ही ठीक चरितार्थ होती है।

* *Selections from the Letters Despatches, etc.* G. W. Forrest, *Vol. iii, p. 1082.*

दहेज

[श्री० रामावतार शुक्ल]

केते घरबारी कुल होत हैं भिखारी, और—
दम्पति-दुलारी केती क्वाँरी बिललाती हैं!
केतिक गुनागरी औ' परम सुशीला नारी,
निपट अनारिन के पाले परि जाती हैं!

जन्म भरि सेतीं केती विषम विधव-दुख,
ऊरध उसासि लै लै जीवन बिताती हैं!
परि जातीं केती 'ठहरौनो' के कुचक्र बीच,
'दायज' दवागि परि केती जरि जाती हैं!

संसार की वायु-विजयिनी वीरांगनाएँ

[श्री० रतनलाल मालवीय, बी० ए०]

युयान चलाने में स्त्रियों की अभूतपूर्व सफलता के सैकड़ों उदाहरण देख कर उन लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहता होगा जो स्त्री जाति को अबला, पराधीन और निर्बल कहा करते हैं। भारत में तो अब भी नब्बे प्रतिशत लोग ऐसे हैं जो स्त्रियों को सन्तान जनने की मशीन, खाना पकाने वाली भठियारिन और पुरुषों की सेवा करने वाली लौंडी से अधिक कुछ समझते ही नहीं। पाखण्डियों के ढकोसलों ने और भारतीय समाज के वर्तमान विषाक्त वातावरण ने स्त्रियों को इतना अपाहिज और निस्सहाय बना दिया है कि बीसवीं सदी के इस स्वतन्त्र वायुमण्डल में भी वे बिना रक्षक के घर के बाहर पैर नहीं रख सकतीं, चाहे उनका रक्षक आठ-दस बरस का एक छोटा बालक ही क्यों न हो।

हमारी ये बहिनें, जिन्हें अपने अस्तित्व का, अपने भयङ्कर पतन का ही ज्ञान नहीं, संसार की महिलाओं की अद्भुत प्रगति का हाल क्या जानें? पाश्चात्य स्त्रियों को पुरुषों की ही नाईं स्वतन्त्रता और उन्नति के पूर्ण साधन प्राप्त हैं और यह उसी का परिणाम है कि पाश्चात्य स्त्रियाँ किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं हैं।

वैज्ञानिक आविष्कारों में वायुयानों का आविष्कार बिलकुल नया है। साथ ही उसमें मनुष्य के कौतूहल की शान्ति के लिए सैकड़ों सुअवसर और पराक्रम दिखाने के हज़ारों साधन मौजूद हैं। यही कारण है कि पुरुषों की तरह स्त्रियों का भी ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ है। और थोड़े ही समय में उन्होंने आशातीत सफलता प्राप्त कर ली है। मैं इस प्रबन्ध में संसार की कुछ ऐसी ही वीर महिलाओं की कर्म-गाथा का उल्लेख करूँगा। भारतीय स्त्रियों में यदि हृदय है तो उन्हें विचार और अपने सुधार की बहुत सी सामग्री इसमें मिल जायगी। यद्यपि वायुयानों के आविष्कार का श्रेय

इङ्गलैण्ड

को प्राप्त नहीं है तो भी उसने अपने जिन गुणों से संसार के पञ्चमांश पर अपना साम्राज्य स्थापित कर रक्खा है, उन्हीं के द्वारा वह इस क्षेत्र में भी संसार में सर्व-श्रेष्ठ हो गया है। उसके वीर और पराक्रमी नर-नारियों ने ही उसे यह गौरव प्रदान किया है। एमी जॉन्सन नाम की बाइस वर्ष की कुमारी ने वायुयान पर जो अद्भुत पराक्रम दिखलाया है उसकी वीरगाथा सुने छः मास से अधिक व्यतीत न हुए होंगे; उसकी वीरमूर्ति संसार अभी तक भूला नहीं है। कौन जानता था कि लन्दन के एक ऑफ़िस में टाइपिस्ट का कार्य करके अपनी जीविका उपार्जन करने वाली 'अबला' अकेली लन्दन से ऑस्ट्रेलिया तेरह हज़ार मील उड़ जायगी? यदि हम इस निर्बल और निर्धन लड़की को आश्चर्यजनक कहें तो अत्युक्ति न होगी। वह साधन-हीन थी, किसी का उसे सहारा न था, सहारा था केवल अपनी लगन और अन्तःकरण की प्रेरणा का। जिस दिन उसने हवाई शिक्षा का स्कूल देखा था उसी दिन उसके हृदय में वायुयान-सञ्चालन की कला सीखने की दृढ़ आकांक्षा उत्पन्न हो गई थी और साथ ही उत्पन्न हुई थी, स्कूल में प्रवेश करते ही, अपनी कला से संसार को चकित और मुग्ध कर देने की प्रबल इच्छा।

एमी ने इङ्गलैण्ड से ऑस्ट्रेलिया तक उड़ कर अपनी महत्वाकांक्षा पूरी कर ली। उसने संसार को चौंधिया दिया और संसार आँखें मल-मल कर उसे देखने लगा। परन्तु क्या संसार के लोगों ने कभी यह जानने की भी इच्छा की कि एमी को यह सफलता कितनी कठिनाइयाँ और आपत्तियाँ झेलने के बाद मिली? सितम्बर सन् १९२८ में जिस समय उसे स्टेगलेन एयरोड्रोम में जाने से यह ज्ञात हुआ कि वह उस क्लब में कम ख़र्च में भर्ती हो सकती थी, उस समय वह वायुयान का क, ख, ग तक नहीं जानती थी। क्लब में प्रतिदिन एक घण्टे वायुयान की शिक्षा की फ़ीस पन्द्रह दिन के लिए एक

पौण्ड थी। एमी ने अपनी तनख़्वाह में से प्रति सप्ताह क्लब की फ़ीस के दस शिलिङ्ग बचाने के लिए अपने तैरने, टेनिस और नाच-रङ्गादि सबको तिलाञ्जलि दे दी।

संसार की सर्वश्रेष्ठ उड़ाकू महिला

मिस एमी जॉन्सन

उसी क्षण से उसने दुहरा जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। दिन में ६ बजे से ५ वजे तक वह उन अगणित मिस जॉन्सनों में रहती थी जो लन्दन के धुँधले ऑफ़िसों को प्रकाशमान किया करती हैं और जिनमें उसकी कोई गणना न थी; और ६ वजे से ६ वजे तक प्रातःकाल में और ५ वजे सन्ध्या से अर्धरात्रि तक वह पुरुष-वेश में सिर से पैर तक एञ्जिन के तेल से लथ-पथ वायुयान की शिक्षा पाने में दत्तचित्त रहती थी। जिन लोगों ने उसे इस रूप में देखा है वे आसानी से पता लगा सकते थे कि उसका जीवन इन्हीं वायुयानों में से किसी एक को समर्पित होगा। ऐसा प्रतीत होता था कि इस कला में निपुणता प्राप्त करने के अतिरिक्त उसके जीवन का और कोई ध्येय ही नहीं है।

इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि इङ्गलैण्ड की स्त्रियों को स्वतन्त्रता बहुत अधिक है, परन्तु इतनी स्वतन्त्रता होने पर भी उन्हें उतने साधन नहीं हैं जितने पुरुषों को। स्त्रियाँ कितनी ही योग्य क्यों न हों, उन्हें आर्थिक क्षेत्र तथा अन्य क्षेत्रों में सफलता का उतना अवसर नहीं है जितना पुरुषों को है। एमी इस भेद-भाव से बहुत जलती थी। इस सम्बन्ध में उसने एक बार अपने क्लब के एक साथी से कहा था—"क्या तुमने कभी मेरी कठिनाइयों का अनुभव किया है? क्या तुमने कभी लिङ्ग-भेद की उन रूढ़ियों का अनुभव किया है जिनके विरुद्ध मैं बग़ावत करने खड़ी हुई हूँ? मान लो हम

मिस एमी जॉन्सन यात्रा में

दोनों ने किसी उच्च पद के लिए दरख़्वास्त दी, तो क्या तुम समझते हो कि तुमसे पहिले मैं वह पद प्राप्त कर सकूँगी, यद्यपि तुम जानते हो कि हम दोनों के पास

एक ही लैसन्स होने पर भी मैं तुम्हें हवाई दौड़ में बुरी तरह पछाड़ सकती हूँ? यह लिङ्ग-भेद मेरी सफलता के मार्ग का सब से बड़ा रोड़ा है।" यही जलन थी जिसके कारण एमी ने पुरुष जाति को लज्जित और परास्त करने के लिए यह यात्रा प्रारम्भ की थी।

वायुयान की शिक्षा में लैसन्स प्राप्त करते ही उसने ऑस्ट्रेलिया उड़ने की ठान ली। परन्तु वही उपर्युक्त भेद-भाव यहाँ भी टाँग अड़ा कर खड़ा हो गया। बेचारी एमी जिससे सहायता माँगने गई उसीने उसे हतोत्साह करके वापस कर दिया। इसका रहस्य लोगों को अभी तक नहीं मालूम कि उड़ने के साधन उसे कैसे प्राप्त हुए। हम तो इतना ही जानते हैं कि वह एक पुरानी छोटी सी वायुयान 'जैसन' पर उड़ी थी। और इतनी तेज़ी से उड़ी थी कि उसने कैप्टेन हिङ्कलर को भी मात कर दिया। केवल लन्दन से भारत तक ५००० मील उड़ने में वह कैप्टेन हिङ्कलर से दो दिन आगे आ गई थी।

संसार की दुलारी एमी को इस विकट परीक्षा में इङ्गलैण्ड से भारत तक की यात्रा में कोई विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ा, परन्तु रङ्गून से डार्विन तक, जहाँ उसे ऑस्ट्रेलिया में उतरना था, उड़ने में उसे जिन-जिन भयानक और रोमाञ्चकारी आपत्तियों का सामना करना पड़ा है उनका हाल जान कर बड़े-बड़े साहसी वीरों का भी हृदय भय से थर्रा उठेगा।

बैङ्कॉक से सिङ्गोरा तक की अपनी यात्रा का वर्णन करते हुए एमी ने स्वयं लिखा है—"मुझे जब इस बात का ज्ञान हुआ कि मैंने समुद्र का किनारा छोड़ दिया है, जो मेरी यात्रा का मुख्य मार्ग है, और बाढ़ के कारण पानी से भरे हुए खेतों के ऊपर से उड़ रही हूँ तो मेरी निराशा का ठिकाना न रहा। इस समय मेरा मुख्य कार्य समुद्र का किनारा ढूँढ़ना था। परन्तु एक ओर मूसलाधार वर्षा और दूसरी ओर भयङ्कर तूफ़ान, दोनों में से कोई एक क्षण के लिए भी बन्द होने का नाम न लेता था। मैं पथ भूल कर कितने घण्टों तक भटकती रही, इसका मैं अनुमान नहीं लगा सकती। मैं जीवन से हाथ धो चुकी थी। मेरी आशा थी तो केवल मेरे पथ-प्रदर्शक यन्त्र और नक़शे तथा कम्पास पर थी। इन्हीं के सहारे मैं समुद्र का किनारा ढूँढ़ सकती थी। और समुद्र का किनारा ही मेरे जीवन का आधार था। जिस समय पानी बन्द हुआ या जिस समय मैं ही उसके पार निकल गई उस समय मैं सिङ्गोरा से केवल ५० मील की दूरी पर थी।"

हवाई जहाज़ों की दौड़ में इङ्गलैण्ड का मस्तक ऊँचा करने वाली मिस एमी जॉन्सन की पाँच प्रतिकृति

यही नहीं, इस भीषण यात्रा में एमी को कहीं १६,००० फ़ीट की ऊँचाई पर उड़ना पड़ा तो कहीं उसका वायुयान मीलों तक समुद्र की लहरों से केवल ६ फ़ीट की ऊँचाई पर उड़ता रहा था। न मालूम कौन सी लहर उछल कर उसे अपने अङ्क में छिपा लेती। एक बार तो ज़मीन पर उतरते समय उसकी 'मॉथ' (जो 'जैसन' का ही दूसरा नाम है) किसी अज्ञात खाई में जा गिरी थी और टक्कर से उसके पङ्खे चूर-चूर हो गए थे। इन विपत्तियों के झेलने के उपरान्त ही उसे ऑस्ट्रेलिया के समुद्र-तट के

दर्शन हुए थे। जब उसने पहिले पहिल समुद्र का किनारा देखा, तब वह 'ख़ुशी के मारे जहाज़ पर ही उछल पड़ी थी और पागल सी हो गई थी।' अन्त में जब वह कुशल-पूर्वक डार्विन पहुँच गई, जो उसकी यात्रा का अन्तिम लक्ष्य था, तब संसार ने सन्तोष की एक ठण्डी साँस ली।

ऑस्ट्रेलिया के लाखों दर्शकों ने उसे अपनी 'रानी' बना कर अपने मस्तक पर बिठाया। जब वह इङ्गलैण्ड वापस पहुँची, तब उसका जो सम्मान हुआ वह एक रानी के सम्मान से किसी प्रकार कम नहीं था। किसी समिति ने उसके स्वागत में भोज दिया, तो किसी दूसरी समिति

मिस एमी जॉन्सन के माता-पिता और बहिनें लन्दन में बैठे हुए टेलीफ़ोन द्वारा ऑस्ट्रेलिया में एमी से बातें कर रही हैं और उसकी अद्भुत सफलता के वर्णन सुन रही हैं।

ने मान-पत्र; एक कम्पनी ने उसे मोटरकार पुरस्कार में दी, तो दूसरी ने हज़ारों पौण्ड की थैली उस पर न्योछावर की। स्वयं सम्राट ने एमी को 'कमाण्डर ऑफ़ दी ब्रिटिश एम्पायर' की उपाधि से विभूषित किया है। इस उपाधि का सम्मान पुरुषों की 'नाइट' की उपाधि से कम नहीं है। संसार में आज शायद ही ऐसा कोई पत्र हो जिसने एमी की प्रशंसा के गीत न गाए हों। अब जब कभी इस 'निर्बल टाइपिस्ट' के विवाह की चर्चा उठती है तो सभी यही कहते हैं कि उसका पाणिग्रहण किसी लॉर्ड के साथ ही होना चाहिए। संसार एमी के जैसे पराक्रमों की आशा सन् २००० से पहिले न कर रहा था।

एमी जॉन्सन के पहले भी इङ्गलैण्ड की रमणियाँ अपनी अतुल शारीरिक और मानसिक शक्तियों का परिचय दे चुकी हैं। बेडफ़ोर्ड की डचेज़ ने लन्दन से केपटाउन उड़ कर और वहाँ से अल्पकाल में ही वापस आकर और लेडी हीथ ने अमेरिका उड़ कर संसार को चकित कर दिया है। इङ्गलैण्ड की इन वैभवशालिनी और सम्माननीय स्त्रियों के उदाहरण से क्या भारत के धनिक परिवारों की स्त्रियाँ कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगी?

कुछ ही समय पहले की बात है, इङ्गलैण्ड के चारों

मिस विनिफ़्रेड जॉयस ड्रिङ्कवाटर

यह सत्रह वर्षीया कुमारी संसार की सब से कम उम्र वाली एयर पाइलट है।

ओर हवाई जहाज़ों की दौड़ के लिए सम्राट ने जो 'कप' पुरस्कार स्वरूप देना निर्धारित किया था वह वहाँ की एक रमणी—कुमारी विनीफ़्रेड ब्राउन—ने पुरुष उड़ाकुओं को परास्त कर जीता था। इस दौड़ में ७२ पुरुष और ६ महिलाएँ सम्मिलित हुई थीं, उनमें से चार महिलाओं को प्रथम दस उड़ाकों में स्थान मिला था। वायु पर विजय प्राप्त करने में स्त्रियों ने जो सफलता प्राप्त की है उसका इससे बढ़ कर उज्ज्वल उदाहरण न मिलेगा। इङ्गलैण्ड को अपनी कुमारी स्पूनर के सम्बन्ध में तो यहाँ

तक दावा है कि उससे दक्ष स्त्री उड़ाका आज संसार में कोई है ही नहीं।

एमी ने पाश्चात्य देशों की स्त्रियों में क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। बहुत सी स्त्रियाँ तो एमी जैसे साहसपूर्ण कार्यों को करने के लिए छटपटाने सी लगी हैं। एमी की ही देखा-देखी अब इङ्गलैण्ड की मोटर-दौड़ में विजय प्राप्त करने वाली श्रीमती विक्टर ब्रूस ने भी इङ्गलैण्ड से

मिस स्पूनर

आपके लिए अङ्गरेज जाति का यह दावा है कि आपसे बढ़ कर दक्ष उड़ाका संसार में कोई है ही नहीं।

टोकियो (जापान) तक ११,००० मील १५ दिनों में उड़ने का विचार किया है। इस लेख के प्रकाशित होने के पहले ही शायद वह अपनी यात्रा पूरी भी कर चुकी रहेंगी। हवाई जहाज़ की केवल छः दिन की शिक्षा के बाद इतनी लम्बी यात्रा करना दुस्साहस नहीं तो क्या है? अब हम पाठकों को

अमेरिका

की कुछ वीराङ्गनाओं का परिचय देना चाहते हैं, जिन्होंने वायु पर विजय प्राप्त की है। लोग अभी भूले न होंगे, एक पच्चीस वर्षीय युवक चार्ल्स लिण्डवर्ग ने कई दिन और रात लगातार अकेले अमेरिका से पेरिस तक उड़ कर संसार को चकित कर दिया था। लिण्डवर्ग के इस अद्भुत पराक्रम से संसार भर की आँखें उस पर लग गईं। और अमेरिका की सहस्रों ऐश्वर्यशालिनी सुन्दरियों के हृदय उससे विवाह करने के लिए मचल उठे! परन्तु लिण्डवर्ग ने संसार के इस महा समृद्ध और सर्वाधिक वैभवपूर्ण देश के एक प्रशान्त भाग में जिस रमणी का पाणिग्रहण किया उसकी मनोवृत्ति लिण्डवर्ग के ही साँचे में ढली थी। श्रीमती लिण्डवर्ग अमेरिका की सर्वप्रथम महिला थीं, जिन्होंने हवाई उड़ान में सफलता प्राप्त कर लाइसेन्स लिया था। उनकी इस सफलता ने वहाँ की युवतियों में एक नई लालसा का सूत्रपात कर दिया है; वे वायु पर विजय प्राप्त करने में पुरुष से बाज़ी मारने के लिए उत्सुक हो गई हैं।

उनकी यह लालसा और उत्सुकता दिन प्रति दिन बढ़ती ही जाती है और उसका परिणाम यह हुआ है कि सैकड़ों क्लबों के अतिरिक्त, अमेरिका के हवाई शिक्षा के विशारद श्री० रोलेण्ड एच० स्पाउल्डिङ्ग के नेतृत्व में न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय में १० सितम्बर सन् १९२९ ई० से महिलाओं की हवाई शिक्षा के लिए एक अलग स्कूल की भी स्थापना हो गई है। इस स्कूल के सिवाय हाउस्टन, केन्सस और मिन्नियापोलिस आदि शहरों में भी स्त्रियों को हवाई शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया है।

अभी हाल ही में एक उड़ाकू स्त्री अपने देश के दक्षिणी भाग की सैर करने निकली थी। जिस समय वह देहात के एक मैदान में उतरी, वहाँ के गाँव की सैकड़ों युवतियों ने उसे घेर लिया और उनमें से प्रायः सभी ने हवाई जहाज़ में उड़ना सीखने की हार्दिक इच्छा प्रकट की। इस साधारण सी घटना से वहाँ की स्त्रियों की मनोवृत्ति का पता चलता है। दिन प्रति दिन इस क्षेत्र में स्त्रियों की

संख्या बढ़ रही है। अमेरिका के संयुक्त राज्य में २०३ महिलाएँ ऐसी हैं जिन्होंने इस साल के अगस्त माह के पहिले ही हवाई जहाज़ के लाइसेन्स प्राप्त कर लिए हैं।

ये महिलाएँ केवल अपने आनन्द के लिए, सैर-सपाटे के लिए, अथवा केवल पराक्रम दिखाने के लिए ही उड़ना नहीं सीखतीं। पाश्चात्य सभ्य देशों में पुरुषों की नाईं

अमेरिका की सर्वप्रथम उड़ाकू महिला
मिसेज़ चार्ल्स ए० लिण्डबर्ग
अपने पति से हवाई जहाज़ चलाना सीख रही हैं।

स्त्रियों में भी स्वावलम्बन की मात्रा बहुत अधिक है और वे हवाई जहाज़ को अपनी जीविका का साधन बनाना चाहती हैं। उनके लिए इस क्षेत्र में स्थान भी बहुत है। व्यापारिक विभागों में पाइलट (उड़ाकू) का काम, हवाई जहाज़ों को बेचने वाली कम्पनियों के अधीन जहाज़ और उनके पुर्ज़े बेचने का काम, हवाई जहाज़ सम्बन्धी साहित्य बेचने का काम तथा हवाई बन्दर के होटलों का काम करके और हवाई जहाज़ सम्बन्धी पत्रों की सम्पादिका बन कर तथा हवाई जहाज़ों के क्लबों में शिक्षिका बन कर बहुत सी स्त्रियाँ जीविका कमा सकती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हवाई जहाज़ों का आविष्कार अभी नया है। इसी कारण अमेरिका की स्त्रियाँ हवाई जहाज़ सम्बन्धी ऊँचे पदों पर काम करने का स्वप्न देखा करती हैं। और आए दिन वे अपने पराक्रमों में एक दूसरे से बाज़ी मार ले जाने का प्रयास करती हैं। वहाँ ऐसी महिलाओं की कमी नहीं है जो वायुयान से हज़ारों मील की यात्रा करती हैं और वायु में वायुयान से बड़े-बड़े आश्चर्यजनक खेल खेलती हैं। वह दिन भी दूर नहीं जब वायुयान उनकी मामूली खिलवाड़ की चीज़ हो जायगा।

इङ्गलैण्ड और अमेरिका की भाँति फ़्रान्स, जर्मनी,
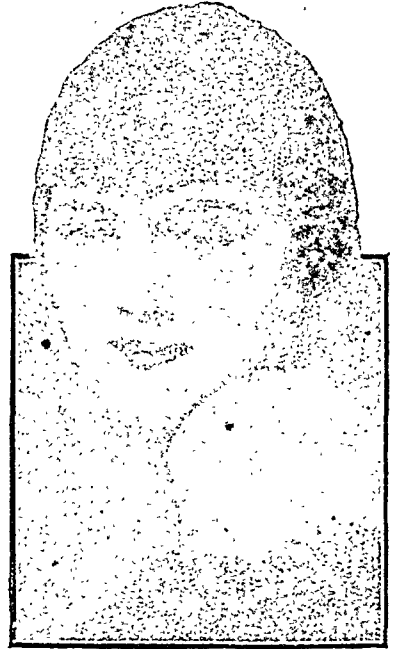
जर्मनी की सब से प्रसिद्ध उड़ाकू लड़की
फ़्रॉलीन जेनी लिण्ड
एक उड़ान में जर्मनी की राजधानी बर्लिन से केपटाउन जाने की तैयारी कर रही है।

इटली आदि देशों में भी ऐसी स्त्रियों की कमी नहीं है, जिन्होंने वायु पर विजय प्राप्त करने में अद्भुत पराक्रम दिखाया है। संसार की वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति में

जर्मनी

का ख़ासा हाथ है। विशेषकर कल-पुर्ज़ों और मशीनों के काम में वह सर्व-श्रेष्ठ माना जाता है। वायुयानों की उन्नति में भी वहाँ के स्त्री-पुरुषों का भाग महत्वपूर्ण है। वहाँ की स्त्रियाँ किसी क्षेत्र में अन्य सभ्य देशों की स्त्रियों से पीछे नहीं हैं। दूसरे देशों की नाईं जर्मनी की स्त्रियों ने हवाई विद्या में भी ख़ूब उन्नति कर ली है। और दिन प्रति दिन इस क्षेत्र में उनकी संख्या बढ़ती ही जाती है। इङ्गलैण्ड को यदि अपनी एमी जॉन्सन का गर्व है तो जर्मनी भी अपनी 'फ़ालीन जेनीलिण्ड' पर फूला नहीं समाता। एमी को इस प्रकार इङ्गलैण्ड का गौरव बढ़ाते देख कर फ़ालीन जेनी की भी आकांक्षा जर्मनी का गौरव बढ़ाने की हुई है। जर्मनी की यह वीराङ्गना शीघ्र ही जर्मनी की राजधानी बर्लिन से उड़ कर केपटाउन जाने की तैयारी में लगी हुई है। ईश्वर उसे सफलता और चिरायु दें। संसार की ये वीराङ्गनाएँ केवल अपने देश की ही सम्पत्ति नहीं हैं, वे संसार के स्त्री-समाज का गौरव और उनकी पथ-प्रदर्शिकाएँ हैं।

संसार के अन्य देश जहाँ इस प्रकार उन्नति कर रहे हैं, वहाँ हमारा देश

भारत

बीसवीं शताब्दी के इस स्वतन्त्र वायु-मण्डल में भी पराधीन है। उसका निज का अस्तित्व नहीं है, और जब तक उसे अपने मस्तिष्क से सोचने और अपने पैरों से चलने का अवसर न मिलेगा, वह किसी भी क्षेत्र में अन्य स्वतन्त्र देशों का मुक़ाबला नहीं कर सकता। परन्तु इतनी कठिनाइयों के होते हुए भी भारत अपनी सीमित स्वतन्त्रता का उपयोग ख़ूब अच्छी तरह कर रहा है। भारत के कई बड़े-बड़े शहरों में हवाई शिक्षा के क्लब खुल गए हैं और युवकगण उत्साहपूर्वक उड़ना सीख रहे हैं। इञ्जीनियर और चावला जैसे कुछ साहसी युवकों ने इङ्गलैण्ड से भारत हवाई जहाज़ में उड़ कर अपनी योग्यता का परिचय भी दिया है। परन्तु कुछ तो अज्ञान, कुरीतियों, रूढ़ियों और सामाजिक अत्याचारों के कारण तथा कुछ असुविधाओं के कारण भारत के महिला-मण्डल ने कोई आशाजनक सफलता अब तक नहीं दिखाई। भारत की भी कुछ वीर युवतियों ने हवाई शिक्षा के सर्टिफ़िकेट अवश्य ले लिए हैं, परन्तु उनकी किसी सफल यात्रा के समाचार हमें अभी तक नहीं मिले। हाँ, कूच-बिहार की महारानी इङ्गलैण्ड से भारत हवाई जहाज़ में अवश्य आई थीं; और उनका तथा उनकी सुपुत्री का ध्यान इस ओर आकर्षित भी हुआ है। एमी जॉन्सन के उदाहरण से उत्साहित होकर भारत की युवतियों को भी वायुयानों के क्लबों और स्कूलों में यह कला सीखना आरम्भ कर देना चाहिए। उड़ना सीखने के उपरान्त उन्हें यह मालूम हो जायगा कि वायुयान आत्म-विकास का सब से अच्छा साधन है। हवा के रुख़ से तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह दिन दूर नहीं है, जब भारत-माता भी एमी जॉन्सनों को अपनी गोद में खिलावेगी।

☽ ☽ ☽

स्वागत

[मुक्त]

तुम बढ़ते ही चले! नहीं कुछ कष्टों का अनुमान किया।
बाँके वीर सिपाही, यह तूने कैसा अभिमान किया !!

आ, चल लौट, किन्तु यह किसकी लाश? अरे, अरमानों की।
भक्त पुजारी लिए जा रहा है अञ्जलि बलिदानों की ॥

※

स्वागत है! आ मृत्यु !! यहाँ पर तेरा अभिनन्दन होगा।
धन्य! धन्य !! तुझको पाकर विकसित मेरा जीवन होगा ॥

उद्भ्रान्त आलाप

[श्री० महातम सिंह चौहान]

वह पराक्रम ! अहा ! वह पराक्रम ! वह शक्ति ! क्योंकर कहूँ, कैसे कहूँ कि वह पराक्रम कैसा था ? स्मरण आते ही वक्षस्थल विदीर्ण होने लगता है, मस्तक लट्टू की नाईं नाचने लगता है, चक्षु-अस्थि-कूप एवं श्रवण-रन्ध्र से विद्युत की ज्वालामयी लपटें निकलने लगती हैं। तब क्योंकर बताऊँ कि वह पराक्रम कैसा था ?

वह न तो स्फुलिङ्ग सदृश्य था, न निदाघ की उग्र रवि-रश्मि का सा था, न तो चक्रि के अरि-विनाशक चक्र जैसा, न सुरेन्द्र के अक्षय वज्र जैसा था और न था अङ्गद के अचल तथा पराक्रमी पद के समान।

वह मदन महीपति के पुष्प-बाण से भी गुरुतर था, वह उन्मुक्त वारि-धारा से भी अधिक शक्तिशाली, कन्दर्प के दिग्विजयी शङ्ख-ध्वनि से भी अधिक तेजस्वी एवं शब्दमय था, वह प्रशान्त सिन्धु से भी गम्भीर और मेघमाला का समुद्भिन्न-कर्ता, परम देदीप्यमान, त्रिभुवन-विजयी सूर्यदेव से भी बढ़ कर तेजपूर्ण था।

मेधावी तथा मनीषी महापुरुषों के माथे में ऐसा मस्तिष्क नहीं, लेखकों की लेखनी में वह शक्ति नहीं, भाषा में वैसा शब्द नहीं, नरों में वैसी चिन्ताशक्ति नहीं, कवि की स्वप्नमयी कल्पना में वह कवित्व नहीं, वाणी के ऐसी वाणी नहीं, जो उसकी उपमा ढूँढ़ सके। जगत में उसकी उपमा कोई योग्य पदार्थ, कोई महान वैभव, कोई उन्नति, सुख, शान्ति, बल, वीरत्व, कुछ भी नहीं दिखलाई पड़ता। तब कैसे कहूँ कि वह पराक्रम कैसा था ? हाय ! वह पराक्रम ! क्या उसे एक बार और नहीं देख सकूँगा ?

हे परमेश्वर ! मैं और कुछ भी नहीं चाहता, चाहता हूँ केवल एक बार देखना उस महान पराक्रम को, वह घोर प्रलयङ्कर पराक्रम, जिससे मैं अपने अरिगणों से बदला ले सकूँ।

वह देखो ! हमारी पुकार पर, हमारी व्याकुलता पर, हमारी उन्मत्तता और प्रलाप पर सूर्यदेव हँस रहे हैं। हँस लो ! तुम भी अपनी आरत सन्तान पर हँस लो, अपना अरमान मिटा लो, अपनी उत्कट अभिलाषा की पूर्ति कर लो, नहीं तो ऐसा सुअवसर प्राप्त नहीं होगा ! अल्पकाल के अन्तर ही उस महापराक्रम के सामने तुम्हारा तेज भी फीका पड़ जायगा। पर हे दिवाकर ! यह तो बताओ कि तुम हँसते क्यों हो ? हमारी किस दुर्दशा पर हँसते हो ? हाँ, जाना, हमारी दुर्बलता, हमारे अज्ञान, हमारी अवनति, हमारे पारस्परिक वैर, द्वेष, ईर्ष्या, जलन और डाह पर हँसते हो। पर याद रखना, हमने इन राक्षसों पर, इन क्रूर मदमत्त राक्षसों पर विजय प्राप्त कर ली है। अब ये दुष्ट राक्षस हमारे उन्नति-मार्ग में कण्टक नहीं बन सकते। अब हम जीवन-संग्राम में विजयी होंगे।

आज विश्व के कोने-कोने से "अग्रसर होओ, अग्रसर होओ" का तुमुल घोष सुनाई दे रहा है। इस युग में इस घोष का शोभन स्वन भी कुछ भीषण रूप धारण कर रहा है। निस्सन्देह जीवन-संग्राम महाभीषण है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का गला घोंट रहा है, एक जाति दूसरी जाति को निगलना चाहती है। प्रलयकाल की उत्ताल तरङ्गों की तरह स्वार्थ-सागर अपनी आनन्दोर्मियों द्वारा क्षितितल को परिप्लावित कर रहा है। स्वार्थ की मात्रा वर्षा-

कालीन सरसी के समान अति वेग से बढ़ती हुई समस्त मेदिनी को सलिल-सिक्ता बना रही है। रक्तपिपासुओं की अधिकता से संसार की शान्ति क्षण-क्षण में भङ्ग हो रही है। दिशाओं में संग्राम का भीषण कोलाहल मचा हुआ है। शान्ति के लिए विश्व-जनता छटपटा रही है। पर शान्ति, जो तृषा-पीड़ित के प्राणों में सुधा उँडेलती है, वह शान्ति कहाँ ?

कुछ भी समझ में नहीं आता कि इस समय क्या किया जाय ? किस उपाय का उपयोग किया जाय ? क्या उत्तर है, क्या यत्न है ? परन्तु विह्वलता से, आत्म-विस्मृत होने से काम न चलेगा। धैर्य धारण करो। सोचने की शक्ति का अवलम्बन करो। उपाय पाओगे, अवश्य पाओगे। उत्तर मिलेगा, निश्चय मिलेगा। उठो, जागो, उद्यत हो, पराक्रम दिखाओ, यही एक उत्तर है। जीवन का, जागृति का, नवयुग और क्रान्ति का यही महासन्देश है।

अब उठो। उठो और देखो कि संसार में हमारी क्या स्थिति है ? संसार की दौड़ में हम कौन सा भाग ले सकते हैं ? इसकी मीमांसा करने के लिए पुनः एक बार उठो। राजपूतों की वीरता का ध्यान कर उठो, मरहठों की प्रचण्डता एवं गम्भीरता की याद कर, सिक्खों के बाँकेपन और पठानों की तलवार का स्मरण कर उठो, और सफलता, उन्नति, कृतकार्यता और स्वतन्त्रता को हाथों-हाथ बँटा लो।

शीघ्र उठो, अब सोने का समय नहीं। वह देखो ! कनक-किरीटिणी उषा सज-धज कर कभी से रङ्गमञ्च पर आ गई है। तम-तोम कटे हुए पतङ्ग की भाँति कितनी दूर निकलता हुआ चला गया। काल अपने पुराने कलुषित अन्धपरम्परागत जराजीर्ण कलेवर को बदल रहा है। पृथ्वीतल से द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध, पशुबल, स्वेच्छाचार का निरङ्कुश राज्य उठ रहा है। सभी अपने-अपने स्वत्व के हेतु, अपने नैसर्गिक, अधिकारों के लिए मर मिटने को प्रस्तुत हैं। क्या तुम अकेले पीछे पड़े रहोगे ? तुम भी आत्मोन्नति के लिए उठ खड़े होवो। मित्रों के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर, अरियों के सीने से सीना अड़ा कर, हिमाञ्चल-शिखर की भाँति सर्वोच्च हो जाओ।

परिवर्तनशील विश्व में सभी वस्तुओं का परिवर्तन हो रहा है, सारा संसार बदल रहा है। टर्की बदल गया, अफ़ीमची चीन जाग उठा, ईजिप्ट की काया-पलट हो गई, अफ्रिका के हबशियों में चेतना का सञ्चार हो गया। पर तुम ? तुम क्या सोते ही रहोगे ? वह महान पराक्रम, जिसके सामने समस्त संसार ने एक दिन मस्तक झुकाया था—भय से नहीं प्रेम से—क्या उसे पुनः प्रगट न करोगे ? क्या संसार के मानस क्षितिज से अज्ञान के काले बादलों को काट कर पुनः ज्ञान-सूर्य का जीवनदायी प्रकाश न फैलाओगे ? वह शक्ति, वह शौर्य, वह विशाल पराक्रम, क्या पुनः प्रगट न करोगे ?

वीर ! उठो। बहुत सो चुके, और कब तक सोते रहोगे ? कब तक "भीरु भारतीय" का नाम चरितार्थ करते रहोगे ? कब तक पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, बैर, कलह आदि अपयशों के कलङ्क को अपने शुभ चरित्र पर चढ़े रहने दोगे ? कब तक अपने पूर्व पुरुषों की कीर्ति, पराक्रम और मान को अपनी इस अधम कायरता से कलङ्कित करते रहोगे, वीर !

अनल-ताप से सन्तप्त होने पर ही काञ्चन की, सान पर चढ़ाए जाने पर ही हीरा की, महाभयङ्कर विपत्ति में ही पुरुष की परीक्षा होती है। क्या तुम इस परीक्षा में खरे न उतरोगे, अपने पूर्वजों की अमरकीर्ति के उत्तराधिकारी होने योग्य अपने को प्रमाणित न करोगे ? वीर ! वीरश्रेष्ठ ! उठो। उठो और अपना वह पराक्रम, वह महान दुर्द्धर्ष पराक्रम प्रगट करो, जिसके समक्ष उन्मत्त राक्षसों का दल विनय से मस्तक झुका देता है, जिसके समीप परपीड़क अत्याचारियों का आतङ्क ध्वंस हो जाता है।

आज मेदिनी पर मदमत्त राक्षसों का निरङ्कुश नृत्य हो रहा है। क्या वे तुम पर अत्याचार कर रहे हैं? क्या उनके बन्धन-पाश से मुक्त होना चाहते हो, उनके प्रमादी कर्मचारियों की क्षुद्र लिप्सा से त्राण पाना चाहते हो, उनकी अनिर्वचनीय प्रवञ्चना से दूर रहना चाहते हो, उनके कुटिल षड्यन्त्रों, उनकी कुत्सित मनोवृत्ति, उनके घातक सङ्कल्पों से आत्म-रक्षा करना चाहते हो? तो उठो। वीर! उठो। आज पुनः अपना वह पराक्रम दिखाओ, सत्य के लिए मर मिटने का, सेवा के लिए बलिदान हो जाने का, मानव-समाज के मङ्गल के लिए हँसते-हँसते मृत्यु को आलिङ्गन कर लेने का पराक्रम दिखाओ। इस विराट पराक्रम, इस प्रचण्ड तेज के सामने कौन ठहर सकता है? विजय, तुम्हारी विजय अनिवार्य है। वीर! उठो, पराक्रम दिखाओ!

अन्तर्वेदना

[श्रीयुत दिवाकर प्रसाद]

(१)

व्यथाएँ कितनी मैंने सहीं;
विछाए उनके पथ में फूल।
पुलक कर गले लगाना दूर,
न देखा इधर उन्होंने भूल॥

(२)

विहँस कर मलयानिल ने आज—
सुनाया है यह शुभ सन्देश।
—'अरे पगली! उठ, कर शृङ्गार,
तुम्हारे आते हैं हृदयेश'॥

(३)

अरे! वे आए कब चुपचाप,
न जाने फिर कब किया प्रयाण।
हाय! बैठी थी मैं निश्चिन्त,
जान उनको निश्छल अनजान॥

(४)

रिझाने जाती उनको कभी,
कली-सा ले यह रूप अनूप।
छेड़ने आ जाते हैं मुझे—
चपल मलयानिल का ले रूप॥

(५)

जलज-जल-वैमनस्य का खेल
खेलते बीते कितने वर्ष!
उलझती ही जाती यह गाँठ,
कहाँ है निठुर विश्व में हर्ष?
अरे निर्दय! ये थके निदान—
बिलखते जाएँगे क्या प्रान?
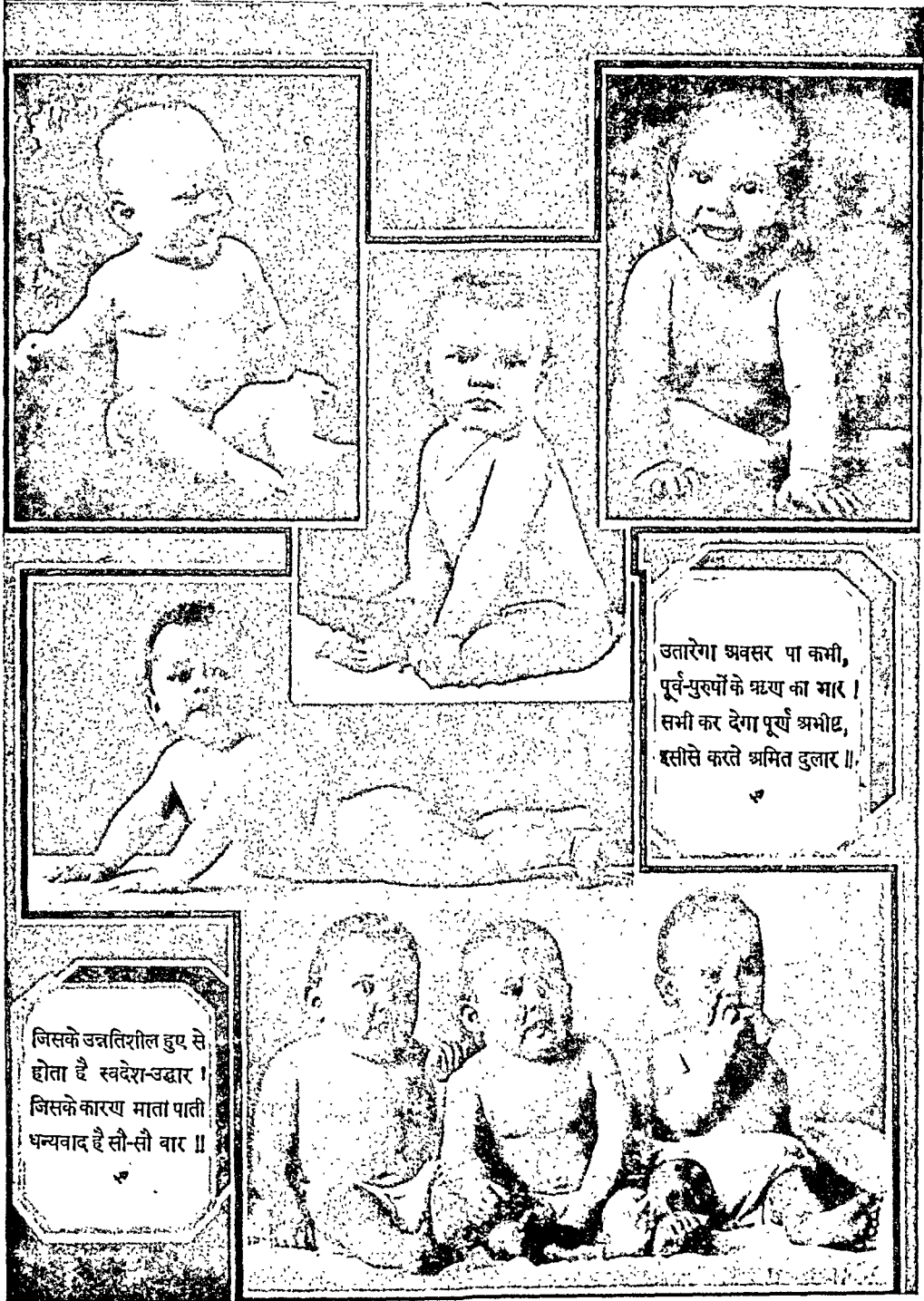
उतारेगा अवसर पा कभी,
पूर्व-पुरुषों के ऋण का भार।
सभी कर देगा पूर्ण अभीष्ट,
इसीसे करते अमित दुलार॥

जिसके उन्नतिशील हुए से
होता है स्वदेश-उद्धार।
जिसके कारण माता पाती
धन्यवाद है सौ-सौ बार॥

सुघड़ माताओं के भाग्यशाली लाल

प्रभु ईसा की क्षमाशीलता, नबी मुहम्मद का विश्वास।
जीव-दया जिनवर गौतम की, आओ देखो इनके पास॥

सचित्र राष्ट्रीय साप्ताहिक

के ग्राहक बन कर अपना औचित्य पालन कीजिए। सभी बड़े-बड़े और सुप्रसिद्ध विद्वानों की सम्मति है कि इससे सुन्दर कोई भी साप्ताहिक आज तक इस अभागे देश में प्रकाशित नहीं हुआ था और न किसी पत्र का इतना आतङ्क ही था। इसका एक मात्र कारण यही है कि यह राष्ट्रीय-पत्र केवल सेवा की पुनीत भावना से प्रेरित होकर प्रकाशित किया गया है और इसके प्रवर्तकों को इस बात का सन्तोष है कि हिन्दी-संसार ने पत्र की जितनी क़द्र की है, उसकी किसी को भी आशा नहीं थी।

आर्ट-पेपर का कवर

लबालब पृष्ठ-संख्या	४०	∴	वार्षिक चन्दा केवल	६)
चुने हुए चित्र लगभग	४०	∴	छः माही	३॥)
चुटीले कार्टून	२-४	∴	एक प्रति का मूल्य	≡)

यदि आप अब तक ग्राहक नहीं हैं तो नमूने की एक प्रति मँगा कर देखिए अथवा अपने यहाँ के एजण्ट से माँगिए—लगभग सभी स्थानों में 'भविष्य' की एजन्सियाँ क़ायम हो गई हैं। जहाँ न हों वहाँ के

एजण्टों को शीघ्रता करनी चाहिए

तार का पता : "भविष्य" व्यवस्थापक 'भविष्य' चन्द्रलोक, इलाहाबाद टेलीफ़ोन-नम्बर : २१

अध्यात्म-तत्व अथवा मानव-धर्म

[श्रीमत्स्वामी प्रज्ञानपाद]

यह आश्चर्यपूर्ण धृष्टता मालूम होगी कि मानव के सामने, मानव-समुदाय के सामने, मानव धर्म की चर्चा कैसी? हम सभी मानव हैं, अपना धर्म अवश्य जानते हैं, फिर इसे बताने की क्या ज़रूरत? परन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। आश्चर्य की बात यह है कि हम लोग मानव होते हुए भी अपना धर्म नहीं जानते। हमारा धर्म हमारे भीतर है, वह हमारे सब से समीप है, हम उसके साथ सर्वापेक्षा अधिक परिचित हैं, फिर भी उसका ज्ञान नहीं रखते। यही आश्चर्य है। वास्तव में हम अपना धर्म जानते हुए भी नहीं जानते। इसीलिए इस विषय में कुछ कहने की आवश्यकता है।

मानव धर्म मानव के इतना समीप है कि उससे बढ़ कर अन्य किसी पदार्थ के साथ मानव का सामीप्य हो ही नहीं सकता। हमारा धर्म हमसे अत्यन्त निकट है, इतना निकट कि हम उसे भूल गए हैं। मनुष्य की बुद्धि इतनी विशाल, इतनी जटिल हो गई है कि अत्यन्त सरल बातों को समझना उसके लिए मुश्किल हो गया है; नज़दीक की चीज़ को वह देख ही नहीं सकता, उसकी दृष्टि जब पड़ती है तो दूर पर। आज विश्व-ब्रह्माण्ड का कौन सा रहस्य मनुष्य से छिपा हुआ है? वह हवा में उड़ता है, समुद्र में डूब कर हज़ारों मील का चक्कर काट आता है, स्थल पर उसकी गति को रुद्ध करनेवाली कोई शक्ति रह ही नहीं गई। मनुष्य हिमालय की चोटियों पर चढ़ कर अपनी विजय-पताका फहराई है, ध्रुव-प्रदेशों का कोना-कोना छान डाला है; अणु-परमाणु से लेकर अरबों-खरबों मील और उससे भी अधिक दूरस्थ ताराओं का ज्ञान उसे हस्तामलक है। परन्तु अपने आपको, अपने धर्म को, जिससे मनुष्य एक पल-विपल के लिए भी पृथक नहीं हो सकता, वह नहीं जानता। मनुष्य की बुद्धि इतनी जटिल हो गई है।

यहाँ एक कहानी याद आती है। एक वैयाकरण पण्डित जी कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक जङ्गल पड़ता था। लोगों ने कहा—"पण्डित जी, जङ्गल की ओर से न जाइए, वहाँ बाघ रहते हैं।" पण्डित जी ने कहा—"बाघ? शुद्ध शब्द तो व्याघ्र है न? व्याघ्र से हमें क्या डर? व्याघ्र शब्द 'वि+आ+घ्रा' से बना है, अर्थात जो विशेष रीति से सूँघे वह व्याघ्र। यही न होगा कि वह मुझे विशेष रीति से सूँघेगा? सूँघा करे, हमारी क्या हानि?" इस तरह 'व्याघ्र' शब्द की व्युत्पत्ति के फेर में पड़ कर पण्डित जी ने बाघ के असल स्वरूप को भुला दिया। वह जङ्गल में गए, उन्हें एक भयानक व्याघ्र ने आ घेरा। पण्डित जी "बाघ-बाघ" चिल्लाने लगे। गाँव वाले दौड़े आए और किसी तरह पण्डित जी को व्याघ्र के पञ्जे से छुड़ा लिया। गाँव वाले बोले—"पण्डित जी, कहिए हम लोगों ने कहा था न कि जङ्गल में बाघ है? आपने हमारी बात न सुनी।" पण्डित जी ने उत्तर दिया—"हाँ, आप लोगों ने कहा तो ज़रूर था, पर मुझे क्या मालूम कि बाघ को ही व्याघ्र कहते हैं।" पण्डित जी की बुद्धि इतनी जटिल हो गई थी कि अपनी पण्डिताई के मारे वे इस सहज बात को न समझ सके।

मानव समाज का भी ठीक यही हाल है। लोगों की बुद्धि बहुत बढ़ गई है, इतनी जटिल हो गई है कि छोटी-छोटी साधारण बातें अब उनकी समझ में आने योग्य न रहीं। वे विश्व के सारे मर्म जान रहे हैं; आकाश और पृथ्वी पर की कोई बात उनसे छिपी नहीं रही। पर अपने ही भीतर रहने वाले अपने धर्म को वे नहीं जान सके। उनका धर्म उनके सब से समीप है, इसीलिए वे उसकी उपेक्षा करते हैं, उसे सोचने, समझने, जानने की चेष्टा नहीं करते।

मानव का धर्म मानव के भीतर सदा विद्यमान है; उसे छोड़ कर मानव, मानव नहीं रह सकता। कोई वस्तु अपने धर्म को छोड़ कर पुनः वही वस्तु बनी रहे, यह असम्भव है। धर्म वह पदार्थ है जिसके बिना धर्मी न रह

सके, जिसके अभाव में धर्मी का अस्तित्व असम्भव हो जाय। जिस विशिष्ट गुण के कारण किसी वस्तु का अस्तित्व रहता है, जिस विशेष पदार्थ के कारण किसी जीव की सत्ता, किसी प्राणी का जीवन सम्भव है, वही विशिष्ट गुण, वही विशेष पदार्थ उस वस्तु का धर्म, उस जीव का धर्म, उस प्राणी का धर्म है। अग्नि का धर्म दाहन-शक्ति है, जल का धर्म तरलता, सुन्दरी का सौन्दर्य, रोगी का रोग, लम्पट का लम्पटता है। आग न जलावे और पानी न बहे, यह नहीं हो सकता। दाहन-शक्ति के बिना आग आग नहीं है ; तरलता के बिना जल जल नहीं। सौन्दर्य न रहे और सुन्दरी रहे, यह असम्भव है। रोगी में रोग, लम्पट में लम्पटता, वीर में वीरता, दयालु में दया अनिवार्य है। वीरत्व न करे और दया न दिखावे तो और कुछ हो सकता है, वीर और दयालु नहीं हो सकता। इस विषय में विद्यापति की एक बड़ी सुन्दर उक्ति है। राधिका कृष्ण से कहती हैं—

पाखि क पाख मीन क पानी।
जीव क जीवन हम तुहुँ जानी॥

पत्त रहे तभी तो पत्ती, पत्त न रहे तो पत्ती कैसे ? जल न रहे और मछली रहे, यह कभी सम्भव है ? जीव तभी जीव है जब उसमें जीव हो। इसी प्रकार मानव तभी मानव है जब उसमें मानव धर्म रहे, अन्यथा वह मानव नहीं है।

यह मानव धर्म है क्या ? वह पदार्थ कौन सा है, जिसके रहने से मानव की मानवता सिद्ध होती है ? वह कौन सा गुण है, जिसके बिना मानव वस्तुतः मानव नहीं रह जाता ?

मनुष्य और पशु की समानता

इसे जानने के लिए पहले हमें वह कसौटी ढूँढ़नी पड़ेगी, जिसमें कसने से मानव के प्रत्येक गुणावगुण की परीक्षा हो सके। जब तक माप, जोख, तुलना आदि की सुविधा न हो तब तक किसी वस्तु का उचित निरूपण नहीं हो सकता। मानव धर्म के निरूपण के लिए भी हमें वह मापदण्ड, वह कसौटी, वह प्रमाण खोजना पड़ेगा जिसकी सहायता से मानव जीवन के प्रत्येक अङ्ग की परीक्षा, मानव के प्रत्येक गुण और अवगुण की जाँच करके हम कह सकें कि यह मानव के योग्य है अथवा अयोग्य, मानव धर्म के साथ इसका समन्वय सम्भव है या असम्भव। वह मापदण्ड कौन सा है, वह कौन सी कसौटी है, जिससे हम लोग मनुष्य के सभी गुणों की परीक्षा, मनुष्य के सब प्रकार के बड़प्पन की तुलना किया करते हैं ? थोड़ा विचार कर देखिए, वह कौन सा प्रमाण है, जिसे हम मनुष्य का आदर्श मानते हैं, जिससे हम मनुष्य की महत्ता की उपमा दिया करते हैं ? ध्यान से देखने से मालूम होगा कि वह कसौटी, वह मापदण्ड, वह प्रमाण पशु है। मनुष्य के उत्तम से उत्तम और नीच से नीच सभी गुणों की तुलना पशु के ही गुण और अवगुण से की जाती है। इस विषय में पशु ही मनुष्य का आदर्श है। इसी आधार पर लोगों ने दो जगत, दो भेद माने हैं। मानव पशु, मैन बीस्ट, इन्सान हैवान, आदि प्रयोग प्रत्येक देश और प्रत्येक भाषा में प्रचलित हैं। पशु ही वह प्रमाण है, जिससे मनुष्य के जीवन की सफलतापूर्वक परीक्षा कर सकते हैं। यही वह मापदण्ड है जो हमें बता सकता है कि मानव और पशु में अन्तर कहाँ है, सच्चा मानव धर्म क्या है।

मनुष्य की नीचता का उदाहरण पशु से दिया जाता है; यह जानवर है, तू जानवर है, आदि प्रयोग हम सबने सुने हैं। मूर्ख या बेवक़ूफ़ की तुलना गधे और उल्लू से की जाती है; अर्थात् मूर्खता में मनुष्य गधे और उल्लू को मात नहीं कर सकता। अन्ध-विश्वास व अन्धानुगमन के लिए भेड़ियाधसान की उक्ति प्रसिद्ध है। लम्पटता का वर्णन अभीष्ट हो तो कहते हैं, यह भ्रमर है, फूल-फूल पर मँड़राता फिरता है। इन प्रयोगों द्वारा मनुष्य स्वयं यह स्वीकार करता है कि नीचता में वह पशु से बढ़ कर नहीं हो सकता। नीचता में पशु मनुष्य का आदर्श है। फिर उत्तम गुणों के लिए भी पशु ही प्रमाण है। वीरता का वर्णन करना हो तो कहते हैं, नरसिंह है, नरशार्दूल है। पञ्जाब-केशरी, महाराष्ट्र-केशरी, आदि ऐसे ही उदाहरण हैं। कोई मनुष्य बड़ा एकाग्रचित्त हो तो कहते हैं, यह तो बगुला सा ध्यान लगाता है। विद्यार्थियों के आदर्श लक्षण में कहा है—"काकचेष्टा वकोध्यानं श्वाननिद्रा तथैवच......" इत्यादि। सद्गुण के ग्रहण और दुर्गुण के परित्याग में मनुष्य का आदर्श हंस है। स्त्रियों के नेत्र-सौन्दर्य, गमन-शैली, मधुर स्वर, आदि की उपमा भी पशु-जगत में ही मिलती है। कुरङ्गनयनी, मृगलोचनी,

गजगामिनी, कोकिलकण्ठी, पिकवचनी, आदि विशेषणों द्वारा हम अपनी स्त्रियों को गौरवान्वित समझते हैं। चातुरी में सियार पाँड़े हमारे आदर्श हैं। बल और पराक्रम में भी हमारा आदर्श पशु ही है। हम अपने महा पराक्रमी पुरुषों को पुरुषर्षभ और बलिष्ठ पहलवानों को शेर कह कर समादृत करते हैं।

जब गामा ने पश्चिम के सुप्रसिद्ध पहलवान जेबिस्को को देखते ही देखते दो सेकेण्डों के भीतर पछाड़ कर चित कर दिया तो गामा की कला पर जेबिस्को मुग्ध हो गया। उस समय इस उदारचेता पाश्चात्य मल्ल के मुँह से गामा की प्रशंसा में आप ही आप ये शब्द निकल पड़े—"गामा शेर है।" गामा संसार का सर्वश्रेष्ठ मल्ल हुआ, परन्तु वह शेर से बढ़ कर न हो सका। अन्त में शेर ही उसका आदर्श रहा।

केवल पशु-जगत में ही नहीं, मनुष्य के भले और बुरे गुणों की उपमा उद्भिद जगत में भी पाई जाती है। शरीर बहुत बड़ा हो जाय और तदनुरूप बुद्धि न हो तो कहते हैं—ताड़ की तरह दिन-दिन बढ़ता जाता है, पर बुद्धि का ठिकाना ही नहीं। सुन्दर दाँतों की उपमा दाड़िम के दाने से दी जाती है। कमल की उपमा से तो सारा आर्य-साहित्य भरा पड़ा है। आँख, मुख, हाथ, पाँव, कोई ऐसा अङ्ग नहीं बचा जिसके सौन्दर्य की उपमा कमल के अनुपम सौन्दर्य से न दी गई हो। मनुष्य के सुयश की तुलना कपास की शुभ्रता के साथ की जाती है। नम्रता के लिए कहते हैं, भाई दूब बन कर रहना चाहिए। उरू के लिए कदली-स्तम्भ और बाहु के लिए शाल वृक्ष की उपमा प्रसिद्ध है।

इन गुणों में पशु और पेड़-पौधे वास्तव में मनुष्य जाति के आदर्श होने योग्य हैं भी। जो सत्य अन्तर्हृदय में छिपा रहता है वह भाव या भाषा द्वारा प्रगट हो ही जाता है। मनुष्य का अन्तर्हृदय सच्चे भाव से यह जानता है कि उपरोक्त गुणों में पशु जाति मनुष्य से कहीं बढ़ कर श्रेष्ठ है। इन गुणों में पशु आदर्श है। मनुष्य उस आदर्श तक पहुँचने की चेष्टा कर रहा है, पर अभी बहुत पीछे है और पीछे रहेगा। अपनी इस हीनता को मनुष्य अनुभव करता है इसीलिए पशु के साथ अपना मुक़ाबला करके, पशु के गुणों के साथ अपने गुणों की उपमा देकर मनुष्य अपने को गौरवान्वित समझता है।

मनुष्य को अपने जितने भी गुणों का गर्व है, वे सभी पशु में पाए जाते हैं। यदि केवल इन गुणों की दृष्टि से देखा जाय तो मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं है। वैज्ञानिक लोगों ने बहुत प्रयत्न किया कि मानव और पशु में तथा जानवर और पेड़-पौधों में कोई अन्तर कर सकें, पर अन्त में उन्हें हार माननी पड़ी। वे इनको भिन्न करने वाली रेखा नहीं खींच सके। सर जगदीशचन्द्र ने प्रमाणित करके दिखा दिया कि पशु तथा वृक्षों में कोई अन्तर नहीं है। उनके आविष्कारों ने वैज्ञानिक संसार में हलचल मचा दी। उनके आविष्कारों के बाद 'नेचर' के सम्पादक महाशय ने लिखा था—"वृक्ष स्थावर पशु है और पशु है जङ्गम वृक्ष।" (A plant is a stationery animal and an animal is a moving plant) कहने का तात्पर्य यह कि जानवर तथा पेड़-पौधे में कोई भेद नहीं है। इसी प्रकार यह भी प्रमाणित होता है कि मनुष्य तथा पशु के बीच कोई भेद नहीं है। दोनों का व्यवहार एक ही प्रकार का है; दोनों में काम, क्रोध, स्नेह, घृणा, दया, क्रूरता, मैत्री, द्वेष आदि भाव एक ही प्रकार से दिखाई पड़ते हैं।

आख़िर मनुष्य को गर्व किस बात का है, जिसके कारण वह अपने को पशु से श्रेष्ठ समझता है? मनुष्य की धारणा है कि शारीरिकि गठन और चरित्र में वह पशु से श्रेष्ठ है। मनुष्य समझता है कि कला-कौशल में, सामाजिक सङ्गठन में, विनय और मर्यादा के पालन में वह पशु से श्रेष्ठ है। मनुष्य का यह भी दावा है कि उसकी इच्छाएँ, उसकी प्रवृत्तियाँ पाशविक इच्छाओं और पाशविक प्रवृत्तियों से अधिक संस्कृत हैं। एक शब्द में, मनुष्य को अपनी सभ्यता और संस्कार पर गर्व है; और इन्हीं के कारण वह अपने को पशु की अपेक्षा श्रेष्ठ समझता है। परन्तु यह गर्व मिथ्या है, यह दावा सर्वथा निराधार और भ्रमपूर्ण है। वैज्ञानिकों ने दिखा दिया है कि पशुओं तथा पौधों का शारीरिक गठन और चरित्र, मनुष्य के शरीर-गठन तथा चरित्र की अपेक्षा, कहीं अधिक समुन्नत हैं; पशुओं में भी ठीक वैसा ही सङ्गठन, वैसा ही कलाकौशल, वैसी ही इच्छाएँ और वासनाएँ मौजूद हैं जैसी मनुष्यों में हैं, बल्कि उनमें ये वस्तुएँ मनुष्यों से भी अधिक उत्कृष्ट हैं। इन बातों में पशु से श्रेष्ठ होने की तो कौन कहे, मनुष्य उनकी बराबरी का होने का भी दावा नहीं कर सकता।

शेर को देखिए, शारीरिक गठन में कौन मनुष्य उसका मुक़ाबला कर सकता है? उसके जैसा विशाल वक्षस्थल, क्षीण कटि, मज़बूत पञ्जे, पैने दाँत, अङ्गार की तरह चमकती आँखें किस मनुष्य को प्राप्त हैं? बिल्लियाँ रात के घनीभूत अन्धकार में भी देख सकती हैं। परन्तु मनुष्य? मनुष्य इतना दीन है कि उसे दिन के प्रकाश में भी उपनेत्र की आवश्यकता पड़ती है। देखने में गृद्ध, सूँघने में कुत्ते, सुनने में घोड़े और हिरन की शक्ति मनुष्य की शक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्र है। पशुओं के पास आत्मरक्षा के लिए नख, सींग, दन्त आदि अनेक शस्त्र हैं, परन्तु मनुष्य इन सभी प्राकृतिक शस्त्रों से वञ्चित है। हिम और ताप से रक्षा पाने के लिए पशु-पक्षियों के शरीर में रोम और पर आदि आवरण विद्यमान हैं, परन्तु मनुष्य के शरीर में इनका भी अभाव है। पशुओं की शारीरिक शक्ति और कार्यक्षमता भी मनुष्य से कहीं बढ़ी चढ़ी है। गधे को देखिए, बेचारा बहुत ही दीन जानवर समझा जाता है, परन्तु वह जिस तरह दिन भर अथक परिश्रम करता है, उस तरह कितने मनुष्य कर सकते हैं? बैल में परिश्रम करने की शक्ति मनुष्य से इतनी अधिक है कि जो व्यक्ति दिन भर परिश्रम करता रहता है और कभी विश्राम या विनोद का नाम नहीं लेता उससे लोग कहा करते हैं, भाई, क्यों तेली के बैल की तरह मर रहे हो? इन बड़े जानवरों को छोड़ दीजिए। छोटे-छोटे कीट-पतङ्गों को देखिए; उनके शरीर में भी मानव शरीर की अपेक्षा अधिक कार्य-क्षमता, अधिक सहनशीलता, अधिक शक्ति दिखाई पड़ती है। वैज्ञानिकों ने परीक्षा करके देखा है कि एक चींटी अपने शरीर के वज़न के तीन हज़ार गुना भारी वजन खींच सकती है। भला इस अतुल शक्तिमत्ता के सामने मनुष्य की शारीरिक शक्ति की क्या तुलना? जब पशु-जगत में ऐसे-ऐसे विराट शक्ति वाले जीव मौजूद हैं, तब मनुष्य का शारीरिक गठन और शक्ति में पशुओं से श्रेष्ठ होने का दावा कहाँ ठहरता है?

पशु के चरित्र के साथ मनुष्य के चरित्र की तुलना कीजिए। दया, प्रेम, स्नेह, मैत्री, सहानुभूति, स्वामिभक्ति, विश्वासपात्रता, सेवा, धैर्य, वीरत्व, ये ही गुण हैं जिनमें मनुष्य समझता है कि वह पशु से श्रेष्ठ है। परन्तु ये सभी गुण पशु में मनुष्य की अपेक्षा अधिक मात्रा और उत्कृष्ट रूप में पाए जाते हैं। हाथी, बन्दर, मछली आदि नाना प्रकार के जानवरों पर वैज्ञानिकों ने परीक्षा करके देखा है कि प्रेम और सहानुभूति की मात्रा जितनी उनमें पाई जाती है उतनी मनुष्य में नहीं। अफ़्रिका के जङ्गलों में शिकार करने वाले शिकारियों ने देखा है कि जब किसी हाथी को गोली लग जाती है और वह चलने में असमर्थ हो जाता है, तब उसके झुण्ड के अनेक हाथी आकर उसे प्रोत्साहन देते हैं, उसे उठाते हैं और भगा ले जाने की कोशिश करते हैं। मछली जब जाल में फँस जाती है तो अन्य मछलियाँ उसे बचाने की प्राणपन से चेष्टा करती हैं, और तब तक उसके पास से नहीं हटतीं जब तक उसके बचने की थोड़ी भी आशा शेष हो। स्वामिभक्ति और विश्वास-पात्रता में कुत्ते और मुर्ग़े का उदाहरण लीजिए। आपका नौकर आपको धोखा दे सकता है, पर ये जानवर आपके घर की रखवाली करने में कभी विश्वासघात न करेंगे। कुत्ते, मुर्ग़े, नेवले जान पर खेल कर भी स्वामी के स्वार्थ की रक्षा करते हैं। धैर्य में तो पशुओं ने पराकाष्ठा ही प्राप्त कर ली है। बाबर और रॉबर्ट ब्रूस जैसे हमारे महा-पराक्रमी योद्धाओं को जिससे धैर्य की शिक्षा मिली थी, वह एक छोटा सा कीड़ा था। एक चींटी को दीवार पर चढ़ने की चेष्टा में इक्कीस बार गिरने के बाद बाईसवें बार सफल होते देख कर बाबर के मन में तुर्किस्तान को जीतने की नवीन स्फूर्ति पैदा हो गई। इसी प्रकार स्कॉटलैण्ड के देशभक्त रॉबर्ट ब्रूस के विषय में प्रसिद्ध है कि एक मकड़ी के धैर्य को देख कर उन्हें अपनी मातृ-भूमि की स्वाधीनता के लिए पुनः युद्ध करने का उत्साह प्राप्त हुआ था। वीरता में शेर, सेवा में आम आदि फलों के वृक्ष, उपयोगिता में गाय, इनका मुक़ाबला कौन मनुष्य कर सकता है?

यदि सामाजिक सङ्गठन को देखें तो पशुओं का सङ्गठन मनुष्य के सङ्गठन से श्रेष्ठ प्रतीत होता है। चींटी एक बहुत ही छोटा कीड़ा है, पर मनुष्य-समाज में जितनी अनूठी बातें हैं, वे सब चींटियों में पाई जाती हैं। उनमें सेना, सेनापति, स्वामी, सेवक आदि सब भेद हैं। उनमें डॉक्टर हैं। वे घर बनाती हैं। यहाँ तक देखा गया है कि जिस प्रकार हम लोग दूध पीने के लिए गाय पोसते हैं, उसी प्रकार चींटियाँ भी गाय पालती हैं। प्रन्टलिस नामक

एक कीड़े के शरीर से मधुर रस चूता है। चींटियाँ उसे पाल कर उसके रस से दूध का काम लेती हैं। हम लोग अपनी गायों के लिए अलग गोठ बनाते हैं; ठीक वैसे ही चींटियाँ भी इस कीड़े के लिए अपने बिल के अन्दर छोटे से सूराख़ के समान एक अलग कोठरी बनाती हैं। उसमें उसे बाँधती हैं, उसे भोजन देती हैं, उसके मल-मूत्र को बड़ी ख़ूबी से साफ़ करती हैं; उसके आने-जाने के लिए रास्ता बनाती हैं; उसकी रखवाली के लिए पहरेदार तक नियत करती हैं। चींटियों की सामाजिक व्यवस्था ऐसी सुन्दर है कि तारीफ़ करते ही बनती है। जिस समय वे भोजन की खोज में निकलती हैं अथवा किसी अन्य काम से उन्हें बाहर जाना पड़ता है उस समय, हम सबने देखा होगा, वे किस तरह फ़ौजी ढङ्ग से क़तार बाँध कर चलती हैं। उनका एक कप्तान होता है, जो क़तार के आगे-आगे चलता है। वह शत्रुओं से मुठभेड़ करता और अपने अनुचरों की रक्षा करता है। अन्य चींटियाँ उसका अनुसरण करती हैं। इस कप्तान से यदि दूसरी ओर से आती हुई किसी चींटी से भेंट हो गई तो प्रायः देखा जाता है कि वे एक दूसरे के मुँह से मुँह सटा कर न जाने क्या बातचीत कर लेते हैं; और बात समाप्त होने पर कप्तान अपने अनुचरों सहित या तो पीछे लौट कर उस चींटी के साथ हो लेता है अथवा सीधे अपनी राह चला जाता है। इससे स्पष्ट है कि भाषा द्वारा भाव-विनिमय की पद्धति न केवल मनुष्यों में, वल्कि चींटी जैसे छोटे-छोटे कीट-पतङ्गों में भी वर्तमान है।

अब ज़रा मधुमक्खियों के जीवन पर ग़ौर कीजिए। मधुमक्खियों के समान व्यवस्थित सामाजिक जीवन साधारण मनुष्य-समाज अभी नहीं पा सका है। उनमें एकता और सङ्गठन विचित्र है। श्रम-विभाग तो उनके जीवन का प्रकृत अङ्ग है। उनमें शहद बटोरने के लिए मज़दूर होते हैं, पहरा देनेवाले सिपाही, लकड़ी काटनेवाले बढ़ई, मकान बनाने वाले राज हैं, उपभोग करने वाली रानियाँ हैं। हमारी स्त्रियों की तरह मादा मक्खी केवल अण्डे देती है और घर (छत्ते) को सम्हाल कर रखती है। नर मक्खी बाहर जाकर फूलों से रस इकट्ठा कर लाती है। बढ़ई मक्खी वृक्षों में या काठ में छेद करके स्थान बनाती है। राज मक्खी छत्ते तैयार करती है। अन्य विभाग की मक्खियों का भी काम अलग-अलग बँटा हुआ है। तारीफ़ की बात यह है कि भिन्न-भिन्न विभागों की मक्खियाँ अपने-अपने काम में अत्यन्त निपुण और तत्पर होती हैं। मधुमक्खियों की एकता और सङ्गठन की परीक्षा करनी हो तो इधर-उधर उड़ती हुई किसी अकेली मक्खी को छेड़ दीजिए। देखिएगा वह उड़ कर फ़ौरन छत्ते पर जाती है और वहाँ अपने साथियों को ख़बर देती है। फिर झुण्ड के झुण्ड मक्खियाँ उड़कर अपराधी मनुष्य पर आक्रमण करती हैं और ऐसे भीषण रूप से उसका पीछा करती हैं कि पानी में डूबने पर भी जान नहीं बचती। परन्तु अपराधी मनुष्य के पास ही यदि कोई दूसरा निर्दोष व्यक्ति खड़ा हो तो मक्खियाँ उसकी ओर देखेंगी भी नहीं। यह मधुमक्खियों के सुविकसित न्याय-बुद्धि का एक सुन्दर उदाहरण है।

चींटियों और मधुमक्खियों की ही तरह बन्दर, भालू, हिरन, सूअर, तोता, कबूतर, चूहा, तितली प्रभृति सभी पशु-पक्षियों और कीट-पतङ्गों में सामाजिक व्यवस्था पाई जाती है। इससे मालूम होता है कि सामाजिक सङ्गठन मनुष्य जाति की कोई विशेषता नहीं है। यदि विचार करके देखा जाय तो इस क्षेत्र में मनुष्य अभी पशु से बहुत-कुछ सीख सकता है।

कला का भी पशुओं में अभाव नहीं है। कला में पशुओं का मुक़ाबला कर सकना मनुष्य के लिए सर्वथा असम्भव है। सब कलाओं में हृदय को हिलाने वाली कला सङ्गीत है। पर सङ्गीत में कोकिल के साथ कौन गायनाचार्य प्रतिद्वन्द्विता कर सकते हैं? ध्यानपूर्वक देखने से मालूम होगा कि पशु ही वास्तव में कला के प्रमाण हैं। पशुओं का कला-कौशल ही वह आदर्श है जिसे मनुष्य अनुकरण करने की चेष्टा करता है। सङ्गीत के स्वरों के नाम पर विचार करने से यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जायगी। षड्ज, ऋषभ, पञ्चम आदि नामों से साफ़ ज़ाहिर है कि सङ्गीत में पशु ही मनुष्य का मार्ग-दर्शक है। लोग सङ्गीत में वही तरङ्गायित भाव लाने का यत्न करते हैं जो कोयल के पञ्चम स्वर में है। पर इस यत्न में अभी उन्हें सफलता नहीं मिली है। इस विद्या में मनुष्य अभी पशु से बहुत पीछे है।

यह तो हुई ललित कला की बात; अब गृह-निर्माण कला, नगर-निर्माण कला, बड़ी-बड़ी सड़कें, सुरङ्ग, पुल, नहर, बाँध आदि बनाने की कला पर भी विचार

कीजिए। इन क्षेत्रों में शताब्दियों के वैज्ञानिक अनुसन्धान और अनुभव के बाद, स्टीम, एलेक्ट्रिसिटी, मशीनों और औज़ारों की सहायता से, मनुष्य आज जो कुछ भी कर सकता है, उससे अधिक चमत्कारपूर्ण कार्य पशु-जगत में, बिना किसी औज़ार के, न जाने किस युग से होते चले आ रहे हैं। समुद्र में एक प्रकार की मछली होती है, जो एलेक्ट्रिसिटी पैदा कर सकती है। यह अपनी एलेक्ट्रिसिटी से किसी को वैसा ही गहरा आघात पहुँचा सकती है, जैसा हम लोग बैटरी से कर सकते हैं। एक दूसरी मछली निशाना मारने में मनुष्य से कहीं अधिक निपुण है। यह पानी के बूँदों की गोली चला कर मक्खियों को इस तरह भिगा देती है कि वे सीधे उसके मुँह में जा गिरती हैं। ऐसा पक्का निशाना मार सकने वाले व्यक्ति मनुष्यों में कितने हैं? कई पशु एञ्जिनियरिङ्ग की विद्या में ऐसे पारङ्गत हैं कि उनकी कला पर मुग्ध हो जाना पड़ता है।

उत्तरी अमेरिका और कैनेडा में एक प्रकार का ऊद-बिलाव पाया जाता है। इसे गहरे जल से बहुत प्रेम है। यह अपने रहने के लिए नदियों में बाँध बाँध कर उनके जल को रोक देता है। जैसे हमारे एञ्जिनियर मकान, कारख़ाना अथवा पुल आदि बनाने के पहले उसके लिए उपयुक्त स्थान खोजते हैं, वैसे ही यह जन्तु बाँध बाँधने के पहले यह अच्छी तरह देख लेता है कि उसके लिए कौन सा स्थान उपयुक्त होगा। जहाँ नदी के किनारे दोनों ओर बहुतायत से वृक्ष पाए जाते हैं वहीं यह बाँध बनाना आरम्भ करता है। यह वृक्षों को अपने पैने दाँतों से काट-काट कर गिरा देता है। जब बहुत से वृक्ष गिर जाते हैं तब यह उन्हें पानी के बहाव की सहायता से खींच कर नदी में ले जाता है; वहाँ उन्हें नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे तक बिछा देता है; फिर मिट्टी, कङ्कड़, पत्थर इत्यादि लाकर उन पर डाल देता है। इससे नदी के आर-पार एक मज़बूत दीवार खड़ी हो जाती है, जिससे नदी का प्रवाह बिलकुल रुक जाता है। इससे वहाँ एक गहरा जलाशय तैयार हो जाता है। जब यह जन्तु समझता है कि पानी बहुत ज़्यादा हो गया तो बाँध को एक जगह काट देता है और फालतू पानी बह जाने पर पुनः उसकी मरम्मत कर देता है। जब यह देखता है कि किनारे के सभी वृक्ष कट गए और दूर से वृक्षों को ढोकर लाने में कठिनाई होती है तो यह नदी की धारा को एकदम बन्द कर देता है। इससे नदी का पानी बढ़ कर दोनों किनारे की भूमि पर फैल जाता है। तब यह जन्तु वृक्षों की जड़ तक नहर खोदता है और उन नहरों की सहायता से वृक्षों को काट कर नदी में बहा लाता है। जब यह देखता है कि नदी का प्रवाह बहुत तेज़ है और उसके सामने यह सीधा बाँध नहीं तैयार कर सकता तब यह बाँध को टेढ़ा करके बनाता है। यह बाँध अर्द्धवृत्ताकार होता है और उसका टेढ़ा भाग नदी के प्रवाह के ऊपर की ओर बढ़ा रहता है। इस प्रकार वस्तुओं को टेढ़ी कर देने से उनकी मज़बूती बहुत बढ़ जाती है। यह आधुनिक एञ्जिनियरिङ्ग का एक बहुत बड़ा सिद्धान्त है। आजकल जितने बड़े-बड़े पुल, इमारत, मशीनें आदि बनती हैं, उनमें इस सिद्धान्त से बहुत काम लिया जाता है। जन-साधारण इस सिद्धान्त को नहीं जानते, पर यह पशु इससे अच्छी तरह परिचित है। अपने लिए मकान बनाने और उसमें आने-जाने के लिए सुरङ्ग खोदने में भी यह जन्तु ऐसे-ऐसे उपायों से काम लेता है, जिन्हें देख कर यह मान लेना पड़ता है कि इसे आधुनिक एञ्जिनियरिङ्ग के सिद्धान्तों का प्रकाण्ड ज्ञान है।

अब एक दूसरे एञ्जिनियर को देखिए। अर्जेनटाइन राज्य में चूहे की जाति का एक जानवर पाया जाता है, जिसे वहाँ की भाषा में 'विसकच' (Viscacha) कहते हैं। इस जाति के जानवरों ने अपने रहने के लिए ज़मीन के भीतर गाँव के गाँव और शहर के शहर बसा लिए हैं। वे अपने लिए बड़े सुन्दर मकान बनाते हैं, जिनमें कई कोठरियाँ और दरवाज़े होते हैं। उनके नगरों में सड़कों, गलियों और सुरङ्गों की जैसी वैज्ञानिक व्यवस्था है, वैसी जन-साधारण की बस्तियों में नहीं पाई जाती। इनके रास्ते, मिट्टी के गिरने से, कभी-कभी बन्द हो जाते हैं। इससे विसकचों के गाँव का गाँव ज़मीन के नीचे क़ैद हो जाया करता है। ऐसी विपत्ति में पास-पड़ोस के विसकच अपने पीड़ित भाइयों की जो सहायता करते हैं वह मनुष्य-समाज के लिए अनुकरणीय है। पड़ोस के गाँवों से झुण्ड के झुण्ड विसकच दौड़ पड़ते हैं और रास्तों को खोद कर उस गाँव वालों को बाहर निकाल लाते हैं। इन जानवरों को अपने घरों को सजाने और सुन्दर बनाने की भी बड़ी चिन्ता

रहती है। बाहर जब कोई सुन्दर काँच, पत्थर, हड्डी अथवा पर मिल जाता है, ये उसे फ़ौरन उठा लाते हैं और घर में इस तरह रखते हैं, जिससे घर की सुन्दरता बढ़ जाय।

पशु-जगत में एञ्जिनियरिङ्ग के और भी उदाहरण देखिए। चींटी, दीमक, मधुमक्खी आदि की गृह-निर्माण कला जितनी विकसित है, उसे देख कर हम आसानी से समझ सकते हैं कि जिन वैज्ञानिक सिद्धान्तों को हम लोगों ने शताब्दियों के कष्टमय परिश्रम के बाद आविष्कृत किया है, उनसे ये छोटे-छोटे पशु-पक्षी और कीट-पतङ्ग न जाने कितने युगों से परिचित हैं। इनके मकान जितने सुन्दर, जितने स्वच्छ और स्वास्थ्यकर होते हैं, हम लोगों के मकान उतने स्वच्छ और स्वास्थ्यकर अभी तक नहीं हो सके हैं। केवल दाँत और नख की सहायता से ये लोग जैसी सुन्दर-सुन्दर चीज़ें बना लेते हैं, हम लोग अपने समुन्नत आरे, रन्दे और रुखानी से अभी तक वैसी सुन्दर चीज़ें नहीं बना सके हैं। बेचारे ऊदबिलाव के पास क्या है? केवल दाँत और नख द्वारा वह जैसा अद्भुत बाँध तैयार कर लेता है, वैसा यदि मनुष्य को तैयार करना हो तो न जाने कितने सामान, कितने मज़दूर, कितने द्रव्य की आवश्यकता होगी। ऐसे कार्यों में हम लोगों के सामने द्रव्य सम्बन्धी जो भयानक कठिनाइयाँ आ उपस्थित होती हैं, बेचारा ऊदबिलाव उन कठिनाइयों और चिन्ताओं का स्वप्न भी नहीं देख सकता। जिस कार्य को वह बात की बात में कर लेता है, उसीके लिए हमें नाना कष्ट उठाने पड़ते हैं, हज़ारों तकलीफ़ें झेलनी पड़ती हैं। ऐसी अवस्था में इन पशुओं के मुक़ाबले में, कला में, हमरी श्रेष्ठता कहाँ प्रमाणित होती है?

केवल शारीरिक शक्ति, चरित्र, सङ्गठन और कला में ही नहीं, जीवन के सभी क्षेत्रों में पशु मनुष्य का आदर्श है। इच्छाओं और प्रवृत्तियों में भी मनुष्य का आदर्श पशु ही है। इच्छा से प्रवृत्ति होती है। सब इच्छाओं का सामान्य नाम 'बढ़ना' कह सकते हैं। 'बढ़ने' की इच्छा मानव और पशु दोनों में समान भाव से विद्यमान है। यह इच्छा तीन रूप से प्रगट होती है, धन-सम्पत्ति में बढ़ने की इच्छा, संख्या अथवा परिवार में बढ़ने की इच्छा, यश तथा प्रसिद्धि में बढ़ने की इच्छा। इन्हीं इच्छाओं को शास्त्रकारों ने एषणा नाम दिया है। द्रव्य या मात्रा में बढ़ने की इच्छा को वित्तैषणा, स्त्री-पुत्रादि द्वारा संख्या में बढ़ने की इच्छा को दारैषणा वा पुत्रैषणा, और समाज में रहने तथा कीर्त्ति पाने की इच्छा को लोकैषणा कहा है। ये तीनों एषणाएँ जैसे मनुष्य में वैसे ही पशु में भी पाई जाती हैं। दोनों में अन्तर केवल यह है कि पशु इनमें आदर्श है, मनुष्य उस आदर्श का अनुकरण करने वाला।

धन एकत्र कर रखने की इच्छा में मनुष्य का आदर्श भ्रमर तथा चींटी हैं। परिमित द्रव्य से कोई तृप्त नहीं होता है। 'और' 'और' की आकांक्षा सबको रहती है। सौ रुपया मिले तो दो सौ पाने की इच्छा, दो सौ मिले तो चार सौ की, और चार सौ भी मिल जाय तो 'और' की कामना बनी ही रहती है। मनुष्य और पशु दोनों का यही हाल है। दारैषणा वा पुत्रैषणा अर्थात् स्त्री और परिवार पाने की इच्छा भी मनुष्य और पशु दोनों में समान है। कामशक्ति, सन्तानोत्पादन की शक्ति दोनों में है। उसी शक्ति से वे स्त्री से मिलते हैं। स्त्री-प्रसङ्ग में सुख होता है। उस सुख के लिए मनुष्य और पशु दोनों विह्वल होते हैं और उसकी प्राप्ति के लिए अनेक प्रयत्न करते हैं, नाना कष्ट झेलते हैं। इस सुख की वासना इतनी प्रबल है कि इससे जीव को कभी तृप्ति होती नहीं दिखाई देती। 'और' 'और' की वासना सदा बनी रहती है। स्त्री-पुरुष के संयोग से सन्तान की उत्पत्ति होती है। सभी प्राणी अपनी सृजन शक्ति का, अपने रङ्ग-रूप की सन्तान पैदा करने में, उपयोग करते हैं। सन्तान को संसार में प्रवेश करने योग्य बनाने के लिए भी सभी प्राणी अपने-अपने ढङ्ग से उन्हें पाल-पोस कर बड़ी करते हैं। ऐसा करना प्रत्येक जीव का धर्म है। परन्तु इस धर्म के पालन में पशु जितनी तत्परता, जितनी कर्त्तव्य-निष्ठा दिखाता है, मनुष्य नहीं। जानवर अपने बच्चे को कभी मैला-कुचैला नहीं रहने देता; बच्चे के शरीर पर उसने जहाँ कोई गन्दगी देखी कि उसे फ़ौरन चाटना शुरू कर देता है और चाटते-चाटते उसे पूर्णतः निर्मल बना देता है। मनुष्य अपने बच्चों की सफ़ाई पर इतना ध्यान कभी नहीं देता। मनुष्य के बच्चों की अपेक्षा कुत्ते और बिल्लियों के बच्चे अधिक साफ़ रहते हैं, यह तो हम सब लोगों ने ही देखा होगा। बच्चों के लालन-पालन के बाद उनकी शिक्षा का समय आता

और "मेरे" का व्यवहार, मनुष्य तथा पशु दोनों में समान है। दोनों के बीच सब क्षेत्रों में समानता दीखती है। फिर मानव तथा पशु में अन्तर कहाँ है? दोनों के बीच में रेखा कहाँ खींची जा सकती है?

अन्तर की रेखा—मानव धर्म

रूहे वाहिद रूहे इन्सानी बुअद।

इन्सान एक देखता है। मनुष्य "मेरा" की ममता त्याग कर केवल "मैं" में सन्तुष्ट रहता है। मानव वाह्य विषयों में सुख नहीं ढूँढ़ता। वह परतन्त्र नहीं, स्वतन्त्र है। यही पशु तथा मानव में अन्तर है। यही मानव धर्म है। एक न देखे, सुख की खोज में नाना विषयों के पीछे भटकता फिरे, और मानव भी रहे, यह असम्भव है। द्वैत प्रपञ्च को छोड़ कर अद्वैत में आना, सांसारिक भोगों में सुख नहीं है, यह जान कर विषयों से अलिप्त हो जाना—यही मानव का मानवत्व है।

द्वैत को देखते-देखते मानव को उसमें शङ्का होने लगती है। नाना प्रकार के सांसारिक भोगों से सुख पाने का प्रयत्न करते-करते मनुष्य को बार-बार कष्ट ही उठाना पड़ता है; आत्यान्तिक सुख कभी नहीं मिलता। तब वह सोचने लगता है कि क्या इस संसार में सचमुच सुख कोई वस्तु है, जिसके पीछे लोग दौड़े जा रहे हैं? क्या दारा, सुत, परिवार, धन, सम्पत्ति, राज्य, यश, इनमें सचमुच कोई सुख है अथवा यह सब केवल मृगतृष्णा ही है? यह सोचते-सोचते मनुष्य बेचैन हो जाता है। उसके मन में विविध प्रकार की शङ्काएँ उठने लगती हैं। सत्य क्या है? असत्य क्या है? दुःख क्या है? सुख क्या है? नित्य क्या है? अनित्य क्या है? इस प्रकार की अनेक शङ्काएँ उसके चित्त में उत्पन्न होती हैं। वह निरन्तर इस प्रश्न पर विचार करने लगता है कि वह जिन विषयों को भोग रहा है, वे वास्तव में सत्य हैं अथवा असत्य, जिन क्रियाओं को कर रहा है वे सचमुच सुखद हैं या दुखःद, उन क्रियाओं को करना मनुष्य का धर्म है अथवा नहीं।

यह शङ्का, दृश्य प्रपञ्च में यह अविश्वास, सांसारिक सुख से यह विमुखता केवल मानव में होती है। मानव मननधर्मा है। सोचने वाला है। मनु, टु थिङ्क, विचारना, मनन करना, इसी से 'मानव' शब्द सिद्ध होता है। मनन करने वाले को ही ये शङ्काएँ होती हैं। पशुओं में । मानव में समान धर्म अनेक हैं, पर यही एक बात है जो कितना ही खोज करने पर भी मानवेतर जीव-जन्तु में नहीं मिलती। यही एक वस्तु है जिससे मानव का मानवत्व है, यही एक ध्रुव रेखा है जो मानव तथा पशु-जगत के क्षेत्र को नियत करती है।

मानव संसार पर दृष्टि दौड़ाता है। वह क्या देखता है? "मेरा" की माया में फँस कर लोग व्यवहार में लीन हैं, अशाश्वत सुख के पीछे दौड़े जा रहे हैं, पूर्ण शुद्ध सुख को भूल गए हैं, अपना सुख वाह्य जगत में खोजते हैं, पशुवत दूसरे पर (विषय पर) अवलम्बित हैं—उसीसे उन्हें सुख और दुःख होता है। वह स्पष्टतया देखता है कि जहाँ सुख है, वहाँ दुःख है; वहीं पशुता है; जहाँ परावलम्बन है, वहाँ दासता है; जहाँ स्वराज्य नहीं, वहाँ पर राज्य है, विषयासक्ति है। "मेरा" का राज्य द्वैत का राज्य है, विषय का चक्र है, अहङ्कार की प्रकट मन्त्रशाला है। यह देख उसके हृदय में विह्वलता होती है। वह वैराग्य में सन जाता है; संसार के अशाश्वत सुखों को लात मार कर अपना जन्म-स्वत्व पाने की चेष्टा करता है; पशु-राज्य से निकल कर उस राज्य में प्रवेश करने का यत्न करता है, जो मनुष्य का अपना राज्य है। तिलक ने कहा है—"स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।" भौतिक जगत में यह सत्य है। साथ-साथ मानव धर्म के विषय में भी यह सत्य है। विषय-वासनाओं की ग़ुलामी छोड़ कर स्वराज्य प्राप्त करना, "मेरा" के राज्य को लात मार कर "मैं" के राज्य में आ जाना मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी अधिकार को पाने के लिए मानव की उत्पत्ति हुई है। जो सच्चा मानव है, जो सभी कामों को विवेक-बुद्धि के साथ करता है, उसकी आँखों के सामने सांसारिक भोगों की अनित्यता झलकने लगती है; वह इस रहस्य को देखने लगता है कि अनित्य विषयों का चाहे जितना उपभोग किया जाय, वह विशुद्ध सुख नहीं मिल सकता जिसके लिए मनुष्य के प्राण व्याकुल हैं। यह सोच कर वह विषयों से मुँह मोड़ लेता है, अपने में निरत हो जाता है।

महाभारत में राजा ययाति की कथा है। ययाति ने एक हज़ार वर्ष तक राज्य किया। जब उनका शरीर जराजीर्ण हो गया और संसार से विदा लेने का समय आया तो ययाति ने देखा कि इतने दिनों तक राज्य के सभी सुख, संसार के सभी भोग भोगने पर भी उन्हें

विषय-सुख से तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने मन की वेदना अपने पुत्र पर प्रगट की और कहा कि हृदय में सुख-भोग की लालसा लेकर मरने से मेरी मुक्ति नहीं हो सकती। तुम अपना यौवन मुझे दो, जिससे मैं एक जन्म और भी विषयों का भोग करके उनकी अनित्यता को देख सकूँ। पितृभक्त पुत्र ने अपना यौवन पिता को दे दिया और उनका वार्द्धक्य स्वयं ले लिया। ययाति ने पुत्र का यौवन लेकर एक हज़ार वर्ष और राज्य भोगा; संसार में जितने भी सुख के उपकरण, भोग के सामान, विलास के साधन थे, सबका जी भर कर आस्वादन किया। परन्तु उन्हें तृप्ति नहीं हुई। अन्त में ययाति ने कहा—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
पृथिव्यामस्ति यत्किञ्चित् हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
तत्सर्वं नाऽलमेकस्य इति मत्वा शमं व्रजेत्॥

विषयों के उपभोग से काम की शान्ति नहीं होती; अग्नि में घी के समान यह वासनाओं को और भी उग्र बना देता है। संसार में जितनी भी सम्पत्ति है, जितने पशु और जितनी स्त्रियाँ हैं, सब यदि एक मनुष्य को दे दी जायँ तो भी उसकी वासनाएँ तृप्त नहीं हो सकतीं, यह समझ कर विषय को त्याग देना चाहिए—विषय से विमुख होकर शान्ति की खोज करनी चाहिए।

एक ऐसी ही कहानी उपनिषद में है। जब याज्ञवल्क्य वृद्ध हो गए और घर छोड़ कर तपस्या करने के लिए जङ्गल जाने लगे तो अपनी दोनों स्त्रियों, गार्गी और मैत्रेयी, को बुला कर कहा—मैंने तुम लोगों के साथ बहुत सुख भोगा, अब कुछ दिन तपस्या करना चाहता हूँ, विदा दो। तुम लोग घर और सम्पत्ति लेकर आनन्द से रहना।

मैत्रेयी ने पूछा—

यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्याम्।

महाराज! यदि यह समस्त पृथ्वी द्रव्य से पूरित हो जाय तो क्या उसे लेकर मैं अमृता हो सकूँगी?

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—

नेति × × × यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितँ स्यादमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन।

नहीं। जैसे अन्य उपकरणवान लोग जीते हैं, वैसा ही तुम्हारा भी जीवन होगा। धन से अमृतत्व नहीं मिल सकता।

मैत्रेयी ने कहा—

येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहि।

जिस धन से मैं अमृता नहीं हो सकती, उस धन को लेकर मैं क्या करूँगी? यदि आप जानते हैं तो मुझे वह बात बताइए जिससे मैं अमृता हो सकूँ।

याज्ञवल्क्य पत्नी की यह वाणी सुन कर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने मैत्रेयी को संसार की असत्यता, विषयों की अनित्यता, सुख-दुख की असारता का उपदेश दिया; बताया कि "मेरा" का राज्य छोड़ कर "मैं" के राज्य में प्रवेश करो, अनित्य सुखों को त्याग कर नित्य मानव धर्म की साधना करो।

यह धर्म ही मानव का मानवत्व है। इसकी साधना करना ही, सुख-दुःखों के बन्धन से मुक्त हो जाना ही परम पुरुषार्थ है। विषयों का साथ छोड़ने से मनुष्य विषय-जनित सुख-दुःख, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक, धर्माधर्म, सदाचार-दुराचार, भक्ष्याभक्ष्य, कर्तव्याकर्तव्य, मानापमान, आदि समस्त द्वन्द्वों से मुक्त हो जाता है; "मेरा" के बन्धन से छूट कर "मैं" के अनन्त अशोक, अभय राज्य में पहुँच जाता है। "मैं" के राज्य में पहुँच कर मानव सदा "मैं हूँ", "मैं हूँ" के जप में लीन रहता है; अपने स्वरूप को पहचान जाता है; एक देखने लगता है; अमृत हो जाता है।

पर जब तक शरीर है, तब तक पूर्णरूपेण विषय का त्याग असम्भव है। शरीर रहते उसका ज्ञान मानव को होता रहता है। वह देखता है कि "मैं" का शरीर अधिष्ठान है। "मैं" को पाना चाहें तो शरीर के प्रति भी कुछ कर्त्तव्य है। सब शरीर "मैं" के ही हैं। क्योंकि सब में वही एक "मैं" रमता है। अतः मानव "मैं" तथा शरीर के द्वन्द्व जगत में रहते हुए, पूर्णतया "मैं" के राज्य में जाने की अर्थात स्वराज्य-प्राप्ति की चेष्टा करता है। सब शरीरों में अपने "मैं" को देखते-देखते, "मैं" के वृत्त को विशाल करते-करते, केन्द्र के साथ एक महान समरेखा बना देता है। उस समरेखा पर सुअवस्थित रहता है। जल में, थल में, पृथ्वी और आकाश में, सूरज और

तारों में, नीच और ऊँच में, पापी और पुण्यात्मा में, मित्र और शत्रु में, सर्वत्र "मैं" ही "मैं" देखने लगता है; "मैं" के राज्य में पहुँच जाता है। स्वराट हो जाता है। इसी स्थिति को लोग जीवन्मुक्ति कहते हैं। यही परम पुरुषार्थ है, यही स्वराज्य है, यही मोक्ष है, निर्वाण यही है, शून्य यही है। इसी "मैं" की प्राप्ति, अद्वैत का लाभ, शाश्वत सुख की अनन्त शीतलता, मानव धर्म है। यही अध्यात्म-तत्व है। यही है! यही है!! यही है!!! *

* लेखक महोदय द्वारा काशी-विद्यापीठ-सुलभ-व्याख्यानमाला में दिए गए एक व्याख्यान के आधार पर।

—सम्पादक 'चाँद'

जॉनबुल—हाय बाप रे! बड़ा दर्द होता है। रात-दिन खाना और सोना हराम हो रहा है!
लेडी-डैण्टिस्ट—मुझे बड़ा खेद है महाशय, आपकी अक़्ल की दाढ़ सड़ गई है!!

अद्भुत सौदा

[पं० तारादत्त मिश्र, बी०ए० (ऑनर्स), काव्यतीर्थ]

अपनी स्त्री के मरने के बाद कल्लू मदारी को अपने दोनों लड़कों जग्गू और वीरजू के पालन-पोषण का भार अपने ऊपर लेना पड़ा। उसके पास एक बन्दर था। वह उसे बेटा रघुआ कह कर पुकारा करता था और वास्तव में उसे बेटे की तरह प्यार भी करता था। जब घर में स्त्री थी तो उसे इन लड़कों के विषय में विशेष चिन्ता न थी। वह रघुआ को लेकर दूर-दूर शहरों और देहातों में निकल जाया करता था और महीने दो महीने बाहर ही रह, रघुआ को नचा कर अपने परिवार के खाने से अधिक ही पैदा कर लेता था। पर अब ऐसा करने से लाचार हो गया। घर में दो लड़कों के सिवा और कोई न था। अब उसे अपने हाथ से रसोई बनानी पड़ती थी। एक रात भी घर से बाहर रहना उसके लिए कठिन हो गया। यद्यपि अभी भी वह अपनी जीविका के लिए रघुआ को नचाने जाया करता था, पर आसपास के गाँवों में नचा कर ही फिर शाम तक घर लौट आता था। धीरे-धीरे उसकी आमदनी कम होने लगी। कारण एक ही नाच को देखते-देखते सबों की, यहाँ तक कि बच्चों की भी, उत्सुकता कम हो गई थी। आमदनी के कम होने से उसे बहुत कष्ट होने लगा। कभी-कभी तो रात-रात भर भूखे ही रह जाना पड़ता। परन्तु अपने ऊपर सब कष्टों को सह कर भी उसने बच्चों तथा रघुआ को कभी कष्ट न होने दिया। इन कष्टों के रहते हुए भी वह भविष्य-सुख की आशा से उत्साह के साथ अपना जीवन बिताने लगा, जैसे प्यास से व्याकुल कोई पथिक सामने कुछ दूर पर बहती हुई नदी को देख उत्साहपूर्वक लपकता हुआ आगे बढ़ा चला जाता है।

इसी तरह कुछ वर्ष बीत गए। जब जग्गू और वीरजू सयाने हुए और अच्छी तरह काम-धाम करने के योग्य हो गए तो कल्लू ने सोचा—"अब मेरा कष्ट दूर हुआ। लड़के कमाएँगे और मैं बैठे-बैठे खाऊँगा। जो मेरी इच्छा होगी वह करूँगा। दिन-रात रघुआ के साथ खेलता रहूँगा। बेटा रघुआ को भी मेरे साथ बहुत कष्ट हुआ है, इसे भी सुख होगा। जग्गू और वीरजू इसे बड़े भाई की तरह मानेंगे।" इस सुख की कल्पना में उसे जितना आनन्द हुआ शायद उतना आनन्द उस सुख की वास्तविक अवस्था में भी न होता।

जग्गू और वीरजू को अपने पिता की जीविका पसन्द न आई। उन लोगों ने खेती करना आरम्भ किया। खेती से खूब ही लाभ हुआ और उसी लाभ से उन लोगों ने एक गाय ख़रीदी। गाय को चराने का भार कल्लू के ऊपर पड़ा। पहले तो कल्लू को यह भार कठिन जान पड़ा। वह स्वतन्त्र विचार का था, उसे लड़कों की यह ग़ुलामी पसन्द न आई। अतएव इस काम में उसने अनिच्छा प्रगट की। पर लड़कों की बात से मालूम हुआ कि बिना कुछ काम किए, घर में योंही पड़े रहने से उसका निर्वाह न होगा। अब उसे मालूम हो गया कि पहले उसने जो स्वतन्त्रता की कल्पना की थी वह कोरी कल्पना मात्र थी। उसने जिसे जल समझा था वह पास आने पर मरीचिका निकली।

२

कल्लू पहले बन्दर का नचाने वाला मदारी था, अब चरवाहा हो गया। अब उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध भी गाय को खोल कर चराने के लिए ले जाना पड़ता था। एक तो अवस्था ढल गई थी, दूसरे इस काम में उसे उत्साह भी न था। अतएव उसके लिए यह भार दुस्सह हो गया। इस पर भी लड़कों को अपने पिता की परवाह कम ही थी। वही गाय को चराता था, पर लड़कों के मन में इतना भी विचार न था कि वे अपने पिता को थोड़ा सा दूध दे दें। किसी तरह सूखी रोटी मिल जाती थी, यही बहुत था। धीरे-धीरे वह दुबला होने लगा। पर इसकी चिन्ता किसी को भी न थी। यदि चिन्ता थी तो केवल रघुआ को। कल्लू के दोनों लड़कों ने अपनी

पितृ-भक्ति का परिचय दे दिया था, पर खुआ वास्तव में अभी भी उसका बड़ा बेटा था।

जब प्रातःकाल कल्लू गाय को खोल, चराने के लिए निकलता तब खुआ भी पीछे-पीछे जाता। पास ही जङ्गल में मवेशियों की चरागाह थी। वहाँ पहुँच किसी वृक्ष के नीचे कल्लू बैठ जाता और खुआ के साथ खेल-खेल कर अपने दिल का अरमान पूरा करता था। कभी-कभी ठण्डी हवा के लगने से जब कल्लू को नींद आ जाती तब खुआ गाय की रखवाली करता। बीच-बीच में एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर उछल-उछल कर आम, जामुन, अमरूद, नासपाती आदि फलों को भरपेट खाता और कल्लू के लिए भी जमा करता। कल्लू का दुबला-पतला शरीर देख कर खुआ के मन में बड़ी चिन्ता होती थी। वह भली भाँति समझता था कि घर पर लड़के इसकी परवाह नहीं करते तथा इसे कभी दूध भी नहीं देते। इसी विचार से जब कभी नींद में कल्लू का मुँह खुल जाता तो खुआ पत्ते के दोने में दूध दुह कर उसके मुँह में डालने लगता। इसी बीच में कल्लू की नींद खुल जाती और सामने खुआ को दूध पिलाते देख उसका हृदय प्रेम से गद्गद हो उठता। वह उसे छाती से लगा लेता और आनन्द में इस तरह तन्मय हो जाता जैसे एक योगी ब्रह्म के ध्यान में तन्मय हो जाता है।

इन दिनों कल्लू का स्नेह खुआ पर और भी बढ़ गया था। उसे अपने लिए विशेष परवाह न थी, पर वह खुआ को सुखी देखना चाहता था। वह अपने बेटों से बराबर ही झगड़ा किया करता था कि खुआ को कम से कम आधा सेर दूध देना चाहिए। पर लड़के कभी देने को तैयार न होते। अतएव वह कभी-कभी दूध चुरा लाता और छिप कर खुआ को पिलाता। लड़के दूध की चोरी हो जाने पर बहुत रञ्ज होते और बाप को डाटते। आख़िर एक रोज़ बीरजू ने अपने बाप को चोरी से दूध पिलाते देख लिया। फिर क्या था, लगा खुआ को मारने, बहुत पीटा, कल्लू ने बीच में आकर छुड़ाया। बीरजू क्रोध से लाल-लाल आँखें किए पिता को धमकाते और गुनगुनाते बाहर चला गया।

३

मनुष्य अपने ऊपर किए गए अत्याचारों को तो किसी तरह सह सकता है, पर अपने प्रियजनों के ऊपर अत्याचार होते देख कर मुर्दे-मुर्दे मनुष्यों का ठण्डा रक्त भी खौलने लगता है। ठीक वही हालत कल्लू की हुई। आज तक न मालूम उसके स्वतन्त्र विचार कहाँ लुप्त हो गए थे, न मालूम क्यों वह लड़कों का ग़ुलाम बना हुआ था। पर आज खुआ के ऊपर होने वाले अत्याचार ने उसके स्वतन्त्र विचारों को फिर से जागृत कर दिया। मुर्दे में फिर जान आ गई। उसे अपने में एक नई शक्ति का अनुभव होने लगा। फिर क्या था, खुआ को साथ ले घर से बाहर हुआ, प्रतिज्ञा कर ली कि इस घर में फिर न आऊँगा। खुआ कल्लू के पीछे चला, पर बीच-बीच में घूर-घूर कर पीछे की ओर देखता जाता था। उसके हृदय में जमू और बीरजू के प्रति स्नेह था। शायद वह चाहता था कि जाने के पहले दोनों भाइयों से मिल लूँ। रात चोट खाने का अफ़सोस उसके हृदय में ज़रा भी न था। पर जमू और बीरजू का हृदय द्वेष से भरा था। जाती बार उन लोगों ने पिता से भी मुलाक़ात न की, खुआ को कौन पूछे।

कल्लू फिर अपनी पुरानी जीविका पर आ डटा। खुआ बड़ा प्रसन्न था। कल्लू का मन अब बिलकुल निश्चिन्त हो गया। उसने अपना प्रदेश छोड़ दिया और अन्य-अन्य प्रदेशों में जाकर खुआ को नचाने लगा। एक जगह कहीं अड्डा जमा लेता और वहाँ कुछ दिन रह आसपास के देहातों में नचा, फिर दूसरी जगह चला जाता था। जहाँ जाता खँजड़ी बजाते ही लड़के जुट जाते, थोड़ी ही देर में आदमियों की ख़ासी भीड़ लग जाती। खुआ नाचने लगता। कभी सिपाही बन कर मालिक को सलाम करता, कभी जज बन कर फ़ैसला लिखता, कभी बजवैया बन कर खँजड़ी बजाता, कभी चरवाहा बन कर पीठ पर लाठी लेकर घूमता, कभी कहार बन कर खटोली ढोने का खेल दिखलाता। इस तरह अपनी अनेकों चाल तथा नाच से लोगों को मुग्ध कर देता। बीच-बीच में ऐसा मुँह बनाता कि लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते। बस खुआ की एक ही बार की नाच में कल्लू को काफ़ी पैसे मिल जाते थे। नाच ख़तम होने के बाद जब कल्लू आगे चलता तब खुआ पाँव से खुट-खुट करते कभी दाहिने, कभी बाएँ, पीछे की ओर हुलक-हुलक कर देखता हुआ उसके पीछे-पीछे चलता। जनता को ख़ुश कर कल्लू आनन्दित हो इस तरह आगे बढ़ता मानो एक राजा

लड़ाई में विजय प्राप्त कर अपने सेनापति के साथ अपनी राजधानी को लौट रहा हो।

शाम होते-होते कल्लू जब डेरे पर पहुँचता तो नित्य भोजन बनाता। उस समय रघुआ हमेशा चूल्हे के पास बैठा रहता था। वह सीझते हुए भात की गद्‌गद आवाज़ सुनने के लिए बहुत ही उत्सुक रहता था। कड़ाही में साग को डालने से जो छौंय से आवाज़ होती थी वह तो रघुआ के कानों में वीणा की ध्वनि से भी अधिक आनन्द पैदा कर देती थी। इसी तरह कल्लू और रघुआ का पिता-पुत्र-वत जीवन बीतने लगा।

४

एक बार कल्लू ने कलकत्ते के पास किसी गाँव में डेरा डाला। बाबू महेन्द्रनारायण राय वहाँ के एक प्रतिष्ठित धनी-मानी व्यक्ति थे। उन्हें बन्दर पालने की धुन थी। जब उन्होंने रघुआ को देखा तो उस पर लट्टू हो गए। रघुआ सचमुच बड़ा ही सुन्दर था। महेन्द्र बाबू ने कल्लू को बुला कर रघुआ को अपने हाथ बेच देने के लिए कहा। महेन्द्र बाबू के घर में बन्दरों की कमी न थी। वे रघुआ के बदले एक नहीं, बल्कि दो या तीन बन्दर तक देने को तैयार थे। उन्होंने कल्लू से उसका मनमाना दाम देना भी स्वीकार किया। पर कल्लू को रघुआ को देना किसी तरह स्वीकार न था। तब तो महेन्द्र बाबू को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने उसे बड़ा धमकाया। पर कल्लू दृढ़ था, वह टस से मस न हुआ।

डेरे पर लौट कर कल्लू ने विचारा कि कल इस गाँव को छोड़ दूँगा। इसी विचार से सब सामान ठीक कर रात में सो गया। इधर महेन्द्र बाबू ने सीधी अँगुली घी न निकलता देख रघुआ को उसी रात दो-एक आदमियों से चुरवा लिया। सवेरे उठ कल्लू ने देखा, रघुआ का पता न था। इधर-उधर सब जगह ढूँढ़ा, कहीं पता न लगा। समझ लिया हो न हो महेन्द्र बाबू ने कोई लकड़ी मारी है। वह बन्दर को खोजता हुआ उनके दरवाज़े पर गया, पर महेन्द्र बाबू ने उसे रघुआ के मूल्य में पाजी-बदमाश आदि कह कर गाँव से बाहर निकलवा दिया। कल्लू के मुँह से कोई शब्द भी न निकला। कारण, वह जानता था कि महेन्द्र बाबू के सामने किसी की आवाज़ तक न निकलेगी। केवल हृदय में मार्मिक व्यथा हुई। यह वियोग एक बन्दर का वियोग नहीं था। उसके हाथ से तो उसका बड़ा बेटा छीन लिया गया था।

रघुआ से बिछुड़ने के बाद कल्लू के मन में वैराग्य सा उत्पन्न हो गया। अब संसार में कोई भी अभिलाषा न रह गई। वह लौट कर घर भी न जा सकता था, कारण घर न जाने की प्रतिज्ञा कर ली थी। उसने सोचा, अब इस वृद्धावस्था में कुछ तीर्थ-भ्रमण कर लूं। पर इसके लिए विशेष रुपए की आवश्यकता थी। अतएव उसकी इच्छा कुछ रुपए पैदा कर लेने की हुई। भाग्यवश कलकत्ते में कहीं एक सरकस कम्पनी में उसकी नौकरी लग गई। इस कम्पनी में वह बन्दरों को अद्भुत-अद्भुत खेल सिखलाया करता था। जन्म भर बन्दर नचाते-नचाते वह इस कला में बहुत ही प्रवीण हो गया था। अपनी कार्य-कुशलता से एक ही वर्ष की नौकरी से उसके पास क़रीब २००) हो गए। पर उसका मन नौकरी में न लगता था गत एक वर्ष में रघुआ की याद से वह बहुत ही दुःखी रहा। बराबर रघुआ के बारे में सोचता रहता था। कभी-कभी रात-रात भर नींद नहीं आती और आती भी तो प्रायः रघुआ का स्वप्न देखता। रघुआ स्वप्न में आता था और उसके सामने थिरक-थिरक कर नाचने लगता था, पर जब कल्लू उसे पकड़ने के लिए आगे हाथ बढ़ाता तो उसकी नींद टूट जाती। रघुआ को कभी भी न पकड़ पाता।

दिन प्रति दिन कल्लू की चिन्ता बढ़ती गई, अतएव उसने नौकरी छोड़ दी। पास में कुल २०२) रुपए थे। उसने सोचा ये २०२) रु० हैं, इनमें कुछ रुपए तीर्थ-भ्रमण में ख़र्च करूँगा और बाक़ी रुपयों से अपनी ज़िन्दगी के बाक़ी दिन किसी तरह काट लूँगा।

५

माघ का महीना था। बहुत से यात्री प्रयाग कुम्भ मेला में जा रहे थे। कल्लू भी प्रयाग जाने के लिए कलकत्ते में गाड़ी पर बैठा। जब बर्द्धमान गाड़ी पहुँची तो गाड़ी से उतर पड़ा। कारण रघुआ की याद आ गई। महेन्द्र बाबू का गाँव बर्द्धमान स्टेशन के पास ही था। उसकी इच्छा हुई कि एक बार उस गाँव में जाऊँ और रघुआ को नहीं तो कम से कम उस स्थान को भी देख आऊँ, जहाँ रघुआ से वियोग हुआ था। वह इसी विचार से महेन्द्र बाबू के गाँव में पहुँचा। उनके दरवाज़े से

होकर वह ज्योंही निकल रहा था कि रघुआ पर दृष्टि पड़ी। रघुआ एक ज़ञ्जीर में बँधा उदास मुँह किए बैठा था। सचमुच कल्लू के हाथ से जब से निकला था तब से कभी प्रफुल्लित नहीं हुआ था। कल्लू का प्रेम उमड़ आया। रघुआ ने भी कल्लू को पहचान लिया और ज़ञ्जीर को दाँतों से काट कर उसके पास आना चाहा। पर ज़ञ्जीर का तोड़ना सहज न था। वह छटपटाने लगा। कल्लू भी आगे बढ़ा और उसके शरीर पर हाथ फेर उसे पुचकारने लगा। इसी बीच में महेन्द्र बाबू वहाँ पहुँच गए। कल्लू को देख कर उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। वे उसे चोर, बदमाश कह कर डाटने लगे। लोगों की भीड़ लग गई। कल्लू ने सबों से अपना पूरा परिचय देते हुए महेन्द्र बाबू से कहा—"बाबू जी, मेरा बन्दर दे दीजिए। मैं आपके पैरों पड़ता हूँ।" महेन्द्र बाबू के क्रोध का पारा और भी बढ़ गया, उन्होंने क्रोध भरे शब्दों में कहा—"हरगिज़ यह तेरा बन्दर नहीं है।" कल्लू ने फिर कहा—"ख़ैर आप ही का सही, मैं इसे मोल लेना चाहता हूँ। आप जो दाम कहें देने को तैयार हूँ।" महेन्द्र बाबू समझते थे कि इस दरिद्र के पास अधिक रुपए कहाँ से आएँगे। इसलिए उन्होंने कड़क कर कहा—"बड़ा रुपया वाला बना है, देगा २००) रुपए? यदि है तो निकालो।" कल्लू का चेहरा खिल उठा। शीघ्र ही मैले कपड़े से बँधी हुई एक गठरी महेन्द्र बाबू के सामने फेंक दी। महेन्द्र बाबू ने गिना, कुल २०२) थे। रुपए की लालच लगी। २००) रख लिया और २) लौटा कर रघुआ को छोड़ दिया। कल्लू रघुआ को लेकर आगे बढ़ा तो कुछ लोगों ने कहा—"कल्लू तुमने २००) मुफ़्त में फेंक दिए। तुम्हारी तीर्थयात्रा भी न हुई। इस बूढ़े बन्दर के साथ तुम्हें कौन सा सुख होगा?" कल्लू ने विश्वास और प्रेम भरे शब्दों में कहा—"भाइयो, मुझे इस कार्य में तीर्थ-यात्रा से कम फल नहीं हुआ है। २००) गए तो क्या, वर्षों का बिछुड़ा बेटा रघुआ तो मिल गया।"

गीत

[श्री० दिवाकरप्रसाद विद्यार्थी]

भूल जा, फिर यह गीत न गा।
कन्था के मुरझे प्रसून-दल हाय न यों बिखरा॥

(१)

हृदय अभी तक करता धक-धक,
अब तक निरख रही हूँ अपलक,
बुझता हुआ व्यथा का दीपक—
सजनि! न यों उकसा।

(२)

सहसा खुल पड़ता विस्मृति-पट,
वह रजनी, वह गङ्गा का तट,
आती याद सबों की झट-पट,
ज्वाला फिर न जला।

(३)

वह जीवन-इतिहास मनोहर,
निर्झर-नालों से झर-झर कर,
आज कँपा देगा गिरि-गह्वर,
प्रति कण-कण में छा।

(४)

बुझती व्यथा भभकती पल-पल,
क्या तुमको मिलता कलपा कल?
तन्द्रा के ये तार सुकोमल—
निर्दय! यों न कपा।

महात्मा सूरदास

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो। प्रीति पतङ्ग करी दीपक सों, आपै प्राण दह्यो॥
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सों, सम्पति हाथ गह्यो। सारङ्ग प्रीति करी जो नाद सों, सन्मुख बाण सह्यो॥
हम जो प्रीति करी माधव सों, चलत न कछू कह्यो। सूरदास प्रभु बिन दुख दूनो, नैनन नीर बह्यो॥

TWO IMPORTANT ANNOUNCEMENTS

SUBSCRIPTION REDUCED FOR ANNUAL SUBSCRIBERS
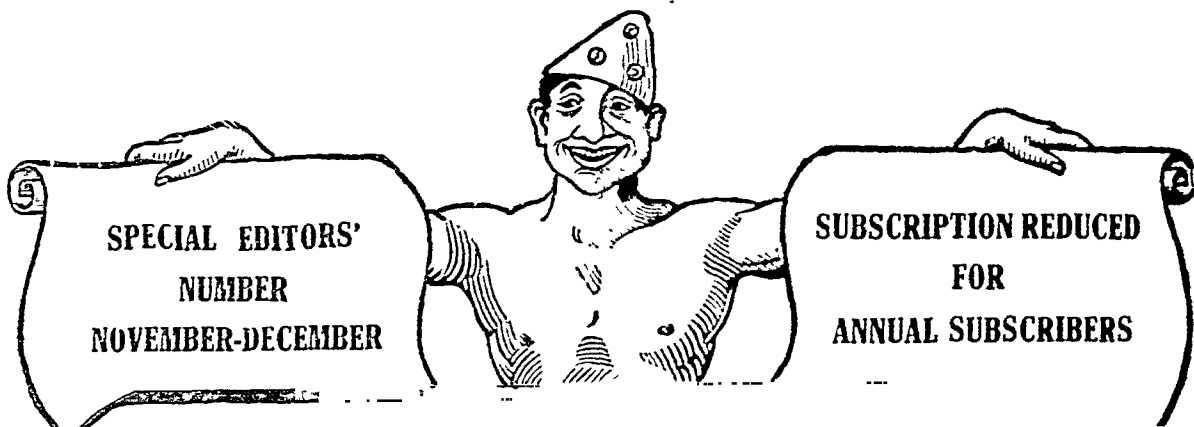
Telephone : 205

The 'CHAND'

Telegrams : CHAND

— Urdu Edition —

Editor : MUNSHI KANHAIYA LAL, M.A., LL.B., Advocate.

1. The Special Editors' Number will be the combined November-December issue.

It will be an unusually good number, more than 100 editors of different papers and magazines are contributing to this special number which will contain a large number of tri-colour and other illustrations also.

Price of this number is Rs. 3/- only. To Annual Subscribers Free.
This concession will not apply to new half-yearly subscribers.

2. Subscription has been reduced for annual subscribers who enroll at once.

To increase the already vast circulation and to meet the wishes of a very large number of readers, those who apply immediately, will get CHAND for one year for Rs. 6/8 instead of Rs. 8/- *and there will be no chance to cut down present features.*

DO NOT DELAY. SEND YOUR ORDER TODAY

Manager,
CHAND (Urdu Edition),
Chandralok, Allahabad.

कान्यकुब्ज-ब्राह्मण-परिचय

[श्री० रजनीकान्त शास्त्री, बी० ए०, बी० एल०]

युक्त प्रान्तस्थ कन्नौज नामक शहर भारत के विख्यात शहरों में से है। इसकी ऐतिहासिक ख्याति इतिहास के पृष्ठों पर अमिट अक्षरों से लिखी है। सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में थानेश्वर घराने का विख्यात सम्राट हर्षवर्द्धन, जो उत्तर भारत का अन्तिम शक्तिशाली हिन्दू सम्राट था, अपनी राजधानी थानेश्वर से हटा कर इसी कन्नौज में लाया था। इसी कन्नौज में उक्त प्रतापी सम्राट ने प्रसिद्ध चीनी परिव्राजक हुएनसाङ्ग के सम्मानार्थ एक विशाल सम्मेलन रचा था, जिसमें अनेक करद सामन्तगण, लाखों बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण, संन्यासी, महात्मा एवं विद्वान इकट्ठे हुए थे। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यही कन्नौज दिल्लीश्वर पृथ्वीराज के प्रतिद्वन्द्वी राजा जयचन्द की भी राजधानी हुआ था और यहीं पर सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में प्रसिद्ध पठान वीर शेर खाँ अकबर के पिता हुमायूँ को परास्त कर दिल्ली का बादशाह बन बैठा था।

अति प्राचीन काल में, यहाँ तक कि भगवान् रामचन्द्र के भी समय से पूर्व, कान्यकुब्ज नामक एक विख्यात देश भारत के उत्तरी भाग में अवस्थित था। सम्भवतः इस देश का प्रसिद्ध नगर इसी के नामानुसार कान्यकुब्ज कहलाया, जो कालान्तर में विकृत होकर कन्नौज शब्द में परिणत हो गया।

१—"कान्यकुब्ज" शब्द की व्युत्पत्ति

कन्याः कुब्जा यस्मिन् देशे स कन्याकुब्जः। निपातनात् कुब्ज शब्दस्य परनिपातः। पृषोदरादित्वात् "कन्याकुब्ज" शब्दः "कन्यकुब्ज" इति जातः। ततः स्वार्थेऽणि कृते 'कान्यकुब्ज' इति पदं सिद्धम्। जिस देश में कन्याएँ कुबड़ी हो गईं वह देश कान्यकुब्ज कहलाया।

२—"कान्यकुब्ज" नामकरण का इतिहास

कान्यकुब्ज देश का यह नामकरण क्यों हुआ? वहाँ की कन्याएँ कुबड़ी क्यों हो गईं? इसका वृत्तान्त वाल्मीकीय रामायण, बा० का०, अ० ३२—३३ में इस प्रकार लिखा है—

कुशनाभस्तु राजर्षिः कन्याशतमनुत्तमम्।
जनयामास धर्म्मात्मा घृताच्यां रघुनन्दन॥ १॥

अर्थ—विश्वामित्र जी कहते हैं कि हे रामचन्द्र! ऐल (चन्द्र) वंशीय प्रसिद्ध राजर्षि तथा धर्मात्मा कुशनाभ ने, जो महोदयपुर में निवास करते थे, घृताची नामक अप्सरा में सौ कन्याओं को उत्पन्न किया॥ १॥

तास्तु यौवन शालिन्यो रूपवत्यस्स्वलङ्कृताः।
उद्यान भूमिमासाद्य प्रावृषीव शतह्रदाः॥ २॥

अर्थ—वे कन्याएँ रूप और यौवन से सम्पन्न तथा भूषणों से सुसज्जित होकर वर्षा-काल में विद्युत् की तरह बागीचे में विहार करने के निमित्त गईं॥ २॥

गायन्त्यो नृत्यमानाश्च वादयन्त्यश्च राघव।
आमोदं परमं जग्मुर्वराभरण भूषिताः॥ ३॥

अर्थ—हे रामचन्द्र! अच्छे-अच्छे आभूषण पहने हुए उन सबों ने गाने, नाचने तथा बजाने से परम आनन्द प्राप्त किया॥ ३॥

ताः सर्वगुणसम्पन्ना रूपयौवन संयुताः।
दृष्ट्वा सर्वात्मको वायुरिदं वचनमब्रवीत्॥ ४॥

अर्थ—सकल-गुण-सम्पन्न तथा रूप-यौवन-शालिनी उन कन्याओं को देख कर पवन देव, जो सर्वत्र विद्यमान रहते हैं, प्रगट होकर उनसे कहने लगे॥ ४॥

अहं वः कामये सर्वा भार्या मम भविष्यथ।
मानुषस्त्यज्यतां भावो दीर्घमायुरवाप्स्यथ॥ ५॥

अर्थ—मैं तुम सबों को चाहता हूँ; तुम लोग मेरी भार्याएँ हो जाओ और इस मनुष्य भाव का परित्याग कर दीर्घायुता प्राप्त करो॥ ५॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वायोरक्लिष्ट कर्मणः।
अपहास्य ततो वाक्यं कन्या शतमथाब्रवीत्॥ ६॥

अर्थ—पवन देव का यह वचन सुन कर वे कन्याएँ उनके वचन को अपमानपूर्वक हँसती हुई बोलीं॥ ६॥

पिता हि प्रभुरस्माकं दैवतं परमं च सः ।
यस्य नो दास्यति पिता सनो भर्त्ता भविष्यति ॥ ७ ॥

अर्थ—पिता ही हम लोगों के प्रभु तथा परम देवता हैं। वे हम लोगों को जिसे देंगे वही हम लोगों का पति होगा ॥ ७ ॥

तासां तद्वचनं श्रुत्वा हरिः परमकोपनः ।
प्रविश्य सर्वगात्राणि बभञ्ज भगवान् प्रभुः ॥ ८ ॥

अर्थ—पवन देव उनका यह वचन सुन कर अति क्रुद्ध हुए और उन सबों के शरीर में प्रवेश कर षड़ैश्वर्यशाली तथा महासमर्थ होने के कारण उनके शरीर कुबड़े कर दिए ॥ ८ ॥

सच ता दयिता भग्नाः कन्याः परमशोभनाः ।
दृष्ट्वा दीनास्तदा राजा सम्भ्रान्त इदमब्रवीत् ॥ ९ ॥

अर्थ—राजा ने स्नेह के पात्री तथा परम सुन्दरी अपनी कन्याओं को दुःखी तथा कुबड़ी देख कर आश्चर्य से पूछा ॥ ९ ॥

किमिदं कथ्यतां पुत्र्यः को धर्ममव मन्यते ।
कुब्जाः केन कृताः सर्वाश्चेष्टन्त्यो नाभिभाषथ ॥ १० ॥

अर्थ—हे पुत्रियो ! तुम्हारी यह क्या गति हुई ? किसने धर्म की अवहेलना की ? किसने तुम लोगों को कुबड़ी कर दी ? बोलने की चेष्टा करने पर भी तुम लोग नहीं बोल सकतीं ॥ १० ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कुशनाभस्य धीमतः ।
शिरोभिश्चरणौ स्पृष्ट्वा कन्याशतमथाब्रवीत् ॥ ११ ॥

अर्थ—वे सौ कन्याएँ महामति कुशनाभ का वचन सुन कर अपने मस्तकों से पिता के चरणों का स्पर्श करती हुई बोलीं ॥ ११ ॥

वायुः सर्वात्मको राजन् प्रधर्षयितुमिच्छति ।
अशुभं मार्गमास्थाय न धर्मं प्रत्यवेक्षते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे राजन् ! सर्वात्मा पवन देव हम लोगों का धर्षण करना चाहते हैं और पाप मार्ग का आश्रय लेकर धर्म की परवाह नहीं करते ॥ १२ ॥

विसृज्य कन्याः काकुत्स्थ राजा त्रिदशविक्रमः ।
मन्त्रज्ञो मन्त्रयामास प्रदानं सह मन्त्रिभिः ॥ १३ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्र ! देवतुल्य पराक्रमी तथा मन्त्रज्ञ उन राजा ने उन कन्याओं को विदा करके अपने मन्त्रियों से उनके विवाह के सम्बन्ध में सम्मति ली ॥ १३ ॥

सुबुद्धिं कृतवान् राजा कुशनाभः सुधार्मिकः ।
ब्रह्मदत्ताय काकुत्स्थ दातुं कन्याशतं तदा ॥ १४ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्र ! परम धर्मात्मा राजा कुशनाभ ने अपनी सौ कन्याओं को महात्मा ब्रह्मदत्त के साथ विवाह देने का सद्विचार किया ॥ १४ ॥

तमाहूय महातेजा ब्रह्मदत्तं महीपतिः ।
ददौ कन्याशतं राजा सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥ १५ ॥

अर्थ—महातेजस्वी पृथ्वीपति राजा ने ब्रह्मदत्त जी को बुला कर प्रसन्न चित्त के साथ सौ कन्याओं को उन्हें दे दिया ॥ १५ ॥

स्पृष्टमात्रे तदा पाणौ विकुब्जं विगतज्वरम् ।
युक्तं परमया लक्ष्म्या बभौ कन्याशतं तदा ॥ १६ ॥

अर्थ—महात्मा ब्रह्मदत्त ने ज्योंही उन सौ कन्याओं का पाणिग्रहण किया त्योंही उनका सब रोग तथा कुबड़ापन जाता रहा और वे परम सौन्दर्य से सम्पन्न होकर अति शोभनीय हो गईं ॥ १६ ॥

कन्याः कुब्जाऽभवन् यत्र कान्यकुब्जस्ततोऽभवत् ।
देशोऽयं कान्यकुब्जाख्यः सदा ब्रह्मर्षि सेवितः ॥ १७ ॥

अर्थ—हे राम ! जिस देश में कन्याएँ कुबड़ी हो गईं, वही देश इस घटना के कारण सदा ब्रह्मर्षियों से सेवित "कान्यकुब्ज" नामक देश कहलाया ॥ १७ ॥

३—कान्यकुब्ज देश का विस्तार

प्राचीन कान्यकुब्ज देश का विस्तार कहाँ से कहाँ तक था, इसका पता निम्न-लिखित श्लोक से चलता है—

शृङ्गिणस्थलमारभ्य दालभ्यौकान्तमायतः ।
कोशलाद्दक्षिणे देशे कान्यकुब्जः प्रचक्षते ॥

अर्थ—कोशल देश से दक्षिण शृङ्गीरामपुर से आरम्भ कर दालभ्य ऋषि के आश्रम पर्यन्त कान्यकुब्ज देश कहा जाता है। इतिहासों से पता चलता है कि लॉर्ड वेलेज़ली के पूर्व वर्तमान कन्नौज शहर के अतिरिक्त कन्नौज नामक एक सूबा भी था, जिसके अन्तर्गत युक्तप्रान्त के आधुनिक ज़िले पीलीभीत, बरेली, शाहजहाँपुर, फर्रुख़ाबाद, कानपुर, फ़तेहपुर, हमीरपुर, बाँदा, इलाहाबाद तथा आधा अवध अवस्थित था। सम्भवतः यही विस्तार प्राचीन कान्यकुब्ज देश का भी था। किसी-किसी के मत से यही कान्यकुब्ज देश पञ्चाल देश भी कहा जाता है,

जहाँ पाण्डव-पत्नी द्रौपदी के पिता द्रुपद राज्य करते थे। इसी कान्यकुब्ज देश में बसने वाले ब्राह्मण कान्यकुब्ज (कनौजिए) ब्राह्मण कहलाए।

पर यहाँ यह प्रश्न उठता है कि राजा कुशनाभ की कन्याओं के कुबड़ी होने की घटना के पूर्व, जबकि उक्त देश का नाम कान्यकुब्ज न था, वहाँ ब्राह्मण निवास करते थे या नहीं और यदि निवास करते थे तो वे कौन ब्राह्मण कहे जाते थे। इन प्रश्नों का उत्तर निम्न-लिखत विवरण से स्पष्ट होगा।

४—पञ्चगौड़ और पञ्चद्राविड़

गौर वर्ण वाले आर्यों के भारत में पदार्पण करने के पूर्व यहाँ पर सन्ताल, कोल, भील, मुण्डा आदि असभ्य जङ्गलियों के अतिरिक्त द्राविड़ नामक एक सभ्य जाति पश्चिमी एशिया से बलूचिस्तान के मार्ग से आकर बस गई थी। इन्हीं की भाषा से तामील, तेलगू, कनाड़ी आदि विविध भाषाओं का, जो वर्तमान काल में दक्षिण भारत में प्रचलित हैं, निकास हुआ है। द्राविड़ों की सभ्यता ऊँची कक्षा की थी। उन लोगों ने क़िले बनाए थे। वे नदियों तथा समुद्रों में नाव और जहाज़ चला कर वाणिज्य किया करते थे। उन लोगों की भाषा, साहित्य तथा धर्म उन्नत अवस्था को पहुँच गया था। ये पहले-पहल भारत के उत्तर भाग में बसे थे, पर जब आर्यों का दौरा इस महादेश में शुरू हुआ तो द्राविड़ लोग विन्ध्यगिरि को नाँघ कर दक्षिण भारत में जा बसे। आर्य सभ्यता की विजय-वैजयन्ती ने जब वहाँ पर भी अपना सिक्का जमाया तो उससे प्रभावित होकर द्राविड़ों ने भी वैदिक धर्म अपना लिया। इसका फल यह हुआ कि उन लोगों में भी वर्णाश्रम धर्म की प्रथा चल निकली और उनमें से जो अध्ययन, अध्यापन आदि ब्राह्मणोचित षट्कर्म में प्रवृत्त हुए वे ही द्राविड़ ब्राह्मण कहलाए। इन द्राविड़ों का रङ्ग आर्यों की अपेक्षा इपत् श्याम था। अतः उत्तम्मन्य आर्य ब्राह्मण द्राविड़ों से अपनी भिन्नता तथा श्रेष्ठता दिखलाने के लिए अपने को गौर ब्राह्मण कहने लगे। यह 'गौर' शब्द ही बिगड़ कर कालान्तर में 'गौड़' रूप को प्राप्त हुआ। यद्यपि गौर शब्द विषयक कतिपय अन्य भी कल्पनाएँ हैं, जिन्हें आगे चल कर दिखलाऊँगा, तो भी यहाँ केवल इतना कह देना अनुचित न होगा कि पहले ब्राह्मणों का केवल एक ही (आर्य) समुदाय था; फिर द्राविड़ नामक एक दूसरे समुदाय का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें से पहला तो विन्ध्यगिरि के उत्तर तथा दूसरा इस पर्वत के दक्षिण की ओर निवास करता था। काल पाकर दोनों की जन-संख्या बढ़ती गई, यहाँ तक कि प्रत्येक समुदाय पाँच उपभेदों में विभक्त हो गया, जिनका नामकरण स्वस्वाश्रित देशों के नामानुसार हुआ—

सारस्वताः कान्यकुब्जा गौड़ा उत्कल मैथिलाः।
पञ्चगौड़ाः समाख्याता विन्ध्यस्योत्तर वासिनः॥

—स्कन्दपुराण

अर्थ—विन्ध्यगिरि के उत्तर में बसने वाले सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड़ (मूल जाति), उत्कल और मैथिल, ये पञ्चगौड़ कहलाए। और

कर्णाटकाश्च तैलङ्गा द्राविड़ा महाराष्ट्रकाः।
गुर्जराश्चेति पञ्चैव द्राविड़ा विन्ध्य दक्षिणे॥

—सह्याद्रि खण्ड

अर्थ—विन्ध्यगिरि के दक्षिण में कर्णाटक, तैलङ्ग, द्राविड़ (मूल जाति), महाराष्ट्र और गुर्जर, ये पञ्चद्राविड़ रहते हैं।

स्कन्द पुराण के उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि कान्यकुब्ज देश में पहले से ही ब्राह्मण रहते थे और वे गौड़ थे। वहाँ के गौड़ ही कान्यकुब्ज देश का यह नाम पड़ने पर देश के नामानुसार कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहलाए।

५—गौड़ देश का विस्तार

जो गौड़ अपनी आदि निवास-भूमि गौड़ देश को छोड़ कर अन्यत्र जा बसे वे तो कान्यकुब्ज आदि कहलाए, पर जो अपनी मातृभूमि में ही रह गए वे गौड़ के गौड़ ही कहलाते रहे। इस प्रसङ्ग में गौड़ देश का भौगोलिक परिचय देना आवश्यक है, कारण कि यही देश कान्यकुब्ज आदि शेष चारों वर्गों का आदिम निवास-स्थान था। शक्ति-सङ्गम-तन्त्र के सप्तम पटल में लिखा है—

बङ्गदेशं समारभ्य भुवनेशान्तगं शिवे।
गौड़ देशः समाख्यातः सर्वविद्याविशारदः॥

अर्थ—हे पार्वती! बङ्ग देश से लेकर अमरनाथ तक गौड़ देश कहा जाता है। यह देश सकल विद्याओं में निपुण है। इस विवरण से मालूम पड़ता है कि प्राचीन

काल में बङ्गाल की पश्चिमी सीमा से लेकर पञ्जाब की पूर्वी सीमा तक गौड़ देश का विस्तार था। निम्न-लिखित प्रमाणों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह देश कोशल देश से उत्तर तथा नैपाल की तराई से दक्षिण की ओर अवस्थित था —

श्रावस्तश्च महातेजा वत्सकस्तत्सुतोऽभवत्।
निर्मिता येन श्रावस्ती गौड़देशे द्विजोत्तमाः॥

—मत्स्य पुराण

अर्थ—हे द्विजश्रेष्ठो! महातेजस्वी राजा श्रावस्त के पुत्र वत्सक हुए, जिन्होंने गौड़ देश में श्रावस्ती नामक नगरी बसाई। और भी—

उत्तराकौशले राज्यं लवस्य च महात्मनः।
श्रावस्ती लोकविख्याता आविता च लवस्य च॥

—वायुपुराण

अर्थ—कोशल देश से उत्तर महात्मा लव का राज्य था, जहाँ पर लव के द्वारा परिपालित, जगद्विख्यात श्रावस्ती नगरी अवस्थित है।

ऊपर लिखित दोनों उद्धरण इस बात की सिद्धि करते हैं कि विख्यात श्रावस्ती नगरी कोशल देश से उत्तर गौड़ देश में बसी थी। अब यदि हमें इस श्रावस्ती नगरी की भौगोलिक स्थिति मालूम हो जाय तो गौड़ देश का ठीक-ठीक पता लग जाय। इतिहासवेत्ता ए० वी० स्मिथ (A. V. Smith) साहब अपनी "अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया" (Early History of India) नामक पुस्तक श्रावस्ती के विषय में यों लिखते हैं —

"Sravasti (Savathi) situated on the upper course of the Rapti at the foot of the hills, was the reputed scene of many of Buddha's striking discourses."

अर्थ—श्रावस्ती (सावत्थी) राप्ती नदी के प्रवाह के ऊपरी भाग पर पहाड़ियों की जड़ के पास अवस्थित थी। कहा जाता है कि यह नगरी गौतम बुद्ध के अति प्रभावशाली व्याख्यानों में से बहुतों की रङ्ग-भूमि थी।

उक्त साहब बहादुर इस नगरी के विषय में और भी लिखते हैं —

"The exact site of Sravasti being buried in the jungles of Nepal, is not known; but its approximate position to the North-East of Nepalganj or Banki in about N. Lat. 28° 6' and E. Long. 81° 50' has been determined."

अर्थ—श्रावस्ती का ठीक स्थान नैपाल के जङ्गलों में धँस जाने के कारण अज्ञात है; पर इसका लगभग ठीक स्थान नैपालगञ्ज या बाँकी के उत्तर-पूर्व की ओर अक्षांश २८°६' और देशान्तर ८१°५०' पर निश्चित किया गया है।

अब पाठकों को श्रावस्ती की अवस्थिति के द्वारा गौड़ देश की अवस्थिति का ठीक अनुमान हो गया होगा और यह स्पष्ट रूप से विदित हो गया होगा, जैसा मैं पहले लिख आया हूँ कि यह गौड़ देश कोशल और नैपाल की तराई के मध्य में बङ्गाल से लेकर पञ्जाब तक पूर्वापर चला गया था। जो महाशय "भुवनेशान्त" का अर्थ कुमारी अन्तरीप व जगन्नाथ धाम व भुवनेश्वर महादेव पर्यन्त लगाते हैं वे भारी भ्रम में पड़े हैं; कारण कि वस्तु-स्थिति, इतिहास तथा प्राचीन आर्षग्रन्थ इन मतों में से किसी की भी पुष्टि नहीं करते।

गौड़ देश की अवस्थिति विषयक दो-एक और भी भ्रान्तिपूर्ण मत हैं, जिनका खण्डन करना ज़रूरी है। कोई-कोई कहते हैं कि वर्तमान गोण्डा ज़िला ही प्राचीन गौड़ देश था। यह हो सकता है कि वह भू-भाग, जहाँ पर आजकल गोण्डा ज़िला है, गौड़ देश का एक अंश रहा हो; पर दोनों को एक मान बैठना पूर्वोल्लिखित प्रमाणों से खण्डित हो जाता है। इसी प्रकार किसी-किसी का जो यह मत है कि प्राचीन बङ्गाल का गौड़ नामक स्थान गौड़ ब्राह्मणों की आदि मातृ-भूमि था वह भी निःसार है। इतिहास से पता चलता है कि कुछ न्यूनाधिक एक हज़ार वर्ष हुए कि बङ्ग देश के हिन्दू राजाओं ने कुछ गौड़ ब्राह्मणों को अपने यहाँ किसी धार्मिक कृत्य के सम्पादनार्थ बुलाया था। वे जहाँ राजाओं के द्वारा बसाए गए उसी स्थान का नाम गौड़ पड़ा। पीछे यह गौड़ नामक स्थान एक समृद्धिशाली नगर हो गया और बङ्गाल के मुसलमान शासकों का कालान्तर में राजधानी बना।

६—गौड़ नामकरण विषयक विविध कल्पनाएँ

ऊपर लिखा जा चुका है कि पञ्चगौड़ समुदाय के अन्तर्गत कान्यकुब्ज आदि सभी वर्ग मूलतः गौड़ ब्राह्मण

जौहरी परखें ज़रा जौहर जवाहरलाल के
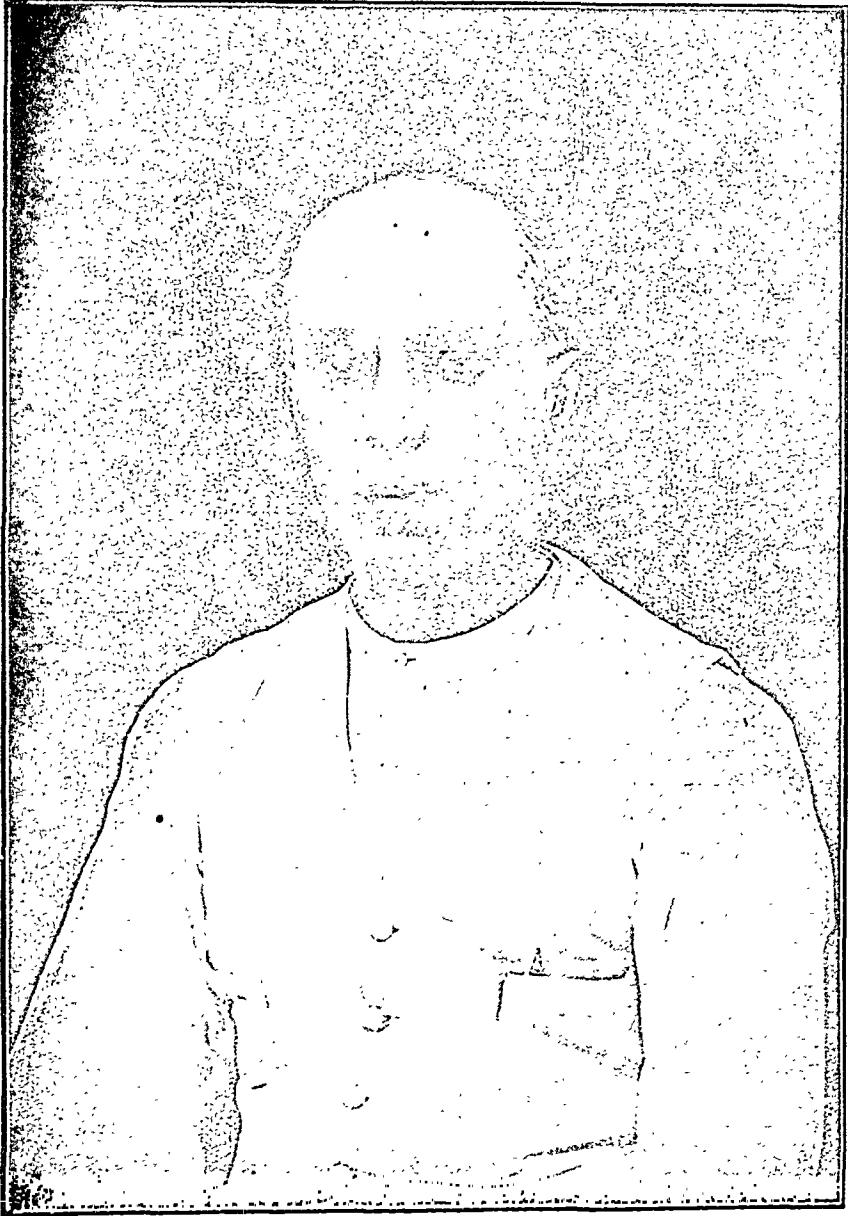
राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू

जो एक सप्ताह की स्वतन्त्रता के बाद फिर पकड़ लिए गए

सादगी से सादगी के साथ नाता जोड़ कर—
ऐशो इशरत से हमेशा के लिए मुँह मोड़ कर।
सारी दुनिया छोड़ कर, सारा ज़माना छोड़ कर—
चैन अगर लेगा, तो जंज़ीरे-गुलामी तोड़ कर।
इन्क़लाबाते-जहाँ, सब कह रहे हैं हाल के!
जौहरी परखें ज़रा जौहर जवाहरलाल के!!

कोई देखे तो वतन पर किस तरह क़ुर्बान है,
चलते-फिरते इसको आज़ादी ही का अरमान है।
सच कहा "बिस्मिल" ने प्यारी आन, प्यारी शान है,
समझो तो है देवता, देखो तो यह इन्सान है!
क्या जवाहरलाल है, सुन लो ज़बाने हाल से।
दो क़दम हर काम में आगे है मोतीलाल से॥

राउन्डटेबिल-कॉन्फ्रेन्स में

दीवान बहादुर रामचन्द्र राव
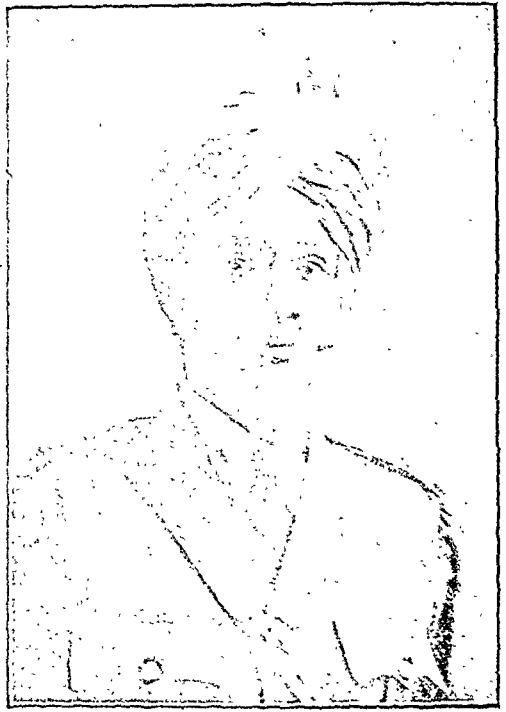
पार्लाकिमेडी के राजा साहब
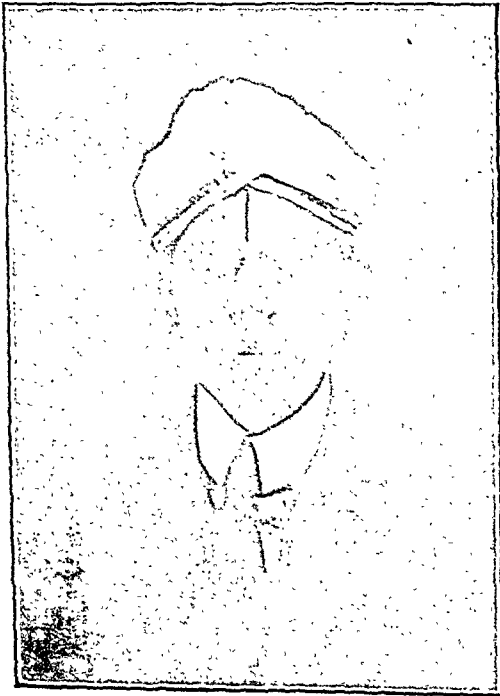
श्री० ए० आर० मुदालियर
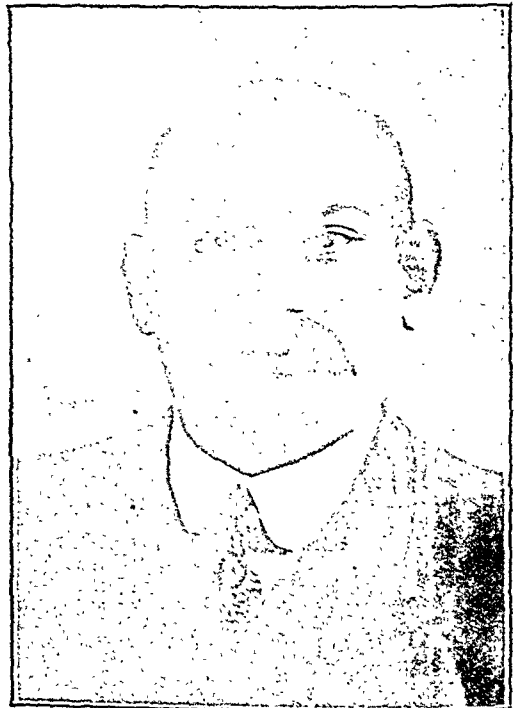
सर ए० पी० पैट्रो

जाने वाली कुछ मूर्तियाँ
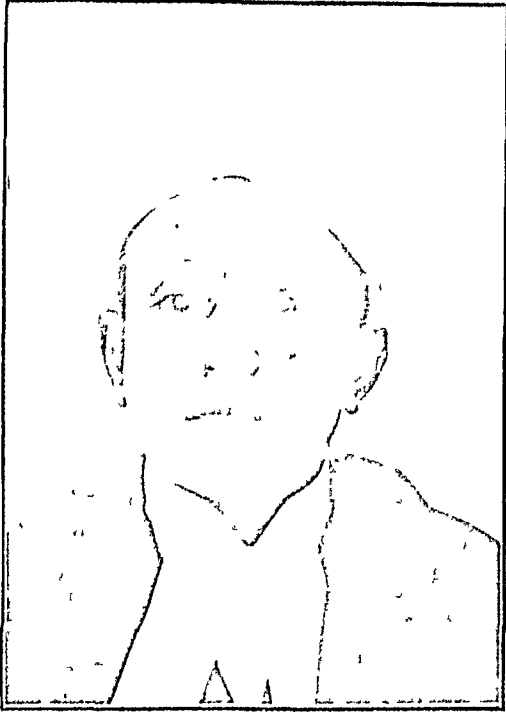
सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर
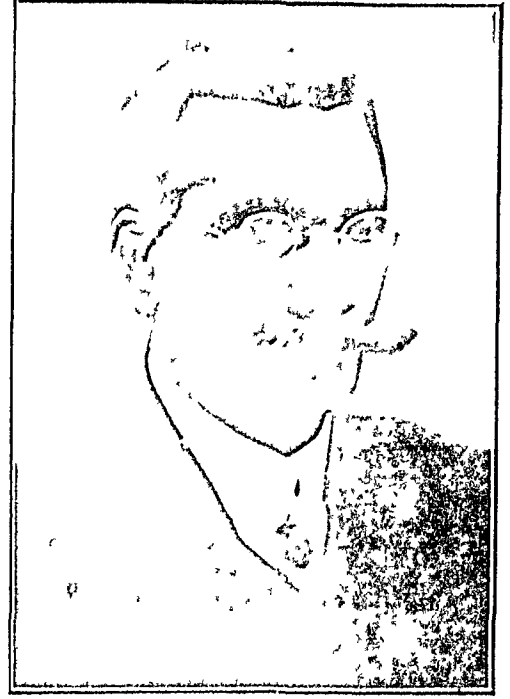
राव बहादुर आर० श्रीनिवास
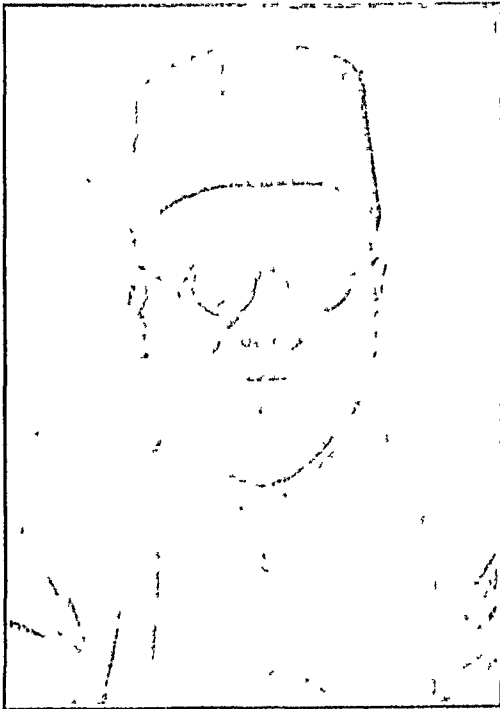
श्री० एम० आर० जयकर
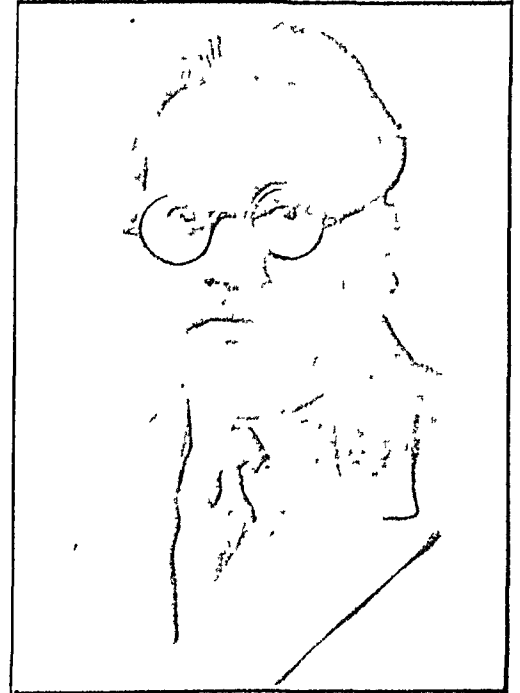
डॉ० आम्बेडकर
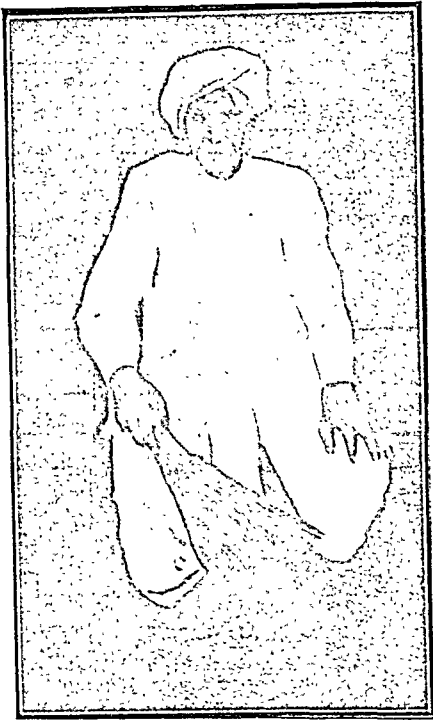
श्रीयुत भीखन मेहतर

आप मेरठ-अलीगढ़ विभाग की तरफ़ से संयुक्त-प्रान्तीय कौन्सिल के सदस्य चुने गए हैं

चौधरी रामदयाल चमार

आप लखनऊ शहर की तरफ़ से संयुक्त प्रान्तीय कौन्सिल के सदस्य चुने गए हैं।

श्रीयुत रामजी दास नाई

आप अमृतसर की तरफ़ से पञ्जाब-प्रान्तीय कौन्सिलके सदस्य चुने गए हैं।

श्रीयुत डालू मोची

आप पूर्वीय सिन्ध से बम्बई प्रान्तीय कौन्सिल सदस्य चुने गए हैं।
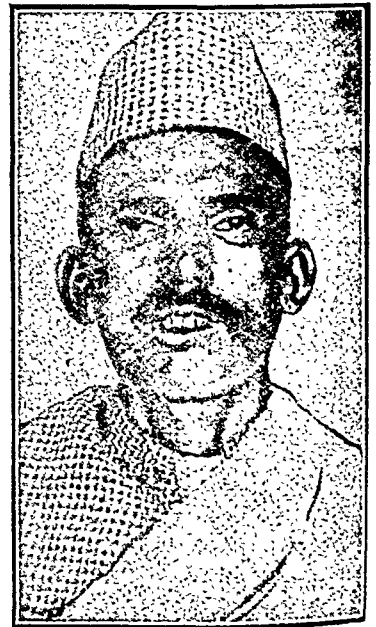
भगत चन्दीमल चमार

आप दिल्ली-प्रान्त की तरफ़ से लेजिस्लेटिव एसेम्बली के सदस्य चुने गए हैं।

हैं, और जब वे एक दूसरे से पृथक नहीं हुए थे, उन सबों की एक ही संज्ञा "गौड़" थी। यहाँ पर वे प्रश्न उठ सकते हैं कि विन्ध्योत्तरवासी सभी ब्राह्मणों ने अपने को गौड़ क्यों कहा, गौड़ शब्द का क्या अर्थ है, इत्यादि। इन प्रश्नों के उत्तर में विद्वानों ने जो नाना प्रकार की कल्पनाएँ की हैं, वे नीचे दी जाती हैं। पाठकगण भी अपनी-अपनी अक़्ल लड़ावें—

१—गौड़ ब्राह्मण आर्यवंशीय हैं। इनका रङ्ग इषत् श्याम वर्ण वाले द्राविड़ ब्राह्मणों के मुक़ाबले में गौर था; अतः विन्ध्योत्तरवासी ब्राह्मणों ने अपना नाम गौर ब्राह्मण रक्खा, जो विकृत होकर गौड़ ब्राह्मण हो गया। 'र' और 'ड़' का पारस्परिक परिवर्तन प्रत्यक्ष देखने में आता है। विहार के उत्तर भाग के रहने वाले, जैसे सारन और चम्पारन ज़िलों के निवासी, प्रायः 'वोरा' को 'वोड़ा' तथा 'सड़क' को 'सरक' वोलते हैं।

२—गुड़ नाम इक्षुरस-पाक का है। गुड़ से चीनी तथा चीनी से नाना प्रकार की स्वादिष्ट मिठाइयाँ वनती हैं। जिन ब्राह्मणों को मिठाई खाने में अधिक रुचि दीख पड़ी तथा जिन्होंने मिठाई के अभाव में गुड़ को ही अपनाया, उन्होंने ही गुड़ के सम्बन्ध से गौड़ ब्राह्मण कहला कर "ब्राह्मणा मधुरप्रियाः" को चरितार्थ किया।

३—गुप्त तथा दुर्बोध विषयों को गूढ़ कहते हैं। जिन्होंने दर्शनशास्त्र के जीव, ब्रह्म, माया, पुरुष, प्रकृति आदि जैसे गूढ़ तत्वों का अध्ययन किया और उन्हें जाना, वे ही गौढ़ (गूढ़ वेत्ति तदधीतेवा) ब्राह्मण कहलाए। फिर 'ढ़' और 'ड़' के पारस्परिक सवर्णता-वश गौढ़ शब्द गौड़ रूप में परिणत हो गया।

४—गोल विद्या गणित ज्योतिःशास्त्र का एक प्रधान अङ्ग है। विना उसके पढ़े ज्योतिर्विद्या का ज्ञान पूर्ण नहीं होता। जिन्होंने गोल (गोलविद्या) का अध्ययन किया वे ही गौल (गोल+अण्) वा गौड़ ब्राह्मण कहलाए। "ल" और "ड" की सवर्णता का प्रमाण लीजिए—

रलयोर्डलयोश्चैव सषयोर्बवयोस्तथा।
वदन्त्येषाञ्च सावर्ण्यमलङ्कारविदो जनाः॥

अर्थ—अलङ्कारशास्त्र के जानने वाले र ल, ड ल, स ष, तथा ब व का सावर्ण्य कहते हैं।

५—गुड़ (सङ्कोचने) धातु से गुड़ बनता है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—"यो देहेन्द्रियादीनि स्वतपसा सङ्कोचयति जड़ी करोतीति गुड़ः" अर्थात् जिसने तपस्या करके देहादिक अपने कर्मेन्द्रियों को पापाचरण से रोक कर धर्माचरण में लगाया वह गुड़ हुआ और फिर "गुड़स्यापत्यं गौड़ः" हुआ अर्थात् जो गुड़ की सन्तान हुई वह गौड़ कहलाई।

६—गुड़ (रक्षायाम्) धातु से गुड़ हुआ और गुड़ की सन्तान गौड़ हुई। व्युत्पत्ति इस प्रकार है—"गुड़ति वेदान् रक्षति यः स गुड़ः। गुड़स्यापत्यं गौड़ः।" जो वेदों की रक्षा करता है वह गुड़ है और जो गुड़ की सन्तान हैं वे गौड़ हैं।

७—जिन ब्राह्मणों ने सृष्टि के आदि में पूर्व वर्णित गौड़ को अपना निवास-स्थान बनाया वे ही गौड़ ब्राह्मण कहलाए। पर यहाँ यह प्रश्न उठता है कि गौड़ देश नाम क्यों पड़ा? इस प्रश्न का कोई-कोई विद्वान् यह उत्तर देते हैं कि जिस देश में गुड़ कसरत से पैदा हो वह देश गुड़ के सम्बन्ध से गौड़ कहलाया।

८—कोई-कोई विद्वान यह कहते हैं कि सूर्य का नाम गोल है; अतः जो गोल (सूर्य) से उत्पन्न हुए वे ही गौल (गौड़) कहलाए। ड, ल की सवर्णता का प्रमाण दे ही आए हैं।

९—यजुर्वेद दो प्रकार का है, कृष्ण और शुक्ल। "कृष्ण" शब्द काला, तम, अन्धकार, हिंसा आदि का द्योतक है। "शुक्ल" शब्द स्वच्छ, उज्ज्वल तथा गौर वर्ण का अर्थ रखता है। अतः जिन ब्राह्मणों में शुक्ल यजुर्वेद के पठन-पाठन की परिपाटी चल निकली तथा जिन्होंने अपने आचरण को स्वच्छ बनाए रक्खा वे ही गौर (गौड़) ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध हुए।

१०—'आदि गौड़ दीपिका' में लिखा है—

नारायणं पद्भवं वशिष्ठं
शक्तिञ्च तत्पुत्र पराशरञ्च।
व्यासं शुकं गौड़ पदं महान्तं
गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम्॥

अर्थ—नारायण (विष्णु) से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए; ब्रह्मा से वशिष्ठ; वशिष्ठ से शक्ति; शक्ति से पराशर; पराशर से व्यास; व्यास से शुकदेव जी तथा शुकदेव जी से गौड़पद पैदा हुए। गौड़पद के शिष्य योगिराज गोविन्द हुए। इन्हीं गौड़पद के वंशज गौड़ ब्राह्मण कहाए।

गौड़ शब्द विषयक पूर्वोक्त दसों कल्पनाएँ पञ्चगौड़ मात्र को दृष्टि में रख कर की गई हैं, न कि केवल पञ्चगौड़ समूहान्तर्गत वर्तमान काल में लोक में प्रचलित गौड़ संज्ञाधारी वर्ग विशेष को। अब पाठकगण स्वयं विचार लें कि इन कल्पनाओं में से कौन सी कल्पना ठीक जँचती है। एक और भी (ग्यारहवीं) कल्पना है, जिसे ठीक न समझ मैंने कल्पनाओं की ऊपर लिखी सूची में स्थान नहीं दिया। वह यह है—मुख्य (प्रधान) का उलटा गौण (अप्रधान) होता है। जो ब्राह्मण मुख्य न थे वे ही गौण वा गौड़ ब्राह्मण कहलाए। पर जब पञ्चगौड़ ही मुख्य नहीं रहे तो मुख्य हैं कौन ? इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है।

'आदि गौड़ दीपिका' के अनुसार ऋषि गौड़पद के वंशज गौड़ हैं। पर यह मत कई कारणों से अमान्य ठहरता है। "गौड़पद" नाम में दो शब्द हैं ; पर वंशजों की जाति-संज्ञा में केवल "गौड़" शब्द है। पुनः इस मत के अनुसार निःशेष गौड़ों में केवल वशिष्ठ और पराशर ये ही दो गोत्र होने चाहिए; पर गौड़ों (विन्ध्योत्तर वासी ब्राह्मणों) में कश्यप, भारद्वाज, शाण्डिल्य, संकृत आदि अनेक गोत्र हैं। यह हो सकता है कि निःशेष गौड़ तो नहीं, पर उनमें से कुछ, जिनमें उक्त गोत्र पाए जाते हों, गौड़पद के वंशज हों। सम्भवतः राजा जनमेजय ने जिन ब्राह्मणों को अपने यज्ञ में बुला कर भूमि-दान, मान आदि से सन्तुष्ट किया था, वे ही गौड़पद के वंशधर हों और आदिगौड़ कहलाए हों ; क्योंकि इनके पूर्वज शुकदेव जी तथा व्यास जी की घनिष्टता जनमेजय के पूर्वज परीक्षित तथा पाण्डवों के साथ महाभारत तथा भागवत से सिद्ध है। ये सब बातें निम्न-लिखित विवरण से स्पष्ट होंगी।

७—कुरुक्षेत्र और आदिगौड़

किसी-किसी महाशय की यह धारणा है कि गौड़ ब्राह्मणों की आदि निवास-भूमि कुरुक्षेत्र था। वहीं से इनके चार दल निकल कर कान्यकुब्ज, सारस्वत आदि देशों में जा बसे और कान्यकुब्ज आदि ब्राह्मण वंशों के प्रवर्तक हुए ; पर जो दल अपनी मातृ-भूमि कुरुक्षेत्र को छोड़ कर अन्यत्र नहीं गया वही आदिगौड़ की संज्ञा से प्रख्यात हुआ। गौड़ों का मौलिक निवास-स्थान कुरुक्षेत्र था, इस मत की सत्यता वा असत्यता आदिगौड़ों की उत्पत्ति, जो 'ब्राह्मणोत्पत्ति मार्त्तण्ड' में लिखा है, पढ़ने से ही स्पष्ट हो जाएगी। वहाँ स्पष्ट लिखा है कि राजा जनमेजय ने जिन वटेश्वर मुनि तथा उनके १४४४ शिष्यों को अपने यज्ञ में बुलाया था और जिन्हें आदिगौड़ की संज्ञा मिली थी वे गौड़ देश के, न कि कुरुक्षेत्र के, रहने वाले थे—

ते गौड़ ब्राह्मणाः सर्वे गौड़देशनिवासिनः।
वेदशास्त्रपुराणज्ञः श्रौतस्मार्त्त परायणाः॥

अर्थ—वेद, शास्त्र और पुराण के जानने वाले तथा श्रौत और स्मार्त कर्मों के करने में तत्पर वे गौड़ ब्राह्मण गौड़ देश के रहने वाले थे। राजा ने उन्हें अपने देश में बसा लिया—

क्षमध्वं चापराधं मे कृपां कृत्वा ममोपरि।
एवमुक्त्वा स्वदेशे वै वासयामास तान्द्विजान्॥

अर्थ—राजा ने कहा कि मैंने जो गुप्त रूप से पान के बीड़ों में ग्रामों का दानपत्र लिख कर आप लोगों को दान देने का अपराध किया है, उसे क्षमा करें। ऐसा कह कर राजा ने उन ब्राह्मणों को अपने देश में बसा लिया। सम्भवतः कुरुक्षेत्र में ही, जो उनके तथा उनके पूर्वजों के राज्यान्तर्गत था, राजा ने उन्हें बसने का स्थान दिया हो। इससे सिद्ध होता है कि आदिगौड़ों का कुरुक्षेत्र के साथ कुछ भी मौलिक सम्बन्ध न था। वे वहाँ गौड़ देश से जाकर पीछे से बसे थे। 'जनमेजय दिग्विजय' में लिखा है —

आदिशब्दोपाधिदत्ता ब्राह्मणा तु स्वयंभुवा।
वेदोऽपिदत्तस्तेनैवह्यादिगौड़ास्तुतो मताः॥

अर्थ—जिन ब्राह्मणों को स्वयं ब्रह्मा जी ने आदि में वेद पढ़ा कर आदि शब्द की उपाधि दी वे ही आदिगौड़ माने गए। अवश्य ही ब्रह्मा जी ने इन्हें गौड़ देश में ही वेद पढ़ाया होगा।

८—कनौजियों की उत्पत्ति विषयक एक अन्य मत

पहले लिख आए हैं कि जो गौड़ ब्राह्मण कान्यकुब्ज देश में आ बसे अथवा जो उक्त देश का यह नामकरण होने के पूर्व से ही वहाँ बसते थे, वे कान्यकुब्ज वा कनौजिए ब्राह्मण कहलाए। यही मत शास्त्र-सङ्गत तथा युक्ति-युक्त होने से सर्वमान्य है। पर कनौजियों की उत्पत्ति के

विषय में एक और भी मत है, जिसका आधार केवल जनश्रुति है। पं० हरिकृष्ण शास्त्री जी ने कनौजियों की उत्पत्ति स्वरचित 'ब्राह्मणोत्पत्ति मार्त्तण्ड' नामक ग्रन्थ में इसी मत के अनुसार लिखने के पूर्व ही उक्त आधार को स्वीकार किया है—

अथातः संप्रवक्ष्यामि कान्यकुब्ज विनिर्णयम् ।
श्रुत्वा द्विजमुखादेतद् वृत्तान्तं पूर्वकालिकम् ॥

अर्थ—अब इसके पश्चात ब्राह्मणों के मुख से पूर्वकालीन वृत्तान्त को सुन कर कनौजियों का निर्णय कहूँगा। इससे स्पष्ट है कि उक्त पण्डित जी को अपने मत की पुष्टि में जनश्रुति के सिवा कोई शास्त्रीय प्रमाण न मिला। जनश्रुति का मूल्य ही शास्त्रीय प्रमाण के मुक़ाबले में कितना होता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। इस मत का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

रामचन्द्र रावण का वध कर अयोध्या लौटे और अपने पट्टाभिषेक के कुछ समय पश्चात उन्होंने यज्ञ ठाना। इस यज्ञ को देखने के लिए कान्य और कुब्ज नामक दो ब्राह्मण और भी कितने ब्राह्मणों के साथ कान्यकुब्ज देश से अयोध्या आए। कुब्ज रामचन्द्र को रावण की हत्या करने के कारण ब्रह्मघाती मान और उनका दान-दक्षिणा आदि लेना अनुचित समझ अपने भाई कान्य को छोड़ अपने अनुयायी अन्य ब्राह्मणों के साथ सरयू नदी के उत्तर तट पर चला गया; पर कान्य ने स्वानुयायियों के साथ वहीं रह रामचन्द्र का दिया हुआ धनादि स्वीकार कर लिया। जो कुब्ज के साथ सरयूपार चले गए वे तो सरयूपारी (सरवरिए) ब्राह्मण हुए, तथा जो कान्य के साथ सरयू के दक्षिण में रह गए वे कनौजिए (कान्यकुब्ज) कहलाए। इस मत के विषय में जो अनेकों शङ्काएँ उठती हैं, उनका सन्तोषजनक समाधान नहीं दीखता। वे शङ्काएँ ये हैं—

१—इस मत के अनुसार भी कान्यकुब्ज देश पहले से ही विद्यमान था, जहाँ से कान्य और कुब्ज रामचन्द्र का यज्ञ देखने आए थे। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि वहाँ के ब्राह्मण किस नाम से अपना परिचय देते थे। यदि कहो कान्यकुब्ज नाम से, तो उनका वंशप्रवर्त्तक कान्य कैसे हुआ? यह नाम तो उन्हें पहले से ही प्राप्त था। यदि कहो गौड़ नाम से, तो यह शास्त्र-विरुद्ध है। कान्यकुब्ज देश की विद्यमानता सिद्ध हो जाने पर वहाँ के ब्राह्मणों की गौड़ संज्ञा नहीं मानी जा सकती।

२—यदि कान्य सचमुच किसी ब्राह्मण-वंश का प्रवर्त्तक था तो वह वंश केवल कान्य के नाम से विख्यात होता। इस वंश के नामकरण में उसके भाई का कुब्ज का नाम, जो उसे छोड़ कर सरयूपार चला गया था, क्यों घुस पड़ा?

३—दोनों भाइयों के नाम (कान्य और कुब्ज) को समस्त कर देने से कान्यकुब्ज देश का यह नाम बन जाता है, जिससे वह ध्वनि निकलती है कि इन दोनों भाइयों के नामानुसार ही उक्त देश का नाम पड़ा था, जो वाल्मीकीय रामायण से खण्डित हो जाता है।

४—रामचन्द्र ने ब्राह्मण रावण की हत्या की है, यह समाचार सर्वत्र फैल गया था; अतः कुब्ज भी इससे अनभिज्ञ न था। इस बात को जानता हुआ भी कुब्ज, यदि सचमुच उसे अपने ब्राह्मणत्व का अभिमान था तो, एक ब्रह्मघाती के यज्ञ में क्यों आया?

५—यदि अनजान में आया तो जान लेने पर अपने देश कान्यकुब्ज को क्यों नहीं लौट गया? ऐसा न कर वह अपने अनुयायियों के समेत सरयू पार जा बसा, जहाँ उसी ब्रह्मघाती का, उसके उत्तर कोशलेश्वर होने से, राज्य था। ऐसे पापी के राज्य में अपनी निवास-भूमि बना वह अपने सिद्धान्तों से क्यों गिर गया और उसने अपने समेत अपने साथियों को भी रसातल में क्यों ढकेल दिया? इत्यादि।

शोक है कि जिस राक्षस-समाज ने "हन्नो द्विजान् देवयजीन् निहन्मः" को ही अपने जीवन का एक मात्र लक्ष्य बना रक्खा था, उस समाज के प्रमुख नेता रावण जैसे आततायी को, जो अपने कुकर्मों के कारण ब्राह्मण-पद से पूर्णतः परिच्युत हो चुका था, बध कर ब्राह्मण-जाति मात्र के उपकारी रामचन्द्र को कुब्ज ने, स्वयं ब्राह्मण होता हुआ भी, ब्रह्मघाती क़रार देकर अपनी अक्षम्य कृतघ्नता तथा अन्यायशीलता का परिचय दे दिया। पर यथार्थ में ये सब बातें कुछ भी नहीं हैं। इस मत का आधार केवल कपोलकल्पना के सिवा और कुछ भी नहीं होने से यह मानने योग्य नहीं है।

उक्त मत के प्रतिकूल, सरयूपारी अपनी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाते हैं कि रामचन्द्र ने उक्त यज्ञ में कान्यकुब्ज

देश से सोलह ब्राह्मणों को, जो अपनी कुलीनता, विद्वत्ता आदि उत्तम गुणों के कारण विख्यात थे, बुला कर और उन्हीं को ऋत्विक्, होता, अध्वर्यु आदि बना कर यज्ञ किया। पुनः यज्ञोपरान्त उन्हें दान-मान आदि से सन्तुष्ट कर स्वराज्यान्तर्गत सारु देश में, जो सरयू के उत्तर तट पर अवस्थित था, बसा दिया। वे ही १६ ब्राह्मण सरयूपारियों के वंशप्रवर्त्तक हुए। ये गोरखपुर, सारन, चम्पारन, शाहाबाद, पटना, गया तथा बलिया ज़िलों में अधिक संख्या में पाए जाते हैं। इनमें गर्ग, गौतम और शाण्डिल्य उत्तम माने जाते हैं।

९—कान्यकुब्जों के प्रसिद्ध १६ गोत्र

अथ गोत्राणि वक्ष्यामि कान्यकुब्ज द्विजन्मनाम्।
कश्यपश्च भरद्वाजो शाण्डिल्यः सांकृतस्तथा॥
कात्यायनोपमन्युश्च काश्यपश्च धनञ्जयः।
कविस्तो गौतमो गर्गो भारद्वाजस्तथैव च॥
कौशिकश्च वशिष्ठश्च वत्सः पाराशरस्तथा।
इत्येते कान्यकुब्जानां गोत्राण्याहुश्च षोड़श॥

अर्थ—अब कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के प्रसिद्ध १६ गोत्र कहते हैं—(१) कश्यप, (२) भारद्वाज, (३) शाण्डिल्य, (४) सांकृत, (५) कात्यायन, (६) उपमन्यु, (७) कश्यप, (८) धनञ्जय, (९) कविस्त, (१०) गौतम, (११) गर्ग, (१२) भारद्वाज, (१३) कौशिक, (१४) वशिष्ठ, (१५) वत्स और (१६) पाराशर। कान्यकुब्जों के ये १६ गोत्र कहे गए हैं।

१०—षट्कुलज (कुलीन)

कात्यायनोपमन्युश्च भारद्वाजोऽथ कश्यपः।
शाण्डिल्यः सांकृतश्चैव षडेते गोत्रजोत्तमाः॥

अर्थ—कात्यायन, उपमन्यु, भरद्वाज, कश्यप, शाण्डिल्य और सांकृत, इन ६ गोत्रों में उत्पन्न कान्यकुब्ज उत्तम माने जाते हैं। इन ६ गोत्रों को कुलीन कहते हैं।

११—धाकर कान्यकुब्ज

पाराशरः काश्यप भारद्वाज
धनञ्जया गौतम वत्स गर्गाः।
वशिष्ठ काविस्त सुकौशिकाश्च
उदाहृता धाकरका दशैते॥

अर्थ—शेष १० गोत्र धाकर कहे गए हैं—(१) पाराशर, (२) काश्यप, (३) भारद्वाज, (४) धनञ्जय, (५) गौतम, (६) वत्स, (७) गर्ग, (८) वशिष्ठ, (९) कविस्त और (१०) कौशिक।

कुलीन उसी को कहते हैं जिसके आचार-विचार, चाल-चलन, सम्बन्ध आदि ठीक हों। इसके विपरीत को धाकर कहते हैं। कुलीन कनौजियों के उक्त ६ गोत्र ६ घर तथा धाकरों के १० गोत्र आधे घर कहे जाते हैं। अतः सब मिला कर कनौजियों के साढ़े छः घर हैं। इनसे पृथक जो ५६ गोत्र कनौजियों में देख पड़ते हैं वे अप्रसिद्ध हैं और उनका प्रवर्त्तन उक्त १६ गोत्रों से ही पीछे से हुआ मालूम होता है।

१२—विश्वा मर्यादा

विश्वाओं के अनुसार मर्यादा का प्रचार भी उक्त अप्रसिद्ध ५६ गोत्रों के सदृश ही पीछे से हुआ मालूम पड़ता है। विद्वानों का कथन है कि कन्नौज के सम्राट् महाराज जयचन्द ने विक्रमीय सम्वत् १२३६ में एक विशाल राजसूय यज्ञ रचा था। सम्भवतः यह वही राजसूय यज्ञ था जिसमें दिल्लीश्वर पृथ्वीराज की सुवर्णमयी मूर्त्ति से द्वारपाल का काम लिया गया था और पृथ्वीराज ने भी इस अपमान का बदला जयचन्द की पुत्री संयोगिता का हरण करके चुकाया था। इस यज्ञ में जयचन्द ने सम्पूर्ण कान्यकुब्ज ब्राह्मणों को बुला कर उनमें अपनी-अपनी कुलीनता के अनुसार विश्वाओं की संख्या निश्चित कर दी थी। पर विश्वाओं की संख्या सदा एक सी न रही। काल पाकर उसमें न्यूनाधिक्य होते देखा गया। जिसके पहले १० विश्वाएँ थीं उसी के बाद की लिखी वंशावली में केवल ९ ही विश्वाएँ लिखी मिलीं। इससे मालूम होता है कि मर्यादा के न्यूनाधिक्य के साथ-साथ विश्वा-संख्या में भी घटती-बढ़ती हुआ करती थी।

१३—प्रवर

अष्टाध्यायी, अध्याय ४, पाद १ का १६२ वाँ सूत्र है—"अपत्यं पौत्र प्रभृति गोत्रम्" अर्थात् पौत्र प्रभृति अपत्य गोत्रसंज्ञक हों। इससे यह भाव निकलता है कि गोत्र प्रवर्त्तक ऋषि, उसका पुत्र तथा उसका पौत्र ये तीनों सम्बन्धित गोत्र के प्रवर होते हैं। जैसे कश्यप गोत्र के कश्यप, असित और देवल ये तीन प्रवर हैं। यही

साधारण नियम हैं; पर किसी-किसी गोत्र में ५ प्रवर तक मिलते हैं। जैसे गर्ग गोत्र के गर्ग, शौनक, भारद्वाज, वार्हस्पत्य और अङ्गिरस ये ५ प्रवर हैं। जिस-जिस गोत्र में जो-जो व्यक्ति अति श्रेष्ठ (प्रवर) माने गए उस-उस गोत्र के वे ही व्यक्ति प्रवर कहलाए। कनौजियों के पूर्वोक्त १६ गोत्रों के संख्याक्रमानुसार प्रवर इस प्रकार हैं—

१—कश्यप, असिति, देवल। २—भारद्वाज, अङ्गिरा, वृहस्पति। ३—शाण्डिल्य, असित, देवल। ४—सांकृत, सांख्यायन, किल। ५—कात्यायन, विश्वामित्र, किल। ६—उपमन्यु, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य। ७—कश्यप, नैध्रुव, आवत्सार, कौशिक, लोहित। ८—धनञ्जय, माधुच्छन्दस, विश्वामित्र। ९—काविस्र, देवरात, विश्वामित्र। १०—गौतम, अङ्गिरस, वार्हस्पत्य। ११—गर्ग, शौनक, भारद्वाज, वार्हस्पत्य, अङ्गिरस। १२—भारद्वाज, अङ्गिरस, वार्हस्पत्य। १३—कौशिक, देवरात, अघमर्षण। १४—वशिष्ठ, शक्ति, पराशर। १५—वत्स, च्यवन, और्व्व, अप्नुवान्, जमदग्नि,। १६—पराशर, वशिष्ठ, सांकृत।

१४—वेद, शाखा और सूत्र

पूर्वोक्त १६ गोत्रों के वेद, शाखा और सूत्र क्रमशः इस प्रकार हैं—

१—साम, कौथुमी, गोभिल। २—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कार। ३—साम, कौथुमी, गोभिल। ४—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर। ५—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर। ६—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर। ७—साम, कौथुमी, गोभिल। ८—साम, कौथुमी, गोभिल। ९—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर। १०—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर। ११—साम, कौथुमी, गोभिल। १२—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर। १३—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर। १४—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर। १५—साम, कौथुमी, गोभिल। १६—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर।

१५—आस्पद

अष्टाध्यायी, अध्याय ६, पाद १ का १४६ वाँ सूत्र है—"आस्पदं प्रतिष्ठायाम्"। आस्पद प्रतिष्ठा पाने का नाम है। प्रत्येक गोत्र में जिस पुरुष ने जिस ग्राम में वास करके प्रतिष्ठा पाने योग्य यज्ञादि कर्म किया, उस पुरुष को उस ग्राम की आस्पद पदवी प्राप्त हुई और वही पदवी उसके वंशधरों ने भी धारण कर लिया; जैसे कपिला के मिश्र, बटपुर के अग्निहोत्री इत्यादि। कनौजियों में अनेक उत्तम-उत्तम पदवियाँ हैं; जैसे द्विवेदी, त्रिवेदी, त्रिपाठी, चतुर्वेदी, उपाध्याय, पाठक, पाण्डेय, भट्टाचार्य, अवस्थी, दीक्षित, वाजपेयी, शुक्ल, मिश्र इत्यादि।

१६—कनौजियों की आत्मप्रशंसा तथा वर्त्तमान स्थिति

'कान्यकुब्ज चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ के रचयिता महाशय ने स्वजाति की प्रशंसा में निम्न-लिखित श्लोक रचे हैं—

कान्यकुब्जद्विजाः श्रेष्ठा धर्म कर्म परायणः।
प्रलयेनाऽपिसीदन्तियदि कन्या न जायते॥

अर्थ—कान्यकुब्ज ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं तथा धर्म-कर्म में तत्पर रहते हैं। यदि इनके घर कन्या न जन्म ले तो ये प्रलय काल में विषाद को नहीं प्राप्त होते। कुलीनता का घमण्ड तथा धन का अभाव, इन दो कारणों से इनके यहाँ कन्या के विवाह में बड़ी दिक़्क़त होती है। ग्रन्थकार महाशय ने केवल स्वजाति की प्रशंसा ही नहीं की, बल्कि अन्य ब्राह्मणों को बुरा भी कहा है—

कान्यकुब्जा द्विजाः सर्वे मागधं माथुरं विना।
कुलानामकरो नास्ति कर्मणा जायते कुलम्॥

अर्थ—मथुरिए और मगहिए (गयावाल) ब्राह्मणों को छोड़ कर सभी कान्यकुब्ज हैं। कुलों का कहीं स्थान नहीं होता। कर्मों से ही कुल बनता है। बेचारे मथुरियों और गयावालों ने ग्रन्थकार का क्या बिगाड़ा था कि उन्हें कनौजियों की पंक्ति से बाहर कर बुरा कह दिया? सच्ची होती हुई भी अपनी प्रशंसा तथा दूसरे की निन्दा करना शिष्टाचरण के विरुद्ध है।

इसमें शक नहीं कि ये कनौजिए ब्राह्मण किसी समय, जैसा कि उनकी पूर्वोक्त उपाधियों से मालूम पड़ता है, वेद-विद्या की उच्चतम कोटि पर पहुँच गए थे। और इनके यहाँ यज्ञादि शुभ कर्मों को करने की परिपाटी ख़ूब बढ़ी-चढ़ी थी। इनकी विद्वत्ता की प्रखर ज्योति के सामने अन्य ब्राह्मण निस्तेज मालूम पड़ते थे। पर अब ये उपाधियाँ नाम मात्र की रह गई हैं। अधिकतर इनमें भोजन-भट्ट

(शेष मैटर ७३ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

सत्याग्रह संग्राम में एक वीरांगना का भाग

(श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री का जीवन-चरित्र)

[श्री० यतीन्द्रकुमार]
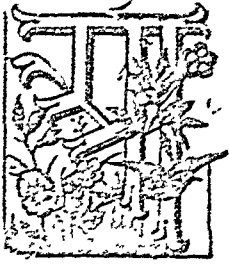
आज से बाइस वर्ष पूर्व बङ्ग-भङ्ग के आन्दोलन ने गुलामी की ज़ञ्जीर में जकड़े हुए परतन्त्र भारत को एक नई विचार-धारा में डाल कर सजग कर दिया। लॉर्ड कर्ज़न का एक प्रान्त को भङ्ग करने का प्रयत्न राष्ट्र की तमाम शक्तियों को एकत्रित कर एक स्वतन्त्र राष्ट्र की नींव डाल गया। बॉयकॉट और सत्याग्रह के अमोघ अस्त्रों ने भारतीयों के हृदय में वह लहर बहा दी कि आज कोई पशुबल से उन्मत्त राष्ट्र उसे उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकता।

आज देश का बच्चा-बच्चा आज़ादी के लिए दीवाना नज़र आता है। राष्ट्र की तमाम ताक़तें केन्द्रीभूत होकर सफलता के लिए व्याकुल हैं। भोगवाद के अन्धविश्वासी भारतीयों से इतनी आशा किसे थी कि वे स्वयं इतने कष्ट-सहिष्णु बन कर इस कठिन संग्राम में जुट पड़ेंगे? सब से आश्चर्य की बात इस संग्राम में यह हुई है कि अन्ध-विश्वास और रूढ़िवाद की उपासिका स्त्रियाँ भी पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ा कर काम कर रही हैं। जिन्हें पुरुष-समाज अबला कह कर पुकारता था, जो शृङ्गार तथा मनबहलाव की चीज़ समझी जाकर पर्दे में बन्द रक्खी जाती थीं, वे ही आज पुरुषों के साथ-साथ, और कहीं-कहीं उनसे भी आगे बढ़ कर, भारत की राजनैतिक प्रगति में भाग ले रही हैं। कोमलकलेवरा बहिनें आज भद्दे और खुरखुरे खद्दर को धारण करके मैदान में पहुँच गई हैं। जिधर देखिए वे प्रगति के पथ पर नज़र आ रही हैं। किसी भी स्थान पर वे पुरुषों से पीछे रहना उचित नहीं समझतीं। कहीं उनके द्वारा धरना दिया जा रहा है; कहीं जुलूस निकल रहे हैं; कहीं व्याख्यान दिए जा रहे हैं और कहीं-कहीं जेल-मन्दिर की भी यात्रा हो रही है। सारांश यह है कि आज स्त्री-समाज जग कर भविष्य में होने वाली क्रान्ति की सूचना दे रहा है। भारत का आधुनिक स्त्री-समाज विलास के सभी साधन और पुराने ज़माने से आते हुए कुसंस्कारों का त्याग कर स्वतन्त्रता के यज्ञ में जो आहुति दे रहा है, दुनिया के इतिहास में एक ऐसी अनोखी और नई बात है, जो किसी भी अवस्था में भुलाई नहीं जा सकती। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने जो आदर्श महिला-संसार के आगे रक्खा है और लाखों स्त्रियों को स्वतन्त्रता के विकट मार्ग का अनुसरण करने, तथा स्वाधीनता के विकट संग्राम में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया है, उसका असर प्रत्यक्ष है। अब तक इस आन्दोलन में भाग लेकर सैकड़ों स्त्रियाँ जेल जा चुकी हैं तथा जिन्होंने अन्य प्रकार से कष्ट झेले और त्याग किए हैं, उनकी संख्या लाखों में नहीं तो हज़ारों में अवश्य है। इस लेख में हम एक ऐसी ही वीर महिला का परिचय 'चाँद' के पाठकों को देना चाहते हैं, जिन्होंने इस आन्दोलन में भाग लेकर अपूर्व आत्म-त्याग किया है तथा अपने नगर की महिलाओं में नया जीवन डाल दिया है।

संयुक्त प्रान्त में जिन वीराङ्गनाओं ने इस आन्दोलन में भाग लिया है उनमें मेरठ के सत्याग्रह दल की प्रधान नायिका श्रीमती उर्मिला देवी को किसी भी अवस्था में भुलाया नहीं जा सकता। उनके दिन-रात के अथक परिश्रम ने हज़ारों स्त्रियों में आज़ादी की उमङ्ग पैदा कर नवीन क्रान्ति की लहर और राष्ट्रीय यज्ञ में कूद आने की जो शक्ति पैदा कर दी, वह आगामी भारत की स्वतन्त्रता के यज्ञ में स्वर्णाक्षरों से अङ्कित रहेगा। उनका दिन-रात का अथक परिश्रम और ठोस तथा अनुकरणीय कार्य स्वतन्त्रता के यज्ञ में महिला-समाज का मस्तक सदा ऊँचा रक्खेगा। आज जो मेरठ के अन्दर हज़ारों स्त्रियों ने अपनी आहुति स्वतन्त्र भारत के लिए दी है, उसका श्रेय श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री को ही है। अन्ततोगत्वा सरकार को भी इस बात का क़ायल होना पड़ा और उसने उस

सत्याग्रह-संग्राम की
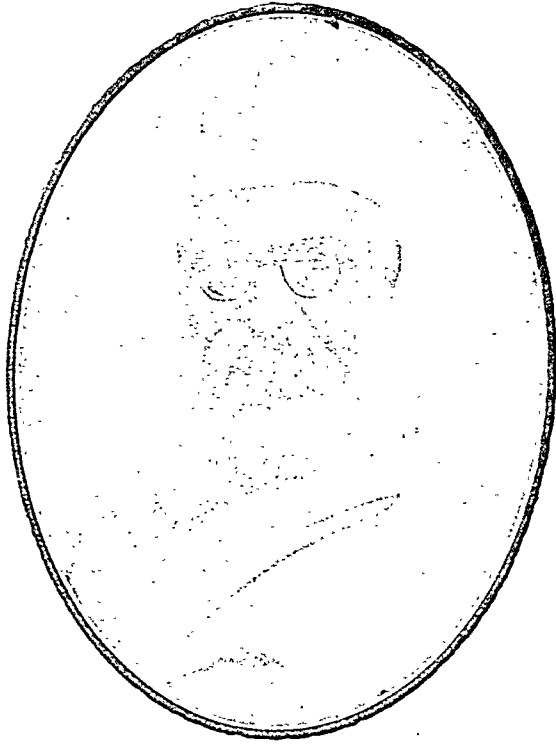
प्रेज़िडेण्ट (भूतपूर्व) पटेल

सरदार पटेल

डॉक्टर अन्सारी
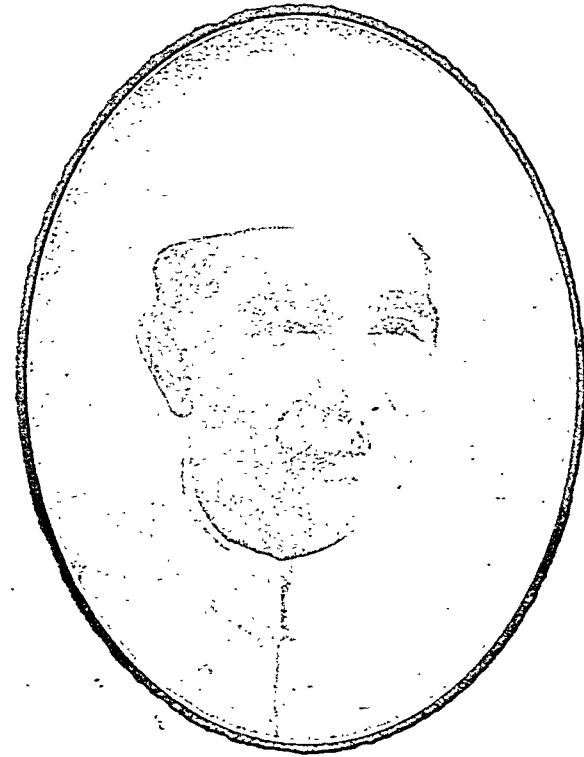
महामना मालवीय जी

कुछ महत्वपूर्ण आहुतियाँ

मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद
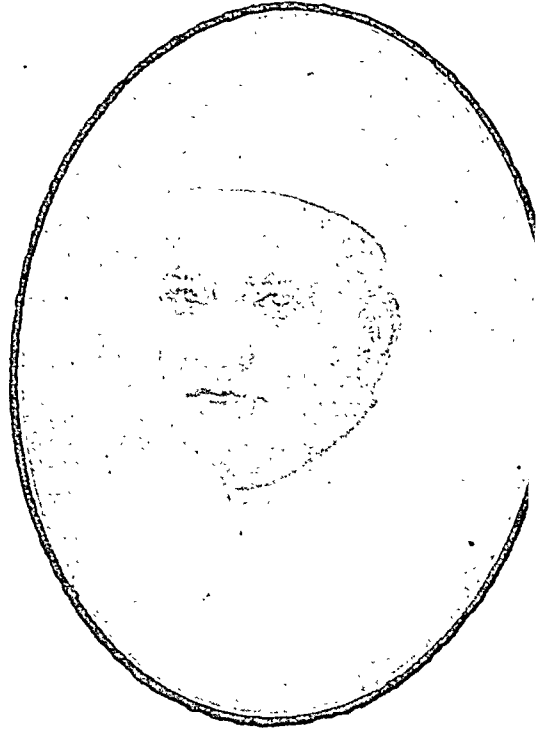
त्यागमूर्ति पं० मोतीलाल नेहरू

श्री० एम० वी० अभ्यङ्कर, बार-एट-लॉ
(मध्य-प्रदेश के प्रथम 'डिक्टेटर')

महात्मा भगवानदीन जी
(मध्य-प्रदेश की "वार-कौन्सिल" के सदस्य)
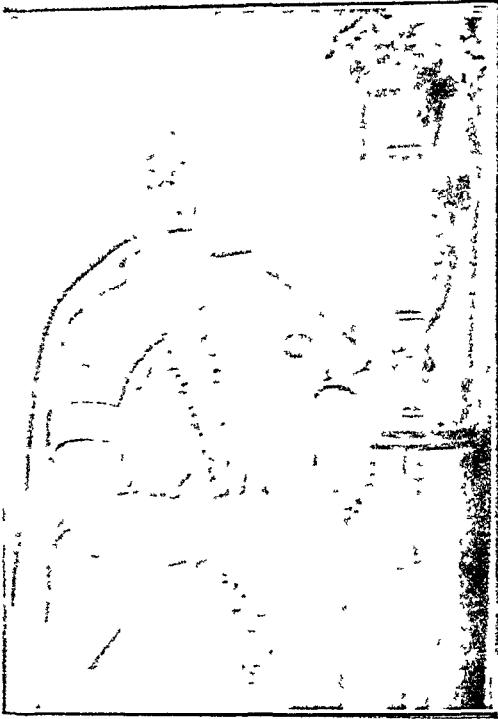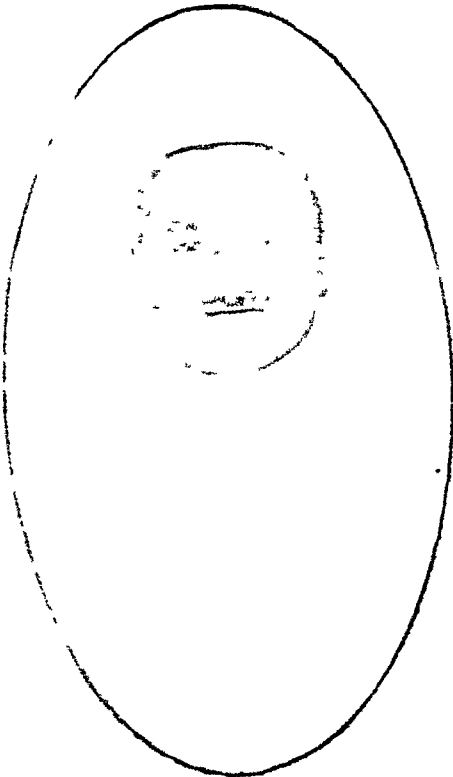
अनमोल मोती को परीक्षा की विकट अग्नि में डाल कर छः मास के लिए कारागार में बन्द ही तो कर दिया। इस वीर महिला का जीवन प्रारम्भ से आज तक एक महान आदर्श और महान सन्देश का परिचायक है और रूढ़िवाद अन्त करने के लिए शुरू से ही जो प्रयत्न उनके जीवन में हो रहा है वह प्रत्येक समाज की महिलाओं के लिए अनुकरणीय है।

बाल्यकाल और शिक्षा

भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य की विभूति और पृथ्वी का स्वर्ग काश्मीर (श्रीनगर) हमारी चरित्रनायिका का जन्म-स्थान है। उनके पिता लाला चिरञ्जीवलाल, जो पहले एक बैङ्क के मैनेजर थे और बाद में जिन्होंने स्वतन्त्र उद्योग-धन्धों को तरक़्क़ी देकर काफ़ी धन संग्रह किया, एक बहुत ही विचारवान तथा सज्जन पुरुष हैं। आप वर्षों से श्रीनगर आर्यसमाज के प्रधान चले आ रहे हैं। आपकी पहली पुत्री श्रीमती सत्यवती देवी बम्बई में अपने पति के साथ हैं और सत्याग्रह कार्य कर रही हैं। सब से छोटी पुत्री कुमारी प्रतिभा एक प्रतिभाशालिनी कवि हैं और अब तक अनेक कविताओं द्वारा सम्मेलनों में पदक तथा प्रशंसापत्र प्राप्त कर चुकी हैं। श्रीमती उर्मिला देवी लाला जी की द्वितीय पुत्री हैं। आपका जन्म सन् १९०६ ई० में हुआ। सुशिक्षित आर्य परिवार में जन्म लेने के कारण ही आपकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध प्रारम्भ से ही अच्छा रहा। पहले आपने वर्नाक्यूलर मिडिल पास किया। उसके पश्चात आप घर पर ही रह कर स्वाध्याय करने लगीं और थोड़े ही दिनों में संस्कृत के अभ्यास के साथ ही साथ हिन्दी में विशेष योग्यता प्राप्त कर ली। फिर कुछ अङ्गरेज़ी का अभ्यास करने के उपरान्त आपने पञ्जाब आर्य-प्रतिनिधि-सभा की उच्च परीक्षा "सिद्धान्त विशारद" पास की और अन्त में पञ्जाब युनिवर्सिटी की हिन्दी की सब से ऊँची परीक्षा "हिन्दी प्रभाकर" में उत्तीर्ण हुईं, जिसका कोर्स हिन्दी के एम० ए० से भी बड़ा है।

आपका ध्यान प्रारम्भ से ही स्त्री-जाति को सुशिक्षित करने की ओर था, अतः अपना शिक्षा-काल समाप्त करने के बाद आपने कुछ दिनों तक निस्स्वार्थ भाव से देहरादून कन्या गुरुकुल में अध्यापिका का कार्य किया। फिर कुछ दिनों तक श्रीनगर की आर्य कन्या पाठशाला में आप अवैतनिक रूप से मुख्याध्यापिका का कार्य करती रहीं। इस कार्य में आपको इतनी सफलता प्राप्त हुई कि अपने कठोर परिश्रम और अध्यवसाय के बल से आपने उस पाठशाला को थोड़े ही दिनों में एक ऊँचे दर्जे के विद्यालय का रूप दे दिया।

विवाह

उर्मिला देवी का जीवन प्रारम्भ से ही स्वदेशी के व्रत से दीक्षित हुआ था। और समय पाकर आपके हृदय में देश-भक्ति का अङ्कुर एक पौधे का रूप धारण कर गया। प्रारम्भिक काल में उनका ध्यान देशी उद्योग-धन्धों के साथ मिलों की उन्नति की ओर आकृष्ट हुआ। कहना न होगा कि खद्दर के महत्व की ओर इस समय तक उनका ध्यान विशेष आकृष्ट नहीं हुआ था। इन्हीं दिनों एक विशेष घटना ने उनके विचारों में अद्भुत परिवर्तन पैदा कर दिया। मेरठ कॉलेज के प्रोफ़ेसर पं० धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री तर्क-शिरोमणि, एम० ए० अपनी गरमी की छुट्टियों में काश्मीर पधारे। श्रीनगर में उन्होंने खादी-माहात्म्य पर एक मर्मस्पर्शी व्याख्यान दिया। पण्डित जी की वक्तृत्व शक्ति के अद्भुत जादू से शिक्षित समाज भली भाँति

(६६ पृष्ठ का शेषांश)

ही देख पड़ते हैं। कुलीनता के घमण्ड के मारे ये अपने बच्चों को पढ़ाते तक नहीं; पर विवाहार्थी कन्या वालों से ठहरौनी स्वरूप एक ख़ासी रक़म की फ़र्मायश करते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि कितने निर्धन कुलीनों की लड़कियाँ क्वाँरी ही बूढ़ी हो जाती हैं। दश गोत्रियों के बालक आजन्म क्वाँरे रह जाते हैं। साधारणतः कनौजियों का खान-पान स्वच्छ है; पर यह खेद के साथ लिखना पड़ता है कि आजकल इनमें से कितने मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करते सुने जाते हैं। परमात्मा से प्रार्थना है कि वह स्वपूर्वजों के प्राचीन गौरव के उत्तराधिकारी इस कान्यकुब्ज ब्राह्मण जाति पर दया कर इसे सुबुद्धि प्रदान करे, ताकि विविध कुरीतियों के भयङ्कर रोगों से आक्रान्त यह जाति इन रोगों के कीटाणुओं को शीघ्र नष्ट करे और सुयोग्य पूर्वजों की सुयोग्य सन्तान बन कर स्वदेश तथा स्वजाति का उद्धार करे।

* * *

परिचित है। उस व्याख्यान का असर सहस्रों नर-नारियों पर पड़ा, परन्तु जिस व्यक्ति ने उसे सबसे अधिक हृदयङ्गम किया और जिसने उस दिन से खादी की उन्नति को अपने जीवन का मन्त्र बना डाला, वह थीं उर्मिला देवी। उस दिन से उर्मिला देवी के अन्दर खादी के प्रति ऐसी अगाध श्रद्धा उत्पन्न हो गई कि उन्होंने खादी पहनने का व्रत धारण कर लिया।

संयोग के अदृष्ट बन्धन और भावी के अटूट विधान का निर्णय कौन कर सकता है? जीवन के प्रवाह में मनुष्य किन विचारों को लेकर न जाने क्या-क्या सोचता है, परन्तु एक अवसर उसके जीवन में ऐसा आता है जो उसके जीवन की धारा को सर्वथा नवीन क्षेत्र में प्रवाहित कर देता है। विवाह मनुष्य-जीवन की ऐसी ही एक घटना है। एक आकस्मिक दैवी संयोग से दो मन किस प्रकार एक होकर सदैव के लिए जीवन की कायापलट कर देते हैं, यह कोई नई बात नहीं। ता० ९ अक्टूबर १९२९ के दिन श्रीनगर में उर्मिला देवी का विवाह संस्कार जात-पाँत के मिथ्या आडम्बर को तोड़ कर सन् १९२३ के सिविल मैरिज ऐक्ट (Civil Marriage Act of 1923) के अनुसार प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री के साथ हुआ। इस तरह विवाह के साथ ही साथ उनका जीवन महिला-समाज के लिए एक नया सन्देश लेकर उपस्थित हुआ। वे मेरठ आईं और यहाँ आए उन्हें दो मास भी न गुज़रे कि उन्होंने अपने जीवन के मुख्य कार्य को प्रारम्भ कर दिया।

समाज-सुधार और स्त्री जाति की सेवा

स्त्री जाति की जो दशा हमारे हिन्दू समाज में है वह किसी से छिपी नहीं। मनमाने अत्याचार उन पर होते हैं। वे पैरों की जूतियाँ समझी जाती हैं। उनका स्थान समाज में सिवाय पुरुषों के मनबहलाव के और कुछ भी नहीं। श्रीमती उर्मिला देवी का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और उन्हीं की अध्यक्षता में जनवरी में स्त्रियों की एक बड़ी सभा हुई। उसमें स्त्री जाति पर होने वाले अन्याय के प्रत्येक पहलू पर विचार किया गया तथा कितने ही महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। एक प्रस्ताव में यह पास किया गया कि मृत व्यक्ति की मृत्यु पर उसकी सम्पत्ति का हक़ उसकी विधवा स्त्री को मिलना चाहिए। एक दूसरे प्रस्ताव में चौधरी मुख़्तारसिंह, एम० एल० सी० के आर्य-मैरेज-बिल में इस बात को बढ़ाने की ज़ोरदार सिफ़ारिश की गई कि पुरुषों के लिए भी एक-पत्नीव्रत होना आवश्यक है; अगर ऐसा न हुआ तो स्त्री जाति के कष्टों में एक संख्या और बढ़ जायगी। उसके बाद उर्मिला देवी जी ने गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन की रजत-जयन्ती के अवसर पर, आर्य महिला कॉन्फ्रेन्स की सभानेत्री की हैसियत से, स्त्री जाति के विरुद्ध होने वाले आन्दोलन के विरुद्ध भी ज़ोरदार आवाज़ उठाई। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही समय में स्त्रियों के उद्धार का प्रयत्न करने वाली एक प्रमुख कार्यकर्त्री समझी जाने लगीं।

इसी समय देश में एक नया आन्दोलन उठा। साबरमती के उस अनोखे जादूगर ने भारत के प्रत्येक समझदार व्यक्ति का ध्यान राष्ट्र की ओर आकर्षित कर दिया। श्रीमती उर्मिला देवी इस विकट परीक्षा के समय पीछे कैसे रह सकती थीं? इस आन्दोलन के साथ ही साथ उनके जीवन में एक नया अध्याय शुरू हुआ।

राजनैतिक क्षेत्र में पदार्पण

छोटी-छोटी घटनाओं का भी, जिन्हें साधारण आदमी तुच्छ समझता है, महान आत्माओं पर विचित्र असर पड़ता है। एक ऐसी ही घटना उर्मिला देवी के राजनैतिक क्षेत्र में पदार्पण करने का कारण हुआ।

शिवरात्रि के अवसर पर श्री० धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री को कार्यवशात अनूपशहर जाने का मौक़ा पड़ा। इस अवसर पर श्रीमती उर्मिला देवी भी उनके साथ गईं। बुलन्दशहर से अनूपशहर जाने वाली सड़कें मुग़ल बादशाहों के समय की उन सड़कों की याद दिलाया करती हैं जिनमें जगह-जगह गड्ढे पड़े रहते थे और जिन पर एक दफ़ा चलने के बाद मनुष्य को जन्म भर उनकी याद न भूलती थी। ब्रिटिश राज्य में इन सड़कों की अवस्था मुग़ल राज्य से कुछ अच्छी नहीं है। इन पर चलने में आज भी लॉरी और मोटर के धक्के असह्य हो उठते हैं और थके होने पर भी मनुष्य पैदल चलने में ही अपना कुशल समझता है। यह हालत देख कर उर्मिला देवी ने प्रश्न किया कि यह सड़क इस अवस्था में क्यों है। उत्तर मिला कि सरकार के पास इस मद में ख़र्च करने को

एक पैसा नहीं है। उर्मिला देवी के हृदय पर इस उत्तर का गहरा असर पड़ा। उनके मन में यह विचार उठा कि जो सरकार फ़ौजों में तथा बड़े वेतनों में करोड़ों रुपया फूँक देवे, वह आज जनता के फ़ायदे के लिए एक पैसा भी ख़र्च नहीं कर सकती है, यह कितने अफ़सोस और शर्म की बात है!. जब तक हमारा देश परतन्त्रता की शृङ्खला में बँधा है तब तक यह दुरवस्था दूर नहीं हो सकती। फलतः उसी समय से उनका ध्यान देश की स्वाधीनता की ओर आकर्षित हुआ और वे कॉङ्ग्रेस के प्रोग्राम के अनुसार देश-सेवा की धुन में दिन-रात रहने लगीं।

नौचन्दी का मेला और विदेशी बॉयकॉट

भारतवर्ष की नुमाइशों में नौचन्दी का मेला अपना एक ख़ास स्थान रखता है, दूर-दूर के लाखों यात्री इसमें आते हैं और लाखों रुपए का विलायती कपड़ा इसमें बिकता है। मेला लगने के एक सप्ताह पहले स्त्रियों की एक सभा हुई, जिसमें उर्मिला देवी ने खादी के समर्थन में एक ज़ोरदार भाषण दिया। फिर सभा में विदेशी वस्त्र के बॉयकॉट करने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। स्मरण रहे कि मेरठ शहर में विलायती कपड़े के विरुद्ध यह सबसे पहला आन्दोलन था, जिसमें स्त्रियों ने भाग लिया। उस समय तक किसी को स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि स्त्रियाँ इस आन्दोलन में कैसे-कैसे आश्चर्यजनक काम कर दिखावेंगी। इस सभा का आश्चर्यजनक परिणाम निकला। उर्मिला देवी के नेतृत्व में तीस बहिनें वालण्टियर बनीं और विलायती कपड़े पर ज़ोरदार धरना देना शुरू हुआ। इसका जो परिणाम हुआ, उसने लोगों की आँखें खोल दीं। विलायती कपड़े की बिक्री अस्सी प्रति शतक कम हो गई। इस अवसर पर सत्तर हज़ार नोटिसें बाँटी गईं और बहुत सी बहिनों ने उर्मिला देवी के साथ चौदह-चौदह घण्टे प्रति दिन धरना दिया। लोग हैरान थे कि स्त्रियों में इतनी शक्ति कहाँ से आगई? इस मेले ने मेरठ की महिलाओं में नवीन स्फूर्ति, नवीन कार्यशक्ति पैदा कर दी और उनमें नवजीवन का सञ्चार हो गया।

सत्याग्रह दल और उसका नेतृत्व

नौचन्दी के मेले के साथ ही आज़ादी का जङ्ग छिड़ गया और मेरठ की महिलाओं ने न विश्राम की परवाह की और न किसी प्रकार के आराम की। उन्होंने फ़ौरन महिला सत्याग्रह समिति की स्थापना की। श्रीमती उर्मिला देवी प्रधान कैप्टेन चुनी गईं और श्रीमती विद्यावती सहायक कैप्टेन। फिर क्या था, मेरठ के बजाज़े पर धावा बोल दिया गया और विलायती कपड़े पर धरना देना प्रारम्भ कर दिया गया। धरना इतना सख़्त हुआ कि चार दिनों के बाद ही दूकानदारों ने अपना विलायती माल तालों में बन्द कर सत्याग्रह-समिति की मुहर लगवा दी तथा अपनी दूकानों को स्वदेशीमय कर दिया। इसके

मेरठ की महिला-स्वयंसेविकाओं की कप्तान
श्रीमती उर्मिला देवी, शास्त्री

बाद कॉङ्ग्रेस के निश्चय के अनुसार बजाज़ों ने विलायती कपड़ा न मँगाने की प्रतिज्ञा की और पिकेटिङ्ग बन्द की गई।

देश के प्राण महात्मा गाँधी को लोगों के बीच से हटा कर ४ मई को गवर्नमेण्ट ने जब अपना मेहमान बना लिया तो जनता के अन्दर नवीन जोश और उत्साह का समुद्र उमड़ पड़ा। मेरठ में ९ तारीख़ के प्रातःकाल पौन मील लम्बा जुलूस निकला। जुलूस का रास्ता पाँच मील लम्बा था। इस जुलूस की सब से बड़ी विशेषता इसमें

सच्ची आत्मा की वाणी का होना चाहिए। वेश्याओं की एक सभा में शास्त्रों के विरोध में और खादी और चरखे के उद्देश्य को लेकर जब डेढ़ घण्टे तक उनका व्याख्यान हुआ तो वेश्याओं का हृदय भर आया और उनकी आँखों से आँसू बह उठे। उन्होंने खादी पहिनने की प्रतिज्ञा की तथा शराब न पीने की क़सम खाई।

इस अवसर पर उन्हें कभी-कभी बाहर जाने का भी मौक़ा पड़ता रहा। गाँवों और क़स्बों में शराब तथा विदेशी कपड़े के बायकॉट के लिए उन्होंने कई दौरे किए। छोटे-छोटे क़स्बों में भी जाकर उन्होंने कॉङ्ग्रेस का महान सन्देश जनता के सामने रक्खा। उन्हें इसी काम के कारण कई दफ़े बीमारी हुई, गला बझ गया, पर धुन काम करने की ही रही। उन्होंने दवाई का सेवन करके फिर वही प्रोग्राम जारी रक्खा—ज़िले सहारनपुर में कॉङ्ग्रेस की ओर से गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के प्रयत्न से बहादुरपुर में एक बड़ी भारी सभा हुई, जिसमें उर्मिला देवी जी ने एक बड़ा ही ज़ोरदार भाषण दिया और लोगों के अन्दर जो एक तरह का अज्ञात भय व्याप्त हो रहा था उसे दूर किया। उस दिन की श्रीमती उर्मिला देवी जी की प्रभावशालिनी वक्तृता ने गाँव-गाँव कॉङ्ग्रेस का सन्देश पहुँचा दिया और साथ ही उनके नाम को भी प्रसिद्ध कर दिया।

इसके बाद ही एक ऐसी घटना घटी, जो आज भी एक पहेली सी मालूम पड़ती है। ता० २५ जून की रात के एक बजे मोटर से उतर कर कुछ व्यक्तियों ने श्रीमती उर्मिला देवी के बँगले पर धावा बोल दिया। प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री ने कई फ़ायर किए, पर वे लोग बँगले के कम्पाउण्ड में घुस ही आए। अन्दर तो वे न जा सके, किन्तु बाद में यह पता लगा कि बँगले के द्वार पर का झण्डा वे लोग उतार कर ले गए। पुलिस ने बड़ी सरगर्मी से इस मामले की खोज की। पता चला कि फ़ौजी अङ्गरेज़ अफ़सरों ने यह आक्रमण किया था। अतः मामला पुलिस के पास से फ़ौजी अफ़सर के सिपुर्द हुआ। किन्तु आज तक यह पता न चला कि मामला क्या था।

अङ्गरेज़ी माल का बायकॉट

विदेशी वस्त्र के काम से निबट कर महिला सत्याग्रह समिति ने अपना ध्यान विदेशी वस्तुओं के बॉयकाट की ओर लगाया। मेरठ में बायकॉट पर भाषण देते हुए श्रीमती उर्मिला देवी ने कहा कि लोग समझते हैं कि बीमारी की हालत में तो अङ्गरेज़ी दवा पीनी ही पड़ेगी, पर मैं कहती हूँ कि अगर अङ्गरेज़ी दवा से आप तन्दुरुस्त होते हैं तो उसकी अपेक्षा मर जाना बेहतर है। आपका कर्त्तव्य तो इस समय यह है कि चाहे कितनी ही मुसीबतें आकर पड़ें, इङ्गलैण्ड की कोई वस्तु छूना भी आप पाप समझिए।

कृष्ण-मन्दिर में

एक परतन्त्र राष्ट्र में देशसेवा की क़ीमत जेल, बेंत, फाँसी, आदि के सिवाय और क्या कूती जा सकती है। श्रीमती उर्मिला देवी अपने कार्यों से सरकार की आँखों में खटकने लगीं और उनके लिए वह समय आ गया जो प्रत्येक देश-सेवक के लिए वर्तमान समय में सब से बड़े सौभाग्य का समय है। विगत १७ जुलाई रात के समय दस हज़ार जनता की उपस्थिति में उनका एक अत्यन्त ओजस्वी भाषण हुआ, जिसमें उनके हृदय के उद्गार फूट पड़े—

"प्राकृतिक सौन्दर्य का घर काश्मीर मेरी जन्मभूमि है। पिता जी का सन्देश काश्मीर आने के लिए आया है। किन्तु जेल के सौन्दर्य के आगे काश्मीर का सौन्दर्य तुच्छ है। जेल की चहारदीवारी में देश के प्राण और संसार की सब से सुन्दर विभूति महात्मा गाँधी बन्द हैं।" उसके बाद उसी भाषण में उन्होंने कहा—"केवल कार्य करने से जेल नहीं मिलती। वह तो भाग्य से मिलती है। न जाने मेरा भाग्य कब चमकेगा।" उनके इन ओजस्वी शब्दों ने लोगों के दिलों को एकदम अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। आपने फिर कहा—"कल का चमकता हुआ सूर्य न जाने किस-किस के लिए हथकड़ी लाएगा। यह काली भयानक रात्रि न जाने किस-किस को समेट लेगी।"

रात कटी। सुबह हुआ। और पाँच बजने के साथ ही मेरठ महिला सत्याग्रह समिति की प्राण श्रीमती उर्मिला देवी जेल की चहारदीवारी में बन्द कर दी गईं। जेल जाते समय उनका मुख-मण्डल हर्ष और आनन्द से विभोर था; उस समय एक अपूर्व तेजस्विता उनके चेहरे पर विराजमान थी। सहस्रों आँखों ने हर्ष के साथ उस दिन उन्हें विदाई दी।

ता० १९ जुलाई को मैजिस्ट्रेट ने आपके मामले का फ़ैसला सुनाया। जिस समय आपसे पूछा गया कि क्या आपके व्याख्यान की जो रिपोर्ट आई है सच है, तो आपने अभिमान से कहा—"सब सही और इससे भी ज़्यादा।" फिर आपको मैजिस्ट्रेट ने कहा—"चूँकि आप लीडर हैं, इसलिए पिकेटिङ्ग ऑर्डिनेन्स के अनुसार छः मास की सज़ा आपको दी जाती है, जो कि इस धारा में सब से बड़ी सज़ा है।" इस पर श्री० उर्मिला जी ने मैजिस्ट्रेट साहब को उनके इस पारितोषिक के लिए धन्यवाद दिया और कोर्ट से जाने लगीं। उस समय सारा कोर्ट "महात्मा गाँधी की जय", "उर्मिला देवी की जय" के निनाद से गूँज उठा। कई बहिनों ने मैजिस्ट्रेट के सामने ही उन्हें फूल-मालाओं से लाद दिया। सारे नगर में इस ख़बर के सुनते ही सनसनी सी फैल गई और एक अभूतपूर्व शानदार जुलूस उनको विदाई के लिए निकाला गया।

सन्देश

जेल जाने के पहले देवी जी ने जो सन्देश अपनी जनता को दिया उसका एक-एक अक्षर देशभक्ति की ज्वाला से भरा हुआ है। उन्होंने कहा—"मेरठ के हज़ारों भाइयों ने मुझे बहिन कह कर पुकारा है। आज बहिन के नाते स्वराज्य-मन्दिर में जाते हुए अपने भाइयों से एक उपहार माँगना चाहती हूँ। वह यह है कि मेरठ में एक भी ऐसा घर न बचे जो कम से कम एक सत्याग्रही न देवे। इस महायज्ञ में प्रत्येक घर से एक-एक आहुति पड़नी चाहिए जिससे कि इस यज्ञ की ज्वाला ऐसा प्रचण्ड होकर इतने ज़ोर से जल उठे कि तमाम ब्रिटिश साम्राज्य भस्मसात हो जावे। मेरे भाइयो! जिस उर्मिला को आपने बहिन कह कर पुकारा है उसकी यह छोटी सी माँग व्यर्थ जायगी? यदि ऐसा हुआ तो मुझे जेल की ऊँची दीवारों के बीच निराशा भरी रातें, तारे गिन-गिन कर काटनी पड़ेंगी। परन्तु यदि मेरे भाइयों ने मेरी पुकार सुन ली तो जेल की कठोर ज़मीन मेरे लिए फूलों की कोमल शय्या बन जायगी। आज विदाई के समय मैं आपकी बहिन के नाते एक यही उपहार माँगती हूँ। सोचिए, इस देश में आज भाई बनने की क़ीमत क्या है?"

उस समय सहस्त्रों जनता के बीच से यह आवाज़ प्रतिध्वनित हो उठी—"प्रत्येक घर से एक आहुति।" क्या मेरठ वासियों को अब भी अपनी वह पुनीत प्रतिज्ञा पूरी करने की धुन है? क्या मेरठ का महिला समाज उस पवित्र काम को जारी रक्खेगा, जिसकी सफलता के लिए उर्मिला देवी आज दिन-रात कृष्ण-मन्दिर में बैठी हुई प्रार्थना कर रही हैं?

उठ! जाग!!

[मुक्त]

विष क्या है? अमृत क्या है?
इसका है जिसे न ज्ञान।
क्या वह इस मादकता का
कर सकता है अनुमान?
छिपी हुई चिनगारी से
यह लहक उठी है आग।
जाग-जाग, मेरे अन्तर के
रुद्ध भाव उठ, जाग!!

आज तिमिर की विदा, ज्योति का
होता है आह्वान।
तरुण देश पागल हो, गाता
है प्रलयङ्कर गान॥
डस लेगा, यह जाग उठा है
क्रोधित काला नाग।
जाग-जाग, मेरे अन्तर के
क्रुद्ध भाव उठ, जाग!!

Telephone:
383

Telegrams:
BHAVISHYA

THE BHAVISHYA

The leading Socio-Political Weekly Review (Hindi)

Chief Editor: Mr. R. SAIGAL

PROFUSELY ILLUSTRATED

ART PAPER COVER

No. of Solid Pages	... 44	Annual Sub.	... Rs. 6/-
No. of illustrations	... 20	Six Monthly	... Rs. 3/8
No. of Cartoons	... 4	Single Copy	... As. -/2/-

SPECIAL FEATURE

Latest News, complete diary of political and social activities of India and abroad, thoughtful contributions on international politics, Stories, Novels, Tit Bits, Read and Laugh, Notes, *Dube Ji ki chitthi*, Dramas and what not?

'Bhavishya' is the only weekly which has special News services of all important agencies.

SUBSCRIBE NOW OR NEVER

Reliable Agents required all over India. For terms, apply to—

The Manager,
The BHAVISHYA, Chandralok, Allahabad

[ले० पण्डित भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी]

[भूमिका-लेखक—श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

इस उपन्यास में बिछुड़े हुए दो हृदयों—पति-पत्नी—के अन्तर्द्वन्द्व का ऐसा सजीव चित्रण है कि पाठक एक बार इसके कुछ ही पन्ने पढ़ कर करुणा, कुतूहल और विस्मय के भावों में ऐसे ओत-प्रोत हो जायँगे कि फिर क्या मजाल कि इसका अन्तिम पृष्ठ तक पढ़े बिना कहीं किसी पत्ते की खड़खड़ाहट तक सुन सकें !

अशिक्षित पिता की अदूरदर्शिता, पुत्र की मौन-व्यथा, प्रथम पत्नी की समाज-सेवा, उसकी निराश रातें, पति का प्रथम पत्नी के लिए तड़पना और द्वितीय पत्नी को आघात न पहुँचाते हुए उसे सन्तुष्ट रखने को सचेष्ट रहना, अन्त में घटनाओं के जाल में तीनों का एकत्रित होना और द्वितीय पत्नी के द्वारा, उसके अन्तकाल के समय, प्रथम पत्नी का प्रकट होना—ये सब दृश्य ऐसे मनोमोहक हैं, मानो लेखक ने जादू की क़लम से लिखे हों !!

लेखक कहानी और उपन्यास लिखने में वैसे भी लब्ध-प्रतिष्ठ हैं, पर इस उपन्यास के लिखने में तो उन्होंने सच-मुच कमाल किया है। शरत बाबू के उपन्यासों में जो मोहक आकर्षण है और मेरी करेली के उपन्यासों में जो तड़पन, वह सब आपको इसकी पृष्ठ-प्यालियों में सर्वत्र ही छलकता हुआ मिलेगा !!!

काग़ज़ बढ़िया, छपाई लाजवाब, मूल्य केवल २)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

चन्द्रलोक, इलाहाबाद

मेहरुन्निसा

[अनुवादक—श्री० मङ्गलप्रसाद जी विश्वकर्मा, विशारद]

भारत-सम्राट् जहाँगीर की असीम क्षमताशालिनी सम्राज्ञी नूरजहाँ का नाम कौन नहीं जानता? भारतवर्ष के इतिहास में उसकी अक्षय कीर्ति-गाथा ज्वलन्त अक्षरों में आज भी देदीप्यमान् हो रही है। इसी सम्राज्ञी का पुराना नाम मेहरुन्निसा था। जहाँगीर उसके अपूर्व लावण्य पर मुग्ध हो गया और उसने येन-केन-प्रकारेण उसके पति शेरखाँ को मरवा डाला, मेहरुन्निसा विधवा हो गई। उसने सम्राट् को अपना मुँह तक दिखाना उचित नहीं समझा। अन्त में मेहरुन्निसा ने दुखी होकर अपनी प्यारी सखी कल्याणी के आग्रह से सम्राट् की सम्राज्ञी होना स्वीकार कर लिया।

शिशु-हत्या और नरमेध-प्रथा

[ले० श्री० शीतलासहाय जी, बी० ए०]

इस छोटी सी पुस्तक में, यद्यपि ऐतिहासिक प्राचीन कुप्रथाओं का दिग्दर्शन मात्र कराया गया है, तथापि रोचकता और भाषा-लालित्य के कारण यह एक छोटे उपन्यास का आनन्द देती है। भारतवर्ष के मध्यकालीन इतिहास में अविद्या, स्वार्थ एवं अन्ध-विश्वास के कारण जो सामाजिक अत्याचार घटित हुए हैं, उनमें से शिशु-हत्या और नरमेध नामक दो प्रथाओं के द्वारा किए गए अत्याचारों का वर्णन लेखक ने ऐसे करुणाजनक शब्दों में किया है कि उनको पढ़ने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हमने सर्व-साधारण के लाभार्थ इस ४८ पृष्ठ की उत्तम छपी हुई पुस्तक का मूल्य चार आने मात्र रक्खा है। नवीन संस्करण छप रहा है!

आत्माभिमानिनी, वैधव्य-दुख-कातरा, प्रताड़िता, रूपसी मेहरुन्निसा का यह करुण-रसपूर्ण चरित्र एक बार ही दिल को दहला देता है। इसके पश्चात् यह उदात्तचित्ता मेहरुन्निसा सम्राट् की प्रेयसी और श्रेयसी बन कर किस प्रकार नूरजहाँ के नाम से भारत की सम्राज्ञी बनी—ये सब घटनाएँ इस उपाख्यान में बड़े ही कवित्वपूर्ण शब्दों में वर्णित हैं। मूल्य केवल ॥) ; स्थायी ग्राहकों से ।≈) ; नवीन संस्करण प्रेस में है!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

लेखक—

[प्रो॰ श्री॰ धर्मानन्द जी शास्त्री]

इस महत्वपूर्ण पुस्तक के लेखक पाठकों के सुपरिचित, 'विष-विज्ञान' 'उपयोगी चिकित्सा' 'स्त्री-रोग-विज्ञानम्' आदि-आदि अनेक पुस्तकों के रचयिता, स्वर्ण-पदक प्राप्त प्रोफ़ेसर श्री॰ धर्मानन्द जी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य हैं, अतएव पुस्तक की उपयोगिता का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है। आज भारतीय स्त्रियों में शिशु-पालन-सम्बन्धी समुचित ज्ञान न होने के कारण सैकड़ों, हज़ारों और लाखों नहीं, किन्तु करोड़ों बच्चे प्रतिवर्ष अकाल-मृत्यु के कलेवर हो रहे हैं। बाल-शिक्षा का पाठ न स्त्रियों को घर में पढ़ाया जाता है और न आज-कल के गुलाम उत्पन्न करने वाले स्कूल और कॉलिजों में। इसी अभाव को दृष्टि में रख कर प्रस्तुत पुस्तक लिखी और प्रकाशित की गई है। इसमें बालक-बालिका सम्बन्धी प्रत्येक रोग, उसका उपचार तथा ऐसी सहज घरेलू चिकित्सा तथा घरेलू दवाइयाँ बतलाई गई हैं, जिन्हें एक बार पढ़ लेने से प्रत्येक माता को उसके समस्त कर्त्तव्यों का ज्ञान सहज ही में हो सकता है और बिना डॉक्टर-वैद्यों की जेबें भरे वे शिशु-सम्बन्धी प्रत्येक रोग को समझ कर उसका उपचार कर सकती हैं। प्रत्येक सद्गृहस्थ के घर में इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य होनी चाहिए। भावी माताओं के लिए तो प्रस्तुत पुस्तक आकाश-कुसुम ही समझना चाहिए। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥); स्थायी ग्राहकों से १॥=) मात्र !!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

चन्द्रलोक, इलाहाबाद

वीर बाला

इसमें सन् ५७ के ग़दर में अङ्गरेज़ों के दाँत खट्टे करने वाली, वीर बाला झाँसी की रानी, देवी लक्ष्मीबाई के वीरतापूर्ण एवं ज्वलन्त आत्म-त्याग की कहानी उपन्यास-रूप में लिखी गई है। कोई भी भारत-सन्तान ऐसी न होगी, जो इस प्रातःस्मरणीय महिला के आदर्श-चरित्र को पढ़ कर, गर्व से फूल न उठे! इस उपन्यास में यह भी दिखाया गया है कि विदेशी शासन ने भारत-वासियों की मनोवृत्ति को इतना कुचल डाला है कि उनके चित्त में स्वतन्त्रता, स्वदेशाभिमान, आत्म-गौरव आदि सद्वृत्तियों का पैदा होना सम्भव ही नहीं है। हम दावे के साथ कहते हैं कि ऐसा उत्तम, साथ ही शिक्षाप्रद एवं उपयोगी उपन्यास हिन्दी में अब तक नहीं निकला। तिरङ्गे एवं सादे चित्रों से विभूषित, सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ४); पहिला २००० कॉपियों का संस्करण केवल १ मास में हाथोंहाथ बिक चुका है!!

अनाथ
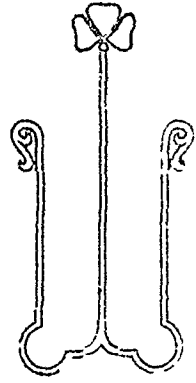
नवीन संस्करण छप रहा है!!

हिन्दुओं की नालायक़ी, मुसलमान-गुण्डों की शरारतें और ईसाइयों के हथकण्डों की दिलचस्प कहानी—अनाथालयों का भण्डा-फोड़। किस प्रकार मुसलमान और ईसाई अनाथ बालकों को लुभा-छिपा तथा बहका कर अपने मिशन की संख्या बढ़ाते हैं; हिन्दू-अनाथालयों के सञ्चालकों एवं कार्यकर्ताओं के अत्याचार किस प्रकार अनाथ बच्चों को सहने पड़ते हैं—इसका ब्यौरा वर्णन इस पुस्तक में मिलेगा। भाषा अत्यन्त सरल तथा मुहावरेदार है। बच्चे-बूढ़े—सभी लाभ उठा सकते हैं। आज ही आँख मीच कर ऑर्डर दे डालिए! मूल्य ॥) मात्र; पहिला संस्करण १ मास में बिक चुका है!!

गुदगुदी

पुस्तक क्या है, हँसी का ख़ज़ाना है। श्रीवास्तव महोदय ने इस पुस्तक में कमाल कर दिया है। एक-एक चुटकुला पढ़िए और हँस-हँस के दोहरे हो जाइए, यही इस पुस्तक का संक्षिप्त परिचय है। बालकों तथा स्त्रियों के लिए विशेष मनोरञ्जन की सामग्री है। जब सभी कार्य से जी ऊब जाय, उस समय केवल एक चुटकुला पढ़ लीजिए, सारी थकावट दूर हो जायगी। मू० केवल ॥); स्थायी ग्रा० से ।≈); दो संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं! तीसरी बार छप कर तैयार है।

व्यवस्थापिका—
'चाँद' कार्यालय,
इलाहाबाद

गल्प विनोद

[ले० श्रीमती शारदाकुमारी देवी, भूतपूर्व सम्पादिका 'महिला-दर्पण']

इस सुन्दर पुस्तक में देवी जी की समय-समय पर लिखी हुई कहानियों का अपूर्व संग्रह है। सभी कहानियाँ रोचक और शिक्षाप्रद हैं। इनमें सामाजिक कुरीतियों का अच्छा खाका खींचा गया है। छोटी-छोटी कहानियों के प्रेमी पाठकों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। पृष्ठ-संख्या १८०; मोटे ३५ पाउण्ड के कागज़ पर छपी हुई पुस्तक का मूल्य केवल १) रु०; स्थायी ग्राहकों से ।।।) मात्र !
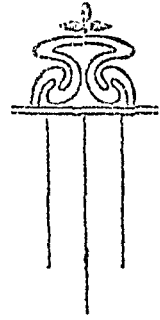
मनमोदक

[सम्पादक—श्री० प्रेमचन्द जी]

यह पुस्तक बालक-बालिकाओं के लिए खिलौना है। जैसा पुस्तक का नाम है, वैसा ही इसमें गुण है। इसमें लगभग ४५ मनोरञ्जक कहानियाँ और एक से एक बढ़ कर ४० हास्यप्रद चुटकुले हैं। इस पुस्तक को बालकों को सुनाने से 'आम के आम और गुठलियों के दाम' वाली कहावत चरितार्थ होती है। छपाई-सफ़ाई सुन्दर; १८० पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक की क़ीमत केवल ।।।); स्थायी ग्राहकों से ।।-)

आदर्श धर्म पत्नी

[लेखक—श्री० जगदीश झा, 'विमल']

यह एक छोटा सा शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास है। मनुष्य के जीवन में सुख-दुःख का दौरा किस प्रकार होता है; विपत्ति के समय मनुष्य को कैसी-कैसी कठिनाइयाँ सहनी पड़ती हैं; किस प्रकार घर की फूट के कारण परस्पर वैमनस्य हो जाता है और उसका कैसा दुखदाई परिणाम होता है, यह सब बातें आपको इस उपन्यास में मिलेंगी। इसमें क्षमाशीलता, स्वार्थ-त्याग और परोपकार का अच्छा चित्र खींचा गया है। मूल्य केवल ।।) स्थायी ग्राहकों के लिए ।-) मात्र !

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

भुलक्कड़

[ले० श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

श्री० श्रीवास्तव महोदय संसार के सबसे श्रेष्ठ हास्य-नाटककार फ्रान्स के 'मोलियर' (Moliere) की चुनी हुई रचनाओं का रसास्वादन हिन्दी-पाठकों को अनेक बार करा चुके हैं। प्रस्तुत नाटक मोलियर महोदय की चुनी हुई रचनाओं में से है। यह नाटक प्रथम सन् १६५३ या १६५५ ई० में लॉइन (Lyons) नगर में, उसके बाद सन् १६५८ में फ्रान्स की राजधानी पेरिस में बादशाह के समक्ष खेला गया था और विश्व ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

श्रीवास्तव महोदय ने जिस बाने में इसे हिन्दी-संसार में उपस्थित किया है, वह देखने योग्य है। मूल्य केवल लागत मात्र २); हँसते-हँसते पेट न फूल जाय तो पुस्तक का दाम वापस !!!

स्वप्न की छाया

[मुक्त]

बौद्ध-चैत्य से होकर जो सड़क दश-पारमिता के मन्दिर की ओर गई है, युवक भिक्षु भद्रवाहन उसी पर नतमस्तक चला जा रहा था।

धीरे-धीरे सन्ध्या हो आई। अन्धकार की धूमिल छाया धरित्री पर कुछ देर के लिए फैल गई। फिर नीले आसमान में चन्द्रमा खिलखिला उठा। उसकी सफ़ेद, चाँदी-सी, धुली हुई ज्योत्स्ना चारों ओर फैल गई। एक-दो झिलमिलाते हुए तारे आकाश में उग आए। भद्रवाहन उस समय भी, मन्दगति से, उसी पथ पर अग्रसर हो रहा था।

भद्रवाहन के मन में एक पहेली थी। वह उसे ही सुलझाने में तल्लीन था, लेकिन कोई सन्तोषजनक युक्ति और तर्क उसे मिल नहीं रहा था। इसीसे वह चञ्चल था, इसीसे वह उस निर्जन रात्रि में वन-पथ पर, अकेला, उद्देश्यहीन, चला जा रहा था।

भद्रवाहन के मन में कौन चिन्ता थी?

वह सोच रहा था—सत्य क्या है? और मिथ्या ही क्या है? सत्य और मिथ्या, जगत् के इन दो तत्त्वों पर वह बड़ी देर से आलोचना कर रहा था, किन्तु उसकी समझ में कोई बात न आती थी। जितना ही वह सोचता था, उलझन उतनी ही बढ़ती जाती थी, चिन्ता उतनी ही गहरी होती जाती थी। चलते-चलते रात एक पहर बीत गई। बाल चन्द्रमा की किरणें शिथिल और पीताभ होकर अपनी ज्योत्स्ना समेटने लगीं। भद्रवाहन भी, श्रान्त होकर, एक शिलाखण्ड पर बैठ गया।

सहसा अपने कन्धों पर किसी का कर-स्पर्श अनुभव करके वह चौंक उठा। घुटनों में छिपे हुए सिर को उठा कर उसने देखा—उसका सहपाठी देवसेन है। वह थोड़ा गम्भीर हुआ। बोला—"देवसेन! तुम्हें सङ्घाराम से बाहर जाने की अनुमति कैसे मिल गई?"

देवसेन हँसा। कहने लगा—"और तुम्हें ही यह अधिकार कैसे मिला है, भद्रवाहन? तुम स्वयं भी तो इस निर्जन रात्रि में शैलमाला में इधर-उधर भटक रहे हो! तुम अपनी कहो?"

"मेरा चित्त स्वस्थ नहीं है, देवसेन! मेरी बात क्या पूछते हो! अभी भी मेरा चित्त स्थिर नहीं है, अभी भी बुद्ध पर मेरी सम्पूर्ण आस्था नहीं हो सकी है। मैं तो अपना अशान्त मन लेकर घूम रहा हूँ। लेकिन तुम? तुम्हें क्या आवश्यकता आ पड़ी है?"

"मैं तो तुम्हारे ही पास आया हूँ। पीठस्थविर ने एक नवीन आज्ञा प्रचारित की है, जानते हो?"

"नहीं, मैं कुछ भी नहीं जानता। शायद जान सकता ही नहीं। देवसेन! मैंने धर्म परिवर्तन किया है। धर्म परिवर्तन करने से हृदय परिवर्तन करना होता है, और यह सब से कठिन है। उस समय अन्तर में एक महान सङ्घर्ष उठ खड़ा होता है। अनेक बार उस सङ्घर्ष में विजय प्राप्त करना बहुत आसान नहीं होता। मेरा हृदय बहुत अशान्त हो उठा है, देवसेन! तुम जानते नहीं हो।"

"नहीं, और उसकी मुझे आवश्यकता ही क्या है? लेकिन अब चलो। विलम्ब होने से पीठस्थविर का कोपभाजन बनना पड़ेगा। मैं सङ्घाराम में तुम्हें कहीं न देख कर ढूँढ़ता हुआ इधर चला आया हूँ।"

"लेकिन तुम आ कैसे सके देवसेन?"

"सङ्घाराम में आरती का आयोजन हो रहा था, सब लोग उसी कोलाहल में भूले हुए थे, अवकाश पाकर मैं इधर चला। वह देखो, आरती के घण्टे की गुरु गम्भीर ध्वनि सुन पड़ती है। अभी कुछ देर में आरती ख़तम हो जायगी। उस समय हम लोगों की उपस्थिति आवश्यक है। चलो।"

भद्रवाहन थोड़ी देर तक कुछ सोचता रहा। फिर सिर हिलाता हुआ बोला—"नहीं, मैं न जा सकूँगा। तुम

जाओ। हाँ, अकेले ही जाओ। बन्धु ! मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ।"

भद्रवाहन देवसेन के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही उठ खड़ा हुआ। आश्चर्य-चकित आँखों से उस विचित्र भिक्षु की ओर देखते हुए देवसेन ने भी सङ्घाराम की ओर प्रस्थान किया।

५

भद्रवाहन आगे बढ़ा। उसके मन में भयानक सङ्घर्ष हो रहा था, वह अशान्त था, लेकिन स्वयं समझ न पाता था कि वह क्या चाहता है। धीरे-धीरे उसके पैर नीचे की ओर बढ़ते गए। चलते-चलते, रात्रि जिस समय शेष हो रही थी, वह उपत्यका के नीचे समतल प्रदेश में पहुँच गया।

वहाँ, बोधिवृक्ष के नीचे, एक तरुणी भिक्षुणी को उसने समाधिस्थ देखा। देख कर वह मुग्ध हुआ। उसके विकृत मन में एक और विकार उत्पन्न हुआ। उसने सोचा, नेत्रों के होने से ही यह सारा उत्पात है। इन्द्रियों को संयत करने के लिए कदाचित दृष्टि का एकान्त अभाव अपेक्षित है। वह आत्म-विस्मृत होकर चुपचाप भिक्षुणी की ओर देखता रहा।

भिक्षुणी युवती थी। उसके कृश-गौर शरीर में यौवन का उच्छ्वलित लावण्य कल्लोल कर रहा था। उसके मुँदे हुए नेत्रों से एक प्रकार की ज्योति निकल रही थी। वह समाधिस्थ थी।

कुछ देर बाद उसकी समाधि भङ्ग हुई। उसने भद्रवाहन को देखा—बार-बार देखा—आश्चर्य से, विस्मय से और कौतूहल से भी। मालूम पड़ता था, जैसे वह उसे पहचानने का प्रयत्न कर रही हो। फिर उसने स्नेह-स्निग्ध कण्ठ से पुकारा—"भद्रवाहन ! क्या मैं सपना नहीं देख रही हूँ ?"

अब भद्रवाहन की मोह-निद्रा टूटी। उसने चौंक कर भिक्षुणी की ओर देखा, विस्मित होकर उसका चिर-परिचित स्वर सुना और फिर उसे पहिचाना। क्षण भर में उसके नेत्रों के सम्मुख एक मनोहर और विराट वैभव-युक्त साम्राज्य का चित्र खिच गया। हताश होकर, एक बार उसने उस चित्र को देखा। क्षण भर स्तब्ध रहा—घटनाओं के चक्कर ने उसको पागल बना दिया था—और फिर बोला—"हाँ, नन्दा ! यह सपना ही है। सपना नहीं तो और क्या है ?"

"ओः ! वह कितने दिनों की बातें हैं !!"

"प्रायः पन्द्रह वर्षों की।"

"और मालूम पड़ता है, जैसे पलक मारते इतना समय बीत गया हो।"

"और जैसे वे कल की ही घटनाएँ हों।"

"भद्र ! जीवन के उषःकाल के वे दिन कितने मनोहर थे !"

"बचपन के जीवन में कितना सुख था !"

"हम दोनों खेलते थे।"

"दिन-रात एक साथ रहते थे।"

"आपस में कितना प्रेम था !"

"कितनी ममता थी !"

"तुम बड़े दुष्ट थे।"

"तुम मुझे बहुत चिढ़ाती थीं।"

"तुम मुझे पीट देते थे।"

"तुम रूठ जाती थीं।"

"ओः ! उन क्रीड़ाओं की स्मृति कितनी मधुर है !"

"और काल के प्रवाह ने उन सारी क्रीड़ाओं का अन्त एक ही आघात में कर दिया !"

"हम दोनों का जीवन दो धाराओं में प्रवाहित हुआ।"

"और हम दोनों संसार के अतल-तल में डूब गए।"

"पन्द्रह वर्षों तक फिर कोई किसी को देख भी न सका।"

"और आज संयोग के प्रवाह में बह कर, बिछुड़ कर मिल जाने वाले बहते हुए दो तिनकों की तरह, फिर हम दोनों आ मिले हैं।"

"आज मैं गैरिकवसना भिक्षुणी हूँ।"

"और मैं भिक्षु हूँ। नन्दा ! मेरा हृदय बड़ा अशान्त है। इतने दिनों के बाद तुमसे मिल कर क्षण भर के लिए अपने को भूल सका हूँ।"

भद्रवाहन ने अपने हृदय की अशान्ति नन्दा से कही; कह कर थोड़ा हल्का हुआ। नन्दा ने कहा—"भद्र ! तुम्हें फिर वहीं जाना पड़ेगा। हृदय को इस प्रकार उच्छृङ्खल बनाने से काम न चलेगा। स्मरण रक्खो, तुम भिक्षु हो ! तुम्हें आत्म-दमन करना होगा, शान्त होना होगा !"

नन्दा की वाणी में तेज था, दृढ़ता थी। भद्रवाहन प्रभावित हुआ। कातर कण्ठ से उसने कहा—"नन्दा !"

"हाँ भद्र ! तुम्हारे लिए वही उपयुक्त स्थान है। जाओ।"

मन्त्रमुग्ध की भाँति भद्रवाहन फिर उसी पथ पर लौटा। कुछ दूर अग्रसर होकर रुका, फिर वापस आया। बोला—"नन्दा ! तुम्हारी बाँसुरी क्या हुई ?"

"है, वह अब भी मेरे ही पास है !"

"एक बार बजाओगी नन्दा ?"

"नहीं, अभी नहीं। बाँसुरी सुनने का उपयुक्त समय अभी नहीं आया है। फिर सुनना, अभी जाओ।"

उत्तर दिए बिना ही, सिर झुका कर, भद्रवाहन चला गया।

२

बात पन्द्रह साल पहले की है। मगध में उस समय चण्डविक्रम महाराज अशोक का शासन-सूर्य चमक रहा था। उनकी राजधानी पाटलिपुत्र के समीपस्थ एक छोटे गाँव में, गङ्गा के तट पर, उसी समय हमने दो बालक-बालिकाओं को देखा था।

बालक दस बरस का रहा होगा और बालिका आठ वर्ष की। गङ्गा के तट पर दोनों ही खेल रहे थे। चाँदी की तरह सफ़ेद बालू की राशि दूर तक फैली हुई थी। धरित्री के आँगन में सन्ध्या का अन्धकार उस समय भी सघन नहीं हो उठा था।

बालिका ने कहा—"भद्र भाई ! मुझे एक घर बना दो।"

बालक बोला—"मैं नहीं बनाता।"

बालिका ने कहा—"मैं अपने लिए स्वर्ग ही बना लूँगी।"

"मैं भी बनाऊँगा।"

"देखूँ कौन अच्छा बनाता है।"

स्पर्धापूर्वक दोनों बालू का घर बनाने लगे। ठण्डी-ठण्डी बयार चल रही थी। बालिका के अस्तव्यस्त कुन्तल, वायु के झकोरों से, मुँह पर खेल जाते थे। वह उन्हें सावधानी से हटा देती और फिर अपने गृह-निर्माण में लग जाती थी।

परिश्रम से उसके मुँह पर दो-चार स्वेद-बिन्दु दीख पड़े। घर बन कर तैयार हो गया। भद्रवाहन ने बालिका की ओर मुग्ध नयनों से देखा। डूबते हुए सूरज की अन्तिम पीली किरणें उसके ललाट को चूम रही थीं।

"नन्दा ! किसका घर ज़्यादा सुन्दर बना है ?"—रहस्य भरे स्वर में भद्रवाहन ने पूछा।

"तुम्हीं बताओ !"

"मेरी बात मानोगी ?"

"हाँ ! तुम्हारी बात ?—न मानूँगी ?"

आश्चर्य से भद्रवाहन ने नन्दा की ओर देखा—उसकी आँखों में कितनी सरलता थी ! कितना भोलापन था !! क्षण भर में उसके मन में दो विचार उठे और जल-बुद्बुद की भाँति विलीन हो गए। झटपट वह कह उठा—"नन्दा ! घर तुम्हारा ही सुन्दर बना है। वाह !!"

विजय-गर्व से नन्दा की आँखें चमक उठीं। उसने कृतज्ञतापूर्वक भद्रवाहन की ओर देखा। भद्रवाहन ने सिर झुका कर हँस दिया।

उस समय अपने पराजय में भी उसे जिस सुख की अनुभूति हो रही थी, उसकी कल्पना कौन कर सकता है ?

दोनों बालक एक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव कर रहे थे। इतने ही में वायु का एक तीव्र झोंका आया—दोनों के बालू के घर क्षण भर में बालू में मिल गए। नन्दा के मुँह से एक चीख़ निकल गई—"हाय ! इसे बिगड़ते क्षण भर देर न लगी।"

भद्रवाहन ने सरलतापूर्वक कहा—"बनते-बिगड़ते कितनी देर लगती है, नन्दा !"

बालक के इस सरल उत्तर में संसार का एक महान तत्व छिपा हुआ था। लेकिन इतनी बातें सोचने-समझने का उस समय उन्हें अवकाश कहाँ था ?

दोनों बालकों का घर, गाँव में, पास ही पास था। एक-एक दिन दूर से आती हुई किसी नौका को देख कर नन्दा कहती—"भद्र भाई, हम लोग भी इसी तरह नौका पर पाल तान कर किसी दिन चलते। ओः ! गङ्गा की तरङ्गों में कैसा आनन्द है !!"

बालिका भाव-मुग्ध होकर नौका की गति-विधि का निरीक्षण करती और बालक उसका सरल सौन्दर्य देखा करता। लेकिन बहुत दिनों तक उनकी यह हौंस पूरी नहीं हो सकी।

नन्दा के पास एक बाँसुरी थी। ज्योत्स्ना से भीगी

हुई विभावरी में, गङ्गातट की बालुका-राशि पर बैठ कर, कभी-कभी, वह उसे बजाया करती थी। नन्दा जब बाँसुरी बजाती तो भद्रवाहन अधीर हो जाता था। वह बाँसुरी की करुण रागिनी सुनते ही नन्दा की एक अवस्था-विशेष का ध्यान कर लेता और तब फिर वह एक क्षण भी विलम्ब नहीं कर सकता था। जहाँ हो, जिस तरह हो, हज़ार काम छोड़ कर उसे नन्दा के पास जाना ही पड़ेगा, बाँसुरी बजाते-बजाते नन्दा स्वयं भी इतनी तन्मय हो जाती, इतनी विह्वल हो जाती कि उसे अपने-पराए का ज्ञान न रह जाता। हाँ, उसकी बाँसुरी में ऐसा ही जादू था, ऐसा ही आकर्षण था।

आर्यावर्त में उन दिनों चतुर्मुखी क्रान्ति हो रही थी। इस क्रान्ति की ज्वाला ने मगध में विशेष विप्लव उत्पन्न कर दिया था। कलिङ्ग-विजय करने के पश्चात् सम्राट अशोक ने धर्म-परिवर्तन किया था—उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी। स्वयं बुद्ध की शरण में जाकर उन्होंने अपने साम्राज्य में बौद्धमत के प्रचार का विशेष आयोजन किया। इस आयोजन के लिए भद्रवाहन और नन्दा को चिरकाल के लिए एक दूसरे से अलग होना पड़ा।

दो सुन्दर कलियाँ एक ही डाली में उगी थीं। वे खिलने भी नहीं पाईं, चटकने भी नहीं पाईं, और काल के माली ने उन्हें तोड़ लिया। उस समय कौन कह सकता था कि जीवन में फिर कभी इनका मिलन हो सकेगा? कब और किस रूप में??

उसके बाद एक युग बीत गया। स्मृति की लड़ियाँ उलझती और जुड़ती-टूटती रहीं। भद्रवाहन और नन्दा एक दूसरे को भूल गए।

सहसा, पन्द्रह वर्षों के बाद वे क्षण भर के लिए फिर मिले और अलग हो गए।

नन्दा अब बालिका नहीं, पूर्ण युवती थी। उसका प्रशान्त नारी-हृदय विक्षुब्ध हो उठा, जैसे भयानक तूफ़ान के आने पर समुद्र खौल उठता है। वह सोचने लगी कि इतने दिन के खोए हुए बन्धु को किस कलेजे से उसने उलटे पाँवों लौटा दिया? क्यों नहीं एक बार उसे बैठा कर उसके हृदय की व्यथा उसने पूछी? क्यों नहीं एक बार उससे जी खोल कर बातें कीं? हाय! वह कैसी पाषाण-हृदया है!!

नन्दा एक बार फिर भद्रवाहन से मिलने के लिए अधीर हो उठी। उसने आँखें फैला कर चारों ओर देखा—एक ओर शून्य निर्जन प्रान्तर दूर तक फैला हुआ था, दूसरी ओर विशाल शैलमाला नेत्रों की गति अवरोध किए हुए थी। पथ निर्जन था। भद्रवाहन चला गया था। एक लम्बी साँस लेकर वह चुप हो रही।

नन्दा की इतने दिनों की साधना, इतने दिनों का संयम, क्षण भर में लालसा की चिनगारियों में जल कर ख़ाक हो गया। उसका प्रशान्त मन अस्थिर और अधीर हो उठा। भद्रवाहन स्वयं तो चला गया, किन्तु अपने हृदय की आग उसके हृदय में भी लगाता गया।

५

सङ्घाराम की ऊँची और भयावनी प्राचीरों के सम्मुख पहुँच कर भद्रवाहन सहम गया। उसके पैर आगे बढ़ने से इनकार करने लगे। एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह वापस लौट जाय, किन्तु इसके बाद ही नन्दा की याद आई, नन्दा के तेजस्वी मुँह की याद आई, उसके स्नेह-भरे अनुरोध की याद आई और वह पत्थर की तरह, चुपचाप खड़ा रह गया—न आगे बढ़ सका, न पीछे ही लौट सका।

किन्तु, इस प्रकार चुपचाप खड़ा भी कब तक रहा जा सकता था? वह धीरे-धीरे बढ़ा। एक बार चारों ओर देखा। फिर छलाँग मार कर प्राचीर पर चढ़ा। उसके बाद पलक मारते-मारते वह सङ्घाराम के प्राङ्गण में पहुँच गया।

प्राङ्गण के मध्य में विशाल जन-समूह एकत्रित था। यह किसी महान आयोजना की सूचना थी। चारों ओर जन-रव से उत्थित एक आकुल कोलाहल ध्वनित हो रहा था। अच्छा मौक़ा देख कर भद्रवाहन कुशलता से उस विशाल जन-स्रोत में मिल गया। उस समय उसे देखने का किसी को अवकाश न था।

जनता में प्रविष्ट होकर उसने देखा—एक सुन्दर मण्डप के मध्य में एक वेदिका बनी हुई थी। वेदिका के एक ओर सङ्घाराम के उपाध्याय अथवा पीठस्थविर बैठे हुए थे। उन्हें घेर कर भिक्षुओं का एक दल था, फिर जनता थी, उपाध्याय के सम्मुख एक अपरिचित भद्र पुरुष थे। भद्रवाहन ने अनुमान किया, आज उनकी दीक्षा होगी।

इसी समय भग्न पुरुष ने भक्ति-नत स्वर में कहा—

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
सङ्घं शरणं गच्छामि।

एकत्रित जन-समूह ने सहस्र-सहस्र कण्ठ से दुहराया—

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
सङ्घं शरणं गच्छामि।

भद्रवाहन ने उन स्वरों में अपना स्वर भी मिलाना चाहा, पर उसके मुँह से आवाज़ न निकली। वह अधोमुख होकर चुपचाप नन्दा का ध्यान करने लगा।

दीक्षा सम्पन्न हुई। उपाध्याय ने भिक्षुओं को सम्बोधित करके एक छोटा सा व्याख्यान दिया—"हे भिक्षु-गण! जन्म दुःख है, जरा दुःख है, व्याधि दुःख है, मृत्यु दुःख है—अर्थात् जिन पदार्थों से हम घृणा करते हैं, उनका अस्तित्व दुःख है, जिन वस्तुओं की हम कामना करते हैं उनका न मिलना दुःख है, तात्पर्य यह कि जीवन की पाँच कामनाओं (पाँच तत्वों) में लिप्त रहना दुःख है।

"हे भिक्षुगण! पुनर्जन्म का कारण लालसा है। पुनर्जन्म में कामनाएँ और लालसाएँ उत्पन्न होती हैं। लालसाएँ तीन हैं—सुख की लालसा, जीवन की लालसा और शक्ति की लालसा।

"हे भिक्षुगण! लालसाओं के पूर्ण निरोध से, अर्थात् लालसाओं को दूर करने से, लालसाओं को छोड़ देने से, लालसा के बिना काम चलाने से और लालसाओं का नाश कर देने से दुःख दूर हो सकते हैं।

"हे भिक्षुगण! जिससे दुःख दूर होता है, वह पवित्र मार्ग आठ प्रकार का है—(१) सत्य विश्वास (२) सत्य कामना (३) सत्य वाक्य (४) सत्य व्यवहार (५) सत्य उपाय (६) सत्य उद्योग (७) सत्य विचार और (८) सत्य ध्यान।

"हे भिक्षुगण! आर्य सत्यचतुष्टय के यही चारो सत्य हैं।"

इस प्रकार नव-दीक्षित का प्रव्रज्या और उपसम्पदा संस्कार हो चुकने पर उसे भिक्षु की उपाधि मिली। साथ ही साथ मठ की ओर से उसे कषाय वस्त्र और भिक्षापात्र, मेखला, वासि, सूची और परिस्रावण भी मिला। बौद्ध भिक्षु के जीवन-निर्वाह के ये ही साधन हैं। इसके बाद एक-एक करके सब लोग चले गए।

सबके चले जाने पर भद्रवाहन भी उठा। उसके मन में उपाध्याय की वाणी प्रतिध्वनित हो रही थी—"जन्म दुःख है, जरा दुःख है, व्याधि दुःख है, मरण दुःख है। जीवन की पाँच लालसाओं में लिप्त रहना दुःख है।" ओः! कितनी भयानक बात—और वह उसी दुःख की ओर अग्रसर हो रहा है—कितने वेग से!!

अपने निभृत प्रकोष्ठ में जाकर भद्रवाहन गम्भीर चिन्ता में मग्न हो गया—"जगत् मिथ्या है, जगत् दुःख-मय है, तब सत्य क्या है? सुख क्या है? उसे पाने का उपाय क्या है?—निर्वाण। कठिन है, असाध्य है,—उस मार्ग पर चलने के लिए अन्तर की प्रवृत्ति होनी चाहिए, बलपूर्वक मन का निरोध करना क्या सफल हो सकता है? असम्भव! सुख जहाँ दीख पड़ता है, वहाँ नहीं है—सत्य का हम जहाँ अनुभव करते हैं, वह वहाँ नहीं है। यह कैसी माया है! कैसा इन्द्रजाल है!!"

❋

दो दिनों तक भद्रवाहन लगातार इन्हीं विचारों की उलझन में पड़ा रहा। इन दो दिनों में वह अपने प्रकोष्ठ से बाहर नहीं निकला, किसी से मिला-जुला भी नहीं। दूसरे भिक्षुओं ने भी उसकी शान्ति भङ्ग नहीं की। वह अकेला, चुपचाप, अपने मन में ऊहापोहों की जाली बिनता रहा। दो दिनों में, अनेक बार, यह अकेलापन, यह सूनापन उसके लिए असह्य हो उठा था। किन्तु, फिर भी वह बाहर निकलने का साहस नहीं कर सका।

उपाध्याय ने उसके मन की अशान्ति लक्ष्य की थी। इसीसे उन्होंने अन्य भिक्षुओं को भद्रवाहन से मिलने-जुलने का निषेध कर दिया था। उन्होंने, इस प्रकार, भद्रवाहन को मानसिक अशान्ति से निवृत्त होने का अवसर देना चाहा था।

देवसेन दो-एक बार लुक-छिप कर भद्रवाहन के प्रकोष्ठ में झाँक गया था, किन्तु उपाध्याय की आज्ञा के विरुद्ध उससे बातचीत करने का साहस उसे न हुआ।

दो दिनों के बाद भद्रवाहन का चित्त फिर ऊबने लगा। सङ्घाराम की ऊँची-ऊँची प्राचीरें उसे क़ैदख़ाने

सी जान पड़ने लगीं। दो दिनों के एकान्त वास में उसने अपने मन का बहुत समाधान कर लिया था। उपाध्याय के उपदेशों का उस पर बहुत प्रभाव पड़ा था, किन्तु जब नन्दा की बात याद आती तो वह सब कुछ भूल जाता था। नन्दा! अहा! नन्दा हमारी ही थी, वह अब भी हमारी ही है—लेकिन, लेकिन क्या वह दुःख-रूप है? जगत के सारे दुःखों का लय क्या उसी में है? कितनी कठोर कल्पना है!! भद्रवाहन का मन यह बात सोचने के लिए उस समय भी तैयार न हो सका था।

जिस प्रश्न ने पहले उसके मन को अस्थिर कर रक्खा था वह जब हल होने को आया तो भद्रवाहन के सामने एक दूसरी ही, और शायद उससे भी भयानक, समस्या आ उपस्थित हुई। वह सोचने लगा कि कल्याण का मार्ग कौन सा है?

जगत में सत् और असत् का निर्णय करना कितना कठिन है!

भद्रवाहन को कोई पथ न दीख पड़ा। वह एक बार फिर असहाय होकर अपने मन के अन्धकार में सत्य का प्रकाश ढूँढ़ने लगा।

५

उस दिन एकादशी का चन्द्रमा आकाश में उठ आया था। रजनी चन्द्रकिरणों के बहाने मुस्कुरा पड़ी थी। धरित्री पर एक अलस मादकता ढल पड़ी थी। भद्रवाहन उस समय बाहर निकल कर टहल रहा था।

सहसा उसने सुना—सङ्घाराम से बाहर, दूर, एक बाँसुरी बज उठी—मधुर, किन्तु करुण!

बाँसुरी की करुण रागिनी, जैसे भद्रवाहन के हृदय को छूकर झनझना उठी। चोट खाए हुए की तरह चौंक कर, उत्कर्ण होकर, उसने सुना—"हाँ, वही, वही चिर-परिचित स्वर तो है। नन्दा!—तब क्या नन्दा मेरा आह्वान कर रही है? क्या उसका मन भी मेरे ही जैसा अशान्त और अस्थिर है?"

और अधिक सोचने का समय न था। एक छलाङ्ग में सङ्घाराम का प्राचीर नाँघ कर भद्रवाहन निकल आया। भय-जड़ित हृदय से एक बार उसने चारो ओर देखा और फिर बाँसुरी का स्वर लक्ष्य करके चल पड़ा।

एक घने देवदारु वृक्ष के नीचे बैठ कर नन्दा बाँसुरी बजा रही थी। तरु-पत्रों के अन्तराल से छन कर आती हुई चञ्चल और चितकबरी किरणें उसके मेचक-कुञ्चित कुन्तलों से क्रीड़ा कर रही थीं। उसके कपड़े अस्तव्यस्त हो गए थे, वेणी खुल गई थी, वह आत्म-विस्मृत होकर बाँसुरी बजा रही थी।

एक अलस स्वप्न की तरह चन्द्र-ज्योत्स्ना चारो ओर बिखरी हुई थी।

वृक्ष की छाया के अन्धकार में छिप कर भद्रवाहन खड़ा हुआ। मुग्धविह्वल नेत्रों से वह नन्दा की एक कल्पित मूर्ति प्रत्यक्ष करने लगा। बाँसुरी की करुण रागिनी वायु-तरङ्गों पर थिरक रही थी।

नन्दा ने बाँसुरी रख दी। इधर-उधर देख कर एक बार अँगड़ाई ली—संसार कितना मनोहर है!

पास ही एक झरना अपने निरन्तर हर-हर स्वर से निःशब्द पर्वत-प्रदेश को मुखरित कर रहा था। नन्दा के स्वर में स्वर मिला कर उसने भी कहा—"संसार कितना आकर्षक है!"

श्रम-कम्पित वाणी में भद्रवाहन ने पुकारा—"नन्दा!"

नन्दा ने गम्भीर होकर सिर हिलाया; उठी; क्षण भर में वह भद्रवाहन के सामने थी। बोली—"तुम आ गए भद्र? मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा में थी।"

"आज बहुत दिनों के बाद तुम्हारी बाँसुरी सुन सका हूँ, नन्दा! फिर क्या मैं स्थिर रह सकता हूँ?"

"आज बहुत दिनों के खोए हुए दिन लौट आए हैं, भद्र! देखो, रात कितनी सुहावनी है! हम-तुम बदल गए हैं, पर इस चाँदनी रात में कोई परिवर्तन नहीं! कोई विकार नहीं!!"

भद्रवाहन ने उत्तर नहीं दिया, केवल एक बार उमड़ती हुई आँखों से नन्दा की ओर देखा—कितना स्निग्ध रूप था! कितना मादक यौवन!!

दो भूले हुए, उन्मत्त-हृदय युवक-युवती, उस चाँदनी रात में, सब कुछ भूल कर एक हो गए। नन्दा ने भद्रवाहन के हृदय में अपना मुँह छिपा लिया।

५

[ले० विद्यावाचस्पति पं० गणेशदत्त जी गौड़, 'इन्द्र']

भूमिका-लेखक—

श्री० चतुरसेन जी शास्त्री

जो माता-पिता मनचाही सन्तान उत्पन्न करना चाहते हैं, उनके लिए हिन्दी में इससे अच्छी पुस्तक न मिलेगी। काम-विज्ञान जैसे गहन विषय पर यह हिन्दी में पहली पुस्तक है, जो इतनी कठिन छान बीन करने के बाद लिखी गई है। सन्तान-वृद्धि-निग्रह का भी सविस्तार विवेचन इस पुस्तक में किया गया है। बालपन से लेकर युवावस्था तक अर्थात् ब्रह्मचर्य से लेकर काम-विज्ञान की उच्च से उच्च शिक्षा दी गई है। प्रत्येक गुप्त बात पर भरपूर प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक प्रकार के गुप्त रोग का भी सविस्तार विवेचन किया गया है। रोग और उसके निदान के अलावा, प्रत्येक रोग की सैकड़ों परीक्षित दवाइयों के नुस्खे भी दिए गए हैं। पुस्तक सचित्र है—५ तिरङ्गे और २५ सादे चित्र आर्ट पेपर पर दिए गए हैं। छपाई-सफ़ाई की प्रशंसा करना व्यर्थ है। पुस्तक समस्त कपड़े की जिल्द से मण्डित है, ऊपर एक तिरङ्गे चित्र सहित Protecting Cover भी दिया गया है। इतना होते हुए भी प्रचार की दृष्टि से मूल्य केवल ४) रु० रक्खा गया है। 'चाँद' तथा स्थायी-ग्राहकों से ३)। इस पुस्तक का पहला तथा दूसरा संस्करण हाथोंहाथ बिक चुका है। तीसरा संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण अभी-अभी तैयार हुआ है। शीघ्र ही मँगा लीजिए, नहीं तो पछताना पड़ेगा।

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

कुटीर के एक पार्श्व में विश्रान्त होकर भद्रवाहन सोया हुआ था। नन्दा की आँखों में, किन्तु, उस समय भी नींद नहीं थी।

भद्रवाहन को सङ्घाराम छोड़े हुए कई दिन वीत चुके थे। वह अपेक्षाकृत स्वस्थ था, किन्तु नन्दा के मन में एक आग जल रही थी। पश्चात्ताप की ज्वाला से उसका अङ्ग-अङ्ग झुलसा जा रहा था—हाय ! उसका मन कितना दुर्बल है। लालसा की एक आँधी ने उसकी साधना का सर्वस्व नष्ट कर डाला और वह कुछ भी नहीं कर सकी।

भद्रवाहन सोया हुआ था। नन्दा एकटक उसके सुश्री मुख-मण्डल की ओर देख रही थी। देखते-देखते उसकी आँखों से जल की धारा वह चली, उसने उसके कपोलों को, और फिर उत्तरीय को भिगा डाला। नन्दा सोचने लगी—"यह भ्रान्त युवक किस आकर्षण से सर्वनाश के इस अग्निकुण्ड में कूद पड़ा है? वह क्या मेरा रूप ही नहीं है ? हाय ! इस रूप ने कैसा अनर्थ किया है ? भद्रवाहन के सर्वनाश का कारण, तब क्या मैं ही बनूँगी ? नहीं, जैसे हो, इस बार भद्रवाहन को उबारना पड़ेगा।"

क्षण भर में नन्दा ने अपना कर्त्तव्य स्थिर कर लिया और तब उसके मन की अशान्ति सुगन्ध की भाँति उड़ गई।

❦

भद्रवाहन ने जग कर अलस-विजड़ित कण्ठ से पुकारा—"नन्दा!"

नन्दा सिहर उठी। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

भद्रवाहन ने फिर पुकारा—"नन्दा ! प्रिये !!"

नन्दा फिर भी चुप ही रही।

तब भद्रवाहन उठा। उठ कर उसने नन्दा की ओर देखा—वह बाहर शून्य आकाश की नीलिमा देखने में तन्मय थी। भद्रवाहन ने उसका कन्धा पकड़ कर झकझोर दिया—"नन्दा ! क्या सोच रही हो ?"

नन्दा ने जैसे सोते से जग कर उत्तर दिया—"नहीं, कुछ नहीं। देखती हूँ, आकाश में कितने रङ्ग हैं !"

भद्र—"इसका क्या अर्थ है नन्दा ! आज तुम उद्विग्न क्यों हो ?"

नन्दा—"उद्विग्न हूँ ? तुम्हें ऐसा ही मालूम पड़ता है ? तब ज़रूर उद्विग्न होऊँगी। लेकिन मैं पूछती हूँ, तुम क्या सचमुच ही मुझे प्यार करते हो भद्रवाहन ?"

भद्र—"हाँ; नन्दा ! अब क्या इसके लिए भी मुझे सफ़ाई देनी पड़ेगी ?"

नन्दा—"सफ़ाई की बात नहीं। मैं पूछती हूँ, क्या सचमुच ही तुम मुझे हृदय से प्यार करते हो ?"

भद्र—"हाँ, नन्दा ! बहुत।"

नन्दा—"मेरी एक बात मानोगे ?"

भद्र—"हाँ।"

नन्दा—"प्रतिज्ञा करते हो ?"

भद्र—"हाँ।"

नन्दा—"सोच लो भद्र ! यह तुम्हारे प्रेम की परीक्षा है।"

भद्र—"मुझे कुछ नहीं सोचना है, नन्दा ! तुम कहो।"

नन्दा—"अच्छा, तब सुनो—तुम्हें फिर लौट कर सङ्घाराम में जाना पड़ेगा, फिर जीवन का सदुपयोग करना पड़ेगा। मैं तुम्हारा—बौद्ध भिक्षु का—यह अधःपतन नहीं देख सकती। यदि सचमुच ही तुम मुझे प्यार करते होओ, तो बिना वाक्य-व्यय किए, तुम फिर वहीं लौट जाओ।"

भद्रवाहन को जैसे किसी ने आकाश से डाल दिया। क्षण भर स्तब्ध रह कर उसने कहा—"तुम्हें यही कहना था नन्दा ? हाय ! मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ ?"

नन्दा—"झूठ बोलते हो भद्र ! प्रेम का नाम लेकर उसे कलङ्कित मत करो। यदि मुझे प्यार करते हो, तो अभी उसी पथ पर लौट जाओ।"

भद्र—"पर, वहाँ क्या अब मेरे लिए स्थान रह गया है ? जानती हो नन्दा ! अपने लक्ष्य से च्युत होने वाले भिक्षु के लिए दण्ड की क्या व्यवस्था है?"

नन्दा—"वह कुछ भी हो, यदि प्राण भी देने पड़ें तो वह जीवन का सदुपयोग ही होगा। बोलो, जाते हो ?"

भद्रवाहन शीघ्र कुछ उत्तर न दे सका। क्षण भर ठहर उसने काँपती हुई वाणी में कहा—"नहीं नन्दा ! मैं वहाँ न जा सकूँगा। मुझे क्षमा करो।"

तिरस्कारपूर्ण तीव्र दृष्टि से। नन्दा ने कहा—"तब फिर नन्दा का नाम न लेना, उसके प्रेम का दम न भरना। भद्र ! क्षण भर पहले मैं तुमसे प्रेम करती थी, लेकिन अब। वह घृणा के रूप में बदल गया है। याद रक्खो भद्र-।

वाहन ! नारी यदि प्रेम कर सकती है तो वह घृणा भी कर सकती है। प्रेम करना उसके लिए जितना आसान है, घृणा भी उतना ही है। लो, मैं चली। फिर कभी मेरा नाम न ले सकोगे।"

उत्तर की अपेक्षा किए बिना ही नन्दा तीव्र गति से बाहर निकल गई। भद्रवाहन हतबुद्धि होकर चुपचाप ताकता रह गया।

❦

अकेला भद्रवाहन कुटीर में रह गया—नन्दा सच-मुच ही चली गई थी। भद्रवाहन कुछ समझ न सका, क्षण भर में, यह न जाने कैसा विप्लव उत्पन्न हो गया था !

वह विस्मित था, क्षुब्ध था, कुँझलाया हुआ था।

कुछ देर बाद वह प्रकृतिस्थ हुआ। उसने सोचा—"तब क्या जगत सचमुच ही दुःखमय है ? जिसमें संसार के सारे सुखों का मैंने दर्शन किया था, अन्त में क्या उसीके द्वारा मुझे चिर-जीवन के लिए यह दुःख उपहार में मिला है ?"

उसने और भी सोचा—"अब मेरे लिए कौन सा पथ है ? जिसके लिए सब कुछ छोड़ा, जगत के हास-उपहास की उपेक्षा की, चरम सुख निर्वाण की अवहेलना की, वह मुझे कितनी आसानी से छोड़ कर चली गई ! हाय नारी ! तेरा हृदय क्या पत्थर से भी कठोर है !!"

तब, उसके मन में एक दूसरी भावना का उदय हुआ— नारी इस प्रकार आसक्ति की उपेक्षा कर सकती है, और मैं, पुरुष होकर, लालसाओं की धारा में डूब-उतरा रहा हूँ ? हाय ! मेरा जीवन धिक्कारणीय है !!

अपने प्रति एक तीव्र उपेक्षा और धिक्कार के भाव से उसका हृदय भर गया। तब उसके मन में प्रतिहिंसा और क्रोध का उदय हुआ—वहीं चलना होगा। दूसरा पथ नहीं है। संसार का सारा अपमान, तिरस्कार, व्यङ्ग और उपेक्षा सह कर भी यदि मैं प्रायश्चित्त कर सकूँ ! एक बार कोशिश करके देखूँगा !

और तब वह एक बार रोया। रोने से जी हलका हुआ ; दृष्टि का विकार दूर हो गया। आँखें पोंछ कर फिर जब उसने देखा तो संसार उसे दूसरे ही रूप में दिखाई पड़ा।

एक आघात ने संसार का परिवर्तन कर दिया था। उसने स्पष्ट देख पाया—नन्दा ने उसके जीवन की सारी कलुषता एक झोंके में दूर कर दी है। नन्दा के प्रति अपूर्व श्रद्धा और कृतज्ञता से उसका हृदय भर गया।

अब वह शान्त था। उठा और सङ्घाराम की ओर चल दिया।

❦

उस दिन फिर सङ्घाराम के विशाल प्राङ्गण में जन-समूह एकत्रित हुआ। कौतूहल से लोग एक-दूसरे की ओर देखते और आँखों में बातचीत करते थे; पर कोई किसी की बात समझ न पाता था।

यथासमय उपाध्याय के साथ भिक्षुओं ने मण्डप में प्रवेश किया। एक आवृत और धीमे कोलाहल से प्राङ्गण गूँज उठा।

सहस्र-सहस्र नेत्रों ने विस्मय और आश्चर्य से देखा—मुण्डित मस्तक भद्रवाहन प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए उपाध्याय के सम्मुख बैठा हुआ है। फिर एक धीमे कोलाहल से प्राङ्गण गूँज उठा।

सब लोगों के यथास्थान उपविष्ट हो जाने पर भद्र-वाहन ने उठ कर धीमे—किन्तु सब लोग सुन सकें ऐसे—स्वर में उपाध्याय से निवेदन किया—"हे उपा-ध्याय ! मैं भिक्षु के कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सका हूँ, जान-बूझ कर ही मैं अपने मार्ग से भ्रष्ट हुआ हूँ, पर इसका कारण मेरे मन का अज्ञान और अशान्ति भी है। हे उपाध्याय ! अन्धकार की ओर जाकर मैं अन्धकार की वास्तविकता का अनुभव कर सका हूँ और तब फिर वहाँ से वापस आया हूँ। मैं अपराधी हूँ। अपने अपराध का दण्ड चाहता हूँ। और उसके बाद, हे उपाध्याय ! मैं आपसे प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ। अब मेरा मन पूर्ण शान्त है, मैं अपने को प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए पूर्ण योग्य समझता हूँ। हे उपाध्याय ! आप मुझे अन्धकार से निकल कर प्रकाश में आने का फिर एक बार अवकाश दीजिए।"

भद्रवाहन इतना कह कर चुप हो गया। भिक्षुओं के साथ, उपस्थित जनता की सहस्र-सहस्र उत्सुक आँखें एक साथ उपाध्याय पर जा पड़ीं। सभी उत्सुक थे, व्याकुल थे—देखें, उपाध्याय क्या फ़ैसला देते हैं ?

गम्भीरतापूर्वक सब कुछ सुन लेने के बाद उपाध्याय

उठे। भिक्षुओं को सम्बोधित करके उन्होंने कहा—"हे भिक्षुगण! भद्रवाहन का अपराध अक्षम्य है। इस सङ्घाराम में इस प्रकार की यह पहली ही घटना है। किन्तु इसके साथ ही भद्रवाहन को अपने कृत्यों पर पश्चात्ताप भी है, वह अपने सुधार के लिए अवकाश चाहता है। हे भिक्षुगण! आप लोगों की सम्मति के अनुसार इस बार हम उसे क्षमा करते हैं। जीवन के अतीत सत् और असत् से निवृत्त होकर वह पुनर्वार प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता है। मैं समझता हूँ, उसका उदाहरण अन्य भिक्षुओं के लिए मार्ग-दर्शक बनेगा और वे असत् पथ पर जाने से विरत होंगे।"

इसके बाद उपाध्याय ने फिर कहा—"हे भिक्षुगण! भद्रवाहन को सत्-पथ पर लाने में सब से बड़ा हाथ इस भिक्षुणी का है। यह एक सब से कठोर परीक्षा में उत्तीर्ण हुई है। इस पर हम पूर्ण विश्वास कर सकते हैं और इसे दक्षिण में प्रचार के लिए भेज रहे हैं।"

ऐसा कह कर उपाध्याय ने नन्दा को जनता के सम्मुख खड़ी कर दिया। भक्ति-नत होकर सब लोगों ने उसकी ओर देखा। भद्रवाहन ने भी देखने की चेष्टा की, किन्तु श्रद्धा और कृतज्ञता से उसका मस्तक झुका ही रहा।

उसके बाद भद्रवाहन का प्रव्रज्या और उपसम्पदा संस्कार हुआ। कषाय वस्त्र और अन्य वस्तुएँ उसे मिलीं। फिर उसने भिक्षु होकर प्रतिज्ञा की—

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
सङ्घं शरणं गच्छामि।

सहस्र-सहस्र कण्ठों से उच्चरित होकर यह महामन्त्र सङ्घाराम के विशाल प्राङ्गण में प्रतिध्वनित हो उठा।

जीवन-पथ

[प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

ओ मेरे पथ, जीवन-पथ!
मेरे पदाघात सह कर बतलाते हो गृह-गृह के द्वार।
बसता है इस ओर और उस ओर तुम्हारे सब संसार॥
ओ मेरे पथ, जीवन-पथ!
यह जीवन पर्वत-प्रदेश-सा असम-विषम है चारों ओर।
पतले कृश बनते जाते हो, जैसे आता है वन घोर॥
ओ मेरे पथ, जीवन-पथ!
यद्यपि वृद्ध सदृश झुकते-से दिखते हो तुम निर्बल श्रान्त।
पर दिखलाते रहो मुझे मेरे जीवन का अन्तिम प्रान्त॥
ओ मेरे पथ, जीवन-पथ!
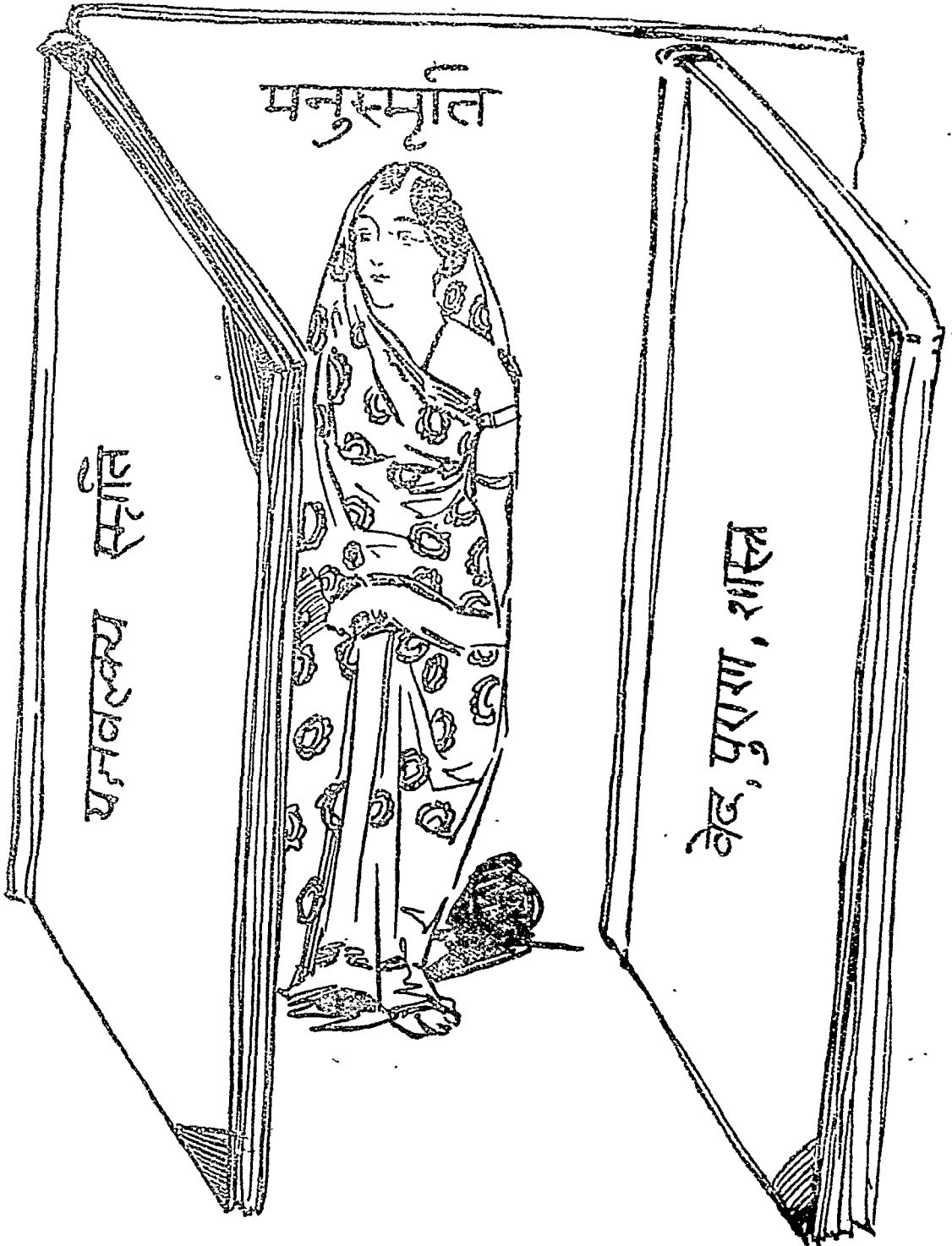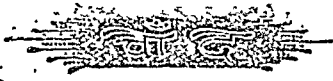
भारतीय स्त्रियों का जेल

नई रोशनी

रहने से तो मौत पाकर नर्क में रहने को मिले तो कहीं श्रेष्ठ है। पर न जाने इन अज्ञानी युवकों को क्या शौक़ चर्राता है कि घर की खेती-बारी छोड़ कर अथवा आस-पास की कोई छोटी-बड़ी नौकरी या धन्धा छोड़ कर दस-बारह रुपए के साधारण वेतन के लिए कलकत्ते दौड़े आते हैं, और अपने शरीर की और कुटुम्ब की हर प्रकार से छीछालेदर कराते हैं।

पूज्य मालवीय जी को पण्डित पुरुषोत्तम राय तथा इन जमादारों ने कई बार घेरा कि आप ब्राह्मण हैं, धनी मारवाड़ियों के प्राण हैं, इन ब्राह्मण मज़दूरों के लिए कोई मकान बनवा दीजिए, जहाँ पर बैठ कर वे अपना उद्धार करने का आयोजन तो कर सकें। मालवीय जी महाराज पहले तो बहुत कुछ आश्वासन देते-दिलाते रहे, पर एक बार जब उनको इन लोगों की एक सभा में आना पड़ा, तो कहा कि तुम सब भाई यदि प्रति वर्ष एक-एक रुपया दे डालो, तो हर साल एक नया विशाल भवन तैयार हो सकता है। तब से ये जमादार भी समझ गए कि कोई नेता हो या धनी हो, उनका उद्धार किसी से नहीं होगा। उन्हें अपना उद्धार स्वयं करना होगा। पर आज उनमें अनैक्य इतना ज़बर्दस्त है कि उनका सङ्गठन ही शिथिल हो गया। अन्यथा, उनके आरम्भिक सङ्गठन को देख कर पार्लामेण्ट के भूत-पूर्व मेम्बर शापुरजी सकलतवाला ने इन जमादारों की सभा में पधार कर कहा था कि ब्राह्मण और दूसरी जातियों के श्रमजीवी जो यह सङ्गठन कर रहे हैं, वह बड़ा अपूर्व है। मैंने श्रमजीवियों का इतना ज़बर्दस्त सङ्गठन भारतवर्ष में और कहीं नहीं देखा था। उस सङ्गठन की भी पूरी छीछालेदर हो गई। यदि ये लोग कलकत्ते में कोई छोटे-छोटे रोज़गार करने लगें तो बड़ी उन्नति कर सकते हैं। लिमिटेड कम्पनी में, सङ्गठन के रूप में, हर एक जमादार दो-दो चार-चार रुपए के शेयर ख़रीद कर हर साल छोटे-छोटे धन्धों के कारख़ाने व दूकानें खोलें, तो उन्हें उन्हीं सङ्गठनों में काम भी मिलेगा और मुनाफ़ा मिलेगा सो अलग। आज जो उन्हें यह भय रहता है कि उन्हें निकाल दूसरी जाति के लोग भर्ती कर लिए जाएँगे, यह भय तब न रहेगा। कलकत्ता, बम्बई और कानपुर—कहीं भी इस प्रकार के सङ्गठनों की स्थापना कर यह लोग अपनी उन्नति कर सकते हैं। इतनी पूँजी तो उनमें से किसी के पास नहीं है कि अपने पास से रुपया लगा कर कोई धन्धा शुरू करें, जिसमें उन्हें और दूसरों को काम मिले, परन्तु इसका सहल उपाय आजकल के ज़माने में इन्हीं कम्पनियों के सङ्गठन करने का है। भाँग-बूटी और तमाखू फाँकना छोड़ कर या गाढ़ी कमाई के चार पैसे का अधिक भाग सुनारों को देकर ज़ेवर बनवाना क़तई बन्द कर अपनी आर्थिक अवस्था सुधारने का घोरतम प्रयत्न करना चाहिए। अनेक युवक ऐसे भी इन शहरों में आते हैं जो मुसीबतों के मारे दर-दर भटकने पर कहीं नौकरी पाते हैं। बेचारे एक बार खाकर जैसे-तैसे कुछ पैसे बचाते हैं, तो घर से युवा पत्नी का आभूषण बनवाने के तक़ाज़े पर तक़ाज़े आते हैं। उनकी इस कमाई का बहुत कुछ तो सुनार बनवाई और चोरी में हड़प लेता है, और बाक़ी हिस्सा घिसाई आदि में नष्ट हो जाता है। इस बीसवीं शताब्दी के ज़माने में भी स्त्रियों के पैरों में कड़े और छड़ों की बेड़ियाँ डालना और हाथ व गले में सोने-चाँदी के बेहूदे ज़ेवर पहनना अतीव हानिकारक है। आश्चर्य तो यह है कि बड़े-बड़े पढ़े-लिखे घरों की भी स्त्रियाँ इस महा छूत रोग से नहीं बची हैं। जिस जाति की इतनी शोचनीय अवस्था है, उसकी देवियाँ चाँदी और सोने के ज़ेवरों के लिए लालायित हों, यह कैसा दुर्भाग्य है! घर में खाने को नहीं हो, बच्चों की तालीम के लिए पैसे की कठिनाई पड़ती हो, पर स्त्रियों के लिए ज़ेवर चाहिए! यदि मितव्ययिता से दो-चार पैसे बचा कर अपने खेतों में लगावें, या किसी धन्धे में लगावें या उसे बैङ्क में ही डाल दें और स्त्रियों से कहें कि यह धन जो लगा है, वह तुम्हारा ही है, इससे हमारी ग़रीबी तो दूर होगी ही, बल्कि जो धन तुम्हारे पैर-हाथ और गले में पड़ कर नष्ट होता, वह देश की निर्धनता दूर करने के लिए लगा हुआ है, हमें भैयागिरी और जमादारी से छुड़ावेगा, तो कितना अच्छा हो? गाँवों में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की हालत इतनी शोचनीय इसीलिए है कि उनके पास जो दो-चार पैसे आते हैं, उनका वे सदुपयोग नहीं करते। वे गाँवों से भाग कर शहरों में नौकरी करेंगे और चार पैसे पास हुए नहीं कि नौकरी छोड़ बैठे। जब सब खा लेंगे, लोटा-थाली तक बेच डालेंगे, तब पान और तमाखू खाना छूटेगा और फिर नौकरी की फ़िक्र होगी। इस

प्रकार इन कान्यकुब्ज ब्राह्मणों ने अपनी ज़मीनें दूसरों को सौंप दीं, और स्वयं उन मज़दूरों से भी बदतर हो गए, जो मिलों में काम करते हैं। साँप की तरह ऐंठ तो उनकी बात-बात में होती है, फिर वे कैसे सफलतापूर्वक खेती कर सकते हैं, कैसे कोई रोज़गार कर सकते हैं? आज भी यदि वे गाँवों में मन लगाकर खेती करें, सभी काम—हल चलाने और गोबर उठाने से लेकर अनाज घर में लाने तक—अपने हाथों से करें; तो न तो उनका ब्राह्मणत्व नष्ट होगा और न उनकी ऐसी दुर्दशा ही होगी, जैसी आजकल हो रही है। इस प्रकार गाँवों में रह कर वे अपनी आर्थिक अवस्था भी सुधार सकेंगे और विद्या-सम्बन्धी ज्ञान सीख कर ब्राह्मणत्व की शोभा बढ़ा सकेंगे। भैयागिरी और जमादारी में न तो उनका पौरुष रहता है, न आर्थिक अवस्था सुधरती है; बल्कि घोरातिघोर तिरस्कार सहना पड़ता है। यदि उन्हें इन शहरों में ही जाना है, तो वहाँ जाकर वे कोई हुनर सीखें, जिससे या तो वे किसी बड़े धन्धे में लग जावें या अपना ही कोई स्वतन्त्र काम करने लगें। पशुओं के समान इस दयनीय अवस्था से उन्हें अपना छुटकारा करना चाहिए।

खेती में भी तभी सफलता होगी, जब वे नए साधनों का उपयोग करेंगे और फ़ुर्सत के समय खेती के साथ-साथ और कोई धन्धा भी गाँवों में करेंगे। उन्हें यह जानना चाहिए कि यह कर्मयुग है, इस युग में चाहे ब्राह्मण हो या और कोई, परिश्रम करने से ही चार पैसे मिलेंगे। हम जितना ही स्वतन्त्र धन्धा करेंगे, उतना ही हम अपने स्वाभिमान, पूर्व गौरव और अपने ब्राह्मणत्व की रक्षा करेंगे। सब फ़िज़ूलख़र्चियाँ मिटा—मितव्ययिता-पूर्वक रह कर—जो चार पैसे बचें, उन्हें रोज़गार में लगाते चले जाना चाहिए। जनेऊ और ब्याह-शादी इस रूप में करने चाहिए कि मानो हम पर उसका कोई भार नहीं पड़ता है। धार्मिक कृत्यों के करने में, जनेऊ-विवाह में पाँच-दस या बीस-तीस रुपए से अधिक का ख़र्च ही नहीं है। तीज-त्यौहारों के मानने में भी व्यर्थ का ख़र्च न करना चाहिए। हमें यह याद रखना चाहिए कि धन कमाना सहल है, किन्तु उसका ख़र्च करना अत्यन्त कठिन है। जो लोग इस ख़र्च करने में सावधानी रखते हैं, वे ही सफलता प्राप्त करते हैं। हमारे इस कथन का यह भी अर्थ नहीं है कि लोग खाएँ-पिएँ न, अच्छे वस्त्र तक न पहिनें। नहीं, वे यह सब करें, पर सदैव धन का सदुपयोग करें। आज जैसा ज़माना आ रहा है, हमको उसी के उपयुक्त अपनी तैयारी करनी चाहिए। यह समय वह है कि यदि हम ज़रा भी न सम्हले तो हमारा अस्तित्व ही नहीं रहेगा। वैसे ही हमारी जाति मिटती चली जाती है, पर जब पूरा घड़ा भर जाएगा, तब हम जगे तो क्या जगे? सारी जातियाँ अपने-अपने कलङ्कों को धोने में लगी हैं, पर हमारे भाई—भैयागिरी और जमादारी कर—आज भी भयानक आर्थिक सङ्कट और पैशाचिक सामाजिक कुरीतियों के दलदलों में फँसे हुए हैं। अभी तक जो हमारी बेढङ्गी रफ़्तार है, उससे हमारा भविष्य अन्धकारमय ही प्रतीत होता है।

—जी० एस० पथिक बी० ए०, बी० (कॉम)
(प्रधान मन्त्री, कान्यकुब्ज सभा, ग्वालियर)

* * *

स्वास्थ्य और नवयुवक

दुःख की बात है कि स्वास्थ्य का महत्व इस देश से लुप्तप्राय सा हुआ जा रहा है। यह एक सपने की स्मृति सी रह गई है। स्वास्थ्य और नवयुवक से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। परन्तु दुःख की बात है कि आजकल के नवयुवक यह भी नहीं जानते कि स्वास्थ्य है क्या चीज़! जान कर ही क्या करेंगे? उन्हें इससे क्या काम?

आज हिन्दू जाति लाञ्छित क्यों है, पददलित क्यों है, ग़ुलाम क्यों है, रूढ़ियों का पोषक क्यों है? इसका एक साधारण सा उत्तर है—नवयुवकों में स्वास्थ्य का न होना। नवयुवक ही राष्ट्र की शक्ति हैं। उनमें प्राणोन्मादिनी उत्तेजना रहती है, भयङ्कर जोश रहता है, और रहता है अदमनीय उत्साह। मगर यहाँ अब वह बात नहीं है,—है उसके एकदम विपरीत!

स्कूलों तथा कॉलेजों के दूषित एवं उच्छृङ्खल वातावरण में पल कर क्या कोई नवयुवक यौवन की उन्नत भावनाओं से भावित हो सकता है? कदापि नहीं। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि आजकल कोई भी नवयुवक स्कूलों के भयङ्कर अनाचार, अमानुषिक प्रथा, अप्राकृतिक कुचेष्टाओं से वञ्चित नहीं है, सभी ने इस स्वर्गीय

सुख को लूटा है और ख़ूब लूटा है। मानवता की पवित्र भूमि में दानवता का यह उच्छृङ्खल अट्टहास कैसा दुर्दान्त है!

सब से बड़े दुःख की बात यह है कि इस ओर किसी नेता या सुधारक का ध्यान नहीं। कोई ध्यान ही क्यों दे? किसे इतना अवकाश है कि इन गन्दी बातों पर माथापच्ची करे? भला अश्लील बातें कोई कैसे अपने मुँह पर लावे? उग्र जी ने इस विषय पर लेखनी भी उठाई तो उनकी लेखनी अप्राकृतिक व्यभिचार का शत्रु न होकर दिलदार साक़ी बन गई!

स्वास्थ्य को नष्ट करने वाला यह दुराचार स्कूलों में ही अधिकतर फैला हुआ है और दिन दूना तथा रात चौगुना बढ़ता चला जा रहा है। हमारे सुकुमार बालक खिलने न पाते और निर्दयतापूर्वक मसल दिए जाते हैं। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि इन बातों को देख और सुन कर भी कोई चूँ तक नहीं करता। सारा समाज इस ओर से लम्बी तान कर निश्चिन्त है। मैं पूछता हूँ, उन समाज के नरपुङ्गवों से—जिनके हाथों में समाज की बागडोर है—कि उन्होंने इन नर-पिशाचों को दण्ड देने का क्या प्रबन्ध किया है, जो बालकों को मनुष्यत्व से गिरा कर नपुंसकता की दोज़ख़ी आग में जलाते हैं और आप भी जलते हैं? इन गुण्डों के कुचक्र में फँस कर जब कोई स्त्री कुछ कर बैठती है, तब तो समाज के नियामक उसे भयङ्कर से भयङ्कर दण्ड देने के लिए उतावले हो जाते हैं, पर वे इन गुण्डों का क्या बिगाड़ लेते हैं? कुछ भी नहीं। इस तरह हमारे समाज में गुण्डे स्वतन्त्र होकर हमारे होनहार बालकों और बालिकाओं का जीवन नष्ट कर रहे हैं, पर कोई उनका नियन्त्रण करने वाला नहीं है।

ऐसी अवस्था में नवयुवकों के स्वास्थ्य की आशा करना नितान्त युक्तिहीन है। हमारे नवयुवक आजकल चाहते हैं पतली कमर, धँसी छाती, चिपके गाल, अन्दर धुसी आँखें और चाहते हैं औरतों की चाल! वह भारत, जो पहिले वीर सन्तानें पैदा करता था, अब उत्पन्न करता है नपुंसक, जिन्हें स्वास्थ्य से चिढ़ ही नहीं, वरन् घृणा भी है। यह कितनी दयनीय दशा है, कैसी भयङ्कर अवस्था है, इसे कहने की ज़रूरत नहीं। हम कहना केवल इतना ही चाहते हैं कि समाज के विधायकों का ध्यान इस समस्या की ओर आकर्षित होना चाहिए; जो लोग रात-दिन हाथ धोकर साहित्यिक अश्लीलता के पीछे पड़े रहते हैं, उन्हें थोड़ा-बहुत इस व्यावहारिक अश्लीलता की ओर भी ध्यान देना चाहिए।

—तारकेश्वर प्रसाद

* * *

लोहे का भय

"महाराज की दुहाई, महाराज ग़ज़ब हो गया, महाराव रणबङ्का राठौर अमरसिंह मारे गए! और बादशाह सलामत की आज्ञा से उनकी लाश बुर्ज पर नङ्गी करके डाल दी गई है, ताकि चील और कौवे उसे दुर्दशापूर्वक खा जायँ; बहूरानी के पास जो थोड़ी सेना थी, वह लाश लाने के उद्योग में कट-मरी है; राजमहल की रक्षा केवल कुछ बाँदियाँ कर रही हैं। बादशाह सलामत ने गुस्से में आकर हुक्म दिया है कि महाराव का महल ज़मींदोज़ करा दिया जाय और उनके ख़ानदान का बच्चा-बच्चा गिरफ़्तार करके शाही हुज़ूर में दाख़िल किया जाय! बहूरानी अकेली असहाय अबला हैं, आप उनके पूज्य श्वसुर के स्थानापन्न और महाराव के चचा हैं, बहूरानी ने आपकी शरण ली है। वे प्रार्थना करती हैं कि महाराज मेरी आबरू की रक्षा करें, अपने वंश की रक्षा करें और मुझे पति का शरीर ला दें और मुझे निर्विघ्न सती होने की व्यवस्था कर दें। इस विदेश में आप ही सगे हैं।"

"अभी कल ही तो महाराव अमरसिंह हमसे मिल कर गए थे। एक ही दिन में यह क्या घटना हो गई?"

"आज दर्बार में सलाबत ख़ाँ ने उनका अपमान किया था, उसे उन्होंने वहीं छाती में कटार मार कर मार डाला, फिर क़िले की सफ़ील कूद कर भाग भी आए। परन्तु महाराज! नमकहराम अर्जुन गौड़ ने अनर्थ किया।"

"क्या किया?"

"वह धोखा देकर महाराव को क़िले में ले गया, बहूरानी को भी बहुत क़सम दे गया। वहाँ पीछे से अचानक वार करके राठौर को गिरा दिया।"

"हूँ, अब मुझसे क्या कहते हो ?"

"महाराज ! बहूरानी आपकी शरण हैं। अपनी और उनकी कुल-मर्यादा, धर्म और इज़्ज़त की रक्षा कीजिए।"

"(हँस कर) हम कब से उनके श्वसुर और चचा हुए ? हम बाँदी-पुत्र हैं और वे रणबङ्का राठौर हैं। हमारी उनकी बराबरी क्या है ? कल तक तो वे हमें विवाह, शादी, ग़मी, किसी में भी बराबर का आसन नहीं देते थे—इससे उनकी कुल-कान चली जाती—अब बहूरानी बाँदी-पुत्र की शरण क्यों ? उनसे कह दो कि बूँदी जाकर अपने उच्च कुलीन पीहर वालों को बुला लें, वे ही उनके कुलधर्म और कुल-गौरव की रक्षा करेंगे। हम बाँदी-पुत्रों का कुल-धर्म ही क्या और कुल-गौरव ही क्या ?"

"महाराज की जय हो। स्वामिन, इस अवसर पर ऐसी बात न करिए। वहाँ अकेली अबलाएँ तलवारें चला रही हैं, यह समय इन बातों का नहीं।"

"परन्तु हम बाँदी-पुत्र भी तो हैं ?"

"आपके रक्त में राठौर रक्त है।"

"फिर भी वह विशुद्ध नहीं।"

"यह समय इस विवेचना का नहीं।"

"जब अच्छे दिनों में हम नीच और ग़ैर रहे तब अब सगे कैसे बनेंगे ?"

"महाराज ! यह क्षत्रियों का धर्म है।"

"उनके लिए, जो उनकी प्रतिष्ठा करें।"

"बहूरानी आपको पितृव्य की भाँति प्रतिष्ठा करती हैं।"

"इस मतलब के समय पर न ? और इस प्रतिष्ठा को हम प्राण देकर ख़रीद लें, जब कि जीवन भर हम बाँदीपुत्र कह कर तिरस्कृत होते रहे ? यह देखो, हमारी छाती अपमान की आग से फुँकी पड़ी है।"

"महाराज ! रक्षा करो, रक्षा करो, आपके भतीजे की लाश को कौवे-चील खा रहे हैं !!"

"हम उनके कुछ नहीं।"

"बहूरानी अभी शाही दर्बार में अपमानित होंगी, वे आपकी कुल-वधू हैं।"

"उनके पीहर वाले बूँदी से आ जावेंगे। वे बड़े बाँके योद्धा हैं, पल भर में उनके गौरव की रक्षा कर लेंगे।"

"तब क्या महाराज अबला, असहाय राजपूतनी को सहाय न देंगे ?"

"वह हमारी कौन हैं ?"

"महाराज का अन्तिम उत्तर क्या है ?"

"बूँदी से पीहर वाले कुलीन वीर बुला कर बहूरानी की प्रतिष्ठा की रक्षा की जाय।"

२

"महारानी, अनर्थ हो गया। महाराव अमरसिंह मारे गए और उनकी रानी का महल शाही सेना ने घेर रक्खा है, अकेली स्त्रियाँ लोहा ले रही हैं। बहूरानी ने महाराज की शरण ली थी, उन्होंने अस्वीकार कर दिया।"

"सुन चुकी हूँ। तू ठहर और जो कुछ मैं कहती हूँ, सावधानी से सुन। अभी महाराज भोजन करने भीतर पधारेंगे। तू सभी सोने-चाँदी के बर्तनों को उठा कर छिपा कर रख दे। और महाराज का भोजन लोहे के बर्तनों में परोस देना। यदि महाराज नाराज़ हों तो तू कुछ जवाब न देना। मैं सब देख लूँगी।"

"जो आज्ञा।"

३

"हैं, यह क्या बेवक़ूफ़ी है ? यह लोहे के बर्तनों में भोजन कैसा ? बाँदी ! कौन है ? किसने यह दुष्टता की है ? मैं उसे कभी क्षमा न करूँगा। यह किसका काम है, सामने आ।"

महारानी सामने आकर—"स्वामिन् ! क्या है ?"

"देखती हो, मेरा किसने अपमान किया है ? यह लोहे के पात्रों में भोजन......मैं अभी उसे तलवार से टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा। क्या मेरा क्रोध तुम पर विदित नहीं ?"

"विदित है स्वामिन् ! आपका क्रोध, आपका तेज, प्रतिष्ठा, सम्मान, वीरता इस तुच्छ नारी को विदित है। आख़िर यह आपकी अर्धाङ्गिनी दासी ही तो है। यह दुष्टता जिस दासी ने की है, उसे कभी क्षमा न करना स्वामी ! नहीं तो आपका प्रताप आज ही नष्ट हो जायगा। (दासी से) अरी पापिष्ट ! बोलती क्यों नहीं ? अभागिनी, क्या तू नहीं जानती कि महाराज लोहे से भय खाते हैं ? तूने उन्हीं के सम्मुख लोहा रख दिया। तेरी इतनी मजाल ? अरी क्या तू यह नहीं जानती कि यह

किसी राजपूत का चौका नहीं—बनिए का रसोई-घर है। यहाँ हीरे, मोती, सोना, चाँदी रहने चाहिएँ या लोहा? क्या तुझसे मैंने बारम्बार नहीं कहा था कि महाराज लोहे से डरते हैं, उनके सम्मुख कभी लोहा न लाना? ठहर मैं तुझे कुत्तों से नुचवाऊँगी।"

"महारानी! तुम यह क्या बक रही हो? क्या तुम पागल हो रही हो? क्या कहा—मैं लोहे से भय करता हूँ? इस भुजदण्ड के बल पर और इस तलवार के ज़ोर पर मैंने सहस्रावधि शत्रुओं के रुण्ड-मुण्ड पृथक् किए हैं। कौन वीर रण-रङ्ग में मेरे सम्मुख खड़ा रह सकता है? और आज तुम मेरा यह अपमान करती हो? मैं लोहे से डरता हूँ? क्या मैं लोहे से डरता हूँ?"

"क्या तुम लोहे से नहीं डरते? अभी तुम जो अपने इन निरर्थक भुजदण्डों की डींग हाँक चुके हो, क्या ये प्रकृत वीरों के भुजदण्ड हैं? यदि तुम लोहे से भय न खाते होते तो क्या यह सम्भव था कि तुम्हारे वंश के अनमोल लाल की लाश, जिसकी वीरता की धाक राजपूताने के घर-घर है, पशु की तरह नङ्गी चील-कौवों के लिए पड़ी होती? तुम्हारी पुत्रवधू की लाज लुट रही है—तुमने शरणागत होने पर भी स्त्री को निराश किया है और तुम इतने पर भी सोने-चाँदी के पात्रों में छत्तीस प्रकार के स्वादिष्ट भोजन गले से उतारने और इन वीर बाहुओं को पुष्ट करने रसोई में पधारे हो। अरे नामर्द, कायर! तेरी पत्नी होने में मुझे लाज लगती है। तू कहता है कि वे तुझे बाँदी-पुत्र कहते हैं? मैं कहती हूँ—एक बार नहीं, सौ बार, लाख बार, करोड़ बार बाँदी-पुत्र है। बाँदी-पुत्र ही शरणागता अबला को निराश कर सकता है। प्रकृत क्षत्रिय के प्राण और सर्वस्व तो शरणागत की रक्षा के ही लिए है, फिर वह शरणागत चाहे उसके प्राणों का जन्म-शत्रु ही क्यों न हो।"

"बैठो, स्वर्ण की चौकी पर। बाँदी, ले आ सोने-चाँदी के थाल और परस दे षड्रस व्यञ्जन। यह बाँदी-पुत्र पेटू, भरपेट आज भोजन करेगा, क्योंकि इसके वीर पुत्र की लाश चील-कौवे खाकर पेट भर रहे हैं, और इसकी शीलवती कुल-वधू, अपनी आबरू अपने हाथ में स्वयं तलवार लेकर बचा रही है।"

"लाओ, यह तलवार मुझे दो। मैं देखूँगी कि राजपूत बाला के हाथ की शक्ति सहन करना मुग़ल-तख़्त के बस का है या नहीं। (अपना सौभाग्य-सिन्दूर पोंछ कर और सौभाग्य-चूड़ियों को चूर-चूर करके) यह लो, अपवित्रता को मैंने दूर कर दिया। अब मैं बाँदी-पुत्र की पत्नी नहीं; मैं साक्षात् रणचण्डी क्षत्रिय बाला हूँ।"

"बस-बस-बस, महारानी बस, अधिक नहीं। ईर्ष्या ने मुझे नीच और अन्धा बना दिया था। जब तक मैं वीर अमर की लाश लाकर वीरबाला बहू को प्रतिष्ठापूर्वक सती नहीं कर दूँगा, तब तक न अन्न ग्रहण करूँगा न जल, न मरूँगा, न हटूँगा, मैं प्रण करता हूँ। तेजस्विनी! तुम धन्य हो, तुम बाँदी-पुत्र की पत्नी नहीं—तुम ओजस्विनी क्षत्रिय बाला हो। लाओ मेरी तलवार। महारानी! विदा। अब हम उस लोक में मिलेंगे। यह मैं चला।"

"तब तुम सचमुच ही स्वामी प्रतीत होते हो। आह! मैं मूर्खा आपे से बाहर होकर क्या कह गई, स्वामिन्! क्षमा।"

"महारानी! अब समय नहीं है, अब हम उस लोक में मिलेंगे।"

"अच्छा, मेरे वीर स्वामी! मैं क्षण भर में ही तुम्हारे चरणों में आने का सब सरञ्जाम किए रखती हूँ, जाओ।"

४

"महारानी, सब कुछ समाप्त हुआ!"

"मुझमें यथेष्ट धैर्य है, सब कुछ विस्तार से कहो। क्या अमरसिंह की लाश मिली?"

"उसे सहस्रों नङ्गी तलवारों की कठिन मार में घुस कर, मुर्दों की छाती पर पैर धरते हुए, महाराज को बुर्ज से लाते और दोनों हाथों से तलवार चलाते हमने स्वयं देखा है।"

"लाश चिता तक सुरक्षित पहुँच तो गई न?"

"महाराव के शयन-कक्ष को ही चिता बनाया गया था, वहाँ बहुत सा ज्वलनशील पदार्थ—घृत आदि जो था, संग्रह करके तैयार किया गया था।"

"चिता में विधिवत अग्नि तो दे दी न?"

"महाराज तब तक स्थिर खड़े रहे, तलवार उनकी मुट्ठी में कस कर पकड़ी हुई थी।"

"बहू सती हो गई?"

"सती हो जाने पर ही महाराज गिरे।"

"महाराज गिरे? क्या महाराज काम आए?"

"महारानी ! महाराज अमर हुए, ऐसा साखा किसी ने न देखा होगा।"

"बहुत ठीक, अब तुम कितने बचे हो ?"

"अकेला मैं।"

"महाराज का शरीर कहाँ है ?"

"महाराज के निज कक्ष में धरा है।"

"क्या शाही सेना यहाँ आ रही है ? यह कोलाहल कैसा है ?"

"महारानी ! शाही सेना इधर ही आ रही है।"

"अच्छा, एक क्षण ठहरो। जाओ महाराज के शव को प्राङ्गण में ले आओ। यह द्वार पर धूमधाम क्या है ?"

"महारानी ! शाही सेना भीतर घुसने की चेष्टा कर रही है।"

"अब वह असम्भव है। अच्छा चिता में अग्नि दो और देखो, भण्डार में सब कुछ प्रस्तुत है, आग लगा दो, क्षण भर में महल शाही सेना के लिए अगम्य हुआ जाता है।"

जय वीर माता की !

—???

* * *

आर्यसमाज में सुधार की आवश्यकता

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आर्यसमाज पूरा देश-हितैषी तथा देश-भक्त समाज है और जितने काम इस समय तक आर्यसमाज ने किए हैं, वे आदर्श तथा सराहनीय हैं। इस समाज ने सद्धर्म-प्रचार में जैसी-जैसी आपत्तियाँ उठाई हैं, वे देश के किसी व्यक्ति से छिपी हुई नहीं हैं। आर्यसमाज ने देश और जाति को जगाने के लिए भरपूर यत्न किया, इसमें बिलकुल सन्देह नहीं। यह आर्यसमाज का ही प्रभाव है कि जो लोग किसी समय शुद्धि, अछूतोद्धार वा विधवा-विवाह के नाम से कानों पर हाथ रखते थे, वे आज उनके पूरे समर्थक हैं।

परन्तु सवाल तो यह है कि आर्यसमाज की गति मन्द क्यों होती जा रही है ? हमारे समाज की गति में जो इतना परिवर्तन हो गया है, उसका सबब एक यही हो सकता है कि हमारे समाजों के पदाधिकारी और बहुत से प्रचारक और भजनीक अपनी पौराणिक जाति के बड़े प्रेमी हैं। यही एक बात है कि जो देश और धर्म की उन्नति में रोड़ा अटका रही है। यह प्रायः देखने में आता है कि कई आर्यसमाजी भाई बड़े ज़ोर से कह उठते हैं कि मैं तो बीस वर्ष से समाज का सभासद हूँ और मैंने कई सभासद बनाए हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने समाज की बड़ी सहायता की है ; परन्तु मेरी समझ से तो यह सहायता अधूरी है। क्योंकि जब कोई आर्य-सभासद उनसे कहता है कि आज मेरे घर भोजन का निमन्त्रण है तो वे बग़लें झाँकने लग जाते हैं। वैसा ही उनके बनाए सभासदों का हाल है। अब बताइए उन्होंने समाज की ख़ास कमी में क्या पूर्ति की ? ऐसी बातों से तो यह सन्देह होता है कि कहीं आर्यसमाज अपने आपको और अपने पवित्र और प्यारे धर्म को सङ्कुचित न बना बैठे।

हमारे आर्यसमाजी भाइयों को भूला न होगा कि नवम्बर सन् १९२७ को देहली सार्वदेशिक सभा में स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी ने इस विषय का प्रस्ताव रक्खा था और भाई परमानन्द जी ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया था कि जितने प्रतिनिधि समाजों से आए हुए हैं, वे अपने-अपने शहर और क़स्बों के समाजों में जात-पाँत-तोड़क मण्डल स्थापित करें। इस प्रस्ताव पर लोगों की सम्मतियाँ माँगी गईं तो सारे लोगों ने, जो पण्डाल में क़रीब १५,००० के मौजूद थे, हाथ ऊँचे कर दिए और प्रस्ताव पास कर लिया। इन प्रस्ताव पास करने वालों ने यह भी प्रतिज्ञा की थी कि हम इस कार्य को पूरी लगन और प्रेम के साथ चलावेंगे। परन्तु अब बताइए, आपने देहली से लौटने के तीन साल बाद में कितना काम जात-पाँत-तोड़क-मण्डल के विषय में किया है ? आप ख़ूब जानते हैं कि कोई भी काम और किए तो आपसे हो नहीं जावेगा, फिर आपने इस प्रस्ताव को किसके भरोसे रख छोड़ा है ? आर्यसमाज ऐसे ही पचास वर्ष से चिल्ला रहा है और एकता की डफली पीट रहा है ; पर काम कुछ भी नहीं होता, और न तब तक हो सकता है जब तक हमारे मन से जात-पाँत के बन्धन न टूट जायँ।

हमारे समाजों में होता है क्या ? आठ रोज़ में कुछ थोड़े से सभासद समाज-मन्दिर में जमा हो गए, हवन

ो अदालत में बुलाया गया। उस समय युवक के रुद्ध एक विवाहिता स्त्री ने गवाही देते हुए कहा कि झे यह दृश्य सौन्दर्य-कला के इतना विरुद्ध मालूम आ कि मैंने घृणापूर्वक उसी समय अपने मकान की खड़की बन्द कर ली। सिनेमा में जब प्रेमी और प्रेमिका ा बारम्बार चुम्बन दिखाया जाता है तो विज्ञ लोग से बहुधा नापसन्द करते हैं। क्यों? इसीलिए कि वह डा अस्वाभाविक और सौन्दर्य-कला के विरुद्ध प्रतीत ता है। एक कला-विज्ञ लेखक का कहना है कि सिनेमा जो सबसे बड़ी हानि है वह इस प्रकार के सौन्दर्य-ला-हीन दृश्यों द्वारा उपस्थित जनता को दुर्भावित रना है। फलतः पाश्चात्य देशों में सिनेमा-घरों में ही म्बन का रिवाज चल पड़ा है और सबसे आगे की र्सों पर बैठे प्रेमी-प्रेमिका उपस्थित जनता के सम्मुख ार-बार चुम्बन करते तनिक भी सङ्कोच अनुभव नहीं रते। कई सिनेमा-घरों में इस प्रकार का प्रत्यक्ष चुम्बन र्वथा बन्द कर दिया गया है। भिन्न-भिन्न देशों के लिंयामेन्ट-घरों में भी चुम्बन रोक दिया गया है। छ दिन हुए, फ्रान्स के पार्लियामेन्ट-भवन से एक स्त्री-रुष को इसलिए निकाल दिया गया था कि उन्होंने ीं पर चुम्बन-विनिमय कर लिया था। हैङ्काऊ (चीन) एक चीनी दम्पति पर ५ पौण्ड जुर्माना इसलिए किया ा था कि उसने घोड़ागाड़ी पर बैठे खुले-आम चुम्बन ्या था। ऑस्ट्रिया की रेलवे कम्पनी ने मुसाफ़िरों लिए जो नियम प्रकाशित किए हैं, उनमें एक यह भी कि विदाई के समय प्लेटफ़ार्म पर वा चलती गाड़ी की ड़की में से चुम्बन नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे नों को हानि होती है। वाशिङ्गटन (अमेरिका) में जब म्बन के विरुद्ध आन्दोलन चला तब लड़के-लड़कियाँ पनी छाती पर "मुझे मत चूमो" का बिल्ला लगाए ज़ारों में घूमते थे। अगले वर्षों में यह आशा की जाती कि चुम्बन के विरुद्ध और भी अधिक प्रबल आन्दोलन गा।

हमारे प्राचीन साहित्य में चुम्बन का वर्णन बहुत म पाया जाता है। हाँ, वात्स्यायन के कामसूत्रों में सका निर्देश अवश्य है। संस्कृत काव्य-ग्रन्थों के शृङ्गार-ूर्ण भागों में भी चुम्बन की अपेक्षा आलिङ्गन का ही धिक वर्णन पाया जाता है।

किसी अंश तक यह कहा जा सकता है कि चुम्बन पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार के साथ ही इस देश में आया है। अशिक्षितों की अपेक्षा शिक्षितों में और ग्रामों की अपेक्षा नगरों में इसका अधिक प्रचार है। आजकल के अधिकांश अश्लील सिनेमा, थिएटर और उपन्यास भी इस कुप्रवृत्ति के बढ़ाने में सहायक हो रहे हैं।

परन्तु, इस देश में प्रत्यक्ष चुम्बन (Public Kissing) सर्वथा नहीं है। यह न हिन्दुओं में है और न मुसलमानों में। जहाँ तक हम समझते हैं, एशिया के किसी देश में भी अभी तक पश्चिम की तरह प्रत्यक्ष चुम्बन का रिवाज नहीं है। भारत में रहने वाले अङ्गरेज़ों में ऐसा रिवाज अवश्य है, पर वह भी उतना सार्वजनिक नहीं, जितना उनके अपने पाश्चात्य देशों में। हिन्दुस्तानी, जो ईसाई हो गए हैं, उनमें भी खुले-आम चुम्बन कम ही देखा जाता है।

हाँ, निजूरूप से चुम्बन अब घर-घर में घुस गया है। यह पाश्चात्य सभ्यता के साथ ही यहाँ आया है और उसी के साथ-साथ यह बढ़ रहा है। अङ्गरेज़ी शिक्षा के अड्डे—स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटी इत्यादि—में तो यह व्याधि भयङ्कर रूप से फैल रही है।

अब समय आगया है कि सुधार-प्रेमी इस घातक कुप्रवृत्ति के विरुद्ध आवाज़ उठावें। शिक्षित पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वे स्वयं इससे बचें और दूसरों को भी बचावें। स्वास्थ्य, नीति-कला आदि दृष्टियों से जब चुम्बन हानिकारक है और हमारी सभ्यता के विरुद्ध होने से अनुपयुक्त है, तब इस नई बढ़ती कुप्रवृत्ति के विरुद्ध आन्दोलन करना प्रत्येक शिक्षित भारतीय का कर्तव्य है।

—दीननाथ सिद्धान्तालङ्कार

* * *

अस्मत पर हाथ

बूँदी के राजमहलों में नाच-रङ्ग के दौर-दौरे थे। छोटे महाराज का विवाह था। डाडिनें गा रही थीं। भाट विरद वर्णन कर रहे थे। बाँके राजपूत अपनी-अपनी बाँकी अदा दिखा कर मस्ती दिखा रहे थे।

कुँवर साहेब उठती उम्र के अल्हड़ युवक थे। वे एक

"बेटी, यह नाता ही ऐसा है।"

"पिता जी, चुप रहो।"

महाराज ने गर्दन नीची कर ली। कुमारी शीघ्र ही मूर्च्छित होकर धरती में गिर गईं।

३

"वीरेन्द्र!"

"अन्नदाता, महारानी!"

"अभी जैसलमेर को साँड़नी रवाना कर दो। वह बिना मन्ज़िल लिए जाय और महाराव से सब हक़ीक़त बयान कर दे। और अभी हमारे कूच की भी तत्काल तैयारी कर दो।"

"जो महारानी की आज्ञा।"

बूँदी भर के छोटे-बड़े राजवर्गी इकट्ठे हो गए। सभी ने कुमारी को समझाया, पर उसने हठ न छोड़ी। उसके मुख पर शब्द थे—अस्मत! अस्मत! होठ मानो आप ही फड़क रहे थे और उनमें से 'अस्मत' की ध्वनि फूटी पड़ती थी।

* * *

सबने समझ लिया कि ख़ैर नहीं। सारा रस-रङ्ग फीका पड़ गया। सबके चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। महाराज ने वर-पक्ष से कहला भेजा कि लड़की का डोला तैयार है, उत्तम यही है कि झटपट विदा हो जाइए। यदि जैसलमेर की सेना आ गई तो एक भी मर्द बचा जीवित न बचेगा।

रो-रोकर दुलहिन विदा हुई। इसके भाग्य में कै घड़ी का सुहाग था? कौन जाने? राजमहल में कुहराम मच रहा था। थोड़ी ही देर में दुलहिन की पालकी को बीच में डाले वर-पक्ष की सेना सर्प की भाँति दुर्ग से बाहर जा रही थी।

* * *

दो ही मन्ज़िल के बाद गर्द उड़ती देख वर-पक्ष ने समझ लिया कि काल मँड़राता हुआ आ रहा है। इधर सेना बहुत कम थी। पर जितने भी थे, वे मोर्चेबन्दी करके तलवारें सूत कर मरने को खड़े हो गए।

४

"इस सेना का मुखिया कौन है?"

"यह सेना नहीं, बारात है।"

"इस बारात में हमारा गुनहगार है, उसे हमारे सुपुर्द किया जाय।"

"वह कौन है?"

"बींदराज।"

"उन्हें हम प्राण रहते सुपुर्द नहीं कर सकते।"

"तुम्हारे प्राण रहने ही न पावेंगे।"

"हमें इसकी परवा नहीं। पर बारात पर अकस्मात यों चढ़ दौड़ना वीरता नहीं।"

"यहाँ वीरता का प्रश्न नहीं, यहाँ शत्रु से युद्ध नहीं, यहाँ अपराधी को गिरफ़्तार करके दण्ड देना है।"

"उसका अपराध क्या है?"

"उसने स्त्री की अस्मत पर हाथ डाला है।"

"वह साधारण दोष था।"

"उसकी सज़ा मौत है।"

"यह साधारण काम नहीं।"

"यदि राजपूताने की तलवारें भी आकर उसकी रक्षा करना चाहें तो बचा नहीं सकतीं।"

बाँके वीर टूट पड़े। खटाखट तलवारें चलीं और देखते ही देखते ख़ून की नदी बह निकली। जैसलमेर की सेना विजयी हुई। सेना के सर्दार ने लाशों में से दूल्हा की लाश निकाल कर, उच्च स्वर से कहा—"प्रिये! अपराधी को दण्ड मिल गया।"

"स्वामिन! अब एक और कर्त्तव्य शेष रह गया है।"

यह कह कर ज्येष्ठ राजकुमारी डोले में से निकल कर लाशों को पैरों से रौंदती हुई, दुलहिन के डोले के पास पहुँचीं। देखा, दुलहिन की आँखों में आँसू नहीं हैं। उसने अपने हाथ से माथे का सिन्दूर पोंछ लिया है और अपनी सुहाग की चूड़ियाँ चूर-चूर कर डाली हैं। बहिन को देखते ही वह सहसा हँस पड़ी। उसने कहा—"जीजा जी कहाँ हैं?"

वह क्रुद्ध वीर—जो अब तक बघेरे की भाँति तलवार लिए फिरता था, चुपचाप विनयपूर्वक आ खड़ा हुआ। उसने विनम्र स्वर से कहा—"बाई जी को मुजरा है।"

"जीजा जी! जीजी के मन का तो तुमने किया—अब कुछ मेरा भी उपकार कर दो।"

"जो आज्ञा।"

"क्या मेरे ससुराल वालों में कोई जीवित बचा है?"

"एक भी नहीं।"

"तब तुम्हीं चिता चुन दो, पति की लाश को स्नान करा—चन्दन-चर्चित कर—रख दो, जीजी आग दे देंगी। मैं अब सती होऊँगी। जीजा जी, यह कष्ट तो करना होगा।"

वीर राजपूत की आँखों में एक बूँद आँसू आकर ढलक गया। उसने वीरबाला का सैनिक सलाम किया और पीछे हट गया।

* * *

सूर्य छिप रहा था और चिता बड़ी-बड़ी लपटों को उड़ा कर धक-धक जल रही थी! बड़ी-बड़ी लकड़ियों के लाल-लाल अङ्गारे मानो हँस-हँस कर उस खेल को देख रहे थे!!

—???

* * *

विवाह या सर्वनाश

भारतवर्ष की मनुष्य-गणना की रिपोर्ट में यह पढ़ कर कि यहाँ सैकड़ों की संख्या में ऐसी विधवाएँ हैं, जिनकी आयु एक वर्ष से भी न्यून है, हृदय को कभी विश्वास नहीं होता था। कभी-कभी तो यह भी शङ्का होती थी कि यह मिस मेयो की भाँति, शायद गवर्नमेण्ट ने हम लोगों को बदनाम करने के निमित्त अपनी ओर से झूठमूठ लिखवा दिया हो। मैं समझता था कि प्रथम तो ऐसे विवाह किसी जाति में होते ही नहीं, जिनमें कन्या की आयु एक वर्ष से न्यून हो; और यदि कदाचित् इतने बड़े देश में एकाध विवाह ऐसा हो जाता हो तो क्या यह आवश्यक ही है कि वह विधवा भी हो जाय? और सो भी सैकड़ों की तादाद में! यह विचार मेरे मस्तिष्क में बहुत समय तक घूमता रहा।

पिछले साल फाल्गुन मास के आरम्भ में मुझे कार्य-वश मथुरा जाना पड़ा। वहाँ एक दिन सायङ्काल चौबों के एक मुहल्ले से होकर गुज़रा तो क्या देखता हूँ कि पुरुषों और स्त्रियों का एक जगह जमघट लगा हुआ है। ऐसा मालूम होता था कि यहाँ कोई शादी हो रही है। आगे बढ़ कर देखा तो एक युवती की गोद में पाँच या छः महीने की एक बच्ची बैठी हुई थी, जिसके माथे पर कुछ पुरुष रोली और चावल चढ़ा रहे थे। एक पण्डित जी यह कार्य सम्पादन करा रहे थे। मैंने पहिले तो यह ख़्याल किया कि यह शिशु उस स्त्री की नवजात लड़की है, जिसको वह इस समय अपने से पृथक करने में असमर्थ होने के कारण गोदी में लिए हुए है। परन्तु यह देख कर कि यह सारा संस्कार उस बच्ची का ही किया जा रहा है, मुझे अपना यह विचार छोड़ना पड़ा। मैंने सोचा कि शायद उस बच्ची का अन्नप्राशन हो रहा है। परन्तु कुछ ठीक समझ में न आया।

अन्त में एक आठ-नौ वर्ष के लड़के से मैंने पूछा—"भाई! यह क्या हो रहा है?"

लड़का कुछ रुखाई के साथ बोला—"दीखे नायने, आगौनी हो रही है?"

मैंने कहा—"ठीक है, वही अन्नप्राशन? उसी को यहाँ आगौनी कहें हैं।"

लड़का मेरी बात सुन कर मेरा मुँह निहारता रह गया। फिर आश्चर्यपूर्ण हँसी के साथ बोला—"अरे, अन्नप्राशन नायने। या को कल ब्याह होगो, आज आगौनी है।"

यह सुन कर मैं एकदम सहम गया। मेरी कुछ समझ में न आया कि इतनी छोटी बच्ची का विवाह कैसे हो सकता है? लड़कपन में बेशक सुना करते थे कि बच्चे अपने गुड्डों और गुड़ियों का विवाह भी बड़ी धूम-धाम और पूर्ण शास्त्र-विधि से रचते हैं। तो क्या यह भी कोई ऐसा ही विवाह है? मैं इसी उधेड़-बुन में था कि उस युवती की गोद से रोने की आवाज़ आई। वह लगी उस बच्ची को थपथपाने और पुचकारने। अब मेरे आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। मैं जिसे निर्जीव गुड़िया समझ रहा था, वह निकली जीवित गुड़िया! मैं जिसे बच्चों का खेल समझ रहा था, वह सचमुच का विवाह निकला! इससे मेरे मन में और भी कुतूहल बढ़ा। मैं सोचने लगा कि इस बच्ची का विवाह कैसा? यह किस जाति में हो रहा है? यह अपने ढङ्ग का अकेला ही विवाह है, अथवा ऐसे और भी होते हैं? परन्तु मेरे इन प्रश्नों का उत्तर कौन दे? वहाँ तो आबाल-वृद्ध सभी आमोद-प्रमोद में मस्त थे। किसी के चेहरे पर हँसी है, तो किसी के मुँह पर मुस्कुराहट। स्त्रियाँ अपनी तथा दूसरों की छवि देख रही हैं, तो

पुरुष धक्कमधक्का में मशग़ूल हैं। मैं ही अकेला अपनी उलटी खोपड़ी लिए अलग खड़ा विचारों में मग्न था। मैं कभी उस युवती की गोद में लेटी हुई बालिका को देखता था, कभी वहाँ के आचार्य तथा कार्यकर्ताओं पर दृष्टि दौड़ाता था, कभी देश के दुर्भाग्य पर अफ़सोस करता था। जब छः-छः महीने की गुड़ियों का विवाह होता है तो उनके विधवा हो जाने में ही कौन सा आश्चर्य है? ख़ास कर जिस जाति में विधवा-विवाह को पाप समझा जाता है, जो लोग विधवा-विवाह को कोली और चमार जैसी नीच जातियों का काम समझते हैं, उनमें ऐसी विधवाओं की कैसी दुर्दशा होती होगी? मैंने पास ही खड़े हुए एक युवक से पूछा—"यह किस जाति की बालिका है?"

युवक—"जगत्प्रसिद्ध चौबों की।"

मैं—"कौन से चौबों की—मीठों की या कड़ुओं की?"

युवक—"मीठों की नहीं, यहाँ तो अधिकांश कड़ुए ही रहते हैं। यह उन्हीं की बच्ची है।"

मैं—"अच्छा, तो वे, जिनमें से कुँवर जगदीश-प्रसाद हैं तथा और भी बड़ी-बड़ी नौकरियों पर हैं, और कुछ कलकत्ते में व्यापार भी करते हैं? यह उन्हीं में की बालिका है?"

युवक—"अजी, नहीं साहब! आप जाने कहाँ की कथा कहने लग गए। उनका इनका क्या सम्बन्ध? वे कुलीन, ये बदलीन। दोनों के बीच केवल रोटी का व्यवहार चलता है, बाक़ी और कोई संसर्ग नहीं। ये तो वे हैं, जिनमें बड़े-बड़े नामी पहलवान हो चुके हैं, जिनका पेशा तीर्थ-पुरोहिताई है, जिनके बड़े-बड़े महाराजे यज-मान हैं, जो भङ्ग पीने और दण्ड पेलने के लिए ही बहुधा प्रसिद्ध हैं।"

मैं—"अच्छा, तो ये मथुरा के पण्डे हैं, जो स्टेशनों पर से यात्रियों को लाते हैं और मन्दिरों के दर्शन और यमुना-स्नान कराते हैं?"

युवक—"जी हाँ, वही हैं। अब आप ठीक समझे।"

मैंने इस युवक से और भी बहुत सी बातें कीं। यह स्वयं भी उसी समुदाय का था, जिसमें यह विवाह हो रहा था। इसकी बातचीत से मालूम हुआ कि इस जाति में इस प्रकार का यह पहला ही विवाह नहीं था। ऐसे विवाह पहले भी होते रहे हैं। डेढ़-दो वर्ष की बच्चियों का विवाह तो प्रायः हो जाता है। परन्तु छः छः महीने की गुड़ियों का विवाह हाल पर होने लगा है। मैंने इस युवक से पूछा—"क्यों भाई! ऐसे विवाहों के होने का कुछ कारण भी बता सकते हो?"

युवक ने कहा—"इसका कारण यह है कि हम लोग बदलुए हैं।"

मैं—"बदलुए से क्या मतलब?"

युवक—"बदलुए से मतलब यह कि हमारे यहाँ विवाह अक्सर बदले से होते हैं। एक घर में एक लड़की और एक लड़का हुआ और दूसरे में भी एक लड़की और एक लड़का, तो वे इनका विवाह अदले-बदले में कर लेते हैं। पहले घर के लड़के का दूसरे घर की लड़की से और दूसरे घर के लड़के का पहिले घर की लड़की से विवाह होता है। यह बदला भाई-बहिन का तो होता ही है, परन्तु चाचा-भतीजी का, मामा-भाञ्जी का, नाना-धेवती का और बाप-बेटी का भी हो सकता है। इसी-लिए हम लोग बदलुए कहलाते हैं।"

मैंने पूछा—"लेकिन बदले का तो यह माने नहीं कि छः-छः महीने की बच्चियों का ही ब्याह रचा डालिए?"

युवक—"नहीं, इसके यह माने तो नहीं। इसके कुछ और भी गम्भीर कारण हैं। बदले के विवाह में यह शर्त होती है कि जिस घर में लड़की जाय उस घर से एवज़ी में एक लड़की आवे। अब, यदि उस घर में कोई लड़की नहीं है तो उसे एक लेखा लिखना पड़ता है कि मेरे कुटुम्ब में जब कभी कोई लड़की पैदा होगी तो मैं उसे अमुक घर में दूँगा। कुछ समय तक तो यह लेखा ही सब कुछ था। परन्तु पीछे से इसमें बेईमानी होने लगी। लोगों ने एवज़ी का बदला न चुकाया। तब सरकारी रजिस्ट्री की शरण लेनी पड़ी। रजिस्ट्री में बेटे वाले को लिखना पड़ता था कि अमुक घर में या तो मैं एवज़ी की एक लड़की दूँगा अथवा उसके बदले में इतना रुपया भरूँगा। रुपए की रक़म पहले से ही तय रहती थी। कुछ समय पश्चात् इसमें भी धोखा होने लगा। तब हार मान कर यह तरकीब निकालनी पड़ी कि लड़की की एवज़ी में दूसरी ओर से लड़की ही ली जाय, चाहे वह छोटी-बड़ी, कुरूप-सुरूप कैसी ही क्यों न हो, और अपनी लड़की के विवाह के साथ ही साथ उससे विवाह भी कर लिया जाय। फिर अपने घर में आकर

वह जीती-मरती रहेगी, देखा जायगा। यह विवाह एक ऐसी ही शर्त के विवाह का नमूना है।"

मैंने पूछा—"आप लोग इसे बुरा नहीं समझते?"

युवक—"समझते तो सब कुछ हैं। पर करें क्या? स्वार्थ में अन्धे, ये किसी की सुनते हैं? जातीय सभाओं ने इन कुकृत्यों को रोकने का अनेक बार प्रयत्न किया। परन्तु इन पर कोई प्रभाव न पड़ा। न ये किसी की सुनते, न मानते, न किसी के आदेशानुसार वर्तते हैं। ये अपने सामाजिक कार्यों में पूर्ण स्वच्छन्द और निरङ्कुश हैं।"

मैंने आश्चर्य के साथ पूछा—"क्या इस जाति के समझदार व्यक्ति भी इन बातों पर ध्यान नहीं देते?"

युवक ने कुछ हँस कर कहा—"इनके समझदारों की कुछ न पूछिए। इनमें समझदार ऐसे-ऐसे हैं कि अभी कहो तो न कुछ मामले को लेकर उसे ऐसा रूप दे दें कि ज़मीन-आसमान एक कर दें। एक छोटी सी ग़लती को बड़े से बड़ा रूप दे दें और फिर उसके कर्ता और उसके सहायकों को एकदम जातिच्युत कर दें। उनका सिर मुड़वा डालें, जनेऊ बदलवा डालें। परन्तु अनेक लोग घोरतम पाप करते हैं तो भी इनके कान पर जूँ नहीं रेंगती। स्वार्थ के वशीभूत होकर ये उसकी चर्चा तक नहीं करते। स्वार्थपरता इनमें इस तरह कूट-कूट कर भरी है कि सुन कर आपके रोंगटे खड़े हो जाएँगे। इनके समझदार व्यक्ति और आचार्य पैसे के ग़ुलाम हैं। जो पैसा दे सो उन्हें जोते। इन्हें पैसा देकर कोई चाहे तीन दिन की लड़की का विवाह साठ वर्ष के बाबा से करा ले, चाहे पैंतीस वर्ष की प्रौढ़ा का सोलह वर्ष के युवक से। इनका तो यह कहना है—

छोरा मरौ चाहे मरौ छोरी।
पीले टके से भर दो झोरी॥

मैंने पूछा—"यहाँ के नवयुवक इन बुराइयों को रोकने का कुछ प्रयत्न नहीं करते?"

युवक—"वे बेचारे जहाँ तक बनता है, हाथ-पैर मारते हैं। परन्तु जहाँ दाढ़ी-मूँछ वालों की नहीं चलती, जहाँ बड़े-बड़े शास्त्रियों और आचार्यों की बोलती बन्द हो जाती है, वहाँ इन छोकरों को कौन पूछे? बड़े-बड़े जातीय नेताओं ने इन्हें सुधारना चाहा, परन्तु ये लोग उन नेताओं को ही अपने से पृथक बता देते हैं और अपनी ग़लती मानने के बदले उन्हीं में सैकड़ों ऐब निकालने लग जाते हैं। जब बड़े-बड़ों की यह दशा है तब बेचारे युवक क्या करें? वे अपनी सभा करते हैं और बिलबिला कर रह जाते हैं।"

समय अधिक हुआ जान कर मैं उस युवक से विदा हुआ और रास्ते भर यह सोचता गया कि परमात्मा इन मूर्खों को कब सुबुद्धि प्रदान करेगा? यदि हम लोगों की यही हालत रही तो हमारी जाति का भगवान ही मालिक है।

—कौशिक

❋ ❋ ❋

"मैं तुम्हें नौकर रख सकता हूँ। परन्तु तुम्हारे पास मुन्शी महादेव प्रसाद का सर्टिफ़िकेट नहीं है।"

"हुज़ूर सर्टिफ़िकेट की ज़रूरत क्या है? यदि कहें तो मैं उनकी वह घड़ी दिखा दूँ, जिस पर उनका नाम खुदा हुआ है।"

❋ ❋ ❋

मियाँ बीबी दोनों रात में सो रहे थे। कुछ खटका हुआ, बीबी ने कहा—"देखो तो, शायद कोई चोर है।" मियाँ ने कमरे के दरवाज़े के पास पहुँच कर पुकारा—"कौन है?" जवाब मिला—"कोई नहीं।" जवाब विश्वसनीय था, केवल सवेरे कुछ चीज़ें ग़ायब थीं।

पहला—"तुम आजकल क्या करते हो?"

दूसरा—"मैं बिना सींग के बकरों का व्यापार करता हूँ।"

पहला—"मगर............"

दूसरा—"मगर से मैं कोई सम्बन्ध नहीं रखता।"

❋ ❋ ❋

"मैं एक पहलवान आदमी चाहता हूँ।"

उम्मीदवार—"मैं यथेष्ट बलवान् हूँ।"

"इसका प्रमाण?"

"जब मैं आया तब आपके द्वार पर दस उम्मीदवार खड़े थे, मैं उन सबको भगा कर आया हूँ।"

[श्रीमती कमला देवी चौधरी]

अँधेरी मैजिस्ट्रेटी
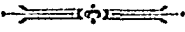
ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट (कुर्सी पर बैठे हजामत बनाते हुए)—हूँ ! अब बाज़ी मार ली है। बस, दो-चार महीने की देर है। थोड़ा सा जुरमाने का रुपया और भेजा कि फिर क्या, रायबहादुरी मिली ही समझो।

ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट की स्त्री—चूल्हे में जाय ऐसी रायबहादुरी.........

ऑ० मै०—(बीच ही में बात काटते हुए) अरे ! ज़रा धीरे से बोलो। बाहर सब चपरासी सुनते होंगे। ज़रा यह तो ख़्याल किया करो कि ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट का घर है।

स्त्री—मिल ही जायगी तो कहाँ की दौलत हाथ लगेगी, जिसके लिए हज़ारों के गले काटे ? घर की सारी ज़र-ज़मीन का सत्यानाश किया ....

ऑ० मै०—चुप हो ! चुप हो !!

स्त्री—घर में बच्चे एक-एक चीज़ को तरसें और अफ़सरों के यहाँ रोज़ डालियाँ जायँ ! बरसों से यही रङ्ग देख रही हूँ, मिल तो न गई रायबहादुरी ? वही मसला है—बाहर अब्बे तब्बे, घर में चूहे पके।

ऑ० मै०—अजी ! तुम तो बस बक-बक करना जानती हो। कितना समझाओ, सब बेकार। देखो तो आँखें खुल जायँ, अफ़सर लोग मेरी कैसी इज़्ज़त करते हैं। मेरे पहुँचते ही कुर्सी से उठ कर हाथ मिलाते हैं, अपने बराबर कुर्सी पर बिठाते हैं। कितने हिन्दुस्तानियों को यह इज़्ज़त नसीब है ? अङ्गरेज़ लोग बिला 'डैम फ़ूल' के बात तो करते ही नहीं।

स्त्री—वाह ! यह एक ही रही। अरे ! किसे अपना घर मेवा-मिठाइयों से भरना बुरा लगता है ? दिन-रात कमर झुकाए 'हाँ हजूर !' 'हाँ हजूर !' करते रहते हो, सुबह से शाम तक नाक रगड़ते हो, तो हाथ मिला ही लिया तो कौन भाग जग गए ?

ऑ० मै०—उँह ! कौन तुम्हारे साथ अपना दिमाग़ ख़राब करे ? कोई और औरत हो तो ऐसा घर पाकर फूली अङ्ग न समाए, तुम्हें हर वक्त जलते ही बीतता है।

ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट का नौकर लालू आकर कहता है—हजूर, कोचवान—हजूर, कोचवान—साहब, कोच......

ऑ० मै०—(बीच ही में) अबे ! गधे, पाजी, सूअर के बच्चे, मुझे कोचवान कहता है ? पता है तुझे, मैं ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट हूँ ?

लालू—हजूर......हजूर......हजूर..... साहब, पता है। हजूर......आप......हजूर अनाड़ी मैजिस्ट्रेट .....

ऑ० मैं०—(बात काट कर) अबे ! साले, सूअर के बच्चे, फिर तूने अनाड़ी कहा ? कह—'ऑनरेरी।'

लालू—हजूर, अनाड़ी......अनाड़ी .....

ऑ० मैं०—चुप पाजी, बदमाश !

लालू—(हैरान होकर) तौ फिर हम का करी ? तुमहीं तो कहत हौ, बात बात माँ 'हजूर' कह, जौमा जान पड़ै कि हम अनाड़ी मजिस्ट्रेट के नौकर हन। मुदा हमार जुबान नाहीं फिसलत है तो हम का करी ? गदहा, पाजी, सूअर का बच्चा तो हमहूँ फर-फर कह सकित हैं।

ऑ० मैं०—कमबख़्त ! तुझे कौन कहेगा कि तू ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट का नौकर है ?

लालू—कउनौ हजूर कमबखत न कहैं तौ उइका हम का करी ? लेओ हम जाइत है।

ऑ० मैं०—अबे पाजी, कहाँ चला ?

लालू—रोटी खाए।

ऑ० मैं०—अभी हमने तो खाया नहीं, तू चला—

लालू—तौ तुमका रायबहादुरी की फिकर माँ भूखै न लागै तो उइका हम का करी ?

ऑ० मैं०—(मन ही मन) कहता तो ठीक है ! लेकिन रायबहादुरी चीज़ ही ऐसी है। (नौकर से) अच्छा, बता तू क्या कहने आया था ?

लालू—पहिले तुम यह बताओ, 'हजूर-हजूर' करके बतलाई या जस मनई बतलात है, तस बतलाई।

ऑ० मैं०—अबे बता भी। मैं इस वक्त जल्दी में हूँ।

लालू—जल्दी माँ तौ हमहूँ हन, काहे सेनी भूख लाग है।

ऑ० मैं०—अच्छा बता क्या कहता है ?

लालू—कोचवान कहत है कि कहूँ कलट्टर बलट्टर के घर जाओ तौ गाड़ी लगावै।

ऑ० मैं०—(आप ही आप) आज न जाने किसका मुँह देख कर उठा था ! सुबह ही सुबह लला की माँ ने झगड़ा ठान दिया ; आज मेरा कुछ काम नहीं बना। (नौकर से)—जा, कोचवान से कह, जल्दी गाड़ी लावे। अब खाना न खाऊँगा, मुझे कलक्टर साहब से जल्दी मिलना है।

लालू बड़बड़ाते हुए चला गया—जब तुम्हारे करम माँ रोटी बदी होए तब ना, कलट्टर रायबहादुरी से पेट भर देहैं।

२

पानी बरस चुका था। सड़क कीचड़ से भरी हुई थी। उस पर एक मोटर-गाड़ी हॉर्न देती हुई आ रही थी। पर पुलिस का सिपाही शान के साथ अपने साथी से बातें करते हुए चौराहे पर खड़ा था। उसने मोटर की ओर ध्यान न दिया। इतने में मोटर नज़दीक पहुँच गई और कीचड़ के छींटे उड़ कर उसके साथी के पाजामे पर जा पड़े। सिपाही मोटर का नम्बर लेते हुए गुस्से से बोला—मालूम होता है अन्धे हो ! बिल्कुल बेक़ायदा मोटर चलाते हो। दिखाई नहीं देता कौन खड़ा है ?

टैक्सी ड्राइवर—दिखाई क्यों नहीं देता ? मैं तो दूर ही से हॉर्न देता आ रहा हूँ।

सिपाही—आप तो हॉर्न देते आ रहे हैं और इस भले आदमी के कपड़ों का क्या होगया ?

ड्राइवर—कीचड़ के सबब से छींटें उड़ कर पड़ गई, इसमें मेरा क्या क़सूर ?

सिपाही—क़सूर ? क़सूर यह है कि हम पुलिस के आदमी हैं ! चालान कर देंगे तो सारी हेकड़ी निकल जाएगी। मोटर लिए खोपड़ी पर चढ़े आते हैं !

आदमियों की भीड़ लग गई। इतने में एक ताँगे वाला बोला है—हाँ, ग़लती तो ज़रूर है। देखते नहीं थे, ख़ाँ साहब खड़े हैं ? पाजामा बुरी तरह ख़राब हो गया।

साथी—अजी ! मैंने अभी पाजामा सिलाया था, इसे इन्होंने बिल्कुल ग़ारत कर दिया।

ताँगे वाला—ख़ैर, ग़लती तो हुई, अब माफ़ कर दीजिए। (ड्राइवर से) भई, तुम भी अजब आदमी हो ? अपने क़सूर की माफ़ी क्यों नहीं माँगते ? ख़ाँ साहब को इतनी तकलीफ़ हुई। और नहीं तो कुछ पान-सिगरेट के लिए ही दो।

ड्राइवर कुछ न बोल कर चलता बना। इस पर ताँगे वाला आप ही-आप कहता है—कहा था, ख़ाँ साहब से माफ़ी माँग लो, बेचारे बड़े भले आदमी हैं, हम ग़रीबों पर हमेशा मेहरबानी की नज़र रखते हैं, मामला निबट जाता। मगर कुछ अजब गधा आदमी है !

सिपाही—नहीं भाई, ये लोग बड़े बदमाश होते हैं। जब तक चालान न होगा, बाज़ थोड़े ही आएँगे ?

तरकारी की पोटली हाथ में लिए लालू ने बीच ही में आकर कहा—का कह्यो, का? पैजामा पर छप्पा पड़ गए, येहू का चलान होत है? तौ मनई पर काहे चलान करत हौ, चलान करौ भगवान पर, जो पानी बरसाइन हैं?

सिपाही—(लालू को देख कर) अरे भई, सलाम!

लालू—तू हमका काहे सलाम करत हौ पुलिस के मनई हुइके? तुम सोचे हुइहौ कि इनके मालिक के पास मुक़द्दमा जैहैं तो यहीं से गवाही दिलाउब। सो हम अस झूठ बोले वाले मनई नाहीं हन, हन अनाड़ी मजिट्रेट के नौकर तो का भा?

ताँगे वाला—मियाँ, तुम भी ग़ज़ब करते हो! इसमें झूठ बात क्या है? यह तो आँख से देख ही रहे हो, पाजामा कैसा ख़राब हो गया है। इस तरह अपने रिश्तेदारों की बेइज़्ज़ती कौन बर्दाश्त कर सकता है? चालान तो करना ही पड़ेगा। यह तो क़ानून की बात है।

लालू—तुमका तौ इनकी लल्लो-चप्पो करवै का चही, काहे सेनी ताँगा चलाउत हौ, खुसामद न करौ तौ बनै कइसे? इक भले मनई का फँसाय कै आपन स्वारथ देखत हौ। हम अस मनई नाहीं हन।

लालू बड़बड़ाते हुए चला जाता है। इसके बाद सिपाही अपने दोस्त से कहता है—यार, तुम्हारा पाजामा तो ख़राब हुआ, लेकिन इस साले को भी पता लगेगा कि हम लोग चीज़ क्या हैं, साले से ऐसा बदला लेंगे।

साथी—तुम्हारा यह चालान चल ही जायगा, इसका क्या पता? मोटर पर कई आदमी बैठे थे, आख़िर वे लोग भी तो गवाही देंगे?

सिपाही—ऊँह! क्या होता है? शहर के ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट के पास मुकदमा जायगा, क्या मजाल जो पुलिस का चालान छोड़ दें? और उनका भी तो फ़ायदा है। सरकार का ख़ज़ाना न भरेंगे तो रायबहादुरी कहाँ रक्खी है? सरकार का फ़ायदा न हो तो वह इन रईसों को ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट बनावे ही क्यों?

साथी—अच्छा! यह बात है? तब तो पुलिस की नौकरी में पाँचों घी में रहती हैं!

सिपाही—और नहीं तो क्या? हम लोग ऐसी हिकमतें न चलें तो इतनी कम तनख़्वाह में कैसे काम चले? अभी साला दस-पाँच दे जाता तो क्या पड़ी थी चालान करने की?

३

"लालू! लालू!"

"कहो, का है?"

"कहौ भाई! मैजिस्ट्रेट साहब घर में हैं?"

"काहे? ओही मोटर वाले का चलान किए हुइहौ?"

सिपाही ने अधीर होकर कहा—अरे भई, तुम्हें इन बातों से क्या मतलब? जाओ, मैजिस्ट्रेट साहब से मेरे आने की इत्तला करो।

लालू—देखौ! इनका देखौ! कस हुकुम दिहिन, जानौ इनहिन के नौकर होई। जुबान माँ लगामै नाहीं।

सिपाही—ख़बर करोगे या नहीं? जब से बकबक कर रहे हो।

लालू—कर देब, कउनौ जल्दी है? तमाखू पी लेई।

सिपाही—जल्दी तो है ही, फ़ौरन जाओ।

लालू—"फउरन जाव!" कस हुकुम दिहिन—जानौ लाट साहब एही होयँ! या पुलिस की सेखी तुम मोटरनै वालन पर चलायौ। हमरे मूँ लगिहौ तौ भल न होई। हियाँ ललपगड़िया का डर नाहिन है।

सिपाही—अरे! तुम तो ख़ामख़ा मुझसे उलझना चाहते हो। मालूम होता है, मोटर वाला तुम्हारा कोई लगता है। यह बात थी तो उसी रोज़ क्यों न कह दिया? फिर बात ही क्यों बढ़ती?

लालू—अउर तुमहीं हमरे कउन लागत हौ जो तुम्हार हुकुम बजाई? मोटर वाला कउनौ लागतऊ होत तबहूँ हम तुम्हरे अस घुसखोरन से तौ जरूरै सिपारिस करित! अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू!

सिपाही—देखो लालू! अभी तक मैं तुम्हारी बात मज़ाक़ में टाल रहा था। अब ज़बान बन्द करो, वरना अच्छा न होगा।

लालू—ओहोहो! हमरउ चलान कर देओ, नीक है, हमहूँ देख लेब।

सिपाही—सच कहता हूँ, अभी मैजिस्ट्रेट साहब से शिकायत करूँगा।

लालू—करौ, हमका उनकी नाईं रायबहादुर थोड़े बनै का है, जो हम काहू से डेराई? भगवान पइदा

करिन हैं, ओही खाए का देहैं। हम काहे का काहू से डेराई ?

सिपाही—(बात टाल कर, हँसता हुआ) अरे लालू, तुम्हारे सरकार रायबहादुर हो जायँ तब तो तुम्हारा भी फ़ायदा है, ख़ूब इनाम मिलेगा।

लालू—उनका रायबहादुरी मिल जाय, जो रात-दिन एक कर राखिन हैं ! लालू का इनाम न चाही।

सिपाही—क्यों ? तुम तो उनके पुराने नौकर हो, जो माँगोगे वही मिलेगा।

लालू—नाहीं, हमका इनाम की भूख अब नाहीं है। जानत हौ, बड़े लाला से सोने के खड़वा पाय चुके हन। अब तौ रात-दिन वे कसूरन पै जिरीवाना सुनत-सुनत आँतैं जर गईं। (हुक्का दीवार से रखता हुआ) अब कुछ न चाही।

सिपाही—अच्छा, अब तो तुम तम्बाकू पी चुके ?

लालू घर में जाता है और ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट साहब बाहर आते हैं।

सिपाही—सलाम हज़ूर !

ऑ० मै०—सलाम भाई ! कहो क्या मामला है ?

सिपाही—हज़ूर, आप जानते हैं, साले मोटर वालों ने समझ लिया है कि सड़कें हमारे बाप की हैं, ऐसी बदतमीज़ी से मोटर चलाते हैं—बिल्कुल बेक़ायदा। कोई अफ़सर लोग देखें तो हज़ूर, सारी आई-गई हम लोगों के सर जाय।

ऑ० मै०—ठीक कहते हो !

सिपाही—हज़ूर, अभी तीन-चार दिन की बात है, मैं और मेरे मामा के साले खड़े बातें कर रहे थे। बग़ैर हॉर्न दिए, बड़ी तेज़ी से मोटर ले आया ; बेचारे के तमाम कपड़े छींटे से ख़राब हुए सो तो हुए ही, बड़ी चोट भी आई। गर्दन तो हज़ूर, बिल्कुल टेढ़ी हो गई, कोहनी तमाम छिल गई है। मैंने बहुत हैरान होकर चालान किया है। इस ड्राइवर को मैं कई बार होशियार कर चुका था, लेकिन ये लोग तो अपने सामने किसी को कुछ समझते ही नहीं।

ऑ० मै०—अच्छी बात है, हम देख लेंगे। बेशक, ये लोग बड़े बदमाश होते हैं। ख़ूब जुरमाना होगा, ठीक हो जाएँगे।

सिपाही—हाँ हज़ूर ! दस-पन्द्रह रुपए को तो ये कुछ समझते ही नहीं। एक तो इतनी बड़ी ग़लती की, ऊपर से मुझे गालियाँ दीं।

ऑ० मै०—अच्छा, गालियाँ भी दीं ! तब तो हम ख़ूब समझेंगे।

सिपाही—सलाम हज़ूर !

ऑ० मै०—सलाम भई !

४

ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट के इजलास में मुद्दई, मुद्दालह, गवाह इत्यादि हाज़िर होते हैं।

मुद्दई—हज़ूर, यह देखिए मेरे कपड़े मौजूद हैं।

(कीचड़ से भरा पाजामा दिखाता है)

ऑ० मै०—तुम्हारे चोट किस जगह आई ?

मुद्दई—हज़ूर, चोट तो अब अच्छी हो गई, गर्दन और हाथ में बड़ी चोट आई थी। वैसे तो सारा जिस्म चूर-चूर हो गया था, लेकिन ख़ुदा का लाख-लाख शुक्र है कि मेरी जान बच गई।

लालू—(दूर बैठा हुआ) जब तुम्हार गटई टेढ़ हुइगै रहै, हाथ टूट रहै, तौ कहाँ इलाज कराए रह्यौ, जो अस जल्दी नीक हुइगा ? अउर फटा भवा कुरता कहाँ रहि गवा ? (आहिस्ते से) मारे सारे का पकड़ के, अब गटई टेढ़ कर दे।

ऑ० मै०—यह कौन बक-बक कर रहा है ? लालू, चलो यहाँ से।

लालू—(जाता हुआ) हाँ हम तौ जाइत है, तुम बैठे-बैठे अँधेरी करौ। राम दोहाई ! कलै रायबहादुर बन जइहौ !

ऑ० मै०—क्यों जी, तुम्हारी मोटर से इस आदमी के चोट आई ?

ड्राइवर—जी नहीं, कीचड़ की वजह से सिर्फ़ पाजामे पर छींटें पड़ गई थीं।

ऑ० मै०—नहीं, तुम झूठ बोलते हो—अपने गवाह पेश करो।

पहला गवाह—हज़ूर, मैं मोटर पर बैठा था, ड्राइवर हॉर्न दे रहा था। ये दोनों आदमी रास्ते पर खड़े थे, इसलिए छींटें पड़ गईं।

ऑ० मै०—तुम झूठ बोलते हो ; इस आदमी के बहुत चोट आई थी।

दूसरा गवाह—हज़ूर, मोटर बहुत धीरे-धीरे चल रही थी, किसी के चोट नहीं लगी।

ऑ० मै०—ओ! हम समझ गए, तुम बनावटी गवाह हो।

लालू—(ड्राइवर के पास जाकर) कहो भैया! फिरौ गनीमत समझौ। पचासै पर बीती।

ड्राइवर—मैं तो समझता था, शहर के मशहूर रईस हैं, ठीक न्याय करेंगे, कौन पुलिस वालों की ख़ुशामद करे? नहीं तो उसी वक्त दस-पाँच देकर मामला ते कर लेता। मैं ग़रीब आदमी ५०) कहाँ से लाऊँगा?

लालू—अँधेरी है भैया, अँधेरी! अपनोई गला मूसत हैं, नाहीं तौ रायबहादुरी कहाँ से मिलै।

ड्राइवर—घर की सारी चीज़ बेचने पर भी ५०) न मिलेंगे। अभी नौकरी ही मिले कितने दिन हुए हैं, पहला ही क़र्ज़ा सर पर चढ़ा है।

लालू—भैया, इहकी कुछ फिकर न करौ, भगवान देई।

ड्राइवर—कहाँ से भगवान देगा, कोई ज़रिया भी तो होता?

लालू—उदास न होओ, बइठ जाव, एक चिलम पी लेव। (चिलम देते हुए) करज काढ़ कै दै दिहौ।

ड्राइवर—अरे भई, क़र्ज़ देगा कौन?

लालू—(पचास रुपए टेंट से निकालते हुए) लेओ, जब तुम्हरे पास होय, दै दिहौ।

ड्राइवर, आँखों में आँसू भरे हुए, लालू के पैरों पर गिर पड़ता है।

लालू—इहमाँ का बात है, हम करज देइत है, जब होय तब दे दिहौ।

ड्राइवर जब रुपए लेकर जुरमाना अदा करने चला तो रास्ते में सोचता जा रहा था—हाय! क्या हम अभागों की आह ही वह मन्त्र है, जो इस राज्य में लोगों को ऑनरेरी मैजिस्ट्रेटी और रायबहादुरी दिलाया करता है!

दाम्पत्य दण्ड-विधान में संशोधन

एक सम्वाददाता महोदय लिखते हैं—

श्रीमान सम्पादक जी,

मेरी श्रीमती जी गत तीन वर्षों से 'चाँद' पढ़ा करती थीं। उन्होंने 'चाँद' की प्रतियों को बड़ी हिफ़ाज़त के साथ रक्खा है। एक दिन 'चाँद' की फ़ाइल उलटते हुए सन् १९२७ के अक्टूबर मास के अङ्क पर मेरी दृष्टि पड़ी। उसमें पृष्ठ ६९९ पर, 'दाम्पत्य दण्ड-विधान' के तीसरे अध्याय में, यह बताया गया है कि गृह की शान्ति भङ्ग करने वाले पति को कौन-कौन सी सज़ाएँ दी जा सकती हैं। उनमें एक सज़ा फाँसी की भी है, जिसके विषय में लिखा है—"इस क़ानून में फाँसी का यह अर्थ समझा जायगा कि स्त्री अपने पिता के घर अथवा किसी सखी के घर चली जायगी, और शीघ्र लौटने की इच्छा न करेगी।"

यद्यपि विधान-कर्ता ने इस बात का ज़िक्र नहीं किया है कि स्त्री कितने दिनों तक अपने पिता अथवा सखी के यहाँ रह सकती है, तो भी विधान-कर्त्ता का यह आशय तो कदापि न रहा होगा कि स्त्री अपने पिता अथवा सखी के यहाँ स्थायी रूप से रहने लगे। मैं आज दो वर्षों से इस तरह की फाँसी की सज़ा भुगत रहा हूँ, पर अभी तक छुटकारे की कोई सूरत दिखाई नहीं पड़ती। ऐसा मालूम होता है कि मेरे मामले में "शीघ्र न लौटने की इच्छा" का ग़लत अर्थ समझ लिया गया है। मैंने अपने अपराधों के लिए अनेक बार माफ़ी माँगी, मिन्नतें कीं, हाथ जोड़े, परन्तु श्रीमती जी को किसी से भी सन्तोष न हुआ। वह मुझ जैसे पराजित शत्रु पर जिस तरह वार पर वार करती चली जा रही हैं, उसके लिए मैं उनकी बहादुरी, हिम्मत और धैर्य की प्रशंसा तो अवश्य करूँगा, पर साथ ही मैं इस दण्ड-विधान का भी विरोध करना चाहता हूँ। इसमें फाँसी की सज़ा वाली दफ़ा के बाद यदि यह और जोड़ दिया जाय कि—"किसी भी अपराधी को यह सज़ा छः महीने से अधिक न भुगतनी पड़ेगी", तो हमारे जैसे अभागे अपराधी विधान-कर्त्ता के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ होंगे।
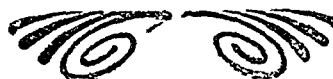
नारी-जीवन

[श्री० आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या १३

[वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

तुम्हारा वह प्रत्युत्तर
अनुचित न था किन्तु कटु था।
युवा-अवस्था थी, स्वभाव था
उग्र, नहीं संस्कृति-पटु था।

क्या करतीं तुम, और नहीं कुछ
कर सकती थीं तुम उस काल।
नहीं धैर्य रहने देती है
तन-मन की पीड़ा विकराल।

सह सकता है कौन धैर्य से
इस जग में ऐसा लाञ्छन?
तुम पर तो बीती थी, सुन कर
मेरा जलता है तन-मन।

विधवा का जीवन तो तप है
और तपों से अधिक कठोर।
उससे यदि वह तनिक डिगेगी भी
तो है उचित न करना शोर।

जो तप करते नहीं जगत में
उन्हें दोष देता है कौन?
विधवा तप से विरत अगर हो
तो क्यों मनुज न रहते मौन?

उन पर दोषारोपण करने
वाले होते हैं कैसे?
उनका हृदय-विदारण करने
वाले होते हैं कैसे?

झूठे दोष लगाए जाते
हैं उन लोगों पर अधिकांश।
कुटिल स्वयं होते हैं दोषा—
रोपी स्त्री औ' नर अधिकांश।

प्रलोभनों से जिन लोगों के
डिगतीं न वे आत्म-पथ से।
वही पटकना उन्हें चाहते
हैं नीचे सतीत्व-रथ से।

नहीं जान पड़ता मुझको क्यों
उन पर ही समाज है क्रूर?
और, प्रलोभन देने वाले
क्यों समझे जाते हैं शूर?

उन दुष्टों पर क्यों समाज यह
करता नहीं कठिन शासन?
अबलाओं पर बल दिखला
क्यों करता उनका निष्कासन?

नहीं एक भी दुश्चरित्र नर
घर से बाहर किया गया।
और कहें क्या? उसे न किञ्चित
दण्ड कभी है दिया गया।

होते हैं कुछ जन समाज में,
जिनका होता है यह काम—
कि वे फँसाते विधवाओं को
या उनको करते बदनाम।

क्यों समाज रहता है उनके
दोष देखना हुआ तटस्थ?
धनी हुए तो उन्हें भले जन
सदृश लेखता हुआ तटस्थ?

बहिन कहा यह बहुत, सुनो अब
कुछ मेरा आगे का हाल।
सुन कर मेरी बात चला वह
वृद्ध गया बाहर उस काल।

कहा—"प्रिये! मैं फिर आऊँगा,
करो यहीं रह कर आराम।"
इस प्रकार टाला मैंने वह
सङ्कट, साधा अपना काम।

द्वार कर लिया बन्द, खोलने
का उसको फिर लिया न नाम।
सोचा मैंने—बची आज, अब
कल आवेंगे बूढ़े राम।

बहिन, बाद इसके मैं अपने
कमरे में खुल कर रोई,
रोती रही रात भर, क्या था
समझाने वाला कोई?

पर यह रुदन बड़ा अच्छा था,
जितने गिरे अश्रु के कण,
वे मानों हलका करते थे
दया-पूर्ण हो मेरा मन।

रोती थी मैं, समझ रही थी
अपने को अतिशय असहाय।
हुआ सवेरा, सूर्यदेव के
दर्शन हुए मुझे फिर हाय!

खिड़की से वे झाँक रहे थे,
थे वे क्या लज्जा से लाल?
भुवन—सहायक हैं, पर सकते
थे वे यह आपत्ति न टाल।

धीरे-धीरे सूर्यदेव की
मानों वह लज्जा छूटी।
समझे थी निज को असहाया
जो वह मम निद्रा टूटी।

मन्द प्रभामय उषाकाल में चमक उठा मेरा भी मन।
दृढ़ता आई मेरे भीतर, स्वयं सचेष्ट हुआ कुछ तन।

पत्र-संख्या १४

[बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

बहुत होता जाता है
रोचक हाल तुम्हारा अब।
धुन बस यही मुझे रहती है,
पाऊँ पत्र तुम्हारा कब?

बात कही जो तुमने अबला
विधवाओं के जीवन पर,
बहुत उचित हैं, बैठ गई हैं
वे सब तो मेरे मन पर।

बहिन, तुम्हारी बुद्धि तीव्र है,
तुम होतीं महिला-जन-रत्न,
जो तुमको शिक्षित करने का
किया गया होता सुप्रयत्न।

जो न यहाँ की महिलाएँ यों
परवश अशिक्षिता रहतीं,
जो न कार्य वे निम्न कोटि के
ही करने का दुख सहतीं,

तो क्या जाने कितनी होतीं
जगत चकित करने वाली,
जग में अपनी प्रखर बुद्धि से
नई प्रभा भरने वाली।

कुछ विज्ञान-विशारद होतीं,
तो कुछ गणितज्ञा होतीं।
कुछ भाषा-विदुषी होतीं।
क्या इस प्रकार अज्ञा होतीं?

कहते हैं यह मनुज कि पढ़तीं
वे तो काम कौन करता!
अप्रखर मति नर-महिलाओं का
दल वह काम मौन करता।

प्रखर-बुद्धि की महिलाएँ-नर
जग की ज्ञान-वृद्धि करते।
भारत को सब से उन्नत कर
उसकी जग-प्रसिद्धि करते।

इसीलिए भारत महिलाओं
को समुच्च शिक्षा देना।
उनके मस्तिष्कों की पहले
पूर्ण परीक्षा कर लेना।

भारत के समाज-नेताओं
का है गुरु कर्त्तव्य प्रधान।
यदि वे सचमुच ही रखते हैं
भारत की उन्नति का ध्यान।

सुनो बहिन, मैं तुम्हें सुनाती
हूँ फिर अब आगे का हाल।
सुन कर मेरी बात सास बस
हुई राक्षसी सी विकराल।

शीघ्र ससुर जी को लाई वह
कह उनसे झूठी बातें।
समझ रही थी मैं मन ही मन
उसकी वे सारी घातें।

कहा ससुर जी ने आकर के—
"निकल हमारे घर से तू।"
ननदें सारी बोल उठीं तब
कि "चल हमारे घर से तू।"

इस पर ही सन्तोष हुआ क्या?
लगे पीटने मुझे सभी।
इतनी मार पड़ेगी मुझ पर,
सोचा था यह नहीं कभी।

होकर संज्ञा-हीन गिरी जब,
तब आई कुछ मुझमें शान्ति।
पर इस अल्प शान्ति में गर्भित
थी सुदीर्घ जीवन की क्रान्ति।
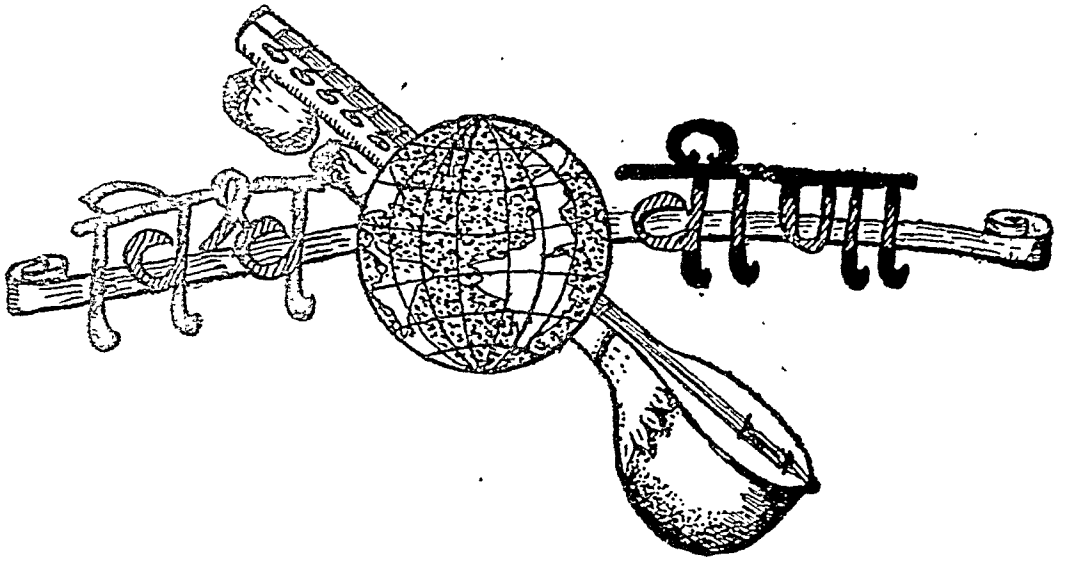
भारत की आकांक्षाएँ

श्री जे० कृष्णमूर्ति मसीहा भले ही न हों; अज्ञान के दलदल में फँसी हुई मानव जाति का उद्धार करने के लिए ही उनका अवतार भले न हुआ हो; परन्तु इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उनके विचार संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुषों के विचार की कोटि के हैं। उनके विचारों में जो उदारता और जो उत्कट सत्यनिष्ठा पाई जाती है वह अद्भुत है। एक शब्द में कहें तो कह सकते हैं कि कृष्णमूर्ति सत्य के अनन्य उपासक तथा ढोंग और दिखावट के कट्टर शत्रु हैं। उनका स्वार्थ-त्याग और निर्भीकता अपना सानी नहीं रखती। हम लोगों ने सत्य के लिए राज्य का त्याग करने वाले राजर्षियों, सत्य के लिए अपना सर्वस्व स्वाहा करने वाले वीर साधकों और यतियों के अनेक उदाहरण सुने हैं; पर आज तक हमने एक भी ऐसा उदाहरण न सुना जिसमें किसी धर्म के प्रवर्तक अथवा किसी सम्प्रदाय के गुरु ने सत्य की रक्षा के लिए अपनी धर्म-गद्दी का त्याग किया हो। यह अपूर्व त्याग करने का श्रेय केवल कृष्णमूर्ति को ही प्राप्त है। कृष्णमूर्ति का कहना है कि जितने भी मजहब, सम्प्रदाय, जाति आदि धार्मिक सङ्घ हैं वे सभी धर्म का ढकोसला मात्र हैं। धर्म व्यक्तिगत आचरण की वस्तु है; समाज या सङ्घ के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं। इसी सिद्धान्त के अनुसार कृष्णमूर्ति ने अपने सम्प्रदाय को, जिसके वह सब से बड़े गुरु थे, तोड़ दिया है और अपनी धर्म-गद्दी का त्याग कर दिया है। निस्सन्देह यह त्याग अपूर्व है। मानव जाति के इतिहास में इसकी समता शायद ही मिल सके।

एक इतनी महान आत्मा की वाणी, चाहे उसके साथ हमारा कितना ही मतभेद क्यों न हो, हमारे लिए अवश्य विचारणीय है। इस समय भारतवासियों के हृदय में स्वाधीनता पाने की जो प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हो गई है, उसके सम्बन्ध में कृष्णमूर्ति ने अपने विचार प्रगट किए हैं। नीचे हम उन्हीं विचारों को उद्धृत कर रहे हैं और आशा करते हैं कि 'चाँद' के पाठक इनका ध्यान से मनन करेंगे।

आन्तरिक और बाह्य स्वाधीनता एक दूसरे से अलग नहीं की जा सकती। किसी भी देश के बाहरी स्वार्थों से उस देश का जीवन अधिक महत्व की वस्तु है। कोई भी देश उस समय तक वास्तव में स्वतन्त्र नहीं हो सकता जब तक कि वह जीवन के अटल नियमों का यथावत पालन नहीं करने लगे। इस दृष्टि से आज संसार का कोई भी देश पूर्ण स्वतन्त्र नहीं है। हर एक देश में स्वाधीनता का कोई न कोई अंश ही पाया जाता है।

परन्तु आपको जहाँ-जहाँ राजनीतिक स्वाधीनता का कोई अंश मिलेगा, वहाँ आप यह भी देखेंगे कि लोगों को उतने ही अंशों में उन मिथ्या बन्धनों से भी स्वतन्त्रता मिल गई है, जो जीवन के स्वाभाविक और क्रियात्मक प्रवाह को बद्ध अथवा सङ्कुचित रखते हैं। मृत परम्परा ही स्वाधीनता का सब से बड़ा शत्रु है। स्वयं सोचने-विचारने की चेष्टा न करके हर एक बात में दूसरों के आदेशों का पालन करना—वर्तमान जीवन को अतीत काल के मृत नियमों की जञ्जीर में जकड़ देना—ही स्वाधीनता के लिए सब से बढ़ कर घातक है। और आज संसार में शायद ही कोई ऐसा देश हो जहाँ पर इस मृत परम्परा का आधिपत्य इतना अधिक हो जितना भारतवर्ष पर है। इस अन्धपरम्परा से छुटकारा पाना ही भारत की मुख्य समस्या है। इसे हल कर दीजिए और फिर आप देखेंगे कि दूसरी तमाम बाधाएँ जो भारत के रास्ते में रुकावट डाल कर उसे पीछे खींच रही हैं, आप ही आप क्षण भर में सवेरे के कुहरे की तरह अदृश्य हो जाएँगी। जीवन के नियमों को धोखा नहीं दिया जा सकता। जिस देश अथवा जाति ने अपने आन्तरिक जीवन में स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त की, उसे कभी भी सच्चे अर्थों में बाहरी स्वतन्त्रता पाने की आशा नहीं रखनी चाहिए। और यदि ऐसे देश अथवा जाति को कभी बाहरी स्वाधीनता मिल भी गई तो, उसके फलों को चखने से पता चलेगा कि उसके बाहरी सौन्दर्य के भीतर सिवा मिट्टी और राख के कुछ भी नहीं है। उसमें किसी प्रकार का सार अथवा रस नहीं। वह सर्वथा खोखली है।

यह एक कड़वा सबक़ है और शायद कुछ लोग इसे पढ़ना भी पसन्द न करें। किन्तु भारत की सच्ची आशाएँ तो इसी बात पर अवलम्बित हैं कि यह देश, यदि अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करना चाहता है तो, अब इस कठिन पाठ को पढ़ ले। इसे सीखने में महान कष्टों का सामना करना पड़ेगा, किन्तु जिस समय भारत इस अग्नि-परीक्षा से बाहर निकलेगा वह पवित्रता की एक ऊँची श्रेणी पर विद्यमान होगा। भारत की आत्मा एक महान आत्मा है, किन्तु वह ज़ञ्जीरों से बँधी हुई है। उसकी ज़ञ्जीरों को काट दीजिए, फिर देखिएगा कि वह संसार की जातियों के सामने एक भीम-रूप में उपस्थित हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुनर्जीवित भारत सारे संसार को पुनर्जीवित करने की केवल अभिलाषा ही नहीं रक्खेगा, बल्कि इसके लिए महान प्रयास भी करेगा। हमारे अन्दर वह सभी महान आत्मिक शक्तियाँ मौजूद हैं, जो हमें अपने पूर्वजों से मिली हैं। लेकिन केवल एक बात के अभाव में हमारी ये सारी शक्तियाँ निरर्थक और निर्जीव हो गई हैं। वह बात है, दूसरों के प्रति सद्भाव और स्नेह। किसी भी परम्परा में से जब यह बात निकल जाती है तो वह दूषित और हानिकारक हो जाती है।

हमारी प्राचीन अलौकिक परम्परा में से कौन सी

श्रीमती मीरा

आप हज़ारीबाग़ (बिहार) की एक प्रभावशाली राष्ट्रीय कार्यकर्त्री हैं। आपको सत्याग्रह-आन्दोलन में नौ मास की सज़ा हुई है।

वस्तुएँ अब हमारे पास बची हैं? भीषण क्रूरता और स्वार्थपरता, घातक बाल-विवाह तथा वे निर्दय नियम, जिन्हें हमने अपनी विधवाओं पर ज़बर्दस्ती लाद रक्खे हैं, समस्त स्त्री जाति के प्रति हमारा निन्दनीय बर्ताव, और अस्पृश्यता की प्रथा—इन सबका कारण कुछ ऐसी पुरानी रूढ़ियाँ ही हैं, जिनके बोझ से हमारे हृदय की साधारण सुन्दर अनुभूतियाँ भी, जो मनुष्य जीवन को मधुर और शान्तिमय बना सकती हैं, कुचल दी गई हैं।

जाति-भेद ही को लीजिए। यह सङ्गठित स्वार्थ-

परता के सिवा और क्या है? यह मनुष्य की उस कुभावना का व्यापक रूप है, जिसके कारण वह अपने को दूसरों से भिन्न समझता है, अथवा जिसके कारण वह समझता है कि जो गुण उसके अन्दर मौजूद हैं, वे और किसी के अन्दर हैं ही नहीं। ये और ऐसी ही अनेक बातें आज हमारी पैतृक सम्पत्ति हैं। और इसी पैतृक सम्पत्ति का यह भार है जिसके नीचे आज हम दबे हुए कराह रहे हैं। परन्तु एक बात ध्यान देने योग्य है, और वह यह
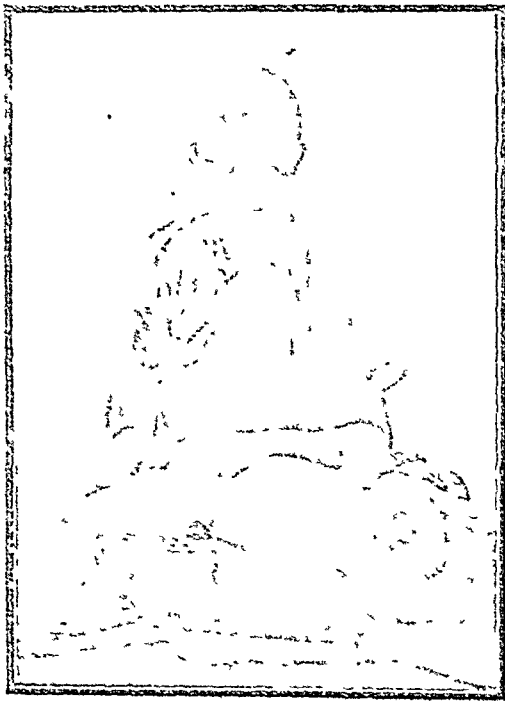
श्रीमती रतबाई

आप पुत्तूर (मद्रास) के भारतीय महिला-संघ की सेक्रेटरी चुनी गई हैं।

है कि हमारी सम्पूर्ण पैतृक सम्पत्ति इतनी ही नहीं है। यह तो हमारी पैतृक सम्पत्ति का केवल मृत और अनावश्यक अंश है—कूड़ा-करकट है। इसके नीचे भारत की सच्ची पैतृक सम्पत्ति गड़ी पड़ी है। और इसे ही हम अपनी प्राचीन पैतृक सम्पत्ति का जीवित और सार अंश समझते हैं। वह सम्पत्ति कौन सी है? वह है मुक्त होने की आन्तरिक अभिलाषा, जो भारतीय प्रकृति का मूल है। यदि भारत अपनी आत्मा पर से कुसंस्कारों का मैल दूर हटा दे तो आज भी हम उसके भीतर आत्म-त्याग का प्रबल भाव और यथार्थता पर अटल विश्वास रखने की इच्छा पाएँगे।

आज हमें भारत की इसी अन्तरात्मा का पुनरुज्जीवन करना है। यही वह आत्मा है, जो पुनर्जीवित होने के पश्चात, यदि इसे आत्मविकाश की स्वाधीनता दी जाय, तो संसार में वह आश्चर्यजनक जाग्रति उत्पन्न कर सकती है, जिसका हम ऊपर ज़िक्र कर आए हैं। ऐसी महान आत्मा के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। एक बार यह बन्धन से निकली तो समस्त संसार को स्वाधीनता के पथ पर चला देगी। यह केवल राजनीतिक स्वाधीनता ही नहीं प्रदान करेगी—राजनीतिक स्वाधीनता तो इसका एक छोटा और स्वाभाविक परिणाम होगा—वरन यह इससे भी बड़ा कार्य करेगी। यह अपने सत्ता-स्थापन के एक ही महान प्रयत्न में समस्त संसार की आध्यात्मिक और जीवनी-शक्तियों का केन्द्र तथा आगार बन जायगी। मैं समझता हूँ कि यही पद इसके भाग्य में निश्चित है।

इस जाग्रति के लिए किस बात की आवश्यकता है? पहली आवश्यकता है पूर्ण रूप से सत्य पालन की और अपने अवगुणों को निस्सङ्कोच स्वीकार करने की, तथा दूसरी आवश्यकता है ऐसे असन्तोष की, जिसका सूत्रपात स्पष्ट विचारों से हुआ हो। इसके पश्चात हमें अविचल भाव से अपने घर की मरम्मत शुरू कर देनी चाहिए। किसी भी विघ्न का ध्यान न करके, आवश्यकता पड़ने पर, हमें पुरानी रूढ़ियों को छोड़ कर उनके स्थान पर ऐसी प्रथाएँ चलानी चाहिए जो हमारी आजकल की परिस्थिति में सुविधाजनक हों। पुरानी लकीर के फ़क़ीर बन कर चलने का समय अब नहीं रहा। हमें अपने दैनिक जीवन की उन कुरीतियों को देखकर लज्जित होना चाहिए, जिन्हें हम बाहर वालों की आँखों के सामने पड़ने देने में डरते हैं। हमें अब यह समझ लेना चाहिए कि अपनी कुरीतियों को शब्दों की आड़ में छिपाने का हमारा प्रयत्न सर्वथा निरर्थक है, ख़ासकर ऐसे समय में जबकि संसार की जनता उन्हें उनके नग्न स्वरूप में देख कर उन पर शान्तिपूर्वक अपना मत निर्धारित कर रही है। संक्षेप में, हमें अपने देश को पुनः सत्य-प्रेम की ओर अग्रसर करना पड़ेगा।

जब हम ऐसा करना आरम्भ कर देंगे और ऐसे ही करते रहने का निश्चय कर लेंगे, तभी भारत को स्वतन्त्र कर सकेंगे।

इन सब कार्यों में हम अन्य जातियों से भी बहुत कुछ सीख सकते हैं। हमें अपने बड़प्पन का इतना अहङ्कार न होना चाहिए कि हम दूसरों से कुछ सीखने में सङ्कोच करें। भौतिक जीवन में स्वच्छता और शिष्टता लाने में, परिश्रम को बचाने वाले उपायों में, सामाजिक स्वतन्त्रता में, रचनात्मक सङ्गठन में, सम्मानपूर्ण सहयोग और निरस्वार्थ कर्तव्य-पालन में हमें पश्चिमी जगत बहुत से पाठ पढ़ा सकता है। सम्पूर्णता प्राप्त करने की अभिलाषा हमारे अन्दर जितनी ही बलवती होगी हम उतना ही औरों से सीखने के लिए उद्यत रहेंगे और हम स्वयं तब औरों को भी सिखा सकेंगे। बहुत से पाठ ऐसे हैं जिन्हें केवल आध्यात्मिक पुनरुज्जीवन-प्राप्त भारत ही सिखा सकता है। ऐसे विषय अभी पश्चिम के विचार-जगत में नहीं आ सके हैं। हम यह बात संसार की किसी भी और जाति की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह दिखला सकते हैं, कि हमारा भौतिक जीवन किस प्रकार एक इससे कहीं बड़े अदृश्य आत्मिक जीवन पर अवलम्बित है। किसी भी और जाति की अपेक्षा हम यह अधिक अच्छी तरह सिखा सकते हैं कि जीवन का आनन्द धन सम्पत्ति के बटोरने में नहीं, वरन अन्तःस्थित आत्मा और बाह्य जीवन के सामञ्जस्य में है।

परन्तु शिक्षा देने से पहले हमें शिक्षक बनने का अधिकार प्राप्त करना चाहिए। और यह हम केवल तभी कर सकते हैं जब अपने समस्त राष्ट्रीय कार्यों तथा विचारों की पुष्टि के लिए अपने प्राचीनतम शास्त्रों को न दिखला कर केवल सहज बुद्धि और शुद्ध अनुभूति का ही आश्रय लें। सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त करने के मार्ग में भारतवर्ष के लिए, मैं समझता हूँ, यही पहला क़दम होना चाहिए।

* * *

भारत के प्रति अङ्गरेज़ों की नीति

भारत के प्रति अङ्गरेज़ों की नीति को बताने में अब तक सर विलियम जॉयन्सन-हिक्स (अब लॉर्ड ब्रेन्टफ़ोर्ड) का वह भाषण ही सब से प्रसिद्ध रहा है, जिसमें उन्होंने स्पष्ट शब्दों में अङ्गरेज़ जाति की स्वार्थपरता को स्वीकार किया था। परन्तु अब इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध दक़ियानूस दैनिक पत्र 'डेली मेल' के सम्पादक लॉर्ड रॉदरमियर ने उस स्वार्थपरता को और भी स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। यद्यपि हिक्स साहब की बातों का, उनके ब्रिटिश पार्लामेण्ट के गृह-सचिव रहने के कारण, अधिक महत्त्व है, तथापि
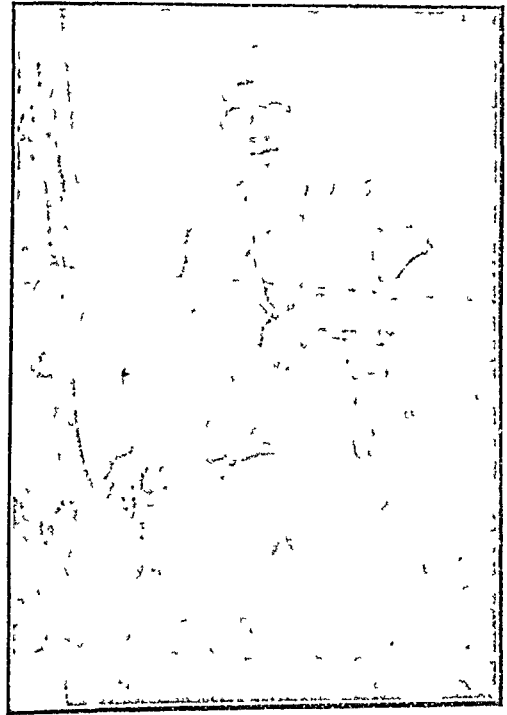
श्रीमती राजमानिक अम्मल

ये मद्रास की अगमवादिया जाति की पहिली हिन्दू कन्या है जो एस० एस० एल० सी० पास करके डॉक्टरी का अध्ययन कर रही हैं।

लॉर्ड रॉदरमियर की उक्ति का महत्त्व भी कुछ कम नहीं है। (क्योंकि) भारत-शासन के सम्बन्ध में ब्रिटिश जनता की सम्मति को लॉर्ड रॉदरमियर उतनी ही निर्लज्जता और सफ़ाई के साथ प्रगट करते हैं, जितनी निर्लज्जता और सफ़ाई के साथ हिक्स साहब ने इङ्गलैण्ड के नीतिज्ञों की सम्मति

प्रगट की थी। हम यहाँ पाठकों के मनोरञ्जनार्थ, इन दोनों साहबान की बातें, ज्यों की त्यों उन्हीं की भाषा में, उद्धृत कर रहे हैं।

सर विलियम जॉयन्सन हिक्स

We did not conquer India for the benefit of the Indians. I know it is said at missionary meetings that we conquered

श्रीमती पी० जानकी अम्मल
आप ट्रावनकोर की निवासी हैं और हाल ही में
तैलिचर के महिला-सम्मेलन की सभानेत्री
नियुक्त की गई थीं।

India to raise the level of the Indians. That is cant. We conquered India as the outlet for the goods of Great Britain. We conquered India by the sword and by the sword we should hold it. ('Shame') Call shame if you like. I am stating facts. I am interested in missionary work in India, and have done much work of that kind, but I am not such a hypocrite as to say we hold India for the Indians. We hold it as the finest outlet for British goods in general, and for Lancashire cotton goods in particular.

अर्थ—हिन्दुस्तान को हमने इस उद्देश्य से नहीं जीता था कि इससे हम भारतीयों की भलाई करेंगे। मैं जानता हूँ कि मिशनरी लोगों की मीटिङ्गों में यह बात कही जाती है कि हमने भारतीयों की उन्नति करने के लिए भारत को जीता था। यह सब गपोड़ेबाज़ी है। भारत को जीतने में हमारा एक ही उद्देश्य था, वह यह कि ब्रिटेन के माल की खपत के लिए हमें बाज़ार मिल जावे। हम लोगों ने भारत को तलवार के बल से जीता था और तलवार के बल से ही हम उसे अपने हाथ में रक्खेंगे। ('शर्म-शर्म' की आवाज़)। अगर आप इस पर 'शर्म-शर्म' चिल्लावें तो भले ही चिल्लावें, मैं तो जो सच्ची बात है वही कह रहा हूँ। वैसे मुझे ख़ुद भी उस काम में, जो मिशनरी लोग हिन्दुस्तान में कर रहे हैं, दिलचस्पी है और मैंने इस तरह का बहुत कुछ काम किया भी है, लेकिन मैं ऐसा कपटी आदमी नहीं हूँ, जो यह कहता फिरूँ कि हम लोग हिन्दुस्तान पर हिन्दुस्तानियों के हित के लिए ही अधिकार बनाए हुए हैं। असली बात तो यह है कि हिन्दुस्तान पर क़ाबू रखने में हमारा उद्देश्य यही है कि वहाँ ब्रिटिश माल की ज़्यादा से ज़्यादा खपत हो—ख़ास तौर से लङ्काशायर के बने कपड़े की।

लॉर्ड रॉदरमियर

"Among all the great nations of the world the British are the most ignorant of work-a-day, bread-and-butter economics." Foolish people in this country talk about the evacuation of India as if it would make no more difference to the prosperity of our Empire than the abandonment of British Guiana.

They do not realise that the step they so lightly contemplate would be "the

end of Britain as a Great Power." Their hazy minds are incapable of understanding that the loss of India would bring immediate economic ruin to this country; that instead of close on two million unemployed we should have four or five million, for whom no relief could be provided, and who would soon be faced with sheer starvation.

OUR BEST MARKET

The sloppy-minded sentimentalists whose weak good nature favours a feeble surrender to Indian agitation have no conception of the inevitable economic results of the policy they preach. The shrinkage of British prosperity that has already begun is largely due to the fact that competing countries like Japan are driving us out of the Indian market, in which we were once supreme.

India is still far and away the largest consumer of British exports, and our imports from there are second only to those from the United States.

Without the profits which Great Britain draws from her commerce with India the most ruthless Chancellor of the Exchequer would be unable to raise enough revenue to provide old-age pensions, unemployment relief, education grants, and all the other State allowances which are regarded by their beneficiaries in this country as part of the automatic routine of existence.

These advantages are unparalleled in any other nation, and the only reason we are able to afford them is that we had hitherto found the greatest over-seas market for our manufactured products among the 320,000,000 people of India

At least four shillings in the pound of the income of every man and woman in Great Britain is drawn, directly or indirectly, from our connection with India. British interests in that great Dependency are so enormous and diverse that they underpin our national pros-

मिस डोरोथी कोल्सवेल्ड
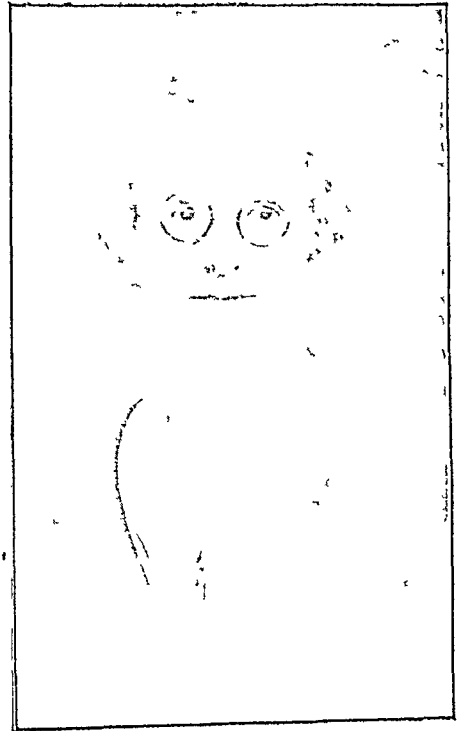
आपने विलायत की बुक-कीपिङ्ग और एकाउण्टेन्सी की परीक्षा मे चार हज़ार प्रतियोगियो के बीच सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार प्राप्त किया है।

perity at every point. From the presidents of great commercial corporations down to the charwomen who scrub out their offices, every individual in this country would be a great deal poorer if we allowed the long-standing trade-ties between Britain and India to b roken by surrender-

ing our authority there to a handful of mischievous native agitators.

TELL THE NATION!

* * *

We cannot allow the safety of the most vital of all the assets of the British Empire to be jeopardised a single moment longer. For to us India is not far from being our all in all.

श्रीमती पी० विशालाक्षी अम्मा

आप त्रिचूर (ट्रावनकोर) में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट नियत की गई हैं।

अर्थ—"संसार के बड़े-बड़े राष्ट्रों में ब्रिटेन अपने नित्य-प्रति की साधारण आवश्यकताओं—रोटी और मक्खन—की आर्थिक समस्याएँ समझने में सब से अधिक अनभिज्ञ है।" इस देश के मूर्ख लोग भारत के शासन से हाथ खींच लेने की सलाह देते हैं; उनकी राय से जिस प्रकार ब्रिटिश गायना का आधिपत्य छोड़ देने से साम्राज्य के वैभव को कोई क्षति नहीं पहुँची, उसी प्रकार भारत के निकल जाने से भी उसमें कोई विशेष अन्तर न पड़ेगा।

परन्तु वे यह नहीं समझते कि भारत के हाथ से निकलते ही "ब्रिटेन की महाशक्ति की इतिश्री" हो जायगी। उनके दिमाग़ में यह बात नहीं आती कि भारत से सम्बन्ध-विच्छेद होते ही ब्रिटेन के सामने एक विकट आर्थिक समस्या उपस्थित हो जायगी; और बीस लाख के बदले चालीस या पचास लाख मज़दूर बेकारी के कारण भूखों मर जायँगे।

सोने की चिड़िया

ऐसी दुर्बल और भ्रान्त मनोवृत्ति के लोग, जो भारतीय क्रान्ति के सम्मुख सिर झुकाने की सलाह देते हैं, कभी अपनी नीति के भयङ्कर आर्थिक दुष्परिणामों का विचार नहीं करते। ब्रिटिश वैभव का ह्रास प्रारम्भ हो गया है, और उसका एक प्रधान कारण यह है कि भारत के जिस व्यापारिक क्षेत्र में पहले हमारी तूती बोलती थी, वहाँ से जापान जैसे देश अब हमें खदेड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं।

ब्रिटेन से, और देशों की अपेक्षा, अभी भी भारत में सब से अधिक माल भेजा जाता है; और हमारे यहाँ बाहर से माल भेजने वाले देशों में भी अमेरिका के बाद भारतवर्ष का ही सब से ऊँचा स्थान है।

ग्रेट ब्रिटेन को भारत के इस व्यापारिक सम्बन्ध से जो लाभ होता है, उसका प्रवाह यदि रुक जाय, तो क्रूर से क्रूर चान्सलर-ऑफ़-एक्सचेकर भी वृद्धों की पेन्शन, बेकारों की परवरिश, शिक्षा संस्थाओं की सहायता और इसी प्रकार के अन्य सरकारी ख़र्चों के लिए धन जुटाने में असमर्थ हो जाय। और ये ख़र्चे ऐसे हैं कि इनके अभाव में हमारा जीवन ही अस्त-व्यस्त हो जायगा।

इस प्रकार की सहूलियतें किसी भी दूसरे राष्ट्र को नसीब नहीं हैं, और इसका प्रधान कारण यही है कि हमें समुद्र पार भारत में अपने माल की बिक्री के लिए एक बहुत ही बड़ा बाज़ार मिल गया है और हमें मिल गए हैं, हमारे माल को ख़रीदने के लिए, ३२ करोड़ भारतवासी।

ग्रेट ब्रिटेन के हर एक स्त्री और पुरुष की आमदनी में पौण्ड पीछे कम से कम चार शिलिङ्ग, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, भारत से आता है। इस विशालकाय ग़ुलाम देश में ब्रिटेन का इतना अधिक और इतने विविध

प्रकार का स्वार्थ है कि हमारे वर्तमान ऐश्वर्य और वैभव के अङ्ग-अङ्ग में उसका कुछ न कुछ हाथ अवश्य है। यदि भारत के मुट्ठी भर बदमाश क्रान्तिकारियों के भय से हम वहाँ के शासन से हाथ खींच लें और भारत के साथ ब्रिटेन के व्यापारिक सम्बन्ध का अन्त हो जाने दें तो इसमें सन्देह नहीं कि इस देश में—बड़े-बड़े व्यापारिक सङ्घों के अध्यक्षों से लेकर ऑफ़िस साफ़ करने वाली मज़दूर स्त्रियों तक—प्रत्येक व्यक्ति की आमदनी का एक बहुत बड़ा हिस्सा हमारे हाथ से निकल जायगा।

ब्रिटेन को चेतावनी

× × ×

ब्रिटिश जनता को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि हम अपने साम्राज्य के सब से बड़े रत्न को एक क्षण के लिए भी खोने को तैयार नहीं हैं। हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि भारतवर्ष हमारा सर्वस्व है—इससे कम कुछ भी नहीं।

* * *

संग्राम में साहित्य

श्री० प्रेमचन्द जी उपरोक्त शीर्षक से "हंस" के विगत जुलाई के अङ्क में लिखते हैं :—

घोर सङ्कट में पड़ने पर ही आदमी की ऊँची से ऊँची, कठोर से कठोर और पवित्र से पवित्र मनोवृत्तियों का विकास होता है। साधारण दशा में मनुष्य का जीवन भी साधारण होता है। वह भोजन करता है, सोता है, हँसता है, विनोद का आनन्द उठाता है। असाधारण दशा में उसका जीवन भी असाधारण हो जाता है, और परिस्थितियों पर विजय पाने या विरोधी कारणों से आत्मरक्षा करने के लिए उसे अपने छिपे हुए मनोऽस्त्रों को बाहर निकालना पड़ता है। आत्म-त्याग और बलिदान के, धैर्य और साहस के, उदारता और विशालता के जौहर उसी वक़्त खुलते हैं, जब हम बाधाओं से घिर जाते हैं। जब देश में कोई विप्लव या संग्राम होता है, तो जहाँ वह चारों तरफ़ हाहाकार मचा देता है, वहाँ इसमें देव-दुर्लभ गुणों का संस्कार भी कर देता है। और साहित्य क्या है? हमारी अन्तर्तम मनोवृत्तियों के विकास का इतिहास। इसलिए यह कहना अनुचित नहीं है कि साहित्य का विकास संग्राम ही में होता है। संसार-साहित्य के उज्ज्वल से उज्ज्वल रत्नों को ले लो, उनकी सृष्टि या तो किसी संग्राम काल में हुई है, या किसी संग्राम से सम्बन्ध रखती है।

रूस और जापान के युद्ध में आत्म-बलिदान के जैसे उदाहरण मिलते हैं, वह और कहाँ मिलेंगे? यूरोपियन
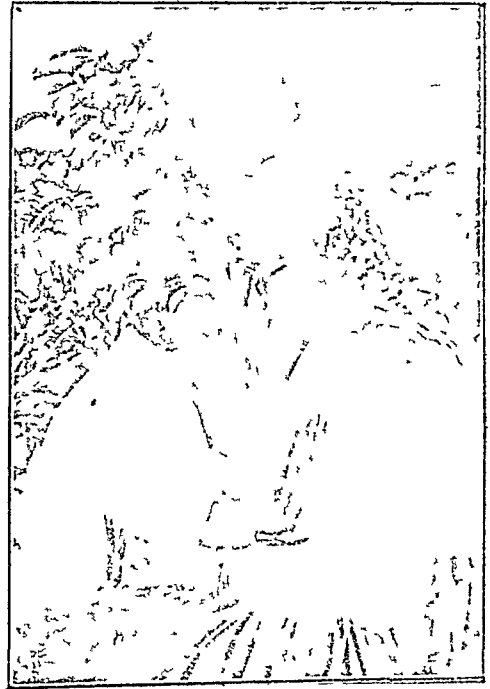
मिस इक़बालुन्निसा बेगम

आप बङ्गलोर (मैसूर) के उर्दू स्कूलों की लेडी इन्स्पेक्टर हैं। हाल ही मे आपने बी० ए० की परीक्षा पास की है।

युद्ध में भी साधारण मनुष्यों ने ऐसे-ऐसे विलक्षण काम कर दिखाए, जिन पर हम आज दाँतों उँगली दबाते हैं। हमारा स्वाधीनता-संग्राम भी ऐसे उदाहरणों से ख़ाली नहीं है। यद्यपि हमारे समाचार-पत्रों की ज़बानें बन्द हैं और देश में जो कुछ हो रहा है, हमें उसकी ख़बर नहीं होने पाती, फिर भी कभी-कभी त्याग और सेवा, शौर्य और विनय के ऐसे-ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं, जिन पर

हम चकित हो जाते हैं। ऐसी ही दो-एक घटनाएँ हम आज अपने पाठकों को सुनाते हैं।

एक नगर में कुछ रमणियाँ कपड़े की दूकानों पर पहरा लगाए खड़ी थीं। विदेशी कपड़ों के प्रेमी दूकानों पर आते थे? पर उन रमणियों को देख कर हट जाते थे। शाम का वक़्त था। कुछ अँधेरा हो चला था। उसी वक़्त एक आदमी एक दूकान के सामने आकर कपड़े ख़रीदने
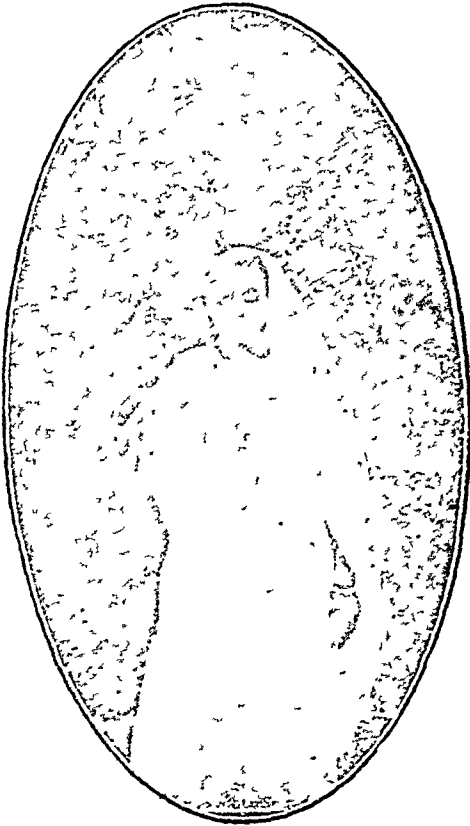
श्रीमती मनी बहिन पटेल

आप सरदार वल्लभ भाई पटेल की सुयोग्य पुत्री और गुजरात के सत्याग्रह-संग्राम की एक प्रमुख कार्यकर्त्री हैं।

के लिए आग्रह करने लगा। एक रमणी ने जाकर उससे कहा—"महाशय, मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप विलायती कपड़ा न ख़रीदें।"

ग्राहक ने उस रमणी को रसिक नेत्रों से देख कर कहा—"अगर तुम मेरी एक बात स्वीकार कर लो, तो मैं क़सम खाता हूँ, कभी विलायती कपड़ा न ख़रीदूँगा।"

रमणी ने कुछ सशङ्क होकर उसकी ओर देखा और बोली—"क्या आज्ञा है?"

ग्राहक लम्पट था। मुसकिरा कर बोला—"बस, मुझे एक बोसा दे दो।"

रमणी का मुख अरुण वर्ण हो गया, लज्जा से नहीं, क्रोध से। दूसरी दूकानों पर और कितने ही वालण्टियर खड़े थे। अगर वह ज़रा-सा इशारा कर देती, तो उस लम्पट की धज्जियाँ उड़ जातीं; पर रमणी विनय की अपार शक्ति से परिचित थी। उसने सजल नेत्रों से कहा—"अगर आपकी यही इच्छा है, तो ले लीजिए, मगर विदेशी कपड़ा न ख़रीदिए।" ग्राहक परास्त हो गया। वह उसी वक़्त उस रमणी के चरणों पर गिर पड़ा और प्रण किया कि कभी विलायती वस्त्र न लूँगा। क्षमा-प्रार्थना की और लज्जित तथा संस्कृत होकर चला गया।

एक दूसरे नगर की एक और घटना सुनिए। यह भी कपड़े की दूकान और पिकेटिङ्ग ही की घटना है। एक दुराग्रही मुसलमान की दूकान पर ज़ोरों को पिकेटिङ्ग हो रही थी। सहसा एक मुसलमान सज्जन अपने कुमार पुत्र के साथ कपड़ा ख़रीदने आए। सत्याग्रहियों ने हाथ जोड़े, पैरों पड़े, दूकान के सामने लेट गए; पर ख़रीदार पर कोई असर न हुआ। वह लेटे हुए स्वयंसेवकों को रौंदता हुआ दूकान में चला गया। जब कपड़े लेकर निकला तो फिर वालण्टियरों को रास्ते में लेटे पाया। उसने क्रोध में आकर एक स्वयंसेवक के एक ठोकर लगाई। स्वयंसेवक के सिर से ख़ून निकल आया। फिर भी वह अपनी जगह से न हिला। कुमार पुत्र दूकान के ज़ीने पर खड़ा यह तमाशा देख रहा था। उसका बाल-हृदय यह अमानुषीय व्यवहार सहन न कर सका। उसने पिता से कहा—"बाबा, आप कपड़े लौटा दीजिए।"

बाप ने कहा—"लौटा दूँ! मैं इन सबों की छाती पर से निकल जाऊँगा।"

"नहीं, आप लौटा दीजिए!"

"तुम्हें क्या हो गया है? भला लिए हुए कपड़े लौटा दूँ!"

"जी हाँ!"

"यह कभी नहीं हो सकता।"

"तो फिर मेरी छाती पर पैर रख कर जाइए।"

यह कहता हुआ यह बालक अपने पिता के सामने

लेट गया। पिता ने तुरन्त बालक को उठा कर छाती से लगा लिया और कपड़े लौटा कर घर चला गया।

तीसरी घटना कानपुर नगर की है। एक महाशय अपने पुत्र को स्वयंसेवक न बनने देते थे। पुत्र के मन में

श्रीमती अशोकलता दास (कलकत्ता)

आपको सत्याग्रह आन्दोलन में चार मास की सज़ा मिली है।

देश-सेवा का असीम उत्साह था; पर वह माता-पिता की अवज्ञा न कर सकता था। एक ओर देश-प्रेम था, दूसरी ओर माता-पिता की भक्ति। यह अन्तर्द्वन्द्व उसके लिए एक दिन असह्य हो उठा। उसने घर वालों से कुछ न कहा। जाकर रेल की पटरी पर लेट गया। ज़रा देर में एक गाड़ी आई और उसकी हड्डियों तक को चूर-चूर कर गई।

चौथी घटना एक दूसरे नगर की है। मन्दिरों पर स्वयंसेवकों का पहरा था। स्वयंसेवक जिसे विलायती कपड़े पहने देखते थे उसे मन्दिर में न जाने देते थे। उसके सामने लेट जाते थे। कहीं-कहीं स्त्रियाँ भी पहरा दे रही थीं। सहसा एक स्त्री खद्दर की साड़ी पहने आकर मन्दिर के द्वार पर खड़ी हो गई। वह कॉङ्ग्रेस की स्वयंसेविका न थी, न उसके अञ्चल में सत्याग्रह का बिल्ला ही था। वह मन्दिर के द्वार के समीप खड़ी तमाशा देख रही थी। स्वयंसेविकाएँ विदेशी वस्त्रधारियों से अनुनय-विनय करती थीं, सत्याग्रह करती थीं; पर वह स्त्री सब से अलग चुपचाप खड़ी थी। उसे आए कोई घण्टा भर हुआ होगा कि सड़क पर एक फ़िटिन आकर खड़ी हुई और उसमें से एक महाशय सुन्दर महीन रेशमी पाढ़ की धोती पहने निकले। यह थे रायबहादुर हीरामल, शहर के सब से बड़े रईस, ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट, सरकार के परम राजभक्त और शहर की अमन-सभा के प्रधान। नगर में उनसे बढ़ कर कॉङ्ग्रेस का विरोधी न था। पुजारी ने लपक कर उनका स्वागत किया और उन्हें गाड़ी से उतारा। स्वयंसेविकाओं की हिम्मत न पड़ी कि उन्हें रोक

श्रीमती शान्तिदास, एम० ए० (कलकत्ता)

आप श्रीमती अशोकलता दास की पुत्री हैं। आपको भी चार मास का दण्ड मिला है।

लें। वह उनके बीच से होते हुए द्वार पर आए और अन्दर जाना ही चाहते थे कि वही खद्दरधारी रमणी आकर उनके सामने खड़ी हो गई और गम्भीर स्वर में बोली—"आप यह कपड़े पहन कर अन्दर नहीं जा सकते।"

हीरामल जी ने देखा, तो सामने उनकी पत्नी खड़ी

जानते हुए भी उन्होंने गोली चलाने से इनकार किया! कितना आसान था गोली चला देना। राइफ़ल के घोड़े को दबाने की देर थी; पर धर्म ने उनकी उँगलियों को

श्री० सकलातवाला

आप इङ्गलैण्ड में रह कर सदैव भारत के हित की चेष्टा करते रहते हैं।

बाँध दिया था। धर्म की वेदी पर इतने बड़े बलिदान का उदाहरण संसार के इतिहास में बहुत कम मिलेगा।

* * *

एक महिला का आदर्श स्वदेश-प्रेम

विगत श्रावण मास की "त्यागभूमि" में अहमदाबाद के मज़दूर-आन्दोलन की उत्पत्ति और उसके विकास का वर्णन करते हुए एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है :—

अहमदाबाद के मज़दूर-आन्दोलन की उत्पत्ति की कथा बड़ी विचित्र है। यह आन्दोलन मिल-मालिकों के अत्याचारों से सन्त्रस्त मज़दूरों ने अपने बल से या किसी साम्यवादी नेता की सहायता से आरम्भ नहीं किया। न कोई पुरुष इस कार्य को बढ़ाने के लिए आगे बढ़ा। इसकी प्रारम्भिक उन्नति का श्रेय है वहाँ के एक बड़े भारी पूँजीपति श्री० अम्बालाल साराभाई की, जो उस समय वहाँ के मिल-मालिकों के सङ्घ के अध्यक्ष थे, बहन श्रीमती अनसूया बहन को।

वर्तमान मज़दूर-सङ्घ बनने से बहुत समय पूर्व, सन् १९१४ में, श्रीमती अनसूया बहन ने ग़रीब लड़कों के लिए एक स्कूल खोला था। इस स्कूल के कारण उनका ग़रीबों और मज़दूरों के साथ अधिक सम्बन्ध होता गया। वह बड़े प्रेम और सहानुभूति से मज़दूरों की तकलीफ़ों को सुनतीं और यथासाध्य उन्हें दूर करने का प्रयत्न करतीं।
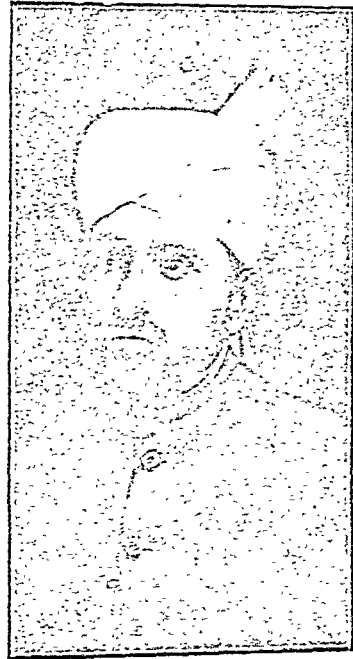
मलिक लाल ख़ाँ

पञ्जाब की प्रान्तीय 'वारकौन्सिल' के डिक्टेटर, जो जेल में हैं।

मज़दूर अब तक निराश्रय थे, अब उन्हें एक आश्रय मिल गया। कुछ समय बाद अहमदाबाद के ताने के मज़दूरों ने अपना वेतन बढ़ाने की माँग पेश कर हड़ताल कर दी और श्रीमती अनसूया बहन से इस सम्बन्ध में

सहायता और नेतृत्व की याचना की। इस समय भी मिल-मालिक सङ्घ के अध्यक्ष उनके भाई ही थे। एक तरफ़ अपना सहोदर भाई था और दूसरी तरफ़ थे ग़रीब मज़दूर, जिनसे उनका कोई सम्बन्ध न था। परन्तु धन्य हैं अनसूया बहन! उन्होंने अपने भाई का कुछ भी ख़्याल न कर उनके विरुद्ध ग़रीब मज़दूरों को ही सहायता देना स्वीकार किया और वह उस हड़ताल का नेतृत्व करने लगीं। इधर श्री० अम्बालाल साराभाई ने बम्बई से मज़दूरों को बुलवा लिया, जिससे मिलें बन्द न हों। परन्तु उनकी चतुर बहन ने बम्बई के मज़दूरों को अपने पास बुला कर समझाया और अपने पास से ख़र्च देकर उनको वापस बम्बई भेज दिया! इस तरह इस हड़ताल में मज़दूरों की विजय हुई और मिल-मालिकों को लाचार होकर उनका वेतन बढ़ाना पड़ा।

नरता एवं नारीता

चौपदे

[पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध']

देख चञ्चलता चपला की,
गरजते मेघों को पाया।
बिखर जाती है वनमाला,
वायु का झोंका जब आया॥

देख करके रवि को तपता,
द्रुमों में छिपती है छाया।
चन्द्रमा के पीछे-पीछे
चाँदनी को चलती पाया॥

गोद में गिरिगण के बैठी
घाटियाँ शोभा पाती हैं।
दौड़ती जा करके नदियाँ
समुद्रों में मिल जाती हैं॥

अङ्क में उपवन के बिरची,
क्यारियाँ कान्त दिखाती हैं।
पादपों के सुन्दर तन में,
बेलियाँ लिपटी जाती हैं॥

साथ जलते दीपक का कर,
बत्तियाँ जलती रहती हैं।
सितम मतवाले भौरों का,
तितलियाँ सहती रहती हैं॥

मोतियों की माला अपनी
भोर को रजनी देती है।
अरुण का मुख देखे ऊषा
रङ्ग अपना रख लेती है॥

देख कुसुमाकर को कोयल
गीत है बड़े मधुर गाती।
मञ्जु मलयानिल से मिल कर,
महँक है मोहकता पाती॥

सामना उँजियाले का कर,
भाग जाती है अँधियाली।
गगनतल के नीलापन में
विलसती रहती है लाली॥

फूल को हँसता अवलोके
कब नहीं कलियाँ खिल जातीं।
कलेजा उनका तर करने
ओस की बूँदें हैं आतीं॥

रङ्गतों से तारकचय के
ज्योति रञ्जित बन जाती है।
देख राकापति को निकला,
बिहँसती राका आती है॥

व्यभिचार छुड़ाने का नुस्ख़ा

[श्री० यमुनाप्रसाद श्रीवास्तव]

है गदा वह शाह जिसके पाकेट में ज़र नहीं ।
व्यभिचारियों की आबरू सारे ज़माने में नहीं ॥

इङ्गलिस्तान के अधीश्वर सम्राट चार्ल्स (द्वितीय) बड़े व्यभिचारी थे । वे सन्ध्या होते ही भेष बदल कर मटरग़श्त को निकलते, और वेश्याओं के अड्डों पर जाकर सौन्दर्यपूर्ण नवयौवना सुन्दरियों की खोज करते तथा जिसे सुन्दर और प्रौढ़ा देखते उसीको विलास-भवन में ले जाकर क्रीड़ा करते । जब कुछ रात्रि रहती, तब भेंट चढ़ा कर उससे विदा होते और प्रभात की सफ़ेदी छिटकने के पूर्व ही राज-भवन में आ विराजते थे ।

लॉर्ड रोचेस्टर उनके लङ्गोटिए यार थे । वे भी भेष बदल कर उनके साथ रहते थे और नवयौवना सुन्दरियों की खोज करने में उनकी सहायता करते थे । जब सम्राट अपनी प्रियतमा को लेकर विलास-भवन में चले जाते, तब वे बाहर बैठ कर चुरुट पिया करते थे ।

एक रूपवती मेम से भी सम्राट ने आशनाई कर ली थी । उन्होंने उसे राज-महल में भी बैठा लिया था । तो भी उनकी काम-पिपासा शान्त नहीं हुई । बेचारी मेम अत्यन्त दुखी रहती थी । उसने सम्राट को बहुतेरा समझाया और कहा :—

बासी फूलों बास नहीं ।
प्रियतम ! तेरी मुझको आस नहीं ॥
खिलौना समझ के बिगाड़ो न मुझको ।
कि मैं भी उसी की बनाई हुई हूँ ॥

परन्तु उनके मन में कुछ भी न भाया । उनकी तो यह दशा थी :—

मरज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की ।

अन्त में लाचार होकर मेम साहिबा ने लॉर्ड रोचेस्टर से विनती की कि किसी प्रकार सम्राट की इस कुटेव को छुड़ाइए । लॉर्ड रोचेस्टर भी प्रतिदिन की दौड़-धूप के मारे तङ्ग थे । उन्होंने मेम साहिबा की बात स्वीकार कर, प्रतिज्ञा की कि शीघ्र ही इस कुटेव को छुड़ाने का प्रयत्न करूँगा ।

एक दिन मेम साहिबा ने लॉर्ड रोचेस्टर को एकान्त में पाकर उनके कान में कुछ कहा । वे उसे सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—"युक्ति तो बहुत अच्छी है ।"

"आप इसे कार्य-रूप में कब परिणत करेंगे ?"

"आज ही रात्रि को ।"

सन्ध्या होते ही सम्राट और लॉर्ड रोचेस्टर दोनों भेष बदल कर शाही महल से निकले और मटरग़श्त करते हुए एक कोठीख़ाने पर पहुँचे । द्वार पर नायिका से भेंट हुई, वह बड़ी ख़ुर्राट और तजरबेकार बुढ़िया थी । दोनों के फटे-पुराने वस्त्र देख कर, उसने इन्हें साधारण मनुष्य समझा और लॉर्ड रोचेस्टर की ओर अग्रसर होकर लापरवाही से पूछा—"कहो ! क्या चाहते हो ?"

"सौन्दर्यपूर्ण नवयौवना सुन्दरी की तलाश है । यदि हो तो ले आओ ।"

"सुन्दरियाँ तो एक से एक बढ़ कर हैं, परन्तु पाकेट में रुपए भी चाहिए । तुम अपनी हैसियत की क्यों नहीं मँगवा लेते ?"

"तुमको हमारी हैसियत से क्या पड़ी है ? जो कहते हैं तामील करो । भागे तो जाते ही नहीं । कौड़ी-कौड़ी धरवा लेना तब जाने देना ।"

इससे नायिका को कुछ तसल्ली हुई । वह दूसरे कमरे से एक सुन्दरी को ले आई और सामने खड़ी करके कहा—"यह हाज़िर है ।"

बरस चौदह या कि पन्द्रह का सिन ।
जवानी की रातें मुरादों के दिन ॥

सम्राट उसके रूप-लावण्य को देखते ही मोहित हो गए । उन्होंने चलते समय रुपए देने का वादा करके नायिका को रुख़सत किया तथा कोट उतार कर लॉर्ड रोचेस्टर के हवाले किया और आप सुन्दरी सहित विलास-भवन में चले गए । लॉर्ड रोचेस्टर चुरुट सुलगा कर धुँआ उगलने लगे ।

चुरुट से निपट कर उन्होंने सम्राट के कोट की जेबें टटोलना आरम्भ किया । एक जेब में नक़दी की अच्छी

रक़म थी, वह सब निकाल कर अपने पाकेट में भरी, दूसरी जेब में घड़ी थी, उसे भी निकाल कर अपने कोट में लगा ली। इस प्रकार कोट ख़ाली करके वहीं रख दिया और अपने घर की राह ली।

सम्राट प्रियतमा के हाथ में हाथ दिए हुए प्रायः एक बजे रात्रि को बाहिर आए। लॉर्ड रोचेस्टर को वहाँ न देख कर उन्होंने नायिका से पूछा—

"हमारा साथी कहाँ गया?"

"मुझे मालूम नहीं। मैं दूसरे कमरे में थी।"

कुछ समय प्रतीक्षा करने के बाद सम्राट ने कोट पहन कर चलने का इरादा किया और रुपए निकालने के लिए जेब में हाथ डाला। जेब को ख़ाली पाकर उन्होंने नायिका से कहा—"मेरा साथी आपको काफ़ी रुपए दे गया होगा।"

"मुए! होश की दवा कर। अधिक तो नहीं पी गया है, जो ऐसी बहकी-बहकी बातें करता है? ज़िम्मेदार तो तू है, न कि वह।"

नायिका की यह धृष्टता देख सम्राट का समस्त शरीर काँप उठा, नेत्र लाल हो गए। परन्तु वे कुछ कह नहीं सके। क्योंकि नायिका ने भी ठीक कहा था। वह क्या जाने कि उससे बातचीत करने वाला कौन है?

"अबे नालायक़! चुप क्यों है? बोलता क्यों नहीं? तेरी जीभ क्या कुत्ता ले गया है?"

सम्राट दीर्घ निश्वास ले रहे थे। उनके नेत्रों में रक्त उतर आया था। परन्तु फिर भी वे चुप थे।

"भला चाहते हो तो हमारी फ़ीस फ़ौरन अदा कर दो।"

सम्राट ने क्रोध थाम कर नम्र और मधुर स्वर में कहा—"बड़ी बी साहिबा! ख़फ़ा न हूजिए। कल तक की मुहलत दीजिए। सन्ध्या होते ही मैं फ़ीस के दूने रुपए दाख़िल कर दूँगा।"

"झूठ कहीं का! तेरा क्या एतबार? तुम दोनों ही ने पहिले कहा था कि कौड़ी-कौड़ी धरवा लेना तब जाने देना। अब तू किस मुँह से मुहलत माँगता है? मैंने तेरे ऐसे सैकड़ों को रास्ता बतलाया है। मालूम नहीं तेरा बेईमान साथी कहाँ चला गया। वह मेरा कुछ सामान तो नहीं चुरा ले गया?"

"बड़ी बी साहिबा!................"

"बड़ी बी साहिबा गई जहन्नुम में। तू हमारी फ़ीस देता है कि नहीं?"

"रुपए तो इस वक्त मौजूद नहीं हैं। प्रभु ईसा मसीह के सच्चे सेवक के समान मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि ...."

"प्रभु का बड़ा भक्त बना है! यदि ऐसा ही भक्त था तो यहाँ झख मारने क्यों आया? ख़ैरियत इसी में है कि हमारी फ़ीस दे डाल, वरना ऐसी गतें करवाऊँगी कि जन्म भर याद करेगा कि किसी बुढ़िया से पाला पड़ा था।"

"मेरी बातों पर आपको विश्वास नहीं है तो मेरी सोने की घड़ी रख लीजिए। कल सन्ध्या को रुपए देकर ले जाऊँगा।"

"बशर्ते कि वह पीतल की न हो।"

यह सुनते ही सम्राट को जान में जान आई। उन्होंने आनन्द-सागर में ग़ोता लगा कर कहा—"मुलाहज़ा कर लीजिए, सोने की है या पीतल की।" और घड़ी निकालने के लिए जेब में हाथ डाला। परन्तु घड़ी थी ही नहीं। उनका चेहरा सूख गया और जेब का हाथ जेब ही में रह गया।

"अबे! ला घड़ी। देता क्यों नहीं? क्या तेरे हाथ को लकवा मार गया है, जो जेब का जेब ही में रह गया है?"

"अफ़सोस! इस वक्त घड़ी भी नहीं है। मेहरबानी करके कल तक की मुहलत दीजिए।"

"तेरे शरीर पर एक लत्ता तक तो साबित नहीं है। फिर भी अमीरज़ादा बन कर घड़ी रखने का दावा करता है! मैं तेरी चालें ख़ूब समझती हूँ।"

सम्राट चुप थे। उनकी ज़बान पर यह शेर था:—

जरदार का सौदा है,
बेज़र का ख़ुदा हाफ़िज़!

सुन्दरी भी पास ही खड़ी थी। उसने तमक कर कहा:—

कौन धों पाटी पढ़े हो लला!
मन लेत पै देत छटाँक नहीं॥

"मैंने यदि तुम्हें कोल्हू में न पिरवाया तो कुछ भी न किया।"

सम्राट की बेचैनी और व्याकुलता बहुत बढ़ गई थी। उनके मुँह से बरबस यह निकल गया:—

तुम्हारा जितना जी चाहे, सितम मज़लूम पर ढा लो।
कलेजा चीर डालो, मेरी आँखों को निकलवा लो ॥
मेरी नस-नस को छेदो, और रग-रग मेरी कटवा लो।
यह हाज़िर है बदन मेरा, इसे कोल्हू में पिरवा लो ॥

यह सुन नायिका ने उत्तेजित होकर कहा—"नराधम! तेरे वस्त्र ही देख कर मैं जान गई थी कि तेरे पास कानी कौड़ी नहीं है। परन्तु स्त्री ही ठहरी, तेरे साथी की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गई।"

उस समय की सम्राट की दशा का वर्णन महात्मा तुलसीदास जी के शब्दों में इस प्रकार है:—

आशुहि द्रवत श्रवत पुनि थोरे।
सहि न सकत दीनन कर जोरे ॥

"अबे! तेरा सिर तो नहीं फिर गया? तू उत्तर क्यों नहीं देता? क्या तेरे मुँह में दाँत नहीं है? कुशल इसी में है कि हमारा हिसाब चुका दे, वरना ऐसी गत करवाऊँगी कि छठी का दूध याद आ जायगा।"

सम्राट पर सन्नाटे की अवस्था तारी थी। उनके प्राणों में प्राण नहीं थे। उत्तर देवे तो कौन देवे?

नायिका ने डपट कर कहा:—

अब तू अनजान होता जाता है!
नन्हा नादान होता जाता है!!

"ओ मक्खीचूस! नख़रेबाज़ी मत कर। मैं तेरे सम्पूर्ण कपड़े उतरवा लेती, परन्तु वे तो दो-चार आने के भी नहीं हैं। ख़ैर! यदि कुछ वसूल न होगा तो जो मज़ा उड़ाया है वह सब उलटे रास्ते से निकलवा लूँगी। तूने अभी मेरे मुसण्डों को नहीं देखा है?

फ़रिश्ते को पकड़ बैठें, मेरे दरवान ऐसे हैं।
ख़ुदा से भी नहीं डरते, ये बाईमान ऐसे हैं।

देख अब तेरी कैसी गत करवाती हूँ। है कोई?"

"हुज़ूर! क्या हुक्म है?"—दो मुसण्डों ने आकर कहा।

"इस बेईमान को ले जाओ और मुश्कें कस कर कोठरी में बन्द कर दो।"

"हुज़ूर! बहुत अच्छा।"

दोनों मुसण्डों ने सम्राट की मुश्कें कसीं और उन्हें घसीटते हुए कोठरी में ले गए।

सम्राट, जिनके अधिकार में लाखों-करोड़ों मनुष्यों की ज़िन्दगी, मौत, और स्वतन्त्रता थी, उनकी यह दुर्गति कि मुश्कें बाँध कर घसीटे जायँ! वह भी किसके द्वारा? अपनी प्रजा के! प्रजा भी कौन? एक बूढ़ी नायिका, जिसकी हैसियत दो कौड़ी की भी नहीं! परमेश्वर की लीला अपरम्पार है!

चाहे तो रङ्क को राव करे,
चाहे राव को द्वारहि द्वार फिरावे।

परन्तु उन्हें इसकी चिन्ता न थी। चिन्ता थी तो इस बात की कि थोड़ी सी रात्रि रह गई है। यदि शीघ्र छुटकारा न मिला तो भोर होते ही बात फैल जायगी और बड़ी बदनामी होगी। उन्होंने कातर स्वर में रक्षकों से कहा—"भाई साहब! ईश्वर के लिए एक बार बड़ी बी साहिबा से भेंट करा दो।"

"असम्भव है।

जब चाह थी, तब चाह थी, अब चाह नहीं है।
तुम क़ैद में मर जाओ, उन्हें परवाह नहीं है ॥"

"नहीं, भाई साहब! नहीं, कुछ ज़रूरी अर्ज़ करना है।"

रक्षकों को दया आई। उन्होंने सम्राट को ले जाकर नायिका के सामने खड़ा कर दिया।

"अरे! इस मुरदार को अब मेरे पास क्यों लाए?"

"हुज़ूर! यह कुछ अर्ज़ करना चाहता है।"

"कह बे! क्या कहता है?"

"बड़ी बी साहिबा! कोठरी में पहुँचते ही मेरी नज़र इस अँगूठी पर पड़ी। यह सोने की है। इसका हीरा भी क़ीमती है। इसे रख लीजिए और मुझे जाने की इजाज़त दीजिए। कल सन्ध्या को रुपए देकर ले जाऊँगा।"

"अब मैं तेरी बातों में नहीं आने की। तू बड़ा ठग मालूम होता है। ठग लोग बहुधा स्त्रियों को फुसलाने के लिए झूठी अँगूठियाँ रक्खा करते हैं। ख़ैर! ला, अगर पीतल की न होगी तो रख लूँगी।"

"यह लीजिए, जी चाहे जहाँ परखवा लीजिए।"

नायिका ने एक ख़िदमतगार को अँगूठी देकर कहा कि जाकर फ़लाने जौहरी के यहाँ से इसे परखवा ला।

ख़िदमतगार अँगूठी लेकर गया और जौहरी को सोते से जगा कर अँगूठी दी और कहा कि बड़ी बी साहिबा ने भेजी है, इसे परख दीजिए, सोने की है या पीतल की और इसका हीरा सच्चा है या झूठा।

जौहरी ने लैम्प के प्रकाश में अँगूठी देखी। उसको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने ख़िदमतगार से कहा—"यह शाहाना अँगूठी है। राजा महाराजाओं के सिवाय किसको मक़दूर है जो ऐसी अँगूठी पहने। बड़ी बी साहिबा की सम्पूर्ण सम्पत्ति भी इसके दसवें हिस्से के मूल्य के बराबर न होगी। बड़ी बी को यह कहाँ मिली?"

"आज शाम को एक मुफ़लिस हमारे यहाँ आया और रात्रि भर मज़े उड़ाता रहा। चलते समय उसके पास टका तक न निकला। बड़ी मुशकिलों में यह अँगूठी दी है।"

मुफ़लिस और इस अँगूठी का मालिक! जौहरी भी अय्याश था। बड़ी बी के यहाँ आता-जाता था। कुतूहलवश अँगूठी लेकर ख़िदमतगार के साथ चल खड़ा हुआ।

सम्राट अधमरे हो रहे थे। उनकी ज़बान पर यह शेर थे:—

मज़ा भी मिलता है इन बुतों से दिल लगाने में।
सज़ा भी मिलती है इन बुतों से दिल लगाने की॥

वे ख़िदमतगार के लौट आने की प्रतीक्षा में घड़ियाँ गिन रहे थे कि कब वह आवे और इस पाप-पुञ्ज से छुटकारा मिले, वरना सवेरा होते ही भण्डा फूट जायगा और बड़ी बदनामी होगी।

इसी बीच में जौहरी भी आ पहुँचा। वह कई बार शाही दरबार में हाज़िर हुआ था। सम्राट तक उसकी रसाई थी। सम्राट उस समय भेष बदले थे। परन्तु जौहरी ने देखते ही उन्हें पहचान लिया और शाहाना आदाब बजा लाकर उनके क़दमों पर गिर पड़ा और हाथ जोड़ कर अर्ज़ की—"पृथ्वीनाथ! यहाँ कहाँ?"

यह दृश्य देखते ही सबके होश उड़ गए और कलेजा काँप उठा। बड़ी बी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। सुन्दरी केले के पत्ते सी काँपती हुई अश्रुपूर्ण नेत्रों से सम्राट के पाँव से लिपट गई। रक्षकों की कुछ न पूछिए, वे सिजदे में ऐसे गिरे कि सिर तक उठाना हराम हो गया।

जौहरी ने सबकी ओर से हाथ जोड़ कर माफ़ी माँगी और अर्ज़ की कि फिर कभी ऐसी भूल न होगी।

सम्राट ने इस घटना की चर्चा न करने का वचन लेकर सबको जीवदान दे अभय किया। और इस मौक़े को ग़नीमत समझ, अकेले ही चल पड़े। मार्ग में तोबा करते और कानों को हाथ लगा कर शपथपूर्वक सौन्दर्य की हरजाई ललनाओं को कभी छाती से न लगाने की प्रतिज्ञा करते हुए, प्रभात की सफ़ेदी छिटकने के पूर्व ही राजमहल में जा विराजे।

प्रातःकाल होते ही लॉर्ड रोचेस्टर हाज़िर हुए। उन्हें देखते ही सम्राट ने गर्ज कर कहा—"तुम बड़े नमकहराम और विश्वासघाती हो!"

"पृथ्वीनाथ! सुन लीजिए, फिर जी में जो आवे सो कहिए।"

"क्या तुम्हें कुत्ता उठा ले गया था?"

"पृथ्वीनाथ! कुत्ता नहीं। मुझे आबदस्त लेने की ज़रूरत मालूम हुई थी।"

"तो क्या रात्रि भर आबदस्त ही लेते रहे? और लौट कर न जा सके?"

"घर पहुँचते ही दस्त शुरू होगए। बड़ी मुशकिलों से अभी-अभी बन्द हुए हैं, सो मैं दौड़ा चला आ रहा हूँ।"

"भला नक़दी और घड़ी क्यों ले आए थे?"

"तो मैं इनको वहाँ किसके भरोसे छोड़ आता?"

"तुम्हारे चले आने के कारण रात्रि को मेरी बड़ी दुर्दशा हुई थी। मैंने भी तङ्ग आकर तोबा की और यह प्रतिज्ञा की है कि अब कभी सौन्दर्य की हरजाई ललनाओं को छाती से न लगाऊँगा।"

"यदि मेरी कल की ग़ैरहाज़िरी का यह फल हुआ है तो मैं पृथ्वीनाथ का बड़ा ही उपकारी नमकहलाल और शुभचिन्तक ठहरता हूँ।"

"बेशक!"

यह कह सम्राट खिलखिला कर हँसे और कहा:—

बूए वफ़ा नहीं है मिसों के उसूल में।
बस, रङ्ग देख लीजिए, गमलों के फूल में॥

ख़ैर! अच्छा ही हुआ जो:—

रोने से इस इश्क़ में बेबाक हो गए।
धोए गए हम इतने कि बस पाक हो गए॥

और सच है:—

रङ्ग लाती है हिना पत्थर से पिस जाने के बाद।
अक़्ल आती है बशर को ठोकरें खाने के बाद॥*

* एक प्राचीन उर्दू पत्रिका में प्रकाशित लेख के आधार पर।

—लेखक
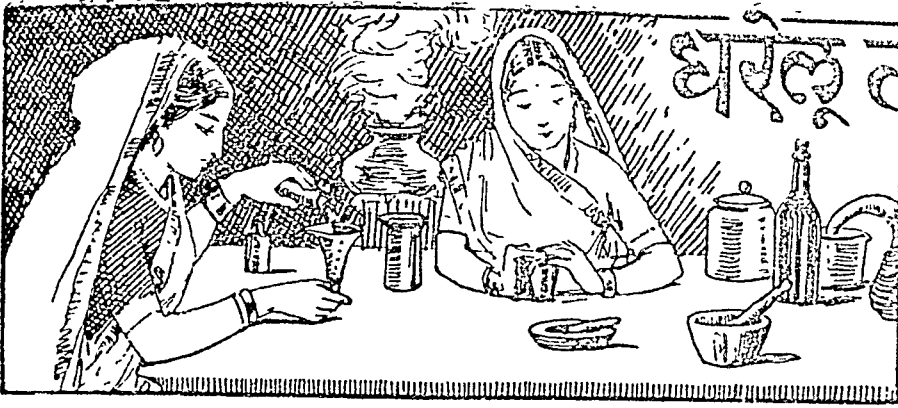
शिर-पीड़ा नाशक लेप

कुचला एक माशा, केशर तीन माशे, मैनफल चार माशे और चन्दन का बूरा तीन माशे लेकर अर्क़-सौंफ़ में खरल कर लेप करे।

* * *

केश का गिरना

सिकाकाई आध पाव, आँवला सूखा पाव भर, बालछड़ एक छटाँक, सफ़ेद चन्दन एक छटाँक, पाड़री एक छटाँक, ख़स एक छटाँक, सुगन्धबाला एक छटाँक, इन सब औषधियों को कूट कर चलनी से छान कर रख छोड़े। इनमें से आवश्यकतानुसार रात्रि भर भिगो रक्खे और इसी से शिर को मले।

* * *

मूत्रावरोध

अपामार्ग की जड़ एक तोला, तीन दाने काली मिर्च के साथ आध पाव जल में पीस कर पिलाने से मूत्रा-वरोध तथा विसूचिका रोग आराम होता है।

* * *

खुजली

ज़हर कनैली के पत्ते, धमोए के बीज, और थोड़ा सा गन्धक—तीनों को पीस कर लगावे।

—कुमारी लक्ष्मी देवी

* * *

तापतिल्ली तथा ज्वर

गन्धक का तेज़ाब २० बूँद, मिश्री २ तोला, जल १ पाव।

विधि—८ औन्स की १ शीशी में २ तोला पिसी हुई मिश्री तथा २० बूँद गन्धक का तेज़ाब डाल कर एक पाव पानी भर देना चाहिए। तीनों चीज़ें मिल कर एक-रस हो जाने पर काम में लाना चाहिए।

मात्रा—अवस्था के अनुसार १ तोला से २ तक।

समय—प्रातः-सायम् तथा आवश्यकता के अनुसार अधिक बार भी औषध का प्रयोग किया जा सकता है।

रोग—पित्त का प्रकोप, पित्ती का उछलना, ज्वर का तीव्र वेग, उदरविकार, प्लीहा एवं अरुचि।

* * *

ज्वर-नाशक पेय (मीठा शर्बत)

गुल बनफ़शा ४ तोला, लौंग १ तोला, लाल चन्दन १ तोला, गुल गावज़बाँ १ तोला, उन्नाव २ तोला, मुनक्का २ तोला, ख़ूबकला १ तोला, ख़स २ तोला, मिश्री १ सेर।

विधि—सब चीज़ों को साफ़ करके रात में किसी मिट्टी की हाँडी या अन्य पात्र में १॥ सेर जल डाल कर उक्त औषधों को भिगो देना चाहिए। प्रातःकाल चूल्हे पर चढ़ा कर मीठी आँच से सब चीज़ों को पका लें। आधा जल शेष रहने पर उतार कर छान लीजिए। शीतल होने पर थिराए हुए क्वाथ में १ सेर मिश्री डाल कर किसी क़लईदार साफ़ बटलोई में पुनः आग पर चढ़ा देना चाहिए। दो तार की चाशनी आ जाने पर उतार और छान कर किसी साफ़ बोतल में भर कर रख लेना चाहिए।

मात्रा—अवस्था के अनुसार ६ माशे से २ तोला तक।

समय—प्रातःकाल तथा सायङ्काल, आवश्यकता होने पर अन्य समय में भी दिया जा सकता है।

अनुपान—बच्चों के लिए माता का दूध या साधारण गो-दुग्ध आदि। बड़ों के लिए १ छटाँक जल।

रोग—चित्त की व्याकुलता, पित्तज्वर, प्यास, मस्तक पीड़ा, पेशाब का पीलापन या जलन, गले का सूखना एवं हृदयदाह।

* * *

(शेष मैटर १३५ वें पृष्ठ पर देखिए)
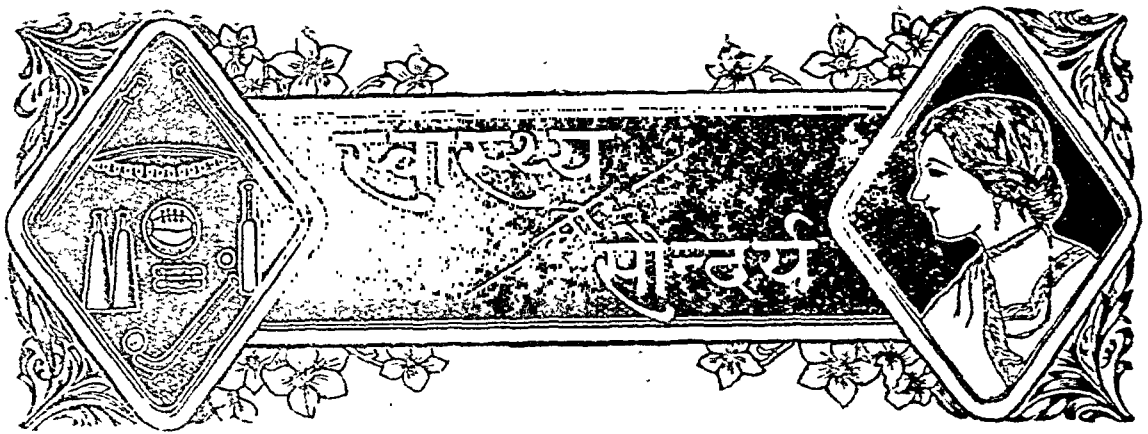
आँखों का सौन्दर्य

स्त्रियों के सौन्दर्य का आँखों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। सारा शृङ्गार-शास्त्र आँखों की महिमा से भरा पड़ा है। कवियों ने आँखों की प्रशंसा में उपमाओं का दिवाला निकाल दिया है और अन्त में थक कर उन्हें अपनी क़लम थाम लेनी पड़ी है। केवल शिक्षित ही नहीं, बल्कि अशिक्षित स्त्रियाँ भी अपनी आँखों के सौन्दर्य की रक्षा के लिए तरह-तरह के मरहमों, लोशनों, और कज्जल, सुर्मा आदि का उपयोग किया करती हैं। परन्तु अधिकांश स्त्रियों को इन उपचारों से प्रायः हताश होना पड़ता है। इसके लिए उपचारों को दोष नहीं दिया जा सकता। वे अपना प्रभाव उस समय अवश्य दिखाते हैं, जब आँखें बाहरी कारणों से, जैसे ऋतु-परिवर्तन, अपूर्ण निद्रा, धूप लग जाने अथवा आँखों से अधिक परिश्रम लेने आदि से, मलिन और निर्बल हो जाती हैं। परन्तु जब शारीरिक निर्बलता, तेज प्रकाश में पढ़ने या बहुत छोटे टाइप की पुस्तकें पढ़ने और दाँतों की गन्दगी के कारण आँखें निर्बल हो जाती हैं, तब इन बाह्य उपचारों का अधिक लाभप्रद और स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता।

चश्मे का उपयोग

आँखों के जितने रोगी आँख के विशेषज्ञों के पास जाते हैं, उनमें से अधिकांश वे ही लोग रहते हैं जिनकी आँखें अधिक परिश्रम द्वारा निर्बल हो गई हैं। इसका मुख्य कारण शरीर के स्नायुओं की निर्बलता है, और डॉक्टरों के हाथ में उसका उपचार केवल चश्मे का उपयोग है। उनका मत है कि चश्मा आँखों को आराम पहुँचाता है, जिससे आँखों की साधारण शक्ति वापिस आ जाती है। यह सच है कि चश्मे के उपयोग से आँखों का परिश्रम कम हो जाता है, इससे आँखों को आराम मिल जाता है और वे साधारण काम के योग्य बनी रहती हैं। परन्तु चश्मे का आँख के आभ्यन्तर रोगों से विशेष सम्बन्ध नहीं रहता और न वे आँखों को उनसे मुक्त ही कर सकते हैं। उन रोगों का वास्तविक सम्बन्ध आँखों के स्नायुओं से है और उनसे छुटकारा पाने के लिए स्नायुओं को स्वस्थ रखना आवश्यक है। बहुत से लोग सिर की असह्य पीड़ा से कराहते रहते हैं, परन्तु उन्हें उसके कारण का पता नहीं लगता। इस पीड़ा का प्रधान कारण आँखों के स्नायुओं से सम्बन्ध रखता है। यों तो सिर में अनेक कारणों से पीड़ा उत्पन्न होती है, परन्तु उसका प्रधान कारण प्रायः आँखों से अधिक परिश्रम लेना ही है। ऐसे रोगों का सब से अच्छा उपाय है आँखों के स्नायुओं को स्वस्थ और शक्तिपूर्ण रखना।

पहले जब कोई पुरुष या स्त्री चश्मे का उपयोग करती है तो आँख धीरे-धीरे स्वयं चश्मे के उपयुक्त बन जाती है और फिर वह चश्मे के बिना कोई कार्य नहीं कर सकती। चश्मे के इस प्रकार निरन्तर उपयोग से अधिकांश लोगों की आँखें और भी अधिक निर्बल हो जाती हैं, क्योंकि चश्मे से आँखों के वास्तविक रोग या निर्बलता का निवारण नहीं हो पाता। इसका परिणाम यह होता है कि वे अधिक शक्ति वाले चश्मे का उपयोग करने के लिए विवश हो जाते हैं। आँखों के इस प्रकार चश्मे पर निर्भर हो जाने से आँखें अधिका-

धिक निर्बल होती जाती हैं। इस निर्बलता को रोकने के लिए अधिक शक्ति वाले चश्मों का वहिष्कार करना ही सब से अच्छा उपाय है। परन्तु केवल चश्मे के वहिष्कार से आँखों के दोष दूर न होंगे। उसके साथ ही कुछ प्राकृतिक नियमों के अवलम्बन की और व्यायाम की भी आवश्यकता पड़ेगी।

आँखों का व्यायाम

आँखों में भी स्नायुएँ और मांसपेशियाँ उसी प्रकार होती हैं, जिस प्रकार शरीर के अन्य अङ्गों में। अतः आँखों को स्वस्थ और बलिष्ठ रखने के लिए व्यायाम की उसी प्रकार आवश्यकता है, जिस प्रकार अन्य अङ्गों को स्वस्थ और बलिष्ठ रखने के लिए। आँखों को चश्मे के उपयोग की अपेक्षा समुचित व्यायाम, उचित उपयोग और आराम के द्वारा अधिक नीरोग और स्वस्थ रक्खा जा सकता है। परन्तु केवल व्यायाम से भी आँखें पूर्ण रूप से स्वस्थ और नीरोग नहीं होने पातीं। इसका प्रधान कारण शारीरिक अस्वस्थता और स्नायुओं की निर्बलता है। जितने आदमी नेत्र-रोगों से पीड़ित रहते हैं, उनमें

एक पेन्सिल या कोई अन्य नुकीली वस्तु लेकर उसे आँखों से थोड़ी दूरी पर पकड़िए। फिर उस पर दृष्टि जमाइए और इसी अवस्था में १५ तक गिनिए।
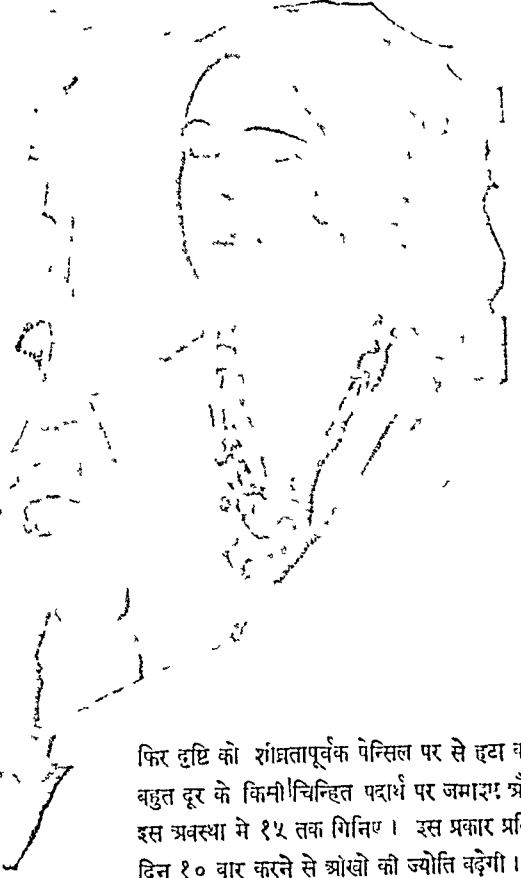
फिर दृष्टि को शीघ्रतापूर्वक पेन्सिल पर से हटा कर बहुत दूर के किसी चिन्हित पदार्थ पर जमाइए और इस अवस्था मे १५ तक गिनिए। इस प्रकार प्रति दिन १० वार करने से आँखों की ज्योति बढ़ेगी।

से नब्बे प्रतिशत ऐसे हैं जिनके शरीर, गैसों की उत्पत्ति के कारण, विषैले हो गए हैं। ऐसे लोगों की आँखों पर उपचार का बहुत कम प्रभाव पड़ता है। चश्मे का उपयोग करके वे आँखों से अपना काम भले ही निकालते रहें, परन्तु उन्हें स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। नीरोग और ज्योतिपूर्ण आँखें तो उन्हें उस समय प्राप्त होंगी जब वे उपयुक्त व्यायाम और अन्य प्राकृतिक उपायों द्वारा अपने शरीर को विषैले द्रव्यों से मुक्त कर लेंगे। किसी विद्वान ने कहा है कि आँखें 'आत्मा की खिड़कियाँ' हैं।

परन्तु वे केवल 'आत्मा की खिड़कियाँ' ही नहीं हैं, मनुष्य के 'शारीरिक सङ्गठन का दर्पण'' भी हैं। जब शरीर विषैले

सिर को सीधा रखिए। फिर आँखों को बलपूर्वक ऊपर उठाइए। थोड़ी देर इसी अवस्था में ठहरिए। फिर दृष्टि को जहाँ तक हो सके नीची कीजिए। थोड़ी देर ठहरिए। फिर बाईं ओर दूर तक देखिए। थोड़ी देर योंही ठहरिए। फिर दाईं ओर दूर तक देखिए। एक क्षण योंही ठहरने के बाद पुतलियों को चारों ओर घुमाइए।

द्रव्यों से युक्त रहता है और उसकी जीवनी-शक्ति कम हो जाती है तब आँखें मलिन, आभा-रहित और निस्तेज हो जाती हैं। इसके विपरीत, सुन्दर स्वास्थ्य प्राप्त होने पर आँखें भी अपना रङ्ग-रूप बदल देती हैं। इसलिए जो स्त्री-पुरुष अपने नेत्रों को चमकीला, तेजपूर्ण और स्वस्थ रखने के इच्छुक हों, उन्हें अपने सारे शरीर को स्वस्थ रखने का सदैव प्रयत्न करना चाहिए।

एक अमेरिकन महिला के अनुभव

नीचे हम एक अमेरिकन महिला के नेत्र-सम्बन्धी अनुभव और उसके व्यायाम देते हैं, जिनके सहारे उसने चश्मे से अपना पिण्ड छुड़ा कर अपनी आँखों को चमकीली और तेजपूर्ण बनाया था।

"प्रत्येक स्त्री की हार्दिक आकांक्षा स्वस्थ और सुन्दर बनने की रहती है और इसी के लिए वह तरह-तरह के वस्त्राभूषणों, तेल, इत्र, क्रीम, पाउडर आदि का उपयोग करती है। यदि मेरे हृदय में भी यही उमङ्ग हिलोरें मारती थी तो यह कुछ अप्राकृतिक न था। परन्तु ईश्वर ने मुझे सुन्दर बनने के सब साधन न दिए थे। मैं युवती अवश्य थी, परन्तु छुटपन से ही अस्वस्थ रहा करती थी। अजीर्ण मेरा प्रधान रोग था, जिसके कारण मेरा समस्त शारीरिक सङ्गठन जर्जरित हो गया था। मेरी आँखें इसके प्रभाव से बच न सकीं। कई वर्षों तक लगातार चश्मे के उपयोग के अनन्तर भी मैं उनकी निर्बलता से अपना पिण्ड न छुड़ा सकी। आँख के बहुत से डॉक्टरों के पास मैं उपाय पूछने गई, परन्तु किसी ने अधिक शक्ति के चश्मे के सिवा अन्य कोई उपाय न बतलाया। सौभाग्य से एक दिन मेरी भेंट एक सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक से हो गई और उसने मुझे आँखों के सम्बन्ध में बहुत से प्राकृतिक व्यायाम और अन्य उपाय बतलाए, जिनका मैं नित्यप्रति अभ्यास करने लगी।

सब से पहिला व्यायाम हथेलियों से आँखों को बन्द करना और खोलना था। इसकी पद्धति बिलकुल सरल है। अपनी अँगुलियाँ एक दूसरे से चिपका कर मैं हथेली की एक कटोरी सी बना लेती थी और फिर दोनों हथेलियों को आँखों पर इस तरह रख लेती थी कि अन्दर प्रकाश न पहुँचने पावे। इसी अन्धकार में मैं अपने मन में ३० तक संख्या गिनती थी और फिर हथेलियाँ हटा

लेती थी। कुछ ही दिनों के बाद आँखों पर इस व्यायाम के आश्चर्य-जनक प्रभाव का आभास मिलने लगा। यह व्यायाम मैं दिन में तीन बार करती थी।

आँखों का एक दूसरा उत्तम व्यायाम, जो मैं प्रतिदिन किया करती थी, आँखों की दृष्टि को किसी नुकीली वस्तु पर जमाना था। इस व्यायाम के लिए मैं प्रायः सीस पेन्सिल का उपयोग करती थी। उसे हाथ की पूरी लम्बाई पर पकड़ कर उसकी नोक पर कुछ देर तक अपनी दृष्टि जमाए रहती थी; फिर उस पर से दृष्टि हटा कर जितनी दूर का पदार्थ दृष्टिगोचर होता था, उसे देखती थी। इसी प्रकार मैं कई बार दृष्टि-परिवर्तन किया करती थी।

इन दो व्यायामों के साथ ही मैं सिर को कड़ा कर आँखों के तारों को चित्र में बतलाई हुई रीति से ऊपर आकाश की ओर, नीचे पृथ्वी की ओर, दोनों कोणों पर और फिर चारों ओर फेरती थी। मैं इन व्यायामों की हर एक क्रिया थोड़े समय ठहर-ठहर कर करती थी। इस व्यायाम को करते समय सब से अधिक आवश्यकता उसकी प्रत्येक क्रिया में बल लगाने की पड़ती थी। मैं यह व्यायाम प्रतिदिन कई बार दुहराती थी। इसके लिए न तो किसी निश्चित समय की आवश्यकता पड़ती है और न स्थान की।

आँखों के इन विशेष व्यायामों के साथ मैं अजीर्ण दूर करने के लिए नियमित रूप से पेट का व्यायाम भी किया करती थी। मेरे प्राकृतिक चिकित्सक ने अजीर्ण के दूर करने के जो व्यायाम बतलाए थे, उनमें मुझे कभी लेटी हुई स्थिति से, एड़ियाँ ज़मीन से छुआए बिना तथा बिना किसी सहारे के, उठ कर पैर के अँगूठे छूने पड़ते थे, कभी शरीर को चारों ओर मोड़ना पड़ता था और कभी बछड़ों की नाईं पैर फटकारने पड़ते थे। ये सभी व्यायाम ऐसे थे जिनमें पेट के पट्ठों पर बहुत अधिक ज़ोर पड़ता था। आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि इस उपचार से, थोड़े ही दिनों में मेरी आँखें ज्योतिर्मय और चमकीली हो गईं। आँखों पर व्यायाम के इस आश्चर्यजनक प्रभाव में बहुत कम लोगों को विश्वास होगा।

नेत्रों की मालिश

एक बार मुझे मालूम हुआ कि न्यूयार्क में पेरिस से एक सौन्दर्य-विशारदा आई है। मुझे उसे देखने का बहुत कौतूहल हुआ। मैं आँखों के सौन्दर्य का उपचार जानने के लिए बहुत उत्सुक थी और इसलिए मैंने उससे आँखों का उपचार करवाया। उसने मेरी आँखों में कोई क्रीम लगा कर कहा—"अब मैं तुम्हें नेत्र-स्नान कराऊँगी।"

"नेत्र-स्नान!"—मैंने आश्चर्य से कहा।

"हाँ"—उसने कहा—"ज़रा सोचो, तुम्हारी आँखों में दिन भर मोटरों का धुँआ और वायु के वेग से उड़े हुए धूलि के कण प्रवेश करते रहते हैं; उन पर उष्ण और शीत का भी प्रभाव पड़ता रहता है, उससे वे मलिन और तेजहीन हो जाती हैं।"

इसके बाद उसने मेरी किसी अनुमति की प्रतीक्षा किए बिना ही मेरी आँखों की मालिश प्रारम्भ कर दी। वह उस क्रिया को जिस रीति से करती थी, मैं उसका पूर्ण ध्यान रखती थी। पहले उसने अँगुलियों से मेरी आँखों की दोनों पलकों को दबाया और उसके बाद बारी-बारी से थपकियाँ दे-देकर नाक से लेकर माथे में बालों की रेखा तक दबाया। फिर उसने अपने दोनों हाथों को ललाट के बीच में रक्खे और धीरे-धीरे अँगूठे और तर्जनी को मिला कर ललाट के बीच से दोनों कनपटियों तक मांसपेशियों को चुटकी से दाबना प्रारम्भ कर दिया। थोड़ी देर तक यह क्रिया करने के उपरान्त वह अपने अँगूठे को मेरे दोनों पलकों पर फिराती रही। अब उसने नाक के पास पलक के नीचे की स्नायु दबाना प्रारम्भ किया। और थोड़ी देर ठहर कर पलकों को ऊपर उठाया। इसके बाद मालिश समाप्त हो गई और मेरी आँखों पर किसी सुगन्धित बूटी की दो गर्म पोटलियाँ रख दी गईं।

ये पोटलियाँ थोड़ी देर आँखों पर रक्खी रहीं। फिर शीघ्र ही आँखों पर से ये उठा ली गईं और अबकी बार बर्फ़ की नाईं ठण्डी अङ्गुलियों से उसने आँखों पर मालिश प्रारम्भ कर दी। बाद में मेरी पलकों के नीचे बर्फ़ से भीगी हुई रुई की छोटी-छोटी गद्दियाँ रख दी गईं और एक पट्टी से आँखें बाँध मुझे अँधेरे में अकेली छोड़ कर वह चली गई। थोड़ी देर में जब पट्टी खोली गई तब मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। नेत्र-स्नान,

(शेष मैटर १४२वें पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

[सम्पादक तथा स्वरकार—श्री० शिवकुमार मुखोपाध्याय (तानू बाबू)]

[गीतकार—सदारंग

राग भूपाली—३ ताल

(मात्रा १६)

स्थायी—ए तन जोबन पर मान न करिए।
डरिए प्रभू सों आज मोरि आली।
अन्तरा—जो कोई आवे अपने ढिगवा।
ता सों गरब न कीजिए।
सदारंग यह रीत माने॥

स्थायी

०				२				×				३			
ध	सं	ध	प	ग	प	ग	रे	ग	—	प	ग	ध	प	ग	—
ए	त	न	जो	ब	न	प	र	मा	—	न	न	क	रि	ए	—
प	—	ध	—	सं	—	ध	प	ग	—	ग	रे	ग	—	प	—
ए	—	ए	—	ए	—	ड	रि	ए	—	प्र	भू	सों	—	आ	—
ध	—	प	सं	ध	प	ग	प	ग	रे	—	स	—	—	—	—
आ	—	ज	मो	ओ	री	इ	आ	आ	ली	—	ई	—	—	—	—

अन्तरा

ग	—	ग	ग	प	—	ध	—	सं	सं	सं	—	सं	रें	सं	—
जो	—	को	ई	आ	—	वे	—	अ	प	ने	—	ढि	ग	वा	—

ध	—	ध	स	स	स	स	रे	—	स	—	ध	—	स	—	प
ता	—	सों	ग	र	ब	न	की	—	ई	—	ई	—	ई	—	ई
स	र	—	ग	—	रे	—	स	प	—	ध	—	स	—	रे	—
जि	ए	—	ए	—	ए	—	ए	ए	—	ए	—	ए	=	ए	—
ग	रे	स	ध	रे	स	ध	प	स	—	ध	प	ध	स	—	—
स	दा	आ	र	अ	ग	य	ह	री	—	ई	ई	त	मा	—	—
ध	—	प	—	ध	—	प	—	ग	—	रे	—	स	—	—	—
आ	—	आ	—	आ	—	आ	—	आ	—	ने	—	ए	—	—	—

(१२९वें पृष्ठ का शेषांश)

अतिसार-नाशक चूर्ण

सोंठ १ तोला, आम की गुठली १ तोला, सौंफ़ १ तोला, पोस्त का छिलका १ तोला, भुना हुआ सफ़ेद ज़ीरा १ तोला, अनार का फूल १ तोला, बेल की गिरी १ तोला, नागरमोथा १ तोला, मिश्री ८ तोला।

विधि—सब औषधों को विधिपूर्वक कूट, पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए। मिश्री पृथक पीस कर मिलाना चाहिए।

मात्रा—२ माशे से ६ माशे तक।

समय—प्रातः-सायम्।

अनुपान—शुद्ध जल।

रोग—सब प्रकार के नए-पुराने दस्त और उन में ख़ून आना।

* * *

आमातिसार नाशक चूर्ण

आँवला १ तोला, धनिया १ तोला, सौंफ़ १ तोला, कासनी १ तोला, गुलाब के फूल १ तोला, छोटी इलायची १ तोला, ईसबग़ोल की भूसी ५ तोले, मिश्री ५ तोले।

विधि—सब चीज़ों को कूट, पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए।

मात्रा—१ माशे से ३ माशे तक।

अनुपान—शुद्ध जल।

समय—तीन-तीन घण्टे के बाद।

रोग—आँव मिले दस्त, पेट की मरोड़, ख़ून के दस्त, हृदय-दाह, प्यास, पेशाब की जलन तथा ग्रीष्म ऋतु के विकार।

* * *

पाण्डु रोग नाशक चूर्ण

कलमी शोरा १ तोला, मिश्री ५ तोले—दोनों चीज़ों को खरल में डाल कर महीन कर लेना चाहिए।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक

समय—दिन में तीन बार।

अनुपान—शुद्ध जल।

रोग—पाण्डु रोग, पेशाब की जलन, पेशाब का रुक-रुक कर आना।

* * *

श्वास नाशक वटी

छोटी इलायची १ तोला, वंशलोचन १ तोला, अफ़ीम ३ माशे, छोटी पीपल १ तोला, अतीस १ तोला, काकड़ासिंगी १ तोला।

विधि—सब चीज़ों को कूट, पीस, छान कर पान या अदरख के स्वरस में घोट कर मटर के बराबर गोलियाँ बना लेना चाहिए।

मात्रा—१ गोली।

समय—प्रातः-सायम्।

अनुपान—जल।

रोग—श्वास।

—गयाप्रसाद शास्त्री, वैद्य
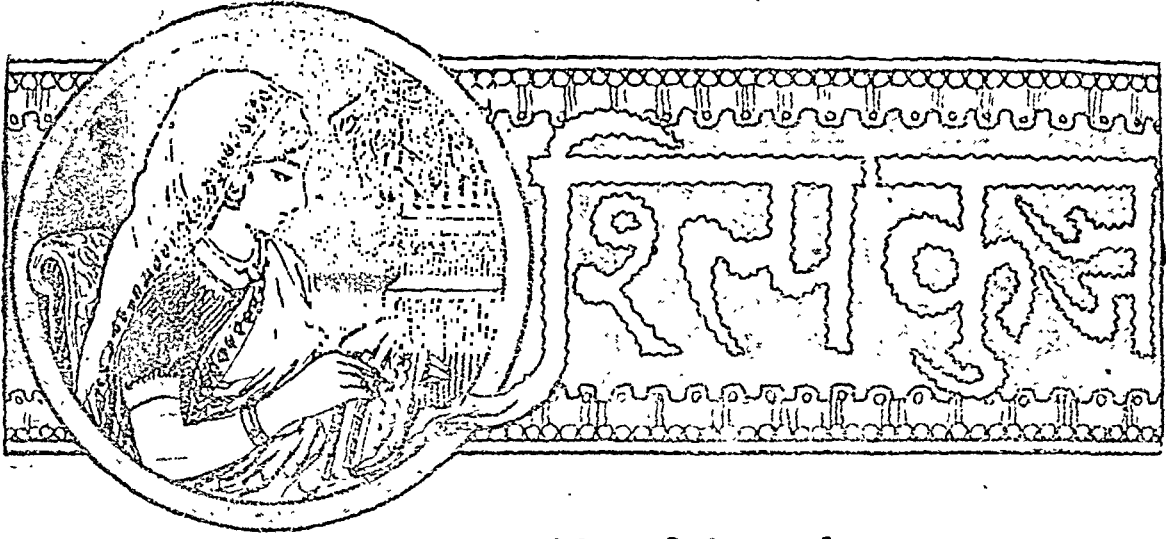
[श्रीमती शकुन्तला देवी गुप्ता, हिन्दी-प्रभाकरा]

मर्दानी जुराब

आवश्यक वस्तुएँ—४ सलाइएँ लोहे की, आध पाव ऊन।

आरम्भ—३ सलाइयों पर ९० फन्दे चढ़ाओ। ऊपर का रिब दो इञ्च तक ४ सीधे, १ उलटा, इस प्रकार बुनो। फिर सीधा ही सीधा बुनना होगा। इसमें ४ इञ्च बुन कर घटाना होगा, जिससे टाँग पर खिंची रहे—ढीली न हो। इसके लिए १ चक्र में १-१ फन्दा तीनों सलाइयों में से घटा दो, फिर ५ चक्रों में न घटाओ। फिर १ चक्र में ३ फन्दे घटा दो। इस प्रकार बीस फन्दे घटा दो। यहाँ तक कि जुराब की लम्बाई १२ इञ्च होने पर एड़ी बनाई जाय। फिर पूर्वोक्त रीत्यनुसार एड़ी बनाओ। फिर पैर को १० इञ्च तक बुन कर घटाओ, जिसकी रीति पूर्व दी गई है। यह जुराब
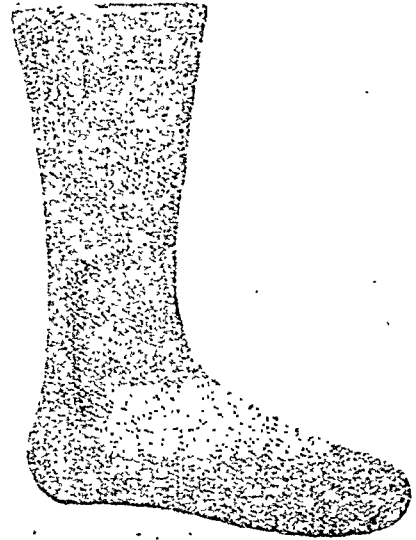
जुराब का नमूना

बिलकुल आसान और सीधी है। प्रत्येक नाप की यथेच्छा बन सकती है।

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह

["पागल"]

पाँचवाँ खण्ड

जहानारा के तीसरे पत्र ने मुझमें एक नई उत्सुकता पैदा की। मैं उसकी लड़की का हाल जानने के लिए बेचैन हो गया। मगर इसके बाद के कई पत्रों में उसका कुछ भी ज़िक्र न था। उनसे केवल यही प्रतीत होता था कि अलिन्द के उत्तर की प्रतीक्षा में जहानारा का दिनोदिन धैर्य का बाँध टूटता गया। कभी प्रेम में दीवानी हो जाती थी और कभी निराशा से जल मरती थी। अब तक तो वह ज्ञान और प्रेम दोनों ही से बराबर लड़ती रही। और अलिन्द की भलाई की ख़ातिर अपने प्रेम को यथाशक्ति दबाने का उद्योग करती थी। मगर उसमें अब यह भी शक्ति न रही। उसकी वेदना में सारा ज्ञान लुप्त हो चुका था। वह प्रेम-प्रवाह में दूने वेग से वह रही थी और बार-बार नैराश्य के चट्टान से टकरा कर तड़प-तड़प कर बिलकती थी, झुँझलाती और कोसती थी। और पत्र न लिखने की सौ-सौ प्रतिज्ञाएँ करती थी। मगर फिर अपनी व्यथा से अधीर होकर अलिन्द को आने के लिए मिन्नतें पर मिन्नतें करती थी। एक दफ़े उसने यहाँ तक लिखा कि "अलिन्द यदि यह पाखण्डी देश हम लोगों के सम्बन्ध को साधारण दृष्टि से भी नहीं देख सकता तो आओ हम लोग चल कर अन्य देश में रहें। वहाँ मामूली तौर से गुज़र-बसर करने के लिए मेरे पास काफ़ी रुपए हो गए हैं। और तुम्हारी कला का आदर भी विदेश ही में यथेष्ट हो सकता है। ईश्वर के लिए यदि मुझसे किसी बात पर रुष्ट हो तो उसे भूल जाओ। मुझे क्षमा करो और पत्र देखते ही चले आओ। मैं आज ही बैङ्क से अपने सभी रुपए निकाल कर अपने पास किए लेती हूँ। ताकि तुम्हारे साथ यहाँ से रवाना होने में तनिक भी विलम्ब न हो।"

इसके बाद वाले पत्र में उसने लिखा था कि "विदेश चल कर तुम्हारे साथ रहने की उमङ्ग में मैं ऐसी आपे से बाहर हुई कि अपने सब रुपए बैङ्क से निकाल कर अपने पास रक्खे और नौकरी भी पहिले ही से छोड़ देने की ठानी। मगर हाय! उसी रात को मैं लुट गई। मेरे सब माल-असबाब चोरी चले गए। मेरा सुख-स्वप्न सब नष्ट हो गया। हत्यारे चोरों ने एक झञ्झी कौड़ी भी नहीं छोड़ी। उफ़! बुढ़ापे का सहारा भी जाता रहा। रूप-यौवन जब मुझसे एकदम ही मुँह मोड़ लेंगे, तब कैसे पेट पालूँगी? कौन मुझे इतनी लम्बी तनख़्वाह देगा? उसी दिन के लिए मैंने कौड़ी-कौड़ी जोड़ी थी। जाने दो। अगर भाग्य मुझे तुम्हारे साथ रानी बन कर नहीं रहने दे सकता तो तुम्हारी दासी बन कर रहूँगी। समाज के भय से या अपने हृदय के अब बदल जाने से तुम मुझे अर्धाङ्गिनी या प्रेमपात्री का स्थान नहीं देना चाहते तो मुझे सेविका ही समझ कर अपने पास रहने दो। अपने उस प्रेम के नाम पर, जिसको तुमने मुझसे कभी किया था, बस इतनी ही भीख मुझे प्रदान करो। मैं अपना पेट किसी तरह आप पाल लूँगी। तुम जिसको चाहो प्यार करो, जिससे चाहे व्याह करो, ...आह! इस बीच में शायद तुम्हारा विवाह हो गया है। बस-बस, यही बात है, ज़रूर यही बात है। उफ़! आज समझी। तभी तुम चुप हो। तुम्हें यह बात कहने का मुझसे साहस नहीं होता होगा। मगर अलिन्द, मैं तुम्हारे सुखों में तनिक भी बाधा नहीं डालना चाहती। मुझे तो केवल तुम्हारी सेवा करने की अभिलाषा है। मैं इतने ही में अपने हृदय को सन्तोष दे लूँगी। अपने चरणों में मुझे लगी रहने दो। इतनी तो दया करो अलिन्द। अब तो अपने मुँह से कह दो कि चली आओ। मैं सर के बल दौड़ी आऊँगी। अगर अब भी उत्तर न दोगे तो मैं ठीक पन्द्रहवें दिन तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगी। देखें आँखें चार होने पर तुम किस तरह दुतकारते हो।"

इस पत्र में इसी तरह और बहुत सी बातें थीं। हर वाक्य से आशा और निराशा टपकती और प्रत्येक शब्द में वेदना कूट-कूट कर भरी थी। मगर अब तक मुझे वह बात न मिली जिसे मैं ढूँढ़ रहा था। और उसका अब अन्तिम ही पत्र पढ़ने को रह गया था, जो रजिस्ट्री लिफ़ाफ़े की तारीख़ से बीस ही दिन पहिले का लिखा था। धड़कते हुए दिल से उसे पढ़ने लगा।

जहानारा का अन्तिम पत्र

वज्रहृदय,

आख़िर तुम भी उसी अन्यायी और विश्वासघाती पुरुष जाति ही के कीट निकले। अरे कठोर! अरे निर्दयी! यही तुम्हारा प्रेम था, कि नज़रों से दूर होते ही मुझे ऐसे भूले कि बरसों गिड़गिड़ाने पर भी तुम न पिघले? उफ़! मनुष्य नहीं, तुम साक्षात् हत्यारे हो। जाओ मैं भी तुम्हें नहीं प्यार करती।.........आह! क्या बक गई? नहीं-नहीं, ईश्वर के लिए यह न समझना। हाथ जोड़ती हूँ, पैरों पर गिरती हूँ। प्रीतम, मैं और तुमको न प्यार करूँ? सूर्य का पश्चिम निकलना सम्भव हो तो हो, मगर यह नहीं हो सकता। हाँ, यह नहीं हो सकता कि मेरे हृदय से तुम्हारा प्रेम उठ जाए। तुम्हारी उदासीनता से मैं पुरुष जाति को और भी घृणा करने लगी सही, परन्तु तुमसे नहीं। इसीलिए हर बार तुमसे अनादर पाकर भी तुम्हारे ही चरणों में लिपटने को दौड़ती हूँ। और तुम ऐसे पत्थर हो कि ठोकरों से भी बात नहीं करते।

इस दफ़े तुम्हारा उत्तर न पाकर मैं पन्द्रहवें दिन तुम्हारे पास आने को तैयार थी। मगर तब जाना कि मैं बन्दी हूँ। मेरी कार्रवाइयों पर इस थियेटर के मालिक की बड़ी कड़ी निगाह है। यह बरसों से मेरे पीछे, साए की तरह, लगा हुआ है। इसने आमदनी के ख़्याल से नहीं, बल्कि मेरे ही लिए यह कम्पनी खोली थी। मगर अब तक मैं इसे अपने हृदय में तनिक भी स्थान न दे सकी और न कभी दे सकती हूँ। यद्यपि यह मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता—क्योंकि यह जाने रहो कि स्त्री अगर स्वयं न बिगड़ना चाहे तो एक पु प अकेला, चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकता—फिर भी इसके पञ्जे से मैं नहीं निकल पाती। इसीलिए मेरे आने की सभी कोशिशें बेकार हुईं। मैं कलेजा मसोस कर रह गई और भविष्य में किसी तरह चुपचाप भागने की ताक में थी।

इसी बीच में कम्पनी ने भ्रमण करने का इरादा किया। क्योंकि मालिक की लापरवाही से इसकी आर्थिक दशा बहुत ख़राब होगई। उसे तो रातोदिन मेरी चौकीदारी करते बीतती है, उसे आमदनी की फ़िक्र कैसे होती? बिना अन्य नगरों में भ्रमण किए इसकी दशा किसी तरह से भी सुधरती हुई नहीं जान पड़ी, तब कर्मचारियों के आग्रह पर इस मण्डली को अपनी यात्रा पर निकलना पड़ा। मैंने सोचा कि बम्बई से बाहर मुझे भागने का अधिक सुअवसर मिल सकता है। ईश्वर की कृपा से एक नगर में जब मण्डली तमाशा करने के लिए गई हुई थी, मुझे ऐसा मौक़ा भी मिला और मैं भाग कर स्टेशन आई। काशी के लिए टिकट लेकर गाड़ी का इन्तज़ार करने लगी। वैसे ही मेरे हृदय पर एक ऐसा वज्राघात हुआ कि मुझे काठ मार गया और मैं मूर्च्छित होकर वहीं वेटिङ्गरूम में बैठी की बैठी रह गई।

जब मैं टिकट लेकर वेटिङ्गरूम में जा रही थी तो देखा कि एक बुढ़िया, जो अभी मुसाफ़िरों से पैसे माँग रही थी, सहसा मेरी तरफ़ झपटी। लोग मुझे सङ्केत करके चिल्ला पड़े कि भागो-भागो, यह पगली है, पगली। मैं घबड़ा कर खड़ी हो गई और बुढ़िया मुझसे चिमट गई। अब जाना कि यह तो साढ़े सात बरस की बिछुड़ी हुई मेरी दासी है। मैं भी उससे लिपट गई। लोग चकित होकर तमाशा देखने लगे।

दासी के लक्षण पगली से अवश्य प्रतीत होते थे, मगर उसकी बातों से पहिले मुझे कुछ भी पागलपन का आभास नहीं हुआ। मैं समझे हुए थी कि मेरी बच्ची अपने पिता के पास पहुँच कर अपने ठिकाने लग गई। और मैं संसार की दृष्टि में मर चुकी थी। इसलिए मैंने उसकी तरफ़ से अपना दिल पत्थर करके उसकी कोई खोज-ख़बर नहीं ली, यद्यपि उसकी याद की वेदना मेरे हृदय में बराबर उठा करती थी। मगर दासी की ज़बानी उसका हाल सुन कर मैं एकाएक सकते में आ गई। वह रो-रोकर केवल इतना ही बता सकी कि जब वह बच्ची को लेकर मेरे पति जी के पास पहुँची तो वह उसकी पीठ पर अपना नाम देखते ही जल मरे और उस नाम को संसार की दृष्टि से मिटाने के लिए अपनी ही लड़की की,

अपने हाथ से, जान लेने को तैयार हो गए। दासी उनसे बच्ची छीन कर भागी। एक स्टेशन पर जब गाड़ी खड़ी हुई, वह उसे बेञ्च पर सुला कर पानी पीने के लिए उतरी। मगर लौट कर फिर न चढ़ सकी। गाड़ी छूट गई। उस डब्बे में केवल एक स्त्री और थी। तब से उसे मेरी बच्ची का कुछ भी पता न मिला। वह उसकी खोज में न जाने कहाँ-कहाँ भटकती फिरी। और स्टेशनों पर गाड़ी में घुस-घुस कर वह बराबर उसीको ढूँढ़ती है। इसके लिए कई दफ़े वह चोर और पगली समझ कर जेलख़ाने में बन्द रक्खी भी जा चुकी। मगर उसकी यह आदत नहीं छूटी। इतना सुनते ही मैं अपनी छाती पीट-पीट कर रोने लगी।

इतने में गाड़ी की घड़घड़ाहट सुनाई पड़ी। दासी की आँखें चमक उठीं। वह बिजली की तरह यह चिल्लाती हुई प्लेटफ़ॉर्म पर दौड़ी कि रोको गाड़ी, मेरी बच्ची उसमें है। आवेश में वह प्लेटफ़ॉर्म के नीचे गिर पड़ी। दूसरे ही क्षण उसकी लाश पहियों के नीचे टुकड़े-टुकड़े होने लगी। मेरा सर चकरा गया। मैं मूर्च्छित हो गई। होश आने पर देखा कि थियेटर का मालिक और कर्मचारीगण मेरे पास खड़े हैं। तब से मैं जीवित रह कर भी मुर्दे से बत्तर हो गई। हरदम बुख़ार सा बना रहता है। कुछ भी अच्छा नहीं मालूम होता। किसी तरह कर्तव्यवश रङ्गमञ्च पर जाती हूँ, मगर वहाँ से आते ही बिस्तरे पर गिर पड़ती हूँ। और दिन भर कोने में पड़ी रहती हूँ। रोने के लिए मेरी आँखों में आँसू तक नहीं। दिनोंदिन मेरी हालत गिरती जाती है। अलिन्द, तुमसे मुझे बड़ी आशाएँ थीं। मगर तुमने भी धोखा दिया। मेरा एक भी पत्र वापस नहीं आया। इसलिए यह मैं कैसे सोच सकती हूँ कि तुम्हें मेरे पत्र नहीं मिलते या तुम अपने ठिकाने पर नहीं हो या स्वर्गलोक में जाकर मेरी प्रतीक्षा कर रहे हो? नहीं-नहीं, यह बात नहीं हो सकती। तुम्हारे पास मेरे पत्र पहुँचते ज़रूर हैं। मगर जान पड़ता है कि तुम उन्हें बिना पढ़े ही फाड़ डालते हो। हर तरह से तुमसे निराश होकर दिल में ठानी थी कि तुम्हें अब कुछ न लिखूँगी। मगर विपत्ति में अपने निजी जनों की याद बुरी तरह उमड़ती है। तुम्हारे सिवाय इस संसार में मेरा अपना कहने के लिए कौन था? तुमने मेरे साथ जैसी भी हृदयहीनता की है, वह ईश्वर ही जानते होंगे। फिर भी यह दिल तुम्हें अपना समझने से बाज़ नहीं आता। इसलिए तबियत को रोक न सकी और लिखने बैठ गई। अगर तुममें दया न सही, कुछ मनुष्यत्व भी हो तो कृपया एक दफ़े आकर दर्शन दे जाओ। क्योंकि मेरी अवस्था अब ऐसी नहीं है कि यहाँ से निकल भागूँ। एक अनुरोध और भी करती । अगर मेरी बच्ची जीवित हो तो इस समय आठ बरस की हुई होगी। वह अपने पिता पर नहीं, बल्कि मुझी पर पड़ी थी। इसलिए रङ्ग-रूप उसके मेरे ही से होंगे। कमर पर गोदना है। गले में उसके मैंने चाँदी की तावीज़ भी पहना दी थी, जिसमें उसकी कुण्डली और उसके पिता का नाम-ठिकाना भी लिख कर भर दिया था। संसार में उसके कोई है तो मेरे प्रेम के नाते बस तुम्हीं हो। उसे अपनी ही बच्ची जान कर ढूँढ़ो। अगर मिल जाए तो उसके संरक्षक बन कर उसकी रक्षा करो।

तुम्हारी ठुकराई हुई,

—दर्शनों की प्यासी जहानारा

जहानारा के सभी पत्र समाप्त हो गए। फिर भी उसके सम्बन्ध में मेरी उत्सुकता न मिटी। अब किस तरह से उसका शेष हाल जानता? इतने में उस हत्यारे के अधूरे पड़े हुए अङ्गरेज़ी पत्र की याद पड़ी, जिसने जहानारा के पत्रों को रोक कर यह सब अनर्थक काण्ड रच दिया था। मुझे उसके छूने तक से घृणा थी, मगर अब उसे समाप्त करने के लिए विवश हो गया।

हत्यारे हुमुँच जी के अङ्गरेज़ी पत्र का शेषांश

मेरा भाग्य इस तरह एकाएक बिगड़ जाने पर भी मेरे दिल से जहानारा की प्राप्ति की लालसा न मिटी। जानता था कि वह अच्छी होते ही मेरे चङ्गुल से सदा के लिए निकल जाएगी। क्योंकि अब मैं उसे धनबल से अभिनेत्री की हैसियत में रख नहीं सकता था। सौभाग्य से वह अपनी बीमारी के कारण चारपाई से हिल नहीं सकती थी और उसका पक्ष करने वाले कर्मचारीगण से भी मुझे छुट्टी मिल चुकी थी। ऐसा सुअवसर मेरे लिए छोड़ने का न था। मुझे आशा थी कि इस अनुकूल परिस्थिति में उसे झक मार कर मेरे अनुकूल होना पड़ेगा। यद्यपि धन से हाथ धो बैठा था, तथापि अपनी कोठी किराए पर चला कर उसके साथ जीवन व्यतीत करने का सहारा था। इसी इरादे से मैं शादी का प्रस्ताव लेकर कई बार उसके पास गया। मगर इसे सुन कर उसकी आँखों से न

कैसी चिनगारियाँ निकलने लगती थीं कि मैं सहम कर अपना सा मुँह लिए लौट आता था। अन्तिम भेंट में उसकी झिड़कियों से मैं जल मरा और ग़ुस्से में उससे कह बैठा कि देख, तुझसे आज बताता हूँ कि मैंने तेरे ही लिए अपनी स्त्री तक की हत्या कर डाली, फिर भी तू मेरा कहना नहीं सुनती। अगर आज भी तुम मुझे वही जवाब दोगी, तो क़सम है, तुम्हारी भी जान ले लूँगा। बोलो, अब भी मानती हो या नहीं? इस पर वह घृणा से और भी तिलमिला उठी। मुँह फेर कर बोली—"अरे हत्यारे! तू ख़ूनी भी है? उफ़! मैं नहीं जानती थी। हट जा सामने से, ओ पापी कुत्ते! नहीं अभी चिल्ला कर तुझे पकड़वा दूँगी। हट जा! हट जा! दूर हो जा!"

ख़ूनी का शब्द कान में पड़ते ही मेरा कलेजा काँप उठा। अब समझा कि मैंने कैसी बड़ी मूर्खता की कि अपने किए हुए गुप्त पाप का अपने आप ही जोश में एक गवाह पैदा कर बैठा, जिसका मुँह बिना बन्द किए किसी तरह से भी मेरे प्राणों की कुशलता न थी। एक हत्या को छिपाने के लिए दूसरी हत्या करना ज़रूरी हो गया। अपनी जान बचाने की धुन के आगे प्रेम के मनसूबे चूल्हे में गए। दूसरे ही क्षण मेरी उँगलियों ने चील की तरह झपट कर जहानारा का गला अपने चङ्गुल में ऐसा दबोचा कि वह हमेशा के लिए चुप हो गई।

मगर अब लाश देख कर मेरे होश उड़ गए। आँखें निकल पड़ीं। पैर लड़खड़ाने लगे। मेरे रोम-रोम में बदहवासी छा गई। मारे घबराहट के मैं आप मरने लगा। कोठी के भीतर मेरे लिए ज़रा देर भी रहना मुश्किल हो गया। ईंट-पत्थर, फ़र्श, मेज़, कुर्सी, सभी एक ज़बान से कह रहे थे, भागो। मैं पागलों की भाँति उसीके भीतर चक्कर खा कर रह जाता था। आख़िर भागने की ठानी। मगर क्या लेकर भागता? मेरे रुपए-पैसे तो मकान में रहते न थे। और बैङ्क का दिवाला पहिले ही निकल चुका था। सहसा जहानारा के नोटों के बण्डल की याद आई, जिनको मैंने उसके चोरी गए हुए सामान से निकाल कर चुपके से अपने पास रख लिया था। मैं जल्दी से उसको निकाल लाया। उसीके साथ उसके यह सब ख़त भी, जिनको मैं डाकख़ाने पहुँचने के पहिले ही रोक-रोक कर वहीं रखता जाता था, चले आए। अब फ़िक्र हुई कि लाश को किस तरह छिपाऊँ। परेशानी में कोई भी युक्ति न सूझी तो मैंने अपनी कोठी में आग लगा दी।

आग और धूएँ ने मेरे इस पाप को ढक लिया और दुनिया यही जानती है कि जहानारा की मृत्यु केवल अग्नि-घटना से हुई। सभी मेरी इस दुर्दशा पर मेरे साथ सहानुभूति कर रहे हैं। मगर मेरी आत्मा मुझे कोड़े पर कोड़े मार रही है। क्षण भर भी मुझे चैन नहीं लेने देती। जिस प्राण की रक्षा के लिए मैंने यह पाप किया, हाय! वही कम्बख़्त अब मेरा कट्टर दुश्मन बन कर मेरे कलेजे में सोते, उठते, बैठते, हरदम बर्छियाँ भोंक रहा है। कठिन से कठिन प्रायश्चित्त भी मुझे इस सन्ताप से नहीं बचा सकता। चार दिन से एक घूँट पानी तक अपने मुँह में नहीं डाल सका। जहानारा के रुपए मेरे पास मौजूद हैं। उनके बल पर मैं फिर दौलतमन्द हो सकता हूँ। मगर हाय! अब तो न जाने मुझमें कैसा अनोखा परिवर्त्तन हो गया कि भूख से तड़प रहा हूँ, फिर भी ये रुपए मुझसे नहीं ख़र्च किए जाते। जी में यही आता है कि उसकी लड़की को ढूँढ़ कर इसे दे दूँ, इस तरह शायद मुझे कुछ शान्ति मिले। मगर जहानारा ने अपने ख़तों में, जिनसे यह भेद मुझे मालूम हुआ, कहीं का नाम-ठिकाना भी नहीं दिया है। मैंने उससे इस डर से इस विषय पर कभी पूछ-पाछ भी नहीं की कि कहीं वह ताड़ जाए कि उसके ख़त रोके जाते हैं। इसलिए उसकी लड़की को कहाँ ढूँढ़ने जाऊँ? और मुझमें एक क्षण से भी अधिक अपनी सन्तापी आत्मा को अपने पास रखने की अब सहनशीलता नहीं है। इसी कारण इन्हें आपके पास भेज कर यह भार आप पर सौंप रहा हूँ। उफ़! कलेजा फुँका जाता है। बस विदा, इस संसार से विदा। देखूँ नरक में भी मुझे जगह मिलती है या नहीं। मैंने केवल हत्याएँ नहीं कीं, बल्कि एक दिल भी तोड़ा है। और वह भी जहानारा का ऐसा दिल। आह! इसका पाप आप पर नहीं, मुझ पर है।

अपने कर्मों का फल भोगने वाला,

—हुमुंज़ जी

इस पत्र को अन्त तक पढ़ना मेरे लिए विष का घूँट पीना था। मेरी आँखों में ख़ून उतर आया। मगर मैं दाँत पीस कर रह गया।

(क्रमशः)

(Copyright)

बाल मनोरञ्जन

दयालु लड़का

पात्र—

१—जाफ़र
२—क़ादिर (जाफ़र का छोटा भाई)
३—बूढ़ा
४—मोहन (बूढ़े का बेटा)
५—दूकानदार

पहला दृश्य

(जाफ़र आरामकुर्सी पर लेटा हुआ अखबार देख रहा है। क़ादिर आता है।)

क़ादिर—(जाफ़र से) भाई साहब, आपको मालूम है, आज शहर के बाहर मेला भरेगा? मैं भी देखने जाऊँगा। क्या आप मुझे दो-चार पैसे न देंगे ?

जाफ़र—क़ादिर ! पैसे तो तुम्हें जरूर मिलेंगे। पर यह बताओ कि तुम उनका करोगे क्या ?

क़ादिर—कोई चीज़ पसन्द आ जाएगी तो लेता आऊँगा।

जाफ़र—(इकन्नी देकर) अच्छा, इतने पैसों से काम चल जाएगा न ?

क़ादिर—(इकन्नी लेकर) बस-बस, बहुत हैं।

(चला जाता है)

दूसरा दृश्य

(खिलौनों की दूकान। दूकानदार खिलौनों की गर्द भाड़ रहा है। क़ादिर आता है।)

दूकानदार—(क़ादिर से) क्यों बाबू ! कुछ लोगे? कौन-कौन से खिलौने पसन्द किए ?

क़ादिर—(दस-पाँच खिलौने उठा कर देखता है और फिर एक को हाथ में लेकर) इस तोते की क्या क़ीमत होगी ?

दूकानदार—वह तोता ? तुम्हें दो आने में दे दूँगा।

क़ादिर—अरे ! कहते क्या हो ! दो आने तो बहुत होते हैं। मैंने देखा है कि ऐसे तोते चार-चार पैसे में बिकते हैं। चार पैसे में देना हो तो दे दो।

दूकानदार—अच्छा भई, तुम्हारी ही बात सही। लाओ पैसे।

(क़ादिर पैसे देता और खिलौना लेकर चला जाता है।)

तीसरा दृश्य

(स्थान—रास्ता। बूढ़ा जा रहा है। साथ में मोहन है और बूढ़े के हाथ से भूलता जाता है।)

मोहन—मैं नहीं मानूँगा। मुझे भी एक खिलौना ले दो। सब तो ले रहे हैं।

बूढ़ा—बेटा ! कहाँ से ले दूँ ? मेरे पास पैसा हो, तब न ! कितने बार कहूँ ?

मोहन—हूँ ऊँ ! ले दो दादा। मैं काहे से खेलूँगा ?

(क़ादिर खिलौना लिए आता और बाप-बेटे की बातें सुनने लगता है।)

मोहन—(क़ादिर का खिलौना देख कर बूढ़े से) बस दादा! ऐसा ही मुझे भी ले दो। अहा! कैसा अच्छा सुआ है। (क़ादिर के खिलौने की ओर बड़ी चाह से देखता है।)

बूढ़ा—(ठण्ढी साँस लेकर मोहन से) बेटा! कहाँ से ले दूँ ऐसा खिलौना? चार पैसे से कम में न मिलेगा। यहाँ एक भी पैसा नहीं। भोजन के लिए ही तो मुश्किल से चार-छः पैसे कमा पाता हूँ। मान जा बेटा! फिर ले दूँगा।

(मोहन रोने लगता है)

क़ादिर—(आगे बढ़ कर मोहन से) लो भई, तुम मेरा खिलौना ले लो। रोओ मत। बूढ़े बाप को हैरान मत करो।

बूढ़ा—(क़ादिर से) रहने दो भैया!

क़ादिर—नहीं-नहीं बाबा! मोहन भी मेरा भाई है। वही इस खिलौने से खेलेगा। हर्ज़ क्या है।

बूढ़ा—भगवान् तुम्हारा भला करे भैया!

(कादिर मोहन को खिलौना देकर चला जाता है।)

(१३३ वें पृष्ठ का शेषांश)

मालिश और विश्राम से आँखों में नया प्रकाश आ गया था। आँखें पहले की अपेक्षा मुझे बड़ी मालूम होने लगी थीं; तारे और भी अधिक चमकने लगे थे और आँखों से तेज, ओज और जीवनी शक्ति टपकने लगी थी। ऐसा स्वास्थ्यप्रद अनुभव मेरे जीवन में पहले मुझे कभी नहीं हुआ था।"

ऊपर नेत्र-स्नान का जो ज़िक्र आया है, उसके अनुसार भारतीय स्त्री-पुरुषों को त्रिफला—हर्रे, बहेरा और आँवले—के पानी से नेत्र-स्नान कराना सदैव लाभ-दायक है। मुझे विश्वास है, ऊपर जिन उपचारों का उल्लेख हुआ है उनसे प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपनी आँखों को स्वस्थ और सुन्दर बनाए रख सकता है।

—रतनलाल मालवीय, बी० ए०

* * *

चौथा दृश्य

(क़ादिर का घर। क़ादिर और जाफ़र दोनों बातें करते दिखाई देते हैं।)

जाफ़र—अरे क़ादिर! तुमने उन पैसों का क्या किया? कुछ लाए नहीं? कहीं गिरा तो नहीं दिए?

क़ादिर—भाई साहब! मैंने उन पैसों से छोटी बहिन के लिए एक खिलौना लिया था।

जाफ़र—फिर कहाँ है वह खिलौना?

क़ादिर—रास्ते में वह खिलौना मैंने एक ग़रीब लड़के को दे दिया। उसके बाप के पास पैसे थे नहीं, बेचारा लड़का खिलौने के लिए रोने लगा। मुझे दया आ गई। मैंने खिलौना उसे दे दिया।

जाफ़र—(.खुश होकर) अच्छा! पर खिलौना दे डालने से तुम्हें कुछ रन्ज तो नहीं हुआ?

क़ादिर—नहीं। रन्ज क्यों होगा? मुझे तो ख़ुशी है कि मैंने खिलौना देकर एक ग़रीब लड़के को ख़ुश किया।

जाफ़र—तब तो भाई, तुमने बड़ा अच्छा काम किया।

(भीतर से आवाज़ आती है—'अरे जाफ़र! ओ क़ादिर!' दोनों चले जाते हैं।)

* * *

खाँसी क्यों आने लगी?

कुछ दिन हुए शिब्बू को खाँसी चलने लगी थी। पहले तो उसने चिन्ता न की, पर खाँसी दिनों-दिन बढ़ती गई। इसके बाद शिब्बू को हलका बुख़ार भी आने लगा। अब बेचारा शिब्बू बहुत परेशान रहता, धीरे-धीरे वह दुबला-पतला हो चला। उसके गुलाबी गाल पिचक गए, उन पर कालिख छा गई।

शिब्बू की यह दशा देख, उसके पिता मोहन बाबू को बड़ी चिन्ता हुई। एक दिन वे उसे अपने साथ अस्पताल लिवा ले गए। डॉक्टर साहब से उनकी दोस्ती थी। उन्होंने एक कुर्सी पर बैठ कर डॉक्टर साहब से कहा—"बाबू साहब, ज़रा शिब्बू की दशा तो देखिए। इसकी जाँच कर लीजिए, और कुछ ऐसी दवाई दीजिए, जिससे यह जल्दी अच्छा हो जावे।"

डॉक्टर साहब शिब्बू को अच्छी तरह जानते थे। उसकी हालत देख कर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने शिब्बू से पूछा—"बेटा, तुम्हें क्या तकलीफ़ है ?" शिब्बू ने जवाब दिया—"बाबू साहब, मुझे ज़ोरों से खाँसी चलती है। रात को थोड़ा बुख़ार भी हो आता है। रोटी अच्छी तरह नहीं खाई जाती।"

डॉक्टर साहब ने शिब्बू की छाती और पीठ की जाँच की। फिर उससे कहा—"अच्छा मुँह खोलो।" शिब्बू ने मुँह खोल दिया। डॉक्टर साहब ने पास रक्खे हुए एक काँच की सहायता से उसका मुँह और गला भी अच्छी तरह देखा। इसके बाद वे कुछ सोचने लगे।

इसी समय मोहन बाबू ने उनसे पूछा—"डॉक्टर साहब, शिब्बू की यह हालत क्यों हुई ?" डॉक्टर साहब ने मुसकुरा कर उत्तर दिया—"बीड़ी पीने से।"

यह सुन कर मोहन बाबू को बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने कहा—"डॉक्टर साहब, आप कहते क्या हैं ! मेरा शिब्बू बीड़ी नहीं पीता, मैंने कभी इसे बीड़ी पीते नहीं देखा।" डॉक्टर साहब बोले—"आपने न देखा होगा। पर यह बीड़ी पीता ज़रूर है, बीड़ी पीने से ही इसकी यह दशा हुई है। यह आपकी चोरी से बीड़ी पिया करता है।" फिर उन्होंने शिब्बू से पूछा—"बेटा शिब्बू, तुम सच बतलाओ, बीड़ी पीते हो या नहीं ?"

शिब्बू ने उत्तर दिया—"हाँ डॉक्टर साहब, मैं पिता जी की चोरी से बीड़ी पीता हूँ। मेरे साथ पढ़ने वाले और भी कई लड़के छिप-छिप कर बीड़ी पिया करते हैं। पर बीड़ी पीने से तो कोई बीमार नहीं होता—मैं ही क्यों हुआ ?"

डॉक्टर साहब ने हँस कर उत्तर दिया—"जान पड़ता है, तुमने उन्हीं ख़राब लड़कों के साथ रह कर बीड़ी पीने की आफ़त मोल ले ली है। बेटा, तुम्हारा यह कहना ठीक नहीं कि बीड़ी पीने से कोई बीमार नहीं होता। तमाखू बुरी चीज़ है। उसके पीने से सभी बीमार होते हैं। कोई कम कोई अधिक। तमाखू में एक तरह का विष होता है, जो धुएँ के साथ आदमी के पेट में जाकर तरह-तरह की ख़राबियाँ पैदा करता है। वह विष के धुएँ के साथ फेफड़ों और गले की नली में जम जाता है। इसीसे धीरे-धीरे कफ पैदा होने लगता और खाँसी चलने लगती है। विष और धुएँ की गर्मी से ख़ून पतला पड़ता है। मुँह की लार भी पतली हो जाती है और मनुष्य बार-बार थूकने का आदी हो जाता है। इस प्रकार बहुत सी लार बरबाद हो जाती है। यह लार भोजन पचने में बड़ी सहायता पहुँचाती है। परन्तु उसकी कमी से भोजन भली भाँति नहीं पचता, इसीसे भोजन करने में रुचि नहीं रहती। कफ-खाँसी के बढ़ने और हाज़मे के बिगड़ जाने से और भी कई बीमारियाँ हो जाने का डर रहता है। तमाखू पीने से बहुत से मनुष्यों को तपेदिक़ और दमे की बीमारियाँ भी हो जाती हैं, जिनसे फिर उनका बचना कठिन हो जाता है। तमाखू में एक बड़ा ऐब यह भी है कि उसके पीने से मनुष्य आलसी हो जाता है, और कभी-कभी उसके पीने से मुँह से बुरी बास भी आने लगती है। बेटा शिब्बू, यदि तुम अच्छे होना चाहते हो तो आज से ही तमाखू पीना छोड़ दो।"

शिब्बू ने घबरा कर कहा—"तो डॉक्टर साहब, आप मुझे कोई दवाई न देंगे ?"

डॉक्टर साहब बोले—"नहीं शिब्बू, मैं तुम्हें दवाई तो ज़रूर दूँगा। पर जब तक तुम तमाखू पीना न छोड़ोगे तब तक दवाई से कुछ फ़ायदा न होगा।"

शिब्बू की समझ में डॉक्टर साहब की बातें आ गई थीं, उसने कान पकड़ कर कहा—"डॉक्टर साहब, अब मैं कभी तमाखू नहीं पिऊँगा, आप मुझे ज़रूर दवाई दीजिए।"

डॉक्टर साहब ने एक शीशी में शिब्बू को दवाई दी। उसके पीने से कुछ दिन में उसकी तबियत बिलकुल अच्छी हो गई। अब कोई शिब्बू से कहता है—"क्यों भई तुम भी तमाखू पियोगे ?" तो वह यही जवाब देता है—"साहब, बचने भी दीजिए इस बला से।"

—ज़हूरबख़्श
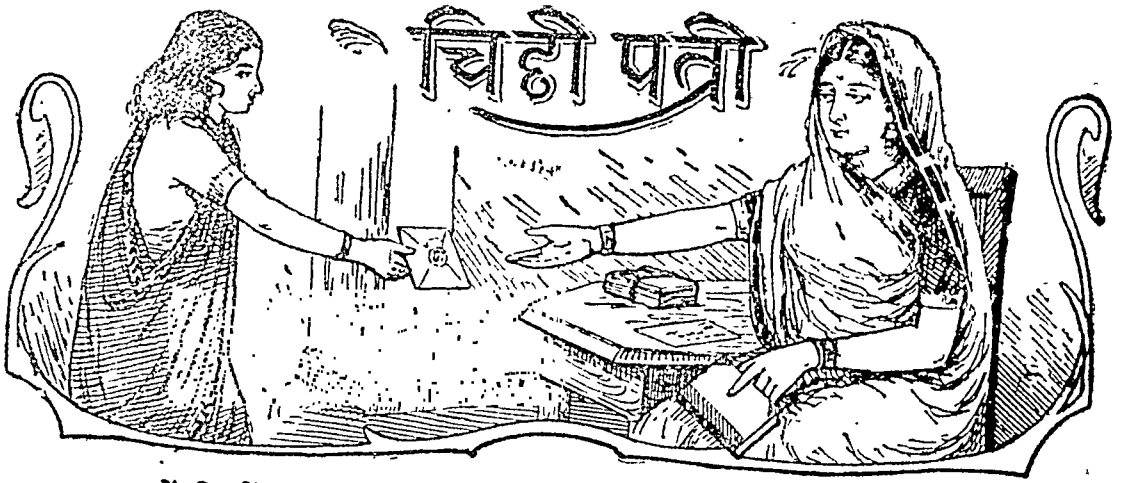
सभा में स्त्रियों का व्यवहार

गोरखपुर से एक बहिन अपने २४ सितम्बर सन् १९३० के पत्र में लिखती हैं—

सम्पादक जी,

सादर नमस्ते !

कल हमारे राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू की वीर पत्नी हम लोगों को दर्शन देने तथा देश-सेवा का पवित्र उपदेश सुनाने के अभिप्राय से गोरखपुर आई थीं। यहाँ की सभी दर्शनाभिलाषी औरतें सभा में उपस्थित हुईं। पर बहुत सी स्त्रियों ने इस क़दर शोर मचाया कि हमारी पूजनीया बहिन ऊब कर पण्डाल के बाहर निकल आईं। हम लोगों ने वहाँ जाकर उनके दर्शनों का ही लाभ उठाया, परन्तु उनके पवित्र तथा कल्याणमय उपदेश सुनने का हमें सौभाग्य प्राप्त न हुआ। उसका हमें इतना अफ़सोस हुआ कि लेखनी द्वारा प्रगट नहीं कर सकतीं। हमारी बहिनें सभा में जाने को तो फ़ौरन तैयार हो जाती हैं, पर वहाँ ज़रा भी शिष्टाचार का पालन नहीं करतीं। छोटी-छोटी बातों में लड़ने और गाली बकने में हमारी बहिनें जितनी निपुण होती हैं, उतनी अगर गृहस्थी के कार्यों में निपुण होतीं तो पुरुष अपना धन्य भाग्य मानते।

सम्पादक जी, हमारी बहिनें लड़ती तो आपस में हैं, मगर एक दूसरी के सात पुश्त को स्वर्ग से नरक में गिरा देती हैं। इसका अनुभव मुझे कल ही हुआ। मैंने एक बहिन से कहा—"बहिन, ज़रा शान्त होकर बैठो। देखो, एक बहिन तो इतनी दूर से कष्ट उठा कर आई हैं और तुम इस क़दर लड़ रही हो।" तब वह बोली—"तुम हमें चुप रहने को तो कहती हो, मगर और इतनी औरतें जो शोर मचा रही हैं, उन्हें क्यों नहीं रोकतीं?" भला इस कठहुज्जत का क्या जवाब था, मैं चुप रह गई। अगर हर एक स्त्री इसी तरह सोच ले कि जब सब स्त्रियाँ शोर मचा रही हैं, तब मैं ही ऐसे मौक़े पर क्यों चूकूँ तो सभा में कैसी हालत हो? यदि सब बहिनें एक दूसरी की बातों को ज़्यादा नहीं, सिर्फ़ एक घण्टे के लिए सह लें तो क्या बुराई है, चाहे दूसरे वक्त इसकी कसर लड़ कर, गाली देकर, मार-पीट करके दुगनी, चौगुनी, अठगुनी निकाल लें? अन्य जगहों के लोग जिस पूजनीया बहिन का स्वागत करते हैं, जिसके सम्मान में जुलूस निकालते हैं, बड़े शोक की बात है कि गोरखपुर के स्त्री-पुरुषों ने उनके स्वागत करने से तो कुछ कम, परन्तु उनके उपदेश सुनने से बहुत ज़्यादा मुँह मोड़ा है।

हमारी बहिन कमला नेहरू ने लालडिग्गी के पण्डाल के नीचे खड़े होकर जो शब्द कहे थे वे हम लोगों के लिए बड़े मार्के के हैं, क्योंकि हम इतने दिनों के बाद भी उन पर अमल नहीं कर सके हैं। हमारी पूजनीया बहिन ने यों तो बहुत सी बातें कहीं; पर विदेशी कपड़े को छोड़ने और स्वदेशी वस्त्र को अपनाने पर उन्होंने ख़ास तौर से ज़ोर दिया। परन्तु विदेशी वस्त्रों को त्यागने की बात कौन कहे, यहाँ तो लोग सोचते हैं कि आजकल विदेशी कपड़ा बहुत सस्ता मिलेगा, लाओ चोरी-चोरी जो कुछ ख़रीद सकें, ख़रीद कर रख लें। यहाँ के कहारों ने पञ्चायत करके दारू या ताड़ी का पीना बन्द कर दिया है। अबकी काली-पूजा पर, जो कहार लोग करते हैं,

दारू या ताड़ी के बदले उन्हीं पैसों का लड्डू मँगा कर बाँटा गया है। जिन्हें हम लोग अपने से नीच मानते हैं, उन्होंने तो इतना भी किया, मगर हम लोग ऐसे बुज़दिल निकले कि विदेशी कपड़ा भी नहीं त्याग सके। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह हमारे हृदय में बल दें तथा हमें सुबुद्धि प्रदान करें।

[निस्सन्देह इस देवी का कहना बहुत ही ठीक है। आजकल, जब स्त्रियों की जागृति के लिए इतना घोर आन्दोलन हो रहा है, उन्हें सार्वजनिक स्थानों में सभ्यतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए। स्वदेशी आन्दोलन को सफल बनाने का भी अधिकांश उत्तरदायित्व स्त्रियों पर ही है। पुरुष तो किसी तरह खुरखुरा खद्दर पहन भी लेते हैं, पर स्त्रियाँ इन चीजों से बुरी तरह नाक-भौं सिकोड़ती हैं। जिस तरह हमारी बहुत सी बहिनों ने इस आन्दोलन में भाग लेकर घोर कष्ट सहे हैं, उसी तरह हमारी अन्य बहिनों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे स्वदेशी वस्तुओं को अपनाकर देश की उन्नति में अपना भाग पूरा करें।

—सम्पादक 'चाँद']

* * *

एक शिक्षापूर्ण घटना

एक सज्जन इन्दौर छावनी से लिखते हैं—

श्रीमान् सम्पादक महोदय !

मुझे निम्नलिखित घटना को 'चाँद' में प्रकाशित कराना आवश्यक प्रतीत होता है। साँईखेड़ा के दादा जी के शिष्य दण्डी स्वामी नामक एक व्यक्ति हैं। ये आज से आठ वर्ष पूर्व कॉङ्ग्रेस के प्रसिद्ध कार्यकर्ता थे और बाद में योगाभ्यास के लिए आठ वर्ष तक दादा जी के समीप रहे। वहाँ भी इन्होंने ख़ूब प्रसिद्धि पाई। सम्मान में छोटे दादा जी के बाद आप ही का नम्बर था। गत वर्ष दादा जी मय जमात के लगभग साल भर तक उज्जैन में ठहरे हुए थे। दादा जी के पास सुदूर प्रान्तों से दर्शनाभिलाषी लोग अपनी-अपनी कामनाएँ लेकर जाते हैं। कोई-कोई वहाँ महीनों ठहरते भी हैं।

इसी प्रकार उज्जैन के हनुमानबाग़ में देवास के एक जागीरदार, जिनका नाम चन्द्रराव पवार है, मय अपने बाल-बच्चों के किसी कार्यवश ठहरे हुए थे। वे दादा जी को तथा उनके चेले छोटे दादा जी व दण्डी स्वामी को ख़ूब मानते थे। उनके सब से बड़ी एक कन्या लगभग उन्नीस वर्ष की सारजा बाई नाम की है। वह दण्डी स्वामी के पास नित्य-प्रति सेवा को जाया करती थी। यह देश का दुर्भाग्य है कि जवान सण्डे-मुसण्डे साधुओं के पास हम भक्ति-भाववश अपनी माँ-बहिनों को भेज देते हैं। यह बालिका स्वामी जी के पास रात्रि में घण्टों तक सेवा किया करती थी। इसका वही परिणाम हुआ जो होना था। होते-होते दोनों में प्रेम हो गया और एक दूसरे के साथ स्त्री-पुरुषवत् व्यवहार करने लगे।

अभी कुछ दिन हुए दादा जी उज्जैन से रवाना हो कर देवास होते हुए क्षिप्रा-तट पर ठहरे हुए थे। वहाँ जाने पर स्वामी जी ने एक दिन, लड़की से भविष्य में वियोग होता जान कर और इस विचार से कि उसका विवाह अन्यत्र होने पर उसके पातिव्रत का नाश हो जायगा, उसके घर जाकर सब कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। उन्होंने अपने अपराध को स्वीकार करते हुए उस लड़की का कहीं विवाह न करने की प्रार्थना की और उसके पिता को दो घण्टे तक रो-रोकर समझाया और कहा कि लड़की ने मुझसे गान्धर्व विवाह किया है, अतः वह मेरी पत्नी है। मैं ब्राह्मण हूँ, आप मरहठे हैं, यदि हमें यह लड़की दे देवें तो हम अपनी भूल सुधार कर गार्हस्थ्य जीवन में रह सकते हैं। लड़की भी स्वामी जी पर अत्यन्त ही प्रेम करती है। सुनते हैं कि उसने यह भी कहा है कि मैं अब विवाह न करूँगी। शरीर एक पति को अर्पण कर चुकी। गुरु-दरबार में मैंने उनका और उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया। अब मैं पातिव्रत से नहीं डिगूँगी। आत्मघात कर लूँगी, पर दूसरी शादी न करूँगी।

पिता की इच्छा ज़बरदस्ती विवाह करने की है, पर बालिका नहीं मानती। पिता ने स्वामी जी की प्रार्थना ठुकरा दी और अन्त में स्वामी जी को भी दादा-दरबार छोड़ना पड़ा। उनकी इच्छा अभी तक यही है कि मेरी भूल तो हुई, पर जिसके कौमार्य का हरण मेरे हाथ से हुआ है उसके सतीत्व की रक्षा मरते दम तक करना मेरा धर्म है। स्वामी जी ने अभी तक ब्रह्मचर्य का पालन किया

हैं और वे शपथपूर्वक कहते हैं कि यह उनकी पहली ही भूल है, जिसको वे सुधारना भी अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

स्वामी जी का पतन तो महान हुआ है, परन्तु उनका सत्य और धैर्य प्रशंसनीय है। उन्होंने स्वयम् अपनी भूल को ज़ाहिर किया। चाहते तो इस ग़लती को पचा डालते, परन्तु उनका कहना है—"मेरे सुख से रहने पर भी मुझे रात-दिन यह यन्त्रणा लगी रहती है कि एक निर्दोष बालिका को धोखा देकर उसका सर्वनाश मैंने कर डाला (क्योंकि, बालिका का कहना है कि या तो अविवाहिता रहूँगी, या स्वामी जी के पास रहूँगी अथवा आत्म-हत्या कर लूँगी।), यदि भूल हो गई है तो मैं उस लड़की को अपने मस्तक पर धारण करूँगा और गार्हस्थ्य-जीवन बिता कर उसे अपनी टूटी-फूटी झोपड़ी की गृहलक्ष्मी बनाऊँगा।" उन्होंने संन्यास वेष का त्याग कर दिया है और अब वे कोई नौकरी करने का इरादा करते हैं। उनका यह भी कहना है कि यदि पिता ने मुझे लड़की दे दी तो अच्छा, नहीं तो उसीके प्रेम में शरीर का अन्त कर डालूँगा।

सम्पादक जी, जहाँ इस घटना को सुन कर मुझे रोष हुआ वहाँ यह सन्तोष भी होता है कि दण्डी स्वामी ने धैर्य के साथ अपनी भूल स्वीकार की और एक सच्चे प्रेमी की तरह उस लड़की से विवाह कर उसके सतीत्व की रक्षा करने को तैयार हैं। उन्होंने भयङ्कर अपकीर्ति व अपमान को सहन करते हुए भी सचाई के साथ अन्त तक बालिका का साथ देने का निश्चय किया है। अब भी लड़की के माता-पिता को दुराग्रह छोड़ देना चाहिए। लड़की को आगे अत्याचार से बचाने में ही अब कल्याण है। मेरी राय में अब लड़की के पिता को वही करना उचित है, जिससे लड़की के सतीत्व की रक्षा हो सके।

[इस सम्बन्ध में हमारे पास स्वयं दण्डी स्वामी का लिखा हुआ एक पत्र भी आया है, परन्तु उसके बहुत लम्बा होने के कारण तथा इन दोनों पत्रों का आशय एक ही होने के कारण हम यहाँ केवल इसी पत्र को प्रकाशित कर रहे हैं। यह कहानी बहुत शिक्षाप्रद है। इसके अनेक पहलू हैं। और उन सब पहलुओं पर विचार करके पाठकगण अनेक उत्तम शिक्षाएँ ग्रहण कर सकते हैं।

हमारी सम्मति में इस सम्बन्ध में दो बातें पूर्णतः स्पष्ट हैं। पिता ने निर्जन रात्रि में नवयौवना कन्या को स्वामी जी की सेवा के लिए भेज कर एक भयङ्कर भूल की और अब उसे स्वामी जी से पृथक करने की चेष्टा करके उससे भी बढ़ कर भयङ्कर भूल करने पर तुले हुए हैं। दूसरी बात यह है कि स्वामी जी ने एक तरुणी की सेवा स्वीकार करके घोर अधर्म किया, परन्तु हर्ष की बात है कि अब वह अपनी भूल का मार्जन करने के लिए तत्पर हो गए हैं। इतनी सचाई के साथ अपनी भूल को स्वीकार करने वाले पुरुष भी आजकल कहाँ मिलते हैं? यदि इस पत्र की बातें सच हैं तो लड़की की इच्छा भी ज़ाहिर ही है। इस कहानी में सत्य और असत्य दोनों प्रत्यक्ष हैं। यदि निष्पक्ष बुद्धि और न्याय-निष्ठा से विचार किया जाय तो इस समय कौन पक्ष सच्चे रास्ते पर है और कौन पक्ष ग़लत रास्ते पर तथा आगे का क्या कर्त्तव्य है, इसे निश्चित करने में कोई कठिनाई न होगी।

—सम्पादक 'चाँद']

* * *

अन्धविश्वास का राज्य

इस बीसवीं शताब्दी में भी हिन्दू समाज में किस तरह अन्धविश्वास का राज्य फैला हुआ है, इसका एक करुणाजनक उदाहरण नीचे के पत्र में मिलेगा :—

श्रीमान् सम्पादक जी,

नमस्ते।

मैं अग्रवाल-कुलोद्भव सधवा होते हुए भी विधवा हूँ। मेरा वयस इस समय २२ साल के लगभग है। मुझे गृह में इतनी उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है कि शायद ही ऐसी अमानुषिकता का दूसरा उदाहरण मिले। बात-बात में लात, घूसों, डण्डों से पीटना, बात-बात में चुड़ैल, भूतनी, डाकिनी, पिशाचिनी इत्यादि अपशब्दों से अपमानित करना एक साधारण बात हो गई है। इसका कारण यह है जिस दिन मैं ससुराल में आई थी,

उसी दिन मेरे श्वसुर का हैज़े से देहावसान हो गया था और उसके तीसरे दिन पतिदेव की छोटी बहिन का शरीरान्त हो गया था। बस, उसी दिन से मैं समस्त परिवार को काँटे की तरह खटकने लगी। अब आप ही बतलाइए इसमें मेरा क्या दोष? मैंने तो किसी को ज़हर दे के मार ही नहीं दिया। भवितव्य अमिट है। इसमें किसी का क्या वश? लेकिन सास-ननद और मुहल्ले की अन्धविश्वासिनें मेरे ऊपर ही लाञ्छन लगाती हैं। मैं यहाँ पर भली प्रकार भोजन तक नहीं पाती हूँ। बासे-तिबासे, रूखे-सूखे टुकड़ों पर ही निर्वाह करती हूँ। ख़ैर, मुझे इस पर भी सन्तोष है। परन्तु जब मुझे बाँझिनी, कुलघातिनी आदि कह के पुकारा जाता है, तब मेरा हृदय जल उठता है।

सम्पादक जी, पति के आचरणों पर और उनकी अस्वस्थता पर कोई ध्यान नहीं देता। वह सन्तानोत्पादन करने में सर्वथा असमर्थ हैं। समस्त दोषारोपण मेरे ऊपर ही किया जाता है। मेरे पतिदेव छात्रावस्था में अनैसर्गिक मैथुन करने-कराने से नपुंसक हो गए हैं। इस कारण उनको इतनी शर्म है कि पास आना तो दूर रहा, बात तक नहीं करते। यदि किसी समय उनसे मेरा बोलने का मौक़ा लगा भी और सास-ननद का दुर्व्यवहार वर्णन किया तो प्रथम तो बोलते ही नहीं। यदि मेरे विशेष आग्रह करने पर बोले भी तो ऐसा मालूम होता है मानो बिजली कड़क कर फट पड़ी। सो भी मेरी तरफ़ न देख कर सास से कहने लगते हैं कि यह हत्यारी मुझे अच्छी तरह खाने-पीने भी नहीं देती। रात-दिन कलह किए रहती है। फिर सास जी रुई की तरह धुनती हैं और कहती हैं कि छिनाल ने घर को तो चौपट कर दिया। घर आते ही ससुर को खा लिया, × × × को खा लिया, अब खसम को भी खाएगी राँड। तू होते ही क्यों न मर गई? मेरा तो तूने बण्टाधार कर दिया।

सम्पादक जी, मैं अब ऐसी अवस्था में क्या करूँ? अब दुःख असह्य हो गया है। अब कष्ट सहन नहीं किया जाता। अन्याय की पराकाष्ठा हो गई। न तो माता-पिता के यहाँ ही कोई मेरी सुनवाई है। माता-पिता से जब कभी सास का दुर्व्यवहार वर्णन करने का मौक़ा मिलता है तो वह यही उत्तर देते हैं कि मेरा क्या क़सूर? मैंने तो गृह अच्छा ही देख कर विवाह किया था। यह सुन कर मैं जी मसोस के रह जाती हूँ। अपने दुर्भाग्य पर बहुत रोती हूँ, पर अब रोने से भी जी ऊब गया। मैंने अभी तक अपना सतीत्व सुरक्षित रक्खा है, मन को विचलित नहीं होने दिया। क्योंकि मैंने धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन किया है। मैं हिन्दी तथा संस्कृत का भी थोड़ा बहुत ज्ञान रखती हूँ। पर यह ज्ञान कब तक रहेगा? प्राकृतिक व्यवहारों की अवहेलना मैं कहाँ तक करूँगी?

सम्पादक जी, स्थानाभाव से अधिक नहीं लिख सकती। आप 'चाँद' में अपनी सम्मति प्रकट कीजिए कि मुझे ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए।

[वास्तव में हिन्दू समाज के सामने यह एक विकट समस्या है कि इन कुसंस्कारों और अन्धविश्वासों से इस अभागे समाज का उद्धार कैसे हो। नई बहुओं के आगमन के थोड़े ही दिन बाद घर के किसी आदमी की जहाँ मृत्यु हुई कि फ़ौरन उस मृत्यु की सारी जवाबदेही बेचारी निरपराध बहुओं पर लाद दी जाती है, और इसके लिए उन्हें आजन्म इस बेरहमी और ऐसी क्रूरता के साथ कोसा जाता है कि बेचारियों के जीवन का एक-एक क्षण पहाड़ हो जाता है, काटे नहीं कटता। वे दिन-रात मौत के लिए तरसती रहती हैं। इस महिला की भी ऐसी ही दुर्दशा की जा रही है। और कौन जानता है कि हमारे समाज में ऐसी त्रस्त महिलाओं की संख्या आज कितनी है?

हिन्दू स्त्रियों और पुरुषों में यदि मनुष्यत्व का लेशमात्र भी शेष रह गया हो तो उन्हें अपने पास-पड़ोस में ऐसा अमानुषिक अत्याचार होते हुए देख कर कभी चुप न बैठना चाहिए। क्या हैज़े से मरे हुए किसी जराजीर्ण बुड्ढे की मृत्यु के लिए एक निरपराध बालिका को इस तरह कोसते और सताते रहने में न्याय और विवेक का कुछ भी सम्पर्क है? हर एक सच्चे स्त्री और पुरुष को ऐसे अन्याय का अपनी पूरी शक्ति के साथ विरोध करना चाहिए और तब तक विश्राम न लेना चाहिए जब तक पीड़ित व्यक्ति की रक्षा का कोई उपाय न निकल आवे।

यदि इस महिला के घर की औरतें और मर्द उसे अपने घर में रखना चाहते हैं, तो एक मनुष्य की तरह रक्खें, और यदि नहीं रखना चाहते तो उन्हें एक निरपराध व्यक्ति को इस तरह सताने का क्या अधिकार है ? यदि वह सचमुच पिशाचिनी या भूतिनी है, जैसा कि उसके घर वाले मूर्खतावश समझते हैं, तो वे उसे अपने घर से क्यों नहीं निकाल देते ? हिन्दू समाज इतना मूर्ख और जाहिल हो गया है कि वह ऐसी स्त्रियों को न तो अच्छी तरह जीने देता है और न मरने ही देता है।

नपुंसक पुरुषों की स्त्रियों पर तो हमारे समाज में ऐसे-ऐसे ग़ज़ब ढाए जा रहे हैं कि सुन कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इसी कहानी को देखिए। बेचारी स्त्री का क्या दोष है ? जब पुरुष ही नपुंसक है तब वह घर वालों को सन्तान कहाँ से पैदा करके दे ? पर हिन्दू समाज इतना मूढ़ हो रहा है कि वह इन छोटी-छोटी बातों को भी नहीं समझता। वह न तो ऐसी स्त्रियों को पुनर्विवाह करने देगा, न उन्हें घर से निकल जाने देगा और न यही सहन करेगा कि वे सन्तानहीन रहें ! इस मूर्खता का भी कोई अन्त है ?

इस दशा में जो स्त्रियाँ पड़ी हुई हों उन्हें हमारी एक ही सलाह है। उन्हें ऐसे सभी अत्याचारों का वीरता के साथ विरोध करना चाहिए। यदि घर वालों के पत्थर के दिल न पसीजें तो उन्हें ऐसे घर को छोड़ देना चाहिए और अपने लिए दूसरे घर की खोज करनी चाहिए। आजकल ऐसी स्त्रियों से विवाह करने के लिए उद्यत होने वाले नवयुवकों की कमी देश में नहीं है। जगह-जगह ऐसी स्त्रियों की सहायता के लिए सभाएँ भी स्थापित हैं। उन्हें इन सभाओं की सहायता से अपने योग्य कोई युवक ढूँढ़ कर शादी कर लेनी चाहिए। दुःखी और त्रस्त स्त्रियों के उद्धार का हमें यही एक मार्ग दिखाई देता है।

निस्सन्देह इस मार्ग पर चलने के लिए असाधारण आत्मबल की आवश्यकता है। परन्तु बिना आत्मबल के प्राणी को संसार में सुख कहाँ नसीब है ? सुख चाहते हैं तो अपने पैरों पर खड़े होइए और जो आपको सताना चाहता है, वह चाहे अपना हो या बेगाना, हिन्दुस्तानी हो या अङ्गरेज़, उसे ठोकर मार कर अपने रास्ते से हटा दीजिए। सुख और शान्ति का यही मार्ग है।

—सम्पादक 'चाँद']

मेम साहबा—(एक लँगड़े फ़क़ीर से) ले लँगड़े, एक पैसा ले। तेरे लँगड़ेपन पर मुझे तर्स आता है। ख़ैर, फिर भी अन्धा होने से तो लँगड़ा होना अच्छा है।

लँगड़ा—आप ठीक कहती हैं ; क्योंकि जब मैं अन्धा था तो लोग मुझे खोटा पैसा दिया करते थे।

* * *

ख़ुशामदी प्रेमी—(कमरे के भीतर आते हुए) प्रिये, तुम तो हारमोनियम ख़ूब बजाती हो। मैं बाहर खड़ा-खड़ा सुन रहा था।

प्रेमिका—मैं बजाती नहीं थी, बल्कि हारमोनियम पर की गर्द झाड़ रही थी।

ख़रीदार—तुमने कहा था कि मेरी दवा एक ही रात में फ़ायदा करती है। मगर कल मैंने उसे खाया, कुछ भी फ़ायदा न हुआ।

दवा बेचने वाला—मगर यह मैंने कब कहा था कि यह किस रात को फ़ायदा करती है ?

* *

डॉक्टर—कहिए, श्रीमती जी, आपके पति अच्छे हैं ? वही खाना खाते हैं न, जो मैंने उनके लिए बताया है ?

श्रीमती—नहीं, वह कहते हैं कि चार दिन और जिन्दा रहने की ख़ातिर मैं भूखों मरना नहीं चाहता।

केसर की क्यारी

फिर मुझे लोग लिए जाते हैं ज़िन्दाँ की तरफ़ !
यह नहीं साफ़ बताते कि बहार आई है !!
मुज़्दए मोसमे-गुल मुझसे छुपे नामुमकिन !
कोई यह कान में कह देगा बहार आई है !!

—"नूह" नारवी

तीलियाँ सब्ज़ हुई जाती हैं देख ऐ सय्याद !
यूँ क़फ़स में ख़बरे फ़स्ले बहार आई है !!

—"वलीरा" लखनवी

दरे-ज़िन्दाँ की तरफ़ देख के रह जाता हूँ !
जब यह सुनता हूँ कि दुनिया में बहार आई है !!

—"मजज़ूब" लखनवी

अदम आबाद में दीवानों ने हलचल कर दी !
बाद मरने के यह सुन कर कि बहार आई है !!

—"शफ़ीक़" लखनवी

हम तो मर जायँगे बेमौत तड़प कर सय्याद !
क्या यह सच है कि गुलिस्ताँ में बहार आई है !!

— "सफ़ा" अकबराबादी

गुल हँसे बर्क़ नशेमन पे गिरी मैं हुआ क़ैद !
मेरे गुलशन में ख़िज़ाँ बन के बहार आई है !!

—"क़दीर" लखनवी

और सब कहना असीराने-क़फ़स से सय्याद !
यह न कहना कि गुलिस्ताँ में बहार आई है !!

—"बशीर" लखनवी

फिर भी कहते हो कि है क़िस्सये-ग़म बेतासीर !
कोशिशें की हैं हँसी की तो हँसी आई है !!

—"सिराज" लखनवी

देखते रहते हैं मरक़द में भी ख़्वाबे-हस्ती !
मौत आई है हमें या हमें नींद आई है !!

—"शातिर" इलाहाबादी

ज़िन्दगी में तो शबे-ग़म न कभी आँख लगी !
गोशए क़ब्र में आया हूँ तो नींद आई है !!

—"सरशार" लखन.

मुझसे पूछे कोई मैं ख़ूब समझता हूँ इसे !
जान लेने के लिए याद तेरी आई है !!

—"ग़ाफ़िल" इलाहाबादी

कह गए अहले-चमन यह तेरे दीवानों से !
होश में आओ ज़माने में बहार आई है !!
फूट कर पाँव के छाले मेरे लाए यह रङ्ग !
बाग़ तो बाग़ है सहरा में बहार आई है !!

—"बिस्मिल" इलाहाबादी

क्या कहूँ झूठ अकेला हूँ अकेला तो नहीं,
एक में एक यह मेरी शबे-तनहाई है

—"नूह" नारवी

जितने आते हैं वह इलज़ामे जुनूँ देते हैं
सब का मुँह देखने वाला तेरा सौदाई है

—"बहार" लखनवी

आज तोबा जो न टूटी तो क़यामत होगी
मैंने साक़ी की जवानी की क़सम खाई है

—"मेहदी" लखनवी

जानता हूँ कि सितम आपके महदूद नहीं,
मैंने भी आह न करने की क़सम खाई है

—"सफ़ा" अकबराबादी

साक़िया मै से मैं तोबा करूँ तोबा तोबा,
मैंने दुनिया के देखाने को क़सम खाई है

—"क़दीर" लखनवी

बातें मैं तेरे तसव्वर से किया करता हूँ,
कहने वाले मुझे कहते हैं कि सौदाई है !

—"सरशार" लखनवी

जान शीशे की मुझे इश्क़ में कुछ क़दर नहीं,
ज़िन्दगी जैसे कहीं मैंने पड़ी पाई है,

—"सिराज" लखनवी

शमश्रा महफ़िल की दिलेज़ार ही तक़लीद करे,
उसने जलने की बदौलत यह जगह पाई है

—"शातिर" इलाहाबादी

दो घड़ी दिल के बहलने का सहारा भी गया,
लीजिए आज तसव्वर में भी तनहाई है

—"मज़र" लखनवी

दस्त बरदारिए उलफ़त की तमन्नाई है !
मैं समझता हूँ यह जैसी तेरी अँगड़ाई है !!
पूछिए बहरे-ग़मे इश्क़ का रुतबा हमसे !
इसमें जो मौज है वह हुस्न की अँगड़ाई है !!
हाथ मुझको दिले मुज़तर से उठाना ही पड़ा !
किस क़दर सर्व शिकन आपकी अँगड़ाई है !!
नाज़ो अन्दाज़ में आज़ारो सितम ढाने में !
तुझसे दो हाथ ज़ियादा तेरी अँगड़ाई है !!

—"नूह" नारवी

झोंक खाकर हुई किस नाज़ से सीधी क़ातिल !
यह लचक तेग़ की है या तेरी अँगड़ाई है !!

—"मुनीर" लखनवी

मुतमईन बढ़ सकूँ बैठे बज़्में जहाँ में क्यों कर !
गरदिशे लैलोनिहार आपकी अँगड़ाई है !!
कौंद जाती है ज़माने की नज़र में बिजली !
बर्क़ लरज़ाँ मेरे महबूब की अँगड़ाई है !!

—"शातिर" इलाहाबादी

सब मेरे दिल की रगें खिच गईं ओ मस्ते-शबाब !!
तू तो यह कह के बरी हो गया अँगड़ाई है !!

—"सहरा" लखनवी

चौंक कर जाग उठे क़ब्र में सोने वाले !
यह क़्यामत भी किसी शोख़ की अँगड़ाई है !!

"ग़ाफ़िल" इलाहाबादी

खुल गए नज़्अ में असरारे तिलस्मे-हस्ती !
ज़ीस्त कहते हैं जिसे मौत की अँगड़ाई है !!
मैं किसी रोज़ दिखाऊँ दिले सद चाक अदा !
तुझको मालूम तो हो क्या तेरी अँगड़ाई है !!
जलवए रोज़े अज़ल ने मुझे बेचैन किया !
पहली दुनिया में यह पहली तेरी अँगड़ाई है !!

—"बिस्मिल" इलाहाबादी

ढूँढ़ती क्यों न रहे उसको अबद तक दुनिया !
जिसने छुपने की अज़ल ही में क़सम खाई है !!

—"बिस्मिल" इलाहाबादी

आज आईने में वह महवे ख़ुद आराई है
क्या तमाशा है तमाशा भी तमाशाई है

—"नूह" नारवी

वह जो देखें मुझे आइना बना कर अपना !
फिर तो कोई न तमाशा न तमाशाई है !!

—"शफ़ीक़" अकबराबादी

या इलाही यह ग़श आया है कि मौत आई है !
आँखें क्यों बन्द किए उनका तमाशाई है !!

—"अज़ीज़" सलोनी

दिल मेरा देख सके हुस्न के जलवे क्यों कर !
सौ तमाशे हैं, मगर एक तमाशाई है !!

—"शातिर" इलाहाबादी

दिल की हैरत ने बनाया उन्हें महवे हैरत !
जिसको समझे थे तमाशा वह तमाशाई है !!

—"ग़ाफ़िल" इलाहाबादी

ग़ौर करने पे हक़ीक़त यह नज़र आई है !
ख़ुद तमाशा भी है वह ख़ुद ही तमाशाई है !!
यह समझ कर कोई परदे से निकलता ही नहीं !
कि ख़ुदाई मेरे जलवे की तमाशाई है !!

—"बिस्मिल" इलाहाबादी
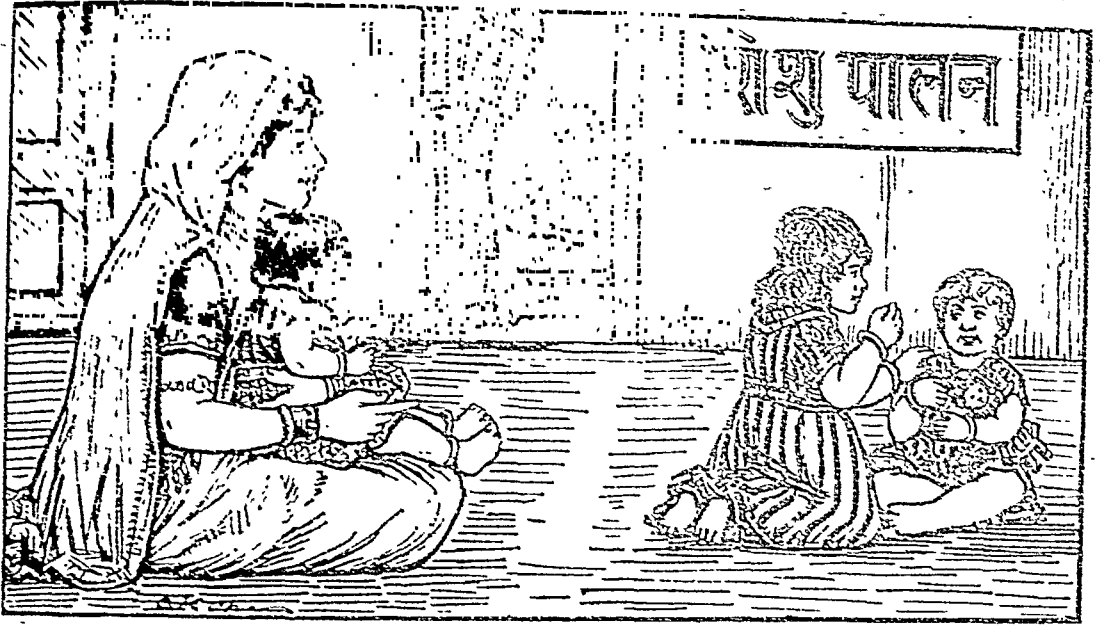
बाल-शिक्षा

आजकल हमारी माताएँ तथा बहिनें प्रायः इस बात को नहीं जानतीं कि बच्चों को उचित शिक्षा किस तरह से देनी चाहिए। यही कारण है कि आजकल भारतवर्ष के बच्चे युवावस्था में उस उच्च पद तथा विद्वत्ता को नहीं पहुँचते, जिस पर प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों की आज्ञानुसार चलने से पहुँचते थे। आजकल की प्रणाली कुछ ऐसी बदल गई है कि हम लोग उन आवश्यक बातों को बच्चों को नहीं सिखलाते, जिनसे वे स्वावलम्बी तथा सदाचारी बनें।

हम लोग शुरू से ही बच्चे को ए, बी, सी, डी या क, ख, ग पढ़ाना ही शिक्षा का आदर्श समझते हैं। परन्तु यदि यथार्थ में देखा जाय तो बच्चे की वास्तविक शिक्षा उसके चरित्र का सङ्गठन करना है। यह कार्य गर्भावस्था से ही आरम्भ हो जाता है। स्त्री के आचरण का प्रभाव उसकी गर्भस्थ सन्तान पर पड़ता है। यदि स्त्री का आचरण अच्छा हुआ तो सन्तान सदाचारिणी होती है और यदि बुरा हुआ तो दुराचारिणी। इसी कारण हमारे पूर्वजों ने यह बतलाया है कि स्त्री को गर्भावस्था में अपनी रहन-सहन तथा आचार-विचार को नियमबद्ध तथा पवित्र रखना चाहिए। उसे अच्छे-अच्छे विषय की पुस्तकों का अध्ययन, तथा ऋषि-महर्षि और सदाचारी जनों के जीवन-चरित्रों का पाठ करना चाहिए।

बहुधा हमारी माताएँ तथा बहिनें यह कहा करती हैं कि अभी उनका अमुक पुत्र बच्चा है, उसे अभी लिखने-पढ़ने की आवश्यकता नहीं है, पर कदाचित वे यह नहीं जानतीं कि बच्चे की शिक्षा गर्भावस्था से ही प्रारम्भ हो जाती है। बच्चों में नक़ल करने की शक्ति बहुत होती है। वे जो कुछ हम लोगों को करते तथा कहते देखते हैं, उसीका अनुकरण करने लगते हैं। और यह अनुकरण करना ही उनके चरित्र सङ्गठन की प्रथम श्रेणी है। इस कारण भूल कर भी बच्चों के सम्मुख न तो कोई अश्लील शब्द मुँह से निकालना चाहिए और न कोई बुरा काम ही करना चाहिए। शुरू से ही बच्चों को अच्छी आदत सिखाने का प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें अच्छी-अच्छी बातों की महिमा, आदर्श मनुष्यों की जीवनी तथा सद्गुणों के लाभ बतला देना चाहिए। साथ ही साथ दुर्गुणों के दुष्परिणाम से भी उन्हें अनभिज्ञ न रखना चाहिए।

माता-पिता केवल अपने चरित्रों से ही बच्चों को अच्छा नहीं बना सकते। बच्चा चलने-फिरने योग्य होते ही और लड़कों से मिलने-जुलने लगता है। अतः बच्चों के साथ खेलने वाले और लड़कों की ओर भी माता-पिता का ध्यान रहना चाहिए। बच्चों को बुरी सङ्गत से सदा बचाना चाहिए, क्योंकि सङ्गत का असर बहुत पड़ता है। बच्चों से यदि कोई भूल, अपराध या हानि हो जाय
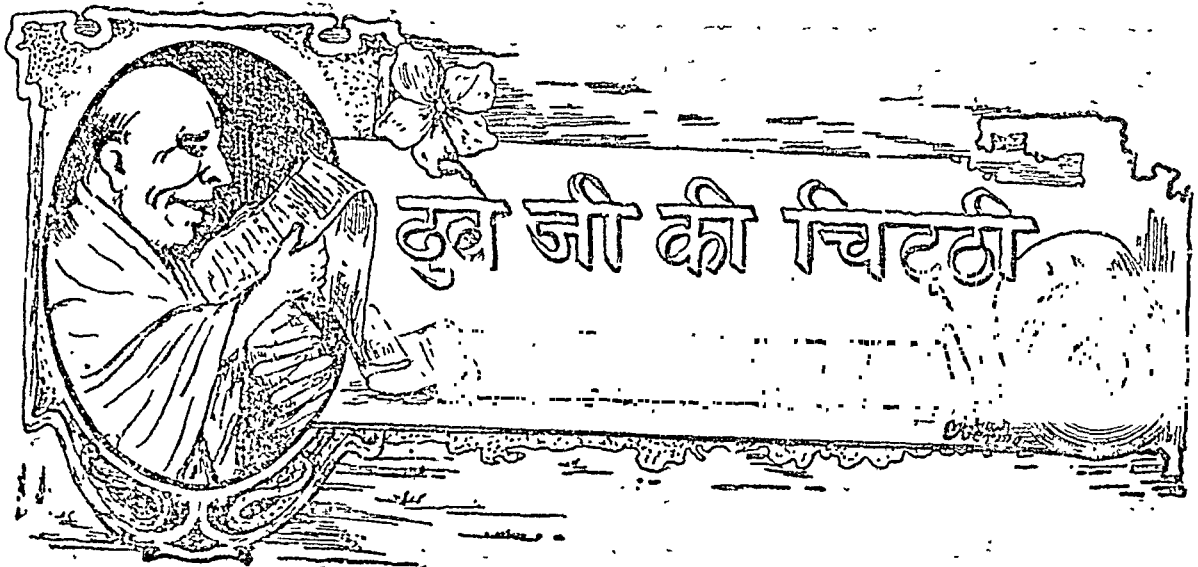
अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आजकल हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में बड़े आनन्द हैं। जिधर देखिए लेखक और कवि घूम रहे हैं। जो एक प्रेम-पत्र लिख सकता है वह लेखक है, और जो "तीन पाँच होते हैं आठ" लिख सकता है वह कवि है। आज से बीस वर्ष पहिले यह कौन जानता था कि हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र आगे चल कर इतना उर्वरा प्रमाणित होगा कि लेखक और कवि लोग घास की तरह उत्पन्न होंगे। घास है भी बड़े काम की वस्तु। आजकल बाग़-बग़ीचों में देखिए तो फूलों की अपेक्षा घास ही अधिक मिलेगी। "ग्रास लॉन" कितनी आवश्यक वस्तु है। यह सब बँगला-वासी (बँगलों में रहने वाले) लोग जानते हैं। हरी-हरी घास देखने से आँखों को भी लाभ पहुँचता है। कवि और लेखकगणों की इस भीड़ को देख कर हिन्दी-प्रेमियों के नेत्र ठण्डे हो जाते हैं। यदि आँखें बन्द करके हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में हाथ डालिए तो किसी लेखक अथवा कवि का सिर हाथ में आएगा। लेखकों में उपन्यास और गल्प-लेखक अधिक मिलेंगे और कवियों में छायावादी कवि। क्योंकि इन दोनों विषयों में सफलता प्राप्त करना दाल-भात खाने के समान है। इन दोनों कार्यों के लिए न अधिक शिक्षा की आवश्यकता है, न अध्ययन की। दो प्रेमियों का झगड़ा ले लिया—कभी उन्हें मिला दिया, कभी अलग कर दिया—दो एक हत्याएँ और आत्म-हत्याएँ करा कर अन्त में प्रेमी और प्रेमिका का विवाह करा दिया—चलिए एक गल्प अथवा उपन्यास तैयार हो गया। और तारीफ़ यह है कि काग़ज़, क़लम और सियाही से लेकर सम्पादक और प्रकाशक के पास भेजने के लिए पोस्टेज तक सब अपना ही है, उधार लिया अथवा चोरी किया हुआ नहीं। मौलिकता इसीका नाम है! एक ज़टलकाफ़िया उड़ाया, उपन्यास तैयार हो गया; एक गप्प हाँक दी, गल्प तैयार हो गई। कितना सहल नुस्ख़ा है। रही भाषा की अशुद्धियाँ; सो उसके लिए तो सम्पादक लोग पले ही हुए हैं। इतना भी न करेंगे तो फिर किस मर्ज़ की दवा हैं। सम्पादक ने भी सोचा कि मुफ़्त में एक गल्प हाथ लगी—पत्र के छः पृष्ठ भरे जाते हैं—चलने दो। इधर लेखक साहब की गल्प जो प्रकाशित हुई तो अङ्क हाथ में लिए घूम रहे हैं। किसी ने पूछा—"क्यों साहब, यह क्या है?" तो आपने मुँह बना कर उत्तर दिया—"कुछ नहीं—पत्र का अङ्क है, अबकी अच्छा निकला, लीजिए देखिए।" यदि किसी ने लेकर ध्यानपूर्वक देखा और पूछा—"यह लेख आप ही का लिखा हुआ है?" तो बोले—"जी हाँ"। "अच्छा, आप लेखक भी हैं, यह मुझे आज मालूम हुआ।" यह शब्द सुन कर लेखक महोदय मुस्करा कर रह गए। और मन ही मन फूल कर कुप्पा हो गए। यदि किसी ने पत्र केवल सरसरी दृष्टि से देखकर लौटा दिया, उनके लेख और नाम पर ध्यान न दिया तो लेखक महोदय ने

उसी समय से उसे मूर्ख और असभ्य की सूची में प्रविष्ट कर दिया। वास्तव में है भी यही बात। पत्र हाथ में लेकर बिना प्रत्येक लेख का शीर्षक और लेखक का नाम पढ़े लौटा देना बहुत बड़ी मूर्खता और असभ्यता है। वैसे तो यह मूर्खता और असभ्यता क्षम्य भी है, परन्तु जब कि उसमें उस व्यक्ति का लेख भी है जो सामने खड़ा हुआ है, तब तो यह सोलहो आने अक्षम्य है। और यदि कहीं किसी ने पत्र लेकर लेखक का लेख और नाम देख लिया और उसे कोई अन्य आदमी समझ कर लेखक से बिना यह पूछे ही कि—"यह आप ही का लिखा हुआ है?" पत्र लौटा दिया तो समझ लीजिए ग़ज़ब हो गया, सितम हो गया। वह आदमी तो एकदम गोली मार देने के योग्य है। सब देख-सुन कर भी दुष्ट की समझ में न आया। वज्र मूर्ख है। संसार में ऐसे मूर्खों का रहना उचित नहीं। ऐसे ही आदमियों के मारे साहित्य की उन्नति नहीं होती!

कविता में छायावाद की कविता बनाना उतना ही सरल है जितना कि भोजन में खिचड़ी पकाना। कोष खोल कर बैठ गए और पाँच-पाँच तथा दस-दस सेर के शब्द चुन लिए। उन्हें बिना छन्द और तुक का विचार किए हुए क्रियाओं के साथ सजा दिया—चलिए कविता तैयार हो गई। किसी ने पूछा—"इसका छन्द कौन सा है?" उत्तर दिया—"यह नया छन्द है, हमने निकाला है।" तुक के लिए कह दिया अतुकान्त कविता है। रहे भाव, सो वे जितने ही अधिक समझ में न आवें उतनी ही कविता बढ़िया है। पढ़ने वालों में अधिकांश ऐसे होते हैं जो अपनी अल्पज्ञता प्रकट होने के भय से यह नहीं कहते कि—"इस कविता के भाव हमारी समझ में नहीं आए।" वे सोचते हैं कि हमारी समझ में नहीं आते तो बड़े गूढ़ और ऊँचे भाव होंगे। इसलिए कहने लगते हैं कि—"बड़ी सुन्दर कविता है, बड़े ऊँचे भाव हैं।" सम्पादक जी, मेरा यह निज का अनुभव है। जो व्यक्ति किसी कविता को पढ़ कर यह कहे कि—"इस कविता के भाव बड़े गहरे हैं, बड़े ऊँचे हैं, हर एक आदमी उन्हें नहीं समझ सकता" तो रुपए में पन्द्रह आने भर यह निश्चय समझ लीजिए कि वह व्यक्ति कविता को ख़ाक नहीं समझा। इसी प्रकार अधिकांश सम्पादकों को भी ऐसी कविताएँ, जो उनकी समझ में न आवें, अधिक पसन्द आती हैं और वे ऐसी कविताओं को बढ़िया समझ कर प्रकाशित कर देते हैं।

यह तो नए लेखकों की बात हुई, अब ज़रा पुराने लेखकों का हाल सुनिए। पुराने लेखकों से मेरा तात्पर्य उन लेखकों से है जिनकी कुछ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और जिनके लेख सम्पादक लोग बड़े चाव से छापा करते हैं। ऐसे लेखकों में से कुछ ने तो अपने मठ स्थापित कर रक्खे हैं। इस मठ में उनके दस-बीस शिष्य और मित्रगण होते हैं। लेखक साहब स्वयम् उस मठ के महन्त बन कर रहते हैं। महन्त जी जो कुछ लिखते हैं—शिष्य लोग उसकी प्रशंसा के पुल बाँधते हैं। महन्त जी ने पादा तो शिष्य लोगों ने शोर मचाया—"वाह! क्या मधुर स्वर निकाला! क्या मौलिक स्वर है! क्या कविता है!" महन्त जी की कृपा से शिष्य लोग लेखक और कवि बनते हैं। शिष्य लोग लेखक बन कर महन्त जी के लेख और कविताओं की आलोचना करते हैं। और उन्हें थोड़े ही दिनों में आचार्य अथवा सम्राट बना देते हैं। जहाँ दो-चार आलोचनाओं अथवा लेखों में उन्हें आचार्य तथा सम्राट लिखा गया, वहीं सम्पादक तथा प्रकाशक लोग भी उन्हें आचार्य और सम्राट मान कर उन्हें इसी उपाधि से अलङ्कृत करने लगते हैं। इतनी फ़ुरसत और इतनी सूझ किस भकुए में है कि पहले इस बात की छान-बीन तो कर ले कि वास्तव में वह आचार्य और सम्राट बनने योग्य है अथवा नहीं। जहाँ दो-एक लेखकों को आचार्य और सम्राट लिखते देखा, बस मान लिया कि वाक़ई यह आचार्य है, सम्राट है। ये आचार्य और सम्राट जो कुछ लिखते हैं वह हिन्दी की वस्तु नहीं, विश्व-साहित्य की चीज़ होती है। और उनकी लिखी हुई चीज़ का जवाब इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स और रूस को छोड़ कर संसार में और कहीं नहीं मिलता। हिन्दुस्तान बेचारा तो झख मारता है—वह है किस गिनती में? हिन्दुस्तान में अपना जवाब वे स्वयम् हैं। किसी की क्या मजाल जो उन्हें जवाब दे सके।

इधर-उधर हाथ मारने में ये लोग बड़े उस्ताद होते हैं। इस सफ़ाई से माल उड़ाते हैं कि बहुत कम लोगों को पता लगता है। और जिन्हें पता लग भी जाता है वे भी उनका कुछ नहीं कर सकते। प्रथम तो उनकी बात का विश्वास ही कौन करता है? "वाह! इतना

बड़ा लेखक कहीं चोरी कर सकता है ?" चलिए फ़ैसला हो गया। किसी ने कुछ लिखा भी तो शिष्यों ने उत्तर देना आरम्भ किया—इसमें भी महन्त जी का लाभ है—नाम ही होता है। "बदनाम भी होंगे तो क्या कुछ नाम न होगा ?" चार-छः दफ़ा पत्रों में खण्डन-मण्डन हुआ। महन्त जी का नाम छपा। सर्वसाधारण को पता लगा कि हाँ, यह भी कोई पाँच सवारों में हैं। कौन ठीक कहता है और कौन ग़लत—यह बात तो कुछ थोड़े से लोगों ने समझी—महन्त जी का नाम बहुत से लोग जान गए। यह लाभ क्या कुछ कम है ?

सम्पादक जी, इन महन्तों में कुछ ऐसे भी हैं, जो अपने शिष्यों की किसी सुन्दर कृति को अपने नाम से प्रकाशित करा लेते हैं और स्वयम् लिख कर अपने प्यारे शिष्य के नाम से छपवा देते हैं। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध जो ठहरा—अदला-बदला चलता रहता है। स्वयम् लिख कर शिष्य के नाम से छपवा कर शिष्य को आगे बढ़ाना, यह तो गुरु का बड़प्पन है, इसमें कुछ कहने की गुञ्जायश नहीं। परन्तु शिष्य की चीज़ पर नियत ख़राब करना, यह ज़रा कम समझ में आता है। आख़िर बेचारे करें क्या ? रात-दिन लिखते-लिखते अपना दिमाग़ तो खोखला हो चुका। और कुछ न कुछ निकलते रहना चाहिए, अन्यथा यदि लोग महन्त जी को भूल जाएँगे तो आचार्य और सम्राट की कष्टसञ्चित उपाधि मुफ़्त में विलीन हो जायगी। अतएव शिष्यों के माल पर अधिकार जमाते हैं। किसी तरह नाम तो चलता रहे और पैसे भी आते रहें। क्योंकि पुरस्कार जो मिलता है उसे गुरु जी गुरुदक्षिणा में डकार जाते हैं—उसमें से शिष्य को पान खाने भर को देते हों तो देते हों—अन्यथा सब हज़म ! परन्तु यह है कलियुग—शिष्य लोग बाग़ी हो जाते हैं और भण्डाफोड़ कर देते हैं। ऐसे ही एक कलियुगी शिष्य के द्वारा अपने राम को इस रहस्य का पता लगा है।

सम्पादक जी, अब तो अपने राम की भी इच्छा है कि एक मठ स्थापित करें। दस-बीस चेलों को एकत्र करके अपनी प्रशंसा का ढोल पिटवावें और थोड़े ही दिनों में कोई उपाधि प्राप्त कर लें। परन्तु अपने राम कवित्त-भूषण, सवैया-रत्न, दोहा-कलानिधि, कवि-सम्राट, उपन्यास-सम्राट, गल्पाचार्य, कहानी-पितामह और आख्यायिका के नाना, इत्यादि समस्त उपाधियों को अपने अयोग्य समझते हैं; क्योंकि ये उपाधियाँ बहुत सस्ती हो गई हैं। अपने राम कोई नई उपाधि चाहते हैं। अतएव आप मेरे लिए कोई नई उपाधि अभी से सोच रखिए। उपाधि बढ़िया हो; क्योंकि मैं जो कुछ लिखूँगा वह विश्व-साहित्य की वस्तु नहीं, वरन् ब्रह्माण्ड-साहित्य की वस्तु होगी। उस साहित्य का जवाब तभी निकलेगा जब ब्रह्मा जी कोई नई सृष्टि रचेंगे अथवा किसी ऐसी भाषा में निकलेगा जिस भाषा को संसार में कोई न समझता हो। जो कुछ मैं लिखूँगा उसको कोई भी न समझ सकेगा। जो समझेगा वह सीधा स्वर्गलोक को चलता बनेगा। वह स्वयम् न जायगा तो अपने राम उसे ज़बर्दस्ती भेज देंगे; क्योंकि अपने राम का लिखा हुआ समझने के पश्चात वह इस मर्त्यलोक में नहीं रहने पाएगा।

यह तो नाम कमाने की युक्ति हुई। परन्तु ख़ाली नाम कमाने से काम नहीं चलेगा। कुछ टके भी पैदा करने पड़ेंगे। इसके लिए अपने राम ने एक बड़ी सुन्दर युक्ति सोची है। एक एजेन्सी खोलेंगे। उसका नाम—"लेख और कविता प्रकाशित करावन एजेन्सी" होगा। उस एजेन्सी द्वारा ऐसे लेखकों और कवियों की कृतियाँ हड़प ली जाया करेंगी अथवा थोड़ा मूल्य देकर ख़रीद ली जाया करेंगी, जिनकी कृतियाँ सम्पादक लोग रख कर भूल जाया करते हैं और पोस्टेज भेजने पर भी वापस नहीं करते। उन कृतियों को थोड़ा नमक-मिर्च और मसाला लगा कर अपने राम अपने नाम से प्रकाशित कराया करेंगे और जो कुछ पुरस्कार मिलेगा वह सब का सब स्वयम् हड़प जाया करेंगे। अजी यह तो रोज़गार है, इसमें क्या चोरी। हमने एक लेख अथवा कविता आठ आने में ख़रीदी। अब हम उसे बीस-पचीस रुपए में बेचते हैं ? तो इसमें किसी के बाप का क्या इजारा ? और सम्पादक लोग बीस-पचीस रुपए लेख अथवा कविता पर तो देंगे नहीं, हमारे नाम पर देंगे। इसलिए हमारा यह डबल हक़ हो गया कि हम उसमें से मूल लेखक को एक फ़ूटी कौड़ी भी न दें। एक कलदार अठन्नी तो पहले ही थमा चुके हैं। दोबारा कुछ देने की आवश्य-

(शेष मैटर १२७ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)
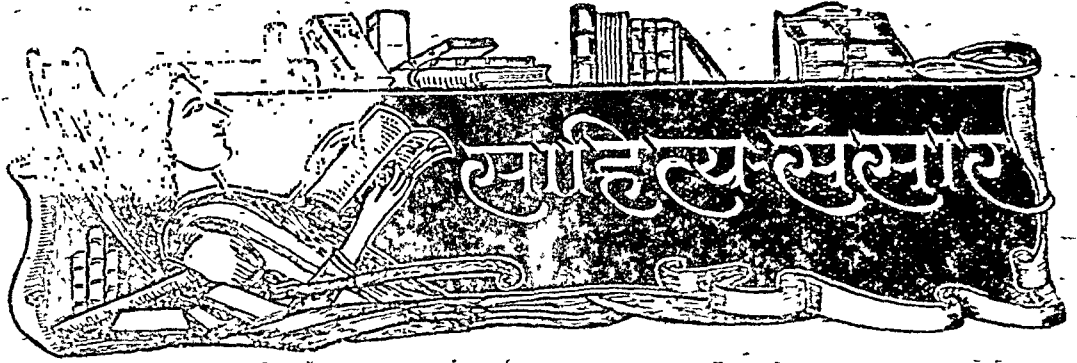
प्रेम-मोहिनी नाटक—लेखक और प्रकाशक पं० लक्ष्मीकान्त चतुर्वेदी, हेडमास्टर श्रीगोदावत स्कूल, पोष्ट—छोटी सादड़ी (मेवाड़), पृष्ठ संख्या ९२, मूल्य ॥), कागज साधारण, छपाई खराव।

माघ कृष्ण अमावस्या सम्वत १९८४ (ता० २२ जनवरी सन् १९२८) के 'श्रीकृष्ण-सन्देश' में 'नवीन उपहार' नामक लेख में यह वात प्रकाशित कराई गई थी कि जिस आदमी का 'वाल-विवाह से हानि' सम्वन्धी नाटक सर्वश्रेष्ठ होगा उसे इनाम दिया जायगा। इसी प्रतियोगिता-पुरस्कार के लिए चतुर्वेदी जी ने इस नाटक को लिखा था और यह वड़ी प्रसन्नता की वात है कि उन्हें यह पुरस्कार मिल भी गया। इसमें सन्देह नहीं कि इसके लिखने में लेखक ने खूब परिश्रम किया है और ग्रन्थ के प्रारम्भ में जो एक अठारह पृष्ठ की भूमिका है, उसमें लेखक ने कई संस्कृत के ग्रन्थों के दरवाज़े को भी खटखटाया है। पं० जी का यह प्रथम प्रयास सर्वथा प्रशंसनीय है।

पता नहीं कि लेखक ने नाटक के सम्बन्ध में कोई ग्रन्थ पढ़ा है या नहीं। पहले मैंने समझा कि जब इस नाटक पर पुरस्कार मिला है तो यह अवश्य ही सुन्दर होगा। परन्तु ज्यों-ज्यों मैं इसे पढ़ता गया, त्यों-त्यों पता चलने लगा कि यह कथा नीरस, भद्दी तथा व्यर्थ है। न तो कथानक में रोचकता है, न भाव है, न नाट्यकला का लेशमात्र है। मेरी समति में यदि इस प्रकार की पुस्तकें न लिखी जायँ तो हिन्दी का परम उपकार हो। आजकल हिन्दी में लेखकों की बाढ़ सी आ गई है और बहुत लोग अनधिकार चेष्टा करने लगे हैं। मेरा पूर्ण विश्वास है कि यह नाटक भी अनधिकारी चेष्टा का एक उदाहरण है। कथा का लगभग सब भाग नीरस है। अन्त में विष का प्रयोग भी व्यर्थ ही है। वहुत लोग दुखान्त का अर्थ नहीं समझते और अन्त में सब को मार डालना ही अच्छा समझते हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह ऐसे लोगों से हिन्दी की रक्षा करें।

* * *

रामराज्य (प्रथम भाग)—लेखक और प्रकाशक श्री० मुरारीलाल अग्रवाल ज्योतिषी, दिनदारपुरा, मुरादावाद; पृष्ठ-संख्या १३६, मूल्य ॥), छपाई और कागज सुन्दर।

इस पुस्तक के लेखक ने पहिले राम सम्बन्धी सब पुस्तकों का साधारणतः अवलोकन किया है और वाल्मीकि रामायण का विशेष कर। तब आपने इस ग्रन्थ को लिखना प्रारम्भ किया है। यह पुस्तक चार भागों में समाप्त होगी। प्रस्तुत पुस्तक उसका प्रथम भाग है। प्रत्येक भाग में सात परिच्छेद होंगे। प्रथम भाग में शासन-शैली तथा प्रजा के अतुलनीय प्रेम इत्यादि का वर्णन किया गया है।

प्रायः यह देखा जाता है कि कुछ लोग श्रीरामचन्द्र जी की कथा में विश्वास नहीं करते। इसलिए लेखक महोदय डर गए हैं कि जिस तरह से वाल्मीकि ऋषि ने श्रीरामचन्द्र जी का वर्णन किया है, सम्भव है उस तरह से वीसवीं शताब्दी के लोगों का उसमें विश्वास न हो। इसलिए इसके निर्माण करने में इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया है कि इसकी कथा ऐसी लिखी जाय कि इसमें वैज्ञानिक लोग भी विश्वास कर सकें। इसमें केवल श्रीरामचन्द्र जी के कौटुम्बिक जीवन का ही वर्णन नहीं किया गया है, किन्तु उनके भारी उत्तरदायित्व

का भी। इस पुस्तक में इस बात के दिखलाने का भी प्रयत्न किया गया है कि श्रीरामचन्द्र जी का शासन प्रजातन्त्र था। इसे वर्तमान के रँग में रँगने का भी पूरा प्रयत्न किया गया है। पुस्तक की भाषा सुन्दर तथा परिमार्जित है और सम्पूर्ण पुस्तक बिलकुल नए ढङ्ग से लिखी गई है। आशा है हिन्दी-संसार में इसका आदर होगा।

* * *

श्रद्धाञ्जलि—लेखक श्री० भगवानदास केला, प्रकाशक भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन, पृष्ठ-संख्या १८२, मूल्य ॥।)।

श्रीभगवानदास केला हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक हैं। यह पुस्तक उन्हीं की लिखी हुई है। एक प्रकार से इसमें २६ मनुष्यों का जीवन-चरित्र लिखा गया है। इसमें वाल्मीकि, राम, श्रीकृष्ण, गौतमबुद्ध, शङ्कराचार्य, पद्मिनी, कृष्ण, चैतन्य, राणा प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, अहल्याबाई, राममोहन राय, दयानन्द, लक्ष्मीबाई और तिलक भारतीय चरित्र हैं और सुक़रात, ईसा मसीह, मुहम्मद साहब, देवी जोन, मार्टिन लूथर, गेलिलियो, न्यूटन, एब्राहम लिङ्कन, फ़्लोरेन्स नाइटिङ्गल, मेज़िनी, टॉलस्टॉय, कार्ल-मार्क्स, सन युत सेन और बुकर टि वाशिङ्गटन अन्य देशीय चरित्र हैं। जिस प्रकार प्रायः जीवन चरित्र लिखा जाता है, उस प्रकार से यह पुस्तक नहीं लिखी गई है। पुस्तक लिखने का ढङ्ग लेखक का अपना है। यह ग्रन्थ इस प्रकार से लिखा गया है मानो लेखक इन महान आत्माओं के पास और उनके सामने खड़ा है और उनके प्रति अपने भावों का उद्गार, श्रद्धाञ्जलि के रूप में, उन्हें अर्पित कर रहा है। इस प्रकार से लिखने से पुस्तक का महत्व बढ़ गया है और वह अधिक मनोरञ्जक हो गई है। लेखक ने केवल महत्वपूर्ण घटनाओं पर ही अधिक प्रकाश डाला है। इससे पुस्तक की रोचकता और भी अधिक हो जाती है। इसकी भाषा साहित्यमय है। मैं इस पुस्तक को प्रत्येक हिन्दी जानने वाले के हाथ में देखना चाहता हूँ।

* * *

हिन्दू नाम—लेखक वैदिक मुनि, प्रकाशक स्वामी रामस्वरूप, पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, हिन्दू ग्रन्थमाला अमृतसर या सन्त-समाचार पुस्तक भण्डार, अमृतसर, पृष्ठ ७०, मूल्य ।-)।

इस पुस्तक में यह विचार किया गया है कि हिन्दू नाम कैसे पड़ा। कुछ लोग समझते हैं कि जब विधर्मी लोग पहले भारत में आए, तब सिन्धु नदी के उस पार के लोगों ने उन्हें लूट लिया। इसलिए विधर्मियों ने पूर्ववालों को लुटेरा समझा और उन्हें हिन्दू (लुटेरा) कहना प्रारम्भ किया और हमारे पूर्वजों ने अज्ञान के कारण उसे स्वीकार कर लिया। दूसरे लोग कहते हैं कि जब विधर्मियों ने भारत पर आक्रमण किया और हमारे पूर्वजों को परास्त कर दिया तब हमारे पूर्वजों ने उनके दासत्व के जुए को अपने कन्धे पर रख लिया। इससे विदेशियों ने हम लोगों के लिए दास के अर्थ में 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। वास्तव में उन लोगों ने दास या ग़ुलाम के अर्थ में ही हिन्दू शब्द का प्रयोग किया। इतना ही नहीं, उन विदेशियों ने यहाँ तक कहा कि आज से तुम लोग अपने को हिन्दू कहना, नहीं तो जान से मार दिए जाओगे। तभी से हम लोगों का नाम हिन्दू पड़ गया।

इस ग्रन्थ के लेखक ने इस बात के सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि हम लोगों का यह नाम मन्त्र काल से चला आता है और ऊपर के दोनों मत बहुत ही अधिक

(१२५ पृष्ठ का शेषांश)

कता ही क्या है। हम तो व्यापार करेंगे, कुछ ख़ैरात-खाता थोड़ा ही खोलेंगे। क्यों सम्पादक जी, यह ढङ्ग कैसा रहेगा? आम के आम गुठलियों के दाम! इधर नाम भी बैल के सींगों की तरह बढ़ रहा है उधर रुपया भी आ रहा है। फिर क्या है। हमीं हम होंगे। परन्तु यह सब तभी सुफल होगा जब आप कोई गज़ दो गज़ लम्बी उपाधि अपने राम के लिए सिला रक्खेंगे। क्योंकि यदि उपाधि न मिली तो अपने राम का किया-धरा सब व्यर्थ हो जायगा। इसलिए सारा दारोमदार आप पर है। ऐसे समय में आप थोड़ा साथ दे डालें तो आनन्द आ जाय। उत्तर शीघ्र दीजिएगा।

भवदीय,

विजयानन्द (दुबे जी)

* * *

भ्रामक हैं। इस पुस्तक के लेखक ने वास्तव में बड़ी योग्यता का परिचय दिया है और अनेक पुस्तकों से अच्छे-अच्छे अवतरणों को उद्धृत किया है। इससे पुस्तक की प्रामाणिकता बढ़ गई है।

—अवध उपाध्याय

* * *

व्रतोत्सव-विधान—लेखक श्री० रामेश्वर-प्रसाद ओझा, प्रकाशक ओझा-बन्धु आश्रम, इलाहाबाद, पृष्ठ-संख्या १२९, मूल्य ||=)।

"किसी जाति के यथार्थ रूप का ज्ञान उसके त्योहारों से होता है। ये त्योहार जाति के उत्थान-पतन के परिचायक होते हैं। अतएव जीवन-संग्राम में दौड़ लगाने वाले कर्मवीरों के लिए इनका बड़ा महत्व है!" इन्हीं शब्दों से इस पुस्तक की भूमिका आरम्भ होती है। आगे चल कर कहा गया है—"यद्यपि इस समय हमारी असावधानी, हमारी मूर्खता से उत्सवों का उद्देश्य पूरा-पूरा पालित नहीं होता, उत्सवों में बहुत सी मूढ़ धारणाएँ प्रचलित हो गई हैं, इतना होने पर भी उत्सवों की उपयोगिता में सन्देह नहीं किया जा सकता।" निस्सन्देह व्रतों और उत्सवों ने हमारे जातीय जीवन और राष्ट्रीय भावों के संरक्षण में बहुत बड़ा भाग लिया है। परन्तु दुःख की बात है कि हम इन व्रतों और उत्सवों के सच्चे रहस्य को भूल गए हैं। हम लोग व्रत करते हैं, पर उसके अर्थ और महत्व को नहीं समझते और इसीलिए उसका फल भी हमें नहीं मिलता।

इस पुस्तक में नव वर्ष, गणेश चतुर्थी, करवा चौथ, जन्माष्टमी, रामनवमी, गङ्गा दशहरा, अनन्त चतुर्दशी, महाशिवरात्रि, भैयादूज, नाग पञ्चमी, वसन्त पञ्चमी, दीपावली, रक्षाबन्धन, होली, छठ आदि ३३ व्रतों का वर्णन बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया है। त्योहारों के ऐतिहासिक महत्व के साथ ही साथ उनके करने का शास्त्रीय विधान भी समझाया गया है। इससे पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है।

इन त्योहारों के विषय में संस्कृत ग्रन्थों में जो कथाएँ लिखी गई हैं, उनमें कई बातें ऐसी घुसेड़ दी गई हैं, जिनसे अन्धविश्वास फैलता है। उदाहरण के लिए, हरतालिका व्रत के माहात्म्य में कहा गया है—"सौभाग्य की इच्छा रखने वाली स्त्रियों को यह व्रत अवश्य करना चाहिए। जो स्त्रियाँ यह व्रत नहीं करतीं और इस दिन आहार करती हैं; वे सात जन्म तक वन्ध्या और विधवा होती हैं।" इसी प्रकार गणेश चतुर्थी को चन्द्र-दर्शन का निषेध करते हुए कहा गया है—"भगवान ने इस दिन चन्द्रमा का दर्शन किया था और उन्हें कलङ्क लगा था। इसी से आज के चन्द्रमा को न देखना चाहिए।" करवा चौथ का माहात्म्य दिखाने के लिए कहा गया है कि एक नवविवाहिता कन्या केवल इसीलिए विधवा हो गई कि उसने करवा चौथ में भूख लगने के कारण चन्द्रोदय होने के पहले ही अर्घ्य देकर भोजन कर लिया। ये बातें ऐसी हैं जिनका आधार अन्ध-विश्वास के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। व्रत करने से उसका सुफल मिलेगा, और नहीं करने से वह सुफल नहीं मिलेगा, यह बात तो समझ में आती है, पर व्रत न करने से ऐसे-ऐसे भीषण दण्ड मिलेंगे, यह बात निरी कपोल-कल्पित है। इसी प्रकार के और भी अनेक भ्रम इन व्रतों के विषय में फैले हुए हैं। इस पुस्तक में ऐसी बातों की आलोचना की गई है, पर बहुत कम, प्रायः नहीं के बराबर। व्रतों के समस्त विधान पर और इनकी कथाओं पर जैसे ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया गया है, वैसे ही यदि वैज्ञानिक दृष्टि से भी विचार किया गया होता तो इस पुस्तक का महत्व बहुत बढ़ जाता। होली और दिवाली पर जो मूर्खताएँ की जाती हैं, उनकी इस पुस्तक में तीव्र निन्दा की गई है।

सब बातों पर विचार करते हुए पुस्तक बहुत ही उपयोगी हुई है। ख़ास कर स्त्रियों के लिए यह बड़े काम की है। भाषा शुद्ध, मँजी हुई और विषय के उपयुक्त है। छपाई, सफ़ाई सुन्दर, काग़ज़ अच्छा।

—शुकदेव राय

* * *

जीवन-स्मृति—लेखक श्री० रवीन्द्रनाथ ठाकुर; अनुवादक श्री० सूरजमल जैन, प्रकाशक मित्र ग्रन्थमाला कार्यालय, सीतलामाता बाज़ार, इन्दौर, पृष्ठ-संख्या ३२५ से ऊपर, मूल्य २), छपाई, सफ़ाई और काग़ज़ साधारण।

कविश्रेष्ठ रवीन्द्र बाबू का लिखा हुआ यह आत्मचरित है। जो लोग उनकी लेखन-शैली से परिचित हैं,

वे जानते हैं कि रवि बाबू किसी साधारण से साधारण बात को भी कितने रोचक और सुन्दर ढङ्ग से कह देते हैं। फिर, यह जीवन-स्मृति तो अनेक मधुर स्मृतियों से भरी हुई है। कई परिच्छेद तो मुझे बड़े ही अच्छे लगे। पढ़ने में उपन्यास का सा आनन्द आता है। पुस्तक समाप्त किए बिना छोड़ने को जी नहीं चाहता। लेकिन इतना सब होते हुए भी अनुवाद की शिथिलता खटकती है। अनुवाद अच्छा नहीं हुआ। जगह-जगह बङ्गालीपन का असर पड़ गया है। यों भी भाषा अशुद्ध और कमज़ोर है। लेकिन हमारा विश्वास है कि साधारणतया इस पुस्तक से पाठकों का मनोरञ्जन हो सकेगा और वे इससे कुछ सीख भी सकेंगे।

* • *

२१ बनाम ३०—लेखक श्री० चतुरसेन शास्त्री, प्रकाशक सञ्जीवन कार्यालय, दिल्ली, पृष्ठ-संख्या लगभग ३२५, मूल्य १॥) रुपया, छपाई और काग़ज़ दरिद्र।

इस पुस्तक के इनर कवर पर इसके विषय की ओर इङ्गित करते हुए लिखा है—"वर्तमान आन्दोलन पर नई कल्पना और नए विचारों द्वारा अपूर्व प्रकाश डालने वाला, बड़ी ओजस्वी भाषा में लिखा हुआ, सर्वथा मौलिक ग्रन्थ"। मुझे इस बात से कोई इन्कार नहीं हो सकता कि विचार मौलिक हैं, गम्भीर हैं और भाषा भी बड़ी ओजस्वी है, किन्तु इसकी अनेक बातों में औचित्य का अभाव खटकता है। मुझे दुःख है कि अपने 'मौलिक विचारों' में शास्त्री जी ने सब जगह उदारता से काम नहीं लिया। जहाँ-तहाँ वे महात्मा गाँधी और राष्ट्रपति जवाहरलाल के व्यक्तित्व पर भी आक्रमण कर बैठे हैं। मैं नहीं समझता यह कहाँ तक उचित है। फिर भी, विचार उत्तम हैं, सलाहें काम की हैं और इनसे जनता को परिचित हो लेना चाहिए।

—शुकदेव राय

* * *

कौन जागता है?—लेखक श्री० विनायक नन्दशङ्कर मेहता, आई० सी० एस०, अनुवादक पं० रामनरेश त्रिपाठी, प्रकाशक हिन्द-मन्दिर प्रयाग, छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य ।।)।

त्रिपाठी जी हिन्दी के बहुत बड़े कवि और लेखक हैं। हिन्दी भाषा-भाषी जनता को उन पर गर्व हो सकता है। जब उनके द्वारा अनुवादित इस नाटक का नाम सुना था, तब मन में बड़ी-बड़ी आशाएँ इस पुस्तक के प्रति बँध गई थीं। अब जब यह पुस्तक सामने आई है, तो देख कर दुःख होता है। मूल पुस्तक चाहे जैसी भी रही हो, अनुवाद बिलकुल निकम्मा हुआ है। कविताएँ इतनी दरिद्र, इतनी शिथिल और इतनी अरुचिकर हैं कि पढ़ने को जी नहीं चाहता। पुस्तक के प्रारम्भ में त्रिपाठी जी ने एक छोटी सी भूमिका लिखी है। उसमें कहा है—"गुजराती मेरी मातृ-भाषा नहीं, अतएव उसके शब्द और आन्तरिक रस को हिन्दी में ठीक-ठीक लाने में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, यह मैं नहीं कह सकता।" त्रिपाठी जी की यह शङ्का सोलहो आने उचित है। इस काम में वे बिलकुल ही सफल नहीं हो सके या बहुत कम सफल हो सके हैं।

पाठकगण! कुछ अनुवादित कविताओं की बानगी देखिए—

१—मित्र मेरा प्राण सम—
नहीं फिर देखूँ दिदार!

२—दैव-सर्प मार सफल जन्म करेंगे।
प्राण क्यों न जायँ कदम आगे धरेंगे॥

३—वेग रोक ऐ सखा!
नहीं तो तीर छोड़ता हूँ मैं॥

४—बाजे अस्तोदय की वीणा
क्षण-क्षण गगनाङ्गण में रे।
मधुर-मधुर किरणें फैला कर—
देखो है आ रहा निशाकर।

५—नाहीं कर न सके जो प्राणी।
मानूँ उसको सफल जिन्दगानी।

६—झूला-झूलो प्रियतम प्यारे—
झूला बँधा चन्दन डाल से।

७—पूनो की रजनी सा मैं भी
पाऊँ पूर्ण कला रे।
निष्कामी प्रभु कामी होकर
नूतन रास रचाया।

बस, इतने ही नमूनों से पाठकों का जी ऊब गया

स्लोन का मलहम
दर्दों का नाशक है !

चोट और मोच के लिए स्लोन के मलहम का भरोसा करो

सभी खिलाड़ियों को स्लोन के मलहम की एक शीशी अपने पास रखनी चाहिए । घाव हो जाने, मोच आ जाने या दर्द होन पर, यह उन जगहों में रक्त का स्वाभाविक दौरा जारी कर आराम पहुँचाता है । स्लोन के मलहम का व्यवहार कीजिए, यह शीघ्र ही आपके चोट और मोच को आराम कर देगा ।

स्लोन का मलहम दर्दों का नाश करता है !

Sloan's Liniment *kills pain!*

SLOAN'S LINIMENT

नवीन संशोधित संस्करण ! नवीन संशोधित संस्करण !!

विधवा-विवाह-मीमांसा

[ले० श्री० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए०]

यह महत्वपूर्ण पुस्तक प्रत्येक भारतीय गृह में रहनी चाहिए। इसमें नीचे लिखी सभी बातों पर बहुत ही योग्यतापूर्ण और ज़बरदस्त दलीलों के साथ प्रकाश डाला गया है :—

(१) विवाह का प्रयोजन क्या है? मुख्य प्रयोजन क्या है और गौण प्रयोजन क्या है? आजकल विवाह में किस-किस प्रयोजन पर दृष्टि रक्खी जाती है? (२) विवाह के सम्बन्ध में स्त्री और पुरुष के अधिकार और कर्त्तव्य समान हैं या असमान? यदि समानता है, तो किन-किन बातों में और यदि भेद है, तो किन-किन बातों में? (३) पुरुषों के पुनर्विवाह और बहु-विवाह धर्मानुकूल हैं या धर्म-विरुद्ध? शास्त्र इस विषय में क्या कहता है? (४) स्त्री का पुनर्विवाह उपर्युक्त हेतुओं से उचित है या अनुचित? (५) वेदों से विधवा-विवाह की सिद्धि (६) स्मृतियों की सम्मति (७) पुराणों की साक्षी (८) अङ्गरेज़ी क़ानून (English Law) की आज्ञा (९) अन्य युक्तियाँ (१०) विधवा-विवाह के विरुद्ध आक्षेपों का उत्तर—(अ) क्या स्वामी दयानन्द विधवा-विवाह के विरुद्ध हैं? (आ) विधवाएँ और उनके कर्म तथा ईश्वर-इच्छा (इ) पुरुषों के दोष स्त्रियों को अनुकरणीय नहीं (ई) कलियुग और विधवा-विवाह (उ) कन्यादान-विषयक आक्षेप (ऊ) गोत्र-विषयक प्रश्न (ऋ) कन्यादान होने पर विवाह वर्जित है? (ॠ) बाल-विवाह रोकना चाहिए, न कि विधवा-विवाह की प्रथा चलाना (ऌ) क्या विधवा-विवाह लोक-व्यवहार के विरुद्ध है? (ॡ) क्या हम आर्यसमाजी हैं, जो विधवा-विवाह में योग दें? (११) विधवा-विवाह के न होने से हानियाँ—(क) व्यभिचार का आधिक्य (ख) वेश्याओं की वृद्धि (ग) भ्रूण-हत्या तथा बाल-हत्या (घ) अन्य क्रूरताएँ (ङ) जाति का ह्रास (१२) विधवाओं का कच्चा चिट्ठा।

इस पुस्तक में १२ अध्याय हैं, जिनमें क्रमशः उपर्युक्त विषयों की आलोचना की गई है। कई सादे और तिरङ्गे चित्र भी हैं। इस मोटी-ताज़ी सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रु० है, पर स्थायी-ग्राहकों को पौने मूल्य अर्थात् २।) रु० में दी जाती है, पुस्तक में दो तिरङ्गे, एक दुरङ्गा और चार रङ्गीन चित्र हैं!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

सती-दाह

[ले० अनेक पुस्तकों के रचयिता—श्रीयुत पं० शिवसहाय जी चतुर्वेदी]

सती-प्रथा का रक्त-रञ्जित इतिहास

यदि धर्म के नाम पर स्वेच्छाचारिता का नङ्गा चित्र आप देखना चाहते हैं, तो इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को एक बार अवश्य पढ़िए। रूढ़ियों से चली आई इस रक्त-रञ्जित कुप्रथा ने न जाने कितनी होनहार युवतियों की हत्याएँ की है। किस प्रकार विधवाओं को सती होने पर मजबूर किया जाता था, उनकी इच्छा न होने पर भी, किस प्रकार उन्हें दहकती हुई अग्नि में झोंक दिया जाता था; किस प्रकार विधवाओं को जमीन में जीवित गाड़ दिया जाता था; उनके सम्बन्धी अन्ध-विश्वास के वशीभूत होकर किस प्रकार उन पर अत्याचार करते थे तथा भारतीय महिलाओं की कैसी दुर्दशा होती थी—यदि ये सब बातें प्रामाणिक रूप से आप जानना चाहते हैं तो एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। ये भारतीय इतिहास के वे रक्त-रञ्जित पृष्ठ हैं, जिन्हें पढ़ कर आँखों से आँसुओं की धारा अपने समस्त वेग से प्रवाहित होकर भारतीय समाज को एक बार ही बहा देने का प्रयत्न करती है। मूल्य २॥)

[ले० स्वर्गीय चण्डीप्रसाद जी, बी० ए०]

समाज का नङ्गा चित्र जिस योग्यता से इस पुस्तक में अङ्कित किया गया है, हम दावे के साथ कह सकते हैं, अब तक ऐसा एक भी उपन्यास हिन्दी-संसार में नहीं निकला है। बाल विवाह और वृद्ध-विवाह के भयङ्कर दुष्परिणामों के अलावा भारतीय हिन्दू-विधवा का जीवन जैसा आदर्श और उच्च दिखलाया गया है, वह बड़ा ही स्वाभाविक है, पढ़ते ही तबीयत फड़क उठती है। भाषा अत्यन्त सरल और मुहावरेदार है। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, मूल्य केवल २॥); स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र !

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

[ले० "कैवर्त-कौमुदी"-सम्पादक श्री० अनूपलाल जी मण्डल, साहित्य-रत्न]

भूमिका-लेखक—

सुप्रसिद्ध आलोचक श्री० अवध उपाध्याय जी

निर्वासिता वह मौलिक उपन्यास है, जिसकी चोट से क्षीणकाय भारतीय समाज एक बार ही तिलमिला उठेगा। अन्नपूर्णा का नैराश्यपूर्ण जीवन-वृत्तान्त पढ़ कर अधिकांश भारतीय महिलाएँ आँसू बहावेंगी। कौशलकिशोर का चरित्र पढ़ कर समाज-सेवियों की छातियाँ फूल उठेंगी। यह उपन्यास घटना-प्रधान नहीं, चरित्र-चित्रण-प्रधान है। निर्वासिता उपन्यास नहीं, हिन्दू-समाज के वक्षस्थल पर

दहकती हुई चिता है

जिसके एक-एक स्फुलिङ्ग में जादू का असर है। इस उपन्यास को पढ़ कर पाठकों को अपनी परिस्थिति पर घण्टों विचार करना होगा, आँसू बहाना होगा, भेड़-बकरियों के समान समझी जाने वाली करोड़ों अभागिनी स्त्रियों के प्रति करुणा का स्रोत बहाना होगा, आँखों के मोती बिखेरने होंगे और समाज में प्रचलित कुरीतियों के विरुद्ध

क्रान्ति का झण्डा

बुलन्द करना होगा; यही इस उपन्यास का संक्षिप्त परिचय है। सुप्रसिद्ध आलोचक श्री० अवध उपाध्याय ने अपनी भूमिका में पुस्तक की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, पृष्ठ-संख्या लगभग ४००, सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रु०; स्थायी ग्राहकों से २।) मात्र !!

चाँद
वर्ष ९, खण्ड १
संख्या २, पूर्ण संख्या ९८
सम्पादक—
श्रीरामरखसिंह सहगल
दिसम्बर
१९३०
G. ANSARI

The Hon'ble Justice Sir B. J. Dalal of the Allahabad High Court, says

Dear Mr Saigal,

Your album is a production of great taste & beauty & has come to me as a pleasant surprise as to what a press in Allahabad can turn out. Moon worshipped & visit to the Temple are particularly charming pictures, eye like & full of details. I congratulate you on your remarkable enterprise & thank you for a present which has given & will continue to give me a great deal of pleasure.

Yours Sincerely
B J Dalal

Rs. 4/- only
Postage Extra)

The 'CHAND' Office
CHANDRALOK—ALLAHABAD

अर्थात्—

ईसा-चरित्र पर एक आलोचनात्मक दृष्टि

लेखक—श्री० प्रो० विश्वेश्वर जी, 'सिद्धान्त-शिरोमणि'

भूमिका-लेखक—आचार्य श्री० गङ्गाप्रसाद जी, एम० ए०, एम० आर० ए० एस०, चीफ़ जज

"PIONEER"

Sunday, August 31st. 1930

Hindi literature has a large number of propagandist and other kind of books on Christianity, but there has been no book giving the life of Jesus Christ in an uncoloured way. This book is an attempt —and a good one—to remove that deficiency. Coming as it does from the pen of an Arya Samajist, it does credit to the writer for his sympathetic style. He has rightly shown Christ as a great *Bhakt* (lover) of God and has shown how the life of Christ was a life of sacrifice. The book should be read by all who want to know the life of the founder of a religion which is now followed by a very large number of persons throughout the world. The book is well-illustrated.

इस पुस्तक में महापुरुष ईसा के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएँ तथा उनके अमृत-मय उपदेश बहुत ही सुन्दरतापूर्वक वर्णन किए गए हैं। सांसारिक मनुष्यों के लिए यह पुस्तक स्वर्गीय वस्तु है! केवल एक बार के पढ़ने से आपकी आत्मा में एक दिव्य ज्योति उत्पन्न हो जायगी. महान से महान विघ्न-बाधाएँ तथा आपत्तियाँ आपको तुच्छ प्रतीत होंगी। पुस्तक की भाषा अत्यन्त मधुर, मुहावरेदार और ओजस्विनी है। भाव अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। छपाई-सफ़ाई बहुत सुन्दर; सचित्र एवं सजिल्द; तिरङ्गे प्रोटेक्टिङ्ग कवर से सुशोभित पुस्तक का मूल्य केवल २।।); स्थायी ग्राहकों के लिए १।।।=) मात्र !!

☞ **व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद**

विरह-विधुरा दमयन्ती

नल के दूत, और किसको मिल सकता था यह सरल दुलार,
हंस तुम्हारे अहो भाग्य हैं ! स्पर्श करो तुम कर सुकुमार !!
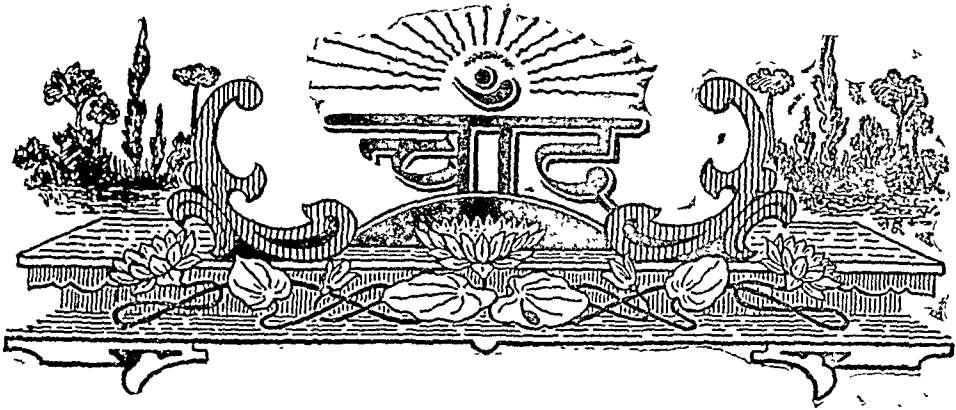
—आ० प्र० श्रीवास्तव

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

नयन के प्रति

[श्री० आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव]

नयन, सबेरे खुल कर क्या तुम—
देख रहे ऊषा का रूप ?
अत्याचारों से भारत यह—
हुआ जा रहा है विद्रूप !

इधर सुगुम्फित स्वर्ण वर्ण यह,
उधर लाल शोणित की धार,
ठोकर खाते दीन-जनों के—
परिवारों का हाहाकार !

लावेगी यह कितने जन के—
घोर दुखों का प्रातःकाल ?
मुग्ध नयनमय जगत, किन्तु वह—
क्रूर दृगों का दैव कराल !

मन्द पवन का चलना यह, वह—
क्रमशः बाधाओं की चाल।
जीवों का आनन्द, किन्तु वह—
दुखियों का जीवन जञ्जाल !

सो जाओ फिर नयन, जागना—
भारत की जागृति के सङ्ग !
इस जागृति से चिर-सुषुप्ति का—
कैसे फीका होगा रङ्ग !

अगर देखना हो, तो देखो—
अपने भीतर की ऊषा !
संयत, बलि होने को तत्पर—
मन के अन्तर की ऊषा !!
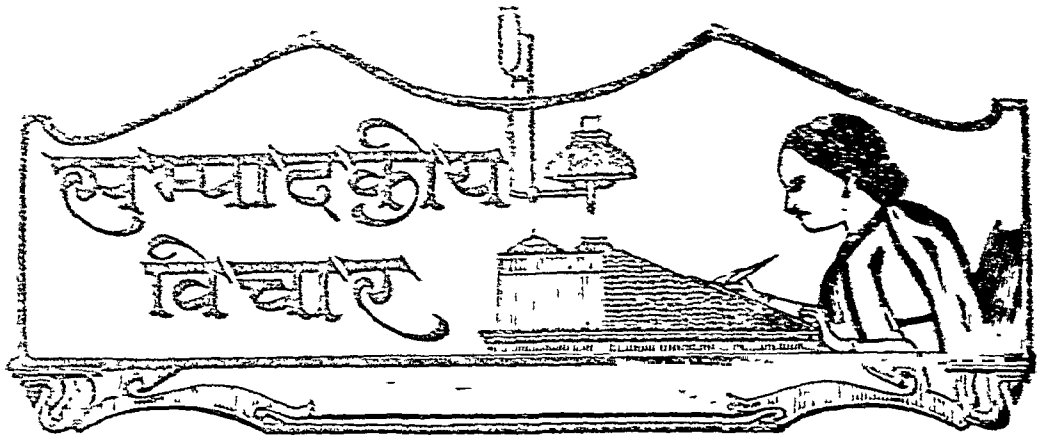
दिसम्बर, १९३०

एक आवश्यक निवेदन
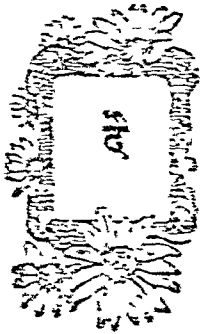
व के दुर्विधान से आज इस अभागे देश का वर्तमान वातावरण इतना क्षुभित, इतना हिंसापूर्ण एवं प्रतिशोध की भावनाओं से इतना ओत-प्रोत हो रहा है कि कोई भी आत्माभिमानी व्यक्ति अपने को किसी भी समय सुरक्षित नहीं समझ सकता! आज, जिन अज्ञेय परिस्थितियों में होकर हमारा देश गुज़र रहा है, वह इतिहासकारों के विवेचन का विषय है, हमारा नहीं! यह वह समय है, जब कि भारत ही नहीं, समस्त एशियाई देशों का एक नवीन इतिहास एवं मान-चित्र भविष्य के गर्भ में निर्मित हो रहा है; अतएव हमारे शासकों की हम पर विशेष कृपा-दृष्टि का होना भी स्वाभाविक ही है। सब से महत्वपूर्ण बात तो यह है कि हमारी गुलामी की अनियन्त्रित शृङ्खला ने हमारे शासकों के हौसले इतने अधिक मात्रा में बढ़ा दिए हैं कि आज न्याय और अन्याय तक का विचार करना उनके लिए सर्वथा असम्भव हो गया है! नौबत यहाँ तक पहुँच गई है कि आज अपने देश का शुभचिन्तक वर्तमान ब्रिटिश-भारत में 'विद्रोही' और अन्याय के विरोध को "अराजकता" के नाम से पुकारा जा रहा है। अतएव ऐसी गम्भीर परिस्थिति में हमारे मदान्ध महाप्रभु जो भी न कर डालें, थोड़ा है!

यह सत्य है कि 'प्रेस-ऑर्डिनेन्स' २९ अक्टूबर को समाप्त हो गया, किन्तु अभी उसके भाई-बन्धु आठ दूसरे ऑर्डिनेन्स हमारे सामने हैं। आजकल का शासन इतना निरङ्कुश है, कि उसे देखते हुए—एक पत्रकार की हैसियत से—हम अपने को किसी भी समय सुरक्षित नहीं समझ सकते। अतएव जब तक परिस्थिति से मुक़ाबला करने के लिए हम तैयार न हो लें, अपने मनोभावों को निर्भीकतापूर्वक व्यक्त कर, हम आपत्ति मोल लेने के पक्ष में नहीं हैं। इसका परिणाम यह होगा, कि जो थोड़ी-बहुत सेवा इस समय "चाँद" और "भविष्य" द्वारा हो रही है, उसमें भयङ्कर बाधा उपस्थित हो जायगी। हम सचाई और वास्तविकता की ओर से अपनी दृष्टि फेर कर केवल काग़ज़ काला करने की रस्म अदा करना नहीं चाहते; अतएव कुछ दिनों तक हमने 'सम्पादकीय विचार' शीर्षक कॉलम को जान-बूझ कर सूना रखने का निश्चय किया है। हमारे अनेक प्रतिष्ठित सहयोगियों ने भी—जिनके जीवन का निश्चित-लक्ष्य उनके सामने है—ऐसा ही निश्चय किया है। इस संस्था के अनेक ज़िम्मेदार शुभचिन्तकों ने भी हमें ऐसा करने की सलाह दी है, अस्तु।

परिस्थिति के अनुकूल हम अधिक से अधिक सुदृढ़ प्रबन्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं, जैसे ही हमारी इच्छानुकूल प्रबन्ध हुआ, उसी रूप से अपने विचार निर्भीकतापूर्वक हम पाठकों के सामने उपस्थित करने लगेंगे—फिर उसका परिणाम चाहे जो भी हो। कुछ दिनों के लिए पाठकगण वर्तमान परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुए हमें क्षमा करें!

—रामरखसिंह सहगल

पतिता

[आचार्य श्री० चतुरसेन शास्त्री]

मेरा नाम आनन्दी है। जब मेरी आयु ११ वर्ष की थी, तब मैं अपनी मौसी के साथ दिल्ली आई। मैंने कभी दिल्ली देखी न थी, सुनी थी। बहुत तारीफ़ सुनी थी—बिजली की रौशनी, ट्राम, पङ्खे, मोटर—सब कुछ मेरे लिए स्वप्न-सा था। अब तक मैं देहात में रही, पहाड़ में खेली और बड़ी हुई। मेरे माँ-बाप ज़मींदार थे, नाम ज़बान पर लाना नहीं चाहती, मैं कलङ्कित हुई, उन्हें क्यों बट्टा लगाऊँ? मैं उनकी इकलौती बेटी थी, गोदों में पली और प्यार में नहाई, मेरे बराबर सुखी कौन था? जब मैं सुनहरी धूप में तितली की तरह उछलती-कूदती सामने की हरी-भरी पर्वत-श्रेणियों पर दौड़-धूप करती थी, मेरी पड़ोसिनें गीत गाती घास का गट्ठर पीठ पर लादे मेरे सामने से निकल जातीं। झरने का मोती के समान उज्ज्वल और बर्फ़ के समान ठण्डा पानी, इठला-इठला कर पीती, उसमें पत्थर मार कर उसे उछालती, कभी पत्ते की नाव बना कर बहाती!

ओह! मैं कितना हँसती थी? हँसते-हँसते आँसू निकल आते थे। आज तो रोने पर भी नहीं निकलते, मालूम होता है कलेजे का सारा रस सूख गया है। लड़कियों को मैं ख़ूब मारती, पर पीछे उन्हें चुमकार-पुचकार कर राज़ी भी कर लेती। मुझमें अकड़ ख़ूब थी, पर मैं भोली भी एक ही थी, जो कोई मुझसे प्यार से बोलता, मैं उसकी चाकर, जो ज़रा टेढ़ा हुआ और बस फिर मैं भी टेढ़ी!

जीवन क्या होता है, मैंने कभी नहीं जाना; मैं बड़ी हो जाऊँगी, यह मैंने नहीं सोचा; मुझ पर दुनिया की कोई ज़िम्मेदारी पड़ेगी, इसका ध्यान भी न था। भविष्य की आने वाली सारी आँधियों और तूफ़ानों के भय से दूर मैंने हिमालय की पवित्र और सुखमयी गोद में अपने हीरे-मोती से ग्यारह साल व्यतीत किए।

२

दिल्ली देख कर मैं सचमुच घबरा गई थी। और मौसी के घर में घुसते तो भय लगता था। वह घर था? देदीप्यमान इन्द्रभवन था। वह सजावट देख कर मेरी आँखें बन्द होने लगीं। बढ़िया रङ्ग-बिरङ्गे क़ालीन, दूध के समान उज्ज्वल चाँदनी, बड़े-बड़े मसनद, मख़मली गद्दे, मसहरियाँ, तस्वीर, सिङ्गारदान, आइने और न जाने क्या-क्या? मेरे पद-स्पर्श से, छू लेने से कहीं कोई वस्तु मैली न हो जाय, बिगड़ न जाय—इस भय से मैं सिकुड़ कर एक कोने में खड़ी हो गई। मैं मैली-कुचैली गाँव की अल्हड़ बच्ची इस घर में कहाँ रहूँगी? रह-रह कर भाग जाने की इच्छा होती थी।

मौसी ने मेरी द्विविधा को भाँप लिया, उसने पास आकर दुलार से कहा—जा बेटी! ऊपर हीरा है और भी कई जनी हैं, तू भी वहीं जाकर बैठ।

मैं ऊपर चल दी। क्या देखा? कह ही दूँ? रूप वहाँ बिखरा पड़ा था। मानो किसी ने चाँद को ज़ोर से ज़मीन पर दे मारा हो और उसके टुकड़े बिखरे पड़े हों। सब १०-१५ थीं। सभी एक से एक बढ़ कर। सभी अलबेली मस्तानी थीं, और चुहलबाज़ी में लगी थीं। किसी की कङ्घी-चोटी हो रही थी, किसी का उबटन; कोई धोती चुन रही थी, कोई गजरा गूँथ रही। सभी नवेलियाँ थीं, यौवन उनके अङ्गों से फूट रहा था। यौवन और सौन्दर्य के ऊपर एक और उन्मादिनी वस्तु थी, जिसे तब न समझा था, बहुत दिन बाद, जब मैं भी उनमें मिल गई, समझा—वह थी वेश्यापन की धृष्टता। और उसने उन्हें आफ़त बना रक्खा था।

वे लड़कियाँ न थीं, स्त्रियाँ भी न थीं, वे थीं आग के छोटे-छोटे अङ्गारे, पड़े दहक रहे थे, छूते ही छाला उत्पन्न कर दें। इन सबके बीच में हीरा थी। उसका भी कुछ वर्णन तो करना ही पड़ेगा, वैसा रूप तब से आज तक, यद्यपि

मैंने जीवन भर रूप के सौदे किए—पर देखा ही नहीं, सुना भी नहीं। इटली के कारीगर की बनाई सङ्गमर्मर की प्रतिमा की भाँति, हंस की सी सुराहीदार और सफ़ेद गर्दन उठाए वह बैठी बाल सुखा रही थी। एक धानी दुपट्टा उसके वक्षस्थल पर अस्त-व्यस्त पड़ा था, पर उस अनिन्द्य वक्षस्थल को शृङ्गार करने के लिए और किसी परिधान की आवश्यकता ही न थी। प्रभातकालीन नव-विकसित कमल-पुष्प के समान उसकी बड़ी-बड़ी आँखें

श्रीमती मथुरा रामराव नादकर्नी

आप बम्बई के सुन्दरदास मेडिकल कॉलेज में अध्ययन करती हैं। आपने कन्वोकेशन में दो पदक प्राप्त किए हैं।

और फूले हुए लाल-लाल होठ! हल्के पारदर्शी रङ्ग से प्रतिविम्बित-से गाल उसकी मुख-मुद्रा को लोकोत्तर बना रहे थे। उसके दाँत किस कारीगर ने बनाए थे, यह मैं मूर्ख क्या बताऊँ! पर उनकी चमक से चौंध लगती थी। हीरा ने अनायास ही मुझे देखा, सभी ने देखा, मैं सहम कर ठिठक गई! उसने मुस्करा कर पास बुलाया, गोद में बैठा कर पुचकारा, प्यार किया, मेरे देहाती वस्त्रों को देखा और हँस दी। उसने प्यार से मेरे गालों पर चुटकी ली और मेरे शृङ्गार में लग गई। उबटन किया, चोटी में तेल दिया, कपड़े बदले और न जाने क्या-क्या किया। इसके बाद मेज़ पर उचका कर मुझे रख दिया, और सहेलियों से बोली—"देखो री, हमारी छोटी रानी कितनी सुन्दर है।" उसने मुझे चूमा, फिर तो मुझ पर इतने चुम्मे पड़े कि मैं घबरा गई। उन चुम्मों में, उस प्यार में, उस शृङ्गार में मैं भूल गई अपना बचपन, वे पवित्र खेल-कूद, वे पर्वत-श्रेणी, उपत्यकाएँ, माता-पिता, सहेली—सभी को। मेरे मन में एक रङ्गीन भाव की रेखा उठी और धीरे-धीरे मैं मदमाती हो चली!

३

परन्तु, उस भीषण ऐश्वर्य और ज्वलन्त रूप की जड़ में जो पाप था, उसे मैं कैसे समझती? पाप कहते किसे हैं, यही मैं कैसे जानती? जीवन के सुख और ऐश्वर्य के पीछे एक धर्म-नीति छिपी रहती है, यह मुझे उस घर में बताता कौन? फिर भी मेरी आत्मा ही ने मुझे बताया, वही आत्मा अन्त तक मेरे कर्मों का नियन्ता रहा!

मैं उस घर में सब कुछ देखती थी। मैं कह चुकी हूँ, कि मुझ-सी मुझ-सी दस-पन्द्रह थीं। पर मैं सब से छोटी थी, नई आई थी, सबके पृथक्-पृथक् सजे हुए कमरे थे। सबके पास बढ़िया गहने-कपड़े, इत्र और न जाने क्या-क्या था। सबकी ख़ातिर भी ख़ूब होती थी, चोचले भी चलते थे, पर मैं मौसी के पास सोती और रहती थी। सबके उतरे गजरे पहनना और बची हुई मिठाई खाना, मेरा काम था। धीरे-धीरे मेरे मन में ईर्षा होने लगी। मैंने एक दिन मौसी से कह भी दिया, रूठ भी गई, आख़िर मैं क्या आसमान से गिरी हूँ, मुझे भी एक कमरा, पलङ्ग और वैसे ही सब सामान चाहिएँ, जो औरों के पास हैं।

मौसी हँस पड़ी। उसने मुझे गोद में लिया, चूमा और कहा—"धीरज रख बेटी! वह समय भी आ रहा है, जब तू इन सब से चढ़-बढ़ कर रहेगी।" उस समय की मैं बड़ी ही बेचैनी से बाट जोहने लगी। साथ ही करने लगी अध्ययन उन सबका, जिन पर मेरी ईर्षा थी।

मेरी ईर्षा की प्रधान पात्री थी हीरा! वही तो सब में एक थी, घर-घर नगर में और दूर-दूर उसकी चर्चा थी,

उसका रूप था? दुपहरी थी, उसकी वह दन्त-पंक्ति, मोती-सा रङ्ग, कटीली आँखें, मन्द हास्य, हंस की-सी गर्दन, साँचे में ढाला बदन, कितने सेठ-साहूकार, राजा-रईस, नवाब-शाहज़ादों को अधीर बनाए था—वे उसके पास आते, क्या-क्या आदर-भाव करके, दासियाँ हुक्म की बन्दी रहतीं! सुनहरे काम का छपरखट और उसका हरा रङ्गीन कमरा, क्या मैंने लाखों बार भी डाह की नज़र से न देखा होगा?

एक दिन अचानक मौसी ने कहा—"आनन्दी, ले अपना कमरा पसन्द कर, कौन-सा लेगी, मैं अब तुझे भी अलग कमरा दूँगी, उसे तेरी मर्ज़ी का सजाऊँगी। कपड़े-लत्ते, साड़ी जो तेरी पसन्द का हो तू बाज़ार में जाकर ले आ। ले यह १ हज़ार रुपए, सिर्फ़ कपड़े और सिङ्गार-पटार के लिए हैं। ज़ेवर मैं तुझे अलग दूँगी।" इतना कह कर उसने नोटों का एक बण्डल मेरी गोद में डाल दिया और कहा—"शाम को हीरा के साथ जाकर ज़रूरी सामान ख़रीद ला। ले! मैं अपना ही कमरा तेरे लिए ख़ाली किए देती हूँ, मैं बुढ़िया बावली किसी कोठरी में पड़ रहूँगी।"

मैंने आकाश छुआ। कब शाम हो और मैं बाज़ार चलूँ। निदान एक ही सप्ताह में मेरा कमरा घर-भर में इन्द्रभवन था। मैं रात-दिन उसकी सजावट में लगी रही, खाना-पीना भी छोड़ दिया, साथ वालियाँ दिल्लगी करती थीं, पर मैं समझती न थी, कभी-कभी उनकी बातों से भय-सा लगता था, उनका क्रूर-हास्य शङ्का उत्पन्न करता था—मानो इस साज-श्रृङ्गार में एक रहस्य है, पर मैं उमङ्ग में थी!

देखते-देखते मेरा रङ्ग बदल गया। जितने छैले घर में आते थे, मुझ पर टूटे, पर मौसी का बड़ा भय था, क्या मजाल जो ज़रा कोई बढ़ कर बातें करता! साथ वालियों पर मुझे डाह थी, पर अब वे मुझ पर जलती थीं, भेद तो अभी खुला न था, पर मुझे इसमें मज़ा आता था ज़रूर!

उस दिन से छठे दिन की बात है। मैं सो रही थी, दिन ढल चुका था, मौसी ने बुला कर कहा—"बेटी नहा-धोकर नई साड़ी पहन ले, बालों का अङ्गरेज़ी जूड़ा बाँध ले, पैरिस की ज़रीकट साड़ी पहन ले, और ज़रा सलीक़े का ध्यान रख। ख़बरदार, नादानी न करना।" मैं कुछ समझी, कुछ नहीं—चली आई। मन में उथल-पुथल मच गई, नहीं कह सकती भय से या आनन्द से।

रात सिर पर आ गई और मेरा सिङ्गार ख़तम ही न होता था। १० बजे एक अल्पवयस्क सुन्दर कुमार ने मेरे कमरे में प्रवेश किया, मैंने इन्हें कभी न देखा था। एकान्त में मेरे पास किसी पुरुष का आना प्रथम बात थी, पर बहुत सी बातें तो मैं देख-भाल कर ही समझ गई थी। फिर भी मैं डर गई, मैंने सहम कर उनसे कहा—"मौसी उधर हैं, आप वहाँ जाइए।"

मि० ए० रामाराव बी० ए०, आई० ई० एस०

राजमहेन्द्री के ट्रेनिङ्ग-कॉलेज के नए प्रिन्सिपल

उन्होंने हँस कर कहा—"जल्दी क्या है, ज़रा देर आपसे भी बातें कर लूँ?" अब मैं क्या कहती? चुप बैठ गई!

उन्होंने कहा—"क्या आप नाराज़ हो गईं?"

"जी नहीं।"

"फिर चुप्पी क्यों?"

"आप कुछ दर्याफ़्त करें, तो जवाब दूँ।"

बस बातों का सिलसिला चल गया, और क्या-क्या हुआ वह सब कहने से फ़ायदा? सब का अभिप्राय यही है कि अन्त में मैं उस युवक के हाथ बिकी, उसने मुझे सब कुछ दिया और मैंने उसे भी! मैं वेश्या थी भी नहीं, और उसकी वृत्ति को समझती भी न थी! मेरा जीवन था, आयु थी, समय था और उसका प्रभाव था, मैं क्या करती? मैंने अपना तन, मन, धन उसे दिया, और उसने? मैंने जो आज तक न पाया था, वह दिया, उस दान के सम्मुख अब तक के सभी ठाट तुच्छ थे। मैं नारी-जीवन का रहस्य समझी, पर यहीं तक होता तो मेरे बराबर सुखी कौन था? पर मेरी तक़दीर में वेश्या-जीवन का रहस्य समझना लिखा था!!

* * *

एक महीना स्वप्न की तरह बीत गया। ज्यों-ज्यों महीना बीतता था, वे चिन्तित और उदास होते थे। मैं पूछती, पर वे बताते नहीं, टाल जाते! एक दिन मैंने उन्हें घेर लिया। उन्होंने कह दिया—सिर्फ़ ३ दिन और मुझे तुम पर अधिकार है आनन्दी? इसके बाद तुम मेरे लिए ग़ैर हो जाओगी।

"यह क्या बात है?"

"मैं तुम्हारे लिए अगले महीने की तनख़ा नहीं जुटा सकता।"

"तनख़ा कैसी।"

"३ हज़ार रुपए महीने पर मैंने तुम्हें तुम्हारी माँ से लिया था।"

"आह, क्या मैं गाय-भैंस की तरह बेची गई हूँ!"

"ऐसा होता तो फिर बात क्या थी? मैं तुम्हें ऐसी जगह ले जाता, जहाँ किसी की दृष्टि न जाती, पर तुम किराए पर उठाई गई हो, मैंने एक महीने का क़िराया दिया, अब जो देगा, वह मेरे स्थान पर होगा।"

"मैं तड़प उठी, यह कैसे सम्भव है? मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, क्या तुम नहीं करते?"

"जान से बढ़ कर"

"फिर हमारे बीच में कौन है?"

"रुपया"

"मैं उस पर लात मारती हूँ।"

"पर तुम्हारी मौसी तो उस पर मरती हैं।"

"मैं उससे कहूँगी।"

"बेसूद है।"

"क्या तुमने कहा था?"

"मैं १ हज़ार देने को तैयार हूँ।"

"यह क्या थोड़े हैं?"

"वे कहती हैं—एक हज़ार माहवारी आनन्दी की जूतियों का ख़र्च है।"

"पर मैं तो अपना शरीर और जान तुम्हें दे चुकी।"

"इसका तुम्हें अधिकार नहीं।"

मैं रोने लगी, वे चले गए।

मैं रात भर रोती रही; मेरी आँखें फूल गईं; और छाती फटने लगी। सुबह होते ही मौसी ने कहा—"बेटी, आज तुझे एक मुजरे पर जाना है, सब सामान तैयार करके लैस हो जाना।"

जो कहना चाहती थी, न कह सकी। सोचा लौट कर कहूँगी।

४

मेरा नाम हीरा है, बस इतना ही समझ लीजिए। मैं और कुछ नहीं बता सकती। समझ लीजिए मैं धरती फोड़ कर पैदा हुई और धरती में समा जाने की इच्छा से जी रही हूँ। हज़ारों मनुष्यों ने मेरे शरीर को देखा, बलात्कार किया और होनी-अनहोनी सब हुई। इनमें राजा-महाराजाओं से लेकर, घृणास्पद कलङ्की और रोगी भी थे—सभी ने एक ठीकरे में खाया। लोग कहते हैं कि मैंने रूप पाया और यह भी कहते हैं कि उसे ख़ूब बेचा। पर मुझे सब कुछ बेच-ख़रीद कर मिला क्या? इस अभागिनी के मन की बात कौन सुनेगा? कौन इस पर आँसू बहाएगा; जगत में ऐसा मेरा सगा है कौन?

फूल के कीड़ों का नाम बहुतों ने सुना होगा, पर उस ज़हरीले कीड़े ने खाया मुझे! हाय, दुनिया कैसी प्यारी थी, कैसा साज-शृङ्गार, वस्त्र, सुगन्ध, मौज-बहार, हास्य, उन सबको अब याद करती हूँ—वे सब कहाँ चली गईं, स्वप्न की माया की तरह!!

स्त्री क्या वस्तु है, यह मुझे आज मालूम हुआ जब मैंने स्त्रीत्व खो दिया! धर्म मेरा साक्षी है। मैंने रूप को बेचा नहीं, मैंने उसका मोल न कभी जाना न किया, अभागिनी सीधी-सादी बालिका अपने रूप को कितना देखती—

देखने वाले देखते हैं यही कैसे समझती, यही तो मरने की बात हो गई। मैं जब तक बच्ची रही—तब तक की तो बात ही जाने दीजिए। पर दिल्ली आने पर? न माँ थी, न बाप था, भाई था—वह भी चला गया। पर जो थी, वह माँ से भी ज़्यादा सगी, स्वयं हाथों से नहलाती, उबटन लगाती, सुगन्ध लगाती, गजरों से सजाती और मोटर में बैठा कर सैर कराती! तब कौन मेरे बराबर सुखी था—मुझे कुछ काम न था, उस्ताद जी आते उनकी सफ़ेद दाढ़ी, भद्दी सी मोटी ऐनक और मीठी-मीठी बोली, कैसी प्यारी थी। वे गाना सिखाते, मैं विनोद से उनके गले की नक़ल करती। वह इतनी ठीक उतरती कि रास्ते चलते खड़े हो जाते। मैं इतराती थी, उत्तम से उत्तम भोजन, वस्त्र बिना माँगे हाज़िर थे। मैं बड़ी हुई, तीसरे पहर से ही उबटन-शृङ्गार केश-विन्यास और नई साड़ियों की पसन्द और पहनने का जो उपक्रम चलता तो दिए जल जाते, इत्र से भभकते हुए उस कमरे में नर्म क़ालीन पर मैं इठला कर बैठती। बड़े-बड़े सेठों के जवान आते, मेरी स्वर-लहरी पर लोट जाते, रुपयों की बौछार करते। जब आधी रात बीतने पर झोली भर रुपए ले मैं नई माँ को देती तो वह छाती से लगा लेती। बारम्बार बेटी कहतीं, मैं ज़रा भी थकान न मानती, पड़ कर जो सोती तो प्रभात था।

हाय! मैं समझती थी—यह सब मेरा आदर है, यह गायन-कला मेरा गुण है, उस पर सैकड़ों गुणज्ञ रीझ रहे हैं। पर यह भेद तो पीछे खुला, वह मेरा नहीं, मेरे शरीर का, रूप का आदर था। वह गायन तो एक बहाना, एक छल था, एक तीर था, जिससे शिकार मारे जाते थे। मेरी अज्ञानावस्था में कितने शिकार मारे गए, यह मैं अब क्या बताऊँ।

उस दिन कोई त्योहार था, शायद तीज थी, मैं नहा कर बैठी थी। मेरी एक सहेली ने मुझे बुला भेजा था। मैं जाने की तैयारी में थी, माँ ने बुलाया कहा—"बेटी वह जो नई बनारसी साड़ी आई है, पहन लो आज तेरी तक़दीर का सितारा बुलन्द हुआ, महाराज········ ने तुझे नौकर रख लिया है, तुझे वहाँ जाना है, अभी मोटर आ रही है। मैंने चाहा था कि तुझे रानी बना दूँगी, वह इच्छा पूरी हुई, अब देर न कर।"

मैं ख़ाक-पत्थर कुछ भी न समझी, रानी बनने की बात को कुछ समझी, रानी बनने में मुझे क्या उज्र था, पर नौकरी का क्या मतलब? मैंने पूछा—"नौकरी रखने से क्या मतलब? मैं किसी की नौकर न करूँगी! वाह! अब मैं झाड़ू लगाऊँगी, मैं किसी की नौकरी न करूँगी।"

बुढ़िया हँस पड़ी, हँसते-हँसते लोट गई, उसने मुझे गोद में छिपा कर कहा—"मेरी प्यारी बेटी, कैसी नादान है। धीरे-धीरे सब समझेगी, झाड़ू तू लगावेगी? वहाँ २० दासी तेरी ख़िदमत करेंगी।"
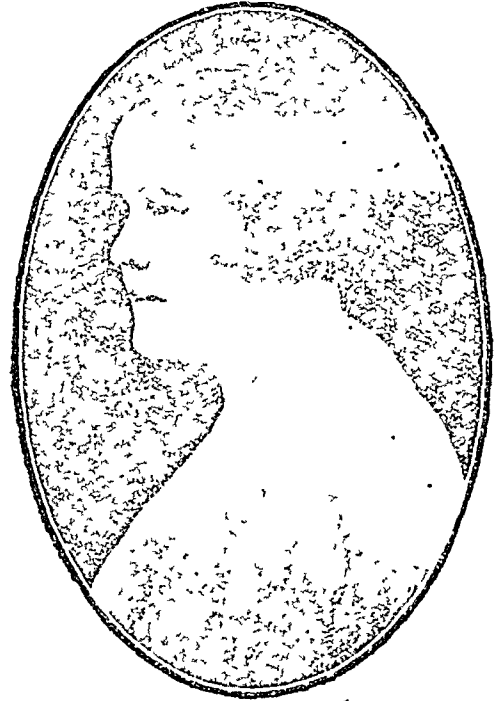
मिसेज़ ए० स्कॉट

आप नागापटम (मद्रास) के बोय स्काउट की प्रेज़िडेण्ट हैं, और हाल ही में वहाँ की हेल्थ एसोसिएशन की भी वाइस-प्रेज़िडेण्ट नियत की गई हैं।

मैं समझ ही न सकी, पर मुझे आनन्द न आया। मैं भय और चिन्ता में पड़ गई, वहाँ मेरा है कौन? मुझे कौन प्यार करेगा, कौन क्या करेगा, मैं बेचैन हो गई। मैं मूर्खा, इस वृद्धा को ही अपना सब से बड़ा हितू समझती थी। जहाँ गई वहाँ फाटक पर पहुँचते ही मेरे होश उड़ गए। ऐसी बड़ी कोठी, ऐसा सुन्दर बाग़ीचा,

जन्म में न देखा था। गाड़ी पहुँचते ही सङ्गीनधारी सिपाही ने गाड़ी रोक कर पूछा—"गाड़ी में कौन है।"

मौसी ने कुछ कान में कह दिया, वह रास्ता छोड़ कर खड़ा हो गया।

गाड़ी धड़धड़ाती चली। फ़व्वारे उछल रहे थे, रौसें ऐसी सुघड़ाई से कटी थीं कि वाह। कटोरे के बराबर गुलाब खिल रहे थे। सुन्दर साफ़ सुर्ख़ सड़कें और सामने वह महासुन्दर धवल प्रासाद। वहाँ पहुँचते ही दो सन्तरियों ने हमें उतारा, तमाम मकान सङ्गमरमर से मढ़ा था, मक्खी के भी पैर रपटें। मैं डरती-डरती पैर रखती, दीवारों और तस्वीरों को देखती, अचल खड़े सन्तरियों को घूरती चली जा रही थी। चलने तक की आहट न होती थी, सोच रही थी हे ईश्वर इस महल में रहने वाला कौन भाग्यवान है।

एक सजे हुए कमरे में हमें बैठा कर, सन्तरी चला गया। उसमें मख़मल का हाथ भर मोटा गद्दा पड़ा था, और साटन के पर्दे दरवाज़े पर थे। गद्देदार कुर्सियाँ कौच और एक से एक बढ़ कर सजावट और तस्वीरें क्या-क्या बयान करूँ? मैं पागल सी बैठी देख रही थी; हृदय धक-धक कर रहा था। बोलना चाहा पर मौसी ने होठ पर उँगली रख कर चुप रहने का सङ्केत कर दिया।

थोड़े देर में एक पहरेदार ने धीरे से पर्दा उठा कर, हमें अपने पीछे-पीछे आने का सङ्केत किया। कई बड़े-बड़े दालान, कमरे पार करती हुई हम अन्त में एक निहायत ख़ुशरङ्ग सजे एक बड़े कमरे में पहुँचीं। देखा एक ३० साला उम्र के अत्यन्त रुआबदार रूप और तेज की खान एक पुरुष बैठे चुपचाप धुआँ फेंक रहे हैं। मौसी ने ज़मीन तक झुक कर सलाम किया, और मैंने भी। हाथ का सिगार एक ओर फेंक कर, महाराज उठ खड़े हुए। उन्होंने बड़ी बेतकल्लुफ़ी से मौसी का हाथ पकड़ कर बैठाया, फिर मुस्करा कर मेरा मिज़ाज पूछा।

मैं तो सकते की हालत में थी। मौसी ने फटकार कर कहा—बेवक़ूफ़ सरकार मिज़ाज पूछते हैं और तू चुप है।

वे हँस दिए और बोले—"हीरा यही है न?"

"यही हुज़ूर की कनीज़ है?"

"सच, पर देखना धोखा तो नहीं देती?"

"अय हय हुज़ूर, मेरी ज़बान टूट जाय?"

"अच्छा, मिस हीरा, क्या तुम सिगरेट पीती हो?"

"जी नहीं सरकार?"

"अच्छा तब कुछ खाओ-पियो"—इतना कह कर उन्होंने घण्टी बजा दी। नौकर दस्तबस्ता आ हाज़िर हुआ। उसे कुछ इशारा करके, उन्होंने मौसी का हाथ पकड़ कर कहा—"जब तक यह कुछ खाए-पिए हम लोग काम की बातें कर लें।"

वे दोनों दूसरे कमरे में चले गए, और नौकरों ने फल-बिस्कुट, मेवा मेरे सामने ला रक्खा। पर मैंने छुआ भी नहीं। मैं भयभीत हो गई थी, मैं समझ गई यहाँ फँसी! हाय, हृदय के एक कोने में नवाङ्कुरित प्रेम विकल हो उठा, पर करती क्या? मैंने निश्चय किया—मैं अवश्य मौसी के साथ जाऊँगी? हठात महाराज ने कमरे में प्रवेश करके कहा—"अरे तुमने तो कुछ खाया ही नहीं।"

"जी मेरी तबियत नहीं है, क्या मौसी अन्दर हैं?

"वे गईं।"

"और मैं?"

"तुम्हें यहीं आराम करना है।"—वे मुस्कुरा कर बोले—"क्या तुम्हें डर लगता है?"

"जी नहीं।"

"यह जगह पसन्द नहीं?"

"जगह के क्या कहने हैं।"

"मैं पसन्द नहीं?"

"सरकार क्या फ़र्माते हैं, मैं शर्मा गई।"

एक आदमी शराब, प्यालियाँ कुछ और खाने की चीज़ें चुन गया। महाराज ने प्याला भर कर कहा—"मिस हीरा, परहेज़ तो नहीं करतीं? करोगी तो भी पीना तो पड़ेगा?"

"हुज़ूर मैं नहीं पीती।"

"मगर मेरा हुक्म है?"

"मैं मुआफ़ी चाहती हूँ।"

"क्या हुक्मउदूली करती हो?"

"मेरी इतनी मजाल।"

"बेवक़ूफ़ औरत पी?"—क्षण भर में उनकी आँखें लाल हो गईं और त्योरियाँ चढ़ गईं।

"मैं न पी सकूँगी?"

खूँटी से चाबुक उठा कर उस निर्दयी ने खाल उड़ाना शुरू कर दिया, मेरे चिल्लाने से कमरा गूँज उठा। मैं

तड़प कर धरती में लोटने लगी। पर वहाँ बचाने वाला कौन था ?

वे चाबुक फेंक कर बैठ गए। मैं ज्योंही उठी, उन्होंने प्याला भर कर कहा—"पियो"

"मैं गटगट पी गई।"

मेरे हाथ से प्याला लेकर उन्होंने मेरे पास आकर कहा—"हीरा, मेरी दोस्त ! आइन्दा कभी हुक्मउदूली की हिम्मत न करना। अरे, क्या तुम्हारी साड़ी भी ख़राब हो गई।" इतना कह उन्होंने घण्टी बजाई, एक लड़का आ हाज़िर हुआ। उसे हुक्म दिया—"जाओ ड्योढ़ियों से उम्दा साड़ी ले आओ।"

साड़ी आई। उसकी क़ीमत २ हज़ार से कम न होगी। वैसी साड़ी मैंने कभी न देखी थी। मैं अवाक् रह गई। ऐसा बेढब आदमी तो देखा न सुना। मैं साड़ी बदल चुपचाप उसके हुक्म की इन्तज़ारी करने लगी। मेरा ग़ुरूर और सारी चञ्चलता जाने कहाँ चली गई।

उन्होंने निकट आकर प्यार के स्वर में कहा—"जाओ उस कमरे में सो रहो, मैं भी ज़रा सोऊँगा। किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो घण्टी देना, नौकर हुक्म बजा लावेगा।"

हाय, क्या मैं सोई ? वह पुरुष सो गया और मैं उसके पैर पकड़े बैठी रही। रात बीतने लगी, निस्तब्धता छा गई। हाँ, मैं पैर पकड़े बैठी थी, इस पुरुष के, जो इतना कठोर और इतना उदार, ऐसा मस्त और ऐसा ज़िद्दी है। और तस्वीर देख रही हूँ किसी और की, जिसे मैंने कुछ दिन पूर्व शरीर अर्पण किया था। मेरा हृदय और प्रेम आवारागर्द बेघर-बार पुरुष की तरह भटक रहा था, और वेश्यावृत्ति का जटिल रहस्य अब समझ में आया।

कई घण्टे व्यतीत हो गए। वे एकाएक उठ बैठे। उन्होंने कहा—"बेवक़ूफ़ लड़की ! क्या तू सचमुच वेश्या नहीं है ? तेरे पास हृदय है ? तू प्रेम करना जानती है ?"

मेरे जवाब से प्रथम ही उन्होंने मुझे उठा कर हृदय से लगा लिया। हाय, यह पापिष्ट शरीर यहाँ भी अर्पण करना पड़ा। पर मैं लज्जा से अपने आपको भी नहीं देख सकती थी।

कह ही दूँ, बिना कहे तो चलेगा नहीं ; वैसा सुन्दर आदमी नहीं देखा था। रङ्ग गुलाब के समान, दाँत जैसे मोती की लड़ी, हास्य जैसे चाँदनी की बहार—मैं देखती रह गई, यही महाराज थे। उन्होंने पास बुलाया, प्यार से बग़ल में बैठाया, क्या-क्या किया; क्या-क्या कहा, वह सब बड़ी कठिनाई से भुलाया है, अब याद क्यों करूँ ?

मैंने समझा था मैं नौकर हूँ, पर मैं थी रानी ! नौकर थे राजा साहेब ! वे कितना प्यार करते थे, कितना लाड़ करते थे—मैं क्या होश में थी, जो समझ सकती। पुरुष स्त्री जाति को कब क्या देता है ; पुरुष स्त्री-जाति को किस तरह सुख देता है, यह कोई वह स्त्री ही जान सकती है, जिसने वैसा सुन्दर, उदार, दाता, दयालु पुरुष पाया हो। मैं कृतार्थ हो गई, मैं धन्य हुई, मुझे अब कुछ न चाहिए था। मेरे पास रूप था, यौवन था, शरीर था, मन था, आत्मा थी, प्रेम था, हृदय था—सभी मैंने उन्हें दे दिया, और उन्होंने जो देना चाहा रुपया-पैसा, वस्त्र, रत्न—सभी मैंने तुच्छ समझा। मैंने एक बार तो निर्लज्ज होकर कह दिया था—"यह सब क्यों करते हो, तुम्हीं। जब मुझे प्राप्त हो, फिर और कुछ मुझे क्या चाहिए।" वे हँसते थे। मेरे वे दिन हवा की तरह उड़

नवाबज़ादा सआदतुल्ला ख़ाँ, एम० ए० (ऑक्सिन)

बलूचिस्तान के कृषि-विभाग के नए डायरेक्टर

जन्म में न देखा था। गाड़ी पहुँचते ही सङ्गीनधारी सिपाही ने गाड़ी रोक कर पूछा—"गाड़ी में कौन है।"

मौसी ने कुछ कान में कह दिया, वह रास्ता छोड़ कर खड़ा हो गया।

गाड़ी धड़धड़ाती चली। फ़व्वारे उछल रहे थे, रौसें ऐसी सुघड़ाई से कटी थीं कि वाह। कटोरे के बराबर गुलाब खिल रहे थे। सुन्दर साफ़ सुर्ख़ सड़कें और सामने वह महासुन्दर धवल प्रासाद। वहाँ पहुँचते ही दो सन्तरियों ने हमें उतारा, तमाम मकान सङ्गमरमर से मढ़ा था, मक्खी के भी पैर रपटें। मैं डरती-डरती पैर रखती, दीवारों और तस्वीरों को देखती, अचल खड़े सन्तरियों को घूरती चली जा रही थी। चलने तक की आहट न होती थी, सोच रही थी हे ईश्वर इस महल में रहने वाला कौन भाग्यवान है।

एक सजे हुए कमरे में हमें बैठा कर, सन्तरी चला गया। उसमें मख़मल का हाथ भर मोटा गद्दा पड़ा था, और साटन के पर्दे दरवाज़े पर थे। गद्देदार कुर्सियाँ कौच और एक से एक बढ़ कर सजावट और तस्वीरें क्या-क्या बयान करूँ? मैं पागल सी बैठी देख रही थी; हृदय धक-धक कर रहा था। बोलना चाहा पर मौसी ने होठ पर उँगली रख कर चुप रहने का सङ्केत कर दिया।

थोड़े देर में एक पहरेदार ने धीरे से पर्दा उठा कर, हमें अपने पीछे-पीछे आने का सङ्केत किया। कई बड़े-बड़े दालान, कमरे पार करती हुई हम अन्त में एक निहायत ख़ुशरङ्ग सजे एक बड़े कमरे में पहुँचीं। देखा एक ३० साला उम्र के अत्यन्त रुआबदार रूप और तेज की खान एक पुरुष बैठे चुपचाप धुआँ फेंक रहे हैं। मौसी ने ज़मीन तक झुक कर सलाम किया, और मैंने भी। हाथ का सिगार एक ओर फेंक कर, महाराज उठ खड़े हुए। उन्होंने बड़ी बेतकल्लुफ़ी से मौसी का हाथ पकड़ कर बैठाया, फिर मुस्करा कर मेरा मिज़ाज पूछा।

मैं तो सकते की हालत में थी। मौसी ने फटकार कर कहा—बेवक़ूफ़ सरकार मिज़ाज पूछते हैं और तू चुप है।

वे हँस दिए और बोले—"हीरा यही है न?"

"यही हुज़ूर की कनीज़ है?"

"सच, पर देखना धोखा तो नहीं देती?"

"अय हय हुज़ूर, मेरी ज़बान टूट जाय?"

"अच्छा, मिस हीरा, क्या तुम सिगरेट पीती हो?"

"जी नहीं सरकार?"

"अच्छा तब कुछ खाओ-पियो"—इतना कह कर उन्होंने घण्टी बजा दी। नौकर दस्तबस्ता आ हाज़िर हुआ। उसे कुछ इशारा करके, उन्होंने मौसी का हाथ पकड़ कर कहा—"जब तक यह कुछ खाए-पिए हम लोग काम की बातें कर लें।"

वे दोनों दूसरे कमरे में चले गए, और नौकरों ने फल-बिस्कुट, मेवा मेरे सामने ला रक्खा। पर मैंने छुआ भी नहीं। मैं भयभीत हो गई थी, मैं समझ गई यहाँ फँसी! हाय, हृदय के एक कोने में नवाङ्कुरित प्रेम विकल हो उठा, पर करती क्या? मैंने निश्चय किया—मैं अवश्य मौसी के साथ जाऊँगी? हठात महाराज ने कमरे में प्रवेश करके कहा—"अरे तुमने तो कुछ खाया ही नहीं।"

"जी मेरी तबियत नहीं है, क्या मौसी अन्दर हैं?

"वे गईं।"

"और मैं?"

"तुम्हें यहीं आराम करना है।"—वे मुस्कुरा कर बोले—"क्या तुम्हें डर लगता है?"

"जी नहीं।"

"यह जगह पसन्द नहीं?"

"जगह के क्या कहने हैं।"

"मैं पसन्द नहीं?"

"सरकार क्या फ़र्माते हैं, मैं शर्मा गई।"

एक आदमी शराब, प्यालियाँ कुछ और खाने की चीज़ें चुन गया। महाराज ने प्याला भर कर कहा—"मिस हीरा, परहेज़ तो नहीं करतीं? करोगी तो भी पीना तो पड़ेगा?"

"हुज़ूर मैं नहीं पीती।"

"मगर मेरा हुक्म है?"

"मैं मुआफ़ी चाहती हूँ।"

"क्या हुक्मउदूली करती हो?"

"मेरी इतनी मजाल।"

"बेवक़ूफ़ औरत पी?"—क्षण भर में उनकी आँखें लाल हो गईं और त्योरियाँ चढ़ गईं।

"मैं न पी सकूँगी?"

खूँटी से चाबुक उठा कर उस निर्दयी ने खाल उड़ाना शुरू कर दिया, मेरे चिल्लाने से कमरा गूँज उठा। मैं

तड़प कर धरती में लोटने लगी। पर वहाँ बचाने वाला कौन था?

वे चाबुक फेंक कर बैठ गए। मैं ज्योंही उठी, उन्होंने प्याला भर कर कहा—"पियो"

"मैं गटगट पी गई।"

मेरे हाथ से प्याला लेकर उन्होंने मेरे पास आकर कहा—"हीरा, मेरी दोस्त! आइन्दा कभी हुक्मउदूली की हिम्मत न करना। अरे, क्या तुम्हारी साड़ी भी ख़राब हो गई।" इतना कह उन्होंने घण्टी बजाई, एक लड़का आ हाज़िर हुआ। उसे हुक्म दिया—"जाओ ड्योढ़ियों से उम्दा साड़ी ले आओ।"

साड़ी आई। उसकी क़ीमत २ हज़ार से कम न होगी। वैसी साड़ी मैंने कभी न देखी थी। मैं अवाक् रह गई। ऐसा बेढब आदमी तो देखा न सुना। मैं साड़ी बदल चुपचाप उसके हुक्म की इन्तज़ारी करने लगी। मेरा ग़ुरूर और सारी चञ्चलता जाने कहाँ चली गई।

उन्होंने निकट आकर प्यार के स्वर में कहा—"जाओ उस कमरे में सो रहो, मैं भी ज़रा सोऊँगा। किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो घण्टी देना, नौकर हुक्म बजा लावेगा।"

हाय, क्या मैं सोई? वह पुरुष सो गया और मैं उसके पैर पकड़े बैठी रही। रात बीतने लगी, निस्तब्धता छा गई। हाँ, मैं पैर पकड़े बैठी थी, इस पुरुष के, जो इतना कठोर और इतना उदार, ऐसा मस्त और ऐसा ज़िद्दी है। और तस्वीर देख रही हूँ किसी और की, जिसे मैंने कुछ दिन पूर्व शरीर अर्पण किया था। मेरा हृदय और प्रेम आवारागर्द बेघर-बार पुरुष की तरह भटक रहा था, और वेश्यावृत्ति का जटिल रहस्य अब समझ में आया।

कई घण्टे व्यतीत हो गए। वे एकाएक उठ बैठे। उन्होंने कहा—"बेवक़ूफ़ लड़की! क्या तू सचमुच वेश्या नहीं है? तेरे पास हृदय है? तू प्रेम करना जानती है?"

मेरे जवाब से प्रथम ही उन्होंने मुझे उठा कर हृदय से लगा लिया। हाय, यह पापिष्ट शरीर यहाँ भी अर्पण करना पड़ा। पर मैं लज्जा से अपने आपको भी नहीं देख सकती थी।

कह ही दूँ, बिना कहे तो चलेगा नहीं; वैसा सुन्दर आदमी नहीं देखा था। रङ्ग गुलाब के समान, दाँत जैसे मोती की लड़ी, हास्य जैसे चाँदनी की बहार—मैं देखती रह गई, यही महाराज थे। उन्होंने पास बुलाया, प्यार से बग़ल में बैठाया, क्या-क्या किया; क्या-क्या कहा, वह सब बड़ी कठिनाई से भुलाया है, अब याद क्यों करूँ?

मैंने समझा था मैं नौकर हूँ, पर मैं थी रानी! नौकर थे राजा साहेब! वे कितना प्यार करते थे, कितना लाड़ करते थे—मैं क्या होश में थी, जो समझ सकती। पुरुष स्त्री जाति को कब क्या देता है; पुरुष स्त्री-जाति को किस तरह सुख देता है, यह कोई वह स्त्री ही जान सकती है, जिसने वैसा सुन्दर, उदार, दाता, दयालु पुरुष पाया हो। मैं कृतार्थ हो गई, मैं धन्य हुई, मुझे अब कुछ न चाहिए था। मेरे पास रूप था, यौवन था, शरीर था, मन था, आत्मा थी, प्रेम था, हृदय था—सभी मैंने उन्हें दे दिया, और उन्होंने जो देना चाहा रुपया-पैसा, वस्त्र, रत्न—सभी मैंने तुच्छ समझा। मैंने एक बार तो निर्लज्ज होकर कह दिया था—"यह सब क्यों करते हो, तुम्हीं। जब मुझे प्राप्त हो, फिर और कुछ मुझे क्या चाहिए।" वे हँसते थे। मेरे वे दिन हवा की तरह उड़

नवाबज़ादा सआदतुल्ला ख़ाँ, एम० ए० (ऑक्सन)

बलूचिस्तान के कृषि-विभाग के नए डायरेक्टर

गए, मुझ मूर्ख ने यह समझा ही नहीं कि यह सब कुछ मेरे लिए नहीं, मेरे रूप के लिए है। और मैं स्त्री नहीं, वेश्या हूँ? इसके वेश्यापन और रूप ही ने तो मुझे चौपट किया !!

५

यह विधाता की भूल है कि वह वेश्या है, अगर महारानी रूप और गुण में इससे शतांश भी होतीं तो कदाचित जगत की जूठी पत्तल चाटने की ज़िल्लत में न पड़ता। लाखों मनुष्यों के सामने मैं राजा और महाराज हूँ, पर इस औरत के सामने आज एक कुत्ता, जो अपनी नीच-स्वाद वृत्तियों की तृप्ति के लिए लगा उन्मत्त रहता हो। वह जिस दिन आई तभी से मैंने उसे समझा। एक अफ़सोस तो यह है कि वह वेश्या है, दूसरा अफ़सोस यह कि वह यह बात अभी तक नहीं जानती। नारी-हृदय का नैसर्गिक प्रेम उसके पास अछूता था, वह उसने राई-रत्ती मुझे दिया; पर इससे फ़ायदा? वह मुझे वही समझती है, जो लाखों-करोड़ों स्त्रियाँ पुरुष प्राप्त करके समझती रही हैं, पर मैं तो यह जानता हूँ कि वह वेश्या है! उसकी माँ ने मासिक वेतन लेकर उस काल के लिए उसके शरीर पर मुझे अधिकार करने दिया है, जब तक मैं वेतन देता रहूँ। वह आत्मदान कर चुकी, यह तो सत्य है, पर इससे होता क्या है? इस अधिकार और पद्धति-शून्य असामाजिक आत्मदान को मैं क्या करूँ? क्या मैं खुल्लमखुल्ला उसे पत्नी कहने का साहस करूँ? सारे अख़बार हाय-तोबा मचा कर धरती-आसमान उठा लेंगे? सरकार की आँखें नीली-पीली अलग हो जावेंगी? और सरदार, अफ़सर, परिजन दम निकाल देंगे। वह रानी बनने योग्य है; उसके रानी बनने से उसकी नहीं, महल की शोभा है। परन्तु इस बात को तो देखिए कि यह व्यभिचार और रूप का क्रय-विक्रय तो सब अन्धे और बहरों की तरह देख-सुन रहे हैं, पर इस पाप को नीति और नियम के रूप में संसार नहीं देखना चाहता। फिर मैं क्यों इलत लूँ? मैं राजा हूँ, युवा हूँ, सुन्दर हूँ, धनी हूँ, मैं ऐसे-ऐसे सौन्दर्य नित्य ख़रीदने में समर्थ हूँ। मैं अपना यह स्वार्थ-अधिकार क्यों त्यागूँ? कठोरता हाँ, यह कठोरता और निठुरता तो है, परन्तु राजा बन कर मनुष्य को कितना कठोर बनना पड़ता है। राज्य-व्यवस्था क़ायम करने के लिए कठोरता गुण है, यदि मैं आत्म-सुख और शरीर-भोग के लिए भी ज़रा निठुर बनूँ तो कुछ हर्ज है? मैं उसे ठग नहीं रहा, मुआविज़ा दे रहा हूँ, इतना और उसे मिलेगा कहाँ? वह वेश्या है, जब तक उसमें रस है, मैं भरपूर मोल देकर लूँगा, पीऊँगा, बखेरूँगा, जब जी में आवेगा फोक-फेंक दूँगा। अजी! यह स्त्री-जाति ही तो है? सर्दी की धूप की तरह यह स्त्री-यौवन ढलता है। पुरुष होकर, सुयोग पाकर मैं क्यों सुप्राप्त यौवनों को छोड़ूँ? यह धन, राजसत्ता फिर किस काम आवेगी? अन्ततः हमारा राजापन किस योग्य होगा? पूर्वकाल के राजागण युद्ध करते थे; जीवन, मृत्यु सदा उनके सम्मुख थी; देश के चुने हुए विद्वान उनके मन्त्री सदा उनके पास रहते थे। अब यह सब काम तो प्रबल प्रतापी हमारी दयालु सरकार कर रही है, हमें छुट्टी है! इस जीवन भर के अवकाश में यदि हम जी भर कर यौवन और भोग को, जो धन से प्राप्त हो सकता है, न भोगें तो हमारे बराबर अहमक़ कौन?

वह वेश्या है, वेश्या रहे, यह बात उसे समझ रखनी चाहिए। वह स्त्री नहीं बनी रह सकती, पुरुष से स्त्री को जो प्रतिदान वास्तव में मिलना चाहिए, वह उसे नहीं मिलेगा। जब तक वह यौवन के उभार पर है, वह मेरी है, मेरा सारा राज्य उसके पैरों में है। इसके बाद? इसके बाद भी चिन्ता क्या है? वह इतना सञ्चित कर लेगी कि जन्म भर को काफ़ी होगा!

६

नख-शिख से शृङ्गार किए वेश्या के सामने आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे बेवक़ूफ़ और बेग़ैरत नौजवान कुत्ते दुम हिला-हिला कर जो प्रेम और आदर प्रकट करते हैं वही क्या वेश्या का सम्मान है? वेश्या की असलियत तो उसके 'वेश्या' शब्द में ही है। वह रज़ील, अछूत और भले घर की बहू-बेटियों के देखने की वस्तु भी तो नहीं। वे शरीफ़ज़ादे रईस और राजा, जो समय पर जूतियाँ उठाते और जूतियाँ खाते हैं—यह तो सहन ही नहीं कर सकते, कि कभी सामना होने पर भी अपनी घरवालियों से हमारा परिचय तक तो करा दें। अपनी रज़ील हैसियत हम समझती हैं, हमारे हीरे-मोती, महल-पलँग, मसहरी, मोटर, धन—कोई भी हमारी इस रज़ील हैसियत से हमारी रक्षा नहीं कर सकता। हाय! वेश्या

के हृदय को छोड़ कर, और कौन स्त्री-हृदय इस भयानक अपमान की धधकती आग को हँस कर सह सकती है।

उस दिन मेंह बरस रहा था, भयानक अँधेरा था, राजमहल स्टेशन से दूर न था, परन्तु महाराज शिकार खेलने वहाँ से १८ मील के फ़ासले पर गए थे। उनके अङ्गरेज़ दोस्त आए थे, वहीं उनकी दावत और जशन का नाच-रङ्ग था, दर्जन भर वेश्याएँ उसमें बुलाई गई थीं, मैं अभागिनी भी उनमें एक थी, मेरे नाच और गाने की ख्याति ने ही मुझे इस विपत्ति में डाला था, पर मैं करती भी क्या। वेश्या पर उसकी कुटनी माँ का असाध्य अधिकार होता है, मेरा शरीर अच्छा न था, मैं दो साइयाँ जा कर आई थी, थकी थी, सर्दी-ज़ुकाम भी था, पर मुझे आना ही पड़ा। चार सौ रुपए रोज़ की फ़ीस छोड़ी भी कैसे जाती? सारी नवाबी तो उसीके पीछे थी। अँधेरी रात और १० मील का सफ़र! १०-१२ हम बदनसीब औरतें और हमारे मिरासी नौकर। साथ के लिए ४ प्यादे सिपाही और सामान लादने की एक बेगार में पकड़ी हुई बैलगाड़ी और दो लद्दू टट्टू। बस, यह हमारे स्वागत का प्रबन्ध उपस्थित था। क्या ये कमीने राजा अपनी रानियों के लिए भी ऐसा ही स्वागत करने की हिम्मत कर सकते हैं? पर रानियों से हमारी निस्बत ही क्या?

सिपाहियों ने कहा—"बेगार में और कुछ मिला ही नहीं, सामान गाड़ी और टट्टू पर तथा हमें पैदल चलना होगा"। मैं तो धम से बैठ गई। इस अँधेरी रात में, बरसात के समय १० मील पैदल चलने से मैंने मरना ठीक समझा, मैंने साफ़ इनकार कर दिया। सिपाहियों ने फ़बतियाँ उड़ाईं! अन्त को एक टट्टू पहिले मुझे दे दिया गया। मैंने उसे ही ग़नीमत समझा।

इस भाग्यहीनों की इस ठाट की सवारी चली, जिन्हें वहाँ पहुँचते ही अपनी चमक-दमक, रूप और नख़रों से उन भेड़िए रईसों और उनके कमीने मेहमानों को पागल बनाना था। मैं चुपचाप टट्टू पर कम्बल ओढ़े बैठी थी, कमर टूटी जाती थी और मैं गिरी जाती थी। पानी का छींटा बीच-बीच में गिर जाता था, पर मैं जानती थी—वहाँ पहुँच कर मुझे बहुत मिहनत करनी है, आराम इस नसीब में कहाँ?

तीन घण्टे सफ़र करके हम वहाँ पहुँचे। पहुँचते ही पता लगा, महाराज और पार्टी कड़ी प्रतीक्षा कर रहे हैं, हमें तत्काल ही पेशवाज़ पहन कर महफ़िल में पहुँचना चाहिए। मैंने अधमरी सी होकर साथ की वेश्या से कहा—"अब इस समय तो मुझसे एक पग भी न उठाया जायगा।" उसने कहा—"बेवक़ूफ़ हुई है, जल्दी कर, ऐसा कहीं होता है।" उसने जल्दी-जल्दी दो-तीन पैग शराब पिलाई।

मिस एल० डी० सौजा, बी० एस-सी० (लन्दन)

आप वानीविलास इन्स्टीट्यूट, बङ्गलोर की हेडमास्टर नियत की गई हैं।

ओह! मुझे सजना पड़ा, मेरा अङ्ग-अङ्ग टूट रहा था, मैं मरी जाती थी, मुझे ज्वर चढ़ रहा था, पर मेरे पास मिनट-मिनट पर सन्देश आ रहे थे। हीरा प्रथम ही से महाराज के पास थी, उसने कहला कर भेजा—आनन्दी जल्दी कर, सभी लोग तेरा नाम रट रहे हैं। मेरा शृङ्गार हुआ, जड़ाऊ गहने, ज़री की पेशवाज़, मोतियों के दस्तबन्द और जड़ाऊ पेटी कस कर, इत्र और सेण्ट से तर-बतर हो, पाउडर से लैस हो दो पैग चढ़ा कर मैं छमा-

छम करती महफ़िल में पहुँची। मैं क्या पहुँची, बिजली गिरी—लोग तड़फ़ गए। हाय-हाय से महफ़िल गूँज गई, महाराज पागल हो रहे थे और दोस्त लोग उछल रहे थे। फूलों के गुलदस्ते मुझ पर बरस रहे थे, वाह वा का तार बँधा था। क्षण-क्षण पर हरी, लाल, नीली बिजली की रौशनी पड़ कर मुझे अमूर्ति मूर्ति बना रही थी, पर मेरा सिर दर्द से फटा जाता था, और जी मिचला रहा था, पर मैं मुस्करा कर छमाछम नाच रही थी। कहरवे की ठुमकी लेकर मैंने विहाग का एक टप्पा छेड़ा, साज़िन्दे उसे ले उड़े। महफ़िल में सकते की हालत हो रही थी, तालियों की गड़गड़ाहट की हद न थी, नोट और गिन्नियों का मेंह बरस गया, पर मैं मानो मूर्च्छित होने लगी, मुझे क़ै आने लगी थी और मैं अपने को अब क़ाबू न कर सकती थी। मैंने रौशनी वाले को आँख से एक सङ्केत किया! एक बार झुक कर महफ़िल को सलाम किया और भागी। महफ़िल में तालियाँ गड़गड़ा रही थीं, 'वन्स मोर' का शोर आसमान को चीरे डालता था। उधर मैं एक ज़ोर की क़ै करके बेहोश हो गई थी!

७

मैं कब तक उस दशा में पड़ी रही, नहीं कह सकती। किसी ने झकझोर कर जगाया, आँख खोल कर देखा, हीरा है। मैं उसे देखते ही उससे लिपट गई। ध्यान से देखते ही मुझे मालूम हुआ, हीरा का वह रूप-रङ्ग उड़ गया है। वह पीली पड़ गई है और उसकी उन सुन्दर आँखों के चारों ओर नीले दाग़ पड़ गए हैं, गले की हड्डियाँ निकल आई हैं। उसे मैं देखती ही रह गई, वह मुझे इस प्रकार अपनी ओर देखते देख कर हँस पड़ी। हाय, वह हास्य भी कितना रूखा था! कौन हीरा के उस हास्य से सुखी होता? पर मेरे मुँह से बात न निकली। मैं नीची दृष्टि किए कुछ सोचने लगी।

हीरा ने कहा—"उठ-उठ आनन्दी! जल्दी कर, तुझे महाराज ने याद फ़र्माया है।"

उसके होठ काँप गए, स्वर भी विकृत हो गया। मैं भी डर गई। मैंने कहा—"यह किसी तरह सम्भव नहीं हो सकता। क्या मैं इस समय महाराजा के पास जाने के योग्य हूँ?"

"इस बात से क्या बहस है? तुझे चलना तो पड़ेगा ही।"

"मैं हरगिज़ न जाऊँगी।"

उसने प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरा, पुचकार और कहा—"बेवक़ूफ़ी न कर, यह रियासत है, अपना घर नहीं, महाराज की हुक्मउदूली की सज़ा तुझे मालूम नहीं।"

"क्या मार डालेंगे?"

"यह तो कुछ सज़ा ही न थी?"

"तब?"—मैंने शङ्कित स्वर से पूछा।

"ईश्वर न करे, कि तुझे फ़ज़ीहत उठानी पड़े। मेरी प्रार्थना यही है कि उनकी इच्छा में दख़ल न देना, इसी में ख़ैर है।"

इतना कह कर उसने मुझे उठाया। पर मैं उठ सकती ही न थी। किसी तरह उसने उठाया, अपनी एक बढ़िया साड़ी मुझे पहना दी, बालों का शृङ्गार कर दिया और कुछ अदब-क़ायदे की बातें समझा कर ड्योढ़ियों तक पहुँचा आई। मैंने देखा, उसने मुँह फेर कर आँसू पोंछ लिए।

मेरा शरीर वास्तव में क़ाबू में न था, मैं सम्हल ही न सकी, बदहवास की तरह महाराज के सामने गिर गई। वहाँ क्या हो रहा था, वह सब मैं देख न सकी। मेरे होश-हवास दुरुस्त न थे, पर वहाँ सभी लुच्चे-लुङ्गाड़े, नीच, शराबी इकट्ठे थे। वे नर-राक्षस और पिशाच थे। वे शराब पी-पीकर पशु हो गए थे। उन्होंने लज्जा बेच खाई थी। मुझ पर जैसी बीती, वह मैं वेश्या होकर भी वर्णन नहीं कर सकती। जगत का कोई भी ख़ूँख़ार पशु किसी अबला स्त्री पर इतना अत्याचार न कर सकेगा। ज्वर से जलती हुई, थकी हुई, मुझ बदहवास ग़रीब असहाय स्त्री के साथ उन कुत्तों ने क्या-क्या करने और न करने योग्य न किया? सारा संसार यह कल्पना भी नहीं कर सकता, कि मुझ पर जो बीता और मैंने जो देखा, वह सम्भव भी हो सकता है, पर मेरे साथ तो वह हुआ। जब तक मैं होश में रही और मेरे शरीर में बल रहा, मैंने उन भेड़ियों को रोका। प्रतिकार किया, परन्तु मैं शीघ्र ही बदहवास हो गई और मैं उसी अवस्था में डोली पर लाद कर दिन निकलने से पूर्व ही दिल्ली को रवाना कर दी गई।

८

सैकिण्ड क्लास के ज़नाने डब्बे में मैं अकेली थी, मैंने सब खिड़कियाँ खुलवा दी थीं। सुबह की ठण्डी-ठण्डी हवा से मेरी तबीयत हलकी हुई, पर रात जो मुझ पर अत्याचार हुआ था वह असाधारण था; पर मैं जानती हूँ जगत के मर्द इससे क्षुभित न होंगे। वेश्या के बाहरी स्वरूप को सभी देखते हैं, वह भीतरी रूप तो हम स्वयं ही देखती हैं। मैं ज़रा उठ कर देखने लगी, रेल की पटरी के बराबर ही बराबर सड़क थी, उस पर एक मोटर तेज़ी से दौड़ी चली आ रही थी। मोटर गाड़ी से दौड़ लगा रही थी। मुझे कौतूहल हुआ, मैं एकटक उसे देखने लगी। मैंने देखा, एक स्त्री उसमें बैठी बड़ी बेचैनी से गाड़ी को देख रही है। स्टेशन आया, गाड़ी खड़ी हुई और वह स्त्री घबराई हुई स्टेशन में घुस आई। एक कर्मचारी उसे मेरे डब्बे में बैठा गया, डब्बे में बैठते ही वह हाँफने लगी और दोनों हाथों से मुँह ढँक कर बैठ गई। गाड़ी के चलते ही मैंने उसके पास जाकर कहा—"आपको कुछ तकलीफ़ है क्या ?" उसने चौंक कर देखा और मुझे देख कर ज़ोर से मेरा हाथ पकड़ कर कहा—"कुछ नहीं, ईश्वर का धन्यवाद है कि मेरी इज़्ज़त बच गई, तुम कहाँ जा रही हो।"

मैंने कहा—"दिल्ली।"

"मैं भी वहीं जा रही हूँ। तुम्हारा घर किस मुहल्ले में है और तुम्हारे पति क्या काम करते हैं ?"

मैं क्या जवाब देती, मैं चुपचाप खड़ी रही। कुछ सम्हल कर मैंने कहा—"आपको कुछ मदद चाहिए, वह मैं कर सकूँगी। आप कहिए।"

"मैं तुम्हारे यहाँ कुछ घण्टे ठहरना चाहती हूँ और अपने पति को तार-द्वारा सूचना देना चाहती हूँ। क्या तुम मेरे लिए इतना कष्ट करोगी ?"

"ज़रूर, परन्तु........" मैं फिर चुप हो गई।

"परन्तु क्या ?"—उसने घबरा कर कहा।

"मैं तवायफ़ हूँ, शायद आपको मेरे घर चलना पसन्द न हो।" वह स्त्री इस तरह चमकी, जैसे बिच्छू ने डङ्क मारा हो। उसने मेरा हाथ छोड़ दिया, मैं अपनी जगह आ बैठी। कुछ देर सन्नाटा रहा, आत्म-ग्लानि के मारे मैं मर रही थी।

उस स्त्री ने पूछा—"कहाँ से आ रही हो ?"

"महाराज........की महफ़िल से।"

उसने घृणा और क्रोध से मेरी ओर देखा, उसने होंठ काट कर कहा—"उस हरामज़ादे को मैं मच्छर की तरह मसल डालूँगी, उसने मुझे भी तुम जैसी ही रण्डी समझा होगा।"

मेरे कलेजे में तीर लगा !

मैंने धीरज धरके कहा—"मैं उससे घृणा करती हूँ, रात उसने मुझ पर बड़ा ज़ुल्म किया है, हम अभागिनी स्त्रियों की तो सर्वत्र एक ही दशा है। मैं जो हूँ वही

सर राजेन्द्र मुकर्जी

बङ्गाल वायुयान-क्लब के प्रेज़िडेण्ट

रहूँगी, यह तो क़िस्मत है। पर आपकी कोई भी सेवा मैं ख़ुशी से करूँगी, यदि आप चाहें।"

उसने मेरी तरफ़ देखा, और कहा—"मेरे स्वामी उस स्टेट में इञ्जीनियर हैं। हम लोग पारसी हैं, पर्दा नहीं करतीं। उस पापी ने मुझे और मेरे पति को एकाध बार चाय-पानी के लिए बुलाया था। वे कल से ही कहीं बाहर भेज दिए गए और आज सुबह मुझे बुला भेजा कि साहब आए हैं, यहाँ बैठे हैं। मैं सीधे स्वभाव चली

गई, पर वहाँ धोखा था। मेरी इज़्ज़त बचनी थी, मैं गुसलख़ाने की राह भाग कर मोटर में भागी हूँ। मैं सीधी वायसराय के पास जाना चाहती हूँ, मैं दिखा दूँगी कि किसी महिला की आबरू उतारने की कोशिश करना किसी गुण्डे के लिए कैसा भारी है, फिर चाहे वह गुण्डा महाराजा ही क्यों न हो?"

इतना कह कर वह लाल-लाल आँखों से मुझे घूरने लगी, मैं अपराधिनी की भाँति थर-थर काँपने लगी! क्या यह आश्चर्य की बात थी? एक ऐसी वीर महिला के

श्रीमती अमिया बन्द्योपाध्याय, एम० ए०

आप स्टेट स्कॉलरशिप पाकर ऑक्सफ़ोर्ड में साहित्य की ऑनर्स उपाधि प्राप्त करने विलायत गई हैं।

सामने, जो अपनी इज़्ज़त बचाने को जान पर खेल गई है, मेरी जैसी जन्म-अभागिनी, जो उसी इज़्ज़त को बेच कर पेट ही नहीं भरतीं, शान से रहना भी चाहती हैं—क्या खड़ी रह सकती थी? मैं खिड़की में मुँह डाल कर रोने लगी।

वह उठ कर आई, कहा—"रोती क्यों हो? क्या कोई कड़ी बात मेरे मुख से निकल गई। ऐसा हो तो माफ़ करना, मैं आपे में नहीं हूँ।"

मैंने उसका आँचल उठा कर आँखों में लगाया, उसे चूमा और फिर मैं भरपेट रोई। मैंने अपना पाप स्वीकार किया। मैंने मुँह फाड़ कर कह दिया। ईश्वर ने जीवन में मुझे सच्ची स्त्री-रत्न के दर्शन करा दिए। ओह, हम लाखों बेबस नारियाँ इस पवित्र जीवन से वञ्चित हैं, कोई भी माई का लाल इसका उपाय नहीं सोचता!!

उसने मुझे छाती से लगाया, प्यार किया। वह पवित्र वीराङ्गना मुझ पतिता वेश्या, अधम अभागिनी को बेटी की तरह दुलार करती दिल्ली तक आई। किसी तरह मेरी कोई सहायता स्वीकार न की। बहुत कहने पर कहा—"मेरे पास रुपए नहीं हैं। तुम्हारे पास हों तो १००) दे दो। ये कड़े रख लो, ६००) के हैं।" मैंने रुपए दे दिए। कड़े लेती न थी, पर वह बिना दिए कब रहती। वह मेरी आँखों से ओझल हो गई।

६

कृमि-कीट से भी अधम और घृणास्पद वेश्या होकर भी जो मैंने रानी का गौरवास्पद पद छीनना चाहा, उस धृष्टता का जो दण्ड मिलना उचित था, वह मुझे मिला।

मैं जिस रूप पर इतराती थी और जिसकी सर्वत्र प्रशंसा थी, महाराज भी जिसे देख कर थकते न थे, वह रूप अब निस्तेज हो गया। महाराज पर उसका नशा नहीं होता, वे और नवीनाओं की खोज में लगे और मुझे अनुचरों के सुपुर्द कर दिया। हाय री लाञ्छना, वह सब बड़ी-बड़ी आशाएँ मृग-मरीचिका निकल गईं। जिन्हें कल मैं तुच्छ समझ कर पीकदान उठवाती थी, वे महाराज के सङ्केत से मेरे शरीर और आत्मा के अधिकारी हो गए। जैसे पवित्र पाकशाला में विविध स्वादिष्ट खाद्य-पदार्थों से भरा हुआ थाल—महाराज के छक कर जीम चुकने पर जूठन भङ्गी को मिलती है। मेरी दशा भी उसी पत्तल के समान थी। महाराज के आदेश से उन्हीं के सम्मुख उनके विनोदार्थ मुझे उनके नीच पशु सब पार्श्वदों से जघन्य कुकर्म बिना उज़्र करना और महाराज के लिए आई हुई नवीनाओं के बीच कुटनी का काम करना!!

क्या किसी स्त्री का हृदय बिना फटे रह जाय? परन्तु मेरा हृदय फट कर भी न फटा, मैंने वह सब किया जो मुझे आदेश दिया गया। उस दिन महफ़िल में आनन्दी के रूप को देख कर महाराज और उनके कामुक कुत्ते उस पर लट्टू हो गए। और उस ग़रीब असहाय बालिका

को उनके पास लाने का कार्य करना पड़ा मुझे ? इच्छा हुई कि अभी विष खा लूँ ; फिर सोचा, क्या मेरे मर जाने पर आज कोई रोवेगा ? इस रस-रङ्ग में ज़रा भी विघ्न पड़ेगा ? आनन्दी को भी क्या कोई बचा सकेगा ?

यह तो सम्भव नहीं है । मैं उसे चुमकार-पुचकार कर ले गई । वही हुआ जो भय था, वह उसी दिन से शय्या पर पड़ी है, उसके शरीर का बूँद-बूँद रक्त निकल गया, पर रक्त-प्रवाह बन्द होता ही नहीं । डॉक्टर कहते हैं कि वह बचेगी नहीं, उसे खाँसी और ज्वर भी हो गया है, और वह सूख कर काँटा हो गई है । मैं उसे देखने गई थी । क्या उसका हाल वर्णन करूँ ? वह अब उठ-बैठ भी नहीं सकती, अभी उसकी आयु की बालिकाएँ कुमारी हैं और वह सभी कुछ भोग चुकी, सभी कुछ पा चुकी, साथ ही परलोक के सभी अधिकार खो चुकी । आज नहीं तो कल वह चली जायगी, उस सर्व-शक्तिमान् पिता के पास, वह दयालु ईश्वर क्या अब भी उसे और दण्ड देगा ! उसने पाप किया, पाप अपना जीवन बनाया, पाप में वह जी और मरी, पर पाप को उसने पाप समझा कब ? नारी-जीवन पाकर, नारी-शरीर पाकर, नारी के सभी गुण पाकर, वह बेचारी नारी-गरिमा से बिलकुल वञ्चित रही !!

हाँ, मैं इस पर विचार करूँगी कि यह वेश्यावृत्ति क्या वस्तु है । और इसका दायित्व किस पर है, इसके नाश का क्या कोई उपाय नहीं है । उन पुरुषों को धिक्कार है, जो स्त्रियों के रक्षक होकर भी स्त्री-जाति के इस कलङ्क को नाश करने का ज़रा भी उद्योग नहीं करते । आह ! आनन्दी, तेरी जैसी कितनी प्यार की पुतलियाँ इसी तरह कुचली गईं । ये कमीने धनी, धन के बदले हमें प्रलोभनों में फँसाते हैं और हमारा यह लोक और परलोक नष्ट करते हैं । और खेद तो यह है कि इसका ज्ञान हमें तब होता है, जब हमारे बचने के सभी मार्ग बन्द हो जाते हैं । मैं क्या कर सकती थी, मैं उसके लिए अच्छी तरह रोकर चली आई !

१०

मुझे मरने में बड़ा सुख है । रेल वाली उस महिला का हाथ मेरे मस्तक पर है । वह मुझे मृत्यु के बाद मार्ग बताएगी । अब जितनी जल्द यह घृणित शरीर छूटे, अच्छा है । मैंने वे पलँग, साड़ी, शाल, आभूषण—सब त्याग दिए । मैं महादरिद्र की तरह मर रही हूँ, पर मुझे गर्व है कि इस शरीर को छोड़ अब कोई अपवित्र वस्तु मेरे पास नहीं । और जिस स्वेच्छा से मैंने वे सब सामान त्यागे हैं, उसी तरह मैं इस शरीर को त्यागने को उत्सुक हूँ । इसमें मुझे ज़रा भी दुःख नहीं, पर खेद तो यह है कि अब स्नेहशीला हीरा के दर्शन न होंगे । ऐसी प्रेम और त्याग की अप्रतिभ मूर्ति, सौन्दर्य की राशि पृथ्वी में कितनी उत्पन्न होती हैं ? सुना है कि वह पागल हो गई है । और उस दिन आत्म-घात की इच्छा से छत से
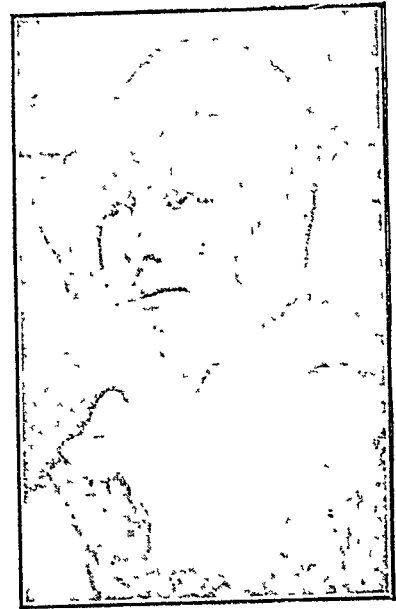
मिस सिविल सेल कुड

आप सिर्फ़ १९ वर्ष की आयु में न्यूइङ्गटन की लिबरल एसोसिएशन की सेक्रेटरी नियत की गई हैं ।

कूद पड़ी थी । आख़िर कहाँ तक सहन करती ? जिसे उसने तन, मन, शरीर दिया, उसीने उसे यहाँ तक गिराया । मैं मरती हूँ, पर पुरुष-जाति पर शाप देती हूँ, कि इस पुरुष-जाति का नाश हो, इसका वंश नष्ट हो, इसकी मिट्टी ख़्वार हो, जो असहाय अबलाओं की पवित्रता और जीवन को अपनी वासनाओं पर क़ुर्बान करते हैं !! यह पुरुष-जाति सदा—रोग, शोक, दुख, दरिद्र, पाप, यन्त्रणा में अनन्त काल तक पड़ी रहे !!!
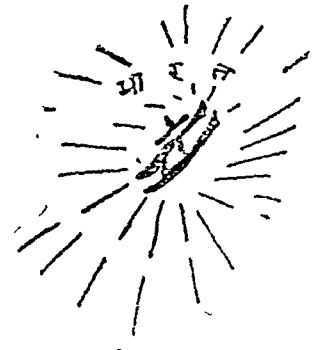
जॉनबुल की जान सङ्कट में

बेचारे भारत की ओर नज़र लगाए हुए हैं, पर अपने घर का पता नहीं रखते

जागृत एशिया

[श्री० मथुरालाल शर्मा, एम० ए०]

आर्थिक और राजनैतिक साम्राज्यवाद

यों तो १५वीं शताब्दी में ही यूरोपीय देश संसार में अपनी प्रभुता फैलाने लग गए थे और अगली तीन शताब्दी में स्पेन, पोर्तुगाल, हॉलैण्ड, फ्रान्स तथा इङ्गलैण्ड के व्यापारियों ने, उधर अमेरिका और इधर अफ्रिका तथा एशिया की सम्पत्ति से अपने देशों को खूब समृद्धिशाली बना दिया था, परन्तु अभी उन्होंने साम्राज्यवाद को अपना धर्म नहीं बनाया था। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जो औद्योगिक और वैज्ञानिक विप्लव हुए, उनके कारण यूरोप के देश पक्के साम्राज्यवादी बन गए।

१८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इङ्गलैण्ड का बना हुआ लोहे का सामान और कपड़ा यूरोप में खप जाया करता था, परन्तु सन् १८४० के बाद ही यूरोप के अन्य राष्ट्र भी इस ओर उन्नति करने लगे और उनको अङ्गरेज़ी माल की आवश्यकता ही नहीं रही, बल्कि अपने माल को खपाने की और अपनी पूँजी पर अच्छा ब्याज कमाने की चिन्ता होने लगी। साथ ही विज्ञान ने संसार की काया पलट दी और अनेक भौतिक कठिनाइयों को हल कर दिया। सन् १८४० में संसार में केवल २४,००० मील रेल का प्रबन्ध था, पर सन् १९०० के पूर्व यह लगभग १० लाख मील तक फैल गया था। सन् १८४० से पूर्व केवल ४,००० मील तार था, पर १९वीं शताब्दी के अन्त में इसकी लम्बाई १० लाख मील से भी बढ़ गई थी।* १८७० और १९०३ के मध्य में इङ्गलैण्ड, जर्मनी और अमेरिका ने, जो लोहे का सामान बनाने में उन्नति की थी उसका ब्योरा यह है †—

	सन् १८७०		सन् १९०३	
इङ्गलैण्ड ...	६०	...	९०	लाख मन सामान
जर्मनी ...	१०४	...	६०८	,,
अमेरिका ...	१०७	...	१८०	,,

यही हाल कपड़े का था। इस प्रकार जब गोरे देशों में माल की उत्पत्ति बढ़ने लगी और विपुल सम्पत्ति कारख़ानों के स्वामियों के पास एकत्र होने लगी, तो दो विकट समस्याएँ उपस्थित हुईं कि माल को लाभ के सहित कहाँ खपाया जावे और पूँजी को अच्छा ब्याज उपजाने के लिए कहाँ लगाया जावे? यूरोप और अमेरिका में यह माल खप नहीं सकता था और न वहाँ पूँजी पर कोई अच्छा ब्याज मिल सकता था। इसलिए यह उत्पादक देश एशिया और अफ्रिका में अपना माल खपाने तथा वहाँ ब्याज पर अपना रुपया लगाने का प्रयत्न करने लगे। जहाँ इनको अपने कार्य में बाधा हुई, वहाँ इन्होंने छल-बल और कौशल से काम लिया। कई देशों को निरन्तर ग्राहक बनाए रखने के लिए, सदैव के लिए दासता की शृङ्खलाओं में जकड़ दिया। उनके कच्चे माल को कौड़ियों में ख़रीदा, उनके उद्योग-धन्धों को निर्दयतापूर्वक नष्ट किया और अपने माल को फ़ायदे के साथ बेचने के लिए अनेक सुविधाएँ प्राप्त कीं। इन राक्षसी प्रयत्नों ने यूरोप को साम्राज्यवादी और एशिया को उसका ग़ुलाम बना दिया। सारा संसार काली और गोरी दो जातियों में विभक्त हो गया!

१९वीं शताब्दी के मध्य में एशिया के सब देशों में यूरोप की प्रभुता स्थापित हो चुकी थी। भारतवर्ष और लङ्का पर अङ्गरेज़ों ने और पूर्वी द्वीप-समूह तथा अनाम आदि देशों पर हॉलैण्ड, अमेरिका और फ्रान्स ने अपना राज्य जमा लिया था। इसके सिवाय अन्य देशों के भी व्यापार-केन्द्रों पर यूरोपीय लोगों का क़ब्ज़ा था। ईरान की खाड़ी, अदन, सिङ्गापुर, हाँगकाँङ्ग, वेहेवी अङ्गरेज़ों के; गोवा, पॉण्डीचरी, कॉङ्गचूवान फ्रान्स के; मेकाव पोर्तुगाल के और शान्तुङ्ग जर्मनी के आधिपत्य में थे।

* R. S. Lambert—*Modern Imperialism* p. 6.

† G. Brailsford—*Economic Imperialism* p. 28.

साइबेरिया और पश्चिमी तुर्किस्तान पर रूस का राज्य था। जिन देशों पर गोरी जातियों का पूर्ण राज्य स्थापित हो चुका था, उनका रक्त-शोषण तो होता ही था, परन्तु चीन, जापान, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और नेपाल आदि देशों के साथ भी विदेशियों ने ऐसी सन्धियाँ कर रक्खी थीं, जिनके कारण गोरों को विपुल आर्थिक लाभ होता था। एशियाई देशों के बाज़ारों को परदेशी सामानों से पाटा जाता था, इन पर जो देश अधिक कर लगा कर अपने

श्री० जी० के० देवधर

आप पूना की सर्वेण्ट ऑफ़ इण्डिया सोसाइटी के प्रेज़िडेण्ट नियत हुए हैं।

उद्योग-धन्धों की रक्षा करना चाहता था उसी के साथ युद्ध की तैयारी होती थी। जो देश विदेशी माल ख़रीदने से इनकार करता था उसको भी तोप, तलवार और सङ्गीनों से विवश किया जाता था। जापान १९वीं शताब्दी के मध्य तक यूरोप के सम्पर्क से बचता रहा, लेकिन सन् १८४६ और १८६५ के बीच में अमेरिका, रूस, हॉलैण्ड और ग्रेट ब्रिटेन के जहाज़ी बेड़ों ने उसको विवश करके उससे कई ऐसी व्यापारी-सन्धियाँ करवा लीं, जिससे उनको ख़ूब लाभ होने लगा। जब जापानी सरकार सन्धियों की शर्तों को बदलना या रद्द करना चाहती थी, तभी गोरी सरकारें उसको युद्ध की धमकी देकर चुप कर दिया करती थीं। चीन के साथ भी इनका ऐसा ही व्यवहार था। अङ्गरेज़ सरकार भारतवर्ष में अफ़ीम पैदा करवाती थी और उसको चीन में भेजती थी। इससे भारतवर्ष की गोरी सरकार को दुहरा लाभ होता था। प्रथम तो जिस भूमि में अफ़ीम होती थी, उसका कर ख़ूब लिया जाता था, दूसरे अफ़ीम के निर्यात कर से कई करोड़ रुपए की आय होती थी। उधर चीन में अफ़ीम खाने की आदत बढ़ती जाती थी और लोगों का शारीरिक तथा मानसिक पतन होता जाता था। जनता के समझदार लोग इसका विरोध करते थे और चीनी सरकार भी अफ़ीम की आमद को घटाना चाहती थी,* पर अङ्गरेज़-सरकार अपने भारी लाभ से वञ्चित नहीं होना चाहती थी। चीनी जनता ने कई बार अफ़ीम की पेटियों को जलाया, और अफ़ीम के सौदागरों को सताया, पर इससे धन-बल सम्पन्न अङ्गरेज़ सरकार का क्या बिगड़ सकता था। इस प्रकार के छोटे-छोटे उत्पातों से उनको अधिक नृशंसता करने का तथा लोगों को त्रस्त करने का बहाना मिलता था। अपने माल की रक्षा के लिए तथा अपने व्यापारियों की सुविधा के लिए विदेशियों ने चीन में कई स्थानों पर अपने कारख़ाने, कोठियाँ तथा गोदाम आदि बनवा लिए थे, जहाँ इन्हीं का क़ानून और इन्हीं का अधिकार था। उन स्थानों में रहने वाले चीनियों को भी विदेशियों के क़ानून मानने पड़ते थे। विदेशी चीन में चाहे जहाँ भ्रमण करें और कुछ भी करें, वे चीन के न्यायालय में पेश नहीं किए जा सकते थे। उन पर यदि मुक़दमा चलता था तो उन्हीं की अदालतों में, जहाँ प्रायः वे निर्दोष बतलाए जाते थे। यही दशा अन्य देशों की थी। भारतवर्ष, इण्डोचाईना, पूर्वी द्वीप-समूह और लङ्का पर तो गोरों का पूरा राज्य ही था। यहाँ वे स्वच्छन्दतापूर्वक जो चाहे सो कर सकते थे। भारत के उद्योग-धन्धे सरकार की निष्ठुर नीति से नष्ट हो गए।

---

* T'ang Leang-Li—*China in Revolt ch. iii.*
" " *Chinese Revolution pp. 34-35.*

इङ्गलैण्ड और अन्य देशों से भारतवर्ष में कपड़े तथा लोहे का माल आने लगा और यहाँ से रूई, अन्न, सन आदि कच्चा माल बाहर जाने लगा। अङ्गरेज़ी कम्पनियों ने रेल, बिजली के कारख़ाने, नील की खेतियाँ, ऊन, सन, चमड़ा आदि का व्यापार सब अपने हाथ में ले लिया। सरकारी रियायतों के कारण असफलता की उनको आशङ्का भी नहीं रही। फ़्रान्स हॉलैण्ड और पोर्तुगाल ने भी अपने राज्यों में इसी नीति का अनुसरण किया।

ईरान की दशा चीन से भी अधिक शोचनीय थी। उसको उत्तर में रूस ने और दक्षिण में अङ्गरेज़ों ने दबा रक्खा था। दोनों राष्ट्रों ने उसको दो हिस्सों में विभक्त कर रक्खा था और अपने-अपने हिस्सों में उनका अखण्ड प्रभुत्व था। रूसी और अङ्गरेज़ ईरान की सरकार को नहीं मानते थे और ईरान का क़ानून उन पर लागू नहीं होता था। जैसे चीन में विदेशियों ने अपने सैनिक-बल के द्वारा विशेष अधिकार प्राप्त कर रक्खे थे, उसी प्रकार उन्होंने ईरान में भी अपना सिक्का जमा रक्खा था। दक्षिण ईरान में मिट्टी के तेल के कुएँ अङ्गरेज़ों ने अपने अधिकार में कर रक्खे थे, जिससे उनको भारी लाभ होता था। दोनों विदेशी जातियों के प्रति जब जनता असन्तोष प्रकट करती थी, तो उसको सैनिक शक्ति के द्वारा दबा दिया जाता था। ईरान के शाह अङ्गरेज़ और रूसियों के हाथ की कठपुतलियाँ थे। पहिले तो वे लोग गहरी अन्तर्राष्ट्रीय चालों को समझते ही नहीं थे, और पीछे जो समझ सकते थे, उनको विदेशियों ने ऐसे वायुमण्डल में रक्खा, कि वे भोग-विलास को ही अपना जीवन-ध्येय समझने लगे और अपने राज्य को अपनी जायदाद मानने लगे। शाह नासिरुद्दीन, मुज़फ़्फ़रउद्दीन, मोहम्मदअली और अहमदशाह—सब विदेशियों की उँगलियों पर नाचा करते थे। इनके विलास के कारण राज्य-कोष में सदैव दिवाला रहता था, परन्तु रूस और इङ्गलैण्ड इनको ऋण देने के लिए सदैव तैयार रहते थे। वे शाह से मनमाना व्याज लेते थे और देश की आय पर अपना निरीक्षण रखते थे। इसके अलावा उन्होंने शाह पर दबाव डाल कर व्यापार के लिए कई प्रकार की रिआयतें प्राप्त कर रक्खी थीं।*

* Haris Kohn—*A History of Nationalism in the East, pp. 325-30.*

तुर्की यूरोप के सान्निध्याय में था, इसलिए व्यापारिक और राजनैतिक—दोनों कारणों से वह गोरी सरकारों की आँखों की किरकिरी बना हुआ था। तुर्की में फ़्रेञ्च, अमेरिकन, अङ्गरेज़ रूसी और यूनानियों की बड़ी-बड़ी बस्तियाँ थीं, जो वास्तव में तुर्की-सरकार के शासन को कुछ भी नहीं मानती थीं। जब कभी इनमें और तुर्की-सरकार में विरोध होता था, तो यूरोप के राष्ट्र अपने देशवासियों का साथ देते थे। उनकी सहायता के बहाने रूस, फ़्रान्स और बलक़ान के राज्य कई बार तुर्की से
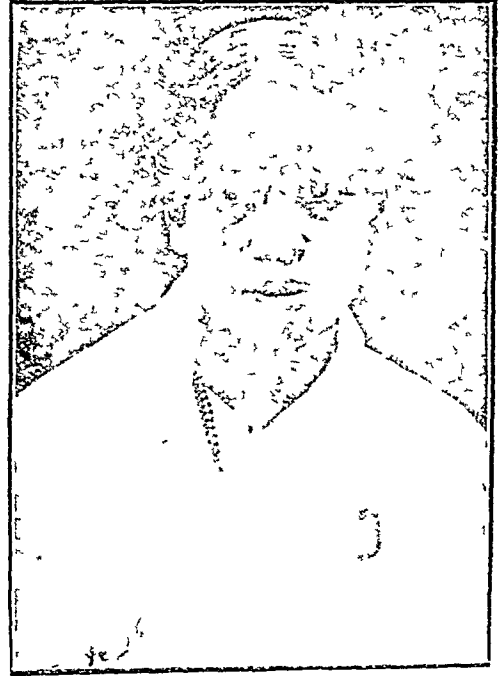
श्रीमती पार्वतीबाई कार्निक

आप थाना (बम्बई) के कॉङ्ग्रेस स्वयंसेविका संघ की प्रेज़िडेण्ट नियत की गई हैं।

युद्ध कर चुके थे और सन् १९१४ में तुर्की साम्राज्य यूरोप महाद्वीप में थोड़ा-सा रह गया था। यूरोप के राजनीतिज्ञ तुर्की को यूरोप का मरीज़ (Sickman of the west) कहा करते थे और २०वीं शताब्दी के आरम्भ में गिद्धों की भाँति उसकी लाश पर झपटने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

अङ्गरेज़ लोग भारतवर्ष को अपने चङ्गुल में फँसाए रखने के लिए सिकन्दरिया से बम्बई तक के जल-मार्ग

को तो निष्कण्टक रखना ही चाहते थे, पर इसके अतिरिक्त विन्सेन्ट चर्चिल जैसे हड़पू नीतिज्ञों का यह भी मत था कि रूम-सागर के पूर्वी तट से ख़ैबर घाटी तक का एशिया खण्ड भी यदि पूर्णरूपेण अङ्गरेज़ों के राज्य में शामिल न हो, तो कम से कम वहाँ दूसरी यूरोपीय शक्ति का भी आधिपत्य न हो और न तुर्की, अरब, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान उन्नत बन कर कभी अङ्गरेज़ों की अप्रतिद्वन्द्व शक्ति के बाधक बनें।

मुसलिम सङ्गठन

जिस समय यूरोप एशिया को आर्थिक और राजनैतिक दासता की बेड़ियों से अधिकाधिक जकड़ता जाता था, उस समय मुसलिम संसार में एक अपूर्व जाग्रति हुई। तत्कालीन इसलाम की अनेक कुरीतियों का निवारण करने के लिए तथा मुसलमानों को सचेत करने के लिए अरबस्तान के एक विद्वान सुधारक ने आन्दोलन आरम्भ किया। उसका नाम था मोहम्मद इब्न अब्दुल वहाब। इस वहाबी आन्दोलन ने सुषुप्त इसलाम को जाग्रत कर दिया। धार्मिक जाग्रति के साथ ही साथ मुसलमान अपनी आर्थिक और राजनैतिक विवशता को भी अनुभव करने लगे। जमालुद्दीन अफ़ग़ानी नामक एक विद्वान वक्ता और आन्दोलक ने सम्पूर्ण मुसलिम-जगत में दौरा किया और मुसलमानों को वास्तविकता का अनुभव करवाया। उसने यूरोप की आक्रमणात्मक नीति की ओर मुसलमानों का ध्यान आकर्षित करके आत्म-रक्षा के उपाय सोचने को उनसे प्रेरणा की। उसका सन्देश था कि यूरोप की सर्वसंहारिणी बाढ़ से बचने के लिए सब मुसलमानों को परस्पर सङ्गठित होना चाहिए। जहाँ जाता था वहाँ वह इसी सन्देश को सुनाता था और इसी मन्त्र की दीक्षा देता था। तुर्की का सुलतान अब्दुल हमीद भी मुसलिम सङ्गठन का बड़ा हामी था। वह वास्तव में मुसलिम जगत का ख़लीफ़ा बन कर इसलाम को पुनः गौरवान्वित करना चाहता था। जमालुद्दीन जब तुर्की में पहुँचा तो सुलतान अब्दुल उससे बहुत प्रसन्न हुआ और वह सुलतान का दाहिना हाथ बन गया। १९वीं शताब्दी गुरुडम का समय नहीं था, इसलिए अब्दुल हमीद को मुसलमान संसार ने उस श्रद्धा और सम्मान के साथ तो ख़लीफ़ा नहीं माना, जैसे अबूबकर या उसमान को इसलाम के आदि-काल में माना जाता था, परन्तु मुसलिम सङ्गठन का सन्देश प्रत्येक मुसलमान ने बड़े आदर और उत्साह के साथ सुना और क़ुस्तुन्तुनिया से कलकत्ता तक सब मुसलमान अपने आपको एक विशाल भ्रातृ-मण्डल के सदस्य मानने लगे। हिन्दुओं के भय से भारतवर्ष के मुसलमान तो अङ्गरेज़ों के भक्त बने रहे, परन्तु पेशावर से पश्चिम की ओर के सब मुसलमान विदेशियों की हड़प नीति का अनुभव करने लगे और यूरोप से घृणा होने लगी!

हिन्दू-जाग्रति

सन् १८४९ में सम्पूर्ण भारतवर्ष पर अङ्गरेज़ों का राज्य स्थापित हुआ था, परन्तु हिन्दू जाग्रति उससे पूर्व ही आरम्भ हो गई थी। सन् १८२८ में राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना की और सङ्कुचित विचार तथा सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों का घोर विरोध करना आरम्भ किया। उन्होंने स्वयं लन्दन यात्रा की और अन्य लोगों को भी विदेश यात्रा के लिए प्रोत्साहित करने लगे। उनके बाद केशवचन्द्र सेन ने सामाजिक सुधार का और भी अधिक उत्साह के साथ कार्य किया। उन्होंने भारतीय संस्कृति की उच्चता और महत्ता बतलाते हुए हिन्दू-समाज के सङ्कुचित विचारों को हटाने का उपदेश किया। सन् १८६७ में बम्बई में प्रार्थना-समाज की स्थापना हुई और उसके आठ वर्ष बाद उसी नगर में स्वामी दयानन्द ने आर्य-समाज क़ायम किया। स्वामी दयानन्द ने बतलाया था कि भारत की पुरातन संस्कृति संसार की सभ्यता की जननी है, आर्य-धर्म सर्वोत्तम और सार्वभौम धर्म है, और वेद सम्पूर्ण सत् विद्याओं का भण्डार है। वे कहते थे कि भारत की पराधीनता के कारण हैं ब्रह्मचर्य का अभाव, धार्मिक ह्रास, अव्यवस्थित शिक्षा, स्त्रियों की दुर्दशा, जातीय दर्प और अनेक सामाजिक कुरीतियाँ आदि। स्वामी दयानन्द बड़े देश प्रेमी थे और अपने व्याख्यानों में भीम और अर्जुन की वीरता, सीता का सतीत्व, राम की पितृ-भक्ति, भारत का अतीत ऐश्वर्य आदि का अपने श्रोताओं को स्मरण दिलाया करते थे। आर्य-समाज के प्रचार ने हिन्दू जनता को जाग्रत कर दिया। और सब हिन्दू लोग अपने प्राचीन गौरव पर अभिमान करने लगे। पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंधी एकदम हट गई।

उत्तर भारत के गाँव-गाँव में आर्य-सभ्यता की चर्चा होने लगी। स्वामी विवेकानन्द ने भी केवल भारतवर्ष को ही नहीं, परन्तु सम्पूर्ण संसार को यह बतला दिया कि यह देश अब भी अध्यात्म विद्या में जगद्गुरु है, और इसका जाग्रत होकर अपने पैरों पर खड़ा होना कोई कठिन बात नहीं है !

पश्चिम का सम्पर्क

सम्पर्क के आरम्भ काल में मुसलमान, हिन्दू, चीनी, जापानी और अन्य एशियाई क़ौमें यूरोपियन लोगों को काफ़िर, मलेच्छ और अन्त्यज समझती थीं, लेकिन कुछ वर्ष बाद यूरोप की महत्ता को ये लोग अनुभव करने लगे। यूरोप के पादरियों के प्रयत्नों से एशिया में सर्वत्र यूरोपीय भाषाओं के कॉलेज खुल गए, जिनमें अनेक एशियाई विद्यार्थी, वाणिज्य, नौकरी या केवल शौक़ के लिए, विदेशी भाषा का अध्ययन करने लगे। तुर्की में ऐसे विद्यालय १९वीं शताब्दी के आरम्भ में खुले थे, परन्तु भारतवर्ष में लॉर्ड वारन हेस्टिंग्ज़ के शासन काल में अर्थात् १८वीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में ही खुल गए थे। चीन और जापान में यूरोपीय पादरियों के कॉलेज १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में खुले थे। सीरिया और पैलेस्टाईन में भी ईसाइयों का काफ़ी ज़ोर था। अरबस्तान, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान ने ऐसे विद्यालय नहीं खुलने दिए, परन्तु १९वीं शताब्दी के अन्त में ईरान ने विवश मिशन स्कूलों के लिए इजाज़त दे दी। विदेशी भाषाओं के पढ़ने से एशियाई लोगों का ज्ञान-क्षितिज विस्तृत होने लगा और ये लोग मानने लगे कि यूरोप के लोग निरे वर्बर डाकू और हूण लोगों की भाँति समृद्ध राज्यों को नष्ट करने वाले जङ्गली लोग ही नहीं हैं, बल्कि उनका साहित्य, संस्कृति और सभ्यता—सब एशिया से ख़ूब आगे बढ़ी हुई हैं। इसके पश्चात एशिया के लोग यूरोप की यात्रा करने लगे। तुर्की के अतिरिक्त अन्य देशों के मुसलमान और हिन्दू यूरोप-भ्रमण को अच्छा नहीं समझते थे, बल्कि हिन्दू तो समुद्र-यात्रा को पतन का कारण मानते थे। फिर भी १९वीं शताब्दी में सर सैयद अहमद, राजा राममोहन राय इङ्गलैण्ड हो आए थे और उसके बाद भारतवर्ष से सैकड़ों विद्यार्थी और व्यापारी विदेश जाने लगे। चीन, जापान

स्वर्गीय राजा राममोहन राय

और तुर्की के लोग तो यूरोप के सम्पर्क से ख़ूब लाभ उठाने लगे।

पश्चिमी शिक्षा

आक्रान्त देशों में पश्चिमी शासकों ने अपनी भाषा की शिक्षा देना आरम्भ किया। मेकॉले ने भारतीय भाषा को हेय समझ कर, अङ्गरेज़ी भाषा द्वारा भारतीय शिक्षा की व्यवस्था की। फ़्रेञ्च इण्डोचाइना, जावा, सुमात्रा और फ़ीलीपाइन्स तथा हाँगकाङ्ग आदि में भी ऐसा ही प्रबन्ध हुआ। इन विद्यालयों में शिक्षा पाए हुए लोगों को विदेशी सरकार अच्छी-अच्छी नौकरियाँ देने लगी, जिसके कारण विदेशी शिक्षा का प्रचार बढ़ने लगा। अन्य एशियाई देशों में ज्यों-ज्यों ईसाइयों की संख्या बढ़ने लगी, त्यों-त्यों विदेशियों के विद्यालय भी अधिकाधिक खुलने लगे। शनैः-शनैः लोगों के विचार उदार होने लगे और ऐसे विद्यालयों का महत्व जनता अनुभव करने लगी। मिशन कॉलेज और स्कूलों के सिवाय सरकारी कॉलेज और स्कूल तो खुल ही चुके थे। अब दयानन्द कॉलेज, इसलामिया कॉलेज और पूना कॉलेज जैसी संस्थाएँ भी खुलने लगीं। जापान से तुर्की तक कहीं सरकारी, कहीं मिशनरी और कहीं जनता के ऐसे अनेक विद्यालय स्थापित हो गए। पश्चिमी शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा मानी जाने लगी। लड़के ही नहीं, बल्कि लड़कियाँ भी पश्चिमी शिक्षा ग्रहण करने लगीं। भारतवर्ष और अन्य देश और द्वीप, जो यूरोप के अधीन थे, वहाँ के लोगों के लिए तो यह स्वाभाविक बात थी कि वे अपने प्रभुओं की नक़ल करते, रहन-सहन, बोल-चाल आदि में उन-जैसे बनते, पर चीन, जापान, तुर्की जो स्वतन्त्र देश थे, वहाँ भी यूरोप की सभ्यता का ख़ूब अनुकरण होने लगा!

यूरोपीय साहित्य के अध्ययन से लोगों के धार्मिक और सामाजिक विचारों पर प्रभाव पड़ने लगा। जो लोग यूरोप में भ्रमण करने गए, वे वहाँ की समृद्धि और संस्कृति तथा शक्तिशालिता को देख कर चकाचौंध हो गए। कितने ही लोग अपनी सभ्यता को हेय समझने लगे और पश्चिमी सभ्यता के रङ्ग में अपने को रँगने लगे। भारतवर्ष, चीन और जापान में असंख्य लोग ईसाई धर्म ग्रहण करने लगे और रहन-सहन, वेष-भूषा सब में यूरोपीय बनने की नक़ल करने लगे।

साहित्य संस्कार

यूरोप के सम्पर्क का एशिया की भाषाओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा। भारत में हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू आदि भाषाओं का वर्तमान स्वरूप इस नवीन जाग्रति का ही फल है। हिन्दी और उर्दू को वारन हेस्टिंग्ज़ ने प्रोत्साहन दिया था और उसके बाद यूरोपीय साहित्य तथा फ़ारसी और संस्कृत साहित्य के अनुवाद से ये दोनों भाषाएँ भारत की अन्य प्रान्तिक भाषाओं की भाँति उन्नत होने लगीं। १८वीं शताब्दी तक प्रान्तिक भाषाओं का साहित्य नाम मात्र का था और उनका स्वरूप भी निश्चित नहीं होने पाया था। जो कुछ भी साहित्य था, वह सब पद्यमय था। गम्भीर विषयों की चर्चा संस्कृत में की जाती थी। स्वामी दयानन्द भी वर्षों तक अपने मत का प्रचार संस्कृत द्वारा करते रहे, परन्तु जब श्री० केशवचन्द्र सेन ने उनको हिन्दी की उपयोगिता बतलाई, तो वे हिन्दी में प्रचार करने लगे। तदनन्तर उन्होंने अपने ग्रन्थ भी हिन्दी में ही लिखे। १९वीं शताब्दी में ही सर सैयद अहमद ने पश्चिम के वैज्ञानिक ग्रन्थों का उर्दू भाषा में अनुवाद करवाने की व्यवस्था की और उसी समय उर्दू काव्य का ढङ्ग बदला।

तुर्की, जापान और ईरान में भी इसी प्रकार साहित्य का सुधार हुआ। १९वीं शताब्दी भी तुर्की भाषा, अरबी और फ़ारसी शब्दों से लदी हुई थी। सरकारी दफ़्तरों की भाषा और जन-साधारण की बोल-चाल की भाषा में महान अन्तर था। एक जटिलता में फँसी हुई थी और दूसरी ग्राम्यता से भरी हुई थी। यूरोप के सम्पर्क से इसमें भारी सुधार हुआ। जो लोग यूरोप में भ्रमण कर चुके थे और देश-भाषा की उन्नति के महत्व को समझ चुके थे, उन्होंने भाषा को सुधारना आरम्भ किया। नवीन ग्रन्थ और समाचार-पत्र ऐसी भाषा में प्रकाशित किए जाने लगे, जो न जटिल थी और न ग्राम्य। इसी प्रकार चीनी, जापानी तथा बरमी भाषा का भी सुधार हुआ।

इन सब एशियाई भाषाओं में यूरोप के राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक विचार घुसने लगे। यूरोपीय उपन्यासों के ढङ्ग पर एशियाई भाषाओं में भी उपन्यास लिखे जाने लगे और नाटक,

प्रहसन, आख्यायिका, पद्य आदि सब यूरोप की शैली पर लिखे जाने लगे। क़ुस्तुन्तुनिया से टोकियो तक, सब प्रधान नगरों में छापेख़ाने स्थापित हो गए और यूरोपीय विचारों की लहरें एशिया महाद्वीप में लगभग सर्वत्र फैल गईं। लोक-सागर की परम्परागत शान्ति भङ्ग होने लगी और भावी तूफ़ान के पूर्व चिन्ह दिखाई देने लगे!

राष्ट्रीय जाग्रति

इन सब कारणों से एशिया के प्रधान देशों में राष्ट्रीय भावों की जाग्रति होने लगी। यूरोपीय साहित्य के अध्ययन से तथा यूरोपीय देशों में भ्रमण करने से लोगों का स्वाभिमान और देश-प्रेम जाग्रत हो उठा और जनता अपने देशों को उन्नतावस्था में देखने के लिए अधिकाधिक लालायित होने लगी। एशिया की सब प्रधान भाषाओं में गेरीबाल्डी, मेज़िनी, काव्वर, बिस्मार्क आदि यूरोप के प्रसिद्ध देशभक्तों की जीवनियाँ प्रकाशित हुईं, जिन्होंने देशों के सामने एक नया आदर्श खड़ा किया। जब एशियावासी विदेशियों की स्वार्थमयी नीति को समझने लगे, तो उनके प्रति घृणा बढ़ने लगी। जो देश इन गोरों से अपना पिण्ड छुड़ाना चाहता था उसी को शस्त्र-बल द्वारा दबाया जाने लगा। इस राष्ट्रीय जाग्रति ने भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न स्वरूप धारण किया। तुर्की के देशभक्त नवयुवक सुलतान की शक्ति को नियन्त्रित करके ससम्राट् प्रजातन्त्र स्थापित करना चाहते थे और विदेशियों द्वारा जो देश का रक्त-शोषण हो रहा था, उसको बन्द करना चहते थे। ईरान के देशभक्त भी रूस और ब्रिटेन के आधिपत्य को हटाना चाहते थे, परन्तु इसके लिए वे शाह के अधिकारों को सङ्कुचित करना आवश्यक समझते थे। चीन के सामने भी ऐसी ही समस्या थी। वहाँ विदेशियों के अत्याचारमय व्यापार के कारण ही राष्ट्रीयता की जाग्रति हुई थी, परन्तु नेताओं को थोड़े वर्षों के अनुभव से ही यह स्पष्ट विदित हो गया था कि इस विवशता और दुरवस्था का कारण है चीन राजवंश की निर्बलता, स्वार्थ-परायणता और प्रबन्ध-शिथिलता। २०वीं शताब्दी के आरम्भ में ही डॉक्टर सनयातसेन ने निश्चय कर लिया था कि पूर्ण प्रजातन्त्र स्थापित किए बिना चीन का उद्धार नहीं हो सकता। भारतवर्ष में सन् १८८५ में ही राष्ट्रीय महासभा की स्थापना हो चुकी थी, परन्तु लगभग बीस वर्ष तक तो यह प्रतिवर्ष राजभक्ति के प्रस्ताव पास करती रही और अत्यन्त नम्र शब्दों में सरकार से न्याय-भिक्षा माँगती रही। २०वीं शताब्दी के आरम्भ में इसने यह प्रस्ताव स्वीकार किया कि भारत का ध्येय वैध और शान्त साधनों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत औपनिवेशिक शासन प्राप्त करना है। सन् १९११ से पूर्व मुसलमान प्रायः कॉङ्ग्रेस से पृथक् रहे, परन्तु जब त्रिपोली
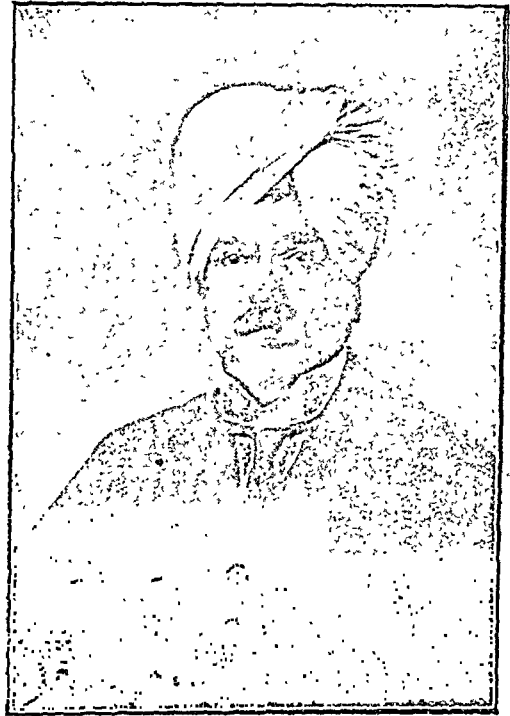
रायबहादुर हीरालाल, बी० ए०

आप आगामी दिसम्बर में पटने में होने वाली ऑल-इण्डिया-ओरियण्टल कॉन्फ़्रेन्स के प्रेज़िडेण्ट नियत किए गए हैं।

पर इटली ने अधिकार जमा लिया, तो वे लोग भी स्वराज्य की माँग में हिन्दुओं का साथ देने लग गए।

उन्नति और प्रक्षोभ

यूरोप के सम्पर्क से जापान ने सब से पहले और सब से जल्दी लाभ उठाया। सन् १८४९ में इस टापू का गोरों के साथ सम्पर्क हुआ था और सैनिक बल के द्वारा इसको अनेक व्यापारिक रिआयतें देने के लिए विवश

किया गया था! परन्तु २० वर्ष के अन्दर ही देश सम्हल कर अपने पैरों पर खड़ा होने लगा और सन् १८९४ में ग्रेटब्रिटेन की सब वाणिज्य रिआयतें और विशेषाधिकार जापान ने रद्द कर दिए, जिसका कुछ विरोध नहीं किया गया। जापान की आश्चर्यकारिणी उन्नति का श्रेय अधिकांशतः राजकुमार इटो को है। यह सज्जन सन् १८७२ में कुछ सरदारों के साथ यूरोप गया और वहाँ की सब उन्नत संस्थाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करके स्वदेश आया। वापस आने पर इसने सेना को नए ढङ्ग पर सुसङ्गठित किया, अनिवार्य शिक्षा आरम्भ की और न्यायालयों का सुधार किया। जागीरदारों में से अधिकांश ने स्वतः ही अपनी जागीरें छोड़ कर देश-प्रेम का परिचय दिया था। सन् १८७१ में जो कुछ जागीरें शेष रह गईं थीं, उनका अन्त कर दिया गया। सन् १८९० में जापान की प्रथम पार्लमेण्ट का अधिवेशन हुआ और सम्राट् की शक्ति नियन्त्रित कर दी गई। जापान के सैकड़ों विद्यार्थी यूरोप में अनेक वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा ग्रहण करने को भेजे गए और अङ्गरेज़ी भाषा को जापानी स्कूल और कॉलेजों में ऊँचा स्थान दिया गया। इस प्रकार राजा और प्रजा के सुन्दर सहयोग से जापान ५० वर्ष के अन्दर इतना उन्नत हो गया कि वह यूरोप के शक्तिशाली राष्ट्रों में परिगणित होने लगा। सन् १९०५ में जब रूस और जापान में कोरिया तथा मञ्चूरिया के विषय में झगड़ा हुआ और रूस ने युद्ध-घोषणा कर दी तो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि यह छोटा सा देश रूस के विशाल साम्राज्य से टक्कर ले सकेगा। परन्तु इस समय जापान की जल और स्थल-सेना अत्यन्त सङ्गठित और सधी हुई थी और बच्चे-बच्चे में देशप्रेम का उन्माद था, इसलिए लगभग पन्द्रह मास के अन्दर ही जापान ने रूस को हरा कर, अपने अपूर्व सामर्थ्य का परिचय दिया और उत्सुक संसार को चकित कर दिया। एशिया के छोटे से राज्य द्वारा यूरोप के विशाल साम्राज्य का पराजय वर्तमान इतिहास में एक अनोखी और आश्चर्यकारिणी घटना थी। जापान का सम्मान अन्तर्राष्ट्रीय जगत में दुगुना हो गया और मुसलिम जगत उससे मैत्री स्थापित करने में उत्सुकता दिखाने लगा।* इस विजय-प्राप्ति के पश्चात जापान ने सेना, शिक्षा, महिला-स्वातन्त्र्य, व्यापार, प्रबन्धशैली। आदि में और भी उन्नति की, परन्तु शक्तिशालिता के नशे में चूर होकर जापान इस शताब्दी के आरम्भ में साम्राज्यवादी बन गया! रूस और चीन दोनों से उसने कुछ-कुछ राज्य छीन कर अपने राज्य में मिला लिए और वहाँ के राज-घरानों के साथ दुर्व्यवहार किया। कोरिया और फ़ॉरमूसा में उसने स्वतन्त्रता के उचित आन्दोलन को अत्यन्त नृशंस साधनों द्वारा दबाया। जापान ने अपने व्यवहार से प्रगट कर दिया कि साम्राज्यवाद यूरोपीय राष्ट्रों का ही राजरोग नहीं है, यह एक छूत की बीमारी है, जो शक्तिमत्ता के साथ हमेशा रहती है।

यूरोपीय सम्पर्क से इतना शीघ्र लाभ केवल जापान ने ही उठाया। वैसे तुर्की यूरोप से मिला ही हुआ है, लेकिन उसमें राष्ट्रीयता की जाग्रति होने में बहुत समय लगा। ईरान, अरबस्तान और भारतवर्ष तथा चीन में भी राष्ट्रीयता का शनैः-शनैः विकास हुआ। इन सब देशों में जनता के अधिकारों की रक्षा करने के लिए और उनको विस्तृत करने के लिए राष्ट्रीय सभाओं की स्थापना हुई। तुर्की और भारतवर्ष में ये सभाएँ आरम्भ में निर्विघ्न कार्य करती रहीं और सरकार की ओर से इनका विरोध उस समय से होने लगा, जब ये संस्थाएँ प्रबल बन गईं और वास्तव में जनता के प्रतिनिधित्व का दावा करने लगीं; लेकिन ईरान और चीन में राष्ट्रीय सभाओं को आरम्भ से ही अनेक सङ्कटों का सामना करना पड़ा। यही हाल अरबस्तान तथा ईराक़ का रहा। इन देशों के देश-प्रेमियों ने विदेशों में रहते हुए स्वदेशों में राष्ट्रीय जाग्रति की ओर अपने देश-भाइयों को जन्म-सिद्ध अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील किया। १९वीं शताब्दी के अन्त में कई देशभक्त ईरानी क़ुस्तुन्तुनिया में जाकर जमालुद्दीन अफ़ग़ानी के पास रहने लगे और उसकी दीक्षा पाकर वहाँ बैठे हुए पुस्तिकाएँ, विज्ञापन और पत्रों द्वारा अपने देश में राष्ट्रीयता का प्रचार करने लगे। ईरान का एक ज़ोरदार आन्दोलक था मलकम ख़ाँ। यह लन्दन से क़ानून नामक पत्र का सम्पादन करता था और चोरी-चुपके से इस पत्र की सैकड़ों प्रतियाँ ईरान में आया करती थीं। अरबी देशों का राष्ट्र-सङ्घ भी पेरिस नगर में स्थापित हुआ था और वहाँ से साहित्य और

* Stoffard Stoddard—*Modern Muslim World* p. 84.

पत्र तथा एजण्टों द्वारा अपने देशों में राष्ट्रीयता की जाग्रति की गई थी और लोकमत को अनुकूल बनाया गया था। उस समय अरब, सीरिया और ईराक़ सुलतान-तुर्की के अधीन थे और वह जनता में राष्ट्रीयता की लहर को, जहाँ तक हो सकता था, फैलने नहीं देता था। चीन में विदेशी लोगों का स्वार्थ था। कई यूरोपीय राष्ट्रों ने वहाँ अपना व्यापार जमा रक्खा था और कई अच्छे स्थानों पर राज्य भी स्थापित कर रक्खा था। ये लोग स्वभावतः राष्ट्रीय-जाग्रति के विरोधी थे, क्योंकि ये जानते थे कि जाग्रत चीन इनके अनुचित लाभों को सहन नहीं कर सकेगा। ये लोग तत्कालीन मन्चू शासकों को सलाह और सहायता द्वारा राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं का दमन करने के लिए उसकाया करते थे। इसलिए चीन के राष्ट्रीय नेता विदेशों में रह कर ही अपने देश का हित कर सकते थे। चीन के राष्ट्र-सङ्घ का प्रथम महत्वपूर्ण अधिवेशन जापान में हुआ था, जिसमें यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया था कि राजवंश को शासनाधिकार से वञ्चित करके, प्रजातन्त्र शासन की स्थापना की जावे।

२०वीं शताब्दी के आरम्भ में लगभग सब उन्नत एशियाई देशों में राष्ट्रीय विचारों की पूर्ण जाग्रति हो चुकी थी। जनता गोरों के आर्थिक आधिपत्य और अपने शासकों के निरङ्कुश शासन की वीभत्सता को अनुभव करने लगी थी और स्वतन्त्रता की अभिलाषा दुर्दमनीय हो गई थी। सन् १९१० से पहले-पहले इस अभिलाषा के साकार स्वरूप सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगे। रूस-जापान युद्ध में जो जापान की अद्भुत सफलता हुई, उससे सम्पूर्ण एशिया में उत्तेजना, उमङ्ग और उत्साह की एक विद्युत-धारा प्रवाहित हो गई। लोगों को विश्वास हो गया कि यूरोप अजेय नहीं है, सङ्गठित देश-प्रेम अजेय है। सन् १९०८ में नवयुवक-सङ्घ के प्रयत्न से तुर्की में राज्यक्रान्ति हो गई। सुलतान ख़लीफ़ा को पदच्युत करके, प्रजातन्त्र की स्थापना कर दी गई। इससे अरबी देशों की राष्ट्रीयता और भी अधिक जाग्रत हो गई और स्वतन्त्रता के लिए प्रत्यक्ष आन्दोलन होने लगा। ईरान के देशद्रोही, विलासी और विदेश-प्रिय शाह को देश-प्रेम के मतवाले एक ईरानी ने क़त्ल कर डाला। घातक को सरकार ने प्राणदण्ड दिया, पर देश भर ने उसका 'चालीसा चहल्लुम' मनाया। ईरान जाग्रत हो उठा और पार्लामेण्ट की स्थापना हो गई। फिर भी शाह रूसी और अङ्गरेज़ी सरकार के हाथों की कठपुतली ही बना रहा और उसका पार्लामेण्ट से विरोध जारी रहा। सन् १९११ में जब एक अङ्गरेज़ी कम्पनी ने ईरानी शाह से तम्बाखू का ठेका लिया तो देश भर ने इसका घोर विरोध किया और फिर भी शाह ने ठेके को रद्द नहीं किया, तो ईरान ने तम्बाखू का बहिष्कार किया।
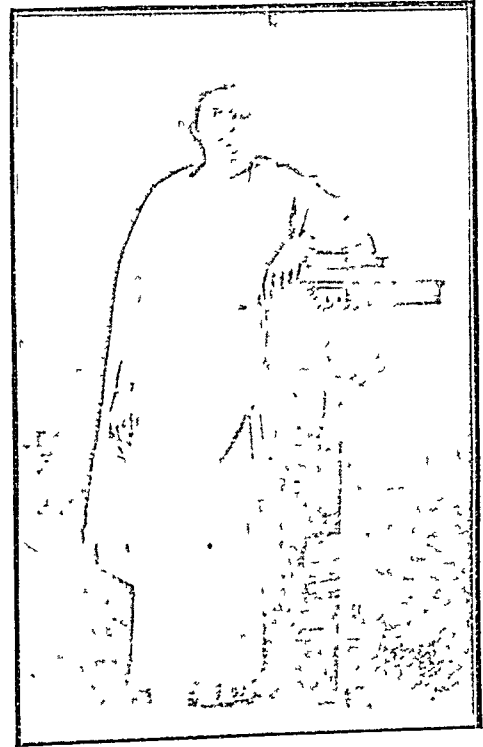
श्रीमती गौरी पवित्रम, बी० ए०, एल० टी०, एम० एल० सी०

आप चित्तूर (मद्रास) के गर्ल्स हाईस्कूल की अध्यापिका नियत की गई हैं।

देश भर ने इस बहिष्कार को ऐसा पूर्ण किया कि ईरान में एक सेर तम्बाखू भी नहीं बिकने पाई! जनता की इस अपूर्व एकता के सामने सरकार ने घुटने टिका दिए और ठेका तोड़ दिया गया। पार्लामेण्ट की स्थापना इससे पूर्व ही हो चुकी थी। अब सरकार में और उसमें, अधिकारों के विषय में सङ्घर्ष आरम्भ हो

गया। अङ्गरेज़ और रूसी सरकार निरङ्कुश शाह को जनता के अधिकारों की अवहेलना करने में सहायता दिया करते थे। परन्तु पार्लामेण्ट का ज़ोर बढ़ता जाता था। भारतवर्ष की राष्ट्रीय महासभा का ध्येय २०वीं शताब्दी के आरम्भ में ही औपनिवेशिक शासन प्राप्त करना निश्चित हो गया था और उसके बाद जब लोकमान्य तिलक ने स्वराज्य आन्दोलन आरम्भ किया, तो कॉङ्ग्रेस में गरम दल वालों की संख्या बढ़ने लगी। इसी समय लॉर्ड कर्ज़न ने बङ्ग-भङ्ग करके, तथा उसके बाद जनता के वैध और शान्तिमूलक आन्दोलन को दबाने का प्रयत्न करके, लोगों को बहुत उत्तेजित कर दिया; जिसका परिणाम यह हुआ कि बङ्गाल में अधीर देशभक्तों ने बम द्वारा सरकारी कर्मचारियों को मारने का तथा भयभीत करने का प्रयत्न शुरू किया और सन् १६०८ में राष्ट्रीय सभा के दो दल हो गए, एक नर्म दल और दूसरा गर्म दल। तदनन्तर गर्म दल अधिकाधिक प्रबल होने लगा। इसी समय चीन में तूफ़ान उठा और देश की बलिवेदी पर बलिदान होने के लिए हज़ारों देश-भक्त लालायित हो उठे। यह तूफ़ान विदेशी गोरों के विरुद्ध था। विदेशियों से घोर घृणा करने वाले चीनी लोग, जो 'बॉक्सर' कहलाते थे, जहाँ-तहाँ गोरों पर टूट पड़े। एक स्थान पर २५० यूरोपियन लोगों का वध किया गया, जहाँ-तहाँ उनकी कोठियों को नष्ट कर दिया गया और उनके माल को जला दिया गया। चीनी सिपाही भी इन लोगों में मिल गए और तत्कालीन महारानी भी, जो उस समय चीन का शासन करती थीं, उन लोगों को परोक्ष सहायता पहुँचाने लगीं। एक जर्मन राजदूत को, जो उस समय पेकिन में रहता था, सरे-बाज़ार एक सिपाही ने गोली से मार डाला। जो कुछ गोरे लोग बचे, उन्होंने एक मकान में घुस कर और उसको अपना दुर्ग बना कर अपने प्राणों की रक्षा की। कुछ समय बाद सब गोरे राष्ट्रों की संयुक्त सेना ने एक जर्मन सेनापति के नेतृत्व में 'बॉक्सर' लोगों को दबा दिया, और चीनी महारानी सिंहासन छोड़ कर एक पुराने नगर में अपने दिन काटने लगीं। विदेशियों की सेना ने इस समय चीन में वैसी ही नृशंसताएँ कीं जैसी अङ्गरेज़ी सरकार ने भारतवर्ष में सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम का दमन करते समय की थीं। परन्तु इस दमन से केवल क्षणिक शान्ति ही हो सकी। डॉक्टर सनयातसेन के स्तुत्य प्रयत्नों से चीन में स्वातन्त्र्य प्रेम अदम्य हो चला था। डॉक्टर सनयातसेन उच्चकोटि का अनुभवशील नेता था। यह एक साधारण कृषक के घर में उत्पन्न हुआ था। पर अपनी असाधारण योग्यता, अप्रतिभ कार्यशीलता, उद्भट विद्वत्ता औ[र] निर्मल देशभक्ति के कारण उस समय वह देश के गले क[ा] हार बना हुआ था। सन् १६०६ में सार्वजनिक आन्दो[-] लन इतना प्रबल हो गया कि मन्चू शासकों ने अप[ने] अधिकारों का सङ्कोच और प्रजा द्वारा उनका नियन्त्रण स्वीकार कर लिया और एक पार्लामेण्ट की स्थापना ह[ो] गई। प्रजातन्त्रवादी डॉक्टर सनयातसेन को यह स्वीका[र] नहीं था, अतः उसने अधिक स्वातन्त्र्य के लिए आन्दोल[न] जारी रक्खा, जिसके फल-स्वरूप सन् १६१२ में चीन-सम्राट् ने अपना पद त्याग कर दिया और वहाँ प्रजातन्त्र शासन की स्थापना कर दी गई। कुछ काल तक डॉक्टर सनयातसेन राष्ट्रपति रहा, लेकिन फिर युवान शिकाई के पक्ष को प्रबल होता हुआ देख कर उसने अपना पद त्याग कर दिया और युवान शिकाई राष्ट्रपति बन गया। डॉक्टर सनयातसेन दक्षिण में प्रचार-कार्य करने लगा और देश को नवीन उत्तरदायित्व के लिए तैयार करने लगा। कुछ समय बाद युवान शिकाई सम्राट् बनने का प्रयत्न करने लगा और उसमें तथा डॉक्टर सनयातसेन में युद्ध जारी हो गया। तब से अब तक चीन में प्रजातन्त्र-वादियों और साम्राज्यवादियों का कलह जारी है। इन्हीं दिनों में कोरिया में भी स्वातन्त्र्यवाद उमड़ा और लोग जापान के आधिपत्य का विरोध करने लगे। जापान सर-कार ने कोरिया के स्वातन्त्र्यान्दोलन का अत्यन्त नृशंसता के साथ दमन किया।

(अगले अङ्क में समाप्त)

क्या 'नियोग' अनार्य प्रथा है ?

[मेजर एम० एल० भार्गव, आइ० एम० एस०]

सितम्बर १९३० के 'चाँद' में श्री० भोलालाल दास, बी० ए०, एल्-एल्० बी० का लेख पढ़ा। विवाह के इतिहास में योग्य लेखक ने नियोग को अनार्य-प्रथा बताया है। आपने इसके कोई प्रमाण नहीं दिए। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, ऋग्वेद, महाभारत, धर्म-सूत्रों तथा धर्म-शास्त्रों से नियोग अनार्य नहीं, आर्य-प्रथा जान पड़ती है। आशा है कि दास महोदय निम्न-लिखित प्रमाणों पर ध्यान देंगे।

ऋग्वेद १०-४०-२ में कहा गया है :—

कोवां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ।

पद-अर्थ—(को) कौन (वाँ) तुम दोनों को (शयुत्रा) सोने की इच्छा वाली (विधवाऽइव) विधवा की तरह (देवरं) देवर को (मर्यं न) पुरुष को (योषा) स्त्री (कृणुते) सामना करती है (सधस्थ आ) पास में।

सरल भाषा अर्थ—जैसे सोने की इच्छा वाली विधवा देवर को और स्त्री पुरुष को पास में सामना करती है वैसे तुम दोनों को कौन (पास में सामना करती है)।

सायण भाष्य—(तत्र) यहाँ (दृष्टान्तौ) दो दृष्टान्त (दर्शयति) दिखाता है। [(शयुत्रा) शयने] सोने के स्थान में [(विधवेव) यथा मृत भर्तृका नारी] जैसे मरे पति की स्त्री [(देवर) भर्तृभ्रातरम्] पति के भाई को (अभिमुख करोति) सामना करती है [(मर्यं न) यथा च सर्वं मनुष्यं] जैसे सब मनुष्यों को (योषा) सब स्त्रियाँ (सम्भोग काले) सम्भोग के समय (ऽभिमुखी करोति) सामना करती हैं (तद्वदित्यर्थः) अर्थात् उसी प्रकार (तथा च यास्कः) यास्क यों कहता है (देवरः कस्माद्द्वितियो वर उच्यते) देवर किसे ? दूसरे पति को कहते हैं.........(देवरो दीव्यतिकर्मा) क्रीड़ा—खेल, हँसी-मज़ाक—का काम करने वाला देवर है।

इसमें सन्देह नहीं कि देवर का यौगिक अर्थ द्वितीय वर है, परन्तु इसका लौकिक अर्थ पति का भाई है। महाभारत आदि-पर्व अध्याय १०६, श्लोक २ में सत्यवती कृष्ण द्वैपायन व्यास को कौशल्या का देवर कहती है "कौशल्ये देवरस्ते..." दीव्यतिकर्मा का तात्पर्य भी यही है। सायण भी इसका अर्थ पति का भाई करता है। अतएव यदि देवर के लौकिक अर्थ लिए जावें तो इस मन्त्र से नियोग ही सिद्ध होता है।

मानव ९-६६ के भाष्य में मेधातिथि लिखता है कि ऋग्वेद १०-४०-२ में नियोग का उल्लेख है। आचार्य अविनाशचन्द्र दास "Regvedic Culture" पृष्ठ २४४ पर लिखते हैं :—

" *But a custom seems to have existed, according to which a childless widow could live with her dead husband's brother in order to produce children* (R. V. X—40-2)."

अब बताइए कि जब स्वयं ऋग्वेद में ही नियोग का उल्लेख माना जावे तो नियोग को अनार्य-प्रथा कैसे कहा जा सकता है।

गौतम धर्म-सूत्र १८-४ से १२ तक में नियोग का विधान है।

(४) विधवा स्त्री, जिसको सन्तान की इच्छा हो, देवर से (सन्तान उत्पन्न करे)।

(५) वह गुरुजनों की आज्ञा ले ले और केवल रजस्वला-स्नान के पश्चात ही सम्भोग करे।

(६) (देवर के अभाव में) सपिण्ड, सगोत्र, समान प्रवर या सवर्ण से (सम्भोग करके सन्तान उत्पन्न कर सकती है)।

(७) (कुछ के मतानुसार) देवर के अन्यत्र किसी और से (सम्भोग) ना (करे)।

(८) दो से अधिक (सन्तान) ना (उत्पन्न करे)।

(९) सन्तान उसकी है, जो उसे उत्पन्न करे।

(१०) यदि (इसके विपरीत) वचन न दिया गया हो (तो)।

(११) जीवित पति (की प्रार्थना पर) उसकी स्त्री में (नियोग द्वारा उत्पन्न सन्तान पति की होती है)।

(१२) (परन्तु यदि उत्पन्न करने वाला) और कोई हो तो (सन्तान) उसकी (होती है)।

(१३) या दोनों की (अर्थात् उत्पादक और माता के पति की)।

मि० एच० टिङ्कर, आई० ई० एस०

आप इलाहाबाद के ट्रेनिङ्ग कॉलेज के प्रिन्सिपल नियत किए गए हैं।
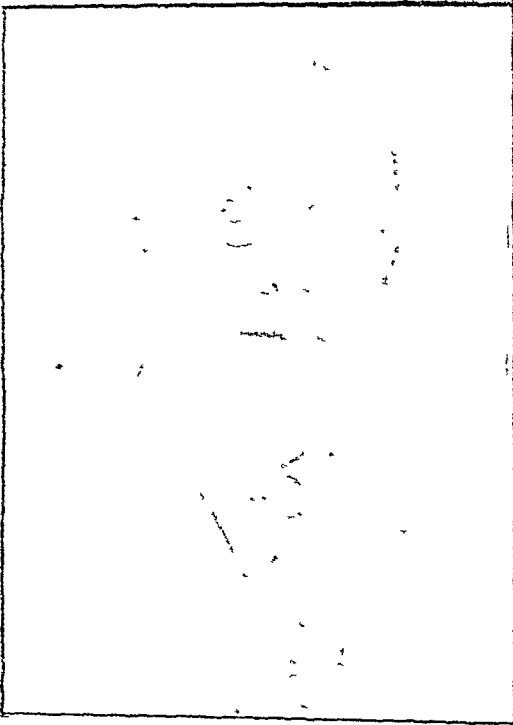
(१४) यदि माता का पति (सन्तान को) पाले (तो उसकी)।

गौतम २८-३२ में क्षेत्रज अर्थात् नियोग द्वारा पती में उत्पन्न पुत्र को पिता के द्रव्य का भागी बताया गया है।

वशिष्ठ धर्म-सूत्र—१७

(१४) आत्मज पुत्र न होने पर नियोग से उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज दूसरा पुत्र है, जो धन का अधिकारी है।

(५५) मृत पति की स्त्री ६ मास व्रत करती हुई, खारा-खट्टा न खाती हुई, नीचे सोवे।

(५६) ६ मास पश्चात स्नान कर, पति का श्राद्ध करके विद्या, कर्म, गुरु, योनि सम्बन्ध को मिला कर पिता या भ्राता नियोग करा देवे।

(५७) पागल, लाचार, और रोगी स्त्री नियोग ना करे।

(५८) और बड़ी (आयु की स्त्री) भी (नियोग ना करे)।

(५९) सोलह वर्ष की (उत्तम है)।

(६०) नहीं तो सन्तान रोगी होगी।

(६१) प्राजापत्य मुहूर्त में विवाह की तरह कर देवे। कठोर वाणी या कठोर दण्ड से नहीं, राज़ी-ख़ुशी।

(६२) (स्त्री) खाने, पहनने, नहाने और शृङ्गार करने में पहले के तुल्य रहे।

(६३) नियुक्त न की हुई स्त्री से उत्पन्न पुत्र, उत्पन्न करने वाले का होता है।

(६४) यदि दोनों नियुक्त हों (तो दोनों का)।

(६५) धन के लोभ से नियोग नहीं हो।

(६६) प्रायश्चित्त बतला कर नियोग कर देवे।

बौधायन और हारीत सूत्रों में भी इसी प्रकार के प्रमाण पाए जाते हैं। इसी प्रकार मानव-धर्मशास्त्र की भृगु तथा नारद-संहिता, याज्ञवल्क्य, वैष्णु आदि धर्म-शास्त्रों में भी नियोग का विधान है।

मानव-धर्मशास्त्र (भृगु-संहिता) अध्याय ९

(५९) सन्तान न होने पर स्त्री, जिसको आज्ञा दे दी गई हो, अपने देवर या (पति के) सपिण्ड से नियमानुसार सन्तान उत्पन्न करा ले।

(६०) विधवा से (सम्भोग करने को) नियुक्त किया गया पुरुष रात्रि के समय घृत लगा कर वा चुपचाप एक पुत्र होने तक (उससे सहवास करे), दूसरा उत्पन्न ना करे।

(६१) अन्य धर्मवेत्ता यह विचार करके कि (एक ही पुत्र के उत्पन्न होने से) दोनों (स्त्री पुरुषों) के नियोग करने का तात्पर्य पूर्ण नहीं होता, कहते हैं कि (ऐसी) स्त्री धर्मानुसार दो पुत्र उत्पन्न कर सकती है।

(६२) परन्तु, जब विधवा के नियोग करने का प्रयोजन विधि-अनुसार पूरा हो गया हो, तो वह दोनों परस्पर गुरु (पिता) और पतोहू जैसा व्यवहार करें।

(६३) यदि वह दोनों नियुक्त इस विधि को तोड़ें और कामातुर होकर सहवास करें, तो दोनों पतोहू के साथ व्यभिचार करने वाले या गुरुतल्प करने वाले के तुल्य पतित हो जावेंगे।

इसी अध्याय के १५९वें श्लोक में क्षेत्रज (नियोग से उत्पन्न पुत्र) को १२ प्रकार के पुत्रों में द्वितीय माना गया है। १६७वें श्लोक में क्षेत्रज की व्याख्या है। कहा है कि नियोग की विधि से धर्मानुसार मृत, नपुंसक या रोगी की पत्नी से जो पुत्र उत्पन्न किया जावे, वह क्षेत्रज कहलाता है। १२०, १२१; १४५, १४६; १६२, १६३, १६४, १६५; १८०, १८१, १८४; १९० आदि श्लोकों में क्षेत्रज पुत्र के अधिकारों का वर्णन है।

मानव-धर्मशास्त्र (नारद-संहिता) अध्याय १२

(८०) यदि किसी निःसन्तान स्त्री का पति मर जावे तो वह अपने गुरुजनों की आज्ञा लेकर पुत्र की कामना से देवर के पास जावे।

(८१) वह (देवर) उस (स्त्री) से जब तक उसके पुत्र उत्पन्न न हो, सहवास करे। जब पुत्र उत्पन्न हो जावे तो उससे सहवास त्याग दे, नहीं तो यह व्यभिचार होगा।

(८२) से (८७) तक—(पुरुष) उस स्त्री से नियोग करे, जिसके पुत्र उत्पन्न होकर मर चुका हो, जो प्रशंसनीय हो और जो मोह और काम के वश में न हो। वह अपने शरीर में घृत या अच्छा तेल लगा ले, अपना मुख उसके मुख से मोड़ ले और अपने अङ्ग उसके अङ्ग से न छुआए। कारण कि यह (प्रथा) वंश को नाश से बचाने के लिए है, कामेच्छा पूर्ण करने के वास्ते नहीं। उस स्त्री से सहवास न करे, जिसके सन्तान हो या जो दूषित हो या जिसके ज्ञातियों ने आज्ञा न दी हो। यदि स्त्री अपने ज्ञातियों की आज्ञा के विना देवर से पुत्र उत्पन्न करे तो वेद के जानने वाले उस पुत्र को जारज और अदायाद बताते हैं। इसी तरह यदि छोटा भाई विना आज्ञा के अपनी भाभी से या बड़ा भाई अपने छोटे भाई की स्त्री से सहवास करे, तो दोनों पाप-कर्म करते हैं। गुरुजनों की आज्ञा पाकर ही वह स्त्री से सहवास करे और उससे उक्त विधि-अनुसार व्यवहार करे। वह पुत्र के जातकर्म संस्कार होने पर शुद्ध हो जाता है।* (पुरुष स्त्री से) एक बार या जब तक उसके गर्भ न रहे (सम्भोग करे) जब गर्भ रह जावे, तो वह पतोहू के समान है।

(८८) यदि पुरुष और स्त्री काम के वश होकर इस विधि के विपरीत कर्म करें, तो राजा उनको दण्ड दे। नहीं तो न्याय का भङ्ग होगा।
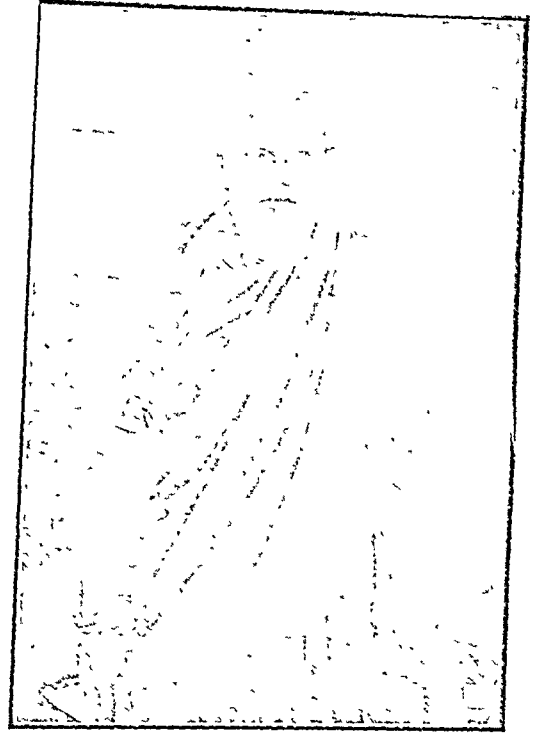
श्रीमती वी० शेषम्मा

आप कोकोनाडा (मद्रास) की सुप्रसिद्ध स्त्री-शिक्षा-प्रचारिका हैं। 'हिन्दू-सुन्दरी' नामक एक मासिक पत्र का सञ्चालन भी करती हैं।

इसी संहिता के १३-४५ में क्षेत्रज पुत्र को द्वितीय पुत्र बताया गया है। ४७ में उसको बान्धव और 'दायाद'

* नन्द पण्डित इसकी व्याख्या इस प्रकार करता है—"पति के बड़े या छोटे भाई, उनके अभाव में सपिण्ड, उनके अभाव में सगोत्र, उनके अभाव में समान प्रवर या उनके अभाव में सब से उत्तम वर्ण के पुरुष अर्थात् ब्राह्मण से उत्पन्न किया गया हो।"

कहा गया है, और इसमें और ४६ में औरस पुत्र के न होने पर उसको ऋक्थ-भागी माना गया है।

वैष्णु धर्मशास्त्र—१५

(३) द्वितीय (प्रकार का पुत्र) क्षेत्रज है। अर्थात् वह जो नियुक्त (विधवा) में सपिण्ड या उच्च वर्ण के पुरुष द्वारा उत्पन्न हो। २८ और २९ में औरस पुत्र के अभाव में क्षेत्रज को पुत्र और 'दायाद' माना गया है।

याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र आचाराध्याय

(६८) देवर, सपिण्ड या सगोत्र घृत लगा कर और गुरुजनों की आज्ञा पाकर निःसन्तान विधवा से उसके ऋतुकाल पश्चात पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से सहवास करें।

(६९) गर्भ स्थापित होने तक सहवास करे, नहीं तो वह पतित हो जावेगा। इस प्रकार उत्पन्न पुत्र (मृत) का क्षेत्रज पुत्र होता है।

व्यवहाराध्याय

(१२८) क्षेत्रज पुत्र वह है जो पति के सगोत्र या किसी अन्य पुरुष द्वारा उसकी पत्नी में उत्पन्न हो।

१३२-२ में औरस और पुत्रिका-पुत्र के अभाव में क्षेत्रज को पिण्डदाता और दायाद माना गया है।

इसी प्रकार बहुत सी स्मृतियों तथा धर्म-निबन्धों में क्षेत्रज पुत्र के, औरस और पुत्रिका-पुत्र के अभाव में गोत्र और ऋक्थ के भागी होने, पिण्ड और तिलाञ्जलि देने के अधिकारी होने के प्रमाण पाए जाते हैं। लेख लम्बा होने के भय से वह यहाँ नहीं दिए जाते।

यह मैं मानता हूँ कि पश्चात्काल में नियोग-प्रथा को निन्दनीय माना गया, धर्मसूत्रों और स्मृतियों में इसके विरोधी सूत्र और श्लोक जोड़ दिए गए; परन्तु इसमें सन्देह नहीं रहता कि प्राचीन काल में यह प्रथा आर्यों में प्रचलित थी। महाभारत से तो यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है।

महाभारत आदि-पर्व, अध्याय ६४ में कहा गया है—"और उस समय जब पृथ्वी [जामदग्न्य (परशुराम भार्गव) के हाथों] क्षत्रिय-विहीन हो गई तो क्षत्राणियाँ सन्तान की कामना से, हे राजन्! ब्राह्मणों के पास आती थीं। और ब्राह्मण केवल उनके ऋतुकाल पश्चात उनसे सम्भोग करते थे। परन्तु वह कभी भी कामवश होकर या अन्य काल में सम्भोग नहीं करते थे। और इस प्रकार सहस्रों क्षत्राणियों को ब्राह्मणों से गर्भ रहे। तब हे राजन्! बहुत से महाबली क्षत्री लड़के और लड़कियाँ उत्पन्न हुईं, जिनसे क्षत्रिय वंश बढ़ा। और इस प्रकार ब्राह्मण तपस्वियों द्वारा क्षत्राणियों से क्षत्रिय-वंश उत्पन्न हुआ।"

इसी पर्व के १०४वें अध्याय में फिर इसी घटना का उल्लेख है। भीष्म कहता है—"और जब उस महर्षि (राम जामदग्न्य भार्गव) द्वारा पृथ्वी क्षत्रिय-विहीन हो गई तो समस्त पृथ्वी की क्षत्राणियों ने वेद जानने वाले ब्राह्मणों से सन्तान उत्पन्न की। वेद में कहा गया है कि इस प्रकार उत्पन्न सन्तान माता के विवाहित (पति) की होती है। और क्षत्राणियों ने काम के वश होकर नहीं, धर्मानुसार ब्राह्मणों से सहवास किया था। निस्सन्देह क्षत्रिय वंश का इसी प्रकार पुनः उद्धार हुआ।"

इसी अध्याय के अन्त में दीर्घतमस ऋषि का राजा बलि की रानी सुदेष्णा से नियोग करके ५ पुत्र उत्पन्न करने का वर्णन है। इससे अगले अध्याय में भीष्म की अनुमति से रानी सत्यवती अपने कानीन पुत्र कृष्ण द्वैपायन-व्यास-पाराशर से अपने औरस पुत्र कौरव विचित्रवीर्य की विधवाओं से नियोग करने को कहती है—"हे विद्वन्! पुत्र, माता और पिता दोनों से उत्पन्न होते हैं। इस कारण वे दोनों के होते हैं।.........तेरे (माता के नाते से) छोटे भाई की दो विधवा हैं, जो देव-कन्याओं की तरह युवा और रूपवती हैं, वे धर्मानुसार सन्तान की कामना करती हैं। तुम नियुक्त होने के लिए सब से उत्तम हो। अतएव हमारे वंश को योग्य और हमारे कुल को जारी रखने वाली उनमें सन्तान उत्पन्न करो।" उत्तर में व्यास उनकी आज्ञा पालन करने का वचन देकर कहते हैं—"निस्सन्देह यह प्रथा सत्य और सनातनधर्म के अनुकूल है।"

अध्याय १०६ में व्यास के अम्बिका, अम्बालिका और एक रूपवती दासी से सम्भोग करने का वर्णन है, जिससे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर उत्पन्न हुए।

आगे चल कर १२०वें अध्याय में फिर इसी प्रथा का उल्लेख है। महाराजा पाण्डु ऋषियों से कहते हैं—"मैं तुमसे पूछता हूँ कि क्या अपने क्षेत्र में मैं उसी प्रकार पुत्र उत्पन्न कराऊँ, जैसे कि मेरे पिता के क्षेत्र में मैं महर्षि द्वारा उत्पन्न हुआ था।" ऋषियों की अनुमति से पाण्डु

कुन्ती से कहते हैं कि "धर्मशास्त्रों में ६ प्रकार के दायाद और बान्धव पुत्रों का वर्णन है और ६ अदायाद बान्धव पुत्रों का।" इनमें से द्वितीय प्रकार का वह पुत्र है, जो कोई योग्य पुरुष कृपा करके उसकी स्त्री में उत्पन्न कर दे। तृतीय प्रकार का पुत्र वह है, जो अन्य पुरुष दक्षिणा लेकर उत्पन्न करे। और चतुर्थ प्रकार का पुत्र वह है, जो पति की मृत्यु के पश्चात अन्य पुरुष द्वारा विधवा से उत्पन्न हो। आगे चल कर वह कहते हैं कि "उत्तम प्रकार का पुत्र न हो, तो माता उससे उतरते दरजे के पुत्र की इच्छा करे। स्वयंभू मनु ने कहा है कि औरस पुत्र के अभाव में पुरुष दूसरे मनुष्यों से अपनी स्त्री में पुत्र उत्पन्न करा सकते हैं, कारण कि पुत्र से ही सर्व-श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। इस कारण हे कुन्ति! मैं स्वयं पुत्र उत्पन्न करने योग्य न होकर, तुमको आज्ञा देता हूँ कि मेरे समान या मुझसे उत्तम किसी पुरुष से उत्तम सन्तान उत्पन्न करो। हे कुन्ति! शारदन्दायनी की कथा सुनो, जिसको उसके पति ने सन्तान उत्पन्न करने को नियुक्त किया था। वह क्षत्राणी रजस्वला-स्नान करने के पश्चात रात्रि में बाहर गई और एक चौराहे पर खड़ी हो गई। थोड़ी देर पश्चात एक तपस्वी ब्राह्मण वहाँ आया। शारदन्दायनी ने उससे सन्तान उत्पन्न करने की प्रार्थना की। अग्नि में घृत की आहुति देकर उसने उस ब्राह्मण से तीन महारथी पुत्र जन्मे, जिनमें दुर्जय सब से बड़ा था। हे सौभाग्यवती, तुम मेरी आज्ञा से उस क्षत्राणी का अनुकरण करो और किसी परम तपस्वी ब्राह्मण के वीर्य से शीघ्र सन्तान उत्पन्न करो।"

अध्याय १२२ में श्वेतकेतु वा उद्दालक की कथा कह कर पाण्डु कुन्ती से कहते हैं कि "वह स्त्री, जो अपने पति से (नियोग द्वारा) सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा पाकर ऐसा न करे, तो पतित हो जाती है। हमने सुना है कि सौदास की पत्नी मयन्ती ने अपने पति की आज्ञा से वशिष्ठ ऋषि से सहवास किया और रूपवती मयन्ती ने उससे अश्मक नामक पुत्र उत्पन्न किया। उसने यह कार्य अपने पति के भले के वास्ते किया था। तुमको ज्ञात है कि हम (तीनों भाई) भी कुरु वंश को जीवित रखने के हेतु कृष्ण द्वैपायन से उत्पन्न हुए थे।"

अध्याय १२३ के अन्त में कहा गया है—"बुद्धिमान आपत्ति-काल में (नियोग द्वारा) चौथे प्रसव करने का विधान नहीं करते। जो स्त्री ४ भिन्न-भिन्न पुरुषों से सम्भोग करे, वह स्वैरिणी कहलाती है और पाँच पुरुषों से सम्भोग करने वाली कुलटा हो जाती है।" इससे विदित होता है कि कुन्ती की तरह तीन भिन्न-भिन्न पुरुषों से नियोग करने वाली स्त्री धर्मपत्नी समझी जाती थी।

इसी पर्व के १७९ वा १८४ में महर्षि वशिष्ठ का राजा सौदास कल्माषपाद की रानी मयन्ती के साथ 'धर्मानुसार' उसके पति की आज्ञा से नियोग करके अश्मक नाम के पुत्र होने की कथा है।
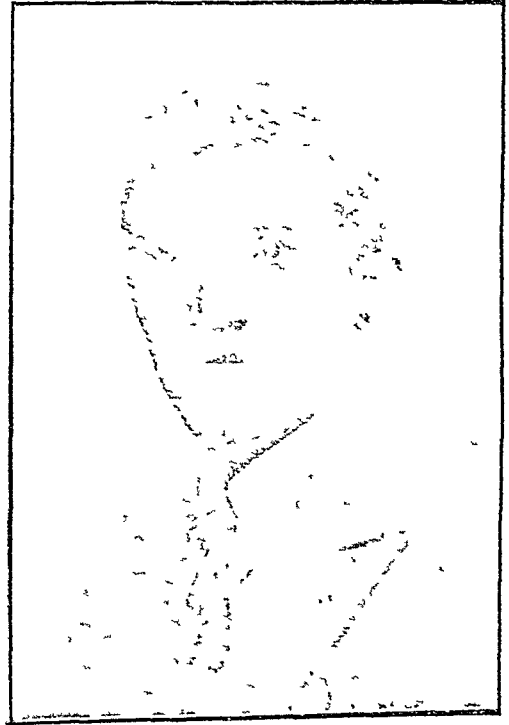
श्री० चुन्नीलाल भाईचन्द मेहता

आपने बम्बई में एक दातव्य आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना के लिए ३५ हज़ार रु० दान दिया है।

आशा है कि पाठकों को विदित हो गया होगा कि नियोग अनार्यों की प्रथा नहीं, आर्यों की प्रथा थी।

आगे चल कर दास महोदय मेन आदि लेखकों के मत के विरुद्ध यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि हमारे प्राचीन पूर्वजों में विवाह अनादि काल से एक स्थिर सम्बन्ध है। यह भी उनका भ्रम प्रतीत होता है।

रूस के क्रान्तिकारी नेता मोशिए लेनिन

[यह सन् १९१७ का वह ऐतिहासिक चित्र है, जिसकी अनेक प्रतियाँ पुलिस वालों को मोशिए लेनिन की गिरफ़्तारी के लिए बाँटी गई थीं]

सचित्र राष्ट्रीय साप्ताहिक

के ग्राहक बन कर अपना औचित्य पालन कीजिए। सभी बड़े-बड़े और सुप्रसिद्ध विद्वानों की सम्मति है कि इससे सुन्दर कोई भी साप्ताहिक आज तक इस अभागे देश में प्रकाशित नहीं हुआ था और न किसी पत्र का इतना आतङ्क ही था। इसका एक मात्र कारण यही है कि यह राष्ट्रीय-पत्र केवल सेवा की पुनीत भावना से प्रेरित होकर प्रकाशित किया गया है और इसके प्रवर्तकों को इस बात का सन्तोष है कि हिन्दी-संसार ने पत्र की जितनी क़द्र की है, उसकी किसी को भी आशा नहीं थी।

आर्ट-पेपर का कवर

लबालब पृष्ठ-संख्या	४०	वार्षिक चन्दा केवल	६)
चुने हुए चित्र लगभग	४०	छः माही	३॥)
चुटीले कार्टून	३-४	एक प्रति का मूल्य	=)

यदि आप अब तक ग्राहक नहीं हैं तो नमूने की एक प्रति मँगा कर देखिए अथवा अपने यहाँ के एजण्ट से माँगिए—लगभग सभी स्थानों में 'भविष्य' की एजन्सियाँ क़ायम हो गई हैं। जहाँ न हों वहाँ के

एजण्टों को शीघ्रता करनी चाहिए

तार का पता: "भविष्य" — व्यवस्थापक 'भविष्य' चन्द्रलोक, इलाहाबाद — टेलीफ़ोन-नम्बर: २०५

विधवा का परिताप

[श्री० ललितकिशोर सिंह, एम० एस-सी०]

विनाश बाबू! तुम कहते हो कि मेरे जीवन में कुछ रहस्य है। पर सच मानो डॉक्टर बाबू! मेरे जीवन का रहस्य हर एक हिन्दू परिवार के जीवन का रहस्य है। इसीलिए मैं चाहती हूँ कि तुम्हारे जैसा परोपकारी पुरुष इस रहस्य को समझे, जिससे जाति का कल्याण हो।

कोई दूसरा होता तो उसके सामने मैं अपना हृदय खोल कर न रख सकती। पर तुम तो मेरे धर्म के भाई हो, मुझ दुखिया के आधार हो, पतिता के एक मात्र सहारा हो। तुमसे क्या छिपाऊँ और कैसे छिपाऊँ? मैं इतना ही चाहती हूँ कि तुम एक बार ध्यान से मेरी कहानी सुन लो। फिर चाहे मुझसे घृणा करके मुझे दूर फेंक देना या अनेक पतित बहिनों में से एक समझ, ऊपर उठाने का प्रयत्न करना।

मैं एक ब्राह्मण-परिवार की बाल-विधवा हूँ। मेरा कब ब्याह हुआ और मैं कब विधवा हुई, यह मुझे याद नहीं। मेरे पिता का घर भागलपुर ज़िले के एक छोटे से गाँव में है और मेरी सुसराल है पटने ज़िले में। मेरे पिता जी को अपनी कुलीनता का बड़ा गौरव था। उनकी सच्चरित्रता की लोग कहानी कहा करते थे। लोग उन्हें सच्चा सनातनी ब्राह्मण समझते थे। धनी-दरिद्र, राजा-प्रजा सबके ऊपर उनकी धार्मिकता की धाक जमी हुई थी। उनकी निष्ठा के सामने सबका सर झुक जाता। उनके तेज के सामने कोई ठहर नहीं सकता, उनका यश निष्कलङ्क था। उनकी प्रतिष्ठा अचल थी। कलियुग में ऐसे ब्राह्मण का होना एक नई बात समझी जाती थी। जब कभी-कभी ख़याल होता है कि मैंने अपनी करतूतों से उनकी बनी-बनाई प्रतिष्ठा किस तरह धूल में मिला दी, तो हृदय टूक-टूक हो जाता है।

मेरे विधवा होने के बाद से ही मेरी शिक्षा का भार पिता जी ने अपने ऊपर लिया। उन्होंने बड़ी धीरता से मेरे जीवन को धर्म के साँचे में ढालना आरम्भ किया। हिन्दू-विधवा के लिए दूसरा उपाय ही क्या था? मेरे विधवापन का पिता जी को कितना दुःख और कितनी चिन्ता थी, यह आज मुझे स्पष्ट दीख रहा है। पड़ोस की स्त्रियों के सामने मेरी चर्चा करते-करते मेरी माँ की आँखों में आँसू छलक आते थे। पर पिता जी को विचलित होते मैंने कभी नहीं देखा। हाँ, इतना मैं समझ गई थी कि इस परिवार में कोई ऐसी घटना हुई है अवश्य, जिसने उनके जीवन को नीरस बना डाला है।

मुझसे तीन साल छोटा मेरा एक भाई है। बचपन में मैं और वह साथ खेला करते थे। उस समय हम दोनों पर इस दुनिया की छाया, जिसमें आज मैं पड़ी हूँ, नहीं पड़ी थी। उस समय मैं नहीं समझती थी कि मेरे और उसके भाग्य में इतना अन्तर है।

मेरे विधवापन का इतना असर हुआ कि पिता जी ने मेरे भाई का ब्याह बचपन में नहीं किया। पास ही के स्कूल में भरती होकर वह अङ्गरेज़ी पढ़ने लगा। पिता जी ने मुझे संस्कृत ही पढ़ाना अच्छा समझा। आरम्भ में मुझे व्याकरण की शिक्षा मिली। फिर संस्कृत ग्रन्थों के चुने हुए अंश पढ़ाए गए। ख़ासकर वे अंश, जिनमें संयम, संन्यास, व्रत-उपवास, वैराग्य आदि की चर्चा रहती थी। पुराण-इतिहास में से सती-सावित्री जैसी पतिव्रता नारियों के चरित्र और मैत्रेयी जैसी विदुषी नारियों की कथाएँ पढ़ीं। ग्रन्थों के जिन अंशों के पढ़ने का मुझे आदेश न होता, उन्हें मैं कभी न पढ़ती। अन्त में मैंने पातञ्जल-योग, सांख्य और वेदान्त पढ़े। गीता स्वयं पिता जी ने मुझे पढ़ाई।

पिता जी ने मुझे संयम का उपदेश दिया, नियम का अभ्यास कराया। व्रत और उपवास में मुझे आनन्द आने लगा। वैराग्य में तृप्ति और संन्यास में स्फूर्ति होने लगी। क्रमशः मैंने दूसरे ही संसार में प्रवेश किया। मुझे अनुभव होने लगा कि मेरे जीवन का संस्कार हो रहा है, मेरे चारों ओर संयम और संन्यास की दीवार खड़ी हो रही है। कौन जानता था कि यह दीवार इतनी कमज़ोर निकलेगी?

था। सोते-जागते, उठते-बैठते भीतर से "तव न जाने हृदयम्" की झनकार उठा करती थी। मैंने घर के काम में मन लगाने की चेष्टा की, पर असफल हुई। जी में आया कि मन-बहलाव के लिए एक छोटा सा उद्यान ही लगा डालूँ। मेरी दाई मुझे बहुत मानती थी। वह उद्यान लगाने में परिश्रम करने लगी।

वह फूलों की क्यारियाँ बनाया करती। मैं पास ही तुलसी के चबूतरे पर बैठी शकुन्तला पढ़ा करती। मैंने शकुन्तला तीसरी बार पढ़ी, चौथी बार पढ़ी, पाँचवीं बार पढ़ी, पर सन्तोष नहीं हुआ। सच पूछो तो बार-बार पढ़ने पर भी मैं 'शकुन्तला' का अर्थ नहीं समझ सकी थी। पाप के अग्नि-कुण्ड में कूद कर मैंने जाना कि 'शकुन्तला' का तात्पर्य क्या है।

३

बहू नैहर से घर लौट आई। उसे देखते ही मेरे सामने शकुन्तला का चित्र खड़ा हो गया, यौवन की लाली उसके अङ्ग-अङ्ग से फूटी पड़ती थी। रूप की मिठास में यौवन का नशा—ऐसा अनोखा मेल, मैंने पहले कभी नहीं देखा था। जैसे पिघले हुए सोने में धीरे-धीरे उबाल आ रहा हो। जैसे शुद्ध, स्वच्छ जल की छाती पर छोटी-छोटी तरङ्गें नाच रही हों। रूप तो उसे पहले ही से अपार था, पर यौवन ने उसमें गति पैदा कर दी थी। ऐसा जान पड़ता था जैसे स्थिति और गति की द्विविधा में वह मुग्ध हो गई हो।

मैंने कहा—"भाभी, अब तो तुम पहचान में भी नहीं आतीं। कितना हेर-फेर हो गया!"

वह सङ्कोच में पड़ गई। लजाती हुई बोली—"दीदी, जब तुम स्त्री होकर मुझे नहीं पहचान सकीं तो बेचारे पुरुष कैसे पहचान सकेंगे?" मैंने हँस कर जवाब दिया—"पुरुष को अब पहचानने का अवकाश ही कहाँ मिलेगा?"

बहू की चपलता तो बहुत कुछ कम हो गई थी, पर विनोद का स्वभाव ज्यों का त्यों बना था, टोले-पड़ोस की स्त्रियाँ नित्य उसके पास बैठने आया करती थीं। उन्हें वह बात-बात में छेड़ा करती। वे भी बहू को तङ्ग किया करती थीं। इस प्रकार हमारे दिन हास-परिहास में ही बीतने लगे। पहले तो मैं इस हास-परिहास में साथ नहीं देती थी। पर धीरे-धीरे मुझे बहू की बातों में इतना रस मिलने लगा कि मैं अपने को रोक न सकी। मैं भी विनोद की धारा में बहने लगी।

कभी-कभी जब बहू के देवर-सम्प्रदाय के लोग आकर विनोद का सौदा करने बैठते थे, तब मेरा सारा शरीर गर्म हो जाता, नसों में ख़ून तेज़ी से दौड़ने लगता, और भीतर एक अजीब अरुचि सी बोध होने लगती थी। उस समय मैं एकान्त में जाकर अपने जीवन के पहले अध्याय पर एक दृष्टि डालती और मन में सोचती थी कि कहीं मैं ग़लत राह पर तो नहीं जा रही हूँ?

श्रीमती धर्मशीला जायसवाल, एम० ए०

आप बैरिस्टरी की परीक्षा पास करने विलायत गई हुई हैं।

मैं प्रायः बहू की तुलना शकुन्तला से किया करती थी। मुझे इसका रोग सा हो गया था। इससे वह कभी-कभी खीझ भी उठती थी। क्योंकि शकुन्तला से उसका भी परिचय था। वह समझती थी कि मैं उसकी माँ से परिहास कर रही हूँ। पर मेरा भाव कुछ और ही

रहता था। एक दिन मैं बहू के साथ उद्यान में टहलने गई। एक फूल के पौदे को मुरझाते हुए देख वह उसमें घड़े से पानी डालने चली।

मैंने कहा—"भाभी! तुम चाहे जितना क्रोध करो, पर अभी तो तुम ठीक-ठीक शकुन्तला-सी जान पड़ती हो।"

उसने तुरत घड़ा नीचे रख दिया और बोली—"दीदी! यदि अब तुम मुझे शकुन्तला कहा करोगी तो मैं भी तुम्हें कुन्दनन्दिनी कहा करूँगी, याद रक्खो।"

मैंने पूछा—"कुन्दनन्दिनी कौन है?"

उसने हँस कर जवाब दिया—"वही विष-वृक्ष वाली।"

मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। मुझे मालूम हो गया कि विष-वृक्ष नाम का एक उपन्यास है, जो बहू अपने नैहर से लाई है। मैं उसे पढ़ने का लोभ रोक न सकी। एक ही रात में पूरी किताब पढ़ डाली। पढ़ कर ख़ूब रोई। जाने कितने दिनों से वे आँसू मेरी आँखों में इकट्ठे हो रहे थे। सारे जीवन की वेदना, जो हृदय के भीतर जम कर पत्थर-सी हो गई थी, कुन्दनन्दिनी के सन्ताप से गल कर बाहर निकली। मैंने सोचा—"बहू मुझे कुन्द-नन्दिनी कहेगी। ज़रा आईने में देखूँ तो सही, क्या मैं कुन्दनन्दिनी सी दीख पड़ती हूँ।" विचार आते ही आईने के सामने जा खड़ी हुई। मैंने अपना वैसा रूप कभी नहीं देखा था। देखते ही हृदय डावाँडोल हो गया। सारा शरीर काँपने लगा। सर में चक्कर आने लगा। मैं छाती थाम कर वहीं धरती पर बैठ गई। मन में सोचा—"हाय! यदि मैं भी कुन्दनन्दिनी की तरह विष खाकर मर सकती तो कितना अच्छा होता!!"

मेरा भाई बहू को बहुत ही प्यार करता था। भला ऐसा कौन अभागा पति होगा जो वैसी स्त्री को प्यार न करे? इन दोनों का प्रेम देख मुझे बड़ा सुख होता था, पर इस सुख में भी कभी-कभी एक टीस-सी बोध होती थी। मैं इसका अर्थ नहीं समझ सकती थी। सोचती थी, शायद संसार के सभी सुखों का यही स्वाद होता हो।

दिन भर मैं और बहू साथ-साथ रहा करतीं। रात को जब मेरा भाई घर आता तो मैं हठ करके बहू को उसके पास भेज देती थी, पर उस युवती को अपने पति के पास भेज कर क्या मुझे चैन मिलता था? रात भर मुझे नींद नहीं आती थी। करवटें बदलते-बदलते भोर हो जाता था। मेरी बन्द आँखों के सामने कभी शकुन्तला, कभी कुन्द, कभी सुनैना (बहू) आतीं और अन्धकार में छिप जाती थीं। देखती थी—हाथ में घड़ा लिए हुए शकुन्तला जा रही है; मुट्ठी में विष की पुड़िया बाँधे कुन्द आ रही है; धीरे-धीरे पाँव रखती हुई सुनैना अपने प्राणाधिक के घर में प्रवेश कर रही है। बहुत रोकने पर भी भीतर से आह निकल पड़ती थी। उसी समय जान पड़ता था कि मेरे हृदय के भीतर कितना बड़ा अग्नि-कुण्ड धधक रहा है; मेरे सारे जीवन में हाहाकार के सिवा कुछ नहीं है!

४

बहुत दिनों के बाद मेरे ससुर जी ने मुझे स्मरण किया। एक दिन पिता जी के नाम उनका पत्र पहुँचा। उसमें लिखा था—"........पुत्र-शोक में रोते-रोते मेरी पत्नी की आँखें चली गईं। घर का प्रबन्ध छोटी बहू किया करती थी। हम दोनों प्राणियों की सेवा भी वही करती थी। वह भी हम सबों को रुलाती हुई चल बसी। अब घर सूना हो गया। यदि आपको कष्ट न हो तो कृपा कर बड़ी बहू को बिदा कर दीजिए। आप स्वीकृति दें तो मैं अपने लड़के को बिदाई के लिए भेजूँ।"

पिता जी ने रोते-रोते स्वीकृति लिखी। बिदाई का दिन भी निश्चित हो गया। निश्चित दिन पर मेरे देवर जी भी पहुँच गए। मैं यह ठीक न कर सकी, कि मुझे इस बिदाई में सुख मानना चाहिए या दुःख? जीवन के आरम्भ में मैं सुख और दुःख में प्रायः उदासीन सी थी। इसके बाद जीवन में आनन्द की हवा धीमी-धीमी चली। फिर तो वही हवा लू होकर जलाने लगी। जाने आगे और क्या-क्या भाग्य में लिखा है? इसी से नए जीवन में प्रवेश करने के विचार से ही मेरी छाती धड़कने लगती थी। पर पिता के ही घर पर मुझे क्या सुख था? जिस भाई को इतना प्यार किया, जिस भाभी को गोद खेलाया, उन्हीं का दाम्पत्य सुख मेरे हृदय में काँटे की नाईं चुभेगा, यह मैं कभी स्वप्न में भी नहीं सोचती थी। इस महापाप से बचने का उपाय यही था कि मैं किसी तरह पिता के घर से बिदा हो जाऊँ।

अन्त में बिदाई का मुहूर्त आ गया। मैं रो-रोकर

विदा हुई। पिता जी का पत्थर-सा कलेजा भी पसीज उठा। उन्होंने आँखों में आँसू भर कर सीख दी। माता जी का कहना ही क्या है? उनका करुण-विलाप अब भी मेरे कानों में गूँज रहा है। भाभी गले से ऐसी लिपटी कि लोगों को छुड़ाना कठिन हो गया। मुश्किल से मेरी पालकी द्वार से उठी। एक बार फिर भी शकुन्तला मुझे याद आई।

* * *

ससुराल पहुँचते ही सारा इन्तज़ाम मैंने अपने हाथ में ले लिया। सास-ससुर मेरी सेवा से प्रसन्न हो गए। देवर जी मेरे शील-स्वभाव और प्रबन्ध की प्रशंसा हज़ार मुँह से करने लगे। टोले-पड़ोस में मेरी ही चर्चा होने लगी।

बाहर का काम-काज देवर जी करते और भीतर का मैं करती थी। बहुत बातों में परामर्श के लिए देवर जी को मेरे पास आना पड़ता था। कभी-कभी उनको यह ख़याल होता था कि अकेली रहने से कहीं मेरा जी न ऊब जाय, इसलिए बीच-बीच में बेकाम भी वह मेरे पास आ जाया करते थे। थोड़ी देर बैठ इधर-उधर की बातें करते। मैं पान लगा कर देती। वे शौक़ से खाते। फिर बाहर चले जाते थे। बहुत दिनों तक इसी तरह का व्यवहार चलता रहा।

पर जहाँ दो व्यक्तियों को, ख़ासकर देवर और भाभी को, एक साथ रहना है, वहाँ सूखा व्यवहार बहुत दिनों तक नहीं चल सकता। समय पाकर हम दोनों के बीच का सङ्कोच भी बहुत कुछ दूर हो गया। आपस में बहुत तरह की बातें होने लगीं। एक दिन मैंने पूछा—"बाबू, तुम अपना व्याह जल्दी क्यों नहीं कर लेते? भला मैं अकेली कब तक तुम्हारे घर का प्रबन्ध करती रहूँगी?" उन्होंने कहा—"भाभी! अब मैं व्याह करना नहीं चाहता। बाक़ी ज़िन्दगी इसी तरह कट जाय तो अच्छा है! अब मुझे जीवन में आनन्द नहीं दीख पड़ता।"

मैंने उत्सुक होकर पूछा—"क्यों, इतना विराग कैसे हो गया?"

वह बोले—"भाभी, सच पूछो तो अब वह प्रेम नहीं मिल सकता है।"

मैंने कुछ गम्भीर होकर कहा—"भाई, एक प्रेम ही तो देखना नहीं है। घर का भी तो ख़याल करना होगा। मुझे कब तक इस माया-जाल में फँसाए रक्खोगे, बाबू! मेरा यह लोक तो गया ही, अब क्या परलोक की भी चिन्ता नहीं करने दोगे?"

उन्होंने गिड़गिड़ा कर जवाब दिया—"भाभी! लोक-परलोक सब इसी जीवन में है। क्यों व्यर्थ मुझे फिर गढ़े में ढकेलना चाहती हो?"

दीवान बहादुर ए० बी० लट्ठ, एम० ए०, एल्-एल्० बी०

आप कोल्हापुर के दीवान हैं और राउण्ड टेबुल कॉन्फ्रेन्स में सलाहकार नियुक्त किए गए हैं।

मैं चुप हो गई। मैंने फिर इसकी चर्चा उनके सामने नहीं की।

५

देवर जी की बातों ने मेरे चित्त पर असर किया। दिन पर दिन उनके साथ मेरी घनिष्टता बढ़ने लगी। मैंने देखा कि मेरा हृदय एकदम नीरस नहीं है। मेरे भावों को इतनी उत्तेजना मिली, कि वे आसमान में उड़ने लगे। बहुत दिन की दबी हुई लालसाएँ फ़व्वारे

की नाईं बाहर निकल पड़ीं। हृदय की प्रेरणा को भीतर रोकना कठिन हो गया। वासना अगणित धाराएँ होकर प्रावाहित होने लगी। पुराने संस्कार तिनके की तरह उस धारा में बह गए। मेरे देवर जी भी अपने को सँभाल न सके, मेरे साथ ही वासना की तीव्र धारा में बहने लगे। मैंने समझा, रूप और यौवन की यही सार्थकता है। उस समय हम दोनों ने सोचा था कि यदि इस प्रवाह में डूबेंगे तो साथ ही और यदि कहीं किनारे लगेंगे तो साथ ही। हम दोनों की जकड़ी हुई बाहों को संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति अलग नहीं कर सकती !!

भैया ! अब तो मेरे दिल की आग ठण्डी पड़ गई। किन्तु जिस समय वह आग धधक रही थी, उस समय मैं यही सोचती थी कि मैं सारे जगत के सम्भोग को इस आग में भस्म कर सकती हूँ। जाने कहाँ से मेरी वासना में इतनी तीव्रता आ गई थी ! सम्भोग और लालसा, लालसा और सम्भोग, इन्हीं के बीच मेरा जीवन बीतने लगा। जीवन का बीतना क्या ? मुझे तो ऐसा जान पड़ता था कि जीवन अनन्त है, जीवन की लालसाएँ अनन्त हैं। केवल सम्भोग अनन्त नहीं। बस एक यही जीवन का दुःख है !

सचमुच वह जीवन अनन्त था या नहीं, पर एक घटना ने उसका अन्त कर दिया। एक दिन मुझे जान पड़ा, जैसे मेरे शरीर में कुछ परिवर्त्तन हो रहा है। नित्य मेरा ध्यान उसी परिवर्त्तन पर लगा रहता था। धीरे-धीरे मैं अनुभव करने लगी कि मेरे शरीर के भीतर एक भिन्न प्राणी की रचना हो रही है। उसका एक-एक स्पन्दन मुझे चेतावनी देने लगा।

मैंने यह शुभ-सम्वाद देवर जी को सुनाया। सुनते ही उनका मुँह सूख गया।

मैंने पूछा—"तुम घबड़ा क्यों गए ?"

उन्होंने बड़ी रोनी आवाज़ में कहा—"भाभी, बड़ा अनर्थ हुआ !!"

मैंने ज़रा तेज़ आवाज़ में पूछा—"क्यों, इसमें अनर्थ क्या है ?"

वे बड़े दीन भाव से बोले—"भाभी ! तुम तो घर में रहोगी, पर मुझे बाहर मुँह दिखाना कठिन हो जायगा।"

मैं सब समझ गई। भूत-भविष्य, सब अन्धकार हो गया। एक बार मेरी आत्मा रो उठी।

पन्द्रह-बीस दिन बाद वह फिर मेरे पास आए और बोले—"भाभी ! यदि बुरा न मानो तो एक बात कहूँ।"

मैंने कहा—"बाबू ! तुमको जो कुछ कहना हो साफ़-साफ़ कहो। भला मैं बुरा क्यों मानने लगी ?"

उन्होंने सकुचाते हुए कहा—"भाभी ! मैं तो समझता हूँ कि ऐसी हालत में थोड़े दिनों के लिए कहीं बाहर चल कर रहना ही अच्छा है।"

मैंने कहा—"तुम जो कहोगे, मैं वही करूँगी। जिस काम से तुम्हारा भला हो, मैं उसमें नाहीं नहीं कर सकती बाबू ! यह विश्वास मानो।"

वह कुछ सोच कर बोले—"मेरा तो विचार है कि कुछ दिनों के लिए हम दोनों वैद्यनाथ-धाम चल कर रहें। वह तीर्थस्थान है। किसी को सन्देह का मौक़ा भी नहीं मिलेगा।"

मैंने अपनी स्वीकृति दे दी। उसके साथ-साथ यह भी कह दिया—"मैं वहाँ अकेली रहूँगी। तुम सिर्फ़ मुझे पहुँचा आना।"

फिर क्या था ? देवर जी ने पिता जी से अनुमति ली। उनको मेरा धर्म-भाव देख कर बड़ा सन्तोष हुआ। विचार हुआ कि साथ आदमी लेने की कोई आवश्यकता नहीं। एक दिन हम दोनों रेल पर सवार हो वैद्यनाथ-धाम की ओर रवाना हो गए।

६

ट्रेन से उतर कर देखा, सिमुलतला स्टेशन है। मैंने देवर जी से पूछा—"क्यों बाबू, बीच ही में क्यों उतर गए ?"

उन्होंने अनमना सा होकर जवाब दिया—"यह बड़ी अच्छी जगह है। कुछ दिन यहाँ रह कर फिर देवघर चलेंगे।"

इस जवाब से मुझे सन्तोष नहीं हुआ। पर अधिक प्रश्न करना भी मैंने अच्छा नहीं समझा।

बैलगाड़ी पर सवार हो, हम लोग रवाना हुए। जगह सचमुच बड़ी अच्छी मालूम हुई। टेढ़ी-मेढ़ी, ऊँची-नीची, लाल-लाल सड़कें बड़ी भली मालूम होती थीं। चारों ओर पहाड़ी टीले और उन पर बने हुए

मकान ! बीच-बीच में लम्बा-चौड़ा, हरा-भरा पहाड़ी मैदान ! ऐसा देश पहले मैंने नहीं देखा था।

थोड़ी देर में एक मकान के द्वार पर हम लोग पहुँच गए। वह मकान आपके मकान से उत्तर क़रीब एक माइल की दूरी पर है। उस मकान के आस-पास और कोई दूसरा मकान नहीं है। उस मकान में हम लोगों का स्वागत करने को पहले ही से दाई और नौकर मौजूद थे

मैंने पूछा—"ये नौकर किसके हैं ?"

देवर जी ने कहा—"इन्हें मैंने पहले ही से ठीक कर रक्खा था।"

मैं उस मकान में बाहर-बाहर से तो चैन से रहने लगी, पर भीतर की अशान्ति दूर न हुई। जी बहलाने को मैं कभी-कभी घूमने निकल जाया करती थी। एक रोज़ मैं आपका अस्पताल भी देख गई थी। आपके मकान का भी मुझे पता लग गया था ; क्योंकि आपकी दयाशीलता का बखान मैं कितने ही आदमियों के मुँह से सुन चुकी थी।

मैं देवर जी के मन का क्लेश दूर करने के यत्न में लगी रहती थी, पर उनकी चिन्ता दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही थी। इसका कारण जानने की बहुत कोशिश की, पर जान न सकी। अकस्मात् एक दिन सारा रहस्य आप से आप प्रकट हो गया।

एक दिन रात को मैं अपने कमरे में गहरी नींद में सोई हुई थी। एकाएक मेरी नींद खुली तो ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई मेरा गला घोंट रहा है, मैं बहुत कोशिश करके भी चिल्ला न सकी। कमरे में अँधेरा था। मुझे अब जान पड़ता है कि कई औरतों ने मिल कर मुझे ज़ोर से पकड़ रक्खा था और एक मर्द मेरे मुँह में कपड़ा ठूँस रहा था। कुछ देर तक तो मैं बहुत छटपटाती रही, पर अन्त में बेहोश हो गई।

कितनी देर तक बेहोश रही, यह मुझे याद नहीं, पर जब होश हुआ तो देखा मेरी अजीब हालत हो गई है। सारा बदन टूट रहा है। विशेष पीड़ा का अनुभव होते ही मैं सारा मामला समझ गई। मुझे साफ़ दीखने लगा कि क्यों एक बुढ़िया नित्य मेरी सुस्ती की दसों दवाइयाँ बता जाया करती थी और मेरे उन दवाइयों का व्यवहार न करने पर देवर जी भी नाराज़ होते थे। जिस घटना की आशङ्का मैं स्वप्न में भी नहीं करती थी, वही सामने आ पड़ी। फिर तो शरीर की पीड़ा से सौ गुनी हृदय की पीड़ा होने लगी। मैं उस समय पगली-सी हो गई थी। अन्धकार में मुझे ऐसा जान पड़ा, जैसे चारों ओर से भूत-पिशाच मुझे खाने को दौड़े आ रहे हैं। उस समय जाने कहाँ से मेरे शरीर में इतना बल आ गया था। मैं चारपाई से उठ दरवाज़े के पास गई। किवाड़ बाहर से बन्द थे, पर एक किवाड़ थोड़ा धक्का मारने से खुल गया। द्वार खुलते ही मैं जान छोड़ कर भागी।

श्रीमती लाडोरानी ज़ुतशी

लाहौर 'युद्ध समिति' की सुप्रसिद्ध डिक्टेटर, जिनको एक वर्ष की सजा दी गई है।

यह मुझे मालूम हो गया कि कोई मेरा पीछा कर रहा है, पर वह मुझे पकड़ नहीं सका। जब मैं आपके हाते में घुसी तब वह लौट गया।

फिर उस रात को आपसे जिस अवस्था में भेंट हुई और आपने जिस तरह मेरे प्राण बचाए यह आपको मालूम ही है। मैं आपका यह उपकार जन्म भर नहीं भूलूँगी डॉक्टर बाबू! कि आपने मेरी विनती मान कर

पुलिस में कोई ख़बर नहीं दी। क्योंकि में यह नहीं चाहती कि देवर जी मेरे कारण आफ़त में फँस जायँ !

७

अब आप ही विचारिए अविनाश बाबू! कि इस व्यभिचार, विश्वासघात, अत्याचार, गर्भपात, भ्रूण-हत्या आदि कितने ही पापों से लिप्त दुर्घटना का दोषी कौन है। मैं देवर जी को दोष नहीं देती, क्योंकि मैं भली-भाँति जानती हूँ कि वे कितने पवित्र और धर्मभीरु थे। पिता जी को दोष देना तो बड़ा अन्याय होगा, क्योंकि उन्होंने मुझे अपने विचार में अच्छी से अच्छी शिक्षा दी थी। वे सदा मेरे अपार दुःखों को अपने प्रेम-भाव और त्याग से कम करने की चेष्टा में लगे रहे। उनका हृदय जिस प्रकार मैंने विश्वासघात से चूर-चूर कर दिया, उनकी मान-प्रतिष्ठा मिट्टी में मिला दी, इसका प्रायश्चित्त मैं सौ जन्मों में भी न कर सकूँगी।

फिर मैं अपने को ही दोषी कैसे मान लूँ? क्योंकि मैं जानती हूँ कि एक बार मेरे अन्तःकरण में कैसा भीषण महाभारत मचा था। दुर्निवार प्रवृत्तियों से लड़ते-लड़ते मैं नीचे गिरी हूँ। आज भी मुझे याद है कि किस तरह एक-एक पग आगे बढ़ते-बढ़ते मैं पाप के दलदल में फँसी थी।

मैंने इस पाप-काण्ड पर बहुत विचार किया है डॉक्टर बाबू! आपके आश्रय में पड़ी-पड़ी मैंने इस घटना के बारे में रात-रात भर सोचा है। मैं तो इसी परिणाम पर पहुँची हूँ कि इन सारे अनर्थों की जड़ हमारे समाज का निष्ठुर विधान है।

समाज विधवाओं को प्रतिकूल वायुमण्डल में रख उनसे अबाध सतीत्व की आशा करता है। वह यह नहीं सोचता कि पारिवारिक जीवन के रजो, तमो-गुणी सङ्घर्ष में विधवाओं की सात्विकता कहाँ तक बची रह सकती है। उत्तेजनाओं के बीच उनका अखण्ड ब्रह्मचर्य कहाँ तक सम्भव है। अभागिनी विधवाओं की यह अस्वाभाविक परिस्थिति ही उनके पतन का बहुत बड़ा कारण है और इस पतन को समाज दया की दृष्टि से देखना नहीं चाहता, मुझे इसी का बड़ा खेद है।

समाज का यह विधान कितना युक्तिसङ्गत है, ज़रा इस पर भी विचार कीजिए, अविनाश बाबू! पुरुष संन्यास लें तो संसार को त्याग कर जङ्गलों में रहें। पर विधवा को परिवार में रह कर संन्यास लेना होगा! अखण्ड ब्रह्मचर्य पर कोई पुरुष एक क्षण के लिए भी विश्वास नहीं करता, पर बाल-विधवाओं को जन्म भर ब्रह्मचर्य रखना होगा। निर्गुण उपासना पुरुषों के लिए असम्भव है, पर कितनी ही बाल-विधवाएँ निर्गुणोपासना के लिए विवश की जाती हैं। अबला नारी और सबल पुरुष में इतना अन्तर क्यों?

इसके अतिरिक्त पुरुषों के लिए तो ब्रह्मचर्य का बहुत बड़ा आदर्श है। बाल-ब्रह्मचारी भीष्म को कौन नहीं जानता? पर विधवाओं के लिए कौन सा आदर्श है? पतिव्रत के लिए सती, सावित्री, सीता, द्रौपदी आदि आदर्श हैं, पर विधवाओं के आगे हिन्दू-संस्कृति कौन सा आदर्श रखती है? तुम कहोगे कुन्ती। भला जिसके पाँच-पाँच विश्व-विजयी बेटे मौजूद थे!

मैं तो समझती हूँ भाई, कि मातृत्व स्त्रियों के रक्त की एक-एक बूँद में समाया हुआ है। यह उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। जो समाज स्त्रियों को मातृत्व से वञ्चित करता है, उसका त्रिकाल में भी कल्याण नहीं हो सकता। यह मेरा अटल विश्वास है।

* * *

विधवा की करुण-कहानी सुन डॉक्टर अविनाशचन्द्र भाव के समुद्र में निमग्न हो गए। कुछ देर बाद उत्तेजित होकर उन्होंने कहना आरम्भ किया—"बहिन! तुम सभी पापों से मुक्त हो। तुम्हारे परिताप ने तुम्हारे पापों को भस्म कर दिया। तुमने विधवाओं की समस्या बड़े ही स्वच्छ और सच्चे रूप में मेरे सामने खड़ी कर दी है। अब तुम मेरे सामने प्रण करो बहिन! कि इन अभागिनी विधवाओं के उद्धार में तुम मेरा साथ दोगी। समाज ने तुम्हें पाप के गड्ढे में ढकेला है। अब तुम समाज को पाप के गड्ढे से बाहर निकालो। इसी महायज्ञ में अपने शेष जीवन को उत्सर्ग कर दो।"

गोलमेज़ परिषद्

[श्री० यदुनन्दनप्रसाद श्रीवास्तव]

देश में इस समय गोलमेज़-परिषद की बात को लेकर काफ़ी चर्चा हो रही है। प्रत्येक दैनिक पत्र में रोज़ ही इस सम्बन्ध को लेकर कुछ न कुछ चर्चा रहती ही है। लोग इस बात को जानने के बड़े उत्सुक हैं कि गोलमेज़ कॉन्फ़्रेन्स में क्या होगा? फलतः यहाँ पर इस प्रश्न की चर्चा अप्रासङ्गिक न होगी।

गोलमेज़ कॉन्फ़्रेन्स को लेकर इस समय देश में दो दल हो रहे हैं। कुछ दिन पहले तो यह जान पड़ता था कि अब गरम और नरम दल मिल कर एक हो जायँगे, पर इस बात को लेकर ये फिर अलग हो गए हैं!

जो लोग गोलमेज़-परिषद में गए हैं, उनका यह विश्वास है कि वे वादविवाद द्वारा यह सिद्ध कर देंगे कि हमारा पक्ष सच्चा है, हमारी माँग उचित है। उनका विश्वास है कि एक बार यह बात जहाँ सिद्ध हो गई, त्योंही न्याय-प्रिय अङ्गरेज़ जाति न्याय करने के लिए तैयार हो जावेगी और भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्य का यथेष्ट हिस्सा मिल जावेगा। जो कुछ दो-एक बातें बच रहेंगी, वे भी १०-२० बरस के अन्दर-अन्दर फिर एकाध बार इसी तरह की कॉन्फ़्रेन्स में वादविवाद कर प्राप्त कर ली जावेंगी। इस तरह के विचार वाले गरम लोगों को सदैव इस बात का दोष दिया करते हैं कि वे लोग ज़िद में आकर बनी-बनाई बात अपनी उग्रता के कारण बिगाड़ देते हैं।

ये लोग मानव-स्वभाव की एक बहुत आवश्यक बात को भूल जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति स्वभाव से ही अपने फ़ायदे-नुक़सान पर सदैव ही सब से पहले ध्यान देता है। न्याय-अन्याय आदि की बातों को वह बाद में सोचता है, या फिर यह बात उसे उस समय याद आती है जब किसी दूसरे व्यक्ति का मामला उसके सामने विचार के लिए पेश होता है। यदि बात ऐसी न होती तो फिर आज दुनिया में इतना हाहाकार न होता, पुलिस, फ़ौज और अदालतों की इतनी आवश्यकता न रहती। अङ्गरेज़ लोग भी मनुष्य ही हैं और उनके स्वभाव में भी स्वार्थ है। किसी सवाल के सामने आते ही वे भी यही सोचते हैं कि इससे उन्हें हानि होगी या लाभ। हिन्दुस्तान पर अङ्गरेज़ों का राज्य करना अन्याय है, अनुचित है, इसे प्रत्येक विचारशील अङ्गरेज़ अच्छी तरह समझता और जानता है। इसे वे लोग हमारी अपेक्षा भी शायद अधिक समझते हैं, कारण वे लोग स्वाधीनता के महत्व को हमसे अधिक जानते हैं; किन्तु साथ ही वे इस बात को भी अच्छी तरह जानते हैं कि हिन्दुस्तान से उन्हें बड़ा लाभ है तथा इस देश के स्वतन्त्र होते ही ब्रिटिश साम्राज्य का दिवाला निकल जावेगा।

लेकिन नरम दल के तर्कों का उत्तर केवल एक इसी बात से ख़त्म नहीं होता। उनका कथन है कि यदि और लोग नहीं, तो कम से कम लॉर्ड इरविन, मि० बेन और प्रधान मन्त्री रेम्ज़े मेकडॉनल्ड ऐसे भले आदमी हैं कि वे भारतीय परिस्थिति की गम्भीरता और हमारी माँगों के औचित्य को अधिक दिनों तक अस्वीकार नहीं कर सकते। हम भी इस त्रिमूर्ति की भलमनसाहत को अस्वीकार करना नहीं चाहते। किन्तु हमारा कहना यह है कि इस त्रिमूर्ति से कुछ हो नहीं सकता। यदि आज ग्रेट-ब्रिटेन का शासन किसी अनियन्त्रित राजा के हाथ में होता अथवा यदि मि० मैकडॉनल्ड वहाँ के सर्वाधिकार-सम्पन्न शासक होते तो निश्चय ही हमारा काम बड़ी सरलता से हो जाता। किन्तु ग्रेट-ब्रिटेन का शासन पार्लामेण्ट के हाथों में है और पार्लामेण्ट के सदस्यों की ९९ फ़ीसदी संख्या ऐसी है, जिन्हें हम महात्मा की उपाधि से विभूषित नहीं कर सकते। वे इस बनिया जाति के चुने हुए चतुर बनिए तथा साधारण आदमियों की तरह ही अपने स्वार्थ पर सब से पहले ध्यान देने वाले संसारी जीव हैं। फलतः उनसे केवल न्याय के बल पर कोई बात करा लेना असम्भव बात है!

किन्तु, कई लोगों का विश्वास है कि अङ्गरेज़ जाति अपनी न्याय-प्रियता के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है और अङ्गरेज़ी न्याय आज भी साहित्य में एक विशेष अर्थ का द्योतक है। इस बात की सत्यता की परीक्षा के लिए हमें
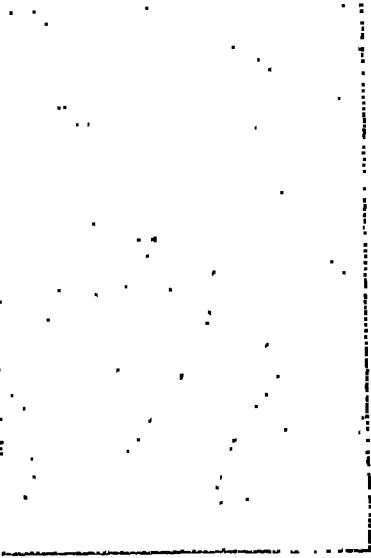
सर तेजबहादुर सप्रू

(गोलमेज़ के सदस्य)

ब्रिटिश इतिहास के पन्ने उलटने पड़ेंगे। जिस तरह का झगड़ा आज भारत और ब्रिटेन के बीच में हो रहा है, ठीक उसी तरह का झगड़ा सब से पहले अमेरिका और ब्रिटेन में हुआ था। यही पहला अवसर था, जब ब्रिटिश न्याय-प्रियता कसौटी पर रक्खी गई। अमेरिका-वासियों ने ब्रिटेन से अपील की, स्वतन्त्रता पाने के लिए; लेकिन उनकी सुनाई न हुई, उनकी सारी अपील, सारी बहस व्यर्थ हुई और अमेरिका को स्वाधीनता उसी समय मिली, जब उसने शस्त्र उठा कर ब्रिटेन को अपनी बात मानने के लिए मजबूर कर दिया। यहाँ पर एक बात और ध्यान देने योग्य है। अमेरिका के स्वाधीनता माँगने वाले लोग ब्रिटेन के मूल निवासी और उसके अपने एक ख़ून के गोरी जाति के लोग ही थे। आयरिश लोगों के साथ भी यही बात हुई। जो जाति अपनी सभ्यता को मानने वाले, अपने धर्म को मानने वाले तथा अपने वर्ण के साथ ऐसा व्यवहार करती है, वह दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करेगी, यह बात अनुमान से जानी जा सकती है। किन्तु, अनुमान पर निर्भर रहने की कोई आवश्यकता नहीं। ब्रिटिश लोगों का संसर्ग रङ्गीन जातियों से बराबर रहा है और उन्होंने मिश्र-वासियों, चीनियों तथा निरीह हब्शियों से जैसा बर्ताव किया है, वह कोई छिपी बात अथवा कल्पना की वस्तु नहीं, एक ऐतिहासिक-सत्य है। अस्तु।

इन ऐतिहासिक प्रमाणों के सामने होते हुए भी, जो ब्रिटिश न्यायप्रियता अथवा लॉर्ड इरविन के आश्वासन पर हवाई क़िला बना लेते हैं, उनसे क्या कहा जाय? फिर इसी १० साल के अन्दर-अन्दर हमारे यहाँ ही नरम लोगों को न जाने कितनी बार धोखा खाना पड़ा है। फिर भी उनका विश्वास अनुनय-विनय अस्त्र से हटता ही नहीं। वे तो 'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की' वाली कहावत को चरितार्थ करते हैं। जैसे-जैसे वे जाते हैं, धोखा

श्री० सी० वाई० चिन्तामणि

(गोलमेज़ के सदस्य)

खाते हैं, वैसे ही वैसे उनका विश्वास भी बढ़ता जाता है। और इसका कारण भी है। नरम लोगों के कार्य-क्रम में सब दिक़्क़तों की एक ही दवा है—अनुनय-विनय! सन् १९२० की सुधार-योजना अनुपयुक्त, अयथेष्ट और

असन्तोष-जनक निकली; लेकिन फिर भी नरम दल ने उसे स्वीकार कर ही लिया। साइमन-कमीशन असन्तोष-

श्रीमती सुब्बरायन
(गोलमेज़ की सदस्या)

जनक रहा; राउण्ड-टेबिल-कॉन्फ़्रेन्स की योजना पहले ठीक न थी, और आज भी इङ्गलैण्ड की यात्रा उन लोगों ने प्रफुल्ल-चित्त और विश्वास से नहीं की है, किन्तु वे सहयोग न करें, तो करें क्या? उनका विधान, उनका कार्य-क्रम तो सीधे मार्ग को पसन्द करता नहीं! इसमें उन्हें 'मालिक' के रुष्ट हो जाने का भय होता है। ऐसी मानसिक वृत्ति के लोगों का विश्वास सहयोग से उठ नहीं सकता। वे जीवन भर के संस्कार को इस उमर में कैसे ठुकरा दें?

जो बातों को समझ सकते हैं, जो कटु-सत्य, कुरूप विभीषिका को आँखें खोल कर देख सकते हैं, उनके लिए एक ही मार्ग है। जब एक धेले की चीज़ आज कोई किसी को मुफ़्त, बिना किसी स्वार्थ के नहीं देता, तब हिन्दुस्तान सरीखे 'सोने की चिड़िया' को कोई उदारता-वश कैसे स्वाधीन कर देगा? केवल अपीलों के बल पर हिन्दुस्तान स्वाधीन नहीं होगा। जब तक आप अङ्गरेज़ों को मजबूर न कर देंगे, जब तक आप ऐसी परिस्थिति न पैदा कर देंगे, कि बात ग़ैरमुमकिन हो उठे, तब तक अङ्गरेज़ लोग हिन्दुस्तान से अपना क़ब्ज़ा कदापि न हटावेंगे।

इसके लिए देश ने अहिंसात्मक असहयोग का मार्ग अख़्तियार कर दिया है। जो लोग इसमें भाग लेने के लिए अपने को समर्थ पाते हों, उनके लिए केवल एक यही

रेवरण्ड जे० सी० चैटर्जी, एम० ए०, एम० एल० ए० (दिल्ली)
(गोलमेज़ के सदस्य)

मार्ग है। जो लोग इसमें भाग न ले सकें, उन्हें अपनी टाँग अड़ाने की अपेक्षा, अलग होकर चुप बैठना चाहिए
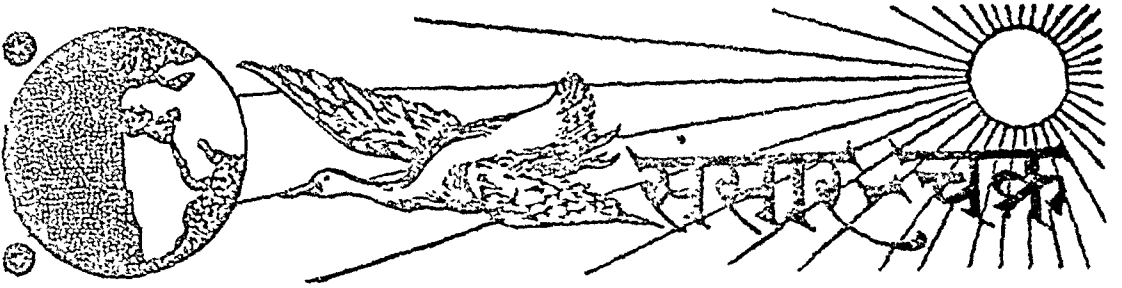
["राजनीति का एक विनम्र विद्यार्थी"]

रूस के क्रान्तिकारी दल का घोषणा-पत्र

रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास बहुत विस्तृत है। वहाँ की निरङ्कुश ज़ारशाही के अन्याय और अत्याचारों के प्रतिकारार्थ अनेकों दलों का जन्म हुआ, अनेकों मार्गों का अनुसरण किया गया, अनेकों उपायों का अवलम्बन किया गया; पर उसकी नीति न बदली, और उसका शासन दिन पर दिन कठोर-भाव धारण करता गया। अन्त में जब आन्दोलनकारी सब उपाय करके हार गए; विनय, प्रार्थना, अधिकारों की माँग, विरोध आदि सब बातें निष्फल सिद्ध हुईं और सरकार छोटी-छोटी बातों के लिए देश-भक्त नवयुवकों और नवयुवतियों को साइबेरिया (रूस का कालापानी) भेजने लगी तो लोगों के धैर्य का अन्त हो गया और वे देश-दशा के सुधार के लिए आन्दोलन के वैध-मार्ग को त्याग कर बम, पिस्तौल, मारकाट, गुप्त-हत्या आदि का सहारा लेने लगे। धीरे-धीरे रूस के क्रान्तिकारी दल का नाम संसार में फैल गया और वह आश्चर्य, भय और विस्मय की दृष्टि से देखा जाने लगा। शुरू में छोटे-बड़े पुलिस कर्मचारियों और दमन करने वाले अन्य सरकारी अफ़सरों को गोली का शिकार बनाया गया, और फिर स्वयम् ज़ार को ही क्रान्तिकारी दल की कार्यकारिणी कमेटी ने अपना लक्ष्य बनाया। एक बार उसकी स्पेशल ट्रेन सुरङ्ग लगा कर नष्ट कर दी गई और दूसरी बार उसके महल को डाइनामाइट से उड़ाया गया। पर दोनों बार वह भाग्यवश बच गया। अन्त में १३ मार्च १८८१ को क्रान्तिकारियों ने उसे बीच सड़क पर मार दिया। इसके दस दिन पश्चात् क्रान्तिकारी दल की कार्यकारिणी कमेटी ने नवीन ज़ार के नाम एक घोषणा-पत्र प्रकाशित कराया, जिसमें रूसी जनता की तरफ़ से अधिकारों की माँग पेश की गई थी और बतलाया था कि अगर जनता को ये साधारण अधिकार मिल जायँ तो हम मारकाट के उपायों को छोड़ कर, वैध रीति से आन्दोलन करने को तैयार हैं। कार्यकारिणी कमेटी का वह घोषणा-पत्र पाश्चात्य देशवासियों की दृष्टि में बड़ा महत्वपूर्ण समझा जाता है। रूस अथवा ज़ार सम्बन्धी प्रत्येक इतिहास में इसकी चर्चा मिलती है। पाठकों के मनोरञ्जनार्थ उसी का भाषान्तर नीचे दिया जाता है। घोषणा-पत्र ज़ार को सम्बोधन करके लिखा गया है :—

"बादशाह सलामत,—आपको इस समय जो मानसिक वेदना हो रही होगी उसे यह कार्यकारिणी कमेटी अच्छी तरह समझती है। पर तो भी यह इस बात को उचित नहीं समझती कि शिष्टाचार की ख़ातिर इस घोषणा-पत्र को प्रकट न किया जाय। क्योंकि मनुष्य की स्वाभाविक हार्दिक भावनाओं से भी एक बड़ी चीज़ है; और वह है अपने देश के प्रति मनुष्य का कर्त्तव्य। इस कर्त्तव्य के लिए हर एक नागरिक को अपना, अपनी भावनाओं का और दूसरों की भावनाओं का भी बलिदान कर देने का अधिकार है। इसी कठोर कर्त्तव्य से विवश होकर हम बिना विलम्ब किए आपके सामने अपना वक्तव्य पेश करना चाहते हैं, क्योंकि वर्तमान घटनाओं को देख कर हमें भविष्य में भयङ्कर हलचलों और ख़ून की नदियों के बहने का भय हो रहा है। इसलिए इस कार्य में विलम्ब करना किसी प्रकार उचित नहीं।

"कैथेराइन नहर पर जो रक्त-रञ्जित घटना (ज़ार का ख़ून) हुई है वह केवल संयोगवश अथवा अकस्मात नहीं

हुई थी और न उससे किसी को आश्चर्य हुआ। गत दस वर्षों के इतिहास को देखते हुए यह घटना अनिवार्य थी, और यही इसका वास्तविक महत्व है, जिसे भलीभाँति समझ लेना उस व्यक्ति का कर्त्तव्य है जो भाग्य-चक्र से एक राज्य के प्रधान-पद पर विराजमान हुआ है।

"केवल वही मनुष्य, जो कि सार्वजनिक जीवन के रहस्य को समझ सकने में सर्वथा असमर्थ है, इस प्रकार की घटनाओं को कुछ व्यक्तियों या एक गिरोह का अपराध बतला सकता है। पिछले दस वर्षों में क्रान्तिकारियों का कड़े से कड़े उपायों से दमन किया गया है, और इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए भूतपूर्व ज़ार की गवर्नमेण्ट ने स्वाधीनता, समस्त जनता के हित, व्यापार, व्यवसाय और इतना ही नहीं, वरन् अपने आत्म-गौरव तक को तिलाञ्जलि दे दी थी। एक शब्द में कहा जाय तो गवर्नमेण्ट ने क्रान्तिकारी आन्दोलन को दबाने के लिए अपनी शक्ति भर सब उपायों से काम लिया, पर तो भी दबने के बजाय उसकी वृद्धि ही होती गई। रूस की सर्वोत्तम शक्तियाँ, वहाँ के सब से बढ़ कर कर्मशील और बलिदान के लिए प्रस्तुत व्यक्ति आगे बढ़े और इस दल में समा गए। इस प्रकार पूरे तीन वर्ष से यह दल गवर्नमेण्ट के साथ जी तोड़ कर युद्ध कर रहा है।

"बादशाह सलामत, आप इस बात को स्वीकार करेंगे कि भूतपूर्व ज़ार की गवर्नमेण्ट में क्रियाशीलता का अभाव नहीं था। निर्दोषी और दोषी समान रूप से फाँसी पर लटकाए गए और जेलख़ाने तथा कालापानी क़ैदियों से भर गए। नेता समझे जाने वाले दर्जनों व्यक्तियों को पकड़ कर मौत का दण्ड दिया गया। उन लोगों ने शान्तिपूर्वक और शहीदों के समान प्रसन्नता के साथ अपने प्राण दे दिए। पर इससे आन्दोलन रुक नहीं गया, वरन् इसके विपरीत बराबर बढ़ता गया और उसकी शक्ति भी अधिक हो गई।

"बादशाह सलामत, क्रान्तिकारी आन्दोलनों का आधार व्यक्तियों पर नहीं होता। यह समाज रूपी शरीर की एक क्रिया है, और वे मृत्यु-स्तम्भ, जिन पर इस क्रिया के करने वाले मुख्य प्रतिनिधियों को चढ़ाया जाता है, इसको रोक सकने में और इससे वर्तमान शासन-प्रणाली की रक्षा कर सकने में सर्वथा असमर्थ हैं।

"गवर्नमेण्ट जब तक चाहे लोगों को गिरफ़्तार कर सकती है और फाँसी पर चढ़ा सकती है, और सम्भव है कि वह किसी एक क्रान्तिकारी दल को दबाने में समर्थ हो जाय। हम यहाँ तक स्वीकार करने को तैयार हैं कि वह क्रान्तिकारी दल के मूल-सङ्गठन को भी नष्ट करने में शायद सफलता पा जाय, पर इससे परिस्थिति को नहीं बदला जा सकता। घटनाओं के फल से और समस्त जनता में फैले हुए घोर असन्तोष तथा आधुनिक सामा-

सर सुलतान अहमद ख़ाँ

(गोलमेज़ के सदस्य)

जिक आदर्शों के प्रति रूस-निवासियों के आकर्षण के कारण नवीन क्रान्तिकारियों का जन्म हो जायगा।

"कठोर उपायों द्वारा समस्त देश का दबाया जा सकना, और देश में फैले हुए असन्तोष को दबा सकना तो और भी असम्भव है। इसके विपरीत कठोर उपायों से लोगों की कटुता, क्रियाशीलता और शक्ति अधिक बढ़ती है। इससे स्वभावतः जनता का सङ्गठन मज़बूत होता जाता है और वे अपने अग्रगामियों के अनुभव से

लाभ उठाते हैं। इस प्रकार जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, क्रान्तिकारी दल की संख्या और क्षमता बढ़ती जाती है। ठीक यही हमारा हाल है। गवर्नमेण्ट ने सन् १८७४ के 'डालसिजी' और 'किकोवजी' आन्दोलनकारियों का दमन करके क्या पाया? दल के भीतर अन्य नेता, जो उनकी अपेक्षा अधिक दृढ़ थे, उत्पन्न हुए और उनके स्थान पर काम करने लगे।

"गवर्नमेण्ट के १८७८ और १८७६ के दमन ने उग्र क्रान्तिकारी दल को जन्म दिया। सरकार ने कोवाल्स्की, डुबोविन, ओसीनिस्की, लिसगुब की हत्या की, कितने ही क्रान्तिकारी दलों को नष्ट कर डाला, पर इनसे कोई काम न हुआ। विकासवाद के प्राकृतिक चुनाव के नियमानुसार हीन-सङ्गठन वाले दलों के स्थान पर उत्तम-सङ्गठन वाले दलों का जन्म होता गया। अन्त में यह कार्यकारिणी कमेटी उत्पन्न हुई, जिसके विरुद्ध गवर्नमेण्ट बिना किसी प्रकार की सफलता पाए अभी तक उद्योग कर रही है।

"अगर हम पिछले दुःखप्रद दस वर्षों पर निष्पक्ष भाव से दृष्टि डालें तो हम सहज में स्पष्ट रूप से जान सकते हैं कि अगर गवर्नमेण्ट अपनी नीति न बदले तो क्रान्तिकारी आन्दोलन का क्या भविष्य होगा। इसकी वृद्धि होगी, इसका विस्तार बढ़ता जायगा, उग्रक्रान्तिकारियों के कार्यों की तरफ़ लोगों का ध्यान अधिकाधिक आकर्षित होने लगेगा, और क्रान्तिकारियों का सङ्गठन अधिक सर्वाङ्ग-पूर्ण और शक्तिशाली बनता जायगा। इस बीच में जनता के असन्तोष को बढ़ाने के लिए नए-नए कारण उत्पन्न होते रहेंगे और गवर्नमेण्ट पर से जनता का विश्वास निरन्तर कम होता जायगा। क्रान्ति का विचार, उसकी सम्भावना और उसकी अनिवार्यता बराबर जड़ पकड़ती जायगी।

"अन्त में एक भीषण स्फोट (धड़ाका), एक ख़ूनी क्रान्ति, और देशव्यापी उथल-पुथल के फल से प्राचीन प्रणाली का सदा के लिए नाश हो जायगा।

"बादशाह सलामत, यह एक बड़ी दुःखप्रद और भयङ्कर बात है। निस्सन्देह यह दुःखप्रद और भयङ्कर है। यह मत समझिए कि ये केवल शब्द हैं। हम किसी भी अन्य व्यक्ति से बढ़ कर अनुभव करते हैं कि इस नाश और ख़ून-ख़राबी में बहुत अधिक ज्ञान-शक्ति और कार्य-शक्ति का क्षय होगा। और यह बड़ी विपत्ति की बात होगी। इसी ज्ञान-शक्ति और कार्य-शक्ति का उपयोग अन्य प्रकार की परिस्थिति में लाभकारी कार्यों के लिए किया जा सकता था, इसके द्वारा सर्वसाधारण के ज्ञान की वृद्धि की जा सकती थी और सर्वसाधारण का बहुत कुछ हित-साधन हो सकता था।

"प्रश्न किया जायगा कि इस ख़ून-ख़राबी की आवश्यकता ही क्या है?

"बादशाह सलामत, इसका कारण यह है कि हमारे देश में एक न्यायशील—वास्तव में न्यायशील, गवर्नमेण्ट का अभाव है। गवर्नमेण्ट जिन मूल सिद्धान्तों पर आधार रखती है, उनके अनुसार उसका कर्तव्य है कि वह लोगों की आकांक्षाओं के प्रतिबिम्ब स्वरूप हो और लोगों की इच्छाओं को पूर्ण करना ही उसका ध्येय हो। पर यदि आप बुरा न मानें तो, हमारे यहाँ की गवर्नमेण्ट गुप्त चाल चलने वाले दरबारियों का एक गिरोह मात्र है। उसे यदि लुटेरों का दल कहा जाय तो भी कुछ अत्युक्ति नहीं है।

"बादशाह के निजी विचार कैसे भी हों, सरकारी अधिकारियों के कामों से जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति और उसके हित का कोई आभास नहीं मिलता।

"रूस की गवर्नमेण्ट बहुत दिनों से लोगों की व्यक्तिगत स्वाधीनता का अपहरण कर चुकी है और उनको सरदारों या ज़मीन्दारों का ग़ुलाम बना चुकी है। अब वह सट्टेबाज़ों और ग़रीबों को लूटने वाले चौधरों की भी सृष्टि कर रही है। जितने सुधार किए जाते हैं, उनके फल-स्वरूप जनता की दशा पहले की अपेक्षा भी ख़राब होती जाती है। रूस की गवर्नमेण्ट ने साधारण जनता को ऐसा दरिद्र और दुर्दशाग्रस्त बना दिया है कि वह किसी सार्वजनिक हित के लिए भी स्वतन्त्रतापूर्वक उद्योग नहीं कर सकती और न ख़ास अपने घरों में होने वाले कलङ्कपूर्ण धार्मिक अन्यायों से अपनी रक्षा कर सकती है।

"केवल ख़ून चूसने वाले सरकारी अधिकारी, जिनको अपने पाप-कर्मों के लिए कोई सज़ा नहीं मिलती, गवर्नमेण्ट और क़ानून के द्वारा सुरक्षित रहते हैं और सुख भोगते हैं।

"इसके विपरीत एक ईमानदार आदमी को, जो सार्वजनिक हित के लिए परिश्रम करता है, क्या-क्या

यन्त्रणाएँ नहीं भोगनी पड़तीं ! बादशाह सलामत, आप स्वयम् अच्छी तरह जानते हैं कि जिन लोगों पर अत्याचार किए जाते हैं या जिनको देश-निकाला दिया जाता है, वे सब क्रान्तिकारी नहीं होते।

"यह किस तरह की गवर्नमेण्ट है, जो इस प्रकार देश में 'शान्ति' क़ायम रखती है ? क्या यह वास्तव में लुटेरों का दल नहीं है ?

"यही कारण है कि रूस में जनता के ऊपर गवर्नमेण्ट का कोई नैतिक प्रभाव नहीं है; यही कारण है कि रूस में इतने अधिक क्रान्तिकारी पाए जाते हैं; यही कारण है कि ज़ार के ख़ून जैसी घटनाओं को देख कर भी लोग केवल सहानुभूति प्रकट करके चुप हो जाते हैं। बादशाह सलामत, आप ख़ुशामदियों की बातों से भुलावे में न पड़ें। भूतपूर्व ज़ार की हत्या को लोगों ने बहुत अधिक पसन्द किया है।

"इस दशा से छूटने के केवल दो ही मार्ग हैं। या तो राज्य-क्रान्ति होगी, जो कि लोगों को फाँसी पर चढ़ाने से स्थगित नहीं की जा सकती है, न रोकी जा सकती है। अथवा बिना विलम्ब देश की सर्वोच्च सत्ता जन-साधारण के सुपुर्द कर दी जाय, जिससे वे शासन-सञ्चालन में भाग ले सकें।

"देश-हित की दृष्टि से और ज्ञान-शक्ति तथा कार्य-शक्ति के निरर्थक क्षय और उन भयङ्कर घटनाओं को रोकने के लिए, जो कि राज्य-क्रान्ति के साथ सदैव हुआ करती हैं, कार्यकारिणी कमेटी श्रीमान के सम्मुख यह वक्तव्य पेश करती है और आपको सम्मति देती है कि आप दूसरे मार्ग का अवलम्बन करें। आप यह विश्वास रक्खें कि जिस दिन से सचमुच सर्वोच्च-सत्ता (ज़ारशाही) की निरङ्कुशता का अन्त हो जायगा और वह सचमुच यह दिखला देगी कि उसने अब केवल जनता की इच्छा और आन्तरिक कामना के अनुसार कार्य करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है, उसी दिन से आपको अपनी ख़ुफ़िया पुलिस से छुटकारा मिल जायगा, जो कि गवर्नमेण्ट की बदनामी का कारण है; आप अपने शरीर-रक्षकों को बारकों में वापस भेज सकेंगे; और फाँसी के स्तम्भों को जला सकेंगे, जिनसे जनता का नैतिक पतन होता है।

"तब यह कार्यकारिणी कमेटी भी बिना विलम्ब अपनी कार्रवाइयों को बन्द कर देगी और उसने जिन शक्ति और साधनों का संग्रह किया है उनको वह आज़ाद कर देगी जिससे वे सभ्यता और संस्कृति का प्रचार और जनता के कल्याण के अन्य उपयोगी कार्य कर सकें।

"तब एक शान्तिमय विचार-संग्राम का श्रीगणेश होगा, और रक्त-रञ्जित आन्दोलन का अन्त हो जायगा, जो कि हमको आपके सेवकों की अपेक्षा अधिक नापसन्द है और जिसको हमने केवल आवश्यकता से विवश होकर ग्रहण किया है।

"हम पुरानी घटनाओं से उत्पन्न पक्षपात और अविश्वास को त्याग कर, श्रीमान के सामने यह वक्तव्य
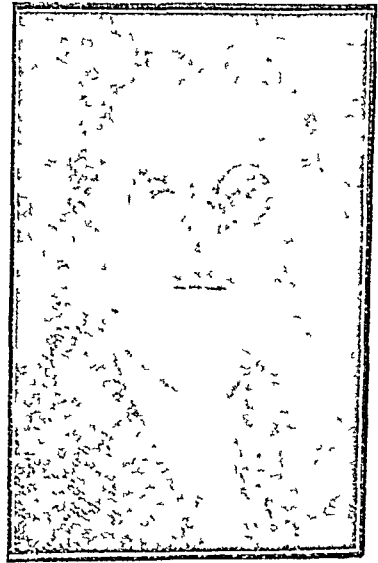
श्री० के० एफ़० नरीमैन
(बम्बई के प्रचण्ड उत्साही और निर्भीक राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता—जेल में)

पेश करते हैं। हम इस बात को भुला देंगे कि आप एक ऐसी सत्ता के प्रतिनिधि हैं, जिसने लोगों को छला है और बहुत अधिक हानि पहुँचाई है। हम आपको एक नागरिक भाई और ईमानदार आदमी की तरह मान कर आपके सामने यह वक्तव्य पेश करते हैं।

"हम आशा करते हैं कि व्यक्तिगत रोष का भाव आपके कर्तव्य-भाव अथवा सत्य की जिज्ञासा को दबा नहीं सकेगा।

"हम भी रोष कर सकते हैं। आपको अपने पिता से वञ्चित होना पड़ा है। पर हमको न केवल अपने पिताओं,

वरन् भाइयों, पत्नियों, बेटों और आत्मीय मित्रों से भी वञ्चित होना पड़ा है। तो भी हम समस्त व्यक्तिगत द्वेष को भूल जाने को तैयार हैं, अगर रूस के कल्याण के लिए वैसा करने की आवश्यकता हो, और हम आपसे भी इसी प्रकार की आशा रखते हैं।

"हम आपके सामने किसी तरह की शर्तें पेश करना नहीं चाहते। क्रान्तिकारी आन्दोलन का अन्त होकर उसके स्थान में शान्तिमय विकास का आरम्भ होने के लिए जिन शर्तों की आवश्यकता है, वे हमारे द्वारा निश्चित नहीं की गई हैं, वरन् घटनाओं ने उनको जन्म दिया है। हम केवल यहाँ पर उनको लिपिबद्ध कर देते हैं। हमारी सम्मति में इन शर्तों का आधार इन दो मुख्य बातों पर है।

"सब से प्रथम समस्त राजनीतिक क़ैदियों को राजाज्ञा द्वारा छोड़ दिया जाय। क्योंकि इन लोगों ने कोई अपराध नहीं किया है, केवल नागरिक की हैसियत से अपने कर्तव्य का पालन किया है।

"दूसरी बात यह है कि समस्त जनता के प्रतिनिधियों की एक सभा की जाय और उसमें निश्चय किया जाय कि किस प्रकार का सर्वश्रेष्ठ सामाजिक और राजनीतिक सङ्गठन जनता की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुकूल हो सकता है।

"पर साथ ही हम यह बतला देना भी आवश्यक समझते हैं कि जनता के प्रतिनिधियों द्वारा शासन-सत्ता का नियमन उसी दशा में हो सकता है जब कि चुनाव बिना किसी प्रकार के दबाव के हो। इसलिए चुनाव के पूर्व नीचे लिखी शर्तों का पूरा किया जाना आवश्यक है:—

(१) शासन-सभा के सदस्यों का चुनाव बिना किसी प्रकार के भेद-भाव के जनता की समस्त श्रेणियों द्वारा और नागरिकों की संख्या के अनुपात के अनुसार हो।

(२) शासन-सभा के उम्मेदवारों और वोटरों के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शर्त न लगाई जाय।

(३) चुनाव और चुनाव के लिए आन्दोलन पूर्णतया स्वाधीनतापूर्वक हो और इसलिए सरकार शासन-सभा के चुनाव से पहले स्थायी रूप से ये आज्ञाएँ दे:—

(क) अख़बारों की पूर्ण स्वाधीनता।

(ख) भाषणों की पूर्ण स्वाधीनता।

(ग) सार्वजनिक सभाओं की पूर्ण स्वाधीनता।

(घ) चुनाव सम्बन्धी वक्तव्यों की पूर्ण स्वाधीनता।

"केवल इन्हीं उपायों द्वारा रूस शान्तिमय और नियमानुकूल उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। हम अपने देश और समस्त संसार के सामने प्रतिज्ञा करते हैं कि ऊपर लिखी शर्तों के अनुसार जिस राष्ट्रीय शासन-सभा का सङ्गठन होगा, उसके सामने हमारी पार्टी बिना किसी प्रकार की शर्त के आत्म-समर्पण कर देगी और राष्ट्रीय शासन-सभा जिस प्रकार के शासन का निर्णय कर देगी उसका ज़रा भी विरोध न करेगी।

"बादशाह सलामत, अब आप जो उचित समझें, निर्णय कर सकते हैं। हम अपने हृदय में यही आशा करते हैं कि आपका न्याय-भाव और आपका विवेक आपको वही निर्णय करने की सम्मति देंगे जो कि रूस के कल्याण के, आपके बड़प्पन के और देश के प्रति आपके कर्तव्य के अनुकूल हो।

—कार्यकारिणी कमेटी
१२ मार्च, १८८१"

यही क्रान्तिकारियों की माँग थी, जो उन्होंने एक बार नहीं, अनेक बार गवर्नमेण्ट के सामने पेश की इसमें उन्होंने अपने लिए कोई ख़ास अधिकार नहीं माँगे थे, वरन् उनका एक मात्र कथन यह था कि जनता का शासन जनता की सम्मति द्वारा हो। आजकल संसार का कोई सभ्य मनुष्य अथवा सभ्य गवर्नमेण्ट इसे अनुचित अथवा अवैध नहीं बतला सकती। पर ज़ार की गवर्नमेण्ट ने इसका क्या जवाब दिया? अनेकों लोगों को फाँसी; हज़ारों को कालापानी, अख़बारों और समस्त उदार विचारों का दमन। सत्ता के मद में चूर होकर उसने कार्यकारिणी कमेटी के सदुपदेशों को पागलों का बकवाद समझा, और ख़याल किया कि वह अपनी असीम शक्ति के द्वारा विद्रोही दल का मूलोच्छेद कर देगी। उसे इस कार्य में बहुत कुछ सफलता भी हुई और उसने अनगिनती देश-भक्तों को अपने ज़बर्दस्त पञ्जे से पीस डाला, पर उनके स्थान में नए और अधिक भीषण लोगों का जन्म होता गया। अन्त में कार्यकारिणी कमेटी की भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई और ३६ वर्ष बाद ज़ारशाही शासन का ही नहीं, वरन् ज़ार और उसके वंश के बच्चे-बच्चे का नाम-निशान मिट गया।

ब्राह्मणत्व का नाश

[प्रोफ़ेसर चतुरसेन जी शास्त्री]

मेरी यह खुली राय है कि जब तक ब्राह्मणत्व का जड़-मूल से नाश न हो जायगा, तब तक हिन्दू-राष्ट्र का सङ्गठन होना किसी भी भाँति सम्भव नहीं। ये शब्द बहुत कठोर हैं, परन्तु आज २१ वर्ष से मैं इन्हें छाती में छिपाए बैठा हूँ। ये शब्द मैं दुनिया—ख़ासकर हिन्दू-समाज—के सम्मुख रक्खूँ या नहीं—इसकी विवेचना मैंने बड़ी ही बेचैनी से गत १० वर्षों में की है। मेरे ये शब्द नए, भाव कठोर और कानों को असह्य हो सकते हैं—परन्तु ऐ हिन्दू जाति के बुद्धिमान भाइयो! ज़रा इस बात पर तो विचार करो, कि जो जाति की जाति यह दावा करे, कि हम चाहे जैसे भी मूर्ख, पाखण्डी, धूर्त, नीच, शराबी, व्यभिचारी, लम्पट, ख़ूनी, कलङ्की, चोर, लुटेरे, क़साई और विश्वासघाती एवं ग़ुलाम-चाकर हों; किन्तु फिर भी संसार के मनुष्य भर में सब से श्रेष्ठ और सभी के वन्दनीय हैं; यह श्रेष्ठता हमारा जन्म-अधिकार है; और हमसे भिन्न अन्य कोई भी मनुष्य, चाहे जैसा श्रेष्ठ, विद्वान, सदाचारी, धर्मात्मा, त्यागी, तपस्वी हो—वह हमसे निकृष्ट ही है—उसके प्रति उपरोक्त घृणा न प्रकट की जाय तो किया क्या जाय?

किसने हिन्दू जाति को दिमाग़ी ग़ुलामी में फँसा कर इस लोक और परलोक के स्वार्थों की स्वतन्त्र चिन्तना के अधिकार छीन लिए हैं? इसी ब्राह्मणत्व ने! किसने असंख्य अन्ध-विश्वासों और ढकोसलों की सृष्टि करके हिन्दू जाति को प्रपञ्ची बनाया है? इसी ब्राह्मणत्व ने! किसने स्वर्गों-नरकों के झूठे मनोरञ्जक और भयानक बच्चों के से क़िस्से बना कर पुनर्जन्म के दार्शनिक सिद्धान्तों पर दूर तक विचार करने वाली आज दिन हमारी सन्तान को कुसंस्कारी और वहमी बना दिया? इसी ब्राह्मणत्व ने! किसने हिन्दू समाज को ऊँच-नीच, छुआछूत का भेद सिखा कर संसार की महाजातियों के मन में विरक्ति उत्पन्न की? ब्राह्मणत्व ने! किसने यन्त्र-तन्त्र, गण्डे-तावीज़, ढोंग, पाखण्ड, झूठ और अन्ध-विश्वासों की भावना को हिन्दू-सन्तान की नस-नस में भर दिया? ब्राह्मणत्व ने! किसने दान और यज्ञों के पाखण्ड और माहात्म्यों के थोथे आडम्बर में बड़े-बड़े चक्रवर्ती राजाओं से व्यर्थ दिग्विजय और अश्व-रक्षा में रक्तपात और लूट-पाट करा कर सर्वस्व दक्षिणा में दे देने की बेवक़ूफ़ी सिखाई? ब्राह्मणत्व ने! किसने आज भी हिन्दू-जाति को कस कर पकड़ रक्खा है और नहीं उभरने देता? ब्राह्मणत्व ने! आज मैं ऐसे असंख्य विद्वान, सदाचारी, देश-सेवक और योग्य पुरुषों को बता सकता हूँ कि जिनकी बारह आना योग्यता इसलिए निकम्मी हो गई है, कि वे दुर्भाग्य से इस ब्राह्मणत्व के बोझ से दबे हुए हैं। ब्राह्मणत्व के बनाए हुए नियम, ग्रन्थ, विश्वास हिन्दू-समाज को पद-पद पर कायर, मूर्ख और मग़रूर बनाए हुए हैं!!

मध्यकाल में ब्राह्मणत्व का राजसत्ता पर असाध्य अधिकार था। और जन-समाज उनके विधान के आगे सिर न उठा सकता था। मनु आदि स्मृतियों में, जो वास्तव में तत्कालीन शासन-विधान की पुस्तकें थीं, ब्राह्मणत्व के प्रति अत्यन्त घृणास्पद पक्षपात प्रदर्शित किया है। जिस अपराध पर अन्य जाति के किसी भी पुरुष को प्राण-दण्ड देना चाहिए, उस दण्ड पर ब्राह्मण को केवल कुछ रुपए जुर्माने कर देने चाहिए! मनु के पक्षपातपूर्ण वर्णन तो देखिए—

"पृथ्वी पर ब्राह्मण का जन्म लेना ही श्रेष्ठ होता है। वह सब प्राणियों का स्वामी और धर्म का रक्षक है।" अ० १; श्लोक ९९।

"जगत में जो कुछ है—वह सब ब्राह्मण का है, वह श्रेष्ठ होने के कारण सबको ग्रहण करने का अधिकारी है।" अ० १; श्लोक १००।

"ब्राह्मण चाहे दान में प्राप्त किया अन्न खाय और वस्त्र पहने—यह वस्तुएँ उसकी अपनी ही हैं। और अन्य पुरुष चाहे अपना ही अन्न खाय या वस्त्र पहने, वे ब्राह्मणों का दिया खाते हैं।" अ० १; श्लोक १०१।

"विद्वान हो या मूर्ख, ब्राह्मण तो महान देवता ही है, अग्नि चाहे यज्ञ की हो या साधारण—वह देवता तो है ही।" अ० ९: श्लोक ३१७।

"जुर्माने में प्राप्त किया तमाम राज-ख़ज़ाना ब्राह्मण को और राज्य, पुत्र को देकर राजा युद्ध में प्राण त्यागे।" अ० ९: श्लोक ३२३।

"प्राणान्तक दण्ड के स्थान में ब्राह्मण का सिर मूँड़

रावबहादुर रामचन्द्रराव
(गोलमेज़ के सदस्य)
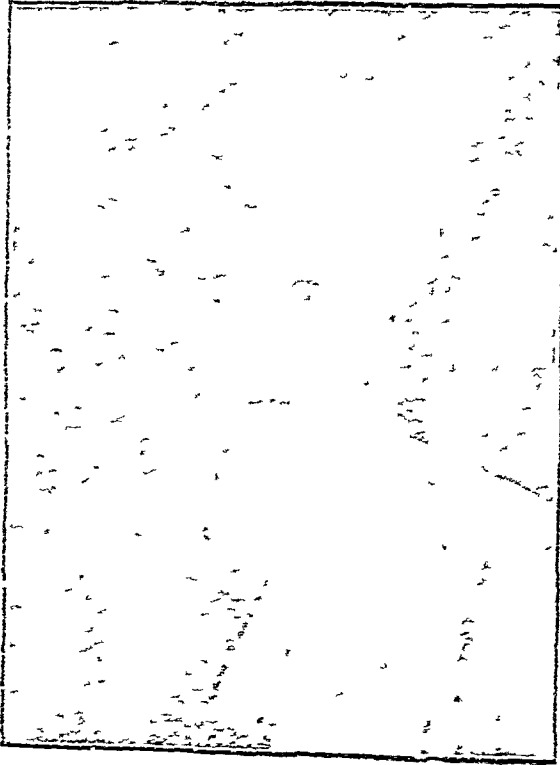
देना ही काफ़ी है। पर औरों को प्राण-दण्ड ही देना चाहिए।" अ० ८: श्लोक ३७९।

"ब्राह्मण चाहे सब पापों में स्थित हो, फिर भी उसका वध करना उचित नहीं। उसे सब धन सहित और शरीर-दण्ड-रहित राज्य से निकाल दे।" अ० ८: श्लोक ३८०।

क्या कोई भी बुद्धिमान इस प्रकार के पक्षपातों को न्याय का घातक मानने से इनकार कर सकता है? इतिहास में इस बात के रोमाञ्चकारी प्रमाण हैं कि किस प्रकार ब्राह्मणत्व की सत्ता की ओट में अत्याचार और अन्यायाचरण किए गए हैं। राजा हरिश्चन्द्र को आना और उसे स्त्री-पुत्रों तक को बेचने और स्वयं भङ्गी की दासता तक करने को विवश करना—फिर भी कठोरता का त्याग न करना, प्रसिद्ध घटना है! आज लक्षावधि प्राणी हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा और दान-धर्म की प्रशंसा में आँसू बहाते और धन्य-धन्य करते हैं, परन्तु कोई भी उस निष्ठुर, स्वार्थी भिक्षुक के प्रति तिरस्कार के वाक्य नहीं कहता। कवि ने उस निष्ठुरता को इन्द्र आदि की कल्पना से मिला कर धर्म-परीक्षा का स्वरूप दिया है! परन्तु आज हिन्दू घरों में ऐसे अन्ध-विश्वासी बच्चे नहीं पैदा होते, जो इन्द्र, देवता, अप्सरा और मृतक बालक के जी जाने, एवं नगर सहित हरिश्चन्द्र को स्वर्ग-लोक जाने की कोरी कल्पना को सत्य घटना से पृथक् न कर सकें। ये कल्पनाएँ यदि निकाल दी जायँ तो क्या सिर्फ़ इतनी ही रह जाती है कि विश्वामित्र ने राजा से दान माँगा, राजा ने स्वभावानुसार यथेच्छ माँगने को कहा। विश्वामित्र ने समस्त राज्य माँगा, और वह दे दिया गया। परन्तु दान लेकर कोई ब्राह्मण अहसानमन्द नहीं होता। वह तो मानो ब्राह्मण पर भार है, वह उस भार उठाने की मज़दूरी दक्षिणा चाहता है। मानो ब्राह्मण को केवल दक्षिणा ही मिलती है और उसीके लोभ से वह दान का भार उठाता है। परन्तु दान लेने में ब्राह्मण का कुछ लाभ नहीं है—दाता का ही परलोक बनता है। इसलिए विश्वामित्र दक्षिणा माँगते हैं, और राजा को जो ज़िल्लत उठानी पड़ती है—वह प्रकट ही है!

इस कथानक के दूसरे पहलू पर क्या हम विचार नहीं कर सकते? राजा ने जो कष्ट भोगे और ज़िल्लत उठाई—वह तो प्रकट है। पर बिना ऐसे पवित्र राजा के प्रजा की क्या दशा हुई होगी—इस पर तो विचारिए। परन्तु भिक्षुक के इस असाध्य अधिकार को तो देखिए कि जिस धैर्य से उसके अत्याचार हरिश्चन्द्र ने सहे, उसी धैर्य से आज तक लाखों वर्ष से हिन्दू संस्कृति ने सहे और उसके विरुद्ध चूँ भी न की। कदाचित इस कर्म के लिए इस

धृष्ट भिक्षुक की धर्षणा करने वाला मैं ही पहला व्यक्ति हूँगा, जिस पर यह लेख पढ़ते-पढ़ते लाखों आँखें क्रोध से लाल हो जावेंगी !

पर मुझे विचार तो यह करना है कि क्या इतनी नम्रता से राज्य-दान कर देना हरिश्चन्द्र को उचित था और उसे क्या इसका अधिकार था ? राज्य तो राजा की सम्पत्ति नहीं, वह तो राष्ट्र की सम्पत्ति है ; राजा उसका रक्षक और व्यवस्थापक है। वह प्रजा से धन लेकर कोष में सञ्चित करता है—इसलिए कि उसे प्रजा के सर्वहित-कारी कार्यों में ख़र्च करे, न कि इसलिए कि उसे मूर्ख भावुक की भाँति भिखारियों को दे दे। फिर वे भिखारी चाहे विश्वामित्र जैसे ऋषि ही क्यों न हों। हमें पुराणों के पढ़ने से पता लगता है कि अन्त में वह समय आया था कि बुद्धिमानों ने बलपूर्वक इस बात का निर्णय किया कि राजकोष राजा की सम्पत्ति नहीं है और उसे दान कर देने का या लुटा देने का राजा को कोई अधिकार नहीं है। मैं हैरान तो इस बात पर हूँ कि जो राजा इस प्रकार दान देने में शेख़ी समझते थे और जिनके द्वार पर ब्राह्मणों की भीड़ बनी रहती थी, वे राज्य की व्यवस्था सुधारने में क्या व्यय करते थे। और आज जब हम देखते हैं कि हमारी प्रबल गवर्नमेण्ट से लेकर, साधारण रियासत के अधिकारी तक, सदैव रुपए की तङ्गी से यथेष्ट सड़क, नहर, प्रबन्ध आदि की व्यवस्था नहीं कर सकते, तो वे कहाँ से इतना धन प्राप्त करते होंगे कि इन निठल्लों को भी मुँह-माँगा दें और राज्य-प्रबन्ध भी करें ?

पर सब से अधिक सोचने की बात तो यह है कि राजा हरिश्चन्द्र और उन जैसे अनेकों धर्मात्मा क्षत्रियों के मन में इस प्रकार दान देने की भावना ही कैसे पैदा हुई ? हमारे पास इसका एक ही उत्तर है कि ब्राह्मणत्व ने उनके मस्तिष्क को ग़ुलाम बना दिया और वे इसके विरुद्ध सोच ही नहीं सकते थे कि यह एक परम प्रशंस-नीय और राजाओं को शोभा देने योग्य कार्य है।

अब मैं ब्राह्मणत्व की सर्व-श्रेष्ठता पर भी ज़रा विचार करना चाहता हूँ। जन्म के अधिकारों की बात ज़रा पीछे छोड़ दी जाय। गुण-कर्मों पर मैं विचार किया चाहता हूँ। आमतौर से यह कहा जाता है कि ब्राह्मण का अर्थ है—"ब्रह्म का जानने वाला।" मेरा कथन यह है कि उनका यह अर्थ सर्वथा भ्रमपूर्ण है। ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्मज्ञ कहलाता है, ब्राह्मण नहीं ! उपनिषदों और अन्य प्राचीन ग्रन्थों को देखने से हमें यह पूर्ण रीति से विश्वास हो गया है कि ब्राह्मण प्राचीन काल में ब्रह्म-विद्या से अनभिज्ञ थे। ब्रह्म-विद्या के जानकार तो क्षत्रिय लोग थे और वे यत्नपूर्वक ब्राह्मणों से यह विद्या छिपाया करते थे, जैसा कि उपनिषदों से प्रकट है। यहाँ हम इस विचार की पुष्टि में छान्दोग्य उपनिषद का प्रमाण देते हैं।

महाराज दरभङ्गा

(गोलमेज़ के सदस्य)

"श्वेतकेतु आरुणेय, पाञ्चालों की एक सभा में गया। वहाँ प्रवाहन जैवलि राजा ने उससे पाँच प्रश्न किए, पर वह एक का भी उत्तर नहीं दे सका—क्योंकि यह ब्रह्म-विद्या सम्बन्धी प्रश्न थे। तब वह लज्जित होकर अपने पिता के पास आया और बोला कि उस राजन्य ने मुझसे पाँच प्रश्न किए, पर मैं एक का भी उत्तर

न दे सका! उसका पिता गौतम बोला—"हे पुत्र! इस विद्या को तो मैं भी नहीं जानता।" तब वह पुत्र की सम्मति से समिधा हाथ में लेकर शिष्य की भाँति राजा के पास गया और कहा कि आप मुझे ब्रह्म-ज्ञान सिखाइए। तब राजा ने उसे ज्ञान दिया, और कहा—"हे गौतम, यह ज्ञान तुम्हारे पहिले किसी दूसरे ब्राह्मण को प्राप्त नहीं था—ब्राह्मणों में सब से प्रथम मैं तुम्हीं को यह विद्या सिखाता हूँ। क्योंकि यह विद्या क्षत्रिय जाति की ही है।" (छान्दोग्य उपनिषद ५।६)

मेरे अभिप्राय को प्रगट करने के लिए यह अकेला ही उदाहरण यहाँ यथेष्ट है। अब मनुस्मृति के वर्णित ब्राह्मणों के लक्षण सुनिए :—

वेद पढ़ना-पढ़ाना; दान लेना और देना; यज्ञ करना और कराना—ये ब्राह्मण के लक्षण हैं। अब ज़रा ग़ौर करके देखा जाय कि इनमें मनुष्य जाति में सर्वश्रेष्ठ होने योग्य कौन सा गुण है। लज्जा की बात तो यह है कि दान लेना भी गुणों में समझा गया है। जबकि कोई भी आत्माभिमानी किसी का दान नहीं स्वीकार कर सकता। परन्तु अधिक से अधिक वेद पढ़ना ऐसा गुण हो सकता है, जो ब्राह्मणत्व की प्रतिष्ठा बढ़ावे। परन्तु इस वेद पढ़ने का मूल सिर्फ़ उन्हें कण्ठ याद रखना और उनके द्वारा भिन्न-भिन्न आडम्बरों के द्वारा यज्ञ रचना था—उनका अर्थ समझना नहीं।

गीता में जो ब्राह्मणत्व के लक्षण लिखे हैं, वे मनु की अपेक्षा कहीं उच्च हैं।

"शम, दम, तप, पवित्रता, क्षमा, सरलता, शास्त्र-ज्ञान, अनुभव-ज्ञान और आस्तिकता—ये ब्राह्मण के कर्म हैं।" गीता अ० १८; श्लोक ४२।

गीता-वर्णित गुणों से यह पता लगता है कि गीता का उद्गाता ब्राह्मणत्व को सुसंस्कृत करना चाहता था। यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि वह ब्राह्मणत्व के ये स्वाभाविक कर्म बताता है।

अब क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि उत्कृष्ट मानवीय गुण हरिश्चन्द्र राजा में नहीं थे। यदि ब्राह्मणत्व श्रेष्ठ था तो क्यों राजा हरिश्चन्द्र को वह नहीं प्रदान किया गया? क्या युधिष्ठिर, विदुर, श्रीकृष्ण, राम और भर्तृहरि आदि-आदि व्यक्ति शम, दम, त्याग, वैराग्य, ज्ञान की चरम सीमा में पहुँचे हुए पुरुष न थे? परन्तु खेद की बात तो यह है कि वे ब्राह्मणत्व की अपेक्षा श्रेष्ठ स्वीकार ही नहीं किए गए।

मैं अभी आपको समझाऊँगा कि ब्राह्मणत्व की श्रेष्ठता में भेद क्या है। परन्तु मैं अब एक और उदाहरण आपको दूँगा। वह शतपथ ब्राह्मण का है। सुनिए :—

विदेह जनक की भेंट कुछ ऐसे ब्राह्मणों से हुई, जो अभी आए थे। ये श्वेतकेतु आरुणेय, सोमशुष्म सत्ययज्ञि और याज्ञवल्क्य थे। उसने उनसे पूछा—क्या तुम अग्निहोत्र करना जानते हो? तीनों ब्राह्मणों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दिया। पर ठीक उत्तर किसी का भी न था। याज्ञवल्क्य का उत्तर यथार्थ बात के बहुत निकट था। पर पूर्णतया ठीक न था। जनक ने उनसे ऐसा ही कह दिया और रथ पर चढ़ कर चल दिया।

ब्राह्मणों ने कहा—"इस राजन्य ने हमारा अपमान किया है।" याज्ञवल्क्य रथ पर चढ़ कर राजा के पीछे गया और उससे शङ्का निवारण की। (शतपथ ११।४।५) तब से जनक ब्राह्मण हो गया। (शतपथ ब्रा० ११।६।२१)

अब ज़रा इस बात पर तो ग़ौर कीजिए कि हरिश्चन्द्र जैसा धीर, त्यागी, उदार, सत्यव्रती और इन्द्रिय-विजयी चरम कोटि के गुण दिखा कर भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त न हो सका, किन्तु जनक सिर्फ़ अग्निहोत्र की विधियाँ बता कर ब्राह्मण हो गया। बस ब्राह्मणत्व की असलियत यहीं खुल जाती है।

पुराणों में हमें कुछ ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं, जिनसे पता लगता है कि कुछ लोगों ने ब्राह्मण बनने की चेष्टा की और उनका बड़ा भारी विरोध किया गया। परन्तु इस विरोध का कारण मैं ठीक-ठीक समझ गया हूँ—सिर्फ़ दक्षिणा-प्राप्ति की स्पर्धा थी। क्योंकि दान का माहात्म्य ही वास्तव में ब्राह्मणत्व का उत्पादक है। अस्तु।

अब विचारने की बात तो यह है कि आज ब्राह्मणत्व की हमें आवश्यकता है या नहीं—अर्थात् वह हिन्दू-समाज के लिए कुछ उपयोगी भी है या नहीं? दूसरे उसमें संशोधन किया जाय या उसका नाश किया जाय?

मैं प्रथम प्रश्न के उत्तर में यह दृढ़तापूर्वक कहूँगा कि इस समय और भविष्य में भी हिन्दू-समाज को

ब्राह्मणत्व की बिलकुल ज़रूरत नहीं है। इस समय पढ़ाने-लिखाने आदि गुरु का कार्य ब्राह्मण ही करे, इसका कोई प्रतिबन्ध नहीं है। चाहे भी जिस जाति का हिन्दू बच्चा, चाहे भी जिस जाति का शिष्य बन जाता है, यह स्कूल-कॉलेज में हम देखते ही हैं। अलबत्ता संस्कृत शिक्षा-पद्धति में अभी ब्राह्मणत्व की बू है! एक तो संस्कृत पढ़ने और पढ़ाने वाले दोनों ही प्रायः ब्राह्मण होते हैं, परन्तु ब्राह्मण गुरु अब्राह्मण छात्रों से और ब्राह्मण शिष्य अब्राह्मण गुरु से ग्लानि करते हैं—जो कि इस भाग्य-हीन जाति के उस भूठे गर्व का चिह्न है, जिसने उसे आज निकम्मी बना दिया है; फिर भी संस्कृत शिक्षा की परिपाटी तेज़ी से आधुनिक हो रही है और यह कट्टरता मिट जायगी। मैं यह भी आशा करता हूँ कि संस्कृत का सारा महत्त्व अति शीघ्र हिन्दी ले लेगी, और संस्कृत पढ़ने वाले छात्र आगामी १० वर्षों में बहुत कम रह जावेंगे। परन्तु ब्राह्मणों की सब से अधिक और अनिवार्य आवश्यकता तो धर्म-कृत्यों के लिए है। बिना ब्राह्मण के कोई भी संस्कार—शादी, ग़मी, गृह-प्रवेश, यात्रा आदि नहीं किए जाते। याजक, ज्योतिषी—और न जाने किस-किस रूप में ब्राह्मणत्व की आवश्यकता बनी ही रहती है। ब्राह्मण किसी भी घर में एक घण्टा किसी भी ग्रन्थ का जप कर जायगा और चवन्नी लेकर उसका महातम गृहपति को बेच जायगा। वह यज्ञादि कर जायगा और दक्षिणा ले जायगा! संस्कार करा जायगा और दक्षिणा ले जायगा। इस प्रकार धर्म-कृत्यों का फल बेचना कितना हास्यास्पद है? और किराए के व्यक्ति से गृह-कृत्य कराना भी कम से कम मैं तो नहीं पसन्द करता।

मैं अत्यन्त प्राचीन काल के आर्यों के जीवन का उदाहरण देकर बता सकता हूँ कि तब प्रत्येक गृह का प्रधान गृहपति ही उसका पुरोहित होता था और वही सबके संस्कार कराता था। अब भी यही किया जा सकता है। पुरोहित वह है, जो सब से प्रथम हित की बात सोचे। गृहपति को छोड़ और कौन ऐसा है? धर्म-विक्रेता?? छीः-छीः! आर्य-समाज ने इस बन्धन को डरते-डरते तोड़ा है—पर दिमाग़ी ग़ुलामी तो उसकी भी बपौती है, वहाँ जन्म के ग़ैर-ब्राह्मण व्यक्ति, जो साधारण संस्कार-विधि बाँच सकें और ज़रा ज़बाँदराज़ हों, पण्डित जी कहलावेंगे और दक्षिणा भी लेंगे—यह मैंने देखा है। यह तो वही बात हुई। प्रथम उनका ब्राह्मणत्व पैदा कर दिया गया! मैं ब्राह्मणों का विरोधी नहीं, ब्राह्मणत्व का हूँ, यह याद रखने की बात है। मैं तो यह चाहता हूँ कि प्रत्येक हिन्दू को अपने धर्म-ग्रन्थ, संस्कारों की रीतियाँ और मङ्गल कृत्य स्वयं जानने चाहिए। वे स्कूलों में भी अनिवार्य रीति से सिखाए जायँ। उनमें एक उत्सव की
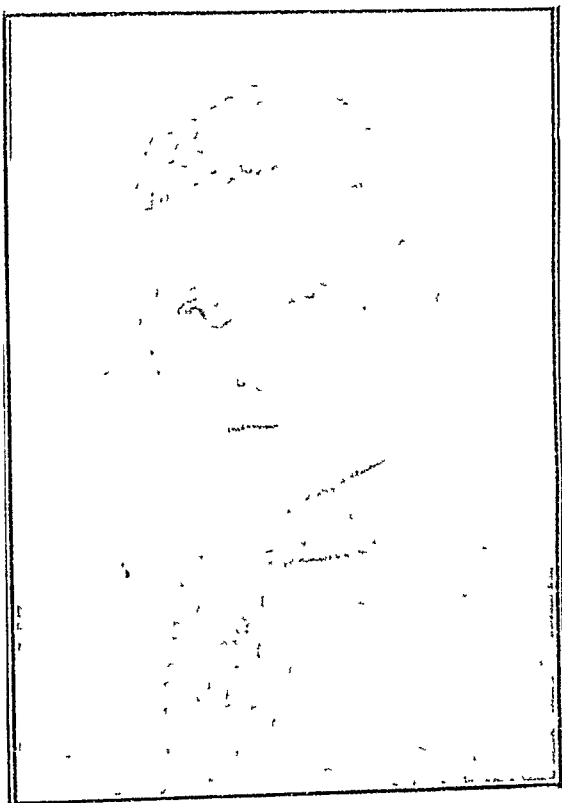
डॉ० शफ़ात अहमद ख़ाँ

(गोलमेज के सदस्य)

गम्भीरता और विनोद तथा आनन्द की भावना हो। जब कभी आवश्यकता हो, संस्कार आदि में जो उपस्थित व्यक्तियों में सर्व-श्रेष्ठ पुरुष हो, पुरोहित के स्थान पर बैठा दिया जाय, और सिर्फ़ शिष्टाचार और सम्मान किया जाय। दान-दक्षिणा की परिपाटी नष्ट कर दी जाय। ऐसी दशा में और किसी काम के लिए ब्राह्मणत्व की आवश्यकता नहीं रहेगी। ब्राह्मणत्व अब ऐसी वस्तु ही

नहीं रही, जिसके बिना समाज का काम ही न चल सके। वह तो वक़्त ही अब लौट कर नहीं आ सकता, जब ब्राह्मणों के अधीन राजाओं को महाराज और महाराजाओं को सम्राट बना देने की शक्ति थी! यदि इस समय ब्राह्मणत्व नष्ट कर दिया जाय तो छुआछूत, ऊँच और नीच, अन्ध-विश्वास और बाह्याडम्बर बिलकुल मिट जायँ।

ब्राह्मण यदि अपने को सर्व-श्रेष्ठ समझे और अन्य जातियों को अपने से नीचा समझे तो इसमें अन्य जातियों का क्या लाभ है? फिर वे भी अपने में ले ऊँच-नीच चुनती जायेंगी। यदि ब्राह्मण क्षत्रिय के हाथ का भोजन करने से इनकार कर दे तो क्षत्रिय वैश्य और वैश्य शूद्र के हाथ का खाने से इनकार करेगा, यह परम्परा ही है।

अवश्य ही इन सब बातों के रहते यहाँ सङ्गठन तो नहीं हो सकेगा। और मैंने ख़ूब सोच-विचार कर देख लिया है कि हिन्दू-जाति को उठ कर खड़ी होने के लिए प्रथम बार जो उद्योग करना है—वह ब्राह्मणत्व का नाश कर देना है। इसलिए मैं यही अपनी खुली सम्मति रखता हूँ कि इसे जड़मूल से नष्ट कर दिया जाय। ब्राह्मण मित्रों, सम्बन्धियों और प्रियजनों एवं बुज़ुर्गों से हमारे वही प्रेम और आदर के सम्बन्ध बने रहने चाहिएँ—किन्तु धर्म-कृत्य या वे काम, जिनकी दक्षिणा होती है, उनसे कदापि ब्राह्मण के नाते नहीं कराने चाहिए।

ब्राह्मण-भोजन भी इनमें से एक कर्म है—शादी और ग़मी में प्रथम ब्रह्म-भोज होता है। ऐसा न होकर एक पंक्ति में प्रीति-भोज होना चाहिए। अलबत्ता दान-खाते यदि कुछ अन्न, वस्त्र अथवा धन देना हो तो अनाथालय अस्पताल आदि संस्थाओं को वह दिया जा सकता है!

प्रेम करना है पापाचार!

[प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

प्रेम करना है पापाचार,
प्रेम करना है पाप-विचार!
जगत के दो दिन के ओ अतिथि!
प्रेम करना है पापाचार!!

प्रेम के अन्तराल में छिपी—
वासना की है भीषण ज्वाल!
इसीमें जलते हैं दिन-रात—
प्रेम के बन्दी बन विकराल!!

प्रेम की यह मतवाली चाह,
चाह ही है जग का सन्ताप!
सुखी कहते हैं, इसको पुण्य,
दुखी कहते हैं, इसको पाप!!

दुखी तो है सारा संसार,
यहाँ सुख है केवल अज्ञान!
नाम 'मधु' रख कर भर कर पात्र,
सभी करते हैं मदिरा पान!!

श्याम वारिदमाला अभिराम,
लिए अपना अनुराग उदार!
लिपट जाती है नभ से युक्त,
उसे जतलाने अपना प्यार!!

किन्तु, क्या है उसका परिणाम?
घोप कर उठता है नभ घोर!
तड़प उठता मण्डल उस बार,
काँप जाती वसुधा सब ओर!!

लिए अपने जीवन का कोष,
एक निर्झर झर-झर कर हार!
तरङ्गों के फैला कर हाथ,
सरस सरिता से करता प्यार!!

किन्तु उसका होता है पतन,
पतन ही में उसका जीवान्त!
यही है प्रेम, यही है प्रेम,
यही है मृत्यु, मृत्यु का प्रान्त!!

निशा करती है नियमित प्यार,
चन्द्र से मिल कर सौ-सौ बार!
अन्त में ओस-बिन्दु में हाय,
बिखर जाता है उसका प्यार!!

प्रेम में है इच्छा की जीत,
और जीवन की भीषण हार!
न करना प्रेम, न करना प्रेम,
प्रेम करना है पापाचार!!

[श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

तीसमार खाँ की हजामत

अङ्क १, दृश्य १

दारोगा तीसमार खाँ का मकान

(कल्लू चौकीदार का बड़बड़ाता हुआ आना)

कल्लू—आजौ कौनो ससुर नाऊ आवे के लिए नहीं राजी भवा। दरोगा जी के करम में डाढ़ी मुड़ावे के बदे नाहीं है। हमार कौन दोस? यही लायक हैं। इनके आगे मनई के कहे, कूकुरो नाहीं ठाड़ होत है। चौकीदारी करत हमरो उमिर बीत गइ। न जाने कितने दरोगा आए अउर गए; मुल दादा! इनके अस कौनो नाहीं रहे। अउर तो अउर! इनके बाप मदार-अली यही थाना के मुन्सी रहे तौनो अस आफती नाहीं रहे। वै बेचारे हमका कल्लू भइया छोड़, कब्बो दूसर लबज नाहीं कहिन। जब हुक्का पिए लागें तो सब से पहिले चिलम हमही का सुलगावे के देत रहे। अउर उनके पूत, जेहका हम कनैठी देत रहेन, तौन दरोगा होते हमही का जब सूअर-गदहा कहे लागे, तब हद होइ गवा! ऊ तो कहो हम इनके नस पहिचानित है, अउर बड़े हिकमत से चलित है। जेसे आबरू बच जात है; नहीं तो अब ताईं नोच खात। बस निबरे के मारे जानत हैं—कारे के नगीचे नाहीं जात हैं। नाव तो आपन तीसमार खाँव रक्खे हैं, मुल चोर बदमास के देखत इनका जूड़ी आवत है। अउर तेहा दिखावत हैं केह पर, जेह कर बापो कब्बो कोई पर हाथ न उठाइस हो। एही लोगन के बाँधत-पकड़त हैं। एही से आजकल इनके मन अउरो बहक गवा है। वह लो! ऐंठत आवत हैं, जानो फुरे तीसमार खाँव हैं!! समनवा से डोल जाई, नाहीं एह साइत गमियान होइहैं, देखते हमका हजार गारी देइहैं।

(जाता है)

(दूसरी तरफ़ से दारोगा तीसमार खाँ का परेशान आना)

तीसमार ख़ाँ—इन हरामियों के मारे खाना, पीना, सोना, सब हराम है। रोज़ ही दस-बीस का सर तोड़ता हूँ और दस-बीस को पकड़ कर जेलख़ाने भेजता हूँ, फिर भी जहाँ पीठ मोड़ी तहाँ फिर वही आवाज़ गूँज उठती है (चिल्ला कर)—"शराब पीना हराम है। विदेशी माल लेना हराम है × ×"

मुनुवा—(मकान से बाहर आ कर) अब्बा जान आप हैं? अबे आप बी हलामी हो गए? छचमुच? (ताली बजाता हुआ) वाह! वाह! अब्बा हलामी! अब्बा हलामी!!

तीसमार ख़ाँ—अबे! अबे!! अबे!!! यह क्या?

मुनुवा—लहने दीजिए। मैंने छुन लिया है। आप ची हलामी हैं।

तीसमार ख़ाँ—क्यों बे बदमाश, मैं हरामी ?

मुनुवा—पक्के हलामी। मैंने छुन लिया है। हाँ-हाँ मैंने छुन लिया है। आप अभी कहते थे छलाब पीना हलाम ! बिदेछी माल लेना हलाम !! जो हलाम कहे हलामी। अच्छा हलामी। ([illegible]) वाह ! वाह ! अच्छा हलामी !!!
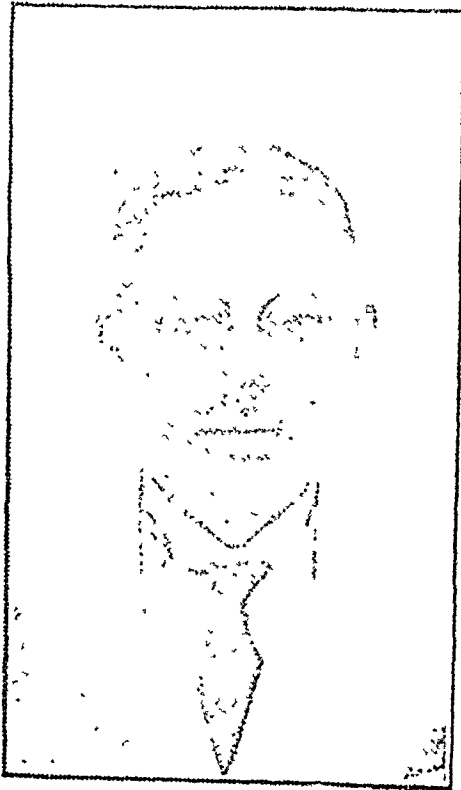
सयद सर सुलतान अहमद

(गोलमेज के सदस्य)

तीसमार ख़ाँ—(मुनुवा का कान पकड़ कर) हरामज़ादा सूअर का बचा, फिर नहीं मानता !

मुनुवा—(रोता हुआ) अले ! अले ! अले जो हलाम-हलाम चिल्लाते हैं, उनको तो आप लोज ही हलामी कहते हैं। मगल आपका कान कोई नहीं ऐंठता। हमाला काहे ऐंठते हैं ? ऊँ ऊँ ऊँ—आप बले खलाब हलामी हैं !

तीसमार ख़ाँ—लाहौल विलाक़ूवत ! इस दुर्बीज का मन्ताक़ में भी जवाब न होगा। अच्छा चुप रह, चुप रह। ले एक पैसा ले और ख़बरदार ऐसी बात फिर मत कहना।

मुनुवा—(पैसा लेकर) ओहो ! तब तो आप बड़े अच्छे हलामी हैं। क्यों अच्छा ?

तीसमार ख़ाँ—(मारने को झपटता हुआ) फिर वही बेहूदापन ?

(मुनुवा भाग जाता है)

तीसमार ख़ाँ—([illegible]) जाने दो। ग़लती की, जो मैंने इसे पैसा दिया। मुझे मारना चाहिए था। ख़ैर ! चौकीदार ! चौकीदार !......साला जवाब तक नहीं देता। यह कमबख़्त पुराना नौकर क्या है, अपने को लाट साहब समझता है। चौकीदार !

कल्लू—([illegible]) आयन हजूर ! तनी पगिया बाँध लेईं।

तीसमार ख़ाँ—उफ़ ! ओ ! इसकी गुस्ताख़ी से नाक में दम है। मैं तो चीख़ रहा हूँ और साले को पगड़ी बाँधने की पड़ी है। चौकीदार !

कल्लू—([illegible]) आयन-आयन हजूर। थोड़े धउर सबुर करीं।

तीसमार ख़ाँ—रह हरामज़ादे। आज तेरी सारी गुस्ताख़ी का मज़ा चखाता हूँ।

([illegible] ... चिलम पीता हुआ भागता आता है और उसके पीछे तीसमार ख़ाँ मारने को झपटता हुआ आता है)

तीसमार ख़ाँ—(पीछा करता हुआ) क्यों बे सूअर के बच्चे ! तू चिलम पीता था या पगड़ी बाँधता था ?

कल्लू—(भागता हुआ) आपसे के कहिस रहा कि आप हमरे कोठरी में घुसुर के देखी कि हम चिलम पीइत है ?

तीसमार ख़ाँ—और ऊपर से ज़बान लड़ाता है। ठहर तो ज़रा हरामी के पिल्ले।

कल्लू—(भागता हुआ) हजूर गरियावे के मन होय वइसे गरियाए लेयो। मुल नगीचे न आयो। नाहीं कहूँ हमरे हाथ से चिलम छूट जाई तो आपे के देहवाँ बरै लागी।

तीसमार ख़ाँ—(रुक कर) अररररर ! अच्छा चिलम फेंक दे।

कल्लू—(रुक कर) बहुत अच्छा हजूर (जिधर तीसमार ख़ाँ खड़ा होता है उसी तरफ़ फेंकने का इशारा करता है)

तीसमार ख़ाँ—अरे ! अरे ! इधर नहीं। (भाग कर दूसरी तरफ़ जाता है)

कल्लू—अच्छा तो ऐसी सही। (अब दूसरे तरफ फेंकना चाहता है)

तीसमार ख़ाँ—अबे...बे ..बे ..बे इधर नहीं, जल जाऊँगा।

कल्लू—आपे तो यहर-ओहर नाचित है हजूर। हम तो आपके घुड़की से अँधरियान हन। हमें ए साइत कहूँ कुछ सूझ पड़त है ? जब एहर फेकित है तब आप कहित है नाहीं, तब ओहर फेकित......

तीसमार ख़ाँ—हाँ-हाँ-हाँ, कहीं चिलम छोड़ न देना, मैं इसी तरफ़ खड़ा हूँ। ख़ूब मज़बूती से लिए रह।

कल्लू—का आपो पीयब ? पहिलवाँ काहे न बताएन। अच्छा लेई (चिलम आगे लिए बढ़ता है और तीसमार ख़ाँ घबड़ाया हुआ पिछड़ता है)

तीसमार ख़ाँ—अबे नहीं, नहीं, नहीं। दूर रह, दूर रह। ख़बरदार ! देख कहीं तेरे हाथ से छूट न जाय।

कल्लू—अरे ! तनी आप देखी तो। ख़ूब सुलगा है। आपके बाप मदारअली तो......

तीसमार ख़ाँ—चुप ! चुप ! चुप ! अब अगर बोलेगा तो मारे ढेलों के तेरी खोपड़ी तोड़ दूँगा। बस चुपचाप दूर खड़ा रह।

कल्लू—बहुत अच्छा हजूर।

तीसमार ख़ाँ—नाई बुलाने गया था ?

कल्लू—(चिलम फूँकता हुआ) जानो बुताय गा ! अब एका कहाँ रक्खे जाई। लाओ बाँध लेई। (कोयला फेंक कर चिलम को अपनी पगड़ी के सिरे मे बाँध कर उस सिरे को अपनी कमर तक लटका देता है)

तीसमार ख़ाँ—अरे ! बताता क्यों नहीं ? गया था ?......अबे ओ पगड़ी की दुम बाँधने वाले हरामज़ादे, मैं तुझी से पूछता हूँ।...फिर नहीं सुनता ?

कल्लू—सुनित तो है।

तीसमार ख़ाँ—तो जवाब क्यों नहीं देता ?

कल्लू—कसस बोली ?

तीसमार ख़ाँ—क्यों ?

कल्लू—हमें आपन खोपड़ी तोड़ावे के सौक नाहीं है। आपे तो कहेन है कि बोलेयो तो खोपड़ी फूटी।

तीसमार ख़ाँ—(मारने को झपटता हुआ) हात तेरे बेईमान की ऐसी-तैसी......

कल्लू—अरे ! हजूर थमो-थमो-थमो।

तीसमार ख़ाँ—क्यों ? क्यों ? क्यों ?

कल्लू—गजब होय गवा ! अरे बाप रे, बाप रे बाप ! गजब होय गवा।

तीसमार ख़ाँ—(घबड़ा कर) क्या हुआ क्या ?
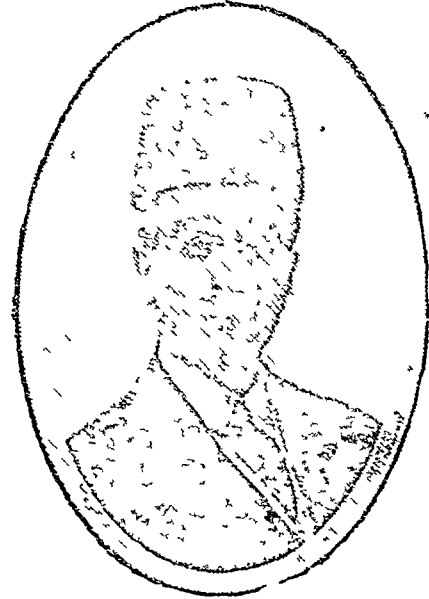
सर मिर्ज़ा मुहम्मद इस्माइल

(गोलमेज के सदस्य)

कल्लू—आप अस जोर से डपटेन कि हमरे घुमनी चढ़ गवा। हमार मूड़ घूमे लाग। अब रोके नहीं रुकत है। यह देखी।

(कल्लू तीसमार ख़ाँ के नज़दीक बड़े ज़ोर से घूमना शुरू करता है। और उसकी पगड़ी का चिलम बँधा हुआ सिरा घूमने से लम्बा होकर तीसमार ख़ाँ के बदन पर गदागद लगता है)

तीसमार ख़ाँ—अरे ! अरे ! यह कौन सी आफ़त आ गई। उफ़ ! खोपड़ी भिन्ना गई। हाय ! हाय ! पीठ टूट गई। अरे ! बाप रे बाप, मर गया।

(तीसमार खाँ बचने के लिए इधर-उधर भागता है, मगर कल्लू भी हर बार उसीके पास बना रहता है)

तीसमार ख़ाँ—उफ़ ! उफ़ ! गर्दन-कन्धा सब ज़ख़्मी हो गए ! हाय ! हाय ! अबे दूर हट मरदूद । उफ़ ! मार डाला ।

कल्लू—का भवा ? का भवा सरकार ?

तीसमार ख़ाँ—(अपना बदन सहलाता हुआ) अब जो मेरे नज़दीक आएगा तो गोली मार दूँगा ।

कल्लू—अरे ! हम तो पहिलवें मिनहा कीन रहा कि हमरे नगीचे न आयो सरकार, मुल आपे तो कूद-कूद हमरे पास आइत है ।

तीसमार ख़ाँ—दूर हो कम्बख़्त । बदतमीज़ ! बेहूदा ! हट जा मेरी नज़रों के सामने से ।

कल्लू—बहुत अच्छा हजूर ।

तीसमार ख़ाँ—अबे ठहर । तूने नाई के बारे में कुछ नहीं बताया ।

कल्लू—(पलट कर आगे बढ़ता हुआ) भले चेत दिलायो सरकार ।.........

तीसमार ख़ाँ—(पिछड़ता हुआ) अबे-अबे-अबे—बस दूर ही से बात कर । ख़बरदार ! इधर मत आना । हाँ वहीं से कह ।

कल्लू—अच्छा-अच्छा । मुल कही का आपन मूड़ । आप तो रोजे चलान कर-करके सहरिया भर उजाड़ दीन है । जो कोऊ बचा है तौन देखते हमका कूकुर अस दुरियावत है । कहत हैं कि चलो-चलो । जे ससुर बेगुनाहन के कैद करावे, निबरे के मारे, बिना गारी के बात न करे ऊ सारे के मुँह न देखे जाब । तब कहाँ से हम नाऊ लाई......

तीसमार ख़ाँ—अबे चुप मरदूद । तमीज़ से बातें कर, नहीं ज़बान पकड़ के खींच लूँगा ।

कल्लू—आपे तो पूछित है सरकार । हम का करी ?

तीसमार ख़ाँ—कौन कम्बख़्त ऐसा कहता है, बता तो सही ।

कल्लू—जेहके जीव पिरात है । जेहके काका-बाबा जेलखाना मा हन ।

तीसमार ख़ाँ—अबे गदहे, तुझे उन हरामज़ादों के पास किसने भेजा था ? तुझे तो मैंने नाई के पास जाने को कहा था ?

कल्लू—हाय ! दादा, देसवा भर तो रोवत है । नाऊ का कहूँ देसवा से अलग बसे हन ?

तीसमार ख़ाँ—उल्लू के पट्ठे ! हरामज़ादे !! सीधी तरह जवाब न देगा ? मैं पूछता हूँ नाई की बात और तो यह मरदूद बकने लगा अल्लम-गल्लम । ज़रा पाजीपन तो देखो !

कल्लू—हजूर नउवन के बात आप न सुनी । नाहीं मारे रिस के आप अउर अगियाबेताल होय जाब । का कही वै लोग तो कहत हैं कि नउवे अब उनकर बार न बनइहैं । तब हम बोलेन कि हमरे सरकार के डाढ़ी कसस मूड़ी जाई । एह पर जवाब मिला कि झाँवा से मुँह रगड़ लें चिक्कन होइ जाय । हम कहेन वाह ! पन्द्रहयिन से डाढ़ी बाढ़ी है जस भटकटइया के झाड़ी । कहूँ झावाँ से साफ़ होए सकत है ? तब वे बोले दियासलाई बार के लगाय दो । बर जाए, छुट्टी मिले ।

तीसमार ख़ाँ—(मारने को झपटता हुआ) चुप बदतमीज़, बेहूदा, बदमाश......

कल्लू—(एकाएक घूमने लगता है) अरे ! अरे ! अरे ! फिरू घुमनी चढ़े लाग ।

तीसमार ख़ाँ—(पिछड़ता हुआ) ब...ब...ब...बस बस अबे ज़रा ठहर जा । ठहर जा ।

कल्लू—बहुत अच्छा सरकार, मुल जब आप खौखियाय के झपटित है तो हमार जीव मारे घबड़ई के चकराय उठत है । बस हम चकराबिन्नी काटे लागित है ।

तीसमार ख़ाँ—तब तू बेवक़ूफ़ी की बातें क्यों करता रहता है ? तूने उन बदमाशों को मारा क्यों नहीं ? जानता नहीं कि तीसमार ख़ाँ की शान में इस तरह कहना खेल नहीं है । सालों को एकदम......

कल्लू—जेहल पठाय देई । यही न ? यह तो बाएँ हाथ का खेल है । मुल एहसे वै लोग अब डेराते नहीं । यही तो मुसकिल है ।

तीसमार ख़ाँ—नहीं बे । एकदम तोपदम करा दूँ ।

कल्लू—काहे नाहीं । आपके बड़ा अखतियार है । साहब आपका बहुत मानत है । आप तो उनके अस नकुना के बार हन कि जो आप उनसे दिन कही तो दिन जानें रात तो रात मानें । तब्बे तो देसवा आपके नाव पर, का कही......

तीसमार ख़ाँ—फिर देश-देश बकने लगा, उल्लू का पट्ठा, तेरे देस की ऐसी-तैसी करूँ।

कल्लू—ऊ तो आप करते हन। मुल सरकार का यू हमरे देस है आपके न होय? आप ईयाँ नाहीं पैदा भयन हैं?

तीसमार ख़ाँ—चुप बदमाश। देश भाड़ में जाय या जहन्नम में, हमसे मतलब?

कल्लू—मतलब काहे नाहीं। देस महतारी-बाप कहा जात है। अपने दाना-पानी से पालत-पोसत है।

तीसमार ख़ाँ—अजब बेवक़ूफ़ है। जानता नहीं हम हाकिम हैं, अफ़सर हैं, देस क्या माँ-बाप को भी गोली मारते हैं।

कल्लू—फुरे कहेन। यह तो हम बिसर गैन रहा। तब तो आप गुसइयाँ का भी कुछ न समझित होवे। आपके बड़ा अखतियार है।

तीसमार ख़ाँ—क्यों बे? यह क्या बकता है?

कल्लू—कुछ नाहीं। यही कहित है कि जे जस करत है वह वस कब्बो न पावत है।

तीसमार ख़ाँ—तेरा सर। उल्लू कहीं का। भला तीसमार ख़ाँ का भी कोई कुछ बिगाड़ सकता है, जिसके नाम से बड़ों-बड़ों के होश गुम हो जाते हैं।

कल्लू—यू न कही सरकार। आप तो पेड़े के पाता अस असमाने निहारित है। मुल जब पेड़े न रहि जाई तब पाता के कौन हवाल होई? आपे सोची। आज नाऊ बिना आपके डाढ़ी अपने करम पर रोवत है जो कहूँ नउवन के देखा-देखी भिस्ती, बबरची, दर्जी, धोबी, भङ्गी सभै आपसे मुँह मोड़ लें तो तीसमार खाँव अपने मूड़े पर आपन मैला लादे कसस कौनो पर तेहा दिखइहें—

तीसमार ख़ाँ—क्यों बे बदमाश, तू मुझको लेक्चर देता है। इतनी हिम्मत! ठहर जा अभी तेरा भी चालान करता हूँ।

कल्लू—हमार चलान? काहे हजूर? हम कौन अपराध कीन है?

तीसमार ख़ाँ—जानता नहीं हरामज़ादे कि लेक्चर देना हमने जुर्म कर रक्खा है। अब बचा मेरे फन्दे से कहाँ निकल कर जा सकते हो? तेरी ऐसी-तैसी करूँ। बहुत दिनों से तूने सब को परेशान कर रक्खा था।

कल्लू—तो के लिचर दिहिस है? हम तो हजूर से साँच अउर नीक बात कहत रहेन।

तीसमार ख़ाँ—बस-बस, अपनी सफ़ाई अपने घर रख। अब आ गए बेटा तुम जुर्म के फन्दे में। सारी हेकड़ी का मज़ा मिल जाएगा।

कल्लू—हाय दादा! आप साँचो बोलब आफत कै दीन? दयू मुँह दिहिन है साँच बोले के लिए, तौनो में आप ताला लगाय दीन? अस जबरजस्ती? चोरी-बदमासी, लूट-मार तो जुलुम जानत रहेन, मुल नीक
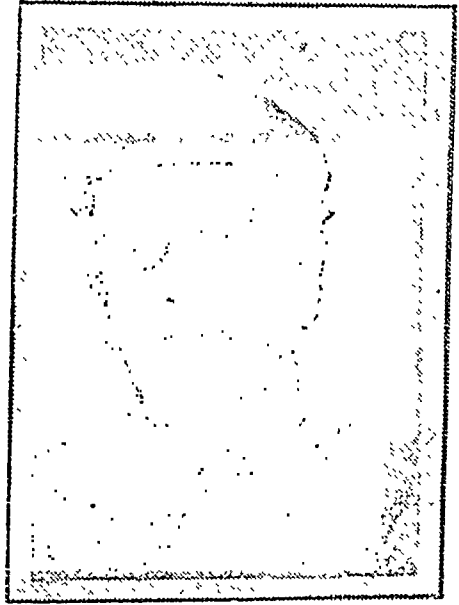
महाराजा बड़ौदा

(गोलमेज़ के सदस्य)

बात कहब और साँच बोलब कौन ढङ्ग से जुलुम है, हम समझिन नाहीं पाइत है।

(बटेर ख़ाँ कॉन्स्टेबिल का आना)

तीसमार ख़ाँ—अभी समझ में आता है। ...कौन बटेर ख़ाँ? ख़ूब आए, बड़े मौक़े से आए। लो इस हरामज़ादे को फ़ौरन गिरफ़्तार करो।

बटेर ख़ाँ—इसे हज़ूर? यह तो बड़ा ही बेहूदा आदमी है। मैं इसकी ख़ुद शिकायत करने वाला था। यह जितना ही पुराना पड़ता जाता है, उतना ही गुस्ताख़ होता जाता है। सबों के नाक में दम किए हुए है।

इसकी गिरफ़्तारी का हुक्म निकाल कर हज़ूर ने सचमुच बड़ा काम किया।

कल्लू—यह देखो। थोड़ करें गाजी मियाँ बहुत करें डफाली। तब ससुर हीयाँ अन्धेर न मचे तो होय का?

बटेर ख़ाँ—देखिए हज़ूर इसकी बातें।

तीसमार ख़ाँ—अरे! यह बड़ा ही बदमाश है। यह कम्बख़्त लेक्चर देता था—और मुझको!

बटेर ख़ाँ—हाँ! ज़रूर देता होगा हज़ूर। देखिए खद्दर की धोती भी पहने हुए है।

कल्लू—तो तोहरे बाप का का? हम गरीब आदमी मोट-झोट न पहनी तो का कहूँ डाका डालित है कि मखमल के भगवा बाँधी। अपने घरे एका काता-बीना तो पहनी न?

तीसमार ख़ाँ—ग़ज़ब ख़ुदा का, यह तो सचमुच खद्दर पहने हुए है और ख़ुद बनाता भी है। यह मुझे मालूम ही न था। उफ़! ओ इस सूअर के बच्चे को तो फाँसी की सज़ा मिलनी चाहिए।

कल्लू—काहे? का पहिरबो-ओढ़बो जुलुम है? अस अन्धेर तो हम कब्बो नाहीं देखेन रहा। अपने हीयाँ के बना कपड़ा हम न पहिरे पाइब तो दादा कुछ दिन माँ अपने हाथ के पोई रोटियो खाब मुसकिल होइ जाई। आप लोगे यहू के जुलुम के देब। नवा-नवा मनई नवा-नवा कानून!!

तीसमार ख़ाँ—(अपने कान उँगलियों से बन्द करके) उफ़! ओ! यह कमबख़्त तो फिर लेक्चर देने लगा। अरे बटेर ख़ाँ, इस हरामज़ादे को जल्दी गिरफ़्तार करो जल्दी! नहीं तो इसका लेक्चर कहीं असर न कर जाए।

बटेर ख़ाँ—अभी लीजिए। चल बे गिरफ़्तार हो जा।

कल्लू—तनी नकुना पर हाथ रख के बोलो। तोरे मेहरा की। हमहूँ का सुदेसी के वलुमटेर होई कि हमका गिरिपतार होय के सौक़ है अउर हम कान दबाए चुप-चाप गिरिपतार होय जाब? बस नगीचे आयो न। कहे देइत है। ऊ दिन भूल गयो जब भाँटा अस नानमून रह्यो और चौक में जुआ खेलत हम तूका पकड़ेन रहा और तोहार बाप डल्लू भिस्ती हमरे गोड़े गिरिन तब खाली दुई लात लगाय के तूका हम छाड़ दिया रहा। नाहीं तो तूका भला नौकरी मिलत और आज तू सिपाही होय के फारसी भुँकतो है अउर हमरहू जड़ खोदत्यो?

तीसमार ख़ाँ—(कानों से अपनी उँगली हटा कर) बटेर ख़ाँ, क्यों यह क्या कहता है? गिरफ़्तार क्यों नहीं करते?

बटेर ख़ाँ—हज़ूर यह अपने को गिरफ़्तार नहीं करने देता। गाली दे रहा है। बिना गारद बुलाए इसका गिरफ़्तार करना ठीक नहीं है। आदमी बहुत सरकश है।

तीसमार ख़ाँ—आयँ! यह हुकुमअदूली करता है? अच्छा अभी जाकर मैं गारद भेजता हूँ। जब तक तुम इसकी निगहबानी करो।

(जाना चाहता है)

कल्लू—(बटेर ख़ाँ से) चिउँटी के मारे के लिए भवतोप बताय दियो। अच्छा इनका जाय दो तब बताइत है।

बटेर ख़ाँ—(तीसमार ख़ाँ को दौड़ कर रोकता हुआ) अरे! हज़ूर आप तकलीफ़ न करें, मैं अभी गारद साथ लिए आता हूँ।

(ख़ुद जाना चाहता है)

कल्लू—मारे मवड़ई के हमार मूड़ बस अब घुमहिन चाहत है।

तीसमार ख़ाँ—(बटेर ख़ाँ को दौड़ कर रोकता हुआ) नहीं-नहीं, अब तो मेरा ही जाना ठीक है।

बटेर ख़ाँ—नहीं हुज़ूर मुझे......

तीसमार ख़ाँ—नहीं जी मैं......

(दोनों एक-दूसरे को रोकते हैं)

कल्लू—अच्छा कोई न जाय। हम ही जाइत है सरकार। हीयाँ ठाड़े-ठाड़े हमरे घुमनी चढ़त है। अब रहाइस नाहीं होत है।

तीसमार ख़ाँ—हाँ-हाँ, तू ही जा जल्दी जा। दौड़ता हुआ जा।

(कल्लू जाता है)

बटेर ख़ाँ—हज़ूर यह बड़ा अच्छा हुआ कि यह बेवक़ूफ़ ख़ुद ही गारद बुलाने चला गया।

तीसमार ख़ाँ—तभी तो मैंने भी झट हाँ कर दिया। कैसी अक़्लमन्दी की। अरे! यह क्या......

(पर्दे के पीछे कई आदमियों का शोर मचाना—शराब पीना हराम है)

तीसमार ख़ाँ—अरे! इन हरामियों ने फिर ज़ोर बाँधा? कम्बख़्त ज़रा भी दम नहीं लेने देते। अच्छा

आओ इस दफ़े इन पाजियों को ऐसा ठीक करता हूँ कि सारी ज़िन्दगी याद करेंगे।

(दोनों का जाना)

अङ्क १, दृश्य २

(तीसमार ख़ाँ का ज़नानख़ाना)

(तीसमार ख़ाँ की बीबी दिलारा बेगम)

दिलारा—आग लगे ऐसे अख़्तियार में कि निगोड़ी भङ्गिन तक भी बिला काम के झाँकने नहीं आती। माना कि मेरे मियाँ इतने बड़े दारोग़ा हैं और सारा काम हुकूमत के ज़ोर से करा लेते हैं। मगर हाय! डण्डों से हमदर्दी नहीं मिलती, मुहब्बत नहीं मिलती! जिसके लिए दिल रातोदिन तरसा करता है। मेरे बाप एक मामूली आदमी हैं फिर भी जब तक वहाँ रहती हूँ, सारी दुनिया अपनी मालूम होती है। मगर यहाँ एक अदना पड़ोसिन भी मुझसे दिल खोल कर मिलने नहीं आती! और न कोई मुझी को अपने यहाँ किसी काम-काज में बुलाने की हिम्मत करती है। उफ़! ऐसे जीने पर लानत है। जानवर भी ऐसी ज़िन्दगी बसर नहीं कर सकते।...... कौन है धोबिन?

(रमझारी का कपड़ों का गट्ठर लिए स्टेज के कोने में दिखाई देना)

रमझारी—नाहीं। हम हन उनके बिटिया रमझारी। लो आपन कपड़ा। (वहीं से कपड़ों का गट्ठर फेंक देती है)

दिलारा—कल ही तो चौकीदार तेरी माँ को कपड़े दे आया था। क्या एक ही दिन में सब धुल गए?

रमझारी—नाहीं। अब आपके कपड़ा न धोआ जाई। हमरे हीयाँ पञ्चाइत भवा है कि बिदेसी कपड़ा कोऊ न धोवे। जे धोई वहके हुक्का-पानी बन्द होइ जाई।

दिलारा—क्या-क्या, दारोग़ा जी का तुम लोगों को कुछ भी डर नहीं है? जानती हो आफ़त कर देंगे?

रमझारी—बलइया से।

दिलारा—हमारे कपड़े न धोए जाएँगे तो क्या हम लोग मैले-कुचैले रहें?

रमझारी—तो सुदेसी काहे नाहीं पहनित है?

(लौट जाती है)

दिलारा—अरे! सुन-सुन, सुन तो।

रमझारी—(पलट कर) का होय?

दिलारा—तेरी माँ क्यों नहीं आई?

रमझारी—हमरे महतारी का पूछ कर का करबे, आपका अपने कपड़वे से तो मतलब है।

दिलारा—सिर्फ़ कपड़ों ही से मतलब है? गोया मैं आदमी नहीं, मुझे आदमियों की सङ्गत पसन्द नहीं? क्यों? जा उसको भेज दे। मैं उसे समझा दूँ। वह ऐसा न करे। वरना दारोग़ा जी के कानों तक ख़बर पहुँचेगी तो......

रमझारी—तो का होई? सजा कराय देहैं; बस? अब बड़े-बड़े आदमी जेलखाना जात हैं। हम लोगन के कौन गिनती? एका अब हम सभे नाहीं डेराइत है।
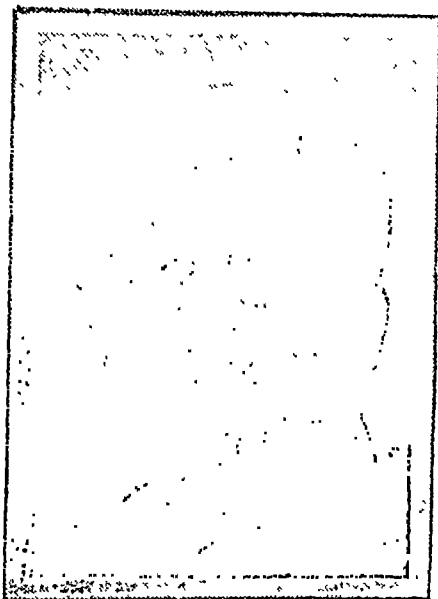
नवाब सर मुहम्मद अकबर हैदरी

(गोलमेज के सदस्य)

दिलारा—(अलग) ग़ज़ब ख़ुदा का। जिस अख़्तियार के ज़ोम में हमारे मियाँ अन्धे हो रहे हैं, दीन-दुनिया भूले हुए हैं, आज उसकी यह हालत हो रही है कि इसकी परवा एक धोबिन की छोकरी भी नहीं करती। सच है अख़्तियार की शान जभी तक है जब तक उसका दबदबा रहता है। और दबदबा ज़ुल्म और बदी से नहीं, बल्कि हमदर्दी और इन्साफ़ से क़ायम रहता है। जहाँ यह बातें नहीं, तहाँ अख़्तियार काहे को, वह ख़ासी ज़िल्लत है। (रमझारी को जाते हुए देख कर) अरे! फिर

चली। बात तो सुन ले। तू तो बड़ी तर्रार मालूम होती है। तेरी माँ से मुझे कुछ कहना है। जा उसे जल्दी से भेज दे। भूलना मत।

रमझारी—(पलट कर) वह नाहीं आय सकत है। आज हीयाँ के सब मेहररुवे गाँधी बाबा के झण्डा निकाले हैं। सुदेसी के परचार करिहैं। दीदी हुआँ जइहें कि आपके हीयाँ अइहें ?

दिलारा—क्या औरतें भी झण्डा निकालेंगी ?

रमझारी—काहे ? मेहररुवे मनई न होंय, कि खाली मर्दने में दुम-पोंछ लाग है ? अब तो मेहररुवे वह काम करत हैं कि मर्द का खाय के करिहैं ? आपका का मालूम ? आप तो पर्दे के बू-बू बनी घर माँ घुसरी रहत हैं।

दिलारा—उसमें कौन-कौन औरतें शामिल होंगी ?

रमझारी—हिन्दू-मुसलमान छोट बड़ी सभै। कोई घर बाक़ी न रही।

दिलारा—क्या पर्दे वाली भी जायँगी ?

रमझारी—बड़ी-बड़ी रानी-महारानी तक जब सुदेसी के खातिर घर से बाहर निकस पड़ी तो अब पर्दा कहाँ रह गवा ?

दिलारा—हाँ ? औरतें इतनी आज़ाद हो गई ? अच्छा ज़रा अन्दर आकर इतमीनान से बैठ, ताकि मैं—

रमझारी—नाहीं दादा। आपके कपड़ा धोवब बन्द कै दीन है। कहूँ लोटा-थरिया पकड़ाय के सजा कराय देव। कौन ठीक ? आपके बड़ा अख्तियार है।

(भाग जाती है)

दिलारा—(अकेले) भाग गई ? उफ़ ! ऐसे अख़्तियार को झाड़ू मारूँ। जिसने मुझे दुनिया की निगाहों में ऐसी ज़लील कर रक्खा है कि मैं एतबार की क़ाबिल भी नहीं समझी जाती। जैसा सलूक मियाँ दुनिया के साथ करते हैं, उसी का बदला आज दुनिया भी देने को तैयार हो गई। यह उसको ठोकर मारते थे और आज वही इनसे ठोकरों से बातें करती है। मगर हाय ! उसकी चोट वह नहीं, मैं सह रही हूँ। वह अपनी जा-बेजा काररवाइयों से बुरे थे तो मैं उनके साथ क्यों बुरी समझी जाती हूँ ? इसलिए कि हिन्दुस्तानी औरतों की कोई हस्ती और कोई वक़अत नहीं है। हम लोग जानदार आदमी नहीं, बल्कि अपने-अपने मर्दों की महज़ बेजान दुम मानी जाती हैं। तभी तो हम लोग लाख अच्छी होने पर भी गेहूँ के साथ घुन की तरह अपने-अपने मर्दों की बुराइयों में पीसी जाती हैं। अल्लाह का शुक्र है कि यहाँ की औरतों को अपने निजी रुतबे का कुछ ख़्याल आया, पर्दा तोड़ कर अपनी आज़ादी की बुनियाद डाली। बस चले तो मैं भी उनका साथ दूँ। जब तक मैं दुनिया का साथ न दूँगी तब तक वह मुझे क्यों पूछने लगी ? मियाँ दारोग़ा हैं। मैं तो दारोग़ा नहीं हूँ। उन्हें सुदेसी से नफ़रत है। मगर मैं नफ़रत क्यों करूँ ? तो क्या मैं भी झण्डे वाली औरतों के साथ जाऊँ ? कहीं मियाँ बुरा न मानें—

(मुनुवा का तकली लिए आना)

मुनुवा—अम्मी तिकुली लाया। तिकुली लाया। यह देखो।

दिलारा—अरे ! इसे कहाँ से लाया ?

मुनुवा—एक लड़के से एक पैछे में मोल लिया है। अब्बा ने पैछा दिया था। अब हम वी छूत बनाएँगे।

दिलारा—तो तुझे यही ख़रीदना था बेवक़ूफ़, फेंक दे इसे ! मकान से दूर जाकर फेंकना।

मुनुवा—काहे अम्मा ?

दिलारा—तेरे अब्बा इसे देखते ही तुझे फाड़ खाएँगे। जानता नहीं कि उन्हें सुदेसी वालों से इतनी नफ़रत है कि इसके बरतने वालों तक से बहुत ख़फ़ा होते हैं।

मुनुवा—नहीं अम्मा ! अब्बा नहीं ख़फ़ा होंगे। अब तो वह वी हलामी हो गए।

दिलारा—क्या ?

मुनुवा—छचमुच अम्मा। हमने अपने कानों छे छुना है। अब्बा भी कहते थे कि छलाब पीना हलाम है, बिदेछी माल लेना हलाम है।

दिलारा—हाँ ? सच ?

मुनुवा—बिलकुल छच अम्मा। बले जोल से कहते थे।

दिलारा—वाह ! तब तो जो हिचक थी जाती रही, अब मैं ज़रूर जाऊँगी।

मुनुवा—कहाँ अम्मा ?

दिलारा—शहर भर की औरतों के साथ गाँधी बाबा का झण्डा निकालने।

मुनुवा—क्यों ?

दिलारा—नहीं जानती। मगर जैसा सब करेंगी वैसा मैं भी आज से करूँगी। क्योंकि मैं भी दुनिया में रहती हूँ, अलग नहीं।

मुनुवा—तो अम्मा हम बी चलेंगे।

दिलारा—नहीं बेटे। थक जाओगे, यहीं खेलो।

मुनुवा—नहीं अम्मा।

दिलारा—फिर नहीं मानते। जाओ खेलो।

(जाती है)

मुनुवा—(अकेला) अच्छा जाओ। हम बी पीछे-पीछे जायँगे। जब घूम के ताकोगी तो भाग आएँगे।

(उसी तरफ जाता है)

अङ्क १, दृश्य ३

(तीसमार ख़ाँ के मकान का सामना)

(तीसमार ख़ाँ का बड़बड़ाते हुए आना)

तीसमार ख़ाँ—वह साला चौकीदार गारद वालों के पास नहीं गया। न जाने कहाँ चला गया। मैं अब तक उसी की इन्तज़ार में थाने पर गारद लिए बैठा था।

(बटेर ख़ाँ का घबड़ाया हुआ आना)

बटेर—हुज़ूर ग़—ग़—ग़—ग़ ग़ज़ब हो गया।

तीसमार ख़ाँ—(घबड़ाकर) क—क—क—क—क्या हुआ ?

बटेर—अभी मुख़बिरों से ख़बर मिली है कि धरना देने के लिए तमाम शहर की औरतें फट पड़ी हैं।

तीसमार ख़ाँ—औरतें ?

बटेर—जी हाँ, औरतें ! मगर इन्हें औरतें न समझिएगा। मर्दों की भी चची हैं चची !

तीसमार ख़ाँ—अरे बाप रे ! क्या यह लोग रोक-टोक करने से कहीं हाथ तो नहीं चला बैठती हैं ?

बटेर—नहीं। बस इतनी ही तो ख़ैरियत है।

तीसमार ख़ाँ—(ऐंठ कर) तब कुछ परवा नहीं। गारद लेकर फ़ौरन जाओ। और सुनो—(कान में कहता है)

बटेर—क्या औरतों पर भी ?

तीसमार ख़ाँ—हाँ जी, मर्द, औरत, बच्चे सबको एक ही लाठी से हम तो हाँकना जानते हैं। ऐसा न करें तो पबलिक हमको तीसमार ख़ाँ नहीं, गाजर-मूली ख़ाँ समझने लगेगी।

बटेर—मगर हुज़ूर, कहीं बड़े साहब जान गए तो हम लोगों की जान आफ़त में पड़ जायगी।

तीसमार ख़ाँ—अरे ! हम क्या कोई चीज़ ही नहीं हैं। हम सब सँभाल लेंगे, किसकी मजाल है जो हमारी शिकायत उनसे करे। बस वही बात। समझे ?

बटेर—तब हुज़ूर आप भी चलें। औरतों का मामला ठहरा। कहीं आफ़त न बरपा हो जाय।

श्री० मोहनलाल भट्ट

जो महात्मा जी की नजरबन्दी के पश्चात् 'नवजीवन' का सञ्चालन कर रहे थे। इनको गवर्नमेण्ट ने चार महीने की सख़्त क़ैद की सजा दी थी।

तीसमार ख़ाँ—अजब बेवक़ूफ़ हो। वह विलायती मेमें थोड़े ही होंगी ? हिन्दुस्तानी औरतें होंगी, हिन्दुस्तानी, समझे? जिनके लिए हिन्दुस्तानियों का ख़ून कभी जोश ही नहीं खा सकता। यह हमने आज़मा कर ख़ूब देख लिया है।

बटेर—मगर हुज़ूर चलें ज़रूर।

तीसमार ख़ाँ—हाँ, तुम आगे चल कर कारवाई करो, मैं अभी आता हूँ। ज़रा नाश्ता कर लूँ। दिन भर हो गए, घर के अन्दर क़दम रखने की मुहलत नहीं मिली।

(बटेर खाँ जाता है, दूसरी तरफ़ से कल्लू आता है)

कल्लू—अरे! हजूर लायन, लायन, लायन। बड़े मुसकिल से मिला है।

तीसमार ख़ाँ—क्या गारद ?

कल्लू—हाँ, देखो। (जिधर से आया था उधर घूम कर) आओ हो नाऊ भाई।

(एक देहाती नाई का आना)

तीसमार ख़ाँ—अबे यह गारद है उल्लू के पट्ठे ?

कल्लू—यू हम नाहीं जानित है, जेहका आप बुलावे कहेन रहा तेहका हम बुलाय लायन। सहर के कौनो नाऊ नाहीं आए। तब देहात से एहका लायन हैं। बहुत नीक मूड़त है। एहके बाप बम्बई होय आवा है।

तीसमार ख़ाँ—अबे गदहे, तू तो गारद बुलाने गया था ?

कल्लू—तो का नाऊ के जरूरत नाहीं है? (नाई से) अच्छा जाओ भाई।

तीसमार ख़ाँ—यह क्या करता है? जो पूछता हूँ उसका क्यों नहीं जवाब देता ?

कल्लू—(नाऊ से) डोल जाओ हो। तूका देख के केतिक गुस्सा होत हैं।

(नाई जाता है)

तीसमार ख़ाँ—अबे! आयँ! उसे क्यों भगाए देता है? बुलाओ उसे। (कल्लू दूसरी तरफ़ जाने लगता है) और तू कहाँ चला ?

कल्लू—जाइत है गारद बुलावे।

तीसमार ख़ाँ—अबे गारद के बच्चे। पहिले नाई को बुला ले।

कल्लू—(अपना कान पकड़ कर) नाहीं सरकार, अब अस गल्ती नाहीं होय सकत है। एक बाजी नाऊ बुलाए के भर पाएन।

तीसमार ख़ाँ—हाय! हाय! तू तो बड़ा हुज्जती है हरामज़ादा! जब वह दूर निकल जायगा तब कहाँ बुलाने जाएगा ?

कल्लू—हजूर हम अकेल जीव हन। चाहे हमसे आप गारद बुलवाए लेई, चाहे नाऊ—दूनो काम नाहीं होय सकत है।

तीसमार ख़ाँ—अच्छा नाई को तो बुला कम्बख़्त !

कल्लू—मुल पाछे गारद बुलवाए के तो न कहब ? यू आप सोच लेई।

तीसमार ख़ाँ—अबे गारद गई ऐसी-तैसी में। नाई को जल्दी बुला। उसे देखते ही मेरी दाढ़ी में खुजली मच गई है।

कल्लू—जुआँ पड़ गवा होई सरकार। अच्छा सबुर करो। अब्बै बुलाए देइत है।

(कल्लू जिधर नाई गया था उधर जाता है)

तीसमार ख़ाँ—उफ़! बड़ी खुजली मची है। क्या करूँ।

(नाई के साथ कल्लू एक कुर्सी लिए आता है)

कल्लू—लो हजूर यह कुर्सी और यह नाऊ।

तीसमार ख़ाँ—क्यों बे नाई के बच्चे हरामज़ादे, तुम लोगों को बड़ा मिज़ाज हो गया है। साले बुलाने से नहीं आते हो ?

कल्लू—(अलग) अब दादा हमार हीयाँ गुजर नाहीं। (चुपके से भाग जाता है)

नाई—हम तो हजूर हीयाँ रहतो नाहीं हन, हमका आज के पहिले कब्बो नाहीं आप बुलवाएन हैं। नहके आप रिसिया होइत है।

तीसमार ख़ाँ—मैं नाहक़ ख़फ़ा होता हूँ? क्यों? यह तुम्हीं लोगों की बदमाशी से मेरी दाढ़ी की यह हालत है। साले एक-एक को भून के खा जाऊँगा। तेरी ऐसी-तैसी करूँ—(मारता है)

नाई—अरे! अरे! बाप रे बाप! हम का बिगाड़ेन हैं।

तीसमार ख़ाँ—चुप बदमाश! चल इधर। बनाओ हजामत।

नाई—(अपना बदन झाड़ता हुआ—अलग) अच्छा हमहूँ अस हजामत बनाइब कि तुहूँ याद करिहो। पन्छी में कउवा अऊर आदमी में नउवा सभै जानत हैं। एहकर कसर हम जो न निकारेन तो हम नाऊ नाहीं, चमार।

तीसमार ख़ाँ—(कुर्सी पर हजामत बनवाने की तैयारी में बैठा हुआ) अबे बनाता क्यों नहीं ?

नाई—(हाथ जोड़ कर) हजूर हम नाऊ हन, बास नाहीं छोलित है।

तीसमार ख़ाँ—यह क्या ?

नाऊ—हजूर हम खुर्पी नाहीं लायन है।

तीसमार ख़ाँ—अरे! यह कैसा गँवार नाई पकड़ लाया जो खुर्पी से दाढ़ी बनाता है। क्यों बे तू उस्तरा नहीं रखता ?

नाई—हजूर हमारे पास सामान तो सब बम्बइया है। छूरा, साबुन, बुरुस सब चीज़। मुल कहा मानी, आप यू दाढ़ी न मुड़वाई।

तीसमार ख़ाँ—तब क्या अपनी शकल रीछ सी ख़ब्बीस बनाए रहें ?

नाई—तौन नीक, मुल जहाँ आप दाढ़ी मुड़वाए देब तहाँ यह सूरत बानर अस निकस आई। यही तो अस दाढ़ी में ख़राबी है। हम कइयू बनाए के देख चुकेन है।

तीसमार ख़ाँ—तेरा सर! बदमाश कहीं का। बहानेबाज़ी करता है।

नाई—बहाना नाहीं सरकार, साँचो कहित है। (दाढ़ी टटोल कर) बाप रे बाप! यू दाढ़ी है कि ससुर झाऊ के जङ्गल। हजूर हाथ जोड़ित है, हम बहुत ग़रीब हन। हमरे छूरा के धार टूट जाई।

तीसमार ख़ाँ—अबे पहिले साबुन से भिगो ले तब देख बाल कैसे मुलायम पड़ जाते हैं।

नाई—साबुन कूची तो है, मुल सरकार हमरे बापी के होय। हम कब्बो साबुन से बनावा नाहीं है।

तीसमार ख़ाँ—अजब गँवार से पाला पड़ा। अबे गदहे! कूची को पानी में डुबो कर साबुन से रगड़, उसके बाद उसे मेरी दाढ़ी पर लगा।

नाई—बहुत अच्छा। ऐसे सरकार बतावत जाई, हम गँवार मनई हन।

(कूची में साबुन लगा दूर खड़ा होता है। और जिस तरह से आतशबाज़ी में आग लगाई जाती है, उसी तरह से हाथ बढ़ा कर कूची को तीसमार ख़ाँ की दाढ़ी से एक जगह छुलाता है।)

तीसमार ख़ाँ—अबे इसको मेरी दाढ़ी पर रगड़।

नाई—नाहीं सरकार। यू हमसे न होई, हमार जीव बहुत डरात है। कहूँ आपके मुहें में हमार कूची घुसड़ जाई तो मिलब मुसकिल होय जाई। आपे ऐह पर आपन गाल रगड़ी।

तीसमार ख़ाँ—मैं किस तरह रगड़ूँ बेवक़ूफ़ ?

नाई—आप आपन मूड़ी गिरगिट अस नीचे-ऊपर हलाई तो। हम समनवा कूची किए हन। हाँ हलाई।

तीसमार ख़ाँ—अबे तू तो बड़ा उल्लू मालूम होता है। अच्छा यह ले। (अपना सर हिला कर कूची से अपना गाल रगड़ता है)

नाई—अउर हाली-हाली। अस नाहीं अस। (दूसरे हाथ से तीसमार ख़ाँ का कान पकड़ कर ख़ूब कस-कस के झटका देता है)

तीसमार ख़ाँ—अबे यह क्या बेहूदा नाला × × ×

श्रीमती देवयानी इन्द्रविजय देसाई

आप विलेपारले (बम्बई) की निवासी हैं। आपको पिकेटिङ्ग में १५ दिन की सजा हुई थी।

नाई—(तीसमार ख़ाँ का गाली देने के लिए मुँह खुलते ही अपनी साबुन की कूची उसमें गप से डाल देता है) हाय! हाय! सरकार हमार कूची खाय लेब का ? हम गरीब आदमी हन। मुँह अउर खोली, नाहीं हम बिलाय जाब। (एक हाथ से तीसमार ख़ाँ की नाक में दो उँगलियाँ डाल कर मुँह ऊपर को उठाता है, तब दूसरे हाथ से कूची उस मुँह से अलग करता है)

तीसमार ख़ाँ—आख़थू! आख़थू—आँक छी! आँक छी! उफ़! मार डाला। यह साला नाई नहीं, पूरा

क़साई है। उस पर से कम्बख़्त कभी कान पकड़ता है और कभी नाक!

"नाक-कान न पकड़ी तो यह डेढ़ पसेरी के मूड़ कौन चीज पकड़ के हलाइत। खोपड़ी में कहूँ खूँटी थोड़े गड़ी है।"

तीसमार ख़ाँ—आ—आ—आक छीं! अबे तूने मेरी नाक में उँगली क्यों खोंस दी?

नाई—तो आपके मुहाँ खुलत कसस? आपे तो हमार कुचिया सगरो भछ लीन रहा। हम आपके कनवा न पकड़े होइत तो आप हमार हथवो लील लेइत।

तीसमार ख़ाँ—चुप रह। ला कूची हमें दे। हम इधर लगा लेंगे।

नाई—नाहीं सरकार। पहिले हम एक अलङ्ग बनाए लेई तब बाहर सबुना लगावा जाए, नाहीं तो चेहरा सब लसर-फसर होए जाई तो हम आपन चुटकी के टेक कहाँ लगाइब? (दाढ़ी बनाता हुआ) हाँ सरकार, तनी आप मुँह खोली तेहमा गलुक्का के भीतर हवा जाए के बार के जड़ मुलायम कै दे। अब बन्द कै देई। फिर खोली। खूब फैलाई। अब बन्द करी। मूड़ी अस करी। (कान पकड़ कर) अ न नाहीं अस। अब एहर। अच्छा सरकार अब आप आपन नाक हाथ से पकड़ लेई। जोखिम जगह पर छूरा चलत है। हाँ कहूँ दाढ़ी के साथ नाको न साफ होए जाए। मुँह खोले रही। जेहमा ठुडी लटक के नकुवा से दूर रहे। हजामत बनाइब खेल नाहीं है। बस एक अलङ्ग होय गवा अब सीसा में आपन मुँह तो देख लेई।

(एक तरफ़ की दाढ़ी मय उस तरफ़ की मूँछ के साफ़ कर देता है)

तीसमार ख़ाँ—(शीशा देख कर) हाय! हाय! तूने इधर की मूँछें क्यों बना दीं? हाय ग़ज़ब! यह क्या किया?

नाई—का मूँछो बन गवा? यही लिए कहा रहा सरकार कि साबुन न लगवाई। का कही एहर के डाढ़ी-मोंछ दूनो एकै में लिपे-पोते रहे। हमार छूरा न चीन्ह पाइस होई कि कौन मोंछ है अउर कौन डाढ़ी।

तीसमार ख़ाँ—तेरे उस्तरे की ऐसी-तैसी करूँ सूअर के बच्चे। साले ने सूरत बिगाड़ दी।

नाई—हमार कौन दोस सरकार? हम तो पहिलवें बताय दीन रहा कि अस डाढ़ी जहाँ बनाइ जात है वैसे बनरे अस मुँह निकर आवत है!

तीसमार ख़ाँ—(उसी धुन में) हाय! हाय! अब इधर की भी मूँछ बनवानी पड़ी।

नाई—काहे कौनो जबरदस्ती थोड़े है। एहर वाली मुछिया रहे देई।

तीसमार ख़ाँ—ऊपर से बातें बनाता है? अच्छा ज़रा हजामत बन जाए तो बताता हूँ। ला इधर ला कूची।

नाई—(कूची देते हुए कूची तीसमार ख़ाँ की गोद में गिरा देता है) च! च! च! आपके कपड़ा खराब होय गवा, नाहीं-नाहीं बच गवा। (तीसमार ख़ाँ की पोशाक का कपड़ा गौर से देखता और टटोलता हुआ) भला यह बिदेसी तो न होय?

तीसमार ख़ाँ—तब क्या हम सुदेसी पहनेंगे गदहे? जानता नहीं हम दारोग़ा तीसमार ख़ाँ हैं।

नाई—तो फुरे यू सुदेसी न होय?

तीसमार ख़ाँ—नहीं बे। अब ख़बरदार जो सुदेसी का नाम लेगा तो मारे जूतों के खोपड़ी फ़रोश कर दूँगा।

नाई—(चिल्ला कर रोता हुआ) हाय दादा! करम फाट गवा। हम बिलाय गएन।

तीसमार ख़ाँ—अबे क्या हुआ क्या?

नाई—(जल्दी-जल्दी अपना सामान समेटता हुआ) का बताई। धोखा होय गवा। हम जानित रहन कि आप सुदेसी पहने हन। सरकार हाथ जोड़ित है, गोड़े गिरित है, आप कोई से न बताइब कि हम आपके डाढ़ी बनायन हैं, नाहीं तो हमें रोटी पड़ जाई।

(अपना सामान लेकर जल्दी-जल्दी जाता है)

तीसमार ख़ाँ—अबे-अबे आधी ही दाढ़ी बना कर चल दिया? अबे ओ नाई के बच्चे, आधी वह भी बनाता जा कम्बख़्त।

नाई—(जाते-जाते कोने के पास से) नाहीं सरकार। अनजाने जौन खता होय गई, तौन होय गई। अब हाथ जोड़ित है, हमार कीन न होई।

(भाग जाता है)

तीसमार ख़ाँ—हाय! हाय। हरामज़ादा चला गया। अब क्या करूँ। कैसे उसके पीछे दौड़ूँ या किसी

को अपने सामने बुलाऊँ ? हाय कम्बख़्त ने मुँह दिखाने लायक़ भी तो मुझे नहीं रक्खा। किस तरह सूरत छिपाऊँ, एक तरफ़ की मूँछ भी तो नदारद है। कहीं कोई आ पड़ा तो क्या करूँगा। मकान के भीतर भी तो जाते नहीं बनता ! उफ़ ! उस नामाक़ूल ने बड़ा ही पाजीपन किया है। मिल जाता तो उसे कच्चा चबा जाता। (अपने बदन के कपड़ों से अपनी दाढ़ी और मूँछें छिपाने की कोशिश करता है) नहीं ठीक बनता। हाय ! अब क्या करूँ ? वह लो, मुनुवा भी आ रहा है। (अपने मुँह को एक तरफ़ रूमाल से छिपा कर मुँह फेर कर खड़ा होता है)

मुनुवा—ऊँ-ऊँ-ऊँ। अम्मा ! हाय ! अम्मा ! कहाँ गईं ?

तीसमार ख़ाँ—(मुँह फेरे हुए) क्यों बे मुनुवा, क्या हुआ ?

मुनुवा—अम्मा भी हलामिन बन के सब औलतों के साथ झण्डा उठाने गई थीं।

तीसमार ख़ाँ—आयँ ? यह क्या ?

मुनुवा—सचमुच अब्बा। वह बी गई थीं। बजाल में बहुत-बहुत औलतें थीं। अम्मा भी थीं। बछ छिपाई लोग उनके पीछे दौले। फिल नहीं मालूम अम्मा किधल गायब हो गईं। हाय ! अम्मा ऊँ-ऊँ-ऊँ !

तीसमार ख़ाँ—(मुँह फेरे हुए) हाय ! ग़ज़ब ! यह क्या हुआ ? अरे ! मुनुवा ! तू थाने पर जा और जल्दी से बटेर ख़ाँ को ढूँढ़ कर बुला ला। (मुनुवा जाता है)

मुनुवा को तो मैंने किसी तरह अपने सामने से हटाया। जानता हूँ कि बटेर ख़ाँ वहाँ नहीं है। मगर अब करूँ क्या ? या मेरे अल्लाह ! मेरे सर पर यह कैसी आफ़त फट पड़ी ? उफ़ ! मैंने भी बटेर ख़ाँ को औरतों के साथ कैसा सलूक करने का हुक्म दे दिया है। क्या जानता था कि यह मुसीबत मेरे ही सर पड़ेगी। ख़ुद मेरी ही बीवी इसका शिकार होगी। सोचते ही अब रोंगटे खड़े होते हैं और कलेजा फटा पड़ता है। हाय ! बीबी और आबरू दोनों गई। मैं कहीं का भी न रहा। उस कम्बख़्त औरत को एकाएक यह क्या सूझी ? मगर ख़ैर ! अब उसे इस तबाही से किस तरह बचाऊँ ? वह हमेशा पर्दे में रही। कोई उसे पहचानता भी तो नहीं है। और मैं यह शक्ल लेकर कैसे जाऊँ ? हात तेरे नाई की !......अच्छा एक तरकीब सूझी। अपनी बीवी का बुर्क़ा पहन लूँ। बस-बस यही ठीक है। (मकान के भीतर जाता है। बुर्क़ा लेकर निकलता है और उसे पहन कर एक तरफ़ तेज़ी से जाता है)

अङ्क १, दृश्य ४

स्थान—रास्ता

(बटेर ख़ाँ का शेख़ी हाँकते आना)

बटेर—वाह रे मैं ! आज ऐसी बहादुरी दिखाई है कि देखने वालों के छक्के छूट गए। औरतें बहुत दिलेर बन
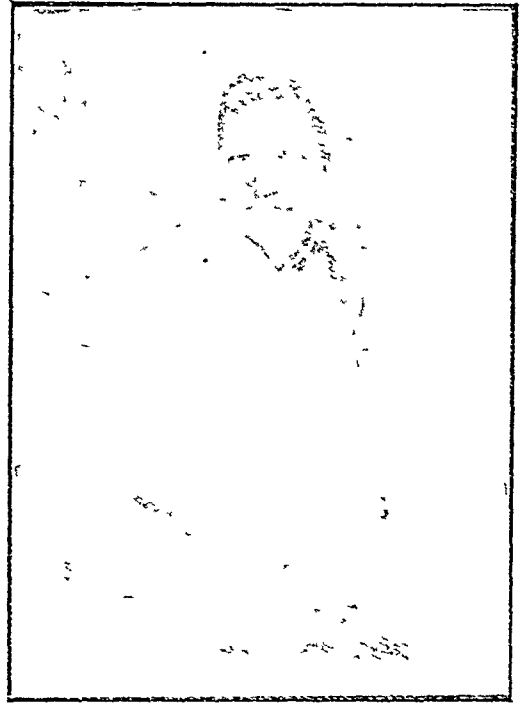
श्रीमती विद्यादेवी
आप झाँसी के यूथलीग की प्रेज़िडेण्ट थीं। आजकल नौकरशाही की मेहमान हैं।

कर आई थीं, मगर मेरी शहज़ोरी के आगे उनकी एक न चली। उन्हें भागते ही बन पड़ा। और भागीं भी तो ऐसी बदहवास होकर कि दो-चार लँगड़ी-लूली भी हो गई हों, तो कोई ताज्जुब नहीं। मगर हाय ! कोई हत्थे नहीं चढ़ी। यही अफ़सोस है। जहाँ एक के पीछे पड़ता था, तहाँ उसके साथ दस-बीस और गिरफ़्तार होने के लिए झट फट पड़ती थीं। इसीसे तो मुझे और ग़ुस्सा चढ़

गया। और बहादुरी ही दिखाता रह गया। क़िस्मत से अभी-अभी एक अकेली भी मिल गई थी और मैं उसे डरा-धमका कर अपने साथ ले भी चला था कि कमबख़्त कलुआ ने आकर सब गड़बड़ कर दिया। उस हरामज़ादे का सर तोड़ दूँगा—साले ने मेरे मनसूबों का प्रोग्राम उलट दिया (एक तरफ़ देख कर) अरे! एक आ रही है, वह आ रही है। वाह री तक़दीर, बिलकुल अकेली है। (इधर-उधर देख कर) कलुआ तो नहीं है। नहीं-नहीं कोई नहीं है।(उसी तरफ़ देख कर) बुर्क़ा पहने हुए है। ओहो,

श्रीमती उषा देवी

आप स्वामी श्रद्धानन्द जी की दौहित्री हैं। आपको भी वर्तमान आन्दोलन मे जेल हुई है।

क़सम ख़ुदा की बड़ी हसीन होगी तभी तो। इसको मैं ज़रूर अपने मकान ले जाऊँगा।

(तीसमार ख़ाँ का बुर्क़ा पहने आना और बटेर ख़ाँ को देख कर लौटने की कोशिश करना)

तीसमार ख़ाँ—(अलग) अरे! मैं किधर निकल आया? यह तो बटेर ख़ाँ है। अब क्या करूँ? (लौटना चाहता है)

बटेर—उधर कहाँ? उधर कहाँ? चल इधर।

(तीसमार ख़ाँ घबड़ा कर लौटने की कोशिश करता है)

बटेर—फिर नहीं सुनती, चल इधर। अरे! यह तो भागने की कोशिश करती है। तेरी ऐसी-तैसी। भागती है हरामज़ादी? (मारता है) फिर भागेगी? चल इधर।

(तीसमार ख़ाँ सामने से भागता है और बटेर ख़ाँ उसके पीछे दौड़ता हुआ जाता है)

अङ्क १, दृश्य ५

स्थान—जङ्गल

(दिलारा का ग़ुस्से में आना)

दिलारा—ग़ज़ब ख़ुदा का ऐसा अन्धेर? औरतों के साथ यह बरताव? हम लोग आदमी न हुईं गोया कुत्ता-बिल्ली हुईं जो पकड़-पकड़ के जङ्गलों में बदमाशों की ख़ूराक बनने के लिए छोड़ दी गईं। लानत है हमारे मियाँ पर, जिनके हुकुम से उनकी माँ-बहिनों की ऐसी बेइज़्ज़ती हुई। यह अब जाना। मैं नहीं जानती थी कि वह यहाँ तक गए-गुज़रे हैं। मेरे लिए ऐसे ख़सम की बीबी होकर रहना चुल्लू भर पानी में डूब मरना है। मैं आज से उनका मुँह तक न देखूँगी। हम लोग औरत ज़ात जो ख़ुद अपनी परछाहीं से डरती हैं और जिन्हें अगर सीधी सड़क पर भी अकेली छोड़ दो तो वह अपने घर का रास्ता नहीं पा सकतीं उन बेचारियों को ऐसे सुनसान मैदान और झाड़ी-जङ्गलों में रास्ता भला कहाँ मिल सकता है? हाय! किधर जाऊँ?

(एक तरफ़ जाती है)

(दूसरी तरफ़ से बटेर ख़ाँ तीसमार ख़ाँ को ढकेलता हुआ आता है)

बटेर—चलो इधर। बहुत नख़रे दिखा चुकी। अच्छा अब ज़रा अपना बुर्क़ा उठाओ, तुम्हारा मुँह तो देखें जानमन! अरे! नाहक़ इतना शर्माती हो, यहाँ कोई नहीं है। (मुँह खोलने की कोशिश करता है, मगर तीसमार ख़ाँ खोलने नहीं देता है) ओहो! इतनी शर्म? अच्छा तो फिर चलो उस झाड़ी की आड़ में। वहाँ तो मुँह दिखाने में न शर्माओगी? अरे? अरे! यह तो फिर अड़ गई? चल हरामज़ादी इधर।

(एक झाड़ी पर तीसमार ख़ाँ को ढकेलता है और झाड़ी में से घबड़ा कर कल्लू लोटा हाथ में लिए निकलता है)

कल्लू—अरे! बाप रे बाप! यह के होय, सार टट्टी बइठत आफ़त कै दिहिस? (तीसमार ख़ाँ को बुर्क़ापोश देख कर) अरे! यह तो कौनो मेहरारू हाय। (हाथ पकड़ कर)

करे तू अस मस्तान है कि झाड़ी में घुसुड़-घुसुड़ मर्दन पर भहरात फिरत है। तोरे छिनार की। फिर अस बद-मासी करिहे ? (लात से मारता है) (बटेर ख़ाँ को देख कर) अउर तू के हो सरउ ? अरे बटेरू ? कहो अबकी इनका बुरक़ा ओढ़ाय के लायो है ? तू का दुनिया में अउर ठौर नहीं रहा ? जब देखो तब हमरे मूड़े पर कोदो दले के है। मारत-मारत सरऊ अचार निकार लेब। मुल पहिले इनकेर छिनरपन छुड़ाय देई।

(तीसमार ख़ाँ को फिर मारता है)

बटेर—(अलग) लाहौल विलाक़ूवत ! इस मरदूद ने फिर गड़बड़ कर दिया।

(दिलारा का आना)

दिलारा—किससे रास्ता पूछूँ ? अरे ! यह कौन औरत है ? यह तो मेरा बुर्क़ा पहने हुए है। यह इसे कहाँ से चुरा के लाई ?

(तीसमार ख़ाँ के सर से बुर्क़ा घसोट लेती है)

कल्लू—अरे ! एहमाँ से यह के निकल पड़ा ? द़रोगा जी !

बटेर—तोबा ! तोबा ! लाहौल विलाक़ूवत ! इन्ना-लिल्ला !

दिलारा—कौन मेरे मियाँ ?

तीसमार ख़ाँ—कौन मेरी बीबी ? हाय ! तुम कहाँ थीं ?

दिलारा—तुम्हारी कार्रवाइयों का तमाशा देख रही थी। चलो दूर हो मेरे सामने से। तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहती।

तीसमार ख़ाँ—अरे !

कल्लू—मत घबड़ाई। खाली वही अलङ्ग नाहीं देखे लायक़ है। आप एहर से देखी। एहर मोंछ-दाढ़ी कुछ नाहीं है। चेहरा बिलकुल साफ़ है, जस मेहरारू के।

तीसमार ख़ाँ—हाय ! हाय ! इसका ख़्याल तो था ही नहीं। (मुँह छिपा कर) बस-बस अब ज़्यादा ज़लील न करो। मैं अपने अख़्तियार का ख़ुद ही शिकार होकर उसकी हक़ीक़त अच्छी तरह से देख ली और समझ गया कि हाँ ख़ुदा भी कोई चीज़ है।

दिलारा—शुक्र है कि तुममें इतनी समझ तो आई। और इसी के साथ यह भी समझो कि तुम ख़ुदा के बन्दे, अपने मुल्क के वाशिन्दे और पबलिक के हौवा नहीं, बल्कि एक सच्चे ख़ैरख़ाह हो।

कल्लू—एही बात पर हजूर हमका माफी दीन जाए। हम हजूर का बहुत मारा है।

तीसमार ख़ाँ—अबे चुप !

बटेर—हाँ हजूर धोखे में मुझसे भी ग़लती हो गई।

तीसमार ख़ाँ—अरे लिल्लाह ! इस वक़्त चुप रहो।

कल्लू—नाहीं हजूर हाथ जोड़ित है। हजूर की डाढ़ी छुइत है, कइयू लात हम अनजाने मार बैठेन है। माफ़ करी। (दाढ़ी छूने के बहाने तीसमार ख़ाँ के मुँह पर से उनके हाथों को हटा देता है)
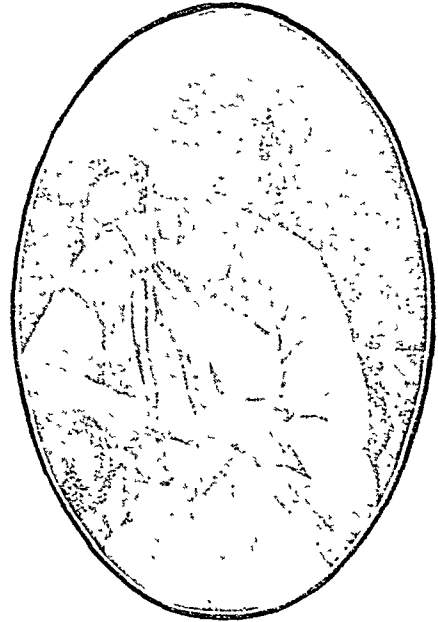
श्रीमती सुभद्रा देवी

कलकत्ता के बड़ा बाज़ार कॉङ्ग्रेस-कमिटी की पहिली महिला-मन्त्रिणी, जिनको छः मास की सज़ा हुई है।

दिलारा—अरे इनकी शकल कैसी बनी है ?

तीसमार ख़ाँ—लाहौल विलाक़ूवत ! (भाग जाता है)

(उसके पीछे दिलारा देखें-देखें कहती जाती है)

कल्लू—(बटेर ख़ाँ से) अरे ! तुहूँ लपक के देख लेयो। अस खचड़ मुँह तोहार बापो न देखिन होइहैं।

(ये दोनों भी उसके पीछे जाते हैं)

पटाक्षेप

सब समझते हैं कि बेड़ा पार है ! हिन्दुओ-मुसलिम में टग-ऑफ़ वार है !!

सफल क्रान्ति के कुछ आधार

[प्रोफ़ेसर बेनीमाधव जी अग्रवाल, एम० ए०]

भारतवासी स्वभाव से बड़े धार्मिक हैं। वे सन्त-महात्माओं का आदर करते हैं, क्योंकि वे उन्हें उच्चतम आदर्शों के प्रतिनिधि मानते हैं। यह एक बड़ा गुण है, किन्तु धर्मभीरुता कभी-कभी हानिप्रद हो जाती है। वे वाह्य रूप की पूजा करने लगते और पाखण्डियों के पञ्जे में फँस जाते हैं। अतएव हम मनुष्य के चरित्र को देखें, न कि उसके वाह्य आवरण को; गुण और कर्म पर ध्यान दें, न कि उसकी जाति व क्षमता पर और यह देखें कि वह स्वयं अपने विचारों और सिद्धान्तों पर कहाँ तक आचरण करता है। हम सच्चरित्र मनुष्य का मान करें, चाहे उसका धर्म, जाति व देश हमसे भिन्न हो। "हे वैद्य, पहिले तू अपना ही इलाज कर" यह अङ्गरेज़ी कहावत बड़ी सारगर्भित है। हमारी सरलता अथवा भोलेपन से कोई अनुचित लाभ न उठा सके, इसके लिए उपरोक्त आलोचनात्मक दृष्टि का विकास हमारे लिए आवश्यक है। यह सच्चे नेताओं को पहिचानने में हमारी सहायक होगी।

जिस प्रकार यूरोप में सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत आचार में (Public and private morality) भेद माना जाता है, वैसा भेद न भारत में है और न हो सकेगा। घर में एक प्रकार का आचरण और बाहर दूसरे प्रकार का आचरण, भारत में पाखण्ड के अन्तर्गत समझा जाता है। ऐसे लोग अपनी चातुरी व क्षमता से भले ही लोगों को दबा लें, परन्तु उनके व्यक्तित्व की ओर भारतवासियों को कदापि श्रद्धा नहीं हो सकती। महात्मा गाँधी के असीम प्रभाव का रहस्य समझना कठिन नहीं। लोगों को विश्वास हो गया है कि इस महापुरुष की आत्मा एवं बुद्धि का समुक्त निश्चय ही उसके वचनों और कार्यों द्वारा प्रकट होता है। वह जो सोचता है, वही कहता है, वही करता है। इसी कारण कभी-कभी उसकी आलोचना करते हुए भी, वे उसके सामने नतमस्तक हो जाते हैं। यह गुण नेताओं के प्रभाव को गहरा एवं स्थायी बनाता है। बिना इसके न नेतृत्व सम्भव है, और न नियमबद्धता!

क्रान्ति की सफलता उसी क्षण सुनिश्चित हो जाती है, जब कि हमारे विचार अपनी सच्चाई, विवेक तथा परिपक्वता के बल से दास-मनोवृत्ति को असम्भव बना देते हैं। विचार-स्वातन्त्र्य के सिद्धान्त जिस क्रान्ति को प्रेरित करते हों, वहाँ यह प्रश्न करने की ज़रूरत नहीं कि यह क्रान्ति सफल होगी व नहीं, वहाँ तो यही प्रश्न हो सकता है कि यह कब तक सफल होगी? जो लोग अन्ध-विश्वास के साथ किसी समय मान्य रूढ़ि की पूजा करते रहते हैं अथवा जो किसी दूसरे के जीवन का अन्ध-अनुकरण करना चाहते हैं, वे अपनी उन्नति क्या करेंगे? उन्होंने तो स्वयं अपने लिए ही एक मानसिक कारागार बना रक्खा है। विचार-स्वातन्त्र्य चरित्रवाद के मार्ग में बाधक नहीं, यह तो उसे और भी सरल तथा विस्तृत बना देता है। जो मनुष्य यह कहता है कि "जो मैं कहूँ उसे करो, जो मैं करता हूँ उसे न करो" उसका प्रभाव भले ही कम हो, किन्तु वह कदापि छली व पाखण्डी नहीं कहा जा सकता। देश के महान प्रश्नों के प्रति भी जो लोग इस नीति का पालन करते हैं, उन्हें हम कमज़ोर कह सकते हैं, हम कह सकते हैं कि वे परिस्थिति से ऊपर उठने में असहाय व असमर्थ हैं, परन्तु हम उन्हें देशद्रोही नहीं कह सकते।

इस सम्बन्ध में एक चेतावनी आवश्यक है। व्यक्तिगत शत्रुता अथवा ईर्ष्या से उत्तेजित होकर बहुधा लोग विचार-स्वातन्त्र्य के नाम पर दलबन्दी करने लगते हैं। इससे भेद-भाव बढ़ता और सभी की अन्त में क्षति होती है। इस नीच मनोवृत्ति के उदाहरणों से भी हमारा इतिहास वञ्चित नहीं। इसके दुष्परिणाम हमारे जातीय जीवन पर अङ्कित हो चुके हैं। जाति, समाज अथवा राष्ट्र के समष्टिगत हित व ध्येय के लिए व्यक्तिगत भावों

का बलिदान कर देने का पाठ भी सीखना आवश्यक है। यदि हम तर्क व प्रमाणों द्वारा बहुमत को अपने पक्ष में नहीं कर सकते, तो हमें विचार-स्वातन्त्र्य का दम भरते हुए विद्रोह खड़ा करना उचित नहीं। यदि हमारी आत्मा हमारे भावों व सिद्धान्तों को बहुमत के सामने तिलाञ्जलि देने से रोकती है तो हमें शान्तिपूर्वक प्रयत्न में संलग्न रहना उचित है। स्वतन्त्रता के उदारतम वातावरण में भी कार्य-कुशलता व सुसङ्गठन के लिए बहुधा

श्री० सवाईमल जी

जबलपुर की शहर कॉङ्ग्रेस कमिटी के डिक्टेटर, जो जेल में हैं। आपकी अवस्था केवल २० वर्ष की है।

कुछ व्यक्तियों के विचारों की अवहेलना अनिवार्य हो जाती है। किन्तु सिवाय धैर्य के इसका कोई चारा नहीं। अन्त में सत्य की विजय होती है। सदा के लिए कोई सबको भुलावे में नहीं रख सकता। यह विरोधात्मक भले ही प्रतीत हो, किन्तु यह एक सत्य है कि स्वतन्त्रता के समष्टिगत आदर्श को जीवित व बलवान बनाए रखने के लिए व्यक्तिगत भावों का बलिदान करना पड़ता है! इसे समझना और इसके अनुसार आचरण करना विचार-स्वातन्त्र्य को ढीला नहीं करता, प्रत्युत दूरदर्शिता को प्रकट करता है। जिन जातियों ने स्वतन्त्रता एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति की है, उनके इतिहास में हमें सैकड़ों उदाहरण ऐसे मिलेंगे, जहाँ पर कि देश व जाति के सङ्कट-काल में महापुरुषों ने अपने वैयक्तिक विचारों की बलि देकर, अपनी सेवा द्वारा जातीय ध्येय की प्राप्ति में हाथ बँटाया। इटली की स्वतन्त्रता के संग्राम में मेज़िनी और गेरीबाल्डी से बढ़ कर कोई देश-भक्त नहीं हुआ। मेज़िनी चाहता था कि स्वतन्त्र इटली में प्रजातन्त्र स्थापित हो। गेरीबाल्डी चाहता था कि उसकी प्यारी जन्म-भूमि नीस नगर स्वतन्त्र इटली के अन्तर्गत हो। किन्तु जिन परिस्थितियों तथा घटनाओं द्वारा इटली को स्वतन्त्रता मिली, वे इन महापुरुषों की उपरोक्त प्यारी आकांक्षाओं की प्राप्ति में बाधक हुईं! तथापि उन्होंने धैर्यपूर्वक इसे सहा। अमानुल्ला शाह का यह विश्वास है कि अफ़ग़ानियों ने उनके विरुद्ध बग़ावत करने में ग़लती की, तथापि वह ख़ून-ख़राबी कर अपने देश का नुक़सान नहीं करना चाहते और आज स्वदेश एवं राज्य-पद से निर्वासित होकर इटली में दिन काट रहे हैं!

आदर्श की प्राप्ति क्रान्ति का ध्येय है, किन्तु नियमानुशासन के बिना यह सम्भव नहीं। स्वतन्त्रता और उच्छृङ्खलता में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। उच्छृङ्खल मनुष्य स्वार्थी व अदूरदर्शी होता है। स्वतन्त्रता से मनुष्यों को अधिकार अवश्य मिलते हैं, किन्तु इनके साथ ही साथ उन्हें अनेक कर्त्तव्यों को भी स्वीकार करना पड़ता है। यदि मेरा यह अधिकार है कि मैं सड़क पर बेरोक-टोक चल सकूँ, तो यह मेरा कर्त्तव्य भी है कि मैं उस मार्ग में स्वयं कभी कोई रोक-टोक उपस्थित न करूँ। जिस प्रकार सामाजिक एवम् व्यक्तिगत विकास के लिए मनुष्य को अधिकारों की ज़रूरत अनिवार्य है, उसी प्रकार समाज को छिन्न-भिन्न होने से बचाने के लिए कर्त्तव्य और नियम भी आवश्यक हैं। विचार-स्वातन्त्र्य का आदर्श है—उदार दृष्टि-कोण का विकास। नियमानुशासन ही विचार-स्वातन्त्र्य को रचनात्मक रूप देता और उसे क्रान्ति की आधार-शिला बनाता है।

जिस देश ने सदियों से परतन्त्र रहने पर भी विश्व-प्रेम के आध्यात्मिक आदर्श की—कम से कम सिद्धान्त

रूप में—उपासना की हो, जिस देश ने वारम्बार पराजित होते हुए भी यतो धर्मस्ततो जयः का मन्त्रोच्चार किया हो, उसी अद्भुत देश में यह भी सम्भव है कि अहिंसावाद क्रान्ति की प्रधान प्रेरक शक्ति घोषित की जाय ! देश की सर्वतोमुखी क्रान्ति को अहिंसा-तत्व की शृङ्खलाओं द्वारा नियमित करना वास्तव में संसार के इतिहास की एक अपूर्व घटना है। इसमें निरस्त्र देश के नेताओं की चातुरी ही नहीं, इसमें एक महात्मा के हृदय की विशालता एवं दयाशीलता ही नहीं, इसमें भारतीय आत्मा की ध्वनि है, इसमें जातीय इतिहास व संस्कृति का उपदेश है, इसमें भारतीय मनोवृत्ति के गम्भीर ज्ञान की झलक है, इसमें संसार की विफल व अर्ध-सफल क्रान्तियों की चेतावनी है, इसमें भारत की बहुसंख्यक एवं जटिल समस्याओं की चेतनता है ! यह नीति मानती है कि हमारे विपक्षी व विरोधी के भी आत्मा है, उसमें भी सद्वृत्तियाँ हैं, उसे अपना मित्र व समर्थक बनाने में ही हमारी सच्ची विजय है। मनुष्यत्व का आध्यात्मिक तत्त्व इसकी प्रेरणा है, विश्वमैत्री का उदार आदर्श इसका ध्येय है। सदियों के तप एवं अध्यात्म-ज्ञान में दीक्षित भारतीय आत्मा इस नीति द्वारा संसार को आत्मोद्धार का नूतन पथ दिखला रही है। यह मानव-इतिहास में आत्मबल की अग्नि-परीक्षा है। इस प्रयोग द्वारा भारत संसार को नवीन शक्ति का सन्देश दे सकेगा।

बहुमत को शान्तिमय उपायों से अपने पक्ष में करना, प्रजातन्त्र के इस सिद्धान्त का समावेश भी अहिंसा की नीति में पाया जाता है। हमारी समस्याएँ कई हैं और कठिन हैं। हम किस प्रकार इनको हल करेंगे, इसके लिए कोई कटी-छटी योजना आज निश्चित नहीं की जा सकती। इसका विकास पारस्परिक सहयोग, प्रयत्न एवं सहानुभूति से ही होगा। हमारे यहाँ ऊँच-नीच का भाव है, राजनीति में साम्प्रदायिक प्रश्न हैं, आर्थिक अवस्था में ज़मींदार व किसान, पूँजीपति व मज़दूर आदि की अनेक समस्याएँ हैं। इनका समाधान हमें करना ही पड़ेगा। यदि ख़ून-ख़राबी हुई तो दलबन्दी होगी, प्रतिशोध व ईर्ष्या के भाव जाग्रत होंगे, इनका नतीजा यह होगा कि सर्वमान्य राष्ट्रीय समझौता असम्भव हो जावेगा। अपने ध्येय की सचाई को सिद्ध करने में तप और कष्ट-सहन का जो प्रभाव पड़ता है, वह गहरा तथा स्थायी होता है। इतिहास में कितनी ही हिंसात्मक क्रान्तियाँ हुईं। जिन्हें सफलता मिली, उन्होंने न्याय-प्राप्ति के प्रयास में कितने ही अन्याय अथवा अत्याचार कर डाले ! जो असफल हुईं उनका दुष्परिणाम प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट हुआ। किन्तु अहिंसात्मक क्रान्ति एक अपूर्व क्रान्ति है; उसकी जो कुछ भी यत्र-तत्र विजय होती है, वह सच्ची एवं स्थायी होती है। उसमें अनन्त विकास का तत्व निहित है। जो हिंसा से जीतना चाहता है
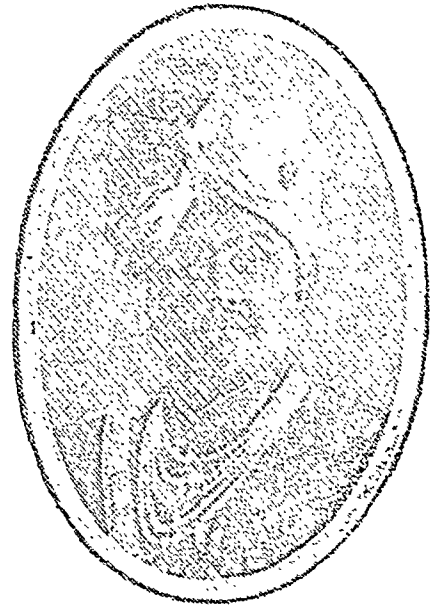
महाराजा नवानगर

[गोलमेज़ के सदस्य]

वह हिंसा द्वारा निर्मूल भी किया जा सकता है। किन्तु जो सत्य द्वारा विजय-कामना करता है, उसको दबाने वाले अस्त्रों का प्रभाव क्षणभङ्गुर होता है। अहिंसात्मक क्रान्ति का सैनिक अपनी दृढ़ता, सत्यनिष्ठा, तप व कष्ट-सहन से विपक्षी के मानव-तत्व का अभिनन्दन करता हुआ उसे सत्य एवं न्याय की प्रभुता स्वीकार करने का निमन्त्रण देता है। कर्त्तव्य-पालन ही उसके लिए सब कुछ है—यही उसकी विजय का साधन है। जब तक वह इस पथ पर चलता है, उसे पराजय की शङ्का होती ही नहीं !!
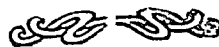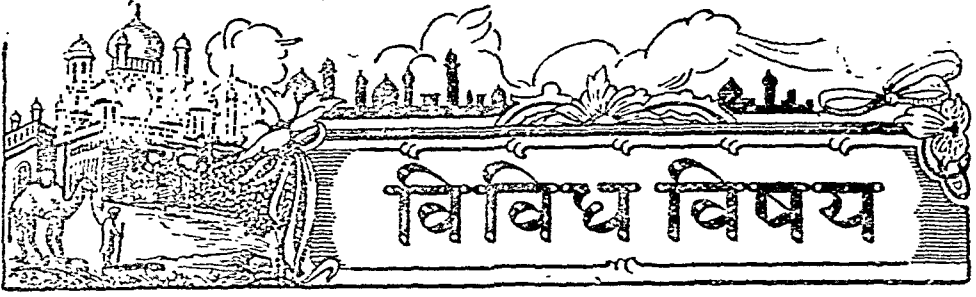
शिक्षा और सदाचार

आधुनिक काल में पाश्चात्य शिक्षा का बड़ा महत्व है। भारतीय विश्वविद्यालयों का सङ्गठन भी पाश्चात्य ढङ्ग पर किए जाने की योजना हो रही है। स्त्री शिक्षा की अधिकांश संस्थाएँ भी इस शिक्षा-शैली से मुक्त नहीं हैं।

चारों ओर से हमारे कानों में यह आवाज़ आ रही है कि शिक्षा के बिना कोई भी जाति सभ्य नहीं हो सकती। यदि हमें आध्यात्मिक, सामाजिक अथवा राजनैतिक—किसी भी प्रकार की उन्नति करनी है तो आवश्यक है कि पहले हम शिक्षित बनें। इसी एक लक्ष्य को लेकर सारे मतमतान्तर, सारी जातियाँ और उपजातियाँ पृथक्-पृथक अपनी शिक्षा सम्बन्धी संस्थाएँ खोल रही हैं। किन्तु हमें देखना यह है कि इस आधुनिक शिक्षा-प्रणाली ने हमारे सदाचार को कहाँ तक उन्नत बनाया है? यह एक प्रश्न है, जो स्वभावतः हमारे हृदयों में उत्पन्न होता है, जब कभी हम आधुनिक संसार के सभ्य समाज के जीवन और आचरण पर दृष्टिपात करते हैं।

इङ्गलैण्ड में रस्किन (Ruskin) १९वीं शताब्दी का एक प्रसिद्ध समालोचक और धुरन्धर साहित्यवेत्ता माना जाता है। उसका कथन है :—

"I do not care that children as a rule should learn either reading or writing because there are very few people in this world who get any good by either. Broadly and practically, whatever foolish people read does them harm ; and whatever they write does other people harm."

अर्थात्—"मुझे इस बात की परवाह नहीं है कि लड़कों को लिखना या पढ़ना अवश्य ही सिखाया जाय, क्योंकि संसार में बहुत थोड़े व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्हें इससे कुछ भी लाभ होता है। अधिकांश में प्रत्यक्ष रूप से तो यही देखा जाता है कि मूर्ख लोग जो कुछ भी पढ़ते हैं उससे उन्हें हानि ही होती है, तथा जो कुछ उनकी लेखनी से निकलता है, उससे दूसरों को हानि ही पहुँचती है।"

स्वयं एक स्कूल-मास्टर का पुत्र होते हुए 'हर्बर्ट-स्पेन्सर' का कथन इस सम्बन्ध में 'रस्किन' से भी अधिक माननीय है :—

"So far, indeed, from proving that morality is increased by education, the facts prove, if anything the reverse. It has been shown from Government returns that the number of juvenile offenders in the Metropolis area has been steadily increasing every year, since the institution of the Ragged School Union, and that the number of criminals who cannot read and write has decreased and the number of those who can read and write imperfectly has increased."

अर्थात्—"यह सिद्ध करने की अपेक्षा, कि शिक्षा से सदाचार की उन्नति होती है, वास्तविक परिस्थिति इसके विपरीत जा रही है। सरकारी रिपोर्ट से प्रकट है कि "रैगड स्कूल युनियन" नामक संस्था की स्थापना से लन्दन में नवयुवक अपराधियों की संख्या में प्रतिवर्ष उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। और प्रतिकूल इसके, इन अपराधियों की संख्या घट गई है, जो नितान्त निर-

हर हैं, किन्तु साथ ही अपूर्ण रूप से कुछ-कुछ लिखना-पढ़ना जानने वालों की संख्या में वृद्धि हो गई है।"

आगे चल कर 'साउथ वेल्स' (South Wales) में लोहे और कोयले की कानों में काम करने वाली स्त्रियों का उदाहरण लेकर हर्बर्ट स्पेन्सर ने सिद्ध किया है कि साधारण शिक्षा की व्यवस्था और सदाचार में कोई पारस्परिक सम्बन्ध स्थिर नहीं किया जा सकता। बुद्धि का विकास कठिनता से आचरण के लिए उपयोगी कहा जा सकता है। वे कहते हैं कि बुद्धि स्वयं एक शक्ति नहीं है, बल्कि एक साधन है; बुद्धि स्वयं कार्य नहीं करती, बल्कि अन्य शक्तियों द्वारा इससे उचित या अनुचित काम लिया जा सकता है। यह कहना कि मनुष्य विवेचना-शक्ति या बुद्धि द्वारा शासित है, इतना ही भ्रमात्मक है, जितना यह कहना कि मनुष्य पर नेत्रेन्द्रिय शासन करती है। असल में बुद्धि वह नेत्र है, जिसके द्वारा कामनाएँ अपनी तृप्ति का मार्ग खोज निकालती हैं। आगे स्पेन्सर महोदय पुनः कहते हैं कि यदि अधिक विद्या और तीव्र बुद्धि ही मनुष्य को सदाचारी बनाने के लिए पर्याप्त होतीं, तो 'बेकन' को इतना कुटिल और मिथ्यावादी तथा सुप्रसिद्ध नेपोलियन को इतना अन्यायी न होना चाहिए था।

सद्गुणहीन, दुश्चरित्र व्यक्ति समाज के लिए अधिक भयानक सिद्ध होते हैं, यदि उनकी बुद्धि को शिक्षा द्वारा तीव्र होने का अवसर मिल जाता है। यदि इन दम्भी तथा मिथ्याचारी व्यक्तियों को शिक्षा से दूर ही रक्खा जाय तो कदाचित इनके भयङ्कर विषैले प्रभाव से समाज बहुत कुछ बचा रहे।

एक पाश्चात्य अनुभवी विद्वान का कहना है कि लन्दन नगर के बड़े से बड़े घराने से लेकर, एक साधारण ग्रामीण दुकानदार तक, इङ्गलैण्ड का व्यापारिक जीवन, छल, कपट और मिथ्याचार से ओत-प्रोत है। वहाँ इस कपट-जाल एवं कुटिल नीति का बाज़ार इतना गर्म है कि एक शुद्ध सत्याचरणशील व्यापारी आधुनिक व्यापारिक सङ्घर्ष में कोई स्थान ही नहीं रखता। वहाँ प्रत्येक स्थान पर झूठी नाप, झूठी तौल, मक्कारी और अधमता का दौर-दौरा रहता है।

अस्तु, हमारे सामने एक बड़ा भारी प्रश्न यह है कि क्या बड़े से बड़े अपराधी जेलों की चहारदीवारी के अन्दर ही पाए जाते हैं? साधारण रूप से तो हम देखते हैं कि छोटे-छोटे कपटपूर्ण व्यवहार तथा आचरण सदा दण्डित होते रहते हैं, परन्तु बड़े-बड़े दुर्व्यवहारों और मिथ्याचरणों को कभी कोई पूछता भी नहीं। विविध कम्पनियों की व्यवस्था, तथा बड़े-बड़े व्यापारिक क्षेत्रों में सैकड़ों निरपराध मनुष्यों का रक्त चूस कर धन-राशियाँ कमाई
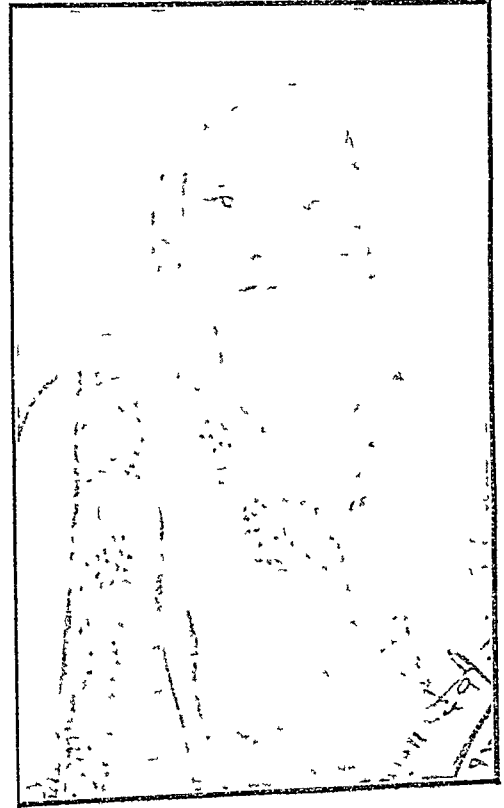
श्रीमती आत्मादेवी सूरी

दिल्ली की एक उत्साही राष्ट्रीय कार्यकर्त्री, जो इस समय लाहौर जेल में हैं।

जाती हैं। उनमें ऐसे-ऐसे उपायों का अवलम्बन किया जाता है, जो कपटपूर्ण और अन्याययुक्त होते हुए भी क़ानूनी शिकञ्जे से दूर रहते हैं। अधिकतर ये विकट अपराध उन्हीं शिक्षित व्यक्तियों द्वारा किए जाते हैं, जिन्हें समस्त सुविधाएँ तथा आनन्द भोगने के सारे साधन प्राप्त हैं। फिर भी लुत्फ़ यह है कि आधुनिक सभ्य समाज उनके कुकृत्यों का समर्थन करता है।

अब भारतवर्ष की ओर दृष्टिपात कीजिए। यहाँ भी वही निराशाजनक स्थिति सामने है। वकील, डॉक्टर और देश के नेता निस्सन्देह सभी शिक्षित होते हैं, किन्तु उनमें से कितने पवित्र सत्याचरण और ईमानदारी के पक्षपाती हैं और कितने निष्काम भाव से देश की सेवा करने में समर्थ हैं? कितने वकील या बैरिस्टर ऐसे हैं, जो इस बात को भली-भाँति जान कर, कि अमुक व्यक्ति वास्तव में चोर अथवा हत्यारा है, उसके मुक़द्दमे की पैरवी करने से घृणा करते हैं? कितने डॉक्टर ऐसे हैं, जो स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करते हुए नहीं हिचकते कि उनसे अमुक रोग के निदान में भूल हो गई और उन्होंने अनुचित इलाज करके रोगी की दशा और भी भयङ्कर बना दी? कितने प्रोफ़ेसर या अध्यापक ऐसे हैं, जो छात्रों के सामने अपनी भूल स्वीकार करते हुए लज्जित नहीं होते और इस प्रकार होनहार नवयुवकों को अशुद्ध मार्ग का अवलम्बन करने से बचा लेते हैं? क्या हम प्रत्यक्ष नहीं देखते कि बड़े-बड़े धुरन्धर नेता अपनी नीति और सिद्धान्तों को समय-समय पर बदलते रहते हैं—इसलिए नहीं कि उन्हें अपने पूर्व निश्चित सिद्धान्तों में कोई दोष दृष्टिगोचर होता है, बल्कि केवल इसलिए कि या तो समाज में अपना नाम और अपनी प्रतिष्ठा स्थिर रख सकें, अथवा राजनैतिक क्षेत्र में किसी शत्रु को नीचा दिखा सकें। इस देश में कतिपय प्रसिद्ध नेताओं के ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है, जिन्होंने अधीनस्थ कमिटी अथवा परिषद् पर अपने वैयक्तिक विचारों की अन्यायपूर्ण छाप लगाने में तनिक भी सङ्कोच नहीं किया और साथ ही उन व्यक्तियों को घोर अपमानित किया, जिन्होंने उनका विरोध करने का प्रयत्न किया।

शिक्षा-विभाग का पवित्र क्षेत्र भी इस विषाक्त वातावरण से मुक्त न रह सका। वहाँ भी कपट, अन्याय और पक्षपात की तूती बोल रही है। विश्वविद्यालयों की उच्च परीक्षाओं में दिए जाने वाले अङ्कों (Marks) के व्यापार को जाने दीजिए। इस पर समाचार-पत्रों में आलोचनाएँ होती ही रहती हैं। इण्ट्रेन्स की परीक्षा के विविध केन्द्रों पर निरीक्षकों (Guards) के कदाचार के पर्याप्त प्रमाण विद्यमान हैं। क्या ये सभी निरीक्षक सभ्य और शिक्षित नहीं होते? उनमें से कोई वकील होते हैं और कोई अध्यापक। फिर भी कितनी लज्जा की बात है कि वे परीक्षार्थियों को गुप्त रूप से पुस्तकें देकर, प्रश्नों के उत्तर बता कर, अक्षर-रचना की अशुद्धियों (Spelling mistakes) की ओर सङ्केत करके, जॉमेट्री की शक्लें खींच कर, तथा अन्य उपायों द्वारा परीक्षा-हॉल में उनकी सहायता करते हैं। इस दुराचार के सुधार का कोई भी प्रयत्न सफल नहीं होता, क्योंकि सहायक और सहायता पाने वाले दोनों ही समान रूप से कलुषित-वृत्ति रखते हैं। अतः सचाई पर सफलतापूर्वक पर्दा डालना आसान होता है। परिणाम-स्वरूप यह पापाचार वर्षों से चला आ रहा है, जिसे छोटे से बड़े तक सभी जानते हैं, किन्तु कोई भी उँगली उठाने का साहस नहीं करता। विक्टोरिया कॉलेज जैसूर (Jessoore) के प्रसिद्ध विद्वान मि० रमेशचन्द्र बनर्जी, एम० ए०, लिखते हैं कि सन् १९२८ ई० में उनके एक मित्र को, जो एक परीक्षा-केन्द्र में निरीक्षक का कार्य सम्पादन के लिए भेजे गए थे, कुछ विद्यार्थियों ने इसलिए पीटा था कि उन्होंने एक अन्य निरीक्षक के अधम कार्य का विरोध किया था, क्योंकि वह एक-परीक्षार्थी के प्रश्नों के उत्तर लिखा रहा था। गत वर्ष लेखक के एक मित्र को एक परीक्षा-केन्द्र में निरीक्षक के रूप में, विशेषकर इसलिए भेजा गया था कि वह प्रधानाध्यापक के दो-चार निकटतम विद्यार्थियों की परीक्षा-हॉल में सहायता कर सकें। यह है हमारे देश की स्थिति और यह हैं कुछ इस कदाचार के नमूने, जो सदाचार (Morality) का गला घोट रहे हैं।

सार्वजनिक जीवन के इस अन्धकारमय दृश्य की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना ही इस लेख का मुख्य प्रयोजन है। इस विषय में सुधार की कितनी आवश्यकता है, यह विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं। यही कारण हैं जो शिक्षा-प्रणाली को बदनाम किए हुए हैं। निस्सन्देह हमारे शिक्षित समुदाय ने ऐसे-ऐसे उच्च कोटि के सराहनीय कार्य किए हैं, जिनके लिए हमें अभिमान होना चाहिए। किन्तु फिर भी उपरोक्त दूषणों और त्रुटियों को दूर करने की आवश्यकता है। अन्यथा कोरा प्रकृतिवाद हमें न जाने कहाँ से कहाँ बहा ले जायगा।

सभी बातों पर हर पहलू से पूर्ण विचार करके हम इस परिणाम पर पहुँचने के लिए बाध्य होते हैं, कि देश की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली—जिसमें केवल बुद्धि की शिक्षा और उसके विकास पर ही ज़ोर दिया जाता है—सदाचार

की उन्नति के लिए पर्याप्त नहीं है। जब तक कि बचपन ही से सदाचार, आस्तिकता और अध्यात्मवाद की छाप बालकों के मस्तिष्क पर न लगाई जाय, तब तक कोरा बुद्धि का विकास पापवृत्तियों के सामर्थ्य की ही अभिवृद्धि करेगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि एक शिक्षित डाकू अथवा हत्यारे के लिए क़ानून के शिकञ्जे से बच कर, सार्वजनिक जीवन व्यतीत करते हुए भी, पापवासनाओं को तृप्त करना कहीं सुगम होगा। अतः हमें शिक्षा का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

—बुद्धिसागर वर्मा, विशारद,
बी० ए०, एल० टी०

* * *

वैधव्य

भारतीय विधवाओं की अवस्था सर्वथा करुणोत्पादक है। इनकी दर्दनाक दशा देख पत्थर सा कलेजा भी पिघल जाता है। बरबस सहानुभूति हो जाती है। फिर भी कुछ स्वार्थियों की छत्र-छाया में इन्हें सुख-शान्ति मिलने की आशा नहीं।

पण्डिताभिमानी धार्मिकों का फ़तवा है—"वैधव्य-दुख झेल कर ही विधवा स्वर्ग जायगी", पर क्या इन्हें कुछ वसन्त की भी ख़बर है? सारे संसार की जन-संख्या क़रीब डेढ़ अरब की है, और कहीं भी विधवाओं का पुनर्विवाह स्वर्ग की राह में रोड़ा नहीं अटकाता। और क्या, तीस करोड़ भारतीयों में भी, सात करोड़ मुसलमानों के घर और उतने ही अछूतों में विधवाएँ ठुकराई नहीं जातीं। आर्य-समाजी, ब्रह्म-समाजी और कृस्तानों में भी विधवाओं को पूरी स्वतन्त्रता है। हलवाई, कुर्मी तथा अहीरों ने भी अपनी बहू-बेटियों के दुखों को देखा है। केवल पाँच-सात करोड़ ब्राह्मण, क्षत्रियों में ही यह प्रथा है। उसमें भी स्त्रियों की संख्या पुरुषों से आधी ही होगी, और थोड़ी सी विधवा! तब क्या कुछेक लाख विधवाओं को सता कर ही इन धर्म के ठेकेदारों का स्वर्ग बसेगा?

सिन्दूर-विहीन ललाट के सिवा सधवा और विधवा में क्या भेद है? ईश्वर की ओर से यदि उसके शरीर में लावण्य का लेप सधवा की भाँति लगाया नहीं जाता, श्रेणी का गौरव और अपाङ्गों—नयन का कौतूहल छीन लिया जाता, सृष्टि करने की शक्ति नष्ट कर दी जाती, तब एक मत से सबको मानना पड़ता कि यह ईश्वरीय आज्ञा है, और उसकी अवहेलना करने का साहस किसी को भी नहीं होता। लेकिन यहाँ की हालत तो माक़ूल के बदले प्रतिकूल है।
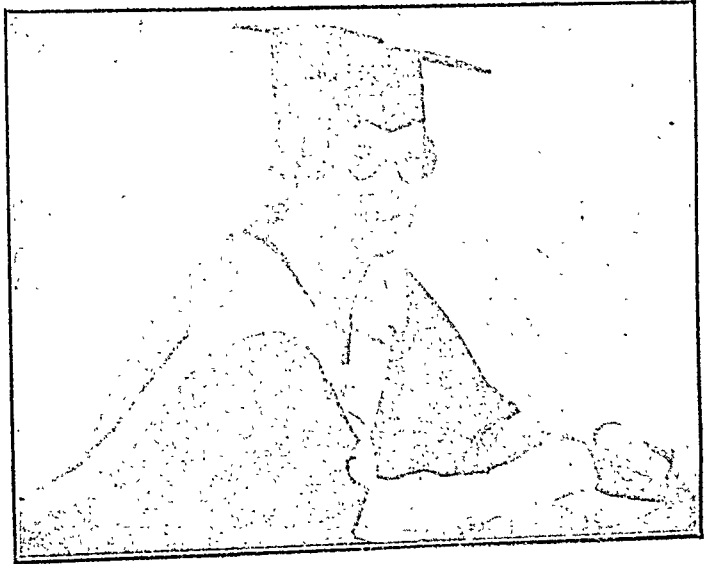
मिस ए० जी० गिलेस्पी

आप हसन (मैसूर) के अस्पताल में लेडी डॉक्टर हैं और हाल ही में स्थानीय डिस्ट्रिक्ट वोर्ड की मेम्बर नियुक्त की गई हैं।

मदन का पञ्चम शर पुरुषों की भाँति ही तो स्त्रियों पर पड़ता है। तब यह कौन सा नियम है कि अपत्नीक शादी करे और विधवा ज़ार-ज़ार रोवे। काम्य-विवाह की आज्ञा शास्त्रकारों ने खुले-आम दे रक्खी है और पुरुषों ने इसे ख़ूब अपनाया भी है। फिर भी हिन्दुओं के घर की विधवा कातर है, तरसती है और साँझ-सवेरे झाडुओं की मार से देह का दर्द मिटाती है!

किसी का कथन है कि—विधवा-विवाह होने से पतिव्रताओं की संख्या कम हो जायगी। पर उन्हें मालूम नहीं कि कोई भी माथा रखने वाला पुरुष एकादशी का व्रत, एकादशी बीते नहीं रखता। उसी तरह पति के मर जाने पर स्त्रियों का पातिव्रत्य कैसा? हाँ, यदि वह दूसरी शादी कर ले तो फिर से पतिव्रता हो सकती हैं।

—साहित्याचार्य 'मग'

* * *

पाश्चात्य महिलाओं का दुखमय जीवन

आजकल अक्सर पूछने पर लोग कहते हैं कि पाश्चात्य स्त्रियाँ सुखी हैं, उन्हें सब प्रकार की स्वतन्त्रता हासिल है। वे उच्च श्रेणियों तक बेरोक-टोक पढ़ सकती हैं, पब्लिक में व्याख्यान दे सकती हैं, थियेटरों में पार्ट ले सकती हैं, और क्लबों में गाना-बजाना और नाचना ख़ुशी से सीख सकती हैं। पर क्या अभी तक किसी ने यह विचार किया है कि उनकी अन्दरूनी हालत क्या है? यदि सच पूछा जाय तो हम यही कहेंगे कि हमारे देश की स्त्रियाँ मिस मेयो की बहिनों से कहीं अच्छी अवस्था में हैं। कम से कम इन्हें पाश्चात्य स्त्रियों की तरह विवाह की खोज में वर्षों तक भटकना तो नहीं पड़ता है। उन देशों में जब कुमारी १५-१६ वर्ष की हो जाती हैं तो उनके माता-पिता उनसे अपनी शादी करने के लिए कहते हैं। अमीरों के घर की तो बात ही क्या, उन्हें तो किसी प्रकार वर मिल ही जाता है, पर निर्धनों के घर की कुमारियों को इस विशाल संसार में अपना पति ढूँढ़ना अनिवार्य हो जाता है। यदि न ढूँढ़ें तो भूखों मरें। सहृदय पाठक सोचें, उस समय उनकी क्या अवस्था होती होगी। नाचना-गाना इत्यादि पाश्चात्य सभ्यता के मुख्य अङ्ग समझे जाते हैं। इन विद्याओं में यदि वे कुमारियाँ पारङ्गत नहीं हैं, तो उनकी कुछ भी क़द्र नहीं। अतः यह कला उन्हें अनिवार्य रूप से बाल्य-काल से ही सीखनी पड़ती है। अनेक युक्तियाँ वे दिन-रात सोचा करती हैं, जिससे शीघ्र विवाह हो। इस समय वे गृह-शिल्प और धार्मिक शिक्षाएँ तो कहाँ से सीखेंगी, वरन अपनी पवित्रात्मा को सदैव कलुषित कल्पनाओं से काली ही करेंगी। उन्हें गाना-बजाना और अर्द्ध-नग्न होकर नाचना बलपूर्वक सिखाया जाता है। क्या ये कर्म हमारे देश के भाँड़ों के ऐसे नहीं हैं?

जिधर देखिए उधर ही इन कुमारियों की भरमार दीख पड़ेगी। क्या क्लब, क्या मजलिस, क्या महफ़िल—सभी जगह वे अपने भावी-पति की तलाश में ग़र्क़ रहती हैं। यदि दैव-संयोग से कोई आफ़त का मारा पति इन्हें मिल भी गया तो यह आशङ्का उनको हमेशा सताया करती है कि यह पति क्षणिक है, या स्थायी। ऐसी हालत में प्रेम की आशा ही क्या की जा सकती है?

कितनी स्त्रियाँ तो जन्म भर पति-विहीन ही रह जाती हैं और 'हाय ब्याह' 'हाय ब्याह' कर जहन्नुम में चली जाती हैं। कितने पुरुष भी जन्म भर "ब्रह्मचारी" ही रहते हैं। इनके चरित्र पर आक्रमण करना हमें उचित प्रतीत नहीं होता।

कितनी ही बालिकाओं को, जब कोई चारा नहीं रहता, तो वे होटलों या पोस्ट-ऑफ़िसों में नौकरी करने लगती हैं और जन्म भर जूतों में स्याही लगाते, बर्तन माँजते और झाड़ू देते रह जाती हैं। ये बेचारी दासियों की तरह ज़िन्दगी व्यतीत करती हुई संसार से चल बसती हैं। आप कल-कारख़ानों में जाकर देखें तो पता चलेगा कि सैकड़ों अल्प-वयस्का किस प्रकार वहाँ दिन भर अविरल एवं कठोर श्रम करती रहती हैं। यह है वहाँ के सुधारवादियों का स्त्री-जाति के प्रति सम्मान! और यह है हमारे देश के जैण्टिलमेनों का नरम मुलम्मा, जो सदा इन बुराइयों पर फेरा करते हैं।

अधिक बातें कह कर हम पाठकों के हृदय को कलुषित करना नहीं चाहते। इन्हीं दो-चार बातों से हम उन पाश्चात्य सभ्यताभिमानियों की केवल आँख खोल देना चाहते हैं, जो उस सभ्यता की बिजली की चका-चौंध के चक्कर में पड़े भटक रहे हैं। ख़ुदा उन 'सभ्य' जातियों को शीघ्र नरक से निकाले।

—उपेन्द्रनारायण सिंह

* * *

बकराईद (क़ुर्बानी ईद)

प्राचीन काल में इब्राहीम नाम के सुप्रसिद्ध महात्मा हो गए हैं, इनका एक परम भक्त पुत्र इस्माइल नाम का था। इब्राहीम परमेश्वर के बड़े भक्त थे और ईश्वरीय आज्ञा ही के सदैव पालनार्थ महान कष्ट उठाते थे। एक समय ईश्वर ने इनकी भक्ति के परीक्षार्थ स्वप्न में कहा कि "अब तू सचेत हो और क़ुर्बानी दे" (बलिदान कर)। इब्राहीम ने प्रथानुसार प्रातःकाल १०० ऊँट बलिदान कर दिए, पर फिर भी स्वप्न में कहा गया कि "भक्त इब्राहीम, अपनी प्रिय वस्तु का बलिदान कर।" भक्त इब्राहीम ने प्रातःकाल फिर अपनी जायदाद को दान कर दिया, और जितने ऊँट थे सबका बलिदान कर दिया, पर फिर भी स्वप्न में आदेश हुआ कि "मेरे प्यारे भक्त, अपने एकलौते पुत्र का बलिदान शीघ्र दे।"

बस इब्राहीम ने प्रातःकाल अपने आज्ञाकारी पुत्र को बुला कर कहा कि बेटा चलो आज जङ्गल में ईश्वरीय आज्ञा का पालन करेंगे। पुत्र को कब इनकार हो सकता है। सहर्ष पिता के साथ जङ्गल को चले। पिता ने एक तेज़ छुरी और रस्सी साथ में लेकर जङ्गली राह पकड़ी। वहाँ ले जाकर उस स्वप्न को अपने पुत्र से स्पष्ट कहा। इस्माइल ने कहा—पिता जी, मेरे सौभाग्य के कारण यह आदेश हुआ है। मैं तैयार हूँ, पर इन बातों पर ध्यान अवश्य दीजिए :—

"मेरे बलिदान की माता को ख़बर बिलकुल मत दीजिएगा। बलिदान के समय मेरी आँखों में ६ पट्टियाँ और अपनी आँखों में भी ६ पट्टियाँ बाँध लीजिए। तथा रस्सी से मेरा शरीर अच्छी तरह कस कर बाँध दीजिए। जिससे आपको व मुझे मोह उत्पन्न न हो जाय। इस्माइल के आदेशानुसार पिता ने इसी भाँति करके जो छुरी चलाई तो ईश्वरीय दूत ने भक्त के रक्षार्थ इस्माइल को उठा लिया। तथा वहाँ एक भेड़ आ गई और उस पर ही बालक के धोखे छुरी चली। उस पशु ने कुछ शब्द मैं-मैं वग़ैरह कहे, जिससे महात्मा इब्राहीम को अपने पुत्र पर बड़ा क्रोध आया, किन्तु आकाशवाणी के होने से शीघ्र शान्ति हो गई।
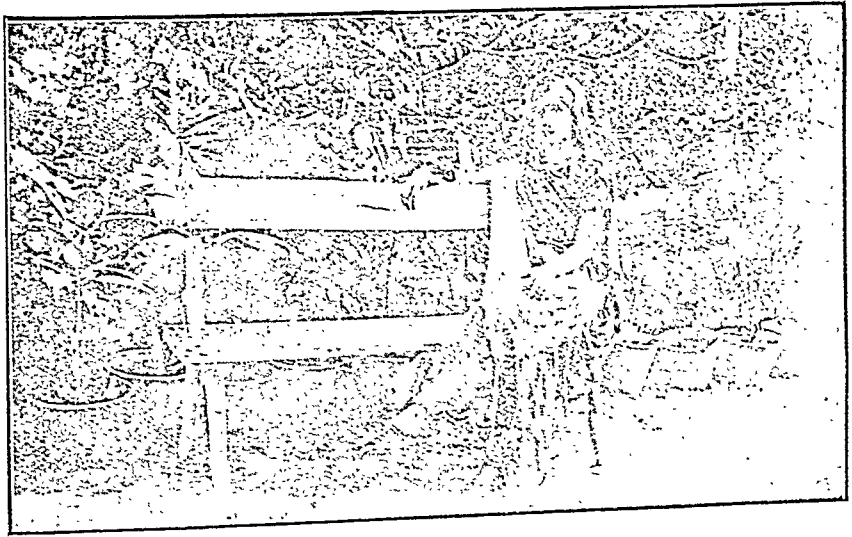
श्रीमती कृष्णाकुमारी सिन्हा

आप बनारस के हिन्दू विश्वविद्यालय की विद्यार्थिनी हैं। आजकल आप राष्ट्रीय आन्दोलन में बड़ी लगन से भाग ले रही हैं।

मुसलमानों का यह धार्मिक त्योहार जिलहज्ज* माह की दसवीं तारीख़ को बड़े प्रेम व हर्ष से मनाया जाता है। अपने-अपने स्थानों में मसजिद में एकत्र होकर ईश्वराराधना करते, दान करते, अनाथों, मित्रों को अच्छे-अच्छे भोजन कराते और क़ुर्बानी (बलिदान) करते हैं। और उस महात्मा इब्राहीम व इस्माइल की पूजा करते, तथा उपासे भी रहते हैं।

ईदें दो होती हैं—(१) ईदुल फ़ित्र (मीठी ईद),

*मुस्लिम बारहवाँ माह।

(२) ईदुलज़ोहा (बकराईद)। इनमें अन्तर नाम से ही प्रकट होता है कि एक त्योहार मीठे भोजन का सूचक है, दूसरा "बकरा" मांस के भक्षण का सूचक है। इनके इतिहास में भी अन्तर है। हमें आज बकराईद से ही सम्बन्ध है, इसीलिए मीठी ईद का विवरण फिर कभी प्रकट करने का साहस करेंगे। बकराईद इसीलिए नाम रक्खा गया है कि उस दिन बकरे का बलिदान ही अधिकांश किया जाना चाहिए।

क़ुरानशरीफ़ में स्पष्ट आज्ञा है कि "तू क़ुर्बान हो जा" पर मुसलमान ख़ुद का बलिदान न कर बेचारे दीन पशुओं का बलिदान करते हैं। हाँ, किसी धर्मदेव ने कहा है कि *मुसलमान* एक तलवार के *अनुसार हैं*। इसलिए इनको निर्दयी स्वभाव रखने के लिए कम से कम साल भर में एक पशु का वध करना ही चाहिए, जिससे इनमें दया न आ जावे। दूसरे मुस्लिम विद्वान कहते हैं कि *मुसलमान गोश्त (मांस) अधिक पसन्द करते हैं*, इससे कम से कम इस त्योहार का थोड़ा सा सङ्केत पाकर दीनों, मित्रों और कुटुम्बियों को अच्छा पदार्थ खिलाने व खाने के बहाने क़ुर्बानी करते हैं। पर पवित्र क़ुरान में लिखा है कि "*बलिदान न ख़ुदा को पहुँचता है, न ख़ुदा चाहता है।*" मैं भी यही समझता हूँ कि न तो गोश्त और ख़ून ख़ुदा को पहुँचता है और न समझदार ईश्वर को पहुँचाना ही समझते हैं और न ऐसा समझना ही चाहिए। हमारे कट्टर धर्मान्ध भ्राता इस दिन कहीं-कहीं अपने पड़ोसी भाइयों को दुखित करने के लिए बड़े-बड़े षड्यन्त्र रचते हैं और इस प्रकार मुस्लिम धर्म को कलङ्कित करते हैं। मुझे आश्चर्य है कि नाम बकराईद और करें गोवध! यह क्या है? यह केवल अपने पड़ोसियों को चिढ़ाना है। मान लिया कि किसी मुस्लिम-ग्रन्थ ने व किसी मुस्लिम मौलाना ने हमें गोवध की आज्ञा भी दी है, तो समयानुकूल हम अपनी स्थिति के अनुसार उस आज्ञा को भङ्ग करना भी अपना दोष नहीं समझेंगे। गोमाता से आज भारत को हर प्रकार का सुख प्राप्त होता है और भारत में ही हमको रहना है, फिर ऐसे उपयोगी पशु का वध करके अपने हाथ से अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारना नहीं, तो क्या है? दूसरे अपने पड़ोसियों को दुखित करना घोर पाप ही नहीं, बल्कि अनर्थकारी है। इस दूषित कृत्य को एकदम बन्द कर देना चाहिए। यदि तुम्हारा धर्म सच्चा है और मोक्ष को सरल मार्ग से ले जाने वाला है तो तुम ख़ुद सच्चे बनो और अपने धर्म-सिद्धान्तों से जगत को मोहित करके बताओ कि हमारा पवित्र धर्म इन सिद्धान्तों का समुद्र है।

इस त्योहार से होनहार सन्तति को शिक्षा मिलती है कि हमारे पूर्वज कैसे भक्त, आज्ञा-पालक, वीर, साहसी और धर्माभिमानी थे।

—सय्यद क़ासिमअली

* * *

स्त्री-स्वातन्त्र्य संग्राम

हमारे वर्तमान स्वातन्त्र्य आन्दोलन में जो सब से अधिक महत्व की बात है, वह यह है कि इसमें स्त्रियाँ भी सम्मिलित हैं। उन्होंने, यदि पुरुषों से अधिक नहीं, तो उनके बराबर ही वीरता, धैर्य, सहनशीलता और आत्म-त्याग का परिचय दिया है। जिस क्रियात्मक (Active) और सामूहिक रूप से वे आज पुरुषों का साथ दे रही हैं, वह तो भारतवर्ष के इतिहास में एक अभूतपूर्व बात है। हम अपने इतिहास के अन्दर लक्ष्मीबाई और दुर्गावती दिखा कर अपनी स्त्रियों की स्वतन्त्रता और वीरता का दम नहीं भर सकते। वे तो केवल वैयक्तिक प्रतिभा के उदाहरण हैं। हम भारतीय राजपूतिनियों के जौहर-व्रत को भी एक निष्क्रिय (Passive) साहस से बड़ा नाम नहीं दे सकते। और इस प्रकार हम भारत की वीराङ्गनाओं के वर्तमान साहस और वीरता के कार्यों को उनके अतीत के किसी भी प्रशंसनीय कार्य से अधिक उच्च स्थान देते हैं।

हमारे देश के राजनैतिक आन्दोलन के साथ-साथ कई आन्दोलन चल रहे हैं। स्त्री-स्वातन्त्र्य का आन्दोलन इसमें प्रमुख है। इस आन्दोलन ने स्त्री-स्वातन्त्र्य के आन्दोलन को इतनी बड़ी और इतनी आवश्यक सहायता पहुँचाई है, जिसके न मिलने से ही स्त्री-स्वातन्त्र्य का आन्दोलन, देश के लिए इतने महत्व का होने पर भी, केवल शिथिल रूप से चल रहा था। वह बड़ी और आवश्यक सहायता कौन सी है? अब तक हमारे देश में स्त्री-स्वतन्त्रता के पक्षपाती केवल वे पुरुष थे, जिनका हृदय

स्त्रियों की दुःखमय दशा से द्रवीभूत हो रहा था। स्त्रियों की ओर से कोई माँग न थी, उनकी ओर से कोई दावा न था। यह एक इतिहास-सिद्ध बात है कि कोई भी गिरी हुई जाति अथवा संस्था उस समय तक अपनी दशा सुधार नहीं सकती, जिस समय तक वह स्वयं प्रयत्नशील नहीं होती। स्वतन्त्रता, चाहे वह किसी देश की हो या किसी समाज की, देने की चीज़ नहीं है—वह तो ले सकने की चीज़ है। स्त्रियाँ आज हमारे साथ-साथ देश के संग्राम में पड़ कर अपनी शक्ति का ज्ञान कर रही हैं। एक बार उन्हें जहाँ अपने अन्दर पुरुषों के समान शक्ति का भान हुआ, वे पुरुषों के समान अधिकारों की माँग करने में देर न लगाएँगी। आज का आन्दोलन उन्हें अपने बल पर, अपने अधिकारों के लिए, खड़ा होने की शिक्षा दे रहा है। और हमारी स्त्रियाँ उसे तत्परता से सीख भी रही हैं।

स्त्रियों की इस तत्परता और जाग्रति पर कौन ऐसा भारतवासी है, जिसे अभिमान न होगा। पर साथ ही साथ हमें अपनी स्त्रियों को बतला देना चाहिए कि अभी उनके काम का केवल श्रीगणेश ही हुआ है। अभी उनके संग्राम का केवल बिगुल ही बजा है और उनमें से केवल कुछ ही लाइनों में आकर खड़ी हो पाई हैं। उन सब कार्यों का ध्यान रखते हुए भी, जो उन्होंने इन छः महीनों के अन्दर किए हैं, यह कहना पड़ता है कि उनके साथ नगरों की प्रायः पढ़ी-लिखी स्त्रियों के सिवा और कौन हैं? अपढ़ स्त्रियाँ एक बहुत बड़ी संख्या में अभी अपने घरों की दीवालों के घेरे में पड़ी हुई हैं! ग्रामों के अन्दर तो ऐसा मालूम होता है, कि समय परिवर्तनशील है ही नहीं। स्त्री-जाति की सच्ची जाग्रति तो उस समय होगी, जब हम क्या नगर, क्या ग्राम, क्या पढ़ी और क्या अपढ़—सभी के अन्दर अपनी स्वतन्त्रता पाने की चाह देखेंगे। वह समय आवेगा अवश्य; पर उसके लिए हमारी स्त्रियों को बलिदानों के लिए तैयार होना पड़ेगा। सामाजिक दासता दूर करना राजनैतिक दासता दूर हटाने से, अधिक नहीं, तो किसी तरह कम कठिन काम नहीं है! हम इस कठिनता को दिखा कर अपनी स्त्रियों को डराना नहीं चाहते। हमारा उद्देश्य तो यह है कि वे उनके आने के पहले ही अपने को पूर्ण रीति से तैयार कर लें; जिससे निर्भीकता से उनका सामना कर सकें।
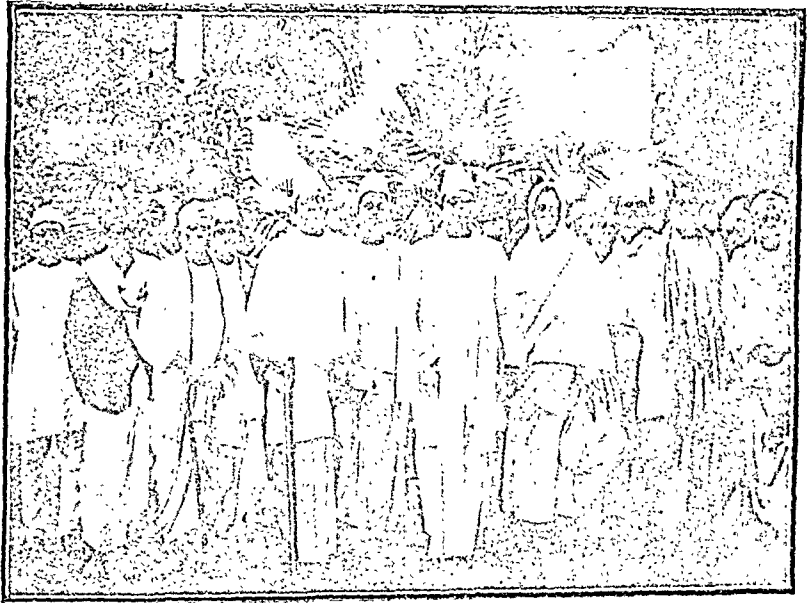
अभी हाल में मिस स्लेड (मीराबाई) कोकोनाडा के गाँधी-स्कूल का निरीक्षण करने गई थीं। यह चित्र उसी अवसर पर लिया गया था।

हम सदा इस बात की आशा रखते हैं कि भारत की वीर नारियाँ, कठिनाइयों के आने पर, अन्य देश की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक साहस और दृढ़ता का उदाहरण संसार के सामने उपस्थित करेंगी।

नारी-स्वतन्त्रता का आन्दोलन आज केवल भारतवर्ष में ही नहीं, संसार के अन्य-अन्य देशों में भी चल रहा है। पर जितने वेग से यह रूस के कुछ भागों में चल रहा है उतना कहीं भी नहीं। आज हम रूस के स्त्री-स्वातन्त्र्य आन्दोलन की कुछ चर्चा करके भारत की

स्त्रियों को यह बतलाना चाहते हैं, कि जब समय आवे तब वे भी रूसी स्त्रियों के समान अपने आपको समाज-सुधार की बलिवेदी पर क़ुर्बान कर दें।

अभी थोड़े ही दिन की बात है कि समाचार-पत्रों में उज़्बेकिस्तान के सोवियट प्रजातन्त्र की उप-सभानेत्री के विषय में एक लेख छपा था। उनके विषय में यह कहा जाता है कि जब वे १२ वर्ष की थीं तब एक साठ-पैंसठ वर्ष के बूढ़े के हाथ बेंच दी गई थीं। उस बूढ़े की चौथी बीवी बन कर एक बड़े कड़े पर्दे के अन्दर वे किसी तरह दो वर्ष रहीं। फिर वे ताशक़न्द भाग गईं। भाग जाने में अनेकों बड़े-बड़े सङ्कट थे। यदि वे पकड़ जातीं, तो उन्हें अवश्य ही मृत्यु-दण्ड मिलता। ताशक़न्द में एक निर्वासित, अनाथ, और दाने-दाने को मुहताज होने पर भी उन्होंने पढ़ना-लिखना सीखना आरम्भ किया। थोड़े ही दिन पश्चात रूस में क्रान्ति मची और उन्हें बाहर आने का अवसर मिला। स्वतन्त्रता की प्रचण्ड हृदय-ज्वाला ने उन्हें एक अनुपम व्याख्यानदाता बना दिया। कष्टों को सहन करते-करते उनका साहस अदम्य और उनकी क्रियाशीलता परिपक्व हो गई थी। वे शीघ्र ही साम्यवादी दल में उच्च स्थान प्राप्त करके उज़्बेक महिलाओं की आदर्श बन गईं। यद्यपि पुराने विचारों के लोग उनसे ईर्ष्या करते ही रहे! और आज वे लगभग ३० वर्ष की अवस्था में उज़्बेकियन सोवियट प्रजातन्त्र की उप-सभानेत्री हो गई हैं। आप कॉमरेड आबीडोवा के नाम से प्रसिद्ध हैं।

आबीडोवा की कथा कोई अनुपम कथा नहीं है। आज रूस की हज़ारों, लाखों स्त्रियाँ राजनैतिक कार्यक्षेत्र में आ गई हैं। वे सोवियट सभाओं में बैठती हैं और स्त्रियों के अन्दर प्रचार-कार्य में सहायता देती हैं। और उनमें से हर एक स्त्री अपनी, आबीडोवा जैसी या उससे भी अधिक वीरता और क्रान्तिपूर्ण कथा सुना सकती है।

पश्चिम के कई देशों में जो स्त्रियों के वोट देने इत्यादि के झगड़े चल रहे हैं, यदि उनकी तुलना रूस के स्त्री-स्वातन्त्र्य आन्दोलन से की जाय, तो वे केवल एक खेल-से मालूम होंगे। वहाँ जो स्त्रियाँ अपने अधिकारों को माँगती हैं, उन्हें अपने को मृत्यु और अत्याचारों को सहन करने के लिए तैयार होना पड़ता है। वह साम्यवादिनी युवती, जो गाँव-गाँव में स्त्री-स्वाधीनता का प्रचार करने जाती है, उसका जीते जी लौट आना सौभाग्य की बात समझी जाती है। कभी-कभी ऐसी युवतियों के टुकड़े-टुकड़े करके नगरों में भेज दिए जाते हैं! एक बोरे पर एक बार यह लिखा हुआ आया कि 'यह लो अपनी स्त्रियों की स्वाधीनता।' जब बोरा खोला गया तो उसके अन्दर एक युवती के सारे अङ्ग काट-काट कर बँधे हुए मिले!!!

सुधार के प्रतिरोधियों की यह दशा उस जगह की है, जब कि वहाँ की सरकार पूर्णरूप से स्त्री-स्वतन्त्रता की पक्षपाती है। कोई भी मनुष्य खुल्लम-खुल्ला सुधारों का विरोध करने पर कठिन दण्ड का भागी होता है! इतने पर भी वे विरोध करते ही जाते हैं। पर साथ ही साथ स्त्रियाँ भी अपने कार्य में किसी प्रकार से हतोत्साह नहीं होतीं। और आज भी अगर कोई सोवियट की कचह-रियों में जाए तो उसे अनेकों ऐसे केस सुनने को मिलेंगे, जिनमें इन देवी-स्वरूपा स्त्री-स्वाधीनता की उत्साही प्रचा-रिकाओं की हत्या पुराने विचारों के पक्षपातियों द्वारा की गई हैं!

यह तो रूस की स्त्रियों की दशा है। अब हम अपने यहाँ की स्त्रियों से एक प्रश्न पूछना चाहते हैं। क्या वे भी अपनी स्वतन्त्रता इसी तन्मयता से पाने का प्रयत्न करेंगी? क्या वे भी अपने बन्धनों को तोड़ कर बाहर निकलेंगी? क्या वे भी सड़ी और गन्दी परम्परा के प्रति क्रान्ति करेंगी? क्या वे भी गाँव-गाँव में घूम-घूम कर स्त्री-स्वतन्त्रता का प्रचार करेंगी? क्या वे भी अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए अपने विरोधियों की तलवारों के नीचे अपनी गर्दनें रक्खेंगी? सम्भव है, वे समझें कि हमारे देश में ऐसी क्रूरता न होगी, हम ये काम बड़ी सरलता से कर लेंगी। पर उन्हें ऐसा न समझना चाहिए। अङ्गरेज़ी में एक कहावत प्रसिद्ध है "Customs die Hard"—रूढ़ियाँ चिमड़ी होती है, ये जल्दी नहीं टूटतीं, ये जल्दी नहीं मरतीं! फिर चाहे वे रूस की हों अथवा भारत की!

परन्तु हमें पूरा विश्वास है कि भारतीय स्त्रियाँ, अपने स्वातन्त्र्य संग्राम को, उस समय तक बन्द न करेंगी, जब तक कि उन्हें पूरी सफलता न मिल जाय, चाहे इसके लिए उन्हें कितनी ही बड़ी क़ीमत देनी पड़े, कितनी ही आपत्तियाँ सहनी पड़ें और कितनी ही क़ुर्बानियाँ करनी पड़ें। हमारा भविष्य आशापूर्ण है—

शुभ आरम्भ आधी सफलता है।" और कौन कह सकता है कि हमारा आरम्भ शुभ नहीं है?

—राजेन्द्रकुमार, बी० ए०

* * *

बालकों की अकाल-मृत्यु के कुछ कारण
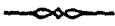
भारतवर्ष में बच्चों के रोग और उनकी मृत्यु की संख्या सब मुल्कों से अधिक है। इस हालत को सुधारने के लिए आजकल प्रायः सभी बड़े-बड़े शहरों में प्रदर्शनियाँ होनी आरम्भ हो गई हैं। उनका उद्देश्य यह है कि बच्चों के पालन-पोषण के लिए ज़रूरी जानकारी माताओं को व्याख्यानों द्वारा और उत्तम उदाहरणों से पहुँचाई जाय, जिनसे इस देश के बच्चों का आरोग्य बढ़ सके।

परन्तु ख़्याल रहे, कि जिन ख़राबियों के कारण ये बीमारियाँ और यह मृत्यु-संख्या भारतवर्ष में बढ़ती हैं, उन ख़राबियों को जब तक दूर न किया जाएगा, तब तक भारतवर्ष की सन्तानों की इस दयनीय दशा का सुधरना कठिन है। उत्तम शिक्षा और उत्तम पालन-पोषण से प्रत्येक मनुष्य की अवस्था कुछ न कुछ तो ज़रूर सुधर जाती है। परन्तु जब किसी मकान की नींव ही खोखली और कमज़ोर हो तो ऊपर की दिखावटी मरम्मत से उसका कुछ सौन्दर्य भले ही बढ़ जाय, उसकी मज़बूती नहीं बढ़ सकती। ऐसे मकान के गिर जाने का भय हर वक़्त ही बना रहता है। इसी प्रकार बच्चों की बाह्य-रक्षा के साथ उनके जीवन की नींव को मज़बूत करने की सब से बढ़ कर ज़रूरत है। यदि माँ-बाप ख़ुद रोग-ग्रस्त रहते हों, तो उनकी सन्तान भी प्रायः रोगी ही रहेगी। ऐसे बच्चों की चाहे बाहर से कितनी ही रक्षा और निगरानी की जाय, परन्तु जो कमज़ोरी एक रोगिणी माता के शरीर और दूध से विरासत में मिली है, वह कभी दूर न हो सकेगी!

भारतवर्ष की कई एक कुरीतियों के कारण आजकल हज़ारों और लाखों नहीं, बल्कि करोड़ों घर शोक-स्थान बन रहे हैं। ऐसे घरों में दुखिया व मज़लूम माताओं के दुख-दर्द भरे दूध को पीकर बालक प्रायः रोगों और अकाल मृत्यु का ग्रास होते हैं, तथा भारतवर्ष में मृत्यु की संख्या को बढ़ाने का कारण बनते हैं। अतः हरेक माँ-बाप, क्या अमीर, क्या ग़रीब, सबके विचारार्थ कुछ ऐसे उपाय नीचे लिखे जाते हैं, जिन पर अमल करने से निश्चय है कि भारतवर्ष के बच्चों की अवस्था बहुत शीघ्र सुधर सकती है। विशेष कारणों से कोई ख़राबी रह जाय, यह बात दूसरी है, परन्तु निम्न-लिखित सामाजिक कुरीतियों के दूर हो जाने से देश के बच्चों की हीन दशा का बहुत कुछ सुधार तो ज़रूर हो जावेगा:—
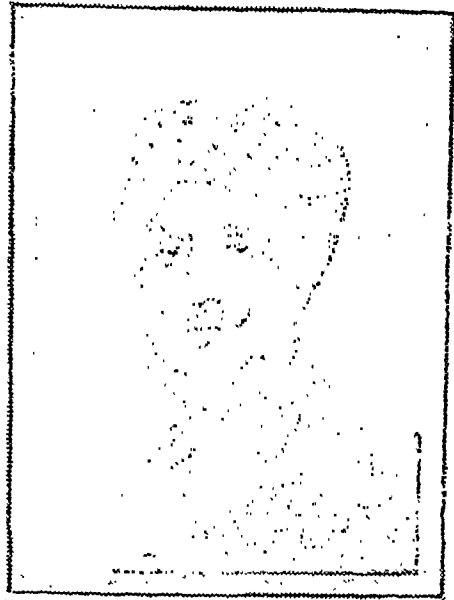
महाराज पटियाला

(गोलमेज के सदस्य)

(१) भारतवर्ष में प्रायः माँ-बाप अपनी बिरादरी वालों की प्रसन्नता के लिए शादी व ग़मी के अवसरों पर हज़ारों रुपए ख़र्च कर देते हैं। मगर अपने बच्चों के पालन-पोषण में ज़रूरी ख़र्च करना भी उन्हें सहन नहीं होता। विशेषतः लड़कियों के पालन में तो बहुत ही लापरवाही की जाती है। कई लोग तो ऐसे कठोर होते हैं कि अपनी लड़कियों को कभी एक पैसे का खिलौना भी ख़रीद कर नहीं देते। बहुतेरे ऐसा भी कह देते हैं कि "लड़कियों का क्या है, यह तो बेगाना धन हैं।" इस प्रकार लड़कियों

का निरादर करने से बहुधा लड़कियाँ आयु भर रोगी, कमज़ोर और मूर्खा बनी रहती हैं। और आगे व्याहे जाने पर उनकी अपनी सन्तान भी बहुधा उन्हीं रोगों का शिकार बनती देखी जा रही है। अतः इस देश के नेताओं, अख़बारों और वक्ताओं का यह भी ज़रूरी फ़र्ज़ है कि अपने लेखों और उपदेशों के द्वारा देश के अन्दर ऐसा प्रचार करें कि लोग फ़िज़ूलख़र्ची से हट कर बच्चों के पालन-पोषण पर ख़र्च को सब से अधिक ज़रूरी समझें और लड़कों की अपेक्षा लड़कियों को कभी बुरा न समझें; क्योंकि क़ौमें बच्चों से बनती हैं। अतः बच्चों की दशा को सुधारना वास्तव में क़ौम की उन्नति करना है।

(२) भारतवर्ष में आजकल गृहस्थाश्रम की बहुत सी ख़राबियों की जड़ संयुक्त परिवार-प्रथा का रिवाज ही बन रहा है। प्रायः माँ-बाप अपनी दिल्लगी या प्रेम में आकर पहिले तो अपने लड़के का विवाह उसके बचपन में ही कर देते हैं। मगर बहू के आ जाने पर सैकड़ों झगड़ों की बातें पैदा कर देते हैं; ताकि कहीं लड़का क़ाबू से न निकल जाए। अतएव सालों तक यह लड़ाई-झगड़े बदस्तूर चलते रहते हैं, और वर-वधू दोनों का जीवन नष्टप्राय हो जाता है। और ऐसे घर ख़ुशी के घर तो क्या, बल्कि बिलकुल दोज़ख़ का नमूना ही बन जाते हैं! और ऐसे अभागे घरों के जो बच्चे भी पैदा होते हैं, वह बेचारे प्रायः रोगी और दुखी रह कर अकाल मृत्यु का ग्रास बनते हैं। यदि यह संयुक्त परिवार-प्रथा दूर हो जाए तो लड़का और लड़की दोनों गृहस्थाश्रम के योग्य हो जाने के पश्चात ही उसमें प्रवेश किया करें। ऐसी सूरत में जिस बाल-विवाह का बन्द करना बड़ा कठिन हो रहा है, वह ख़ुद-बख़ुद बन्द हो जाएगा तथा घर जो शोक-स्थान बन रहे हैं, वही सुख-शान्ति के धाम बन जाएँगे। जो बच्चे प्रायः कमज़ोर-दिल, कमज़ोर-दिमाग़ और रोगी पैदा होते हैं, उनकी शारीरिक और मानसिक हालत बहुत उन्नत हो जाएगी।

(३) ऊपर लिखित दोनों कुरीतियों के सिवाय, प्रचलित हिन्दू-क़ानून और प्रायः हिन्दू-धर्मशास्त्रों की तरफ़ से तो पति के लिए (क्या ज़रूरी या ग़ैर-ज़रूरी) हर तरह से अपनी इच्छानुसार प्रत्येक काम करने के लिए बेजा आज़ादी मिल जाती है; इसके मुक़ाबले स्त्री को जगह-जगह पर दुर्दशा और ख़्वारी में डाला हुआ है और बेचारी को उसके उचित मानुषीय अधिकारों से भी वञ्चित कर रक्खा है। हिन्दू-क़ानून और हिन्दू-धर्म-पुस्तकों के यह अन्याय भी भारत की सन्तान के कमज़ोर और कम आयु होने का एक बड़ा कारण बन रहा है। केवल ज़बानी जमा-ख़र्च के तौर पर स्त्री को कहीं अर्द्धाङ्गिनी बता दिया जाता है और कहीं उसे गाड़ी के बराबर के पहिए के साथ तुलना भी कर दी जाती है; परन्तु शोक है कि बेचारी को असली अख़्तियार एक भी नहीं दिया जाता। अतः कई पति तो अपने ज़्यादह अख़्तियार के अभिमान में आकर अपनी स्त्री पर सख़्त से सख़्त अत्याचार भी किया करते हैं। देखिए, पति के किसी सम्बन्धी पुरुष का जो अख़्तियार है, 'अर्द्धाङ्गिनी' कहलाने वाली स्त्री का उतना भी नहीं है!!

ऐसी सख़्त बेइन्साफ़ियों के होते हुए कभी सच्चा प्रेम स्थिर नहीं हो सकता और न आपस में एक-दूसरे के प्रति यथायोग्य सत्कार का ख़्याल पैदा हो सकता है। अतएव स्त्री की जो ज़िम्मेदारियाँ अपनी सन्तान को उत्तम बनाने की होती हैं, वह कभी अपनी ऐसी ग़ुलामी, ख़्वारी और बेकसी की हालत में उनको पूरा नहीं कर सकती। अतः स्त्री-जाति के उचित अधिकारों की ख़ातिर प्रचलित हिन्दू-क़ानून के अन्दर ज़रूरी संशोधन करने कराने के लिए आवाज़ उठाना भी देश के अन्दर न्याय-भाव को बढ़ाना है। ऐसा करने से, न केवल बेइन्साफ़ियाँ और कुरीतियाँ ही दूर होंगी, बल्कि हिन्दू-घर सच्चे अर्थों में आनन्द-भवन बन जायँगे और आने वाली सन्तानों के जीवन उत्तम-जीवन बनेंगे, और जो मनुष्य-जीवन का सच्चा उद्देश्य है, पूर्ण होगा।

—दयावती

* * *

स्वर्गीया मनोरमा देवी

स्त्री-रत्न श्री० मनोरमा देवी का नश्वर शरीर, यद्यपि आज इस संसार में नहीं है, परन्तु उनका अजर यश-सुरभित शरीर आज भी अमर है। उक्त बहिन का जीवन महिला-समाज के लिए एक आदर्श चरित्र था। हमारा दुर्भाग्य है कि वह हमसे इतनी जल्दी छिन

गईं। यद्यपि उनकी अवस्था केवल २७ वर्ष की ही थी, तो भी उनका हृदय अति गम्भीर तथा उच्च भाव-पूरित था। उनकी तपःपूत मुखाकृति से उनके सतीत्व का तेज और सतोगुण की शान्ति टपकती थी। उनका शरीर और मन स्त्री-समाज तथा देश की सेवा से कभी थकते ही न थे; और शायद यही सेवा-व्रत उनके असमय काल-कवलित होने का कारण भी था। इनका कार्य वह ठोस कार्य था, जिसमें ख्याति थोड़ी और देशहित अधिक था। इसीलिए इन्होंने इतनी प्रसिद्धि नहीं पाई, जितनी अन्य महिलाओं ने। इनका जीवन और भी सब दृष्टि से पूर्ण था, जिसे आदर्श मान कर कोई भी अनुकरण कर सकता है। शिक्षिका, सुधारिका और लेखिका होने के अतिरिक्त, लोगों को सङ्गठित करने की भी उनमें अपूर्व शक्ति थी। निर्भीकता, त्याग, सहिष्णुता, स्वाध्याय और सरलता—ये गुण भीतर और बाहर समान रूप में विद्यमान थे। ऐसी महादेवियों की जीवनी देशवासियों के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम करती है, जिससे सर्व-साधारण का ध्येय-मार्ग स्पष्ट हो जाता है।

आपका जन्म सम्वत् १९६० विक्रमी के वैशाख मास में जबलपुर के निकट गोटे गाँव में, जो जी० आई० पी० रेलवे का स्टेशन है, हुआ था। वहीं इनके पिता श्री० गुरुदेव जी शुक्ल स्टेशन मास्टर थे, पर इनका आदि निवास-स्थान अवध प्रान्त के रायबरेली ज़िले के हरदासपुर नमक ग्राम में था। माता के विशेष आग्रह से इनके पिता जी ने इनका विवाह केवल ९ वर्ष की अवस्था में कर दिया था। विवाह से पूर्व ही इनके पिता का इनकी शिक्षा पर विशेष ध्यान होने के कारण इनको हिन्दी में अच्छी योग्यता हो गई थी। अभाग्यवश ११ वर्ष की अवस्था में ही यह बालिका-स्वरूपा देवी वैधव्य को प्राप्त हो गईं। पश्चात इनके पिता जी ने इन्हें विशेष योग्यता प्राप्त कराने की अभिलाषा से ग्वालियर राज्य के सेवा-सदन में प्रविष्ट कराया। वहाँ पर इनकी शिक्षिका श्रीमती शान्ताबाई थीं, जो एक बड़ी अनुभवी तथा बुद्धिमती अध्यापिका थीं। उन्होंने इनको एक आदर्श महिला बनाने में भरसक उद्योग किया और इन्हें पाँच वर्ष में ग्वालियर राज्य की हिन्दी-साहित्य की सर्वोच्च परीक्षाएँ उत्तीर्ण करा दीं। तदनन्तर ये उसी आश्रम में अध्यापिका का काम करने लगीं। अध्यापन कार्य और अपने पितृ कुटुम्ब की सेवा करते हुए ही, इन्होंने प्रयाग महिला-विद्यापीठ की विदुषी, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा (विशारद) तथा संस्कृत की शास्त्री परीक्षाएँ भी दीं और उनमें उत्तीर्ण हुईं। इसके पश्चात वे ग्वालियर से मुरादाबाद के प्रतापसिंह हिन्दू गर्ल्स स्कूल में एसिस्टेण्ट मिस्ट्रेस नियुक्त होकर चली गईं। यहाँ पर भी इन्होंने अपने सद्गुणों से महिला-समाज तथा कन्याओं को अपने पवित्र प्रेम-बन्धन में बाँध लिया। चार वर्ष मुरादाबाद में कार्य करने के अनन्तर सन् १९२६ ई० में आप मथुरा में आर्य-कन्या-विद्यालय की प्रधानाध्यापिका नियुक्त

स्वर्गीया मनोरमा देवी

होकर कार्य करने लगीं। इनके आने से पूर्व विद्यालय में छात्राओं की संख्या सत्तर-अस्सी से अधिक न थी, परन्तु इनके प्रेममय सद्व्यवहार और शिक्षा-चातुर्य से थोड़े ही समय में तीन सौ छात्राएँ हो गईं। बाहर से भी अच्छे-अच्छे धनी-मानी पुरुष के पत्र अपनी पुत्रियों को आपकी शिक्षा-दीक्षा में रखने के सम्बन्ध में आते रहते थे, परन्तु वहाँ छात्रावास का प्रबन्ध न होने से वे विवश थीं। देश-भक्ति की तो आप प्रतिमा थीं ही; आपका उपदेश ऐसा हृदयग्राही होता था कि छात्राएँ उसको सुन कर ही उन पर अमल करने लगती थीं।

कॉङ्ग्रेस तथा देशहित के विशेष अवसरों पर जब जुलूस निकलते थे, तो आपकी सब खद्दर, कृपाण-धारिणी अध्यापिकाओं और छात्राओं के कारण ही उसका दृश्य बड़ा भव्य और प्रभावोत्पादक हो जाता था। दीनों और अनाथों से इन्हें विशेष प्रेम था। इनके यहाँ इनके कुटुम्ब के अतिरिक्त कभी-कभी आठ-आठ, दस-दस विधवाओं का पालन होना साधारण-सी बात थी। वृद्धावस्था

कालूर (मद्रास) के महिला-गवर्नमेण्ट ट्रेनिङ्ग स्कूल की शिक्षिकाएँ और छात्राएँ

के कारण इनके पिता जी ने संन्यास ले लिया था, इससे आपने ही अपने दो लघु भ्राताओं को उच्च शिक्षा दिला कर उनका विवाह इत्यादि भी कराया। अब वे दोनों भ्राता स्वयं उपार्जन करने योग्य हो गए हैं, जिससे वृद्ध माता-पिता की सेवा यथावत हो रही है। आपका एक भी क्षण व्यर्थ नहीं जाता था। आपने थोड़े समय तक मथुरा नगर कॉङ्ग्रेस कमिटी के मन्त्री पद का कार्य भी बड़ी योग्यता से किया था। स्वयं-सेविकाओं की आपकी एक टुकड़ी अलग थी, जो किसी भी राष्ट्रीय कार्य के करने को सर्वदा उद्यत रहती थी। मथुरा-जैसे नगर के स्त्री-समाज में स्वयंसेविकाएँ बना लेना, यह आपके ही अध्यवसाय और कर्मण्य जीवन का प्रभाव था। इनकी बीमारी की दशा में ही महात्मा गाँधी मथुरा पधारे थे। उस समय इन्होंने अपने शरीर की कुछ भी परवाह न की और घर-घर से उनकी भेंट के लिए चन्दा माँगना आरम्भ कर दिया। यह इन्हीं का प्रयत्न था कि स्थानीय महिलाओं की ओर से महात्मा जी को एक अच्छी रक़म समर्पित की जा सकी थी। मथुरा की जनता, विशेषतः महिला-समाज ने, इन्हें म्युनिसिपैलिटी की मेम्बरी के लिए खड़ा करना चाहा था और बड़ी सफलता से हो भी जातीं, परन्तु स्वास्थ्य तो जवाब देता जा रहा था। इस कारण खड़ी

न हो सकीं। अधिक कार्य करने वालों को जो क्षय की प्रायः घातक बीमारी हो जाती है, उसके पञ्जे से आपभी न बच सकीं। एक बार किसी व्यक्ति ने उनसे पुनर्विवाह का प्रसङ्ग छेड़ा, तो उन्होंने यही उत्तर दिया कि एक पुरुष से विवाह हुआ, उसकी मृत्यु हो गई, अब मैं ऐसा पति चाहती हूँ जिसकी मृत्यु कभी न हो! वह अपने शरीर को मिताहार से कृश ही रखती थीं, घी और दूध उन्होंने छोड़ रक्खा था। श्रीमद्भगवद्गीता से उन्हें विशेष प्रेम था, वह उन्हें कण्ठस्थ थी।

बीमारी की अवस्था में भी अधिक कार्य करते हुए वे रोग की उपेक्षा करती रहीं। उन्हें यह ध्यान भी न था कि यही बीमारी इनके लिए इतनी भयङ्कर हो जायगी। रोग बढ़ जाने पर फिर अच्छी से अच्छी चिकित्सा भी फलप्रद न हुई। इस बीमारी की दशा में ये चिकित्सार्थ अमेरिकन मिशन द्वारा सञ्चालित तिलोनिया सैनिटोरियम में, जो किशनगढ़ राज्य में अजमेर के समीप है—गईं। पर सेवा-भाव की डींग मारने वाले इन मिशनरियों ने इनकी गाँधी-भक्ति और खद्दर के वस्त्र देख कर, इन्हें कोई राजद्रोही समझा और इनके साथ इतना जघन्य बर्ताव किया, जो कभी मानुषिक नहीं कहा जा सकता! इन्हें मांस से घृणा थी, परन्तु इनके खाने के समय वे लोग इन्हें दिखा-दिखा कर मांस खाते थे। इस कारण यह जो स्वल्पाहार फलादि लेती थीं, वह भी वमन हो जाता था। इनकी चारपाई (राजस्थान की लू और वह भी मई-जून मास की लू में) ऐसे दरवाज़े के पास रक्खी गई, जहाँ से लू सीधी इन्हें लगती थी। एक दिन लू लग जाने से ज्वर १०५ डिग्री तक हो गया। इनकी माता जी को, जो साथ गई थीं, उन्हें दिन भर में केवल १५ मिनट के लिए इनसे मिलने दिया जाता था। और भी कई अन्याय-युक्त व्यवहार किए गए। इन कारणों से जीवन को और भी सङ्कट में पड़ा देख, ये बिना आज्ञा, उस कमज़ोरी की दशा में—बिना किसी को सहायता के लिए बुलाए ही अपनी माता के साथ मथुरा चली आईं। जीवन के अन्तिम दिनों में जान्हवी सेवन हेतु वे कनखल आ गईं और वहीं श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ सुनते-सुनते ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी, सम्वत् १९८७ विक्रमी को प्रातःकाल ब्रह्म-मुहूर्त में उन्होंने अपना यह नश्वर शरीर त्याग दिया!

आपके वियोग से देश के कार्य को कितना धक्का लगा, यह वही जान सकते हैं, जिन्होंने उन्हें कार्य करते हुए देखा था। ऐसी आदर्श देवियों के अभाव से हमारा महिला-समाज सुधार-मार्ग में पिछड़ता जाता है, क्योंकि उनके स्थान की पूर्ति शायद ही हो पाती हो। कार्य का वह प्रवाह वहीं का वहीं स्थगित हो जाता है। इन्होंने अपनी रुग्णावस्था में ही एक संस्था "महिला-सेवाश्रम" नामक मथुरा में, इस अभिप्राय से खोली थी, कि उसमें विधवा, सधवा अथवा अविवाहिता ब्रह्मचर्य

महाराज अलवर

(गोलमेज़ के सदस्य)

पालन करती हुई विद्याध्ययन, देश-सेवा अथवा समाज-सेवा करने के योग्य बनाई जायँ; परन्तु अभाग्यवश उनकी असामयिक मृत्यु से इसका भविष्य अनिश्चित हो गया है।

हे देव! हमारे दुर्दिनों का अब तो अन्त कर। जो आत्मा हमारे उद्धार का प्रयत्न करती हैं, वे ही काल-कवलित होकर हमसे दूर हटा ली जाती हैं; किन्तु यदि हम इन आत्माओं द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करें तो हमें विश्वास है, हम दिनोंदिन उन्नति करते जायँगे।

—चन्द्रावली भाटिया
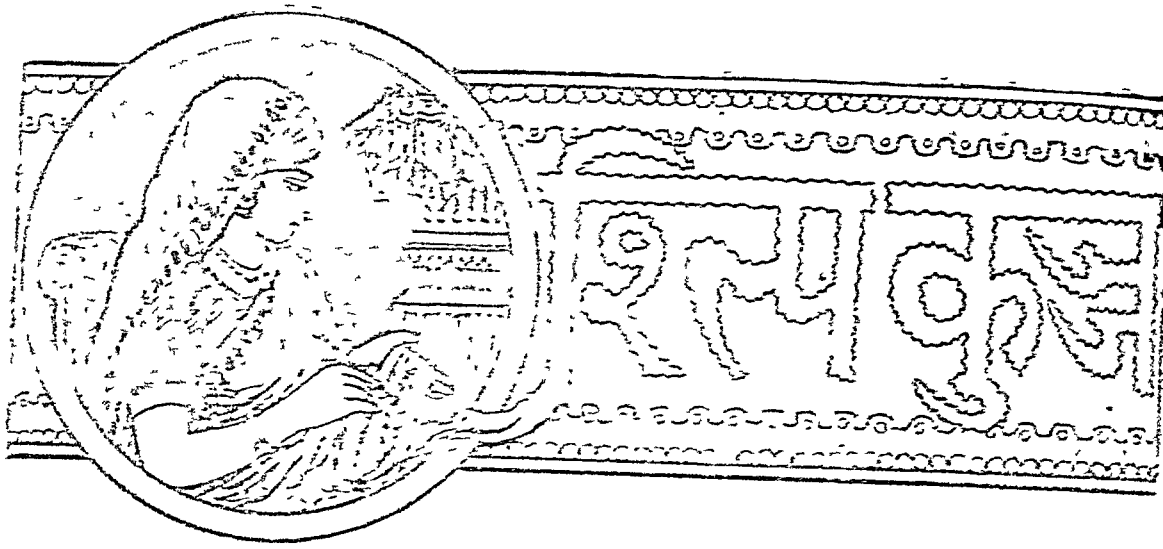
खजूर की लेस

[श्रीमती शकुन्तला देवी गुप्ता, 'हिन्दी-प्रभाकर']

आरम्भ—११९ चेन करो।

१ ली लाइन—११ सुराख, ७ ते०, २ २ सु०, ४ ते०, १४ सु०, ५ चेन लौटाओ।

२री लाइन—३ चेन छोड़ कर १२ ते०।

लेस का नमूना
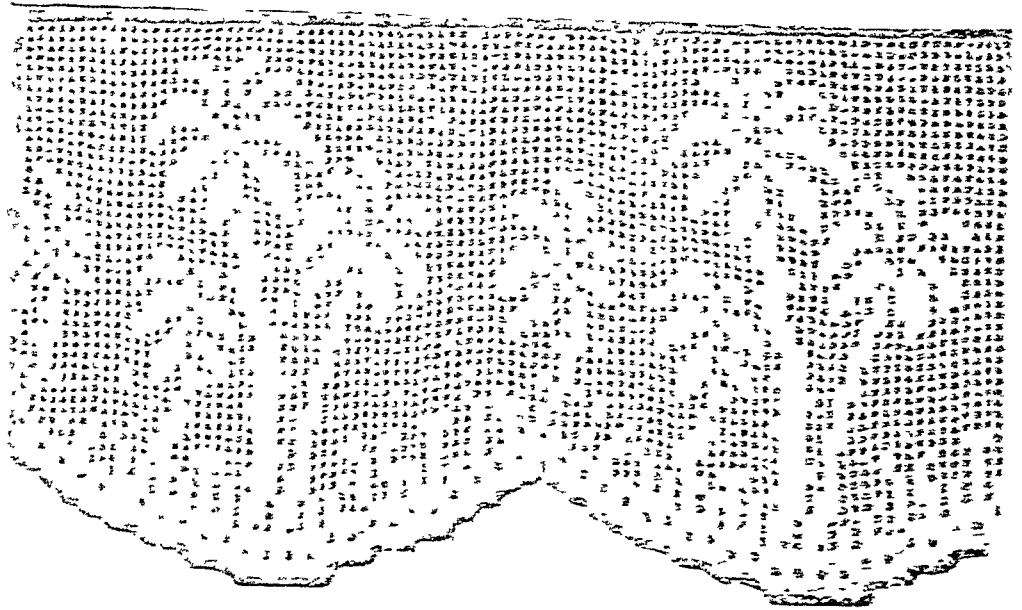
सु०, ४ ते०, १ सु०, १० ते०, ५ सु०, ४ ते०, २ सु०, ७ ते०, १ सु०, ४ ते०, ८ चेन लौटाओ।

आगे सारी चित्र देख सुगमतापूर्वक बन सकती है। इसकी चौड़ाई ३॥ इञ्च होगी।

नारी-जीवन

[श्री० आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या—१५

[पत्र वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

वहिन,

तुम्हारा गृह-निर्वासन होने
ही वाला था हाय,
कितनी भारत की ललनाएँ
सहती हैं यह दुख निरुपाय !

जिनके गृह हैं धन से पूरित
जिनको प्राप्त सभी सुख हैं,
वे भी घर की विधवाओं को
देते सब प्रकार दुख हैं ;

कहते हैं यह—उन्हें चाहिए
मोटा भोजन और वसन,
जिससे वे समर्थ हों करने
में निज मन का पूर्ण दमन।

इससे वढ़ कर हास्यास्पद विधि
मनोदमन की होगी कौन ?
इस अति निन्द्य तर्क का उत्तर
केवल हो सकता है मौन।

सात्विक और शुद्ध भोजन या
विमल पहनने योग्य वसन
नहीं किसी के लिए त्याज्य, वे
हैं प्रफुल्लता के साधन,

ख़ली प्रफुल्ल हृदय होता है
चलता है सुमार्ग की ओर,
दुखी जीव का हृदय अधिकतर
जाता है कुमार्ग की ओर !

एक बहाना है यह सब तो,
नहीं हितैषी हैं इतने
उन भोली अबला विधवाओं
के वे बनते हैं जितने,

अथवा पर को बलतः रखने
का पवित्र किसको अधिकार ?
उन्हें क्लेश दे सुख पाने को
ही करते वे अत्याचार।

विधवा है जिस घर में, उसमें
दासी का है काम नहीं,
नीच काम दिन भर करने पर
भी उसको विश्राम नहीं।

नहीं सोचते गृह-निर्वासन
का फल हो सकता है क्या ?
असहाया होने पर अबला
का बल हो सकता है क्या ?

विधवा के वेश्या होने का
ही इच्छुक यह क्रूर समाज,
इसे मुँह दिखाते दुनिया को
आती नहीं तनिक है लाज !

क्या-क्या इसे कहूँ, फिर सुन लो
मेरा कुछ आगे का हाल,
दृढ़ होकर वैठी मैं, आया
पुनः दूसरा सन्ध्या काल।

वृद्ध महाशय जब आए तब
मैंने सादर लिया उन्हें,
मन्दस्मिति के साथ दूर कुछ
आसन विधि से दिया उन्हें।

कल की लज्जा और आज का
मेरा यह ऐसा व्यवहार
आश्चर्यान्वित हुए देख कर,
समझे, है मस्तिष्क-विकार,

इस पर मुझको हँसी आ गई,
वे बोले—"कैसी हो आज,
तवियत तो है ठीक," कहा, मैं—
ने हँस कर—"जी हाँ, महराज"

जब वे आगे बढ़े, कहा मैं—
ने तब होकर अति विकराल,
"रहना बस तुम दूर, नहीं तो
बुरा तुम्हारा होगा हाल,

कर सकते अपवित्र न मुझको,
करो न फिर मेरा अपमान,
ले लूँगी मैं जान तुम्हारी
दे दूँगी मैं अपनी जान।"

बुड्ढे में साहस कितना था,
अथवा था बल ही कितना ?
चला गया चुपचाप, न बोला
तनिक, हुआ लज्जित इतना।

एक ओर जो लटक रही थी
कमरे के भीतर तलवार,
उसे सहायक मैं समझे थी
यदि होता कुछ अत्याचार।

पत्र-संख्या—१६

[पत्र बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

भली विधि से तुमने था
निश्चय अपना पूर्ण किया,
वृद्ध महोदय का सारा मद
यों था मानो चूर्ण किया।

यदि हों साहसमय कन्याएँ
तो क्यों वे जीवन खोएँ,
क्यों ब्याही जावें वृद्धों से
और जन्म भर क्यों रोएँ ?

परिणय के ही समय न क्यों वे
उसका करें प्रचण्ड विरोध,
अगर क्रोध करना ही है तो
पहले से क्यों करें न क्रोध ?

लोलुप 'पण्डित' के कर देने
से अशुद्ध मन्त्रोच्चारण
कहीं व्याह होता है ? उसके
फल का समुचित है वारण !

है यह ठीक कि हो सकता है
कन्याओं पर बल-प्रयोग,
वह भी हो तो हो, लावें वे
पञ्चों के सम्मुख अभियोग।

बल-प्रयोग से हो सकता है
क्या कन्याओं का सत-भङ्ग ?
जब हो कलुषित मन, तब होते
हैं कलुषित रमणी के अङ्ग।

बहिन तुम्हारा यह उदाहरण
जग में जीवित सदा रहे,
ललनाओं से नित ललना-जन—
स्वतन्त्रता-सन्देश कहे !

जो ब्याही जावें वृद्धों से
वे उनसे नाता तोड़ें,
ब्रह्मचर्य से और देश-सेवा-
धुन से नाता जोड़ें।

बहिन, सुनाऊँगी अब अपनी
करुण-कहानी फिर तुमको,
करना क्षमा, अगर स्थिर होगी,
कर दूँगी अस्थिर तुमको।

आँख खुली जब मेरी, मैंने
अपने को पथ पर पाया,
कुछ लोगों की कुछ दूरी पर
देख पड़ रही थी छाया।

देखा मैंने तनिक ध्यान से,
निकट भी न मैं थी घर के;
अपनी दशा देख कर रोई
छाती पीट-पीट करके !

जानें कहाँ छोड़ कर मुझको
चले गए थे घर वाले,
मुझे ज्ञात था नहीं कि पड़ने
वाली थी किसके पाले।

उठी तनिक धीरज कर फिर
एक ओर को चली सभय,
करके जङ्गल में संन्यासिन
बन कर रहने का निश्चय।

इसी समय आ पहुँचा मेरे पास अचानक एक फ़क़ीर,
मीठे-मीठे वचनों से वह हरने लगा हृदय की पीर !

श्रीमान सम्पादक जी महोदय, पूज्य पिता जी,

न आप मुझसे परिचित हैं, और न मैं आप से; किन्तु 'चाँद' परिवार के नाते मैं आज अपनी रामकहानी आपके निकट रखने का प्रयत्न कर रही हूँ। किन्तु सर्व-प्रथम एक विनय कर लूँ तो अनुचित न होगा कि आप मेरी इस दुखपूर्ण कथा को सर्वथा गुप्त रक्खें—मेरा अथवा परिवार के किसी भी व्यक्ति का नाम किसी भी हालत में प्रकट न किया जावे, यही विनय है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप मेरी विनय को अवश्य स्वीकार करेंगे। दूसरी बात यह है कि यह कहानी बहुत लम्बी है, मुझे लिखते भी सङ्कोच होता है, क्योंकि पढ़ने में आपका अमूल्य समय नष्ट होगा एवं विशेष असुविधा भी होगी। किन्तु आपके लेख को पढ़ कर—"पीड़ित, दुःखी, असहाय और पतित बहिनों के लिए ही हमारा अस्तित्व है, उन्हीं की सहायता, उद्धार और उपकार करना ही हमारा लक्ष्य और ध्येय है"—मेरे हृदय में आशा और विश्वास की लहर थपकियाँ दे रही हैं, कि आप मेरे पत्र को पढ़ने में विशेष कुण्ठित न होंगे। मैं विशेष पढ़ी-लिखी भी नहीं हूँ, सम्भव है, बहुत अशुद्धियाँ कर जाऊँ, अतः कृपया सुधार कर पढ़ने का कष्ट कीजिएगा। आज मैं विकल, विह्वल और अशान्त होकर, संसार में दृष्टि फैलाने से सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार देख कर, निरुपाय और हताश होकर टूटे-फूटे शब्दों में अपनी रामकहानी लिख रही हूँ। मेरी अवस्था इस समय संसार-सागर में भटकती और डगमगाती हुई उस नौका के समान है, जिसका नाविक पूर्ण निद्रा ले रहा हो अथवा खेना भूल गया हो अथवा उसे त्याग दिया हो। मैं बड़े ही आशा, विश्वास एवं आकुलता से यह सब लिख रही हूँ। आपको कष्ट तो पढ़ने में अवश्य होगा, पर—मुझे उचित-अनुचित का ज्ञान करा के, मेरा कर्त्तव्य सुझा कर, मेरे कार्यों पर आलोचना करके, मुझे सदुपदेश देकर कर्त्तव्य-पथ पर लाने से वञ्चित न करेंगे—मेरे प्रयास को विफल न करेंगे।

मैं एक कायस्थ परिवार की लड़की हूँ। मेरी उमर इस समय १८-१९ वर्ष के लगभग है। मेरा निवास-स्थान ....ज़िले के अन्तर्गत ....ग्राम में है। किन्तु मैं जन्म से ही.........शहर में रहा करती हूँ, वहीं मेरा जन्म हुआ और वहीं इतनी अवस्था व्यतीत हुई। क्योंकि मेरे पिता जी वहीं सरकारी नौकरी करते हैं। मैं माता के साथ वहीं रहा करती थी। मेरा जन्म उस समय हुआ, जब अधिक वयस बीत जाने पर भी मेरी माता की गोद में सन्तान न हुई। और परिवार वाले पिता जी को दूसरी शादी करने के लिए हठ और विवश कर रहे थे। मेरे जन्म के पश्चात से पिता जी को फिर कोई सन्तान न हुई। और उन्होंने दूसरा विवाह भी आज तक न किया। मुझे ही देख और पाकर उन्होंने सन्तोष कर लिया। पुत्र-पुत्री का विचार और अन्तर तिल मात्र भी न रखते हुए, उन्होंने बड़े ही स्नेह, यत्न और आदर से मेरा पालन-पोषण किया। गुलाब के फूल की नाईं प्रतिपालित होकर मैं अवस्था लाभ करने लगी। मैं उनके कलेजे की टुकड़ी, आशा की पुतली एवं समस्त हौसले-अरमान का आधार थी। माता तो भला माता ही ठहरीं, पिता जी का भी प्रेम मुझ पर कुछ कम न था और अब भी है। उनके मित्रगण एवं आत्मीयों का भी मैं अतुल स्नेह-पात्र थी। मेरे आचरण और व्यवहार से

घर-बाहर सभी प्रसन्न रहा करते थे। मेरी माता बड़ी ही सुशीला, साध्वी, स्वच्छ हृदय वाली, दयालु और धार्मिक विचारों की हैं। पिता जी भी उनसे मिलते-जुलते ही हैं। पुराने ख़यालात के और रूढ़ियानुगामी न होते हुए भी, समाज की आज्ञा में रहते हैं। समाज में पिता जी का अच्छा स्थान और प्रतिष्ठा है। अस्तु।

८ वर्ष की अवस्था में मैं कन्या-पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भरती हुई। १२ वर्ष की अवस्था में मिडिल तक पढ़ा कर मेरा पढ़ना छुड़वा दिया गया। क्योंकि इसके आगे कोई स्त्री-स्कूल वहाँ न था, इससे पिता जी इच्छा रहते हुए भी विवश हो गए। अतः इतने दिन तक मेरा और इन लोगों का समय बड़े ही सुख, आनन्द और उत्साहपूर्वक बीता। अब मेरे विवाह की बातचीत होने लगी। पिता जी और उनके मित्रगण अनुकूल घर और योग्य सच्चरित्र वर की खोज में लगे। मध्यम श्रेणी के होने के कारण उन्हें निरन्तर तीन वर्ष व्यस्ततापूर्वक खोजना और समाज के कतिपय लोगों का ताना, निन्दा सुनना-सहना पड़ा। उनके पसन्द के अनुसार वर मिलता, तो विवाह करना उनकी स्थिति के बाहर होता और स्थिति के अनुकूल होने से उनके पसन्द लायक न था! अतः बड़े ही परिश्रम और कष्ट उठा कर अन्ततः उनके पसन्द के मुताबिक घर और वर स्थिति के अनुकूल मिला। तत्काल मेरी शादी हो गई। ऐसे सुपात्र वर को अपना कर उन्होंने अपने तथा मेरे भाग्य को सराहा। वास्तव में सराहने योग्य बात भी थी। बड़ी आशा और अरमान से उन्होंने यह सम्बन्ध जोड़ा। विवाह में पुरानी रूढ़ियों एवं सामाजिक कुरीतियों को हटाते हुए कमिटी के अनुसार शादी हुई। पर दैव की इच्छा कुछ दूसरी ही थी। अब आगे क्या हुआ, यह सुनिए।

विवाह के दो-अढ़ाई वर्ष पूर्व ही, जब मेरा वयस १३वाँ वर्ष पूर्ण कर रहा था, मुझे एक युवक से जो मेरे घर के समीप ही रहा करता था, प्रेम-सम्बन्ध हो गया। वह भी कायस्थ जाति का ही था, पर कुछ-कुछ जाति में भेद पड़ता था। उसके परिवार में २ बहिनें, १ वृद्धा माता, वह और उसका छोटा भाई था। पिता मर गए थे। अतः वह सपरिवार बड़ी बहिन-बहनोई के यहाँ रह करता था। अवस्था अत्यन्त हीन और दीन थी। उन्हीं के धन से प्रतिपालित होता था। उन्हीं लोगों ने दोनों बहिनों का विवाह कर दिया था और इसको पढ़ा रहे थे। छोटा भाई आवारा निकल गया। अस्तु, मैं इसके कौन से गुण पर मुग्ध होकर प्रेम करने लगी, यह तो न आज ही समझ आता है और न तब ही आता था। रूप, गुण, विद्या, स्वभाव इत्यादि में कुछ भी ऐसी विशेषता न थी, जो रमणी-हृदय को स्वभावतः अथवा बरबस मुग्ध कर सके। चाल-चलन, सदाचार भी निन्दनीय न, तो प्रशंसनीय भी न था। अतः अब मैं निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ कि मैं उसके किसी सद्गुणों पर मुग्ध न हुई थी। केवल उसके प्रेमाश्रुओं और अयाचित हृदयाञ्जलि पर उसे अपना हृदय मैंने दिया था। उस समय मुझे पूर्ण होश न था, कर्तव्याकर्तव्य का ध्यान भी न था। न जाने किस अलक्ष्य शक्ति ने मेरी इच्छा न रहते हुए भी, हम दोनों को एक कर दिया। उस समय उसके व्यवहार में कोई त्रुटि नज़र न आती थी। उचित साधन और अवसर पाकर वह प्रेम-पुष्प धीरे-धीरे विकसने लगा—प्रेम-बन्धन दृढ़ होने लगा। अब तक मेरे मन में कोई पाप अथवा वासना का प्रादुर्भाव न हुआ था। यह प्रेम छिपे-छिपे चलने लगा! एक वर्ष के लगभग इसी तरह बीत गया।

सम्पादक जी! सच कहती हूँ, यदि उसी समय इस प्रेम में कुछ बाधा पड़ जाती, भेद खुल जाता, यह प्रेम बढ़ने नहीं दिया जाता और मेरा विवाह किसी दूसरे के साथ कर दिया जाता, तो मैं आज से कहीं अधिक सुखी होती। क्योंकि उस समय तक मेरा शरीर और आत्मा दोनों पवित्र था। इसके बाद कुछ लोगों की दृष्टि में मेरा उसके सामने होना, बातचीत करना, अनुचित और पाप समझा जाने लगा। यह जान कर मैंने तत्काल ऐसा करना बन्द कर दिया; क्योंकि मेरे मन में पाप कमाने की इच्छा न थी। पर हाय, कुछ दूसरा ही होना था। लुक-छिप कर हम लोगों में देखा-देखी और बातचीत हो जाया करती थी। मुझे उतने ही में सुख था, सन्तोष था। पर वह न जाने क्यों मुझे एकान्त में कुछ देर मिलने के लिए बाध्य और विवश करने लगा। मैं कई एक अज्ञात भय से यह स्वीकार नहीं करती थी। किन्तु उसने न माना, उसके प्रेमाग्रह तथा प्रार्थनाओं और हठों ने मुझे द्रवीभूत कर दिया। मैं अवसर ढूँढ़ कर बहुत बार एकान्त नीरव

निशीथ रजनी में घण्टों छिप कर उससे प्रेमालाप करने लगी। यहीं से मेरा वास्तविक पतन आरम्भ हुआ। एक दिन उसने छल और मेरी अनिच्छा से बलात्कार मेरे सतीत्व, मेरी अमूल्य निधि को लूट लिया। इससे मेरे मन में उसके प्रति बुरी धारणा होने लगी। मैंने उस दिन से उससे मिलना छोड़ दिया। किन्तु उसने फिर मुझे अपने पञ्जे में लाने का प्रयत्न किया। बड़ी-बड़ी क़समें खाकर, प्रतिज्ञाएँ करके, भविष्य में ऐसी भूल, ऐसा पाप न करने का विश्वास दिलाने लगा। मेरे मन में प्रेम तो अभी था ही, मैं अपने को रोक न सकी। उसके अश्रुओं पर पिघल कर फिर मिलने लगी। किन्तु हाय रे दुर्भाग्य! उसने फिर मुझे पतित किया। मैं बार-बार उससे बचने लगी और वह बार-बार प्रतिज्ञा और क़समें खाते हुए मुझसे विश्वासघात करने लगा। सम्पादक जी! जब तीन-चार बार यह अवस्था हो गई, तो मुझे चेत हुआ, बड़ी लज्जा और ग्लानि होने लगी। अपने कार्यों और भूल से पश्चात्ताप होने लगा, तथा उससे बड़ी घृणा हो आई। मैं उसे तुच्छ और पापी समझने लगी। जी में आया, सम्बन्ध त्याग दूँ। यह भाव मैंने उससे प्रगट भी कर दिया। और उसी दिन से चिरकाल के लिए मिलना भी मैंने त्याग दिया। उसी दिन से अपने को भी घृणित और पापी समझने लगी। अब उसके आचरण और स्वभाव से भी घृणा होने लगी। क्योंकि मैट्रिक में फ़ेल होते ही उसने पढ़ना छोड़ दिया, योंही घर में बैठा रहता अथवा इधर-उधर घूमने-फिरने लगा। घर में उसकी माँ और बहिन जब आपस में तकरार करने लगतीं—क्योंकि उसकी माँ बड़ी ही बेवक़ूफ़ और कर्कशा थी—तब वह क्रोधवश अपनी माता को गन्दी-गन्दी गालियों के साथ मारने-पीटने भी लगा। इन्हीं आचरणों से मुझे अत्यधिक घृणा होने लगी। उसके साथ प्रेम-सम्बन्ध हो जाने के कारण मैं पछताने भी लगी। प्रेम-बन्धन एक प्रकार से शिथिल होने लगा था। यदि उस समय भी उपयुक्त साधन और अवसर मिल जाता, तो प्रेम-बन्धन तोड़ देती। पर उसने इसके अतिरिक्त प्रगट में आज तक कोई दुर्व्यवहार मेरे साथ न किया था, प्रेम में कोई क्षति न पहुँचाई थी, पूर्णरूप से मुझे प्यार करता था। अतः मैं उसके प्रेम-पाश से न निकल सकी। मन पुनः उसी ओर अग्रसर होने लगा। हाय! उस समय मुझे क्या होश न था? मैं भूल पर भूल करती गई, पर अपने को सुधार न सकी। वह धोखे पर धोखा देता गया, पर मुझे चेत न हुई।

अब मुझे अपने विवाह की चिन्ता हुई। भय हुआ कि विवाह होने पर इसे छोड़ जाना पड़ेगा। प्रबल इच्छा होने लगी कि इसीसे विवाह करूँगी। इसी समय मेरा विवाह एक अच्छे तथा योग्य वर से निश्चित हुआ। यह सुन कर मुझे बड़ी ही निराशा एवं दुःख होने लगा। क्या लिखूँ, रमणी-हृदय के भाव को आप स्वयं समझ सकते हैं। मैंने प्रण कर लिया, यदि विवाह करूँगी तो इसी युवक से, दूसरे से कदापि न करूँगी। यदि हो भी गया तो प्रथम दिवस ही यह सभी बातें भावी पति से कह दूँगी, इत्यादि। अपने प्रेम के छूटने और चिर-वियोग की सम्भावना से हम दोनों ही रोते थे, पर चुप थे। शगुन-तिलक वग़ैरा हो जाने पर पारिवारिक अड़चनों के आ जाने से वह विवाह न हो सका। शगुन वग़ैरह लौटा दिया गया। लग्न के दिन होते हुए भी शीघ्रता में उस वर्ष दूसरी जगह विवाह न ठीक हो सका। हमारा प्रेम फिर कोई बाधा न पाकर, स्वतन्त्र रूप से विकसने लगा। अब बाहर-बाहर कुछ लोगों को हमारे ऊपर सन्देह होने लगा; पर मेरे माता-पिता एवं आत्मीयगण अभी न समझ पाए थे। कारण, मेरे आचरण और व्यवहारों ने उनके हृदय में सन्देह के लिए स्थान ही न छोड़ा था। मैं भी अब तक उनसे यथासम्भव यह भेद छिपाती ही आती थी। अब हमारे प्रेम में तीसरा वर्ष बीत रहा था। मिलना-जुलना छोड़ने के पश्चात हम लोगों में सदैव पत्र-व्यवहार हुआ करता था। अतः एक दिन पत्र पकड़ा गया। हमारा प्रेम-सम्बन्ध एकाएक खुल गया। मैंने अब छिपाना और झूठ बोलना अनुचित और पाप समझा। मैंने सभी बातें अपनी माता से कह दीं। और उस युवक ने भी अवसर आ जाने पर सभी अपराध अपने सिर पर लेते हुए पिता जी से कह दिया। मैंने माता से खुल्लमखुल्ला कहना शुरू किया कि "मुझे उससे प्रेम है, उसके साथ मेरा सतीत्व नष्ट हो गया है। अब दूसरे के साथ विवाह होने से मेरा धर्म नष्ट हो जायगा। मैं और भी पतित हो जाऊँगी। मेरा इसी के साथ विवाह कर दीजिए।" अब मैंने लुका-छिपा कर कार्य करना छोड़ दिया।

मेरे माता-पिता पर वज्रपात हुआ। सभी हौसले-अरमानों पर पाला पड़ गया। मान-मर्यादा धूल में

मिलने का समय आन पहुँचा। उन्होंने मुझे अनुनय-विनय करके, उचित-अनुचित, योग्य-अयोग्य बता कर भविष्य की चिन्तना करा कर, समझाना आरम्भ किया। पर मैं अटल रही। इन लोगों ने सत्याग्रह ठान दिया। यह युद्ध तीन-चार महीनों तक चलता रहा। पिता जी अपने प्रण पर दृढ़ थे। उन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया, उसके साथ शादी करने के पहले हम लोग हत्या कर लेंगे, पर उस कुपात्र के साथ विवाह करके अपनी बेइज़्ज़ती एवं तेरे भविष्य के देनदार न होंगे। यदि तू योग्य और सत्पात्र के साथ प्रेम करती, एवं हमें ऐसा धोखा न देती तो यदि वह निर्धन ही होता, अन्तर्जातीय ही होता, पर हमें कोई आपत्ति न थी। पिता जी के मित्रगण, जो वकील, बैरिस्टर, डिप्टी, रायबहादुर इत्यादि थे और जिन्हें बाल्यकाल से ही पिता-तुल्य मैं समझती थी और वे लोग भी पुत्री के समान मुझे स्नेह प्रदान करते थे—यही बात कह कर मुझे समझाना आरम्भ किया। यहाँ तक कि मेरे पैर पर अपनी टोपियाँ रखने लगे। सम्पादक जी! क्या लिखूँ, उस दिन को याद करते ही हृदय काँप उठता है। मैं बड़े ही असमञ्जस में पड़ी। उस युवक ने अब भी मेरा साथ न छोड़ा था। वह कहता था—"तुम्हारे सामने दो पथ हैं, तुम जिस पथ में जाने से अपनी भलाई समझती हो, उसी पथ पर जाओ। मैं तो तुम्हें सुखी देखना चाहता हूँ। तुम जो कहोगी, प्राण देकर भी करने को प्रस्तुत हूँ।"

इस समय एक तो मैं अगाध समुद्र में स्वयं डूबती-उतराती थी, कूल-किनारा नज़र नहीं आता था, उसकी आवारागर्दी की शिकायत व कई एक तरह की बदनामी सारे शहर में सुनने में आई; दूसरे धीरे-धीरे कई एक लोग इस भेद को जान गए, अतः लोग मेरे प्रति बड़ी बुरी धारणा करने लगे। और उस युवक के घर वाले भी मेरे विषय में अश्लील, भद्दी और गन्दी बातों से मेरा अपमान और निन्दा करने लगे—गालियाँ देने, तिरस्कार करने लगे। नहीं जानती, वह युवक इन बातों को सुनता था या सुन कर टाल देता था! इसके अतिरिक्त पिता जी कई एक शत्रुओं से आक्रान्त विपदों से घिरे हुए थे, माता रुग्णावस्था में पड़ी थीं। उनके दुःख की कोई सीमा न थी। अन्तिम समय दोनों आत्मघात करने पर तुल गए। मैं सभी उपचारों को करके समझ गई, कि इन पर कोई असर नहीं पड़ता। अब एक ही उपाय है, यदि मैं स्वयं अपने पैरों खड़ी हो जाऊँ तो—किन्तु माँ मृत्यु-शय्या पर है। पिता-माता दोनों मृत्यु को प्राप्त होंगे। और उस युवक के ऊपर भी कुछ-कुछ भविष्य के लिए अविश्वास होने लगा। हाँ, क्या इन वृद्धों के स्नेह, उपकार और वात्सल्य का यही बदला है? मेरा हृदय डावाँडोल हो गया। मुझ नारी का दुर्बल हृदय सौ-सौ भावनाओं के मन्थन से अधीर होकर संरक्षकों के आगे नत-मस्तक होना पड़ा। मैंने गुरुजनों के सम्मुख उस युवक से प्रतिज्ञा की कि "आज से तुम्हारा प्रेम-सम्बन्ध त्याग रही हूँ।" उससे भी प्रतिज्ञा करवाया गया कि "मैं यह भेद गुप्त रक्खूँगा, किसी से भी प्रगट न करूँगा। इन्हें अहित समझ कर कोई ऐसा कार्य न करूँगा, जिससे इनका जीवन दुखी और अपमानित हो।" उसी समय उसने मुझसे भी कहा—"जाओ देवी, भगवान तुम्हें सुखी रक्खें; पर मेरी तीन प्रार्थना है, उसे पूरी करती जाओ—(१) मुझे भूल जाना, (२) अपना विवाह कर अपने जीवन को सुखी, पवित्र और आदर्श बनाना, (३) पति से भूल कर भी इन बातों की चर्चा न करना। पति से प्रेम करना और पतिव्रता होना।" मैंने शीघ्रता में विकल-विह्वल हो, गुरुजनों के सम्मुख उसकी ये तीनों प्रतिज्ञाएँ स्वीकार कर लीं।

इसके दूसरे दिवस वह स्थान मुझे छोड़ना पड़ा। रोगिणी माता के साथ मैं पटना, गया, दरभङ्गा, मुज़फ़्फ़रपुर पहुँचाई गई। इन स्थानों में इसलिए मुझे भ्रमण करवाया गया, जिससे मेरा मन बहले, प्रतिज्ञा-पालन के लिए उपयुक्त साधन व अवसर मुझे प्राप्त हो। मैं भी उस काँटे को हृदय से निकाल देने का प्रयत्न करने लगी। परमात्मा साक्षी है, अपनी प्रतिज्ञा-पालन के लिए मैंने यथा-सम्भव कोई बात न उठा रक्खी। क्या लिखूँ—इस कार्य में जैसी वेदना, जैसा हार्दिक क्लेश मुझे भोगना पड़ा, वह अकथनीय है। स्मृति-मात्र से हृदय आकुल हो उठता है। माता को भरसक सुखी रखने का प्रयत्न करने लगी, माता जी भी स्वस्थ होने लगीं। पर मेरा शरीर दिनों-दिन दुर्बल होता जाता था। अतः मैं बड़े ज़ोरों से रोगाक्रान्त हुई। इसी तरह पाँच मास बीत गए। लग्न का दिन बीता जा रहा था। जब मेरा स्वास्थ्य कुछ-कुछ सुधरने लगा तो पिता जी ने विवाह के लिए मेरी सम्मति

माँगी। मैं ज्ञानशून्य, हतशून्य हो रही थी, अतः स्वीकार कर ली। तत्पश्चात सन् १९२९ की ४थी जुलाई को मेरा विवाह हो गया। मैं ससुराल गई, कुछ दिनों के लिए। मेरे माता-पिता एवं संरक्षकों ने मेरे सुख के लिए कोई कसर उठा न रक्खी थी। घर की बात तो जाने दीजिए। मेरे पतिदेव भी रूप, गुण, विद्या, बुद्धि, शील, स्वभाव, सदाचरण के अवतार हैं। नई रोशनी, नए ख़्यालातों के समर्थक हैं। स्त्रियों के विषय में उनके विचार अत्यन्त उन्नत और उदार हैं। क्रोध तो उन्हें छू तक नहीं गया है। सदा प्रसन्न-मुख रहा करते हैं। २२ वर्ष की अवस्था है। गत वर्ष बी० एस-सी० की डिग्री सम्मान सहित प्राप्त की है। उनके सद्गुणों की प्रशंसा सभी मुक्त-कण्ठ से किया करते हैं। किन्तु एक बात की कमी है। वे जितेन्द्रिय नहीं हैं। इन्द्रिय-परायण हैं, किन्तु इससे यह न समझ लीजिए कि पर-स्त्री-गमन या वेश्यागमन इत्यादि निकृष्ट कर्मों को करते होंगे। यह बात नहीं है। बड़े ही स्वच्छ-हृदय हैं। आज तक उन्होंने एक भी बात या भाव मुझसे नहीं छिपाया। किसी बात के लिए भी छल न किया। यहाँ तक कि विवाह के चार वर्ष पूर्व एक मुसलमान लड़की से उन्हें बुरा सम्बन्ध हुआ। चार महीने तक इन्होंने उसके साथ गुप्त रूप से सहवास किया था, किन्तु तुरन्त सुधर गए। ये स्वयं अपने मुख से कह देते हैं। अब सच्चरित्रता, पवित्रता और सात्विक रूप से जीवन-यापन करते थे। अस्तु, जितेन्द्रिय न होने के कारण, हाय कैसे लिखूँ—लिखते दुःख और लज्जा होती है—इन्होंने मेरे साथ प्रथम दिवस को ही......पिता जी! ऐसी-ऐसी बातें आपके निकट लिखते मेरी मृत्यु क्यों नहीं हो जाती! हाय, क्या-क्या संसार में भोगना है। क्या करूँ, इन बातों को छोड़ते भी नहीं बनता। मेरा विवेक, मेरी निर्णय-शक्ति, लुप्तप्राय हो रही है। अतः मैं सभी छोटी-बड़ी बातें आपके सामने स्पष्ट और स्वच्छ हृदय से कह कर निर्णय करवाना चाहती हूँ। अब मेरे मन में लेश-मात्र भी छल अथवा कालिमा नहीं है। कैसे आपको अपना हृदय दिखा दूँ?

मैं अपने अतीत की प्रतिज्ञा से विवश थी। विशेष आपत्ति दिखाती तो भेद खुल जाने का डर था। अतः पतित होने से मेरी आत्मा में भयानक चोट हुई। मैं वेश्या से भी अपने को निकृष्ट समझने लगी। विवाह के दो दिन बाद वे कॉलेज चले आए। दो-चार महीनों के अनन्तर कभी-कभी भेंट हो जाया करती थी। उस युवक के कार्यों से मुझे घृणा तो हो ही गई थी। प्रतिज्ञा-पालनवश उसकी ओर से प्रेम भी हटाना पड़ा, अब मेरे सामने मेरा आराध्यदेव अथवा प्रेमपात्र सभी कुछ पतिदेव ही थे। यही करना मेरा लक्ष्य भी था। अतः उपयुक्त साधन और अवसर मिल जाने से वह प्रेम-निर्झर इसी ओर प्रवाहित होने लगा। मेरे हृदय में—शून्य हृदय में—पुराना प्रेम-बीज कुछ-कुछ पुनः अङ्कुरित

महाराजा काश्मीर

(गोलमेज के सदस्य)
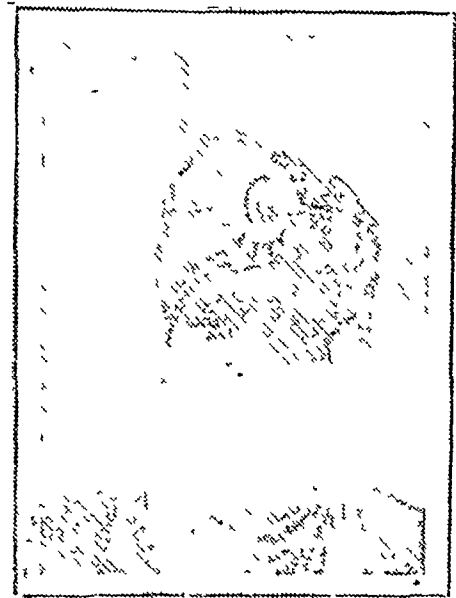
होने लगा। इनके इन्द्रिय-परायणता के अतिरिक्त मैं और सभी गुणों पर मुग्ध होकर श्रद्धा और भक्ति से उन्हें देखती थी, और उसे स्वप्न में भी याद न आने देने का प्रयत्न किया करती थी और अब भी करती हूँ। इनके परिवार की सुन्दर और सुशील बालक-बालिकाएँ, हँस-मुख ननद-जेठानी तथा सुकुमार, स्नेहमयी पतोहू, सास-श्वसुर, देवर इत्यादि के स्वभाव ने मुझे अपना लिया। मैं सभी से स्नेह करने लगी हूँ। इनके साहचर्य से अपने अतीत की दुःखप्रद घटनाओं को भूलने में समर्थ हुई हूँ। अब इसके बाद की घटना सुनिए।

जब मैं अपने जन्म-स्थान का परित्याग कर इधर आई, उसके कुछ दिन बाद उस युवक ने प्रेमान्ध हो—या प्रतिहिंसावश उपद्रव करना शुरू किया। पिता जी से फिर कहना शुरू किया—"उससे मेरी शादी कर दीजिए, नहीं तो परिणाम बुरा होगा।" असफल होने के कारण उसने बहुत बार चाहा कि पिता जी का प्राणान्त कर दे। वह सब भेद संसार में खोल कर चारों ओर बदनामी फैलाने लगा। कई एक जगह गुमनाम पत्र भी भेजने लगा। मेरी खोज में एक बार मेरे ग्राम में भी चला आया। मैं वहाँ न थी; पर पिता जी उसके आक्रमण से बचे।

महाराजा बीकानेर

(गोलमेज़ के सदस्य)
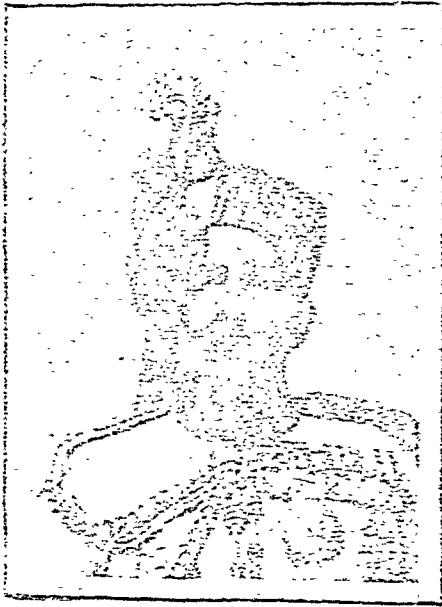
विवाह के दिन भी उसने मेरे ग्राम में, जहाँ मेरी शादी हो रही थी, बारात में बेइज़्ज़ती करने की धमकी देकर पत्र भेजा। विवाह के एक सप्ताह पूर्व मेरे ससुराल में पतिदेव के पास भी एक पत्र भेजा कि मुझे उससे प्रेम है, आप विवाह न कीजिए, नहीं तो परिणाम बुरा होगा। पतिदेव के मन में सन्देह तो उसी समय से अवश्य हो गया। पर अब क्या करते, ध्यान न देकर विवाह कर लिया। कई एक बार पतिदेव ने इसके सम्बन्ध में मुझसे सत्यता पूछी, किन्तु दुखिया माता-पिता और संरक्षकों की प्रतिष्ठा के लिए और अपनी प्रतिज्ञावश मुझे मिथ्यावादिनी भी होना पड़ा। इस मिथ्यावाद में मुझे कितना दुःख, कितनी घृणा, कितनी ग्लानि होती थी—मेरे अन्तर्यामी ही जानते हैं। विवाह के कुछ दिन बाद मेरे ससुराल जाकर, वह न जाने किस अभिप्राय से तुरत लौट भी आया, और सभी से यह बात प्रगट कर दी गई। ससुराल में भी सभी लोग इस भेद को जान गए हैं। अब तो सर्वत्र यह बात पूर्णरूप से फैल गई। घर-घर इसकी आलोचना हो रही है। उसके कार्यों से मुझे भय होने लगा कि पतिदेव के प्राणों पर सङ्कट न आ पड़े। मैंने उन्हें सचेत रहने के लिए लिखा, तो उन्होंने उत्तर दिया—"प्रिये, तुम मेरे लिए चिन्ता न करो, वह मेरे ऊपर वार नहीं कर सकता। तू सुखपूर्वक रहा कर, जिससे तेरे बिना संसार मुझे असार न लगे। संसार चाहे जो कहे, पर तू तो मेरे लिए......क्या चन्द्रमा में कलङ्क नहीं है? भगवान अंशुमाली में धब्बा नहीं है? तो इससे क्या चकोर चन्द्रमा के अमृतमयी ज्योत्स्ना का त्याग कर दे? संसार उसकी किरणों से लाभ न उठावे? इत्यादि...।" कितने पवित्र, उदार और त्यागमय ये वाक्य हैं। इन बातों ने अक्षरशः मेरे हृदय में घर कर लिया। मैं सौ जान से इन पर निछावर हो गई। सम्पादक जी! यह वाक्य उस समय के हैं, जब विवाह हुए प्रायः दो मास भी न हुआ होगा। और अब की बात सुनिए!

इसके बाद वह युवक पिता जी से बदला लेने का प्रयत्न तो करता था ही, एक दिन समय पाकर उसने मेरे पिता जी के कार्यालय से सरकारी मिसिल, जो पिता जी के मातहत में थी, चुरा ली। पिता जी नौकरी से हटा दिए गए। चोरी साबित होने पर मुक़द्दमा चलने लगा। सी० आई० डी० के सहारे मेरे प्रेम-पत्रों को पिता जी ने गुप्त रूप से उस युवक से ले लिया। बड़े ज़ोर की फ़ौजदारी हुई। उसने अदालत में भी सभी भेद कह दिया, यहाँ तक कि गवाही के लिए मेरे नाम से भी सम्मन भेजने को था, पर वकीलों ने मना किया। ख़ैर, रुपयों के ज़ोर से पिता जी उस मुक़द्दमे से रिहाई पा गए। उस युवक को दो वर्ष के लिए नेकचलनी के लिए मुचलका और ज़मानत देनी पड़ी। पिता जी को नौकरी पुनः मिल गई। मैं फिर उस स्थान का परित्याग करने के बाद से आज तक वहाँ नहीं गई हूँ। अतः अब

वह कहता है—"एक बार उसे (मुझे) यहाँ ले आओ, मैं केवल देख कर अपना प्राणान्त कर लूँगा।" मैं नहीं समझती, वहाँ मेरा जाना अब ठीक है या नहीं ?

यही सब बातें पतिदेव को सविस्तर रूप से मालूम हो गईं। उन्होंने दो मास हुआ, मेरे पित्रालय में आकर यह सब बातें मुझसे पूछीं। मैंने अब मिथ्यावाद करना ठीक न समझा। सभी बातें स्वीकार कर लीं। किन्तु इसका परिणाम बुरा निकला। यद्यपि मुझे अपने सत्य कथन से अपूर्व आत्म-सन्तोष हुआ है। पतिदेव यहाँ तो कुछ न बोले, पर उनके भावों से विदित हो गया कि इनके हृदय पर इस रहस्य को जान कर आघात हुआ है और होना स्वाभाविक भी है। अस्तु, यहाँ से जाने के बाद वे पत्र द्वारा अपने हृदय के भावों को प्रगट कर रहे हैं। उनका कहना है—"तुमने उस प्रेम का निर्वाह न करके माता-पिता के मोह में फँस कर घोर पाप किया है। सत्यपथ; धर्मपथ, न्यायपथ से भ्रष्ट हो गई हो। तुम्हारा यह कर्त्तव्य नहीं था। तुमने उसके साथ विश्वासघात किया है। मुझे तुम्हारा कार्य पसन्द नहीं, तुम्हारी प्रशंसा मैं कदापि नहीं कर सकता। तुम भ्रष्टा हो, मुझे तुमसे घृणा हो रही है। विवाह के समय कुछ-कुछ मेरा प्रेम था, पर अब नहीं है। हार्दिक सौन्दर्य और गुण पर मुग्ध होकर जो प्रेम हो, वही सच्चा है। पर मेरे तुम्हारे प्रति ये भाव कदापि नहीं हो सकते। अब तो तुम्हारे साथ मेरा सम्बन्ध वासना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। तुम्हारे संसर्ग से मेरा जीवन निन्दनीय हो रहा है। तुम यदि उससे केवल प्रेम ही करतीं, तो कुछ न था; पर तुम्हारा तो और भी पतन हो चुका है। यदि वह न हुआ होता, तो मैं तुम्हारी प्रशंसा मुक्त-कण्ठ से करता। हाँ, तुम्हारे साथ मैंने भी पाप किया है। तुम्हारे स्वभाव, चरित्र, गुण, प्रेम इत्यादि का परिचय बिना पाए ही मैंने तुम्हें भ्रष्ट कर डाला है। इसके प्रायश्चित्त में तुम जो दण्ड और श्राप दोगी, मुझे स्वीकार है। तुम्हारे परित्याग से ही मेरी भलाई है, अतः मैं तुम्हारा परित्याग शीघ्र ही और अवश्य करूँगा। और तुम भी अपने जीवन को सुधारो, मेरी आशा छोड़ दो, मैं पापी हूँ, कामुक हूँ, इन्द्रिय-लोलुप हूँ, मुझे ठुकरा दो। परमात्मा अब भी तुम्हारे अपराध को क्षमा करेंगे। ऐ देवी ! बिछुड़े हुए मिलेंगे फिर········को सार्थक करो मैं इसमें तुम्हारी सहायता करूँगा।"

सम्पादक जी ! उनका कहना सभी सत्य और अकाट्य है। पर मैं क्या कहूँ। हाय ! कहीं की न रही। माता-पिता के कारण, स्वेच्छा से, प्रतिज्ञावश उधर से भी मुख मोड़ लेना पड़ा। इससे धर्मच्युत और पथभ्रष्ट भी हुई ! तत्पश्चात इस ओर आकर अपनी आत्मा का भी पतन किया ! बरबस सभी ओर से ध्यान हटा कर इनसे भी प्रेम किया; तो अब इधर से भी परित्यक्त हुई ! मैंने पतिदेव को लिख दिया है—"गुरुजनों के सम्मुख प्रतिज्ञा करके, सभी को विश्वास दिला के—उसे धर्म का सहोदर मान कर, मैंने उसका परित्याग कर दिया है। उस ओर
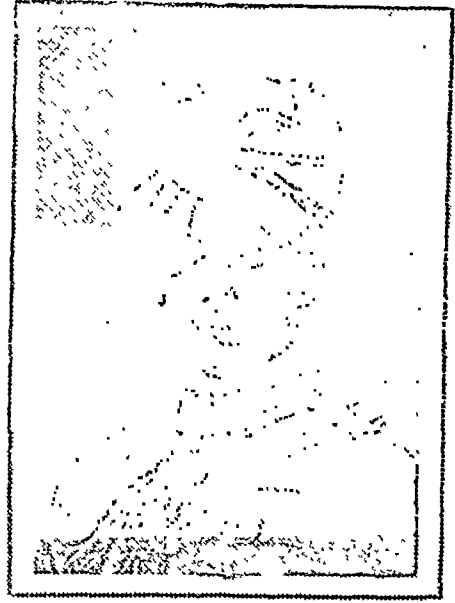
नवाब भोपाल
(गोलमेज के सदस्य)

अब मैं जा नहीं सकती। मेरी आत्मा इसके विरुद्ध है। वह पथ मेरे लिए अब नहीं है। हाँ, यदि मेरे संसर्ग से आपका जीवन दुःखमय, अपवित्र निन्दनीय और कलुषित हो रहा है, तो जिसमें आपकी भलाई हो वही कीजिए। मुझे भूल कर सुखी हो सकें, तो वही कीजिए। विवाह की इच्छा हो तो विवाह कर लीजिए। मैं आपके सुख में बाधा न दूँगी। पर अपने हृदय में न सही, चरणों में स्थान दीजिए। मेरे लिए कहीं स्थान नहीं है। मैं आपकी, आपकी भावी पत्नी की, बाल-बच्चों

की सेवा परिचारिका के रूप में करती हुई जीवन यापन कर लूँगी ।" मेरे पित्रालय में जब तक माता-पिता जीवित हैं, तभी तक मेरे लिए स्थान है। पश्चात कुत्तों के समान दुरदुरा कर निकाल दी जाऊँगी! क्योंकि मेरे परिवार में सभी कोई आजकल हमारे शत्रु हो रहे हैं। कारण, पिता जी अपनी जायदाद के ½ के स्वामी हैं। माता जी को भी अपने मायके में अपने पिता की कुछ सम्पत्ति मिली है। अतः सभी की गृद्ध-दृष्टि इस धन पर लगी है। क्योंकि पिता जी को कोई पुत्र नहीं, एक मैं ही अभागिनी उनका सर्वस्व हूँ। पिता जी
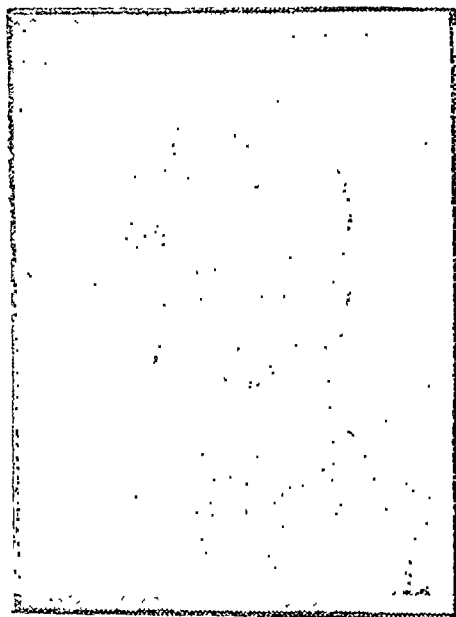
महाराजा रीवाँ
(गोलमेज के सदस्य)

कह रहे हैं कि "अपनी सम्पत्ति को मैं अनाथालय अथवा देश की किसी उपकारिणी संस्था में लगा दूँगा। पर इन नालायक़ों को किसी अवस्था में नहीं दे सकता।" इस कारण मेरे माता-पिता पर, विपद पर विपद पड़ रही है।

सम्पादक जी! मेरे उपरोक्त कथन का पतिदेव ने १२-६-३० तारीख़ को निम्न-लिखित प्रत्युत्तर भेजा है—"द्वितीय विवाह की वार्ता जो तुमने लिख भेजी है, उसे मैं अभी कुछ दिनों के लिए स्वीकार नहीं कर सकता। जब तक जीविका का साधन प्राप्त नहीं होगा तथा "लाइफ़ सेटल" नहीं होगा, नहीं करूँगा। और आधुनिक समाज भी एक स्त्री के रहते हुए दूसरा विवाह नहीं होने देता। अतः प्रत्यक्ष रूप से इस समाज में विवाह नहीं कर सकता। पिता-माता, भाई-बिरादर, सभी इसके प्रतिकूल हो जायँगे। उन लोगों को आपके प्रति शङ्का उत्पन्न हो जायगी, वे घृणा करने लगेंगे। यदि जमशेदपुर में मुझे काम मिल जाय, तो सब कुछ सहल है। मैं एक प्रकार से तब वहीं बस जाऊँगा। वहाँ पर यूरेशियन तथा बङ्गाली लेडीज़ बहुत रहती हैं। यूरेशियन लेडी से सम्बन्ध हो जाने पर क्रिश्चियन लोगों की कृपा से अच्छा-अच्छा पद प्राप्त हो जाता है। वह बङ्गाली या बिहारी जो हो। यदि उन लोगों की कृपा हो जायगी तो किसी प्रकार का बखेड़ा नहीं है। वहाँ पर मैं यही प्रकट कर दूँगा कि मेरा विवाह नहीं हुआ है। यदि किसी प्रकार का बखेड़ा उठ जायगा तो लूट लाना और कूट खाना.........'ऐश कर दुनिया में ग़ाफ़िल ज़िन्दगानी फिर कहाँ........' वाली कहावत चरितार्थ करूँगा। अभी तो इस पर घृणा हो रही है, पर मेरे ऐसे व्यक्ति के लिए यह दुर्लभ नहीं। धिक्कार है मुझे।......... तथा परिचारिका वाली बात मुझे पसन्द नहीं। हृदय नहीं चाहता। लिख चुका हूँ, आपके लिए मेरे हृदय में स्थान नहीं है। तो हृदय यह भी नहीं चाहता कि वह जिस गृह तथा तन में रहे वह उसी घृणित व्यक्ति से उस तन तथा उसके बाल-बच्चों की सेवा करवावे। यह तो एक प्रकार का बदला है। वैसा बदला मेरा हृदय नहीं चाहता। मैं विवश हूँ इसी हृदय से, यथार्थ पूछिए तो यह अपनी दृष्टि से आपको देखना नहीं चाहता। कोई पूछे इतनी घृणा का कारण क्या है? इसका कुछ उत्तर नहीं।.........अब रह गया आपकी जीविका का प्रश्न। इसके लिए मैं ज़िम्मेवारी लेता हूँ। जब लाइफ़ सेटल हो जायगा तो मैं मासिक जितना आपकी इच्छा होगी, उतना यथासमय नियम-बद्ध भेजा करूँगा। यदि इसमें आपकी स्वीकृति न हो, तो इसके साधन आपके पास बहुत कुछ हैं। किसी स्कूल में शिक्षिका का पद मैं आपको अवश्य दिला दूँगा। इसमें समाज-सेवा, देश-सेवा भी आप कर सकती हैं। लाचार दर्जे, टेलरिङ्ग से भी पूरी आय आपकी हो सकती है.........इत्यादि।" और पत्र-व्यवहार स्थगित कर देने का तथा मेरा चेहरा न देखने का विचार

करते हैं। सम्पादक जी ! उपरोक्त बातें उन्होंने लिख भेजा हैं; जिसे पढ़ कर जैसी दारुण वेदना, जैसी भयङ्कर ज्वाला मेरे हृदय में उत्पन्न हुई है, कैसे प्रकट करूँ ? यह उसी पाप का प्रायश्चित्त है, जैसा मैंने उस अभागे युवक के साथ किया; उसी का बदला है ! हाय रे भावुक-हृदय युवक ! तू एक कुलटा, अविश्वासिनी, पापिनी, किन्तु रमणी-हृदय की प्यास नहीं जानता। पतिदेव की सभी बातें सत्य हैं। और उन्हें विश्वास है कि उनके प्रेम से निराश और तिरस्कृत होकर मैं फिर उसी युवक से प्रेम-सम्बन्ध जोड़ लूँगी। जैसा कि वे आज्ञा भी देते हैं। पर हाय ! तुम नहीं जानते, तुम्हें यथार्थ का परिचय ही नहीं मिला है, तुम कल्पना भी नहीं कर सकते हो। पूज्य पिता जी ! परम पिता परमात्मा जानता है, वही साक्षी है कि विवाह के पश्चात से मैं जिसे अपना उपास्य और प्रेम-देव समझती थी—उसी का जलवा, उसी का अस्तित्व इनमें रख और जान कर, हृदय से वही समझ कर इन्हें प्यार कर रही हूँ। वही प्रेम इनसे कर रही हूँ। हाय ! कैसे इनसे हृदय और शरीर चिर-दिन के लिए विलग करूँ। इनसे विलग होते आत्मा और हृदय फटा जा रहा है। किसके लिए संसार में रहूँ। ये मुझे नहीं चाहते, इन्हें मुझसे कोई प्रेम नहीं। ऐसा होना ठीक भी है, क्योंकि मुझमें न रूप है, न गुण; सौन्दर्य है, न कोई आकर्षण शक्ति ! पापिनी हूँ, दुर्गुणों की भण्डार हूँ, तो ये मुझे चाहें तो कैसे ? अस्तु, अब मुझे अपने लिए कोई कामना या अभिलाषा नहीं है, मैं तो जीवन के शेष दिन आदर्श और पवित्र बिताना चाहती हूँ; पर मुझे केवल अपने माता-पिता एवं पतिदेव की चिन्ता है। माता जी पुनः रोगाक्रान्त हो रही हैं, इस अवस्था में पतिदेव की ऐसी इच्छा, ये भाव ! जिस तरह हरी घास के नीचे पृथ्वी असंख्य पदार्थों को छिपाए रहती है, मैं भी अपने हास्य के आवरण में अपने आन्तरिक दुःख को उसी तरह छिपाए हुए हूँ। माता जी सुन लेंगी, तो न जाने किस अवस्था को प्राप्त होंगी। यद्यपि यह विष तो उन लोगों का ही लगाया हुआ है, पर वे भी तो भविष्य की ऐसी दुःखप्रद कल्पना न कर सकते होंगे ! हाँ, तब मैं माता-पिता को भी सुखी रखना चाहती हूँ ! भविष्य में मेरे कार्य द्वारा इनकी कोई हानि अथवा अनिष्ट न हो और अपने आराध्य-देव को भी सुखी देखना चाहती हूँ। मेरे ही कारण इन तीनों का शेष जीवन और सुख नाश हो रहा है। पतिदेव तो अब स्वयं अपना उपाय कर रहे हैं। पर सम्पादक जी, अब मैं क्या करूँ ? मेरे लिए कौन सा पथ है ? इस समय मेरा क्या कर्त्तव्य है ? यही मैं आपसे पूछ रही हूँ, मेरे इतने प्रयास का यही अभिप्राय है। मैंने प्रारम्भ से लेकर आज तक की कोई बात आपसे नहीं छिपाई है। हृदय खोल कर रख दिया है। यही मेरी पाप-कहानी अथवा जो समझिए, है। मैं भयानक आग में जल रही हूँ, बड़ी ही आशा ले यह सब लिख रही हूँ। पढ़ने में अवश्य कष्ट हुआ होगा, पर मैं नतजानु हो इसके लिए क्षमा-याचना भी कर रही हूँ। आप अपना सदुपदेश देकर मुझे कर्त्तव्य-पथ पर
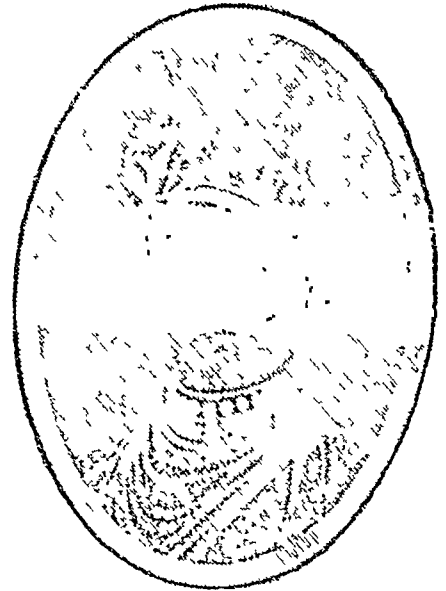
महाराज राणा धौलपुर
(गोलमेज के सदस्य)

लाइए। मैं प्यासे पपीहे की भाँति आपके पत्रोत्तर की बाट देख रही हूँ। तीन आने का टिकट भी भेज रही हूँ। शीघ्र और अवश्य पत्रोत्तर भेजिए। निम्न-लिखित पते से। विशेष कृपा ! पत्रोत्तर रजिस्ट्री द्वारा भेजें।

ग्राम.........
पत्रालय.........
ज़िला—मुज़फ़्फ़रपुर } "आपकी एक अभागी और पापिनी कन्या"

[यह पत्र केवल समाज की वास्तविक स्थिति को पाठकों के समक्ष उपस्थित करने मात्र के उद्देश्य

(शेष मैटर २६१वें पृष्ठ में देखिए)

[सम्पादक तथा स्वरकार—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

मिश्र भैरवी—३ ताल

[शब्दकार—डॉ० धनीराम 'प्रेम', लन्दन]

स्थायी—एक पिता के सब सन्तान ।
कोई बड़ा न छोटा हममें,
सब हैं एक समान ॥

अन्तरा—एक पिता के वैश, ब्राह्मण, अरु चमार, नाई,
हिन्दू मुसलिम या ईसाई,
यह सब कृत्रिम भेद-भाव हैं,
इसमें तत्व न जान ।
लग जा सबके गले प्रेम से
तज झूठा अभिमान,
सबों का एक वही भगवान ॥

स्थायी

३				०				१				×			
	क					क		क		क	क				
मप	ध	प	म	रे	म	ग	—	नी	स	ग	रे	स	—	—	—
								०							
एए	ए	क	पि	ता	आ	के	—	स	व	स	अं	ता	—	—	न
०		०		०	क ०	क०	०	क	०	क	क		क		
स	—	स	—	स	नीम	रे	स	नी	स	ध	नी	प	ध	प	—
को	—	ई	—	व	ड़ाआ	आ	न	छो	ओ	टा	आ	ह	म	में	—
क	क						क		कक	० क	कक	क	क		क
ग	ग	प	—	प	—	प	ध	मप	धनी	सनी	धनी	धप	धप	मप	मग
स	व	हैं	—	ए	—	क	स	माआ	आआ	आआ	आआ	आआ	आआ	आआ	आन

अन्तरा

	क					क		क		क				क	क
मप	ध	प	म	रे	म	ग	—	ध	—	ध	म	—	म	ध	ध
एए	ए	क	पि	ता	आ	के	—	वै	—	श्य	ब्रा	—	ह्मन	श्र	रु
क	०		०	क०	क	०		क		क	क		०		
नी	स	—	स	रे	नी	स	—	नी	—	नी	नी	—	स	—	—
च	मा	—	र	ना	आ	ई	—	हिं	—	दू	मुस	—	लि	—	म
क ०	क०		०	क	क			०		०	०	०	०	०क	०
नीस	रे	—	स	नी	ध	प	—	स	—	स	स	स	स	रे	स
याआ	आ	—	ई	सा	आ	ई	—	ये	—	स	ब	कृ	ई	त्री	म
क	०	क	क	क	क			क	क				क	क	क
नी	स	नी	ध	नी	ध	प	—	ग	ग	प	—	प	ध	नी	ध
भे	ए	द	भा	आ	व	हैं	—	ई	स	में	—	त	अ	त्व	न
				क०	क०	क०		०क	०क	०		क	०	क	क
प	—	—	—	ग	ग	ग	—	रे	रे	स	—	नी	स	नी	ध
जा	—	—	न	ल	ग	जा	—	स	ब	के	—	ग	लो	ए	प्रे
क	क			क	क				क	क	०	क	क	क	
नी	ध	प	—	ग	ग	प	—	प	ध	नी	स	ध	नी	ध	प
ए	म	से	—	त	ज	भू	—	ठा	आ	अ	भि	मा	आ	न	स
				क		क			क	क	क				
म	—	प	—	ग	—	र	स	स	रे	ग	रे	स	—	—	—
बों	—	का	—	ए	—	क	व	ही	ई	भ	ग	वा	—	—	न

(२५९वें पृष्ठ का शेषांश)

से यहाँ प्रकाशित किया गया है। आज न जाने कितनी युवतियों और युवकों का विवाह-सम्बन्ध, उनके प्रेमी अथवा प्रेमिकाओं से, केवल इसलिए नहीं किया जाता, क्योंकि या तो माता-पिता के सामने धन का प्रश्न उपस्थित हो जाता है अथवा जाति या उप-जाति का! इन थोथी दलीलों के चक्कर में पड़ कर आज न जाने कितने परिवार इस अभागे देश में ख़ून के आँसू बहा रहे हैं—यद्यपि समाज की दृष्टि में वे विवाहित हैं, पर वे अपनी दृष्टि में, वे अपने को इसके विपरीतावस्था में पाते हैं! हमें आशा है, समाज के "चौधरी" यदि उनके ज्ञान-चक्षु का लोप नहीं हो गया है—तो इस पत्र पर ठण्डे दिल से विचार करेंगे।

कुछ विशेष कारणों की आशङ्का से हमने प्रकाश्य रूप में इस पत्र का उत्तर देना जान-बूझ कर उचित नहीं समझा, इस पत्र का उत्तर इस महिला को व्यक्तिगत रूप से दे दिया गया है। पाठकों को यही समझ कर सन्तोष कर लेना चाहिए कि हमारा उत्तर ठीक वही होगा—जो पाठक इस पत्र को पढ़ कर तथा अपनी छाती पर हाथ रख कर अपने हृदय में निश्चित करेंगे।

—स० 'चाँद']

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह !

["पागल"]

पाँचवाँ खण्ड

७
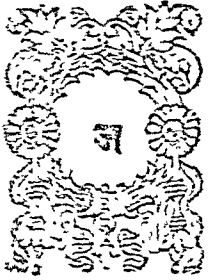
जहानारा की लड़की भला अब संसार में होगी या नहीं। अगर है तो कहाँ पर है। वह कैसे मिल सकती है, उसे कौन पहचान सकता है। पहचान है उसकी जो इन पत्रों में बताई गई, उसका पता पाना दुर्लभ ही नहीं, बल्कि असम्भव-सा है। क्योंकि दस वर्ष पूर्व वह आठ वर्ष की हो चुकी थी और अब उसकी अवस्था अठारह साल की होगी। जब बूढ़ी स्त्रियाँ तक हर किसी को अपनी पीठ खोल कर नहीं दिखा सकतीं तो ऐसी नवयुवती को उसकी कमर पर गोदना देख कर ढूँढ़ निकालना स्वप्न ही तो है। फिर भी मैं जहानारा की लड़की के विषय में अपने विचारोंको दूर नहीं हटा सका। बल्कि उनके आगे अलिन्द की चिन्ता और सरोज के पत्रों का ख़याल दब सा गया और मैं रजिस्ट्री लिफ़ाफ़े का कुल सामान लिए उस लड़की को ढूँढ़ने की सौ-सौ तरकीबें सोचता हुआ अपने मकान को चला।

अभी अपने दरवाज़े पर पहुँचा भी नहीं था कि तारा की माँ के यहाँ से एक आदमी मुझे बुलाने के लिए घबराया सा आता हुआ मिला। उसकी उखड़ी-उखड़ी बातों से मालूम हुआ कि बुढ़िया को न जाने एकाएक क्या हो गया है कि उसकी ज़बान ऐंठ गई है, मुँह टेढ़ा हो गया है और साँस उल्टी चल रही है। फ़ौरन ही जाकर उसे देखना पड़ा। सचमुच उसकी हालत बहुत ख़राब थी। उस पर फ़ालिज का आक्रमण इतने ज़ोरों का हुआ था कि वह कुछ ही घण्टों की मेहमान हो रही थी। फिर भी ऐसी दशा में जहाँ तक डॉक्टरी दवाइयाँ की जा सकती थीं, मैंने कीं और एक स्थानीय वैद्य जो इस रोग के विशेष विज्ञ मशहूर थे, उन्हें भी उसे दिखलाया, मगर कोई फल न हुआ। जब हर तरह से मुझे विश्वास हो गया कि वह अब बच नहीं सकती तो तारा को चुपके से बुला लाना अति आवश्यक जान पड़ा। क्योंकि बुढ़िया अपने आचरणों की कितनी ही ख़राब होने पर भी उसकी माँ ही थी।

मगर जब तारा को लाने के लिए मैं आश्रम में गया तो पता मिला कि तारा सुबह ही से वहाँ नहीं दिखाई पड़ी है। मकान पर पूछ-ताछ की, वहाँ भी उसे किसी ने नहीं देखा था। बड़ी उलझन हुई। क्योंकि कभी भी वह दिन-दिन भर इस तरह मकान से बाहर नहीं रही। सोचा, शायद वह अपनी किसी सहपाठिका के यहाँ गई हो। और वहाँ वह बरबस रोक ली गई हो। मुझे जल्दी थी, इसलिए तारा के लिए एक बन्द लिफ़ाफ़े में पत्र लिख कर और नौकर को उसके आने पर इस पत्र को उसे देने के लिए ताकीद करके मैं बुढ़िया के घर फिर वापस आया। यद्यपि वह अचेत थी और मृत्यु की घड़ियाँ गिन रही थी, दवाइयाँ देना बिलकुल बेकार था, फिर भी तारा की ख़ातिर मुझे उसकी माँ की देख-रेख के लिए रात भर वहीं रुकना पड़ा। सुबह होते-होते उसका दम निकला। दो घण्टे बाद उसकी रथी तैयार की गई। मगर इस वक़्त तक भी तारा वहाँ पर नहीं आई। हालाँकि मैंने पत्र में साफ़-साफ़ लिख दिया था कि तुम्हारी माँ की तबीयत बहुत ख़राब है। इसे पढ़ते ही तुम फ़ौरन चली आना। मगर अब अधिक देर तक उसके इन्तज़ार में लाश रोके रहना भी ठीक नहीं था। इसलिए उसकी अन्तिम क्रिया किसी तरह समाप्त करा कर दोपहर को जब मैं घर पहुँचा और नौकर ने मेरा बन्द लिफ़ाफ़ा ज्यों का त्यों वापस करते हुए कहा कि सरकार, बहू जी रात को भी नहीं आईं, तब तो मेरे होश उड़ गए। मेरी परेशानी देख कर घर और आश्रम दोनों जगह एक खलबली सी मच गई। बजाय इसके कि तारा के सम्बन्ध में मैं उन लोगों से पूछता, उल्टे वह लोग मुझीसे पूछ-ताछ करने लगे। क्योंकि अब तक उन लोगों का यह ख़याल

था कि वह मेरे ही साथ कहीं गई होगी। एक नवयुवती के विषय में यह ख़बर उड़ जाना कि वह लापता हो गई या एक दिन और एक रात ही के लिए मकान से ग़ायब रही, किसी तरह से भी अच्छा न था। इसलिए मुझे अपनी उत्सुकता दबा कर लोगों के विचार के अनुकूल बहाना करना पड़ा कि तारा के मामा सपरिवार तीर्थ-यात्रा के लिए काशी आए हुए थे। कल शाम को जब मैं उनसे मिलने गया हुआ था तब तारा वहीं थी। वह आज सुबह की गाड़ी से बद्रीनारायण जाने वाले थे और तारा को भी अपने साथ ले जाने को कहते थे। मगर मैंने उनसे कह दिया था कि इसे अपने साथ आप कहाँ-कहाँ बेकार घुमाते फिरेंगे। जब तक आप यहाँ हैं तब तक यह आपके पास ही है, जब चलने लगिएगा तो इसे कृपया मेरे मकान पर पहुँचा दीजिएगा। क्योंकि मुझे एक ख़ास काम से एक जगह जाना है, सुबह को न आ सकूँगा। मालूम होता है कि शायद वह उसे अपने साथ ले गए। इसीसे मुझे परेशानी है या मुमकिन है वह अभी न गए हों तो तारा आती ही होगी।

इस तरह से झूठी-मूठी बातें बना कर लोगों की खलबली शान्त की। मगर मेरे दिल की खलबली कौन शान्त करता? समझ ही में नहीं आता था कि तारा गई तो कहाँ गई और क्यों गई? क्या अलिन्द के वियोग को वह सह न सकी और उसके लिए व्याकुल होकर उसे ढूँढ़ने निकल पड़ी, या इन दोनों में यहाँ से भागने के लिए पहिले ही से साँट-गाँठ हो चुकी थी कि पहिले तुम जाओ तो उसके दो-चार दिन बाद मैं भी आती हूँ, ताकि शक न हो? यह विचार आते ही क्रोध और घृणा से मेरी एक अजीब हालत हो जाती थी। उस समय मैं दिल ही दिल में तिलमिला कर यही कहता था कि इन दोनों का अब ज़िन्दगी भर मुँह न देखूँगा।

शाम को मुझे रञ्जीदा देख कर माता जी ने कहा कि जान पड़ता है कि आपके ममिया ससुर बहू को ले ही गए।

मैंने सर हिला कर कहा—हूँ।

"बहू को मालूम था कि उसे जाना पड़ेगा। मगर वह ख़ुद जाना नहीं चाहती थी।"

"आपने कैसे जाना?"

"क्योंकि परसों रात को वह बहुत उदास थी......"

मैंने बात काट कर कहा—हाँ, यह तो मैंने भी ताड़ा था, मगर इसका सबब कुछ और होगा।

माता जी—नहीं, नहीं; क्या मैं इतना भी नहीं समझती। यों तो जिसके पुरुष की तबीयत अच्छी न होगी उसे रञ्ज तो होता ही है, उस पर आपने ऐसे समय उसे अपनी सेवा भी नहीं करने दिया था। फिर भी इतनी सी बात के लिए वह इस तरह बिलख-बिलख कर न रोती।

मैं—क्या वह रोती थी?
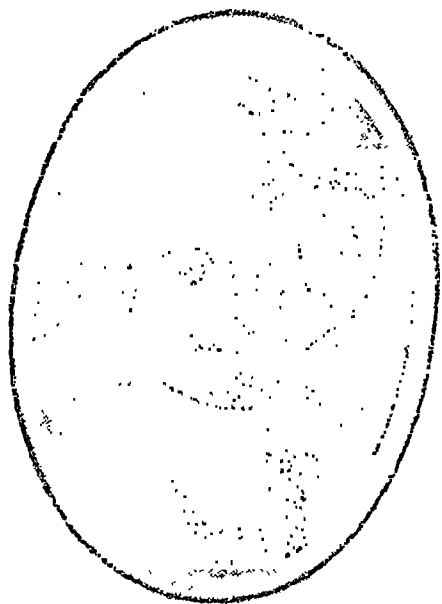
साँगली के चीफ़

(गोलमेज़ के सदस्य)

माता जी—हाँ-हाँ, जब आपको झपकी आ गई थी और मैं आपके पास से जाने लगी थी, तो मैंने उसे इसी कमरे के सामने बरामदे में चुपचाप बैठी सिसकती हुई देखा था। मेरी आहट पाते ही वह चुपके से आँसू पोंछ कर बग़ल वाले कमरे में खिसक गई। मैंने दो बार उसे धीरे से पुकारा भी, मगर वह बोली नहीं। मैं उसी वक़्त भाँप गई थी कि वह रो रही है। इसीसे नहीं बोली।

मैं—वह नींद में रही होगी। आपकी बात सुन न सकी होगी।

माता जी—अरे! उस बेचारी को नींद कहाँ थी?

वह तो रात भर जागती रही। एक बार रात में मैं उठी थी तो उसे उसी कमरे में लम्प के सामने कुछ पढ़ते या सिलाई करते देखा था। ठीक याद नहीं कि वह क्या कर रही थी।

मैं—क्या वह उस दिन रात में यहीं रही? मैंने तो उसे आश्रम में जाने को कहा था।

माता जी—हाँ-हाँ, वह तो आपने मेरे सामने ही कहा था। मगर मैं कह नहीं सकती कि वह जाकर फिर
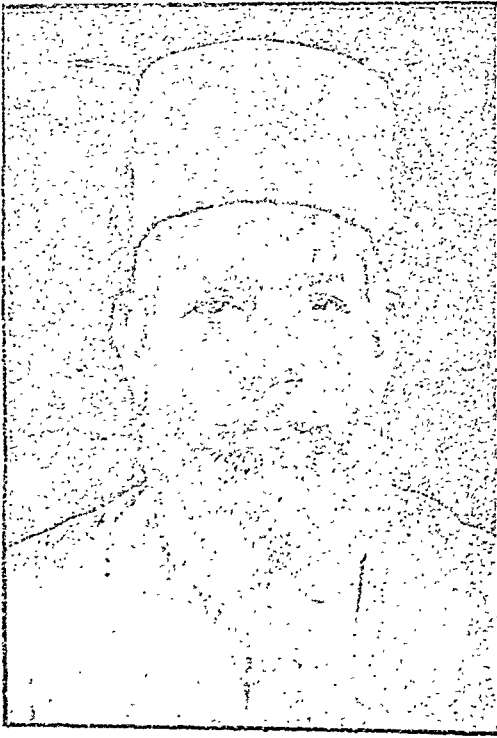
डॉ० वी० एस० मुञ्जे
(गाल्मेज़ के सदस्य)

लौट आई थी या वहाँ गई ही नहीं। तभी तो उसे यहाँ सिसकती हुई पाकर मुझे ख़याल हुआ कि आज वह आश्रम में रहना नहीं चाहती, इसीसे शायद आपकी बात उसे बुरी लगी। और उसी के अफ़सोस में उसे नींद नहीं पड़ती। मुझे क्या मालूम था कि वह अपने मामा जी के साथ जाने की तैयारी में अपने सामान ठीक कर रही है। वरना मैं उसे ज़रूर रोकती। मगर आप भी ख़ूब हैं कि आपने भी अपने ममिया ससुर के यहाँ आने की बात पहिले हमसे नहीं बताई। क्या अब भी आप लोग हमें पराया समझते हैं?

मैं—नहीं, यह बात नहीं है। उन्होंने पहले यहाँ किसी को लिखा ही न था। जब यहाँ पहुँच गए तब उन्होंने तारा के पास परसों ख़बर भेजी। मुझे तो उनके आने का हाल कल दोपहर को मालूम हुआ है। जब उनका आदमी दुबारा आया है तब। उस वक़्त से आपसे मुझसे भेंट कहाँ हुई जो आपसे कहता?

किसी तरह माता जी की बातों से अपने बहानों का सिलसिला जोड़ कर मैंने अपनी झुठाई पर सचाई का रङ्ग चढ़ा दिया। मगर मेरे दिल में तारा के लिए परेशानी बढ़ती गई। मैं समझता था कि अगर वह बनारस में कहीं होगी तो उसकी माता की मृत्यु की ख़बर उसके कानों में अब तक ज़रूर पहुँची होगी। और इसे सुनते ही वह कहीं रुक नहीं सकती, दौड़ती हुई यहीं आएगी। उसके भागने का कारण जो अनुमान करता था, उस पर भी उसके रोने का समाचार जान कर मेरा विचार स्थिर अब नहीं रह सका। क्योंकि अगर इसमें और अलिन्द में भागने के लिए सलाह हो चुकी थी तो उसके दिल में ख़ुशी होनी चाहिए, न कि रञ्ज। तब वह इतनी उदास क्यों थी? इस तरह छिप कर क्यों रोई? आश्रम में जाने के बदले यहाँ क्यों रही? यहाँ पर तो कोई उसका सामान भी नहीं था। उफ़! सोचते-सोचते मेरा दिमाग़ चकरा उठा और तारा की रञ्ज से कुम्हलाई हुई सूरत आँखों के सामने नाचने लगी।

जिस कमरे में उस दिन रात में माता जी ने तारा को देखा था, उसमें जाकर हर चीज़ों को मैंने उलट-पलट कर इस उम्मीद में देखना शुरू किया कि शायद चलते वक़्त वह कोई पत्र छोड़ गई हो। सामने खूँटी पर मेरी एक फ़ैन्सी वेस्टकोट टँगी हुई थी। इसे देख कर मैं चौंका। क्योंकि इसे मैं खोई हुई समझता था। कई बार इसकी तलाश कर चुका था, मगर नहीं मिली थी। यह तारा ही की बुनी हुई थी। आज उसे एकाएक देख कर मैंने नौकरों से पूछा कि यह यहाँ किस तरह आई। जिसने सुबह को कमरे में झाड़ू दी थी उसने बताया कि यह कल सुबह को फ़र्श पर इसी जगह कुछ अख़बारों के साथ पड़ी हुई थी। उसने अख़बारों को ट्रङ्क के पीछे जहाँ और रद्दी अख़बार थे, डाल दिया और इसे खूँटी

पर टाँग दिया। मैंने अख़बारों को वहाँ से हटाया, नीचे के काग़ज़ों में दीमक लग गई थी। मगर एक-एक वर्क़ उलटने पर भी कोई ख़त न मिला। तब मैंने वह वेस्ट-कोट उठाई। वैसे ही मेरे हाथ में एक सूई चुभी। देखने पर मालूम हुआ कि उसकी एक तरफ़ की जेबों के कपड़ों में दीमकों की मिट्टी के कुछ निशानात हैं, जो झाड़ने पर भी अच्छी तरह से साफ़ नहीं हो सके हैं, और उनमें छोटे-छोटे कई छेद भी हो गए हैं। दो सूराख़ों में रफ़ू किया गया है। तीसरे में सुई खुसी हुई है। उसमें तागा काफ़ी है। अब समझा कि उस रात को तारा शायद इसी को रफ़ू कर रही थी, जब माता जी ने उसे देखा था। मगर रफ़ू करते-करते बीच ही में उसने छोड़ क्यों दिया? शायद उसे नींद आ गई हो या लम्प बुझ गया हो। इसके सिवाय और कुछ भी पता न चला। चौथे या पाँचवें दिन डाक से मेरे नाम एक ख़त आया। उस पर तारा के हाथ की लिखावट थी। मैंने जल्दी से लिफ़ाफ़ा फाड़ा और ख़त निकाला। उसके साथ नत्थी किया हुआ एक और काग़ज़ था, जिस पर काग़ज़ के बहुत से छोटे-छोटे फटे हुए टुकड़े बिछा कर चिपकाए हुए थे।

ख़त में सिर्फ़ यही लिखा हुआ था :—

"भगवन,

आपका ख़त भूल से फट गया है। वह चिपका कर भेजा जाता है। इस अपराध के लिए कृपया क्षमा कीजिएगा। इस वेश्या-पुत्री के लिए चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसे आपने अपनी असीम कृपाओं और अतुल अनुग्रहों से अपना निर्वाह स्वयं करने योग्य बना दिया है। वह अपने कर्त्तव्यों को आपकी शिक्षाओं द्वारा अच्छी तरह समझने लगी है। इससे अधिक आप पर भार देना उसके लिए अब उचित नहीं पड़ता। क्योंकि वह अपने जन्म का कलङ्क किसी तरह मिटा नहीं सकती।

आपके अनुग्रह के बोझ से लदी हुई,

—मन्दभागिनी तारा"

मेरा हृदय व्याकुल हो उठा। मैंने काँपते हुए हाथों से दूसरा काग़ज़ उठाया और पढ़ने लगा—

"तुम मुझे बेदिल, बेमुरव्वत और बेवफ़ा समझते होगे। मगर तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ। हाय! इतना कि जिसकी थाह नहीं है। इतना कि इस वक़्त कलेजे पर पत्थर रखने के लिए मैं मजबूर हो गई हूँ। महज़ तुम्हारी ख़ातिर। मैं भला किस दिल से तुम्हारा नुक़सान चाह सकती हूँ। जब अपने ही को यों तुम पर क़ुर्बान किए दे रही हूँ।........"

इसके आगे काग़ज़ों के टुकड़े जो जुड़े हुए थे उसके बहुत से अंश दीमकों से चाटे हुए मालूम होते थे। इससे आगे की लिखावट की जगह पर ख़ाली सूराख़ ही सूराख़ थे। मगर इस ख़त की बातें मेरी कभी की सुनी हुई मालूम हुईं। हाँ, अब याद पड़ा। यह अलिन्द का ख़त था, जो जहानारा ने लिखा था, और जिसे उसने अपनी कहानी कहते समय मुझे दिया था। मगर यह ख़त तारा के हाथ कैसे लगा। यह तो खो गया था। दीमकों के निशान उस समय मानो पुकार कर कहने लगे कि यह उसी खोई वेस्टकोट में था, जिसे तारा रफ़ू कर रही थी। मैंने जल्दी से लिफ़ाफ़े की मुहर देखी। मगर हाय! तारा ने यह ख़त रेल में छोड़ा था, जिससे मुहर में किसी मुक़ाम का नाम न था। उस वक़्त मेरे मुँह से आप से आप निकल पड़ा—"हाय! तारा तू कहाँ है!"

(क्रमशः)

(*Copyright*)
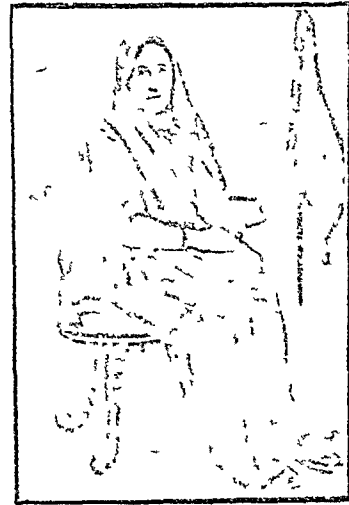
श्रीमती शुकदेवी पालीवाल

आप आगरे की एक सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्री हैं। हाल ही में आपको छः मास की सख़्त क़ैद की सज़ा दी गई है।

केसर की क्यारी

हमें भी तुम समझते हो, तुम्हें भी हम समझते हैं

[नाखुदाय सखुन हज़रत "नूह" नारवी]

किसी का दर्द अहले ऐशो-राहत, कम समझते हैं।
हमारा हाल जैसा कुछ है, उसको हम समझते हैं!

नहीं कुछ भी समझते हमको, यह कब हम समझते हैं?
समझना चाहिए जितना, वह उससे कम समझते हैं!

हमारे फ़िक़रे-उलफ़त ने, उन्हें चक्कर में डाला है;
वह हरदम सोचते हैं, इसको, वह हरदम समझते हैं!

जफ़ाएँ करते जाओगे, वफ़ाएँ करते जाएँगे;
हमें भी तुम समझते हो, तुम्हें भी हम समझते हैं!

अभी तक बेख़ुदी में हमको, इतना होश बाक़ी है!
खुशी को हम ख़ुशी कहते हैं, ग़म को ग़म समझते हैं!

तुम अपने क़ौल के पूरे, तुम अपनी बात के सच्चे।
हमारा दिल समझता है, इसे या हम समझते हैं!

मिटाया दर्दे-उलफ़त ने, हमें आहिस्ता-आहिस्ता;
यह नासमझी है उनकी, जो मरज़ को कम समझते हैं!

हमें ग़ैरों की बातों का, कभी सदमा नहीं होता,
जो ग़म अपनों से पहुँचे, हम तो उसको ग़म समझते हैं!!

लिहाज़ उनको बहुत रहता है, इनके भी मरातिब का!
जनाबे नूह से क्या "नूह" को वह कम समझते हैं?

कलामे बिस्मिल

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

इस सबब से, दुहरा-दुहरा लुत्फ़ मैख़ाने में है,
आपकी अँगड़ाइयों का, अक्स पैमाने में है!

भीड़ रिन्दों की, बहुत कुछ, आज मैख़ाने में है।
कितनी शीशे में है साक़ी, कितनी पैमाने में है?

क्या बताऊँ, क्या कहूँ, क्या रङ्ग मैख़ाने में है;
दोनों आलम का समाँ, एक मेरे पैमाने में है!

चार-छः तिनकों ने, कैसा नाम रौशन कर दिया।
बर्क़ मेहमाँ इनके दम से, मेरे काशाने में है!

शमआ जल कर, क्यों नहीं लेती, ख़ुद इसका इमतेहाँ;
उसके दम से, क़ूवते परवाज़ परवाने में है!

पीने वाला क्यों न हो, मस्ते शराबे बेख़ुदी।
अक्स उन आँखों की, गरदिश का भी पैमाने में है!

रूए-रौशन से हटाते हैं, वह ज़ुल्फ़ें बार-बार!
चाँदनी छिटकी हुई, मेरे सियाख़ाने में है!!

यह रहे मद्दे-नज़र, ऐ बादा ख़्वारे ज़िन्दगी!
नेसती का दौर भी, हस्ती के पैमाने में है!!

जलवए दिलकश नज़र आए, तो उसको देख ले।
अब भी इतना होश बाक़ी, तेरे दीवाने में है!

ज़ाहरी असबाब से, इसको तआल्लुक़ कुछ नहीं;
हक़-परस्ती के लिए, "बिस्मिल" भी बुतख़ाने में है!

तैमूर की लगन

दुनिया में जो बड़े-बड़े बहादुर हुए हैं, उनमें तैमूर का नाम बहुत प्रसिद्ध है। वह बड़ा ही साहसी, वीर, चतुर और उत्साही आदमी था। उसके ये गुण बहुत बढ़े-चढ़े थे। इन गुणों में उसकी बराबरी करने वाले आदमी आज तक दो-चार ही हुए होंगे। कोई सात सौ वर्ष हुए, उसने अपने इन गुणों की बदौलत सम्पूर्ण एशिया में हलचल मचा दी थी।

तैमूर बहुत बड़ा बादशाह था। उसके राज्य में कई बड़े-बड़े देश शामिल थे। कोई तीन-चौथाई एशिया महाद्वीप में तैमूर के नाम का सिक्का चलता था। यह लाखों वर्गमील भूमि तैमूर ने केवल अपनी भुजाओं के बल पर ही फ़तह की थी।

परन्तु तुम्हें यह जान कर अचरज होगा कि तैमूर ने किसी बादशाह के घर में जन्म नहीं लिया था। मध्य-एशिया में तुर्किस्तान नाम का जो देश है, वही तैमूर की जन्म-भूमि है। तैमूर का पिता एक मामूली सिपाही था। वह तुर्किस्तान के मुग़ल-बादशाहों की सेवा किया करता था। परन्तु ऐसे साधारण आदमी के यहाँ जन्म लेने पर भी तैमूर का मन बहुत बड़ा था। वह अपने बचपन में हमेशा यही सोचा करता था कि क्या मैं एक बड़ा बादशाह नहीं हो सकता?

जब तैमूर ने होश सँभाला, तब उसने एक छोटी सी फ़ौज जमा की और उसकी सहायता से भूमि जीतना शुरू किया। वह हिम्मत हारना तो जानता ही न था। कितनी बाधाएँ क्यों न आवें, पर तैमूर का हौसला ज्यों का त्यों रहता था। धीरे-धीरे उसका बल बढ़ता गया। अन्त में उसने समरक़न्द के मशहूर क़िले पर धावा मारा।

परन्तु समरक़न्द के बादशाह के सामने तैमूर का बल कुछ न था। लड़ाई हुई। तैमूर हार खाकर भाग गया। कुछ दिन बाद उसने फिर फ़ौज बटोर कर समरक़न्द पर धावा बोल दिया। इस बार भी उसे हार खाकर भागना पड़ा। परन्तु वह हिम्मत का एक ही धनी था। उसने यह निश्चय कर लिया था कि या तो समरक़न्द पर बादशाहत करूँगा, या लड़ाई के मैदान में प्राण त्याग दूँगा। लगन के उस सच्चे वीर ने एक-एक करके इक्कीस बार समरक़न्द पर चढ़ाई की, पर हर बार हार ही उसके पल्ले पड़ी।

इक्कीसवीं बार की हार से बहादुर तैमूर के दिल पर बड़ा धक्का लगा। वह भागता हुआ एक पहाड़ में पहुँचा और वहीं ठहर गया। एक चट्टान पर बैठ कर सोचने लगा—"या खुदा, क्या मेरी इतनी मेहनत बेकार जाएगी? क्या मेरी क़िस्मत में हर बार हार खाना ही लिखा हुआ है? क्या मेरी उमङ्गें पूरी न होंगी?" इस तरह सोच-विचार करते-करते उसने ऊपर की ओर नज़र उठाई।

सामने ही एक दूसरी चट्टान थी। उस पर एक चिउँटी भोजन लिए हुए चढ़ रही थी। जब वह कुछ दूर तक चढ़ गई, तब एकाएक नीचे गिर पड़ी। इसके बाद ही उसने फिर चढ़ना शुरू किया, परन्तु कुछ ऊँचे तक चढ़ने के बाद फिर गिर पड़ी। चिउँटी का यह स्वभाव

होता है कि वह कभी हार नहीं मानती। जब तक उसे सफलता नहीं मिल जाती, वह बराबर उद्योग करती रहती है। चट्टान पर चढ़ने के लिए उस चिउँटी को बहुत कोशिश करनी पड़ी, अन्त में वह उस पर चढ़ कर ही रही। यह देख कर तैमूर को बड़ी ख़ुशी हुई। उसके शरीर में नया जोश पैदा हो गया। उसने सोचा कि जब चिउँटी जैसी छोटी सी चीज़ सच्ची लगन के द्वारा सफलता प्राप्त कर सकती है, तब बार-बार कोशिश करने से मैं क्यों न समरक़न्द पर अधिकार कर सकूँगा ?

श्री० ख़ुशहालचन्द कैफ़ी

लाहौर के एक नवयुवक कार्यकर्ता, जिनको एक वर्ष की सख़्त क़ैद की सज़ा दी गई है। मैजिस्ट्रेट ने आपको 'बी' क्लास में रक्खा था, पर पञ्जाब गवर्नमेण्ट ने 'सी' क्लास में बदल दिया है।

दूसरे ही क्षण तैमूर उठ कर खड़ा हो गया। उसने अपने सब सिपाहियों को बुलाया और उनसे कहा—मेरे बहादुरो! ख़ुदा-ए-पाक ने इस छोटी सी चिउँटी के ज़रिए मुझे जो सबक़ पढ़ाया है, उससे मैं यह समझ सका हूँ कि जब तक फ़तह न हो जाय, तब तक मुझे समरक़न्द पर हमले करते रहना चाहिए। बस, तुम लोग तैयार हो जाओ, मैं अभी समरक़न्द पर धावा बोलूँगा।

इसके बाद ही तैमूर ने बड़े ज़ोरों से समरक़न्द पर धावा किया। समरक़न्द का बादशाह थका हुआ था। उसने यह सोचा भी न था कि तैमूर इतनी जल्दी फिर लड़ने आ जायगा। इस बार उसे हार खाकर भागना पड़ा। तैमूर ने बड़ी ख़ुशी से समरक़न्द में प्रवेश किया। वह बड़ी धूमधाम से समरक़न्द के राजसिंहासन पर बैठा।

इसके बाद तैमूर का हौसला बेहिसाब बढ़ गया, और उसने नए-नए देश जीतना शुरू किया। कहते हैं कि फिर कभी उसने लड़ाई के मैदान में हार नहीं खाई। अस्तु।

तैमूर लगन का सच्चा था और इसी सच्ची लगन की बदौलत वह इतना बड़ा बादशाह हो सका था। उसका राज्य इतना बड़ा था कि तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। उद्योग, उत्साह और लगन से ही आदमी बड़ा होता है।

—ज़हूरबख़्श, हिन्दी-कोविद

* * *

गुरु जी

पुराने समय में एक गुरु जी रहते थे। इनके पाँच चेले थे—पहले का नाम भकुआ भगत, दूसरे का सिड़ी शर्मा, तीसरे का नटखटसिंह, चौथे का मूर्खराज और पाँचवें का बेवक़ूफ़सिंह था। ये लोग अपने गुरु के बड़े आज्ञाकारी थे।

एक समय की बात है कि गुरु जी अपने चेलों के साथ किसी नदी के किनारे पहुँचे। नदी पार करने के लिए गुरु जी ने मूर्खराज को इसका निरीक्षण करने के लिए भेजा; क्योंकि उनकी ऐसी धारणा थी कि नदी की जाग्रत अवस्था में पार करना मुश्किल होगा। मूर्खराज ने नदी का निरीक्षण करने के लिए एक जलती हुई लकड़ी को दूर ही से उस नदी में डाला। लकड़ी के पानी में बुझने की कुछ आवाज़ हुई, उसे सुन मूर्खराज बहुत ही डरा और

गुरु जी के पास दौड़ता हुआ आकर बोला—गुरु जी! गुरु जी! नदी इस समय सोई नहीं है; वह फुफकार कर मुझे पकड़ने दौड़ी थी; किन्तु मैं जान बचा कर भागा आया हूँ।

सबों की इच्छा थोड़ी देर ठहर जाने की हुई। विनोद तथा समय बिताने के लिए भकुआ भगत ने कहा—यह नदी बड़ी धूर्त और चालबाज़ है। मेरे दादा एक बड़े भारी सौदागर थे। एक बार ये एक दूसरे सौदागर के साथ इस नदी को पार कर रहे थे। इनके साथ कुछ घोड़े भी थे, जिन पर नमक के गट्ठर लदे थे। गरमी का दिन था; धूप बड़ी तेज़ थी। इस कारण उनका थक जाना भी स्वाभाविक ही था। घोड़ों को पानी में खड़ा कर, ये लोग स्नान करने लगे। पानी उनके कमर तक बह रहा था। नमक के गट्ठर तो ख़ूब ठीक से बँधे थे; किन्तु तिस पर भी उस पार पहुँचने पर आधा से अधिक नमक ग़ायब था। यह देख वे लोग दङ्ग रह गए; किन्तु इस दुष्ट नदी से अपनी जान बची पाकर प्रसन्न भी हुए।

एक घुड़सवार नदी के उस पार से आता हुआ दीख पड़ा। वह बिना डर के नदी में घोड़ा दौड़ाता चला आता था। इस पर सबों ने चिल्ला कर कहा—गुरु जी! यदि आपके पास भी घोड़ा रहता तो हम और आप आसानी से नदी पार कर सकते। कृपया आप भी एक घोड़ा अवश्य ख़रीदें।

गुरु जी ने अबकी बार नदी का निरीक्षण करने के लिए सिड़ी शर्मा को भेजा। सिड़ी शर्मा ने भी वही बुझी हुई लकड़ी नदी में डाली; किन्तु आवाज़ कुछ भी नहीं हुई। वह दौड़ता हुआ आकर गुरु जी से बोला—महाशय जी, नदी इस समय घोर निद्रा में सोई हुई है। हम लोगों को इस समय बिना एक शब्द भी बोले नदी को पार करना चाहिए।

नदी पार करने के लिए लोग चल पड़े। पानी में पैर बहुत धीरे-धीरे रखते थे, ताकि कोई शब्द न हो। किसी तरह नदी के उस पार लोग पहुँचे। किन्तु गुरु जी को यह शक हुआ कि उनके चेलों में से कोई एक खो गया है। पहले बेवक़ूफ़सिंह ने अपने को छोड़ सबको गिना; किन्तु संख्या ५ ही आई। इस प्रकार सबों ने अपने-अपने को छोड़ कर गिना, किन्तु संख्या वही आई। सब बहुत घबड़ा गए। अन्त में गुरु जी ने सबों को एक क़तार में खड़ा कर दो-दो, तीन-तीन बार गिना; किन्तु इन्होंने भी कुछ अक़्ल से काम न लिया। अपने को छोड़ कर सबों को गिना और संख्या ५ ही आई। अब तो निश्चय हो गया कि उन लोगों में से किसी एक को नदी ने पकड़ लिया है। सब रोने लगे; गुरु जी भी फूट-फूट कर रोने लगे और सारा दोष नदी पर लगाया गया। किन्तु यह उन लोगों में से किसी ने नहीं सोचा कि कौन आदमी भूला है।

इसी समय एक बुद्धिमान मनुष्य आता हुआ दीख पड़ा। उसे इन लोगों की हालत देख दया आई। उसने गुरु जी से पूछा—"क्या बात है?" गुरु जी ने सारी कहानी कह सुनाई। इनकी मूर्खता को उसने भली-भाँति समझ कर कहा—"मैं आपके चेले को, जिसे नदी ने हड़प लिया है, बुला सकता हूँ।"

इस पर गुरु जी ने कहा—हम लोगों के पास इस समय पाँच रुपए हैं, इसे हम लोग आपको दे सकते हैं, यदि आप भूले हुए आदमी का पता लगा दें।

उस मनुष्य ने एक छड़ी दिखाई और कहा कि इसी में भूले हुए मनुष्यों के पता लगाने की शक्ति है। उसने सबों को एक क़तार में खड़ा कर कहा—मैं आप लोगों में से प्रत्येक को एक-एक छड़ी मारूँगा और आप लोगों को अपनी-अपनी संख्या गिननी होगी।

क़तार में सब से पहले गुरु जी ही थे; इस कारण उन्हीं की पीठ पर पहली छड़ी पड़ी! उन्होंने गिना 'एक'। इस प्रकार सबों की पीठ पर एक-एक छड़ी पड़ी और सबों ने अपनी-अपनी संख्या गिनी। अन्त में उन लोगों को मालूम हुआ कि कोई भी उन लोगों में से नहीं भूला था। गुरु जी ने रुपए दे दिए और अपने चेलों के साथ अपनी कुटी को लौट आए।

(क्रमशः)

—नरेशप्रसाद बख़्शी

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

सप्रू-जयकर की सन्धि-योजना तो समाप्त हो गई; परन्तु गोलमेज़ कॉन्फ़्रेन्स का कार्य जारी है। यह गोलमेज़ कॉन्फ़्रेन्स क्या है, यह तो आप जानते ही होंगे ! यह इङ्गलैण्ड के राजा आर्थर की ईजाद है। यह राजा छठवीं शताब्दी में हुआ था। इस राजा ने एक गोलमेज़ बनवाई थी, जिसके चारों ओर वह अपने 'नाइट' (मुसाहिबों) के साथ बैठा करता था। अतएव यह बड़ी पुरानी चीज़ है। भारत का भाग्य ही ऐसा है कि तमाम ज़माने की सड़ी-गली चीज़ें इसके हिस्से में पड़ती हैं। आर्थर राजा मर गया, गल गया; परन्तु उसकी गोलमेज़ अब तक काम दे रही है। अव्वल तो गोलमेज़ की ही क्या आवश्यकता थी। यदि लम्बी अथवा चौकोर ही मेज़ रक्खी जाती तो क्या हानि थी ? मतलब तो काम होने से है। काम ठीक तरह से होना चाहिए—मेज़ चाहे जैसी हो, हमारी बला से ! परन्तु इङ्गलैण्ड का तो बाबा-आदम ही निराला है। वहाँ तो मेज़-कुर्सी पहले देखी जाती है, काम की बातें पीछे। उस दिन बड़ी दिल्लगी रही। मैं बैठा हुआ सिल-बट्टा खटका रहा था कि अकस्मात् मि० रामज़े मेकडॉनेल्ड, इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री साहब मेरे सम्मुख आकर खड़े हो गए। पहले तो मैं समझा कोई पुलिस ऑफ़िसर है, गिरफ़्तारी का वारण्ट लाया है; परन्तु जब ग़ौर से देखा तो पहचान लिया; क्योंकि अनेक बार इनकी फ़ोटो देखी थी, सिनेमा में हँसते और बातें करते हुए देख चुका था। उन्हें देख कर मैं पहले तो अवाक् रह गया कि यह बिना सूचना दिए हुए कैसे आ धमके। परन्तु फिर हवास ठीक करके मैंने उनका अभिवादन किया और बैठने के लिए एक चटाई डाल दी। मेकडॉनेल्ड साहब अपनी भाषा में बोले—"बैठने की कोई आवश्यकता नहीं, मैं चन्द मिनिट आपसे खड़े ही खड़े बातें करना चाहता हूँ।" मैंने पूछा—"आप अकेले ही हैं क्या ?" वह बोले—"हाँ, अकेला ही हूँ। बिल्कुल छिप कर आपसे मिलने आया हूँ। मेरे आने का पता लॉर्ड इरविन तक को नहीं है। मैं हवाई जहाज़ से आया हूँ और आज ही लन्दन को लौट जाऊँगा।" मैंने कहा—"ऐसी जल्दी क्या है, एकाध दिन इस ख़ाकसार के झोपड़े में बसेरा लीजिए—फिर चले जाइएगा। आपको 'कैनेबिस इण्डिका' (भङ्ग) का आनन्द दिखाऊँगा। शाम्पीन क्लैरेट इत्यादि सब इसके सामने गर्द हैं।"

वह बोले—"नहीं, ठहर नहीं सकता, गोलमेज़ के सम्बन्ध में आपसे बातें करके चला जाऊँगा।" मैंने द्वार से बाहर की ओर झाँक कर देखा कि कहीं किसी छकड़े पर गोलमेज़ तो लदवा कर नहीं लाए; क्योंकि बिना गोलमेज़ के गोलमेज़ की गोलमोल बातें कैसे होंगी। परन्तु बाहर एक सन्तरी के अतिरिक्त और कोई नहीं था। मेकडॉनेल्ड साहब ने मुस्करा कर पूछा—"बाहर क्या झाँकते हो।" मैंने उत्तर दिया—"कुछ नहीं, गोल-

मेज़ देखता था।" उन्होंने कहा—"वह तो इङ्गलैण्ड में है, यहाँ नहीं है।" मैंने कहा—"आपने बड़ी ग़लती की, उसे साथ में लेते आते तो आनन्द से बातें होतीं, ख़ैर कहिए क्या आज्ञा है?"

उन्होंने कहा—मैं आपसे यह सलाह लेने आया हूँ कि कॉन्फ्रेन्स में किसे-किसे बुलाया जाय।

मैंने कहा—जितने आदमी हिन्दुस्तान में हैं, उनमें अपने राम को छोड़ कर और कोई कॉन्फ्रेन्स में बुलाया जाने योग्य नहीं है।

"परन्तु केवल आपके होने से काम नहीं चलेगा, और आदमी भी होने चाहिएँ।"

"बिल्कुल व्यर्थ है—और आदमी अण्ट-शण्ट बक कर मामला ख़राब कर देंगे, हम-आप होंगे तो सब मामला तय हो जायगा। हिन्दुस्तान स्वराज्य के योग्य है ही नहीं, इस कारण उसके सम्बन्ध में अपने राम बात करेंगे नहीं—और जो कुछ आप कहेंगे वह मान लिया जायगा।"

"नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। कॉन्फ्रेन्स में बहुत से आदमी होने चाहिएँ।"

"मेरी समझ में नहीं आता कि इस भर्ती भरने से आप क्या लाभ सोचते हैं। यही न कि अधिक आदमी जिस बात को मान लेंगे वह भारतवासियों के लिए मान्य होगी। परन्तु यह आपका भ्रम है। भारतवासियों का स्वभाव बिल्कुल इक्के-ताँगे वालों तथा कुलियों का-सा है, इन्हें चाहे जितना दे दीजिए, परन्तु वे कभी सन्तुष्ट न होंगे—कम ही बतावेंगे। इसलिए आप इस झोल में न पड़िए—जो कुछ देना हो देकर गहरी छानिए और आराम से लम्बी तान कर सोइए। भारतवासी कुछ दिनों तक टाँय-टाँय करके चुप हो जावेंगे और जो कुछ आप देंगे उसके हिस्सा-बाँट करने में परस्पर लात-जूती करने लगेंगे।"

"आप बहुत समझदारी की बातें करते हैं।"

"मैं समझदारी का ठेका जो लिए हुए हूँ। इङ्गलैण्ड में कुछ लॉर्ड लोग समझदारी का ठेका लिए हुए हैं, और हिन्दुस्तान में अपने राम।"

"यह बात है?"

"हाँ, बिल्कुल यही बात है। आप सीधे-सादे आदमी ठहरे, आपको सब बेवक़ूफ़ समझते हैं। हालाँकि यह मुझे अच्छी तरह मालूम है कि आप बिल्कुल बेवक़ूफ़ नहीं हैं—केवल समय देख कर काम करते हैं। यही होना भी चाहिए।"

"तो आपकी राय में हिन्दुस्तान अभी स्वराज्य के योग्य नहीं है?"

"बिल्कुल नहीं! और इस बात को आप भी मानेंगे, वैसे मुख से चाहे न कहें।"

"हाँ, मानता तो हूँ, परन्तु......।"

"इस अरन्तु-परन्तु के फेर में मत पड़िए, साफ़ बात कहिए।"

"ख़ैर कुछ भी हो, परन्तु कॉन्फ्रेन्स तो करनी ही पड़ेगी।"
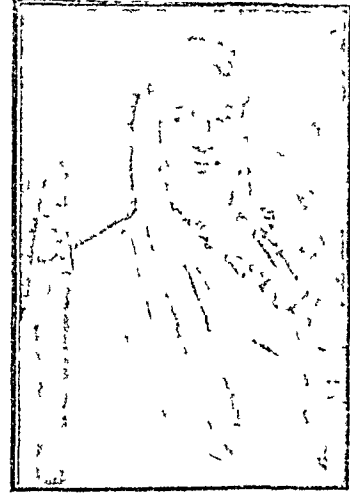
श्रीमती विद्यावती

आप आगरे की एक उत्साही कार्यकर्त्री हैं!

"अजी कोई ज़बर्दस्ती है। कह दीजिए कि हम नहीं करते—बस!"

"नहीं, ऐसा करने से अमेरिका वाले जो बिगड़ जाएँगे! उनकी आँख में धूल तो झोंकना ही होगा, दुबे जी!"

"यह आप कह क्या रहे हैं? मैं तो कुछ नहीं समझा।"

"दुबे जी! आप इतनी साधारण सी बात भी नहीं समझ सकते। इस समय यहाँ के बॉयकॉट से सभी देशों का दिवाला पिट रहा है और सभी राष्ट्र हमारे

ख़ून के प्यासे हो रहे हैं। सभी देशों के प्रतिनिधि हम पर दबाव डाल रहे हैं कि हिन्दोस्तान को जल्दी ठीक करो, समझे ?"

"कोशिश तो समझने की कर रहा हूँ दोस्त ! पर आख़िर यह ठीक होगा कैसे ? यही एक ऐसी विकट समस्या है, जो समझ में नहीं आ रही है।"

"तब तो मैं यही कहूँगा कि आज आप भाँग ज़्यादा पी गए हैं ! इतनी मोटी सी बात भी आपके ज़ेहन में नहीं आ रही है "—(उन्होंने अपनी भाषा में कहा था—"इटना मोटा बाट समझने नाईं साकटा" मैं पाठकों की सुविधा के लिए उसका अनुवाद मात्र दे रहा हूँ)—"हम लोग हैं राजनीतिज्ञ और यह हमारा पेशा है, जिसके सहारे हम जी रहे हैं, समझे ! हमने चुन-चुन कर 'जी हुज़ूरों' को बुलाया है। आपने क्या हमारी नामावली नहीं देखी ? इनमें से कोई सिर नहीं उठा सकता। आपने बन्दर का नाच देखा है ?"

"जी हाँ ! एक बार लल्ला........."

"हाँ ! हाँ !! लाला लाजपतराय !!!"

"अजी नहीं, मेरा लड़का।"

"ओह हम समझ गए, लाला लाजपतराय आपका लड़का था।"

मैंने मन में कहा—ख़ूब समझे, इसी समझ की बदौलत तो आज तुम लोगों की यह गति हो रही है ! पर बात बना कर मैंने कहा—जनाब, हम लोग लड़के को 'लल्ला' ही कहते हैं।

"हाँ, हाँ ! आपका लड़का......"

"जी हाँ, उसने एक रोज़ जब बहुत दिक़्क़ किया और लल्ला की महतारी भी बहुत गिड़गिड़ाई तो बन्दरों का नाच कराना पड़ा था।"

"ओह ! आप बहुत अक़्लमन्द हैं, ठीक वैसा ही नाच हम कराना चाहते हैं।"

"सो कैसे ?"

"हिन्दू-मुसलमानों का जो झगड़ा है, सो तो आप जानते ही हैं, कहिए हाँ......"

"जी हाँ !"

"बस सब लीडर लोग गोलमेज़ पर ख़ूब लड़ेंगे और सभापति डमरू बजाएगा, कहिए हाँ......"

"जी हाँ, सो तो प्रत्यक्ष ही है।"

"हिन्दू-सङ्गठन वाले भी चिल्लावेंगे और तनज़ीम वाले भी, कहिए हाँ।"

"जी हाँ, इसमें अपने राम को ज़रा भी शक नहीं है।"

"फिर हम लोग अमेरिका वालों से तथा दूसरे राष्ट्रों से पूछेंगे कि जनाब ! यह हाल है हिन्दोस्तान का ! बतलाइए स्वराज्य देने पर क्या गति होगी ?"—मैंने हाथ मार कर कहा—यार देखने में तो "बछिया के ताऊ" मालूम होते हो, पर समझते बड़े पते की हो ! यह लोग आपस में ही लड़ मरेंगे, तुम पूछना कि आख़िर वे चाहते क्या हैं, यही न ?"

"जी हाँ, अब समझे आप ! सभी राष्ट्र भारतवासियों को मूर्ख और उन्हें स्वराज्य के अयोग्य समझ लेंगे और हम चूतड़ पीट-पीट कर हँसेंगे, कहो कैसी कही ? बस गोलमेज़ का यही मतलब है। एक बात और भी है।"

"वह क्या ?"

"सभी राष्ट्र कहते हैं इस कम्बख़्त बॉयकॉट मूवमेण्ट को बन्द करो और इस आन्दोलन को जल्द से जल्द समाप्त करो, और हमें अनुचित दबाव के कारण इसे बन्द तो करना ही होगा ! और बिना यह सब जाल रचे यह आन्दोलन दबेगा कैसे ? इसे भी तो दबाना है, इससे बड़ी हानि हो रही है।"

"अरे हाँ, आन्दोलन—लीजिए इसे तो मैं बिलकुल भूल ही गया था। वाक़ई आन्दोलन तो दबना ही चाहिए।"

"इसके दबाने की कोई युक्ति है ?"

"युक्तियाँ सैकड़ों हैं; परन्तु कॉङ्ग्रेस वालों के सामने सब बेकार हो जाती हैं।"

"वाक़ई ये कॉङ्ग्रेस वाले सब मामला बिगाड़े हुए हैं, वरना सब काम ठीक हो जाता।"

"वक़्त की बात है; इस समय हैज़ा-प्लेग भी चुप है, वरना कुछ तो कम हो ही जाते।"

"इस कमी से क्या हो सकता है दुबे जी, असल बात तो यह है कि इनका दिमाग़ ठीक होना चाहिए।"

"तो इन्हें जेलख़ाने न भिजवा कर, पागलख़ाने भिजवाया जाय। परन्तु इतने पागलख़ाने आवेंगे कहाँ से—यह भी तो कठिनता है। हाँ, एक युक्ति हो सकती है। जितने जेलख़ाने हैं, सब पागलख़ाने बना दिए

जायँ। परन्तु यह भी तभी हो सकता है, जब केवल कॉङ्ग्रेस वाले ही हों—जेलख़ानों में तो अन्य क़ैदी भी रहते हैं।"

"यही तो कठिनता है।"

"चारों ओर से कठिनता ही कठिनता है।"

"वक्त की बात है।"

"बिल्कुल वक्त की बात है। तो मेरी समझ में ऐसे लोगों को कॉन्फ्रेन्स में बुलाइए, जो अधिक गड़बड़ न मचावें। आप लोगों की बातें मान लें।"

"हाँ यही करना पड़ेगा। अच्छा तो अब मैं जाता हूँ। मेरे आने का ज़िक्र किसी से मत कीजिएगा और आपको जो तकलीफ़ हुई है, उसके लिए माफ़ कीजिएगा।"

"बहुत अच्छा, जैसा आप कहते हैं वैसा ही होगा।"

मेकडॉनेल्ड साहब विदा हुए—मैं उन्हें द्वार तक पहुँचाने गया। उधर से लौटा तो सिल की ठोकर जो लगी तो मुँह के बल गिरा—और आँख खुल गई। देखा तो चारपाई के नीचे पड़ा हूँ। और 'लल्ला' की महतारी, बड़े ज़ोर से डपट रही हैं "का हौ ई गोलमेज; जाय भाड़ में! रात-दिन दहजरऊ के नाती चिल्लात हैं, गोलमेज! गोलमेज!! गोलमेज!!!" तब पता लगा कि यह तो कोरा स्वप्न था।

सम्पादक जी, मेरा स्वप्न सच्चा हो रहा है। कॉन्फ्रेन्स में ऐसे ही लोग बुलाए जा रहे हैं जो बेचारे बिल्कुल गड़बड़ न करेंगे—करेंगे भी कैसे—वे बेचारे गड़बड़ करना जानते ही नहीं। जो दिया जायगा वह लेकर चले आवेंगे। चाहिए भी ऐसा ही। गड़बड़ करने से कोई नतीजा नहीं निकलेगा—जो कुछ मिलता होगा वह भी न मिलेगा। उनके लिए एक तो यही क्या कम गौरव की बात है कि कॉन्फ्रेन्स में बुलाए जा रहे हैं। गवर्नमेण्ट ने उनकी बहुत बड़ी इज़्ज़त की तब तो निमन्त्रण दिया। यदि ऐसी दशा में वह ऊट-पटाँग बातें करके मुफ़्त में दिक़्क़त पैदा करें तो यह उनकी कृतघ्नता होगी। दूसरे यह लाभ है कि जो कुछ मिलेगा, इन्हीं लोगों को मिलेगा—कॉङ्ग्रेस वाले टापते ही रह जायँगे! बहुत नख़रे करने में यही होता है, यहीं जेलों में पड़े सड़ा करेंगे। कॉन्फ्रेन्स में जो जायँगे उन्हें मज़े ही मज़े हैं। समुद्र की यात्रा और लण्डन की सैर होगी। 'डिनर' और 'बॉल' के आनन्द मिलेंगे। और जिस समय दिमाग़ गर्म होगा उस समय यही कहेंगे कि जो कुछ मिला बहुत मिला—इससे अधिक की योग्यता भी हममें नहीं है। चलिए अपना मज़ा हो गया, काम भी बन गया और सरकार भी प्रसन्न रही। लौट कर आवेंगे तो 'प्रेस-रिपोर्टरों' के अतिरिक्त और किसी से बात न करेंगे। वह ठाट रहेगा कि बस वाह! वाह!! अफ़सोस यही है कि हाय हुसैन! हम न होंगे। मेकडॉनेल्ड साहब स्वप्न में आए, इतनी देर बातें कीं, परन्तु अपने राम को न बुलाया। ख़ैर कभी मिले तो ऐसी लम्बी शिकायत करूँगा कि याद करेंगे। वायसराय साहब से अपने राम की कोई जान-पहचान नहीं, वरना वह अवश्य पूछते, बड़े शीलवान आदमी हैं। एक ग़लती हो गई। यदि अपने राम भी कॉन्फ्रेन्स की चर्चा चलने के आरम्भ ही से ख़ूब पत्रों में आलोचना करते, प्रेस-प्रतिनिधियों को बुला कर अपनी राय देते, पत्रों में लेख लिखते, कभी सरकार की आलोचना करते, कभी कॉङ्ग्रेस वालों को कोसते, तो कदाचित हम भी कॉन्फ्रेन्स में बुलाए जाते। ख़ैर भविष्य के लिए चेत हो गया, अब कभी अवसर आया, तो कदापि न चूकेंगे! सम्पादक जी, क्या आप सचमुच विलायत न जायँगे? सुना है, गवर्नर इन-कौन्सिल ने आपको पासपोर्ट न देने का निश्चय कर लिया है, क्या यह ठीक है?

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

विवाह और प्रेम

समाज की जिन अनुचित और अश्लील धारणाओं के कारण स्त्री और पुरुष का दाम्पत्य जीवन दुखी और असन्तोषपूर्ण बन जाता है एवं स्मरणातीत काल से फैली हुई जिन मानसिक भावनाओं के द्वारा उनका सुख-स्वाच्छन्द्यपूर्ण जीवन घृणा, अवहेलना, द्वेष और कलह का रूप धारण कर लेता है, इस पुस्तक में स्वतन्त्रता-पूर्वक उसकी आलोचना की गई है और बताया गया है कि किस प्रकार समाज का जीवन सुख सन्तोष का जीवन बन सकता है। मूल्य केवल २); स्थायी ग्राहकों से १॥)

'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

[श्रीमती हुक्मा देवी छात्रा]

सान्निपातिक ज्वर (Typhoid Fever)

यह रोग एक प्रकार की हलकी छूत के द्वारा उत्पन्न होता है। इसके होने के पहले आँतों में एक प्रकार की गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है। इस कारण अङ्गरेज़ी में इसको एण्टरिक फ़ीवर (Enteric Fever) और जर्मनी वाले एब्डॉमिनल टाइफ़स (Abdominal Typhus) कहते हैं।

रोग के कारण—यह रोग वायु द्वारा फैलने वाला तो नहीं है। हाँ, स्पर्श द्वारा फैलता है और भोजन के द्वारा भी इसकी छूत एक से दूसरे को लग जाती है। पनाले और मोरी तथा गन्दी नालियों की दुर्गन्धित वायु के साथ मिल कर श्वास द्वारा मनुष्यों के शरीर में प्रवेश करती है, इसी कारण से इस रोग की उत्पत्ति होती है। उपरोक्त गन्दे पनालों का जल यदि बह कर किसी प्रकार से कुएँ अथवा तालावों में मिल जावे और उनका जल स्वस्थ मनुष्य पिएँ तो उनको यह रोग हो जाता है।

रोग के लक्षण—इस रोग की छूत जब शरीर में प्रवेश करती है तो प्रथम १०-१२ दिन तक कोई मुख्य लक्षण प्रकट नहीं होता। केवल कुछ-कुछ सुस्ती, आलस्य, शिरःशूल और कभी दस्त भी होता है। उसके पश्चात रोगी को कभी गर्मी और कभी सर्दी लगती है। मस्तक में पीड़ा, आँखें कभी चमकदार और कभी बैठी हुई, जीभ की नोक और किनारे लाल, किन्तु बीच का भाग मलिन होता है। नाड़ी की गति शीघ्र-गामिनी और निर्बल होती है, गालों पर लाल धब्बा पड़ जाता है, नाक से रक्त बहने लगता है। प्यास अधिक, परन्तु भूख कम लगती है। मुख विरस रहता है। पेट में शूल होता है, जो दबाने से अधिक प्रतीत होने लगता है। पेट फूल जाता है, बैठने और करवट बदलने में कष्ट होता है। कभी दस्त होते हैं और कभी वमन होता है; कभी-कभी दोनों होने लगते हैं। मूत्र कभी थोड़ा होता है और कभी तो बूँद-बूँद ही निकलता है। मूत्र के साथ कभी-कभी एलब्युमन (एक लेसदार वस्तु जो अण्डे की सुफ़ैदी या फटे दूध के समान होती है) भी आने लगता है। त्वचा सूखी तथा गरम रहती है और ज्वर १०४ से १०५ डिगरी तक बढ़ जाता है, किसी-किसी रोगी को १०६ से १०७ तक ज्वर हो जाता है। ज्वर प्रातःकाल की अपेक्षा सायङ्काल के समय एक डिगरी अधिक रहता है। अर्थात् यदि प्रातः १०३ ज्वर हो, तो सायं १०४ हो जाता है और दूसरे दिन सवेरे फिर घट जाता है। इस रोग में केवल ४-५ दिन तक यही दशा रहती है। ज्वर उतरते समय भी प्रातः का दर्जा कम होता है और पीछे सायङ्काल का भी धीरे-धीरे कम होने लगता है। प्रायः दूसरे सप्ताह में ज्वर या तो घटने लगता है या बढ़ने लगता है। ज्वर बढ़ने लगता है तो अन्य लक्षणों में भी वृद्धि होती है। जैसे त्वचा शुष्क और उष्ण, कभी-कभी पसीना आना, नाड़ी का सूत की भाँति निर्बल तथा एक मिनट में १२० बार धड़कना, जीभ श्वेत और फटी हुई, कभी चमकदार, लाल या भूरे रङ्ग की होती है। पेट फूल जाता है और दबाने से दर्द होता है। ज्वर आने से सातवें या आठवें

दिन, छाती और पेट पर कहीं-कहीं गोल गुलाबी रङ्ग के दाने निकल आते हैं। चार दिन पीछे वही गुलाबी रङ्ग के दाने उस स्थान से छिप जाते हैं, परन्तु दूसरे स्थान पर दीख पड़ने लगते हैं, इसी प्रकार दाने निकलते और छिपते रहते हैं। दानों की कुछ गिनती नहीं। किसी-किसी रोगी के दाने निकलते भी नहीं और किसी के बहुत संख्या में निकलते हैं। जब दूसरे सप्ताह का अन्त आता है, तो शरीर का ताप-क्रम वास्तविक दशा में पहुँच जाता है अर्थात् ज्वर नहीं रहता। रोग के बढ़े हुए लक्षणों में कमी होकर रोगी आरोग्य लाभ करने लगता है। परन्तु रोग बढ़ने पर पेट फूल जाता है, ठोकने से ढप-ढप का शब्द होता है। पेट से एक प्रकार की गरगराहट की आवाज़ आती है, दबाने से नाभि के बाईं ओर दर्द होता है। दस्त पतले पीले और गँदले रङ्ग के होते हैं, परीक्षा करने से क्षार पाया जाता है। यदि मल को किसी बर्तन में रक्खें, तो थोड़ी देर बाद फट जायगा और उसमें छिछड़े, रक्त के टुकड़े, झिल्लियों के टुकड़े, और पीले या भूरे रङ्ग की एक पतली वस्तु, जिसमें अल्ब्युमीन तथा नमक मिला रहता है, दीख पड़ेगी। जब भयङ्कर सान्निपातिक लक्षण प्रकट होते हैं, तब नाड़ी की गति और ज्वर बढ़ जाता है, रोगी बहरा हो जाता है, हिचकियाँ आती हैं, प्रलाप करता है, निर्बलता इतनी बढ़ जाती है, कि बोलना भी कठिन प्रतीत होता है, बिस्तर में ही पड़ा रहता है, भोजन कुछ नहीं करता, दस्त बराबर होते रहते हैं। जब बहुत दुर्बलता हो जाती है, तब हाथ-पैर काँपने लगते हैं, पट्ठे फड़कने लगते हैं, अज्ञान में मल-मूत्र बिस्तर पर ही त्याग देता है। ऐसी दशा होने पर बेसुध अर्थात् संज्ञाहीन होकर रोगी परलोक की यात्रा करता है। परन्तु दैव-योग से बीमार जब आरोग्य होने वाला होता है, तो चौथे सप्ताह में ज्वर धीरे-धीरे उतरने लगता है। किसी-किसी को भयङ्कर लक्षण भी नहीं होते और दस्त तथा आँतों का दुखदायक कष्ट भी नहीं होता और रोगी शीघ्र ही रोग से मुक्त हो जाता है। परन्तु अनेक बार ऐसा भी होता है कि बहुत कष्ट भोगने के बाद रोगी स्वास्थ्य लाभ करता है। बच्चों को यह रोग अधिक होता है, अतः इस कारण उसका लक्षण भी लिख देना उचित प्रतीत होता है।

* * *

शिशु सान्निपातिक ज्वर
(Infantile Remitant Fever)

बालकों में यह रोग दो प्रकार का होता है। एक साधारण लक्षणों वाला और दूसरा भयङ्कर लक्षणों वाला।

साधारण—इसमें पहिले तो कुछ नहीं मालूम होता, किन्तु धीरे-धीरे निम्न-लिखित लक्षण प्रकट होते हैं—भूख कम हो जाती है, परन्तु प्यास अधिक लगती है। बालक सुस्त और चुपचाप पड़ा रहता है। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, निद्रा नहीं आती, रात्रि में बेचैनी रहती है, शरीर का ताप-क्रम प्रातःकाल साधारण होता है, परन्तु सायङ्काल में कुछ-कुछ ज्वर हो जाता है, और ज्यों-ज्यों रात्रि बढ़ती है, ज्वर भी बढ़ता जाता है। शौच (दस्त) दुर्गन्धित और पतला होता है। नाड़ी की गति इतनी तीव्र हो जाती है कि गणना करने में कठिनाई होती है। दूसरे सप्ताह में व्यथा (बेचैनी) अधिक बढ़ जाती है, रात्रि के समय बच्चा दाँत पीसता है, कराहता है, कभी ज़ोर से चिल्ला कर चौंक उठता है। दोपहर तथा सायङ्काल के समय वमन होता है। निर्बलता अधिक हो जाती है। मांस-पेशियाँ घुलने लगती हैं। रोगी मुख और नाक को नोचता है। इस ज्वर में किसी प्रकार के दाने नहीं निकलते, जीभ बीच में से मलिन, परन्तु किनारों पर लाल होती है। पेट फूल जाता है और उससे घरघराहट का शब्द सुन पड़ता है। नाक को दबाने से दाहनी ओर नीचे दर्द होता है। तीसरे सप्ताह में सब लक्षण धीमे पड़ जाते हैं और रोगी नीरोग होने लगता है।

भयङ्कर लक्षण—इसमें प्रारम्भ से ही सब लक्षण भयङ्कर और सान्निपातिक होते हैं। पेट बैठ जाता है वक्षस्थल में काले-काले बिन्दु निकलते हैं, दाने कभी तो स्पष्ट दिखाई देते हैं और कभी बहुत नन्हें निकलते हैं, वमन अधिक होता है। अन्य लक्षणों में जितनी प्रबलता होती है, वमन भी उतना ही अधिकता से हुआ करता है। दस्त में बड़ी दुर्गन्धि आती है, छाती में दर्द होता है और सूखी खाँसी भी उठती है। यहाँ तक दशा पहुँच जाती है कि पतला भूरे रङ्ग का दस्त बिस्तर पर ही हो जाता है। दूसरे सप्ताह के अन्त तक रोगी सूख कर

ढीला हो जाता है। निर्बलता के कारण नाड़ी इतनी शिथिल चलती है कि रुकी हुई सी मालूम होती है। ज्वर १०३ डिग्री से १०४, १०५ तक बढ़ जाता है। तीसरे सप्ताह में रोगी बिल्कुल क्षीण हो जाता है, अचेत अवस्था में पड़ा रहता है कभी-कभी शरीर में ऐंठन उत्पन्न होकर निर्बलता की दशा में मृत्यु हो जाती है। परन्तु कभी-कभी अशुभ लक्षण कम से कम हो जाते हैं और रोगी अच्छा हो जाता है।

रोग की अवधि—रोग धीरे-धीरे जाता है, साधारणतया आरोग्य होने में २१ से ३० दिन तक लगते हैं। परन्तु यदि फेफड़े में सूजन होती है, तो ४० दिन लग जाते हैं।

इस सान्निपातिक ज्वर और काला ज्वर (Typhus Fever) में बहुत कुछ समानता होती है, अतः निदान करने में भूल न हो जाय, इस कारण दोनों में जो भेद हैं वह नीचे लिखे जाते हैं :—

सान्निपातिक ज्वर	काला ज्वर
(१) इसमें कई बार शीत लग कर क्रमशः ज्वर आता है।	(१) इसमें ज्वर एकदम चढ़ता है, मस्तक में पीड़ा होती है, रोगी शिथिल, निढाल और निश्चेष्ट सा पड़ा रहता है।
(२) गालों पर लाल धब्बा दिखाई पड़ता है, नेत्र उज्ज्वल और प्रकाशमान होते हैं; रोगी प्रारम्भ से ही निर्बल नहीं होता।	(२) रोगी के मुख पर श्यामता छा जाती है, आँखें भारी और चढ़ी हुई रहती हैं। प्रारम्भ से ही वह दुर्बल हो जाता है।
(३) प्रायः आठवें दिन गुलाबी रङ्ग के दाने, पेट, पीठ और छाती पर निकलते हैं; जो दो-तीन दिन में छुप जाते हैं और फिर दूसरे स्थान पर वही दाने दीख पड़ते हैं, इसी प्रकार कई बार स्थान-स्थान पर निकलते और छुपते रहते हैं।	(३) प्रायः पाँचवें दिन कलाई की पीठ पर शहतूत के रङ्ग के दाने निकलते हैं और अन्त तक एक ही दशा में बने रहते हैं।
(४) बहुधा अतिसार होता है और मल के साथ रक्त भी आता है क्योंकि आँतों में व्रण (घाव) हो जाते हैं।	(४) अतिसार नहीं होता यदि होता है तो तुरत कम आते हैं, मल में रक्त नहीं आता, क्योंकि आँतों में घाव नहीं होते।
(५) शरीर का तापक्रम क्रमशः बढ़ता है। प्रातः और सायङ्काल में एक डिगरी का अन्तर रहता है; प्रातः समय ज्वर एक डिगरी घट जाता है और सायङ्काल बढ़ जाता है, चार-पाँच दिन तक बराबर ज्वर की यही दशा रहती है।	(५) एक दिन रात्रि अर्थात् २४ घण्टे से लगा कर २ दिन तक ज्वर और नाड़ी की गति बढ़ती रहती है। फिर एक दशा में रह कर आठवें दिन ज्वर कम होने लगता है।
(६) यह रोग लौट आता है और प्रायः धनिक मनुष्यों को अधिक कष्ट देता है, ४० वर्ष से अधिक अवस्था वालों को कम होता है।	(६) यह फिर लौट कर नहीं होता और ग़रीब लोग इससे अधिक रुग्ण होते हैं। जो मनुष्य रोगी की सेवा करते हैं, उन्हें अवश्य हो जाता है।
(७) यह कृमिजन्य (छूत का) होने पर भी कृमियों द्वारा कम होता है और शरीर के भीतर पहुँच कर इसका विष नहीं बढ़ता, परन्तु धीरे-धीरे इसका प्रभाव फैलता है।	(७) बहुत शीघ्र फैलने वाला छूत का रोग है। शरीर में पहुँच कर इसका विष बढ़ता है।
(८) २१ से ३० दिन की अवधि है। सान्निपातिक लक्षण तीसरे सप्ताह में प्रकट होते हैं।	(८) इसकी १४ से २१ दिन तक की अवधि है दूसरे सप्ताह के अन्त में ज्वर एकदम उतर जाता है।

रोग से बचने के यत्न—पनाले, पोखरे आदि को शुद्ध रक्खे, दुर्गन्धित पनालों का जल घर में न आने पावे इसका प्रबन्ध करे। यदि रहने का स्थान उत्तम और शुद्ध न हो तो उसको त्याग दे। यदि पीने के जल में

(शेष मैटर २७८ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

[श्री० सत्यपाल पुरी]

भोजन
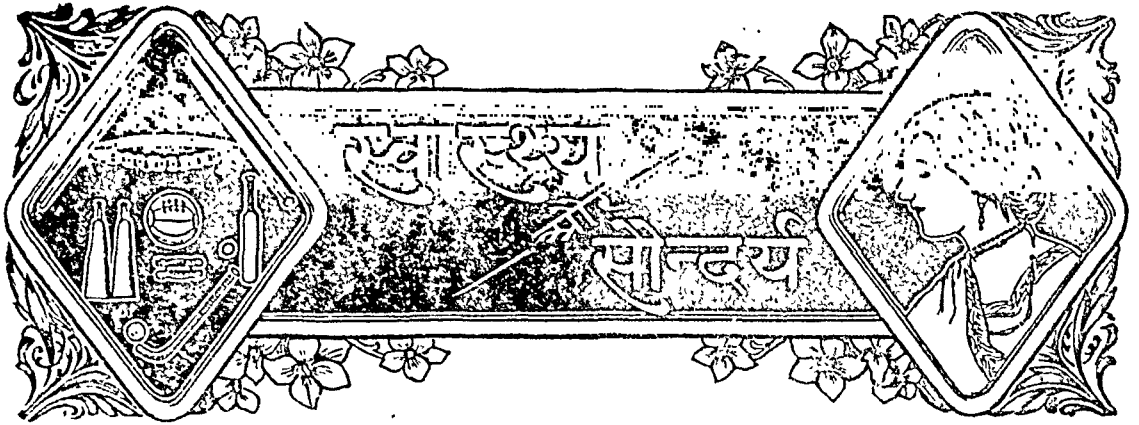
बालक जिस समय शिक्षा ग्रहण करने लगता है, उस समय उसके मन में अनेक प्रकार की शङ्काएँ उत्पन्न हुआ करती हैं। घण्टों तक बैठे हुए चन्द्रमा अथवा तारों की ओर टकटकी लगा कर देखता रहता है और दिल में सोचा करता है कि यह रचना क्या है, किस की बनी हुई है, इत्यादि। इसी प्रकार विज्ञान (Science) के नए-नए आविष्कारों को देख कर वह अपनी बुद्धि लड़ाया करता है और अपने भाई-बन्धुओं से पूछा करता है कि संसार में यह अद्भुत बातें किस प्रकार से हुआ करती हैं। प्रायः इन सब प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर न पाकर बालक का हृदय शङ्काओं का क़ब्रस्तान बन जाता है। इसलिए मेरा मत है कि बालकों को इन सब बातों का ज्ञान किसी न किसी प्रकार से अवश्य करा देना चाहिए।

परन्तु इससे भी आवश्यक ज्ञान वह है, जो हमको अपनी देह, शरीर अथवा निरोगता का ज्ञान देता है। इस विज्ञान को अङ्गरेज़ी में Science of Physiology and Hygiene कहते हैं। मैं चाहता हूँ कि कई एक लेखों में पाठकों के सामने उन नियमों का वर्णन करूँ, जिनका जानना हमारी शारीरिक वृद्धि के लिए अति आवश्यक है।

सब से पहले मैं भोजन के विषय को लेना चाहता हूँ और यह बताना चाहता हूँ, कि आजकल की खोज (Research) के अनुकूल किस प्रकार का भोजन करना चाहिए अथवा उसके बनाने में कौन-कौन से नियमों का पालन करना चाहिए।

भोजन के लिए निम्न-लिखित वस्तुओं का होना ज़रूरी है।

स्टार्च	... ...	Starch
प्रोटीन्ज़	... ...	Proteins
घी, तेल इत्यादि	... ...	Fats
धातुएँ	... ...	Mineral Salts
वीटामीन्ज़	... ...	Vitamins
जल	... ...	Water

स्टार्च (Starch)—सब से अधिक इसी वस्तु की आवश्यकता होती है और यह गेहूँ, चावल, मकई, आलू शकरकन्दी इत्यादि वस्तुओं में पाया जाता है। पेट में जाकर अथवा तत्पश्चात् अँतड़ियों में जाकर यह एक प्रकार की चीनी का रूप धारण कर लेता है, जो पानी में बहुत सुगमता से घुल होकर ख़ून में प्रवेश करती है। यहाँ पर यह शरीर को गर्मी अथवा शक्ति देने का काम करती है। इसके अभाव से शरीर शिथिल हो जाता है और मनुष्य में कार्य करने की शक्ति नहीं रहती। जिन मनुष्य तथा स्त्रियों को मोटा होने का अधिक अन्देशा हो, उन्हें इस भोजन का बहुत कम सेवन करना चाहिए, क्योंकि जब स्टार्च आवश्यकता से अधिक शरीर में चला जाता है, तो यह चरबी का रूप धारण करके मनुष्य को मोटा बना देता है। व्यायाम करने से यह चरबी कम हो जाती है। जिन मनुष्यों को बहुमूत्र (Diabetes) का रोग हो उनको भी स्टार्ची वस्तुओं का बहुत कम सेवन करना चाहिए।

मातृ-मन्दिर-कोष

मातृ-मन्दिर के मन्त्री महोदय सूचित करते हैं कि 'चाँद' के अगस्त-सितम्बर के संयुक्ताङ्क में प्रकाशित सूचना के अनुसार मातृ-मन्दिर-कोष में १,२३२।।।) ८ पाई प्राप्त हुए थे। विगत सितम्बर, अक्टूबर तथा १३ नवम्बर तक १२४।।।) और मिले हैं, जिसकी सूची इस प्रकार है :—

(१) श्रीमती राधिका देवी जी, मार्फ़त श्रीयुत हरीकृष्ण जी मेहरा, बँगला नं० ७५, कञ्चनपारा, ई० बी० आर० ... ... १०)
(२) कुमारी मायतहुसेन, प्रिन्सिपल गवर्नमेण्ट गर्ल्स नॉर्मल स्कूल, लखनऊ ... ... १०)
(३) श्रीयुत अङ्गनलाल शर्मा अग्निहोत्री, पो० ऑ० डिबाई, (बुलन्दशहर) ... ... १०)
(४) श्रीमती सट्टोदेवी, मार्फ़त श्रीयुत दीनदयाल जी वर्मा, ठठेरी बाज़ार ४० महेन्द्रू, पटना ४।।।=)
(५) श्रीयुत मोतीराम जी, एक्ज़ेक्यूटिव इञ्जीनियर फ़तेहपुर डिवीज़न लोअर, गैञ्जेज़ कैनाल, कानपुर ... ... ४)
(६) श्रीयुत शान्तिस्वरूप जी, बी० ए० फ़ॉरेस्ट रेञ्जर, डोडा (जम्मू स्टेट) ... ... ५)
(७) श्रीमती लज्जावती देवी जी, धर्मपत्नी श्रीयुत लुम्बाजी, ओवरसियर, थानडून (लोअर बर्मा) १२)
(८) श्रीयुत कश्मीरीलाल गुप्त, डा० टोटू, शिमला हिल्स, पञ्जाब ... ... ५)
(९) श्रीयुत बसन्तकुमार, मार्फ़त श्रीयुत बी० लाल असिस्टेण्ट एक्ज़ेक्यूटिव इञ्जिनीयर; कटक ५)
(१०) श्रीयुत गुलज़ारीलाल जी, इङ्गलिश मास्टर एम० स्कूल, बिंदकी (फ़तेहपुर) ... ५)
(११) श्रीयुत शिवशङ्कर सुनार, निकट ठाकुरबारी, ग्राम रायपट्टी, पो० दिघवारा (सारन) १०)
(१२) श्रीयुत सूरजप्रसाद जी ... ... १५) *
(१३) बा० त्रिजुगीनारायण जी... ... ४) *
(१४) बा० हरनारायण जी ... ... २) *
(१५) बा० गौरीलाल जी ... ... १) *

* इन सज्जनों के चन्दे श्रीयुत जगदीशशरण, मार्फ़त बा० सूरजप्रसाद की कोठी, इटावा ने भेजे हैं।

निम्न-लिखित सज्जनों तथा देवियों के चन्दे नमासागली उगण्डा, (पूर्व अफ्रिका) से आए हैं। इन लोगों ने चन्दे शिलिङ्ग के रूप में दिए हैं, जिनके कुल रुपए हमें ४८।।=) मिले हैं। इनकी सूची इस इस प्रकार है :—

(१६) श्रीमती गेनेशीलाल वर्मा ... १० शि०
(१७) " आशाभाई के० पटेल ... ५ "
(१८) " बलवन्तसिंह ... ... ५ "
(१९) " मगनभाई एम० पटेल ... २ "
(२०) " ईश्वरसिंह ... ... ६ "
(२१) " हरगोपाल ... ... ४ "
(२२) " हरनामसिंह ... ... १ "
(२३) " एम० लोबो ... १ "
(२४) " जे० एफ़० डिसोज़ा ३ "
(२५) " फरनान्दिस ... १ "
(२६) " नूरमोहम्मद ... ... ५ "
(२७) " एस० यू० पटेल ५ "
(२८) " बी० सी० आचार्य ३ "
(२९) " नन्नालाल ... २ "
(३०) " नाञ्जी काञ्जी जोशी ... २ "
(३१) " मोहम्मद यासीन ... १ "
(३२) " कुशालसिंह ... ५ "
(३३) " ब्रेगेज़ा ... ... ४ "
(३४) श्रीयुत कर्मसिंह ... ४ "
(३५) " एम० सी० पटेल २ "

७२ शि०, कुल ४८।।=)
१२४।।।)

इस प्रकार अब तक १,३६०।।) ८ पाई नक़द हमें प्राप्त हुए हैं। देशवासियों का कर्त्तव्य है कि वे यथाशक्ति सहायता भेज कर इस पुनीत कार्य में हमारा हाथ बटावें।

* * *

(२७८ पृष्ठ का शेषांश)

का कारण भोजन में वीटामीन्ज़ का अभाव ही बताया गया है। इस प्रश्न को अच्छी तरह से हल करने के लिए आजकल अनेक तरह की परीक्षाएँ कई जानवरों द्वारा की जा रही हैं। इनका स्वास्थ्य के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है। इनका विस्तारपूर्वक वर्णन मैं अपने अगले लेख में करूँगा।

निराशों के लिये स्वर्ण-संयोग !

बेकारों के लिये अपूर्व अवसर !!

उच्चकोटि की आयुर्वेदीय पाक्षिक पत्रिका !!!

राजयक्ष्मा

— :o: —

तपेदिक मिटानेके उपाय की अपूर्व पुस्तक है। मू० केवल ॥)

यह पाक्षिक पत्रिका 'अनुभूत योगमाला' ७ वर्ष से चिकित्सा का चमत्कार दिखाने के लिये प्रकाशित होती है। अमूल्य वैद्यों की सम्मतियाँ इसमें देखिये। अनुभूतयोग पढ़िये और घर-बैठे निराश तथा दुखी जीवन को सुखमय बनाकर आनन्द लूटिये। थोड़ा पढ़ा-लिखा मनुष्य भी थोड़े ही समय मे वैद्य बन सकता है। क्या आपने अभी तक नहीं समझा कि इसने इतने स्वल्प समय में ही क्यों इतनी ख्याति प्राप्त कर ली है? नमूना मुफ्त। आज ही एक कार्ड डालकर देखिये तो सही। वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति का ≋) आ०

हरिधारित

— :: —

समस्त रोगों के सुलभयोग भाषा टीका सहित मूल्य केवल ॥)

अनुभूतयोगमाला बराकोकपुर, इटावा

पढ़िए और श्री लविख का शया विधान ।

हथेली पर सरसों !

कठिन रोगों की अपूर्व पुस्तकें !!

प्लीहा रोग चिकित्सा

यह कहने की बिलकुल ही आवश्यकता नहीं है कि यह भयंकर रोग कितना दुष्ट और प्राणघातक है। इसका अनुभव उन्हीं को होगा जो इस दुष्ट के निन्यानवे के फेर में पड़े जीते-ही नरक-यातना का दुःख अनुभव कर रहे हैं। मूल्य ।) आ०

अंड तथा अन्त्रवृद्धि चिकित्सा

ले०—आयुर्वेद संसार के जाज्वल्यमान तारे
पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी वैद्य बी० ए०

प्रस्तुत पुस्तक का विषय नाम से ही प्रकट है और सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इस रोग के रोगियों का जीवन कितना नीरस और फीका मालूम होता है। केवल ।) आ० मात्र।

अश्मरी रोग चिकित्सा

इसमें पथरी रोग के अनुभूत प्रयोग एवं चिकित्सा संबन्धी लेखों का बड़ा सुन्दर चयन किया गया है। प्रतियां बहुत थोड़ी शेष रह गई हैं। जल्दी ही मंगा लीजिये नहीं तो दूसरे प्रकाशन का मार्ग देखना पड़ेगा। मू० केवल लागत मात्र ।) आ०

विन्ध्यमहात्म्य

इसमें विंध्यवासिनी देवी की उत्पत्ति, महिमा, कार्य-कुशलता, साक्षात दर्शन के उपाय, विंध्यक्षेत्र की उत्कृष्टता, महापापों के नाश के उपाय आदि सुन्दर भाषा टीका में वर्णित हैं। पुस्तक देखते ही बनती है। मू० ३३३ पृष्ठ के पोथे का केवल १॥)

व्यवस्थापक:--अनुभूत योगमाला कार्यालय, बरालोकपुर, इटावा

गुन न हिरानो गुन गाहक हिरानो है

प्रायः ऐसा सुना जाता है कि अपना आयुर्वेद साहित्य किसी समय में उन्नति का केन्द्र था। ऐसा कोई रोग नहीं, ऐसा कोई मर्ज नहीं जिसका सुन्दर वैज्ञानिक एवं रसायनिक ढंग का निदान न हो। सुनते हैं कि उसी में स्वर्ण बनाने का भी ढंग वर्णित था। लेकिन देश और काल की लापरवाही से वह प्रायः लुप्त सा होगया है। बड़े परिश्रम एवं खोज-बीन के साथ भारत की गरीबी का ध्यान रखते हुए—

भारतीय रसायन शास्त्र

में

उन्हीं बातों का वर्णन किया गया है। अब इसके सत्यासत्य का निर्णय आप पर ही निर्भर है:—

क्या

अब भी आप यह कहने का दावा कर सकते हैं कि हमारा वैद्य-समुदाय इधर ध्यान ही नहीं देता है? हमारी हार्दिक:—

इच्छा

है कि इस अन्वेषण का श्रेय वैद्य समाज को ही हो और पुनः इसका इतिहास आयुर्वेदाकाश में स्वर्णाक्षरों में विश्व को चकाचौंध करते हुए चमक उठे। याद रखिये:—

पांच सौ

ही केवल छपाई हैं सिवाय वैद्यों के अन्य को नहीं दी जायँगी। मू० ॥); 'माला' के दो ग्राहक बनाने वालों को मुफ्त।

आत्रेय वचनामृत

जरा

इसकी सूची पर तो एक दृष्टि डालिए।

पहला पुरुष क्या है? दूसरा मोक्ष क्या है और वह किस प्रकार प्राप्त हो सकता है? तीसरा सद्वृत एवं सदाचार से मनुष्य किस प्रकार निरोगी रह सकता है? चौथा सौ वर्ष तक कैसे मनुष्य जी सकता है? पांचवां सुख तथा शान्ति के सरल साधन छठवां शास्त्रार्थ करने की विधि आदि देख कर यदि मनुष्य नाम को सार्थक करना है तो इस पुस्तक में आत्रेय मुनि के वचनों में देखिए और वाह २ करिए। सुन्दर, सरल तथा मार्मिक भाषा में टीका। मू० ॥)

आयुर्वेद-प्रेमियों के लिये बिल्कुल नई पुस्तकें !

सिद्ध प्रयोग ।

ग्राहक–अनुग्राहक महाशयों की उत्कट अभिलाषा एवं पत्र-पर-पत्र आने पर इस पुस्तक में वही शतशोऽनुभूत प्रयोगों की लड़ियां गूंथी गई हैं जो अनुभूत योगमाला में ४ वर्षों से धारा-बद्ध निकले थे और जिनकी परीक्षा हो चुकी थी। श्लोक-बद्ध मणियों के रूप में संचय कर सुन्दर, सरल, तथा मौलिक भाषा में टीका की गई है। बहुत थोड़ी प्रतियां बची हैं। आज ही आर्डर दीजिये वरना दूसरे एडीशन का मार्ग देखना पड़ेगा। प्रथम भाग मूल्य केवल १); द्वितीय ॥) भाग आ०

स्वास्थ्य-विज्ञान

आर्डरों की भरमार !

(हम बिलकुल जिम्मेदार न होंगे

क्योंकि—

सारी प्रतियां समाप्त प्राय हो चली हैं

इसी लिये तो कहते हैं आज ही एक कार्ड डालकर मँगा लीजिये और अपने बच्चों तथा स्त्रियों के हाथ में देकर यौवन-सुलभता का आनन्द लूटिये। पुस्तक क्या है आरम्भ से लेकर दैनिक आहार-विहार, वस्त्र वेष-भूषा आदि सुन्दर सरल एवं मार्मिक ढङ्गसे विस्तारान्तरित किये गए हैं। हमें इस बात का पक्का दावा है कि पुस्तक एक बार हाथ में लेने पर बिना आदि से अंत तक पढ़े न छोड़ेंगे। छपाई-सफाई उत्तम तथा हृदयग्राही मूल्य केवल लागत मात्र ॥) आ०

अनुभूत योगमाला बरालोकपुर, इटावा

स्त्री रोग-चिकित्सा

सुन्दर, सरस एवं मौलिकता पूर्ण !
स्त्री जाति कितना कोमल पुष्प है ! यदि
उसमें
असमय में ही तुषार पड़ जाय तो
इसमें किसका दोष है ? हम चाहते हैं वह पुस्तक
प्रत्येक गृहस्थ के हाथ में हो ताकि वह अपना जीवन
आनन्दमय बना सकें । पृष्ठ संख्या ११४ मू० ॥)

श्वास रोग चिकित्सा

वर्तमान भारत प्रायः इस दुष्ट रोग से ऐसा ग्रसित हो रहा है कि दांतों-तले अंगुली दबानी पड़ती है। यदि समय पर चिकित्सा न की गई तो मरण पर्यन्त यह दुष्ट साथ नहीं छोड़ता मू० केवल ।) मात्र ।

चिकित्सकव्यवहारविज्ञान

प्रायः ऐसा देखा गया है कि बड़े २ सुयोग्य वैद्य भी चिकित्सा सम्बन्धी व्यवहार न जानने के कारण रोगी को इहलोक लीला से बिदा करवाने के कलंक के भागी होते हैं।

इसी कारण हमने सर्व साधारण के लाभार्थ इसे प्रकाशित है । मूल्य केवल ।) मात्र

अर्श रोग चिकित्सा

अपने ढंग की यह एक ही पुस्तक है। इसमें बवासीर रोग की उत्पत्ति, उसके कारण एवं निदान भली भांति सुन्दर, सरल एवं सरस टीका से दरशाये गये हैं। मूल्य केवल ॥)

वैद्यक शब्द कोष

इस पुस्तक में काष्ठौषधियों के संस्कृत नाम सरल भाषा में दिये गये हैं। मूल्य केवल ।) आ०

व्रणोपचार-पद्धति

ले०–पं० महावीरप्रसाद 'वीर'
समस्त प्रकार के घावों का इलाज इसमें है । मूल्य केवल ।=) आ०

औषधि गुणधर्म विवेचन ।

आजकल प्रायः सभी वैद्यजन अंधपरंपराछन्न हो चिकित्सा कर रहे हैं। कोई रोग के कारणों का पता तथा उसकी उत्पत्ति, कहां २ और क्या बिगाड़ होनेसे यह वेदना उत्पन्न हुई है तथा अमुक स्थानकी विकृति किस दवा से ठीक होताहै का सुंदर वर्णनहै मू०॥)

अनुभूतयोगमाला कार्यालय ‌‌— बरालोकपुर, इटावा

आप जानते हैं कि इसके लेखक कौन हैं? वही आपके सुपरिचित परलोक वासी आयुर्वेद कानन के चतुरमाली परशुरामजी शास्त्री। विश्व-वाटिका का एक दिन वह निरीक्षण कर रहे थे पुलक-पसीज कर। कंटका-कीर्ण लता से वह छील-छाल गये और करुणा-सागर की लहर से लहरा कर उन्होंने प्रस्तुत पुस्तक की रचना कर डाली। नोट कर लीजये कि ऐसी परिस्थिति के परिश्रम का कितना सुन्दर परिणाम होता है। ग्राहक-अनुग्राहक महाशयों की उत्कटाभिलाषा का यह सुन्दर परिणाम पुस्तक रूप में आज आप सज्जनों के सम्मुख प्रस्तुत है। अब आप आपके भरोसे! मैं तो अपने कर्तव्य से छुट्टी पा गया। यह रोग कैसा है? भीषण, प्राणघातक, हड्डियां गलती रहती हैं। इससे क्या होता है? मनुष्य निकम्मा, घर के अंधेरे कोने का कूड़ा-करकट और त्रिशंकु का अधर में लटकने वाला

मू० केवल ॥) मात्र।

व्यवस्थापक:—अनुभूत योगमाला कार्यालय, बरालोकपुर, इटावा

फिर न कहना कि हमें मालूम न था

क्षयांक

दैत का महान कोप! आश्चर्य!! भारतकी गरीबी के साथ २ क्षयी तपेदिककी बिना लगाम के घोड़े की तरह सरपट दौड़ रहा है। मूल्य ॥) आ०

प्रमेहांक।

घुन लगा हुआ है भारतके दुर्विपाक से नवयुवकोंके शरीरमें। अब न कहना कि इसकी कोई दवा नहीं। पढ़िये व दौलत की रक्षा कीजिये मू० ॥)

कुष्ठांक।

इस, नाम भी घृणित! 'यह वह मर्ज है जो मसीहा अच्छा कर नहीं सकता' आज झूठा हो गया। पढ़िये, साथ २ सौन्दर्य की रक्षा कीजिये मूल्य ॥) आ०

प्रदरांक।

असमय ही कमल में तुषार बिन्दु! आर्य-ललनाएं लज्जालु हैं इसी लिये वे लजाती हैं। बस, यह उन्हीं की रिजर्व निधि है मू० ॥) आ०

लूटिये!

विशेषांकों की लूट! दौलतका खून सिर्फ भारत की शोचनीय दशाको देखकर १ रुपये के ॥) में

शिरोरोगांक।

शीशी आधी शीशी सर्व प्रकार के शिर रोगों की चिकित्सा का कारण निदानादि वर्णित हैं। सुन्दर, सरल, सचित्र मू० ॥) आ०

वातव्याध्यंक।

वे बैठे थे, वे लेटे थे, और वे-वे उस दिन मदनोद्यान में विचरण कर रहे थे; और रो रहे थे। इसी लिए हमने दौलत का खून करना विचारा है। मू० ॥) आ०

सूजाकांक—वे छटपटा उठते हैं, तिलमिला उठते हैं और जीते ही उनके प्राण गले में अटक जाते हैं, जो इस व्याधि के कराल-गाल में फँसे हैं। मू० ॥) आ० (पता दूसरे पृष्ठ पर)

आयुर्वेद-सुधा की अमृत रश्मियां !

वाजीकरणांक !

माला का

क्या कहा ?

कहा क्या ? यही कि वाजीकरणांक पढ़िये । जानते हैं इस में क्या है ? वही कोका प्रणीत कोकशास्त्र आदि के बताए रति रहस्य का सुन्दर विशद वर्णन । इसका जानना—

जरूरी

है इस लिये कि इसमें अनुभूतयोग तथा चिकित्सा आदि भी सम्मिलित हैं । मू० १) मात्र

! ग्रहणी अंक !

यह बताना बिल्कुल ही अनावश्यक है कि इस में क्या है। जब देखो तब लोटा लिए पाखाने पर बैठे हैं । कैसा बुरा मालूम होता है । अजीब किस्म की दिन भर कसरत करनी पड़ती है । जो इसके साढ़े–सत्रह के फेर में पड़ा बस, उसका मरण ही है । बहुत थोड़ी प्रतियां शेष हैं । शीघ्रता कीजिये मू० ॥)

धातु अंक !

विशेषांक-संसार में
हलचल !

धातु सम्बन्धी सारे विकारों का विशद रूप से विश्लेषण है । चिकित्सा एवं निदान सुन्दर तथा मुहाविरेदार हिन्दी में वर्णित है । आज ही एक कार्ड डाल दीजिये नहीं तो 'चिड़िया चुग गईं खेत पुनि, का पछताने होता है' मू० १) रु०

अनुभूत योगमाला

का

उपदंशांक ।

नवयुवकों की असंयम शीलता तथा असावधानी का इतना भीषण परिणाम निकला है कि आज घर-घर इसका प्रचार होगया है । उसी के नाश करने के सुगम उपाय एवं चिकित्सा इसमें वर्णित है । हम चाहते हैं कि इसका प्रचार घर २ हो । मू० १) रु०

अनुभूत योगमाला कार्यालय, बरालोकपुर, इटावा

जिसके रचयिता हैं—हिन्दी-संसार के सुपरिचित कवि और लेखक—

पं० जनार्दनप्रसाद झा, 'द्विज' बी० ए०

यह वह 'मालिका' नहीं, जिसके फूल मुरझा जायँगे, यह वह 'मालिका' नहीं, जो दो-एक दिन में सूख जायगी; यह वह 'मालिका' है, जिसकी ताज़गी सदैव बनी रहेगी। इसके फूलों की एक-एक पङ्खुरी में सौन्दर्य है, सौरभ है, मधु है, मदिरा है। आपकी आँखें तृप्त हो जायँगी, हृदय की प्यास बुझ जायगी, दिमाग़ ताज़ा हो जायगा, आप मस्ती में झूमने लगेंगे।

आप जानते हैं, द्विज जी कितने सिद्धहस्त कहानी-लेखक हैं। उनकी कहानियाँ कितनी करुण, कोमल, रोचक, घटनापूर्ण, स्वाभाविक और कवित्व-मयी होती हैं। उनकी भाषा कितनी वैभवपूर्ण, निर्दोष, सजीव और सुन्दर होती है। इस संग्रह की प्रत्येक कहानी करुण-रस की उमड़ती हुई धारा है, तड़पते हुए दिल की जीती-जागती तस्वीर है। आप एक-एक कहानी पढ़ेंगे और विह्वल हो जायँगे; किन्तु इस विह्वलता में अपूर्व सुख रहेगा।

इन कहानियों में आप देखेंगे मनुष्यता का महत्व, प्रेम की महिमा, करुणा का प्रभाव, त्याग का सौन्दर्य! आप देखेंगे कि प्रत्येक कहानी के अन्दर लेखक ने कि ससुगमता और सचाई के साथ ऊँचे आदर्शों की प्रतिष्ठा की है।

इसलिए हमारा आग्रह है कि आप 'मालिका' की एक प्रति अवश्य मँगा लीजिए, नहीं तो इसके बिना आपकी आलमारी शोभाहीन रहेगी। हमारा दावा है कि ऐसी पुस्तक आप हमेशा नहीं पा सकते। अभी मौक़ा है—मँगा लीजिए! मूल्य केवल ४) रु०

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

चन्द्रलोक, इलाहाबाद